श्रीमद्

वाल्मीकीयरामायण-

पीयूषधाराभाषा।

श्रीयुतविद्वद्वरपण्डितज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत।

उत्तरखण्ड

इसमें

५ सुन्दरकाण्ड। ६ युद्धकाण्ड। ७ उत्तरकाण्ड।

हैं

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें छापकर

प्रसिद्ध किया

बंबई.

आश्विन शु. १० मी संवत् १९५० शके १८१५
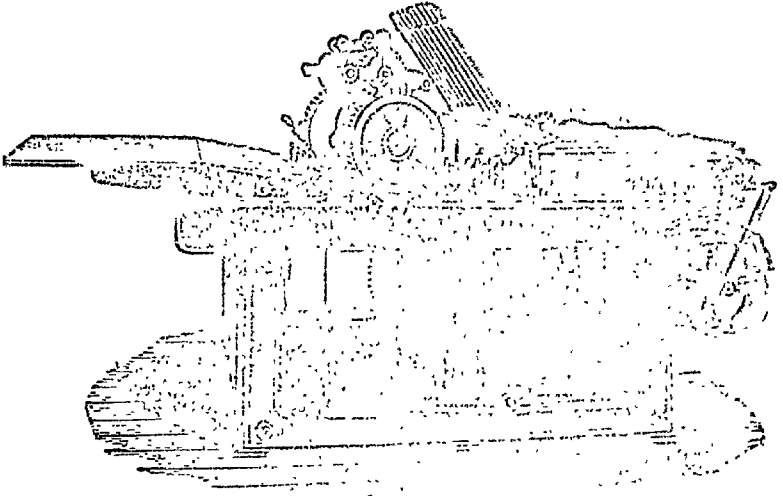
खेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेङ्कटेश्वर छापखाना मुंबई.

पुस्तकमिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापखाना

मुम्बई.

वाल्मीकीय रामायणकी द्वितीयभागकी अनुक्रमणिका।

अथ सुन्दरकाण्डम्।

अनुक्रमणिका ।

सर्गसंख्या. विषय. पृष्ठ.

इति सुंदर काण्डम्।

अथ युद्धकाण्डम्।

अनुक्रमणिका।

इति युद्धकाण्डम् ।

अथ उत्तरकाण्डम् ।

इत्युत्तर काण्डम्।

उत्तरकाण्डके क्षेपक सर्गोंकी सूची

२३–२४के बीचमें.

३७–३८ के बीचमें.

५९–६०के बीचमें.

सम्पूर्णम्।

अक्षहनन.

रावणकी सभा
हनुमान
लंकादहन

श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीवाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्डभाषा प्रा.

(प्रथमः सर्गः)

दोहा—कनक वरण अरु शैल सम, धारे रूप विशाल ॥
गर्जि घोर रामहि सुमिर, चल्यौ अंजनी लाल ॥

ततोरावणनीतायाःसीतायाःशत्रुकर्षणः ॥
इयेषपदमन्वेष्टुंचारणाचरितेपथि ॥ १ ॥

तिसके पीछे शत्रुओंके दमन करने वाले हनुमानजी रावणसे हरा सीताजीको ढूढ़नेको जिस मार्ग में सिद्ध चारण गण जाया करतेहैं, उसी आकाश मार्गमें होकर जानेंकी इच्छा करनें लगे ॥ १ ॥ जो दूसरे से न करा जावे ऐसा दुष्कर कर्म करनेंके अभिलाषी होकर विघ्न रहित गरदन और मस्तक उठाये बड़े वृषभकी समान शोभायमान होने लगे ॥ २ ॥ तहां वह धीर महाबली हनुमान वैदूर्य मणिके वर्णकी समान और जल प्राय हरी २ घासोंके समूह में यथा सुख विचरनें लगे ॥ ३ ॥ वह हनुमानजी वहांके रहनें वाले पक्षियोंको त्रासित करते, अपनी छातीकी रगड़से वृक्षोंको गिराते अति बढ़ेहुए बहुतसे मृगोंको हनन करते हुए सिंहकी समान शोभित होते हुए ॥ ४ ॥ पर्वतके स्वभावसिद्ध, श्वेत, कृष्ण, कनेरी मजीठी रंगकी पद्मराग मणियोंसे और पर्वतोंपर आप उत्पन्न हुई विमल धातुओंसे अलंकृत ॥ ५ ॥ अनेक भांतिके भूषण वस्त्र धारण किये अपने२ परिवारों सहित, देवताओंकी समान कामरूपी यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, और सर्पोंसे सेवित ॥ ६ ॥ और श्रेष्ठ हाथियोंके समूहोंसे व्याप्त उस महेन्द्र पर्वतकी तलैटी में इस प्रकार रहनेंसे वानर श्रेष्ठ हनुमान सरोवर में स्थित हाथीकी समान शोभित हुये ॥ ७ ॥ हनुमान सूर्य, महेन्द्र, पवन, और दूसरे प्राणियोंको हाथ जोडकर आकाश में जानेंकी मति करते हुए ॥ ८ ॥ वह चतुर अपनी उत्पत्तिके हेतु पवन देवताको पूर्व मुखहो

प्रणाम करके दक्षिण दिशाको गमन करनेके लिये बढ़नें लगे ॥ ९ ॥ वानर श्रेष्ठोंनें देखाकि श्रीरामचन्द्रजीके हितार्थ समुद्र लांघनेके लिये निश्चय करे हुए हनुमानजीका शरीर ऐसे बढ़ने लगा, जैसे पूर्णमासीके पूर्ण चन्द्रमाको देख समुद्रकी लहरें बढ़तीहैं ॥ १० ॥ हनुमानजी प्रमाण रहित देह धारण करते हुए समुद्रको लांघनेके अभिलापीहो भुजा और चरणोंसे पर्वतको पीड़ित करनें लगे ॥ ११ ॥ जब हनुमानजीनें उसको पीडित किया तब मुहूर्त्तभर तक वह पर्वत चलाय मानरहा, जिस्से कि फूले फूले वृक्षोंके समस्त पुष्प नीचे गिरगये॥१२॥जब उन समस्त सुगन्धित पुष्पोंने वृक्षों परसे गिरकर उस पर्वतको ढकलिया तब ऐसा ज्ञात हुआ मानों समस्त पर्वतही फूलोंका बना हुआहै ॥ १३ ॥ वह महेन्द्र पर्वत, बलवान्, वीर्यवान कपिश्रेष्ठ हनुमानजीसे पीडित होकर मतवाले हाथीके मद चुआनेकी समान जल वहानें लगा ॥ १४ ॥ हनुमानजीसे पीडितहो इस पर्वतके चारों ओरसे काञ्चनके और चांदीके वर्णवाले अनेक भांतिके सोते वहनें लगे ॥ १५ ॥ और वह पर्वत मनशिल युक्त बडी २ शिलायें छोडनें लगा, तौ उस्से ऐसी शोभा हुई कि मानों अग्निका मध्यस्थान जलताहै और वह चारों ओरसे धुयेंकी राशि छोड़ताहै ॥ १६ ॥ हनुमानजीसे पीडित होनेंके कारण इस पर्वतकी गुहाओंमें रहनें वाले प्राणी सब भांतिसे सताये जाकर विकट शब्दसे चिल्लाने लगे ॥ १७ ॥ पर्वतकी पीडाके निमित्त उन प्राणियोंके उस चिल्लाहटकी ध्वनिसे पृथ्वी व दशोंदिशा, और सब उपवन पूरित होगये ॥ १८ ॥ फनेवाले सर्प नीले रेखा ओंसे युक्त अपने बड़े मस्तकसे भयंकर अग्नि उगलते हुए दातोंसे शिलाओंको काटनें लगे ॥ १९ ॥ तब बड़े २ पत्थर उन विषयुक्त क्रोधित सर्पोंसे काटे जाकर अग्निसे प्रदीप्त वस्तुकी समान जलकर हजार २ टुकड़े होगये॥२०॥ उस पर्वतमें विषकी नाश करनें वाली जो दवाइयेंथीं, वह सब दवाइयें भी इन सर्पोंके विषको निवारण नहीं कर सकतीं॥२१॥ उस पर्वतको ब्रह्मराक्षसादि भूतोंसे फटता हुआ जानकर तपस्वी लोग और अपनी २ स्त्रियोंके सहित विद्याधर लोग उस परसे चले गये ॥ २२ ॥ मद पान करनेंके सुवर्ण मय पात्र मद पीनेंके स्थानमेंही छोड़दिये, इनके अतिरिक्त सुवर्ण चांदीके भोजनादि करनेंके, बडे मूल्यवान पात्र और सुवर्णके कमंडलु सब

वहीं पर छोड़दिये ॥ २३ ॥ चाटनेंकी चटनी आदि विविध पदार्थ और भोजन करनेंके अनेक प्रकारके मांस, और बैलोंके चमड़ेसे बँधे, मृगादिकोंके चर्मसे मढ़े सुवर्णकी मूंठें लगे हुए खड्ग ॥ २४ ॥ आदि पदार्थोंको छोडकर मतवाले माला पहरे चंदनादि लगाये अरुण और कमल नेत्र युक्त विद्याधर गण मानों उच्च स्वरसे गान करते आकाशको चले गये ॥ २५ ॥ श्रेष्ठ हार धारण नूपुर और बाजू पहरे विद्याधरोंकी स्त्रियें विस्मितहो कुछेक हास्य करती हुई अपने२ स्वामियोंके साथ आकाशमें खड़ी रहीं ॥ २६ ॥ तब महर्षि और विद्याधर लोग परस्पर मिल यह महा विद्या दिखाते आकाशमें टिके उस महेन्द्र पर्वतको देखनें लगे ॥ २७ ॥ तब निर्मल आकाशमें टिके हुए विशुद्धचित्त ऋषि सिद्ध और चारणोंका यह वचन श्रवण करते हुए ॥ २८ ॥ यह महा वेगवान् पर्वताकार पवनकुमार हनुमानजी वरुणालय समुद्रके पार जानेंका अभिलाष करतेहैं ॥ २९ ॥ यह हनुमानजी श्रीरामचन्द्रजी और वानरोंके निमित्त दुष्कर कार्य करनेंके अभिलाषीहो समुद्रके उतरनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ३० ॥ तपस्वी लोगोंके यह वचन सुनकर विद्याधरोंनें उस पर्वतपर टिके हुये अप्रमाण प्रभाव वाले कपिश्रेष्ठ हनुमानजीको देखा ॥३१॥ इस ओर पावक की समान पवनकुमार हनुमानजी स्वयं कम्पायमानहो अपने रुओंको फुलाते महा मेघकी समान महा नादसे शब्द करते हुये ॥ ३२ ॥ और कूदनें की वासना कर क्रमसे गोलाकार रुओंसे छाई हुई अपनी पूंछ हिलाई, जैसे गरुड़जी सर्पको पकडकर हिलातेहैं ॥ ३३ ॥ पीछेसे हिलती हुई उनकी पूंछ गरुडजीसे पकड़े हुए अजगर सर्पकी समान हिलती हुई दृष्टि आतीथी ॥ ३४ ॥ कूदनेके समय उन्होंने अपने परिघ आकार वाले महा बाहु दृढ़ किये, और कमरके घोरेसे बहुतही सुकड़ गये और चरणोंकोभी सकोड़ लिया ॥ ३५ ॥ हाथ शिर, व ओष्ठभी इस भांति सकोड़ लिये, और तेज, सत्य, वीर्य मेंभी महावीर्यवान् हनुमानजी प्रविष्ट होगये ॥ ३६ ॥ और ऊपरको दृष्टिकर दूरसे आकाश मार्गको देखते हुए, हृदयमें प्राण वायुको रोक ॥ ३७ ॥ वह कपि कुंजर महाबलवान् श्रेष्ठ हनुमानजी दोनों कानों को सकोड दोनों चरणोंको जमाय कूदनेके समय ॥ ३८ ॥ वानर श्रेष्ठोंसे कहनें लगे कि जिस प्रकार श्रीरामचंद्रजीके छोड़े हुए बाण वायुकी समान गमन

करते हैं ॥ ३९ ॥ वैसे ही हम रावणसे पाली जाती हुई लंका नगरीमें चले जांयगे।यदि जनककुमारी सीताजीको हम वहां न देख पावेंगे॥४०॥ तौ यही वेगधारण किये हुए स्वर्गको चले जांयगे । यदि वहां भी सीताजीको न देख पाकर हम विफल यत्न हों ॥ ४१ ॥ तौ राक्षस राज रावणको यहां बांधकर ले आवेंगे यातौ हम सब प्रकारसे सफल मनोरथ हो सीताजीके साथही लौटेंगे ॥ ४२ ॥ अथवा रावण सहित समस्त लंका नगरीको उखाडकर यहां ले आमेंगे । वानर श्रेष्ठ हनुमानजी वानरोंसे इस प्रकार कह॥४३॥समुद्र लांघनेके क्लेशको न विचारकर वह वेगवान् अति वेगसे कूदे और उस समय अपने आपको गरुडकी समान कपियोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी मान्ते हुए ॥ ४४ ॥ तब उस पर्वत परके उत्पन्न हुये समस्त वृक्ष उनके वेगकी झोकसे अपनी शाखाओंको संकुचितकर चारों ओरसे ऊपर को उछलने लगे ॥४५॥हनुमानजीनें अपने वेगसे मतवाले कोकिलादि पक्षियोंसे सेवित पुष्पोंसे अलंकृत वृक्ष अपनी जंघा ओंके वेगसे उखाडते निर्मल आकाशमें गमन करनेंलगे॥ ४६ ॥बंधुलोग जिसप्रकार दूर देश जाते हुए बन्धुके साथ थोडी दूर चलतेहैं वैसेही उन कपि श्रेष्ठ हनुमानजी की जंघाओंके वेगसे खडे हुए वृक्ष एक मुहूर्त तक उनके पीछे २ चले गये ॥ ४७ ॥ सेनाके सिपाही जिसप्रकार राजाके पीछे २ चलतेहैं वैसेही शाल व और दूसरे उत्तम वृक्ष हनुमानजीकी जांघोंके वेगसे उखडे हुए उनके पीछे २ चले ॥ ४८ ॥ तब बानर श्रेष्ठ हनुमानजी अनेक पुष्पित वृक्षोंसे युक्त होकर अद्भुत आकार वाले पर्वतकी समान शोभित हुए ॥ ४९ ॥ फिर जिस प्रकार समस्त पर्वत इन्द्रजीके भयसे वरुणालय समुद्रमें डूबेथे वैसेही भारी २ वृक्ष थोडी दूर हनुमानजीके साथ चलकर लवण समुद्रमें गिरने लगे॥५०॥जिसप्रकार पर्वत बहुत सारे पट वीजनोसे युक्त होकर शोभायमान होताहै वैसेही मेघाकार वानर श्रेष्ठ हनुमानजी अंकुरित पुष्पित और कलीदार अनेक प्रकारके पुष्पोंसे युक्त होकर शोभित हुए ॥५१॥ हनुमानजीके वेगसे छूटे हुए समस्त वृक्ष पुष्प छोड़कर समुद्रके जलमें गिरे जिस प्रकार दूर देशको जाने वाले पथिकके भाई बंधु उसको थोड़ी दूर पहुंचाकर थम जातेहैं ॥५२॥वृक्षोंके जो अनेक प्रकारके

पुष्प जोकि हनुमानजीके उछलनेंकी पवनके वेगसे प्रेरित और उनके शीघ्र गमनसे थोडी दूरतक चले आयेथे वह सब समुद्रमें गिर पडे॥५३॥उसकालमें रंग विरंगे सुगंधि युक्त फूलोंके समूहसे भूषित हो कपि श्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी बिजलीकी रेखाओंसे विभूषित उदित मेघकी समान शोभायमान हुए५४॥जिस प्रकार आकाश मंडल उदय हुए रमणीय तारा गणोंके गुच्छों से सजजाताहै वैसेही समुद्रका जल हनुमान्जीके वेगसे उड़ आये हुए पुष्पों-के समूहसे शोभित होनें लगा॥५५॥उसकाल हनुमान्जीके फैलाये हुये दोनों हाथ आकाशमें ऐसे दृष्टि आये मानो पर्वतके शिखरसे पांच शिरवाले दोसर्प निकल रहेहैं५६॥वह बानर श्रेष्ठ हनुमानजी तरंग माला शोभित महासा-गरको मानो पिये लेतेहैं अथवा मानों समस्त आकाशके पीनेंको उद्यत हुए हैं इस प्रकारसे दृश्यमान और शोभायमान होनें लगे ॥ ५७ ॥ जब कि वह वायु मार्गके अनुसार चलने लगे तब उनके बिजलीके समान प्रभायुक्त दोनों नेत्र पर्वतके शिखर परकी दो अग्नि ओंके समान प्रकाशित हुए॥५८॥ उन कपिश्रेष्ठके गोलाकार पीले मंडलवाले बड़े २ दोनों नेत्र आकाशमें स्थित हुये सूर्य चंद्रमाकी समान प्रकाशित होनें लगे ॥ ५९ ॥ उनकी लाल नासिका व लालही वदन संध्यासमयके सूर्य नारायणके मंडलकी समान शोभित हुआ ॥ ६० ॥ आकाशमें चलते हुये पवनकुमार हनु-मानजीकी हिलतीहुई पूंछ इन्द्रध्वजकी समान शोभा धारण करती हुई ॥ ६१ ॥ महाप्राज्ञ श्वेत दांतवाले कपिश्रेष्ठ हनुमानजी पूंछके चक्रसे युक्त होकर मंडलयुत सूर्य भगवान्की समान शोभित हुए ॥ ६२ ॥ उनकी कमरका स्थान अधिक लाल होनेसें वह वहते हुये श्रेष्ठ गेरुकी धातुसे ढके पर्वतकी समान शोभित हुये ॥ ६३ ॥ समुद्रको लांघनेंके समय कपिश्रेष्ठ हनुमानजीकी बगलोंमें जाता हुआ पवन मेघकी समान गर्जनें लगा ॥ ६४ ॥ वह कपि कुंजर हनुमानजी ऊर्ध्व भागसे निकली हुई दूसरी उल्काके सहित गमन करनेंको तैयार दूसरी उल्काके समान दृष्टि आनें लगे ॥ ६५ ॥ तब गमन करते हुये सूर्यकी समान बड़े आकार वाले कपिश्रेष्ठ हनुमानजी, कमरमें रस्सा बँधे हुये महागजकी समान शोभायमान होने लगे ॥ ६६ ॥ उन हनुमानजीकी आकाशमें लम्बाय-मान शरीरकी परछाई समुद्रमें पड़नेंसे वह पाल लगी हुई नौकाके समान

शोभाको प्राप्त हुये ॥ ६७ ॥ वह वानर श्रेष्ठ हनुमानजी समुद्रके जिस स्थानमें जातेथे, उस उस स्थानमें समुद्र उनके शरीरके वेगसे क्षुभितहो उन्मत्तकी समान दृष्टि आताथा ॥ ६८ ॥ हनुमानजी पर्वतकी समान अपनी चौड़ी व कड़ी छातीसे समुद्रकी तरंगोंको हतकरते हुये महा वेगसे समुद्रके पारहोनें लगे ॥ ६९ ॥ उस कालमें हनुमानजीके वेगसे, चलनेंके पवनसे, और आकाश मंडलकी पवनके घातसे भयंकर गर्जनेंवाला समुद्र कम्पायमान होने लगा ॥ ७० ॥ वह कपिश्रेष्ठ हनुमानजी क्षार समुद्रकी बड़ी लहरियोंको इधर उधरसे खेंचते मानों स्वर्ग और पृथ्वीको पृथक् करते २ समुद्रके पार होंने लगे ॥ ७१ ॥ ऐसेही मेरु और मन्दराचल पर्वतकी समान ऊंची समुद्रसे उत्पन्न हुई सब तरंगोंको मानों गिनते २ महा वेगसे हनुमानजी उन सबको उल्लंघन करते हुये ॥ ७२ ॥ उस समय समुद्रका जल उन हनुमानजीके वेगसे उछला हुआ और मेघ मंडलके छूजानेसे शरद् कालके बडे मेघकी समान विराजमान हुआ ॥ ७३ ॥ और प्राणियोंके शरीरके वस्त्र उतार डालनेंसे जिस प्रकार दिखाई देतेहैं, वैसेही तिमि, नाके, कछुए और बडे मच्छ जलके ऊपर आय २ दिखलाई देनें लगे ॥ ७४ ॥ कपि शार्दूल हनुमानजी आकाश मार्गमें समुद्रके पार होतेहैं, यह देखकर समुद्रके रहनें वाले सांप उनको गरुड समझनें लगे ॥ ७५ ॥ बडे वेगसे गमन करते हुए हनुमानजीकी परछाई चालीसकोसकी मोटी और एक सौ वीसकोसकी लम्बी मनोहरथी ॥ ७६ ॥ पवनकुमार हनुमानजीके पीछे पीछे चलनेसे उनकी परछाई क्षार समुद्रमें पडनेंसे श्वेत, श्रेष्ठवादर पंक्तिके समान शोभा धारण करतीथी ॥ ७७ ॥ वह महातेज सम्पन्न महाकाय वानरश्रेष्ठ अवलम्ब रहित आकाश मार्गमें टिके हुये, पंखलगे पर्वतकी समान शोभायमान होने लगे ॥ ७८ ॥ वानर श्रेष्ठ बलवान् हनुमानजी जिस २ मार्गमें वेग सहित गमन करनें लगे, उसी २ मार्गमें, नदियोंका पति समुद्र मानो जलधारा निकलते हुये पतनालोंकी समान चलताथा ॥ ७९ ॥ इस प्रकारसे हनुमानजी आकाश मार्गमें गरुडजीकी समान गमन करते हुये, पवनकी समान मेघ जालको छिन्न भिन्न करनें लगे ॥ ८० ॥ श्वेत, नील, अरुण व मंजीठ रंगके वादर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीसे खेंचे जाकर पवनसे चलायमान किये हुये मेघों-

की समान शोभा धारण करते हुये ॥ ८१ ॥ हनुमानजी वारंवार मेघ मंडलमें प्रवेश करके छिपजाते, कभी उनमेंसे निकलकर प्रकाशितहो जाते, इस्से वह वादरोंमें छिपते, प्रकाशित होते चंद्रमाके समान दृष्टि आनें लगे ॥ ८२ ॥ तब देव,दानव, और गंधर्व लोग उन कपिश्रेष्ठ हनुमानजीको वेग सहित समुद्र लांघते देख वहां पर फूलोंकी वर्षा करनें लगे॥८३॥सूर्य भगवान्नें उन समुद्र लांघते हुये उन वानर राजको अपनी किरणोंसें संतापित नहीं किया; और पवन जीभी श्रीरामचंद्रजीके कार्य की सिद्धिके लिये हनुमानजीका श्रम हरनेंकी वासनासे धीरे धीरे चलने लगे ॥ ८४ ॥ ऋषि लोग उन आकाश मार्गमें चलते हुये कपिश्रेष्ठ हनुमानजीकी स्तुति करते हुये और देवता व गन्धर्वगण उनकी बड़ाई गानें लगे ॥ ८५ ॥ यक्ष, रक्ष, नागगण, विगतक्लेश कपिश्रेष्ठ हनुमानजीका साहस देखकर "धन्यहै २" ऐसा कहनें लगे ॥ ८६ ॥ जब वानरश्रेष्ठ हनुमानजी समुद्रके पारजानें लगे, तब समुद्र इक्ष्वाकु कुलके सन्मान करनेंका अभिलाषी होकर चिन्ता करनें लगा ॥ ८७ ॥ यदि हम इस समय वानर राज हनुमानजीकी सहायता न करैंगे, तो सर्व लोकोंके समीप हम निन्दनीय होंगे ॥ ८८ ॥ हम इक्ष्वाकुनाथ सगरजी करकै वढ़ाये गयेहैं, और यह कपिश्रेष्ठभी इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुये श्रीरामचंद्रजीका दूतहै, इसलिये इनका श्रम न हरना हमको उचित नहीं है ॥ ८९ ॥ अब जिस्से यह कपिश्रेष्ठ सावधान होजांय, ऐसा अनुष्ठान हमको अवश्य करना चाहिये, और हमारे ऊपर टिककर, श्रमको वहाय, यह सुख पूर्वक बाकीरहा अंश कूद जांय ऐसा विधान करना हमको उचितहै ॥ ९० ॥ नदियोंका पति समुद्र इस प्रकार साधु संकल्प मनमें विचार अपने जलके मध्य टिके हुये सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ मैनाकसे बोला ॥ ९१ ॥ कि महात्मा देवराज इन्द्रजीनें पातालनिवासी असुरोंके द्वारका मार्ग रोकनेंके लिये परिघरूप तुमको यहां रक्खाहै ॥ ९२ ॥ पातालसे फिर निकल आनेंकी इच्छाकिये महा पराक्रमी उन सब असुरोंका अप्रमाण वाला पातालका द्वार तुमही रोके हुये टिके हो॥९३॥ हे पर्वत श्रेष्ठ ऊंचे नीचे और टेढ़े बढनेकी सब प्रकार सामर्थ्य तुम रखतेहो,इसलिये हे गिरि श्रेष्ठ! हमारे कहनेंसे तुम ऊपरको बढो ॥ ९४ ॥ इस समय देखोकि रामचंद्रजीका कार्य साधन

करनेंको भयंकर कर्मकारी, गगन विदारी, वीर्यवान् कपिश्रेष्ठ हनुमान तुम्हारे ऊपरी भागमें आयाही चाहतेहैं और इस समय यह परिश्रमके मारे थकेसे जान पडतेहैं, सो ऐसा करोकि यह तुम्हारे ऊपर कुछदेर टिककर आरामलेलें, इस लिये इन कपिवरका श्रमदेखकर तुमकोभी अवश्य उठना कर्त्तव्यहै ॥९५॥ बड़ेर वृक्ष और लता पत्रादिकोंसे युक्त मैनाक पर्वत लवण समुद्रके वचन सुनकर ततक्षण जलसे ऊपरको उठा॥९६॥तेजकिरणों वाले सूर्य भगवान् जिस प्रकार वादलोंको भेदकर निकल आतेहैं, वैसेही मैनाक पर्वत समुद्रके जलको भेदकर अत्यन्त ऊंचा बढा ॥ ९७ ॥ इस प्रकार समुद्रसे ढके हुये उन महात्मा मैनाक पर्वतनें समुद्रके कहनेसे एक मुहूर्तमें अपने शृङ्ग ऊपर प्रकाशिक किये ॥ ९८ ॥ सुवर्णमय प्रभातकालीन सूर्यकी समान प्रभावाले, किन्नर और वडे २ सर्पोंसे सेवित उस मैनाक पर्वतके शृंग मानों आकाश स्पर्शही करतेहीसे उठे ॥ ९९ ॥ मैनाक पर्वतके किरणमय शृङ्गोंसे सुवर्णकी समान प्रकाशित होनेसे आकाश मंडल शस्त्रोंकी समान शोभायमान हुआ ॥ १०० ॥ और अतिशय प्रभा और शोभा सम्पन्न इन सब सुवर्णमय शृंगोंसे युक्त होनेके कारण गिरिराज मैनाक अनेक सूर्योंकी समान शोभायमान हुआ ॥ १०१ ॥ हनुमानजीनें लवण समुद्रमेंसे सहसा उठे हुये उस पर्वतको देखकर यह निश्चय किया कि हमें रोकनेंके लियें समुद्रमेंसे कोई विघ्न उठ खडा हुआ है. ॥ १०२ ॥ पवन जिस प्रकार मेघको टक्कर देताहै. वैसेही हनुमानजीनें मैनाक पर्वतके अति ऊंचे शृङ्गोंको अपनी छातीके धक्केसे अति वेग सहित, नीचेको वैठादिया ॥ १०३ ॥ गिरिश्रेष्ठ मैनाक वानर श्रेष्ठ हनुमानजीकी रगडसे नीचेको बैठ उनके वलका वेग देख आनंदके मारे शब्द करनें लगा ॥ १०४ ॥ फिर मैनाक पर्वत प्रसन्न और हर्षयुक्त हृदयसे आकाशको उठकर वहींपर प्राप्त हुये हनुमानजीसे बोला ॥ १०५ ॥ वह मनुष्यका रूप धारण करके अपने एक शिखरपर खडेहो हनुमानजीसे बोला कि हे वानरश्रेष्ठ! तुम अति कठिन कार्य करनेको तैयार हुए हो ॥ १०६ ॥ इसलिये हमारे शृङ्गोंपर बैठ कुछ देरतक विश्राम लेकर यथासुखसे चले जाओ। रघुकुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंने समुद्रको बढाया है॥१०७॥ और तुमभी उन्हीं रघुकुलमें जन्म लिये श्रीरामचंद्रजीका कार्य

साधन करनेंमें नियुक्त हो, इसलिये स्वयं नदियोंके पति समुद्र तुम्हारी पूजा करतेहैं, क्योंकि जो अपने साथ में उपकार करे उसके साथमें प्रत्युपकार करनाही सनातन धर्म है॥ १०८ ॥ यह समुद्र रघुवंशका प्रत्युपकार किया चाहताहै, सो तुमसे समुद्रके संमानकी रक्षा होनी अवश्य योग्य है, इस समुद्रनें तुम्हारा सत्कार करनेके लिये हमको अनेक मानदे इस प्रकारसे यहां भेजाहै ॥ १०९ ॥ उन्होनें कहा कि यह हनुमानजी शत योजन समुद्रके पार जानेंके निमित्त आकाश मार्गमें गमन करतेहैं, इसलिये तुमारे शृंगोंपर कुछ देरतक टिककर यह शेष मार्गको लांघ जांय ॥११०॥ इसलिये हे वानरश्रेष्ठ! तुम हमारे शृंगोंपर टिककर थोडी देर विश्राम पाय फिर चले जाओ हे हरिश्रेष्ठ! हमारे शृंगोंपर स्वादवाले और सुगंधिवाले जो कंद मूल फल दृष्टि आतेहैं ॥ १११ ॥ उन सबको भोजनकर विश्राम पाय फिर तुम चले जाना, हे कपिश्रेष्ठ! तुम्हारे सहित हमाराभी त्रिलोक विख्यात महागुण युक्त संबंधहै ॥ ११२ ॥ हे पवनकुमार! इस लोकमें जितनें कूदनें फांदनें वाले वेगवान् वानरहैं, हे कपिकुंजर! उन सबमें हम तुमको मुख्य समझतेहैं ॥ ११३ ॥ विशेष करके जो पुरुष धर्म जिज्ञासुहैं उनको प्राकृत अतिथिकोभी पूजा करना कर्तव्यहै, फिर तुम्हारी समान गुणवान अतिथिकी पूजा करना तौ हमको भली भांतिसे उचित है ॥ ११४ ॥ तुम देवताओंमें श्रेष्ठ महात्मा पवनजीके पुत्रहो और वेगमेंभी तुम हे कपि कुंजर! उनकीही समानहो ॥ ११५ ॥ हे धर्मज्ञ! तुम्हारी पूजा करनेंसे मानो पवनजीहीकी पूजा होगई, इसी कारणसे तुम हमारे पूजनीयहो । इस विषय में एक और कारणभीहै. वह भी तुम सुनो ॥ ११६ ॥ हेतात! पहले सत्य युगमें सर्व पर्वतोंके पंख होनेंके कारण. वह गरुड़जीकी समान वेग सहित सब दिशाओंमें गमन करनें लगे ॥ ११७ ॥ पर्वतोंको उड़ता देखकर देवगण, ऋषिगण, और सबही प्राणीगण उनके गिरनेंकी शंकासे भीत होगये, कि, यह कहीं किसीके ऊपर न गिरैं॥११८॥तब हजार नेत्र वाले इन्द्रजीनें क्रोधित होकर अपने वज्रसे सैंकडों हजारों पर्वतोंके पंख काट डाले ॥ ११९ ॥फिर वह बड़ा क्रोध कर बलसे वज्र उठाये हमारे निकटभी हमारे पंख काटनेंको आये हे वानर श्रेष्ठ! तब महात्मा पवनजीने यह देख उसी क्षण हमको वहांसे उठाय॥१२०॥

इस क्षार समुद्रमें फेंकदिया उन्होनें हमारे पंखभी वचाये और किसीप्रकार का घाव भी देहमें न होने दिया व सवही प्रकारसें रक्षाकी ॥ १२१ ॥ हे पवनसुत इसही कारणसे तुम हमारे मान्यहो । व इस्से हम औरभी तुमसे संभाषण करते हैं हे कपिश्रेष्ठ तुम्हारे सहित यही संवन्ध है और यह सवन्ध महा गुणयुक्त है॥१२२ ॥ हे महामते! प्रत्युपकार करनेंका यह अवसर उपस्थित है इसलिये तुमको प्रसन्न होकर वह करना जिससें हमारी और समुद्रकी प्रसन्नता हो ॥ १२३ ॥ हे कपिश्रेष्ट! हम तुम्हारे मान्यभीहैं क्योंकि तुम्हारे पिताजीसे हमरा सम्वन्धभीहै इसलिये श्रमको दूरकर पूजा पाय तुम हमको प्रसन्न करो इस समय तुमको देखकर हमें वड़ी प्रीति उपजी है॥१२४॥ जब पर्वतराज मैनाकने इसप्रकारसे कहा तव कपिश्रेष्ठ हनुमानजी उससे बोले कि आपनें हमारी पहुनईभी भली भांति की और हमभी बहुत प्रसन्न हुए परन्तु हम जो आपकी दी हुई पूजाग्रहण न कर सके उस के लिये आपको क्षोभ न करना चाहिये॥१२५॥एक तो कार्यका समय हमको शीघ्रता कराताहै दूसरे दिनभी बीता चाहताहै और तीसरे हमने सर्व वानरोंके सामने यह प्रतिज्ञा भी कीहै कि हम वीचमें कहीं न ठहरैंगे बराबर चले जांयगे ॥१२६॥वीर्यवान् कपिश्रेष्ठ हनुमानजी यह कह अपने हाथसे पर्वत राज मैनाकको स्पर्श कर आकाशका आश्रयले हँसते२चले गये ॥ १२७ ॥ पर्वत और समुद्र दोनोंने वार२ उन हनुमानजीको निहार तत्कालोचित आशिर्वादसे उनका आदर मान किया और चलते समय पूजा करके आशिर्वाद भी दिया ॥ १२८ ॥ फिर हनुमानजी पर्वत और समुद्र दोनोंको त्यागकर पहलेसे और भी अधिक ऊंचे उठ वायु मार्गका आश्रय ले निर्मल आकाश मंडलमें गमन करने लगे॥ १२९ ॥इस प्रकार कपि कुंजर हनुमानजी वहुत ऊंचे उडकर गिरिश्रेष्ठ मैनाक को देखते अवलंबन विहीन आकाश मार्गमें चले गये॥१३०॥देव सिद्ध और परमर्षिगण सवही उनका यह और किसीसे न होनें योग्य अति कठिन कार्य देखकर प्रशंसा करनें लगे॥१३१॥मैनाक पर्वतपर खडे हुए और आकाश में टिके हुए इन्द्रादि गणभी अच्छी नाभिवाले सुवर्णमय मैनाक पर्वतके इस कार्यसे बडे प्रसन्न हुए॥१३२॥फिर शचिके पति सहस्र नेत्र वाले बुद्धिमान इन्द्रजी प्रसन्नहो गदगद वचनोंसे सुशोभित मेखलायुक्त पर्वत श्रेष्ठ मैनाकसे

कहने लगे ॥ १३३ ॥ हे हिरण्यनाभ सौम्य पर्वतराज! हम तुम्हारे ऊपर बहुतही प्रसन्न हुएहैं हम तुमको अभय देतेहैं कि जब तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां फिरा करो हम तुम्हारे पंख न काटेंगे॥ १३४ ॥हनुमानजीको भय रहित विश्राम लिये विना शत योजनके समुद्र पार होते देख कदाचित् पीछे यह किसी शंकटमें न पडें यह विचार कर तुमने उनकी विशेष सहायता की है॥१३५॥ दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीकाही हित करनेंक लिये यह कपिश्रेष्ठ हनुमानजी जातेहैं सो तुमने यथाशक्ति उनका आदर करके हमको अति संतुष्ट किया१३६समस्त देवता ओंके राजा इन्द्रजी को प्रसन्न देखकर पर्वत श्रेष्ठ मैनाक अति हर्ष प्राप्त करता हुआ॥१३७॥और इन्द्रजीसे ऐसा अभय वर पाय यथा स्थानमें टिकगया इधर हनुमानजीभी मैनाकके अधिकारवाला समुद्रका भाग एक मुहूर्त में उतर गये ॥ १३८ ॥ हनुमानजी समुद्रके पार चलेही जातेथे, कि इतनेंमें देव,गन्धर्व,सिद्ध, और महर्षि गण सवही हनुमानजीके बुद्धिबलकी परीक्षाके निमित्त सूर्यकी समान प्रकाशवाली, नागमाता सुरसासे बोले ॥ १३९ ॥ कि वायुनन्दन श्रीमान् हनुमानजी समुद्रके पार होनेके आकाश मार्गसे चले जा रहेहैं,सो तुमको एक मुहूर्ततक उनके गमन करनेंमें विघ्न डालना पड़ैगा ॥ १४०॥ इसलिये तुम अतिभयंकर पर्वताकार राक्षसरूप धारण करके पीले वर्ण वाले नेत्रों सहित भयंकर दांत युक्त वदन बनाय, इतनी ऊंचीहो कि आकाशको छूलो ॥ १४१ ॥ तव पवनकुमार उपाय करके तुमको जीत लेते. या विषादित होतेहैं, बस उनका यह बल बुद्धि और पराक्रम हम लोग जाना चाहतेहैं ॥ १४२ ॥ जब देवता लोगोंनें अति आदर सन्मानसे इस प्रकार कहा, तब देवी सुरसा समुद्रके मध्य में राक्षस रूप धारण करती हुई ॥ १४३ ॥ उसका यह रूप विकट विरूप और सर्वका भय उपजानें वालाथा । तब सुरसा समुद्रके पार जातेहुए हनुमानजीका मार्ग रोककर बोली ॥ १४४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! देवता लोगोंनें तुमको हमारा भोजन बतायाहै, इसलिये हम तुमको खा जांयगी, सो तुम हमारे इस मुखमें प्रवेश करो ॥ १४५ ॥ और ब्रह्माजीनें पहलेसे हमको यह वरदानभी दे रक्खाहै । यह कहकर सुरसानें अति मुख फैलाया, और हनुमानजीके आगे खड़ी होगई ॥ १४६ ॥ जब सुरसानें इस प्रकार कहा तब हनुमानजी

हँसकर बोले, कि दशरथजीके राम नामक पुत्र अपने भाई लक्ष्मण और अपनी स्त्री वैदेहीजीके सहित दंडकारण्यमें आये॥ १४७॥ सो किसी कार्यसे उनमें और राक्षसोंमें परस्पर वैर बँधगया, और उनकी यशस्विनी भार्या जानकीजीको रावणनें हरण कर लिया॥ १४८॥ हम उन्हींके दूत हैं और उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे जानकीजीके निकट जातेहैं, और तुमभी रामचन्द्रजीके राज्यमें वसतीहो, इसलिये इस कार्य में तो तुमको भी हमारी सहायता करनी चाहिये उलटा विघ्न करना तुमको नहीं सोहता ॥१४९॥और जो तुम हमें भोजन करनाही चाहतीहो, तो हम सीताजीके दर्शन करकै क्लेश रहित श्रीरामचंद्रजीको उनका समाचारदे फिर यहां आय तुम्हारे वदनमें प्रवेश करेंगे। वस तुम्हारे निकट यह प्रतिज्ञा हमनें सत्य-ही सत्यकीहै॥ १५०॥ हनुमानजीके यह वचन सुनकर कामरूपिणी सुरसा उनसे बोलीकि हमको ब्रह्माजीनें यह वर दियाहै कि तुम्हारे आगेसे कोईभी जीवित न जाय सकेगा॥ १५१॥ हनुमानजीको गमन करते हुये देखकर नागमाता सुरसा उनकी शक्तिकी परीक्षा लेनेंके लिये उनसे बोली ॥ १५२॥ हे वानरश्रेष्ठ! विधातानें हमको यही वरदान दियाहै कि जो तुम्हारे आगे२ आवेगा वह तुम्हारे वदन में ही होकर जाय सकेगा सो यदि तुममें शक्ति होतौ आज हमारे मुखमें प्रवेश करकै चले जाओ॥ १५३॥ यह कहकर नागमाता सुरसा, बड़ाभारी मुख फैलाय शीघ्रतासे पवनकुमार हनुमानजीके आगे खड़ी होगई। तब सुरसाके ऐसे वचन सुनकर वानरश्रेष्ठ हनुमानजीकोभी क्रोध उत्पन्न हुआ॥ १५४॥ हनुमानजीनें उससे कहाकि जिसमें हम लंबे चौड़े समासकैं उतना बड़ा मुख तू फैला, इतना कह हनुमानजीनें दशयोजन मुख फैलाये सुरसापर क्रोधितहो पवनकुमारभी तिसी समय दशयोजनके होगये। यह देखकर सुरसानेभी अपने मुखको वीस योजन फैलाया॥ १५५॥ १५६॥ परम बुद्धिमान पवन कुमार सुरसाके मुखको वीसयोजन विस्तारित देख जो बड़ी जिव्हासे युक्त अतिशय भयंकर साक्षात नरककी समानथा॥ १५७॥ (क्षेपक) " उस मेघकी समान वदन मंडलको वीस योजनका विस्तार वाला देखकर, हनुमानजी क्रोधित होकर तीस योजनके लंबे चौडे होगये फिर सुरसानें चालीस योजन चौडा मुख फैलाया, तब महावीर्यवान् हनु-

मानजी पचास योजनके बडे होगये ॥ यह देखकर सुरसानें अपने मुखका विस्तार साठ योजनका किया, तब हनुमानजीनें अपने शरीरको सत्तर योजन विस्तारा, तब सुरसा अपनें मुखको अस्सी योजन विस्तार करती हुई, यह देखकर साक्षात् कालकी समान पवनकुमार हनुमानजी नब्बे योजनके बडे होगये, फिर सुरसाका मुख शत योजनका बडा हुआ" (इति क्षेपक) तब हनुमानजी मेघकी समान अपनी देहको सकोडकर उसही मुहूर्त अंगूठेकी समान शरीर बनालेते हुए ॥ १५८ ॥ और सुरसाके मुखमें बडी शीघ्रताके साथ प्रवेशकर और तत्क्षणातही उसमेंसे निकल आकाशमें टिककर उस्से बोले ॥ १५९ ॥ हे दाक्षायणि ! तुमको नमस्कारहै ! हम तुम्हारे मुखमें प्रवेश करकै निकल आये, तुमनें वर जो पायाथा वहभी सत्य होगया; इसलिये अब हम जानकीजीके निकट गमन करेंगे ॥ १६० ॥ राहुके मुखसे चंद्रमाकी समान हनुमानजीको अपने मुखसे छूटा हुआ देख, देवी सुरसा अपना रूप धारणकर उनसे बोली ॥ १६१ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! तुम अपने कार्यकी सिद्धिके लिये सुख पूर्वक चले जाओ, और जानकीजीको लायकर श्रीरामचंद्रजीसे मिलादो ॥ १६२ ॥ इस समय देवतालोग हनुमानजीका यह तीसरीवार अति कठिन कर्म देख वारंवार " धन्यहै ! धन्यहै " कहकर बडाई करनें लगे ॥ १६३ ॥ इस ओर पवनकुमार हनुमानजी वरुणालय समुद्रके ऊपर आकाश मार्गका आश्रयले गरुडजीके वेगकी समान गमन करनें लगे ॥ १६४ ॥ यह वायुमार्ग, जलधारा, विहङ्गम समूह, गाने बजानेमें पंडित तुम्बरु इत्यादिका स्थान, ऐरावत गजसे सेवित ॥ १६५ ॥ सिंह-व्याघ्र, हस्ती, पक्षी, और सर्प समूह आदिके चलनें, और विमल विमानोंके आवागमनसे सज्जित ॥ १६६ ॥ वज्र और अशनिकी समान स्पर्श वाले, पातक, सदृश पुण्यकर्मकारी महाभाग स्वर्गके जीतनें वाले पुरुषोंसे शोभित ॥ १६७ ॥ सदाही हव्य लिये अग्नि, ग्रह, नक्षत्र, चंद्र, सूर्य और तारागणोंसे सेवित ॥ १६८ ॥ महर्षि, गन्धर्व, नाग, और यक्ष समूहसे समाकुल एकान्त विमल विशाल और विश्वावसुसे सेवित ॥ १६९ ॥ देवराजके वाहन ऐरावत हाथीसे रोंदा हुआ चंद्रमा और सूर्य भगवान्का कल्याण रूप पंथ जीवलोकका आश्रय स्वरूप इस विमल मार्गको ब्रह्मा-

जीनें बनायाहै ॥ १७० ॥ ऐसे, बहुतसारे वीर विद्याधर लोगोंसे सेवित, वायुमार्गमें पवनकुमार हनुमानजी, गरुडजीके वेगकी समान वेगसे गये ॥ १७१ ॥ हनुमानजी चलती समय वादलोंके समूहको खैंचे हुये चले जातेथे, इसलिये सब मेघ काले अगर श्वेत, और लाल पीले वर्णके होगये ॥ १७२ ॥ वानरवर हनुमानजीके खैंचनेसे सब वादलोंके झुंड शोभायमान हुए, और हनुमानजी कभी मेघोंमें छिप जाते कभी उनमेंसे निकल आतेथे॥१७३॥उनके वारंवार मेघोंमें प्रवेश करनें और निकलनेसे वह वर्षाकालीन चंद्रमाकी समान विराजमानहो सबको भलीभांतिसे दृष्टि आतेथे ॥ १७४ ॥ हनुमानजी पंख धारण किये पर्वतश्रेष्ठकी समान अवलंब रहित आकाश मार्गमें चले इनको देख सिंहिका नाम राक्षसी॥१७५ मनही मनमें विचार करनें लगी यह अति बूढी और कामरूपिणीथी, और बहुतदिनोंसे भूखीथी, परन्तु आज पेटभर जायगा ॥ १७६ ॥ वहुत दिनोंके पीछे यह वडा प्राणी मेरे वशमें आयाहै । मनही मन इस प्रकारसे चिन्ताकर राक्षसीनें हनुमानजीकी परछांईको पकडकर खेंचा ॥ १७७ ॥ जब सिंहिका राक्षसीनें हनुमानजीकी परछांई पकड़कर खीचीं, तब पवन कुमार हनुमानजी चिन्ता करनें लगेकि अचानक खेंचे जानेंसे हमारा पराक्रम शिथिल होगया, मानों किसीनें खेंचकर हमको पंगुही करदिया ॥ १७८ ॥ ॥ और हम समुद्रके मध्यमें प्रतिकूल चलने वाला पवन करके रोको हुई महा नौकाकी समान हीनतेज होगये । इस प्रकार चिन्ताकर उसी क्षण हनुमानजीनें, तिरछे, ऊंचे, सब ओरको दृष्टि फैलाय कर देखा ॥ १७९ ॥ तो लवण समुद्रके मध्यमें कोई एक बड़ाभारी जीव उतराता हुआ देख पड़ा । हनुमानजी उस विकटवदन वड़े प्राणीको देख चिन्ता करनें लगे ॥ १८० ॥ कि कपिराज सुग्रीवजीनें जो अति अद्भुत, महावीर्यवान् परछांई पकड़नें वाले जीवोंका वृत्तान्त कहाथा वस निःसंदेह यह वही जन्तु छायाका पकड़नेंवालाहै ॥ १८१ ॥ तब हनुमानजीनें अर्थ और ज्ञानके अनुसार इस प्राणीको सिंहिका नाम राक्षसी स्थिर करके, वर्षाकालके वादलकी समान अपने शरीरको वहुतही बढ़ाया ॥१८२॥ सिंहिका राक्षसीनें हनुमानजीका शरीर वढता हुआ देख कर उसनें अपना एक अधर पातालमें, और एक अधर आकाशमें लगा

दिया; इतना अपने मुखको बढ़ाथा ॥ १८३ ॥ और मेघकी समान गर्जती २ अतिवेगसे हनुमानजीके सन्मुख धाई, तब हनुमानजी उसका महा विकटाकार वाला मुख देखकर ॥ १८४ ॥ वह बुद्धिमान समझेकि इसमें हमारा समस्त शरीर प्रवेश कर जायगा, और इसीसे हम इसके मर्म स्थानभी चीर फाड़ डालेंगे । यह शोचकर वज्रकी समान दृढ़ शरीर वाले पवनकुमारजी तत्क्षण उसके अति बड़े मुखमें ॥ १८५ ॥ अपने शरीरको सकोड़कर उसके वदनमें घुसगये, उस राक्षिसीके मुखमें पैठते हुये सिद्ध चारणोंने हनुमानजीको देखा ॥ १८६ ॥ पूर्णमासीके दिन पूर्णचंद्र जिस प्रकार राहुसे ग्रसलिया जाताहै, हनुमानजीभी वैसेही सिंहिकाके मुखमें पड़े ! इधर हनुमानजीनें उसके मुखमें जाय अपने तेज नखोंसे उस राक्षसीके मर्म स्थानको ॥ १८७ ॥ अति शीघ्रतासे चीर फाड़कर मनकी समान वेग विक्रमसे ऊपरको उछले, तिस राक्षसीको बड़े भाग्य धीरता और चतुरतासे मारकर ॥ १८८ ॥ कपिश्रेष्ठ हनुमानजी फिर अति वेगसे बढने लगे, राक्षसीभी हनुमानजीसे मारखाय भिन्न हृदय और पीडित होकर, समुद्रके बीचमें गिरपड़ी, ब्रह्माजीनें इस राक्षसीका संहार करनेके लिये हनुमानहीको उत्पन्न किया, नहीं तो इस राक्षसीको कौन मार सकता ॥ १८९ ॥ हनुमानजीके द्वारा शीघ्र प्राण त्यागकर समुद्रमें गिरती हुई सिंहिकाको देखकर आकाशचारी प्राणी गण उन वानर श्रेष्ठसे कहनें लगे ॥ १९० ॥ हे कपिवर ! इस समय तुमनें अति बड़े प्राणीको वध करके अति कठिन कार्य कियाहै, अब तुम विघ्न रहित होकर अपना कार्य साधन करो ॥ १९१ ॥ हेवानरेन्द्र ! तुम्हारी समान जिस पुरुषमें धीरता, दृष्टि, बुद्धि, और चतुरता यह चारगुणहैं, वह कभी कार्य पड़नें पर व्याकुल नहीं होते ॥ १९२ ॥ पूजनीय हनुमानजी उन प्राणियोंसे पूजित और कार्य सिद्ध होनेके विषयमें प्रसन्न होकर गरुडजीके वेगकी समान आकाश मार्गमें उड़नें लगे ॥ १९३ ॥ और समुद्रकी दूसरी पारके प्रायः निकट पहुंचकर चारों ओर दृष्टि डाली, तब शत योजनके पीछे एक बड़ीभारी वनकी श्रेणी उन्होंने देखी ॥ १९४ ॥ फिर वानर श्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी चलते २ विविध द्रुमभूषित द्वीप और मलय पर्वतपर लगे हुये उपवनोंको देखते हुये ॥ १९५ ॥ समुद्रकी

वेलाभूमि, और वहांपर लगे हुये सब वृक्षोंको देखते और समुद्रकी नारी सब नदियोंके संयोग स्थानोंको देखकर ॥ १९६ ॥ महा मतिमान आत्मवान् पवनकुमार हनुमानजीनें मेघाकार आकाशको रोकनें वाली अपनी देहको देखा और विचारा ॥ १९७ ॥ उन महामतिनें समझाकि राक्षस लोग हमारा अतिलंबा चौडा शरीर और महावेग देखकर हमको एक खेल समझेंगे ॥ १९८ ॥ यह विचार उन्होंने पर्वताकार अपने शरीरको उसी समय छोटा कर कामादि मोह विहीन जीवन्मुक्त योगीकी समान फिर अपना लघुरूप जो सदा रहताथा धारण करलिया ॥ १९९ ॥ और वामन जीनें जिस प्रकार तीन चरणसे तीनों लोकनाथ राजा ! वलिका वीर्य हरण कर, फिर अपना रूप धारण करलियाथा, वैसेही हनुमानजीनें अपनें रूपको बहुत छोटाकर फिर अपना पहलारूप धारण करलिया ॥ २०० ॥ इस प्रकारसे विविध मनोहर रूप धारण करनें वाले हनुमानजी समुद्रके पार जाय इसका भली भांति विचार कर कि अब क्या करना होगा, अपना कार्य सिद्ध करनेंके लिये बहुतही छोटा शरीर धारण करते हुये॥२०१॥फिर वह महा मेघसम समूहाकार महात्मा हनुमानजी लंब नामक पर्वतके शिखर पर कूदे, यह पर्वत विचित्र शृङ्ग समूहसे अलंकृत और परम समृद्धि सम्पन्नथा, व इसपर केतक, उद्दालक, और नारियलके बहुतही वृक्ष लग रहेथे ॥२०२॥ इस प्रकारसे हनुमानजी समुद्रके तीरको प्राप्त होकर त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई लंका नगरीको देख; बडे आकारसे अपना रूप छोटा बनाय मृग और पक्षियोंको त्रासित करते हुये, इस त्रिकूट पर्वत पर कूदे ॥ २०३ ॥

ससागरंदानवपन्नगायुतंबलेनविक्रम्यमहोर्मिमालिनम् ॥ निपत्यतीरेचमहोदधेस्तदाददर्शलंकाममरावतीमिव ॥ २०४ ॥

उस कालमें दानव और सर्प गणोंसे व्याप्त तरंग शाली महासागर अपनें बल और पराक्रमसे नांघकर और उसके किनारे पर पदार्पण करके अमरावतीकी समान लंका नगरी हनुमानजीनें देखी ॥ २०४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये भाषानुवादे कात्यानकुमार पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयःसर्गः ॥

ससागरमनाधृष्यमतिक्रम्यमहाबलः ॥
त्रिकूटस्यतटेलंकांस्थितःस्वस्थोददर्शह ॥ १ ॥

महा बलवान् हनुमानजीनें अपार समुद्रको अपने बलसे नांघकर त्रिकूट पर्वतके तटपर जाय सावधान होकर लंकापुरी देखी ❋ ॥ १ ॥ महावीर्यवान् हनुमानजी उस पर्वतके लगे हुये वृक्षोंकी पुष्प वर्षासे युक्त होनेके कारण पुष्पमय वानरोंकी समान शोभित होनेलगे ॥ २ ॥ अतिश्रेष्ठ विक्रमवाले श्रीपवनकुमार शत योजनका समुद्र नांघकर नतो कुछ हांफे और, न उनको कुछ थकावट प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ फिर हनुमानजी विचारनें लगेकि इस समुद्रके लांघनेंकी तो केवल शत योजनकी मर्यादाहै । और हम तो हजार लाखों शत योजन सरलतासे लांघ सकतेहैं॥४॥ यह विचार कर वह श्रेष्ठ वीर्यवान् वानर गणोंमें अग्रणीय महावेगवान् हनुमानजी समुद्रको लांघ लंकापुरीको गये ॥ ५ ॥ जानेंके समय अनेक२ श्याम वर्ण वाले दूबोंके खेत नील रंगकी मधु सहित सुगन्धित पर्वत सहित बनोंके बीचवाले मार्गमें होकर गये ॥ ६ ॥ वृक्षोंसे युक्त बहुत सारे पर्वत और फूलीहुई काननश्रेणी इन सबके बीचमें होकर महा तेजस्वी वानरश्रेष्ठ हनुमानजी घूमतेथे ॥ ७ ॥ पवन कुमार हनुमानजीनें लंबपर्वतपरही टिके रहकर गिरि त्रिकूटपर बसी हुई लंकानगरी और वहांके वन उपवन समस्त देखे ॥ ८ ॥ सरल, कर्णिकार, फूला हुआ खजूर, चिरोंजी, खिन्नी, महुआ, केतकी ॥ ९ ॥ गन्ध पूर्ण प्रियङ्गु, कदम्ब, शतावरी, असन, कोविदार, पुष्पित करवीर ॥ १० ॥ यह व औरभी बहुत फूलोंके भारसे झुके और शोभित, पक्षियोंसे युक्त, पवनसे कंपायमान वृक्ष समूह ॥ ११ ॥ और कमलके पुष्पोंसे शोभित हंस व कारण्डवोंसे व्याप्त वापियें विविध रमणीक क्रीडापर्वत जलाशय ॥ १२ ॥

❋ रागनी--गये मारुत सुत सागरतीर॥ (टेक) चढे पहाड चितै इत उत कपि लंकाके विस्तीर ॥ १ ॥ देखे गज रथ अश्व अनेकन पैदल दलकीभीर ॥ २ ॥ यह निहारि हनुमंत निडरह्वै चले सुमरि रघुवीर ॥३॥ द्वार निहार लंकनीके इक मुष्टिक हन्यो गंभीर ॥४॥ 'नारद' उछल कोट लंकापै चढयो पवन सुतवीर ॥ ५ ॥

और सब ऋतुओंमें फल पुष्प देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त म-
नोहर फुलवाडियें उन कपिकुंजर हनुमानजीनें देखीं ॥ १३ ॥ इस प्रकार
देखते भालते श्रीमान् पवनकुमार हनुमान् रावणसे पाली जाती हुई लं-
कापुरीके निकट आयकर देखते हुए, कि कमल पुष्पोंसे युक्त खाई जो
लंकाके चारों ओरहैं; उनसे वह पुरी औरभी शोभित हो रहीहै ॥ १४ ॥
सीताजीको जो रावण हरण कर ले आयाथा;इस्से वह पुरी अपने ग़ी अधिक
रक्षित हो रहीथी; और राक्षसगण धनुष उठाये उसके चारों ओर घूमते
थे ॥ १५ ॥ चारों ओर सुवर्णकी अति रमणीक चाहर और
शरदकालके मेघकी समान उज्वल और पर्वताकार गृह समूह १६
पांडुवर्णकी अति ऊंची सुहावन मनभावन खिड़कियोंकी कतार,
ध्वजा, और पताका युक्त सैकडों हजारों अटारियें शोभित होरहींथीं॥१ श्री
और सुवर्णमय नगरके दिव्य फाटकोंपर लता पत्रादिककी १
लगींथीं इन सबसे यह नगरी मनोहरी लंका चारों ओरसे पूर्ण
की पुरीके समान शोभायमान हनुमानजीनें देखी ॥ १८ ॥ श्रीमान
पवनकुमारजीनें पर्वतके शिखरपर वसी हुई सैकडों हजारों
परम सुन्दर मंदिरोंसे युक्त देखा, यह पुरी मानों आकाशको छुएही लेती-
है ॥ १९ ॥ यह नगरी राक्षसराज रावणसे पाली जातीथी, और विश्व-
कर्माजीनें इसको बनायाथा, कपिकेसरी हनुमानजीनें देखा कि चारों ओर
वडी२अटारियोंके होनेसे लंकापुरी मानों आकाशको उड़ी जातीहै॥२०॥
खाइयें और चाहर दिवारी तो मानों उस पुरीकी मोटी जांघें सागर और व-
नराजि उसके वस्त्र, शतघ्नी और शूल आदि अस्त्र शस्त्र उसके केश, और
अटारियें मानों उसके कर्णफूलथे ॥ २१ ॥ विश्वकर्मानें बहुतही
मन लगायकर मानो उस पुरीको बनायाहै। ऐसी लंका पुरीके उत्तर द्वार-
पर क्रमसे हनुमानजी पहुँचकर चिंता करनें लगे ॥ २२ ॥ कैलास पर्वत
की समान उस पुरीका यह उत्तर द्वार ऊंचा, और श्रेष्ठ भवनोंके समूह-
से मानों आकाश मंडल उसको धारण करके रेखाकार बना रहाहै ॥ २३ ॥
हनुमानजी वहां पहुँचकर, महाविषधर सर्पोंसे परिपूर्ण पर्वतकी गुफाके
समान राक्षसोंसे भरी हुई सुरक्षित लंकानगरीके चारोंओर अपार समुद्रको
देखकर रावणको भयंकर शत्रु समझ इसप्रकारसे चिन्ता करनेंलगे॥ २४ ॥

जो वानरगण किसी प्रकारसे यहां आयभी जावें, तौभी वह यहांपर सफल काम नहीं हो सकेंगे। क्योंकि। देवता लोगभी युद्ध करके लंकाको जीतनें-की सामर्थ्य नहीं रखते ॥ २५ ॥ महाबाहु श्रीरामचंद्रजीभी अति विषम रावणसे पाली जातीहुई इस दुर्गम लंका पुरीमें आयकर क्याकरेंगे?॥ २६ ॥ ऐसा समझमें आताहै कि राक्षस लोग साम, दाम, और युद्धसेभी वश होने वाले नहीं; न इनके निकट भेदही डालनेंका अवकाशहै ॥ २७ ॥ वालि-कुमार वानरराज अंगद, नील, सुग्रीव और हम यह चार जन बलवान् वा-नरोंमेंहीं यहां आनेकी सामर्थ्यहै और किसीमें नहीं ॥ २८॥ अच्छा जो हो सोहो, अब पहले तो यह जानना ठीकहै कि जानकीजी जीवितहैं या नहीं इसलिये प्रथम उनको जीवित देखना चाहिये, फिर इन बातोंकी चिंता की जायगी ॥ २९ ॥ तिसके पीछे वानरोंमें कुंजर हनुमानजी पर्वतके शृङ्गपर बैठे२ मुहूर्त भरतक श्रीरामचंद्रजीके इष्टकार्य साधनमें रत हुए मनही मन चिंता करने लगे ॥ ३० ॥ इसप्रकार चिंता करते२ मनमें यह बात समाई कि बलवान् और क्रूर स्वभाववाले राक्षसोंसे रक्षाकी जाती लंकापुरीमें इस प्रकारसे हमारा प्रवेश करना उचित नहीं है ॥ ३१ ॥ क्योंकि हमको उचितहै कि जानकीजीके खोजनेके लिये, इनसब महावीर्य सम्पन्न, महा-बलवान् व महा तेजस्वी राक्षसोंको धोखादे॥ ३२ ॥ इसलिये ऐसा अलक्ष्य रूप धारणकरों कि जिस्से कोई हमको देख न सके रात्रिमें लंकापुरीको देखें, इस बड़ेभारी कार्यको पूरा करनेंके लिये ऐसेही रूप बनाकर लंकापुरीमें पैठना ठीकहै॥३३॥इसप्रकारसे हनुमानजी सुर असुरोंको प्राप्त होनेको योग्य उस लंका नगरीको देखकर वारंवार लंबे२ श्वास ले चिंता करनें लगे॥३४॥ हम किस उपायसे दुरात्मा राक्षसराज रावणकी दृष्टिसे न देखे जाकर जनक-कुमारी सीताजीके देखनेको समर्थ होवें ॥ ३५ ॥ त्रिभुवन विदित श्रीराम-चंद्रजीका कार्य किस प्रकारसे सिद्ध होगा? और किस उपायसे हम इकले एकान्तमें बैठी हुई विजन वासिनी जानकीजीको देखेंगे? ॥ ३६ ॥ देशका-लके ज्ञानका न रखनेवाला दूत सिद्ध होनेवाले समस्त कार्योंकोभी देश कालके विरुद्ध करकै नाशकर देताहै; जैसे सूर्य भगवानके उदय होंनेसे अंधकारका विनाश होजाताहै ॥ ३७ ॥ और स्वयं स्वामी अपने मंत्रियों-के सहित परामर्श करकै कर्त्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें जो निश्चितार्थ

जाननेवाली बुद्धि करताहै,वहभी उस दूतके दोपसे सिद्ध नहीं होती क्योंकि मूढ अपने आपको पंडित माननेवाले दूत कार्योंका नाश कर देतेहैं॥ ३८॥ इसलिये किस उपायका आश्रय करनेसे कार्यभी नष्ट नहींहो और हमको व्याकुलताभी नहो; और कैसेही इस समुद्रका लांघनाभी व्यर्थ न जाय॥ ॥ ३९॥ विदितात्मा श्रीरामचंद्रजी रावणका वध करनेंको तैयार हुएहैं, इसलिये जो हमको राक्षसोंनें कहीं देखा, तो उनका, यह कार्य नष्ट हो जायगा॥ ४०॥ राक्षसोंका शरीर धारण करनें वा और कोई रूपधारण करनेंसेभी निशाचर लोगोंके अजानें रहना असंभवहै। ऐसा करनेंसे तो वह अवश्य हमको पहँचान जायँगे॥ ४१॥ हमको साफ मालूम पड़ताहैकि पवनभी यहांपर गुप्तरूपसे विचरण करनेंको समर्थ नहींहै, क्योंकि भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस लोगोंको कुछभी अविदित नहीं रहता यह सबही कुछ जानतेहैं॥ ४२॥ यदि हम अपना भयंकररूप धारण करकै इस स्थानमें टिके रहैं, तो हमारा नाशहोगा, और प्रभुका कार्यभी नष्ट हो जायगा॥ ४३॥ इसलिये हम अपने शरीरको वहुत छोटा वनाय श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धिके निमित्त रात्रिके समय लंकापुरीमें प्रवेश करेंगे॥ ४४॥ इस दुरासद रावणकी लंकानगरीमें रात्रिको प्रवेशकर प्रतिमंदिर में जानकीजीको खोजकर देखेंगे॥ ४५॥ इस प्रकारसे अपने चित्तमें विचार महाकपि हनुमानजी जानकीजीके दर्शनका अभिलाप कर सूर्य भगवानके अस्त होनेंकी राह परखते रहे॥ ४६॥ इसप्रकार जव सूर्य भगवान् अस्त होगये, तव हनुमानजीनें अपने शरीरको सकोड़कर विल्लीकी समान छोटा और देखनेमें अति अद्भुत वनाया॥ ४७॥ और प्रदोष कालमें वह वीर्यवान् पवनकुमार हनुमानजी उसी क्षण कूदकर, सर्व भांतिसे वड़ी सड़कोंवाली रमणीय लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए॥ ४८॥ वहांपर हनुमानजीनें देखाकि शत २ राज मंदिरोंकी श्रेणीसे अनेक सुवर्णमय खंभोंसे, व सुवर्णमय झरोखोंसे यह लंका गन्धर्व नगरीकी समान जान पड़तीहै॥ ४९॥ उन्होंने उस पुरीके सत मंजिले अठ महले स्थान देखे किसी स्थानमें स्फटिक और रत्नजड़े हुए और कहीं संपूर्ण सोनेकेहीथे इस प्रकारकी रचना औरसे राक्षसोंके घर शोभितथे॥ ५०॥ राक्षसोंके मंदिरमें स्फटिकमणि व सुवर्णके जो स्थल वनेथे, उनसे अधिक शोभायमान हो

रहेथे, उनमें सुवर्णकी बंदनवार बँधरहीथी, वेही गृह सब ओरसे सजे सजाये लंकाको प्रकाशित कर रहेथे ॥ ५१ ॥ वैदेही जीके दर्शनकी इच्छा किये महाकवि हनुमानजी इस प्रकारकी अचिन्त्य और अद्भुत आकारवाली लंकापुरीको देखकर प्रथम अति हर्षितहो, फिर उदासीन होगये ॥ ५२ ॥ हनुमानजीनें देखाकि रावण रक्षित, यशस्विनी लंकानगरी, परस्पर श्रेणी बद्ध श्वेत बड़े धवर हरोंसे महामूल्यवान स्वर्णमयजाल और फाटकोंसे अलंकृतहै और भयंकर बलवान् राक्षसोंकी सैनाका बल चारोंओरसे उसकी रक्षा कर रहाहै ॥ ५३ ॥ इससमयमें चंद्रमा अनेक सहस्र किरणोंको फैलाय और उनकी चांदनी छिटकाय उस्से समस्त लोकोंको ढक तारा गणोंके मध्यमें विराजमानहो मानों हनुमानजीकी सहायता करनेंकी वासना सेही उदय होंनेलगा ॥ ५४ ॥

शंखप्रभंक्षीरमृणालवर्णमुद्गच्छमानंव्य
वभासमानम् ॥ ददर्शचंद्रंसकपिप्रवी
रःपोप्लूयमानंसरसीवहंसम् ॥ ५५ ॥

पवनकुमार हनुमानजीनें देखाकि सरोवरमें हंस जिस प्रकार अतिशय उछला करतेहैं, वैसेही क्षीर, और मृणाल वर्ण, शंखकी समान शशाङ्क भी अतिशय विराज मान होकर उदय हो रहाहै ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥

सलंबशिखरेलंबेलंबतोयदसन्निभे ॥
सत्त्वमास्थायमेधावीहनूमान्मारुतात्मजः ॥ १ ॥

देश कालके जाननें वाले पात्र महा बलवान् वानरोंमें, श्रेष्ठ अति ऊंचे शिखर वाले और लंबायमान मेघकी समान लंबमान पर्वतपर टिके हुये महावीरजी सतोगुणका आश्रय करके ॥ १ ॥ रात्रिके समयमें लंकापुरीमें पैठे। वह लंका रमणीक वन जलसे युक्त, व रावणसे पालित ॥ २॥ शरद कालीन बादलोंकी समान श्वेत राक्षसोंके मंदिरोंसे शोभायमान, समुद्र समान गंभीर गर्जनासे परिपूर्ण, सागर स्पर्श कारी पवनसें सेवित ॥ ३ ॥ परम हृष्ट पुष्ट राक्षसोंकी सेनासे चारों ओरसे

रक्षित, अलकापुरीकी समान, वाहरके द्वारों पर परम सुन्दर मदमत्त हाथियोंसे शोभित, सुधा संस्कार होनेंके कारण श्वेत वर्णके, वाहर भीतरवाले द्वारोंसे युक्त ॥ ४ ॥ भोगवती सर्पोंकी पुरीकी समान सब ओर सर्पोंसे शोभायमान, और राक्षसोंकी सीमासे रचित दामिनी युक्त बादलोंसे घिरी, तारागणोंसे शोभित ॥ ५ ॥ इन्द्रकी अमरावती पुरीकी समान प्रचंड पवनके शब्दसे शब्दायमान सुवर्णकी चाहर दिवारीसे घिरीथी ॥ ६ ॥ और किंकणी जालके समूहके प्रतिध्वनिसे गुंजायमान पताकाओंसे सजीधजी लंकापुरीके किलेकी भीतपर हनुमानजी उछल कर चढ़गये ॥ ७ ॥ उस भीतपरसे उस पुरीको सब ओरसे निहार पवन कुमार बड़ेही विस्मित हुये कारणकि उस पुरीके सम्पूर्ण द्वार सुवर्णमयथे और उनमें चौखटैंभी सुवर्णहीकी लगीथीं ॥ ८ ॥ उस पुरीमें द्वारोंके निकट वाली भीतोंकी चिनाई, मणि, स्फटिक मणि और मोतियोंसे हुईथी इसलिये वह द्वार अतिशय शोभायमान होरहेथे जिनके ऊपरका भाग सुवर्ण और चांदीसे वनाया गयाथा,ऐसे तप्त सुवर्णके वने मतवालेसे हाथी भी उन द्वारों पर धरे थे॥९॥ द्वारोंमें गमन करनेके अर्थ वैदूर्य मणिकी सीढियाँ बनीथीं और उन द्वारोंका सम्पूर्ण भीतरी देशभी वैदूर्य मणियोंसे वनाया गयाथा,उन द्वारोंके ऊपर अत्युत्तम सभा मन्दिर वने मानों आकाशसे बातें कर रहेथे॥१०॥उन द्वारों पर क्रौञ्च मयूरादिक पक्षी सुहावनी मनभावनी वोली वोल रहेथे, राजहंसभी विभूषित होरहेथे, नगाड़े और आभूषणोंके शब्दकी गुन्जार व झनकारसे वह पुरी सब ओरसे शब्दायमान होरहीथी ॥ ११ ॥ कुबेरकी अलकानाम पुरीकी समान आकाश मंडलको भेदती हुईसी लंकापुरीको देख हनुमानजी अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुये ॥ १२ ॥ उस राक्षसनाथ रावणकी श्रेष्ठ ऋद्धिमती लंका नगरीको देखकर वीर्यवान् हनुमानजी चिंता करनें लगे ॥ १३ ॥ रावणकी नियत की हुई सेना आयुध हाथमें लिये सर्वदा जिस प्रकार इसकी रक्षा करतीहै जिससे और कोईभी वल पूर्वक इस पुरीमें चढाई करके नहीं आय सकता ॥ १४ ॥ कुमुद, अंगद, महाकपि सुषेण, अथवा मैन्द और द्विविद येही कई एक जन इस प्रसिद्ध लंका पुरीमें आय सकतेहैं ॥ १५ ॥ और सूर्य पुत्र सुग्रीवजी, कुश पर्व सदृश रोमवाले ऋक्ष वानरोंमें श्रेष्ठ

जाम्ववानजी व हम बस, यही लोग यहां आय सकतेहैं और किसीमें यहां पहुंचनेकी गति नहीं ॥ १६ ॥ यह सब बात विचारते २ हनुमानजीको अकस्मात महावाहु श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमकी और उनके छोटे भाई लक्ष्मणजीके विक्रमकी याद आय गई, बस इस बातके याद आतेही हनुमानजीका विषाद दूर होगया ॥ १७ ॥ रत्नमय गृह जो बन रहेथे वही मानों लंका के वसन हैं उनको पहरे गोष्ठ और बडे२ गृहोंको कर्ण भूषण बनाये धवरहरे आदिकोंके ऊपर वाले मुख्य द्वारोंको स्तन किये इस प्रकार सर्व भांतिसे भूषित सब भूषण धारण किये लंका नवीन स्त्रीहीके समानथी ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे प्रकाश मान भवनोंसे जो दीपक जल रहेथे इससे वहांपर अंधकारका लेश मात्र भी नहीं दिखाई देताथा इसभांति रावणकी नगरी लंका महाकपि हनुमानजीनें देखी ॥ १९ ॥ तिसके पीछे वानरश्रेष्ठ महाकपि हनुमानजी प्रवेश करते हीहैं कि इतने में स्वयं लंका अपनी अधिष्ठात्री देवताकी मूर्त्तिसे हनुमानजीके देखनेंको आई ॥ २० ॥ इन वानर वरको देख रावण पालित महा विकराल मुखी लंका अपने आपही उठधाई ॥ २१ ॥ और उन पवनकुमार का आगा घेर घोर शब्द कर पवननंदन से बोली ॥ २२ ॥ हे वनवासी! जब तक तुम्हारी देहमें प्राण रहें तब तक सत्यही सत्य बतादो कि तुम कौनहो और किस कारणसे यहांपर आये हो? ॥ २३ ॥ हे वानर! तुम इस लंकामें किसी प्रकारसे भी प्रवेश नहीं कर सकोगे क्योंकि रावणकी सैना सब प्रकार चारों ओरसे इस पुरीकी रक्षा कर रहीहै ॥२४॥ तब वीर्यवान हनुमानजी सामने खड़ी हुई लंका नगरी से कहने लगे कि हम तुम्हारे प्रश्नका ठीक उत्तर पीछे से देंगे ॥ २५ ॥ परन्तु हे तीक्ष्ण नेत्र वाली! तुम क्यों पुरके द्वार पर खड़ी हुई हो? और किसकारणसे क्रोध युक्त होकर हमें डरारही हो? ॥ २६ ॥ पवनकुमार हनुमानजीके वचन सुनकर काम रूपिणी लंका क्रोधातुर होकर उनसे बोली ॥ २७ ॥ राक्षस राज रावणकी आज्ञाके वशमें रहकर इस लंका नगरीकी रक्षा किया करतीहैं ऐसी सामर्थ्य किसीमें नहीं है कि जो हमको जीत सकै ॥ २८ ॥ तुम हमारा निरादर करकै इस नगरीके मध्य प्रवेश करनेंकी सामर्थ्य नहीं रखतेहो, तुम हमसे आज निहत हो प्राणोंको छोड़ महा निद्राको प्राप्त हो-

गे ॥ २९ ॥ हे कपिवर ! हमही साक्षात् लंकाकी अधिष्ठात्रीहैं और सर्व भावसे सदा इसकी रक्षा किया करतीहैं; इसीलिये हमनें तुमको भय दिखलाया और यह बात कही ॥ ३० ॥ वानरश्रेष्ठ पवननंदन हनुमानजी लंकाको यह वचन सुन उसको पराजित करनेकी कामनासे यत्न कर दूसरे पर्वतकी समान उसके आगे खड़े होगये ॥ ३१ ॥ फिर वीर्यवान बुद्धिमान वानर श्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी उस विकटाकार स्त्रीरूप धारिणी लंकाके ओर देखकर कहनें लगे ॥ ३२ ॥ अति कौतूहल होनेके कारण धवरहरे, तोरण और अटा अटारियेंसे परिपूर्ण लंका नगरीके देखनेकी इच्छा किये हुए हम यहांपर आयेहैं ॥ ३३ ॥ इस नगरीके वन उपवन कानन और अच्छे २ भवन देखनेंकी वासनासे हमारा आना यहांपर हुआहै ॥ ३४ ॥ काम रूपिणी लंका हनुमानजीके यह वचन सुनकर फिर उनसे अतिघोर कठोर वचन बोली ॥ ३५ ॥ रे अनसमझ वानर नीच ! यह पुरी राक्षस राजा रावणसे पाली जातीहै सो तू हमको विनाजीते इसका दर्शन न कर सकैगा ॥ ३६ ॥ तब कपिश्रेष्ठ हनुमानजी उस राक्षस रूप धारिणी लंका अधिष्ठात्रीसे बोले किहेभद्रे ! इस नगरीका दर्शनकर हम फिर अपने स्थानको चले जांयगे ॥ ३७ ॥ यह सुन उस लंकाने भयंकर नादकर अतिवेगसे हनुमानजीको चरणका प्रहारकिया ॥ ३८ ॥ वीर्यवान वानर शार्दूल पवननंदन हनुमानजी लंकासे अतिशय ताडित होकर घोर गर्जना करते हुए ॥ ३९ ॥ वायें हाथकी उंगलियोंको सकोड मुक्का बांध क्रोधसे मूर्च्छित हो हनुमानजीनें लंकाके ऊपर मुष्टिका प्रहार किया ॥ ४० ॥ उसको स्त्री समझकर हनुमानजीनें बहुत क्रोध नहीं किया और वायें हाथसे एक साधारण साही प्रहार किया, परन्तु विकट मुख वाली और विकट दर्शन वाली राक्षसी रूप धारिणी लंका उस साधारण सेही आघातके लगतेही कांपकर उसी समय पृथ्वीपर गिरगई ॥ ४१ ॥ उसको पृथ्वीपर गिराहुआ देख तेजस्वी और वीर्यवान पवनकुमार हनुमानजीनें स्त्री समझ उसके ऊपर अनुग्रह प्रकाश किया ॥ ४२ ॥ तब लंकादेवी अत्यन्त व्याकुल होकर गर्व रहित वाक्य और गद्गद कंठसे हनुमानजीको पुकारकर बोली ॥ ४३ ॥ हे प्रियदर्शन महा बलवान् कपिश्रेष्ठ ! प्रसन्न होकर हमारा उद्धार करो स्त्री हत्या न करो । हे सौम्य !

वीर्य सम्पन्न महा बलवान पुरुष लोग स्त्री हत्या करनेंके लिये कभी तैयार नहीं होते ॥ ४४ ॥ हे महा बलवान् वीर्य सम्पन्न कपिवर! हमही स्वयं लंकाकी अधिष्ठात्री हैं; तुमनें अपने वीर्यके प्रभावसे सब प्रकार हमको पराजित कियाहे ॥ ४५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ! स्वयं स्वयम्भु ब्रह्माजीनें हमको जो वरदान दियाथा हम उसको वर्णन करतीहैं, आप श्रवण करें उन्होंने यह कहाकि ॥ ४६ ॥ जबकि कोई वानर विक्रम प्रकाश करकै तुमको अपनें वशमें करलेगा, तबही तुम जान लेना कि राक्षसोंको भय आन पहुँचाहै ॥ ४७ ॥ हे प्रियदर्शन! आज तुम्हारे दर्शन करनेंसे वह ब्रह्माजीका नियत किया हुआ समय आय पहुँचा; यह इस अवश्य होनहार समयके टलनेंकी किसी प्रकारसे संभावना नहींहै ॥ ४८ ॥ सीताके निमित्त दुरात्मा राक्षसराज रावण, और समस्त राक्षसोंके विनाशका काल आय पहुँचाहै ॥ ४९ ॥ इसलिये हे कपिश्रेष्ठ! तुम इस रावणकी पालित लंकापुरीमें प्रवेशकर अपनी इच्छानुसार सब कार्योंको पूराकरो जिस जिसकी तुमनें इच्छाकीहै ॥ ५० ॥

प्रविश्यशापोपहा तांहरीश्वरःपुरींशुभां
राक्षसमुख्यपालिताम् ॥ यदृच्छयात्वंजनका
त्मजांसतींविमार्गसर्वत्रगतोयथासुखम् ॥ ५१ ॥

क्या कहैं, राजा रावणसें पाली जातीहुई यह मनोहर लंकानगरी शाप*ग्रस्त हुईहै; तुम इसमें प्रवेश करकै अपनी इच्छानुसार सब कहीं यथा सुखसे गमन करकै पतिव्रता जनककुमारी सीताजीको ढूंढ़ो ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० सुन्दरकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥

सनिर्जित्यपुरींलंकांश्रेष्ठांतांकामरूपिणीम् ॥
विक्रमेणमहातेजाहनूमान्कपिसत्तमः ॥ १ ॥

महा बलवान, महा तेजमान कपिश्रेष्ठ हनुमानजी अपने विक्रमसे का-

---

* नंदीश्वरने शाप दियाथा कि जब इस पुरीमें वानर राज प्रवेश करैंगे तबही इसका नाश हो जायगा।

म रूपिणी पुरियोंमें श्रेष्ठ लंकाको भली भांतिसे जीतकर ॥ १ ॥ वह महा वीर्यवान द्वारको छोड़ कूदकर प्राकारपर चढ़ रात्रिके समय लंकानगरीमें प्रवेश करते हुये ॥ २ ॥ और कपिराज सुग्रीवजीके हितकारी हनुमानजी नें इस लंकानगरीमें प्रवेश करके प्रथमही शत्रुगणोंके मस्तकपर अपना बायां चरण धरा क्योंकि पंडित लोगोंने इसको शत्रुओंके पराजय करनें-का मुख्य कारण बतायाहै ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे महा पराक्रमी पवन कुमार हनुमानजी रात्रिके समय पुरीमें प्रवेशकर खिले हुए पुष्पोंके समूहसे सुशोभित राज मार्गमें गमन करनें लगे ॥ ४ ॥ हनुमानजीनें दे-खाकि हास्यसे उत्पन्न हुए मनोहर शब्दसे विनादित, विविध भांतिके बाजोंकी ध्वनि हीरक खचित झरोंखोंसें युक्त ॥५॥ और हीरे मोती मणि-योंसें बने हुये झरोखों वाले गृहोंसे भूषित और उनकी सघनतासे मेघ माला विराजित आकाश मंडलकी समान लंका शोभा पाय रहीहै ॥ ६ ॥ पद्म स्वस्तिक आदि श्वेत बादलकी समान राक्षसोंके मन्दिरोंसे लंकापुरी शोभित होकर चमक दमक रहीथी ॥ ७ ॥ और सब ओरसे सर्वतो भद्र वर्द्धमान,नन्द्यावर्त्त, स्वस्तिक आदि गृहोंसे शोभायमानथी,जिसमें चारद्वार भीतर व चारों ओरको, द्वारलगे हों, उसे सर्वतोभद्र कहतेहैं, जो इसमें पश्चिमकी ओरका द्वार न लगाहो तो इसेही नंद्यावर्त्त कहतेहैं, इसेही दक्षिणका द्वार न होंनेसे वर्द्धमान, और पूर्वके द्वार न होनेसे स्वस्तिक कहतेहैं; इन सब शुभ दायक भवनोंको जिनमें अनेक प्रकारके चित्र विचित्र माला आदि भूषण धरेथे, देखते भालते सुग्रीवजीके हितकारी हनुमानजी चले जातेथे ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके कार्यको सिद्ध करनेंके मानससे जाते हुये हनुमानजी लंका पुरीको देख २ बड़े २ आनन्दित होतेथे, इस मंदिरसे उसपर कूद वह उसपरसे दूसरे परको कूद भलीभांति जानकीजीको खोजतेथे ॥ ९ ॥ जब एक भवनसे दूसरे भवनमें जातेहुये विविधाकार और विविध रूप भवनोंको हनुमानजी देखनें लगे तब हृदय कण्ठ और शिर इन स्थानोंसे उत्पन्न हुआ मन्द, मध्य, और तारस्वर अलंकृत मनोहर गीत उन्होने सुना, ॥ १० ॥ स्वर्गमें रहनें वाली अप्सरा गणोंके रागकी समान मदन मिश्रित स्त्रियोंके शब्द उनकी क्षुद्र

घंटिका, व नूपुर आदिका शब्द श्रवण करते ॥ ११ ॥ उन महात्मा ओंके भवन समूहोंमें स्त्रियोंके सीढियों पर चढनेंका शब्दभी सुनते कहीं प्रसन्नतासें ताली बजानेका शब्द और कहीं कहीं सिंहनाद सुन्ते २ हनुमानजी चले ॥ १२ ॥ राक्षसोंके भवनोंमें मंत्रोंका जप सुनते और बहुत स्थानों पर राक्षसोंको वेदाध्ययन करतेभी हनुमानजीनें देखा ॥ १३ ॥ और कहीं २ राक्षस लोग रावणकी स्तुति करनेमें लग रहेहैं, और अनेक राक्षस गण राजमार्गको सर्व प्रकारसे घेरे खड़े हुएथे ऐसा हनुमानजीनें देखा॥१४॥अनन्तर जाते २ हनुमानजी मध्यम छावनोपै आये जहां उन्होंनें बहुत सारे निशाचरोंको अवलोकन किया। उनमें कोई मुंडितमुंड कोई दीक्षित कोई जटाजूट धारी, कोई मृग चर्म इत्यादिके वस्त्र धारण कियेथे यह भेदलेते फिरतेथे ॥ १५॥ इनमें कुशोंकी मुट्ठीही किसी २ के हथियारथे, और किसी २ के अग्नि कुंड अस्त्र शस्त्रथे, और उनमें कोई २ कूट मुद्गर और दंडको ही आयुध बनाये हुयेथे ॥ १६ ॥ और उन समस्त निशाचर गणोंके मध्यमें किसी २ की एकही आंखथी, किसीके एकही कानथा, किसी २ की छाती पर एकही पयोधर झूल रहाथा; उनके वदन विकरालथे, अंग अत्यन्त विषमथे आकार अति विकट और अंग अति छोटेथे ॥ १७ ॥ सबहीके हाथमें धनुष, खड्ग, शतघ्नी, मूसल, और अतिश्रेष्ठ परिघथे, और सबकेही शरीरोंपर विचित्र कवच चमक रहेथे ॥ १८ ॥ सबही न बहुत मोटे, न अति दुबले, न अति लंबे, न अति छोटे, न अति गोरे, न अति काले, न अति कुबडे न अति बौने ॥ १९ ॥ सबही विरूप, बहुरूप बहुत तेजस्वी, और सबही ध्वजा पताका और विविध आयुध धारण किये हुये हनुमानजीनें देखे ॥ २० ॥ उन राक्षसोंमें सबही शक्ति, वृक्ष, पटा, वज्र, धनवासी, और फासी धारण किये हुएथे ॥ २१ ॥ और सबही माला पहरे चंदन लगाये, और श्रेष्ठ २ वस्त्राभूषण पहरे अनेक प्रकारके वेश धारण करने वाले इच्छानुसार चलनेवाले हनुमानजीने देखे ॥ २२ ॥ बहुत सारे तीक्ष्ण शूल और वज्रलिये महाबलवान् सावधानीसें एक लक्ष राक्षस मध्यम कक्षामें स्थित हुये ॥ २३ ॥ रावणकी आज्ञासे रनवासकी रक्षा करते हुए हनुमानजीनें देखे, फिर सुवर्णमय रावणका बडी ध्वजायुक्त मंदिर देखा ॥ २४ ॥ वह राक्षसराजका

विख्यात् मंदिर पर्वतके बीच शिखरपर बनाथा, इसके चारों ओर परिखा बनीथी. जिसमें अनेक प्रकारके श्वेत पद्म खिल रहेथे ॥ २५ ॥ चारों ओ-रसे यह भवन अति ऊंची भीतोंसे घिरा हुआथा, और साक्षात् स्वर्ग समान दिव्य भावसे सजरहाथा मनोहर शब्द उसमेंसे उठ रहाथा ॥ २६ ॥ इसके द्वारपर घोड़ोंका शब्द प्रतिध्वनित होरहाथा, व अति २ अद्भुत घोड़े बँधेथे; रथवान विमानोंमें हाथी, व अश्व जुते हुएथे ॥ २७ ॥ और सब भांतिसे सजे सजाये हाथी घोडे द्वारपर टिकाये जातेथे, उनमें बहुत हाथी चौदन्ते व श्वेत बादरके समान बड़े २ उज्ज्वलथे और अनेक प्रका-रके सुन्दर पक्षी वहां द्वारपर बैठे शब्द कर रहेथे ॥ २८ ॥ वीर्यवान हजारों लाखों राक्षसोंसे यह भवन रखाया जाताथा, परन्तु महा कपि हनु-मानजी ऐसे सुरक्षित रावणके गृहमेंभी गुप्त भावसे प्रवेश करहीगये॥ २९ ॥

सहेमजांबूनदचक्रवालंमहार्हमुक्तामणि
भूषितांतम् ॥ परार्ध्यकालागुरुचंद
नार्हंसरावणांतःपुरमाविवेश ॥ ३० ॥

इस प्रकारसे हनुमानजीनें रावणके रनवासमें प्रवेश करके देखा कि उसके धवरहरे तप्त वर्णके सुवर्णसे बनेहैं, और उन सबके ऊपर भागमें महा मूल्यवान मुक्ता मणियोंके समूहोंसे सुशोभित, और अतिश्रेष्ठ काले वर्णके अगर व चन्दनकी गन्धसें सुवासित होरहेहैं ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥

चंद्रोपिसाचिव्यमिवास्यकुर्वंस्तारागणैर्म
ध्यगतेविराजन् ॥ ज्योत्स्नावितानेनवि
तत्यलोकानुत्तिष्ठतेनेकसहस्ररश्मिः ॥ १ ॥

" चंद्रमाभी महावीरजीको मंत्रीकी नाईं सहाय देता हुआ तारोंके बीचमें शोभित होने लगा और अपनी चांदनी संसारमें फैलाता हुआ सह-स्र किरणोंसे युक्त उदय हुआ ! महावीरजी उस समय चंद्रमाको शंखकी कान्ति दुग्ध, मृणालकी समान कान्तिमान देखकर सरोवरमें हंसकी समान प्रकाशमान देखने लगे २ " अनन्तर बुद्धिमान पवननंदन हनुमानजीनें देखा कि रात्रिके प्रथम अर्ध पहरेमें सूर्यकी समान अधिक प्रकाशमान

किरणों सहित चंद्रमा, गोठमें भ्रमण करते हुये मतवाले वृषभकी समान तारागणोंके मध्यमें प्राप्त होकर वारंवार चंद्रका राशि छिरकाते हुए विहार कर रहेहैं ॥ १ ॥ चंद्रमाके उदय दर्शन करनेंसे लोकोंके समस्त पाप नाशको प्राप्त हुए, समुद्र बढा, और सबहीभूत शोभायमान हुए ॥२॥ जो लक्ष्मी पृथ्वीपर मन्दराचल पर्वतमें प्रदोष कालके समय समुद्रमें और दिनकों जलके मध्य कमल फूलोंके समूहोंमें मिली रहती है, वही लक्ष्मी इस समय चंद्रमामें टिककर विराजमान होरहीहै, ॥ ३ ॥ चांदीके पींजरोंमें हंस, मन्दराचल पर्वतकी कन्दराओंमें सिंह, और गर्वित हाथियोंपर चढे हुए वीर इन सबकी समान आकाशमें उदय हुए चंद्रमाकी कला शोभित हो रहीथी ॥ ४ ॥ चंद्रमाके कलंक रूप हरिण शृंगके स्पष्ट प्रकाशित होनेंसे ऐसा बोध हुआ मानों तेज सींगवाला बैल, ऊंचे शिखर वाला श्वेत, वर्णका महा पर्वत, अथवा जम्बूनद सुवर्णके बंधनसे जिसके दांतबँधेहों ऐसा हाथी शोभायमान हो रहाहै ॥ ५ ॥ वर्षा वीत जानेंसे, उसकी शीतल जल बिन्दुरूप कीचड दूर होगईहै। महा ग्रह सूर्यकी किरणके संबंधसे, चंद्रमाकी प्रभा अति बढगई! व प्रकाश लक्ष्मीके आश्रय वश उसका कलंकभी अति स्पष्ट होगयाहै इस प्रकार चंद्रमा शोभित हो रहाहै ॥ ६ ॥ शिलातल पर बैठे हुए मृगराज सिंहकी समान, रणके बीचमें खड़े महा गजकी समान, और राज्यपर स्थापित हुए राजाकी समान, चंद्रमा अतिशय शोभायमान हो रहाहै ॥ ७ ॥ प्रकाश मान चंद्रमाके उदयसे समस्त अंधकारका नाश होने, राक्षसोंके मांस भक्षण दोषकी अधिकता होंने, स्त्रियोंके प्रीति पद प्रेम कलहके न होंने, और स्वर्गका सुख प्रकाशित होंनेंसे प्रदोषकाल गोरव युक्त और शोभायमान हो रहाहै ॥ ८ ॥ कानोंको सुख देनें वालीकी मनोहर झंकार इधर उधर सुनाई आय रहीहै। पतिव्रता स्त्रियें अपने २ स्वामीके साथ शयन कर रहीहैं; और अतिशय अद्भुत व घोरकर्म करनेंवाले भयंकर वृत्ति निशाचर राक्षस लोग इधर उधर घूमते हुए विहार करनेंमें लग रहेहैं ॥ ९ ॥ उसही समयमें परम बुद्धिमान हनुमानजीनें फिर देखाकि राक्षस गणोंके समस्त गृह रथ, अश्व, और सुवर्णमय आसनोंसे पूरित हो रहेहैं, वीर श्रीयुत और ऐश्वर्यमत्त व मदमत्त निशाचर गणोंसे भर-

रहेहैं ॥ १० ॥ उनके मध्यमें प्रमत्त राक्षसोंका परसार अधिक उत्तर प्रत्युत्तर करते कोई दृढ हाथ वाले उलझन युक्त मतवाले प्रलाप वचन परस्पर कहकर निंदा कर रहेहैं ॥ ११ ॥ और कभी २ और कोई अपनी छातीको बजाय रहेहैं, कोई २ अपनी प्राणप्यारीको चिपटाय रहेहैं, कोई विचित्र विविध वेश धारण कर रहेहैं और अनेक धनुषकोही खेंच रहे-हैं ॥ १२ ॥ अनन्तर हनुमानजीनें देखा कि स्त्रियें कोई अपने शरीरको चन्दनादि लगा रहीहैं, कोई शयन करतीहैं कोई प्रफुल्लित वदनसे हँस रहीहैं, कोई क्रोध युक्त होकर लंबे २ श्वासले रहीहैं ॥ १३ ॥ उस समय उस जनानखानेमें सजे सजाये मतवाले हाथियोंके समूहका गर्जन होनेसे और विभीषणादि महामान्य साधु चरित्र वीरोंके निश्वाससें, श्वासलेते हुए सर्प समूहसे परिपूर्ण ह्रदकी समान लंकापुरीकी शोभा होरहीथी॥१४॥ अनन्तर हनुमानजीनें उस लंका पुरीमें आस्तिक, मधुर वचन बोलने वाले, विविध वेषधारी, जगत्के मध्यमें प्रधान और सुन्दर रुचिके नाम धारी, मुखिया २ राक्षसोंको देखा ॥ १५ ॥ अधिक बुद्धिमान, विविध गुणधारी अपनी समान गुणवाले, और सुरूपवान राक्षसोंको देखकर हनु-मानजी बड़े आनंदित हुए; उन राक्षसोंमें कोई २ अधिक विरूप होनें परभी अधिक प्रभायुक्त होनेंके कारण सुरूपवानकी समान दृष्टि आनें लगे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे हनुमानजीनें देखाकि उन स्थानोंमें अति उत्तम गहनोंसे सजधजकर तारा गणोंकी समान प्रिय दर्शन वाली महानुभाव सुस्वभाव युक्त निशाचरियें मद्यपानादि प्रिय कार्योंमें आसक्त होकर हाव, भाव, और कटाक्ष कर रहीहैं ॥ १७ ॥ फिर हनुमानजीनें रात्रिके समय चलते २ देखाकि विहंगी जिस प्रकार अपने स्वामीसे भेंटी जातीहै, वैसेही अपने २ स्वामियोंसे चिपटाई जाकर कोई २ कामिनी महा लज्जा और हर्षके वशहो अपने २ रूपकी अधि-काईसे मानों प्रज्वलित हो रहीहैं॥१८॥बुद्धिमान हनुमानजीनें फिर देखाकि कोई २ मनमानी विवाहिता पतिव्रता स्त्रियें अटारीके नीचे, और कोई २ अपने स्वामियोंकी गोदीमें मदन युक्त चित्तसें बैठीहैं ॥ १९ ॥ फिर हनु-मानजीनें देखाकि तपाये हुए सुवर्णकी समान वर्ण वाली व चंद्र सदृश उजले वर्ण युक्त किसी २ स्त्रीकी ओढनी नहीं है, और वह नंगीहै; और

कोई २ मानिनी होनेके कारण स्वामीके विनाही बैठीहैं ॥ २० ॥ कोई २ मन भावते स्वामीके संगसे अतिशय प्रसन्न हो रहीहैं; कोई २ फूलोंके गुच्छोंको धारण कर अतिशय मनोहरणी और हर्षयुक्त हो रहीहैं, और कोई २ स्वभावसेही चित्तको खैंचे लेतीहैं ऐसी स्त्री महावीरजीने देखीं २१ शशिधर सदृश सुन्दर वदनोंके समूह तिर्छी चितवन, व सुकुमार भ्रुकुटि और उत्तम नेत्रोंकी राशि; व दामिनी मंडलकी समान प्रभावान् गहने हनुमानजीकी दृष्टि पडे ॥ २२ ॥ परन्तु जो अतिशय कुलीन श्रेष्ठ वंशमें, उत्पन्न, जिनकों विधातानें अपने मनकी कल्पनासे बनाया, जो श्रेष्ठ प्रफुल्लिता लताकी समान महा सुन्दरता व सुकुमारकी खानिहैं ॥ २३ ॥ जो सदाही पतिव्रत मार्गमें सर्व भांतिसे टिकी हुई, श्रीरामचंद्रमेंही जिनकी केवल एक दृष्टि और श्रीरामचंद्रही जिनके एक मात्र काम लालसा, जिन्होंने स्वामीके निर्मल मनमें प्रवेशकियाहै, जो समस्त श्रेष्ठ स्त्रीकुलकी ललाम स्वरूपहैं॥२४॥जो स्वामीके विरहमें दुःखितहोकर सदाही रोती रहती हैं, पहले श्रीरामचंद्रजीके सहवास समयमें अत्युत्तम गहनोंमें प्रथम गिने जानेंके योग्य पदिक जिनके कंठको शोभायमान करता, जिनकी भ्रुकुटियें सुकुमारहैं, व स्वर अति मधुर, जोकि वनके मध्यमें नृत्य करती हुई मोरनीकी देखनेंमें अति मनोहरहैं ॥ २५ ॥ जो स्वामीके विरहमें भली भांति न प्रकाशती हुई चंद्ररेखाकी समान, धूरि युक्त सुवर्णकी समान, व्रणयुत वर्ण रेखाकी समान, अथवा पवन मथित मेघमालाकी समान अति शोचनीय मूर्ति धारण किये हुएहैं ॥ २६ ॥

सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्यरामस्यप
त्नींवदतांवरस्य ॥ बभूवदुःखोपहतश्चि
रस्यप्लवंगमोमंदइवाचिरस्य ॥ २७ ॥

उन नरेश्वर श्रीरामचंद्रजीकी भार्या सीताजीको बहुत देरतक ढूंढनेंसेभी न पायकर, कपिश्रेष्ठ हनुमानजी कुछ क्षणके लिये अत्यन्त दुःखित और शिथिल यत्न होगये ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दर कांडे पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥

सनिकामंविमानेषुविचरन्कामरूपधृक् ॥
विचचारकपिर्लंकांलाघवेनसमन्वितः ॥ १ ॥

इच्छानुसार रूप धारण किये कपिश्रेष्ठ श्रीमान् हनुमानजी सतखंड अठखंडे धवरहरोंपर, इच्छानुसार भ्रमण करते हुए लंकापुरीमें घूमनें लगे ॥ १ ॥ और बडी शीघ्रताके साथ राक्षस राज रावणके गृहके निकट पहुंचे।यह गृह सूर्य सम प्रकाशित और चाहर दिवारीसे घिरा हुआथा ॥२॥ सिंहकी समान महा बलवान् भयंकर राक्षसोंसे उस गृहको रक्षित देखकर कपिकुंजर हनुमानजीनें उसको जरा २खोजनेका विचारकिया॥३॥हनुमान जीनें देखा कि यह भवन बहुतसारे उपगृहोंसे परिपूर्ण और विचित्र शोभा से शोभायमान होरहाहै, इसके विचित्र दरवाजे चांदीके बनेहैं, और इनपर सुवर्णके काम होरहेहैं;सबही द्वार मनोहर प्रकारसे स्थापित कियेथे इसलिये वह गृह अतिशय शोभायमान होरहाथा ॥ ४ ॥ शूरता युक्त परिश्रम विहीन हाथियोंपर चढे महावत् गणोंसे, व अति वेगवान रथके खैंचने वाले घोडोंसे ॥ ५ ॥ सिंह और व्याघ्र चर्मको धारण किये, सुवर्ण, चांदी, व हाथी दांतकी प्रतिमाओंसे सुसज्जित और गंभीर गर्जनशाली विचित्ररथ उसके किनारे २ घूम रहेथे ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके रत्न अति श्रेष्ठ आसन और बड़े २ रथ व महारथोंके समूहसे शोभित ॥ ७ ॥ और परम सुन्दर सुहावने अनेक प्रकारके सहस्रों मृग और पक्षी इन सब वस्तुओंसे रावणका गृह भूषित और पूरितथा ॥ ८ ॥ सीमा रक्षक विनीत स्वभाव परम शिक्षित राक्षसगण बडी सावधानीसे उस गृहकी रक्षा कर रहेथे, और वह सुन्दर २ स्त्रियोंसे व्याप्तथा ॥ ९ ॥ अनेक बडी स्त्रियों और प्रमोद युक्त प्रमदाओंसे वह स्थान चारों ओर भर रहाहै, और अति श्रेष्ठ गहनेकी झनकार ध्वनिसे वह स्थान सागर तुल्य गंभीरभावसे शब्दायमान होरहाथा ॥ १० ॥ अधिक करकै यह गृह सब राज चिह्नोंसे परिपूर्णथा, और अति श्रेष्ठ महा मोलके चंदनकी सुगंधसे और मुख्य२ राक्षस गणोंसे व्याप्तथा जैसे सिंहोंसे बडा वन ॥ ११ ॥ भेरी, मृदंग, और शंखके शब्दसे शब्दायमान होरहाथा, और राक्षसगण निरन्तर इस गृहमें अपने २ इष्ट

देवताकी पूजा करतेथे ॥ १२ ॥ महात्मा राक्षसराज रावणका समुद्र तु-ल्य गंभीर और समुद्रकीही समान शब्दकारी इस प्रकार रत्न सामग्रीसे परिपूर्ण भवनथा ॥ १३ ॥ महाकपि हनुमानजीनें अनेक रत्नोंसे युक्त उस गृहको देखा, उस गृहमें जहां तहां गज अश्व और रथ व्याप्तथे ॥ १४ ॥ उस सुदृश्य भवनको देखकर महाकपि हनुमानजीनें विचारा कि यह गृह सब लंकाका भूषण रूपहै; यह मानकर वह जहां रावण शयनकर रहाथा वहां गये ॥ १५ ॥ इस प्रकार एक गृहसे दूसरे गृहमें गमन करते हुए मुखिया २ निशाचरोंके गृह और फुलवाड़ियें देखते भालते उस मंदिरमें घूमनें लगे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे महा वीर्यवान हनुमानजी महा वेगसे छलांग मारकर प्रथम प्रहस्तके घरमें फिर वहांसे महापार्श्वके भवनमें प्रवेश करते हुए ॥ १७ ॥ वहांसे कुंभकर्णके मेघाकार गृहमें । फिर वहांसे कूदकर विभीषणके घरपर महाकपि आये ॥ १८ ॥ वहांसे महोदरके घर-पर कूदे; तिसके पीछे विरूपाक्षके स्थानपर आये फिर विद्याजिह्वका घर खोजा, फिर विद्युन्मालीके भवनको आन लिया ॥ १९ ॥ वहांसे वज्रदंष्ट्रके गृह-पर गये; फिर महाकपि हनुमानजी शुकके यहां पधारे, फिर बुद्धिमान् सार-णके स्थानपर ॥ २० ॥ फिर वानरश्रेष्ठ हनुमानजी इन्द्रजीतके स्थानपर कूदे, वहांसे जम्बुमाली और सुमालीके भवनपर वानर श्रेष्ठ होरहे ॥ २१ ॥ वहांसे रश्मिकेतुके भवन पर रश्मिकेतुके भवनसे सूर्य शत्रुके यहां, फिर वहांसे यह महाकपि वज्रकायके मंदिरपर पहुंचे ॥ २२ ॥ फिर पवनकुमार धूम्राक्ष, व स-म्पातिके घरपर, तहांसे विद्युद्रूप, भीम, घन, विघनके स्थानपर ॥ २३ ॥ इसके पीछे शुकनाभ, चक्रशठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, लोमश राक्षसोंके गृहों पर ॥ २४ ॥ फिर युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, सादी, विद्युज्जिह्वके, द्विजि-ह्वके यहां फिर हस्तिमुखके स्थानपर ॥ २५ ॥ वहांसे कराल विशाल शोणिताक्ष, इन सब राक्षसोंके भवनोंपर पवनकुमार हनुमानजी वारी वा-रीसे घूमे व कूदे ॥ २६ ॥ और उन सब बडे भवनोंमें इन समस्त ऋद्धि-शाली राक्षसोंकी परम समृद्धि महा यशवान हनुमानजीनें देखी ॥ २७ ॥ उस प्रकारसे श्रीमान् महा कपि हनुमानजी क्रमसे इन समस्त भवनोंपर मघ्र राक्षस रावणके गृहपर आये वहांपर महावीरजीनें देखा कि विकराल

नेत्रवाली राक्षसियें अलग २ अपने पहरे पर रावणके शयन गृहकी रक्षा-करतीहैं॥२८॥२९॥इनके अतिरिक्त रावणके गृहमें इधर उधर विचरण क-रती हुई, शूल, मुद्गर, शक्ति, और तोमर धारण किये हुए असंख्य राक्ष-सियें हनुमानजीनें देखी ॥ ३० ॥ शस्त्र धारण किये हुए बडी २ देह वाले राक्षसोंके भवन समूहों में लाल, श्वेत, घोड़े बँधे देखे, जोकि अति शीघ्र चलनें वालेथे ॥ ३१ ॥ और बडे २ श्रेष्ठ रूपवाले वनके गजोंके मर्दन करने वाले, भली भांतिसे शिक्षित, युद्ध में ऐरावत हाथीकी समान गजभी बँधे देखे ॥ ३२ ॥ वह हाथी देखतेही शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेंवालेथे, व और पर्वतोंकी समान जिनमेंसे मदका झरनासा झरता-था ॥ ३३ ॥ समर में शत्रु लोगोंसे जीतनेके अयोग्य, मेघोंकी समान ग-र्जन करनें वाले हाथी, और बहुतसी सेना, सुवर्णकी सब सामग्रीसे सम्पन्न उस भवनमें जहां तहां छाई हुई देखी ॥ ३४ ॥ वह सैना सुवर्णकी कडि-योंके जालका बख्तर पहने, प्रातःकालीन सूर्यके समान चमकती दमकती, राक्षसनाथ रावणके स्थानमें हनुमानजीनें देखी ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकार की पालकियें चित्र विचित्र लता युक्त गृह, और चित्र पट शोभित ८ गृह हनुमानजीनें देखे ॥ ३६ ॥ विहार गृह और काठके बने हुए (नकली) क्रीडा पर्वत रमणीक रति करनेंके समान, और दिनको विहार करनेंके गृह हनुमानजीने देखे ॥ ३७ ॥ और हनुमानजीने देखा कि रावणका गृह अतिश्रेष्ठहै, वह मन्दराचल पर्वतकी तलैटीकी समान मनोहर मोरोंके स्थानोंसे व्याप्तहै ॥ ३८ ॥ ध्वजापताकाओंसे भूषित, असंख्य रत्न और ऋद्धि सिद्धिके समूहसे परिपूर्ण और वहांपर भय रहित स्थिर चित्त राक्ष-स लोग उन विधियोंकी रक्षामें नियुक्तथे, देखनेसे बोध होताथा मानो यक्ष नाथ कुवेरजीका गृह विराजमान होरहाहै ॥ ३९ ॥ सब रत्नोंकी ज्योति और रावणके तेजके प्रभावसे हजार किरणों सहित सूर्यकी समान यह गृह प्रकाशमान होरहाथा ॥ ४० ॥ सुवर्णके बने हुए पलंग आसन, और सब वरतन जोकि भोजनादि करनेंके चांदीके बनेथे, वह सब हनुमानजीनें देखे जब हनुमानजी इस मंदिरमें घुसे तो उन्होंने देखा कि यह गृह मंदा व आ-सव (मदिराका रस) से गीला होरहाहै, मणिमय पात्रोंसे व्याप्तहै, और कुवेरके भवनकी समान रमणीक है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ और सर्वथा विघ्नरहित,

नूपुर, काञ्ची, मृदंग, ताल इत्यादि बाजोंके शब्दसे शब्दायमान गायकों के शब्दसे पूर्ण ॥ ४३ ॥

प्रासादसंघातयुतंस्त्रीरत्नशतसंकुलम् ॥
सुव्यूढकक्ष्यंहनुमान्प्रविवेशमहागृहम् ॥ ४४ ॥

अनेक २ अनूप धवरहरे और सैंकडों हजारों स्त्री रत्नोंसे घिरा हुआ बडी २ कक्षा वाला जिसकी रक्षा भलीभांति होरहीथी, ऐसे भवन में हनुमानजीनें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥

सवेश्मजालंबलवान्ददर्शव्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालम् ॥
यथामहत्प्रावृषिमेघजालंविद्युद्धिनद्धंसविहंगजालम्॥१॥

महा बलवान् हनुमानजीने देखा कि इस गृहकी सब खिड़कियां सुवर्णको बनींहैं और वैदूर्य मणिसे खचितहैं, उनमें पक्षियोंके विराजमान रहनेंसे विद्युज्जडित विहंगोंकी श्रेणीसे शोभित वर्षाकालके मेघकी समान उस गृहकी शोभा होरहीहै ॥ १ ॥ उस अति भारी मन्दरके अन्दर विविध रहनें बैठनें, इत्यादिके दर दालान बने ठनेथें; उनमें शंख, व अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र और धनुष बाण सजे धजेथे, और पर्वताकार भवन समूहोंके ऊपर बनी हुई विशाल गृहावली अति मनोहरण भावसे विराज रहीथीं, जिनपर सदा चंद्र किरण पडकर मन हरण किया करतीथीं ॥ २॥ यह समस्त गृह विविध रत्नोंसे परिपूर्ण देवासुर गणोंसेभी पूजित, सर्व दोषोंसे रहितथा, और इसमें सब वस्तुयें रावणके बाहु बलसे इकट्ठीकी हुईथीं ॥ ३ ॥ साक्षात् मयदानवके द्वारा अति यत्न पूर्वक बनाये जानेसें गुण ग्राममें लंकापति रावणके यह गृह समूह सब पृथ्वीमें श्रेष्ठथे ॥ ४॥ ऊंचे मेघकी समान सुवर्णके बने राक्षसराजके यह समस्त घर उसके बाहु वीर्यकी समान मनोहर और उपमा रहितथे ॥ ५ ॥ उसके देखनेंसे ऐसा जान पड़ताथा मानो पृथ्वीमें गिरे हुए स्वर्गकी समान शोभासे यह भवन उजला होरहाहै, वह अनेक रत्नों करके पूर्ण रहनेंके कारण ऐसा शोभायमान होरहाथा मानों इधर उधर छितराये हुए पुष्पोंके परागसे ढके अनेक

जातिके वृक्ष पुष्पाकीर्ण पर्वतके अग्रभागमें चमक दमक रहेहैं ॥ ६ ॥ रूपवान स्त्रियोंके विराजमान रहनेंसे मानों वह गृह दामिनीयुक्त मेघ मालाकी समान शोभित होरहाहै, अथवा दिव्य हंसोंकी कतारसे उठाया हुआ पुण्यवान् जनका आकाशचारी सुन्दर विमान शोभायमान होताहै, इसी भांतिसे उस भवनकी शोभाथी ॥ ७ ॥ जिस प्रकारसे पर्वतका अग्र-भाग अनेक धातुओंसे चित्रित होताहै जैसे गृह और चंद्रमासे आकाश मंडल चित्रित होताहै और जैसे मेघ अनेक रंगोंसे चित्रित होतेहैं इसी प्रकार अनेक रत्नोंके जडे रहनेसे विचित्र रावणका पुष्पक नाम विमान हनुमानजीनें देखा ॥ ८ ॥ इस विमानमें बहुत जनोंके बैठनेके जो स्थानथे वह सुवर्णादिसे बने हुए नकली पर्वतोंके समूहसे परिपूर्णथे उन पर्वतोंपर बने हुए वृक्ष लगे हुएथे, और उन वृक्षोंपर फूल खिल रहेथे और अत्यन्त कारीगरीकी बात यहथी कि उन फूलोंसे पराग झरताथा॥ ९ ॥ उस विमानमें श्वेत वर्णके अनेक भवनथे और अच्छे २ फूलोंसे शोभित अनेक तलैयांथीं उन तलैयोंमें पराग सहित कमल फूलेथे व उसके घरमें विचित्र वन और सरोवरभी बने हुएथे ॥ १० ॥ महाकपि हनुमानजीनें वहांपर ऐसा पुष्पक नामक महा विमान देखा, यह विमान रत्नोंकी प्रभासे उज्ज्वलथा, और इधर उधर घूम रहाथा, और अत्युत्तम विमानोंके समूहसे भी अधिक ऊंचा यह श्रेष्ठ विमानथा ॥ ११ ॥ उस विमानमें वैदूर्य मणि मूंगा और चांदीके पक्षी बनेथे, व सुवर्ण गठित विचित्र भुजंगम, और जातिके अनुरूप सुन्दर शरीर तुरंगम समूहभी हनुमानजीनें देखे ॥ १२ ॥ जिनके पंखमें सुवर्ण और मूंगेके फूल सजाये गयेथे, जो संकुचित और कुटिल साक्षात् कामदेवके पक्षकी समान शोभायमान थे, ऐसे सुंदर मुख वाले और श्रेष्ठ पंखधारी पक्षीभी वहां बनाये गयेथे ॥ १३ ॥ इसके सिवाय वहांपर कमल वाली पुष्करणियोंमें सुशोभित कमलका फूल हाथमें लिये लक्ष्मीजी और उनका अभिषेक करनेंमें नियुक्त सुन्दर शुण्ड सुशोभित कमल परागसे अलंकृत हाथीभी बनें हुएथे ॥ १४ ॥ इसभांति विस्मय युक्त हो सुन्दर कन्दरा वाली अति शोभायमान जिसके स्थान उस लंका पुरीमें प्रवेशकर, फिर वसन्तऋतु होनेसें सुन्दर सुगंधित खोड़लयुक्त शोभायमान वृक्षकी समान उस गृहमें प्रवेश करते

हुए ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे हनुमानजी उस दशमुख रावणकी भुजाओंसे रक्षित परम प्रशंसित लंका पुरीमें इधर उधर छलांगें मार २ कर घूमनें लगे परंतु अतिशय दुःखित सुपूजिता व पतिके गुणोंके वेगसे जीवित सीताजीको वहां न देख पाकर उनका मन अतिशय दुःखित हुआ॥१६॥

ततस्तदाबहुविधभावितात्मनःकृतात्मनोजनक
सुतांसुवर्त्मनः ॥ अपश्यतोभवदतिदुःखि
तंमनःसचक्षुषःप्रविचरतोमहात्मनः ॥ १७॥

तब हनुमानजी जिनका चरित्र समस्त जगत्का आदर्श रूप अति आदर पानेंके योग्य व हृदय अति शिक्षित था वह शास्त्र रूपी नेत्रोंसे युक्त वे महात्मा जनकसुताको ढूंढनें परभी नपाकर दुःखी हुए ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे आदिकाव्ये सुन्दरकांडे सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥

सतस्यमध्येभवनस्यसंस्थितोमहद्विमानंमणिर
त्नचित्रितम् ॥ प्रतप्तजांबूनदजालकृत्रिमं
ददर्शधीमान्पवनात्मजःकपिः ॥ १ ॥

बुद्धिमान पवनकुमार हनुमानजीनें रावणके गृहमें टिककर अनेक प्रकारकी श्रेष्ठ मणियोंसे खचित, इस प्रकारका अति बड़ा पुष्पक नामक महा विमान देखा, यह विमान तपाये हुए सुवर्णके झरोखोंसे सजा हुआ-था ॥ १ ॥ और अनुपम सुन्दरता युक्त प्रतिमा इत्यादिकोंके सहित हो-नेसें यह विमान विचित्र सुषमा युक्तथा स्वयं विश्वकर्माने भलीभांति मन लगाकर इसको बनायाथा और आकाश मार्गमें टिके वायु मार्गमें सूर्यके मार्गका चिह्न स्वरूप यह विमान विराजमान हो रहा था ॥ २ ॥ उस विमानमें ऐसा कुछ नहींथा जो महामूल्यवान रत्नोंसे न बनायाहो देवता लोगोंके विमानोंमेंभी वैसी कारीगरी दृष्टि नहीं आती इस प्रकारकी उसमें सबही रचनायें विशेषथीं उसमेंके सबही पदार्थ सब गुण सम्पन्नथे ॥३॥ रावणनें तपस्या और समाधिसे प्राप्त किये पराक्रमकी सहायसे उसको प्राप्त कियाथा,यह विमान मनके संकल्पानुसार सबही कहीं

जाय सकता अनेक प्रकारकी भली २ रचना और अनेक स्थानोंसे एकत्र किये दिव्य विमानके बनानेंके लायक विशेष २ बडे २ मोलके रत्नोंसे यहबनाया गयाथा॥४॥वह विमान महाधनशाली यशमान पुण्यशील महात्मा लोगोको अति आनंदका देंनें वालाथा जो महा परिश्रम से न बनायाहो और ऐसा भी कोई स्थाननथा और यह अपने स्वामीके मनकी गतिको जान पवनकी समान अति वेगसे गमन करता इसलिये कोईभी उसका अनादरनहीं करसकताथा अधिक करके यह विमान विशेष २ गतिके अनुसार शून्य मार्गमें घूमता और वह समस्त अद्भुत पदार्थोंके खानि रूप बहुतसे गृहोंसे विभूषित,अतिशय मनोरम शरदऋतुके चंद्रमाकी समान निर्मल और विचित्र शिखर समूहसे अलंकृत, सवन शिखरसे शोभित पर्वतकी समान विराजमानथा ॥ ५ ॥ ६ ॥ जिनके नेत्र सदा घूमते रहने वाले, निमेषरहित और विशालथे, ऐसे आकाशमें चलनें वाले निशाचर और महावेगवान, कुंडल धारण किये सहस्र २ भूत गण अति गंभीर शब्द करके इस विमानको लेकर चलेथे ॥ ७ ॥

वसंतपुष्पोत्करचारुदर्शनंवसंतमासाद
पिचारुदर्शनम् ॥ सपुष्पकंतत्रविमा
नमुत्तमंददर्शतद्वानरवीरसत्तमः ॥ ८ ॥

इस प्रकारसे वानरश्रेष्ठ वीरवर हनुमानजीने वसंत समयमें उत्पन्न हुये पुष्पोंके ढेरसे युक्त, वसंत माससेभी अधिक परम सुन्दर देखनेंके योग्य, यह श्रेष्ठ पुष्पक विमान देखा ॥८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये सुन्दर कांडे अष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥

नवमःसर्गः ॥

तस्यालयवरिष्ठस्यमध्येविमलमायतम् ॥
ददर्शभवनश्रेष्ठंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ १ ॥

पवनकुमार हनुमानजीनें उन सर्व श्रेष्ठ सुन्दर भवनोंके बीचमें अति सुन्दर विशाल वह निर्मल गृह देखाकि जिसमें विमान धराथा ॥ १ ॥ यह रावणका गृह बहुतही बड़ाथा, इसका विस्तार दोकोश और लंबाई चार कोशकीथी, और बहुत धवरहरे इत्यादिकसे यह घिरा हुआथा ॥२॥

शत्रुओंके मारने वाले हनुमानजी वहांपर बड़े २ नेत्रवाली विदेहनन्दिनी देवी सीताजीको ढूंड़ते हुये सब जगह विचरण करनें लगे ॥ ३ ॥ और राक्षस लोगोंके साधारण गृह देखते हुये हनुमानजी रावणके मुख्य लक्ष्मी- वान उत्तम गृहमें प्रवेश करते हुये ॥ ४ ॥ यह गृह बहुतही बडाथा, चौदन्ते और तिदन्ते हाथियोंके समूहसे व्याप्तथा, हथियार उठाये हुये निशाचर गण सर्वदा इसकी रक्षा करतेथे ॥ ५ ॥ रावणकी राक्षस जातिकी निशाचर पत्नी, और बल सहित दूसरे राजाओंसे छीन लाई हुई राजकन्या गणोंसे पूर्ण होनेंपर ॥ ६ ॥ मानों नाके, मकर, तिमिङ्गिल मछलियोंके समूह और सर्पोंसे परिपूर्ण, व वायुके वेगसे चलायमान समुद्रकी समान यह गृह हनुमा- नजीनें देखा ॥७॥ कुबेर चंद्रमा व इन्द्रजीके भवनमें जो लक्ष्मी विराजमान हो रहती, रावणके इस भवनमेंभी वही सर्व भुवन मनोहरिणी अनपायिनी लक्ष्मी नित्य विराजमान रहतीथीं ॥८॥ और राजा कुबेरके, यम और वरु- णके गृहमें जितना धन रहता व ऋद्धि सिद्धि विराजती,रावणके इस गृहमेंभी वैसीही वरन इनके गृहोंसेभी अधिक ऋद्धि सिद्धि विराजमान रहतीथीं॥९॥ पवनकुमार हनुमानजीनें उस अति बडे भवनके भीतर शयन गृह और बहुत उत्तम बना, बहुत सारे मतवाले हाथियोंसे पूर्ण एक गृह देखा ॥१०॥ विश्वकर्माजीनें स्वर्गमें रहकर अनेक प्रकारके रत्नोंसे सजाय कर पुष्पक नामक जो दिव्य विमान ब्रह्माजीके निमित्त बनायाथा ॥ ११ ॥ यक्षपति कुबेरजीनें कठोर तपस्याके फलसे ब्रह्माजीसे उसको पाया फिर राक्षसपति रावण अपने बलवीर्य व तेजके प्रभावसे कुबेरजीको जीतकर वह विमान ले आया ॥ १२ ॥ वह सुवर्ण चांदी से चित्रित मृग युक्त सुडौल खंभोंसे और अपनी श्रीसे मानों प्रज्वलित हो रहाथा ॥ १३ ॥ सुमेरु, और मन्दराचल पर्वतकी समान, सूर्याग्निकी नांई आकाशको छूते हुयेसे शिखर गृह और विहार भवनोंसे सब कहीं शोभित हो रहाथा ॥ १४ ॥ विश्वकर्माजीने बडी चतुराईसे जिसको बनायाथा, जो सुवर्णकी सीढियें और अति उत्तम वेदियोंसे अलंकृतथा ॥ १५ ॥ जो कांचनमय और स्फटिकमय झरोखे और खिडकियोंके समूहसे विराजमान जिसमें इन्द्रनील, महानील, व दूसरी श्रेष्ठ मणियोंकी वेदियां शोभायमान होरहींथीं॥ १६ ॥ विचित्र मूंगे, बडे २ मोलकी मणियें गोल२

आकार वाले मोती जिसकी सहनमें लग रहेथे, इस कारण जो बहुतही शोभायमान था ॥ १७ ॥ जो सुवर्ण समान सुगन्धि और सूर्य भगवान की नाई लाल चंदन जिसमें लेप किया हुआथा। उस तरुण सूर्यकी समान प्रकाशित ॥ १८ ॥ पुष्पक नाम दिव्य विमानमें महाकपि हनुमानजी चढ़गये, और उस विमानमें टिककर घूम घाम सब ओरसे खानें पीनेंके पदार्थोंकी सुगंधको ॥ १९ ॥ सूंघनें लगे, यह सुगंध बडी दिव्य-थी इस सर्वत्र व्याप्त वायुनें मानों साक्षात् गन्ध स्वरूप धारण किया था बन्धु जिस प्रकार अपने निष्कपट मित्रको जैसे उपदेश देताहै, ऐसे ही वह गन्धमय वायु महावीर्यवान् हनुमानजीसे मानों यह वार्त्ता कहनें लगा ॥ २० ॥ 'जिस स्थानमें रावणहै, हमारे साथ उसही स्थानमें चलो' इसलिये हनुमानजीनें वहांसे चलकर रावणका बडाभारी शयन मंदिर देखा ॥ २१ ॥ यह गृह रावणको उत्तम स्त्रीके समान प्याराथा, उसमें सुवर्णके झरोखे मणियोंकी सीढियांथी ॥ २२ ॥ स्फटिक मणियोंसे नीचे-की सहनई, और उसके विचले भागमें हाथीदांत, मोती, हीरा, मूंगा, सुवर्ण और चांदीकी बनीहुई विविध भांतिकी मूर्तियां शोभायमान होरहीथीं२३ मणियों करकै निर्मित हुए अनेक खंभोंसे विभूषित। समस्त खंब सीधे, सरल और समानथे इस सबसे शोभित ॥ २४ ॥ उन पक्ष समान अति ऊंचे खंभोंसे मानो वह भवन आकाशको उडा जाताथा, पृथ्वीकी समान चोकौना विचित्र फर्श जिसमें हीरा आदि मणियें जड रहींथी बिछा हुआ था ॥ २५ ॥ अधिक करकै यह शयन शाला गांव, पुर, राज्य, गृह शो-भित दूसरी पृथ्वी ही की समान विस्तारितथी, यह मदमत्त विहंगमोंके शब्दसे शब्दायमान; मनोहर गंधसे सुगंधित की हुईथी ॥ २६ ॥ वहांपर बडे मोलके बिछौनेंपर लेटा हुआ रावण शयन कर रहाथा; वह शाला अगरके धूमसे धौले वर्ण हंसकी समान श्वेत वर्ण वालीथी ॥ २७ ॥ पुष्प-रचनाके निकट रहनेंसे विचित्र वर्ण वशिष्ठजीके धेनुके समान सुन्दर प्रभा युक्त हृदयके आनंदको बढ़ानेवाली ॥ २८ ॥ देहकी कांतिको उक-सानें वाली समस्त शोकोंको विनाश करनेंवाली और साक्षात् मानों दिव्य शोभाकी उत्पन्न करनें वाली शालानें इन्द्रियोंके पांच शब्द स्पर्श रूप, रस, व गन्ध इन पंच इन्द्रियोंकी भोग्य वस्तु द्वारा हनुमानजीके

चक्षु कर्णादि, पंच इन्द्रियोंकी तृप्ति माताके समान देखतेही करदी॥२९॥ जब उस रावण पालित शालाने इन्हें संतुष्ट कर दिया तब हनुमानजीनें मनमें समझा कि यह साक्षात् स्वर्ग, देवलोक अथवा अमरावती या कोई श्रेष्ठ सिद्धि होगी ॥ ३० ॥ अथवा यह कोई उत्कृष्ट गन्धर्वी सिद्धिहै यह विचार महावीरजी देखने लगे ॥ ३१ ॥ उसके कांचन मय खंभोंमें जलते हुए समस्त दीपक रावणके तेजके प्रभावसे अति क्षीणहो जुआ खेलनेमें महा धूर्त्त करके हारेहुए ज्वारी लोगोंकी समान मानों बड़ी भारी चिंतामें लगे हुएथे ॥ ३२ ॥ दीपावलीकी प्रभा, रावणका तेज और गहनोंके समूहकी दीप्ति इन सबसे उस शालामें मानों। अग्निकी शिखा बन रहीहै ऐसा हनुमानजीने माना ॥ ३३ ॥ फिर हनुमानजीनें देखा कि रात्रिके हो आनेसे सहस्र २ स्त्रियें अनेक प्रकारके शृंगार कर विभूषितहो विचित्र आसनोंपर कोई २ बैठीहैं और कोई २ लेटीहैं ॥ ३४ ॥ वह सब स्त्रियां अर्द्धरात्रि होजानेंसे मदिरा पान करनेंके कारण नींदके वशहो विहार करनेंसे विरत होगईहैं ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे सबके सोय जाने और नूपुर इत्यादिकी झनकारका शब्द बंद होजानेंसे रावणका यह गृह भ्रमर और हंसध्वनि रहित बड़े भारी कमल वनकी समान शोभा धारण कर रहा-था ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे पवनकुमार हनुमानजीनें परम सुन्दरी ललना-ओंके नेत्र मुंदे और कमलकी सुगंधिसे युक्त वदन मंडल देखे ॥ ३७ ॥ निद्राके समागमसे उनके नेत्र युगल मुंद गये और बत्तीसी बंद होगईथी उनके ऐसे मुख मंडल रात्रिके अवसानमें कमल फूलोंकी समान प्रफुल्लित होकर, फिर रात्रिके आगमनसे मुकुलितपत्र सरोज (कमल) की नांई परम शोभा धारण कर रहेथे ॥ ३८ ॥ यह देखकर श्रीमान् महाकपि हनुमानजीनें युक्तिके अनुसार इस प्रकारसे विचारा कि मत्त भ्रमर कुल प्रफुल्लित कमलकी समय इन समस्त मुख कमलोंका सदा अभिलाष कर-तेहैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकारका विचार करके उन्होंनें इन सब मुख पद्मोंकी गुणमें जलमें उत्पन्न हुए पद्मके सहित समानताकी ॥ ४० ॥ जो कुछहो रावणका शयन गृह इन सब वराङ्गनाओंके झुन्डसे शरद कालके तारा-ओंसे भूषित निर्मल आकाशकी समान शोभायमान होरहाथा ॥ ४१ ॥ और आप रूप रावणभी वैसेही स्त्रियोंके पास रहनेंसे तारागणोंसे युक्त

चंद्रमाकी समान उज्ज्वलतासे प्रकाश पाय रहाथा ॥ ४२ ॥ जो तारे कि पुण्यक्षीण होनेके उपरान्त आकाशसे गिरतेहैं, वही समस्त मानो स्त्रियोंके रूपसे यहांपर आनकर मिल गयेहैं; ऐसा विचार हनुमानजीके मनमें उदय हुआ ॥ ४३ ॥ क्योंकि निर्मल तेजयुक्त बहुत श्रेष्ठ तारागणोंकी समान वहांपर की स्त्रियोंकी चमकीली कान्ति और अमल वर्णकी प्रसन्नता इनमें शोभित हो रहीहै ॥ ४४ ॥ जोकि वह स्त्रियें मदिरा पीकर अत्यन्तही श्रमके वशहो नींदमें अचेत होगईथीं; इसलिये उनके केश, कोमल, मालायें, व श्रेष्ठ श्रेष्ठ गहने इधर उधर चलायमान होरहेथे ॥४५॥ किसी२ का तिलक बिसन गयाथा, किसी २ की पायजेब पांयसे निकल गईथी; किसी २ के हार टूटकर उनकी बगलमें पड़ेथे;इस प्रकारसे वह स्त्रियां सो-रहीथीं ॥ ४६ ॥ किसीका मोतियोंका हार टूट गयाथा, किसीके कपड़े उसके अंगोंसे खसक गयेथे किसी २ की तगड़ियें नितम्बों परसे निकली पडतीथीं स्त्रियें थककर इस प्रकार सब गहनोंको इधर उधर डाल बोझ लादनेके पीछे बोझ उतारी हुई घोडियोंके समान शयन कर रहीथीं॥४७॥ किसीके कुंडल निकल पड़ेथे किसी २ की माला टूट गईथीं कोई २ स्त्रि-यें, महा भवनमें गजेन्द्रसे मर्दितकी हुई लताकी समान घबड़ाई सी पड़ी-थीं ॥ ४८ ॥ किसी २ स्त्रीका चंद्रमा की किरणोंकी समान श्वेत वर्णका मुक्ताहार छाती पर सिमट जानेसे एकत्र हो, सोते हुए हंसकी समान स्त्रि-योंके स्तनों में विराजमान हो रहाथा ॥ ४९ ॥ किसी २ की वैदूर्य मणिसे बनीहुई मणिमाला कलहंसकी समान. किसीके स्तनोंके बीच सोनेके हारकी श्रेणी चक्रवाकोंकी समान शोभा विस्तार कर रहीथी ॥५०॥ इससे वे स्त्रियां हंस कारण्डव सहित और चक्रवाकोंसे शोभित नदियोंकी भांति किनारे रूपी जंघाओंसे शोभायमान होतीथीं ॥ ५१ ॥ किङ्किणी के जालको मुकुल बनाये सुवर्णके गहनोंको बडे २ सरोज समझे भाव शृङ्गार और चेष्टाओंको ग्राह बनाये पतिके अनुकूल चलनेसे उत्पन्न हुए यशको किनारा किये सोई हुई वे स्त्रियें नदियोंके समान शोभित होती थीं ॥५२॥ किसी २ स्त्रीके सुकोमल अंगोंमें, और २ किसीके कुचाग्रमें मदन करनेसे जो रेखायें पडगईहैं;वह समस्त रेखायें सुन्दर गहनोंका कार्य कर रही हैं॥ ५३ ॥ किसी २ स्त्रीके वस्त्रोंके अंचल उसकी लहरसे वार-

वार कंपित हो मुख मंडलके ऊपर वारंवार फहरा रहेथे ॥ ५४ ॥ उनसे ऐसी शोभा होरहीथी, मानो अनेक वर्णके रँगीले सुवर्णके तारोंसे बनी हुई श्रेष्ठ पताकायें फहराय रहीहैं ॥ ५५ ॥ किन्ही २ कान्तिवाली स्त्रियोंके दोनों कुन्डल उनके मुखकी पवनसे मन्द २ शब्द करकै हिल रहेथे॥५६॥ उन स्त्रियों का स्वभाविक सुगंधि वाला वदनसे निकला हुआ, छूनेंसे सुख देनेवाला श्वासका पवन मदिराकी गंधसे अधिक तर सुगंधितहो रावण को सुख उपजाय रहाथा ॥५७॥ कोई २ रावण की स्त्री मदके मारे विह्वल रावणके मुखके धोखे में वारंवार अपनी सौतोंका मुख सूंघ रहीथीं ॥५८॥ उन सब श्रेष्ठ स्त्रियोंका मन एक रावणमें ही वहुत लगनेसे राज पत्नियों करकै चुम्बित होनें परभी विरक्त नहीं होतीं ॥ ५९ ॥ वाजू धारण किये हुए कुछेक स्त्रियें सुन्दर २ वस्त्र धारण किये हुए दोनों वाहोंको तकिया वनाये उनपर मस्तक धर शयन कर रहीं हैं॥६०॥कोई किसीकी छातीके ऊपर, कोई किसीकी भुजाके ऊपर कोई किसीकी गोदीमें, और कोई २ किसी २ के कुचोंहीको पकड़े शयन कर रहीं थीं ॥ ६१ ॥ इस प्रकारसे मादकता, और पतिके प्रेमके वशहो समस्त स्त्रियां परस्पर जांघ कमर बगल और पीठका आश्रयकर परस्पर अंग मिलाये शयन किये हुईथीं ॥ ६२ ॥ वह सुमध्यमा स्त्रियें परस्पर एक दूसरीका अंग स्पर्श करके सुख प्राप्त करती हुई २ परस्पर वाहें गाढे नींदके वश हो रहीथीं ॥ ६३ ॥ एक दूसरेकी भुजाके डोरेमें गुँधी हुई वह स्त्रियोंकी माला एक डोरेमें गुँधी हुई भ्रमर गणोंसे सेवित मनोहर पुष्प मालाकी समान शोभायमानहो रहीथी ॥ ६४ ॥ पवनके लगनेके कारण खिली हुई लताओंके परस्पर ग्रसितहोंने और स्त्रियोंके वालोंमें गुँधे फूलोंके गुच्छोंसे॥६५॥व उनके परस्परलिपट जानेंसे स्कंध रूप शोभायमान होनें, और भ्रमररूपी वालोंके वर्त्तमान होनेंसे रावणकी स्त्रियोंका मानो यह एक वनथा ॥६६॥ स्त्रियोंके समस्त गहने उचित रीतिसे यथा स्थानमें पहरे हुएहैं परन्तु एक दूसरीसे इस प्रकार सँटकर सोय रहीथीं कि जिससे यह स्थिर करना कठिनथा, कि कौन गहनाहै? कौन मालाहै और उनका कौनसा अंगहै? ॥ ६७ ॥ रावणको इस समय सोताही हुआ देखकर मानों विविध प्रभावाले सुवर्ण मय उज्ज्वल दीपक विना पलक मारे नेत्रोंसे रावणकी स्त्रियोंको देख

रहेथे। जब रावण जागताथा तबतो देव लोगभी उसकी स्त्रियोंको नहीं देख सकतेथे ॥ ६८ ॥ राजर्षि, ब्राह्मण, दैत्य, गन्धर्व, और राक्षसोंकी कन्या इन सबकोही रावणने अपनी प्रणयिनी बनायाथा, अर्थात् उनको व्याहाथा ॥ ६९ ॥ उनमेंसे किसी २ को रावण युद्ध करके उनके पिताओंको जीत हरकर लायाथा। और कोई मतमाती युवास्त्री काम बाणसे मोहितहो स्वयंही रावणके साथ आईथीं ॥ ७० ॥ वीर्यवान् रावण बलपूर्वक किसी स्त्रीको उसकी इच्छाके विना लंकामें नहीं लायाथा दूसरेकी इच्छा करने वाली और व्याही स्त्रीकोभी नहीं लायाथा, पूजा करनेंके योग्य जानकीजीके सिवाय सबही स्त्रियां रावणके सौन्दर्यादि गुणोंमें बँधकर स्वयंही चली आईथीं ॥ ७१ ॥ उन स्त्रियोंमें रावणको छोड दूसरेके प्रति किसीका अभिलाष नहींथा, और न कोई पहले किसीसे भोगी गईथी, सबही सत्कुलमें उत्पन्न सबही सुन्दरी, सबही चतुर और सबही श्रेष्ठ वस्त्राभूषण धारण किये, सबही चिन्ताशील और सबही रावणको प्यारीथीं ॥ ७२ ॥ उन सब स्त्रियोंको देखकर बुद्धिमान् हनुमानजीनें विचारा कि यह सब राक्षस राज रावणकी स्त्रियांहैं, और यह जिस प्रकार रावणका स्मरणादि करनेंमें लगीहैं, जो इसी भांति श्रीरामचंद्रजीकी धर्मभार्या जानकीजी श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करतीहों, व रावणनें उनमें कुछ विघ्न न डालाहो, तबतौ बड़े आनंदकी बातहै ॥ ७३ ॥

पुनश्चसोचिंतयदात्तरूपोध्रुवंविशिष्टागु
णतोहिसीता ॥ अथायमस्यांकृतवान्म
हात्मालंकेश्वरःकष्टमनार्यकर्म ॥ ७४ ॥

फिर हनुमानजीने विचारा कि सीताजी में पातिव्रत्यादि गुण अति प्रबलहैं, कारण कि;हमनें देखाहै कि जब महा बलवान् क्रूर कर्मकारी रावण उनको हरे हुए लिये जाताथा; तब वह बड़े शब्दसे रोय २ अपना दुःख प्रगट करती हुई गईथीं ॥ ७४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे नवमःसर्गः ॥ ९ ॥

दशमःसर्गः ॥

तत्रदिव्योपमंमुख्यंस्फाटिकंरत्नभूषितम् ॥

अवेक्षमाणोहनुमान्ददर्शशयनासनम् ॥ १ ॥

इसके पीछे हनुमान्‌जीने इस स्थानके चारों ओर देखते २ विविध रत्न विभूषित, स्फटिक मणियोंसे बना हुआ दिव्य सर्व श्रेष्ठ पलंगके स्थापन करनेंका आसन देखा ॥ १ ॥ यह आसन चित्र पादिदि युक्त, महा मूल्यवान रत्न खचित बडे २ बिछौनोंसे ढका हुआथा। इसपर महा मूल्यवान हाथी दांतके और सुवर्णके बने हुए पलंग रक्खेथे ॥२॥ इन सब पर्यंकोंके एक स्थान में चन्द्रमाकी समान उज्ज्वल मालाओंसे शोभित एक २ श्वेत छत्र रक्खाथा ॥ ३ ॥ और सुवर्ण मंडित, सूर्य सम प्रभा युक्त अशोक फूलोंकी मालासे युक्त विचित्र एक पलंग अलग रक्खा हुआ देखा ॥ ४ ॥ इस पलंगके चारों ओर स्त्रियोंकी मूर्त्तियां चमर हाथमें लेकर पवन कर रहीथीं। अनेक प्रकार की सुगंधि निकल रहीथी, और श्रेष्ठ धूपकी सुगन्धि वहां आय रहीथी ॥ ५ ॥ वह बडे कोमल पश्मीनेसे मढ़ा गयाथा, मनोहर बिछौना उसपर बिछा हुआथा, और मनोहर फूलोंके हार चारों ओर शोभा विस्तार कर रहेथे ॥ ६ ॥ उस आसन पर काले मेघकी समान वर्णवाला कानोंमें उज्ज्वल प्रकाशमान कुन्डल धारण किये, लाल नेत्रवाला आजानु लम्बित बाहु, सुवर्णके तारोंसे बने हुए वस्त्र पहरे ॥ ७ ॥ सर्वाङ्ग में सुगन्धि युक्त लाल चंदन लगाये दामिनी युक्त अरुण सन्ध्याकालीनबादरकी समान शोभा धारण किये ॥ ८ ॥ अति मनोहर मूर्त्ति धारण किये, विविध भांतिके श्रेष्ठ गहने पहने, ऐसा जान पड़ताथा मानों अनेक लता झाडियों करकै परिपूर्ण मन्दराचल पर्वत शयन कर रहा है ॥ ९ ॥ रात्रिको विहार करनेंसे निवृत्त श्रेष्ठ आभूषण धारण किये राक्षस कुमारियोंके और निशाचरोंके सुख पहुँचाने वाले ॥ १० ॥ मदिरा, व स्त्रियोंका अधरामृत पीनेंसे तृप्त सुवर्णसे बने हुये प्रकाशित पलंग पर शयन किये हुए राक्षसोंके स्वामी रावणको हनुमानजीनें देखा ॥ ११ ॥ रावण उस पलंग पर लेटा हुआ हाथीकी समान श्वास ले रहाथा, हनुमानजी ऐसे रावणको देखतेही कुछेक डरकर दूर २ अलग जाय खड़े होगये॥१२॥फिर सीढियोंके बिचले भागमें खड़े रहकर उसके आसनका आश्रय करकै मदमत्त राक्षस शार्दूल रावणको महाकपि हनुमानजी देखने लगे१३॥

राक्षसराज रावणके शयन करनेंपर उसका यह मनोहर शयन स्थान मद चुआते हाथियों करके सहित बड़ेभारी प्रस्रवण, पर्वतकी समान शोभायमानहो रहाथा॥ १४ ॥ हनुमानजीनें देखाकि महात्मा राक्षस राज रावणके कांचन, बाजू धारण किये दोनों हाथ इन्द्र ध्वजाकी समान शय्यापर पड़े हुएथे ॥ १५॥ ऐरावत हाथीके दांतोंके आघातसे दोनों बाहोंमें घाव होगयेहैं, कंधेमें वज्रकी चोटके निशान हो रहेहैं और विष्णुजीके चक्रनेभी दोनो बाहोंकी भली भांति परीक्षालीथी॥१६॥ दोनों अति बड़ी बाहें, बराबर गोल, सम कंधोंसे मिलीं, वलिष्ठ, सुलक्षण युक्त नख और उंगली और अँगूठोंसे भूषितथीं ॥१७॥ सुगोल परिघकी समान लंबी हाथीकी शुण्डके समान चढाव उतार वाली दोनों बाहें दो पंच मुंहे सर्पोंकी समान श्वेत वर्णकी शय्यापर पडीथीं ॥ १८ ॥ खरगोशके खूनकी समान लाल, सुगन्धित शीतल श्रेष्ठ चंदन व औरभी श्रेष्ठ २ सुगंधियोंसे युक्त शोभायमान गहनोंसे शोभित ॥ १९ ॥ उत्तम स्त्रियोंके आलिंगनसे मर्दित अत्युत्तम गन्ध पदार्थोंसे सेवित । यक्ष, नाग, गन्धर्व, देव, दानवोंको रुवानें वाली ॥ २० ॥ ऐसी उसकी दोनों बाहें विस्तरे पर पड़ी हुई महाकपि हनुमानजीनें देखी, मानों मन्दराचल पर्वतकी तलेटीमें क्रोधित हुए दो भयंकर सर्प शयन कर रहेहैं ॥ २१ ॥ वह अचलकी समान राक्षसराज रावण सर्व लक्षण युक्त अपनी दोनों भुजाओंसे मानो दो शृङ्गधारी मन्दराचल पर्वतकी समान शोभायमानहो रहाथा ॥ २२ ॥ आम, पुन्नाग, बकुल छैः रस युक्त, मिष्टान्न और मदकी सुगंधिसे बनी ॥ २३ ॥ श्वास पवन जो रावणके महामुखसे निकलतीथी, वह श्वासोंसे रावणके गृहको पूर्ण करती हुई बाहरको निकलतीथी ॥ २४ ॥ मुक्तामणि विराजित कांचनमय मुकुट निद्राके वशहोनेंसे खसक रहाथा तब उसका मुख मंडल दोनों कुण्डलोंसे उज्ज्वलहो रहाथा ॥ २५ ॥ और उसकी पुष्ट लंबी चौड़ी छाती रक्तचंदन लिप्त मनोहर हारसे शोभायमान हो रहीथी॥ २६ ॥ उसके दोनों नेत्र लालहो रहेथे, वह उजले रेशमीन वस्त्र पहर रहाथा, और पीताम्बरी डुपट्टेमें वह लिपटा हुआ पड़ाथा ॥ २७ ॥ पापके ढेरकी समान वह दीप्तमान राक्षसपति रावण मानो भुजंगकी नांई स्वाशले रहाथा,वह गंगाजीके अगाध

जलमें शयन किये हुए मतवाले हाथीकी समान बिछौने पर सोय रहा था ॥२८॥ चार सुवर्णमय दीपक चारों ओर जल रहेथे,उन दीपकोंसे विजलीके द्वारा मेघोंकी नांई उसके सब अंग प्रकाशमान हो रहेथे ॥ २९ ॥ पवनकुमार हनुमानजीनें देखा, कि गृहके मध्यमें उस पत्नीप्रिय दुरात्मा राक्षस नाथके चरणोंमें उसकी समस्त स्त्रियां शयन कर रहीहैं ॥ ३० ॥ हनुमानजीनें देखाकि उन स्त्रियोंके वदन चंद्र मंडलकी नांई प्रकाशमानहो रहेथे, कानोंमें श्रेष्ठ कुण्डल, आभूषण, और उनके कंठमें खिले हुए फूलोंकी माला पडीथीं ॥ ३१॥ सबही नाचनें गानेमें चतुरथीं कोई२ रावणकी भुजाओंके मध्यमें और कोई २ उसकी गोदीमें लेटी हुईथीं, इस प्रकारकी श्रेष्ठ वस्त्राभूषण धारण करनें वाली कामिनियोंको वहां शयन करते हुए हनुमानजीनें देखा ॥ ३२ ॥ उन स्त्रियोंके कानोंमें हीरे और वैदूर्य मणिके बने हुए सुवर्ण मय कुण्डल शोभायमान हो रहेथे । बाहौंका तकिया लगा लेनेसे बाजू बंदभी कानके धोरे शोभित हुए हनुमानजीनें देखे ॥ ३३ ॥ उन स्त्रियोंके मनोहर कुण्डल भूषित सुन्दर २ मुखोंसे विराजमान तारागण विभूषित आकाशकी समान शोभा धारण किये हुएथा ॥३४॥रति करानेंके कारण उसके श्रमसे थककर राक्षसराज रावणकी सूक्ष्म कटि वाली स्त्रियां जो जहांपर जैसेथीं वह वैसेही सोय गईथीं ॥ ३५ ॥ कोई मनोहर अंगवाली कामिनी नींदकी अवस्थामेंही अपने कोमल अंगोंको चलायमान करके हाव भाव सहित नाच रहींथीं ॥ ३६ ॥ कोई वीणाको पकड़ेही हुए सो जानेंसे ऐसी शोभित होतीथीं मानो महानदीके प्रवाहमें डूबती हुई कमलिनी भाग्यसे किसी नौकामें लग गईहैं ॥ ३७ ॥ कमलकी समान नेत्र वाली कोई स्त्री डमरूही बगलमें दवाये सोय गईथी मानों कोई पुत्रको अतिप्यार करनें वाली कामिनी अपने छोटे बच्चेको गोदमें लिये शयन कर रहीहै ॥ ३८ ॥ और कोई सर्वांग सुन्दरी स्त्री सुस्तनी पटह बाजेकोही दबाये शयन किये हुईथी, मानो, बहुत कालके पीछे अपने प्यारे पतिको पाय भली भांति लिपटा चिपटाकर कोई स्त्री सोतीहो ॥ ३९ ॥ कोई कमललोचिनी वीणाकोही पकडकर सोय गईथी मानो काममें आतुर हुई कोई कामिनी प्यारे पतिको चिपटाय सोय रहीहै ॥ ४० ॥ सदाही नृत्य करनें वाली कोई स्त्री विपञ्ची बाजेको गोदमें

लिये मानों अपने स्वामीके साथ शयन कर रहीहै ॥ ४१ ॥ कोई २ मद माते नयन वाली अपने सुवर्ण सदृश कोमल और अपने बड़े २ अंगोंमें मृदंगको चिपटाय नयन बंद किये शयनकर रहीथीं ॥ ४२ ॥ और एक कृशोदरी रति करानेंके श्रमसे थककर अपनी भुजाओंमें पणव शंखको दबाये हुए सो गईथी ॥ ४३ ॥ डमरूप्रिया कोई स्त्री डमरूकोही चिपटाये बच्चेको गोदमें लिये हुए बालवत्सा कामिनीकी समान नींदके वशहो गईथी ॥ ४४ ॥ कोई कमलनयनी मदसे मोहितहो अपनी बाहों में आडम्बर नाम बाजा धारण करके शयन कर रहीथी ॥ ४५ ॥ और एक भामिनी जल कलशकोही लिपटाकर सो गईथी, कलशके जलसे उसका सब अंग गीला हो रहाथा, उस्से ऐसी शोभा होतीथी मानो वसंत समयमें शीतल करनेंके लिये फूल मालाओंपर जल छिडका जाताहै ॥ ४६ ॥ कोई अबला अपने हाथसे अपने सुवर्णके कलसकी समान आकार वाले दोनों कुचोंको ढककर सोय गईथी ॥ ४७ ॥ एक पूर्ण चंद्रमाकी समान वदन वाली कमल नयनी सुन्दर नितम्ब वाली और एक स्त्रीको चिपटाये हुए नींदके वशमें पड़ीथीं ॥ ४८ ॥ कोई २ सुन्दरी कंतोंकी समान अपनी वीणाको चिपटाये उनको अपने कुचोंसे मर्द्दनकर शयनकर रहींथीं मानों कामी पुरुषोंसे वह अपने कुंच मर्द्दित कराय सोय रहीथीं ॥ ४९ ॥ देखते २ इन सबके पीछे हनुमानजीनें देखाकि अलग और एक मनोहर सेजपर अपूर्व रूप यौवन वाली एक स्त्री शयन कर रहीथी ॥ ५० ॥ उस मुक्ता मणिसे युक्त विविध भांतिके भूषणोंसे युक्त यह स्त्री अपने रूपसे मानो इस श्रेष्ठ भवनको शोभायमान कर रहीथी ॥ ५१ ॥ उसका वर्ण गौर व कान्ति समानथी वह सब रनवासकी स्वामिनी रावणकी प्यारी स्त्री सुन्दर रूप वाली मन्दोदरीथी ॥ ५२ ॥ वानर यूथपति महाबाहु पवन नंदन हनुमानजी उस सर्वा भरण भूषित मन्दोदरीकी रूप यौवन सम्पत्ति देख उसकोही सीता समझ अति आनंदित हुए ॥ ५३ ॥

आस्फोटयामासचुचुंबपुच्छंननंदचिक्री
डजगौज्जगाम ॥ स्तंभानरोहन्निपपात
भूमौनिदर्शयन्स्वांप्रकृतिंकपीनाम् ॥ ५४ ॥

और वानरोंका स्वभाव दिखलाते हुए एक ओर जाय अपनी बाहें पटकनें लगे, पूंछको उठाय चूमनें लगे, आनंदसे नृत्य करनें लगे और विविध भांतिकी भाव भंगी दिखाते हुए छलांग मारकर खंभोंपर चढ २ कर फिर २ भूमिमें गिरनें लगे ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥

अवधूयचतांबुद्धिंबभूवावस्थितस्तदा ॥
जगामचापरांचिंतांसीतांप्रतिमहाकपिः ॥ १ ॥

इसके पीछे महाकपि हनुमानजी पहली चिंताको त्याग करकै स्थिर भावसे बैठ गये; और सीताजीके विषयमें और एक प्रकारकी चिंता करनें लगे ॥ १ ॥ हनुमानजीनें विचाराकि सीतादेवी श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें; कभी शयन, भोजन, पान नकरेंगी,और न कभी वह कुछ अलंकारही कर सकतीहैं ॥२॥ चाहै कोई साक्षात् देवराजभीहो, परन्तु सीताजी कभी परपुरुषको सेवन न करैंगी, क्योंकि देवता ओंके बीचमेंभी श्रीरामचंद्रजीकी समान कोई वर्त्तमान नहीं है ॥ ३ ॥ बस इसलिये यह कोई और कामिनीहैं, इस प्रकारसे निश्चय करकै वानरश्रेष्ठ हनुमानजी सीताजीके दर्शनकी इच्छा किये फिर रावणकी मदादिपीनेंकी भूमिमें घूमने लगे ॥ ४ ॥ वहांपर देखाकि कुछ एक कामिनियें पाशे इत्यादि खेल करकै,कुछ संगीत करकै और कुछेक नाच करते २ थक गई हैं, और कुछ मदपान करनेंसे विह्वलहो वहांपर शयन कर रहीहैं ॥ ५ ॥ और स्त्रियें कोई मुरज कोई मृदंग; कोई चेलिका बाजाही लिये हुए सोय रहीहैं, और कुछ स्त्रियें रमणीक गहनोंसे सजी धजी सेजपर सोय रहीहै ॥ ६ ॥ वहांपर हजारों स्त्रियें सुन्दर भूषणोंसे भूषित, रूपवती वार्तालाप करनेंमें शील संयुक्त, गीतके समान अर्थसहित बोलनें वाली ॥ ७ ॥ देश कालकी ज्ञाता, उचित वचन बोलने वाली अधिक रति करानें वाली हनुमानजीनें वहांपर देखीं ॥ ८ ॥ इनके अतिरिक्त औरभी बहुत उत्तम रूप यौवन सम्पन्न हजारों

स्त्रियोंको सोती हुई हनुमानजीनें देखा ॥ ९ ॥ यह सब कामनियें रति करानेंसे विरत और गाढी नींदमें मग्न होकर स्वप्नमें देश कालके योग्य वचन कह रहींथीं ऐसा वानरयूथपति हनुमानजीनें देखा ॥ १० ॥ उन स्त्रियोंके बीचमें महाबाहु राक्षस राज रावण, बडे भारी गोठमें गायोंके बीचमें महा वृषभ की समान शोभायमान होरहाथा ॥ ११ ॥ स्वयंराक्षस पति रावण स्त्रियोंसे घिरा हुआ वनके मध्यमें हथनियोंसे घेरे हुए महा गज की समान शोभित हो रहाथा॥१२॥कपि शार्दूल हनुमानजीनें उस महात्मा राक्षस पति रावणके गृहमें अभिलाषित भोग्य वस्तुओंके समूहसे सुशोभित सुरा पानकी सभाको देखा ॥ १३ ॥ हनुमानजीनें देखाकि उस पान भूमिके स्थान २ में मृग, महिष, और शूकर गणोंका मांस अलग २ सजा हुआ धराहै ॥ १४ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें विशाल सुवर्णमय पात्रोंमें खानेंके लिये मुरगे और मोरोंका मांस धरा हुआ देखा॥१५॥यह सब वराह और*वाध्रीणस नामक पक्षी और मृग छागलका मांस सौवर्च्चल लवण मिला यथा विधिसे बनाया हुआ सही, और मयूरका मांस हनुमानजीनें देखा॥१६॥ करांकुल, नानाविध छाग खरगोश महिष एकशल्य और मछली आदिका मांस अर्द्ध भक्षण किया हुआ हनुमानजीनें देखा ॥१७॥ और खट्टे व लवण रसके द्वारा जीभकी जडताके निवारण करनें वाले विविध शर्करा मिश्रित दाख और दाडिम के ससहित अनेक प्रकारके छोटे वडे चाटने खाने पीनेके पदार्थ हनुमानजीनें देखे ॥१८॥ इन सबको हनुमानजीनें देखा और बडे२ घुंघरू बाजे अन्न बहुत साधन खानें पीनेके पात्रोंसे विविध भांति के फूल पुष्पोंसे पूर्ण यह पान भूमि अधिक शोभाको विस्तार कर रहीथी ॥१९॥ स्थान २ पर खानें पीनें सोने की वस्तु ओंसे और पुष्पोपहारको प्राप्त होकर॥२०॥ वह पान भूमि विना अग्निकेही मानो अग्निसम प्रकाशित हो रही थी अनेक भांतिके विविधके श्रेष्ठ संस्कारोंसे संस्कारित ॥ २१ ॥ मांस निपुणलोगोंसे बनाये हुए पान भूमिमें अलग२ रक्खेथे बहुत श्रेष्ठ अनेक प्रकारकी मदिरायेंभी धरीथीं ॥ २२ ॥ और अनेक प्रकारके सुगंधित

*काली गरदन लाल शिर श्वेत पंखवाले पक्षीका नाम वाध्रीणसहै, कोई खड्ग मृग का नाम कहतेहैं।

द्रव्योंके चूर्णोंसे मिली हुई विविध * शौण्डिक, शर्करासव और फला-सव सबही पृथ्वीके मध्य स्थान२पर अलग सजे धरेथे बहुत फूल मालाओंसे युक्त होंने और सुवर्ण व स्फटिक मणिके वर्त्तनों सहित होंनेसे वह भूमि स-र्वदा शोभायमान रहतीथी॥२३॥२४॥वहां पर चांदी सोनेके घड़ोंमें श्रेष्ठ२ पीनेंकी चीजें भरी रक्खीथीं, और वहां पर तपाये हुए सुवर्णकेभी ब-हुत करुवे रक्खेथे ॥ २५ ॥ महाकपि हनुमानजीनें और भी देखाकि सुवर्णमय और मणिमय पात्रोंमें स्थान२पर मदभरा हुआ रक्खाथा ॥२६॥ कहीं २ किसी वर्तनकी सुरा आधी पी गईथी और वह आधा खाली था और कहीं २ केवल पीनेंके वर्तन में कुछ थोडीसी वचीथी ॥ २७ ॥ किसी स्थानका पीने लायक मद कुछभी नहीं पिया गयाहै किसी स्थानमें अनेक प्रकारकी भोजन करनेंकी सामग्री और पान करनेंके योग्य मद पान भूमिके स्थान२ में विभाग करकै सजा सजाया रक्खाथा॥२८ ॥ किसी २ स्थानमें पान भोजन करनेंके पात्र पडेथे कि जिनमें की सामग्री आधी ही खाई पी गईथी हनुमानजी एक२करके इन सब वस्तुओंको देखते हुए घूमनें लगे कुछेक सुन्दरियें परस्पर एक दूसरे को चिपटाये हुए सोय रहीथीं इसलिये बहुत सारे पलंग खाली पडेथे॥ २९ ॥ कोई अबला निद्राके वशमें हो दूसरी स्त्रीकी सेजपर जायकर उसके वस्त्रछीन अपनी देह को ढक उसके शयन स्थानपर शयन कर रहीथी ॥३०॥ श्वासकी पवनसे च-लायमान होकर उन स्त्रियोंके शरीरमें के विचित्र वसन और मालायें मन्द २ वायुसे कुछेक हिलाने पर जैसी शोभापाते उसी प्रकारकी शोभा पा-य रहेहैं ॥ ३१ ॥ शीतल चंदन, मद्य मधुर रस, विविध माल्य, विविध पुष्प॥३२॥चंदनसे स्नान किये हुए कामिनी गण और धूप इत्यादि सुगंधित द्रव्योंकी नाना प्रकारकी सुगंधि वहन करकै पवन चल रहाथा ॥ ३३ ॥ उस समय उस सुगंधिसे रावणका पुष्पकविमान परिपूर्ण होगयाथा । हनुमानजी उस राक्षसके रनवासमें कुछेक उज्ज्वल श्याम वर्ण, और कुछेक श्यामवर्णकी स्त्रियें ॥ ३४ ॥ और कुछेक कांचन वर्ण सदृश प्रमदा राक्षसके स्थानमें हनुमानजीनें देखी । रतिके खेदसे थकित होकर यह

* जो वृक्षोंसे स्वयं निकलतीहै वह दिव्य सुरा शौण्डीकआदि कृत सुरा कहलातीहै

सब कामिनियें शयन कर रहीथीं ॥ ३५ ॥ उस समयमें उन स्त्रियोंका रूप रात्रि कालमें मुरझाई हुई कमलिनीके समान हो रहाथा, इस प्रकारसे रावणके रनवासमें महाकपि हनुमानजीने सब कुछ देखा, ॥ ३६ ॥ परन्तु उन महातेजवानको केवल एक जानकीजीही दृष्टि न आई ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे कपिश्रेष्ठ हनुमानजी इन सब स्त्रियोंको देखते २ पीछेकर यह महाकपि धर्मके लोप होनेंकी शंकासे महा भयभीत हुए ॥ ३८ ॥ और मनही मनमें विचार करनें लगेकि हमने जो इन निद्रामें पडी हुई, वसन रहित पराई स्त्रियोंको देखाहै, इस्से निश्चयही हमारे धर्मकी वडी भारी हानिहोगी ॥ ३९ ॥ परन्तु हमारी दृष्टि कभी पराई स्त्रीकी ओर नहीं गिरतीहै; इस्से चाहै पाप नहींहो, परन्तु तिसपर पराई स्त्रीके भोगनें वालेरावणकोभी हमनें यहां देखाहै इस्से अवश्य पापहोगा ॥ ४० ॥ चिन्ताशील हनुमानजी प्रमाण सिद्ध सिद्धान्तके विषयमें मन लगाय कर इस प्रकारसे चिन्ता करनें लगे, कि इतने हीमें उनके मनमें कार्य अकार्य का विचार करनें वाली दूसरी चिन्ता आई ॥ ४१ ॥ उन्होंनें विचाराकि चल विचल होकर सोई हुई रावणकी स्त्रियोंको हमनें भली भांति देखा, परन्तु हमारा मनतो कुछभी चल विचल नहीं हुआ ॥ ४२ ॥ क्योंकि एक मनही इन्द्रियोंको भले, बुरे कार्यमें लगा देताहै; सो वह मनही जब हमारे वशमें है, तब किस प्रकारसे हमें पाप लगेगा? ॥ ४३ ॥ तिसपर हम और कहीं तो जानकीजीको ढूंडभी नहीं सकते, क्योंकि यह देखा जाताहै कि स्त्रियोंका खोज स्त्रियोंमेंही लग सकताहै ॥ ४४ ॥ जिस प्राणीकी जो जातिहै उसको उस जातिके मध्यमेंही खोजना चाहिये । स्त्री खोय जानें पर हरिणीके झुन्डके वीच ढूंडनेंसे वह प्राप्त नहीं कीजा सकती ॥ ४५ ॥ इसलियेही हमनें शुद्ध अंतःकरणसे रावणके रनवासमें यह सब स्थान भलीभांति उलट पलट कर देखे, परन्तु कहीं जानकीजीको न देख पाया ॥ ४६ ॥ जबकि वीर्यवान् हनुमानजीनें अनेकानेक देव कन्या, गन्धर्व कन्या, व नाग कन्याओंमें ढूंडनें परभी जानकीजीको न देखा ४७ ॥ केवल और दूसरी कामिनियोंको देखा, तब वह कपिश्रेष्ठ वहांसे वाहर आय और कहीं चलनेंका विचार करते हुए ॥ ४८ ॥

सभूयःसर्वतःश्रीमान्मारुतिर्यत्नमाश्रितः ॥

आपानभूमिमुत्सृज्यतांविचेतुंप्रचक्रमे ॥ ४९ ॥

श्रीमान् पवनकुमार हनुमानजी पान भूमिको छोडकर, फिर यत्न सहित, सब स्थानोंमें जानकीजीके खोज करनेंमें लगे ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये सुन्दर कांडे एकादशः सर्गः॥११॥

द्वादशः सर्गः ॥

सतस्यमध्येभवनस्यसंस्थितोलतागृहांश्चित्र
गृहान्निशागृहान् ॥ जगामसीतांप्रतिदर्शनोत्सुको
नचैवतांपश्यतिचारुदर्शनम् ॥ १ ॥

वह पवनकुमार हनुमानजी रावणकी लंकापुरीके मध्यमें टिककर सीताजीके दर्शनकी लालसासे समस्त लतागृह चित्रगृह और रात्रि कालके शयन गृहोंमें गये. परन्तु उन श्रेष्ठ दर्शन वाली सीताजीको उन्होंने कहींभी न पाया ॥ १ ॥ तब वह महाकपि हनुमानजी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीकी उन प्रियपत्नी सीताजीके दर्शन न पानेंसे अत्यन्त चिन्ताकुल चित्तसे विचार करनें लगे कि निश्चय जानकीजी जीवित नहींहैं; क्योंकि हमनें उनको इतना ढूंडा भाला, तथापि वह हमको दिखलाई नहीं देतीं ॥ २ ॥ बाला जानकीजी पतिव्रताहैं; इसलिये पतिव्रत धर्मकी रक्षा करनेंमें वह सदाही टिकी हुई होंगी; पतिव्रताके आचरण करनेंके योग्य परम पवित्र मार्गमें टिकनेंसे, साधु लोगोंके अनिष्ट कर्म करने वाले; इस प्रसिद्ध दुष्कर्म कारी राक्षस राजनें उनको अवश्य मार डाला होगा ॥ ३ ॥ अथवा रावणकी कदर्य रूप वाली, विकटाकार, विकृत वर्ण युक्त, बडे २ मुख वाली, दीर्घ और भयंकर नयन युक्त चेटियोंको देखतेही जनक राज कुमारी सीताजीनें भयके मारेही प्राण छोड दिये होंगे ॥ ४ ॥ हा ! हमनें सीताजीको न देखा, न समुद्र लांघनेंके पौरुषका फल हमको मिला; वानर लोगोंके साथ सुग्रीव जीका नियत किया हुआ समयभी विता दिया, इसलिये अब हम उन सुग्रीवजीके निकटभी नहीं जाय सकते; क्योंकि वह बलवान वानर पति सुग्रीवजी पहुंचतेही हमारे लिये बडा भारी दंड नियत करेंगे ॥ ५ ॥ समस्त रनवासकी एक २ कक्षाको भलीभांति देखभाल करके केवल राक्षस कीही

स्त्रियोंको देखा, परन्तु पतिव्रता सीताजी हमारी दृष्टि न आईं; इसलिये हमारी सबही मेहनत वृथा गई ॥ ६ ॥ जब हम लौट जांयगे; और सब वानर गण इकट्ठे होकर जब हमसे पूछेंगे कि हे वीर! तुम वहां जायकर क्या २ कार्य कर आयेहो सो हमको बताओ ॥ ७ ॥ तब हम बिना सीताजीको देखे हुए उन्हें क्या उत्तर देंगे? इसलिये प्रायोवेशन व्रत धारण- करके हमारे अर्थ प्राण त्याग करनाही अच्छाहै; क्योंकि वानरनाथ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ समयभी बीत चुकाहै! जब हम समुद्रके उस पार जांयगे, तब वृद्ध जाम्बवान् क्या कहेंगे? और अंगदजी क्या कहेंगे? और भी सब वानर इकट्ठे होकर क्या कहेंगे? ॥ ८ ॥ ९ ॥ अथवा उत्साहही उन्नति प्राप्त करनेंका मूलहै, व उत्साहही परम मूलका दाताहै, इस कारण हमको उत्साही होकर वहां भी ढूंडना चाहिये. कि जिस २ स्था- नको अबतक हमनें नहीं खोजाहै; इसलिये उन स्थानोंको अब फिर देखना चाहिये ॥ १० ॥ उत्साहही मनुष्यको सब समयमें सब कामोंमें लगाताहै जोब उत्साह युक्त होकर जो कर्म करताहै, उसका वह कार्य अवश्य सिद्ध होताहै ॥ ११ ॥ इसलिये उत्साहके मूल दृढ बलका आश्रय ग्रहण करके रावण रक्षित जो जो देश हमनें नहीं देखेहैं उन सबको अब हम खोजें ॥ १२ ॥ समस्त पान गृह, और अनूप गृह हमनें पहलेही खोज डाले; जिनमें चित्रालय और क्रीडा गृहहैं; वहभी वारंवार ढूंडही लियेहैं ॥ १३ ॥ गृह और आराम करनेंकी कुंजें व विमान राजि समस्तकोही भलीभांति अनुसन्धान कर चुकेहैं, इस प्रकार एक मुहूर्त्त भरतक चिंता करके ॥ १४ ॥ वानरोंमें मुख्य हनुमानजी समस्त तोपखाने, देवालय, और अटा अटारियोंके खोजनेंको फिर तैयार हुए वह किसी स्थानमें नीचेको जायँ, कहीं क्षणभर टिककर कहीं चल- कर ॥ १५ ॥ कहीं किवाड खोलकर कहीं किवाड़ लगाकर, कहीं घरमें प्रवेश कर कहीं घरसे वाहर आयकर, कहीं लेट कर कहीं बैठकर, कहीं करवटके बल होकर ॥ १६ ॥ वह महाकपि हनुमानजी इस प्रकारसे सब स्थानोंमें घूमनेंलगे, और रावणका समस्त रनवास हनुमानजीनें इस प्रकारसे ढूंडाकि वहांका चार अंगुलका स्थानभी उनके खोजनेंसे वाकी नहीं रहा १७ बाहर दिवारी और उसके भीतरकी गलियें, गृहों और देवालयोंकी वेदियां

आले, दिवाले, झडोखे, और छोटी २ तलैयें वार २ हनुमानजीने वारं-वार देखी ॥ १८ ॥ इन सब स्थानोंमें नाना भांतिकी, कुरूप, सुरूप वाली राक्षसियां हनुमानजीनें देखीं परन्तु कहीं जानकीजी दिखाई नहीं दीं ॥ १९ ॥ फिर हनुमानजीनें रूप लावण्य सम्पन्न बडी २ विद्याधरोंकी स्त्रियोंमें खोज किया, परन्तु वहां परभी श्रीरामकी प्यारीका दर्शन न पाया ॥ २० ॥ और हनुमानजीनें पूर्ण चन्द्रमाकी समान वदनवाली रावणकी विवाहिता सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ सर्पोंकी कन्या ओंको देखा, परन्तु जनक लड़ैती जानकीजीको नहीं देख पाया ॥ २१ ॥ और नागोंको जीत कर रावण बल पूर्वक जो नागोंकी कन्याओंको लायाथा, उनकोभी श्री-हनुमानजीनें देखा परन्तु मिथिलेश कुमारी दृष्टि न आई ॥ २२ ॥ महा बलवान् पवनकुमार हनुमानजीनें जब औरभी मुख्य २ स्त्रियोंमें खोजनें परभी जानकीजीको न देखा, तब वह अति शोकाकुल हुए ॥ २३ ॥ हनुमानजी बडे २ वानरोंका उद्योग और अपनाभी समुद्र का लांघना व्यर्थ देखकर फिर बडी चिन्ताको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥

अवतीर्यविमानाच्चहनूमान्मारुतात्मजः ॥
चिंतामुपजगामाथशोकोपहतचेतनः ॥ २५ ॥

तिसके पीछे विमानसे उतर कर पवननंदन हनुमानजी शोकसे व्याकुल चित्त होकर बड़ी चिन्ताको पहुंचे ॥ २५ ॥ इ० श्री० मद्रा० वा० आ० सुं० द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥

विमानात्तुससंक्रम्यप्राकारंहरियूथपः ॥
हनुमान्वेगवानासीद्यथाविद्युद्घनांतरे ॥ १ ॥

वानर यूथपति वेगवान हनुमानजी विमानसे उतर कर प्राकार पर कूद गये, और मेघकी भीतर दामिनीकी समान अधिक सुन्दरता प्राप्त कर लेते हुये ॥ १ ॥ सीताजीको न पायकर रावणके भवनसे वाहर आय हनुमानजी दुःखित चित्तहो कहनें लगे ॥ २ ॥ हाय ! श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्धि करनेंके लिये हम बराबर लंकापुरीमें घूमे, तथापि उन शोभित अंगवाली विदेहकुमारी सीताजीको हमनें न देखा ॥ ३ ॥ छोटी २ तले-

यां, तड़ाग, सरोवर, तरंगिणी नदियें, काछा, समुद्रकी तलैटी, वन, दुर्ग, पहाड़, वरन् समस्त पृथ्वी हम लोगोंनें खोजी परन्तु कहींभी जानकीजी हम को न देख पड़ीं ॥ ४ ॥ गृध्रराज सम्पातिने हमको बताया कि सीताजी इस रावणकेही स्थानमेंही वास करतीहैं; फिर हमनें इतना ढूंडनें परभी उनको क्यों नहीं पाया ॥ ५ ॥ रावणके बल पूर्वक हरलानेंसे जनक नंदिनी सीताजीने डरकर कहीं उसकी भजनातो नहीं की ? ॥ ६ ॥ ऐसा जान पड़ताहै कि राक्षस पति रावण सीताजीको हरण करके अति वेगसे चला आताथा और जबकि श्रीरामचन्द्रजीके बाणका प्रभाव स्मरण करके भीतहो वह आकाश मार्गमें उडा जाताथा, उसी समय सीताजी मार्गमें उसके हाथसे कहीं छूटकर गिरपडी होंगी ॥ ७ ॥ या सिद्ध गणोंसे सेवित शून्य मार्गमें जब रावण उनको हरण करके लिये जाताथा तब भयंकर समुद्रको देखकर उन आर्याका प्राण निकल गया होगा ॥ ८ ॥ अथवा उन बडे २ नेत्र वाली जानकीजीनें रावणके महावेगसे चलनें और उसकी भुजाओंके दबानेंसे व्याकुलहो प्राण त्याग दिया होगा ॥ ९ ॥ अथवा समुद्र पार होनेके समय जबकि रावण महा वेगसे ऊपरको उठा रहाथा, तब निश्चयही जनककुमारी सीताजी भयसे व्याकुल होकर समुद्रमें गिर पडी होंगी १०॥ अपने पतिव्रत धर्मकी रक्षाका यत्न करते हुये उन अनाथा तपस्विनी जानकीजीको यह ओछे स्वभाववाला रावण भक्षण करगया होगा ११ ॥ अथवा राक्षसराज रावणकी दुष्ट स्त्रियेंाने सब सवातिया डाहसे ईर्षा करके उन कमल दल नेत्र वाली जानकीजीको मिलकर खाय लिया होगा १२॥ अथवा श्रीरामचंद्रजीका पौर्णमासीके चंद्रमाकी समान कमल दल नेत्र युक्त मुख मंडल याद करके शोकसे व्याकुल हो सीताजीनें शरीर त्याग कर दिया होगा ॥ १॥ या "हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा अयोध्या ! यह कह और वार २ विलापकर भामिनी विदेह कुमारी जानकीजीने शरीर त्याग कर दिया होगा ॥ २ ॥ " या ऐसाभी हो सकताहै कि रावणके घरमें किसी गुप्त स्थानमें रक्खी जाकर जानकीजी पिंजरेमें बंदकी हुई सारिकाके समान अतिशय विलाप करती होंगी ॥ १३ ॥ कमलदलकी समान नेत्रवाली सुमध्यमा श्रीरामचंद्रजीकी स्त्री सीताजीनें जनकजीके वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै, वह राक्षसराज रावणके वशमें किसी प्रकारसे नहीं

होंगी ? ॥ १४ ॥ जो कुछभीहो, यदि जानकीजीको न देख पावें, या वह ऐसी जगहहोंकि जहां देखना बहुतही असम्भवहो, अथवा यदि उन्होंने प्राणही त्यागन कर दियाहो, तथापि इन तीनों बातोंमेंसे हम श्रीरामचंद्रजीसे एक बातभी निवेदन नहीं कर सकते, क्योंकि श्रीरामचंद्रजीको जानकीजी बहुत प्यारीहैं ॥ १५ ॥ क्या कहैं? ऐसी वार्त्ताके निवेदन करनेंसेभी दोषहै, और जो न कहैं तौभी दोषहै अब क्या करना उचितहै ? हमको तौ इन दोनों बातोंमेंही बडी कठिनता मालूम होतीहै ॥ १६ ॥ कार्यकी तौ इस समय ऐसी अवस्था वर्तमानहै अब समयानुसार क्या करना कर्तव्यहै ? इस प्रकारका विचार करते २ हनुमानजीको बड़ी चिंता हुई ॥ १७ ॥ वह विचारनें लगे कि यदि विना जानकीजीके देखे हम इस स्थानसे वानरराज सुग्रीवजीकी नगरी किष्किन्धामें चले जांय, तौ हमारा कौनसा पुरुषार्थ सिद्ध होगा ? ॥ १८ ॥ हमारा यह समुद्रका लांघना लंकामें प्रवेश करना और राक्षसोंको देखना भालना सबही वृथाहो जायगा ॥ १९ ॥ जब हम किष्किन्धामें चले जांयगे तब वानरराज सुग्रीवजी क्या कहैंगे ? और वानर गण निकट आनकर क्या कहैंगे ? और जो है सो तो हैही परन्तु वह दशरथजीके पुत्र श्रीराम लक्ष्मणजी क्या कहैंगे? ॥ २० ॥ हम जाकर यदि काकुत्स्थकुलतिलक श्रीरामचंद्रजीको यह दारुण संवाददें कि सीताजीका दर्शन हमको नहीं मिला, तौ वह उसी समय प्राण त्याग कर देंगे ॥ २१ ॥ यह संवाद तौ अलग रहा यदि वह दारुण भयंकर असह इन्द्रियोंको संताप देनें वाला सीताजीके विषयका कोईभी अशुभ समाचार सुनेंगे कि वैसेही प्राण खोदेंगे ॥ २२ ॥ उनको शोकके मारे व्याकुल होकर प्राण त्यागते देख उनके अतिशय अनुरागी लक्ष्मणजी जीवित न रहेंगे ॥ २३ ॥ राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंने प्राण त्याग दिये ऐसा सुनकर भरतजीभी प्राण छोडेंगे और भरतजीको मृतक सुन शत्रुघ्न पहले शरीर छोडेंगे ॥ २४ ॥ फिर इसमेंभी संदेह नहीं है कि पुत्रोंकी मृत्युका समाचार सुनकर राज माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयीभी प्राणोंका त्याग कर देंगी ॥२५॥ वानर राज सत्यप्रतिज्ञ और कृतज्ञ सुग्रीवजी जैसेही श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी दशा देखेंगे वहभी निश्चयही मरजायँगे ॥ २६ ॥ जब सुग्रीवजी मर जायँगे, तो

स्वामीके शोकसे पीडित, मनमारे, व्यथित, दीनभाव युक्त और आनंद रहित होकर तपस्विनी रुमाभी प्राण त्यागन करेगी ॥ २७ ॥ शोकसे पीडित हुई तारा अपने स्वामीके मरणसे उत्पन्न शोकसे दुःखितहो उसी समय मरनेंको तैयार हुईथीं परन्तु सुग्रीवजीको देखकर वह जीवित रह गईथीं, परन्तु अब सुग्रीवजीको मरा हुआ देख वहभी कभी न जियेगी ॥ २८ ॥ माता पिता और चचा सुग्रीवजीके मरनेंका समाचार पाय कुमार अंगदजीभी शरीरको त्याग करेंगे ॥ २९ ॥ वनवासी वानरादि अपने पालने वाले स्वामीके वियोगसे अतिशय व्याकुल लात मुक्कों से अपने शिरको धुन २ कर रोवेंगे ॥ ३० ॥ वानरराज सुग्रीवजी मीठे वचन दान व मान द्वारा वानरोंका लालन पालन किये आतेहैं सो इस समय ऐसे शुभका वंश नाश होते देखकर वह कृतज्ञ वानर गण निश्चयही प्राण त्याग करेंगे ॥ ३१ ॥ सुग्रीवजीके मरनेंपर क्या वन क्या पर्वत क्या ढके हुए गुहादि स्थान किसी स्थानमें वानर श्रेष्ट गण इकट्टे होकर सुखसे विहार न कर सकेंगे ॥ ३२ ॥ अपने स्वामीके शोकसे संतापित होकर स्त्री पुत्र और अपने २ सेवकोंको साथ लेकर वानरगण पर्वतों परसे खडे और बराबर वाली भूमिमें गिर पडेंगे ॥ ३३ ॥ जो ऐसे न मरें तो विषखाय, फांसी लगाय अग्निमें प्रवेशकर उपवास कर अपनी देहींमें शस्त्र प्रहार करके प्राण त्याग करेंगे ॥ ३४ ॥ हम जानते हैं कि हमारे लौटजानेंसे रोनेंका घोर शोर मचैगा इक्ष्वाकुवंशका और समस्त वनवासी वानरोंका विनाश हो जायगा ॥ ३५ ॥ इसलिये हम यहांसे ही किष्किन्धा नगरीको न जांयगे विना श्री जानकीजीकी सुध पाये हम सुग्रीवजीके दर्शन नकरेंगे ॥३६॥ हम वहां नजायकर यदि यहांही टिके रहें तौ वह धर्मात्मा दोनों महारथी और बलवान वानर गण आशासे जीवनको धारण किये रहेंगे ॥ ३७ ॥ वारंवार ढूंड़नें परभी यदि हम जानकीजीको न देख पावेंगे तौ हम वानप्रस्थ होकर हाथसे व मुखके बलसे अपने तोडे हुए फल खायकर सदा पेड़की मूलमें वास करेंगे॥३८॥अथवा हम समुद्रके अनेक प्रकार फल मूल और जलसे पूर्ण किनारे पर चिता बनाय प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जांयगे॥३९॥प्राण निकल जानेंपर जो शरीर नभी जलैगा तौ कौवा और कुत्ते आदि उसे खाय लेंगे बस इस्से भी हम निश्चयही स्वर्गको चले जांयगे॥४०॥

ऋषि लोगोंनें औरभी एक मुक्तिका उपाय उपदेश कियाहै, यदि हम जानकी जीको नदेख पावेंगे तौ निश्चयही जलमें डूबकर मर जांयगे ॥ ४१ ॥ विशेष करके हमनें जो सीता जीके देखनेंके लिये समुद्रके लांघनें का श्रेष्ठ कार्य करके जो कीर्त्ति पाईहै, अब सीता जीके दर्शन न पानेंसे हमारी वह विख्यात कीर्त्ति सदा के लिये लोप होतीहै ॥४२॥ जनक कुमारी को न देख पाकर हम नियम धारी यती होकर वृक्ष की मूलमें बास करेंगे तथापि इस स्थानसे हम विना जानकीजीके देखे न जांयगे॥४३॥सीताजीकी सुधि विना पाये यदि हम इस स्थानसे चले जाँय तौ अंगदजी सब वानरोंके सहित उसी समय मर जांयगे ॥ ४४ ॥अथवा हम क्यों मरें मरनेंमें अनेक दोषहैं, वरन जीवित रहनेंसे अनेक शुभ काम निकलतेहैं, इसलिये प्राण धारण कर जीवित रहनेंसे कभी न कभी भला अवसर अवश्यही आजायगा ॥ ४५ ॥ वानरोंमें मुख्य हनुमानजी मनहीं मन इस प्रकारकी अनेक चिंता करते, उस कालमें दुःखके पार न पहुंचे ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत महा धीरजवान कपियोंमें कुंजर रूप हनुमानजी अपने विक्रमका अवलंबन कर चिंता करनें लगे कि लाओ दशग्रीव रावणकाही संहार करते चलें ॥ ४७ ॥ क्यों-कि इसका संहार करनेंसे, सीताजीके हरण करनेंके बैरका बदला तो हो जायगा ॥ ४८ ॥ अथवा इस रावणको वारंवार समुद्रके ऊपर उछालते हुए श्रीरामचंद्रजीको जाय कर समर्पण करदें, जैसे पशुपतिको पशु सौं-पा जाताहै ॥ ४९ ॥ सीताको प्राप्त न होकर इस प्रकारकी चिन्तासे व्या-कुल और शोकसे चित्तको डुबाये हुए हनुमानजी फिर चिंता करनें लगे ॥ ५० ॥ हनुमानजीनें विचाराकि, जब तक यशस्विनी जानकीजी न मिलैं, तब तक इस लंकापुरीको हमें वारंवार खोजना चाहिये ॥ ५१ ॥ अथवा सम्पातिके वचनोंका विश्वास कर श्रीरामचंद्रजीहीको यहांपर ले आवें, परन्तु श्रीरामचंद्रजी जो यहांपर आय कर जानकीजीको न देखेंगे तौ वह समस्त वानरोंकोही भस्म कर देंगे ॥ ५२ ॥ अथवा नियताहारी, और जितेन्द्रिय होकर हम इसी स्थान पर बसते रहेंगे, क्योंकि एक हमारे लिये सब नर वानरोंको मरना नहीं होवे ॥ ५३ ॥ और यह जो बडे २ युगादिवृक्षोंसे परिपूर्ण बडाभारी अशोक वन दृष्टि आताहै, इसको तौ अभी खोजाही नहीं, इसलिये अब हम इसी वनमें जांयगे ॥ ५४ ॥ आठ वसु

ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, दोनों अश्विनी कुमार, व उनचालीस पवनोंको नमस्कार करके राक्षस लोगोंके शोक बढानें वाले होकर हम इस वनमें जांयगे ॥ ५५ ॥ राक्षसोंको जीतकर तपस्वीको सिद्धि प्राप्त होनेकी समान हम देवी इक्ष्वाकु कुल नंदिनी सीताजीको श्रीरामचंद्रजीके समर्प्पण कर देंगे ॥ ५६ ॥ चिन्तासे व्याकुलेन्द्रिय होकर महाबाहु पवनकुमार हनुमानजी एक मुहूर्त्त भरतक इस प्रकारका विचार करके उठ खडे हुए ॥ ५७ ॥ और मनही मनमें बोले कि श्रीराम लक्ष्मणको नमस्कार! उन देवी जनक कुमारी जानकीजीको नमस्कार! रुद्र, इन्द्र, यम, वायु, चन्द्र, अग्नि, और मरुद्गणको नमस्कारहै ॥ ५८ ॥ इन सबको और सुग्रीवजीको नमस्कार करके पवनकुमार हनुमानजी दशोंदिशाओंको भली भांति निहार कर अशोक वनकी ओर यात्रा करते हुए ॥ ५९ ॥ पवनकुमार हनुमानजी मनसे तो इस्से पहलेही शोभायमान अशोक वनमें पहुंच गयेथे, इस समय शरीर सहित वहां पहुंच कर विचारनें लगे, कि अब क्या करना चाहिये? ॥६०॥ हनुमानजीनें विचाराकि बहुत बड़े वनसेयुक्त, और खाई बाहर दिवारी आदि अनेक प्रकारके संस्कारोंसे संस्कारित इस पुण्यवान अशोक बनकी निश्चयही बहुत सारे राक्षस रखवाली करते होंगे ॥ ६१ ॥ अवश्यही बहुत सारे रखवाले इस वनमें रक्खे जाकर इन सब वृक्षोंकी रक्षा करतेहैं, इस्से भगवान विश्वात्मा पवन देवजी यहां प्रबल वेगसे नहीं चलते ॥ ६२ ॥ इस कारण श्रीरामचंद्रजीका कार्य सिद्ध करनेंके लिये, और रावण देख न पावे इसलिये हमने अपने शरीरको सकोड़ लिया ऋषिगण और देवता गण हमको इस कार्यमें सिद्धि दान करें ॥ ६३ ॥ स्वयं भगवान् स्वयंभु ब्रह्माजी, देवता गण, तपस्वी गण, भगवान अग्नि, वायु, तपस्वी गण, भगवान विष्णुजी, और वज्रधारी इन्द्रजी यह सब हमको सिद्धिदें ॥ ६४ ॥ पाश हाथमें लिये वरुणजी, सूर्य, चंद्र महात्मा दोनों अश्विनी कुमार और उनचालीसों पवन ॥ ६५ ॥ प्राणिगण और प्राणियोंके पति श्रीनारायण; और जो देवता लोग कि अदृश्य भावसे रहकर घूमतेहैं; वह सबही हमको सिद्धिदें ॥ ६६ ॥ हा! न जानें हम कब उन आर्या सीताजीका वह ऊंची नासिकासे युक्त, श्वेत,

दन्त शोभित, मन्दमुसकान युक्त, व्रण रहित पद्म पलाश नयन प्रसन्न चंद्र वदन दर्शन करेंगे ? ॥ ६७ ॥

क्षुद्रेणहीनेननृशंसमूर्तिनासुदारुणालंकृतवेषधारिणा ॥ बलाभिभूताह्यबलातपस्विनी कथंनुमेदृष्टिपथेऽद्यसभवेत् ॥ ६८ ॥

ओछे स्वभाव वाले नीच जाति निर्लज्ज मूर्त्ति रावणनें दारुण कपट वेश धारण करके प्रबल बल चलाय उन अबला तपिस्विनीको बँधुआकर रक्खाहै । हाय ! आज क्या कार्य हम करें जो उन पतिव्रता सीता देवीजीके हमको दर्शन मिल जांय ॥६८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥

समुहूर्तमिवध्यात्वामनसाचाधिगम्यताम् ॥ अवप्लुतोमहातेजाःप्राकारंतस्यवेश्मनः ॥ १ ॥

महा तेजवान हनुमानजी मुहूर्त्त भरतक चिंता करते हुए मनमें सीताजीका ध्यान कर रावणके गृहसे छलांग मार नीचेकी प्राचीर पर उतर आये ॥१॥ उस बाहर दिवारीकी भीतपर बैठकर वसन्त इत्यादि समस्त ऋतुओंमें जिन २ वृक्षोंके फूल खिला करतेहैं, उन प्रसून युक्त अनेक जातिके वृक्षोंके समूहोंको देखकर महाकपि हनुमानजीके सब अंगमारे आनंदके पुलकायमान होनें लगे ॥ २ ॥ उन वृक्षोंमें पुष्पित शाल, अशोक, गज, पीपल, चम्पक, उदालक, नाग वृक्ष, आम, और कपि मुखाकृति आम ॥ ३ ॥ सफरी, और साधारण आमोंके वनों से घिरी वृक्षोंकी सैकडों वाडी देख हनुमानजी वाणकी समान यहांसे सीधे उछल कर चले ॥ ४ ॥ प्रवेश करके महा बलवान हनुमानजीनें देखा कि यह वाटिका अति विचित्रहै; अनेक जातिके पक्षी उसमें बोल रहेहैं, चांदी और सुवर्ण मय वृक्ष उसके छाये हुएहैं ॥ ५ ॥ नाना प्रकारके मृग और पक्षिगणोंसे सेवित होनेंके कारण वाटिकानें अनेक रूपकी शोभा धारणकीहै, वह विचित्र वृक्षोंसे चित्रित होरहीथी, वहांके वृक्ष सूर्यकी समान ज्योति विस्तार कर

रहेथे ऐसा महावीरजीने देखा ॥ ६ ॥ वह वाटिका अनेक प्रकारके फल फूल वाले वृक्षोंसे छाय रहीहै मतवाली कोकिल और भौरोंके शब्द समूहसे वह शब्दायमान होरहीहै ॥ ७ ॥ वहांपर पुरुष सबही समय हर्षित चित्त और मृगपक्षी मतवाले होकर फिरा करते मोरभी मतवाले होकर अपनी झंकार करते और अनेक भांतिके पक्षी वास करतेहैं ॥ ८ ॥ हनुमानजीनें वरारोहा अनिन्दिता राजकुमारी जानकीजीको खोजते हुए सुखसे सोये हुए पक्षियोंको जगा दिया ॥ ९ ॥ जब सब पक्षी पंखोंको फैलाय कर उडे तब उनके पंखोंकी पवन चलनेंके कारण विविध भांतिके वृक्ष अनेक वर्णके फूलोंकी वर्षा करनें लगे ॥ १० ॥ वायुनंदन हनुमानजी फूलोंकी राशिसे ढककर अशोक वनमें फूलोंकी पहाडकी समान शोभायमान होने लगे ॥ ११ ॥ जब हनुमानजी वृक्षोंपर चढकर सब दिशाओंमें घूमतेथे, तब उनको देखकर सबही प्राणियोंनें जाना कि यह वसंत रूप धारण किये घूमताहै ॥ १२ ॥ वृक्षोंकें गिरे हुए फूलोंसे ढककर वहांकी पृथ्वी सोलहों शृँगार किये स्त्रीकी समान शोभायमान होने लगी ॥ १३ ॥ बलवान् हनुमानजीके बडे वेगसे कंपित करनेंपर वृक्ष कंपायमान होकर फूलोंके ढेरोंको वर्षा करनें लगे ॥ १४ ॥ और हनुमानजीके वेगसे हलनेंके कारण वृक्षोंके पत्ते, फल, फूल, और फुलचियें टूटकर गिरनेंसे जुआ खेलनें वाले जिस प्रकार जुएमें हार मनमार वस्त्राभूषणभी गँवाय जैसे कोरे हो बैठतेहैं, वैसेही वह वृक्ष ठूंटसे होगये ॥ १५ ॥ वेगवान हनुमानजीके कम्पित करनेंसे फल वाले सब श्रेष्ठ वृक्ष झर २ करके बहुत सारे फल और पत्ते गिरानें लगे ॥ १६ ॥ पवनकुमार हनुमानजीके चलायमान करनेंसे उन सब वृक्षोंके केवल गुद्दे बचे ऐसी अवस्थामें वह सब वृक्ष और किसी प्राणीके सेवन योग्य नहीं रहे और पक्षियोंसे हीन होगये ॥ १७ ॥ हनुमानजीकी पूंछ, हस्त, और दोनों चरण मर्दित होनेंके कारण अशोक वनके सब वृक्ष छिन्न भिन्न होगये, इस्से ऐसी शोभा हुई; मानो स्त्रीके बाल बिखरे, अंगराज छुटा, श्वेत दांत व अधर चुम्बित और अंग नख व दातोंसे क्षतविक्षत होगयेहैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ वर्षाकालमें प्रचंड पवन जिस प्रकार मेघ जलको टुकडे २ कर देताहै, वैसेही महाकपि हनुमानजीनें बडे वेगसे बड़ी २ लताओंको तोड़ डाला ॥ २० ॥ वहांपर विचरण करते२

हनुमानजीनें मणिमय, रजतमय, और सुवर्णमय पृथ्वियें देखीं ॥ २१ ॥ और श्रेष्ठ जलसे पूर्ण विविधाकार वावलियांभी वहां देखीं, इन सब वापियोंके स्थान २ में बड़े मोलकी विविध मणियोंसे बनी हुई सीढ़ियें शोभायमान होरहींथीं ॥ २२ ॥ उन वापियोंमें मोती मूंगोंकी सिटकियां, जलके भीतर की भीत स्फटिक मणिकी बनीथी । उनके किनारे २ विचित्र सुवर्णमय वृक्षोंके झुन्ड शोभित होरहेथे ॥ २३ ॥ इन समस्त वापियोंमें कमल फूलोंका कमल वन खिल रहाथा, चक्रवाक अलगही शोभा बढ़ा रहेथे, और कालकंट हंस सारस इत्यादि पक्षी नाद कर रहेथे ॥ २४ ॥ उनके ओरे धोरे बडी२नदियां, उन नदियोंके किनारे वृक्षोंकी लंगार विराजमान उन नदियोंका जल अमृतकी समान स्वादयुक्त और साफथा२५॥ सैकड़ो वेलें उनके जलमें आनकर गिरींथीं, उनके तीरवाले बनोंमें सन्तान (कल्पवृक्षके फूल) विराजमान, और बीच २ में करवीरके फूल और गुल्मादि शोभायमानथीं ॥ २६ ॥ फिर मेघकी समान, ऊँचे शिखर युक्त, विचित्र शृंग विचित्र कंगूरोंसें चारों ओरसे शोभित ॥२७॥ शिला गृहे सुसज्जित अनेक प्रकारके वृक्षोंसे विरा सब जगत्में रमणीय एक पर्वत वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानजीनें देखा ॥ २८ ॥ इस पर्वत परसे एक नदी वह रहीथी, वह ऐसी शोभायमान होरहीथी, मानों प्यारी क्रोधमें भरकर अपने प्रीतमके गोदको त्यागकर पृथ्वीपर शयन कर रहींथी ॥ २९ ॥ मानिनी कामिनी क्रोध युक्त होकर अपने स्वामीके निकटसे दूसरे स्थानपर जानेकी इच्छा प्रकाश करनें पर जैसे प्रिय सखियें, उसको रोकतीहैं, वैसेही उस नदीके तीर वाली वृक्षोंकी शाखा तलमें गिरनेंसे उसही भावको प्रकाश कर रहींथीं ॥ ३० ॥ महाकपि हनुमानजीनें देखाकि कुछ दूर गमन करके जल फिर किसी स्थानसें लौटकर आय रहाहै, मानों कामिनी प्रसन्न होकर फिर लौटकर प्रिय पतिके पास आय रहीहैं ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमानजीनें देखाकि इस नदीके कुछेक दूर अनेक प्रकारके पक्षियोंसे युक्त कमल खिले हुए सरोवर विराजमानहैं ॥ ३२ ॥ हनुमानजीनें शीतल जलसे परिपूर्ण एक कृत्रिम बावड़ीभी देखी । उस बावडीकी सीढ़ियें मणिमय बनी हुईंथीं, और मुक्तामय किनारा बना हुआ उसकी शोभाको बढ़ा रहाथा ॥ ३३ ॥ विविध भांतिके विविध मृग गणभी उसकी अनेक

शोभाकर रहेथे, और विचित्र वृक्षोंनें उस को चित्रित कियाथा ॥ चारों ओर विश्वकर्माकी बनाई हुई अति बड़ी २ अटा अटारियें, ॥ २४ ॥ व नकली वनोंसे सब ओरसे उसकी अति मनोहर शोभा होरहीथी उसके किनारे वाले सब वृक्ष फल फूलसे युक्तथे ॥ २५ ॥ और सब वृक्षोंका आकार छत्रकी समान मनोहर व सबहीकी जड़में सुवर्णके थांवले, बनेथे और नीचेकी भूमि चांदीसे मढ़ीथी, उनके आस पास वाली बहुतसी लताओंके पत्तोंसे वह घिरो हुईथी ॥ २६ ॥ फिर महाकपि हनुमानजीनें सुवर्णके वर्ण समान एक बड़ाभारी शिंशुपाका वृक्ष देखा,उसका थांवला सुवर्णमय बनाहुआथा॥२७॥इन सबके अतिरिक्त महाकपि हनुमानजीनें विविध भूमिभाग पर्वतोंके झरनें व और दूसरे अग्निकी समान सुवर्ण वृक्षभी देखे ॥ २८ ॥ सुमेरु पर्वतके स्पर्शसे सूर्य भगवान जिस प्रकार उज्वल हो जातेहैं; वैसेही इन समस्त वृक्षोंकी प्रभासे व्याप्त होकर वीर हनुमानजीभी सुवर्ण रूप होगयेथे इस्से अपनेको सोनेका मानने लगे ॥ २९ ॥ हनुमानजी, शत २ किंकिणियोंके शब्दसे निनादित समस्त रमणीक स्वर्ण वृक्षोंको वायुसे कंपित देख अति विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥ सुन्दर पुष्प वाले नवीन अंकुर, बने पत्रोंसे युक्त दीप्तिमान् उन सब वृक्षोंमेंसे उस शिंशुपा पर चढ कर पत्तोमें बैठे विचारनें लगे ॥ ४१ ॥ वैदेही जानकीजी गाढे दुःखसे व्याकुल होकर श्रीरामचंद्रजीके दर्शनकी लालसा लगाये इधर उधर घूमती घामती अपनी इच्छाके अनुसार यहांपर आवेंगी तबही हम उनके दर्शन पावेंगे ॥ ४२ ॥ चन्दन, चम्पा, और बकुलके वृक्षोंसे सुशोभित दुरात्मा रावणका यही अशोक बन होगा ॥ ४३ ॥ पक्षी कुल विराजित, यह पद्म सरोवरभी, यहां पर विराजताहै, राजरानी जानकीजीभी निश्चयही इस सरोवर पर आवेंगी ॥ ४४ ॥ जानकीजी श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी और भार्याहैं, इसलिये वह सदाही वन विचरण करनेंमें कुशलहैं, इस कारणसे वह अवश्यही यहां पर आवेंगी ॥ ४५ ॥ अथवा वन विचरण प्रिया मृग शावक नयनी जानकीजी अशोक वनके आशयको भली भांति जानतीहैं वह श्रीरामचंद्रजीकी चिन्तासे व्याकुल होकर अवश्यही इस समय उद्यानमें आवेंगी ॥ ४६ ॥ या वामलोचना सीताजी सदाही वनमें घूमनेंको प्रिय समझतीहैं, इसलिये ज्ञात होताहैकि श्रीरामचंद्रजीके शोकसे संता-

पित होनेपरभी वह अभी इस वनमें आवेंगी ॥ ४७ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी भार्या पतिव्रता जनककुमारी सीताजी पहले वनचर मृग पक्षियोंको बहुत प्रिय समझतीथीं ॥ ४८ ॥ इस समय सवेरा होनाही चाहताहै श्यामाङ्गी जानकीजीकी निष्ठा प्रातःकालके कर्त्तव्य स्नानादिमेंहै, इसलिये वह वरवर्णिनी प्रातःकालकी सन्ध्या करनेंके लिये इस निर्मल नीर वाली नदी पर आवेंगी ॥ ४९ ॥ वह राजकन्याहैं, और राजेन्द्र श्रीरामचंद्रजीकी अनुरूप भार्याहैं, इसलिये यह पवित्र अशोक वनभी सब प्रकारसे उनके अनुरूपहै ॥ ५० ॥ चंद्रमुखी वह देवी जानकीजी यदि जीवितहैं, तो वह शीतल जल वाली इस नदीपर अवश्यही आगमन करेंगी ॥ ५१॥

एवंतुगत्वाहनुमान्महात्माप्रतीक्षमाणो
मनुजेंद्रपत्नीम् ॥ अवेक्षमाणश्चदद
र्शसर्वंसुपुष्पितेपर्णघनेनिलीनः ॥ ५२ ॥

महात्मा हनुमानजी इस अशोक वनमें गमन करके इस प्रकार सीताजीकी वाट जोहते हुए, उस सघन पत्ते वाले, सुन्दर पुष्प सम्पन्न शिंशुपाके वृक्षमें छिपे रहकर सब कुछ देखनें भालनें लगे ॥ ५२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशःसर्गः ॥

सवीक्षमाणस्तत्रस्थोमार्गमाणश्चमैथिलीम् ॥
अवेक्षमाणश्चमहींसर्वांतामन्ववैक्षत ॥ १ ॥

हनुमानजीनें इस वृक्षपर टिके हुए चारों ओर निहार, सीताजीका खोज करनेंके लिये वहांकी सब पृथ्वी और समस्त अशोक वन देखा ॥ १ ॥ वह वन कल्पवृक्षकी लताओं और वृक्षोंसे शोभायमान, सुगन्धित दिव्य रसोंसे सम्पन्न, सब ओरसे सुभूषित ॥ २ ॥ वह वन नंदनवनकी समान प्रकाशमान मृग पक्षियोंसे परिपूर्ण अटा अटारी राज मंदिरोंसे सघन कोकिलाओंके शब्दसे शब्दायमानथा ॥ ३॥ वापियें सुवर्णमय उत्पल और कमल फूलोंको धारण किये शोभा विस्तार कर रहीहैं बहुत सारे किनारे पर मंदिर बने हैं वे ऊनी वस्त्रोंके आसनोंसे शो-

भित हैं ॥ ४ ॥ वन्य भूमि गृह और सव ऋतुओंके फूल व फल युक्त वृक्ष वहां शोभायमान होरहेथे फूले हुए अशोक वृक्षोंकी कान्तिसे मानों सूर्योदयकी प्रभा फैल रहीहै ॥ ५ ॥ हनुमानजीनें वहां टिककर देखाकि बारबार कूदते हुए पक्षि गिर२कर और पुष्पोंके गहनोंसे भूपित होकर वृक्षोंके पत्ते ढक रहेहैं इससे ऐसा ज्ञात होताकि मानों वृक्ष पत्तोंसे रहित हो- गयेहैं॥६॥चित्र विचित्र पुष्पोंको कर्ण भूषण वनाये शोक नाशकारी सैकडों अशोकोंके वृक्षोंसे शोभित ॥ ७ ॥ जो अशोक कि फूलोंके भारसे झुक- कर मानों पृथ्वीको छुए ही लेतेथे, ऐसे अशोक, व फले हुए कर्णिकार और टेटूके वृक्षोंकी ॥ ८ ॥ कान्तिसे वह स्थान मानों सव ओरसे प्रदीप्त हो रहाथा, शत २ पुन्नाग, शतावरी, चम्पा, उद्दालक आदि वृक्ष ॥ ९ ॥ और वहुत फूले फले वड़े २ वृक्षोंके समूह वहां शोभायमान हो रहेथे इन में कोई वृक्ष सुवर्णके रंगके कोई अग्नि सम वर्णके॥१०॥कोई नील अंजनकी नाईं वर्ण वाले इन वृक्षोंमें अशोकके वृक्षतो वहां हजारोंही थे वहुत सारे अशो- क वृक्षोंके रहनेंके कारणसे ही इस वाटिका का नाम अशोकवाटिका या अशो- कवन पड़ाथा यह वन नन्दन वनकी समान आनन्द जनक और कुवेर जीके चैत्ररथ वनकी समान विचित्रथा॥११॥ और नन्दन कानन और चैत्र रथ वन दोनो वनको नांघ गयाथा अचिन्त्य रमणीक श्रीमान् यह दिव्य अशोक वन पुष्प रूप तारा गणोंसे व्याप्त होकर दूसरे आकाशकी समान शोभायमान हो रहाथा ॥ १२ ॥ सैकडों हजारों पुष्प रत्नोंके रहनेंसे जान पड़ता मानों यह पंचम सागरहै सर्व ऋतुओंके कुसुम युक्त वृक्ष इस वाटिकाकी शोभा को वढ़ारहेथे ॥ १३ ॥ और विविध भांतिके मृग पक्षियोंने अपने शब्द- से उसको परम रमणीय कर रक्खाथा अनेक प्रकारकी सुगंधि इस वाटि- कामें आय रही थी इसलिये पुण्य गन्धि वाला यह वन मनोहर हो रहा था ॥ १४ ॥ इस अशोकवाटिकामें वानर श्रेष्ठ हनुमानजीनें वहुत दूर पर दूसरे गन्धमादनकी समान गन्ध सम्पन्न ॥ १५ ॥ हिमाचलकी समान ऊंचा गोल आकार वाला एक मंदिर देखा। जो कैलास की समान श्वेत, और इस मंदिरमें सहस्रों खंभे लगे हुएथे॥१६॥उसकी सव सीढ़ियाँ मूंगोंकी वनी हुईथीं और वेदियां यहां पर तपाये हुए सुवर्णकी वनीथीं यह मंदिर ऐसा प्रकाशमान हो रहाथा मानों नेत्रोंकी ज्योतिको हरण किये लेता-

था ॥ १७ ॥ श्वेत वस्त्रोंकी अधिकाई से यह मानों आकाशको छुये लेता-था ऐसे उस मन्दिर में बैठी हुई मलीन वस्त्र धारण किये राक्षसियोंसे घरी हुई ॥ १८ ॥ उपवास करनेंसे दुर्बलवदन, दीनवदन, वारंवार श्वासें लेती, शुक्ल पक्ष वाली प्रतिपदाकी चंद्ररेखाके समान सूक्ष्म मूर्त्ति सीताजीको पवनतनय हनुमानजीनें देखा ॥ १९ ॥रुचिर कान्ति युक्त सीताजीका रूप देखकर जो धुवेंसे ढकीहुई अग्निको शिखाके समान अति कष्टसे अनुमान करनेंके योग्यथा ॥ २० ॥ वह एक पुराना पीले वर्णका उत्तम वस्त्र पहरनें और गहनें रहित होनेंसे कमलके विना मलीन हुई कमलिनी की समान श्रीहीन होगईथीं ॥ २१ ॥ वह पतिव्रता जानकीजी दुःखसे संतापित पीड़ित और अतिशय दुर्बल होकर केतु ग्रहसे सताई हुई रोहिणीकी समान मन्द प्रकाशित हो रहीथीं ॥ २२ ॥ शोक और चिंताके वश होनेसे सदा दुःखभोग व उपवास करनेंके कारण अति व्याकुल होनेंसे उनके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहरहीथी और वह बहुत दुबली होगईथीं ॥ २३ ॥ उनकी दृष्टि केवल राक्षसियोंपर पड़तीथी, परन्तु वह अपने प्रियजन श्रीराम लक्ष्मणको न देखकर, अपने झुंडसे विछड़ और कुत्तोंके झुन्डसे घिरी हरिणीकी समान त्रासित और व्याकुल होरहींथीं ॥ २४ ॥ काले सर्पकी समान लंबी चोटी पीठपर पड़ी ऐसी शोभित होरहीथी मानों वर्षाके बीत जानेंपर पृथ्वी नीलवर्णकी वनराजिसे पूरित होकर शोभायमान होरहीथी ॥ २५ ॥ वह केवल सुखही भोग करनेंके योग्य, जो कभी किसी दुःखका नामतक न जानतीथीं; वह इस समय दुःखसे बहुतही सताई गईहैं । हनुमानजीनें उन दुर्बल अंगवाली मलीन सीताजीको देख ॥ २६ ॥ विचार करकै अनेक कारण स्थिर किये कि यही सीताहैं, क्योंकि कामरूपी राक्षसराज सीताजीको हरण किये आताथा ॥ २७ ॥ उस समय जैसा हमनें सीताजीका रूप देखाथा; उनकीही समान इस स्त्रीका रूप हम देखतेहैं; क्योंकि पूर्णचन्द्रवदनी गोल पयोधर युक्त सुन्दर भ्रुकुटिवाली यह अवलाहैं ॥ २८ ॥ अपनी देहकी कान्तिसे मानों इसनें सब दिशाओंका अंधकार नाश कर दियाहै । इसका कंठ इन्द्रनील मणिकी प्रभा समान नील वर्णहै, अधर बिंबा फलकी समान लालहैं; मध्य देश सुशोभित और सबही अंग सुडौलहैं ॥ २९ ॥ कमल दल लोचनी सीता मानो साक्षात् मद-

नकी रति और पूर्ण चन्द्रकी चांदनीके समान मानो सब जगत्की इष्ट हैं॥ ३० ॥ वह श्रेष्ठ स्तनवाली नियम वाली तपस्विनीकी समान पृथ्वीपर बैठी हुईहैं,और डरी हुई सर्प राज वधूकी समान बहुत सांसे लेरहीहैं॥३१॥ बडे भारी शोकके जालमें पड़नेंसे अब इनकी वह शोभा नहीं है,मानो अग्निकी शिखा धुयेंके समूहमें छिप रहीहै ॥ ३२ ॥ इनकी अवस्था स्पष्टार्थ स्मृतिकीनांई, अन्यायसे हरणकी हुई संपत्तिकी नांई. नास्तिक बुद्धिसे हरी हुई श्रद्धाकी नांई, टूटगई हुई आशाके नांई ॥ ३३ ॥ विघ्नोंके समूहसे पूरी सिद्धिकी नांई,कलंकित बुद्धिकी समान, और मिथ्या कलंकसे ग्रसी कीर्त्तिकीनांई अतिशय प्रभाहीन और शोचनीयहै ॥ ३४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें बाधा पडनेंसे यह अबला दुःखित हुई हैं, तिसके ऊपर फिर राक्षसियोंके पीड़न करनेंसे मृगशावक नयनी चंचलतासे इधर उधर देख रहीहैं ॥ ३५ ॥ सीताजीके काले और सुकडे आखोंके बालसे शोभित आसुओंके जलसे परिपूर्ण अप्रसन्न वदनसे क्षण २ में लंबे २ श्वास निकल रहेहैं ॥ ३६ ॥ यह गहने पहरनेके योग्यहैं, परन्तु इस समय कोई भूषण नहीं पहर रहीहैं, इस समय इन्होंने मैलकी कीचड शरीर में लपटाय दीन भाव धारण कियाहै, मानों तारानाथ चन्द्रमाकी प्रभा काले मेघमें छिप रहीहै ॥ ३७॥ अभ्यासके न करनेंसे शिथिल हुई विद्याकी समान सीताजीकी अवस्था देखकर हनुमानजीके मनमें संदेह उत्पन्न हुआ ॥ ३८ ॥ हनुमानजीनें सीताजीको अलंकारहीन देखकर व्याकरण संस्कारहीन अर्थान्तर प्रतिपादक वाक्यकी समान बड़ी कठिनाईसे जाना ॥ ३९ ॥ अनिन्दित रूपवाली विशाल नयना राजकुमारी सीताजीको देखकर हनुमानजी अनेक हेतु निश्चय करकै तर्क वितर्क करनें लगे उन्होंनें विचाराकि क्या यही सीताजीहैं॥४०॥हनुमानजीके आनेंके समय श्रीरामचंद्रजीने वैदेहीजीके गात्रमें शोभित जिस२गहनेंका वर्णन कियाथा,सीताजीके अंगमें उन सब गहनो को हनुमानजी देखनें लगे कि वह गहने इनके अंगोंमें हैं अथवा नहीं? ॥४१॥ उन्होंनें मनमें विचाराकि श्रेष्ठ बनें हुए यह कुण्डल सुन्दर रूपसे टिकी हुई यह दोनों त्रिकर्णिकार और मूंगे मणियोंसे बनें यह हाथके गहने ॥ ४२ ॥ यद्यपि बहुत दिनोंके धारण करनें और न मांजनेंसे और न धोनेंसे मलीन हो गये हैं; परन्तु जैसे श्रीरामचंद्रजीनें बतायेहैं वैसेहीहैं, इस्से अवश्य जा-

नकीजी यहीहैं ॥ ४३ ॥ इन गहनोंमें हम केवल उन्हीं गहनोंको नहीं देख पाते कि जो ऋष्यमूक पर्वत गिरेथे; परन्तु जो नहीं गिरे वह; समस्त निःसन्देहहीहैं ॥ ४४ ॥ इनमेंका जो सुवर्ण मय तारोंसे वनाहुआ पीत वर्ण का डुपट्टा खसक कर पर्वत पर गिराथा, उस कालमें सवही वानरोंनें उसको देखाता ॥ ४५ ॥ उन सव वानरोंनें यहभी देखाथा कि वडे २ मोलके श्रेष्ट गहने शव्द करते हुये पृथ्वीपर गिरेथे ॥ ४६ ॥ वहुत दिनोंसे धारण किये रहनेंके कारण इनके पहरनेंका वस्त्र पुराना होगयाहै तथापि वह डुपट्टा जो गिराथा उस्से अधिक इसके वर्णमें अभीकसर नहीं आईहै ४७॥ जो सन्मुख न होनेपरभी श्रीरामचंद्रजीके मनसे कहीं और नहीं जाती;यह सुवर्ण कान्तिवाली श्रीरामचंद्रजीकी वही प्यारी रानीहैं ॥ ४८ ॥ स्नेह, दया,शोक और मदन, जिनके लिये श्रीरामचंद्रजी इन चारोंसे वहुतही संतापित हो रहेहैं, निश्चय यह वहीहैं ॥ ४९ ॥ स्त्री हरण हो गई; इसकारण स्नेह. आश्रित जनकी रक्षा न कर पाई, इसलिये दया, भार्याका पता नहीं लगता, इसलिये शोक, और प्रियाके अलग होनेंसे कामदेवका सताना यह चार उनको जलाये डालतेहैं ॥ ५० ॥ इन देवीका जिस प्रकारका रूप लावण्य और अंग प्रत्यंगकी सुन्दरताहै; और श्रीरामचंद्रजीके रूपसे जिस प्रकार इनकी मिलतीहै; इस्से तौ यह राजकुमारी श्रीरामचंद्रजीकी ही रानी जान पड़तीहै ॥ ५१ ॥ इन देवीका मन उनमें और उनका मन इन देवीमें टिका हुआहै; इसीलिये यह और वे धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी अवतक जीवितहैं ॥ ५२ ॥ इनके विरहमें प्रभु श्रीरामचंद्रजी जो शोकसे व्याकुल न होकर प्राणोंको धारण कर रहेहैं; यह वड़ा कठिन कार्यहै इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ५३ ॥

एवंसीतांतथादृष्ट्वाहृष्टःपवनसंभवः ॥
जगाममनसारामंप्रशशंसचतंप्रभुम् ॥ ५४ ॥

गुणवती सीताजीको हनुमानजी वहां देखकर हर्षित चित्त हो मनहीसे श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंच गये और इन प्रभुकी स्तुति करनें लगे ॥ ५४॥
इ०श्रीम०वा०आ०सुं०पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥

प्रशस्यतुप्रशस्तव्यांसीतांतांहरिपुंगवः ॥
गुणाभिरामंरामंचपुनश्चिंतापरोऽभवत् ॥ १ ॥

वानर श्रेष्ठ हनुमानजी प्रशंसा भाजन सीताजीके और गुणाभिराम श्रीरामचंद्रजीके गुण कीर्त्तन करकै फिर चिन्ता करनेंलगे ॥ १ ॥ एक क्षणभर चिन्ता कर तेजस्वी हनुमानजी नेत्रोंमें जल भरकर सीताजीके आश्रितहो विलाप करनेंलगे ॥ २ ॥ हनुमानजी बोले कि सुशिक्षित और विनीत लक्षणकी गुरुपत्नी होकरभी जब सीताजीको दुःखसे व्याकुल होंना पड़ाहै, तब अवश्यही कहा जाय सकताहै कि कालको उल्लंघन करना दुःसाध्यहै ॥ ३ ॥ यह देवी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके पराक्रमको भली भांति जानतींहैं; इसी कारण वर्षाकालीन गंगाजीके समान यह अधीर नहीं होती ॥ ४ ॥ स्वभाव, यश, चरित्र, कुल, और अच्छे लक्षणोंसें जानकीजी श्रीरामचंद्रजीहीके योग्यहैं, और वे इनके, इसलिये परस्पर एक दूसरे का मन भलीभांति लगा हुआहै ॥ ५ ॥ फिर सुवर्णकी समान वर्णवाली लक्ष्मीजीकी समान लोकानंददायिनी, उन सीताजीका दर्शन करकै हनुमानजी मनही मनमें श्रीरामचंद्रजीको स्मरण करते हुए बोले ॥६॥ इन विशालाक्षी सीताजीके लियेही महाबलवान् वालि और रावणकी समान वीर्यवान् कबंध मारागया ॥ ७ ॥ जिस प्रकार इन्द्रजीनें शम्बर असुरका नाश कियाथा, वैसेही वनमें विक्रम प्रकाश करकै श्रीरामचंद्रजीनें इन जानकीजीके लिये भयंकर विक्रमवान विराध राक्षसको मारडाला ॥ ८ ॥ जनस्थानमें भयंकर कर्मकारी चौदह हजार राक्षस अग्निकी शिखाके तुल्य बाणोंके समूहसे इनके निमित्तही मार डालेगये ॥ ९ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीहीनें इनकेही लिये रणमें खर,त्रिशिरा और महा तेजस्वी दूषणको संहार किया ॥१०॥ लोकविख्यात सुग्रीवजीने इनहींके लिये वानर गणोंके ऊपर वालि पालित दुर्लभ प्रभुता पाई है ॥ ११ ॥ हमनेभी इनविशालाक्षी जानकीजीकेही लिये ढूँढ़नेंके अर्थ नद नदीपति श्रीमान् समुद्रको उल्लंघन किया और यह लंकापुरी देखी ॥ १२ ॥ और इनके लिये श्रीरामचंद्रजी सागर सहित यह पृथ्वी और समस्त

जगत्‌भी ढूंढ़ डालें, तौ मेरे विचारमें यहभी ठीकही होगा ॥ १३ ॥ त्रिलोकीका राज्य, और जनकनन्दिनी सीताजी इन दोनोंकी यदि समानता की जाय, तो त्रिलोकीका राज्य सीताजीके शत अंशकाभी तौ एक भाग नहो ॥ १४ ॥ क्योंकि मिथिलेश्वर, धर्मशील, महात्मा जनकजीकी पुत्री यह दृढ पतिव्रता सीताजी ॥ १५ ॥ पद्म रेणुकी समान खेतकी धूरिसें ढकी हुई हलकी अनी द्वारा जुते हुए खेतसे पृथ्वीको भेदकर निकल आईथीं ॥ १६ ॥ फिर यह श्रेष्ठ स्वभाववाली महाविक्रमशाली जो कभी संग्राममें से नहीं निवृत्त होते उन राजा दशरथजीकी यशवान बड़ी पुत्र वधू हुई ॥ १७ ॥ यह वही धर्मज्ञ, कृतज्ञ, आत्मज्ञ, श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी भार्या अब राक्षसियोंके वशमें पड़ीहैं ॥ १८ ॥ यह अपने स्वामीके स्नेहमें बँधकर सर्व भोगोंको त्याग, किसी कष्टके ऊपर दृष्टि न देकर निर्जन वनमें चली आई ॥ १९ ॥ और अपने स्वामीकी सेवा करती हुई कंद मूल फलकेही भोजनसे संतुष्ट रह, गृहकी समान वनमेंभी अतुल प्रीति प्राप्त करती हुई ॥ २० ॥ जो कभी किसी आपदामें नहीं पडीं; जो सदा हँस मुखसे कथा वार्त्ता कहतीं, यह वही सुवर्ण सम वर्ण वाली अब अति कठिन पीड़ा भोग कर रहीं हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि सुशीला सीताजी रावण करके अतिशय पीड़ितहो, प्यासे आदमियोंसे मर्दितकी हुई पौशालाके समान श्रीहीन होगई हैं. तथापि श्रीरामचंद्रजी इनको देखनेके लिये बहुतही अभिलाषा किये हुएहैं ॥ २२ ॥ नष्ट राज्यको प्राप्त करके राजा जिस प्रकारसे आनंदित होताहै, उसही प्रकार इनको फिर पाय करके श्रीरामचंद्रजी निश्चय अतिशय प्रसन्न होंगे ॥ २३ ॥ यहभी सब प्रकारके भोगोंसे और बन्धु बान्धवोंसे रहित होकर, श्रीरामचंद्रजीके मिलनेकी बासनासे अपनी देहको धारण किये हुएहैं ॥ २४ ॥ इन राक्षसियोंको और इन समस्त फल वृक्षोंको निश्चयही जानकीजी कुछभी नहीं देखतीं, यह तौ एक मनसे केवल श्रीरामचंद्रजीकाही ध्यान करतीहैं ॥ २५ ॥ स्त्रियोंके लिये स्वामीही गहनेसे बढकर सुन्दरताका उपजानें वालाहै; इसी कारणसे श्रीरामचंद्रजीके विरहमें सीताजी रूपवती होकरभी शोभायमान नहीं होतीं ॥ २६ ॥ प्रभु श्रीरामचंद्रजी जो इनके विरहमें शोकसे व्याकुल न होकर प्राण धारण करतेहैं, इस्से तौ वह निश्चयही अति कठिन कार्य

कररहे हैं ॥ २७ ॥ यह वही कृष्णकेशवाली कमलदलनेत्रा सुख भोगनेंके योग्य होकरभी जो दुःख भोग कररहीहैं, इस्से हमारे मनकोभी वहुत दुःख होरहाहै ॥ २८ ॥ पृथ्वीकी समान धीरज युक्त सीताजीकी रक्षा जो राम लक्ष्मण करतेथे आज उनकी रक्षा विकटाकार वाली राक्षसियें वृक्षके नीचे बैठी हुई कररही हैं ॥ २९ ॥ वार २ दुःखोंसे पीडित होनेपर पालेकी मारी हुई कमलनीकी समान सीताजीकी सुन्दरताई नष्ट होगई है। जनककुमारी सीताजी प्यारे चक्रवाकसे अलग हुई चक्रवाकीकी समान शोचनीय दशाको प्राप्त हुईहैं ॥ ३० ॥ फूलोंके भारसे झुकी हुई अशोक की आगेकी शाखायें जानकीजीका शोक औरभी वढारहीहै, यह वसन्तकालकी समान हजारों किरणोंको फैलाये पाला न पड़नेंसे अति प्रकाशित हो चंद्रमाभी इनके शोकको वढ़ाही रहाहै ॥२१॥

इत्येवमर्थंकपिरन्ववेक्ष्यसीतेयमित्येव
तुजातबुद्धिः ॥ संश्रित्यतस्मिन्निषसा
दवृक्षेबलीहरीणामृषभस्तरस्वी ॥ ३२ ॥

वलशाली वानर श्रेष्ठ वेगवान हनुमानजी इन सब वातोंका सोच विचार करते हुए, यह सीताजीहैं ऐसा निश्चय कर इसी वृक्षके नीचे सँभल सँभलाय कर वैठ गये ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे षोड़शःसर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥

ततःकुमुदखंडाभोनिर्मलंनिर्मलोदयः ॥
प्रजगामनभश्चंद्रोहंसोनीलमिवोदकम् ॥ १ ॥

इसके पीछे स्वच्छ प्रकाशित, कुमुद शोभित, शशाङ्क (चंद्रमा) हंस जिस प्रकार जलके ऊपर प्रकाशित होताहै, वैसेही निर्मल आकाशमें और ऊंचे चढ़कर प्रकाशित हुआ ॥ १ ॥ विशद प्रभा शाली निशापति (चंद्रमा) सीताजीके दर्शनमें मानों सहायताका कार्य करतेही हुएसे, हनुमानजीके ऊपर शीतल किरणें छोड़ने लगा ॥ २ ॥ उस समय हनुमानजींनें देखाकि वड़े बोझसे लदी हुई नाव जैसे जलमें डूवजातीहै, पूर्ण चन्द्रवदना सीताजीभी, वैसेही शोक भारसे पीडितहो मानो जलमें डूव-

रहीहैं ॥ ३ ॥ जानकीजीको देखते २ पवनकुमार हनुमानजीने दूर बैठी हुई घोर दर्शन वाली राक्षसियोंको देखा ॥ ४ ॥ उनमें किसी २ के एकही कानथा, किसीके एकही आंखथी, किसीके कान बहुतही बड़ेथे, किसीके कान बिलकुल थेही नहीं, किसीके कान खड़े थे, किसीकी नाक माथेमें लगी हुईथी ॥ ५ ॥ किसीकी देहमें ऊपरका भाग अतिबड़ा और मोटाथा किसीकी गर्दन अति पतली और लंबीथी, किसीके केश मुडे हुएथे, किसीके केश थेही नहीं; और किसीके शरीरमें इतने रुवेंथे कि देखनेंसे कम्बल सा लिपटा हुआ जान पड़ताथा ॥ ६ ॥ किसीके कान लम्बेथे, किसी का माथा लंबाथा, किसीका उदर लंबाथा, किसीकी छातियें लंबीथीं, किसीके अधर लंबेथे और किसीकी ठोड़ी लंबीथी किसी २ का मुख लंबा और किसी २ की जांघे अति बड़ीथीं ॥ ७ ॥ कोई बहुत छोटी, कोई बहुत बड़ी, कोई कुबड़ी, और कोई विकट, कोई बौनी, किसीका रंग अति भयंकर काला, किसीका मुख टूटा, किसीकी पीली आंखें, किसीका मुख विकराल ॥ ८ ॥ कोई विरूपाकार वाली, कोई पीले वर्ण वाली, कोई काले वर्ण वाली, कोई क्रोधित स्वभाव, कोई क्लेश प्रिया, व कोई लोहके महाशूल, कूट और मुद्गर धारण किये हुएथीं ॥ ९ ॥ किसीका मुख सुअर, किसीका मृग, किसीका शार्दूल, किसीका महिष (भैंसा) किसीका अजगर और किसीका स्यारकी समान मुखथा। किसीके पांव ऊंटकी समान, किसीके गजकी समान और किसी २ के घोड़ेकी समानथे, और किसी २ का शिर माथेमें घुसा हुआथा ॥ १० ॥ कोई एक हाथ वाली और कोई एकही चरण वालीथी, किसीके कान गधेकी, किसीके घोड़ेकी, किसीके गायकी, किसीके हाथीकी और किसीके कान सिंहके कानकी समानथे ॥ ११ ॥ किसीकी नाक बहुत बड़ी, किसीकी नाक टेढी और किसी २ की नाक थीहीनहीं किसीकी नाक हाथीकी शुन्डके समान, और किसीके माथेमें दोदो नाकेंथीं ॥ १२ ॥ किसी २ के पैर हाथीके पैरकी समानथे, किसीके, पांव बहुतही बड़ेथे, किसीके गोपदकी तुल्यथे, किसीके चरणोंमें चूडेको समान बालोंके गुच्छेथे, किसीकी गर्दन बड़ी, और किसीका मस्तक बहुतही बड़ाथा; किसीके कुच किसीका उदर ॥ १३ ॥ किसीका वदन और किसीके नेत्र स्वभावसे अलग बहुत

ही बडेथे, किसीकी जीभ और किसीका वदन बहुतही बडाथा कोई अजा-मुखी, कोई गजमुखी, कोई गोमुखी, कोई शूकरमुखी, ॥ १४ ॥ कोई घुड़मुखी और कोई खरमुखीथी. कोई राक्षसीका आकार देखनेमें अति भयंकरथा कोई क्रोधित स्वभाववाली और कलहप्रियाथी किसी राक्षसी-के हाथमें शूलथा और कोई मुद्गर धारणकिये हुएथी ॥ १५ ॥ किसी विकट मुखवाली और भयंकर राक्षसीके बाल धूमिल वर्णकेथे, वह सबही बराबर मदिरा पिया करती, और सुरा व माँसको सदाही बहुत अच्छा समझ तीथीं ॥ १६ ॥ सबकेही शरीरोंमें मांस और रुधिर लगा हुआथा क्योंकि वह बराबर मांस और रुधिरकाही आहार करतीथीं, वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें इस प्रकारकी घोर दर्शन वाली राक्षसियें देखी जिनके दर्शनसे रुयें खड़े हो जातेथे ॥ १७ ॥ यह सब उस वृक्षकों सब ओरसे घेरे खडीथीं कि जिसके ऊपर हनुमानजी वि-राज रहेथे; और उसी वृक्षके नीचे आनंदिता जानकीजी बैठीथीं कि जिनकी रखवाली यह सब राक्षसियें करतीथीं ॥ १८ ॥ श्रीमान हनुमानजीने यहांपर सर्वांग सुन्दरी देवी जानकीजीको देख लिया, वह प्रभाहीन शोकसे दुर्बलथीं और उनके केशोंमें मैल छाय रहाथा ॥ १९ ॥ मानो पुण्यक्षय होनेसे तारा भूमिपर गिराहै; वह पतिव्रता कहकर विख्यातहैं; परन्तु इस समय इनको स्वामीका दर्शन दुर्लभ हुआहै ॥ २० ॥ वह श्रेष्ठ गहने कुछभी नहीं पहर रहींथी, इस समय तो केवल पतिका प्रेमही इनका इकला गहनाथा; राक्षस पति रावणने उनको कैदकर रक्खाथा बंधुजनभी कोई पास नहीं ॥ २१ ॥ मानो अपने झुंडसे बंधी हुई हथिनीके ऊपर सिंहनें झपट्टा माराहै । मानो वर्षाके अंतमें चंद्रमाकी रेखा शरद ऋतुके बादरसे ढक रहीहै ॥ २२ ॥ स्वामीके विना स्पर्श किये उनकी सुन्दरताई बहुत दिनोंसे जिसमें बजाने वालेका हाथ न लगे उस विना बजाई हुई वीणाकी समान हीन होगईहैं । वह सदाही स्वामीका हित चाहनेंवाली राक्षसियोंके वशमें पडनेके अयोग्य परन्तु उन्हींके वशमें पडीहैं ॥ २३ ॥ अशोक वनमें वह जान-कीजी शोकके समुद्रमें डूबकर मंगल ग्रहसे ग्रसी हुई रोहिणीकी समान इन राक्षसियोंसे घेरी हुई हैं ॥ २४ ॥ हनुमानजी इस अशोक वनमें उनको पुष्पहीन वेलकी समान देखते हुए, सब अंगोंमें मैल लगा हुआ, और अंगोंमें भूषण न पहरनेसे वह कीचडमें सनी हुई नलिनीकी समान, प्रका-

शित होकरभी नहीं प्रकाशती ॥ २५ ॥ हनुमानजीनें देखा कि वह मृग नयनी जानकीजी एक जीर्ण और मलीन वस्त्रसेही अपने सब अंगोंको ढांपे हुएहैं ॥ २६ ॥ इन देवीजीका वदन तेजसे हीन होगयाथा। परन्तु अपने पतिके पराक्रमको विचारकर उनके हृदयका तेज न नष्ट हुआ, मृगके बच्चेकी समान नेत्रोंवाली जानकीजी केवल अपने भले स्वभावके गुणसे अपनी रक्षा कर रहीहैं ॥ २७ ॥ तिन जानकीजीको हनुमानजीने मृगछौंनाके नेत्रोंकी समान नेत्रोंवाली देखा, जोकि त्रासित हुई हरिणीकी समान चारोंओरको देख रहींथीं ॥ २८ ॥ वह मानो अपने गरम श्वासोंसे फले फूले वृक्षोंको भस्मही किये देतीथीं, मानों वह साक्षात् शोककी राशिथीं, मानो वह दुःखकी तरंगोंसे शोकके समुद्रमें वह रहींथीं ॥ २९ ॥ उन क्षीण अंग वाली जानकीजीके सब अंग ठीक प्रमाणके अनुसार गठनवालेथे, वह विना अलंकारोंकेभी शोभायमान होरहीहैं; हनुमानजीनें ऐसी जानकीजीको देखकर अतुलानंद प्राप्त करते हुए ॥ ३० ॥ उन श्रेष्ठ नेत्रवाली जानकीजीको देखकर हनुमानजीके दोनों नेत्रोंसे टप टप आनंदके आंसू गिरने लगे, वह उसी स्थानसे श्रीरामचंद्रजीके लिये उनके चरणोंमें नमस्कार करते हुए ॥ ३१ ॥

नमस्कृत्वाथरामायलक्ष्मणायचवीर्यवान् ॥
सीतादर्शनसंहृष्टोहनुमान्संवृतोऽभवत् ॥ ३२ ॥

श्रीरामचंद्रजीको और लक्ष्मणजीकोभी नमस्कार करके वीर्यवान् हनुमानजी सीताजीके दर्शनसे उत्पन्न आनंदमें मग्न होकर उसी वृक्षके पत्तोंमें छिपकर बैठे रहे ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः॥

तथाविप्रेक्षमाणस्यवनंपुष्पितपादपम् ॥
विचिन्वतश्चवैदेहींकिंचिच्छेषानिशाभवत् ॥ १ ॥

तिसके पीछे फूले हुए वृक्षोंकी श्रेणीसे शोभायमान यह वन देख सीताजीका भली भांति दर्शन करनेकी अभिलाषासे अवसर खोजते २ हनुमानजीनें लग भग वह रात्रि बिताहीदी ॥ १ ॥

तब हनुमानजी, दो मुहूर्त रात्रि रहे. षड़ंग सहित वेदके जानने वाले श्रेष्ठ अग्निहोत्र करनें वाले ब्रह्म राक्षसोंकी वेदध्वनि श्रवण करनें लगे ॥ २ ॥ फिर मंगलके बाजे बजनें लगे। कानोंको सुख देनेवाले इन बाजोंके मनोहर शब्दसे महा बलवान महाबाहु दशानन रावण जागा॥ ३ ॥ वह महा प्रतापवान महा भाग रावण जागतेही नई माला व नये वस्त्र धारणकर जानकीजीका ध्यान करनें लगा ॥ ४ ॥ इस मतवाले राक्षस राज रावणनें काम वेगके वशहो अपना चित्त सीताजीमेंही लगाय रक्खाथा। इसलिये इस समय वह कामके वेग रोकनेंको समर्थ नहीं हुआ ॥ ५ ॥ इस्से वह रावण सब वस्त्राभूषण पहर अपूर्व श्री धारण करके सब ऋतुवोंके पुष्प, फल, समन्वित ॥६॥ अनेक जातिकी शाखोंसे शोभायमान, और छोटी २ पुष्करणियोंसे शोभित अनेक भांतिके पुष्पोंसे शोभा युक्त,सदा मदवाले पक्षि गणोंसे विचित्र॥७॥देखनेंमें अति मनोहर सुवर्ण चांदी आदिके खेलवाले मृगोंसे शोभायमान अशोक वाटिकाकी वीथियें (गलियें) देखकर दशानन, मणि और सुवर्णके तोरणोंसे शोभित ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके मृगोंसे युक्त, गिरेहुए फलोंसे व्याप्त वनें वृक्षोंसे पूर्ण, उस अशोक काननमें प्रवेश करता हुआ॥ ९ ॥ जैसे देवता गन्धर्वोंकी स्त्री इन्द्रके पीछे चलती हैं इसी प्रकार सैकडों स्त्री रावणके साथ २ पीछे २ चलीं॥ १० ॥ किसी२ कामिनीके हाथमें सुवर्णमय दीपक, किसी २ के हाथमें चामर व्यजन और किसी २ के हाथमें ताल आदिके पंखेथे, ॥ ११ ॥ कोई २ जलसे भरीहुई सुवर्णकी पिचकारियें ग्रहण कर आगे २ छिडकाव करती चली कोई २ उत्तम बिछौनें बिछाहुआ सोनेंका सिंहासनले पीछे २ चली॥१२॥ कोई२ चतुर स्त्री दहनें हाथमें मदिरासे पूर्ण उज्ज्वल रत्नमय कलशी लिये जातीथी ॥ १३ ॥ कोई राजहंसकी समान, पूर्ण चंद्रमाकी तुल्य प्रभावाला श्वेत वर्ण सुवर्णदंड युक्त छत्र ग्रहण करके पीछे २ गमन करनें लगी॥ १४ ॥ इस प्रकार रावणकी उत्तम २ स्त्रियें निद्रासे और मादकतासे अलसाते नेत्रवालीहो, अपने पतिवीर वर रावणके पीछे२ चलीं, जैसे मेघोंके पीछे बिजलीकी श्रेणी चमकती जातीहै॥ १५ ॥ उन स्त्रियोंके हार और बाजू अपने २ स्थानसे कुछ २ खसकसे गयेथे, और शरीरके लेपनसे भीजेथे; इन स्त्रियोंके बाल छूटे और मुखोंपर पसीनोंकी बूंदे झलक

रहीथी ॥ १६ ॥ नसेके उतरने और निद्राके हेतु इन सब सुंदर मुखवाली स्त्रियोंके शरीर घूमतेथे, और फूल मालाओंके साथ उनके बाल कुछ गुथसे गयेथे शरीरमें पसीनाथा ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे मदमाते नैन वाली सुवदनी सब रावणकी प्रियपत्नियें मानके मारे अपने २ कामके मारे गमन करते हुए अपने राक्षसपतिके पीछे २ चलीं आईथीं ॥ १८ ॥ उन सब स्त्रियोंका वह स्वामी महा बलवान पापमति निशाचर रावण कामपराधीन हुआ सीताजीके प्रति आसक्तचित्तहो मन्द २ डगमगी चालसे गमन करनें लगा ॥ १९ ॥ इसके पीछे पवनकुमार हनुमानजीनें उन मनोरमा स्त्रियोंकी क्षुद्रघंटिका और नूपुरोंका शब्द सुना ॥ २० ॥ महाकपि हनुमानजीनें यहभी देखाकि वह अपूर्व अचिन्तनीय असाधारण कर्मकारी रावण द्वार पर आया ॥ २१ ॥ सामने राक्षसियोंके गन्ध तैलपूर्ण दीपक धारण करकै आगे २ चलनेंसे रावणका सब शरीर साफ २ दिखलाई देताथा ॥ २२ ॥ काम, गर्व और मत्तता रावणमें विराज रहीथी. उसके बड़े २ विशाल नेत्र आलसी और लाल होरहेथे; इस समय रावण ऐसा ज्ञात होता मानो साक्षात् कामदेव धनुषका त्याग किये हुए सामनेको चला आताहै ॥ २३ ॥ रावण मनोहर मुक्ता समूह समन्वित, मथेहुए दूधके झागोंकी समान अति उजले निर्मल धुए हुए श्रेष्ठ वसन और पुष्पोंकी माला अंगोंसे खेंचकर यथा स्थानमें पहर रहाथा ॥ २४ ॥ रावण जितना २ निकट आनें लगा उतनाही हनुमानजी उस विटपके मध्यमें शत २ पुष्प और पत्तोंके बीचमें छिपकर इस बातको भलीभांति जाननेंकी इच्छा करनें लगे कि यह निकट आया हुआ कौनहै ॥ २५ ॥ देखते २ वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें देखाकि राजा रावणको जो मुख्य २ रूपयौवनसम्पन्न पटरानियेंथीं ॥ २६ ॥ महा यशवान राक्षसराज उन रूपवाली स्त्रियोंके घेरमें घिरकर मृग पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान, उस अशोक वनमें पैठा ॥ २७ ॥ मदमाता विचित्र वस्त्राभूषण धारी, महा बलवान शंकुकर्ण नाम जो एक राक्षस वनका रखवालाथा, केवल उसनेही प्रवेश करते हुए उस विश्वश्रवाके पुत्र राक्षसराज रावणको देखा, और किसी पुरुषनें नहीं ॥ २८ ॥ परम रूपवती स्त्रियों से घेरे हुए उस महा

तेजस्वी राक्षसराज रावणको तारा गणोंसे युक्त चंद्रमाकी समान शोभित देखकर महा कपि हनुमानजी ॥ २९ ॥ विचार करनें लगेकि हमनें पहले श्रेष्ठ गृहके मध्यमें जिसको शयन करते देखाहै; यह वहीहै; बस रावण यहीहै । ऐसा स्थिर करके महा तेजमान पवनकुमार हनुमानजी छलांग मारकर उस पेड़की अति ऊंची शाखा पर चढ़ गये ॥ ३० ॥ यद्यपि बुद्धिमान और सामर्थ्य युक्त हनुमानजी अति तेजस्वीथे तथापि वह उस रावणकी तेज प्रभाको न सहन कर बहुत पत्तोंवाली पेड़की शाखामें टिक कर छिपरहे ॥ ३१ ॥

सतामसितकेशांतांसुश्रोणींसंहतस्तनीम् ॥
दिदृक्षुरसितापांगीमुपावर्ततरावणः ॥ ३२ ॥

रावण, श्याम केशवाली चारु नितम्बिनी, श्रेष्ठ स्तनवाली, मृग नयनी जानकीका दर्शन करनेंकी अभिलाषासे उनके सामनेंको चला॥३२॥
इ०श्रीम०वा०आ०सुं०अष्टादशःसर्गः ॥ १८॥

एकोनविंशः सर्गः ॥

तस्मिन्नेवततःकालेराजपुत्रीत्वनिंदिता ॥
रूपयौवनसंपन्नंभूषणोत्तमभूषितम् ॥ १ ॥

इसके पीछे निन्दा रहित रूपवाली सर्वाङ्गसुन्दरी. राजकुमारी जानकीजी. रूप यौवन सम्पन्न उत्तम भूषणोंसे विभूषित ॥ १ ॥ राक्षस नाथ रावणको देखतेही वह सुंदर मुखवाली कम्पायमान होनें लगी; जैसे पवनके लगनेसे केला कांपताहै ॥ २ ॥ बड़े २ नेत्र वाली जानकीजी दोनों जांघोंसे पेट ढक,और कर कमलसे पयोधरोंको छिपाय बैठकर रोदन करनें लगीं ॥ ३ ॥ रावणनें वहां पहुंच कर देखाकि राक्षसियोंसे रक्षित वैदेही जी दुःखसे व्याकुल होकर समुद्रमें नौकाकी समान दुःख सागरमें डूब रहीहैं॥४॥कठिन नियमोंकी धारण करनेंवाली जानकीजी विना बिछी भूमि पर बैठी रहनेंसे ऐसी लगतीथीं मानो वृक्षकी शाखा टूटकर पृथ्वीपर गिरी पड़ीहै॥५॥जानकीजीके अंगोंमें जो गहना पहरनेंके स्थानथे वह सब मैलसे छाय रहेथे; वह सजनेंके योग्यथीं, परन्तु इस समय कोईभी सजाव उनपर नहींथा । इसलिये पंकमें सनी हुई मृणालके समान वह भलीभांति प्रका-

शित नहीं होतीथीं ॥ ६ ॥ मानो मनोरथके संकल्प रूप अश्वोंको जोड़-
कर विदितात्मा राजसिंह श्रीरामचंद्रजीके समीप उन जानकीजीनें यात्रा
कीहै ॥ ७ ॥ श्रीरामजंद्रजीमें प्राण लगाये हुए, महा सूख गई हैं अत्यंत
रोदन करतीहैं अपने प्रियजनोंके बिछड़नेसे एक मात्र ध्यान और शोक-
को आश्रय किये हुएहैं; शोकका पार नहीं देखतीहैं ॥ ८ ॥ मंत्रादिकोंसे
गति छेके सर्पराज वधूकी समान व्याकुल हो रहीहैं, मानो रोहिणी धूमके-
तुके तापसे संतापित हुई हैं ॥९ ॥ श्रेष्ठ आचार और सत् स्वभाव सम्पन्न
धर्मकुलमें उत्पन्नहो उस कुलके योग्यही विवाहके संस्कारसे संस्कारित
हुईहै परन्तु इस समय ऐसा बोध होताहै कि मानो राक्षसादि दुष्टकुलमें
उत्पन्न हो उसके अनुरूपही विवाहे जानेसे मलीन हो रहींहैं ॥१०॥ जान-
कीजीके देखनेसे ऐसा जान पड़ता मानो कोई बड़ी कीर्त्ति दुर्जनोंसे दूषित
हुई, श्रद्धा अपमानित हुई, बुद्धि क्षीण हुई, और आशा मानो हत होगई-
है ॥ ११ ॥ मानो देवताका स्थान विध्वंश होगया. मानो राजाकी आज्ञा
हत होगई, मानो उल्कादि उत्पात कालमें दिशायें प्रज्वलित होगई और
पूजा मानों नष्ट हो गईहै ॥ १२ ॥ मानो पूर्णमासीका चंद्रमा राहुसे ग्रसा
गया, कमलनी मल डालीगई. मानों सैनाका सर्दार मारागया है ॥ १३ ॥
मानो सूर्य भगवानकी प्रभा राहुसे अंधकार की गई, मानो नदीकी धारा
कम हुई. मानो यज्ञवेदी चंडालादि नीचोंसे छुईगई, नानों अग्निकी शिखा
बुझने पर हुईहै॥१४॥ मानों हाथीनें शुण्डके आघातसे पुष्कारिणीको व्या-
कुल करकै जल पक्षियोंको त्रासित और कमल फूलोंकी पंखडियोंको तोड
डालाहै ॥१५॥ जानकीजी पतिके शोकसे आतुर हो सूख गई हैं जैसे सोत
बंद होनेपर नदी सूख जातीहै अंगोंके न धुलनेसे कृष्णपक्ष की रात्रीकी स-
मान मलीन हो रहीहैं ॥ १६ ॥ सुंदराङ्गी सुकुमारी और रत्नमय गृहमें
बैठनेके योग्य सीताजी इस समय शोकसे संतापित होरहीहैं मानो ताजी
उखाड़ी हुई कमलकी डंडी धूपसे सूख रहीहै ॥ १७ ॥ मानो गजराज-
वधू पकड़ी और थंभमें बँधी हुई अपने यूथपतिके विरहसे शोकमें व्याकु-
ल होकर लंबे २ श्वास ले रहीहैं॥ १८ ॥ अयत्नसे एक बड़ी वेणी पीठप-
र पड़ी हुईहै; वर्षाके आगममें नील वर्णकी वनराजिसे जिस प्रकार पृथ्वी-
की शोभा होतीहै, वैसेही जानकीजीकी शोभा इस वेणीसे हो रहीहै ॥१९॥

उपवास. शोक. संताप. चिन्ता और भयके मारे महा क्षीण. और दीन हो रहीहैं, खाना पीना छोड़ दियाहै; तपही जिनके केवल एक अवलंबन है ॥ २० ॥ दुःखसे व्याकुल हो इष्ट देवताकी समान हाथ जोड़कर मानों रघुकुल तिलक श्रीरामचंद्रजीके निकट रावणके हारजानेकी प्रार्थना कर रहीहैं ॥ २१ ॥

समीक्षमाणांरुदतीमनिंदितांसुपक्ष्मता
म्रायतशुक्ललोचनाम् ॥ अनुव्रतांराममती
वमैथिलींप्रलोभयामासवधायरावणः ॥ २२ ॥

निद्रा रहित सीताजी रोते २ श्रेष्ठ पलकोंसे शोभित, अरुण प्रान्त युक्त बडे श्वेत नेत्रोंसे इधर उधर दृष्टि डाल रहीहैं,रावण ऐसी श्रीरामचंद्रजीकी अनुव्रता जानकीजीको देखकर अपना वध करानेंके निमित्तही उनको लालच दिखानें लगा ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः ॥

सतांपरिवृतांदीनांनिरानंदांतपस्विनीम् ॥
सत्कारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयतरावणः ॥ १ ॥

रावण इशारोंसे और मधुर वचनोंसे. राक्षसियोंसे घेरी हुई दीन भावापन्ना निरानंदा तपस्विनी सीताजीको अपना अर्थ समझानें लगा ॥ १ ॥ हे हाथीकी शुन्डके समान चढ़ाव उतार जांघवाली! जबकि तुमनें हमको देखतेही पयोधर और उदर दोनों अंग छिपालिये, तब इस्से जाना जाताहै कि तुम डरके मारेही अपनेको दिखानेकी चेष्टा नहीं करतीहो ॥ २ ॥ हे विशालाक्षी! हम तुम्हारी कामना करतेहैं, हे सर्वाङ्गगुण सम्पन्न! हे सर्व लोक मनोहरे! । हे प्रिये! तुम हमको बहुत मानसे मानो ॥ ३ ॥ सीते! इस स्थानमें कोई मनुष्य या काम रूपी राक्षस नहींहै; इसलिये हमसे जो तुमको भय हुआहै वह त्याग करो ॥ ४ ॥ हे भीरु! निश्चय जान लेना राक्षसोंका धर्मही यहहै कि वह सदा परस्त्री गमन, या पराई स्त्रीका हरण किया करतेहैं ॥ ५ ॥ तथापि हे मैथिलि! तुम्हारे अकाम होनेंसें हम तुमको स्पर्श नहीं कर सकते, परन्तु काम यथाकाम हमारे शरीर में फैल रहाहै, अ-

र्थात् हमारी इच्छा भली भांति तुम्हें देखनेंकीहै ॥ ६ ॥ हे देवी! तुम हमसे भय मत करो। प्रिये! हमारा विश्वाश करो और यथार्थ प्रेम हमसे करो , इस प्रकारसे शोकाकुल न होवो ॥ ७ ॥ एक वेणी धारण किये, विना विछाये पृथ्वी पर सोना, चिन्ता करना, मलीन वस्त्र पहरना, वृथा उपवास करना, यह सब बातें तुमको उचित नहीं हैं ॥ ८ ॥ यह विचित्र माल्य, चंदन, और अगर, विविध भांतिके बसन, अनेक प्रकारके दिव्य आभरण बड़े२मोलकी अनेक सवारियें ॥ ९ ॥ पान करनेंके योग्य बड़े मोलकी चीजें बहुत प्रकारके सोने,उठने, बैठनेके लिये आसन,गाना, नाच, बाजा यहांपर सब विद्यमानहैं हमको प्राप्तहो इन सबको तुम ग्रहण करो ॥ १० ॥ तुम स्त्रियोंमें रत्नहो; इसलिये ऐसी अवस्थामें तुम मत रहो; अंगोंमें गहनें पहनो; क्योंकि हमको प्राप्त करके तुम किस प्रकार विना गहने पहने हुए रहोगी? ॥ ११ ॥ तुम्हारी यह सुन्दर उमगी हुई युवा अवस्था वीती जातीहै; यह जवानी नदीके सोतेके जलकी समानहै, कि जो एक बार जल वह गया वह फिर लौट कर नहीं आता॥१२॥हेशुभदर्शने! ऐसा समझ पडताहै कि रूप रचनें वाले विधातानें तुमको बनाय कर फिर अपने कार्यको छोड़ दियाहै, क्योंकि और किसी स्त्रीमेंभी तुम्हारे रूपकी उपमा नहीं देखी जाती ॥ १३ ॥ हेवैदेही ! इस प्रकारका कौन मनुष्यहै जो रूप यौवन शालिनी तुम्हें प्राप्त करै और फिर उसका मन कुमार्गमें न जाय? औरकी क्या चलाई, ब्रह्माजीभी विपथगामी होजायँ ॥ १४ ॥ हेचंद्रानने ! निविड़ नितम्बे? हम तुम्हारे जो जो अंग देखतेहैं बस हमारी आंखें उसी २ अंगमें बँध जातीहैं ॥ १५ ॥ हेमैथिली! तुम हमारी भार्या बनो; हमारे अनेक २ उत्तम स्त्रियेंहैं, तुम उन सबमें मुख्य पटरानी बनो इस मोह को त्यागो ॥१६॥ हेभीरु! हमनें तीनों लोकोंको मथन करके जो रत्न हरण कियेहैं;वह सबभी तुम्हारे,और समस्त राज्यभी हम तुमको दान करतेहैं१७। हे विलासिनि ! हम तुम्हारी प्रसन्नताके लिये अनेक नगर मालासे विभूषित यह समस्त भूमंडल जीतकर तुम्हारे पिता जनकजीको देदेंगे ॥ १८ ॥ इस लोकमें ऐसा हम किसीको नहीं देखते जो संग्राममें हमारे सन्मुख लडै देखो हमारा बल वीर्य युद्धमें उपमा रहित होगयाहै॥१९॥रणमें हमने सुर

असुरोंको वारवार पराजय किया और उनकी ध्वजायें तोड डालीहैं ऐसी अवस्थाको प्राप्त होकर उन लोगोंमें हमारे सामनें युद्धमें खडे रहनेंकी सामर्थ्य नहीं है ॥२०॥ तुम हमारी अभिलाषा करो जिस्से तुम्हारा शृंगार कराया जाय और सुन्दर चमकीले दमकीले गहनोंसे तुम्हारे अंग सजाये जांय ॥ २१ ॥ शृंगार करनें से जो तुम्हारा रूप होगा उसको हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं हे सुन्दरवदनि! हमारे ऊपर कृपाकरकै तुम शृंगार करके सजो ॥ २२ ॥ हे भीरु! इच्छानुसार विविध भांतिकी भोग करनेंकी वस्तु यें तुम भोग करती रहकर विहार करो या पानकरो जितना इच्छाहो उतना धन या भूमि किसी को दान कर दो ॥ २३ ॥ हमारा विश्वास करके जोजो वस्तु चाहिये उनको हमसे माँगो, और ढिठाईके साथ हमें आज्ञा करतीरहो। जो तुम अनुग्रह करकै हमसे अपनी वांछित वस्तुयें चाहती रहोगी तो तुम्हारे बन्धु बान्धवोंकी वांछाभी पूर्ण होगी॥२४॥ हेभद्रे हे यशस्विनी तुम हमारी ऋद्धि और संपदाका दर्शन करो हे सुभगे! अब तुम चीर वल्कल धारी श्रीरामचंद्रजीको लेकर क्या करोगी ॥ २५ ॥ और इस प्रकार तौ कोई उपाय नहीं कि रामचंद्र हमको जीतलें वह श्री भ्रष्ट वनवासी व्रताचारी और पृथ्वी पर शयन करताहै और इसमें भी संदेह है कि वह अवतक जीवित है वा नहीं ॥ २६ ॥ हे जानकि बगलोंकी पांतिको आगे किये नील मेघसे ढकी चंद्रमाकी प्रभाकी समान राम अब तुमको नहीं देख पावेगा ॥ २७ ॥ हिरण्यकशिपु जिसप्रकार इन्द्रके हाथमें गई हुई कीर्त्तिको फिर प्राप्त करनेंमें समर्थ नहीं हुआ, रामचंद्र वैसेही हमारे हाथसे तुम्हारा उद्धार करनेंमें समर्थ नहीं होगा ॥ २८ ॥ हेसुन्दर दांत वाली! हेचारु हाँसिनी! (सुन्दर हँसनें वाली,) हेचारुलोचने? (सुन्दर नेत्रवाली) हे विलासिनी विनताके पुत्र गरुड़जी जिस प्रकार सर्पोंके समूहको हरणकर लेतेहैं, वैसेही तुमभी हमारे मनको हरण करतीहो॥२९॥ तुम केवल एक पुराना रेशमीन वस्त्र पहर रही हो दुर्बल भी हो और तुम्हारे अंगोंमें कोई गहनाभी नहीं है तथापि तुमको देखकर अपनी सुन्दर स्त्रियों में प्रीति करनेको अब हमारी इच्छा नहीं होतीहै ॥ ३० ॥ हमारे रनवास में सर्व गुण की खान जो स्त्रियें हैं हे जानकि तुम उन सबके ऊपर अपनी प्रभुताई करो ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण केशवाली त्रिलोकीकी सब सुन्दर स्त्रियां

हमारे यहां हैं अप्सरायें जिस प्रकार लक्ष्मीजीकी सेवा करती हैं वैसे ही वह सब हमारी स्त्रियां तुम्हारी सेवा करेंगी ॥३२॥ हे सुभगे! हे सुश्रोणि! कुवेर का जो कुछ धन रत्नहै तुम हमारे साथ मिलकर उन सबको और समस्त लोकोंके सुखको भोग करो ॥३३॥ हे देवि! तपस्या, बल, विक्रम, धन, तेज और यश रामचंद्र इन किसीमेंभी हमारी बराबर नहीं हैं॥ ३४ ॥ तुम पान विहार और विविध भोगोंको भोगो ढेरके ढेर धन चाहे जिसको दान-करो, जितनी चाहो उतनी पृथ्वी चाहे जिसको देडालो हेललने? हम तुम्हारी सब मनोकामना पूर्ण करेंगे और जितनें तुम्हारे बंधु बान्धव, और कुटुम्बीहैं, तुम उन सबकी वांछा पूर्णकरो ॥ ३५ ॥

कुसुमिततरुजालसंततानिभ्रमरयुतानि
समुद्रतीरजानि ॥ कनकविमलहारभूषि
तांगिविहरमयासहभीरुकाननानि ॥ ३६ ॥

हेविमलसुवर्णहार भूषिताङ्गी! उज्ज्वल सुवर्णके हारसे शोभित शरीर वाली हे भीरु तुम, हमारे साथ फूल खिले हुए वृक्षोंसे व्याप्त भौंरों से पूर्ण समुद्रके तीर उत्पन्न हुए वनोंमें विहार करो ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे विंशःसर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वासीतारौद्रस्यरक्षसः ॥
आर्तादीनस्वरादीनंप्रत्युवाचततःशनैः ॥ १ ॥

व्याकुल और करुणावर्त्ती हुई वैदेही जानकीजी उस भयानक राक्षस रावणके यह वचन सुनकर धीरे २ दुःखित होकर उससे कहने लगीं ॥१॥ तपस्विनी जानकीजी दुःखसे पीडितहो रुदन करने लगीं। वह पतिव्रता अपने मनमें अपने पतिकीही चिन्ता करने लगीं, उनका शरीर मारे घबडाहटके काँपनें लगा ॥ २ ॥ सामनेही एक तृणकी ओटकर शोकाकुल सीताजी उस रावणसे बोलीं; कि रावण! हममेंसे अपने मनको फिराओ; और अपनी स्त्रियोंमें मनको लगाओ ॥ ३ ॥ पापका करनेंवाला जिस प्रकार अणिमा लघिमा आदि सिद्धियोंको नहीं पाय सकता; वैसेही तुमभी हमको प्रार्थना करनेंके योग्य नहींहो । हम एक पतिव्रताहैं; किसी

कहनें उचित नहीं ॥ १३ ॥ हे राघव राजा प्रदेशमें रहनेंसे दुःखी नहीं होते हैं राजाको तो क्षत्र धर्मसे प्रजा पालनी ही उचितहै ॥१४॥ हे नरश्रेष्ठ जिससमय तुम्हारी इच्छा हो तभी तभी हमको देखनेको चले आया करो, और फिर २ अपने पुरको चले जाया करो ॥ १५ ॥ तुम मुझे प्राणोंकीसमान प्यारे हो इसमें कुछभी संदेह नहीं परन्तु राज्य पालनभी तो अवश्य करना उचितहै ॥ १६ ॥ इस कारण भाई आप सात दिनतक यहां रहिये और इसके उपरान्त सैना वाहन सहित फिर मधुपुरीको चले जाना ॥ १७ ॥ रघुनाथजीके यह धर्मयुक्त मनोगत वचन श्रवण करके शत्रुघ्नजी दीन हो जो आज्ञा ऐसे कहते हुए ॥१८॥ इस प्रकार रामचंद्रकी आज्ञासे सात रात रहकर फिर महावीर शत्रुघ्नजीने जानेंका विचार किया ॥ १९ ॥ सत्यपराक्रम महात्मा रघुनाथजी और भरत लक्ष्मणको आमंत्रण करके रथपर चढ़े ॥ २० ॥

दूरंपद्भ्यामनुगतोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥
भरतेनचशत्रुघ्नोजगामाशुपुरींतदा ॥२१॥

महात्मा लक्ष्मण भरतजी शत्रुघ्नजीके साथ कुछ दूरतक पैरों पैरों चले और फिर पुरीको शीघ्र लौटि आये ॥२१॥ इ०श्रीम०वा०आ०उ०भा० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥

प्रस्थाप्यतुसशत्रुघ्नंभ्रातृभ्यांसहराघवः ॥
प्रमुमोदसुखीराज्यंधर्मेणपरिपालयन् ॥ १ ॥

भाइयोंके सहित रघुनाथजी शत्रुघ्नजीको बिदाकरके धर्म पूर्वक राज्य करते सुखसे रहनें लगे ॥ १ ॥ फिर कुछ दिन बीतनेंपर एक उस देशका बूढा ब्राह्मण मृतक बालक लेकर राजद्वारपर आया ॥ २ ॥ मैंने पूर्वजन्ममें न जानें क्या पाप कियाहै इस प्रकार स्नेह दुःख भरी बहुतसी बातें कहकर वह रोने लगा वारंवार हे पुत्र! हे पुत्र! ऐसा कहनें लगे॥३॥हाय मैंने क्या पाप पूर्वजन्ममें कियाथा जो मेरा, इकलौता पुत्र मर-गया॥४॥ मेरा बालकतो अभी तरुणभी नहीं हुआथा अभी पांच * हजार

* 'पंच वर्ष सहस्रकम्' यह वर्ष शब्द दिनके अर्थमेंहै इससे वर्षसे कुछ न्यून अवस्था जाननी।

दिनकी अवस्थाथी हाय पुत्रकालमेंही तुम मुझे दुःख देनेके निमित्त कालको प्राप्त हुए॥५॥ हे पुत्र! मैं और तुम्हारी माता तुम्हारे शोकसे थोड़ेही दिनोंमें मर जांयगे इसमें कुछ संदेह नहीं॥६॥न तो मैंने किसीसे झूंठही बोला न मैंनें किसीकी हिंसाही करी न मैंनें मन वचन कर्मसे किन्ही प्राणियोंका कभी कुछ पापस्मरण किया ॥ ७ ॥ फिर किस पापसे यह मेरा पुत्र बाल्य अवस्थामेही यमलोकको गया और अपने पितरोंके श्रद्धादि कर्म न कर सका ॥ ८ ॥ रामचंद्रके देशोमें इसप्रकार घोर दर्शन वार्त्ता हमनें नहीं सुनी जो कि अकालमें प्राणी मरतेहों ॥ ९ ॥ निःसन्देह इसमें कोई रामचंद्रकाही बड़ा पापहै, जिस्से कि उनके देशमें बालकोंकी मृत्यु होनें लगी॥ १० ॥ और देशके रहनेंवाले बालकोंको मृत्युसे भय नहींहै सो हे राजन्! आप इस मेरे मरे हुए बालकको जिवाओ ॥ ११ ॥ नहीं तो मैं अनाथोंकीसमान स्त्री सहित राजद्वारपर प्राण दे दूंगा उससमय तुम ब्रह्महत्याको प्राप्त होकर सुखी होना ॥ १२ ॥ हे राजन्! भाइयों सहित आपकी बड़ी उमर होगी? हे महाबली हम आपके राज्यमें बहुत सुखसे रहे ॥ १३ ॥ आपके राज्यमें स्थित रहनेंसे हमें यह सुख मिला कि जो हमकालके वशमें पड़े आपके राज्यमें कुछभी सुख नहीं ॥ १४ ॥ इससमय यह महात्मा इक्ष्वाकुओंसे सनाथ हुआ, देश रामचंद्रके हस्तगत हो बालकोंकी मृत्यु होनेसे अनाथोंकीसमान होगयाहै ॥ १५ ॥ जब प्रजा विधिपूर्वक पालन नहीं होती तो खोटे आचरण करनेंवाले राजाके दोषसे अकालमेंही प्राणी मरतेहैं ॥ १६ ॥ अथवा आपकी असावधानीसे और रक्षा न करनेसे जनपद और नगरोंमें मनुष्य असत् व्यवहार करतेहैं इस कारणसे अकालमें कालका भय होताहै ॥ १७ ॥ अवश्य राजदोष पुर वा-जनपदमेंही है इसमें संदेह नहीं जिस्से यह बालक मरगया ॥ १८ ॥

एवंबहुविधैर्वाक्यैरुपरुध्यमुहुर्मुहुः ॥
राजानंदुःखसंतप्तःसुतंतमुपगूहति ॥ १९ ॥

इसप्रकारसे महादुःखीहो विविध वाक्योंको कहता हुआ बालकको ढकता रामचंद्रके द्वारपर खड़ा रहा ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये उत्तरकांडे त्रिसप्ततितमसर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥

तथातुकरुणंतस्यद्विजस्यपरिदेवनम् ॥
शुश्रावराघवःसर्वंदुःखःशोकसमन्वितम् ॥ १ ॥

इसप्रकार शोक और दुःख सहित करुणाभरे उस ब्राह्मणके सब वचन रामचंद्रनें सुने ॥ १ ॥ तब बड़े दुःखीहो रामचंद्रनें वशिष्ठ वामदेव भाई और शास्त्रके जाननेंवाले महात्माओंको बुलाया ॥ २ ॥ इसके उपरान्त वशिष्ठके सहित वह मंत्री ब्राह्मण आये और देवतुल्य महाराज रामचंद्रसे (वर्धस्व) आपकी वृद्धिहो यह वचन बोले ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन जाबालि, गौतम, नारद जी ॥ ४ ॥ यह सब ब्राह्मण श्रेष्ठ आसनोंपर बैठे आये हुए उन सब महर्षियोंको रामचंद्रनें हाथ जोड़ प्रणाम किया ॥ ५ ॥ मंत्री और शास्त्र जाननेंवाले महात्मा जब सत्कार पाचुके तब उन तेजस्वी महात्माओंके बैठनेपर ॥ ६ ॥ रामचंद्रनें उनसे सब वृत्तान्त कहाकि यह ब्राह्मण इस प्रकारके वचन कह हमको पाप लगाताहै; इस प्रकार रामचंद्रके दीन वचन सुनकर नारदजी ॥ ७ ॥ उन ऋषियोंके बीच स्वयं श्रेष्ठ वचन कहनें लगे हे राजन्! सुनिये जिसकारण कि अकालमें इस बालककी मृत्यु हुई ॥ ८ ॥ हे राम रघुनंदन! उसको सुनकर जो कर्त्तव्यहो सो करो राजन्! पहले सतयुगमें तब ब्राह्मणही तपस्वी होतेथे ॥ ९ ॥ हे राजन्! ब्राह्मणको छोड़कर और कोई तपस्वी नहीं होतेथे और वर्ण नित्यनैमित्तक कर्म करतेथे; वह युग तपस्यासे दीप्तमानथा ब्राह्मणवर्णही उसमें प्रधानथे और ज्ञान होनेसों वे प्राणी अज्ञानावरणसे रहितथे ॥ १० ॥ इस कारण वे सब प्राणी दीर्घदर्शी होतेथे और सब अकालमें मरण धर्मसे रहितथे फिर जब त्रेतायुग आनकर प्राप्त हुआ इसमें प्राणीयोंकी ब्रह्मात्मा बुद्धि शिथिल होजातीहै ॥ ११ ॥ जैसे सतयुगमें तप और वीर्यमें ब्राह्मण सबसे अधिकथे इस त्रेतायुगमें तपस्या और वीर्य में क्षत्रिय सबसे अधिक होतेहैं इस प्रकार जो त्रेतायुगके आनेंसे महात्मा क्षत्रिय ॥ १२ ॥ जो सतयुगमें ब्राह्मणों से तपस्यामें हीनथे वे तपस्याकरने सें ब्राह्मणोंकी समान हो गये इससे यह ब्राह्मण और क्षत्रिय तपस्या और वीर्यमें दोनों समान हुए ॥ १३ ॥

[अर्थात् सतयुगके ब्राह्मणोंसे त्रेतायुगके ब्राह्मणभी कुछ न्यून हुए] जब इस त्रेतायुगमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंका कुछ न्यूनाधिक न रहा तो उस-समय स्मृतिकार मनु आदिकोनें चारों वर्णोंके समस्त धर्म पृथक् २ स्थापनकर शास्त्र बनाये जिसमें उनके आचार विचार सब वर्णन किये सत् युगमें तो स्वतःही चारौं वर्ण अपने २ धर्मपर स्थित थे ॥ १४ ॥ इस प्रकार यह त्रेतायुग धर्म निरत यज्ञादि धर्मकी बहुताईके कारण पाप परंपरासे हीन था; परन्तु मतभेदसे अधर्मसे कुछेक आक्रान्त होनेसे [हिंसा, झूंठ, असंतोष, विग्रह इन चार पदवाले] अधर्मका एक चरण पृथ्वीमे प्राप्त हुआ; अर्थात् त्रेतायुगके पुरुष सत्युगके पुरुषोंकी तरहसे निर्मलज्ञान रहित हो ब्रह्मज्ञानके अधिकारसे शून्यहो अग्निहोत्रादि धर्ममेंही प्रवृत्त हुए उस ज्ञानके अभावसे [हिंसा] रूपी अधर्मका एक पादभी जगत्में प्रचलित् हुआ ॥ १५ ॥ जब इस युगका एक चरण अधर्म युक्त होगा तभी तेज मंद हो जायगा ॥ १६ ॥ पूर्व पुरुषोंके जो घर और खेतादि थे त्रेतायुगके बीच मनुष्योंमें इनको निमित्त परस्पर रजो मूलक द्वेषका संचार हुआ पृथ्वीमें त्रेतायुगके समय जो अधर्मका चरण उत्पन्न हुआ था उस्से मलस्वरूप अनृत द्वेष उत्पन्न हुए अर्थात् युगीपुरुषोंको जोर जो गुण मूल कृष्णादि जीवनोपाय मलवत् त्याज्यथे इन्हीके निमित्त द्वेष होनेसे अधर्म एक पाद प्राप्त हुआ कारण कि सतयुगमें तो विना जोतेही अन्न उत्पन्न होताथा काम क्रोध रजोगुणसे ही उत्पन्न होताहै रजोगुण विवादका मूलहै ॥ १७ ॥ अधर्म अनृत द्वेष इनका एक चरण आजानेंसे और कुकर्मके वश पुरुषोंकी आयुका परिणाम कम होगया ॥ १८ ॥ अधर्म से पृथ्वीमें जब अनृत उत्पन्न हुआ तब पुरुषगण अनृतके द्वारा आयु क्षयको मिटानेंके निमित्त सत्यधर्मपरायण होकर विविध शुभकार्योंका आचरण करनें लगे अर्थात् त्रेतायुगमें यज्ञादि अनुष्ठानद्वारा शीघ्रमन शुद्ध होकर अभिमानकी निवृत्ति होतीथी ॥ १९ ॥ त्रेतायुगमें ब्राह्मण क्षत्रिय लोग तपस्यामें लगे रहते और वैश्य शूद्रगण उनकी सेवा करतेहैं ॥ २० ॥ उस कालमें ब्राह्मण क्षत्रियोंकी सेवा करनाही वैश्य और शूद्रोंका परमधर्मथा विशेष करके शूद्रोंको तो

सब वर्णोंकी सेवा करनाही परम धर्महै ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! त्रेतायुगके अंतमें वैश्य और शूद्रोंको अनृत रूप अधर्मके भली भांति प्राप्त होजानेसे ब्राह्मण और क्षत्रियगण उनके संगमें न्यूनताको प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ तब अधर्मका दूसरा चरण पृथ्वीपर गिरा तब द्वापर युगका आरंभ हुआ ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! द्वापर युगमें धर्मके दो चरण टूट गये और अधर्म और असत्यकी वृद्धि हुई ॥ २४ ॥ इस द्वापर युगमें वैश्य लोग भी तप करनें लगे इस प्रकारसे तीन युगमें तीन वर्ण यथा क्रमसे तपस्या करते हुए ॥ २५ ॥ तपरूप धर्म युग युगमें तीन वर्णोंमें प्रतिष्ठित हुआहै; परन्तु हे नरश्रेष्ठ! इस तीन युगोंमें शूद्र तप धर्मके अधिकारी नहीं थे ॥ २६ ॥ परन्तु हे नृपश्रेष्ठ! हीन वर्ण शूद्रभी महातप करताहै यहां शूद्र योनिमें उत्पन्न हुए जीवतो कलियुगमेंही तपस्या करेंगे ॥ २७ ॥ हे राजन्! यदि द्वापरमें शूद्र तपस्या करैं तौ भी बड़ा अधर्महै आपके राज्यमें तौ इसी समय महातपस्वी ॥ २८ ॥ दुर्बुद्धि शूद्र तपस्या करताहै इससेही यह ब्राह्मणका बालक मरगया कारणकि जिन नृपतिके राज्यमें जो कोई अधर्म वा अकार्य करताहै ॥ २९ ॥ उन दुर्मति मनुष्योंका अकार्य दरिद्रताका कारणहै उसको जो निवारण नहीं करताहै वह राजा निःसन्देह नरकको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ धर्मपूर्वक प्रजापालन करनेंवाले राजाकू प्रजाके अध्ययन तपस्या सुकृत कर्मोंका छठा भाग प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ फिर छठे भागका भागी होकर राजा प्रजाका पालन क्यों न करे इस कारण हे पुरुषसिंह आप अपनें राज्यमें खोज करिये ॥ ३२ ॥

दुष्कृतंयत्रपश्येथास्तत्रयत्नंसमाचर ॥
एवंचेद्धर्मवृद्धिश्चनृणांचायुर्विवर्धनम् ॥
भविष्यतिनरश्रेष्ठबालस्यास्यचजीवितम् ॥ ३३ ॥

जहां जहां पाप देखो वहां वहां यत्नसे उसका निवारण करो इस्सै धर्मकी वृद्धि और मनुष्योंकी आयुभी बढ़ैगी और हे नरश्रेष्ठ! यह बालकभी जीवित होजायगा ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उ० भा० चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥

नारदस्यतुतद्वाक्यंश्रुत्वाऽमृतमयंयथा ॥
प्रहर्षमतुलंलेभेलक्ष्मणंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

नारदजीके अमृतकीसमान वचन श्रवणकर रामचंद्रजी बहुत प्रसन्नहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य! हे सुव्रत! जाकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठको समझाओ और उस बालकके शरीरको तेलकी नावमें धरादो ॥२॥ बड़ी २ दिव्यगंध सुगंधित तेलमें उसके शरीरको रक्खो हे सौम्य! जिस प्रकारसे उसका शरीर न बिगड़े ऐसा करो ॥ ३ ॥ जिस प्रकारसे कि इस शुभाचार युक्त बालकका शरीर किसी प्रकारसे न बिगड़े वही तुम करो ॥ ४ ॥ रामचंद्रनें इस प्रकार शुभलक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे कहकर मनसे पुष्पक विमानको स्मरण किया कि महायशस्वी पुष्पक आओ ॥ ५ ॥ ॥ रामचंद्रकी इच्छा जानकर वह सुवर्णभूषित पुष्पकविमान एक मुहूर्तमात्रमें रघुनंदनके समीप आगया ॥ ६ ॥ और दंडवतकर बोला महाराज मैं यह उपस्थितहूं,हे महाबाहो मैं! आप के वशीभूत आपका दास उपस्थितहूं॥७॥ मनुष्यकी बोलीसे पुष्पकका मनोहर भाषण श्रवणकर रघुनाथजी महर्षियोंको प्रणामकर उसपर सवार हुए ॥ ८ ॥ सुन्दर कान्तिवाला खड्ग धनुषबाण ग्रहणकर और भरत शत्रुघ्नको नगरकी रक्षामें नियुक्तकर ॥ ९ ॥ रामचंद्रजी इधर उधर ढूंढते हुए पूर्व दिशाको गये फिर वहांसे हिमालयसें आवृत उत्तर दिशामें आये ॥ १० ॥ वहांभी रघुनाथजीनें किंचित् मात्र पाप नहीं देखा फिर सब पूर्वदिशाको अच्छी प्रकार शोधकर रघुनाथजी देखनें लगे ॥ ११ ॥ वहांके वासी सब शुद्धाचार होनेंसे दर्पणके समान निर्मलथे महाबाहु रामचंद्रनें पुष्पकविमानपर स्थितहो यह सब देखा ॥ १२ ॥ तब राजर्षिनंदन रघुनाथजी दक्षिण दिशाको आये और उन्होंने विन्ध्याचलके उत्तर पार्श्वमें शैवल पर्वत और एक बड़ा सरोवर देखा ॥ १३ ॥ महातपी श्रीमान् रघुनाथजीनें उस सरोवरके निकट तपस्या करते नीचेको मुखकर लटकते हुए उस तपस्वीको देखा ॥ १४ ॥ रघुनाथजी उसके पास आकर उस उत्तम प्रकारसे तप करते हुए तपस्वीसे बोले हे सुव्रत! तुम धन्यहो ॥ १५ ॥ हे दृढ विक्रम तपस्याव्रती आप कौन वर्णहैं जो

ऐसा तप करतेहैं मैं दशरथ पुत्र रामचन्द्र तुमसे पूछताहूं ॥ १६ ॥ तुमनें तपस्या किस निमित्त की है स्वर्ग की इच्छा है वा और कुछ, यह क्याहै जिस वर पानेके निमित्त तुम दुस्तर तपस्या करतेहो ॥ १७॥ आप जिस निमित्त तपस्या करतेहैं वह मेरे सुन्नेकी इच्छाहै हे महाशय! आप ब्राह्मण वा दुर्जय क्षत्रिय तीसरे वर्ण वैश्य वा शूद्रहैं सो सत्य कहिये ॥ १८ ॥

इत्येवमुक्तःसनराधिपेनअवाक्शिरा
दाशरथायतस्मै ॥ उवाचजातिंनृपपुं
गवाययत्कारणंचैवतपःप्रयत्नः ॥ १९ ॥

जब महाराजनें ऐसा कहा तो वह नीचेको मुख किये तपस्या करनें-हारा नृपश्रेष्ठ रामचन्द्रजीसे अपनी जाति और तपस्या करनेंका कारण कहनें लगा ॥१९॥ इ० श्रीम० वा०आ० उ० पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वारामस्याक्लिष्टकर्मणः॥
अवाक्शिरास्तथाभूतोवाक्यमेतदुवाचह ॥ १ ॥

अक्लिष्ट कर्म रघुनाथजीके यह वचन सुनकर वह तपस्वी इस प्रकारसे कहनें लगा॥ १॥हे राम! मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआहूं; और इसी शरीरसे दे-वत्व प्राप्त करनेंकी इच्छा करके महा तपस्या करताहूं ॥ २॥ हे राम! काकु-त्स्थ मैं सत्य कहताहूं देवलोक जीतनेंकी मेरी इच्छाहै मेरी जाति शूद्र और संबूक नामहै ॥ ३ ॥ शूद्रके यह वचन कहतेही रघुनाथजीनें बड़ी कांति-वाला विमलखड्ग कोषसे निकालकर उस शूद्रका शिर छेदन कर डा-ला ॥ ४ ॥ उस शूद्रके मारनेंपर इन्द्र और अग्नि सहित देवता धन्य २ कहकर रामचन्द्रकी बड़ाई करनें लगे ॥ ५ ॥ उसी समय दिव्य सुगन्धित फूलोंकी वर्षा हुई; वायुसे छोड़े हुए पुष्प चारों ओर गिरनें लगे ॥ ६ ॥ सत्य पराक्रम रामचन्द्रसे प्रसन्न होकर सब देवता कहनें लगे हे महामते! आपने यह देवताओंका कार्य कियाहै ॥ ७ ॥ हे शत्रुतापन सौम्य रघुनं-दन! यह शूद्र स्वर्गका अनधिकारी आपके करनेंसेही हुआ आप इस कारण हमसे वर मांगिये ॥ ८ ॥ सत्यपराक्रमी रघुनाथजी देवताओंका

वचन सुनकर हाथ जोड़ सहस्राक्ष इन्द्रजीसे बोले ॥ ९ ॥ यदि आप सब देवता मुझसे प्रसन्न हैं तौ यही ईच्छित वर दीजिये कि यह ब्राह्मणका पुत्र-जी जाय ॥ १० ॥ मेरेही अपचारसे यह ब्राह्मणका इकलौता पुत्र अप्राप्त कालमें मरकर यम लोकको गया ॥ ११ ॥ हे देवताओ आपका मंगलहो आप उस ब्राह्मणके पुत्रको जिवादो क्योंकि मैं उसके जिवानेंकी प्रतिज्ञा कर चुकाहूं वह मेरा वचन झूठा न होना चाहिये ॥ १२ ॥ रामचन्द्रके यह वचन सुनकर वे देवता प्रीतिं सहित रघुनाथजीके प्रति कहनें लगे ॥१३॥ हे रामचन्द्र ! अब आप गृहको पधारिये वह बालक तौ आज जीउठा और अपने पिता मातासे मिलगया ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्र ! जिस मुहूर्त्तमें आपने इस शूद्रको मारा; उसी समय वह बालक जी गया ॥ १५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! रामचंद्र ! आपका कल्याणहो अब हम अगस्त्यजीका श्रेष्ठ आश्रम देखनेको जातेहैं॥१६॥उन महाद्युतिमान ऋषिकी आज उस यज्ञकी दीक्षा समाप्त हुई जो वह बारह वर्षसे जलमेंही सोया करतेथे ॥ १७ ॥ हे रघुनाथजी हम उन मुनिराजको प्रसन्न करनें जातेहैं यदि आपकी इच्छा हो तो आपभी उन ऋषिश्रेष्ठका दर्शन कीजिये ॥ १८ ॥ रघुनाथजी देवताओंके वचन सुनकर बोले ऐसाही करेंगे यह कह स्वर्णभूषित विमानपर सवार हुए ॥ १९ ॥ यह देवतालोग अपने २ विमानोंपर बैठ अगस्त्यजीको देखनें गये और रघुनाथजीभी शीघ्रतासे अगस्त्यजीके तपोवन देखनेंको गये ॥ २० ॥ तपोनिधि धर्मात्मा अगस्त्यजीनें देवतोंको आया देखकर उन सबका सम्यक्प्रकारसे पूजन् सत्कार किया ॥ २१ ॥ वह सम्पूर्ण देवता अगस्त्यजीकी पूजा ग्रहणकर पीछे स्वयंभी महामुनिको पूज प्रसन्नहो साथियोंसहित स्वर्गको चले गये ॥ २२ ॥ देवताओंके जानेंके उपरान्त रामचंद्रजीनें विमानसे उतर फिर ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यजीको प्रणाम किया ॥ २३ ॥ वह रघुनाथजी अग्निकी समान दीप्तिमान महात्मा अगस्त्यजीको अभिवादनकर और उनसे अतिथि सत्कार पाय आसनपर बैठे ॥ २४ ॥ महातेजस्वी महातपस्वी अगस्त्यजी रामचंद्रजीसे बोले हे राघव ! तुम भले आये आप आनंदसेतोहैं ॥ २५ ॥ हे राम ! तुम अनेक गुणसम्पन्न होनेंके कारण तुम बहु मान्यहो और अतिथिहो विशेष करके हमारे हृदयमें टिके रहनेंके कारण तुम अधिक

पूजाके योग्यहो ॥ २६ ॥ देवताओंने कहाथा कि रघुनाथजीनें शूद्रको माराहै और ब्राह्मणके पुत्रको जिलाया अब आपके देखनेंको आया चाहतेहैं ॥ २७ ॥ हे रामचंद्र आजकी रात आप हमारे यहांही रहिये कारण कि आपही श्रीमान् साक्षात् नारायणहैं सबके प्रभुहैं सारा संसार आपमें प्रतिष्ठितहै ॥ २८ ॥ हे प्रभु आप सब देवताओंके प्रभुहैं आपही सनातन पुरुषहैं; आज रहिये प्रातःकालही पुष्पकपर बैठकर अयोध्यापुरी-को चलेजाना ॥२९ ॥ हे सौम्य! यह दिव्य आभरण विश्वकर्माका बनाया हुआ हमारेपासहै जो अपने तेजसे देदीप्यमानहै॥३० ॥ हे काकुत्स्थ राम-चंद्र इसको ग्रहणकर आप हमारा प्रिय कीजिये कारणकि मनसे किसीको कोई वस्तु देनेंपर फिर उसे प्रदान करनेंसे महाफल होताहै ॥ ३१ ॥ आप इस आभरणके धारण करनेंमें समर्थहैं कारण कि बड़े २ उत्कृष्ट फल दे सकतेहैं; आप तो इन्द्रादिक देवताओंकोभी मारनेंको समर्थहैं; इसकारण हमारे दिये भूषण लेनेंमें संकोच न कीजिये कि हम क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे कोई वस्तु केसे ग्रहण करैं ॥ ३२ ॥ इसकारण हमारे दिये भूषणको आप विधिपूर्वक ग्रहण कीजिये; यह वचन सुन महारथी इक्ष्वाकुनंदन रामचंद्र अगस्त्यजीसे बोले ॥ ३३ ॥

"बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ रघुनाथजी क्षत्रियधर्म स्मरण कर बोले महाराज ब्राह्मणसे दान लेनेंका बड़ा दोषहै ॥ १ ॥ क्षत्रिय होकर ब्राह्मणसे किस प्रकार कोई वस्तु ली जाय हे विप्रेन्द्र विशेषकर क्षत्रियोंको प्रतिग्रह लेनेका बड़ा दोषहै ॥ २ ॥ और फिर ब्राह्मणसे प्रतिग्रह कैसे लिया जाय सो आप कहिये रामचंद्रके ऐसा कहनेंपर अगस्त्यजी बोले ॥३॥ हे राजन् ब्रह्मज्ञान पूर्ण सतयुगमें प्रजाका कोई राजा नहींथा देवतोंके राजा इन्द्र ही थे ॥ ४ ॥ तब वह प्रजा ब्रह्माजीके पास जाय राजा बनानेंके निमित्त प्रार्थना करने लगी हे भगवन्! आपने देवताओंका राजा इन्द्र तो बना दिया ॥ ५ ॥ हे लोकेश हमारे निमित्त भी कोई नर श्रेष्ठ राजा दीजिये जिसकी पूजाकर हम पाप रहितहो स्वच्छन्द विचरैं ॥ ६ ॥ हमारा यह निश्चयहै कि हम विनाराजाके नहीं रहैंगे तब सुरश्रेष्ठ ब्रह्माजीनें लो-कपाल इन्द्रादि ॥ ७ ॥ बुलाकर कहाकि तुम सब अपने २ तेजसे भाग दो तब सब लोकपालोंनें अपने २ तेजोंमें से भाग दिया ॥ ८ ॥ तब ब्रह्मा-

जीनें क्षुप अर्थात् शब्द किया जिस्से क्षुपनाम राजा उत्पन्न उसको ब्रह्मा-जीनें लोकपालोंके अंशसे युक्त किया ॥९॥ तब उस क्षुपराजाको ब्रह्माजी नें प्रजाका आधिपत्यदिया इन्द्रके अंशसे राजा पृथ्वीके शासन में समर्थ हुए ॥ १० ॥ वरुणके भागसे राजाका शरीर पुष्ट हुआ कुबेरके भागसे प्रजाओंको धनदान किया ॥ ११ ॥ यमके भागसे प्रजा शासन होतीहै इस कारण हेनरश्रेष्ठ रघुनंदन इन्द्रके भागसे आप ॥ १२ ॥ कृतार्थकर-नेंके निमित्त इस आभूषणको ग्रहणकरो तुम्हारा मंगलहो तब रघुनाथ जीने महात्मा मुनिका दिया वह कंकण ग्रहण किया ॥ १३ ॥ वह दिव्य आभरण सूर्यकी समान प्रदीप्तथा तब रघुनाथजी उस दिव्य आभरणको गृहणकर ॥ १४ ॥ इति क्षेपकः ॥ उसकी प्राप्ति रघुनाथजी पूछनें लगे कि हे भगवन् अदिप्तिमान अद्भुत देहसे युक्त ॥ ३४ ॥ यह दिव्य आभरण आपनें कब कहांसे पाया और इसे कौन लायाहै हे महा यशस्वी भगवन् कौतूहलसे यह मैं आपसे पूछताहूं सो सुनाइये ॥ ३५ ॥

आश्चर्याणांबहूनांहिनिधिःपरमकोभवान् ॥
एवंब्रुवतिकाकुत्स्थेमुनिर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥
शृणुरामयथावृत्तंपुरात्रेतायुगेयुगे ॥ ३६ ॥

कारणकि आप अनेक आश्चर्योंके सागर हैं रामचंद्रके ऐसा कहनेपर अ-गस्त्यजी कहनें लगे हे राजन् पहले त्रेता युगमें जो वार्ता हुईथी वह आप सुनिये ॥ ३६ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०उ०भा०षष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥

पुरात्रेतायुगेरामबभूवबहुविस्तरम् ॥
समंताद्योजनशतंविमृगंपक्षिवर्जितम् ॥ १ ॥

हे रघुनाथजी प्रथम त्रेतायुगमें यहां एक बहुत बड़ा वन मृगपक्षी हीन सो योजनके विस्तार वालाथा ॥१॥ हे सौम्य! उस निर्जन वनमें उत्तम तपस्या करनेंके निमित्त मैं विचारता हुआ आया ॥ २ ॥ उसके किसी २ स्थलमें बडे २ सुस्वादु फल मूल लगेथे और उसमें छोटे बडे वन इस प्रकार मिश्रितथे कि उसे कोई यह नहीं जानसकताथा कि इस वनका

प्रकारसे यह निन्दित अकार्य न कर सकेंगी ॥ ४ ॥ हम ऊंचे कुलमें जन्म ग्रहण करके फिर पवित्र कुलमेंही व्याही गईहैं, सो कुलीन स्त्रियोंसे यह कार्य कैसेहो? यशस्विनी वैदेहीजी रावणसे इस प्रकार कह ॥ ५ ॥ उसकी ओरको पीठ करकै फिर बोलीं । हम तुम्हारे भोग करनेंके योग्य नहीं हैं; क्योंकि हम पराई स्त्री और साधवीहैं ॥ ६ ॥ तुम साधु धर्मकी ओर दृष्टि रक्खो,साधु व्रतका आचरण करो;तुम्हारा मंगल होवो निशाचर। जिस प्रकार तुम अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करतेहो, वैसेही पराई भार्याभी तुम्हें रखानी कर्त्तव्यहै॥ ७ ॥तुम अपनेको उपमा करकै अपनी स्त्रियोंमें रमण करो, जो अपनी स्त्रीको भोग कर उस्से असन्तुष्ट रहताहै, उस चंचल मति और चपल इन्द्रिय मन्द बुद्धि वाले पुरुषको पराई स्त्री उमर क्षय करनेंवाले बहुत सारे रोग लगादेतीहै; और उसका बडा भारी अनादर होता और वह नरकमें पहुंचताहै ॥ ८ ॥ तुम्हारी आचार रहित जिस प्रकारकी विपरीत बुद्धि देखती हैं, तौ इस्से यही जान पड़ताहै कि लंकामें कोई साधु पुरुष नहीं है और जोहै भी तौ तुम उनका चलन नहीं चलते॥ ९ ॥अथवा परिणामके देखनेंवाले साधु पुरुष तुमसे हितकारी वचन कहते होंगे; परन्तु तुम राक्षसोंका कुल नाश करनेंके लिये उनको मिथ्या समझ अश्रद्धाकर वह वचन ग्रहण नहीं करतेहो ॥ १० ॥ खोटी नीतिके वश हुए और अविवेकी राजा को पायकर अति धन संपदा युक्त राज्य और नगर नष्ट होजातेहैं; ॥ ११ ॥ इसी प्रकारसे तुमको पायकर रत्नोंसे पूर्ण लंका एक तुम्हारेही अपराधसे शीघ्रही नष्ट होगी ॥ १२ ॥ जो अज्ञानी अपने कर्मोंके दोषसे मृत्युके निकट पहुँचताहै; उस पाप कर्म करनेंवालेका विनाश होंनेसे सब प्राणी आनंदित होते हैं ॥ १३ ॥ इसीप्रकारसे जिसको तुमनें क्लेश दियाहै; सो वह तुम पाप कर्मकारीके मरनें पर, सब हर्षित हों कहेंगे,कि हमारा परम भाग्यहै,जो यह दुरात्मा रावण मृत्युको प्राप्त हुआ १४ ऐश्वर्य दिखाकर या अपने धनसे तुम हमको लुभाय नहीं सकोगे, सूर्यकी किरणें जिस प्रकार सूर्यको छोड़ और किसीके पीछे नहीं जाय सकतीं,वैसेही हमभी एक श्रीरामचन्द्रजीके सिवाय और किसीकी नहीं होसकतीं॥१५॥ उन लोकनाथ श्रीरामचन्द्रजीके शोभन बाहु शिरके नीचे धर अब हम कैसे किसी दूसरेके भुज अपने शिरके नीचे धर शयन करैंगी ॥ १६ ॥

कितना विस्तारहै ॥ ३ ॥ उस वनके बीचमें एक योजनका एक सरोवर था जो हंस कारंड चकवा चकवियोंसे शोभितथा ॥ ४ ॥ उसमें अनेक प्रकारके पद्म उत्पल कमल खिलेथे जिस्से सिवार दृष्टिगोचर नहीं होताथा; एक अद्भुतता यहथी कि उसका जल बहुतही स्वादिष्टथा ॥५॥ धूरिरहित क्षोभरहित पक्षियोंसे शोभायमान सरोवरके किनारे एक श्रेष्ठ अद्भुत आश्रम बनाया ॥ ६ ॥ जो बड़ा पुराना पुण्यरूप तपस्वियोंसे हीनथा हे राम ! उस ग्रीष्म कालकी रात्रिमें मैं वहीं रहा ॥ ७ ॥ जबमैं प्रातःकाल उठकर उस सरोवरके निकट स्नानादिक करनेंको गया तौ उसमें सर्वांगसे पुष्ट उज्ज्वल एक मृतक शरीर पड़ाथा ॥ ८ ॥ हे रामचंद्र वह शव उस सरोवरमें शोभायमानहो रहाथा उसकी स्वच्छता देखकर मैं एक मुहूर्ततक विचार करता रहा ॥ ९ ॥ मैं उस स्थानमें बैठा एक मुहूर्त तक विचार करता रहा कि यह क्याहै तदन्तर उसी मुहूर्त में एक और आश्चर्य युक्त वार्ता देखी ॥ १० ॥ हे रघुनंदन उस स्थानमें एक मनके वेगकी समान हंस युक्त विमान आया और उसमें अत्यन्त रूप वान स्वर्गकी ॥ ११ ॥ एक सहस्र अप्सरा दिव्य भूषण पहरे बैठीथीं उस में कोई मनोहर गीत गाती और कोई बाजे बजातींथीं ॥ १२ ॥ मृदंग, वीणा, नगारे, तबले आदि बजतेथे, कोई २ उनमें नृत्य करतीथी दूसरी स्त्रियें सोनेंकी डंडीलगे चंद्रमाकी समान निर्मल चामरोंसे ॥ १३ ॥ उसमें चढ़े हुए कमल नेत्रवाले स्वर्गवासीके मुखपर बयार कर रहींथी फिर जिस प्रकार सूर्य भगवान सुमेरु पर्वतसे उतरतेहैं इस प्रकार वह उस विमानको त्यागन करकै ॥ १४ ॥ हे रघुनंदनजी ! हमारे देखते २ उस विमान परसे उतरकै वह स्वर्गवासी उस शवको भक्षण करनें लगा ॥ १५ ॥ तदनंतर स्वर्गी इच्छानुसार पुष्टस्थानके मांसको भक्षण करकै फिर जलपान करनेंके निमित्त सरोवरमें आया ॥ १६ ॥ वह स्वर्गी जलपान कर आचमन करकै फिर उस श्रेष्ठ विमानपर चढ़नें लगा ॥ १७ ॥ हे राम ! तब उस देवताकी समान पुरुषको विमानमें चढ़ते देखकर उस्सैमैं इस प्रकारसे वचन कहनें लगा ॥ १८ ॥ आप देवताकी समान कौनहौ किसकारण ऐसा निन्दित भोजन करतेहो यह आप किस निमित्त खातेहो सो हमसे बताइये ॥ १९ ॥ हे सौम्य ! किसका ऐसा आहार और ऐसा भाव

होगा कोईभी देवता ऐसा भोजन नहीं करते मुझे इससे बड़ा आश्चर्य है यह मैं सब श्रवण करना चाहताहूं ॥ २० ॥

इत्येवमुक्तःसनरेंद्रनाकीकौतूहलात्सूनृ तयागिराच ॥ श्रुत्वाचवाक्यंममसर्वमेत त्सर्वंतथाचाकथयन्ममेति ॥ २१ ॥

हे रामचंद्र जब मैनें ऐसा कहा तौ वह स्वर्गवासी मेरे वचन सुन कौतूहलसे सत्य और नम्र वाणीसे अपना सब वृत्तान्त मुझसे कहनें लगा;॥२१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० उ० सप्त सप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्ट सप्ततितमः सर्गः ॥

श्रुत्वातुभाषितंवाक्यंममराघ्रशुभाक्षरम् ॥ प्रांजलिःप्रत्युवाचेदंसस्वर्गीरघुनंदन ॥ १ ॥

हे राम ! रघुनंदन मेरे शुभाक्षर युक्त वचन सुनकर वह स्वर्गी हाथ जोड़कर मुझसे कहनें लगा ॥ १ ॥ हे भगवन् ! हमारे सुख दुःखका पूर्व वृत्तान्त श्रवण कीजिये हे ब्राह्मण जिस प्रकार आप पूछतेहैं तौ सुनकर इसका निरादर न करना ॥ २ ॥ ३ ॥ तीन लोकमें विख्यात मेरे पितामह सुदेवजी महा यशस्वी विदर्भ देशके राजाथे; हे ब्रह्मन् ! उनकी रानियोंसे दो पुत्र उत्पन्न हुए मेरा नाम श्वेत मेरे छोटे भाईका नाम सुरथ हुआ ॥४॥ जिस समय पिताजी स्वर्गको गये पुर वासियोंनें मुझे राजा बनाया जबमैं धर्म पूर्वक सावधानीसे राज्य करनें लगा ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे सुव्रत ! इस प्रकार धर्मसे प्रजा पालते और राज्य करते २ मुझे पांच हजार वर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! सो किसी लक्षणसे मैं अपनी शीघ्र प्राप्त होनेंवाली मृत्यु निश्चय करके काल धर्मकू हृदयमें धारण कर वनको चला गया॥७॥ इस मृगपक्षी रहित वनमें प्रवेश करकै मैं इस सरोवरके निकट तपस्या करनें लगा ॥ ८ ॥ भाई सुरथके राजाकू राज्यमें अभिषेक करकै इस सरोवरके निकट मैंनें बहुत कालतक तपस्या की ॥ ९ ॥ तीन सहस्र वर्ष तक दुष्कर तपस्या करके ब्रह्मलोककू प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तम! स्वर्गमें प्राप्त होकरभी मैं भूंख प्यासते ऐसा कातर हुआ कि भूंखसे

व्याकुलेन्द्रिय होगया तब मैं त्रिभुवनमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीसे जाकर कहनें लगा कि हे भगवन् ! यह ब्रह्मलोक क्षुधा पिपासासे वर्जित है ॥ १२ ॥ यह कौनसे कर्मोंका फलहै जो इस स्थानमेंभी मुझे भूख प्यास बाधा करतीहैं हे पितामह! मुझे कुछ भोजन करनेंके निमित्त बताइये ॥ १३ ॥ यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले हे सुदेवनंदन तुम्हारा भोजन तुम्हाराही स्वादिष्ट मांसहो उसकोही तुम सदा भक्षण करो ॥ १४ ॥ तुमनें श्रेष्ठतप करनेंके समय अपने शरीरकोही पुष्ट कियाहै हे श्वेत! विनाबोये कदापि बीज उत्पन्न नहीं होता आपनें कुछभी दान नहीं किया केवल तपही किया इस कारण स्वर्गमें प्राप्त होकरभी तुमको क्षुधा पीड़ित करतीहै॥१५॥१६॥ इसीसे तुमनें जो अपने शरीरको अनेक भोजन खवाकर पुष्ट कियाहै उसीको तुम अमृतकीसमान भोजन करो इसीसे तुम्हारी क्षुधा निवृत्तहो जायगी ॥ १७ ॥ हे श्वेत! जिससमय उस वनमें दुर्द्धर्ष भगवान् अगस्त्यजी आवेंगे उससमय तुम इस दुःखसे छूट जाओगे ॥ १८ ॥ हे सौम्य! तुम्हें क्या वह तो देवताओंकोभी तारनेंमें समर्थहैं कारण कि तुम तो केवल क्षुधा पिपासासेही पीड़ितहो ॥१९॥ हे बुद्धिमन्! मैं इस प्रकारसे देव देव ब्रह्माजीके वचन श्रवणकर इस अपने शरीरका गर्हित भोजन करताहूं॥२०॥हे ब्रह्मन्! यह भोजन करते २ मुझे बहुतही वर्ष बीत गये न तो मेरा शरीर क्षय होताहै न मेरी तृप्ति होतीहै ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! आप मुझे महादुःखोंको संकटसे छुड़ाइये कारण कि अगस्त्यजीके विना हमारा कोई छुड़ानेंवाला नहींहै ॥ २२ ॥ हे सौम्य! द्विजोत्तम! यह सुवर्ण भूषण मैं आपके धारण करनेंके निमित्त प्रदान करताहूं आपका मंगलहो आप इसे ग्रहण करके मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मर्षि! यह सुवर्णवस्त्र धन भक्ष भोजन आभरण आपके निमित्त देताहूं यद्यपि सब पदार्थ विद्यमानहैं परन्तु दान न करनेंसे हम इनको भोगनहीं करसकते ॥ २४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! यह सब काम और भोगके पदार्थ हम आपको प्रदान करतेहैं हे भगवन्! अब कृपा करके हमें तार दीजिये ॥ २५ ॥ हे राम! तब दुःखभरे उस तपस्वीके वाक्य सुनकर उसके तारनेंके निमित्त मैंनें यह कंकण ग्रहण किया ॥ २६ ॥ हे राजर्षि! रामचंद्र! ज्योंही मैनें वह कंकण ग्रहण

किया त्योंही वह उसका सरोवरका मनुष्य शरीर नष्ट होगया ॥ २७ ॥ उस शरीरके नष्ट होतेही यह राजर्षि प्रसन्नतासे हर्षितहो सुखपूर्वक स्वर्गको चला गया ॥ २८ ॥

तेनेदंशक्रतुल्येनदिव्यमाभरणंमम ॥
तस्मिन्निमित्तेकाकुत्स्थदत्तमद्भुतदर्शनम् ॥ २९ ॥

हे राम! इस इन्द्रकीसमान कांतिवाले स्वर्गीनें यह अद्भुत कंकण मुझे अपने तारनेंके निमित्त दिया था ॥ २९ ॥इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०उ०भा० अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥

तदद्भुततमंवाक्यंश्रुत्वागस्त्यस्यराघवः ॥
गौरवाद्विस्मयाच्चैवभूयःप्रष्टुंप्रचक्रमे ॥ १ ॥

रामचंद्र ऐसे अगस्त्यजीके अद्भुत वचन सुनकर गौरव और विस्मयसे फिर प्रश्न करनें लगे ॥ १ ॥ हे भगवन्! जिस वनमें वह विदर्भ देशका राजा श्वेत तपस्या करताथा वह घोर वन किस कारण मृग पक्षीहीन था ॥ २ ॥ उस मृगजन्तुरहित वनमें वह राजा तपस्या करनेंको क्यों आयाथा यह मेरी सुन्नेकी इच्छाहै ॥ ३ ॥ तेजस्वी अगस्त्यजी रघुनाथजीके इसप्रकार कौतूहलयुक्त वचन श्रवणकर कहनें लगे ॥ ४ ॥ हे रामचंद्र! आगे सत्युगमें जब मनुजी राजाथे जिनके पुत्र वंशके बढ़ानेंहारे बड़े विख्यात इक्ष्वाकु हुए ॥ ५ ॥ राजा मनुजीनें अपने दुर्जय पुत्रको सिंहासनपर बैठायके कहा कि तुम पृथ्वीके विषे राजवंशोंका विस्तार करो ॥ ६ ॥ हे रामचंद्र! पुत्रनें पिताकी यह आज्ञा अंगीकार की तब मनुजी परम संतुष्ट होकर पुत्रसे बोले ॥ ७ ॥ हे परमोदार पुत्र मैं आपके ऊपर प्रसन्नहूं तुम वंश करता होगे प्रजाको दंडसे रक्षा करना परन्तु अकारण कभी दंड न देना ॥ ८ ॥ जो राजा अपराधी पुरुषोंकोही दंड देताहै वह विधिपूर्वक दंड देनेंसे राजाको स्वर्गमें लेजाता है ॥ ९ ॥ हे महाभुज! पुत्र इसकारण दंड देनेंसे बहुत सावधान रहना धर्महीं संसारमें कुछहै ऐसा करनेंसे धर्मकी प्राप्ति तुमको होगी ॥ १० ॥

इसप्रकारसे मनुजी अपने पुत्रको बहुत प्रकारसे समझायकर प्रसन्नहो समाधीद्वारा आप सनातन ब्रह्मलोकको गये ॥ ११ ॥ उनके स्वर्ग जानेंपर महापराक्रमी इक्ष्वाकुजी पुत्र किसप्रकार उत्पन्न किये जाँय यह चिंता करनेंलगे ॥ १२ ॥ यज्ञ दान तप लक्षणवाले अनेक कर्म करके उन महात्माने देवपुत्रोंकीसमान सौ पुत्र उत्पन्नकिये ॥ १३ ॥ हे रघुनंदन जो उनमें सबसे छोटा था वह मूढ़ विद्याहीन हुआ और अपने बड़े भाइयोंकी शुश्रूषा उसनें नहीं की ॥ १४ ॥ उस अल्प तेजस्वी पुत्रका नाम पितानें दंड रक्खा कारणकि उन्होंनें सोच लिया कि अवश्य इसके शरीरपर दंडपात होगा ॥ १५ ॥ हे शत्रुसूदन राम! जैसे यह पुत्र थे इनके योग्य अति घोर देश न देखकर राजानें विंध्याचल और शैवल देश पर्वतके बीचके देशका राज्य दंडको दिया ॥ १६ ॥ उन रम्यपर्वतके बीच देशोंका वह दंड राजा हुआ हे रामचंद्रजी वहां उसनें एक बहुत उत्तम नगरभी बसाया ॥ १७ ॥ हे राम! उस पुरका नाम मधुमान रक्खा और सुव्रत! शुक्राचार्यको अपना पुरोहित किया॥१८॥ इस प्रकारसे वह राजा पुरोहितके साथ हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे युक्त उस देशका राज्य करनें लगे; जैसे इन्द्रदेव लोकका राज्य करतेहैं ॥ १९ ॥

ततःसराजामनुजेंद्रपुत्रःसार्धंचतेनोशनसात
दानीम् ॥ चकारराज्यंसुमहान्महात्माशक्रो
दिवीवोशनसासमेतः ॥ २० ॥

उससमय इक्ष्वाकुके पुत्र महात्मा दंडजी शुक्राचार्यके साथ अपने नगरका ऐसे राज्य करनें लगे जिसप्रकारसे इन्द्र देव लोकका राज्य करते हैं ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उ०भा० एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ॥

एतदाख्यायरामायमहर्षिःकुंभसंभवः ॥
अस्यामेवापरंवाक्यंकथायामुपचक्रमे ॥ १ ॥

कुंभयोनि महर्षि अगस्त्यजी रामचंद्रसे इसप्रकार कहकर इसी कथाके

सम्बन्धमें विशेष कहनें लगे ॥ १ ॥ हे राम ! इस प्रकार वह चतुरतासे युक्त होकर राजा दंड बहुत वर्षोंतक निष्कंटक राज्य उस देशका करते रहे ॥२॥ कुछ दिनों उपरान्त एक समय मनोहर चैत्र मासमें राजा दंड शुक्राचार्यके आश्रममें आये ॥ ३ ॥ वहां दंडनें वनमें विहार करती परम सुन्दरी शुक्राचार्यकी कन्या वनमें विहार करते देखी ॥ ४ ॥ वह दुर्मति उसे देखतेही कामबाणसे पीड़ित हो व्याकुलतासे उस कन्याके निकट जाकर कहनें लगा ॥५॥ हे सुश्रोणि! तुम कौनहो कहांसे आईहो किसकी कन्याहो हे शुभानने ! यह सब कुछ कामसे पीड़ित होकर तुमसे पूछताहूं ॥ ६ ॥ उस महामदनोन्मत्त कामीके ऐसा कहनेंपर शुक्राचार्यकी कन्या नम्रतासे कहनें लगी ॥ ७ ॥ हे राजेंद्र ! हम अक्लिष्ट कर्मा भार्गवकी ज्येष्ठ कन्याहैं अरजा हमारा नामहै और हम इसी आश्रममें रहतीहैं ॥ ८ ॥ हे राजन्! आप मुझ कन्याको बलसे मत छुइये कारण कि मैं पिताके वशमें हूं हे राजेंद्र! मेरे पिता तुम्हारे गुरुभीहैं और तुम उन महात्माके शिष्यहो ॥ ९ ॥ यदि तुम बलसे हमको छुओगे तो हमारे पिता तुमपर महाक्रोध प्रकाश करेंगे यदि तुम्हारी यही इच्छाहै तो मुझे धर्म मार्गसे वरणकरो ॥ १० ॥ हे नरश्रेष्ठ! महा द्युतिमान पिताजीके पास जाकर तुम मुझे माँगो अन्यथा करनेंसे तुमको महा घोर फल प्राप्त होगा ॥ ११ ॥ क्योंकि क्रोध करके हमारे पिता त्रिलोकीकोभी नष्ट कर सकतेहैं, हे निंदारहित कदाचित् याचना करनेंसे हमारे पिता हमें तुमको देदें ॥ १२ ॥ जब अरजानें ऐसा कहा तो वह दंड कामसे पीड़ितहो हाथ जोड़कर कहनें लगा॥१३॥ हे सुश्रोणि! अब मेरे ऊपर प्रसन्नहो वृथा कालक्षेप मत करो हे वरानने! तुम्हारे निमित्त अब मेरे प्राण पयान करतेहैं ॥ १४ ॥ तुमको प्राप्तहो फिर चाहैं मरण होजाय या कठिन पापहो परन्तु हे भीरु! अब तो विह्वल मुझे अपने भक्तको तुम भजो ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर उस बली दंडनें दोनों हाथोंसे कन्याको आलिंगन किया यद्यपि उसनें पलायनकी इच्छा करी परन्तु वह उसे गिराकर रमण करनें लगा ॥ १६ ॥ वह दंडराजा इस महा घोर अनर्थकू करके शीघ्रतासे अपने मधुमान नगरको चला आया ॥ १७ ॥

अरजापिरुदंतीसाआश्रमस्याविदूरतः ॥
प्रतीक्षतेसुसंत्रस्तापितरंदेवसन्निभम् ॥ १८ ॥

यहां अरजाभी रोती २ अपने आश्रमके निकट खड़ी हो व्याकुलतासे देवताकीसमान अपने पिताको देखनें लगी ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०उ०कात्यायनकुमारपंडितज्वालाप्रसाद मिश्रकृत भाषानुवादे अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ॥

समुहूर्तादुपश्रुत्यदेवर्षिरमितप्रभः ॥
स्वमाश्रमंशिष्यवृतःक्षुधार्तःसंन्यवर्तत ॥ १ ॥

महाप्रतापी देवर्षि शुक्राचार्यजी किसी शिष्यसे अरजाका वृत्तान्त श्रवणकर शिष्योंसहित भूंखेही अपने आश्रमपै प्राप्त हुए ॥ १ ॥ उन्होंने महादीन धूरिधूसर अंग रुदन करते ग्रहण लगे हुए प्रातःकालके समान अशोभित अरजाको देखा ॥ २ ॥ एक तो दारुण वृत्तान्त दूसरे क्षुधित होनेके कारण ऋषिको महाक्रोध हुआ त्रिलोकीको भस्म करतेहुएसे अपने शिष्योंसे बोले ॥ ३ ॥ तुम उस विपरीत करनेंवाले दुरात्मा दंडके ऊपर क्रोधित अग्नि शिखाकीसमान आई घोर विपत्तिको देखो ॥ ४ ॥ इस दुरात्माका अनुचरोंसहित नाश प्राप्त हुआहै कि जलतीहुई अग्निकी शिखाके छूनेंका इसने साहस कियाहै ॥ ५ ॥ जिस कारण कि इस पापीनें ऐसा घोर कर्म कियाहै उससे यह दुष्ट इस अपने कुत्सित कर्मका शीघ्र फल पावेगा ॥ ६ ॥ यह दुर्मति राजा सात दिनमें पुत्र बलवाहन सहित इस पापके कारणसे नाश होजायगा ॥ ७ ॥ इस दुष्ट राजाके सौ योजन तक चारों ओर राज्यको इन्द्रजी महा धूरि वर्षाकर भस्म कर डालेंगे ॥ ८ ॥ जितनें यहांके स्थावर जंगम जीवहैं जो चर अचर हैं वे सब धूरिके वर्षनेंसे नाश होजायँगे ॥ ९ ॥ जितना यह दंडका राज्य है सात दिनतक निरंतर धूरि वर्षनेंसे अलक्षित होजायगा कहीं चिह्नभी न रहैगा ॥ १० ॥ इस प्रकार क्रोधसे लाल नेत्र कर शुक्रजीने उस आश्रमके वासियोंसे कहा कि तुम इस देशको छोड़ शीघ्रतासे दूसरे स्थानोंमें चले जाओ ॥ ११ ॥ शुक्रजीके यह वचन सुन उस आश्रमके निवासी जन वहांसे उठकर दूसरे देशोंको शीघ्रतासे चले गये ॥ १२ ॥ इस प्रकार आश्रम वासियोंसे कह कर शुक्रजीने अरजासे कहा हे दुष्टबुद्धि तू इसी स्थानपर एकाग्रचित्त

हो निवास कर ॥ १३ ॥ हे अरजे! यह जो एक योजन कान्तिमान्का सरोवर इस स्थानमें है यहां स्थितहो अपने कर्मोंका फल भोगती कालकी प्रतीक्षा कर ॥ १४ ॥ उन सात रात्रियोंमें जो पशु पक्षी तेरे समीप वास करेंगें उनका नाश नहीं होगा वे धूरि वर्षनेसे नहीं दवेंगे ॥ १५ ॥ पिताजीके कहे हुए वचन श्रवण कर अरजाने महा दुःखी होकर उनकी आज्ञा तत्काल स्वीकार करी ॥ १६ ॥ यह कहकर शुक्रजीभी दूसरे स्थानमें वास करनेको चले गये और वह भृत्य वाहनसहित राजाका राज्य ॥ ॥ १७ ॥ जैसा ब्रह्मवादी ऋषिने कहाथा उसी अनुसार सात दिनमें सब भस्म होगया हे राम! यह विंध्याचल और शेवल पर्वतके बीचमें उसीका राज्य था ॥ १८ ॥ ब्रह्मर्षिके शाप देनेसे उसे यह पापका फल मिला हे रामचंद्र उसी दिनसे इस देशका नाम दंडकारण्य विख्यात है ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र! तपस्वियोंके वास करनेसे यह जनस्थान कहलाया जो कुछ आपने पूछा वह सब वर्णन किया॥२०॥हे वीर! अब संध्योपासनका समय आगया कारण कि यह सब ऋषि जलसे पूर्ण घडे लिये हुए सब ओरसे॥ २१ ॥

कृतोदकानरव्याघ्रआदित्यंपर्युपासते ॥
सतैर्ब्राह्मणमभ्यस्तंसहितैर्ब्रह्मवित्तमैः ॥
रविरस्तंगतोरामगच्छोदकमुपस्पृश ॥ २२ ॥

हेनरसिंह! स्नानादि करके आदित्य भगवानकी उपासना करते हैं इसकारण चलकर इन ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके संग बैठकर आचमन आदि करो कारणकि अब सूर्य भगवान् अस्त होगये ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० उ० एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥

ऋषेर्वचनमाज्ञायरामःसंध्यामुपासितुम् ॥
अपाक्रामत्सरःपुण्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ १ ॥

अगस्त्यजीके वचन सुनकर रघुनाथजी अप्सराओंसे सेवित उस निर्मल सरोवरके निकट संध्या वंदन करने चले ॥ १ ॥ तहां जाय जल स्पर्शकर सायं संध्यासे निश्चिन्त होकर रघुनाथ महात्मा अगस्त्यजीके आ-

श्रममें चले आये ॥ २ ॥ अगस्त्यजीने रामचंद्रके भोजन करनेके निमित्त अनेक प्रकारके स्वादिष्ट कन्द मूल फल औषधी चावल आदि पवित्र सामग्री सहित दिये ॥ ३ ॥ वह नरश्रेष्ठ रामचंद्रने अगस्त्यजीके दिये अमृतकीसमान पदार्थोंको भोजन कर प्रसन्नतासे वह रात्रि उसी आश्रममें विताई ॥ ४ ॥ प्रातःकालही उठ और पूर्व कालकी कृत्यसे निश्चिन्तहो विदा होनेके निमित्त रघुनाथजी अगस्त्यजीके पास आये ॥ ५ ॥ रामचंद्र प्रणाम करके अगस्त्यजीसे कहने लगे भगवन् अब मुझे स्थानपर जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ६ ॥ मैं धन्यहूं आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया आप महात्माके दर्शनसे मैं कृतार्थहुआ और पवित्र होनेके निमित्त आपके निकट में कभी २ आया करूंगा॥७॥ रामचंद्रके ऐसे अद्भुत वचन सुनकर धर्मके जाननेवाले तपोधन अगस्त्यजी परम प्रसन्न होकर बोले ॥८॥ हे रघुनंदन! यह सुन्दर अक्षरोंसेयुक्त तुम्हारे वचन बड़े अद्भुतहैं आप सम्पूर्ण प्राणियोंके पवित्र करनेहारेहैं ॥९॥ हे रामचंद्रजी! जे कोई एक मुहूर्त कोभी आपका दर्शन करते हैं वह सबलोकोंको पवित्र करते हुए स्वर्गमें गमन कर देवताओंसे पूजित होतेहैं॥१०॥ और जो प्राणी पृथ्वीमें आपको क्रूर दृष्टिसे देखतेहैं वह यम दंडसे ताडित होकर नरकको जाते हैं॥ ११ ॥ हे रघुनाथजी! संपूर्ण प्राणियोंके पवित्र करनेहारे आप इसप्रकारहैं हे राघव पृथ्वीमें जो कोई आपके चरित्र वर्णन करैंगे वह सिद्ध हो जांयगे॥ १२ ॥ आप अपने स्थानपर निर्भय पधारिये मार्ग आपको मंगलकारी हो धर्मपूर्वक राज्य पालन कीजिये कारण कि आपही जगत्की गतिहो ॥ १३ ॥ जब मुनिराजनें ऐसा कहा तो बुद्धिमान रामचन्द्रनें सत्य शीलवान् ऋषिको कर जोड़ प्रणाम किया ॥ १४ ॥ इस प्रकार ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य तथा और सब मुनियोंकी अभिवादन कर रघुनाथजी स्वस्थ चित्तसे सुवर्णभूषित विमानमें चढ़े ॥ १५ ॥ जिस प्रकार इन्द्रकी देवता पूजा करतेहैं इसी प्रकारसे रघुनाथजीको जाते देख मुनिजन आशीर्वादोंसे रघुनाथजीकी पूजा करनेलगे ॥ १६ ॥ सुवर्णभूषित पुष्पक विमानमें बैठे आकाशमार्गमें रघुनाथजी ऐसे शोभित हुए जैसे वर्षाकालीन मेघके निकट चंद्रमा शोभित होताहै ॥ १७ ॥ इसप्रकार रघुनाथजी मार्गमें अनेक स्थलोंमें पूजितहो मध्याह्नसमय अयोध्यामें प्राप्त हुए और बीचकी पौ-

रीमें उतरे ॥ १८ ॥ तब प्रभुने उस श्रेष्ठ कामगामी विमानसे कहा कि तुम्हारा मंगलहो अब तुम कुबेरजीके स्थानमें जाओ ॥ १९ ॥

कक्षांतरस्थितंक्षिप्रंद्वास्थंरामोब्रवीद्वचः ॥
लक्ष्मणंभरतंचैवगत्वातौलघुविक्रमौ ॥
ममागमनमाख्यायशब्दापयतमाचिरम् ॥ २० ॥

तब रघुनाथजी पुष्पकको विदा दे उस स्थानके द्वारपालसे बोले उन श्रेष्ठ विक्रमी भरत और लक्ष्मणजीके निकट जाकर हमारा आना निवेदन करो और सब नगरमेंभी हमारे आनेका समाचार कह दो ॥ २० ॥ इत्यार्षे वा०उ०भा० द्व्यशीतितमःसर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥

तच्छ्रुत्वाभाषितंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥
द्वास्थःकुमारावाहूयराघवायन्यवेदयत् ॥ १ ॥

सरलकर्मकारी रघुनाथजीके वचन श्रवणकर द्वारपाल भरत और लक्ष्मणको बुला लाया और रघुनाथजीसे उनका आना निवेदन किया॥१॥ भरत लक्ष्मणजीने रघुनाथजीके दर्शन किये और रघुनाथजीने देखतेही उन दोनोंको हृदयसे लगाकर कहा ॥ २ ॥ मैंने ब्राह्मणका सम्पूर्ण कार्य किया परन्तु अब एक धर्मसेतु (अर्थात राजसूयादि यज्ञ)करनेकी इच्छाहै ॥३॥ मेरे मतमें धर्मसेतु अक्षय अव्यय धर्मका बढानेहारा और सब पापोंका नाश करनेहाराहै ॥ ४ ॥ अपने तुम दोनों भाइयोंकी सहायतासे मैं यज्ञ श्रेष्ठराजसूयका अनुष्ठान किया चाहताहूं इसके करनेसे अक्षय धर्म- होताहै ॥ ५ ॥ शत्रुतापन मित्रजी सम्यक् प्रकारसे राजसूय यज्ञका अनु- ष्ठान कर वरुणकी पदवीको प्राप्त हुएहैं ॥ ६ ॥ धर्मात्मा सोमभी धर्म पूर्वक राजसूय यज्ञ करके अत्यन्त कीर्ति और अक्षय स्थानको प्राप्त हुए, सो आजहीके दिन तुम दोनों इस विषयमें सम्मति करके जो हित- कार और उत्तर कालमें भी सुखदायक वार्ताहो सो कहो ॥७॥८॥ बोलनेमें चतुर भरतजी रघुनाथजीके यह वचन सुन हाथ जोड़कर कहने लगे ॥९॥ हे अमितपराक्रमी महाभुज रामचंद्रजी हे श्रेष्ठ ! आपहीमें सम्पूर्ण धर्म यश

ब्राह्मणकी ब्रह्मविद्याके समान हम उन ब्रह्मज्ञानी व्रत करनेंवाले महिपाल श्रीरामचन्द्रजीके ही योग्य भार्याहैं ॥ १७ ॥ हे रावण ! तुम्हारा मंगलहो वनमें अपने यूथसें बिछुडी हुई हथनीको जिस प्रकार हाथी लेजाताहै, वैसेही श्रीरामचन्द्रजीके साथ दुःखसे कातर हुई हमको तुम मिलादो॥१८॥ यदि तुम अपने अधिकारको रक्षा करनेंकी इच्छा करतेहो और अपना विनाश होना नहीं चाहतेहो; तो पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे मित्रता करना तुमको कर्त्तव्यहै॥१९॥सबही जानतेहैं कि श्रीरामचन्द्रजी सर्व धर्मोंके पालनेवाले, और शरण आयेकी रक्षा करनेंवाले हैं; यदि तुम अपने जीवित रहनेंकी इच्छा करतेहो तो उन श्रीरामचन्द्रजीसे मित्रता करो॥ २० ॥ तुम उन शरणागत वत्सल श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करो, भक्ति भावसे हमको वहां लेजायकर रामचन्द्रजीको सोंप देना तुम्हारा परम कर्त्तव्यहै ॥ २१ ॥ जो इस प्रकारसे हमें लेजाकर तुम श्रीरामचन्द्रजीको सोंप दोगे तभी तुम्हारा कल्याणहै; और जो इससे विरुद्ध करोगे तो महा विपदमें पड़ोगे ॥ २२ ॥ इन्द्रजीका श्रेष्ठ वज्र चाहे तुम्हें छोड़दे और यमभी चाहें बहुत दिनोंतक जीवित रक्खें, परन्तु लोकोंके नाथ श्रीरामचन्द्रजी जब क्रोधित होंगे तब तुमसे दुष्टका किसी प्रकार निरुचर नहीं॥२३॥ इन्द्रके छोडे हुए वज्रके शब्दकी समान श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे छुटे हुए बडे २ बाणोंका शब्द तुम सुनोगे ॥२४॥ श्रीराम लक्ष्मणजीके नामसे अंकित बडी फोंक लगे हुए प्रकाशित बाण ज्वलित मुख सर्प गणोंकी समान शीघ्रही इस लंकामें गिरकर ॥ २५ ॥ इस नगरीके राक्षसोंका संहार करेंगे, कंकपत्र लगे, तीखे अनीवाले इतने बाण यहांपर गिरेंगे कि लंकामें तिल धरनेंकी भी जगह न मिलैगी, इसमें कुछभी संशय नहींहै ॥ २६ ॥ जिस प्रकार गरुड़जी वेगसे महा सर्पोंको उडाकर लेजातेहैं; रामरूपी गरुडजीभी वैसेही राक्षसरूपी सर्पोंको उडाकर लेजायँगे ॥ २७ ॥ विष्णुजीनें तीनवार चरण उठाकर जिस प्रकार असुर लोगोंके हाथसे उज्ज्वल लक्ष्मीका उद्धार कियाथा, शत्रुओंके मारनेंवाले हमारे स्वामीभी वैसेही तुम्हारे हाथसे हमारा उद्धार करेंगे और लेजायँगे ॥ २८ ॥ हतस्थान जनस्थानमें, जब चौदह हजार राक्षस मारे गये तब हे राक्षस! तुम शक्ति रहित युद्ध न करके श्रीरामचन्द्रजीके न रहनेपर आश्रमसे चोरी करके हमको लाये ॥ २९ ॥

और सम्पूर्ण पृथ्वी प्रतिष्ठितहै ॥ १० ॥ जिस प्रकारसे अमरगण प्रजापतिको अवलोकन करतेहैं इसी प्रकारसे हम दोनों और प्रजालोक आप महात्माको देखतेहैं ॥ ११ ॥ सब पुत्र आपको पिताकीसमान अवलोकन करतेहैं हे महाबली रघुनाथजी आप सम्पूर्ण प्राणियोंकी गतिहोनेसे पृथ्वीकीसमान हैं ॥ १२ ॥ जिसमें अनेक पृथ्वीके राजवंश क्षय होनेकी संभावना है हे रघुनाथजी आप उस राजसूययज्ञका करना क्यों चाहते हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् पृथ्वीमें जितने पराक्रमी पुरुषहैं उनका आपके क्रोधसे अवश्य नाश हो जायगा ॥ १४ ॥ इस कारण हे पुरुषसिंह हे अतुल पराक्रम ! आपके गुणोंसे सब आपके वशमेंहै आप पृथिवीके वीरोंका नाश न कीजिये ॥ १५ ॥ सत्यपराक्रमी रामचंद्रजी भरतजीके यह अमृतमय वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ और कैकेयीके आनंद बढानेवाले भरतजीसे यह शुभ वचन बोले हे पाप रहित मैं आपके वचनसे प्रसन्न और संतुष्टहूं ॥ १७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह तुम्हारे वचन वीरतायुक्त धर्म सम्मत और पृथ्वीके पालन करनेहारेहैं ॥ १८ ॥ हे धर्मज्ञ इस तुम्हारे वचनसे अब हम इस उत्तम राजसूय यज्ञसे अपना चित्त हटाये लेतेहैं॥१९॥

लोकपीडाकरंकर्मनकर्तव्यंविचक्षणैः ॥
बालानांतुशुभंवाक्यंग्राह्यंलक्ष्मणपूर्वज ॥
तस्माच्छृणोमितेवाक्यंसाधुयुक्तंमहाबल ॥ २० ॥

क्योंकि चतुर पुरुषोंको लोकोंका दुःख देनेवाला कर्म नहीं करना चाहिये हे भरतजी! युक्तिसंगत वचन तो बालकोंकेभी मान्ने चाहिये इस कारण हे महाबली हमने साधुतायुक्त तुम्हारे वचन ग्रहण किये ॥ २० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०उ०त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥

तथोक्तवतिरामेतुभरतेचमहात्मनि ॥
लक्ष्मणोथशुभंवाक्यमुवाचरघुनंदनम् ॥ १ ॥

जब महात्मा भरतजीसे रघुनाथजीने ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी रघुनाथजीसे मनोहर वचन बोले॥१॥हे रघुनंदन सम्पूर्ण पापोंसे पवित्र करने हारा

अश्वमेध यज्ञहै हे दुर्धर्ष यदि आपकी इच्छा हो तौ यही यज्ञ कीजिये॥२॥ ऐसा सुना है कि पूर्वकालमें महात्मा इन्द्रजीको ब्रह्महत्या लगीथी वह इसी अश्वमेध यज्ञ करनेसे पवित्र हुएथे॥ ३ ॥ हे महाबाहो पूर्वकालमें देवासुर संग्राममें वृत्रनामवाला लोक पूजित एक दैत्यथा ॥ ४ ॥ यह सौ योजनका स्थूल और तीनसै योजनका ऊंचाथा यह अभिमानसे त्रिलोकीको अपने वशमें समझकर संतोषसे देखा करताथा ॥ ५ ॥ यह धर्मज्ञ कृत कर्मा और बड़ा बुद्धिमानथा धर्मयुक्त सम्पूर्ण देश और पृथ्वीको पालन करताथा॥६॥ उसके राज्यमें पृथ्वी कामधेनुकी समानथी सब मूल फल स्वादिष्ठ उत्पन्न होतेथे ॥ ७ ॥ विना हल चलाये पृथ्वीमें अन्न उत्पन्न होताथा इसप्रकारसे बहुत कालतक वह उत्तम प्रकारसे राज्य करता रहा ॥ ८ ॥ राज्य करते २ उसकी बुद्धिमें यह बात समाई कि तपस्या करूं क्योंकि तपही कल्याणकारकहै और सुख तो मोह देनेहारे हैं ॥ ९ ॥ यह विचारकर मधुरेश्वर अपने बड़े पुत्रको राज्य दे सम्पूर्ण देवताओंको भयदायक तपस्या करने लगा ॥ १० ॥ जब वृत्रासुर तप करने लगा तब इन्द्र महादुःखी हो विष्णु भगवानके पास जाकर कहने लगे ॥ ११ ॥ हे भगवान् इस वृत्रासुरने तपसे त्रिलोकी जीत ली एक तो यह बली दूसरे धर्मात्मा इस्से हम इसको परास्त नहीं कर सकैंगे ॥ १२ ॥ अब यह जो औरभी तपस्या करता रहेगा तो सम्पूर्ण लोक इसके वशमें होजाँयगे ॥ १३ ॥ हे देवताओंके ईश्वर ऐसे वृत्रासुरकी ओर अभीतक आपने दृष्टि नहीं की जिससमय आप क्रोध करेंगे तो यह क्षणमात्रमें न रहेगा॥१४॥ हे विष्णु भगवान् जबसे इसने आपमें प्रीति कीहै तभीसे यह संसारका ईश्वर होगयाहै ॥ १५ ॥ हे भगवन् इन सब लोगोंके ऊपर आप प्रसन्न हूजिये आपके करनेसे सब जगत् शांत और रोग रहित होजायगा ॥ १६ ॥ हे विष्णो यह सम्पूर्ण देवता आपहीको निरीक्षण करते हैं, इस कारण वृत्रासुरके मारनेमें हमारी सहायता कीजिये कारण कि यह दैत्यों की ओरसे युद्ध करेगा ॥ १७ ॥

त्वयाहिनित्यशःसाह्यंकृतमेषांमहात्मनाम् ॥
असह्यमिदमन्येषामगतीनांगतिर्भवान् ॥ १८ ॥

और आपने इन महात्माओंकी पूर्वकालमेंभी सहाय कीहै और आपके सिवाय और कोई इस कार्यको नहीं करसक्ता कारण कि अनाथोंके आपही गतिहो ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ०उ० चतुरशीतितमःसर्गः॥८४॥

पंचाशीतितमः सर्गः ॥

लक्ष्मणस्यतुतद्वाक्यंश्रुत्वाशत्रुनिबर्हणः ॥
वृत्रघातमशेषेणकथयेत्याहसुव्रत ॥ १ ॥

लक्ष्मणके वचन सुनकर रघुनाथजी बोले हे लक्ष्मण! वृत्रासुरके वधकी सम्पूर्ण कथा कहो ॥ १ ॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी रघुनाथजीके यह वचन सुनकर उस दिव्य कथाको कहने लगे ॥ २ ॥ इस प्रकारसे इन्द्र और सम्पूर्ण देवताओंके वचन सुनकर विष्णु भगवान् इंद्रादि देवताओंसे कहने लगे॥३॥कि वृत्रासुर महात्माने वहुत कालसे मुझमें प्रेम लगायाहै इस कारण से तुम्हारी प्रसन्नताके निमित्त हम उस महात्माका वध नहीं करेंगे ॥ ४॥ और तुम्हारे सुखका उपायभी अवश्य करना चाहिये इस कारणसे वह उपाय कहते हैं जिसप्रकार इन्द्र उसको मार डालेंगे ॥ ५ ॥ हे देवताओ हम अपनेके तीन भाग करके वृत्रासुरका वध इन्द्र-के द्वारा करादेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ६ ॥ उनमें एक वृत्रा-सुरमें दूसरा वज्रमें और तीसरा पृथ्वीमें प्राप्त होगा तो वृत्रासुरका वध होगा (पृथ्वीमें एक अंश इसकारण रक्खा कि वृत्रासुरके गिरनेके समय पृथ्वी उसके धारण करनेमें समर्थ होगी) ॥ ७ ॥ जिस समय भगवानने ऐसा कहा तो देवता कहने लगे हे दैत्योंके मारनेहारे जो कुछ आप कहतेहैं वह निःसंदेह ऐसेहीहै ॥ ८ ॥ हे भगवन् आपका कल्याणहो वृत्रासुरके मरणकी इच्छावाले हम जातेहैं आप अपना परम उदार तेज इन्द्रमें स्थापित कीजिये ॥ ९ ॥ फिर इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवता उस स्थानमें गये जिस वनमें महासुर वृत्रासुर विद्यमान था ॥ १० ॥ उन्होंने उस दैत्यको तपस्या करते तेजसे दीप्यमान देखा कि मानो त्रिलोकीको पान कर जायगा और आकाशको जलादेगा ॥ ११ ॥ इस प्रकार उस दैत्यको देखकर देवता भयभीत हुए कि किसप्रकारसे हम इसको मारसकैं और हमारी हार न हो ॥ १२ ॥ उनके ऐसा कहनेपर सह-

स्राक्ष इन्द्रने हाथमें वज्र ग्रहण करके वृत्रासुरके शिरमें मारा ॥ १३ ॥ कालाग्निकीसमान महाघोर और महाकान्तियुक्त वह वृत्रासुरका शिर कटकर पृथ्वीपर गिरपड़ा जिस्से सम्पूर्ण जगत् भयभीत होगया ॥ १४ ॥ महायशी इन्द्र उसका असंभाव्य वध विचारकर कि एक तो इसका कुछ अपराध नहीं दूसरे यह मौनधारे तप करताथा इसे वृथा मारा इस शोकसे व्याकुलहो लोकके अन्त स्थानमें जहां अंधकार था ब्रह्महत्याके डरसे चले गये ॥ १५ ॥ परन्तु ब्रह्महत्याभी उनके पीछेही चलीगई और उनके शरीरमें प्रवेश करगई जिस्सें इन्द्र महादुःखी हुए ॥ १६ ॥ इसप्रकार वृत्रासुरके मरने और इन्द्रके गुप्त हो जानेसे अग्निसहित सब देवता त्रिलोकेश्वर भगवानके निकट जा उनकी पूजा करने लगे ॥ १७ ॥ हे भगवन् तुमही जगत्की गतिहो सबसे बड़ेहो हे विष्णु तुमही जगत्के पिता और संसारकी रक्षा करनेको विष्णु हुएहो ॥ १८ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ वृत्रासुर मारागया परन्तु अब इन्द्रको ब्रह्महत्या बाधा करतीहै, उसके छुटकारेका कोई उपाय कहिये ॥ १९ ॥ उन देवताओंके वचन सुनकर भगवान विष्णुजी बोले, हे देवताओ इन्द्र हमारा यज्ञ करैं, हम उन्हैं पवित्रकर देंगे ॥ २० ॥ इन्द्र पवित्र अश्वमेध यज्ञसे मेरा यजन करके निःसंदेह फिर देवपतिकी पदवीको प्राप्त होंगे ॥ २१ ॥

एवंसंदिश्यतांवाणींदेवानांचामृतोपमाम् ॥
जगामविष्णुर्देवेशःस्तूयमानस्त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥

इसप्रकार देवताओंको अमृतमयी वाणीसे उपदेश करके देवताओंसे पूजितहो भगवान वैकुंठको गये ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आ० उ० पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ॥

तदावृत्रवधंसर्वमखिलेनसलक्ष्मणः ॥
कथयित्वानरश्रेष्ठःकथाशेषंप्रचक्रमे ॥ १ ॥

इसप्रकार लक्ष्मणजी वृत्रासुरका सम्पूर्ण वध कहकर फिर शेष कथा कहने लगे ॥ १ ॥ जिससमय देवताओंका भयदाई महाबली वृत्रासुर मारागया तो ब्रह्महत्याके लगनेसे इंद्र चेतना रहित होगये ॥२॥ वह निश्चेष्ट

होकर लोकोंके अन्तमें जाकर लोटने लगे और अजगर सर्पकीसमान पड़े हुए कुछ काल बिताया ॥ ३ ॥ इन्द्रके नष्ट होनेसे सब जगत् उद्विग्न होगया, पृथ्वी प्रकाश रहित हुई, रस सूख गया, वनभी शुष्क होगये ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण ह्रद और सरोवर जलहीन होगये, नदी सूख गई, विना वर्षाके सब प्रजा क्षुभित होगई ॥ ५ ॥ लोकके क्षय होनेसे संभ्रान्त मनसे देवता विष्णुके कहे यज्ञका अनुष्ठान करनें लगे ॥ ६ ॥ तब सम्पूर्ण देवता उपाध्याय और महर्षियोंके साथ उस स्थानमें आये जहां इन्द्र भयसे व्याकुल हुए पड़ेथे ॥ ७ ॥ इन देवताओंने इन्द्रको ब्रह्महत्यासे युक्त देख, इन्हें दीक्षामें बैठाय, यज्ञ करना प्रारंभ किया ॥ ८ ॥ हे राजन् तब महात्मा इन्द्रकी महा ब्रह्महत्या मिटानेके निमित्त अश्वमेध यज्ञ होने लगा ॥ ९ ॥ जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब वह ब्रह्महत्या इन्द्रके शरीरसे निकल स्त्रीरूप बनाय कहने लगी, कि मेरे रहनेका कोई स्थान बताओ ॥ १० ॥ यह वचन सुन संतुष्ट हो प्रीति सहित सम्पूर्ण देवता कहने लगे, हे ब्रह्महत्या तू अपनेको चार भागमें विभक्त कर ॥ ११ ॥ ब्रह्महत्या उन महात्मा देवताओंके वचन सुनकर इन्द्रको त्याग उन देवताओंसे निवास करनेको स्थान मांगने लगी ॥ १२ ॥ और बोली कि एक अंशसे तो मैं वर्षाकालमें नदियोंमें वास करूंगी, इस कारणसे नदी ऊंचे नीचे सब स्थानोंमें यथेच्छ बहेंगी, और फेर ब्रह्महत्याका अंश होगा ॥ १३ ॥ और एक अंशसे मैं सब काल पृथ्वीमें वास करूंगी, मेरे इस सत्य वचनमें कोई संदेह नहीं उसमें उस रस्थान ब्रह्महत्याका अंश होगा ॥ १४ ॥ और एक अंशसे युवा स्त्रियोंकी योनिमें उनका दर्प चूर्ण करनेके निमित्त एक मासमें तीन दिन तक वास करूंगी, वह रुधिर ब्रह्म हत्याका अंश होगा ॥ १५ ॥ हे देवताओ हम अपनें अंशसे उन लोगोंमें वास करेंगी जो झूठे दोष लगाय ब्राह्मणोंको ताडन करेंगे ॥ १६ ॥ यह उसके वचन सुनकर सब देवता कहने लगे कि जैसी तेरी इच्छाहै, तू अपने उन अभीष्ट स्थानोंमें जाकर वास कर ॥ १७ ॥ यह कहकर सम्पूर्ण देवताओंने इन्द्रको प्रणाम किया, और इन्द्रभी पवित्र होनेके कारण बड़े आनंदको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ जब इन्द्र अपने स्थानपर आकर विराजे, तब सब जगत् शान्त होगया, और फिर इन्द्रने बड़े अद्भुत यज्ञका यजन पूजन किया ॥ १९ ॥ हे रघुनाथजी

अश्वमेध यज्ञकी ऐसी महिमा है, हे महाभाग भगवन्! इस कारण आपभी अश्वमेध कीजिये ॥ २० ॥

इतिलक्ष्मणवाक्यमुत्तमंनृपतिरतीवमनो
हरंमहात्मा ॥ परितोषमवापहृष्टचेताःस
निशम्येंद्रसमानविक्रमौजाः ॥ २१ ॥

इन्द्रकी समान पराक्रमी रघुनाथजी लक्ष्मणके कहे उत्तम और मनोहर वचन सुनकर परम संतुष्ट और प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्री०वा०आ० उ०षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ॥

तच्छ्रुत्वालक्ष्मणेनोक्तंवाक्यंवाक्यविशारदः ॥
प्रत्युवाचमहातेजाःप्रहसन्राघवोवचः ॥ १ ॥

बोलनेवालोंमें चतुर महातेजस्वी रघुनाथ लक्ष्मणजीके यह वचन सुन हँसकर कहने लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मणजी तुमने कहा यह ऐसेही है वृत्रासुरका वध और अश्वमेधका फल इसी प्रकार है ॥ २ ॥ हे सौम्य! हमनें सुनाहै कि पूर्व कालमें कर्दम प्रजापतिके बडे पुत्र जिनका नाम इलाथा जो बडे धर्मी थे वह वाह्लीक देशके राजा हुए ॥ ३ ॥ हे नर शार्दूल वह महायशस्वी राजा सम्पूर्ण पृथ्वी अपने वशमें करके राज्यको पुत्रकी समान पालन करने लगे ॥ ४ ॥ इस राज्यकी उत्तमतासे देवता दैत्य नाग राक्षस यक्ष गंधर्व और भी उदार चरित्रवाले महात्मा ॥ ५ ॥ हे रघुनंदन वह नित्यप्रति आनकर राजाकी पूजाकरतेथे और इन महात्मा के क्रोध करनेसे त्रिलोकी भयभीत हो जातीथी ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे महायशस्वी सत्यधर्ममें निष्ठावाला वह राजा उदार और बुद्धिमानीसे वाह्लीक देशको राज्य करतेथे ॥ ७ ॥ एक समय चैत्र मासमें वह राजा अपनी सेना आदि लेकर वनमें मृगयाके निमित्त गया ॥ ८ ॥ राजाने वनमें जाकर सहस्रों मृगोंका संहार किया तथापि उन महात्माकी तृप्ति न हुई ॥९॥ अनेक प्रकारके लक्षों मृग वध करनेसे तृप्ति न हुई तब वह उस वनमें गये जहां स्वामिकार्तिक का जन्म हुआथा ॥ १० ॥ उस वनमें दुर्धर्ष देवादिदेव महादेवजी पार्वतीको संग लिये और अपने सब अनुचरों

सहित विहार करतेथे ॥ ११ ॥ वृषध्वज शिवजी भी अपना स्त्रीरूप बनाये पार्वतीका प्रिय करनेके निमित्त पर्वतके निर्झरोंमें विचरते थे ॥ १२ ॥ उस वनमें उससमय जितने पुरुष नामवाले थे वृक्ष मृगादिक वे सब स्त्रीलिंग हो गये ॥ १३ ॥ बहुत क्या जो कुछभी उसस्थानमें था वह सब स्त्री रूप होगया उसी समय कर्दमके पुत्र इल राजाभी ॥ १४ ॥ सहस्रों मृगोंका संहार करते उस देशमें आये उन्होंने देखाकि उस वनमें सर्प मृग पक्षी सब स्त्री रूपहैं ॥ १५ ॥ और अपने को भी सेना और बल वाहन सहित स्त्री रूप देखकर बहुत दुःखी हुआ ॥ १६ ॥ यह शिवजी महाराजके कारणसे स्त्रीत्व प्राप्त हुआहै यह जानकर राजा महा भयभीत हुए तब शितिकंठ कपर्दी महात्मा देवदेव शंकरकी ॥ १७ ॥ शरण में राजा अपने सैना वाहन सहित प्राप्तहुआ तब वरदेनेहारे शंकर पार्वती सहित हँसते हुए आये ॥ १८ ॥ और प्रजापति कर्दमके पुत्रसे स्वयं शंकर यह वचन कहनें लगे हे कर्दमके पुत्र महाबली राजर्षि उठो ॥१९॥ हे सुव्रत पुरुष प्राप्तिके सिवाय जो चाहो सो वरदान मांगो जब महात्मा शिवजीने ऐसा कहा तौ वह राजा महादुःखीहुआ ॥ २० ॥ और उसने कोई और वर सुरश्रेष्ठ शिवजीसे नहीं मांगा और महा शोकसे राजा शैल कन्या पार्वती ॥ २१ ॥ उमादेवीको प्रणाम करके चित्तकी वृत्ति एकाग्रकर बोला हे वरदायिनी तुम लोक और ईश्वरोंको भी वरदेतीहो ॥ २२ ॥ हे देवी तुम्हारा दर्शन सफल होताहै हमारे ऊपर कृपादृष्टि करो पार्वती उस राजाका मनोरथ शिवजीके निकट बैठी हुई ॥ २३ ॥ देवी भगवती शिवजीकी सम्मति से राजासे सुन्दर वचन कहने लगी हे राजन् आधे वरदानकी देनें हरी मैं हूं और आधे वरदाता शिवजी हैं ॥ २४ ॥ इस कारण स्त्री पुरुषमें आधा वर जो चाहोसो ग्रहण करो इस प्रकार पार्वती देवीके अद्भुत वाक्यको सुनकर ॥ २५ ॥ बहुतही प्रसन्न होकर राजा कहने लगे हे अलौकि गुण रूप युक्त भगवति जो मेरे ऊपर प्रसन्न हो तौ यह वर दीजिये कि ॥ २६ ॥ मैं एक मासतक स्त्री और एक मासतक पुरुष रहा करूं सुमुखी पार्वती देवी राजाके मनोरथको विचार ॥ २७ ॥ सुन्दर वचनसे कहने लगीं कि ऐसाही होगा, हे राजन् जब तुम पुरुष होजाओगे तौ स्त्रीभावका तुम्हे स्मरण नहीं रहैगा ॥ २८ ॥

स्त्रीभूतश्चपरंमासंनस्मरिष्यसिपौरुषम् ॥ एवं
सराजापुरुषोमासंभूत्वाथकार्दमिः ॥ २९ ॥
त्रैलोक्यसुंदरीनारीमासमेकमिलाभवत् ॥ ३० ॥

और जब स्त्री होजाओगे तौ पुरुष भावका स्मरण नहीं रहैगा, इस प्रकारसे कर्दमके पुत्र एक मासतक स्त्री और एक मासतक पुरुष रहतेथे ॥ २९ ॥ स्त्रीभावमें इला नाम रहताथा जो त्रिलोकमें महा सुन्दरी विख्यात हुई और पुरुषभावमें इल नाम रहा ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० उ०सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥

तांकथामैलसंबद्धांरामेणसमुदीरिताम् ॥
लक्ष्मणोभरतश्चैवश्रुत्वापरमविस्मितौ ॥ १ ॥

रामचन्द्रके मुखसे इल सम्बन्धी कथा सुनकर भरत और लक्ष्मण अत्यन्त आश्चर्यकोप्राप्त हुए ॥१॥ वे दोनो हाथ जोड़कर रघुनाथजीसे उस महात्मा राजाकी कथा विस्तार पूर्वक सुननेकी इच्छा कर कहने लगे ॥२॥ जिस समय वह राजा दुर्गतिसे स्त्री होताथा, तौ क्या करताथा, और पुरुष होकर क्या करताथा, यह सब सुनाइये ॥ ३ ॥ भरत और लक्ष्मणके इस प्रकार कौतूहलके वचन सुनकर रामचंद्र उस राजाका चरित्र वर्णन करने लगे ॥ ४ ॥ पहले मासमें वह लोक सुंदरी स्त्री होकर उन अपने सेनाके लोगोंके संग जो कि वहभी सब स्त्रीथीं ॥ ५ ॥ उस वनमें वह लोक सुंदरी विचरने लगीं वह कमल की समान नेत्रवाली पैरो पैरो वृक्ष और गुल्मलता ओंसे परिपूर्ण उस वनमें ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण वाहनोको त्यागकर उस पर्वतकी गुफाओंमे इला इच्छासे विचरण करने लगी ॥ ७ ॥ पर्वतके निकटही उस वनमें अनेक प्रकारके मृग पक्षियोंसे युक्त एक सरोवर था ॥ ८ ॥ उस * सरोवरके निकट पूर्णिमाके चंद्रमाकी समान प्रकाशमान चंद्र पुत्र बुधको इलाने देखा ॥ ९ ॥ वह जलमें खड़े हुए कठिन तपस्या करतेथे, जो यश और कामनाओंके दाता कृपासागर आदि गुणोंसे युक्तथे ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण! उस इलाने अपने

*जिस वनमें बुध तपस्या करतेथे यह उस स्थानसे थोड़ी दूरथा इस्से यह स्त्री न हुएथे ॥

स्त्रीरूप साथियोंके साथ जाकर विस्मित हो उस सरोवरको क्षुभित किया ॥ ११ ॥ उस इलाको देख बुध कामबाणसे पीडित हुए और अपने को न संभालके जलमें चलायमान होगये ॥ १२ ॥ त्रिलोकीमें अधिक सुंदर उसका रूप देखकर बुधजी विचार करने लगे कि यह देवताओं-सेभी अधिक रूपमान कौन स्त्रीहै ॥ १३ ॥ ऐसा रूप तौ देवी नागोंकी स्त्री असुरी सुराओंमेंभी हमने कभी नहीं देखा ॥ १४॥ यदि इसका विवाह नहीं हुआ हो तो यह मेरे योग्यहै यह विचारकर बुधजी जलसे किनारे पर आये ॥ १५ ॥ और अपने आश्रमपर आकर उन्होंने उनश्रेष्ठ स्त्रियोंको पुकारा और उन सबने आनकर इन्हें प्रणाम किया ॥ १६ ॥ उनसे धर्मात्मा बुध प्रश्न करने लगे कि यह लोकसुन्दरी किसकी स्त्रीहै, और यहां यह किस निमित्त आई, हमसे यह सब शीघ्रतासे कहो ॥ १७ ॥ उनके यह मधुर सुंदर वचन सुनकर वे सब स्त्री मधुरवाणीसे उनसे कहने लगीं ॥ १८ ॥ यह हमारी स्वामिनी है, इसका कोई पति नहीं है हमारे साथ यह वनमें विचरती रहतीहै ॥१९॥ उन स्त्रियोंके ऐसे स्वच्छ वचन सुनकर बुधजीने अपनी आवर्तिनी (आकर्षण) विद्याका स्मरण किया ॥ २० ॥ तपके द्वारा राजाका सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर बुधजी उन सब स्त्रीजनोंसे कहने लगे ॥ २१ ॥ तुम सब किम्पुरुषी होकर इस पर्वतके स्थानमें वास करो, और यहांही अपने रहनेके स्थान निर्माण करलो ॥२२॥ मूल पत्र फल भोजन करके अपने स्थानोमें रहो तुम सब अपने किम्पुरुष नामक पतियोंको प्राप्त हो जाओगी ॥ २३ ॥

ताःश्रुत्वासोमपुत्रस्यस्त्रियःकिंपुरुषींकृताः ॥
उपासांचक्रिरेशैलंवध्वस्ताबहुलास्तदा ॥ २४ ॥

वह सब स्त्रियें यह सुनकर कि बुधने हमको किम्पुरुषी (देवयोनि विशेष) बनादिया, तब वे उस पर्वतमें वास करने लगीं ॥ २४ ॥ इत्यार्षे० श्री० आ० उ० अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥

श्रुत्वाकिंपुरुषोत्पत्तिंलक्ष्मणोभरतस्तथा ॥

आश्चर्यमितिचाब्रूतामुभौरामंजनेश्वरम् ॥ १ ॥

इस प्रकार किम्पुरुषकी उत्पत्ति श्रवण कर भरत और लक्ष्मण रामचंद्रसे कहने लगे कि यह बडे आश्चर्यकी कथा है ॥१॥ उनके अभिप्रायको जान महायशस्वी रघुनाथजी फिर धर्मात्मा प्रजापतिके पुत्रकी कथा कहने लगे ॥ २ ॥ उन सब किन्नर हुई स्त्रीओंको विचरण करती देख ऋषिरूप यौवन सम्पन्न उस स्त्रीसे हँसते हुए बोले ॥ ३ ॥ हे सुंदर मुखवाली हे वरानने मैं चंद्रमाका पुत्र हूं, तुम हमारी ओर कृपादृष्टिसे निहारो और हमें भजो ॥४॥ उस जनशून्य देशमें इला उनके ऐसे मनोहर वचन श्रवण कर उन महाकान्तिमान बुधसें कहने लगी॥५॥हे सौम्य मैं स्वतंत्र तुम्हारी दासी तुम्हरे वशमें हूं, हे चंद्रपुत्र हमें शिक्षा कीजिये, जो आपकी इच्छाहो सो करो॥६॥ उसके यह अद्भुत वचन सुन बुध बहुत प्रसन्न हुए, और वह चंद्रमाके पुत्र उसके संग विहार करने लगे ॥७॥ कामासक्त बुधको विहार करते २ चैत्रका महीना क्षणमात्रमें बीत गया ॥८॥एक मास पूर्ण होनेपर चन्द्रमाकी समान मुखवाले श्रीमान प्रजापतिके पुत्र इल शयनसे उठकर ॥ ९ ॥ देखने लगे कि चंद्रमाके पुत्र सरोवरमें ऊपरको बाहें उठाये निरालम्ब तपस्या कर रहे हैं राजा उनसे कहने लगे ॥ १०॥ हे भगवन् मैं इस पर्वतदुर्ग मैं अपनी सेनासहित आयाथा परन्तु यहां उनमेंसे किसीको नहीं देखता वह हमारे साथी कहां गये ॥ ११ ॥ उन राजर्षिके कि जिनको अपने स्त्री भावका स्मरण नहीं है वचन सुनकर बुध समझाते हुए सुन्दर वाणीसे बोले ॥१२ ॥ बड़ी पत्थरोंकी वर्षासे आपके भृत्य मृतक होगये, परन्तु तुम महापवनसे व्याकुलहो हमारे आश्रममें सोनेसे बचे ॥ १३ ॥ हे वीर आप सावधान हूजिये और सुखपूर्वक कंद मूल भोजन करते हमारे आश्रममें वास करो ॥ १४ ॥ राजा अपने भृत्योंका नाश सुनकर महा दुःखी हुए परन्तु बुधके वाक्योंसे सावधान होकर कहने लगे ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् भृत्योंके नाश होनेसे राज्य नहीं छोडूंगा कारण कि उनके विना मैं क्षणमात्र नहीं रह सक्ता अप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन् मेरा महा यशस्वी धर्मात्मा शशिबिंदु नामक ज्येष्ठ पुत्र राज्य करैगा ॥ १७ ॥ परन्तु मैं अपने भृत्य स्त्री जोकि सुखसे देशमें वसतेहैं, उन्हे छोड़कर यहां नहीं रह सक्ता, हे तेजस्वी आप हमसे यहां रहनेंके निमित्त अशुभ वचन

हे अधम ! वह मनुष्योंमें सिंह रूप दोनों भ्राता जब मायामृगके पीछे गये उस समय तुमने शूने आश्रममें प्रवेश कर हमारा हरण कियाहै ॥ ३० ॥ कुत्ता जिस प्रकार सिंहकी गन्ध पाकर उसके सन्मुख खडा नहीं होसकता, वैसेही तुम श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीके दर्शन पाय कर उनके सामने नहीं टिक सकोगे ॥ ३१ ॥ तुम ऐसे दुर्बलहो कि यदि उन श्रीरामचन्द्रजीके साथ तुम्हारा समर होवे; तो हम तुम्हारी सहाय और संपत्तिकीभी स्थिरता नहीं देखती; इस [कारण] वृत्रासुरकी एक बाहु जैसे इन्द्रजीकी दोनों बाहोंसे पराजित हुईथी, वैसेही तुमको श्रीराम, लक्ष्मणजीसे पराजित होना पड़ेगा ॥ ३२ ॥ सूर्य जिस प्रकार थोड़ेसे जलको सुखाय लेतेहैं वैसेही हमारे प्राणनाथ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीकी सहायतासे तुम्हारे प्राणोंको तुम्हारे शरीरसे खेंच लेंगे ॥ ३३ ॥

गिरिंकुबेरस्यगतोथवालयंसभांगतोवाव
रुणस्यराज्ञः ॥ असंशयंदाशरथेर्विमोक्ष
सेमहाद्रुमःकालहतोऽशनेरिव ॥ ३४ ॥

तुम कुबेरके स्थान कैलासपर्वतपर चले जाओ, अथवा भयके मारे राजा वरुणकी सभामें जाओ; परन्तु कालसे हत हुआ बड़ाभारी वृक्ष जिस प्रकार इन्द्रजीके वज्र लगनेंसे गिरजाताहै, वैसेही निश्चय तुमभी, दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे अपने प्राण गँवाओगे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥

सीतायावचनंश्रुत्वापरुषंराक्षसेश्वरः ॥
प्रत्युवाचततःसीतांविप्रियंप्रियदर्शनाम् ॥ १ ॥

वैदेहीजीके यह कठोर वचन सुनकर राक्षसनाथ रावण उन प्रिय दर्शन वाली सीताजीसे कुप्यारे वचन कहनें लगा ॥ १ ॥ लोकमें देखा जाताहै कि पुरुष स्त्रीको जितना समझाताहै, स्त्री उतनाही उस पुरुषके वशमें होजातीहै; परन्तु हमनें जितने प्रिय वचन तुमसे कहे तुमने उतनाही हमारा अनादर किया ॥ २ ॥ तुम्हारे ऊपर हमको क्रोध होताहै, परन्तु अच्छा सारथी कुमार्गमें जाते हुए घोडोंको जिस प्रकारसे अपने वशमें रखताहै

न कहिये॥१८॥राजाके यह वचन श्रवणकर बुधजी समझाते हुए बोले, कि तुम कुछ काल पर्यन्त यहां रहो हम तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध करेंगे॥ १९॥ हे महाबली कर्दमपुत्र आप संताप मत करो, एक वर्ष यहां रहोगे तो हम तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥ २० ॥ उन सरल कर्मा बुधके यह वचन श्रवण कर ब्रह्मवादी ऋषिके कहने उपरान्त राजा रहनेको सम्मत हुए॥२१॥ वह एक मास स्त्री होकर बुधके साथ विहार करते, और पुरुष होकर एक मासतक धर्मशास्त्रकी आलोचना करते ॥ २२ ॥ इस प्रकार रहते रहते जब नौ मास बीत गये बुधसे सुश्रोणि इलाने पुरुरवा नाम * पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ उस शोभन नितम्बवालीने पुत्र उत्पन्न होतेही उसे वृद्धिको प्राप्त हुआ देख कर उपनयनादि कर्मके निमित्त उसके पिताको सौंप दिया, इलाके पुत्रका बुधकी समान वर्ण और पराक्रम था ॥ २४ ॥

बुधस्तुपुरुषीभूतंसवैसंवत्सरांतरम् ॥ कथा
भीरमयामासधर्मयुक्ताभिरात्मवान् ॥ २५ ॥

एक वर्षतक बुधजी जब २ वह राजा पुरुष होता तब तक उसके साथ अनेक कथा वार्ता कह उसका चित्त प्रसन्न करते रहे ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० उ० एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ॥

तथोक्तवतिरामेतुतस्यजन्मतदद्भुतम् ॥ उवा
चलक्ष्मणोभूयोभरतश्चमहायशाः ॥ १ ॥

रामचंद्रके ऐसा कहनेपर और पुरूरवाका अद्भुत जन्म चरित्र श्रवणकर लक्ष्मण और भरतजी महायशस्वी रामचंद्रसे फिर कहने लगे॥ १ ॥ हे भगवन् इलाने चंद्रपुत्र बुधके स्थानपर एक वर्ष रहकर और क्या क्या किया सो आप श्रवण कराइये ॥ २ ॥ भरत लक्ष्मणके मधुर वचन सुन-कर रामचंद्र फिर प्रजापतिके पुत्रकी कथा कहने लगे ॥ ३ ॥ जब बारहवें मासमें महाबली राजा फिर पुरुष हुए तब बुधने महा यशस्वी

* यदि नवमास गर्भ रहकर बुधकी उत्पत्ति हुई तौभी दोष नहीं कारणकि पार्वतीके वरसे गर्भादिके चिह्नको राजा भूलजाताथा अथवा नवमे मासमें गर्भरहा और तत्काल पुत्रकी उत्पत्ति हुई यहभी संभवहै क्योंकि वह पुत्र उत्पन्न होतेही वृद्धिको प्राप्त होगया.

सम्वर्त ॥ ४ ॥ भृगुपुत्र च्यवन अरिष्टनेमि प्रमोदन मोदकर दुर्वासा इन सब मुनियोंको बुलाया ॥ ५ ॥ वाक्य जान्नेवाले तत्त्वदर्शी बुधने इन सब मुनियोंको बुलाकर उन अपने मित्रोंसे धीरता सहित वचन कहे ॥ ६ ॥ यह महाबाहु इल राजा कर्दमके पुत्रहैं आप जान्तेहैं कि शिवजीके वनमें प्रवेश करनेके कारण एक महीने स्त्री एक मास पुरुष होजातेहैं, सो वह आप कीजिये जिसमें इनका कल्याण होय ॥ ७ ॥ इसप्रकार यह वार्ता करतेही थे कि महातेजस्वी महात्मा कर्दमजी बहुतसे मुनियोंको साथ लिये वहां आये ॥ ८ ॥ पुलस्त्य, ऋतु, वषट्कार ॐकार यहभी सब महातेजस्वी उस आश्रममें आये ॥ ९ ॥ वह सब एक दूसरेको देख प्रसन्न हो मिलकर वाल्हेश्वर राजाके उद्धारके निमित्त पृथक् २ वचन कहने लगे ॥ १० ॥ तब कर्दमजी अपने पुत्रके हितकारक वचन कहने लगे हे ब्राह्मणो हमारे वाक्य सुनो, जिस्से इस राजाका हित होगा ॥ ११ ॥ शिवजीको छोड़कर हम देखतेहैं कि इसकी और औषधि नहीं है, और शिवजीके अश्वमेध यज्ञसे प्यारा और कोई यज्ञ नहीं है ॥ १२ ॥ इस कारण इस राजाके हित और शिवजीके प्रसन्न करनेके निमित्त हमको अश्वमेध करना उचितहै कर्दमके यह वचन सुन वे सब ब्राह्मणश्रेष्ठ ॥१३॥ शिवजीकी प्रसन्नताके अर्थ उस यज्ञकोही अच्छा मान्ते हुए, और विचार कर बोलेकि सम्वर्त ऋषिके शिष्य शत्रुतापन मरुतने ॥ १४ ॥ जो यज्ञ किया था उस अश्वमेध यज्ञकी सामग्री उस स्थानपर बहुत विद्यमानहै, वह लाई जाय, तैसी अनुष्ठानकर ऋषियोंनें बुधके आश्रमके निकटही महान् अश्वमेध यज्ञका प्रारम्भ किया ॥ १५ ॥ इस यज्ञसे महायशी शंकर बहुतही प्रसन्न हुए, और यज्ञके समाप्त होनेपर बड़ी प्रसन्नतासे ॥ १६ ॥ इलके निकटही शिवजी सब ब्राह्मणोंसे बोले हे ब्राह्मणो! तुम्हारी भक्ति और इस अश्वमेध यज्ञसे मैं प्रसन्न हुआहूं ॥ १७ ॥ इस वाल्हदेशके राजाका कौनसा प्रिय कार्य करें, जब शंकरने ऐसा कहा तो वे ब्राह्मण सावधानतासे ॥ १८ ॥ शिवजीको प्रसन्नकर यही वर माँगने लगे कि इलको सदैव कालका पुरुषत्व प्रदान कीजिये तब शिवजीनें प्रसन्नहो इलको सब कालका पुरुषत्व प्रदान किया ॥ १९ ॥ इलको यह वरदे शिवजी अंतर्ध्यान हुए जब शिव अंतर्हित हुए और अश्वमेध समाप्त

हुआ ॥ २० ॥ तब वह ज्ञानी मुनि अपने २ आश्रमोंको चले गये राजाभी उस वाल्हिदेशको छोड़कर सुन्दर मध्य देशमें ॥ २१ ॥ प्रतिष्ठानपुर वसाता हुआ, जो बड़ा विख्यात हुआ, और वाल्हदेशका राज्य। शशिबिंदु उसका ज्येष्ठ पुत्र करने लगा जो बड़ा प्रतापी शत्रुका मारनेवाला था॥२२॥ प्रजापतिके पुत्र महाबलवान् इल राजा*प्रतिष्ठानपुरमें बहुत कालतक राज्यकर अन्तमें ब्रह्मलोकको गये ॥ २३ ॥

ऐलःपुरूरवाराजाप्रतिष्ठानमवाप्तवन् ॥ ई
दृशोह्यश्वमेधस्यप्रभावःपुरुषर्षभ॥ २४ ॥
स्त्रीपूर्वःपौरुषंलेभेयच्चान्यदपिदुर्लभम् ॥ २५ ॥

इलसे उत्पन्न हुए पुरूरवाजी प्रतिष्ठानपुरके राजा हुए, हे पुरुष श्रेष्ठ! अश्वमेध यज्ञका ऐसा प्रभावहै ॥२४॥ जो स्त्रीपन त्यागकर राजाने इसीके अनुष्ठानसे सदाके लिये पुरुषत्व पाया ॥ २५ ॥ इ०श्री० रा० वा० आ० उ० नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ॥

एतदाख्यायकाकुत्स्थोभ्रातृभ्याममितप्रभः ॥
लक्ष्मणंपुनरेवाहधर्मयुक्तमिदंवचः ॥ १ ॥

अमित पराक्रमी रामचंद्र भ्राताओंसे ऐसा कहकर फिर लक्ष्मणजीसे धर्मपूर्वक यह वचन बोले ॥ १ ॥ कि अश्वमेध यज्ञ करानेवाले वशिष्ठ वामदेव जावालि कश्यप इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाओ॥२॥ इन सबके साथ सम्मत करके सावधान चित्तहो सम्पूर्ण लक्षण सम्पन्न घोड़ा छोडेंगे॥ ३ ॥ यह वचन सुनकर शीघ्रतासे लक्ष्मणजी उन सब ब्राह्मणोंको बुलाकर लाये और रघुनाथजीसे निवेदन किया ॥ ४ ॥ वे सब ब्राह्मण देवताकी समान रघुनाथजीको प्रणाम करते देखकर आशीर्वाद देने लगे ॥ ५ ॥ तब रघुनाथजी उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी प्रणाम कर अश्वमेध यज्ञके सम्बन्धमें धर्म संयुक्त वचन कहने लगे ॥ ६ ॥ वे ऋषि रघुनाथजीके वचन सुन शिवजीको नमस्कार कर सब ब्रह्मवादी ऋषि अश्वमेध यज्ञकी बड़ाई करने लगे ॥७॥ रघुनाथजी उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके वचन अश्वमेधकी प्रशंसामें सुन

* प्रतिष्ठान पुरको इस समय झूसी कहतेहैं जो गंगापार प्रयाग राजके सन्मुख विद्यमानहै.

बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोंकी अश्वमेध यज्ञ करने में प्रवृत्ति देख-कर रामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले हे महाबाहो सुग्रीवजीके बुलानेको दूत भेजो ॥ ९ ॥ जो वह सम्पूर्ण वानर और वनवासियोंके साथ इस महोत्सव देखनेके निमित आवें ॥ १० ॥ और अतुल विक्रम विभीषणकोभी लिख भेजो कि वे इच्छाचारी राक्षसोंके साथ अश्वमेध महायज्ञ देखनेको आवें ॥ ११ ॥ और जो महाभाग हमारे हितकारी राजाहैं वे अपने साथियों सहित यज्ञभूमि देखनेको आवें ॥ १२ ॥ जो ब्राह्मण देशान्तरोंमें अपने धर्ममें सावधान रहतेहैं, उन सबको बुलावा भेज दो ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण ऋषि और तपस्वियोंको बुलाओ और देशान्तरोंसे स्त्रीसहित ब्राह्मणोंको बुलाओ ॥ १४ ॥ इसी प्रकार अनेक गाने बजानेवाले नटनर्तकोंको बुलाओ, और गोमती नदीके किनारे नैमिषारण्यमें यज्ञभूमि निर्माण कीजाय ॥ १५ ॥ वह बड़ा पुण्यस्थानहै, वहांके ऋषियोंको निमंत्रण करो कि वे सब प्रकारसे शान्तिपाठ करें ॥ १६ ॥ उन महात्माओंने नैमिषारण्यमें सहस्रों यज्ञ कियेहैं, हे लक्ष्मण! इस कारण वे इस यज्ञ क विधिको सम्यक् प्रकारसे जान्तेहैं ॥ १७ ॥ और ऐसा कोई दूत भेजा जाय जो दान मानसे संतुष्टहो धर्मपूर्वक निमंत्रणा दे शीघ्र आवें ॥ १८ ॥ हे महाबली बड़े हृष्टपुष्ट लक्ष बैलोंकी गाड़ीमें चावल भरकर वहां भेजे-जांय, और दश सहस्र बैलोंकी गाडियोंमें भर तिल मूंग अभी भेज दीजाय ॥ १९ ॥ और इसीके अनुसार चना कुलथी उरद और लोन भेजा-जाय, और इसीके अनुसार यथानुरूप घृत तेल और सुगंधित द्रव्य भेजे-जांय ॥ २० ॥ और भरतजी सबसे आगे सावधानतासे चांदी सोनेकी करोडों मुद्रा लेकर जांय ॥ २१ ॥ सब बजार और व्यापारी नट नर्तक रसोइयें और रसोई बनानेवाली स्त्री तथा औरभी मंगलकारिणी युवा स्त्रियें जांय ॥ २२ ॥ शास्त्र जान्नेवाले तथा बालक, बूढे और ब्राह्मण और सेना यह सब भरतजीके संग आगे२जांय ॥२३॥ कार्याध्यक्ष, शास्त्र जान्नेवाले, कोशा-ध्यक्ष, सेवक कौशल्यादि सब हमारी माता, और भरतादिकोंकी स्त्रियें॥२४॥ और दीक्षाकर्मके निमित्त सुवर्णकी हमारी पत्नीकोभी लेकर महायशस्वी भरतजी आगे २ जांय ॥२५॥ बड़े बड़े राजाओंके ठहरनेके निमित्त अनेक प्रकारके डेरे तम्बू भेजे जांय, और सेवकोंके रहनेके निमित्तभी रावटी

आदि जाँय, इस प्रकार महाबली रघुनाथजीने आज्ञादी ॥ २६ ॥ इस प्रकार भरतजी शत्रुघ्नजीके सहित अन्न पान वस्त्र और नोकरोंको लेकर चले ॥ २७ ॥ उस समय सुग्रीवके सहित महात्मा वानर गण समाचार सुन्तेही आये, और बड़े २ ब्राह्मणोंकी सेवामें रहे ॥ २८ ॥

विभीषणश्चरक्षोभिःस्त्रीभिश्चबहुभिर्वृतः ॥ ऋ
षीणामुग्रतपसांपूजांचक्रेमहात्मनाम् ॥ २९ ॥

विभीषणजीभी निमंत्रण पानेही राक्षस और राक्षसियोंको साथ लेकर आये, और बड़े तपस्वी महात्मा ऋषियोंकी पूजा करनेलगे ॥ २९ ॥
इत्यार्षे॰श्री॰वा॰आ॰उ॰एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥

तत्सर्वमखिलेनाशुप्रस्थाप्यभरताग्रजः ॥
हयंलक्षणसंपन्नंकृष्णसारंमुमोचह ॥ १ ॥

इस प्रकार रघुनाथजीने सब सामग्री भिजवाकर सम्पूर्ण लक्षण सम्पन्न घोड़ा छोड़ा ॥ १ ॥ घोड़ेके संगमें ऋत्विजोंको भेजकर पीछेसे सेना सहित रघुनाथजीने नैमिषारण्यको गमन किया ॥ २ ॥ महाबाहु रघुनाथजीने परमअद्भुत यज्ञका स्थान देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे ॥ ३ ॥ यह देश बहुत उत्तमहै ऐसा कह वहां निवास करने लगे व रघुनाथजीके वहां रहनेपर बहुतसे राजा भेंटलाये रघुनाथजीने स्वीकार कर उन सब राजाओंकी प्रशंसाकी ॥ ४ ॥ अन्नपान वस्त्र स्थानादिसे राजाओंका सत्कार करनेको भरत और शत्रुघ्न नियुक्त थे ॥ ५ ॥ और महात्मा वानरभी सुग्रीव सहित निमंत्रित ब्राह्मणोंकी सावधानतासे सेवा करने लगे ॥ ६ ॥ और विभीषणभी अनेक राक्षसोंके सहित सावधानीसे निमंत्रित तपस्वी ऋषियोंकी सेवा करने लगे ॥ ७ ॥ महात्मा राजाओंके रहनेके स्थान तथा उनका सन्मान और उनका सब प्रकार सत्कार महाबली रघुनाथजी स्वयंभी करतेथे ॥ ८ ॥ इस प्रकारसे विधिपूर्वक यज्ञ आरंभ होने लगा लक्ष्मणजी घोड़ेकी परिचर्या और रक्षामें नियुक्त हुये ॥ ९ ॥ इस प्रकार राजसिंह महाराज रामचंद्रके उस श्रेष्ठ यज्ञमें जबतक यज्ञ

होता रहा तबतक और कोई शब्द श्रवण गोचर नहीं हुआ॥ १० ॥ एक यही शब्द सुन्नेमें आताथा कि जबतक याचक संतुष्ट न हो बराबर उन्हें देते रहो, इस प्रकारसे उन महात्माके यज्ञमें निरन्तर दान हो रहा था ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारके सुवर्ण शर्करा अन्नादिके ढेर प्रातःकाल लगाये जाते और सन्ध्यासमयतक देदिये जाते याचकोंके मुखसे मांगनेका शब्द जबतक निकला चाहै कि ॥ १२ ॥ तबतक उस्से पहलेही वानर और राक्षस उस्से वह पदार्थ दे देते उस यज्ञमें कोई मलीन कृश अथवा दीन नहीं था॥१३॥ उस यज्ञमें सबही मनुष्य हृष्टपुष्टथे और जो उस यज्ञमें महात्मा मार्कंडे- यादि चिरजीवी मुनिथे ॥ १४ ॥ वह कहने लगे, हमने किसी यज्ञमें ऐसा दान नहीं देखा, जिस्से सोनेकी इच्छा होती उसे सोना मिलता ॥ १५ ॥ धनकी इच्छा वालेको धन रत्नकी इच्छा वालेको रत्न मिलताथा, हिरण्य सुवर्ण वस्त्रादिकोंके ॥ १६ ॥ दान करनेहीके निमित्त ढेरके ढेर लगरहे- थे न इन्द्र न चन्द्र न यम न वरुण ॥ १७ ॥ देवताओंके यहांभी ऐसा यज्ञ हमनें नहीं देखा, इस प्रकार वे सब तपस्वी कहनें लगे, सबही स्थानोंमें वानर और राक्षस ॥ १८ ॥

वासोधनान्नकामेभ्यःपूर्णहस्तादददुर्भृशम् ॥
ईदृशोराजसिंहस्ययज्ञःसर्वगुणान्वितः ॥ सं
वत्सरमथोसाग्रंवर्ततेनचहीयते ॥ १९ ॥

वस्त्र धन अन्नसे पूर्ण दान करनेंके निमित्त खड़े दीखतेथे,इस प्रकार सर्व गुणसम्पन्न राजसिंह रघुनाथजीका यज्ञ वर्ष दिनसे कुछ अधिक पर्यन्त होता रहा, परन्तु किसी बातमें कोई त्रुटि नहीं हुई ॥ १९॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० उ० द्विनवतितमःसर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥

वर्तमानेतथाभूतेयज्ञेचपरमाद्भुते ॥ सशिष्य
आजगामाशुवाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥ १ ॥

इसप्रकार वह परम अद्भुतयज्ञ होरहाथा उसी समय शिष्योंसहित भगवान् वाल्मीकि ऋषि आये ॥ १ ॥ उन्होंने इसप्रकार परमअद्भुत

यज्ञको देखकर ऋषियोंके स्थानोंके निकटही एकान्तमें अपना डेरा किया और अपने बहुतसे शिष्योंके निमित्त पर्णशालायें बनाई ॥ २ ॥ फल मूलोंसे भरे बहुतसे छकड़ेभी अपनी पर्णशालाके निकटही स्थापन करे, कारण कि जनकजीसे अधिक स्नेह होनेके कारण उन्हें भ्राता मानतेथे इसीसे रघुनाथजीके यहांका भोजन नहीं करतेथे ॥ ३ ॥ इस प्रकार निवासकर वाल्मीकिजीनें अपने शिष्य लव और कुशसे एकान्तमें कहा तुम दोनों प्रसन्नतापूर्वक सम्पूर्ण रामायण काव्यका गान करो ॥ ४ ॥ ऋषियोंके पवित्र स्थानोंमें ब्राह्मणोंके निवास स्थानोंमें गली राजमार्ग तथा राजाओंके डेरोंमें ॥ ५ ॥ रामचन्द्रके भवनके द्वारपर, जहां ब्राह्मण लोग यज्ञ कर्म करतेहैं, और जहां ऋत्विक् ब्राह्मणहों विशेष रीतिसे गान करो ॥ ६ ॥ यह जो अमृतकी समान स्वादवाले पर्वतके समीप उत्पन्न हुए फलहैं, इनको भोजन कर करके तुम इस काव्यका गान करो ॥ ७ ॥ हे सौम्य! जो तुम इन फलोंको भक्षणकर गान करोगे तो श्रम नहीं होगा, और मीठे फल मूलोंके भक्षण करनें उपरान्त गानेसे स्वरभी भंग नहीं होता ॥ ८ ॥ जो इस चरित्र श्रवण करनेके निमित्त महाराज रामचन्द्र तुमको बुलावैं, तो उनके और ऋषियोंके सन्मुख अवश्य प्रणामादि करके गाना ॥ ९ ॥ मैंने जो प्रमाणादि सहित सर्ग निर्माण किये हैं वह कोमल वाणीसे वीस सर्ग प्रतिदिन गाना क्योंकि इतनेही गाने चाहिये ॥ १० ॥ यदि कोई श्रवणकर कुछ धन देने लगे तो थोड़ेसे धनकाभी लोभ मत करना, और कह देना हम फल मूलाहारी आश्रममें रहनें-वालोंको धन लेकर क्या करना है ॥ ११ ॥ यदि रघुनाथजी पूछें कि तुम कौन और किसके पुत्र हो, तो महाराजसे इतनाही कहनाकि हम वाल्मीकिके शिष्यहैं ॥ १२ ॥ यह मधुर वीणा तंत्र लेकर उसके स्थान और यथोचित ताल लय स्वरसे अपूर्व मूर्च्छनाके संगीतसे सुखपूर्वक मधुर वाणीसे गाना ॥ १३ ॥ प्रथम सर्गसेही गाना प्रारम्भ करना, राजा बुलावें तो उनका अवज्ञा न करना कारण कि धर्मसे राजा सब प्राणियोंका पिताहै, उनके सन्मुख हास्यादि न करना ॥ १४ ॥ सो तुम प्रसन्न मनहो कल प्रातःकालसे वीणाकी लयसे संयुक्त इस काव्यको गाना ॥ ॥ १५ ॥ प्राचेतस मुनि वाल्मीकिजी इस प्रकार उन्हें अनेक विधिसे समझा

कर मौन हुए ॥ १६ ॥ वे दोनों जानकीके पुत्र इस प्रकारसे मुनिसे शिक्षित हो ऐसाही करेंगे यह कह वहांसे चले आये ॥ १७ ॥

तामद्भुतांतौहृदयेकुमारौनिवेश्यवाणीमृषिभाषितांतदा ॥ समुत्सुकौतौसुखमूषतुर्निशांयथाश्विनौभार्गवनीतिसंहिताम् ॥ १८ ॥

वे दोनों कुमार ऋषिकी कही अद्भुत वाणी हृदयमें धारण करके सुखपूर्वक उस स्थानमें ऐसा वास करते हुए जिसप्रकार च्यवनजीके स्थानपर उनके वचन सुन अश्विनीकुमार रहेथे ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० उ० त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ॥

तौरजन्यांप्रभातायांस्नातौहुतहुताशनौ ॥ यथोक्तमृषिणापूर्वंसर्वंतत्रोपगायताम् ॥ १ ॥

जब वह रात्रि बीती और प्रातःकाल हुआ तब लव कुश उठे और स्नानसे निश्चिन्त हो अग्नि होत्रकर ऋषिके कहे अनुसार रामायण गाने लगे ॥ १ ॥ वह पूर्व आचार्यकी निर्माण करी पहले कभी न सुनी पाठ्यके और गानेके षड्जादि स्वरोंसे भूषित ॥ २ ॥ ध्वनि परिच्छेदादि प्रमाणोंसे भूषित वीणाकी लयसे संयुक्त, मनोहर काव्य बालकोंके मुखसे श्रवणकर रघुनाथजी बड़े विस्मित हुए ॥ ३ ॥ यज्ञके अवसानमें जब अवकाशका समय हुआ तब नरसिंह रघुनाथजीने महामुनि, राजा और शास्त्रके जान्नेहारोंको और पंडितोंको बुलाया ॥ ४ ॥ पौराणिकाचार्य, व्याकरणाचार्य, और वृद्ध ब्राह्मण, षड्जादि स्वरोंके जान्नेहारे, संगीताचार्य, तथा औरभी सुन्नेके उत्कंठित ब्राह्मणश्रेष्ठ बुलाये गये ॥ ५ ॥ सामुद्रिकाचार्य, संगीत विद्याके जान्नेहारे पुरवासी साहित्याचार्य, पाद अक्षर समास गुरु लघुप्रयोगोंके जान्नेहारे, छंद विद्यामें निपुण पिंगलाचार्य ॥ ६ ॥ कला मात्रा प्रस्तार, मेरु मर्कटीआदिके ज्ञाता तथा ज्योतिषाचार्य, तथा व्यवहारके जान्नेहारे क्रिया कल्पसूत्रके जानेवाले तथा औरभी कार्य कुशल ॥ ७ ॥ केवल व्यवहारके जान्नेवाले, तर्क जान्नेवाले, बहुश्रुत तथा छंद

वेद और पुराणोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाया ॥ ८ ॥ फिर चित्र काव्यके जाननेहारे सूत्रोंके ज्ञाता गीत और नृत्यविद्यामें चतुर इन सब पुरुषोंको * बुलाकर लव कुशकोभी सभामें बुलाया ॥ ९ ॥ उस समय रघुनाथजीकी आज्ञापाय वे दोनों मुनिकुमार श्रोताओंका हर्ष वर्द्धन करते रामायण गाने लगे ॥१०॥ जिस्समय उन्होंने तालस्वरयुक्त मनुष्योंमें अपूर्व यह काव्य गाया तो इसे श्रवणकर कोईभी तृप्तिको प्राप्त न हुए किन्तु अधिक २ सुन्नेकी इच्छा करने लगे ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण मुनिगण और राजा महा आनंदित हुए और नेत्रोंसे पीते हुएसे वारंवार लव कुशको देखने लगे ॥ १२ ॥ और वे सब एकसाथ परस्पर कहने लगे कि यह ऐसे विदित होते हैं मानो रामचंद्रके बिम्बसेही दो प्रतिबिम्ब निकाल दियेहैं ॥ १३ ॥ यदि इनके जटा न होती और यह वल्कलवस्त्र न पहरे होते तो इनमें और महाराजमें कोई भेद न होता ॥ १४ ॥ इस प्रकार वे पुर देशवासी कह रहेथे कि नारदजीका कहा बालकाण्डका प्रथम सर्ग प्रारम्भ किया ॥ १५ ॥ और वहांसे आगे बीस सर्गतक उन्होंने गाया तब बीस सर्ग श्रवण करके मध्याह्नके समय रामचंद्रजी बोले ॥ १६ ॥ भ्रातृवत्सल रघुनाथजी उनबीस सर्गोंको श्रवणकर भ्रातासे कहने लगे कि आजके दिन इस काव्यके गानेमें इन दोनों कुमारोंको अठारह सहस्र सुवर्ण मुद्रा ॥ १७ ॥ शीघ्रही देदो और जो कुछ इनकी इच्छा हो सो यह सुनकर उन दोनों कुमारोंको पृथक् सुवर्ण मुद्रा दीगई॥१८॥परन्तु उस सुवर्णको उन दोनों कुमारोंने नहीं लिया और विस्मित होकर कहने लगे हम इन्हें लेकर क्या करेंगे ॥१९॥हम वनवासी वनमें रहकर कंद मूल फलसे अपना निर्वाह करतेहैं हम वनमें इस सुवर्णको लेकर क्याकरेंगे ॥ २० ॥ इन दोनोंके यह वचन सुनकर सम्पूर्ण श्रोता और रामचंद्र बड़े विस्मित हुए ॥ २१ ॥ तब महा तेजस्वी रघुनाथजीने उस काव्यकी प्राप्ति सुन्नेमें उत्सुक होकर उन दोनों कुमारोंसे पूछा ॥ २२ ॥ यह काव्य कितना बड़ाहै और महात्मा कविका क्या विषय है कितने कालतक इस काव्यकी स्थिति रहेगी और इस बड़े काव्यकी निर्माण करनेहारे मुनिश्रेष्ठ कहां हैं॥२३॥ रामचंद्रके यह बचन सुन वे दोनो ऋषिकुमार कहने लगे

* इस्से सम्पूर्ण गुण सम्पन्न रामायणहै यह स्फुट अभिप्रायहै ।

इस काव्यके कर्त्ता भगवान वाल्मीकिजीहैं जो आपके यज्ञमें आयेहैं जिन्होंने वह संपूर्ण चरित्र तुम्हें सुनाने को कहाहै ॥२४॥ इस काव्यमें चौवीस सहस्र श्लोकहैं सौ उपाख्यानहैं भृगुवंशावतंस महर्षि वाल्मीकिजीनें बनाया है॥२५॥प्रथम काण्डसे प्रारम्भ कर महात्मा ऋषिने इसमें ५०० पांचशत सर्ग छः काण्डोंमें कहेहैं और सातवां उत्तर काण्डहै॥२६॥ महर्षि वाल्मीकी जीने इस बृहत् काव्यको आपही की कीर्तिसे परिपूर्ण कियाहै और जबतक सृष्टि रहैगी तबतक इस काव्यकी प्रतिष्ठा होगी ॥ २७ ॥ हे महाराज यदि सम्पूर्ण सुन्नेकी इच्छाहो तौ आप यज्ञ क्रियाके अवकाशमें प्रतिदिन भ्राता ओं सहित सुना कीजिये॥२८॥यह वचन श्रवण कर रघुनाथजी बोले हम सब सुनैंगे, तब वे रघुनाथजीकी आज्ञासे प्रसन्न हो वाल्मीकि मुनिके निकट गये ॥ २९ ॥ रघुनाथजीभी मुनि और महात्मा राजाओंके संग इस काव्यकी मधुरता श्रवण कर यज्ञ शालामें आये ॥ ३० ॥

शुश्रावतत्तालल्योपपन्नंसर्गान्वितंसस्वर
शद्धयुक्तम् ॥ तंत्रीलयव्यंजनयोगयुक्तंकु
शीलवाभ्यांपरिगीयमानम् ॥ ३१ ॥

इस प्रकारसे सर्ग बन्ध महाकाव्यको ताल गीति लय स्वर शब्द वीणाकी मूर्छना व्यंजना सहित कुश लवके मुखसे रघुनाथजीने श्रवण किया॥३१॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आदि०उ० चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ॥

रामोबहून्यहान्येवतद्गीतंपरमंशुभम् ॥ शु
श्रावमुनिभिःसार्धंपार्थिवैःसहवानरैः ॥ १॥

इस प्रकारसे उस महाकाव्यको रघुनाथजीने मुनि राजा और वानरोंके सहित बहुत दिनतक सुना (६११ सर्ग उत्तरकाण्ड सहित साढेतीस दिनमें श्रवण किया) ॥ १ ॥ जब उत्तरकाण्डकी कथा श्रवण करनेसे यह ज्ञात हुआकि यह दोनों सीताके पुत्रहैं, तब सभामें रामचंद्र कहने लगे॥२॥ शुद्ध आचरण वाले शीघ्रगामी दूतोंसे रघुनाथजीने कहा, कि तुम भगवान् वाल्मीकिजीके आश्रममें जाकर हमारी ओरसे कहो ॥ ३ ॥ कि यदि

वैसेही तुम्हारे प्रति उत्पन्न हुए कामनें इस क्रोधको रोक रक्खाहै ॥ ३ ॥ मनुष्योंके लिये कामही बड़ा दारुणहै, क्योंकि जो कामके वश हुआ, वह चाहे क्रोधकाभी पात्रहो परन्तु कामके मारे उसमें दया, स्नेह, उत्पन्न होही जायगा ॥ ४ ॥ हे सुन्दरवदनवाली इस कारणसेही हम तुमको नहीं मार डालतेहैं । परन्तु तुम मार डालनें और निरादर करनेंके योग्यही हो; तुमनें वृथाही यह तापस व्रत धारण कियाहै ॥ ५ ॥ हे मैथिली! तुमनें जो यह कठोर वचन हमको कहे, उन एक २ वचनके लिये बडे निठुर पनसे तुमको मारना उचित है ॥ ६ ॥ राक्षस रावण विदेहकुमारी सीताजीको क्रोधसे भरे हुए यह वचन कह फिर उनके वचनोंका उत्तर देनें लगा ॥७ ॥ हमनें जो दो महीनेंकी अवधि दीहै. सो दोमहीनेतक देखेंगे । सुन्दरी! उस अवधिके पीछे फिर तुमको हमारी सेजपर आना पड़ेगा॥८॥ दो मासके वीत जानें पर यदि तुम हमें स्वामी भावसे भजनेंकी इच्छा न करोगी. तौ रसोइयें लोग हमारे प्रातः भोजनके लिये तुम्हें टुकडे २ करकै काट डालेंगे ॥ ९ ॥ जब इस प्रकार राक्षस रावणनें जानकीजीको धमकाया, तब उसके संग जो देवता और गन्धर्वोंकी कंन्या आई थीं वह सब कातरनेत्र और शोकित हुईं ॥ १० ॥ और कोई अधर, कोई नेत्र, और कोई मुख चलाय २ शोक करके राक्षस राजसे पीड़ित जानकी जीको समझानें बुझानें लगीं * ॥ ११ ॥ उनके समझानेसे धीरज बांध, सीताजी सदाचार और श्रीरामचंद्रजी अपने स्वामीके वीर्यका विश्वास करकै गर्वित वचन राक्षसपति रावणसे बोलीं ॥ १२ ॥ हम जानतीहैं कि उस लंका नगरीमें ऐसा कोई जन नहीं है; कि जो तुम्हारे हितकी कामना करताहो; कारण कि जो कोई होता वह अवश्यही तुमको इस निन्दनीय कर्मसे रोकता ॥ १३ ॥ जिस प्रकार इन्द्रजीकी शची वैसेही धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीकी हम धर्मपत्नीहैं, त्रिलोकमें तुम्हारे सिवाय ऐसा कौन दुरात्माहै? जो मनसेभी हमारी प्रार्थना करताहो॥१४॥ हे राक्षसोंमें नीच! तुमनें अमित तेजस्वी श्रीरामचंद्रजीकी भार्यासे जो पाप कथा कही, इस्से कहीं तुम्हारा निस्तार नहीं ॥ १५ ॥ रेनीच ! वन-

* यह समझाना बुझाना सैनोसेही हुआथा कि यह रावण बलसे कुछ नहीं कर सक्ता क्यों- कि शापितहै ॥

जानकी शुद्धाचार पाप रहितहैं तौ आपकी अनुमतिसे सभामें आकर अपनी शुद्धता प्रगट करैं ॥ ४ ॥ यह उनसे कहकर मुनिकी सम्मति और सीताकी इच्छाको जानकर (कि वे अपनी शुद्धता प्रगट किया चाहती हैं) तुम बहुत शीघ्र हमारे पास आओ ॥ ५ ॥ जनककुमारी कल प्रातःकालही सभाके बीचमें हमें ❋ और अपने शुद्ध करनेके निमित्त शपथ करैं ॥ ६ ॥ रघुनाथजीके यह वचन सुन, जो आज्ञा ऐसा कहकर शीघ्रतासे दूत वाल्मीकिजीके निकट गये ॥ ७ ॥ वे अग्निकी समान दीप्ति वाले वाल्मीकिजीको प्रणाम करकै रघुनाथजीके कोमल और मधुर वाक्य उनको सुनाने लगे ॥ ८ ॥ महा तेजस्वी वाल्मीकिजीने उनके वचन और रघुनाथजीके मनकी बात जानकर दूतौंसे कहा ॥ ९ ॥ तुम्हारा कल्याणहो जो रामचंद्र कहतेहैं, ऐसाही होगा और जानकीजीभी शपथ करैंगी, कारण कि स्त्रियौंका पतिही देवताहै ॥ १० ॥ मुनिसे यह वचन सुनकर वह मुनिके वचन शीघ्रतासे आकर दूतौंने रघुनाथजीसे कहे ॥ ११ ॥ यह वचन सुनकर महात्मा रामचंद्रजी प्रसन्न हुए, और उन राजा तथा ऋषियोंसे कहने लगे ॥१२॥ आप सब अपने शिष्य, और सेवकों सहित सब राजा, सीताकी शपथ देखिये, तथा और जिनकी इच्छा होवे वे भी देखैं ॥१३॥ यह महात्मा रामचंद्रके वचन सुनकर सब ऋषि मंडलीमें धन्य धन्यकी ध्वनि होने लगी ॥ १४ ॥ और महात्मा राजाभी रघुनाथजीकी प्रशंसा करने लगे कि आपके सिवाय और कोई इस जगत्में ऐसे वचन नहीं कहसक्ता ॥ १५ ॥ इस प्रकार शत्रुतापन रघुनाथजीनें प्रातःकालको सीताकी शपथका निश्चयकर उन सबको विदा किया ॥ १६ ॥

इतिसंप्रविचार्यराजासिंहःश्वोभूतेशपथस्यनिश्चयम् ॥ विससर्जमुनीन्नृपांश्चसर्वान्समहात्मामहतोमहानुभावः ॥ १७ ॥

महा प्रतापी महात्मा राजसिंह रघुनाथजीनें इस प्रकारसे दूसरे दिन प्रातःकाल जानकीकी शपथका निश्चय करकै उन सम्पूर्ण मुनि और

❋ रामचंद्र जानकीकी सुंदरतासे लुब्धहैं इस कारण उन्हे घरमें रख लिया यह अपयश रघुनाथजीने अपने में माना.

राजाओंको विदा किया ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० उत्तरकांडे पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ॥

तस्यांरजन्यांव्युष्टायांयज्ञवाटंगतोनृपः ॥ ऋषी न्सर्वान्महातेजाःशद्धापयतिराघवः ॥ १ ॥

वह रात्री बीतनेंपर महा तेजस्वी रामचन्द्रने यज्ञशालामें गमन कर सम्पूर्ण ऋषियोंको बुलाय ॥ १ ॥ वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, विश्वामित्र, दीर्घतमा, महातेजस्वी, दुर्वासा ॥ २ ॥ पुलस्त्य, शक्ति; भार्गव वामन, मार्कण्डेय दीर्घायु महायशस्वी मौद्गल्य॥३॥ गर्ग, च्यवन, धर्मात्मा शतानंद, तेजस्वी भरद्वाज, अग्नि पुत्र सुप्रभ ॥ ४ ॥ नारद, पर्वत, महा यशस्वी गौतमजी इनके आदिले बहुतसे महाव्रत धारी मुनि ॥ ५ ॥ कौतूहलसे सब आये, और महावीर्यवान राक्षस तथा महाबली वानर ॥ ६ ॥ औरभी महात्मा बड़ी उत्कंठासे यज्ञ शालामें आये, और सहस्रों क्षत्रिय वैश्य शूद्र ॥ ७ ॥ और अनेक देशोंसे आये हुए महाव्रत धारी ब्राह्मणभी जानकी की शपथ देखनेको सभामें आये ॥ ८ ॥ इस प्रकारसे सब आयकर प्रस्तरकी मूर्तिकी समान सभामें मौन होकर बैठगये, सबका आना सुनकर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी जानकीके सहित सभामें आये ॥ ९ ॥ रामचंद्रको मनमें धारण किये आँखोंमें आंसू भरे मुख नीचाकिये हाथ जोड़े श्रीमती महारानी जानकी वाल्मीकिजीके पीछे२ आई ॥ १० ॥ वाल्मीकिजीके पीछे ब्रह्माजीके पश्चात् श्रुतिकी समान जानकीको आता देखकर सभामें ❋ धन्य२की ध्वनिहोने लगी॥ ११॥ उस समय सीताके दर्शनसे उत्पन्न हुए अत्यन्त दुःखसे सभाके लोग व्याकुल,होगये और उनका बड़ा कोलाहल होने लगा ॥१२॥ कोई२ धन्य राम! कोई२ धन्य सीता! कोई२

❋ सभासद मनमें– क्या येही सिय जनक दुलारी– तपसे कृषित अंग सब दुर्बल रघुपतिके प्राणोंकी प्यारी १ वल्कल वस्त्र किये तनु धारण दृष्टि चरणकी ओर पसारी २ जिनके संग सहस्रों दासी सो इकली ऋषिसंग पधारी३मन नाहिं धीर धरत इस अवसर आतीहै मूर्च्छा अति भारी ४ पतिके हेत तपोवन तप कर सहे दुःख और कष्ट अपारी ५ आज न सकल करें अनुमोदन त्यजिहै देह तुरत अविचारी ॥

धन्य रामसीता !!! इस प्रकारसे कह कर कोलाहल करने लगे ॥ १३ ॥ तब मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी जानकीको संगलिये सभाके बीचमें प्रवेशकर रामचंद्रसे बोले ॥ १४॥ यह जानकी रामचंद्रकी भार्या सुव्रता और धर्म चारिणीहैं इनको अपवादसे रघुनाथजीने मेरे आश्रमके निकट त्याग दिया॥१५॥ हे महाव्रत रघुनाथजी! आपने लोकापवादके भयसे जानकीको त्याग दियाहै, इस विषयमें जानकी अपनी शुद्धिका परिचय देगी, आप आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥ हे रघुनाथजी यह दोनों महा बली दुर्द्धर्ष तुम्हारे पुत्रहैं जो जानकीके उदरसे एक साथही उत्पन्न हुएहैं, यह हमारे वचन आप सत्य जाने ॥ १७ ॥ हे रामचंद्र!मैं वरुणजीका दशमां पुत्र हूं मैंने आज तक कभी असत्य का स्मरणभी नहीं किया, यह दोनो तुम्हारे पुत्रहैं, इसमे संदेह नहीं ॥ १८ ॥ मैंने सहस्र वर्षतक तपस्या कीहै यदि जानकीका चारित्र अशुद्धहो तौ मुझे तपस्याका फल कुछभी न प्राप्त हो ॥ १९ ॥ मन वचन कर्मसे जो पाप हमने कभी नहीं कियाहै, यदि जानकी पाप रहितहैं, तो इस अनुष्ठानका फल हमें प्राप्तहो ॥ २० ॥ हे रघुनंदन! हम पंच भूतोंसे निर्मित श्रोत्रादि पंच इन्द्रिय और छठे मनसे जानकीको शुद्ध जानकर वनसे अपने आश्रमको लेगयेथे॥२१॥यह पतिव्रता शुद्धाचार और पापरहितहैं, लोकापवादसे भीत हुए आपको अपना परिचय देगी ॥२२॥

तस्मादियंनरवरात्मजशुद्धभावादिव्येनदृष्टिविषये
णमयाप्रदिष्टा॥लोकापवादकलुषीकृतचेतसायात्य
क्तात्वयाप्रियतमाविदितापिशुद्धा ॥ २३ ॥

हे रघुनंदन! मैंने दिव्य दृष्टिसे देख लियाहै, कि जानकी शुद्धहैं, आपभी जान्तेहैं कि हमारी प्रिया जानकी शुद्धहैं परन्तु आपने इन्हे लोकापवादसे त्यागन कर दियाहै* ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

---

* क०—आज श्रीरामके दर्बारमें यह दृश्य भारीहै सभासद जितनेहै सबसे ये एक विन्ती हमारीहै ॥ १ ॥ जोमैं कहताहूं उसको ध्यान देकर सब कोई सुनो मेरी वाणी नहीं झूठी यह सब जगने विचारीहै ॥ २ ॥ सोमैं श्रीसूर्य धर्म औ चंद्रको कर साक्षी इसमें, तनकभी झूंठ बोलूं तो तपस्या झूंठ सारीहै ॥ ३ ॥ महारानीये सीताहै बनाये वेष तपसिनका, नहीं कुछ पापहै इनमें गिरा यह सत्य उच्चारीहै ॥ ४ ॥ जो तुम मानो मेरी बानी तो जानो शुद्ध सीताको नहीं कुछ मिश्रहै संदेह शपथ क्या तपसे भारीहै ॥ ५ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ॥

वाल्मीकिनैवमुक्तस्तुराघवःप्रत्यभाषत ॥ प्रां
जलिर्जगतोमध्येदृष्ट्वातांवरवर्णिनीम् ॥ १ ॥

वाल्मीकिजीके यह वचन सुन और सभाके बीचमें जानकीको खड़ा देख रघुनाथजी कर जोड़ कहने लगे ॥ १ ॥ हे महा भाग धर्मज्ञ जो आप कहते हैं, वह ठीक ऐसेहीहै, आपके पाप रहित वाक्योंका मुझे विश्वासहै ॥ २ ॥ कारण कि लंका जीतनेके उपरान्त देवताओंके समीपमें जानकीने शपथकीथी इसी कारण हम इनको शुद्ध जानकर घर लायेथे ॥ ३ ॥ परन्तु फिर लोकापवादको बलवान् जानकर हमने जानकीको त्यागा, हे भगवन् मैं जान्ताहूं कि जानकीमें कुछ पाप नहीं, परन्तु लोकापवादके भयसेही मैंने जानकीको त्यागाथा, यह अपराध आप क्षमा कीजिये ॥ ४ ॥ इन जगत्में अति शुद्ध जानकीके यमज पुत्रोंकोभी मैं जान्ताहूं कि यह हमारेही पुत्रहैं इसी कारण इनमें हमारी बड़ी प्रीतिहै ॥ ५ ॥ रामचंद्रका सीताकी शुद्धिका अन्य अभिप्राय जानकर (कि अब यह साकेत लोकको जांयगी) उस समय उस शपथ देखनको सब देवता आये ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीको आगे करके १२ आदित्य ९ वसु ११ रुद्र, १३ विश्वेदेव, ४९ पवन ॥ ७ ॥ साध्यगण, सम्पूर्ण, परमर्षि, नाग, गरुड, सिद्ध, यह सब प्रसन्न होकर आये ॥ ८ ॥ देवता और ऋषियोंको देखकर रघुनाथजी फिर बोले, कि मुझे ऋषिके पाप रहित वचनोका पूर्ण विश्वासहै ॥ ९ ॥ जगत्में अत्यन्त शुद्ध जानकीमेंभी मेरी पूर्ण प्रीतिहै, रघुनाथजी ऐसा कह रहेहैं, कि महारानी शपथ करेंगी, इस बातको सुनकर व्याकुलहो बहुत मनुष्य आये ॥ १० ॥ उस समय पुण्य रूप पवित्र मनोरम वायु सुगंधि सहित चलने लगी, जिसके स्पर्शसे वह सब मनुष्य और सब देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ सब लोग उसे अद्भुत और अचिन्त्यकी समान देखने लगे, और सब लोगोंके मन ऐसे होगये मानो सतयुग होगया ॥ १२ ॥ सब मनुष्यों और देवताओं तथा चौदह भुवनके प्राणियोंको एकत्र देखकर तपस्विनियोंके वस्त्र धारण करे नीचेको मुख किये हाथ जोड़ जनककुमारी जानकी बोलीं ॥ १३ ॥

ो प्रकार मनसेभी कभी मैंने रघुनाथजीके सिवाय अन्यका स्मरण नहीं केयाहो तो माधवी देवी पृथ्वी फट जाय कि मैं उसमें समाजाऊं ॥ १४ ॥ मन वचन कर्मसे जो मैं रघुनाथजीका स्मरण पूजन करती रही हूं तो पृथ्वी देवी फट जांय कि मैं उसमें समाजांऊ ॥ १५ ॥ जो मैं रामचंद्रसे अन्य किसीको नहीं जान्तीहूं और मेरा यह वचन सत्यहै तो पृथ्वी विदीर्ण होजाय, कि मैं उसमें समाजाऊं* ॥ १६ ॥ जानकीके ऐसा कहनेपर बड़ा अद्भुत हुआ, कि तत्काल पृथ्वीको भेदकर उत्तम दिव्य सिंहासन निकला ॥ १७ ॥ उस सिंहासनको अमित विक्रमीनाग अपने शिरोंपर उठा रहेथे, उन नागोंका दिव्य शरीर दिव्य रूपथा, और दिव्यरत्नधारण कियेथे ॥ १८ ॥ उसके ऊपर साक्षात् धरणीदेवी बैठी हुईथी, उसने जानकीको दोनों भुजाओंसे आलिंगनकर*पुत्री अच्छी तरहसे हो, ऐसा कहकर सिंहासनपर बैठा लिया ॥ १९ ॥ ज्योंही जानकी सिंहासनपर बैठीं कि वह पातालको जाने लगा, उसीसमय दिव्य पुष्प वर्षा जानकीके ऊपर होने लगी ॥ २० ॥ और उससमय देवताओंके बीचमें साधुवाद होने लगा, हे सीता तुम धन्यहो जो तुम्हारा शील ऐसाहै ॥ २१ ॥ इसप्रकारसे बहुत प्रकारके वचन देवता आकाशसे कहने लगे, और जानकीका पाताळमें प्रवेश देख प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ और यज्ञ स्थानमें आये हुए सम्पूर्ण मुनि और रामचंद्र महा विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें सम्पूर्ण स्थावर जंगम महाकाय दानव और पातालमें सर्प ॥ २४ ॥

---

* विहाग–धरणी सुनिये विनय हमारी। माता तुम घट घटकी जानत सकल विश्वकी धारन हारी ॥१॥ अपनी पुत्रीकी यह विपता कैसे तोपै जात निहारी २ आज लाज मैया रखलीजे लीजे मोकों हाथ पसारी ॥३॥ जी मन कर्म वचन रघुपति विन नहीं और की ओर निहारी ॥ ४ ॥ तो तुम फटो बीचदो मोहिको सहि न जात विपता अबभारी ॥ ५ ॥ रामविना पति देव न दूजा तो फटजा सत वचन विचारी ॥ ६ ॥ मैया गोद पसार उठाले करदीजे इस जगसे न्यारी ॥ ७ ॥

* पुत्री जीमें दुःख नलाओ॥हो तुम शुद्ध शपथ सब सांची, अब मत मृत्युलोक दुःखपाओ ॥१॥तुमसी सती रामसे भर्ता सुने नहीं मनसोच न लाओ॥२॥चलो नित्य आनंद लोकमें अब मत बेटी देर लगाओ ॥ ३ ॥ दर्शन कर लो अन्तिम पतिके पुनि साकेत लोकको आओ ॥४॥ (पातालमें प्रवेश)

कोई प्रसन्नहो शब्द करनें लगे, और कोई ध्यान करने लगे, कोई रामचं-
द्रको देखने लगे, कोई सीतामें मन लगाये रहगये ॥ २५ ॥

सीताप्रवेशनंदृष्ट्वातेषामासीत्समागमः ॥ त
न्मुहूर्तमिवात्यर्थंसमंसंमोहितंजगत् ॥ २६ ॥

उन संपूर्ण ऋषियोंका समागम और सीताजीका प्रवेश देखकर मुहूर्त
मात्रतक संपूर्ण जगत् मोहित होगया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे
वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्ट नवतितमः सर्गः ॥

रसातलंप्रविष्टायांवैदेह्यांसर्ववानराः ॥ चुक्रु
शुःसाधुसाध्वीतिमुनयोरामसन्निधौ ॥ १ ॥

जानकीको रसातलमें प्रवेशित हुआ देखकर रघुनाथजीके निकटमें
सम्पूर्ण वानर रोदन और मुनि धन्य धन्य कहने लगे ॥ १ ॥
काष्ठदंडमें आश्रित हो आंसुसे नेत्र पूरित किये नीचेको शिर दीन
मनहो रघुनाथजी अत्यन्तही व्याकुल हुए ॥ २ ॥ और बहुत काल
तक रोदन करते नेत्रोंसे अविरल अश्रु त्यागन करते ॥ ३ ॥ महा क्रोधित
होकर रघुनाथजी बोले ॥ ४ ॥ जो कि लक्ष्मीकीसमान रूपवाली जानकी
जी हमारे देखते ही देखते पातालमें प्रवेश कर गई इसकारण हमें वह शोक
प्राप्त हुआहै जैसा कभी नहीं हुआथा ॥ ५ ॥ जब कि जनकसुताको मैं
समुद्रके पारसे भी ले आया कि जहां उनके रहनेको कोई नहीं जान्ताथा
फिर पृथ्वीके नीचेसे लाना क्या बड़ी बात है ॥ ६ ॥ हे पृथ्वी देवी
भगवति तुम हमारी जानकीको लादो यदि तुम हमारा अनादर
करोगी तो हमभी तुमपर अपना क्रोध प्रकाश करेंगे ॥ ७ ॥ और तुम
हमारी सासुतुल्यभी हो कारण कि जनकने हल कर्षण करते समय तुमसे
जानकीको पायाथा इस कारण या तो जानकीको लाओ या मुझे भी प्रवेश
करनेको स्थान दो पाताल या स्वर्ग जहां भी हो मैं जानकीके निकटही
बसनेकी इच्छा करताहूं ॥ ८ ॥ हे वसुधे ! जानकीको लाओ मैं उन
के निमित्त अत्यन्त व्याकुल हूं और जो तुम जानकीको नहीं दोगी तो मैंभी

पृथ्वीमें प्रवेश करूंगा ॥९॥ और इतनेंपरभी नहीं मानोगी तो पर्वत वन स-
हित तुमको व्याकुल करके इस सब पृथ्वीको जलमें मग्न कर दूंगा इसमें सब
जल हो जायगा ॥ १० ॥ जब क्रोध और शोकसे रघुनाथजीने ऐसा कहा तो
ब्रह्माजी देवताओंके सहित रघुनाथजी से आकर बोले ॥ ११ ॥ हे राम
हे सुव्रत आप किसी प्रकार संताप न कीजिये हे शत्रु तापन! आपने जो
पूर्वकालमें देवताओंसे कहाथाकि हम इतने कार्यके निमित्त पृथ्वीमें अवतार
लेंगे उस्से स्मरण कीजिये॥१२॥हम आपको स्मरण नहीं कराते महाभुज
हम प्रार्थना करते हैं कि आप अपनें दुर्द्धर्ष वैष्णवरूपका इस समय ध्यान
कीजिये अब मनुष्य नाट्यका समय ॥ १३ ॥ होचुका जानकीजी सब
प्रकारसे पवित्र और सदा तुम्हारी अनुगामिनीहैं तुम्हारे आश्रित तपो
बलसें नागलोक कू गई ॥ १४ ॥ अब वैकुंठमें इनका और तुम्हारा फिर
संगम होगा इस सभाके मध्यमें जो कुछ मैं आपसे कहता हूं वह मेरे वचन
सुनो ॥१५॥ और यह काव्य जो सब काव्योंमें उत्तम काव्यहै इसका आगे
बड़ा विस्तार होगा (अर्थात् इसकी कीर्ति होगी) जो इसमें लिखाहै उसीके
अनुसार करो ॥ १६ ॥ हे राम जन्मसे लेकर जो आपको सुख दुःखकी
प्राप्ति हुईहै वह सब वाल्मीकिजीनें इसमें वर्णन कियाहै और शेष भविष्य
उत्तरभी कहाहै जिसमें होनहार वर्णनहै ॥ १७ ॥ हे रघुनाथ इस आदि
काव्यकी सब कथा आपमें प्रतिष्ठावालीहैं; आपको छोड़कर इस काव्यके
यशको कोई नहीं पासक्ता ॥ १८ ॥ यदि कहो तुम किस प्रकारसे जान्तेहो
तो हमने दिव्य अद्भुत रूप सत्य वचन संयुक्त और अज्ञान विनाशक यह
काव्य देवताओंके साथही तुम्हारे यज्ञमें सब सुनाहै ॥ १९ ॥ हे पुरुष-
सिंह रघुनाथजी आप अब सावधान होकर शेषरामायणकोभी श्रवण
कीजिये ॥ २० ॥ हे महातेजस्वी महायशस्वी आप उत्तरकाण्डको
जो शेष रहाहै, इन ऋषियोंके साथही श्रवण कीजिये ॥ २१ ॥ इस शेष-
काण्डके श्रवण करनेंमें अन्य भरतादिके श्रवण करनेंका प्रयोजन नहींहै
हे वीर रघुनंदन ब्रह्मलोकनिवासी ऋषियोंके साथ इसे केवल आपही
सुनिये ॥ २२ ॥ तीनों भुवनके ईश्वर ब्रह्माजी रामचंद्रसे यह कह (बांधव
देवताओंके सहित ब्रह्मलोकको गये ॥ २३ ॥ उनके संगमें जो ब्रह्मलोक
निवासी महात्मा ऋषिथे वे फिर रघुनाथजीकी यज्ञशालामें ब्रह्माजीकी

आज्ञासे चले आये ॥ २४ ॥ कारण कि उन्हेंभी रघुनाथजीके भविष्य चरित्र सुन्नेकी इच्छाथी, इसप्रकार रघुनाथजीनें देव देव ब्रह्माजीकी सुंदर वाणी सुनकर ॥ २५ ॥ परम तेजस्वी वाल्मीकिजीसे कहा, हे भगवन् यह ब्रह्मलोकनिवासी ऋषि भविष्य श्रवणकीइच्छा करते हैं ॥ २६ ॥ जो कुछ हमारे विषयमें भविष्यहै, वह कल प्रातःकाल सुनाया जाय, ऐसा निश्चयकर और कुश लवको साथ ले ॥ २७ ॥

तंजनौघंविसृज्याथपर्णशालामुपागमत् ॥ ता
मेवशोचतःसीतांसाव्यतीताचशर्वरी ॥ २८ ॥

उन सब मनुष्योंको विदाकर श्रीरामचन्द्रजी वाल्मीकिकी पर्णशालामें आये ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

एकोनशततमः सर्गः ॥

रजन्यांतुप्रभातायांसमानीयमहामुनीन् ॥ गी
यतामविशंकाभ्यांरामःपुत्रानुवाचह ॥ १ ॥

रघुनाथजी प्रातः होतेही नित्य कर्मसे निश्चिन्त हो सम्पूर्ण महामुनियोंको बुलाकर कुश लवसे बोले कि अब तुम निःशंक होकर गाओ (माताके वियोगका दुःख और हम तुम्हारे पिताहैं यह शङ्का मत करो)॥ १ ॥ इसके उपरान्त जब महात्मा ऋषि बैठ गये, तब भविष्य उत्तरकाण्ड कुश लवने गाना प्रारम्भ किया ॥ २ ॥ जब अपने सत्य और पातिव्रतकी सम्पत्तिके कारण जानकी रसातलमें प्रवेश करगईं, तब उस यज्ञके अवसानमें रघुनाथजी बहुत दुःखी, हुए ॥ ३ ॥ जानकीके विना देखे रघुनाथजी जगत्को शून्य मान्ने लगे, और ऐसे शोकित हुए कि किसी प्रकार शान्तिको न प्राप्त हुए ॥४॥ तब रघुनाथजीने संपूर्ण राजा रीछ वानर राक्षस ब्राह्मण और जनसमूहको अनेक प्रकारके दान मान धनसे सन्तुष्ट किया॥५॥राजीवलोचन रामचन्द्र उन सबको विदाकर जानकीको हृदयमें धारण करे अयोध्यामें आये ॥ ६॥ जानकीके विना रघुनाथजीनें और कोई भार्या नहीं की किन्तु जब यज्ञ करते सोनेकी सीतासे यज्ञ पूर्ण किया

जाता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे प्रति वर्ष अश्वमेध यज्ञ दशसहस्र वर्षंतक किया और सहस्र वर्षके पीछे उस्से दशगुणा फल दायक वाजपेय जिसमें बहुत सुवर्ण दान किया जाताहै कि ये ॥ ८ ॥ अग्निष्टोम, अतिरात्र, गो-मेधादि यज्ञ तथा औरभी अनेक यज्ञ महा दक्षिणा और दान देकर किये ॥ ९ ॥ इसप्रकार उन महात्मा रामचन्द्रको धर्मपूर्वक राज्य करते-हुए बहुत समय बीत गया ॥ १० ॥ रीछ वानर और राक्षसभी सदा रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान्ते रहे, और प्रतिदिन देशान्तरोंके राजा आकर रघुनाथजीको प्रसन्न करते रहे ॥ ११ ॥ कालमें सदा मेघ वर्षता दुर्भिक्ष कभी नहीं होता, दिशा निर्मल रहती, नगर देश सब हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरे पुरे रहते ॥ १२ ॥ न कोई अकालमें मरता, न प्राणियोंको कुछ बाधा होती, बहुत क्या रामचन्द्रके राज्य शासनमें कहींभी कुछ अनर्थ नहीं था ॥ १३ ॥ तब बहुत काल बीतनेपर रामकी यशश्वनी माता कौशल्याजी पुत्र पौत्रोंसे संयुक्तहो मरणको प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ इसी प्रकार अनेक धर्म करके उनके कुछ दिनही उपरान्त सुमित्रा और कैकेयीभी मृत्युवश हुई ॥ १५ ॥ वे सब महाभाग्यवती स्वर्गमें प्राप्त होकर अपने पति राजा दशरथसे मिलकर धर्म फल भोगने लगीं ॥ १६ ॥ रामचन्द्रजी उन सब माताओंके कल्याण निमित्त तपस्वी और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान करते रहे ॥ १७ ॥ धर्मात्मा रामचंद्रजी पितर और देवताओंकी वृद्धिके निमित्त और अपनें पिताकी वृद्धिके निमित्त अनेक प्रकारके रत्नोंके दान और यज्ञके अनुष्ठान करते रहे ॥ १८ ॥

एवंवर्षसहस्राणिबहून्यथययुःसुखम् ॥ य
ज्ञैर्बहुविधंधर्मवर्धयानस्यसर्वदा ॥ १९ ॥

इस प्रकार यज्ञानुष्ठानसे सदा धर्मकी वृद्धि करते कई सहस्रवर्षतक रघुनाथजी सुखसे राज्य करते रहे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० उ० यज्ञावसानं नामैकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः ॥

कस्यचित्त्वथकालस्ययुधाजित्केकयोनृपः ॥
स्वगुरुंप्रेषयामासराघवायमहात्मने ॥ १ ॥

कुछ समयके उपरान्त केकय देशके राजा युधाजितने रघुनाथजीके निकट अपने गुरूको भेजा ॥ १ ॥ उनका नाम गार्ग्यथा ये गार्ग्यजी अंगिराके पुत्र महाज्ञानी ब्रह्मर्षि थे, इनके साथ दश सहस्र उत्तम काबुल देशके घोडे ॥ २ ॥ नाना प्रकारके विचित्र ऊनी वस्त्र शाल दुशाल उनमें एक वस्त्र तो बहुत मोलका था इसी प्रकार रत्न और भूषण बड़े प्रसन्नहो राजाने रघुनाथजीके निमित्त दिवाकर भेजे ॥३॥ रघुनाथजीने जब यह सुना कि महात्मा गार्ग्यजी आतेहैं, और अश्वपति मामाने उनके साथ बहुत धनभी भेजाहै ॥ ४ ॥ एक कोस तक रामचंद्र भाइयों सहित उनकी आगौनीको गये, और जैसे इन्द्र बृहस्पतिजीकी पूजा करतेहैं, इस प्रकार उनकी पूजा की ॥ ५ ॥ सम्यक् प्रकारसे ऋषिका पूजन कर और मामाका भेजा वह धन ले मामाके घरकी कुशल वार्ता बहुत प्रकारसे पूछी ॥ ६ ॥ फिर रघुनाथजी ऋषिको घर लाय अच्छी प्रकार बैठाय पूछने, लगे, कि हमारे मातुलने क्या संदेशा भेजाहै, जिसकारण आप ॥ ७ ॥ यहां पधारेहो आप बोलनेवालोंमें साक्षात् बृहस्पतिके समानहो, रामचंद्रके वचन सुनकर महर्षि कार्यको विस्तार पूर्वक ॥ ८ ॥ रामचंद्रसे कहने लगे, हेनर श्रेष्ठ ! महाभुज आपके मामाने यह संदेशा दियाहै ॥ ९ ॥ जो युधाजित्ने कहाहै वह आप प्रीतिसे सुनिये, यदि अच्छा लगे तो करिये, यह गंधर्व देश बहुतसे फल और मूलोंसे शोभित है ॥ १० ॥ जो सिंधुनदके दोनों किनारोंपर सुशोभित है, उसको युद्धमें चतुर शस्त्रधारी गंधर्व रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥ वे महाबली तीन करोड़ गंधर्व शैलूष गंधर्वके पुत्र हैं हे काकुत्स्थ उनको युद्धमें जीत वह सुंदर गंधर्वनगर ॥ १२ ॥ अपने राज्यमें मिलाइये हे महाबाहो ! उस परम सुंदर देशमें दूसरेकी गति नहींहै, यदि आपको रुचै तो कीजिये कुछ हम आपका अनभल नहीं चाहते ॥ १३ ॥ मामाके यह वचन सुनकर रामचंद्र बहुत प्रसन्न हुए और बहुत अच्छा कहकर भरतकी ओर निहारा ॥ १४ ॥ रामचंद्रजी कर जोड़ प्रसन्नतासे बोले हे महर्षि आपका मंगलहो यह दोनों कुमार उस देशको जांयगे ॥१५॥ भरतजीके दोनों कुमार महा बली तक्ष, और पुष्कल अपने धर्ममें सावधानहो वहां जांयगे, और मामासे रक्षितहो वहांका राज्य करेंगे ॥ १६ ॥ भरतजी इन कुमारोंके

में दर्पित हाथी और खरगोश भी एक साथ हो रहतेहैं, उनमें हाथीके समान श्रीरामचंद्रजी और खरगोशकी तुल्य तुमहो॥ १६॥ सो खरगोशकी समान तुम जबतक इक्ष्वाकुनाथ श्रीरामचंद्रजीकी दृष्टि नहीं पड़ते, तबतकही तुम रघुनाथ रामचंद्रजीकी निन्दा करके नहीं लजातेहो॥१७॥ जो तुम बुरी दृष्टिसे हमारी ओर नेत्र डालतेहो, तौ तुम्हारे यह कृष्ण पिंगल वर्ण वाले क्रूर और विकराल दोनों नेत्र क्यों नहीं निकलकर पृथ्वी पर गिर पडते॥ १८॥ पापात्मन्! हम उन धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीकी स्त्री और राजा दशरथजीकी पुत्रवधूहैं; सो हमारे लिये खोटे वचन कहते हुए तुम्हारी जीभ कटकर क्यों नहीं गिर पड़ती?॥ १९॥ दशग्रीव! हमारा ऐसा तेजहै, कि हम तुमको भस्म कर सकतीहैं; परन्तु एक तो श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा नहीं, और दूसरे हम तापस व्रत पालन करती हैं इससे तुमको भस्म नहीं किया॥ २०॥ तुम किसी प्रकारसे भी उन बुद्धिमान श्रीरामचंद्रजीके निकटसे हमको हरण नहीं कर सकते; निश्चय जान रक्खो कि हमारे हरण होंनेका संयोग विधाताने तुम्हारे संहार करनेंके लिये बनायाहै॥ २१॥ तुम वीरहो, कुबेरके भ्राताहो, तिसपर तुममें बलभी बहुतहै; फिर तुमने किस प्रकार लज्जा छोड़ श्रीरामचंद्रजीको माया द्वारा आश्रमसे दूर कर चोरीसे हमारा हरण किया?॥ २२॥ सीताजीके यह कठोर वचन सुनकर राक्षसपति रावण अपने दोनो क्रूर नेत्र घुमाय जानकीजीकी ओर निहारने लगा॥ २३॥ रावण देखनेंमें नील वर्णवाले मेघकी समान, उसकी भुजायें और गरदन बडीथीं, गमन सिंहकी समान वेगवान, जीभ और दीप्त. नेत्र उसके बडे तेज थे॥ २४॥ मुकुटके आगेका भाग शिरसे कुछेक खसक रहाथा उसका आकार अति बड़ा, कंठमें विचित्र माला और अंगोंमें भांति२ उबटने लगे वह श्रीमान लालही माला, लालही वस्त्र, और उजले बाजू हाथमें पहरे था॥ २५॥ बड़ी भारी तगड़ी नितम्बोंमें पहरनेंसें वह ऐसा शोभित होरहा था मानो अमृतको मथन करनेंके समय मन्दराचल पर्वत सर्पसे बँध रहाहै॥२६॥वह रावण अपनी परिपूर्ण भुजाओंसे शृङ्गोंसे शोभित मन्दराचल पर्वतकी समान शोभा पाय रहाथा॥ २७॥ तरुण सूर्यकी समान प्रभावाले कुंडल उसके कानोंमें पड़ेहुए शोभित होतेथे, मानो कोई पर्वत

संगमें बहुतसी सैना लेकर जांयगे, और उन गधर्व कुमारोंको मारकर वहां दो नगर बसावेंगे ॥ १७ ॥ उन पुरोंको बसाय और अपनें पुत्रोंको वहां का राज्य दे, हमारे पास शीघ्र यह धर्मात्मा चले आवेंगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार ब्रह्मर्षिसे कह रघुनाथजीने सैना सहित भरतजीको वहां जानेकी आज्ञादी और दोनों कुमारोंका अभिषेक किया ॥ १९ ॥ अच्छे नक्षत्रमें अंगिराके पुत्र गार्ग्य ऋषिको आगेकर दोनो कुमारोंको साथले सैना सहित भरतजीने प्रस्थान किया ॥ २० ॥ वह सैना इन्द्रकी समान भरत-जीसे पालितहो नगरसे निकल उनके पीछे २ चली, और देवताओंसे दुर्धर्ष उस सैनाकी दोनों कुमार रक्षा करतेथे जब कुछ दूर गये ॥ २१ ॥ मांस भक्षी जीव और बड़े २ राक्षसभी गंधर्व पुत्रोंके रुधिरके प्यासेहो भरतके पीछे चले ॥ २२ ॥ औरभी अनेक प्राणी जो बड़े दारुण और मांस भक्षीथे, वे सहस्रोंही गंधर्व पुत्रोंके मांस भक्षण करनेको चले ॥ २३ ॥ सिंह व्याघ्र वराह तथा आकाशचारी सहस्रों पक्षी सैनाके आगे२चले॥२४॥

अध्यर्धमासमुषितापथिसेनानिरामया ॥ हृ
ष्टपुष्टजनाकीर्णाकेकयंसमुपागमत् ॥ २५ ॥

वह सैना निरोगतासे ठहरती हुई सम्पूर्ण हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे युक्त हुई डेढ मांसमें केकय देशमें पहुँच गई ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० उत्तरकाण्डे शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकोत्तरशततमः सर्गः ॥

श्रुत्वासेनापतिंप्राप्तंभरतंकेकयाधिपः ॥ यु
धाजिद्गर्गसहितंपरांप्रीतिमुपागमत् ॥ १ ॥

जब केकय देशके राजाने सुना कि भरतजी सैनापति होकर आये हैं, तब युधाजित् गर्गके सहित बहुतही प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ कैकयाधिपति बहुत मनुष्योंकी सैना साथले गंधर्वोंके जीतनेके निमित्त बड़ी शीघ्रतासे चले॥२॥ महा पराक्रमी भरत और युधाजित् दोनों मिलकर सैना वाहन प्यादों सहित गंधर्व नगरमें पहुँचे ॥ ३ ॥ भरतको युद्ध करनेंके निमित्त आये सुनकर महाबली वे गंधर्व इकट्ठेहो युद्ध करनेकी इच्छासे गर्जनें लगे ॥ ४ ॥ तब उन गंधर्वोंके साथ बराबर सात दिन राततक बड़ा भयंकर और रोम-

हर्षेण युद्ध होता रहा, परन्तु किसीकी जय वा पराजय न हुई ॥ ५ ॥ उस युद्धमें रुधिरकी नदी प्रवाहित होने लगी, जिसमें खड्ग शक्ति और धनुष ग्राहरूप, और मनुष्योंके शरीर कच्छपाकार दृष्टि आतेथे ॥ ६ ॥ तब महा क्रोधकर रामानुज भरतने दारुण सम्वर्तनाम कालास्त्र जो प्रलय करनेवालाहै, लेकर गंधर्वोंके ऊपर चलाया ॥ ७ ॥ वे सब गंधर्व संवर्त अस्त्रसे विदारित होकर कालपाशमें बँधगये, इस प्रकारसे महात्मा भरतने क्षणमात्रमें वे तीन करोड़ गंधर्व मारडाले ॥ ८ ॥ वह ऐसे युद्ध हुआ कि देवताओंने कभी ऐसा युद्ध नहीं देखा था, कि एक निमेषमें उन गंधर्वोंका संहार होगया ॥ ९ ॥ इन गंधर्वोंके नष्ट होनेपर कैकेयीपुत्र भरतजीने वहांपर दो उत्तम समृद्धिमान् नगर बसाये ॥ १० ॥ तक्षकू तक्षशिलावती पुरी गंधर्व देशमें बसाकर दी, और गान्धार देशमें पुष्कलावत् नगर बसाकर वहांका राज्य पुष्कलको दिया ॥ ११ ॥ वे दोनों नगर धनरत्नादिकोंसे पूर्ण वन उपवनोंसे शोभायमान मानो अपने बड़े २ गुणोंसे एक दूसरेकी स्पर्धाही करतेथे ॥ १२ ॥ उन दोनों सुन्दर नगरोंमें निर्मल व्यवहारोंसे प्रकाशहो रहाथा, वगीचे और चौराहे तथा चौक बड़े रमणीकथे ॥ १३ ॥ वह दोनों नगर अनेक प्रकारके बड़े श्रेष्ठ घरोंसे शोभायमान, और बड़े विस्तारयुक्त विमानोंसे परिपूर्ण थे ॥ १४ ॥ बड़े बड़े देव मंदिरोंसे उनकी शोभा दुगुनी हो रहीथी ताल तमाल तिलक बकुल इन वृक्षोंसे शोभायमान ॥ १५ ॥ इन नगरोंमें पुत्रोंको अभिषेकित कर भरतजी पांच वर्षतक वहां रहे, जब राज्य दृढ होगया, तब महाबाहु कैकेयीके पुत्र भरतजी फिर अयोध्याको चले आये ॥ १६ ॥ जिसप्रकार ब्रह्माजीको इन्द्र प्रणाम करतेहैं, इसी प्रकारसे साक्षात् धर्मकीसमान विराजमान श्रीमान् महात्मा रामचंद्रजीको भरतजीने प्रणामकर ॥ १७ ॥

शशंसचयथावृत्तंगंधर्ववधमुत्तमम् ॥ निवे
शनंचदेशस्यश्रुत्वाप्रीतोस्यराघवः ॥ १८ ॥

जिस प्रकारसे गंधर्वोंका वध किया वह और दोनों देशोंका बसाना यह सब रघुनाथजीसे निवेदन किया, जिसे सुनकर रामचंद्रजी प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० उ० एकोत्तर शततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥

तच्छ्रुत्वाहर्षमापेदेराघवोभ्रातृभिःसह ॥ वा
क्यंचाद्भुतसंकाशंभ्रातृन्प्रोवाचराघवः ॥ १ ॥

भरतजीके यह वचन सुन रामचंद्र भाइयों सहित बड़े प्रसन्न हुए, और फिर भाइयोंसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! यह जो तुम्हारे दोनों कुमार अंगद और चंद्रकेतु हैं, अब यह अपने पराक्रमसे राज्य करनें योग्य होगये हैं ॥ २ ॥ मेरी इच्छाहै कि किसी देशका राज्य इनको दिया जाय; सो ऐसा देश विचारो जो रमणीय और बाधा रहित हो जहां यह दोनों धनुषधारी आनंदसे रहैं ॥ ३ ॥ न तो वहां किसी राजाकी पीड़ा हो, न किसी आश्रमीको पीड़ाहो, हे सौम्य! ऐसा देश विचारो जहां किसीका अपराध न करना पड़े ॥ ४ ॥ रामचंद्रके ऐसा कहनेपर भरतजी बोले, यह कारूपथ देश बड़ा रमणीय और सब प्रकारकी बाधा रहितहै ॥ ५ ॥ वहांका राज्य तो महात्मा अंगदको दीजिये, और चन्द्रकान्त नगरका राज्य चन्द्रकेतुको दो ॥ ६ ॥ भरतके यह वचन रघुनाथजीने ग्रहण किये, उस देशकू अपने वशमें कर वहां अंगदको अभिषेकित किया ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे (कामरूपदेशमे) रमणीय अंगदीया नाम पुरी, अनेक प्रकारसे रक्षित करके सरल कर्मा श्रीरामचंद्रने अंगदको वहांका राज्य दिया ॥ ८ ॥ और मल्लभूमिमें स्वर्गपुरीकीसमान चंद्रकान्ता पुरी बसाकर वहांका राज्य महा विक्रमी चंद्रकेतुको दिया ॥ ९ ॥ युद्धमें दुराधर्ष रामचंद्र भरत और लक्ष्मणने प्रसन्न होकर कुमारोंका अभिषेक कर दिया ॥ १० ॥ उन दोनों कुमारोंका अभिषेक करके सावधानतासे अंगदको तो पश्चिम देशकी पुरीमें, और चंद्रकेतुको उत्तर ओरकी पुरीमें भेज दिया ॥ ११ ॥ अंगदके साथ तो लक्ष्मण और चंद्रकेतुके साथ भरतजी सहायताके निमित्त गये ॥ १२ ॥ लक्ष्मण अंगदीया पुरीमें एक वर्षतक रहे, जब देखा कि अब पुत्रका राज्य दृढ होगया, तब फिर अयोध्याको चले आये ॥ १३ ॥ इसी प्रकार भरतजीभी वर्षदिनसे कुछ अधिक चंद्रकेतुकी पुरीमें रहकर फिर रघुनाथजीकी सेवा करनेंको अयोध्यामें चले आये ॥ १४ ॥ यह दोनों महात्मा

धर्मज्ञ भरत और लक्ष्मणजी रामचंद्रकी सेवा करते रहे जिस्से उन्हें बहुत समय बीत गया, परन्तु उन्होंने कुछ न जाना ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे धर्म पूर्वक प्रजा पालन करते हुए रामचंद्रकू दश सहस्र वर्ष वीतगये ॥ १६ ॥

विहृत्यकालंपरिपूर्णमानसाःश्रियावृताधर्मपरे चसंस्थिताः ॥ त्रयःसमिद्धाहुतिदीप्ततेजसोहुताग्नयःसाधुमहाध्वरेत्रयः ॥ १७ ॥

इस प्रकारसे उस धर्मपुरीमें लक्ष्मीसे युक्तहो संतुष्ट चित्तसे विहार करते बहुत समय बीत गया, और वे तीनों भाई अपने प्रज्वलित अग्निकी-समान प्रकाशसे यज्ञकी प्रज्वलित तीन अग्नियोंकेसमान शोभित हुए॥१७॥इत्यार्षे०श्री०वा०आ०उत्तरकाण्डे द्व्युत्तरशततमःसर्गः ॥१०२॥

त्र्यधिकशततमःसर्गः ॥

कस्यचित्त्वथकालस्यरामेधर्मपरेस्थिते ॥ कालस्तापसरूपेणराजद्वारमुपागमत् ॥१॥

इस प्रकार रामचंद्रजीको धर्मपूर्वक राज्य करते २ कुछ दिन बीतने पर तपस्वीका रूप बनाकर कालराज द्वारपर आया ॥ १ ॥ उसने लक्ष्मणसे कहा हम अति पराक्रमी बली एक महर्षि किसी कार्यके निमित्त रामचंद्रके पास आये हैं॥ २॥ उसके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजीने बड़ी शीघ्रतासे जाकर रामचंद्रसे तपस्वीका आना निवेदन किया॥ ३ ॥ हे महाराज ! आपकी दोनों लोकमें जयहो, हे महाद्युतिमान् ! एक सूर्यकी-समान कान्तिवाले महर्षि आपके देखनेको आयेहैं ॥ ४ ॥ लक्ष्मणके यह वचन सुन्तेही रामचंद्र बोले हेतात् उस संदेशे लाये हुए महातेजस्वी मुनिको शीघ्र लाओ ॥ ५ ॥ रामचंद्रके यह वचन श्रवण करतेही तेजसे प्रकाशमान और अपने किरणोंसे भस्मसा करते हुए उन मुनिको रामचंद्रके पास लाये ॥ ६ ॥ अपने तेजसे प्रकाशमान रामचंद्रके पास उन ऋषिने जाकर कोमल वाणीसे आपकी जय और वृद्धिहो ऐसा कहा॥७॥ महातेजस्वी रामचंद्रने उन ऋषिको अर्घ्य पाद्य देकर आसन पर बैठाया और कुशल पूछने लगे ॥ ८ ॥ वह महायशस्वी सोनेके सिंहासन पर बैठे और बोलने वालों में चतुर रामचंद्रजी उनसे कुशल पूछने लगे ॥ ९ ॥

रामचंद्र बोले हे मतिमान्! आप अच्छी प्रकारसे आये, अब उनका संदेशा कहिये जिन्होंने आपको दूत बनाकर यहां भेजाहै ॥ १० ॥ जब राज्यसिंह रघुनाथजीने यह कहा, तो मुनिने कहा कि, यह बातमैं जबही कहूंगा जब हम तुम दोही जने होंगे, कारण कि देवताओंका हित देवताओंकी रहस्य बातके छिपानेसेही होताहै ॥११॥ और यहभी बातहै- कि हम तुमको वार्ता करते समय जो देखले, या जो उन बातोंको सुने, वह मारडाला जाय, क्योंकि उन ऋषिने ऐसाही कहाहै ॥ १२ ॥ यह रामचं- द्रनें स्वीकार करके लक्ष्मणसे कहा हे महाभुज! तुम द्वारेपर स्थित रहो, और वहांसे द्वारपालोंको विदा करो ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण! इसका कारण यह है कि, जो कोई पुरुष इन ऋषिके साथ हमको वार्ता करते देखेगा, वा वार्ता सुनेगा, वह निश्चय मारडाला जायगा, ॥ १४ ॥ इस प्रकार रामचंद्रने लक्ष्मणको द्वारे बैठायकर मुनिसे कहा अब आप संदेशा कहिये ॥ १५ ॥

तत्तेमनीषितंवाक्यंयेनवासिसमाहितः ॥
कथयस्वाविशंकस्त्वंममापिहृदिवर्तते ॥ १६ ॥

जो कुछ आपका अभीष्ट हो वा जिन्होंने तुमको भेजाहै, उनका मनोरथ आप निःसंदेह कहिये कारण कि वह सुननेकी हमें अधिक इच्छाहै (अथवा जो तुम कहोगे वह हमारे हृदयमेंभी वर्तताहै) ॥ १६ ॥ इत्यार्षे० श्री०वा०आ०उ०कालागमन नाम त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥

चतुराधिकशततमः सर्गः ॥

शृणुराजन्महासत्त्वयदर्थमहमागतः ॥
पितामहेनदेवेनप्रेषितोस्मिमहाबल ॥ १ ॥

यह वचन सुनकर ऋषि कहने लगे हे वीर्यवान! जिन्होंने हमको भेजा और जिस कारण हम यहां आयेहैं हे महाबली! हमको पितामह ब्रह्माजीने आपके पास भेजाहै ॥ १ ॥ हे शत्रु घातिन्! जिस समय पूर्वकालमें सृष्टि हुईथी, उस समय हम आपकी मायासे उत्पन्न होनेके कारण आपके पुत्रहैं, हे वीर! हमारा नाम कालहै, और हम सबके संहार करने- वालेहैं ॥ २ ॥ लोकस्वामी भगवान् पितामह ब्रह्माजीने आपसे कहाहै

हे सौम्य! आपने जो रावणादिके वधके निमित्त अवतार लेकर ग्यारह सहस्र वर्षतक मनुष्य लोकमें बसनेकी और प्रजा रक्षण करनेकी प्रतिज्ञा करीथी, वह समय अब पूरा होगया. यथा दशवर्ष सहस्राणि दशवर्ष शतानिच वत्स्यामिमानुषे लोके पालयन् पृथ्वी मिमामिति) ॥ ३ ॥ आप प्रलय कालमें अपनी शक्तिसे सब लोकोंका संहारकर अपने उदरमें धार महासागरमें शयनकर गयेथे, बहुत कालके पीछे आपकी नाभिसे कमल हुआ जिस्से मेरी उत्पत्ति हुई (यथा यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं मिति श्रुतेः) ॥ ४ ॥ जलमें आप शेषनागके ऊपर शयन करतेथे, जिनको अपनी मायासे उत्पन्न कियाथा, पुनः पृथ्वीके बनानेकी इच्छासे आपने ही महाबली जीव ॥ ५ ॥ मधु और कैटभ उत्पन्न किये, उन्हे वध करनेसे मधुमें वसाथी जलमें मिल कर्दम रूपहो सूखकर पृथ्वी हुई और कैटभमें अस्थिथी जिसके शरीरसे यह पर्वत हुए इस प्रकार यह पर्वतों सहित पृथ्वी उत्पन्न हुई ॥ ॥ ६ ॥ फिर आपने अपनी नाभिसे सूर्य समान कमल उत्पन्न कर उससे मुझे उत्पन्न किया और प्रजा उत्पन्न करनेका कार्य सब मुझे सोंपदिया॥७॥ इस प्रकार आपसे प्राजापत्य अधिकार पाकर हमने आप जगदीश्वरकी उपासना करके यह प्रार्थना की हे भगवन्! जब आपने हमें सृष्टि उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य दीहै तो इसका पालन आप कीजिये ॥ ८॥ यह वचन सुनकर तुम्हीं उस दुर्द्धर्ष समस्त संसारके मूलकारण होनेसे काल परिच्छेद्य त्रिगुण महत्वनामक हिरण्यगर्भके सत्वप्रधानसे प्रजाकी रक्षा करनेको विष्णुरूप हुए ॥ ९ ॥ एक समय आपने इन्द्रादि देवताओंकी सहायताके निमित्त अदितिमें कश्यपसे जन्म लेकर दिव्य ज्ञानक्रियासे युक्त हो उपेन्द्र (वामन) नाम पायाथा, और देवताओंके कार्यमें सहायताकी ॥ ॥ १० ॥ हे जगत्में श्रेष्ठ इसीप्रकार आपने इससमयभी प्रजाको महा दुःखी देख रावणके वध करनेके निमित्त और प्रजाओंको सुख देनेको मनुष्य लोकमें अवतार ले रहनेकी इच्छा की ॥ ११ ॥ उससमय आपने ग्यारह सहस्र वर्षतक मनुष्य लोकमें रहनेका नियम कियाथा ॥ १२ ॥ सो आप राजा दशरथके यहां मनोमय अर्थात् संकल्पसेही उत्पन्न हुएहैं, हे नरश्रेष्ठ अब वह आपकी पूर्णायु हो चुकीहै एकादशसहस्र वर्ष बीतनेमे बहुतही थोड़े दिन शेषहैं ॥ १३ ॥ हे वीर! आपका मंगलहो यदि अभी

और प्रजापालनकी इच्छा हो तो आप वहीं वास कीजिये, आपसे यह ब्र-ह्माजीने कहला भेजा है ॥ १४ ॥ हे राघव! यदि देवलोकमें आनेकी इ-च्छा हो तो चलकर अपने विष्णुरूपसे देवताओंको सनाथ और भय रहित कीजिये ॥१५॥ ब्रह्माजीके कहलाये कालके यह वचन श्रवणकर श्रीरामचं-द्रजी हँसकर सबके संहार करनेवाले कालसे कहने लगे ॥ १६ ॥ देव देव ब्रह्माजीके यह वचन श्रवण करने और तुम्हारे आनेसे हम बहुत प्रसन्न हुए हैं ॥ १७ ॥ मेरा जन्म तीनों लोकोंके कार्यसिद्ध करनेके निमित्त होताहै तुम्हारा मंगलहो, हम जहांसे आयेहैं, उसी लोकको चले जांयगे ॥ १८ ॥

हृद्गतोह्यसिसंप्राप्तोनमेतत्रविचारणा ॥
मयाहिसर्वकृत्येषुदेवानांवशवर्तिनाम्
स्थातव्यंसर्वसंहारयथाह्याहपितामहः ॥ १९ ॥

हे काल! प्रथमही हमने मनमें प्रस्थानका विचार करलिया था, हमारे जानेमें कुछभी संदेह नहीं मुझे अपने अनुकूल देवताओंके सब कार्योंमें स्थित होना चाहिये, इसकारण जो कुछ ब्रह्माजीने कहाहै, वह शीघ्र होगा ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्री०वा०आ० उ० कालवाक्यंनाम चतुराधिकशत-तमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पंचाधिकशततमः सर्गः ॥

तथातयोःसंवदतोर्दुर्वासाभगवानृषिः ॥
रामस्यदर्शनाकांक्षीराजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥

जिससमय रामचंद्र और कालमें यह वार्ता होतीथी, उसीसमय रामचंद्रके दर्शनकी इच्छा करके महर्षि दुर्वासाराज द्वारपर आये ॥ १ ॥ वह ऋषिश्रेष्ठ लक्ष्मणके पास आनकर कहने लगे लक्ष्मण! हमारा एक महत्कार्य है, इसकारण शीघ्र रामचंद्रके दर्शन कराओ ॥ २ ॥ शत्रुघाती लक्ष्मणजी मुनिके यह वचन सुनकर उन महात्माको प्रणामकर इस प्रकारसे कहने लगे ॥ ३ ॥ कहिये महाराज आपका क्या कार्यहै, जो आज्ञा हो सो हम करें, हे ब्रह्मन् रामचंद्र एक कार्यमें हैं, इसकारण आप एक मुहूर्तभरतक ठहरिये ॥ ४ ॥ यह वचन सुन्तेही ऋषिसिंह दुर्वासा

महा क्रोधकर नेत्रोंसे भस्म करते हुए से लक्ष्मणसे बोले ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! अभी जाकर हमारा आना रामचंद्रसे निवेदन करो, नहीं तो हम तुम्हारे राज्यपर, तुम्हें, और रामचंद्रको शाप देंगे ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण! भरत और तुम्हारी संतानकोभी शाप देंगे, कारण कि अब हम क्रोधको हृदयमें धारण नहीं करसकते ॥ ७ ॥ यह उन महात्मा ऋषिके घोर वचन सुनकर लक्ष्मणजी इस वचनके परिणाम मनमें विचारने लगे ॥ ८ ॥ जो मैं रामचंद्रसे कहताहूं तो मेरा मरण होगा, नहीं कहने में सब शापित होंगे, इस कारण मेरा विनाश अच्छा, सबका निधन उचित नहीं यह विचार लक्ष्मणजीने रामचंद्रके पास जाय दुर्वासाजीका आना निवेदन किया ॥ ९ ॥ लक्ष्मणके वचन सुन्तेही रघुनाथजीने कालको विदा करके शीघ्रतासे द्वारे आकर अत्रिपुत्र दुर्वासाको देखा ॥ १० ॥ रघुनाथजी हाथ जोड़ तेजसे दीप्तिमान् महात्मा दुर्वासाजीको प्रणामकर बोले क्या आज्ञाहै ॥ ११ ॥ मुनिश्रेष्ठ रामचंद्रजीके यह वचन सुनकर दुर्वासाजी बोले हे, धर्मज्ञ! सुनिये॥१२॥ हे पापरहित हमने सहस्रवर्षतक भोजन न करनेका (अनशन) व्रत किया था वोह व्रत आज पूरा हुआहै इस कारण आपके यहां जो कुछ विद्यमानहो हमें भोजन करनेको दीजिये ॥ १३ ॥ यह वचन सुन्तेही रघुनाथजीने अत्यन्त प्रसन्नहो अमृतकीसमान स्वादिष्ट पदार्थ मुनिराजको जिमाये ॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी अमृत सदृश भोजन करके रघुनाथजीकी बड़ाई कर अपने आश्रमको गये ॥ १५ ॥ जब ऋषि चले गये तो रघुनाथजी कालके यह घोर दर्शन वचन स्मरणकर " कि जो हमें तुम्हें देखे या हमारी तुम्हारी बात सुने वह वधके योग्य है " बड़े दुःखी हुए ॥ १६ ॥

अवाङ्मुखोदीनमनाव्याहर्तुंनशशाकह ॥
ततोबुद्ध्याविनिश्चित्यकालवाक्यानिराघवः ॥ १७ ॥
नैतदस्तीतिनिश्चित्यतूष्णीमासीन्महायशाः ॥ १८ ॥

नीचेको मुखकर दीन मनसे उस समय कुछभी न कह सके, फिर रघुनाथजी कालके वाक्योंको बुद्धिसे विचारकर कि अब भाई, भोग, भृत्य सबकाही समय प्राप्त हुआहै ॥१७॥ इस कारण अब यह समाज कुछभी स्थित

न रहेगा, यह विचार यशस्वी रामचंद्रजी मौन हुए ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्री० वा०आ० उत्तरकाण्डे कालप्रस्थानोनाम पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५॥

षडधिकशततमः सर्गः ॥

अवाङ्मुखमथोदीनंदृष्ट्वासोमामिवाप्लुतम् ॥
राघवंलक्ष्मणोवाक्यंहृष्टोमधुरमब्रवीत् ॥ १ ॥

इसप्रकार राहुग्रस्त चंद्रमाकीसमान नीचेको मुख किये दीन मलीन रामचंद्रको देखकर लक्ष्मणजी प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे महाभुज आपको मेरे निमित्त संताप करना उचित नहीं है, पूर्वकालसे विधानकी हुई कालकी गतिही इसप्रकारहै ॥ २ ॥ हे राम आप शंका त्यागनकर मुझको मार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कीजिये, हे काकुत्स्थ प्रतिज्ञा त्यागनेवाले पुरुष नरकमें जातेहैं ॥ ३ ॥ हे महाराज यदि आपकी मुझमें प्रीतिहै, यदि आप मेरे ऊपर कृपा करतेहैं; तो आप मुझे निःसंदेह मारकर धर्म वृद्धि कीजिये ॥ ४ ॥ यह लक्ष्मणके वचन सुन रघुनाथजीने व्याकुलहो अपने पुरोहित और मंत्रियोंको बुलाया ॥ ५ ॥ उन सबसे रघुनाथजीने तपस्वीकी प्रतिज्ञा और लक्ष्मणजीका दुर्वासाके वचनसे मंदिरमें जाना सुनाया ॥ ६ ॥ रघुनाथजीके यह वचन सुनकर सब मंत्री मौन होगये, तब महातपस्वी वशिष्ठजी इसप्रकार कहने लगे ॥ ७ ॥ हे रघुनाथजी हमने योग बलसे यह रोमहर्षण विनाश देख लियाहै (दुर्वासासेभी सुनाहै) लक्ष्मणसे अब आपका वियोग होगा ॥ ८ ॥ हे राजन् काल बलवान्है आप प्रतिज्ञा वृथा मत कीजिये, लक्ष्मणजीका त्यागन कीजिये, क्योंकि प्रतिज्ञाके त्यागनेसे धर्मका नाश होताहै ॥ ९ ॥ धर्मके नष्ट होनेमे त्रिलोकी और चर अचर सहित सब देवता ऋषि नष्ट हो जातेहैं, इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥ हे रामचन्द्र त्रिलोकीको पालन करनेके निमित्त आज आप लक्ष्मणके विना जगत्को स्वस्थ कीजिये ॥ ११ ॥ उन मंत्रि आदिकोंके कहे हुए धर्म सहित वचन श्रवण करके रामचन्द्र सभाके बीचमें लक्ष्मणसे कहने लगे ॥ १२ ॥ हे लक्ष्मण ! धर्मके विपरीत न होनेके निमित्त हम तुमको विसर्जन करते हैं, साधुओंका त्याग या वध यह दोनों समानही हैं ॥ १३ ॥

रघुनाथजीके यह वचन सुन व्याकुल चित्तहो नेत्रोंमें आंसू भरे लक्ष्मणजी वहांसे तुरत चले गये और अपने घरभी न गये (लक्ष्मणको शरीर हानि-का शोच नहीं किन्तु रघुनाथके वियोगका दुःख हुआ) ॥ १४ ॥ तुरत सरयूके किनारे जाय जलसे आचमनकर हाथजोड़ योग मार्गसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंके मार्गोंको रोक, प्राणोंकी गति रोक दी ॥ १५ ॥ इसप्रकार श्वास रहित योगारूढ लक्ष्मणको देखकर इन्द्र अप्सरा देवता और ब्रह्मर्षि सब वैकुण्ठवासी इनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करनें लगे ॥ १६ ॥ और मनुष्योंकू अदृश्य होकर इन्द्रजी वहां आये और महा वलवान लक्ष्मण-जीको शरीर सहित लेकर इन्द्रजी स्वर्गको चले गये ॥ १७ ॥

ततोविष्णोश्चतुर्भागमागतंसुरसत्तमाः ॥
हृष्टाःप्रमुदिताःसर्वेपूजयंतिस्मराघवम् ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण देवता विष्णुके चतुर्थ भागको आया हुआ देखकर प्रसन्नतासे उनकी पूजा करनें लगे ॥ १८ ॥ इ० श्री० आ० उ० लक्ष्मण वियोगो षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिक शततमः सर्गः ॥

विसृज्यलक्ष्मणंरामोदुःखशोकसमन्वितः ॥
पुरोधसोमंत्रिणश्चनैगमांश्चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

लक्ष्मणको त्यागनकर दुःख और शोकसे संतप्तहो रामचंद्र पुरोहित मंत्री ओर पुरवासियोंको बुलायकर कहने लगे ॥ १ ॥ आज मैं धर्मात्मा भरतको राज्यमें अभिषेक करूंगा, इन्हें अयोध्याका स्वामी कर मैं वनको चला जाऊंगा इसका सब समान अभी तैयार करो, बृथा काल खोना भला नहीं, मैं अभी लक्ष्मणकी गतिको जाऊंगा ॥२॥३॥ यह रघुनाथजीके वचन सुन्तेही सम्पूर्ण प्रजा मुख नीचे किये पृथ्वीको प्रणाम करते हुएसे प्राण रहितोंकीसमान हो गये ॥ ४ ॥ रामचंद्रके यह वचन सुन भरतजीभी मूर्छित हुए, और राज्यकी निन्दा करते हुए रामचंद्रसे बोले ॥ ५ ॥ हे रामचन्द्र मैं सत्यकी सौगन्ध करके कहताहूं कि आपके विना मैं स्वर्गवा पृथ्वी कहींकाभी राज्य नहीं चाहता ॥ ६ ॥ हे वीर! आप इन दोनों वीर

लाल पत्ते और लाल पुष्प धारी अशोक वृक्षोंसे शोभायमान होरहाहै ॥ २८ ॥ रावण कल्पवृक्षकी समान और मूर्त्ति धारण किये हुए वसंतकी समान भूषित हो रहाथा, परन्तु इस भांतिसे भूषित होनें परभी श्मशान भूमिमें बने मन्दारके वृक्षोंकी समान उसको देखकर डरही लगताथा ॥ २९ ॥ ऐसा रावण क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर सीताजीकी ओर निहार सर्पकी समान श्वास छोडता सीताजीसे बोला ॥ ३० ॥ तुमने जो यह व्रत पालन कियाहै, यह अर्थ हीन और नीतिके बाहरेहैं; इसलिये सूर्य जिस प्रकार प्रातःकालको अंधकारका नाश करतेहैं, वैसेही, आज हम तुमको मार डालेंगे॥३१॥शत्रुओंको रुवाने हारा रावण जानकीजीसे इस प्रकार कह, फिर घोर दर्शनवाली राक्षसियोंकी ओर देखता हुआ ॥३२॥ इन सब राक्षसियोंमें किसी २ के कान बड़ेथे, किसीके कान गाय बैलके कानके समानथे, और किसी २ के लंबे कान, और किसी २ के कान बिलकुलथेही नहीं ॥ ३३ ॥ कोई हस्तिपदी, कोई अश्वपदी कोई गोपदी, व किसी २ के चरणमें अत्यन्त बालथे, कोई एकाक्षी, कोई एकचरणी, किसीके दोनों चरण बहुत बड़ेथे, किसीके थेही नहीं ॥३४॥ किसीका मस्तक और गर्दन बहुत बड़ीथी, किसीके स्तन और उदरका प्रमाण एक अपूर्वही ढंगकाथा, किसीकी जीभ बड़ी किसीके नख विशालथे, ॥ ३५ ॥ किसीके नाक नहीं किसीका मुख सिंहके मुखकी समान किसीका मुख गोमुखकी समान और किसी २ का मुख शूकरके मुखकी समानथा उनसे रावण बोलाकि जिससे यह जानकीजी शीघ्र हमारे वशमें आजांय ॥ ३६ ॥ सो हे राक्षसियो! मिलकर शीघ्रतासे ऐसा करना चाहिये; प्रतिकूल व्यवहारहो या अनुकूल व्यवहारहो, समझाने बुझानेसे काम चले, या भेदसे कार्य होताहो ॥३७॥ अथवा दंडका उद्योग करकेहो, तुम लोग सीताको उसका मद छुडाय हमारे वशमें करो, राक्षसराज रावण बार २ इस प्रकारकी आज्ञादे ॥ ३८ ॥ काम और क्रोधके वश होकर जानकीजीके प्रति गर्जन करनें लगा, उसी समय जानकीजीके ऊपर दया करके धान्यमालिनी नामक राक्षसी शीघ्रतासे रावणके निकट आय ॥ ३९ ॥ उससे लिपट कर बोली कि हेमहाराज!
विहार करैं, इस सीतासे आपका क्या प्रयोजनहै? ॥ ४

कुश और लवको अभिषेक कर दीजिये, कौशल देशमें कुशको, और उत्तर कौशलमें लवको राज्य दीजिये ॥ ७ ॥ और शत्रुघ्नके पासभी दूत बड़ी शीघ्रतासे जाय कि हमारी महायात्राके समाचार सुनाकर उनको शीघ्र लावें ॥ ८ ॥ यह भरतजीके वचन सुन और महा दुःखी नीचेको मुख करके बैठे हुए पुर वासियोंको देखकर वशिष्ठजी कहनें लगे ॥ ९ ॥ हे वत्स राम! इधर तौ देखो कि यह आपकी प्रजा शोक के मारे पृथ्वीपर व्याकुल पड़ीहै इनका मनोरथ जानकर करना उचित है किसी प्रकार इनके विपरीत कार्य करना भला नहीं ॥ १० ॥ वशिष्ठजीके वचन सुनकर प्रजा ओंको उठाकर उन सबसे रघुनाथजी बोले हम आपका क्या कार्य करें॥११॥रामचन्द्रके यह वचन सुन वह प्रजाके लोग कहने लगे हेराम आप जहां को जांयगे वहीं हमभी आपके पीछे जांयगे॥१२॥ हे राम यदि पुरवासियोंमें आपकीप्रीति और स्नेह है तौ पुत्र स्त्रीसहित हम सब लोग आपके पीछे चलैंगे ॥ १३ ॥ हे ईश्वर तपोवन दुर्गमस्थान नदी सागर इन सब स्थानोंमें जहां कहीं भी आप जांय जो आप हमें नहीं त्यागन करोगे तौ हम आपके पीछे जांयगे ॥ १४ ॥ वस इसीमें हमारी परम प्रीति होगी यही हमको परम वरहै आपके पीछे२ चलनें में हीं हमारी परम प्रीति है ॥ १५ ॥ पुर वासियोंकी दृढ भक्ति देखकर रामचंद्रने कहा यही होगा, और अपने कर्तव्य कर्मको विचारकर उसी दिन रामचंद्रने ॥ १६ ॥ कौशल्ल देशमें कुशको, और उत्तर कौशलके सिंहासनमे महात्मा लवको अभिषेक कर दिया ॥ १७॥ इस प्रकार दोनो पुत्रोंको अभिषेक करके उन्हे गोदीमें बैठाय, सहस्र रथ,दशसहस्र हाथी,दशसहस्र घोड़े, और अनेक धन रत्न पृथक् पृथक् एक एक पुत्रको दिये ॥ १८ ॥ बहुत धन और बहुत रत्न देकर हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे युक्त उन दोनो देशोंमें दोनो भ्राताको भेज दिया ॥ १९ ॥

अभिषिच्यततोवीरौप्रस्थाप्यस्वपुरेतदा ॥
दूतान्संप्रेषयामासशत्रुघ्नायमहात्मने ॥ २० ॥

इस प्रकार उन दोनो वीरोंको राज्यमें अभिषेककर, और उनकों उन पुरोंमें भेजकर महाबली रामचंद्रने महात्मा शत्रुघ्नके बुलानेके निमित्त दूतोंको भेजा॥२०॥इत्यार्षे०श्री०आ०वा०उ०सप्तोत्तरशततमः सर्गः॥१०७॥

अष्टाधिकशततमः सर्गः ॥

तेदूतारामवाक्येनचोदितालघुविक्रमाः ॥
प्रजग्मुर्मधुरांशीघ्रंचक्रुर्वासंनचाध्वनि ॥ १ ॥

वे शीघ्रगामी दूत रामचंद्रकी आज्ञासे बहुत शीघ्रतासे मथुराको चले और उन्होने मार्गमें कहीं विश्रामभी नहीं किया ॥ १ ॥ इस प्रकारसे तीन दिन रातमें वे दूत मथुरामें, पहुँचे और शत्रुघ्नजीको आद्योपान्त समस्त वृत्तान्त सुनाया ॥२॥ रामचंद्रकी प्रतिज्ञा, और लक्ष्मणका त्याग, कुश और लवका राज्य तिलक; पुर वासियोंका संगजाना ॥ ३ ॥ विंध्याचल पर्वतके निकट दक्षिण और कुशावती नगरी बसाकर उसमें कुशका स्थापन करना ॥ ४ ॥ और लवके निमित्त, श्रावती नाम मनोहर पुरीको देना, और जिस प्रकार अयोध्याको शून्यकर महारथी भरत और रामचंद्र ॥५॥ स्वर्गमें जानेको उद्यत हुएहैं, यह सब समाचार दूतोंने महात्मा शत्रुघ्नजीसे निवेदन किये ॥ ६ ॥ और आप शीघ्र चलिये यह कहकर दूत मौन हुए शत्रुघ्नजीने इस प्रकार कुलक्षय कारक घोर वृत्तान्त सुनकर ॥ ७ ॥ अपने सब मंत्री पुरजन और कांचन नामक पुरोहितको बुलाकर शत्रुघ्नजीने उनसे सब समाचार सुनाये ॥ ८ ॥ और यहभी कहा कि अब हम अपने भ्राताओंके साथ स्वर्ग जांयगे, पश्चात् अपने दोनो पराक्रमी पुत्रोंको उस देशके राज्यमें अभिषेकित किया ॥ ९ ॥ सुबाहु पुत्रको मथुरा नगरीका और शत्रुघातीको वैदिश देशका राज्य दिया, मथुराकी सब सेनाके और धनके दोभागकर अपने पुत्रोंको दिये, पश्चात् शत्रुघ्नजी॥१०॥ सुबाहुको मथुरामें और शत्रुघातीको वैदिश देशमें प्रतिष्ठित करके एक रथपर चढ आप अकेलेही अयोध्याको चले ॥ ११ ॥ उन्होने अयोध्यामें पहुंचकर अग्निकी समान प्रकाशमान् रेशमीन वस्त्र पहरे मुनियोंके साथ में बैठे महात्मा रामचंद्रकू देखकर ॥ १२ ॥ सावधानता सहित शत्रुघ्नजीने प्रणाम किया, और धर्मको विचारकर धर्मज्ञ रामचंद्रसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १३ ॥ हे रामचंद्र अपने दोनो पुत्रोंका अभिषेककर आपके साथ चलनेमें दृढ निश्चय करके आपके सन्मुख उपास्थित हुआहूं ॥ १४ ॥ हेवीर इस कारण अब इसके विपरीत हमको और कुछ आज्ञा आप नदीजिये, क्यों-

कि हम आपकी आज्ञाका भंग करना नहीं चाहते, और आपके संग-
जाना चाहतेहैं ॥ १५ ॥ रघुनाथजीने शत्रुघ्नजीकी इस प्रकार दृढ बुद्धि
देखकर कहा कि जो तुम कहते हो ऐसेही किया जायगा ॥ १६ ॥
रामचंद्र यह कहते हीथे कि उसी समय अनगिन्त कामरूपी वानर रीछ
और राक्षस आनकर प्राप्त हुए॥१७॥सुग्रीवजीको आगे करके संपूर्ण वानरा-
दिक स्वर्ग जानेकी इच्छा करने वाले रघुनाथजीको देखनेके निमित्त आ-
ये॥१८॥देवता ऋषि और गंधर्वोंके पुत्र यह सब वानर रघुनाथजीका साकेत
लोकमें गमन विचारकर सब कोई आये ॥ १९ ॥ और कहने लगे हे
भगवन् हम सब कोई आपके संग चलने को आये हैं हे पुरुषोत्तम जो आ-
प विनाही हम लोगोंको साथ लिये चले जायगे तो ॥२०॥ मानो यम दंड
ही उठायकर आपने हम लोगोंको निपातित करादिया इसी अवसर में महा
वली सुग्रीवजी ॥ २१ ॥ वीर्यवान रघुनाथजीको प्रणामकर विनय करने
लगे ॥२२॥ हे नरेश्वर हम अंगदको राज्य देकर आपके साथ चलनेका दृढ
निश्चय कर आपके पास आये हैं ॥२३॥ उनके यह वचन रामचंद्रनें मुस्करा-
कर स्वीकार किये और महा यशस्वी रामचंद्र विभीषण से बोले ॥ २४ ॥
हे विभीषण हे महावली जवतक प्रजा विद्यमानहै तवतक लंकापुरीमें राज्य
करते रहो ॥ २५ ॥ जवतक चंद्रमा और सूर्य विद्यमानहैं, और जब तक
यह पृथ्वी विद्यमानहै, जब तक मेरी कथा संसारमें विद्यमानहै, तब तक
तुम राज्य करो ॥ २६ ॥ हे सखे तुम्है हमारी आज्ञा मान्नी उचितहै,
क्योंकि हम मित्रभावसे तुमको समझातेहैं, तुम धर्मपूर्वक प्रजाका पालन
करो, और हमारे वचनमें प्रत्युत्तर न करो ॥ २७ ॥ हे महावली राक्षसेन्द्र
हम तुमसे कुछ औरभी कहतेहैं, तुम इक्ष्वाकु कुलके देवता जगन्नाथकी
आराधना करते रहना ॥ २८ ॥ देवता सहित इन्द्रभी (हमारीही) आरा-
धना करतेहैं, यही तुम प्रति दिन करना, यह सुनकर विभीषणने राम-
चंद्रके वचन ग्रहण किये प्रधान राक्षसोंके राजा विभीषणने रघुनाथजीके
वचन स्मरण रक्खे ॥ २९ ॥ (ब्रह्माजीने इन्हें अमरत्व दियाथा, इसकारण
रामचंद्रने इन्हें साथ न लिया) विभीषणसे यह कहकर महावीरजीको
अमर जानकर रामचंद्र कहने लगे, कि तुम बहुत कालतकजीनेकी
इच्छा करते रहो, यह हमारी प्रतिज्ञा वृथा न करना ॥ ३० ॥ हे वानर

राज! जब तक संसारमें हमारी कथा प्रचलित रहेगी, तब तक तुम प्रसन्नता पूर्वक मनुष्य लोकमें रहो ॥ ३१ ॥ जब रघुनाथजीने ऐसा कहा तौ महावीरजी प्रसन्नहो रामचंद्रसे कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे भगवन् जब तक आपकी पवित्र कथा संसारमें विद्यमान रहेगी, तब तकमैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ संसारमें वास करूंगा ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार ब्रह्माके पुत्र वृद्ध जाम्बवन्त मैन्द द्विविद इनसेभी रामचंद्र बोले कि तुम जब तक कलियुग आवै तब तक प्राण धारण करो, इसप्रकार महावीर हनुमान् विभीषण जाम्बवन्त मैन्द द्विविद इन पाँचोंको रघुनाथजीने आज्ञादी ॥३४॥

तदेवमुक्त्वाकाकुत्स्थःसर्वांस्तानृक्षवानरान् ॥
उवाचबाढंगच्छध्वंमयासार्धंयथोदितम् ॥ ३५ ॥

इन पांचौको इस प्रकारसे आज्ञादे रघुनाथजी शेष ऋक्ष वानरोंसे बोले कि तुम सब हमारे साथ चलो ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी० आदि० उत्तरकाण्डे अष्टोत्तरशततमःसर्गः ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमः सर्गः ॥

प्रभातायांतुशर्वर्यांपृथुवक्षामहायशाः ॥
रामःकमलपत्राक्षःपुरोधसमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

जब रात्री वीती और प्रातःकाल हुआ, तब चौडी छातीवाले यशस्वी कमल लोचन रामचन्द्रजी अपने पुरोहित वशिष्ठजीसे बोले ॥ १ ॥ दीप्तिमान् अग्निहोत्र और वाजपेय छत्र ब्राह्मणोंके साथ आगे २ शोभायमान महापथमें चलैं ॥ २ ॥ रघुनाथजीके यह वचन सुन तेजस्वी वशिष्ठजीनें महा प्रस्थानविधिके उचित सब धर्मकार्य किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर रेशमीन वस्त्र धारण करे वेदका उच्चारण करते कुशा हाथमें लिये रघुनाथजी सरयूकी ओर चले (परलोक गमन यात्राकी यही विधिहै) ॥ ४ ॥ वेद उच्चारणके विना और कुछभी न कहते हुए, चलनेंके सिवाय और चेष्टासे रहित, मार्गमें कांटे आदि लगनेंके दुःखमें अपेक्षा रहित, रामचन्द्र अपने उस मंदिरसे महा कान्तिमान् सूर्यकी समान निकले ॥ ५ ॥ चलनेंके समय महाराजके दक्षिण ओर लक्ष्मी, वांई ओर पृथ्वी देवी, और आगे २

संहार शक्ति चली ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके बाण और उत्तम धनुष और सम्पूर्ण आयुध पुरुषोंका रूप बनाये रघुनाथजीके संग चले ॥ ७ ॥ यह रौद्रशक्ति गमन कहा ब्राह्मणका वेष धारणकर चारों वेद, सबकी रक्षा करने हारी गायत्री, ॐकार (ज्ञानयोग) वषट्कार (कर्मयोग) यह सब रामचन्द्रके संग चले ॥ ८ ॥ महात्मा ऋषि और सब ब्राह्मण लोग स्वर्ग द्वार खुला देखकर रामचन्द्रके संग चले ॥ ९ ॥ रामचन्द्रके प्रस्थान करने पर रणवासकी सब स्त्री, वृद्ध बालक, दासी कंचुकी, तथा सेवकों सहित चलीं ॥ १० ॥ रणवासके सहित भरत और शत्रुघ्नभी अग्निहोत्रको आगे-कर रघुनाथजीके पीछे २ चले ॥ ११ ॥ इस प्रकार यह सब महात्मा अग्निहोत्रको आगेकर पुत्र स्त्री सहित महामति रामचन्द्रके पीछे २ च-ले ॥ १२ ॥ मंत्री तथा दासजन अपने कुटुम्बी बांधव और पशुओंको भीलेकर परम प्रसन्नतासे रघुनाथजीके पीछे हुए ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त रामचन्द्रके गुणोंसे मोहित होकर सम्पूर्ण प्रजा हृष्ट पुष्ट प्रसन्नतासे रामचन्द्रके पीछे पीछे चली ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त वे स्त्री पुरुष अपने बांधव सहित और पशु पक्षी सब कोई प्रसन्न मनसे पाप रहितहो रामचंद्रके पीछे पीछे चले ॥ १५ ॥ सम्पूर्ण वानर सरयूमें स्नानकर हृष्टपुष्ट प्रसन्न चित्तसे रामचंद्रके साथ जानेको किलकिला शब्द करने लगे ॥ १६ ॥ उस स्थानमें कोई दीन दुःखित वा लज्जित नहीं था, सबही प्रसन्न थे यह बड़ी अद्भुत बात हुई ॥ १७ ॥ उस समय जो कोई देशान्तरोंसे रामचंद्रको देखने आये थे वह मनुष्यभी दर्शन करतेही रामचंद्रके पीछे पीछे जाने लगे ॥ १८ ॥ ऋक्ष वानर राक्षस और पुरवासी मनुष्य यह सावधान हुए भक्ति पूर्वक रघुनाथजीके पीछे पीछे जाते थे ॥ १९ ॥ और जितने जीव अयोध्यामें अन्तर्ध्यान रहते थे, वह भी सब स्वर्ग जानेके निमित्त रामचंद्रके पीछे २ चले ॥ २० ॥ अधिक क्या उससमय जितने स्थावर जंगम प्राणियोंनें रामचंद्रको देखा, वह सबही उनके पीछे २ चलने लगे ॥ २१ ॥

नोच्छ्वसत्तदयोध्यायांसुसूक्ष्ममपिदृश्यते ॥
तिर्यग्योनिगताश्चैवसर्वेराममनुव्रताः ॥ २२ ॥

जितने श्वास लेने वाले जीव कीट पतंग अयोध्यामें थे वह सबही रामचंद्रके साथ २ चले ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्री०वा०आ०उ०नवाधिक शततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमः सर्गः ॥

अध्यर्धयोजनंगत्वानदींपश्चान्मुखाश्रिताम् ॥
सरयूंपुण्यसलिलांददर्शरघुनंदनः ॥ १ ॥

इस प्रकार अयोध्या पुरीसे पश्चिमको मुख किये, तीन कोश दूरपर जाय पवित्र जलसे भरी सरयू नदी रघुनंदनने देखी॥१॥रामचंद्रजी अपनी सम्पूर्ण प्रजा को साथ लिये भँवर और बड़ी तरंगोंसे युक्त सरयूके गोप्रतारक घाटके तटपर आये ॥ २॥ इसी अवसर में लोकपितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंको साथ लिये तथा और महात्मा ऋषियोंको साथ लिये॥३॥सौ करोड़ विमानोंके सहित स्वर्गजानेको निश्चय किये रघुनाथजीके निकट उपस्थित हुए ॥४॥ आकाश जोकि नक्षत्रोंके और अपने तेजके प्रकाशसे प्रकाशित था उस समय पुण्यकर्मा और स्वयंप्रकाशित स्वर्ग वासियोंके तेजसे दिव्य तेज युक्त होगया ॥ ५ ॥उस समय सुगंध लिये चारों ओरसे दिव्य पवन चलने लगी और देवताओंने बहुत पुष्पोंकी वर्षाकी ॥६॥ उस्समय गंधर्व गाने अप्सरा नृत्य करनें लगीं आकाशमें वाजे वजने लगे तब पूर्णब्रह्म रघुनाथजी पैरोंहीसे सरयूके जलमें प्रवेश करने लगे ॥७॥ उस समय अन्तरिक्षसे ब्रह्माजी कहने लगे हेराघव हे सर्व व्यापक विष्णु भगवान आइये आपका मंगल हो आज हमारे भाग्यसे ही आप अपने लोकमें आते हैं॥८॥ देवताओंकी समान कान्तिवाले भाइयों सहित आप अपने प्रिय लोकमें आइये, हे महाबाहो! जिस शरीरमें प्रवेश करनेकी इच्छा हो उसमें प्रवेश करिये ॥ ९ ॥ यदि वैष्णव तेजमें प्राप्त होनेकी इच्छा हो अथवा सनातन ब्रह्म शुद्धरूप की इच्छा हो तौ उसमें प्रवेश कीजिये, हे देव आपही सब लोकों की गति हैं, और आपको कोई नहीं जान्ता ॥ १० हे भगवन् वह विशालनेत्रा ज्ञानशक्ति आपकी माया जानकी ही आपको जान्ती हैं इस कारण आप अचिन्त्य—देशपरिच्छेद शून्य, महद्भूत, अक्षय—नाशरहित और अजरहो, हे महा तेजस्वी जिस शरीरमें आपको प्रवेश करनेकी इ-

च्छा हो, आप उस शरीरमें प्रवेश कीजिये ॥ ११ ॥ महामतिमान् रघुनं-
दन ब्रह्माजीके यह वचन श्रवणकर विचार कर भाइयोंके साथ शरीर सहि-
त वैष्णवी तेजमें प्रवेश करगये ॥ १२ उस समय विष्णुमय भगवान राम-
चंद्रका सब देवता साध्य, मरुद्गण, इन्द्र अग्नि सब पूजन करनेलगे ॥१३ ॥
और जो दिव्य ऋषिगण अप्सरा सुपर्णनाग यक्ष दैत्य दानव राक्षसथे ॥
॥ १४ ॥ सब बड़े हर्षित हुए, और सबके मनोरथ पूर्ण हुए पाप रहित हो
गये और आकाशमें देवता उनको साधुवाद देने लगे ॥ १५ ॥ तब महा
तेजस्वी विष्णुजी ब्रह्माजीसे कहने लगे, हे सुव्रत ! यह जितने पुरुष हमा-
रे संग आये हैं इन सबको उत्तम लोक दीजिये ॥ १६ ॥ यह सम्पूर्ण स्नेह-
के कारण हमारे साथ चले आयेहैं, यह यशस्वी मेरे भक्तहैं, इन्होंने हमारे
निमित्त अपने शरीर त्यागन करदिये हैं इस कारण मुझे इनके ऊपर कृपा
करनी अवश्यहै ॥ १७ ॥ विष्णु भगवानके यह वचन सुन लोकपितामह
ब्रह्माजी कहने लगे, कि यह सब आपके भक्त संतानक लोकोंमें जांयगे ॥
॥ १८ ॥ येतो आपके साथही आये हैं परन्तु जो कोई कीट पतंग भी आ-
पका नाम लेकर शरीर त्यागन करेंगे, वे सब संतानक लोकोंमें वसेंगे ॥
॥ १९ ॥ यह संतानक लोक ब्रह्मगुणसे युक्त ब्रह्मलोकसे मिले हुए हैं साके-
तलोक के बीचमेंहैं यह सब हमारे साथ मुक्त होंगे यह तात्पर्यहै वानर
और रीछ जिन जिन देवता ओंसे उत्पन्न हुएहैं उन्हींमें मिलेंगे ॥ २० ॥ जो
जिस देवसे प्रादुर्भूत हुए हैं वे उसीमें प्रवेश करेंगे, ब्रह्माजीके यह वचन सुन्ते
ही सुग्रीव सूर्य मंडलमें प्रवेश करगये ॥२१॥ औरभी सब रीछ वानर ब्रह्मा-
जीके यह वचन सुन गोप्रतारघाटमें स्नान कर अपना२ शरीर छोड़, अ-
पने२पिता ओंमें मिलगये॥२२॥और यह वचन सुन और भीजो लोगथे वे
प्रसन्नतासे नेत्रोंमें आंसूभरे सबही सरयूमें प्रवेश करगये, जिन २ पुरुषोंने
प्रसन्न हो उस समय सरयूमें स्नानकर अपने प्राण त्यागे ॥ २३ ॥ वह सब
अपने मनुष्य शरीरको त्यागनकर विमानोंमें स्थित हुए इसी प्रकार सह-
स्रों पशु पक्षी तिर्यकयोनिके जीवभी सरयूजलमें स्नानकर अपना शरी-
रत्याग ॥ २४ ॥ विमान पर चढ दिव्य कान्तियुक्त शरीरधारे, सर्गको
प्राप्त हुए और दिव्य शरीर होनेसे देवतोंकी समान प्रकाशित होगये॥२५॥
स्थावर जंगम सरयूके जलमें स्नानकर शरीरत्याग सबही देवलोकको

गये ॥ २६ ॥ जोकोई ऋक्ष वानर राक्षस सरयूके जलमें स्नान करने लगे, वे जलमेंही अपने देहोंको त्याग कर स्वर्गको सिधारे ॥ २७ ॥

ततःसमागतान्सर्वान्स्थाप्यलोकगुरुर्दिवि ॥
हृष्टैःप्रमुदितैर्देवैर्जगामत्रिदिवंमहत् ॥ २८ ॥

इस प्रकारसे लोकपति भगवान् सब मंत्री पुर वासी ऋक्ष वानर जीव जन्तु ओंको सन्तानक लोकोंमे स्थापितकर, पीछेसे प्रसन्नतापूर्वक प्रमुदित देवतों सहित सबसे उत्तम साकेतलोकमें भ्राताओं सहित पधारे ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे दशाधिक शततमः सर्गः ॥ ११० ॥

एकादशाधिक शततमः सर्गः ॥

एतावदेतदाख्यानसोत्तंरब्रह्मपूजितम् ॥
रामायणमितिख्यातंमुख्यंवाल्मीकिनाकृतम् ॥ १ ॥

इतनीही यह महर्षि वाल्मीकिजीकी बनाई हुई ब्रह्मासे पूजित उत्तर काण्ड युक्त रामायणहै, जो रामायण नामसे विख्यातहै ॥ १ ॥ इसके अनन्तर जिनमें यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहाहै, वह विष्णु भगवान स्वर्ग लोकमें पूर्व कालकी नाईं देवतोंके साथ स्थित हुए ॥ २ ॥ तबसे देवता गंधर्व सिद्ध पर्मर्षि स्वर्गमें प्रसन्नता पूर्वक नित्य इस रामायणकाव्यको श्रवण करतेहैं ॥ ३ ॥ यह आख्यान आयुका बढाने हारा, सौभाग्य दायक, और पाप नाशकहै, इस वेदसमान रामायणको पंडितोंको श्राद्धमे अवश्य सुनाना उचितहै ॥ ४ ॥ विश्वासपूर्वक श्रद्धासे सुनै तौ अपुत्रको पुत्र, निर्धनीको धन मिलताहै, इसका चौथाई श्लोक पढनेसेभी सब पाप दूर होतेहैं ॥ ५ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन अनेक प्रकारके पाप करतेहैं, वे इसका एकही श्लोक पढनेसे सब पाप रहित हो जातेहैं ॥६॥ इस पुस्तकके वांचने वालेको वस्त्र धेनु और सुवर्ण देना चाहिये, वाँचनें हारेके प्रसन्न और तुष्ट होनेसे सम्पूर्ण देवता संतुष्ट होतेहैं ॥ ७ ॥ इस आयुके बढाने हारे रामायण नामक आख्यानके पढ़नेसे मनुष्य इस लोकमें पुत्र-पौत्रोंको प्राप्त होकर अन्तमें स्वर्ग लोकमें पूजित होतेहैं ॥ ८ ॥ रामा-

यणको प्रातःकाल मध्याह्न समय तीसरे पहर संध्या समय सावधान होकर पाठ करनेसे किसी प्रकारका दुःख नहीं होता ॥ ९ ॥ वह रम्य अयोध्या-पुरी बहुत वर्षोंतक शून्य पड़ी रहेगी, बहुत काल पीछे जब ऋषभ राजा इसमें राज्य करेंगे तब मनुष्योंका निवास इस पुरीमें होगा ॥ १० ॥

एतदाख्यानमायुष्यंसभविष्यंसहोत्तरम् ॥
कृतवान्प्रचेतसःपुत्रस्तद्ब्रह्माप्यन्वमन्यत ॥ ११ ॥

भविष्य उत्तर सहित यह आख्यान आयुका देने हारा प्रचेतसके पुत्र वाल्मीकिजीका बनाया हुआहै और सर्वथा वेदार्थप्रतिपादक होने से ब्रह्माजीनेभी इसे स्वीकर किया है ॥ ११ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसहस्रसंहितायां उत्तरकाण्डे मुरादा वादनगरस्थपंडितकुलतिलक मिश्रसुखानंदात्मजकामेश्वरनाथसंस्कृतपाठ-शालायाःप्रधानाध्यापकपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृते भाषानुवादे एकाद-शाधिकशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

व्योमबाणाङ्कचन्द्रेऽब्दे श्रावणस्य सिते दले। शुक्रवारे त्रयोदश्यां टीका पूर्तिमुपागमत् ॥

श्रवणविधिः ।

दोहा—रामायणको श्रवणकर, हेम रत्न रथ वाजि । क्षौम पताकायुक्त कर, दीजे बहु विध साजि ॥१॥ रत किंकिणी सहित रथ, और दुधारी गाय। दान करै अति प्रेमसों, बहुत भाँति सुखपाय ॥ २ ॥ अष्टोत्तरशत द्विज-नको, बहु विधि सहित जिमाय ॥ एहि प्रकार फल चारि लह, रहै सुयश जग छाय ॥ ३ ॥ रामायणको श्रवण कर, वाचकको दे दान ॥ धेनु हेम सुंदर वसन, सुवरण कुंडल कान ॥ ४ ॥ मुद्री शय्या छत्र दे, पादत्राण ललाम ॥ भूमिदान शुभ अन्न पुनि, ताम्बूल सुख धाम ॥ ५ ॥ भक्ष्य भोज्य पुनि लेह्य अरु, चोष्यपदार्थ अनेक ॥ दान करै अतिभक्तिसे, हियमें परम विवेक ॥ ६ ॥ अश्वमेधके सहस अरु, वाजपेय शतयाग ॥ एक सर्गके सुनेते, इनको फल बड़ भाग ॥ ७॥ तीर्थ प्रयागादिक सकल, गंगादिक सरि जौन ॥ नैमिपादि वन

क्षेत्र कुरु, तीरथ कीने तीन ॥ ८ ॥ जिन यह रामायण सुनी, तिन सब कर फल लीन्ह ॥ हेमभार कुरुक्षेत्रमें, भानु ग्रस्त जिन दीन्ह ॥ ९ ॥ अरु जोहि रामायण सुनी, दोनों पुण्य समान ॥ श्रद्धा भक्ति समेत जो, सुने रामगुण गान ॥ १० ॥ सर्व पापसे छूटकर, विष्णुलोक सो जाय ॥ आदिकाव्य यह ऋषीने, भाष्यो जगसुखदाय ॥ ११ ॥ भक्तिपूर्वक जो सुने, सो पावत हरि- धाम ॥ पुत्र दार धन अति बढे, सिद्ध होत मनकाम ॥ १२ ॥ इति श्रवणविधिः

श्रवणविधिः समाप्त.

दोहा-राम भरत लक्ष्मण सिया, रिपुहन पवनकुमार ॥ चरणकमल सुग्रीवके. वंदो वारंवार ॥ १ ॥ जहँ जहँ प्रभुको कीर्तन, तहँ निज शीश झुकाय ॥ खलवन पावक पवनसुत, प्रणवों सरल सुहाय ॥ २ ॥ रामचंद्रश्री- राम प्रभु, रामचंद्र भगवान ॥ सीतापति रघुनाथजी, करिये जग कल्याण ॥ ३ ॥ मंगल लेखकके भवन, मंगल पाठक गेह ॥ मंगल राजा प्रजाको, मंगल भूमि सनेह ॥ ४ ॥ कतक रामको सारले, नहिं लघु नहिं विस्तार ॥ प्रतिपदकी टीका करी, निज मतिके अनुसार ॥ ५ ॥ कृपा करहिं अस पवनसुत, याको होय प्रचार ॥ घर घरमें पुस्तक पढें, बाल वृद्ध नर नार ॥ ६ ॥ जाके कृपा की दृष्टिसों, रचना जगत दिखात ॥ तिन प्रभु करुणासिंधुको, बड़ी नहीं यह बात ॥ ७ ॥ प्रभु अपनो कर जानिये, तुमही होत सहाय ॥ लाज तुम्हारे हाथहै, याको देहु बनाय ॥ ८ ॥ खेमराज श्रीसेठजी, वेङ्कटेशकी छाप ॥ ताको फैलो जगतमें, देश विदेश प्रताप ॥ ९ ॥ तिनपर कृपा राखिये, दीनबंधु सुखधाम ॥ तिमिज्वालाप्रसादके, रक्षक रहिये राम ॥ १० ॥ उन्निससे पंचाश शुभ, श्रावण सित भृगुवार ॥ सर्व सिद्ध त्रयोदशी, पूर्ण कियो सुखसार ॥ ११ ॥

शुभमस्तु ।

इति वाल्मीकीयरामायणभाषा । समाप्ता ।

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजेन मोहमय्यां स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्राणालये मुद्रयित्वा प्रकाशं नीतम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना- बम्बई.

सीता विवर्ण, दीना, और मानुषी, कृपण रूप और आपका अप्रिय करनें वालीहै, इसके माथेमें विधाताने दुर्लभ सुखका भोग करना लिखाही नहीं ॥ ४१ ॥ कारणकि आपके बाहुबलसे एकत्र की हुई संपदाका भोग करना अति दुर्लभहै, इसके अतिरिक्त काम रहित स्त्रीको जो पुरुष भोगताहै उसका शरीर संतापसे दग्ध होता रहताहै ॥ ४२ ॥ और कामकी अभिलाषा करनेंवाली स्त्रीको जो पुरुष चाहताहै, तो उसके संग रति करनेंसे अत्यन्त प्रसन्नता होतीहै। यह कह कर वह राक्षसी बलवान् रावणको और स्थानपर लेगई; मेघकी समान वर्ण वाला राक्षस रावणभी हँसते२ वहां सीताजीके मारनेंसे निवृत्त हुआ ॥ ४३ ॥ दशानन रावण पृथ्वीको कम्पायमान करता, प्रदीप्तमान मध्याह्न कालके सूर्यकी समान अपने मंदिरमें प्रवेश करता हुआ ॥ ४४ ॥ उसके संग वाली देव गन्धर्व कन्या व नागकन्या गण सब रावणको घेरे हुए उसके श्रेष्ठ भवनमें चली गईं ॥ ४५ ॥

समैथिलींधर्मपरामवस्थितांप्रवेपमानां
परिभर्त्स्यरावणः ॥ विहायसीतांमदने
नमोहितःस्वमेववेश्मप्रविवेशरावणः ॥ ४६ ॥

रावण धर्मपरायण, स्थिरता युक्त कम्पायमानशरीर, सीताजीको डराता हुआ और फिर उनको छोड़ कामदेवसे मोहितहो अपनें मन्दिर कोही चला गया ॥ ४६ ॥ इ०श्री०वा०आ०सुं०द्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥

इत्युक्त्वामैथिलींराजारावणःशत्रुरावणः ॥
संदिश्यचततःसर्वाराक्षसीर्निर्जगामह ॥ १ ॥

शत्रुओंको भय उपजानेवाला रावण राजा. सीताजीसे ऐसा कह और सब राक्षसियोंको यह आज्ञा देकर चलागया ॥ १ ॥ जब राक्षस चलकर अपने रनवासमें पहुँचा, तब वे अशोक वनमें सीताजीकी रक्षा करती हुई भयंकर रूपवाली राक्षसियें सीताजीकी ओरको दौड़ीं॥२॥ फिर वह राक्षसियें क्रोधसे मूर्छित हो सीताजीके निकट पहुंचकर उन जनककुमारीसे बड़े कठोर वचन बोलीं ॥ ३ ॥ हे सीते ! पुलस्त्यनंदन लोकोंमें श्रेष्ठ

इति

श्रीवाल्मीकीयरामायणभाषानुवादः संपूर्णः ।

इदं पुस्तकं मुंबय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन खेमराज श्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

संवत् १९५०, शके १८१५.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, खेतवाडी-बंबई.

महात्मा रावणकी स्त्री होना तुम क्यों नहीं अपना बड़ा भाग्य समझती-हो? ॥ ४ ॥ इसके पीछे एक जटा नाम राक्षसी क्रोधसे लाल २ नेत्र कर-ती हुई सूक्ष्म उदरवाली सीताजीसे जोकि हाथ जोड़े बैठी हुईथीं पुकार कर बोली ॥ ५ ॥ ब्रह्माजीके मानस पुत्र छैः प्रजापतियोंके मध्यमें जो चतुर्थ प्रजापति लोकमें विख्यातहैं, उनका पुलस्त्य नामहै ॥ ६ ॥ पुल-स्त्यके मानस पुत्र जो तेजस्वी महर्षि हुए उनका नाम विश्रवा हुआ; उन-की प्रभाभी प्रजापति लोगोंकी तुल्य हुई ॥ ७ ॥ हे बड़े २ नेत्रोंवाली! यह शत्रु लोगोंका भय उपजानेवाला रावण विश्रवाकाही पुत्र है ॥ उन राक्षस नाथकी भार्या होंना तुमको अवश्य उचितहै ॥ ८ ॥ हे सर्वश्रेष्ठाङ्गि! ह-मारे कहे वचनोंको क्यों नहीं मानतीहो? जब यह कह चुकी तब हरि जटा नामक राक्षसी बोली ॥ ९ ॥ यह बिलावकेसे नेत्रवाली अपने नेत्रोंको घुमाती हुई बोलीकि जिसनें तेंतीस देवता और देवराज इन्द्रकोभी सब भांतिसे जीत लियाहै ॥ १० ॥ उस राक्षसेन्द्रकी भार्या होना तुमको उ-चितहै; क्योंकि वह बड़ा वीर्यवानहै; वह शूर संग्राममें शत्रुओंको विना-जीते नहीं लौटता वीर्य शालीकी स्त्री होंना तुम क्यों नहीं अंगीकार करतीहो? ॥ ११ ॥ महा बलवान् राजा रावण सब स्त्रियोंसे अधिक भाग्य-वती और परम आदर पाई हुई, मन्दोदरीकोभी छोड़कर तुम्हारेही निक-ट रहा करेंगे ॥ १२ ॥ रावणके रनवासमें हजारों स्त्रियें अति ऋद्धियुक्त व अपने रत्नोंसे सुशोभितहैं, वह उन ऐसी स्त्रियोंको रनवासमेंही छोड़कर तु-म्हारेही वश होंगे ॥ १३ ॥ विकटा नाम और एक राक्षसी बोलीकि जिसनें भयंकर विक्रम करके समरमें वार२ अनेक देव गन्धर्व और दानवोंको अमि-त पराजय कियाहै, वह राक्षसराज रावण अपने आप तुम्हारे निकट आ-या ॥ १४ ॥ तथापि हे अधमे! उन सर्व धन सम्पन्न राक्षसोंके नाथ रावण-की भार्या हो जानेंमें तुम्हारी वासना क्यों नहीं होती? ॥ १५ ॥ फिर दुर्मुखी नामक राक्षसी सीताजीसें बोली कि जिसके भयसे भीत होकर सूर्य अधिकाईसे नहीं तपते और वायु जोरसे नहीं चलती; हे आकर्ण लोचने (बड़े २ नेत्रवाली) तुम उस रावणके समीप क्यों नहीं जाती-हो? ॥१६॥ जिसकी इच्छा होतेही वृक्षगण भयके मारे फूलोंकी वर्षा, और

पर्वत व मेघगण जलदिया करतेहैं ॥ १७ ॥ हे भामिनि! उन राज राजेश्वर रावणकी भार्या होंनेको तुम्हारा मन क्यों नहीं चाहता? ॥ १८ ॥

साधुतेतत्त्वतोदेविकथितंसाधुभामिनि ॥
गृहाणसुस्मितेवाक्यमन्यथानभविष्यसि ॥ १९ ॥

हे भामिनि! देखो. हमतौ तुमसे तुम्हारे हितहीकी बात कहती हैं, हे शुचिस्मिते! (मंद मुसकान वाली) तुम हमारी बातको मानो. नहीं तौ तुम अपने जीवनकी रक्षा न कर सकोगी ॥ १९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० सुं० त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥

ततःसीतांसमस्तास्ताराक्षस्योविकृताननाः ॥
परुषंपरुषानर्हामूचुस्तद्वाक्यमप्रियम् ॥ १ ॥

इसके पीछे यह समस्त विकरालमुखी राक्षसियां सब एक साथ मिलकर कठोर वचन कहनेंके अयोग्य जानकीजीसे कठोर व अप्रिय वचन कहनें लगीं. ॥ १ ॥ हे सीते! सर्व प्राणियोंका मन हरण कारी, बड़े २ मोलकी सेजोंसे युक्त अन्तःपुरमें वास करनेंकी तुम्हारी इच्छा क्यों नहीं होती ॥ २ ॥ हे मानुषी! मनुष्यकी भार्या होंनेको तुम बहुत बड़ा समझतीहो,परन्तु अब तुम रामसे अपने मनको हटाओ, जो तुमनें मनमें विचाराहै, वह कभी सिद्ध नहीं होगा हम तुमको मार डालेंगी ॥ ३ ॥ राक्षसोंके नाथ रावण त्रिलोकीका सुख भोग करतेहैं; सो तुम उन ऐसे स्वामीको साथ लेकर यथा सुखसे विहार करो ॥ ४ ॥ हे अनिन्दिते! (निन्दारहित) तुम जो मानुषीहो, इसलियेही राज्य भ्रष्ट, लक्ष्मी रहित, और विह्वल मनुष्य रामचंद्रकीही कामना करतीहो ॥ ५ ॥ कमलदल समाननेत्रवाली सीताजी राक्षसियोंके यह वचन सुनकर नेत्रोंमें जल भरकर बोलीं ॥ ६ ॥ तुम लोग सब मिलकर जो यह वचन कहतीहो यह लोकोंको विरुद्ध और पाप होंनेके कारण हमारे मनमें स्थान नहीं पाते॥७॥ मानुषी कभी राक्षसकी स्त्री नहीं हो सकती; चाहो सब मिलकर हमें खा डालो; परन्तु तुम जो कहतीहो वह हम कभी न करेंगी ॥ ८ ॥ दीन हों चाहें राज्यहीन हों, जो हमारे स्वामीहैं; वही हमारे गुरुहैं; सूर्यकी स्त्री सुव-

च्चेला जैसे सूर्यकी, वैसेही हम नित्य अपने स्वामीकी अनुरागिनीहैं ॥ ९ ॥ जिस प्रकार यशस्विनी शची इन्द्र जीमें प्रीति रखतीं, जैसे अरुन्धती वशिष्ठजीमें, रोहिणी जिस प्रकार चंद्रमाजीमें ॥ १० ॥ लोपामुद्रा जैसे अगस्त्यजीमें; सुकन्या जिस प्रकार च्यवनजीमें, सावित्री जिस प्रकार सत्यवानमें; श्रीमती जैसे कपिल देवजीमें॥ ११ ॥मदयंती जिस प्रकार सौदासमें, केशिनी जैसे सगरमें, और भीमकुमारी दमयन्ती जिस प्रकार अपनें स्वामी नलमें प्रीति रखतीथी ॥ १२ ॥ वैसेही हम इक्ष्वाकुनाथ अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीकी अनुव्रताहैं; सीताजीके ऐसे वचन सुनकर राक्षसियां क्रोधसे मूर्छित होगईं, और रावणकी आज्ञासे कठोर वचन कह२ कर जानजीका अपकार करनें लगीं ॥ १३ ॥हनुमानजी चुप चाप रहकर शिंशपा वृक्षके पत्तोंमें छिपे हुए बैठेथे; सीताजीको जो राक्षसियोंने डराया धमकाया; वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें वह सब सुना ॥ १४ ॥ वह सब क्रोधसे भरी हुई राक्षसियें, कम्पित शरीरवाली जानकीजीके निकट आय उनको चारों ओरसे घेर अपने लंबे २ अधर वारंवार जीभसे चाटनें लगीं ॥ १५ ॥ और महाक्रोध कर अपने२ हाथोंमें फरशा ग्रहण कर बोलीं कि यह सीता राक्षस राज रावणको अपना स्वामी बनानेंके योग्य नहीं है॥ १६ ॥ जब भयंकर रूप वाली राक्षसियें इस प्रकारसे अपमान करनें लगीं, तब सीताजी आँसू पोंछतीं२उस शिंशपा वृक्षके निकट आनें लगीं ॥ १७ ॥ इसके पीछे राक्षसियोंके वशमें पड़ी विशालनेत्रवाली सीताजी इसी शिंशपा वृक्षके निकट आयकर शोकमें मग्न हो बैठ गईं ॥ १८ ॥ और वह सब राक्षसियें चारों ओरसे उन दुर्बल, मलीन वदन, व मलीनही वस्त्र धारण किये जानकीजीकी भर्त्सना करनें लगीं ॥ १९ ॥ जब जानकीजी बैठ गईं तब भयंकर दांत युक्त क्रोधायमान मूर्त्ति अति गंभीर पेटवाली विनतानाम राक्षसी क्रोधसे बोली॥२०॥ हे सीता! तुमनें अबतक जो इतना स्नेह अपनें स्वामी पर दिखाया, सो बहुत हो चुका,परन्तु हे भद्रे! सब कार्योंमेंही अति मात्र आचरण करना केवल दुःख केही निमित्त होताहै ॥ २१ ॥ हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुई हैं,तुम्हारा मंगल होवो; मनुष्यको जिस प्रकारका आचरण करना कर्त्तव्यहै वह तो किया परन्तु हे मैथिली! अब जो हम तुमको हितकारी वचन कहती हैं, उनको तुम पालन करो ॥ २२ ॥

वह यह वचनहैं, कि तुम सब राक्षसोंके पति रावणको पतिभावसे भजो।
वह सुरेश्वर इन्द्रजीकी नांई महा पराक्रमके सहित रणमें शत्रुओंके
सामने हुआ करतेहैं ॥ २३ ॥ वह रावण सबके प्रति अनुकूल दाता,
और सबसे प्रिय बोलने वालेहैं॥राम तो मनुष्यहैं तिस पर महाबुरी अवस्था-
में वह घिर रहेहैं;सो तुम उनको त्याग करके रावणका आश्रय करो ॥२४॥
हे विदेहनन्दिनि! तुम अपने शरीरमें दिव्य अंगराग लगाओ और दिव्य
वस्त्राभूषणोंसे भूषित होकर, सब लोकोंकी ईश्वरी (स्वामिनी) होवो ॥२५॥
जैसे कि अग्निकी स्त्री स्वाहा, और इन्द्रजीकी स्त्री शची उनके साथसे
शोभित होतीहै ऐसे तुम रावणके साथ शोभित होगी। हे वैदेही!
राम थोड़ी आयु वाले और बड़ी बुरी अवस्थामें पड़ेहैं इसलिये रामसे
तुम्हारा क्या प्रयोजनहै; ॥ २६ ॥ हमारे कहेहुए इन वचनोंका जो
तुम प्रतिपालन न करोगी, तौ इसी समय हम सब मिलकर तुमको
भक्षण कर जांयगी ॥ २७ ॥ इसके पीछे विकटा नामक बड़े लंबे स्तन
वाली और एक राक्षसी क्रोधित होय मुक्का उठाय ताड़ना करती हुई
जानकीजीसे बोली ॥ २८ ॥ मूढे मैथिलि! तुमनें अनेक अयोग्य अन-
र्थक वचन कहे, परन्तु तुमको अति क्षुद्र समझ और केवल दया करकै
वह सब वचन सहन कर लिये गयेहैं ॥ २९ ॥ परन्तु हम लोगोंके समया-
नुसार कहे हुए वचन अनसुने करतीहो, यह तुम्हारे लिये अच्छा नहीं
होताहै। मैथिलि! तुम समुद्रके पार लाई गईहो, यहां पर और कोई नहीं
आय सकता ॥ ३० ॥ और तिसपर तुम रावणके घोर रनवासमें प्रवेश
किये हुए हो, यहां पर तुम रावणके गृहमें बंदीहो और हम सब तुमको
रखाती हैं ॥ ३१ ॥ और की तौ क्या चलाई साक्षात् इन्द्रजी भी तुमको
यहांसे नहीं छुटाय सकते। हे मैथिली! हम जो तुमको हितके उपदेश
देतीहैं; उन उपदेशोंको तुम मानों ॥ ३२ ॥ आंसू गिरानेंसे क्या काम
चलैगा? वृथा शोकको छोड़दो, प्रसन्न होकर आनंद मनाओ, और इस
नित्यके दीनभावका त्याग करदो ॥ ३३ ॥ हे सीते! तुम राक्षस राजके
साथ सुख व आनंदसे विहार करो। हे भीरु! हम जानतीहैं कि स्त्रियोंका
यौवन बहुत जलदी बीत जाताहै ॥ ३४ ॥ इसलिये ही कहतीहैं कि यौव-
नके न बीतते २ तुम सुखको प्राप्त करो। तुम रमणीक उद्यान, उपवन

और पर्वतोंमें ॥ ३५ ॥ मतवाले नयन वालीहो राक्षसराज रावणके साथ विहार करो। हे जानकी ! हे देवि ! तब सहस्रों स्त्रियां तुम्हारे वशमें रहा करेंगी ॥ ३६ ॥ इसलिये तुम सर्व राक्षसोंके मालिक रावणको अपना स्वामी बनाओ । नहीं तो हे मैथिली! हम तुम्हारा कलेजा निकाल कर भक्षण कर जांयगी ॥ ३७॥ यह जब करेंगी कि जब तुम हमारा कहा न मानोगी। फिर उसके पीछे क्रूर दर्शनवाली चंडोदरी नामक राक्षसी बडे भारी शूलको घुमाती हुई सीताजीसे यह बोली कि इन मृग-शावकनयनी और भयसे कंपायमान स्तन वाली सीताजीको ॥३८॥ ३९॥ रावणसे हरी हुई देख हमारे मनमें अति बुरी इच्छा हुईहै कि इनके उद-रके दहने बायें दोनों भाग, छाती गला. हृदय कंधेनसे ॥ ४० ॥ दूसरे अंग और मस्तकभी हम भक्षण कर जांय ऐसी मति हमारी हुई। फिर प्रघसा नाम राक्षसी बोली ॥ ४१ ॥ " कि हम इस नृशंसाका गला दबालें सो तुम अब बैठी हुई क्या करती हो ? फिर तुम जायकर राजा रावणको खबर करो कि वह मानुषी मर गई; इसमें संदेह नहीं, कि फिर राजा यही कहैंगे कि तुम सब मिलकर उसको खाडालो, फिर अजामुखी नामक राक्षसी बोली " कि तुम्हारा यह झगड़ा तो मुझे अच्छा नहीं लगता तुम इसको कतर कर बराबर २ मांसके पिंड बनाओ, फिर हम सब बराबर हिस्से कर लेंगी ॥ ४२ ॥ इसलिये पहले मदिरा पीनेंको और बहुत सारे हार पहरनेंको लाओ। फिर इसके पीछे शूर्पणखा नाम राक्षसी बोली॥४३॥ कि अजामुखीकी यह बात तौ हमको भी बहुत अच्छी लगतीहै, इस-लिये सर्व शोक नाश करनें वाली सुरा शीघ्रही तुम लेआओ ॥ ४४ ॥

मानुषंमांसमासाद्यनृत्यामोऽथनिकुंभिलाम् ॥
एवंनिर्भर्त्स्यमानासासीतासुरसुतोपमा ॥
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्धैर्यमुत्सृज्यरोदिति ॥ ४५ ॥

हम मनुष्यके मांसको चख उसका स्वादले देवी निकुम्भलाके मंदि-रमें जाय नाचेंगी, जब कुरूपवाली राक्षसियोंने इस प्रकारके वचन कह २ कर जानकीजीको धमकाया तब देवताओंकी समान सुंदरी

सीताजी धीरज छोड़ कर रोनें लगीं ॥ ४५ ॥ इ०श्रीमद्रा०वा०आ०सुं० चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशःसर्गः ॥

अथतासांवदंतीनांपरुषंदारुणंबहु ॥
राक्षसीनामसौम्यानांरुरोदजनकात्मजा ॥ १ ॥

जब यह सब भयंकर रूपवाली राक्षसियें विविध भांतिके कठोर वचन कहनें लगीं, तब श्रीजानकीजी रोदन करनें लगीं ॥ १ ॥ उन राक्षसियोंके इस प्रकार कहनें पर मनस्विनी जानकीजी त्रासित होकर गद २ वाणीसे बोलीं ॥ २ ॥ कि मानुषी कभी राक्षसकी स्त्री नहीं हो सकती। चाहो तुम सब मिलकर हमको खाजाओ परन्तु हम तुम्हारे वचनोंका पालन किसी प्रकारसे न कर सकेंगी ॥ ३ ॥ रावण करके तिरस्कार पाय, और राक्षसियोंके बीचमें बैठनेंसे देवकन्याओंकी समान सीताजी शोकसे कातर होकर किसी प्रकार शांति प्राप्त करनेंको समर्थ न हुईं ॥ ४ ॥ वनमें भेड़ियोंसे घिरी हुई अपने झुन्डसे बिछड़ी हरिणीकी समान, मानो आप अपने शरीरमें सिकुड़ कर पैठी जाती हुई जानकी अधिक कम्पायमान होंनें लगीं ॥ ५ ॥ जानकीजी अशोकवृक्षकी बड़ी भारी फूली हुई डालका आश्रय करके शोकमें मनको डुबाये अपने स्वामीकी चिन्ता करनें लगीं ॥ ६ ॥ आंसुओंकी धारसे बड़े २ दोनों पयोधर गीले हो गयेथे, तथापि इतनी चिंता करकेभी जानकीजी किसी प्रकार शोकके पार न जायसकीं ॥ ७ ॥ जानकीजी प्रबल पवनके वेगसे गिरे हुए केलेकी समान गिरकर कांपनें लगीं; राक्षसियोंके भयसे भीत होंनेके कारण उनका चंद्रमासा मुख मलीन होगया ॥ ८ ॥ शरीरके कांपनेंसे जानकीजीकी बड़ी लंबी वेणीभी कम्पायमान होंने लगी; उस समय ऐसा बोध हुआ मानो सर्पिणी इधर उधर घूम रहीहै ॥ ९ ॥ मिथिलेश राजकुमारी जानकीजी शोकसे चेतना रहित और दुःखमें भरनेंके कारण कातरहो फूट २ कर आंसू गिराय रुदन कर विलाप करनें लगीं ॥ १० ॥ वह बोली हा राम ! हा लक्ष्मण! हा हमारी प्यारी सासु कौशल्याजी हा सुमित्रे! ॥ ११ ॥ पंडितोंकी नियतकी हुई यह कहावत

सत्यहै कि स्त्री हो या पुरुषहो, अकालमें सबकोही मृत्यु दुर्लभहै ॥ १२ ॥ जो ऐसा न होता तो क्या हम श्रीरामचंद्रजीके विना, इन सब राक्षसियोंसे सताई जाकर एक निमेष मात्रभी जीवन धारण कर सकतीं ॥ १३ ॥ हमारा पुण्य बहुत थोड़ाहै; समुद्रके मध्यमें वायुके वेगसे टकरा कर बोझसे भरी नाव जिस प्रकार डूब जातीहै, वैसेही हमको दीना हीना और अनाथाकी समान अपना जीवन गँवाना पड़ा ॥ १४ ॥ एकतो हम अपने प्राणप्यारे पतिको नहीं देखती और दूसरे राक्षसियोंके वशमें पड़ीहैं। इसलिये हमको जलके वेगसे टूटते हुए नदीके किनारेकी समान शोक संतापसे टकराना पड़ाहै ॥ १५ ॥ वह हमारे कमल दल नेत्र सत्य-वादी कृतज्ञ प्राणनाथ, सिंहकी समान विक्रमसे गमन करतेहैं जो उनके दर्शन करते होंगे वही धन्यहैं? ॥ १६ ॥ तेज विष खाय कर जीवित रहना जिस प्रकार असंभवहै; वैसेही उन यशवान आत्माके जाननेवाले श्री-रामचंद्रजीके विरहमें हमारा जीनाभी नहीं हो सकता ॥ १७ ॥ न जानें पहले जन्ममें हमनें कौन पाप कियेथे कि जिनका घोर महा दुःख अब हम भोग रहीं हैं ॥ १८ ॥ इसलिये बड़े भारी शोकमें पड़ हम अपने जीवनको त्याग करना चाहतीहैं परन्तु किस तरह शरीर छोड़ें; क्योंकि यह राक्ष सियें चारों ओरसे हमको रखातीहैं, जीवनभी नहीं छुटता, और प्राण प्यारे रामचंद्रजीभी नहीं मिलते ॥ १९ ॥

धिगस्तुखलुमानुष्यंधिगस्तुपरवश्यताम् ॥
नशक्यंतत्परित्यक्तुमात्मच्छेदेनजीवितम् ॥ २०

पराये वशमें पड़े हुए मनुष्य जन्मको धिक्कारहै; क्योंकि अपनी इच्छा होंने परभी पराधीनताके वशहो मनुष्य अपने जीवनको त्याग नहीं कर सकता ॥ २० ॥ ❋ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दर काण्डे पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥

❋ श्रीरघुनंदन लेहु उबारी॥ महा विपत शंकटमें रोवै यह दासी मन वचन तुम्हारी॥ १ ॥प्राणा-धार न क्यों सुधलेते पतित उधारन विरद विचारी ॥ २ ॥ जिमि खर दूषणको संहारो जैसे गौतम नारि उधारी ॥ ३ ॥ जैसे कठिन महा धनु तोरयो सकल जगत कीरति विस्तारी ॥ ४ ॥ मिश्रताहि विधि आन छुड़ाओ कृपासिंधु गुणधाम खरारी ॥ ५ ॥

षड्विंशःसर्गः

प्रसक्ताश्रुमुखीत्वेवंब्रुवतीजनकात्मजा ॥
अधोगतमुखीबालाविलक्षमुपचक्रमे ॥ १ ॥

यह वचन कहते २ जानकीजीका वदन मंडल आंसुओंके जलसे गीला होगया, वह बाला नीचेको मुखकर फिर विलाप करनेंलगीं ॥ १ ॥ जानकीजी, बोझ उतारनेंसे पृथ्वीपर लोटतीहुई घोड़ीकी समान भूमिमें गिर और लोट २ कर विलाप करनेंलगीं, उससमय भूत लगेकी समान, उन्मत्तकी समान, और पित्तके उभड़ आनेंसे प्रमत्त और भ्रान्त चित्तकी समान जानकीजी जान पड़नें लगीं ॥ २ ॥ जानकीजी विलाप करती हुई बोलीं कि हम श्रीरामचंद्रजीकी स्त्रीहैं, कामरूपी राक्षसमारीच श्रीरामचंद्रजीको मायासे मोहितकर जब आश्रमसे दूर लेगयाथा, तब उसअवसरमें रावण शूनें आश्रममें प्रवेशकर बल सहित हरण करके हमको यहां लेआयाहै, उससमय हम बड़े शब्दसे कितनी रोईं ॥ ३ ॥ इस समय हम राक्षसियोंके वशमें पड़ीहैं, यह सब हमारा महा कठोर अपमान करतीहैं। हम बड़ेही दुःखको पाय व्याकुलहो शोकमें डूबगई हैं;इस कारण अब जीवित रहनेंकी हमारी कामना नहीं है ॥ ४ ॥ जबकि हम महारथी श्रीरामचंद्रजीके विना राक्षसियोंके बीचमें वसतीहैं, तब धन, भूषण, और जीवनसे हमको क्या प्रयोजनहै? ॥ ५ ॥ निश्चय जान पड़ताहै कि हमारा हृदय पत्थरकी समान कठिन या अजर अमरहै; इसी कारणसे इतना दुःख पायकरभी नहीं फट जाता ॥ ६ ॥ जबकि हम उन श्रीरामचंद्रजीके विना एक मुहूर्त्तभी जीवन धारण करनेंको समर्थ हुई हैं;तब हमारा जीवन पापसे पूर्णहै व अनार्या और सत्य रहित हमको धिक्कारहै ॥ ७ ॥ निशाचर रावणकी कामना करनी तौ एक ओर रही हम तौ उसको अपनें वायें चरणसेभी न छुयेंगी ॥ ८ ॥ वह दुरात्मा निशाचर काम मोहसे मोहित होनेके कारण नहीं जानताकि हमनें वारंवार उसका निरादर कियाहै। जो अपने कुल और अपने स्वरूपको नहीं जानता; वह अपने कुटिल स्वभावके वशहो हमारे प्राप्त होनेकी इच्छा करताहै ॥ ९ ॥ तुम लोगोंके निकट अधिक वृथा कहनेंका प्रयोज-

न नहींहै; तुम सब हमको टुकड़े२ कर डालो, विदीर्ण कर डालो, अथवा अग्निके तापसे तपाओ, या अग्निमें भस्म कर दो; तथापि हम रावणकी भजना नहीं करेंगी ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी विज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, और सत स्वभावी विख्यातहैं, तथापि वह जो निर्दयी हुये हैं, सो यह केवल हमारे ही भाग्यका दोष जान पड़ताहै ॥ ११ ॥ जिन्होंने अकेलेही जनस्थानमें चौदह हजार राक्षसोंका विनाश कर दियाहै, वह क्या यहांसे हमारा उद्धार नहीं करेंगे॥ १२ ॥ "अल्पवीर्य रावणनें हमको रोकतौ रक्खाहै, परन्तु हमारे स्वामी निश्चयही उस रावणको संग्राममें संहार कर डालेंगे, जिन्होंनें दंडकारण्यमें राक्षस प्रधान विराधको मार डालाहै; वह श्रीरामचंद्रजी क्या हमको प्राप्त करनेमें समर्थ न होंगे? "यद्यपि लंका समुद्रके मध्यमें होनेसे और लोगों करकै जीतनेंके अयोग्यहै; परन्तु इस स्थानमें श्रीरामचंद्रजीके बाणोंकी गति नहीं रुक सकैगी ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजी दृढ़ पराक्रमवानहैं और हमभी उनकी अनुकूल भार्या हैं; तथापि वह श्रीरामचंद्रजी अबतक हमारा उद्धार नहीं करते। इसका कारण क्या है? ॥ १४ ॥ हम जानतीहैं कि हमारा इस स्थानमें रहना अभीतक लक्ष्मणजीके बड़े भाईने नहीं जानाहै, जो उन्होंनें जान लिया होता तौ क्या वह तेजस्वी हमारी दुर्दशा और अपमान क्यों सहते? कभी नहीं ॥ १५ ॥ उस गृध्रराज जटायुकोभी रावणनें संग्राममें मार डाला, कि जो हमारे हरण करनेंका समाचार श्रीरामचंद्रजीको देसकते ॥ १६ ॥ जटायुनें बड़ाभारी कार्य कियाथा; वह वृद्ध होनें परभी हमारे प्रति अनुग्रह करकै रावणका वध करनेंके लिये तैयार हुएथे ॥ १७ ॥ यदि श्रीरामचंद्रजी यह जान लेंकि हम इस स्थानमें रोकी हुईहैं; तौ वह उसी समय बाणसे पृथ्वीको राक्षस रहित कर देते ॥ १८ ॥ लंकापुरीको भस्म कर डालते; महा समुद्रकोभी सुखाय देते; बरन नीचाशय रावणका नाम उसकी कीर्त्तिके साथ नाश करते ॥ १९ ॥ इसमें कुछ सन्देह नहींकि जब श्रीरामचंद्रजी ऐसा करते तो नाथहीन राक्षसियोंके घर २ में रोनेका ऐसा शब्द होताकि जिस प्रकार हम रोया करतीहैं ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी ढूंढते भालते लक्ष्मणजीके साथ लंकाको अवश्यही इस प्रकारका करेंगे। जब वह दोनों जन देख लेंगे तब उनका शत्रु एक मुहूर्त्तभी जीता न

बचैगा ॥२१॥ बहुत जल्दी इमशान भूमिकी समान लंका इमशान हो जायगी; लंकाके सब मार्गोंमें चिता धूम उड़ैगा, और गृध्रोंके झुन्डके झुन्ड लंका पर गिरेंगे ॥ २२ ॥ हमारा यह मनोरथ बहुत शीघ्र सफल होगा, हमारे यह वचन इस समय तुम लोगोंको विपरीत तो लगतेही होंगे, परन्तु याद रक्खोकि यही तुम्हारे अशुभ चिह्नहैं ॥ २३ ॥ विशेष करके देखा जाताहैकि लंकामें जिस प्रकारके अशुभ चिह्न दृष्टि आतेहैं इस्से स्पष्ट जान पड़ताहै कि लंका शीघ्रही श्रीहीन होगी ॥ २४ ॥ निश्चयही पाप परायण राक्षसराज रावणके मरनेंपर आक्रमण करनेंके अयोग्य यह लंका विधवा स्त्रीके समान श्रीहीन हो जायगी ॥ २५ ॥ आज जो लंका नगरी विविध भांतिके पुण्योत्सवोंसे परिपूर्ण हो रहीहै, यही लंका रावण और राक्षसोंके मरनें पर पतिहीन स्त्रीकी समान नष्ट हो जायगी॥२६॥ निश्चयही हम बहुत जल्दी राक्षस कन्या गणोंके दुःखसे आरत होकर रोदन करना घर घरमें सुनेंगी ॥ २७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके सायकोंसे राक्षस श्रेष्ठोंके मारे जानें पर यह लंका प्रकाश रहित व अंधकारमय होकर भस्म हो जायगी ॥ २८ ॥ अरुणलोचन भक्तभयमोचन श्रीरामचंद्रजी जिस दिन जानेंगे कि हम राक्षसके गृहमें पड़ीहैं, उसी दिन लंका नगरीकी यह दशा हो जायगी ॥ २९ ॥ निर्लज्ज निशाचर रावणनें जो द्वादश मासका समय नियत कियाथा, वह नियत समय अब आन पहुँचाहै, हम जानतीहैं कि इस समयमें हमारी दुर्दशा नहीं वरन लंकाकी दुर्दशा होगी ॥३०॥ दुष्टमति रावणनें हमारे संहार करनेंका यह समय स्थिर कियाहै, पापचारी राक्षसोंको अकार्यका कुछ ज्ञान नहीं ॥ ३१ ॥ अधर्मके हेतु इस समय महा उत्पात उपस्थित होगा माँस खानेवाले राक्षस नहीं जानते कि धर्म किसको कहतेहैं ॥ ३२ ॥ राक्षस रावण निश्चयही हमको खंड२कराय कर अपने प्रातःकालीन भोजनके लिये पाक करावेगा हाय! प्रिय दर्शन श्रीरामचंद्रजी हमारे निकट नहींहैं अब हम कौन उपाय करें।३३॥ आज यदि इस स्थानमें कोई हमको विष देसके, तो हम अपने अरुण नयन पतिके अदर्शनसे उसको खाय यमराजकेनिकट चलीं जाय॥३४॥विना श्रीरामचन्द्रजीके देखे हुए हम बहुतही दुःखित हो रहीहैं;इस अवस्थाको भोगतीहुई हम जीरहीहैं, यह बात भरतजीके बड़ेभाई श्रीरामचन्द्रजी

की जानीहुई नहींहै जो वह जानते कि हम अभीतक जीतीहैं तौ राम लक्ष्मण अवश्यही पृथ्वीपर हमारा खोज करते ॥ ३५ ॥ अथवा वह लक्ष्मणजीके बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजी हमारेही शोकसे व्याकुलहो पृथ्वीपर देह छोड इस लोकसे देवलोकमें चले गये होंगे ॥ ३६ ॥ देव गन्धर्व सिद्ध और महर्षि गणही धन्यहैं, कि जो हमारे प्यारे वीर राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन देवलोकमें करतें होंगे? ॥ ३७ ॥ अथवा श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्मज्ञानी और जीवनमुक्तहैं, राजर्षि, व निवृत्तिधर्ममें निरतहैं, इस लिये भार्यामें उनका क्या प्रयोजनहै ? कुछभी नहीं ॥ ३८ ॥ क्योंकि जो कोई आँखोंके सामने रहताहै उसमेंही प्रीति उत्पन्न होतीहै; और फिर जब वह पदार्थ दृष्टिसे बाहर होजाताहै फिर प्रीति और सुहृदता कहां ? नहीं ! नहीं ! कृतघ्न लोकही प्रेमको छोड सकतेहैं; हमारे प्राणनाथ तो प्रेमको कभी नहीं भुलाय सकेंगे ॥ ३९ ॥ अथवा हममेंही कोई दोष होगा; या हमारे सौभाग्यका अंत होगया; बस इसीलिये नारी सीतासे श्रेष्ठ पदार्थोंके ग्रहण करनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीका वियोग हुआ ॥ ४० ॥ श्रेष्ठ चरित्र वरन, महावीर, शत्रुओंके मारनें वाले महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे जब कि हमारा वियोग हुआ; तब तौ इस जीवनसे हमारा मरनाही अच्छाहै ॥ ४१ ॥ अथवा कौन जानेंकि पुरुषश्रेष्ठ राम लक्ष्मण दोनों भ्राता अस्त्र शस्त्र त्याग फल मूलाहारीहो, मुनियोंकीसी वृत्ति ले वनोंमें घूमते हों ? ॥ ४२ ॥ अथवा दुरात्मा राक्षस राज रावणनें छल करकै शूरवीर श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको मार डालाहो ॥ ४३ ॥ इस कष्टके समयमें हम अपने पूरे अंतःकरणसे मरनेंकी इच्छा करतीहैं । परंतु इस न सहने योग्य दुःखके समय विधाताभी हमारे लिये मृत्यु नहींदेते ॥ ४४ ॥ परन्तु वह ब्रह्मध्यान परायण सत्य सम्मत मुनिलोगही धन्यहैं ! कि जो लोग आत्माको जीत लेतेहैं, वे महा भाग्यहैं; और न जिनका कोई प्यारा न कुप्याराहै ॥ ४५ ॥ जिनको अपने प्यारेका दुःख कभी होताही नहीं; और न कुप्यारेसे उत्पन्न हुए महा दुःखका संताप होताहै वरन जो प्रिय अप्रियसे एकवारही छूटे हुयेहैं; उन महात्मा लोगोंको हम नमस्कार करतीहैं ॥ ४६ ॥

साहंत्यक्ताप्रियेणैवरामेणविदितात्मना ॥
प्राणांस्त्यक्ष्यामिपापस्यरावणस्यगतावशम् ॥ ४७ ॥

जो कुछभी हो आत्मज्ञ और प्यारे श्रीरामचंद्रजीनेही जब हमको त्याग करदिया तब पापी रावणके वशमें पडी हुई हम संतोष करके मरही जायँगी ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥

इत्युक्ताःसीतयाघोरंराक्षस्यःक्रोधमूर्छिताः ॥
काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुंरावणस्यदुरात्मनः ॥ १ ॥

जब क्रोधमें भरी हुई सीताजीने इस प्रकारके भयंकर वचन कहे तब कई एक राक्षसियां क्रोधसे मूर्छित हो दुरात्मा रावणको यह समाचार सुनानेके लिये गई ॥ १ ॥ और बहुत सारी भयंकर रूपवाली राक्षसियें सीताजीके निकट आयकर फिर अनर्थकारी कठोर वचन उनसे कहनें लगीं॥२॥ उन्होनें कहा रे अनार्ये पापनिश्चये सीते! आज इसी समय यह सब राक्षसियें तुम्हारा मांस सुखसे खायकर तृप्त होंगी ॥ ३ ॥ इन सब दया रहित राक्षसियोंको सीताजीके प्रति तर्जन गर्जन करते देखकर त्रिजटा नामक एक वृद्ध निशाचरी सोतेसे जागी और उन निशाचरियोंसे बोली॥४॥ हेदुष्टो! तुम अपने आप अपनेको खाओ। तुम लोग जनकजीकी कन्या और दशरथजीकी प्यारी पुत्रवधू सीताजीको नहीं खानें पाओगी ॥ ५ ॥ आज हमने अति दारुण रोमहर्षणकारी बडा बुरा स्वप्न देखाहै कि जिसमें राक्षस कुलके नाश और इनके स्वामीकी विजय सूचना होतीहै ॥ ६ ॥ मारे क्रोधके मूर्छित हो सब राक्षसियें त्रिजटाकी यह बात सुन डरके मारे थरथराय सबकी सब त्रिजटासे बोलीं कि तुमनें क्या स्वप्ना देखाहै ॥ ७ ॥ इन सब राक्षसियोंके मुखसे निकलेहुये यह वचन सुनकर त्रिजटा इस प्रभात कालीन स्वप्नका वृत्तान्त कहनें लगी॥८॥त्रिजटानें स्वप्नमें जो वृत्तान्त देखा था वह कहनें लगीकि मानों हाथीदांतसे बनी आकाश मंडलमें उड़ती दिव्य शिबिका॥९॥ जिसमें हजारघोडे जुतरहे उसपर श्वेतपुष्पोंकी माला और

श्वेतही वस्त्र धारण किये श्रीरामचंद्रजी आरोहणकर अपने भाई लक्ष्मणजीके साथ यहां आयेहैं॥१०॥और हमनें स्वप्नमें यह भी देखाकि श्वेत वस्त्र धारण किये क्षीर सागरसे घेरे हुए श्वेत पर्वतपै श्रीजानकीजी बैठी हुई हैं ॥११॥ श्रीरामचंद्रजीके संग मिलकर सीता सूर्यकी प्रभाके समान शोभित हुई। फिर श्रीरामचंद्रजीको मानो चौदंते बड़े भारी हाथी पर चढे हुए देखाहै१२॥ उस पर्वताकार हाथी पर चढे श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके सहित शोभायमान होरहे हैं फिर सूर्यकी समान प्रकाशित और अपने तेजसे दीप्तिमान ॥१३॥ श्वेतमाला और श्वेतही वस्त्र धारण किये हुए श्रीरामलक्ष्मण दोनों जने मानों सीताके निकट आये फिर उस आकाशमें अवस्थित किये पर्वताकार हाथी के॥१४॥कन्धेपर श्रीसीताजीनें आरोहण कियाहै और उस गजको इनके पति श्रीरामचंद्रजी पकडे हुएहैं तदनन्तर अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीकी गोदीसे उछल कमल दल नेत्रवाली जानकीजीको हमने निहारा तो॥१५॥ सूर्य और चंद्रमाको अपने दोनों हाथोंसे परिष्कार (साफ) कर रही- हैं ॥ १६ ॥ तिसके पीछे उन दोनों कुमारोंको यह श्रेष्ठ गज. विशाल नेत्रवाली सीताजीके साथ अपनी पीठपर चढ़ाकर लंकाके ऊपर भागमें आय पहुँचा। फिर श्रेष्ठ आठ बैल जुड़े हुए रथपर सवारहो ॥ १७॥ शु- क्ल माला और श्वेत वस्त्र पहरे लक्ष्मणजीके साथ सत्य पराक्रम वान श्रीरामचंद्रजीको हमनें स्थानपर आये हुए देखा ॥ १८॥ वीर्यवान श्रीरा- मचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित सूर्यसमान दिव्यविमा- न पुष्पकपर चढ़े हुए॥१९॥ वह पुरुषोत्तम उत्तर दिशाकी ओर चले गये और स्वप्नमें हमनें रावणकोभी देखाकि वह केश मुड़ाये तेल शरीरमें लगाये ॥ २० ॥ लाल कपड़े पहरे, मदिरा पान करकै मतवाला होगयाहै॥ और करवीरके पुष्पोंकी माला पहरे हुए पुष्पकविमानसे मानों नीचेगिर पड़ाहै ॥ २१ ॥ फिर हमनें देखाहै कि मानो मुन्डित केश रावण अतिका- ले वस्त्र धारण किये गधे जुते हुए रथपर चढ़ा लाल चंदन लगाये. स्त्रीसे खैंचाजाताहै ॥ २२ ॥ तेल पान करते, हँसते २ भ्रान्त चित्त होनेसे व्याकु- लेन्द्रियहो गधोंपर चढ़े दक्षिण दिशाको जातेहैं ॥ २३ ॥ फिर हमनें राक्षसोंके स्वामी रावणको देखाकि मानो वह उन गधोंसे नीचे मुखकर भयके मारे मूर्च्छितहो भूमिपर गिर पड़ेहैं ॥ २४ ॥ इसके पीछे मानो यह

रावण बड़ी शीघ्रतासे उठकर चलायमान, भयसे चकित और नंगे होकर मतवालेकी समान मुखसे अनेक दुर्वचन निकालते ॥ २५ ॥ अति शीघ्र दुर्गन्धमय, सहनेंके अयोग्य घोर अंधकारसे ढके नरककी समान विष्ठाकी कीचड़में गिरकर डूबगये ॥ २६ ॥ फिर दक्षिण दिशाकी ओर गमन कर-कें जल कीचड़से रहित एक कुंडमें रावण गिर पड़े, लाल कपड़े पहरे हुए एक स्त्रीने उस कुंडमें गर्दन पकड़कर रावणको गिरायाहै ॥ २७ ॥ फिर उसमेंसेभी कीचड़ अंगोंमें लगाये एक काली स्त्रीको दक्षिण दिशाकी ओर रावणको खेंचते हुए देखा; और यही दशा हमनें महा बलवान कुंभ-कर्णकीभी देखी ॥ २८ ॥ और हमनें रावणके पुत्रोंको शिर मुँड़ाये, सब शरीरमें तेल लगाये हुए देखाहै । रावण सुअरपर, इन्द्रजीत, शिशु-मारपर ॥ २९ ॥ और कुंभकर्ण ऊंटपर चढ़ा यह सब दक्षिण दिशाको चले जातेहैं । केवल इकले विभीषणको श्वेत छत्र शोभित होकर चार मंत्रियोंके साथ आकाश मार्गमें घूमते हुए देखा ॥ ३० ॥ और उनकी ब-ड़ी भारी सभामें गीत औ बाजेका शब्द होरहाहै, सबही राक्षस मानों लंकामें लाल माला धारण किये और लालही वस्त्र पहरे, लाल मदको पीर हेथे ॥ ३१ ॥ इसी समयमें लंकाकी बाहर दिवारियें और फाटक ध्वजा आदि टूटकर भहराय पड़े. मनोहारिणी लंका नगरी अश्व, रथ, और गज गणोंके सहित मानो समुद्रमें डूबगई ॥ ३२ ॥ औरभी देखाहै कि लंगा नगरी धूल उड़नेंके कारण सूखी होगईहै, और राक्षसोंकी सब स्त्रियें तेल पी प्रमत्तहो, महा चिल्लाहट और हँसी कर रहीहैं ॥ ३३ ॥ कुम्भकर्णा-दि वीर राक्षसोंकी सब स्त्रियें लालवर्णके निन्दनीय कपड़े पहरे गोबरके कुंडमें प्रवेश करतीहैं ॥ ३४ ॥ इसलिये दूर भाग जाओ देखोगी कि अब श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही सीताजीको प्राप्त करेंगे वह महाक्रोधितहो राक्षस गणोंके साथ तुम सबकोभी मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ भवन वासकी सहेली सीताजी उनको परम प्यारी और आदरमानकी रानीहैं; उनको पीड़ा दे-ना, या तुम्हारा सताना श्रीरामचंद्रजी कभी नही सहेंगे ॥ ३६ ॥ इसलिये निष्ठुर वचन कहनेंसे कुछ प्रयोजन नहीं; प्रेम सहित समझाओ, आओ सब मिल विदेहकुमारी श्रीजानकीजीसे अनु-ग्रहकी प्रार्थना करें, हमारी तो यही इच्छा है ॥ ३७ ॥

जिन जानकीजीकी ऐसी अवस्थाहै, और हमनें दुःखिता इनके विषयमें ऐसा स्वप्न देखाहै, तब यह शीघ्रही सर्व दुःखसे छूटकर अपने स्वामी श्रेष्ठ को प्राप्त करेंगी ॥ ३८ ॥ हे राक्षसीगण! तुमनें जानकीजीको वचनोंसे बहुत पीड़ादीहै; सो अबभी तुम इनके अनुग्रहकी प्रार्थना करो, अब कठोर वचन कहनेंका कुछ प्रयोजन नहीं है, निश्चयही श्रीरामचंद्रजीसे राक्षस गणोंको महाभय आय पहुँचाहै ॥ ३९ ॥ जनककुमारी सीताजी यदि प्रणाम करनेंसे प्रसन्न होजांय, तौ अवश्यही तुम सबको यह महा भयसे उद्धार करेंगी ॥ ४० ॥ इन विशालनयनी जानकीजीके शरीरमें हम जराभी कोई अलक्षण नहीं देखती केवल इनकी कांति मलीन होनेसे भी जानाजाताहै कि यह दुःखमें पतित हुई हैं ॥ ४१ ॥ यह देवीजी दुःख पानेंके अयोग्यहैं; हमनें स्वप्नमें भी देखाहै कि यह आकाशमें टिकी हुई हैं ॥ ४२ ॥ हम विदेह कुमारी सीताजीके कार्यकी सिद्धि, राक्षस राज रावणका विनाश और श्रीरामचंद्रजीकी विजय सामने ही आई देखती हैं ॥ ४३ ॥ यह देखो बड़े भारी कार्यसिद्धिकी सूचना करनेंके लिये, जानकीजीके कमल दलकी समान बड़े २ नेत्र फड़कतेहैं ॥ ४४ ॥ श्रीजानकीजीकी वाम भुजाभी अकस्मात् हर्षित होकर कंपायमान होरही है ॥ ४५ ॥ और हाथीकी शुन्डके समान अति श्रेष्ठ वाम जांघभी इनकी कंपायमान होकर मानो यह कह रहीहै कि श्रीरामचंद्रजी इनके सामने आयगये ॥ ४६ ॥ और काकादि पक्षी गण शाखामें बने हुए घोंसलोंके मध्यमें वार २ प्रवेशित होकर हर्षित भावसे सुन्दर मधुर शोर करके वार २ सुख प्राप्तिकी सूचना करतेहैं ॥ ४७ ॥

ततःसाह्रीमतीबालाभर्तुर्विजयहर्षिता ॥
अवोचद्यदितत्तथ्यंभवेयंशरणंहिवः ॥ ४८ ॥

इसके पीछे वह लज्जा शीला बाला जानकीजी अपने स्वामीकी विजय जान हर्षित होकर बोलीं, कि यदि यह वचन सत्य हुआ तौ हम तुम लोगोंकी रक्षा करेंगी ॥ ४८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०सुं०सप्तविंशःसर्गः॥२०॥

अष्टाविंशःसर्गः ॥

साराक्षसेंद्रस्यवचोनिशम्यतद्रावणस्या

प्रियमप्रियार्ता ॥ सीतावितत्रासयथा
वनांतेसिंहाविपन्नागजराजकन्या ॥ १ ॥

त्रिजटाके ऐसे वचन सुनकर भी जभी शोकसे संतापित सीताजीको रावणके अप्रिय वचनोंकी याद आई कि वह वनमें सिंहसे घिरी हुई गज राजकन्याकी समान डरीं ॥ १ ॥ एकतौ रावणके कहे हुए दुर्वचनोंसे अपमानित तिसपर राक्षसियोंके मध्यमें घिर कर भीरु जानकीजी, विजन वनमें छोड़ी हुई कन्याके समान विलाप करनें लगीं ॥ २ ॥ पंडितलोग जो कहा करतेहैं, कि संसारमें अकाल मृत्यु नहीं होती, यह वात सत्य है यदि ऐसा न होतातौ इस प्रकारसे महाधिकारी जाकरभी क्या हम पापिनी एक क्षणभी जीवित रह सकतीं ॥ ३ ॥ निश्चय जान पड़ताहै कि सुख विहीन और बहु दुःख पूर्ण हमारा हृदय अजर अमरहै जो ऐसा न होता तौ वज्रसे चोट खाये हुए पर्वतके शृङ्गकी समान यह हजार टुकड़े क्यों नहीं होजाता ? ॥ ४ ॥ प्राण त्याग करनेके विषय में तो हमारा कोई दोष नहीं है; क्योंकि हम इस अप्रिय दर्शन रावण करके रोकी हुईहैं, ब्राह्मण जिस प्रकार शूद्रको वेद मंत्रका दान नहीं कर सकता वैसेही हमभी रावणको मन प्राण दान करनें में असमर्थहैं ॥ ५ ॥ वह जगन्नाथ श्रीरामचन्द्रजी यदि रावणके नियत किये हुये समयके मध्य, अर्थात् दो महीनेंमें न आँजायगे, तौ जैसे शस्त्रचिकित्सक गर्भके बालकको गर्भकी दशामेंही काट डालताहै, अनार्य रावण वैसेही थोडेही दिनोंमें बाणोंसे हमारे समस्त अंगोंको काट डालेगा ॥ ६ ॥ एक तौ हम स्वामीके विना दुःखसे व्याकुलहैं; तिसपर वधकी पीडा निश्चयही हमको भोगनी पड़ैगी; क्योंकि दो महीनें तौ बडी जलदी वीत जांयगे, दो महीनें वीतनेंके पीछे, जिस प्रकार राजाकी आज्ञासे कारागारमें पडे तस्करको रात्रि वीतनें पर प्राण दंड मिलताहै; वैसेही हमें प्राण दंड होगा॥ ७ ॥ हा राम ! हा लक्ष्मण ! हासुमित्रे ! हा रामजननी गण ! हा हमारी जननीगण देखो,हम मंद भाग्यवाली, महा समुद्रके मध्यमें पवन वेगसे भरी नौकाकी समान, इस विपदमें पडीहैं॥८॥निश्चयही वज्र सदृश तेजवाले राक्षसनें मृग रूप धारण करके हमारे लिये सिंह सम पराक्रमी दो बलवान राजपुत्रोंको

मारडाला ॥९॥ मृगरूप धारी उस कालनें तत्काल अवश्यही हमारे ज्ञान-को लोपकर दियाथा; इसीलिये हम मूढ़बुद्धिवालीनें आर्य पुत्र श्रीराम-चन्द्र व लक्ष्मणजी दोनोंको मृगके पीछे भेज दिया ॥ १० ॥ हा राम! हा सत्यव्रत! हा दीर्घबाहो! हा पूर्ण चन्द्रकी समान मुखवाले! हा जीव लोकके हित और प्रिय साधन कारी! तुम नहीं जानते कि हम राक्षसोंके वध योग्य हुई हैं ॥ ११ ॥ हम जो पतिके सिवाय और देवताको नहींजान तीं, शाप दान करनेंमें समर्थ होनेंपरभी हमें जो क्षमाहै, भूमिमें जो हम शयन करतीहैं; धर्म नियम का प्रतिपालन करती हैं और हमारा पतिव्रत धर्म इत्यादि, क्या सबही कृतघ्न पुरुषका उपकार करनेंकी समान निष्फ-ल होगये ॥ १२ ॥ हम तुम्हारे वियोगके वश मिलनें हताशाहो अति कृ-शतनु और विवर्ण होगई हैं; तथापि अबतकभी जो हमनें तुम्हारे दर्शन नहीं पाये, तब हमारे यह धर्मके आचरण और पातिव्रत्य सबही धर्म वृथा होगये ॥ १३ ॥ प्यारे! हमको जान पडताहै कि तुम नियमानुसार पि-ताजीकी आज्ञाके पालनेंका व्रत समाप्तकर वनसे लौट, निर्भय और कृत कार्य होकर बडी २ स्त्रियोंके साथ आनंदसे विहार करते होंगे ॥ १४ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी हमनें अपना विनाश करनेंहीके लिये तुम्हारा अ-भिलाष किया,और तुमसे प्रेम लगाया, हमारा व्रत तप दोनों विफल होगये इसलिये हम अल्प भाग्यवालीके जीवनको धिक्कारहै; इस जीवनसे अब क्या प्रयोजन है॥ १५ ॥ विष या तीखे शस्त्रकी सहायतासे हम शीघ्रही, प्राण त्याग करनेंकी इच्छा करतीहैं, परन्तु राक्षसके गृहमें ऐसा कोई नहीं है जो हमको विष या शस्त्र दानकरे ॥ १६ ॥ अपने पूर्ण अंतःकरणसे श्रीरामचन्द्रकाही स्मरण करती सीतादेवीजी अनेक प्रकारके विलाप करके शुष्क वदनसे कंपित होते २ फूले हुये वृक्षश्रेष्ठके निकट पहुँचीं। शोकसे तापित हुई सीताजीनें अनेक प्रकारकी चिंता करके अपनी बँधी हुई वेणी हाथमें ली, और यह विचार किया कि इस वेणीके गुहे हुए डोरों-को गलमें बांध फांसी लगाय यमराजजीके घरको चलीं जांयगी ॥ १७ ॥ यह विचार कर कोमलाङ्गी सीताजी उस वृक्षकी जड़के निकट उप स्थित होकर; व इस पेड़की एक डालको फांसी लगानेंके लिये पकड़ वह

सुंदर अंगवाली अपने और श्रीरामचंद्रजीके वंशकी मर्यादाका विचार करनें लगीं ॥ १८ ॥

तस्याविशोकानिसदाबहूनिधैर्यार्जितानि प्रवराणिलोके ॥ प्रादुर्निमित्तानितदाब भूवुःपुरापिसिद्धान्युपलक्षितानि ॥ १९ ॥

उससमय लावण्यतायुक्त सीताजीके अंगोंमें,शोक नाशकारी धीरज धारण करानेंवाले होनहार समाचारकी सूचना देनेंवाले विविध भांतिके लोक प्रसिद्ध शुभ चिह्न उत्पन्न होनें लगे ॥ १९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० सुं० अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोत्रिंशःसर्गः ॥

तथागतांतांव्यथितामनिंदितांव्यतीतहर्षां परिदीनमानसाम् ॥ शुभांनिमित्तानिशुभा निभेजिरेनरंश्रियाजुष्टमिवोपसेविनः ॥ १ ॥

दुःखित अंतःकरणवाली, हर्षहीन, संतापसे पीड़ित निन्दारहित सीताजी मरनेंको तैयार हो रहीथीं, कि इतनेमें सब शुभ लक्षणोंनें आय सीताजीकी सेवाकी जैसे सेवक लोग धनवान पुरुषकी सेवा किया करतेहैं ॥ १ ॥ उन अच्छे केशवाली सीताजीका चंचल पलकोंके सहित काले तारेसे शोभित विशाल शुक्क वर्ण, लाल कोयेवाला वायां नेत्र मीनसे हिलये हुए कमलकी समान फड़कनें लगा॥ २ ॥उनकी जो मनोहर गोल, सुडौल, मांसल, वांई भुजा बड़े मोलके अगर चंदनसे चर्चित होकर बहुत कालसे अपने श्रेष्ठ प्रीतमका सहारा होतीथी, वह वांई भुजा आज अनेक दिनके पीछे जलदी २ फड़कनें लगी ॥ ३ ॥ एक दूसरेमें मिली हुईसी दोनों जांघोंमें गजराज शुन्डकी समान चढा उतार और गोल सुडौल, बांई जांघनें फड़ककर सूचनादीकि मानों श्रीरामचंद्रजी सन्मुख आही गये ॥ ४ ॥ उपमा रहित नयनवाली दाड़िमके दानेकी समान दांत वाली, सुन्दरांगी जानकीजीका कुछेक मलीन वर्णका वस्त्र शिरसे खसकर नीचे गिर पड़ा ॥ ५ ॥ पवन और तापके लगनेंसे नष्ट हुआ बी-

ज जिस प्रकार वर्षाका जल गिरनेंसे फिर जी जाताहै, वैसेही सीताजी पहलेकहे हुए निमित्त व और दूसरे होनहार लक्षणोंको जानकर हर्ष प्राप्त करती हुई ॥६॥ बिंबाफलकी समान लाल अधरोंसे युक्त सुन्दर नेत्र, सुन्दरी भ्रुकुटि व केशोंके अन्त सहित, चंचल शोभित, श्वेत मोतीकी समान चमकीले दांतोंसे विराजमान सीताजीका वदन मंडल फिर पूर्ण राहुके ग्राससे छूटे हुए चंद्रमाकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ ७ ॥

सावीतशोकाव्यपनीततंद्राशांतज्वराहर्ष
विबुद्धसत्त्वा ॥ अशोभतार्यावदनेनशुक्ले
शीतांशुनारात्रिरिवोदितेन ॥ ८ ॥

सीताजीका शोक दूर हुआ; आलस्य जाता रहा, संतापकी शान्ति होगई और चित्त मारे हर्षके खिलगया। उस समय उनके मुखकी शोभा ऐसी हुई, कि जैसे शुक्लपक्ष वाले चंद्रमाके उदय होंनेंसे रात्रि शोभायमान होरहीहै ॥ ८ ॥ इत्यार्षे श्री मद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः।

हनुमानपिविक्रांतःसर्वंशुश्रावतत्त्वतः ॥
सीतायास्त्रिजटायाश्चराक्षसानांचगर्जितम् ॥ १ ॥

सीताजीका विलाप और त्रिजटाके स्वप्नका वृत्तान्त और राक्षसियोंका गर्जना, धमकाना, डराना विक्रमशाली हनुमानजीनें समस्तही आदिसे अंततक सुना ॥ १ ॥ नन्दनकाननवासिनी सुरसुन्दरीकी समान अशोक वनमें बसतीहुई इन देवी श्रीजानकीजीको देखकर वानरश्रेष्ठ हनुमानजी अनेक चिंता करनें लगे, ॥२॥ हजार२लाख २ करोड़ २वानर चारों ओर जिनकी खोजमें फिरतेहैं, सो यहां उनको हमनें पायाहै ॥ ३ ॥ अबतक तो दूतका कार्य हमनें भली भांतिसेही पूराकियाहै । शत्रुकी शक्ति जाननेंके लिये गुप्त भावसे घूमघाम कर समस्त वृत्तान्त हमनें जानाहै ॥ ४ ॥ मनुष्यकी अपेक्षा राक्षसोंकी धन संपत्तिकी लघुताई व बढ़ोतरी देखी, और इस लंकापुरीकोभी भली भांतिसे उलट पुलट कर देख डाला और राक्षस रावणका प्रभावभी देखा ॥ ५ ॥

इस समय हमें उन अप्रमेय सर्व प्राणियोंके प्रति दयालु, रामचन्द्रजीके दर्शनकी अभिलाषा किये उनकी भार्या सीताजीको समझाना बुझाना उचितहै ॥ ६ ॥ जिन्होंनें इस्से पहले कभी दुःख नहीं देखा; और उसकी-भी कोई आशा नहींहै कि शीघ्रही इसके दुःखके पार होजाय, इसलिये प्रथम हम उन पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली जानकीजीको समझावें बुझावेंगे ॥ ७ ॥ शोकके मारे इन सती सीताजीकी चैतन्यता जाती रहीहै जो हम इनको बिना समझाये बुझाये चले जांयगे, तौ हमारे जानेंमें दोष हो जायगा ॥८॥ जो हम यहांसे इनको बिना समझाये बुझाये चले जायँगे, तौ यशस्विनी राजकुमारी जानकीजी अपने उद्धारका उपाय न देखकर निश्चयही प्राण त्याग करेंगी ॥ ९ ॥ सीताजीके दर्शनकी लालसा लगाये चन्द्रानन, उन महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीनें जिस प्रकार इन्हें समझानेंको कह दियाहै, उसी प्रकारसे हमें उचितहै कि जानकीजीको समझावें॥१०॥ परन्तु क्या इन राक्षसियोंके सामनेही बातें करें सो तौ हो नहीं सक्ता अब हम इस बड़े भारी शंकटमें पड़ेहैं; कि अब क्या करना चाहिये ? ॥ ११ ॥ जो रात्रि बीतनेंके पहलेही हम इनको नहीं समझावेंगे तौ यह निःसंदेह अपने जीवनको फांसी लगाकर त्याग करदेंगी ॥ १२ ॥ जबकि श्रीरामचन्द्रजी हमसे पूछेंगे कि जानकीजीनें हमको क्या कहाहै; तब सुमध्यमा सीताजीसे संभाषण न किये हुए हम उनको क्या उत्तर देंगे ? ॥१३॥ जो सीताजीसे बिना वार्त्ता किये और बिना समाचार लिये हम शीघ्रता पूर्वक यहांसे चले जाँय तौ काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्रजी क्रोध दृष्टिसे हमको भस्मकर डालेंगे ॥ १४ ॥ और जो सीताजीसे बिना संभाषण किये आज हम राजा सुग्रीवके पास जाकर श्रीरामचन्द्रजीके लिये उत्साहितकर उनको यहां लावें, तौ उनका, सेना सहित यहांपर आनाभी वृथा होजायगा, क्योंकि जानकीजी तो पहलेही प्राण त्याग करदेंगी ॥ १५ ॥ हम जरा इन राक्षसियोंकी ओटकाही अवसरचाहते हैं; जैसेही कि अवसर मिलेगा; वैसेही शोकसे संतापित हुई सीताजीको हम धीरे २ समझा बुझादेंगे ॥ १६ ॥ यद्यपि हम इस समय बहुत छोटे और वानर देह धारण किये हुएहैं, तथापि वानर होकरभी मनुष्यकी समान बोली बनाय व्याकरणादिसे शुद्ध वचन कहेंगे ॥ १७ ॥ यदि ब्राह्मणोंकी समान हम

संस्कृत बोलेंगे, तो सीताजी हमको रावण समझकर डर जायँगी ॥ १८॥ इसलिये हमको अवश्यही अर्थ युक्त मनुष्यकी बोली (प्राकृत) बोलना पडेगी, नहीं तौ हम किसी प्रकारसे इन निंदा रहित जानकीजीको न समझा सकैंगे ॥ १९ ॥ पहले राक्षसोंने जानकीजीको त्रासित कियाहै इस लिये हमें वानर देह धारण किये मनुष्यकी समान बात करते सुन कदाचित् जानकीजी औरभी डर जायँगी ॥ २० ॥ हमको दुरात्मा पापरूपी रावण जानकर, मनस्विनी और बड़े २ नेत्रवाली जानकीजी अपना बचाव करनेंके लिये आर्त शब्द न कर उठें ॥ २१ ॥ जब वह एकाएक आर्त्त नादकर उठेंगी तब अनेक अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए यमराजकी समान भयंकर राक्षसियें कोप किये आजायँगी ॥ २२ ॥ तिसके पीछे यह सब महा बलवान् विकट वदनवाली राक्षसियें चारों ओर देख, सब वृत्तान्त जान हमको वध करनें या पकड़ लेनेंके लिये यत्न करेंगी ॥ २३ ॥ तब हमको बड़े २ वृक्षोंकी छोटी२ और बड़ी डालियों,और और स्कंधोंपर दौड़ता हुआ देखकर यह सब राक्षसियें बहुतही डर जांयगी ॥ २४ ॥ वनमें घूमनेंके समय हमारी भयानक मूर्त्तिका दर्शन करकै सब राक्षसियें भ्रमके मारे व्याकुलहो अति विकट शब्द करेंगी॥ २५ ॥ और पीछेसे वह राक्षसियें उन राक्षसोंकोभी पुकारेंगी। जोकि इस अशोकवाटिकाकी रक्षा रावणकी आज्ञासे अतियत्नसहित किया करतेहैं ॥ २६ ॥ तब वे राक्षसलोग उद्विग्नहो शूल, शर, भाला, विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र लेकर अति वेगसे यहां पर आवेंगे ॥ २७ ॥ उस राक्षसबलसे घेरे जाकर जो हम उन समस्तका संहारभी कर डालें, तब भी फिर थकावटके मारे समुद्रके पार न जाय सकेंगे ॥ २८ ॥ अथवा कार्य करनेंमें कुशल राक्षस लोग यदि हमकोही बन्दी कर लेंगे, तौ एक तौ हम बँधुए हुये, और दूसरे जानकीजीभी हमारे आनेंका प्रयोजनभी न जान सकेंगी ॥ २९ ॥ अथवा राक्षस लोग अत्यन्त हिंसाके करनेंवाले होतेहैं सो यदि वह राक्षस जनकसुता जानकी जीको ही मारडालें, तौ श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीव दोनोंका कार्य नष्ट हो जायगा ॥ ३० ॥ हम बँधुए होजांय तौ होजांय; परन्तु एक बातका सोचहै कि हमारे पीछे सीतादेवीजी राक्षसोंसे घिरे हुए सागरसे व्याप्त, मार्गहीन, लांघनेंके अयोग्य,

इस गुप्त स्थानमें वसतीहैं, सो इनके पास इनकी खोज खबर लेनेंको भी फिर कोई नहीं आ सकैगा ॥ ३१ ॥ युद्धमें राक्षस लोग हमको मारही डालें परन्तु हम और किसीको ऐसा नहीं देखते कि हमारे मरनेंके पीछे श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सहायता करें ॥ ३२ ॥ क्योंकि हम ठीक २ अपनें मनमें विचार करतेहैं कि हमारे मरजानें पर कोई वानर ऐसा नहीं है जो शत योजनका विस्तार वाला समुद्र लांवै ॥ ३३ ॥ हम तौ अकेले सरलतासे सहस्र २ लक्ष २ राक्षसोंके मारनेंमें समर्थ हैं, परन्तु इसके पीछे समुद्रके उस पारको नहीं जाय सकेंगे, क्योंकि युद्धसे थकावट बहुत चढ़ जायगी ॥ ३४ ॥ युद्धमें जय पराजय होनेंका कुछ ठीक नहीं इसलिये संदिग्ध कार्यमें प्रवृत्त होनेंके लिये हमारी रुचि नहीं होती हां जो संशय रहित कार्यहो तौ उसको कर भी डालें, कारण कि संशय विहीन कार्यको कौन पुरुष संदेहवाला बतलावेगा ॥ ३५ ॥ इस समय सीताजीके साथ वार्त्तालाप करनेंसे भी दोषहै और विना वार्त्ता कियेभी वैदेहीजीका प्राण जाता है ॥ ३६ ॥ सिद्ध होनेंके निकट पहुँचा कार्य यदि असावधान दूतके पास आजाय, तौ वह देश कालके विरुद्ध होकर सूर्यके उदय होनेपर अंधकार की समान नष्ट हो जाताहै ॥ ३७ ॥ कार्य और अकार्य दोनोंमेंसे स्थिर करके जो कर्त्तव्य विचारा जाय, तौ अपने आपको पंडित माननेंवाले दूतोंके हाथमें पड़कर वह कार्यभी विगड जाताहै ॥ ३८ ॥ क्या करनेंसे कार्यकी हानि नहो; और हमारे वचन जानकीजीभी सुनलें, और उकसावेंभी नहीं और हमारा समुद्रका लां-घनाभी वृथा न जाय ॥ ३९ ॥ क्या करनेंसे सीताजी डर न पाय कर हमारे वचन श्रवण करें, बुद्धिमान हनुमानजीनें इन सब बातोंको भली भांतिसे विचार कर स्थिर किया कि ॥ ४० ॥ क्लेश रहित होकर कार्य करनेंमें श्रीरामचंद्रजीही इनके प्यारे हैं, और उन प्रिय जनोंमेंही इनका चित्त लग रहाहै, इससे एकाएक श्रीरामचंद्रजीका समाचार देकर; इनको घवड़ावें नहीं ॥ ४१ ॥ इक्ष्वाकु वंशियोंमें श्रेष्ठ जितेन्द्रिय श्रीरामचंद्रजीके धर्मयुक्त शुभ वचन आपही आप कहकर ॥ ४२ ॥ मीठी वाणीसे सब वृत्तांत सुनावेंगे जिस प्रकारसे सीताजीको विश्वास आवे, अब हम उसेही सर्व प्रकारसे करतेहैं ॥ ४३ ॥

इतिसबहुविधंमहाप्रभावोजगतिपतेःप्रम
दामवेक्षमाणः ॥ मधुरमवितथंजगादवा
क्यंद्रुमविटपांतरमास्थितोहनूमान् ॥ ४४ ॥

महानुभाव हनुमानजी जगत्नाथ श्रीरामचंद्रजीकी भार्याको निहार इस प्रकारकी अनेक चितायेंकर वृक्ष शाखाके मध्यमें लुकाय कर मधुर वाणी से सत्य वचन कहनेंलगे ॥ ४४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० सुं० त्रिंशःसर्गः ३०॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥

एवंबहुविधांचिंतांचिंतयित्वामहामतिः ॥
संश्रवेमधुरंवाक्यंवैदेह्याव्याजहारह ॥ १ ॥

महामतिवाले हनुमानजी ऐसी अनेक प्रकारकी चितायें कर दूरसे इस प्रकारके मधुर वचन बोले कि जिस्से केवल सीताजीही सुनपावें और कोई नहीं ॥ १ ॥ हनुमानजी कहनें लगेकि दशरथजी नाम एक राजाथे, उन के बहुत सारे रथ, हाथी और घोड़ेथे । और वह पुण्यशील, महाकीर्त्ति और इक्ष्वाकु लोगोंके मध्यमें बड़े विख्यातथे ॥२॥ वह हिंसासे अलग, ऊंचे मनवाले, दयालु, सत्य विक्रम. इक्ष्वाकुराजवंशमें प्रधान और लक्ष्मीके बढ़ानेंवालेथे ॥ ३ ॥ राजलक्षणोंसे युक्त, विपुल श्रीमान्, राजाओंमें श्रेष्ठ, ससागरा पृथ्वीमें विख्यात बन्धुजनोंके सुखदाता और सुखीथे ॥४॥ श्रीरामचंद्रजी नामक उनके एक प्यारे दुलारे बड़े पुत्रथे, पूर्ण चंद्रमाकी समान मुखवाले श्रीरामचंद्रजी ज्ञानी और सब धनुष धारण करनें वालोंमें श्रेष्ठ हुए॥५॥वह श्रीरामचंद्रजी अपने चरित्रकी रक्षा करनें वाले, निजजनों-की रक्षा करनेवाले समस्त जीवोंकी रक्षा करनें वाले,धर्मकी रक्षा करने वाले, और शत्रुगणोंके तपानें वालेथे ॥ ६ ॥ वीर श्रीरामचंद्रजी, सत्यप्रतिज्ञ वृद्ध अपने पिताजीकी आज्ञा पाय भार्या और भ्राताके सहित वनको पठाये गये ॥ ७ ॥ अति घोर भयंकर बनमें शिकार खेलते २ उन्होंने काम रूपी अनेक बलवान राक्षसोंके प्राण निकाले ॥ ८ ॥ जनस्थानके १४००० चौदह हजार राक्षस और खर व दूषणके मरनेंकी वार्ता श्रवण कर रावणनें क्रोधके वशहो इस बातको न सहा और उनकी स्त्रीको हरण

किया ॥ ९ ॥ माया मृगके रूपसे वनमें श्रीरामचंद्रजीके साथ छल करा-
कर उनकी स्त्री जानकीजीका हरण कर लिया सो निन्दा रहित जानकी-
जीको ढूंडते ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजीनें वनमें सुग्रीव वानरके साथ मित्र
ताकी तब परपुरविजयी श्रीरामचंद्रजीनें वालिका संहार कर ॥ ११ ॥
महात्मा सुग्रीवजीको वानरों का राज्य देदिया। उन सुग्रीवजीकी आज्ञासे
कामरूप धारी वानर ॥ १२ ॥ हजार २ करोड़ २ मिलकर सब दिशा
ओंमें खोज करतेहैं, हम सम्पातिके वचनानुसार शत योजनके विस्तार
वाला ॥ १३ ॥ समुद्र उन्हीं विशालाक्षीके हेतु अति वेगसे नांघ कर
आयेहैं, कि जैसे रूप रंगकी, व जिस प्रकारके चिह्नोंसे युक्त उन सीता-
जीको ॥ १४ ॥ हमनें श्रीरामचंद्रजीके मुखसे सुनाथा वैसाही पाया,
वानर श्रेष्ठ हनुमानजी इतना कहकर चुप होरहे ॥ १५ ॥ जानकीजी
भी यह सब वचन सुनकर अतिशय विस्मित हुईं; फिर टेढ़े बालों वाली
सुकेशी जानकीजी भयके मारे वालोंसे ढका हुआ वदन ऊंचा
करकै शिंशपा वृक्षके झांदरोंमेंको देखनें लगीं ॥ १६ ॥ सीताजी हनु-
मान जीकी कथा श्रवण करती, समस्त दिशा विदिशा को देखती एक
मनसे श्रीरामचंद्रजीकी ही चिंता करती हुई अति हर्षित हुई ॥ १७ ॥

सातिर्यगूर्ध्वंचतथाह्यधस्तान्निरीक्षमाणात
मचिंत्यबुद्धिम् ॥ ददर्शपिंगाधिपतेरमात्यं
वातात्मजंसूर्यमिवोदयस्थम् ॥ १८ ॥

उन्होंनें अगल बगल ऊंचे नीचें सब ओर को देखते २ उदय होते
हुए सूर्यकी समान, वानरपति सुग्रीवजीके मंत्री असाधारण बुद्धि
युक्त पवनकुमार हनुमानजीको देखा ॥ १८ ॥ इ०श्रीमद्रा० वा० आ०
सुं०एकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥

ततःशाखांतरेलीनंदृष्ट्वाचलितमानसा ॥
वेष्टितार्जुनवस्त्रंतंविद्युत्संघातपिंगलम् ॥ १ ॥

विजलीकी समान तड़ित वर्ण हरे वसन पहरे हुए हनुमानजी शाखामें

छिपे हुए, बैठेथे इसलिये उनको स्पष्ट न देख पानेंसे सीताजीका मन कुछेक चंचल होगया ॥ १ ॥ उन जानकीजीने अशोककी राशिके समान प्रभायुक्त तपाये हुए सुवर्णकी समान नेत्रवाले प्रियवादी वानर हनुमानजीको देखा ॥ २ ॥ विनीत वदनसे बैठे हुए वानर श्रेष्ठको देखकर सीताजी परम विस्मय युक्त होकर चिन्ता करने लगीं ॥ ३ ॥ अहो ! वानरजातिके मध्यमें यह वानर बडे भयंकर शरीरवाला और बडे दुखःसे देखनेके योग्य है ऐसा विचार श्रीजानकीजी फिर मोहित होगई ॥ ४ ॥ भयसे मोहित और दुःखसे कातरहो भामिनी जानकी जी-हा राम! हालक्ष्मण! कहरकर करुणास्वरसें विलाप करनें लगीं ॥ ५ ॥कहीं राक्षस न जान पावें इसलिये वह धीरे २ रोनें लगीं इसके पीछे जानकीजी वानर श्रेष्ठ हनुमानजीको विनीत भावसे निकट आते देखकर विचारने लगीं कि यह स्वप्न तौ नहीं है॥६॥सीताजीनें शाखामृगोंकी समान मुखवाले पहला कहा हुआ वेश धारण किये बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महत गुण सम्पन्न वानरों में मुख्य पवनकुमार को फिर दूसरी वार देखा ॥ ७ ॥ हनुमान जीको देखकर सीताजी बहुतही डरीं और मृतक तुल्य होगईं फिर कुछ क्षणके पीछे चैतन्यता प्राप्त करके विशाललोचनवाली जानकीजीनें चिंता-कीकि स्वप्नमें वानर देखनेंसे आज हमनें बड़ा बुरा स्वप्न देखा॥८॥वानरका देखना खोटे स्वप्नोंमें गिनाजाता है हम प्रार्थना करतीहैं कि श्रीरामचंद्रजी-का लक्ष्मणका और हमारे पिता जनकजीका मंगल होवे ॥ ९ ॥ उन पूर्ण चंद्रमाकी समान वदन वाले श्रीरामचंद्रजीके विरहमें हम शोक दुःखसे पी-ड़ित होरहीहैं हमारे मनको कुछभी सुख नहीं निद्रा तो कभी आतीही नहीं फिर भला स्वप्न कैसे दीखेगा इसलिये यह स्वप्न नहींहै ॥१०॥हम बराबर अपने मनमें राम२जपती रहती हैं और वचनसे सर्वदा रामही राम नि-कालती हैं और निरन्तर ध्यानके वशहो मनमें जो विचारतीहैं वही श्रवण करतीहैं और श्रवण करनेंके अनुसार देखभी लेतीहैं ॥ ११ ॥ एक मनमें सदा जो उनकी चिन्ताकरती रहतीहैं इसी कारणसे उनका रूप हमारे मनमें उदित होकर हमको पीड़ा पहुँचाताहै इसलिये हम नित्य उनकी ही कथाको सुनती हैं और उनकीही कथा वार्त्ता श्रवण करती व उनकोही देखती हैं ॥ १२ ॥ फिर ऐसा समझ पड़ताहै कि यह वानर मन कल्पितहै

और फिर जो भलीभांति विचार कर देखतीहैं तो यह जाना जाताहै कि मनोरथसे कल्पित हुई वस्तुका तौकोई रूपही नहीं है क्योंकि यहतो स्पष्ट रूप धारण करके हमसे वार्त्ता करताहै ॥ १३ ॥

नमोस्तुवाचस्पतयेसवज्रिणेस्वयंभुवेच्चै
वहुताशनाय ॥ अनेनचोक्तंयदिदंममा
ग्रतोवनौकसातच्चतथास्तुनान्यथा ॥ १४ ॥

बृहस्पतिजीको नमस्कार, शस्त्रधारी इन्द्रजीको नमस्कार, ब्रह्माजीको नमस्कार, और अग्निजीको हमारा नमस्कार; हम प्रणाम करके प्रार्थना करतीहैं कि हमारे सन्मुख जो इस वानरने यह कथा कही, यह सत्यही सत्यहो, मिथ्या नहीं ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥

सोवतीर्यद्रुमात्तस्माद्विद्रुमप्रतिमाननः ॥
विनीतवेषःकृपणःप्रणिपत्योपसृत्यच ॥ १ ॥

मूंगेकी समान लाल मुखवाले पवनकुमार हनुमानजी ऊपरकी शाखासे नीचे की शाखापर उतरकर सीताके दुःखसे दुःखित और विनीत भाव युक्त हो दूरहीसे प्रणामकर ॥ १ ॥ शिर परसे दोनों हाथ जोड़ अति मधुर वाणीसे महा तेजस्वी हनुमानजी श्रीजानकीजीसे बोले ॥ २ ॥ हे कमलनयने ! तुम कौनहो ? तुम सर्वाङ्ग सुन्दरी, मलीन रेशमीन वस्त्र पहरे वृक्षकी शाखा पकड़े हुये क्यों खड़ीहो ? ॥ ३ ॥ कमलपत्रसे जलके गिरनेंकी समान तुम्हारे दोनो नेत्रोंसे शोक जनित आंसुओंकी बूंदें क्यों गिर रहीं हैं ॥ ४ ॥ हे शोभने ! सुर, असुर, नाग, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, और किन्नर, इन सब में तुम कौनहो ? ॥ ५ ॥ हे चारुवदने ! हे सर्वांगसुन्दरी ! तुम रुद्रगण, मरुद्गण या वसु गणोंमेंसे कोई हो; हमतो जानतेहैं कि तुम देवताहो ॥ ६ ॥ क्या तुम ज्योतिर्मय नक्षत्र गणोंमें मुख्य सर्व श्रेष्ठ गणोंमें पहले गिरनेंके योग्य रोहिणीहो ? जो चन्द्रमाके वियोगमें ग्रसित हो स्वर्गसे यहां पर गिरीहो ॥ ७ ॥ " हे कल्याणि ! हे निन्दा रहित लोचनवाली! तुम कौनहो!" हेकाले वर्णके नेत्रोंवाली! क्या तुम कल्याणी

अरुन्धती हो जो कोप और मोहके वश अपनें स्वामी वशिष्ठजीको क्रोधित कराय यहांपर चली आईहो? ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमे! तुम्हारे पुत्र. पिता, स्वामी या भ्राताका क्या नामहै; या इन लोगोंका कुछ अनभल होनेंसेही या इस लोकसे दूसरे लोकमें उनके जानेसे तौ तुम शोक नहीं कर रहीहो, तुम रोय रोय कर लंबे लंबे श्वास ले रही हो, भूमिको स्पर्श कियेहो; और नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीका नाम वारंवार मुखसे उच्चारण कर रहीहो, इसलिये हम तुमको देवीभी नहीं मान सकतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥ परन्तु जिसप्रकारसे तुम्हारे शुभ लक्षण हम देख रहेहैं, इस्से तो हमको यही जान पड़ताहै. कि तुम राजाकी रानी अथवा कोई राजकन्या होगी ॥ ११ ॥ रावणनें बलात्कार करके जिन जानकीजीको जनस्थानसे हरण कियाहै तुम यदि वही सीताहौ तौ बताओ, हम तुमसे इस बातको जानना चाहतेहैं तुम्हारा मंगल होवें ॥१२॥ जिसप्रकारकी तुम्हारी दीन अवस्था, और जिसप्रकारका अलौकिक रूप और जिसप्रकारका तपस्वियोंके योग्य वेश देखतेहैं, इस्से तौ निश्चयही जान पड़ताहै कि तुम श्रीरामचंद्रजीकी रानीहौ ॥ १३ ॥ विदेहकुमारी सीताजी हनुमानजीके वचन और रामनामको सुनकर आनंद सहित वृक्षकी शाखापर बैठे हुए हनुमानजीसे बोलीं ॥ १४ ॥ इस सारी पृथ्वीमें जो राजसिंह गणोंमें जो प्रथम गिनें जानेंके योग्यहैं, हम उन जितेन्द्रिय, शत्रु सैनाके मथनेंवाले महाराज दशरथजीकी पुत्रवधूहैं ॥ १५ ॥ और विदेहराज महात्मा जनकजीकी हम कन्याहैं; हमरा सीता नामहै; और बुद्धिमान महान श्रीरामचंद्रजीकी हम स्त्रीहैं ॥ १६ ॥ हमनें श्रीरामचंद्रजीके साथ गृहमें बारहबर्षतक रह सब अभिलाषा पूर्ण कर मनुष्य लोकके भोगोंको भोगकिया ॥ १७ ॥ इसके पीछे जब तेरहवां वर्ष आया तब राजा दशरथजी अपने पुरोहितकी सम्मति लेकर इक्ष्वाकु कुमार श्रीरामचंद्रजीको राज्याभिषेक में अभिषेकित करनेंके लिये तैयार हुए॥१८॥ जब श्रीरामचंद्रजीके अभिषेककी सब सामग्री आनें लगीं, कि इतनेंमें कैकेयी नामक रानीने अपने स्वामीसे कहा ॥१९॥ कि जो श्रीरामचंद्रजीका अभिषेक कराया जायगा, तौ हम प्रतिदिन भोजन न करेंगी, न जल पियेंगी, तुम जान रक्खो कि रामचंद्रजीका अभिषेक होनाही हमारे जीवनका अंतहै ॥२०॥ हे राज श्रेष्ठ! आपनें जो उस देवासुरसंग्राममें प्रसन्न होकर

हमको दो वर देने चाहतेथे, उन दोनों वरोंको मिथ्या करनेंकी यदि आपकी इच्छा न होवे, तो हम प्रार्थना करतीहैं कि रामचंद्र वनको चले जांय ॥२१॥ सत्यवादी राजा दशरथजी रानीको जो वचन दे चुकेथे उनको यादकर, और कैकेयीके निठुर अप्रिय वचन सुन मूर्च्छित होगये॥२२ इसके पीछे वृद्ध राजा दशरथजीनें सत्य धर्ममें स्थिर रहकर रोदन करते हुये यशस्वी अपने बड़े पुत्र रामचंद्रजीसे राज्य मांग लिया ॥ २३ ॥ पिताजीका वचन राज्याभिषेकसेभी श्रीरामचंद्रजीको अधिक प्यारा हुआ, प्रथम उसको वह मनमें अंगीकार कर फिर प्रगटमें स्वीकार करते हुए ॥ २४ ॥ क्योंकि श्रीरामचंद्रजी जिस वस्तुका दान कर चुकेहैं फिर चाहैं उनके प्राणभी जाते रहैं, तोभी उस वस्तुका ग्रहण नहीं करते, उनका स्वभावही ऐसाहै,कि सदा सत्य कहेंगे, मिथ्या कभी नहीं कहते ॥ २५ ॥ वह महायशवान श्रीरामचंद्रजी बड़े२ मोलके वस्त्रोंको त्यागकर. अपने पूरे अंतःकरणसे राज्यको छोड़ वन जानेंके समय हमको अपनी माताके निकट सोंपनें लगे ॥२६॥ परन्तु हमने बहुत शीघ्र वनचारिणीका वेश धारण करके उनके आगेही साथ वन चलनेंको तैयार हुई, क्योंकि उनके बिना स्वर्गमें वास करनेंसेभी हमको प्रसन्नता नहीं ॥ २७ ॥ मित्रोंके आनंद बढ़ानें वाले महाभाग सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीभी अपने बड़े भ्राताके साथ वन चलनेके लिये पहलेही कुश चीर पहरकर तैयार होगये ॥ २८॥ इस प्रकारसे हम तीनोंजन अपने बडे राजा दशरथजीकी आज्ञा अति आदर मानसे अंगीकार करकै कठोर व्रत धार ऐसे गंभीर दर्शन वनमें प्रवेश करते हुए जो पहले कभी नहीं देखाथा ॥ २९ ॥ वह अमित तेजमान श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें वस रहेथे कि उसी समय दुरात्मा राक्षस रावणनें उनकी भार्या हमको हरण किया ॥ ३० ॥

द्वौमासौतेनमेकालोजीवितानुग्रहः
कृतः ॥ ऊर्ध्वंद्वाभ्यांतुमासाभ्यांतत
स्त्यक्ष्यामिजीवितम् ॥ ३१ ॥

उसने अनुग्रह करकै हमारी जीवन रक्षाके लिये दो मासकी अवधि

दीहै दो मासके बीत जानेपर हमको जीव त्याग करना पड़ैगा ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० सुं० त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाहनूमान्हरिपुंगवः ॥
दुःखाद्दुःखाभिभूतायाःसांत्वमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

शोक संतापसे संतापित हुई श्रीजानकीजीके यह वचन सुन वानर श्रेष्ठ हनुमानजी उनको समझाते बुझाते हुए उत्तर देने लगे ॥ १ ॥ हे देवि! श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञानुसार हम आपके निकट दूत होकर आयेहैं; हे विदेह नंदनि ! श्रीरामचन्द्रजी कुशलहैं; उन्होंने आपकी कुशल पूंछीहै॥२॥ जो वेदवित् श्रेष्ठ ब्रह्मास्त्र और चार वेदोंको जानतेहैं, देवि ! उन दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजीने आपकी कुशल मंगलका प्रश्न कियाहै ॥ ३ ॥ तुम्हारे स्वामीके प्रिय अनुचर महा तेजवान लक्ष्मणजीनें शोकसे संतापित हो मस्तक झुकाय आपको प्रणाम कियाहै ॥ ४ ॥ उन दो नरसिंहोंकी कुशल वार्त्ता श्रवणकर देवी जानकीजीके सब अंगोंमें रोमाञ्च हो आया तब उन्होंनें हनुमानजीसे कहा ॥ ५ ॥ मनुष्य जीवित रहनें पर सौ वर्षके पीछे भी आनंद पाताहै (अर्थात् जो मनुष्य जीवित रहे तौ कभी न कभी उसे आनंद मिलताहीहै) यह जो कहावत लोग कहा करते हैं, सो अब हम उसको सत्यही सत्य देखतीहैं ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीके मिलनें पर जैसा आनंद सीताजीको होता, इस समयभी सीताजीको वैसाही आश्चर्यका आनंद उपजा ॥ ६ ॥ तब सीताजी और हनुमानजीमें विश्वस्त भावसे परस्पर वार्ता होनेंलगी ॥ ७ ॥ शोकसे संतापित हुई जानजीजीके यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमानजी धीरे २ उनके समीप चले गये ॥ ८ ॥ धीरे २ हनुमानजी ज्यों २ निकट आतेथे, त्यों २ सीताजीके मनमें इनको रावण जानकर शंका होतीथी ॥ ९ ॥ वह मनही मनमें कहनें लगीं हाय! हमनें कैसा बुरा कार्य किया ! इससे अपना वृत्तान्त कहा! यह तौ वही रावण दूसरा रूप धारण कर यहां आयाहै ॥ १० ॥ यह विचार कर सुन्दर अंगवाली जानकीजी शिंशपाकी डालीको छोड़ शोकसे आकर्षितहो उस धरती परही बैठ-

गई ॥ ११ ॥ इसी अवसरमें महाबाहु हनुमानजीनें जानकीजीको प्रणाम किया, परन्तु भयके मारे त्रासित जानकीजीनें फिर उनको न निहारा॥१२॥ हनुमानजीको वन्दना करते हुये देखकर चंद्रमुखी सीताजी लंबे २ श्वास लेकर उन वानरश्रेष्ठसे मधुर वचन बोलीं ॥ १३ ॥ कि यदि तुम सत्य २ ही मायावी रावण, माया अवलंबन कर फिर हमको संताप देनें, आयेहो, तौ हम तुमसे कहती हैं कि हमें इस प्रकारका दुःखदेना तुमको उचित नहीं है ॥ १४ ॥ जनस्थानमें जिसको हमनें अपना प्रकृत रूप छोड़ कर भिक्षुकका रूप धारण किये देखाथा, निश्चय तुम वही रावणहो ॥ १५ ॥ हेकामरूपी निशाचर! हम उपवास करनेंसे क्षीणहो दीन भावसे समय बिताती हैं, सो हमको पुनर्व्वार सताना तुम्हारा उचित कर्म नहीं है ॥ १६ ॥ अथवा हमारी शंका झूंठीहै; क्योंकि तुम्हारे दर्शनसें हमारे मनमें आनंद उपजताहै; इससे तुम रावण नहींहो ॥ १७ ॥ यदि तुम श्रीरामचंद्रजीके दूत होकर यहां आयेहो तौ तुम्हारा मंगलहोवे! हेवानर श्रेष्ठ! हम तुमसे श्रीरामचंद्रजीकी कथा पूछतीहैं क्योंकि श्रीरामचंद्रजीकी कथाही हमको अधिक प्यारीहै ॥ १८ ॥ हेवानर! तुम हमारे प्यारे श्रीरामचंद्रजीके गुणोंका कीर्त्तन करो । हेसौम्य! जिस प्रकार जलका वेग नदीके किनारेको ढाताहै वैसेही तुम हमारे मनको हरण करतेहो ॥ १९ ॥ अहो! स्वप्ननें हमको क्या महा सुख दियाहै! बहुत दिनसे हरी हुई हमनें आज श्रीरामचंद्रजीके भेजे हुये दूतको देखा ॥ २० ॥ वीर श्रीरामचंद्रजी, व लक्ष्मणजीको यदि हम स्वप्नमेंभी देख पावें, तो हमें व्याकुलता न होवे, परन्तु स्वप्नभी हमारा विरोधीहै (अर्थात् नींदही नहीं आती स्वप्न कहांसे हो) ॥ २१ ॥ इसको हम स्वप्न नहीं समझ सकतीं; क्योंकि स्वप्नमें वानर देखनेंसे अभ्युदय नहीं प्राप्तहोता, परन्तु हमने तौ संतोष रूप अभ्युदय प्राप्तकिया ॥ २२ ॥ तौ फिर क्या यह बुद्धिका भ्रम, पवनका विकार या उन्मादसे उत्पन्न हुआ विकार, अथवा मृग तृष्णाहै ॥ २३ ॥ यह उन्मादभी नहीं है क्योंकि उन्मादका लक्षण ज्ञानकी हानिहै, परन्तु हमको ज्ञान भली भांतिहै, हम अपनेकोभी जानती हैं, और इन वानर कोभी प्रत्यक्ष देख रहीं हैं ॥ २४ ॥ सीताजी इस प्रकारकी अनेक चिन्ता ओंसे कामरूपी राक्षस और वानर दोनों पक्षके बलाबलको निर्णय

कर जानकीजी हनुमानजीको रावणही मानती हुई ॥ २५ ॥ क्योंकि वह जानतीथीं कि राक्षसलोग अपनी इच्छानुसार दूसरे रूपको धारण कर सकते हैं । जनकनंदनी सुमध्यमा सीताजी उस कालमें यह स्थिर करकै फिर हनुमानजीसे कुछ न बोलीं ॥ २६ ॥ पवनकुमार हनुमानजी सीताजीके अभिप्रायको जान, उस समय श्रवण सुखकारी वचन कह उनके आनंदको बढानें लगे ॥ २७ ॥ कि श्रीरामचंद्रजी सूर्यकी समान तेजस्वी और चंद्रमाकी समान लोकोंके आनंद बढ़ाया करतेहैं; और वह कुबेरजीकी समान सब लोकोंके राजाहैं ॥ २८ ॥ और विक्रम करनेमें महायशस्वी विष्णुजीकी समान, और बृहस्पतिजीकी भांति सत्यवादी और मधुर भाषी हैं ॥ २९ ॥ वह रूपवान स्त्री जातिके वांछनीय साक्षात् मूर्तिमान कन्दर्पकी समान श्रीमानहैं । जिस स्थानमें क्रोध करना उचित होता. वह उसी स्थानमें क्रोध किया करतेहैं, लोकोंमें वह सर्व श्रेष्ठ और महारथीहैं ॥ ३० ॥ सब लोक उन महात्माकी भुजा छायाका आश्रय लेकर टिके हुयेहैं । जिसनें मायामय मृगके द्वारा रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीको दूर कर ॥ ३१ ॥ शूने आश्रमसे आपको दूर कियाहै, सो आप शीघ्रही उसका फल देखेंगी, वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही उस रावणको मार डालेंगे ॥ ३२ ॥ वह श्रीरामचंद्रजी क्रोधकर अग्निकी समान प्रकाशित बाणोंके समूहोंको छोड़ उस रावणका संहार करैंगे । सो उनकेही भेजे हुए दूत होकर हम तुम्हारे पास आयेहैं ॥ ३३ ॥ आपके विरहसे कातर होकर उन्होंने आपकी कुशल वार्ता पूछीहै, सुमित्राके आनंद बढानेंवाले तेजवान महाबाहु लक्ष्मणजीनेभी ॥ ३४ ॥ प्रणामकर आपकी कुशलवार्ता पूछीहै । हे देवि! श्रीरामचंद्रजीके सखा सुग्रीव नाम वानरनेंभी ॥ ३५ ॥ जोकि वानरोंके राजाहैं उन्होंने भी आपसे कुशल प्रश्न कियाहै । श्रीरामचंद्रजी सुग्रीव व लक्ष्मणजीके साथ नित्यही तुम्हारी याद किया करतेहैं॥३६॥यह बड़े भाग्यकी बातहै कि आप निशाचरियोंके वशमें पड़ करभी अबतक जीवितहैं । अब बहुतही शीघ्र महारथ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके सहित ॥ ३७ ॥ करोड़ २ वानरोंके बीचमें अमित तेजस्वी सुग्रीवजीको देखोगी, हम हनुमान नामक वानर सुग्रीवजीके मंत्री ॥ ३८ ॥ महा

समुद्रको लांघकर लंका नगरीमें आयेहैं। दुरात्मा रावणके मस्तक पर चरण धर ॥ ३९ ॥

त्वांद्रष्टुमुपयातोहंसमाश्रित्यपराक्रमम् ॥
नाहमस्मितथादेवियथामामवगच्छसि ॥
विशंकात्यज्यतामेषाश्रद्धत्स्ववदतोमम ॥ ४० ॥

पराक्रमका अवलंबन कर तुम्हारे दर्शनकी लालसासे यहां आयेहैं। हे देवि! आप जो हमको रावण समझती हैं सो हम रावण नहींहैं अब आप इस उपस्थित शंकाको छोड़ हमारे कहनेंका विश्वास कीजिये ॥ ४० ॥
इ०श्रीम०वा०आ०सुं०चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥

तांतुरामकथांश्रुत्वावैदेहीवानरर्षभात् ॥
उवाचवचनंसांत्वमिदंमधुरयागिरा ॥ १ ॥

वानर श्रेष्ठ हनुमानजीके मुखसे यह कथा श्रवण कर सीताजी मधुर वाणी और विनीत भावसे उनसे बोलीं ॥ १ ॥ कि श्रीरामचंद्रजीके साथ तुम्हारा कहां मिलना हुआ? लक्ष्मणजीको तुमनें किस प्रकारसे जाना? और वानर मनुष्योंका समागम परस्पर कैसे हुआ?॥ २ ॥ हे वानर! श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके जो चिह्नहैं तुम फिर भलीभांति उनको कहो; जिसके सुननेंसे हमारे मनका शोक जाता रहैगा ॥३॥ और श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके शरीरका गठन, दोनों बाहें दोनों जांघें, और वर्ण कैसाहै, सो तुम सबही हमको बताओ ॥ ४ ॥ विदेह राजकुमारी जानकीजीके यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमानजी श्रीरामचंद्रजीका रूप वर्णन करनें लगे॥५॥ हेकमलनेत्र वाली वैदेही जानकीजी! तुम अपने स्वामी और लक्ष्मणजी केभी सब अंग चिह्न जान करभी हमसे पूछतीहो यह बड़े भाग्यकी बातहै (अथवा भाग्यसे यदि आप हमको श्रीरामचंद्रजीका दूत जानकर स्वामी और अपने देवरके अंगचिह्न पूछतीहैं) ॥ ६ ॥ तौ हमने श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके अंगोंमें जो चिह्न देखेहैं, हम उन समस्तको कहतेहैं, हे विशालनेत्रवाली! आप श्रवणकरें ॥ ७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके नेत्र कमल दलकी समान, और वदन मंडल पूर्णमासीके (चंद्रमा)की समानहै हे जनक

नंदनी। वह रूप और चातुर्यताको साथही लिये पृथ्वीपर उत्पन्न हुयेहैं॥ ८॥ वह तेजमें सूर्य, क्षमामें पृथ्वी,बुद्धिमें बृहस्पति, और यशमें इन्द्रजीकी समानहैं ॥ ९ ॥ सब प्राणियोंकी निजजनोंकी, अपने चरित्रकी, और धर्मकी वह रक्षाकरनें वाले और शत्रुओंके तपानेंवालेहैं ॥ १० ॥ हे भामिनी! श्रीरामचंद्रजी सबलोकोंके रक्षा कर्त्ता और चारों वर्णकी रक्षाकरनेंवाले हैं; और लोकोंकी मर्यादाके अधिष्ठाता अर्थात् करनें करानें वालेहैं ॥११॥ इसलिये वह सूर्य समानहैं, और सूर्यकी सम राजितहैं, वह गृहस्थ धर्ममें टिके हुयेभी ब्रह्मचर्य व्रताचारीहैं वह इस बातको भली भांतिसे जानतेहैं कि किस समय साधु लोगोंका उपकार करना होगा। कार्यके स्वरूप और अनुष्ठानके विषयकोभी वह भली भांति जानतेहैं ॥ १२ ॥ राजनीति भली भांतिसे सीखे हुये और ब्राह्मणोंकी आज्ञाके पालन करनें वालेहैं, और शत्रुओंके तपाने वाले श्रीरामचंद्रजी ज्ञानवान सुशील और विनीतहैं ॥ १३ ॥ यजुर्वेद भली भांति सीखे व वेदविद पंडित गणोंसे अत्यन्त पूजनीय; धनुर्वेद चारों वेद और वेदाङ्ग इन सबमेंभी अति निपुणहैं ॥ १४ ॥ जिनके कंधे बड़ेहैं, बाँहें लंबीहैं, गर्दन शंखकी समान और वदन मनोहरहै, हँसलियोंकी अस्थियें मांससे ढकी और नेत्र युगल अरुण वर्णहैं और लोकमें वह श्रीरामचंद्रजीके नामसे विदितहैं ॥ १५ ॥ उनका स्वर नगाड़ेके शब्दकी समान गंभीरहै वर्ण चिकना सुन्दर; वह प्रतापवानहैं उनके सब अंग प्रत्यंग परस्पर सुविभक्तहैं; अर्थात् जो जितना चाहिये उनताही चौडा लंबा और मोटाहै और शरीरभी जैसा बड़ाहै वैसाही उसका प्रमाणभीहै, उनकी देहका वर्ण नील (अर्थात् श्यामरंगी) है ॥ १६ ॥ उनकी ऊरु, मणि बन्ध, और मुष्टि, यह तीन अंग अति कठिनहैं; भौंह मुस्क, अंडकोश, बाहु यह तीन अंग लंबेहैं; केशाग्र, वृषण और जानु यह तीनों अंग समानहैं, नाभिका अभ्यन्तर भाग, कुक्षि और छाती यह तीन अंग ऊंचेहैं; । आंखोंके कोये, नख, चरणका तालुआ,और हाथ यह अंग लालहैं, पांवकी रेखा, केश, शिश्नका अग्रभाग, यह तीन अंग चिकने, स्वर नाभि, और गति यह गंभीरहैं ॥ १७ ॥ पेट और कंठमें त्रिवली पड़ी हुई, चरणोंके तलुओंका मध्य भाग, चरण रेखा, और छातियें (स्तन) यह तीन अंग बराबर गहिरे

ग्रीवा, नेत्र, और पृष्ठभाग, यह तीन अंग छोटे, मस्तकमें तीन घेरे, अंगूठेके मूलमें चार रेखावनी जिस्से चारों वेदोंका पढना विदित होताहै, देह चार हाथका बड़ा, बाहु, उरु, और गंडस्थल यह चारों अंग सुगोलहैं ॥ १८॥ भौंहें नासिकाके छेद नयन कर्ण अधर स्तन कूर्पर माथेकी खलो मणि बन्ध जानु वृषण कटि हस्त चरण दोनों नितम्ब यह सब जोडे परस्पर समान यह नहीं कि एक अंग छोटा, और एक अंग बडा दोनो दांतोंकी पंक्तियोंकी दोनों और शास्त्रोक्त लक्षण युक्त चार दांतहैं उनकी गति सिंह शार्दूल गज और वृषभकी समानहै अधर मांसल ठोडी परिपूर्ण और उन्नत हैं नासा दीर्घ वाक्य मुख नख लोम औ चर्म यह पांच अंग चिकनेहैं; दोनों बांहें, दोनों कनिष्ठा अंगुलि, दोउरु, दोजंघा यह आठ अंग सुदीर्घहैं ॥ १९ ॥ मुख १ नेत्र २ जीभ ३ ओष्ठ ४ तालू ५ स्तन ६ नख ७ मुखका भीतर ८ हाथ ९ और चरण १० यह दश अंग कमल सदृश और वक्षस्थल, मस्तक, ललाट, ग्रीवा, बाहु, कंधा, नाभी, चरण पीठ और कर्ण, यह दश अंग विशालहैं। श्री (लक्ष्मी) यश, और तेज उनमें वर्त्तमानहै उनके पिता माताका कुल पवित्रहै । कक्ष, कुक्षि, छाती नासिका कंधे और ललाट यह छेः अंग ऊंचे हैं और उंगलियोंके पोरुहा, केश, रोम, नख, त्वचा, शिश्न, श्मश्रु, दृष्टि और बुद्धि यह नव पदार्थ अति सूक्ष्महैं ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी समयका यथोचित विभाग करके धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों वर्गोंकी सेवा सदा किया करतेहैं वह सत्य धर्ममें रत श्रीमान् धन इकट्ठा करनें और उस धनसे प्रजा पालन करनेके कार्यमें तैयार देश कालका भेद जाननेवाले और सब जनोंसे प्रिय बोलनें वालेहैं उनके सौतेले भाई प्रमाणरहित प्रभाववाले सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी भ्रातृ स्नेह रूप और गुणोंमें श्रीरामचंद्रजीकी समानहैं ॥२१ ॥२२॥ परन्तु उन श्रीमान् लक्ष्मणजीके अंग सुवर्णकी समान गौर हैं और महा यशवान श्रीरामचंद्रजी श्याम वर्णहैं; बस केवल इतनाही अंतरहै जिस समय हम चलेथे उस समय आपके दर्शन प्राप्त करनेके सिवाय उन दोनों नर शार्दूलोंको और कोई भी चिन्ता नहींथी और वह छटपटातेथे कि कब आपके दर्शन हों ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे समस्त पृथ्वी ढूंढते २ तुम्हारे निकट उपस्थित हुये ॥२४॥ हम आपकोही ढूंडते भालते अनेक स्थानों

में घूमते घामते वह दोनों भाई अनेक सघन वृक्षोंसे युक्त ऋष्यमूक पर्वतके नीचे बैठे अपने ज्येष्ठ भाई वालिसे निकाले॥२५॥और उसकेही भयसे दुःखित वानरोंके सहित बैठे वानरोंके महाराज प्रियदर्शन सुग्रीवजीसे मिले हम सत्यप्रतिज्ञ वानरनाथ सुग्रीवजीकी॥२६॥ परिचर्या प्रथमहीसे करतेथे राज्य छूटनेके पहले भी हम बराबर उनकी सेवा करते ही रहे सो जबकि सुग्रीवजी राज्यसे निकाले जाकर वनमें बसतेथे कि चीर वल्कल धारण किये श्रेष्ठ धनुष ग्रहण किये॥२७॥राम लक्ष्मण वहां आये वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवजी उन धनुर्द्धर दोनों नरव्याघ्रोंको देखते हुये ॥२८॥ और देखते ही भयके कारण मोहको प्राप्त हो एक छलांग मार पर्वतके शिखर पर चढ़ गये और उस शिखर पर भली भांति टिककर सुग्रीवजीने ॥ २९ ॥ बहुतही शीघ्र उन दोनों जनोंके निकट हमको भेजा सुग्रीवजीकी आज्ञानुसार हम वहां जाय उन पुरुषसिंह सब कार्योंके करनेमें समर्थ ॥ ३० ॥ रूप लक्षण सम्पन्न दोनों वीरोंके सन्मुख हाथ जोडकर खडे हुये और तब एक दूसरेके वृत्तान्त से ठीक २ अवगत होगये और वह भी समाचार जान बडे प्रसन्न हुए ॥ ३१ ॥ तब हम उन दोनों पुरुष श्रेष्ठोंको अपनी पीठपर चढा कर ऋष्यमूक पर्वतके शिखर पर लाये और वहां पहुँच महात्मा सुग्रीवजीसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ३२ ॥ यशस्वी नरश्रेष्ठ और वानरश्रेष्ठ दोनोंही परस्पर वार्तालाप करके अतिशय प्रसन्न हुए। श्रीरामचंद्रजी व सुग्रीवजी दोनोंनें ॥ ३३ ॥ एक दूसरेसे अपना पूर्व वृत्तान्त कहा, और परस्परमें परस्परको आगत स्वागत किया; लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजीनें प्रथम सुग्रीवको धीरज दिलाया ॥ ३४ ॥ कारणकि स्त्री हरण करनेंकी इच्छा किये उनके बड़े भ्राता तेजस्वी वालिनें उन्हें घरसे निकाल दियाथा। जब श्रीरामचंद्रजी समझा चुके, तब तुम्हारे हरण होजानेंसे जो शोक विशेष कर्मकारी श्रीरामचंद्रजीकोथा ॥ ३५ ॥ उसका समस्त वृत्तान्त लक्ष्मणजीने वानरपति सुग्रीवजीसे कहा; वानरराज सुग्रीवजी लक्ष्मणजीके वचन सुनकर ॥ ३६ ॥ राहुसे ग्रसे हुये सूर्यकी समान मलीन होगये। तत्पश्चात् तुम्हारे अंगोंमें स्पर्श करनेंके कारण शोभायमान होनेंवाले गहने ॥ ३७ ॥ राक्षससे हरी जानेंके समय जो आकाशसे पृथ्वीपर तुमनें छोड़ेथे; वानर यूथप गण

वही सब गहनें श्रीरामचंद्रजीके पास लाये ॥ ३८ ॥ और हर्षितहो उनको दिखाये, परन्तु उसकाल वे वानर आपकी गतिको नहीं जानतेथे कि आप कहांहैं? जो समस्त गहने श्रीरामचंद्रजीको दिखाये गयेथे ॥३९॥ वह समस्त जबकि शब्द करते२गिरेथे, तब हमनेंही इकट्ठा करके उनको उठा लियाथा। श्रीरामचंद्रजी उन सबको देखतेही मूर्छितसे होगयेथे॥४०॥ फिर इन सुन्दर गहनोंको वारंवार हृदयसे लगाय, वह देवताओंकी समान श्रीरामचंद्रजीनें अनेक भांतिके विलाप रोयरकर किये। उन समस्त गहनोंनें दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीकी शोकानलको औरभी प्रज्वलित किया ॥ ४१ ॥ वह महात्मा श्रीरामचंद्रजी शोकसे व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिरपड़े; हमनें अनेक भांतिके मीठे२ वचनोंसे समझाकर अति कठिनाईसे फिर उनको उठाकर बैठाला ॥ ४२ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें वारंवार वह सब गहने देखे और लक्ष्मणजीको दिखाये, और फिर देख दाखकर सुग्रीवजीको सोंपदिये ॥ ४३ ॥ हेआर्यें! नित्य जलती हुई बडीभारी अग्निके द्वारा पर्वत जैसे संतापित होताहै वैसेही रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी आपके दर्शन न पानेंसे संतापित होरहेहैं ॥ ४४ ॥ तीन अग्नियोंसे युक्त अग्नि गृहकी समान अनिद्रा,शोक, और चिंतासे महात्मा श्रीरामचंद्रजी संतापित होतेहैं ॥४५॥ जैसे बड़ेभारी भूकम्पसे पर्वत हिलताहै, वैसेही आपके अदर्शनसे उत्पन्न हुये शोकके कारण श्रीरामचंद्रजी कंपायमान रहतेहैं ॥ ४६ ॥ हेराजनंदनी! श्रीरामचंद्रजी विविध मनोहर कानन नदी और झरनोंके समीप घूमते हुये फिरा करतेहैं, परन्तु आपके दर्शन न मिलनेंसे उनको यह कुछभी अच्छे नहीं लगते ॥ ४७ ॥ हेराजनंदनि! वह नरसिंह रघुनंदनजी शीघ्रही रावणको बन्धु मित्र बान्धवों सहित मारकर आपको प्राप्त करेंगे ॥ ४८ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीव दोनों एक वालिका संहार, और एक तुम्हारे खोजनेंके निमित्त परस्पर प्रतिज्ञा करते हुये ॥ ४९ ॥ इसके पीछे वह वानरराज सुग्रीवजी उन दो वीर कुमारोंके साथ किष्किन्धामें आये और समरमें वालिको मारडाला ॥ ५० ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें अपने बलसे वालिको मारकर सुग्रीवजीको समस्त ऋक्ष और वानरोंका राजा बनाया ॥५१॥ हे देवि! इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्र और सुग्रीवजीमें मित्रता उत्पन्न हुई, यह आप जानें हम उन लोगोंकेही दूत

हनुमानजी आपके निकट आये हैं ॥ ५२ ॥ सुग्रीवजीनें अपनें राज्यको पाय, अपनें आधीनवाले महा बलवान बडे २ वानरोंको बुलाकर आपके खोजनेंके लिये उनको दशों दिशाओंमें भेजाहै ॥ ५३ ॥ वानरराज सुग्रीवजीकी आज्ञा पायकर पर्वत राजकी समान बडे२ शरीर वाले महा तेजस्वी वानर गण पृथ्वीके चारों ओर को गये हैं ॥ ५४ ॥ सुग्रीवजीकी आज्ञासे भीतहो वह वानर लोग तबसेही आपका पता लगानें केलिये समस्त पृथ्वीपर घूमते हैं ॥ ५५ ॥ हमाराभी उनमेंसे एक दलहै । जितनी सैना भेजनेंसे बाकी रहगईथी उसका एक भाग किष्किन्धामें छोड वालीपुत्र अंगदनामक सौंदर्य सम्पन्न, महाबलवान वानर श्रेष्ठ तीन भाग सैना संग लेकर इधरको आयेहैं ॥ ५६ ॥ अंगदजीके अनुचर हम लोग पर्वत श्रेष्ठ विन्ध्याचलपर मार्ग भूलकर अत्यन्त शोकको प्राप्त हुएथे, वहांपर हम लोगोंको बहुत दिन रात बीत गयेथे ॥ ५७ ॥ इसके पोछे हम लोगोंने कार्य सिद्ध होनेकी आशा छोड-दी, और सुग्रीवजीनें जो अवधि नियत करदीथी वहभी बीतगई, इसलिये कपिराजके भयसे भीत होकर प्राण त्याग करनेंके लिये हम सब जने तैयार हुये ॥ ५८ ॥ विविध गिरि, दुर्ग,नदी, झरने, इन सबको ढूंडने परभी आपका संधान न पानेंसे हम लोगोंने प्राण त्याग करनेंका निश्चय किया ॥ ५९ ॥ इसके पीछे हमनें उसी पर्वतके ऊपर चढ प्रायोपवेशन व्रत धारण किया । हे जनकनन्दिनी ! सबही वानरगण प्रायोपवेशन व्रतले मरनेंपर उतारू हुए ॥६०॥ यह देख अंगदजी शोक सागरमें डूब आपका न मिलना, और वालिका मरना कहकर वारंवार रोदन करनें लगे ॥ ६१ ॥ वह हम सबका मरनेंको तैयार होंना, जटायुका मरना यह कहकर बड़े दुःखी हुये, सुग्रीवकी आज्ञा अति कठिनथी इसलिये हम सब निराशहो मरनेंके लिये इस प्रकारसे बैठे हैं ॥ ६२ ॥ कि इतनेहीमें मानो हम लोगोंकी सिद्धिके निमित्तही गृध्रराज जटायुके भाई सम्पाति नामक महाकाय वीर्यवान गृध्रराज पक्षी हमारे समीप आये ॥ ६३ ॥ और भाईका मरण वृत्तान्त सुन क्रोधमें भरकर यह बोले " कि हमारे छोटे भाईको किसनें कौनसे स्थानपर माराहै ? ॥ ६४ ॥ हे वानर श्रेष्ठ गण ! तुम लोग हमको बताओ, हमारी इच्छा यह सब सुननेंकीहै " जब

इस भांतिसे उस पक्षीनें कहा, तौ अंगदजीनें सम्पातिसे जनस्थानमें बड़ा भारी वध ॥ ६५ ॥ जो तुम्हारे लिये भीम रूपी राक्षस रावणनें महात्मा जटायुका कियाथा, सब कह सुनाया जटायुका वध सुनकर अति दुःखितहो अरुणके पुत्र सम्पातिनें ॥ ६६ ॥ बताया कि तुम निंदा रहित अंगवाली रावणके गृहमें वसतीहो सम्पातिके यह प्रीति देनेंवाले वचन सुनकर ॥ ६७ ॥ अंगद इत्यादि हम सबही वहां परसे चले । विन्ध्याचलसे उतरकर हम सब समुद्रके रमणीक किनारेपर आये ॥ ६८ ॥ आपके दर्शनाभिलाषसे उत्साहित और प्रसन्न होकर अंगदादि सब वानर गण प्रायःसमुद्रके तटपरही पहुँच गये ॥ ६९ ॥ आपका दर्शन करनेंके लिये उद्यत वानर गणोंको फिर एक विषम भावना आय पहुँची जब वानरोंकी सैना समुद्र देख उत्साह रहित और शोकाकुल हुई, तब हम ॥ ७० ॥ उन सब वानरोंका महा भय छुड़ाय शत योजनके फांटवाले समुद्रको नांघ रात्रि कालमें राक्षसोंसे परिपूर्ण लंका नगरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ७१ ॥ रावणकोभी और शोकसे पीडित आपकोभी हमनें देखा । हे अनन्दिते! आदिसे अंततक जो बातें हुई हैं, वह आपके निकट हमनें समस्त वर्णन की ॥ ७२ ॥ हे देवि ! आप हमारे साथ संभाषण कीजिये; हम दशरथ नंदन श्रीरामचन्द्रजीके दूतहैं, हम आपकेही देखनेंको श्रीरामचन्द्रजीके भेजे यहां आयेहैं ॥ ७३ ॥ हम सुग्रीवजीके मंत्री और पवनके पुत्रहैं । हे देवि! आपके वह सर्व शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्रजी कुशल मंगलहैं ॥ ७४ ॥ और शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मणजीभी कुशलहैं, आपके उन वीर्यवान् स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके हित साधनमें सदा लगे रह कर हम अपने गुरूकी आराधना किया करतेहैं ॥ ७५ ॥ हम अकेलेही सुग्रीवजीकी आज्ञासे यहांपर आयेहैं, और सहाय रहित कामरूपी घूमते हुये ॥ ७६ ॥ तुम्हारा मार्ग ढूंडते २ हमनें इस समस्त दक्षिण दिशाको छाना बडे भाग्यकी बातहै, कि हम तुम्हारे अदर्शन जनित शोकसे व्याकुल और आपको मृतक समझती वानरोंकी सैनासे ॥ ७७ ॥ आपका दर्शन संवाद देकर,उन सबका संताप दूरकर सकेंगे,बडे शुभ भाग्यसे समुद्र लांघकर हमारा यहां आना व्यर्थ न हुआ ॥ ७८॥ हेदेवि ! भाग्यसेही हम आपका दर्शन पानेंसे उस स्थानमें यश प्राप्त करेंगे और महा वीर्यवान

रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीभी शीघ्र ॥ ७९ ॥ राक्षसपति रावणको पुत्र और बन्धु बान्धवों सहित संहार करके आपको प्राप्त होंगे । हे देवि ! सब पर्वतोंमें मनोहर माल्यवान नामक एक पर्वतहै ॥ ८० ॥ हमारे पिता महाकपि केशरी वहांपर रहतेथे । उन्होंने एक समय देवर्षियोंकी आज्ञा पाय वहांसे गोकर्ण पर्वत पर जाय उस पवित्र नदीपतिके पुण्य तीर्थमें सम्बर साधन नामक असुरको मारडाला ॥ ८१ ॥ हे मैथिली ! इन्ही केशरी जीकी अंजना नामक स्त्री में पवनसे हमारी उत्पत्ति हुई है । अपने पराक्रमके बलसे हम इस लोकमें हनुमान नामसे विख्यातहैं ॥ ८२ ॥ हे विदेहनंदिनि ! आपको विश्वास दिलानेके लिये आपके स्वामी श्रीरामचंद्रजीके समस्त गुण विस्तारसे वर्णन किये । हे देवि ! रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी आपको शीघ्रही इस स्थानपरसे ले जांयगे ॥ ८३ ॥ शोकसे पीड़ित हुई सीताजीनें अनेक हेतु और राम लक्ष्मणजीके यथार्थ चिह्न पाय विश्वास कर हनुमानजीको श्रीरामचंद्रजीका दूत जाना ॥ ८४ ॥ और अतुल हर्ष प्राप्त करतीं हुई । जानकीजी मारे आनंदके टेढी पलकवाले दोनों नेत्रोंसे आनंदके आंसु गिरानें लगीं ॥ ८५ ॥ बड़े २ नेत्रवाली जानकीजीका वह रक्त प्रान्त सुदीर्घ शुभ लोचन शोभित (ताम्रवत् अरुण बड़े २ नेत्रोंसे युक्त) मनोहर मुखमंडल राहुसे छुटे हुए चंद्रमाकी समान शोभायमान होने लगा ॥ ८६ ॥ तब उन्होंने हनुमानजीको प्राकृत वानरही जान सब भ्रांति छोड़दी इसके पीछे हनुमानजीनें उन प्रिय दर्शनवाली जानकीजीसे फिर कहा ॥ ८७ ॥ हे विदेह नंदनि ! हमने आपसे यह समस्त वृत्तान्त कहा अब इस समय आप प्रसन्न होजांय । इस समय हमको क्या करना होगा ? और आपकी क्या इच्छा है ? सो प्रगट कीजिये ? क्योंकि अब हम शीघ्रही श्रीरामचंद्रजीके निकट जांयगे ॥ ८८ ॥

हतेऽसुरेसंयतिशंबसादनेकपिप्रवीरेणम
हर्षिचोदनात् ॥ ततोस्मिवायुप्रभवोहिमैथि
लिप्रभावतस्तत्प्रतिमश्चवानरः ॥ ८९ ॥

हे मिथिलेश कुमारी! महर्षि गणोंकी आज्ञासे वानर श्रेष्ठ केशरीनें जब शम्बसाद असुरको युद्धमें माराथा; तब उन महर्षियोंके प्रसादसे हमनें पवनजीके औरससे अपनी मातामें जन्मग्रहण किया, परन्तु प्रभावमें हम पवनहींकी तुल्य हैं॥ ८९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे पंचत्रिंशः सर्गः॥ ३५॥

षट्त्रिंशः सर्गः।

भूयएवमहातेजाहनूमान्पवनात्मजः॥
अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंसीताप्रत्ययकारणात्॥ १॥

पवनकुमार महातेजस्वी हनुमानजी सीताजीको विश्वास दिलानेंके लिये फिर विनीत वचनसे बोले॥ १॥ हे महाभागे! हम वानरहैं, बुद्धि शक्ति सम्पन्न श्रीरामचंद्रजीके दूत हैं। हे देवि! रामनामांकित यह अँगूठी देखिये॥ २॥ आपके विश्वासके लिये हम इसको लायेहैं, उन्हीं महात्मा श्रीरामचंद्रजीनें हमको यह दीहै, स्वस्थचित्त हूजिये, अब निश्चयही आपके दुःखका अंत हो आयाहै॥ ३॥ जानकीजी अपने स्वामीकी उँगलीका गहना उस अँगूठीको ग्रहण कर और देख ऐसी हर्षित हुई मानों श्रीरामचंद्रजीही मिलगये॥ ४॥ उनका वह अरुण कोयेवाले बड़े २ शुभ नेत्रोंसे विराजमान मनोहर वदनमंडल राहुसे छुटे हुए चंद्रमाकी समान शोभायमान हुआ॥ ५॥ उस समय वह लज्जितावाला सीताजी अपनें स्वामीका संवाद पानेसे हर्षित और प्रसन्न होकर आदर करकै कपिश्रेष्ठ हनुमानजीकी प्रशंसा करनें लगीं॥ ६॥ हे वानरश्रेष्ठ! तुमनें अकेलेही राक्षसोंका स्थान मथडाला इस्सेही हमनें जान लिया कि तुम बड़े विक्रमवान समर्थ और बड़े पंडित हो॥७॥तुम्हारा विक्रम अत्यंत बडाई करनेंके योग्यहै कि शत योजन विस्तारवाला मकरादिकोंका स्थान समुद्र तुम गोपदकी तुल्य समझकर सरलतासे लांघ आये॥८॥ हे वानरश्रेष्ठ! जब कि रावणसेभी तुमको भय और सम्भ्रम नहीं है तब हम तुमको साधारण वानर नहीं समझ सकतीं॥९॥ उन परम विज्ञानी श्रीरामचंद्रजीनें जब कि तुमको यहां भेजाहै,तब तुम निःसंदेह हमसे संभाषण करनेंके योग्य हो १०॥ दुर्द्धर्ष श्रीरामचंद्रजीनें विना परीक्षा किये हुये तुमको कभी न भेजा होगा

विशेष करके पराक्रमके विना जाने हमारे निकट तुमको कभी नहीं भेजते ॥ ११ ॥ यह बड़े भाग्यकी बातहै कि सत्य प्रतिज्ञ महात्मा श्रीरामचंद्रजी और सुमित्राके आनंद बढ़ानेंवाले महा तेजमान श्रीलक्ष्मणजी कुशलसे रहे ॥ १२ ॥ यदि काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजी कुशल सहितहैं; तौ क्रोधसे प्रलयकालके उठे हुये अग्निकी समान समुद्र पर्यन्त इस पृथ्वीको भस्म क्यों नहीं कर डालते ? ॥ १३ ॥ अथवा वह तौ देवता लोगोंको भी दंड देसकतेहैं; परन्तु अभी केवल हमारेही दुःखोंका अन्त नहीं हुआहै ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी व्यथित तौ नहीं होते ? परिताप तौ नहीं करते ? वह पुरुषोत्तम हमारा उद्धार करनेंके लिये चेष्टा तौ कर रहेहैं ? ॥ १५ ॥ वह राजकुमार दीन और व्याकुल चित्त होकर पुरुषोचित कर्त्तव्य कार्यों का करना तौ नहीं भूल जातेहैं ॥ १६ ॥ शत्रुओंके तपानें वाले श्रीरामचंद्रजी विजयकी अभिलाषा कर मित्रोंके प्रति साम, दाम, और शत्रुके प्रति,भेद व दंडका उपाय तौ प्रयोग किये जातेहैं? ॥ १७ ॥ व श्रीरामचंद्रजी औरोंके साथ मित्रता करतेहैं ? और दूसरेभी उनके साथ मित्रता करतेहैं, मित्र लोग उनका आदर सत्कार करतेहैं ? और वहभी मित्रोंका आदर मान तौ करतेहैं ? ॥ १८ ॥ वह नृपनंदन श्रीरामचंद्रजी देवता लोगोंके अनुग्रहकी प्रार्थना तौ किया करतेहैं ? उन्होंनें पौरुष और दैव बल दोनोंका आश्रय तौ लेरक्खाहै ? ॥ १९ ॥ बहुत दूर रहनेंसे उनका स्नेह जो हमारे प्रति था वह तौ नहीं जाता रहा ? वह श्रीरामचंद्रजी हमारा उद्धार तौ इस विपदसे करेंगे? ॥ २० ॥ वह प्यारे नित्यही सुख पायकर इतनें बड़े हुयेहैं, उन्होंने कभी दुःख नहीं पाया, सो इस महा दुःख भोग करनेंसे वह व्याकुल तौ नहीं होते? ॥ २१ ॥ भला कौशल्या सुमित्रा भरतजीका कुशल संवाद तौ वारंवार मिलता रहताहै? ॥ २२ ॥ सदा मान पानेंके योग्य श्रीरामचंद्रजी हमारे वियोगके शोकसे संतापित और विमन तौ नहीं होते ? भला वह हमारी रक्षा इस विपदसे करेंगे तौ सही? ॥ २३ ॥ भइयासे स्नेह करनेंवाले भरतजीनें क्या हमारा उद्धार करनेंके लिये मंत्रियोंसे रक्षित भयंकर अक्षौहिणी सैना भेजीहै ? ॥ २४ ॥ क्या हमको यहांसे छुटानेंके लिये वानर श्रेष्ठ श्रीमान् सुग्रीवजी, दांत और नखोंके ही आयुध बनाये हुये वानर वीर गणोंके साथ यहां आवें

गे ?॥ २५ ॥ क्या वह अस्त्र विशारद वीर सुमित्राकुमार लक्ष्मणजी अस्त्र-जाल वर्षाय राक्षसोंको भस्म कर डालेंगे? ॥२६॥ क्या हम अल्प कालमें यह देख पावेंगी कि श्रीरामचंद्रजीनें संग्राम भूमिमें अमोघ अस्त्र शस्त्र चलाय बन्धु बान्धवोंके सहित रावणका संहार किया॥२७॥ कहीं जल विहीन कमल की समान हमारे विरहमें श्रीरामचंद्रजीका कमल फूलकी समान सुगन्धि युक्त स्वर्ण वर्ण मुख मंडल शोकसे मलीनहो सूखतौ नहीं गया ? ॥ २८ ॥ धर्मके लिये जो अपना राज्य त्यागकर हमको साथले पैदलही वनमें आनेंसे जिनके मनमें पीड़ा, भय, या शोक नहीं हुआ, भला वह श्रीरामचंद्रजी धैर्य-को तौ धारण कियेहैं ? ॥२९॥ हेदूत! क्या माता, क्यापिता, क्या कोई और दूसरा पुरुष, किसीके प्रति उनका हमसे अधिक या समान स्नेह नहीं है, सो हम जबतक परम प्रिय श्रीरामचंद्रजीकी कथा सुनतीहैं, तबहीतक जीती हैं ॥३०॥ मनोरमा मैथिली जानकीजी वानरवीर हनुमानजीसे इस प्रकार युक्ति युक्त मधुर वचन कह उनके मुखसे फिर श्रीरामचंद्रजीकी कथा सुन नेंकी इच्छासे मौन हो रहीं ॥ ३१ ॥ सीताजीके वचन श्रवण कर भयंकर विक्रम कारी पवननंदन हनुमानजी शिरसे हाथ जोड़ उत्तर देते हुये ॥३२॥ इस स्थानमें आपका रहना कमल दल समान-नेत्र वाले श्रीरामचंद्रजी नहीं जानतेहैं, देवराज जिस प्रकार विनाजाने अनुह्लाद दैत्यसे हरी हुई शचीको नहीं लाय सके, इसी कारणसे वह अबतक आपका उद्धार करनेंमें समर्थ नहीं हुये ॥ ३३ ॥ हमसे आपका समाचार पातेही रघुनंदन श्रीरामचं-द्रजी बडी भारी ऋक्ष और वानरोंकी सैना साथ लेकर आवेंगे ॥ ३४ ॥ अक्षोभ्य समुद्रको अपनें बाणोंसे पाट सेतु बांध वह काकुत्स्थ रघुवंश वाली श्रीरामचंद्रजी लंकाके संपूर्ण राक्षसोंका संहार कर डालेंगे ॥ ३५ ॥ लंका पर चढाई करनेंसे यदि साक्षात् यम या देवासुर गणभी बीचमें पड़ेंगे तब श्रीरामचंद्रजी उनकोभी तौ मार डालेंगे ॥ ३६ ॥ आपके दर्शनसे उत्पन्न हुये शोकसे ढकनेंके कारण श्रीरामचंद्रजी सिंहपीड़ित गजकी समान शांति नहीं प्राप्त कर सकतेहैं ॥ ३७ ॥ हे देवी ! हम मंदर, मलय विन्ध्य और दुर्दर पर्वतोंके और फल फूलोंके नाम करके शपथ करते-हैं ॥ ३८ ॥ कि आप देखेंगी कि श्रीरामचंद्रजीका सुन्दर नयन शोभित, मनोहर बिम्बाफलके समान अधरोंसे विराजमान सुन्दर कुंडल भूषित

मुख मंडल चंद्रमाकी समान उदित होगा ॥ ३९ ॥ हेविदेहनन्दिनि! शीघ्रही ऐरावतकी पीठपर इन्द्रजीकी समान श्रीरामचंद्रजीको प्रस्रवण पर्वतपर बैठे हुये देखोगी ॥ ४० ॥ श्रीरामचंद्रजी मांस भोजन व मधुपानको त्याग करके वनके नियमानुसार नित्य संध्याके समय अन्न आहार किया करतेहैं ॥ ४१ ॥ उनका अन्तरात्मा आपमें इस प्रकार लगा हुआहै कि शरीर पर मच्छरके बैठने, या कीड़े मकोड़े सर्पादिकके आजानेंसे उनको नहीं अलग करते ॥ ४२ ॥ सर्वदाही ध्यान लगाये रहते, सदाही शोकसे विह्वलहो और कुछभी चिंता नहीं करते; बस उनको केवल यही वासनाहै कि आपके दर्शन करें ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी बहुधा सोते नहीं जो कुछ सोतेभीहैं तो उसी अवस्थामें "सीते" यह मधुर वाणी कहकर वैसेही जाग उठतेहैं ॥ ४४ ॥ फल पुष्प या और कोई स्त्रियोंकी आनंद देनेंवाली चीज देखतेही, लंबे श्वास लेते "हा प्रिये!" कहकर आपको पुकारतेहैं ॥ ४५ ॥ हे देवि! महात्मा श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे "हासीते! हासीते!" कहकर सदाही परिताप करतेहैं। और वह महात्मा राजकुमार श्रीरामचंद्रजी आपहीका उद्धार करनेंके लिये यत्न कर रहेहैं ॥ ४६ ॥

सारामसंकीर्तनवीतशोकारामस्यशो
केनसमानशोका ॥ शरन्मुखेनांबुदशे
षचंद्रानिशेववैदेहसुताबभूव ॥ ४७ ॥

श्रीरामचंद्रजीकी यह कथा सुनकर सीताजीको जिसप्रकारका आनंद हुआथा, वैसेही उनको शोकाकुल सुन सीताजी शोक ग्रस्त हुई। मानो शारदीय रात्रिमें चंद्रमा निकलकर फिर मेघसे ढक गया* ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे षट्त्रिंशः सर्गः ३६

सप्तत्रिंशः सर्गः

सासीतावचनंश्रुत्वापूर्णचंद्रनिभानना ॥
हनूमंतमुवाचेदंधर्मार्थसहितंवचः ॥ १ ॥

पूर्ण चंद्रमाकी समान विमल वदनवाली सीताजी हनुमानजीके वचन

* चौ०-प्रभु संदेश सुनत वैदेही, मगन प्रेम तनु सुधि नाहिं तेही।

श्रवण करके धर्म और युक्ति सिद्ध वचनोंसे उत्तर देती हुई ॥ १ ॥ हे वानर ! तुमनें जो कहा कि और किसी वस्तुमें श्रीरामचंद्रजीका मन नहीं लगता और वह शोक परायणहैं, यह बात तुम्हारी विप मिले हुए अमृतकी तुल्य है ॥ २ ॥ मनुष्य महाऐश्वर्यही भोग करै, या दुःसह दुःखही पाय कर काल वितावै, परन्तु काल रस्सीसे बाँध करके उसको खैंचा करताहै ॥ ३ ॥ हे कपि श्रेष्ठ ! निश्चयहै कि होनहारका निवारण नहीं हो सकता देखोना कि श्रीराम लक्ष्मण और हम किस दुःखमें पड़ेहैं ॥ ४ ॥ न जानें नौका टूट जानेंसे उसपरसे गिर समुद्रमें तैरते हुए पुरुषकी समान श्रीरामचंद्रजी पराक्रमेका प्रकाश करकैभी कितनें दिनोंमें शोकका पार पावेंगे ॥ ५ ॥ अब कितनें दिनोंमें हमारे स्वामी राक्षस कुलका ध्वंस रावणका विनाश और लंकापुरीको मर्दित करके हमको दर्शन देवेंगे ॥ ६ ॥ इस वर्षके पूर्ण न होते होते श्रीरामचंद्रजीको शीघ्रही यहां आना चाहिये, कारण कि जबतक वर्ष पूर्ण नहीं होता, तबहीतक हमारा जीवनहै, यह उनसे कहदेना ॥ ७ ॥ अब यह दशमा महीना चलताहै, वर्ष पूर्ण होनेमें केवल दो मास रहे हैं । क्रूर रावणनें इन्हीं दो महीनोंको हमारे जीवन कालकी अवधि नियत कियाहै ॥ ८ ॥ जिस्से कि रावण हमको बहुत पीड़ित न करै सो रावणके भ्राता विभीषणनें इसलिये उसकी बहुत अनुनय विनय यत्नसहित कीथी; और यहभी कहाथा, जानकी रामको देदो! परन्तु उस दुरात्मानें उसकी एक बात न मानी ॥ ९ ॥ उसकी इच्छा हमें श्रीरामचन्द्रजीके सौंप देनेंकी नहीं है,क्योंकि उसका काल निकट आगयाहै; मृत्यु उसके समयको ढूंड रहीहै ॥ १० ॥ हे वानर ! विभीषण की कला नामक बडी कन्यानें अपनी माताके कहनेंसे हमसे यह वृत्तान्त कहाहै ॥ ११ ॥ अविन्ध्या नामक एक मेधावी विद्वान वीर्य सुशील रावण का मंत्री एक वृद्ध राक्षसहै; रावणभी उसका बहुत मान करताहै ॥ १२ ॥ उसनेंभी रावणसे कहाथा कि श्रीरामचन्द्रजीसे रावणका क्षय होगा, परन्तु दुरात्मा रावणनें उस राक्षसका एकभी हितकारी वचन नहीं सुना ॥ १३ ॥ हे वानर श्रेष्ठ ! आशा होतीहै, कि शीघ्रही हमारे स्वामी हमको प्राप्त होंगे, क्योंकि हमारा अन्तरात्मा अति पवित्रहै, श्रीरामचन्द्रजीमें अनेक गुण हैं ॥ १४ ॥ उत्साह, पौरुष, बल, दया, कृतज्ञता, विक्रम, प्रभाव यह स-

मस्तही श्रीरामचन्द्रजीमें वर्तमानहैं ॥ १५ ॥ उन्होंनें बिनाही भ्राताकी सहायताके अकेले जनस्थानमें चौदह हजार राक्षसोंको मारडाला, फिर, भला कौन शत्रु उनसे न डरेगा ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके साथ इन समस्त दुःखदाता राक्षसोंकी समानता नहीं हो सकती। शची जिस प्रकार इन्द्रजीका वैसेही हम श्रीरामचन्द्रजीका प्रभाव जानतीहैं १७हे वानर रामरूपी सूर्य शर-जाल रूप किरण जालसे हमारे शत्रु जलरूपी राक्षसोंको सुखाय डालेंगे १८॥ यह सब वार्त्ता कहते २ सीताजी श्रीरामचंद्रजीके लिये शोक करनें लगीं आंसुओंके जलसे उनका पूर्ण चंद्रानन पूर्ण होगया तब हनुमानजीनें उनसे कहा॥१९॥ हमारे मुखसें संवाद सुनते ही श्रीरामचंद्रजी ऋक्ष और वानरोंसे पूर्ण बडीभारी सैना ले शीघ्र ही यहांपर आवेंगे२०॥अथवा हे अनिन्दिते!हम अभी आपको इस राक्षसके उत्पन्न हुये दुःखसे छुटावेंगे आप हमारी पीठपर च-ढलें॥२१आपको पीठ पर चढ़ाकर हम समुद्रके पार होंगे;हममें इतनी शक्तिहै कि हम रावणके सहित इस लंका पुरीको पीठ पर धर समुद्रके पार होजायँ ॥ २२ ॥ हेजनकनन्दिनी ! अग्नि जिसप्रकार होममें हवनकी हुई सामग्री इन्द्रजीके पास पहुंचाय देतेहैं; हमभी वैसेही आज आपको लेकर प्रस्रव-ण पर्वत पर बैठे हुये श्रीरामचंद्रजीके निकट समर्पण करेंगे ॥ २३ ॥ हे वैदेही! आजही आप देखेंगी कि दैत्योंका वध करनेके लिये विष्णुजीके समान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित शत्रुका वध कर्नेके लिये तैयारी कर रहेहैं ॥२४॥हे देवि! वह महा बलवान श्रीरामचंद्रजी आपके दर्शनकी लालसासे उत्साही हो पर्वतराज प्रस्रवणके शिखरका आश्रय लिये इन्द्रजी की समान बैठे हुयेहैं ॥ २५ ॥ हे शोभने! अब कुछ न सोचो विचारो झट पट हमारी पीठपर चढलो चंद्रमाके सहित रोहिणीकी समान तुम श्रीराम-चंद्रजीसे मिलो॥२६॥ इस बातके कहनेमें कि हम श्रीरामचंद्रजीके निकट जांयगे जितना समय लगता है बस इतनेही समयमें आप हम चंद्रमाके साथ रोहिणीकी समान श्रीरामचंद्रजीके साथ मिल जांयगी आप हमारी पीठपर चढिये हम आकाशमार्गसे समुद्रके पार होंगे॥२७॥हे अङ्गने!जब हम आपको इस स्थानसें ले जांयगे तो लंकामें कोई ऐसा राक्षस नहीं है कि जो हमारा पीछा कर सकै॥२८॥हे विदेह नंदिनि! आप देखेंगी कि हम जिस प्रकारसें यहांपर आयेहैं वैसेही आपको पीठपर चढाय आकाशमार्गसे चले जांयगे

इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ २९ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके मुखसे निकले हुये यह अद्भुत वचन सुनकर आनंदके और विस्मयके मारे जानकीजीके सब अंगोंमें रोमाञ्च हो आया और वह हनुमानजीसे बोलीं ॥ ३० ॥ हे हनुमन्! इस बडे भारी दूरके मार्गमें तुम किसप्रकारसे हमको ले जाना चाहते हो बस इसी बातसे तुम्हारा वानरी भाव प्रगट होताहै भला वानरोंमें इतना बल कहांसे आया ॥ ३१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ऐसे छोटे शरीर वाले होकर तुम किस साहससे हमको यहांसे हमारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीके निकट लेजाया चाहते हो॥३२॥ सीताजीके वचन सुनकर लक्ष्मीवान् पवनकुमार हनुमानजीने मनमें विचाराकि यही हमारा प्रथम अनादर हुआ ॥ ३३ ॥ यह इन्दिवरनयनी सीताजी हमारी शक्तिके प्रभावको नहीं जानतीं इसलिये इच्छानुसार जो रूप धारण कर सकतेहैं उसको वैदेहीजी देखें ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे चिन्ता करके शत्रुओंके दमन करनेवाले हनुमानजीनें सीताजीको अपना रूप दिखाया॥३५॥ कपि श्रेष्ठ हनुमानजी छलांग मार वृक्ष परसे उतर सीताजीको विश्वाश उपजानेंके लिये वर्धित होनें लगे॥३६॥उस समय उनका शरीर मेरु पर्वतकी समान हो प्रदीप्त अग्निकी भांति प्रकाशित हो शोभायमान होने लगा और वह जानकीजीके आगे खड़े होगये ॥ ३७ ॥ पर्वताकार लाल मुख महाबलवान वज्रवत् दांत नख इस प्रकारका महा भयंकर रूपधारण कर हनुमानजी श्रीजानकीसे बोले॥३८॥हे देवि!हममें इस प्रकारकी शक्ति है कि हम पर्वत वन भूमि देश प्राकार अटारी व तोरणादि और रावणके सहित इस लंका पुरीको उठाकर लेजा सकते हैं॥३९॥इसलिये हमारे ऊपर विश्वाश रखिये अविश्वास नकीजिये हे विदेह दुहिते लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजीकाभी शोक दूरकीजिये॥४०॥कमलदल सम नेत्र वाली सीताजी पवनके औरसपुत्र हनुमानजीको पर्वतकी समान बढाहुआ देखकर कहने लगी हे कपिवर! हमनें तुम्हारा साहस बल और पवनकी समान गति अग्निकी समान अद्भुत तेजका परिचय पाया॥ ४१ ॥ ४२ ॥भला तुम्हारे विना कौनहै जो इस लांघनेंके अयोग्य समुद्रके पारहो,इस देशमें आनेंको समर्थ होगा?॥४३॥हम जान गईं कि तुम लौटभी जा सकते और हमको भी साथ लेजा सकते हो परन्तु जल्दी कार्य सिद्धि होंनेके विषयमें हमें स्वयंभी विचार करना उचितहै॥४४॥

हमारा तुम्हारे साथ जाना युक्ति युक्त नहीं है; क्योंकि तुम्हारा वेग पवन की समान प्रबल है, सो जबतुम वेगसे लेकर चलोगे तौ हम मूर्छित हो जांयगी ॥ ४५ ॥ तुम भयंकर वेगसे गमन करते २ जबकि समुद्रके ऊपरहो आकाश मार्गमें उडोगे तब हम निरालम्ब होकर गिर जांयगी ॥४६॥ तिमि,नाके, और महा मत्स्य समाकुल समुद्रमें गिर कर शीघ्रही हम विवश हो कुम्भीरादि जल जन्तुओंका उत्तम भोजन बन जांयगी ॥ ४७ ॥ हे अरिदमन! तुम्हारे साथ हम नहीं जासकेंगी, क्योंकि एक जन स्त्रीको लिये जा रहाहै ऐसा देखकर निश्चयही राक्षस लोग तुम्हारे पर संदेह करेंगे ॥ ४८ ॥ हमको लिये जाते हुए देखकर दुरात्मा रावणकी आज्ञा पाय भयंकर विक्रमकारी राक्षसगण तुम्हारे पीछे २ धावमान होंगे ॥ ४९ ॥ एक तौ स्त्रीके साथमें तिसपर फिर इन सब शूल और मुद्गर धारी वीर राक्षसोंसे घेरे जाकर तुम्हारे जीवनमें संशय होगा ॥ ५० ॥ आकाश मार्गमें राक्षसगण अस्त्र शस्त्र लिये होंगे, और तुम शस्त्ररहित; इस अवस्थामें भला तुम किस प्रकारसे जाओगे और कौनसा उपायहै कि जिस्से हमारी रक्षा कर सकोगे ॥ ५१ ॥ क्रूर कर्म करनेंवाले भयंकर राक्षसोंसे जब तुम्हारा युद्ध होगा तब भयसे भीतहो अवश्य हम तुम्हारी पीठ से नीचे गिर पडेंगी ॥ ५२ ॥ हे कपिश्रेष्ठ! बड़े भयंकर और बड़े बलवान राक्षस लोगोंनें जो संग्राममें तुमको किसी प्रकारसे जीतही लिया ॥ ५३ ॥ अथवा संग्राम करते २ तुम्हारी दृष्टि हमारे ऊपर न रही और हम गिर पड़ीं तौ गिरतेही राक्षस लोग फिर हमको यहीं पकड़ कर ले आवेंगे ॥ ५४ ॥ अथवा वह राक्षस लोग हमको तुम्हारें हाथसे छीन लेंगे, या मार डालेंगे, क्योंकि युद्धमें जय पराजयका कोईभी निश्चय नहीं है ॥ ५५ ॥ जो राक्षसोंने ! युद्धमें हमको मार डाला या यहांको लाये तौ हमकोभी विपद होगी, और तुम्हाराभी समुद्रके पार होकर यहां आना व्यर्थ जायगा ॥ ५६ ॥ यद्यपि तुम सत्यही अकेले समस्त राक्षसोंका संहार कर सकतेहो; परन्तु जो तुमनें राक्षसोंका नाश कर दिया तौ श्रीरामचंद्रजीके यशका नाश होजायगा ॥ ५७ ॥ और एक दोष यहहै कि जो राक्षस लोग फिर हमको यहां पकड़ कर ले आये, तौ ऐसे स्थानमें छिपा कर रक्खेंगे कि जहां वानर गण या कोईभी हमको फिर न

देख पावै ॥ ५८ ॥ इसलिये हमारे अर्थ तुम्हारा जो इतना उद्योगहै वह समस्त विफल हो जायगा, इसलिये तुम्हारे साथ श्रीरामचंद्रजीके आनें पर ही सब कार्य सिद्ध होंगे ॥ ५९ ॥ हे महाबाहो! अमित तेजवान श्रीरामचंद्रजीका, उनके भ्राताओंका और तुम लोगोंके राज वंशका जीवन सब हमारे ही आधीन है ॥ ६० ॥ क्योंकि हमारे मर जानें पर श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीव हमारे लिये शोकसे व्याकुलहो समस्त वानर और ऋक्ष गणोंके साथ प्राण त्यागन करदेंगे ॥ ६१ ॥ व एक बात औरभी है कि जब स्वामीमें हमारी भक्तिहै; तब उनके सिवाय और दूसरे पुरुषका शरीर इच्छा करके हम छूनहीं सकतीहैं ॥ ६२ ॥ रावणनें बलात्कारसे हमारे शरीरको छुआथा, इसमें क्या करें, उस समय हमारा अपना तौ कोई वश नहींथा और पराये वशमेंथीं ॥ ६३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी इस स्थानमें रावणको मारकर हमको यहांसे लेजॉय, तभी तौ उनके योग्य कार्य होगा ॥ ६४ ॥ हमनें युद्धमें शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीके अनेक पराक्रम श्रवण किये और प्रत्यक्षभी देखते हैं, क्या देवता; क्या गन्धर्व, क्या नाग, क्या राक्षस कोईभी युद्धमें श्रीरामचंद्रजीकी समान नहींहै ॥ ६५ ॥ संग्रामभूमिमें अद्भुत धनुर्द्धारी, इन्द्रजीकी समान विक्रम कारी, लक्ष्मण समभिव्यहारी (लक्ष्मणजीके साथ) महा बलवान श्रीरामचंद्रजीको देखकर चलते हुये प्रदीप्त अग्निकी समान उनका प्रभाव कौन जन सहन कर सकेगा ॥ ६६ ॥ युद्धके मर्दन करनें वाले मतवाले दिग्गजकी समान टिके हुये युगान्त कालीन सूर्यकी समान बाण रूपी किरण वर्षानें वाले लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचंद्रजीको समरमें कौन सहन करलेगा ॥ ६७ ॥

समेकपिश्रेष्ठसलक्ष्मणंप्रियंसयूथपंक्षि
प्रमिहोपपादय ॥ चिरायरामंप्रतिशोकक
र्षितांकुरुष्वमांवानरवीरहर्षिताम् ॥ ६८ ॥

हे वानरश्रेष्ठ! तुम लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ प्रियतम श्रीरामचंद्रजीको शीघ्रही इस स्थानमें लेआओ हे वीर! हम श्रीरामचंद्रजीके शोकमें बहुत दिनोंसे कातरहैं, सो हमको हर्षित कराओ ॥ ६८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ० सुं०सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

ततःसकपिशार्दूलस्तेनवाक्येनतोषितः ॥
सीतामुवाचतच्छ्रुत्वावाक्यंवाक्यविशारदः ॥ १ ॥

जनककुमारी सीताजीके यह वचन सुनकर संतुष्टहो वाक्य विशारद कपि श्रेष्ठ हनुमानजी सीताजीसे बोले ॥ १ ॥ हे देवि! आपनें स्त्री स्वभाव सुलभ और पतिव्रता स्त्रियोंके आचरण करनें योग्य युक्ति संगत वचनही कहेहैं वह ठीकहैं॥२॥यह बात सत्यहै कि स्त्री होनेंके कारण आप हमारी पीठपर चढ़कर शत योजन विस्तार वाले अपार समुद्रके पार न हो सकेंगी३॥ हे विनयसे युक्ता!आपने श्रीरामचंद्रजीके सिवाय दूसरे पुरुषकी देहको स्पर्श करनेंकी हम अभिलाषी नहीं है, यह कारण जो तुमनें बताया ॥ ४ ॥ हे देवि! सो यहभी आपके योग्यहीहै, क्योंकि आप महात्मा श्रीरामचंद्रजीकी सहधर्मिणीहैं । आपके सिवाय और कौन स्त्री ऐसे वचन कह सकतीहैं ॥ ५ ॥ आपनें हमसे जिसप्रकारका आचरण किया, और जो वार्त्ता की श्रीरामचंद्र हमारे मुखसे वह समस्त आदिसे अंततक यथार्थ२सुनेंगे६॥ हे देवि! स्नेहसे हमारा हृदय गीला होगयाहै; और श्रीरामचंद्रजीका हित साधनही हमारा एक मात्र आशयहै;इसीलिये, अनेक कारणोंसे हमनें यह वार्त्ता कहीथी ॥ ७ ॥ लंका नगरीमें औरका प्रवेश करना दुःसाध्य, महा सागरका पार उतरनाभी कठिनहै, सो हममें यह सामर्थ्यहै; सो इन्हीं समस्त कारणोंसे हमनें यह कहाथा कि हमारे संग चली चलो ॥ ८ ॥ गुरु स्नेहके वश होंनेसे हमारा अभिलाष हुआकि आजही आपको श्रीरामचंद्रजीके निकट ले चलें इसीकारण हमनें यह वार्त्ता कही कुछ गर्वसे नहीं कहीहै ॥ ९ ॥ हे अनिन्दिते! यदि आप हमारे साथ नहीं जाना चाहती तौ हमें अपनी कुछ निशानी दीजिये, कि जिस्से श्रीरामचंद्रजीको विश्वासहो कि यह जानकीजीके पास हो आये ॥ १० ॥ जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तौ देवकन्याकी समान सीताजी रुदन करते २ धीरे २ बोलीं ॥ ११ ॥ कि हमारी यही सबसे श्रेष्ठ निशानी और यही पताहै कि चित्रकूट पर्वतके ईशान कोण वाले वृक्षके नीचे ॥ १२ ॥ मन्दाकिनीके धोरे वह सिद्ध जनोंसे सेवित फल मूल और जल सम्पन्न देशके तपस्वियोंके आश्रममें

बसनेंके समय हमारे ऊपर क्या घटना हुईथी ॥ १३ ॥ वह घटना यहहै, कि एक दिन अनेक विधि फूलोंकी समूहकी सुगंधिसे आमोदित उस उपवन भूमिमें विहारकर जलमें क्रीड़ा करनेंसेभी तुम हमारे अंकमें सो गये ॥ १४ ॥ कि उसी समयमें एक कौएनें आकर मांसके लालचसे हमारी छातीमें चोंच मारी, कि जिसको हमनें ढेलेसे निवारण किया॥१५॥ परन्तु वह कौआ न हटकर उसी स्थान पर बैठ हमको विदारण करनें लगा ॥ वह कहीं उड़ कर न गया मानो मांस भोजनके निमित्त बैठाही रहा ॥ १६ ॥ तब उस समय हमनें उसके प्रति क्रोधकर दृढ भांतिसे वस्त्र पहरनेंके लिये जैसेही अपना वस्त्र पकड़ा कि वैसेही हमारा वस्त्र खसक गया, उसी समय तुम उठकर हमारी ओर दृष्टि करके हँसनें लगे॥१७॥ आपको हँसता हुआ देखकर हम लज्जित व क्रोधित हुईं और भोजनके लिये ललचाये काक करके विदारितहो हमनें तुम्हारी शरणली ॥ १८ ॥ काकको निवारण करनेंसे हमको श्रम हुआ इसलिये हम तुम्हारे अंकमें बैठीं, हमारी ऐसी अवस्था देख तुमनें कुछ न कहकर और हमारी हँसी की, सो हमको इस्से क्रोध हुआथा, सो क्रोध देखकर आपनें हमको बहुत समझाया बुझाया उस समय हम आंसू पूर्ण मुखसे धीरे २ आँसुओंको पोछनें लगीं। नाथ! काकके क्रोध उपजानेंसे; तुमनें इस अवस्थामें हमारा आदर कियाथा ॥१९॥२०॥ इसके पीछे हम मारे परिश्रमके शांत होकर तुम्हारी गोदीमें गई अनेक क्षण तक सोई रहीं, जब हम जागीं, तब तुम हमारे अंकमें सोगये ॥ २१ ॥ कि इस अवसरमेंही अचानक इस काकनें फिर तुम्हारे अंकसे जागरित हमारे निकट आय कर हमारी छातीमें पंजे मारकर विदीर्ण कर डाला ॥ २२ ॥ वार वार उडकर और फिर आय २ कर उसने हमारे शरीरको क्षत विक्षत कर दिया, जब छातीमेंसे रुधिरकी बूँदें गिरनें लगीं तब श्रीरामचंद्रजी जागे ॥ २३ ॥ स्तनोंके बीचमें घाव हुआ देखकर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी क्रोधित सर्पकी समान गर्जन करते २ हमसे बोलेकि ॥ २४ ॥ हेकरिकरोरु! (गजकी समान गोल व चढा उतार जांघो वाली) तुम्हारे स्तनोंके बीचमें किसनें घाव किया? क्रोधित पंचमुहे सर्पके साथ किसको खेलनेंकी इच्छा हुईहै। ॥२५॥ फिर उन श्रीरामचन्द्रजीनें इधर उधर दृष्टि चलायकर देखा कि काक

रुधिरसे भीगा तीक्ष्ण नख युक्त हमारेही ओरको मुखकिये खड़ाथा॥२६॥ हे हनुमन! यह काक कपट वेशधारी जयन्त इन्द्रका पुत्रथा, यह पवन की समान वेगवान बडी शीघ्रतासे वनमें आयाथा पृथ्वीमें प्रवेशकर सकताथा ॥ २७ ॥ इस काकको देखकर क्रोधके मारे श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र घूमनें लगे उन्होंने इस काकके विनाशकी वासनाकी ॥ २८ ॥ उन्होंने बिछे हुए कुशोंमेंसे एक कुश निकाल उसे मंत्रसे अभिमंत्रितकर ब्रह्मास्त्र-योजित किया, वह कुश उस काकके सामनें जलती हुई कालाग्निकी समान उसे जलाता हुआ ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें वह प्रज्वलित कुश उस काकके प्रति छोड़ा, वह आकाश मार्गमें उस काकके पीछे २ धाया ॥ ३० ॥ काक उस अस्त्रसे छुटकारा पानेंकी अभिलाषासे विचित्र गतिसे एक २ करकै ब्रह्माण्डके सब लोकोंमें घूमा परन्तु किसीनेंभी उसको आश्रय नहीं दिया ॥ ३१ ॥ समस्त ब्रह्मर्षि देवर्षियोंनें वरन उनके पिता इन्द्र तकनें उसका त्यागकर बाततक नहीं पूछी, इस प्रकारसे वह त्रिलोकीमें घूम घाम कर फिर श्रीरामचंद्रजीकीही शरणमें आया ॥३२॥ जबकि वह शरणागतहो पृथ्वीपर आयकर गिरगया, तब आश्रय दाता श्रीरामचंद्रजीनें वधके योग्य होंने परभी उसका वध नहीं किया, और कृपा करकै उसके प्राणोंकी रक्षाकी ॥ ३३ ॥ जब काक क्षीण और विवर्ण भावसे आनकर गिरगया तब श्रीरामचंद्रजीनें उस्से कहा, कि ब्रह्मास्त्र कभी निष्फल नहीं होता, इसलिये बताओकि तुम्हारा कौनसा अंग नष्ट करैं ॥ ३४ ॥ तब काकनें कहा कि हमारा एक नेत्र इस बाणकी भेंटहै, तब श्रीरामचन्द्रजीके उस अस्त्रनें काकका दहना नेत्र फोड़ डाला, काकनें भी दहना नेत्र देकर अपने प्राणोंको बचाया ॥ ३५ ॥ तब वह काक श्रीरामचन्द्रजीको और दशरथजीको प्रणामकर, व श्रीरामचन्द्रजीसे विदाले अपने स्थानको चलागया ॥ ३६ ॥ हे महीपते! जब कि तुमनें एक काकपर जिसनें कि हमसे थोड़ाही अन्याय कियाथा ब्रह्मास्त्र चलाया, तब उसको आप क्यों क्षमा कर रहेहैं, कि जो आपके निकटसे हमको हरण करके ले आया है ॥ ३७ ॥ हे नर श्रेष्ठ! अति प्रबल उत्साहका आश्रय लेकर तुम हमपर कृपाकरो। हे नाथ! तुम्हारे नाथ रहते हुएभी हम अनाथकी समान जान पडतीहैं ॥ ३८ ॥ हमनें आपसेही सुनाहै कि दया-

ही परम धर्महै फिर आप क्यों नहीं हमारे ऊपर दया प्रगट करते हैं, हम जानती हैं कि आप महा बलवान महा वीर्यशाली और महोत्साह सम्पन्न हैं ॥ ३९ ॥ अपार महिमा वाले, स्थिर प्रकृति, गंभीरतामें समुद्रकी समान, और इन्द्रजीकी समान इस वन सागर सहित पृथ्वीके तुम एकही राजाहो ॥४०॥परन्तु इस प्रकारसे अस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ, बलवान् और साहसी होकरभी राक्षसोंके ऊपर आप अस्त्र क्यों नहीं चलातेहैं॥ ४१ ॥ हे हनुमान! क्या नाग,क्या गन्धर्व, क्या असुर,क्या मरुद्गण कोईभी युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीका वेग निवारण करनेंमें समर्थ नहीं है ॥ ४२ ॥ वह महावीर श्रीरामचन्द्रजी हमारा कुछभी आदर करतेहों, तौ फिर तीक्ष्ण बाणोंको वर्षायकर राक्षसकुलका क्षय क्यों नहीं करते हैं? ॥ ४३ ॥ महा बलवान शत्रुओंके तपानें वाले वीर लक्ष्मणजीभी किस कारणसे अपने भाई की अनुमति लेकर हमारा उद्धार क्यों नहीं करतेहैं? ॥ ४४॥ यदि वह दोनों पुरुष श्रेष्ठ सत्य २ ही पवन और इन्द्रजीकी समान तेजस्वी और देवता लोगोंसेभी जीतनेंके योग्य नहीं है, तब फिर किस कारणसे हमारी उपेक्षा करतेहैं? ॥ ४५ ॥ निश्चय हमारा ही कोई ऐसा घोर पापहै, कि वह श्रीरामचंद्रजी सामर्थ्यवान और शत्रुओंके दमन करनेंमें समर्थ होकर भी हमारे प्रति दया नहीं करते हैं ॥ ४६ ॥ सीताजीके इस प्रकारसे अश्रु पूर्ण और करुणासे भरे वचन सुनकर वानर यूथपति महा तेजवान हनुमानजी उनसे बोले ॥ ४७ ॥ हे देवि ! हम सत्यकी सौगन्ध करतेहैं; कि आपके दर्शन न होंनेके शोकसे श्रीरामचंद्रजी सबही कार्योंसे विमुख होरहे हैं और उनका शोक देखकर लक्ष्मणजी भी संतापित होतेहैं ॥ ४८ ॥ हे शोभने ! बडे भाग्यकी बातहै कि इस समय हमनें आपका दर्शन पाया, अब शोक करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं है, अब बहुत ही शीघ्र आपके दुःखका अंत आवेगा ॥ ४९ ॥ वह दो महा बलवान पुरुषशार्दूल आपका दर्शन करनेंके लिये उत्साहित होकर अवरोध कारक त्रिलोकीकोभी भस्म कर देंगे ॥ ५० ॥ हे विशाल नयने ! श्रीरामचंद्रजी संग्राममें क्रूर रावण राक्षसको उसके वंशसहित संहार करके तुमको नगरमें लेजांयगे ॥ ५१ ॥ महा बलवान श्रीमान् राम, लक्ष्मण, तेजस्वी, सुग्रीव और एकत्र हुये वानरोंसे जो हम सन्देशा

कहें सो आप बतला दीजिये ॥ ५२ ॥ जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तब सीताजी फिर बोलीं कि मनस्विनी कौशल्या देवीनें जिन लोक प्रति पालक पुत्रको उत्पन्न कियाहै ॥ ५३ ॥ तुम हमारी ओरसे उनसे कुशल पूछकर प्रणामकरना जो विविध प्रकारके पुष्पोंकी माला, सर्वप्रकारके रत्न व उत्तम २ स्त्रियां॥ ५४ ॥ और इसविशाल पृथ्वीके दुर्लभ ऐश्वर्यको छोड़ पिता माताका वचन मानकर उनकी प्रसन्नताले ॥ ५५ ॥ श्रीरामचंद्रजीके साथ वनमें आयेहैं, और जिनको उत्पन्न करके सुमित्रा सुसन्तानवती हुई हैं, जो सबभांतिके सुखको त्याग धर्मके अनुकूल महात्मा ॥ ५६ ॥ यहां वनमें आये श्रीरामचंद्रजीकी रक्षा करते जो सिंहस्कन्ध, महा बाहु बुद्धिवान प्रिय दर्शन ॥ ५७ ॥ जो श्रीरामचंद्रजीमें पिताकी समान और हममें जननीकी समान आचरण करतेहैं; हम हरण कर जांयगी ऐसा उन वीरनें नहीं जानाथा ॥ ५८ ॥ जो वृद्धजनोंकी सेवा किया करतेहैं, जो लक्ष्मीवान समर्थ और अल्पभाषीहैं; जिनसे श्रीरामचंद्रजीको और कुछ अधिक प्रिय नहीं है व सब बातोंमें हमारे श्वशुर अनुरूप ॥ ५९ ॥ जो हमसे भी अधिक अपने भ्राता, श्रीरामचंद्रजीके प्यारेहैं, जो किसी कार्यमें नियुक्त होकर अति चतुरताके साथ पूरा करतेहैं ॥ ६० ॥ जिनको देखकर श्रीरामचंद्रजी अपने मृतक पिताका व्यवहार भूल गये हैं, जो मृदुल स्वभाव, सदा पवित्र, कार्य करनेंमें चतुर और श्रीरामचंद्रजीके प्यारे हैं ? सो तुम हमारी ओरसे उन लक्ष्मणजीका सन्मान करके क्षमाकी प्रार्थना करना, क्योंकि हरण होंनेसे कुछ देर पहले हमने उन्हें बड़े २ वचन कहेथे; फिर कुशल पूछकर कहना कि आप हमारा दुःख नाश करनेंके लिये शीघ्र यत्नवानहों ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ हे हनुमन् ! अधिक क्या कहैं, इस कार्यकी सिद्धिके तुमही मूलहो सो ऐसा करना कि जिस्से इस कार्यका निर्वाह होजाय, वह श्रीरामचंद्रजी तुम्हारा कार्य देखकर हमारे प्रति यत्न परायण होंगे ॥ ६३ ॥ हमारे प्यारे स्वामी देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे वारंवार कहना कि हे दशरथकुमार! हम और एकमास तक जीवन धारण करेंगी ॥ ६४ ॥ हम सत्यही कहतीहैं कि एकमासके पीछे हम अवश्य प्राण छोड़ देंगी । हे वीर! भगवानजीनें पातालसे जिस प्रकार पृथ्वीका उद्धार कियाथा, वैसेही क्रूर कारी

रावण राक्षसके बंधनमें पड़ी हमारा रघुनाथजी उद्धारकरैं ॥ ६५ ॥ यह कहकर सीताजीनें वस्त्रमें बंधा हुआ मुक्ता खचित चूणामणि ग्रहण करके " यह श्रीरामचंद्रजीको देना" यह कह हनुमानजीके हाथमें वह चूड़ामणि देदी ॥ ६६ ॥ हनुमानजीने वह उत्तम रत्न ग्रहण करके बांहमें बांधना ठीक न विचार उसे अपनी उँगलीमें बांधलिया ॥ ६७ ॥ और सीताजीकी परिक्रमा करकै फिर प्रणाम किया, उस रत्नको ग्रहण करके माथा नवाय एक ओर खड़े होगये ॥ ६८ ॥ सीताजीके दर्शनका लाभ पाय हनुमानजीं अतिशय हर्षितहो मनही मनसे शुभ लक्षण श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके निकट पहुंच गये ॥ ६९ ॥

मणिवरमुपगृह्यतंमहार्हंजनकनृपात्मजया
धृतंप्रभावात् ॥ गिरिवरपवनावधूतमुक्तः
सुखितमनाःप्रतिसंक्रमंप्रपेदे ॥ ७० ॥

जनकनंदिनी सीताजी अतिउत्तम प्रभावके वश जिसको इतने दिन अति गुप्त भावसे धारण करतीथीं, हनुमानजी वही महा मोलकी मणि रत्न पायकर पर्वतके शिखरपर झंझा वायुके कम्पसे छुटकारा पाये हुए पुरुषके समान मनमें सुखी हुए; इसकेपीछे लंकाके दुर्ग द्वारके सन्मुख हनुमानजीनें जाना चाहा ॥ ७० ॥ इ०श्रीम०वा०आ०सुं०अष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

मणिंदत्त्वाततःसीताहनूमंतमथाब्रवीत् ॥
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्यतत्त्वतः ॥ १ ॥

चूड़ामणि देकर सीताजी हनुमानजीसे बोलीं कि श्रीरामचंद्रजी इस चिह्नको भली भांति जानतेहैं ॥ १ ॥ इस मणिके देखतेही श्रीरामचंद्रजीको तीन जने याद आवेंगे, हम, माता कौशल्याजी. और राजा दशरथजी। क्योंकि विवाहके पश्चात् जब हम अयोध्यामें आई तब राजा दशरथजीके सामने श्रीरामचंद्रजीकी माता कौशल्याजीनें यह माणि हमें मुँह दिखावे में दी ॥ २ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! तुम इस कार्यमें विशेष करके उद्योग करना; क्योंकि जब श्रीरामचंद्रजीको तुम यह चूडामणि दोगे, तब वह मणि पाय युद्ध करनेके विषयमें तुमको प्रेरित करेंगे, इस कारण इस कार्यमें उत्साह

विक्रमकारी राक्षस लोगोंके बहुत पीड़ा देने परभी हनुमानजी अति विस्मय युक्तहो रावणको देखनें लगे ॥ १५ ॥ तिसके पीछें राक्षसपति रावणका इस भांतिका प्रभाव देख उसके तेजसे मोहित हो हनुमानजी मनही मनमें चिन्ता करनें लगे ॥ १६ ॥ अहो राक्षसराज रावणका क्या रूपहै? क्या धैर्यहै? क्या पराक्रम? क्या देहकी कांति? क्या सर्व लक्षण सम्पन्न है ॥ १७ ॥ इस राक्षसराजका अधर्म यदि इतना बलवान् न होता तौ यह इन्द्र सहित समस्त देवलोककी रक्षा करनेंमें समर्थ होता ॥ १८ ॥ इस पापीनें जो सकल लोकोंमें निन्दनीय बुरा करनेंवाले नीच कार्योंके अनुष्ठान किये हैं तिस्से सुरासुर समेत तीनों लोक इस्से डरते हैं ॥ १९ ॥

अयंह्युत्सहतेक्रुद्धःकर्तुमेकार्णवंजगत् ॥
इतिचिंतांबहुविधामकरोन्मतिमान्कपिः ॥
दृष्ट्वाराक्षसराजस्यप्रभावममितौजसः ॥ २० ॥

रावण क्रोधकर चाहै तौ समस्त संसारका समुद्र कर डालै; मतिमान हनुमानजी अति पराक्रम रावणका प्रभाव देखकर इस प्रकारकी विविध चिन्तायें करते हुए ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० सु० एकोन पंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशः सर्गः ॥

तमुद्वीक्ष्यमहाबाहुःपिंगाक्षंपुरतःस्थितम् ॥
रोषेणमहताविष्टोरावणोलोकरावणः ॥ १ ॥

पीली आंखोंवाले हनुमानजीको सामने खड़ा हुआ देखकर महा बलवान लोकोंका रुवानेंवाला रावण महाक्रोधित हुआ ॥ १ ॥ परन्तु हनुमानजीका तेज पुंज शरीर देख शंकितहो चिन्ता करनें लगा, कि यह वानररूपी साक्षात् भगवान नंदी तौ यहां पर नहीं चले आये हैं ॥ २ ॥ पूर्व कालमें कैलास पर्वतपर हम इनका वानरमुख देखकर हँसेथे; सो तब इन नंदीनें हमको शाप दियाथा कि मेरे मुख सरीखे वानरसेही तेरा नाश होगा, अथवा यह वानर राजा बलिका पुत्र बाण तौ नहींहै? ॥ ३ ॥ इस प्रकारकी चिन्ता करता हुआ राजा रावण क्रोधके मारे लाल२ ने-

त्रकर समयानुसार अर्थयुक्त वचन प्रधान मंत्री प्रहस्तसे कहनें लगा ॥४॥ कि इस दुरात्मासे पूछो कि कहांसे किस कारण यह यहांपर आयाहै; और किस वास्ते अशोक वन उजाडकर इसनें राक्षसोंको भय पहुँचाया ॥५॥ तुम फिर इस खोटी मतिवालेसे पूछो कि हमारी इस अगम्य नगरीमें आनेंका इसका क्या प्रयोजन है, और हमारे नौकर राक्षसोंसे इसनें क्यों युद्ध किया ? ॥ ६ ॥ रावणकी यह वार्त्ता सुनकर प्रहस्त हनुमानजीसे कहनें लगा कि वानर ! तुम सावधान होवो, हम लोगोंसे भय करनेंकी तुमको कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ७ ॥ तुम्हारा मंगल होगा सत्य २ कहो; कि क्या देवराज इन्द्रनें तुमको इस लंका पुरीमें भेजाहै ? तुमको कुछ भय नहीं सत्य कहो तुम अवश्यही छुट जाओगे ॥ ८ ॥ अथवा तुम कुबेर, यम, वरुण, होजो यह सुन्दर रूप बनाय इस पुरीमें आये हो ॥ ९ ॥ अथवा विजयाभिलाषी विष्णुजीके दूत होकर तुम यहां आये हो ? क्यौं कि तुम रूपमें तौ वानरहो परन्तु तुम्हारा विक्रम वानरकी समान नहीं है १० हे वानर ! सत्य २ कहनेंसे तुम अभी छूट जाओगे? और जो मिथ्या कहोगे तौ तुम्हारे जीते रहनेंमें भी संशयहै ॥ ११ ॥ जो कुछभी हो, तुम जिस कारणसे भी इस राक्षसराज रावणके स्थान पर आयेहो वह सब कहो। जब प्रहस्तनें इस प्रकारसे कहा तौ हनुमानजी राक्षसपति रावणसे बोले॥१२॥ हम इन्द्र, यम, व वरुणके दूत नहींहैं; न कुबेरके साथ हमारी मित्रताहै; अथवा विष्णुजीनें भी हमको नहीं भेजाहै ॥ १३ ॥ हमारा रूप स्वभावसे ऐसाहीहै, वास्तवमें हमारी जातिही वानरहै, हमें तुम लोगोंके दर्शन होने दुर्लभहैं इसी कारणसे हम तुम्हारे देखनेंको यहां आये हैं ॥ १४ ॥ और राक्षसनाथके दर्शन करनेंको ही हमनें इस दुर्लभ बनको उखाड़ डालाहै; और उस समयमें जो बलवान निशाचर युद्धकी अभिलाषा करकै आयेथे ॥ १५ ॥ शरीर रक्षाके निमित्त हमनें उनसे युद्ध किया और देवता व असुर कोई भी हमको अस्त्र या फांसीसे नहीं बांध सकते ॥ १६ ॥ स्वयं पितामह ब्रह्माजीनेंभी हमको यह वर दियाहै कि दो घडीसे अधिक हमारा अस्त्र भी तुमको नहीं बांध सकैगा । सो हमनें तौ केवल राजाका दर्शनही पानेंके अर्थ इस अस्त्रके बंधनको माना॥१७॥ इस वार्त्ताको तुम्हारे सब राक्षस जानतेहैं कि अस्त्रसे तौ हम वहीं छूट ग-

येथे, परन्तु यथार्थ बात तो यहहै कि हम श्रीरामचंद्रजीका कोई कार्य सिद्ध करनेंको तुम्हारे पास आयेहैं ॥ १८ ॥

दूतोहमितिविज्ञायराघवस्यामितौजसः ॥
श्रूयतामेववचनंममपथ्यमिदंप्रभो ॥ १९ ॥

हे प्रभो ! हम अमित तेजवान श्रीरामचंद्रजीके दूतहैं, यह भलीभांति जानकर जो हितकारी वचन हम कहतेहैं, वह तुम सुनो ॥ १९ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०सुन्दरकांडे पंचाशःसर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशः सर्गः ॥

तंसमीक्ष्यमहासत्त्वंसत्त्ववान्हीरसत्तमः ॥
वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाचदशाननम् ॥ १ ॥

सत्वसम्पन्न वानरश्रेष्ठ हनुमानजी बलवान रावणको देखकर बिना घबड़ाहटके युक्ति युक्त वचन कहनें लगे ॥ १ ॥ हे राजन् हम सुग्रीवजी की आज्ञासे आपके निकट आयेहैं। वानरराज सुग्रीवजीनें भायपनसे तुम्हारी कुशल पूछीहै ॥ २ ॥ तुम उन महात्मा अपने भ्राता सुग्रीवजी के दोनों लोकोंमें हितके करनेंवाले धर्म अर्थ युक्त कहे हुए वचन श्रवण करो ॥ ३ ॥ उन सुग्रीवजीनें कहाहै कि बहुत सारे हाथी, घोडे, रथों के अधिपति और इन्द्रजीकी समान द्युतिमान दशरथनामक राजा अपनी प्रजाकी व सब लोककी इस भांति रक्षा करतेथे कि जैसे पिता पुत्रकी रक्षा करताहै ॥ ४ ॥ उनके परमप्यारे बडेपुत्र महाबाहु. सब कार्योंके करनेंमें समर्थ अपने पिताकी आज्ञानुसार दंडक वनमें आये ॥ ५ ॥ वह धर्मके मार्गमें टिके हुए अमित तेजमान श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्या सीताजीके सहित वनमें आये ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे सुना जाताहै कि महात्मा राजर्षि जनकजीकी कन्या सीतानामक उनकी भार्या जनस्थानमें आकर हरी गईहैं ॥ ७ ॥ राजकुमार श्रीरामचंद्रजी अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीके साथ श्रीसीताजीको ढूंढ़ते २ ऋष्यमूक पर्वतपर पहुंचकर सुग्रीवजीकेसाथ मिले ॥ ८॥ सुग्रीवजीनें प्रतिज्ञाकी सीताजीको ढूंढदेंगे, और श्रीरामचंद्रजीनेंभी अंगीकारकिया कि सुग्रीवजीको वानरोंका राज्य देदेंगे ॥ ९ ॥ तिसके पीछे

राजकुमार श्रीरामचंद्रजीनें समरमें वालिको मारकर सुग्रीवजीको वानरोंका राजा बनादिया॥ १०॥सो वानरराज वालिको तौ तुम प्रथमहीसे जानतेहो कि। उसमें कितना बलथा; सो महात्मा श्रीरामचंद्रजीनें संग्रामस्थलमें केवल एकही बाणचलाय वानरश्रेष्ठ वालिको मारडाला ॥ ११ ॥ जब वालि मारागया तब सत्य प्रतिज्ञ सुग्रीवजीनें सीताजीको ढूंढनेंके लिये उकसायकर सब वानर यूथोंको चारों ओर भेजदिया॥ १२ ॥ तिन सुग्रीवजीके भेजेहुए सहस्र२ लक्ष२ करोड़२ वानर समस्त दिशि मंडल आकाशमंडल वरन पाताल तक सीताजीकी खोज करनेंलगे॥१३॥उन वानर यूथपोंमेंसे कोई गरुड़जीकी समान, कोई पवन तुल्य, शीघ्रगामीहैं; सवही महाबलवान जिनकी गति कहीं जानेंमें नरुकै और शीघ्र गमन करनेंमें समर्थ ॥ १४ ॥ उन्हीं वानरोंमेंसे हम पवनके औरसपुत्र हनुमान नामक वानर सीताजीको ढूंढनेंके लिये शतयोजन फांटवाल ॥ १५ ॥ महा समुद्रके पारहोकर तुम्हारे दर्शन करनेंकी अभिलाषासे यहांपर आयेहैं हमने घूमते २ तुम्हारे गृहमें जनकनंदिनी सीताजीको देखाहै ॥ १६ ॥ हे महापंडित! तुमनें धर्मके मर्मको न जानकर अपने तप बलसे विविध भांतिके अपूर्व सौभाग्य इकट्ठे कर रक्खेहैं ॥१७॥ इसलिये पराई स्त्रीका रोकना तुमको उचित नहींहै जोकि बहुत अनर्थोंका हेतु, और जोकि मूल सहित नष्ट कर देताहै, ऐसे धर्म विरुद्ध कार्यको तुम सरीखे बुद्धिमान् पुरुष कभी नहीं करतेहैं ॥ १८ ॥ विशेष करके देवता गण और असुरोंके मध्यमेंभी ऐसा कोईभीहै, कि जो श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके क्रोधसे चलाये बाणोंके सन्मुख टिकनेमें समर्थहो ॥१९॥ हेराजन्! त्रिलोकीमें ऐसा कोई नहीं है कि जो श्रीरामचंद्रजीका अप्रिय कार्य करके आप सुखमें रहनेंको समर्थहो ॥ २० ॥ इसलिये हे राज शार्दूल तुम श्रीरामचंद्रजीको जानकीजी लौटाय दो, हमनें जो कुछ कहा वह तीनों कालमें हित करनें वाला धर्म युक्त और शास्त्र सम्मत वचनहै ॥ २१ ॥ इसकारण यह वचन मानलो, हमनें उन सीतादेवीको तुम्हारे स्थानमें देखाहै; सो इनके देखनें से हमको वह यशमिलाकि जो दूतोंके लिये दुर्लभहै, इसके पीछे जो कार्य शेष रहा अर्थात् जानकीजीका लेजाना वह श्रीरामचंद्रजी अपने आपही सिद्ध कर लेंगे ॥ २२ ॥ हमनें सीताजीको बहुत शोकयुक्त

देखाहै । तुम नहीं जानतेकि यह सीताजी पांचफणेंवाली सर्पिनीकी समान तुम्हारे स्थानमें टिकी हुईहैं ॥ २३ ॥ असुरोंके सहित समस्त देवता गणभी उन सीताजीको नहीं पचाय सकेंगे, जैसे भोजनको शक्तिके बलसे विष मिला हुआ अन्न खानेंपर कोई नहीं पचा सकता ॥ २४ ॥ तुमनें तपोबलसे यह धर्मसे साधन किया ऐश्वर्य और बडीभारी उमर प्राप्त कीहै, सो इस प्रकारके धन, ऐश्वर्य, व आपको पराई स्त्रीके हरण करनें के अधर्मसे नाश नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ और तुमनें जो अपनेको देव दानवोंसे अवध्य जानाहै, सो इसमेंभी तपका बलही प्रधान कारण है, सो इस तप बलका नष्ट करना तुमको उचित नहींहै ॥ २६ ॥ कपि वीर सुग्रीवजी, देव, राक्षस, वा यक्ष नहीं हैं; वे वानरोंके राजा और श्रीरामचन्द्रजी मनुष्यहैं; इसलिये हे राक्षस नाथ! तुम इनसे किस प्रकार बचकर जीवन धारण कर सकोगे क्योंकि ब्रह्माजीसे तुमने यह वर नहीं पाया कि मनुष्य और वानरोंसे भी न मारे जाओ ॥२७॥ यह सत्यही सत्य है कि धर्म करनेंसे अधर्मका नाश हो जाताहै परन्तु जिसके अधर्मका फल फलाही चाहताहै वह कभी धर्म फलको नहीं पाय सकता वरन अधर्म के ही फलको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ पहले जो तुमनें धर्म कियाहै उसका फलतौ यह ऐश्वर्य निःसन्देह तुमने प्राप्त किया ;और इस समय पराई स्त्रीका जो हरण तुमनें कियाहै; इसका फलभी शीघ्र पाओगे अर्थात् तुम्हारा नाश हो जायगा ॥२९॥ जनस्थानमें चौदह हजार राक्षसोंका विध्वंश वालि का मरण श्रीरामचंद्रजी व सुग्रीवजीकी मित्रता स्मरण करके तुम अपने हितकी चिन्ता करो ॥३० ॥ यद्यपि निश्चयही हम अकेलेहैं परन्तु अश्व, रथ, और गजोंके सहित समस्त लंका पुरीका नाश सरलता से करसकते हैं, परन्तु श्रीरामचंद्रजीनें हमसे लंकाका विध्वंश करना निश्चय नहीं किया ॥ ३१ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें रीछ वानरोंके निकट प्रतिज्ञाकीहै कि जिस शत्रुओंनें सीताजीका अपमान या तिरस्कार कियाहै हम उन सब शत्रु लोगोंका संहार अपने हाथसे करेंगे ॥ ३२ ॥ अधिक क्याकहैं साक्षात् इन्द्रभी श्रीरामचंद्रजीका अपकार करके सुख नहीं पाय सकते फिर तुम्हारे समान दूसरे लोगोंकी तो बातही क्या है ॥३३॥जिनको तुम सीताजी जानते हो और जो तुम्हारे स्थानपर रहती हैं उन सीताजीको तुम कालरात्रि की समान जानो बस

यही काल रात्रि समस्त लंकाका नाश करदेंगी ॥ ३४ ॥ इसलिये सीता रूप कालकी फाँसीको तुम्हें अपने गलेमें बांधनेंकी कुछ अवश्यकता नहीं सो इसकारण तुम अपने उद्धारका उपाय सोचो ॥३५॥ तुम बड़ी शीघ्रतासे देखोगे कि समस्त अटा अटारियें और राज मार्गोंके सहित यह लंकानगरी सीताजीके क्रोधसे दग्ध और श्रीरामचंद्रजीके कोपसे भस्म हो जायगी ॥३६ हे राक्षसनाथ! अपने मित्र, मंत्री, जातिके लोग, भाई, हित पुत्र, स्त्रियां और लंकापुरी, इन सबका विनाश तुम न करो स्वस्थहो ॥ ३७ ॥ हे राक्षसेन्द्र! हम श्रीरामचंद्रजीके दास दूत और वानरहैं; हम बहुतही सोच विचार कर जो सत्य वचन तुमसे कहतेहैं, वह सुनो ॥ ३८ ॥ महा यशवान् श्रीरामचंद्रजी स्थावर; जंगम, (चर व अचर) और सब जाति वाले प्राणी पुञ्जोंके समस्त। लोकोंका संहार करके, फिरभी वैसेही सृष्टि उत्पन्न कर सकतेहैं ॥ ३९ ॥ देवता असुर, नरपति, यक्ष, रक्ष, उरग विद्याधर, नाग, गन्धर्व, मृग, ॥४०॥ सिद्ध, किन्नरेन्द्र; और पक्षी इत्यादि सब देशोंमें व सब कालमें ऐसा कोईभी नहींहै ॥ ४१ ॥ जो उन विष्णुकी समान, पराक्रमवाले श्रीरामचंद्रजीसे संग्राम कर सके जबकि तुमने नर नाथ सब संसारके पति राजश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रका पहले अनिष्ट कार्य कियाहै तबतौ तुम्हारा जीनाही बहुत दुर्लभ होजायगा ॥ ४२ ॥ हे राक्षसपति! देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, यक्ष कोईभी युद्धमें त्रिलोकीके नाथ श्रीरामचंद्रजीके आगे नहीं ठहर सकता ॥ ४३ ॥ यही नहीं वरन स्वयंभू। ब्रह्मा त्रिपुरको दग्ध करनेंवाले रुद्र, अथवा सुर नायक इन्द्रभी श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख युद्ध करनेंको समर्थ नहीं हैं ॥ ४४॥

ससौष्ठवोपेतमदीनवादिनःकपेर्निशम्या
प्रतिमोऽप्रियंवचः ॥ दशाननःकोपविवृत्तलो
चनःसमादिशत्तस्यवधंमहाकपेः ॥ ४५ ॥

महाकपि हनुमानजीनें विना घबड़ाये यह सुन्दर अनुपम और प्यारे वचन कहे तब रावण यह वचन सुन क्रोधके मारे दोनों नेत्र घुमाय हनुमानजीके वधकी आज्ञा देता हुआ ॥ ४५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुंदरकांडे एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशःसर्गः॥

सतस्यवचनंश्रुत्वावानरस्यमहात्मनः ॥
आज्ञापयद्वधंतस्यरावणःक्रोधमूर्छितः ॥ १ ॥

राक्षसश्रेष्ठ रावण महात्मा हनुमानजीके यह वचन सुनकर क्रोधके मारे मूर्च्छितहो उनके विनाश करनेंकी आज्ञा देता हुआ॥१॥ जब दुरात्मा रावण करके हनुमानजीके मार डालनेंकी आज्ञा हुई, तो विभीषणजीनें यह विचार कर उस बातको नहीं माना, कि हनुमानजीनें अपनेको दूत बताया, और वास्तवमें यह दूतहीहैं, सो दूत कभी नहीं मार डाला जा सकता ॥ २ ॥ तिसके पीछे विभीषणजी रावणको क्रोधित और हनुमान जीका वध आया जान अपने कर्त्तव्य कार्यके विषयमें चिन्ता करनें लगे ॥ ३ ॥ कुछ देरतक चिन्ता करनेंके पीछे कर्त्तव्य कार्य स्थिर हो जानेंपर वचन बोलनें वालोंमें चतुर विभीषणजी समझानें बुझानेंके वच-नोंसे शत्रुओंके जीतनें वाले पूजनीय अपने बड़े भाई रावणकी पूजा करके अत्यन्त हितकारी वचन बोले ॥ ४ ॥ हेराक्षसेन्द्र! कोपको त्यागकर, और क्षमाको ग्रहण करके प्रसन्न चित्तसे आप हमारी यह वार्ता श्रवण करें। जो लोगकि सब पूर्वापरकी बातोंको जानतेहैं; वह साधु स्वभाव वाले राजा लोग कभी दूतको नहीं मारा करते ॥ ५ ॥ हेराजन्! हेवीर! इस वानरका वध करना, धर्म विरुद्ध लोकाचारमें निन्दनीय, अयशका करनें वाला और आपके योग्यतो किसी प्रकारसे नहीं है ॥ ६ ॥ आप धर्मज्ञ कृतज्ञ, राजधर्मविशारद, पूर्वापर सब बातोंके जाननें वालेहो, और परमार्थ तत्त्वके जाननेंमें बहुतही चतुरहो ॥ ७ ॥ सो आप सरीखे पुरुष लोगभी यदि क्रोधायमान हो जावें, और ऐसा करैं तो शास्त्रका पढ़ना केवल श्रमहीं समझा जाय ॥ ८ ॥ इस कारण हेशत्रुदमनकारी दुःखसे प्राप्त होनेके योग्य राक्षसपते! प्रसन्नहो युक्तायुक्तका विचार कर दूतको दंडही दीजिये ॥ ९ ॥ विभीषणजीके ऐसे वचन सुनकर राक्षसपति रावणनें महा क्रोधके वश होकर उत्तर दिया ॥ १० ॥ हे शत्रुओंके नाश करनें वाले! पापी लोगोंके मारनेंसे किसी प्रकारका पाप नहीं लगता; इस कारण हम इस पापकारी वानरको अवश्यही मरवा

डालेंगे ॥ ११ ॥ बुद्धिवान लोगोंमें प्रथम गिने जानेके योग्य विभीषणजी रावणकी यह नीच जनोंके योग्य अधर्मकी मूल और बहुत दोषोंसे युक्त वार्ता श्रवण करकै परमार्थ तत्त्वसे सने वचन कहनें लगे॥१२॥हेराक्षसे न्द्र ! हे लंकेश्वर ! प्रसन्न होकर धर्मका गूढ़ मर्म श्रवण कीजिये, अपने स्वामीका कार्य, सिद्ध करनेंके समय दूतको नहीं मारना चाहिये, सदा ही साधु गण इस प्रकारसे कहा करतेहैं ॥ १३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि यह वानर आपका अति वलवान शत्रुहै, क्योंकि इसनें आपके अप्रिय कार्यको कियाहै, परन्तु साधु लोगोंकी कहनके अनुसार दूत कभी मार डालनेंके योग्य नहींहै हां. परन्तु शास्त्रमें उनके लिये और अनेक प्रकारके दंड कहेहैं ॥ १४ ॥ कोई अंगविरूप कर देना, अथवा नाक कानादि कटवा डालना, शरीरमें कोड़े लगवाना, शिर मुड़वा देना, इन सब दंडोंको एक २ करकै दे, या इन सब दंडोंका एक वारही प्रयोग करना उचितहै; वस दूतोंके लिये यह सब दंड कहेहैं; परन्तु दूतोंके मारडालनेंका दंड । हमनें कभी नहीं सुना ॥ १५ ॥ और आप समान जिन पुरुषोंकी धर्मार्थमें विनीत बुद्धिहै, और उत्तम अधमका विचार करकै जो कार्यको निश्चय करतेहैं; भला वह किस प्रकारसे कोपके वश हो सकते हैं ! देखिये ! सतोगुणका आश्रय लेनें वाले लोग कभी क्रोध नहीं करते ॥ १६ ॥ हे वीर ! धर्मवादमें, क्या लोकाचारमें, क्या बुद्धिसे शास्त्रका मर्म ग्रहण करनेंमें सवही बातोंमें आपकी तुल्य दूसरा कोई भी नहींहै, आप समस्त सुर व असुरोंके मध्यमें श्रेष्ठपद पर आरूढहैं ॥ १७ ॥ अधिक क्या कहा जाय ! आप पराक्रमी उत्साहशील, चिन्ताशील हैं, इसलिये देवता और दैत्य गणभी आपको नहीं जीत सकते ! कहीं भी आपकी तुल्यता नहीं है । आपने वारंवार असंख्य देवता ओंके समूह व राजा लोगोंको युद्धमें जीताहै। " जोकि वीर पुरुष मनमें भी ऐसे शूर वीर, अजीत, और देव दानव गणोंके शत्रु आपका कुछ अनिष्ट करतेहैं तो उनका भी प्राण ले लिया जाताहै २ " और इस वानरका नाश करनेंमें भी हम किसी प्रकारका उपकार नहीं देखते इसलिये जिन्होंनें इसको यहां पर भेजाहै, उन्हीं लोगोंको वधका दंड देना उचितहै ॥ १८ ॥ यह वानर साधुहो या असाधुहो परन्तु इसको शत्रु लोगोंनें यहांपर पठायाहै । और दूत पराधीनहै;

पराये अर्थ वचन कहनेंसे वह किसी प्रकार वधके योग्य नहीं हो सकता ॥ १९ ॥ हे राजन्! इस वानरके मार डालनें पर फिर यहां पर कोई आकाश चारी आता हुआ दिखलाई न देगा। इस कारण हे पराये पुरके जीतनें वाले! इस वानरके विनाश करनेंकी वासनाका कुछ प्रयोजन नहीं। हां यह यत्नतौ इन्द्रादि देव गणोंके प्रति आपको करना चाहिये ॥२०॥ हे युद्ध प्रिय! इस दूतके मारे जानें पर हम और ऐसा किसीको नहीं देखते जोकि आपके विरोधी, दुर्ज्जेयी सुशिक्षित राम लक्ष्मणको युद्ध करनेंका उत्साह दिलावे ॥ २१ ॥ हे राक्षस गणोंके मनोंको आनंद देने वाले! पराक्रम और उत्साहमें चित्त लगाये देवता और दानव गणभी आपको नहीं जीत सकते। इस कारण राक्षस लोगोंकी युद्धकी अभिलाषाका नाश करना आपको उचित नहीं है ॥ २२ ॥ आपके आधीनमें करोड़ों योधाहैं, वह सबही आपके हितकारी शूर एकाग्रचित्त अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए अतिशय ऊंचे मतवाले शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और आप करके उत्तम रूपसे पाले जाते हुएहैं ॥ २३ ॥ सो इस सैनाके कुछ अंशको इस समय आज्ञा देदीजिये कि वह आपकी आज्ञासे मूढ़ स्वभाव राम लक्ष्मणको पकड़ बांध यहां ले आवें क्योंकि शत्रु लोगोंके निकट अपना प्रभाव प्रकट करना उचितहै ॥ २४ ॥

निशाचराणामधिपोंनुजस्यविभीषणस्यो
त्तमवाक्यनिष्ठम् ॥ जग्राहबुद्ध्यासुरलो
कशत्रुर्महाबलोराक्षसराजमुख्यः ॥ २५ ॥

देवता गणोंके शत्रु राक्षसराज श्रेष्ठ निशाचरपति महा बलवान रावणनें भली भांतिसे सोच विचारकर, अपनें प्रयोजनके और श्रेष्ठ समझ छोटे भाई विभीषणके यह हितकारी वचन ग्रहण किये ॥ २५ ॥ इ० श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुंदरकांडे द्विपंचाशः सर्गः॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वादशग्रीवोमहात्मनः ॥
देशकालहितंवाक्यंभ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

महाबली रावण, महात्मा विभीषणके देशकालोचित वचन सुनकर

बोला ॥ १ ॥ हे विभीषण ! तुमनें यथार्थ कहा, दूतका मारडालना अति निन्दाका कार्य है, परन्तु मार डालनेंके अतिरिक्त और किसी प्रकारका दंडतो इसको अवश्यही दिया जायगा ॥ २ ॥ पूंछ वानरोंका अति प्यारा गहनाहै ! इसलिये शीघ्र इसकी पूंछको भस्म करदो । तब यह वानर भस्म पूंछके साथ अपने स्वामीके पास जाय ॥ ३ ॥ जब इसकी पूंछ जल जायगी, तब इसके जातिवाले लोग, बान्धव, सुहृद, और मित्रगण सबही इसको देखेंगे कि अंग विरूप होनेंसे यह कपि दुर्बल और व्याकुल होगयाहै ॥ ४ ॥ यह कह फिर राक्षसराज रावणनें आज्ञादी कि राक्षस लोग इसकी पूछमें आग लगाय इस वानर को चौराहे व छोटे मार्गोंके साथ सारे नगरकी परिक्रमा कराय लावें ॥५॥ क्रोधित स्वभाव राक्षस गण रावणकी यह आज्ञा पाय ढेरके ढेर पुराने रुईके वस्त्रोंसे हनुमानजीकी पूंछको लपेटनें लगे ॥ ६ ॥ वनके बीच सूखा काठ पायकर अग्नि जिस प्रकार बढ़तीहै, वैसेही पूछमें कपड़े लपेटे जानेंसे महाकपि हनुमानजी बढ़ गये ॥ ७ ॥ कपडा लपेटनेंके पीछे उसको तेलसे गीलाकर राक्षसोंनें पूछमें अग्नि लगादी; तब हनुमानजी उस जलती हुई पूंछसे राक्षसोंको मारने लगे ॥ ८ ॥ रोष व क्रोधके मारे हनुमानजीकी आत्मा छाय गई और वदन मंडल प्रातःकालके सूर्यकी समान लाल होकर दिपनें लगा तब क्रूर स्वभाववाले राक्षस लोगोंनें मिलकर ॥ ९ ॥ फिर कपि श्रेष्ठ हनुमानजीको बड़ी मजबूतीसे बांधा, और हनुमानजीको देखकर स्त्री बालक, वृद्ध सब हर्षित होनें लगे, तब वीर हनुमानजीनें बंधनमें पड़कर उस कालके अनुसार यह मतिकी ॥ १० ॥ कि हमारे बंधनकी अवस्थामें चेष्टा रहित हो जानें परभी निशाचर लोग कभी हमारे निकट अपना पराक्रम प्रगट करनेंको समर्थ नहीं होंगे हम अभी इन समस्त बंधनोंको तोड़ ताड़ कूदकर इन सब राक्षसोंका संहार कर सकते हैं ११ इस समय हम श्रीरामचन्द्रजीके हितके लिये घूमते हैं । इस समय यदि इन दुरात्मा राक्षसोंनें रावणकी आज्ञासे हमको बांधभी लियाहै, परन्तु जितनी हानि हम प्रथम इनकी कर चुकेहैं; उसका यथार्थ बदला यह अबतक हमसे कुछनहीं ले सके हैं ॥ १२ ॥ यद्यपि हम इकलेही संग्राममें समस्त राक्षसोंका संहार करसकते हैं; तथापि श्रीरामचन्द्रजीकी । प्रसन्नताके लिये हम

इन बन्धनादिकोंकोभी सहन करलेंगे ॥ १३ ॥ विशेष करके रात्रिमें घूम नेंके समय हमनें लंकाके सारे किले भली भांति नहीं देखे हैं सो इस भले अवसर को पाय लंकाके समस्त स्थान घूम २ कर देखेंगे ॥ १४ ॥ हमको एकवार दिनके समय लंकाका देखना भालना अवश्य उचितहै; इसलिये बहुतअच्छा यह हमें बांधें और अग्नि पूंछमें लगायकर ॥ १५ ॥ यह राक्षसलोग हमको पीड़ा देतौ रहेहैं,परन्तु हमारा मन कुछभी खिन्नन-हीं हुआ, महासत्ववान हनुमान्‌जी घेरे जाकर इस प्रकारसे चिन्ताकर रहेथे कि इन कपिकुंजरको ॥ १६ ॥ राक्षसलोक पकड़कर हर्षित चित्तसे पुरीमें फिरानेंको लेचले। और शंख भेरी बजाय२इस राजदंडकी घोषना करते हुए ॥ १७ ॥ हनुमानजीको समस्त लंकापुरीमें घुमानें लगे; शत्रुओंके दमनकरनें वाले हनुमानजी क्रूरकर्म करनें वाले राक्षसोंके चलानेंसे सुखसहित चले जातेथे ॥ १८ ॥ और घूम घामकर समस्त लंका हनुमानजीनें देखी चित्र विचित्र विमान महाकपि हनुमानजीनें देखे ॥ १९ ॥ भांति २ के रचेरचाये भूमि भाग देखे, उनके द्वारोंपर बड़े २ चबूतरे मणियोसें जड़े हुए देखे, बहुत चौराहे घने बसे हुए बहुतसे घर और अनेक चौक ॥ २० ॥ राजमार्गकी बड़ी २ सड़कैं, व छोटी २ गलियें, और दो-घरोंके बीचकी भूमियें देखीं; इस प्रकार उन सब स्थानोंमें हनुमानजी विचरण करतेहुए ॥ २१ ॥ जहां कहीं हनुमानजी निकलतेथे उस समय वहीं सब राक्षस लोग इनको चोर २ कहकर पुकारतेथे । इस प्रकार जब हनुमानजीकी पूंछ जलनें लगी ॥ २२ ॥ तब विरूप नेत्रोंवाली राक्षसियें सीताजीसे यह बुरा समाचार कहती हुई कि हेसीते? तुमनें जिस लाल मुख वाले वानरसे कथा वार्त्ताकहीथी ॥ २३ ॥ राक्षस लोग उसकी पूंछमें आग लगायकर सब जगह उसको घुमाय रहेहैं। प्राणोंका नाशकरनें वाले यह क्रूरवचन सुन ॥ २४ ॥ शोकसे अति संतापित हो जानकीजी मनसे अग्निकी विनय करनें लगीं। और हनुमानजीकी मंगल कामनासे ॥२५॥ पवित्रहो वार२अग्निका ध्यानकरती हुई यह बोलींकि यदि हमनें पतिकी सेवाकीहै और जो कुछ तप कियाहै ॥ २६ ॥ और जो हमने श्रीरामचंद्रजीको ही अपना पति समझाहै, तौ हे हुताशन! तुम हनुमानजीके लिये शीतल हो जाओ। इस विनय प्रार्थनाके पश्चात् तीक्ष्ण ज्वालायुक्त दक्षिणा-

वर्ते शिखा घुमाताअग्नि ॥ २७ ॥ हनुमानजीका शुभ संवाददेनेंकेही लिये मानों प्रज्वलित होंने लगा । व उस समय हनुमानजीका पिता पवनभी हिमालय पर्वतके निकट वहनें वाले वरफकण मिले पवनके समान देवी जानकीजीके सन्मुख शीतल और स्वास्थकर होकर चलनेंलगा ॥ २८ ॥ उधर पूंछको जलती हुई देखकर हनुमानजी चिन्ता करनेंलगे कि अग्नि चारों ओरसे प्रदीप्तहोकरभी हमको क्योंनहीं जलाती? ॥ २९ ॥ यह महा ज्वाला महा लपट युक्त होकरभी किंसकारणसे हमको क्लेशनहीं देतीहै; वरन हमारी पूंछके आगे तौ यही जान पड़ताहै कि मानों हिमका पिंड पूंछके अग्रभागमें धराहै ॥ ३० ॥ अथवा यह वह दिव्य बातहो कि समुद्र पार होनेंके समय श्रीरामचंद्रजीके प्रभावसे जब हमनें समुद्रके मध्यमें पर्वत रूप आश्चर्य देखाथा ॥ ३१ ॥ इसमें कोई संदेह नहीं कि उस समय श्रीरामचंद्रजीके ही प्रभावसे हमने यह बात देखीथी । समुद्र और बुद्धिमान मैनाक यदि श्रीरामचंद्रजीका मान्य करतेहैं फिर भला श्रीरामचंद्रजीका हित करनेंके लिये अग्नि हमारे लिये क्यों न शीतल होजांयगे ॥ ३२॥ या सीताजीके सौम्य स्वभावसे श्रीरामचंद्रजीके तेज प्रभावसे और पिता पवनजीसे मित्रताई होनेंके कारण इन तीन कारणोंसे यह अग्नि हमको नहीं जलाताहै ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे वानरकेशरी बलवान हनुमानजी फिर क्षणभरतक चिन्ता करते रहे कि पराक्रम रहते नीच राक्षस लोग हम सरीखे पुरुषको किस प्रकारसे बांध सकतेहैं॥३४॥ इसलिये इन बन्धनोंको छोडकर इन राक्षसोंसे इस बांधनेका बदला लेना चाहिये इस प्रकार विचार वेगवान हनुमानजी उन सब बन्धनोंको तोड ताड ॥३५॥ गर्जकर बडे वेगसे उछल गये तिसके पीछे श्रीमान् कपिश्रेष्ठ हनुमानजी पहाडके शिखरकी समान ऊंचे नगरकी द्वारपर ॥ ३६ ॥ अति वेगसे चढ़ गये कि जहां बहुतसे राक्षस खड़ेथे उसीपर आप चढकर क्षण मात्रमें पर्वताकार होगये ॥ ३७ ॥ और फिर क्षण मात्रमें छोटा शरीर धारण कर लिया कि जिस्से सब बंधन ढीले होकर शरीरमें से निकल पड़े तिसके पीछे वह श्रीमान हनुमानजी बन्धनोंसे छूटकर फिर पर्वतकी समान आकार धारण कर लेते हुए ॥ ३८ ॥ तत्पश्चात् इधर उधर देख उस फाटकके ऊपर रक्खी काले लोहेसें बनी एक गदा देखकर उसको उठा

लिया व उस्से ही उन सब राक्षसोंको मार डाला कि जो रावणके भेजे इनको घेर रहेथे ॥ ३९ ॥

सतान्निहत्वारणचंडविक्रमःसमिक्षमाणः पुनरेवलंकाम् ॥ प्रदीप्तलांगूलकृतार्चिं मालीप्रकाशितादित्यइवार्चिमाली ॥ ४० ॥

संग्राममें प्रचंड विक्रमकारी हनुमानजी रखवालोंको मार चारों ओरसे देखने लगे उसकालमें पूंछमें लगी हुई आगकी लपटके प्रज्वलित होनेसे हनुमानजी किरण जालसे युक्त दुपहरियाके सूर्यकी समान प्रकाशित होंने लगे॥४०॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशः सर्गः ॥

वीक्षमाणस्ततोलंकांकपिःकृतमनोरथः ॥ वर्धमानसमुत्साहःकार्यशेषमचिंतयत् ॥ १ ॥

मनोरथ सिद्ध हो जानेंके कारण हनुमानजी उत्साहसे परिपूर्ण हो गये वह लंकाकी ओर देख बचे बचाये कार्यके विषयमें चिन्ता करनें लगे॥१॥ इस समय हमको यहांपर कौनसा कार्य करना उचितहै; कि जिस्से इन समस्त राक्षसोंको बडी भारी संतापना प्राप्त हो ॥ २ ॥ अशोक बनको पहलेही उजाड चुके हैं मुखियार राक्षसोंको मार कर सेनाका कुछ अंशभी संहार कर चुकेहैं; बस इस समय इस किलेका ही विनाश करना हमें बाकी रहा है ॥ ३ ॥ इस किलेके विध्वंश होजानेंपर हमारा कार्य भली भांतिसे सिद्ध हो जायगा अधिक क्या कहैं कि हमारा समुद्र पार होना, और सीताजीको खोजनेंके लिये परिश्रम करना यह सब सरलतासे सफल होजायगा ॥ ४ ॥ हमारी पूछमें जो यह अग्नि प्रज्वलित हो रहे हैं; सो उत्तम २ गृहोंको भस्म करकै इनका भी भली भांति तृप्त करना हमको उचितहै ॥५॥ इस प्रकारसे कपिश्रेष्ठ हनुमानजीनें जलती हुई पूंछ लेकर बिजलीके सहित मेघकी समान लंका नगरीके घरोंपर घूमना आरंभ किया॥६॥ और इधर उधर देखकर राक्षस लोगोंके एक २

गृहसे दूसरे घरपर फुलवाडी व मंदिरों पर निडर हृदयसे घूमनें लगे ॥७॥ तिसके पीछे पवनकी समान बलवान महाकपि हनुमानजीनें छलांग मार कर सबसे प्रथम प्रहस्तके भवनमें आय उसमें अग्नि लगाई ॥ ८ ॥ फिर वीर्यवान महाकपि हनुमानजीनें महापार्श्वके गृहपर कूद वहांभी कालाग्निकी समान अग्नि लगायदी ॥ ९ ॥ वहांसे वज्रदंष्ट्रके घरपर कूदे, और आग लगाय फिर शुकनाम तेजवान् राक्षसके गृहको भस्मकर फिर बुद्धिमान् सारणके घरको फूंकदेते हुए ॥ १० ॥ इसी प्रकारसे वानर यूथप हनुमानजीनें इन्द्रजीतका भवन जलाया। फिर जम्बुमाली सुमालीके गृहोंको दाह किया ॥ ११ ॥ फिर रश्मिकेतुका घर, फिर सूर्य शत्रुका, तत्पश्चात् ह्रस्वकर्ण, ह्रस्वदंष्ट्र और रोमस निशाचरका गृह भस्म किया ॥ १२ ॥ फिर युधोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, घोरहस्ति मुखका घर जलाया ॥ १३ ॥ फिर कराल, विशाल, शोणिताक्ष मकराक्षके घर भस्म किये ॥ १४ ॥ फिर नरांतक कुम्भ निकुंभके घर महात्मा हनुमानजीनें दग्ध किये; तिसके पीछे यज्ञ शत्रुका घर जलायकर फिर ब्रह्मशत्रुके गृहको दाह किया ॥ १५ ॥ केवल महातेजवान् हनुमानजीनें युक्ति पूर्वक कूदकर विभीषणका गृह छोड़ दिया ॥ १६ ॥ धनवानोंके भवनोंमें जोजो महा मूल्यवान् धन सम्पत्तिथी कपिश्रेष्ठ हनुमानजीनें उस सबको जलादिया ॥ १७ ॥ इन सब बडे २ मंदिरोंको जलाय श्रीमान् पवननंदन हनुमानजी राक्षसपति रावणके भवन पर पहुँचे ॥ १८ ॥ यह सर्व श्रेष्ठगृह विविध रत्न और मंगलमय द्रव्योंसे शोभित, देखनेंमें मेरु व मन्दराचलकी समान था ॥ १९ ॥ वीर हनुमानजी अपनी पूंछकी जलती हुई आग इस रावणके स्थानमें लगाय युगक्षय होनेंके समय गर्जनें वाले बादल की समान गंभीर शब्दसे गरजे ॥ २० ॥ उस समय वायुका वेग अति प्रबल होनेंके कारण यह अग्नि कालाग्निकी समान प्रज्वलित हो उठी ॥ २१ उस प्रज्वलित अग्निको पवन अति प्रचंड करकै एक गृहसे दूसरे गृहपर पहुँचाताथा; कांचन निर्मित, झरोंखोंसे युक्त, रत्नोंकी राशिसे विभूषित मुक्तामणि लगे हुए ॥ २२ ॥ बड़े२ भवन फट २ भस्म होगये, और बड़े भारी २ धवरहरेभी भस्म होकर पृथ्वीपर भ-

हराय पडे ॥ २३ ॥ पुण्य क्षय हो जानें पर सिद्ध लोगोंके स्थान जिस प्रकार आकाशसे टूटकर पृथ्वीपर गिर पडतेहैं, इसी प्रकार सब गृहभी टूट फूट कर गिर पड़े उस समय इधर उधर भागते हुए राक्षसोंका बडा भारी शब्द हुआ ॥ २४ ॥ कारण कि निज २ भवनोंकी रक्षा करनेंमें सबका उत्साह टूटगयाथा, वह सबही अपनी २ सम्पत्ति छोड़कर कहनें लगे कि "अरे! यह अग्निही निश्चय वानरका रूप धारण कर यहां आयाहै" ऐसा कह २ कर रोनें लगे ॥ २५ ॥ राक्षसियें दूध पीते हुए अपने २ बच्चोंको गोदमें लिये रोते २ सहसा पृथ्वीपर गिर पडीं, कोई सर्वांगमें आग लगनेंसे बाल छोडे बड़े २ मंदिरोंके ऊपरसे ॥ २६ ॥ गिरनेंके समय आकाशसे गिरी हुई बिजलीके समान शोभायमान होनें लगीं। हीरा, मूंगा वैदूर्य मणि, मोती, चांदी सहित ॥ २७ ॥ ॥ मन्दिरोंसे गल २ कर वहते अनेक प्रकारके धातु समूह हनुमानजीनें देखे। अग्नि जिस प्रकार ढेरके ढेर सूखे काठ और तिनकोंके भस्म करनेंसे तृप्त नहीं होते वैसेही ॥ २८ ॥ राक्षसोंका वध करके हनुमानजी कुछभी तृप्त न हुए, वरन इनकी यही इच्छाथी कि सबही इतिश्री करदें। हनुमानजीसे इतनें राक्षस मारे गयेथे कि लंकाकी भूमिमें मरकर गिरे हुए राक्षसोंको जगहनहीं मिलतीथी एकके ऊपर एक गिरेपडेथे ॥ २९ ॥ जिस प्रकार महादेवजीनें त्रिपुरको भस्मकियाथा, वैसेही वेगवान महात्मा वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें लंका पुरीको भस्म कर डाला॥३०॥तिसके पीछे वह अग्नि भयंकर वेगवान हनुमानजी करके छोड़ा जाकर लंकापुरीके पर्वत शिखर पर लपटोंको फैलाय प्रज्वलित होगया॥३१॥और पवनकी सहायतासे प्रलयके समयकी अग्निसा शरीर धारण कर आकाश मंडलको स्पर्श करता हुआ बढ़ने लगा, निशाचर लोगोंके शरीरोंको घृत रूपमें पाय उस अग्निकी निर्धूम लपटें निकलीं ॥ ३२ ॥ उस बढ़ती हुई अवस्थामें वह अग्नि भवन समूहोंको घेर धूम रहित किरणोंका विस्तार करनें लगा। इस प्रकारसे कोटि सूर्यकी समान परम तेजस्वी प्रलयकालका अग्नि वज्रतुल्य घोर नादसे ब्रह्माण्डको भेदकर समस्त लंकापुरीको घेर लेता हुआ ॥ ३३ ॥ टेसूके फूलकी समान शिखा वाला क्रूर कांति युक्त अग्नि इस भांतिसे आकाश तकमें फैलकर बहुतही बढ़ा; नीचेके भागमें सबही रूखे धूम राशिकी अनेक श्रेणियें

नीलकमलकी पखुरियोंके समान आकाशको प्रकाशित करनें लगीं॥३४॥ गृह, वृक्ष और प्राणी समूहोंके सहित लंका नगरीको भस्म होते हुए देखकर बहुत सारे बचे हुए राक्षस वहां इकट्ठेहो परस्पर कहने लगेकि यह वानर नहीं साक्षात् कालहै, यह देवताओंका स्वामी इन्द्र, यम वरुण, पवन, रौद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर व चंद्रमानहीं है; यह साक्षात् कालहीहै ॥ ३५ ॥ क्या सर्वके पितामह लोकोंके धारण करनें वाले चार मुखके ब्रह्माजीका साक्षात् कोप तौ राक्षस कुल संहारकारी वानररूप धारण करके यहां नहीं आया? ॥ ३६ ॥ किंवा अचिन्त्य समस्तका कारण रूप विष्णुजीका तेज राक्षस कुलका विनाश करनेंके लिये, इस समय अपनी मायाकी सहायतासे कपिका सुन्दर रूप धारण कर यहां आयाहै ॥ ३७ ॥ इसभांतिकी बातें परस्पर एकत्र हो होकर लंका पुरीको सब प्राणी और छोटे बड़े मन्दिरों समेत भस्म और क्षार खार निहार कर कहतेथे ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे लंका नगरी, राक्षस, अश्व, रथ, हस्ती, पक्षी मृग, और वृक्ष गणोंके सहित सहसा महाभस्म होकर अति व्याकुलहो बड़े शब्दसे रुदन करने लगी॥३९॥राक्षस लोगभी हातात! हापुत्र! हाकान्त! हामित्र! हाजीवितेश ! हाय हमारे अति क्लेशसे बटोरे हुए सब पुण्य क्षीण होगये। इस भांति अनेक प्रकारके विलाप करते अतिशय भयंकर घोर शब्द करनें लगे ॥ ४० ॥ उस कालमें अग्निकी लपटसे चारों ओर व्याप्त और मुखिया २ वीर व योधा लोगोंके मर जानें व हनुमानजीके क्रोधसे अनादरकी हुई लंका नगरी शापसे हत हुईकी समान जान पड़नें लगी ॥ ४१ ॥ महा मनस्वी हनुमानजीनें देखाकि सब राक्षस घबड़ाये भीत, और शोकाकुलहैं, और प्रदीप्त हुए अति लपट वाले अग्नि करके चारों ओर घिर जानेंसे, महादेवजीके क्रोधसे भस्म पृथ्वीकी समान लंका नगरीकी शोचनीय दशा उपस्थित हुई है ॥ ४२ ॥ पवनकुमार हनुमानजी अतिश्रेष्ठ वृक्षोंसे युक्त अशोक बनको उजाड़ बड़े २ राक्षसोंको युद्धमें संहार अत्युत्तम रत्न समूहसे बनी लंकापुरीको भस्म कर ॥ ४३ ॥ व और बहुत राक्षसोंको मार सहित वृक्ष वन उजाड़ राक्षसोंके भवनोंमें अग्नि लगाय मनही मनमें श्रीरामचंद्रजीका स्मरण करनें लगे ॥ ४४ ॥ उस समयमें समस्तही देवता धन्य २ करके पवनकी समान वेगवान महाबल-

कांचनसे बने धनुषोंपर टंकार देते हुए बड़ीभारी सैनाके साथ दामिनी युक्त मेघ मालाकी समान अपने स्थानसे युद्ध करनेंके लिये बाहर निकले ॥ ४ ॥ उनकी मातायें अस्सी हजार किङ्करोंकी मृत्युका वृत्तान्त जानकर सुहृद् और बन्धु बान्धवोंके सहित शोकसे व्याकुल हुई ॥ ५ ॥ सुवर्णके गहनोंसे भूषित यह सात मंत्रिपुत्र परस्पर आगे लड़नेके लिये बढ़े जाते; फाटकके ऊपर अचल भावसे बैठे हुए हनुमानजीके सन्मुख-हो ॥ ६ ॥ रथ गर्जन शब्दसे युक्त बाणोंकी वर्षा करनें लगे, और वर्षाकालके मेघपुंजोंकी समान इधर उधर घूमनें लगे ॥ ७ ॥ वेगवान हनुमानजी उनके चलाये नाराचोंसे ढककर, वर्षाके जलसे व्याप्त, पर्वत राजकी समान न देख पड़े ॥ ८ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी अति शीघ्र गतिसे विमल आकाशमें गमन करकै, राक्षस लोगोंके बाण समूह और रथके वेग दोनोंको निष्फल कर देते हुए ॥ ९ ॥ हनुमानजी उन धनुषधारी राक्षसोंके साथ आकाश मार्गमें खेल करते हुए, इन्द्र चाप युक्त मेघवृन्दके साथ विहार करते स्वामी पवनकी समान शोभायमान होनेंलगे ॥ १० ॥ तिसके पीछे शत्रुओंके तपानेंवाले वीर्यवान हनुमानजी घोर नाद करते हुए उस बड़ीभारी सैनाको त्रास उपजायकर राक्षसोंकी ओरको बड़े वेगसे दौड़े ॥ ११ ॥ किसीके चपेट लगाई, किसीके लात जमाई और किसीके घूंसा जड़ा किसीको नखोंसे चीर फाड़ डाला ॥ १२ ॥ किसीको छातीकी चोटसे मसलडाला. और किसीको दोनों जांघोंसे पीस दिया; और कोई २ तौ उनका गर्जनही सुन उसीस्थानमें पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १३ ॥ तिसके पीछे मंत्रिके पुत्र जब इसप्रकारसे मृतक होकर गिरपड़े; तब उनकी सब सैना भयसे पीडित होकर दशों दिशाओंको भाग खडी हुई॥ १४ ॥ हाथी विकट शब्द कर २ के चिंघाडनें लगे घोडे उछलर पृथ्वीपर गिरगये, रथियोंके बैठनेंकी टूटी बैठकों व ध्वज. और छत्र युक्त रथ समूहोंसे पृथ्वी ढकगई ॥ १५ ॥ रणभूमिके मार्गमें रुधिरकी नदियें बहती हुई दृष्टि आनेंलगीं; और समस्त लंका विविध भांतिके विकट स्वरोंसे नादकर उठी ॥ १६ ॥

सतान्प्रवृद्धान्विनिहत्यराक्षसान्महाबल

श्चंडपराक्रमःकपिः ॥ युयुत्सुरन्यैःपुनरेव
राक्षसैस्तदेववीरोभिजगामतोरणम् ॥ १७ ॥

प्रबल प्रतापशाली प्रचंड पराक्रमी वीर हनुमानजी प्रधान२राक्षसोंका संहार करके, फिर और राक्षसोंके साथ युद्ध करनेका अभिलाष करके कूदकर फिर उसी फाटकपर चढ़गये ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥

हतान्मंत्रिसुतान्बुद्धावानरेणमहात्मना ॥
रावणःसंवृताकारश्चकारमतिमुत्तमाम् ॥ १ ॥

महावीर पवनकुमार हनुमानजीसे मंत्रीके सातों पुत्रोंका माराजाना सुनकर रावण अपने मनके भयको छिपाय धीर्य धारण करता हुआ ॥१॥ फिर वह रावण विरूपाक्ष दुर्द्धर्ष प्रवस और भासकर्ण इन पांच वीर्यवान सेनापतियोंको ॥ २ ॥ जोकि सवही नीतिविशारद सब कार्योंको शीघ्रता करनेंवाले और युद्धमें पवनके वेगकी तुल्यथे इन पांचो राक्षसोंको रावणने हनुमानजीके बांधनेके लिये युद्धमें जानेकी आज्ञादी और कहा॥३॥ कि तुम सवही महावलवान सेनापतिहो घोडे रथ व हाथियोंसे युक्त बडी भारी सेनाके साथ जाकर सिखावन दो ॥ ४ ॥ तुम सब लोग बडे यत्नसे उस बनवासी वानरके निकट जायकर अति सावधानीसे देशकालके अनुसार कार्य पूरा करना ॥ ५ ॥ हम उसके किये कार्योंको विचारकर उसे वानर नहीं मान सकते हम तो जानते हैं कि वह सर्वथा महावलवान कोई प्राणी है ॥ ६ ॥ हमारा मन उसको वानर मानकर शुद्ध नहीं होताहै जिसप्रकारकी वार्ता आयकर उपस्थित हुई है इस वातसे तो हमारे मनमें नहीं समाता कि वह वानर है ॥ ७ ॥ हमें तो यह जान पडताहै कि इस समय इन्द्रने हम लोगोंको संहार करनेके लिये अपने तपके प्रभावसे इस वानरको उत्पन्न किया होगा नाग, यक्ष, गन्धर्व, देव, असुर महर्षि ॥ ८ ॥ इन सबको हमारे पठाये हुए तुम लोगोंने एकही कालमें पराजित कियाहै, सो वह लोगभी हमारा किसी प्रकारसे अवश्य अपकार करेंगे ॥९॥ निःसन्देह यह वात कुछ उनही लोगोंकी कराईसी ज्ञात होतीहै

इसलिये बल पूर्वक हनुमानको तुम बांध कर ले आओ तुम सबही महा बलवान सेनाके सेनापतिहो ॥ १० ॥ हाथी, घोडे रथ, और बडी भारी सैनाके संग जायकर तुम उस वानरका शासन करो वह वानर यथार्थ वीरकी समान पराक्रमवालाहै, तुम लोग वानर जानके ही किसी प्रकासे उसका कोई अपमान न करना ॥ ११ ॥ प्रबल प्रतापशाली वालि तेजस्वी, सुग्रीव और महाबलवान जाम्बवान व और भी अनेक वेगवान वानर हमने देखेहैं ॥ १२ ॥ सेनापति नील और द्विविद इत्यादि उन वानरोंमें इनकी सी भयंकर गति न इनका सा तेज विक्रम ॥ १३ ॥ न मति नवल, न उत्साह न इसके तुल्य वह वानर रूप धारण करनेंवाले हैं, इस्से विदित होताहै कि यह वानर रूपी कोई बड़ा भारी जीव यहां आनकर प्राप्त हुआहै ॥ १४ ॥ सो तुम लोग अतिशय यत्न करके इस वानरको पकड़ना अधिक क्या कहैं, सुर, असुर मनुष्य और इन्द्रके सहित तीनों लोकभी ॥ १५ ॥ संग्राम भूमिमें तुम्हारे सामने खड़े होनेकी सामर्थ्य नहीं रखते तथापि युद्धमें जीतनेंकी अभिलाषा किये नीतिका जाननेवाला पुरुष ॥ १६ ॥ यत्न सहित अपने आत्माकी रक्षाकरे क्योंकि संग्राममें यह निश्चय नहीं हो सकता कि जीतही होगी क्योंकि यह चंचल विजय लक्ष्मी न जाने किसकी अंकशायिनीहो वह सब अपने स्वामीका वचन अंगीकार करके ॥ १७ ॥ अग्निकी समान तेजस्वी बलवान राक्षस महा वेगसे चले रथ हाथी व अति वेगवान अनेक घोडे भी उनके साथ चले ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके तीखे अस्त्र शस्त्र धारण किये बडी भारी सैना भी उन लोगोंके साथ चली वहां जाय उन महा वीरोंने अति दीप्तियुक्त महाकपि हनुमानजीको देखा ॥ १९ ॥ उससमय वह अपने तेजके प्रभावसे प्रकाशित हो उदयाचलपर चढे हुए सूर्य भगवानकी समान फाटक के ऊपर चढे हुए बैठेथे ॥ २० ॥ महासत्त्व, महाबलवान, महामति महोत्साह महाकाय और महाभुजवाले हनुमानजीका भयंकर रूप देखकर राक्षस लोग डरके मारे दूरही से खड़े होकर ॥२१॥ चारों ओरसे भयानक अस्त्रशस्त्र चलाने लगे दुर्द्धर नामक राक्षसने लोहेके बने हुए पांच बाण हनुमानजीके मस्तकमें मारे यह सब बाण तीक्ष्ण धार वाले मर्म विदारी सुवर्ण लगे कमल पत्रकी समान प्रभावाले थे ॥ २२ ॥

जब हनुमानजीके मस्तकमें वे पांचो बाणलगे, तौ वह नाद करके दशों दिशा ओंको उसके शब्दसे पूर्ण करते हुए आकाश मार्गको कूद-गये ॥ २३ ॥ यह देखकर वीर दुर्द्धर रथपर खड़ा होकर धनुषमें रोदा चढाय शत २ बाण छोड़ता हुआ महाबलवान् हनुमानजीके निकट पहुँचा ॥ २४ ॥ वर्षा कालके वीत जानेंपर पवन जिस प्रकार जल वर्षानें वाले मेघोंको उड़ाय देताहै, वैसेही पवनकुमार हनुमानजीनें बाण वर्षाते हुए दुर्द्धरके बाणोंको आकाशमार्गमेंही रहकर निवारण कर दिया अर्थात् उसके बाण इनके न लगे वचायगये ॥ २५ ॥ तिसके पीछे वीर्यवान पवन कुमार हनुमानजी दुर्द्धरके बहुत बाणोंसे पीड़ितहो फिर नाद करते हुए शरीरको बढ़ानें लगे ॥ २६ ॥ और सहसा अनेक दूर ऊपरको उछल पर्वत पर वज्र गिरनेंकी समान उस दुर्द्धरके रथपर महावेगसे गिरे ॥ २७ ॥ हनुमानजीके गिरनेंसे रथका चक्र व कूवर नष्ट होगया, आठ घोड़े भी मसल गये, और दुर्द्धरभी उस टूटे चूर्ण हुए रथके साथ प्राण त्यागकर पृथ्वीपर गिरा ॥ २८ ॥ शत्रु करके जीतनेंके अयोग्य अरि दमनकारी विरूपाक्ष, और यूपाक्ष यह दोनों राक्षस दुर्द्धरको पृथ्वीपर पड़ा देख महा क्रोध करते हुए उछले ॥ २९ ॥ उस समय महाबाहु पवन कुमार हनुमानजी विमल आकाश मंडलमें टिके हुए थे जो इन दोनों राक्षसोंनें सहसा उछलकर उनकी छातीमें दो मुद्गर मारे ॥ ३० ॥ महा-बलवान् वानरश्रेष्ठ हनुमानजी उन वेगवान दो राक्षसोंके अस्त्र व्यर्थ करते हुये फिर गरुड़जीकी समान अति वेगसे पृथ्वीपर कूद आये ॥३१॥ और एक शाल वृक्षके निकट जाय उसको उखाड़ उसीसे उन दो महावीर राक्षसोंको मार डाला ॥ ३२ ॥ उन तीन सेनापतियोंको माराहुआ जान-कर महावेगवान बलवान प्रघस नामक सेनापति हँसता हुआ हनुमानजीके निकट पहुँचा ॥ ३३ ॥ और वीर्यशाली भासकर्णभी शूल ग्रहण कर महा क्रोधितहो उनके निकट गया। अनन्तर एक दूसरेका सहाय होना विचार कर दोनों उन वानर श्रेष्ठ यशस्वी हनुमानजीको एक साथही घेरते हुए ॥ ३४ ॥ इन दोनोंमें प्रघसने तौ तीक्ष्ण पट्टिशसे और भासकर्णनें शूल ग्रहण करके कपि कुंजर हनुमानजीको मारा ॥ ३५ ॥ शूल और पट्टिशके लगनेंसे हनुमानजीके सर्वाङ्गमें घाव होगये और रुधिर वहनें

लगा, तब बाल सूर्यकी समान द्युति वाले हनुमानजीनें कोपकिया ॥३६॥ मृग,व्याल और वृक्षोंसे व्याप्त एक पर्वतका शिखर उखाड़कर वानरोंमें कुंजर वीर हनुमानजीनें उन दोनों राक्षसोंके मारा; उस गिरि शिखरके लगनेंसे वे दोनों तिल २ होकर चूर्ण होगये ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे जब पांचों सेनापति मारे गये, तब कपिकेशरी हनुमानजीनें बचीबचाई सब सेनाको मार डाला ॥ ३८ ॥ और असुरोंके संहारकारी सहस्राक्ष इन्द्रजीकी समान हनुमानजीनें घोड़ोंको उठाय घोड़ों पर देमारा, जिस्से वह घोडे मरे, हाथियोंको उठाय हाथियों पर देमारा, योधा लोगोंको उठाय २ योधायों पर चलाया और रथोंको उठाय रथोंपर दे मारा, इस भांतिसे सब सेनाको विनाश किया ॥ ३९ ॥ मृतक पडे हुए घोडे, हाथी, राक्षसोंके समूह व टूटे हुए चक्र और महारथोंसे ढकजानेंके कारण चारों ओरसे मार्ग बंद होगया ॥ ४० ॥

ततःकपिस्तान्ध्वजिनीपतीन्रणेनिहत्यवीरा
न्सबलान्सवाहनान् ॥ तथैववीरःपरिगृह्यतो
रणंकृतक्षणःकालइवप्रजाक्षये ॥ ४१ ॥

इसओर पांच सेनापतिवीरोंको बल और वाहनोंके सहित संहार करके वीरकपि प्रलयके समय कालकी समान अवसर पाय कर फिर उसी फाटक पर चढ़ बैठे॥४१॥इ०श्रीम०वा०आ०सुं०षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६॥

सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥

सेनापतीन्पंचसतुप्रमापितान्हनूमतासानु
चरान्सवाहनान् ॥ निशम्यराजासमरोद्धतो
न्मुखंकुमारमक्षंप्रसमैक्षताक्षम् ॥ १ ॥

राक्षसश्रेष्ठ रावण हनुमानजीसें उक्त पांच सेनापतियोंको वाहन और अनुचर वर्गके सहित मारा हुआ श्रवण कर सन्मुख बैठे हुए युद्धमें जानेंके लिये तैयार कुमार अक्षको युद्धमें जानेकी आज्ञा देता हुआ ॥ १ ॥ यज्ञ शालामें प्रधान २ ब्राह्मणों करके घृतकी सहायसे प्रेरित अनलकी समान रावणके देखतेही विशेष भांतिसे प्रेरित होकर प्रतापशाली

अक्ष सुवर्णका धनुष धारण कर उसी समय खडा होगया ॥ २ ॥ तिसके पीछे महावीर्यवान् राक्षसश्रेष्ठ सूर्यकी समान चमकते हुये रथपर सवार होकर हनुमानजीसे लड़नेको चला; उसका यह रथ तपाये हुए सुवर्णसे बना और विचित्रथा ॥ ३ ॥ यह रथ विपुल तपस्याके प्रभावसे प्राप्त हुआथा; यह रथ रत्न खचित ध्वजा पताकाओंसे सब प्रकार सजा हुआथा, पवनकी वेगवान् आठ घोड़े इसमें जुत रहेथे ॥ ४ ॥ देवासुरसे जीतनेके अयोग्य पर्वतादिकोंपरभी जिसकी गति नरुके, बिजलीकी समान प्रभा सम्पन्न आकाशमार्गमेंभी घूमनेको समर्थ सुसज्जित तूण (तरकश) सहित आठ खङ्गोंसे युक्त यथा क्रमसे सुडौल बनाहुआ शक्ति तोमरादि अस्त्रोंसें परिपूर्ण ॥ ५ ॥ युद्धकी वस्तुओंसे भराहुआ, सूर्य चन्द्रमाकी समान द्युतिवाला, सुवर्ण जाल विभूषित, और सूर्यकी समान प्रभा सम्पन्न यह रथ था ॥ ६ ॥ देवताओंकी समान विक्रम करनें वाला कुमार अक्ष ऐसे रथपर चढ़कर तुरंग. मातंग. और महारथके शब्दसे पर्वत सहित भूमंडल और दशोंदिशाओंको शब्दायमान करता हुआ एकत्र हुई सेनाके साथ अति समर्थ तोरणपर बैठे हुए हनुमानजीके समीप आय पहुंचा ॥ ७ ॥ वहां प्रजागणोंके नाशकालमें प्रलयकी अग्निके समान रूप धारण किये मुसकाते चतुर हनुमानजीको प्राप्त होकर सिंहकी समान क्रूर दृष्टि वाले अक्षनें अपनी बड़ी आंखें फैलाय उनको देखा पवनकुमार हनुमानजी अक्षको देखकर विस्मय और सम्भ्रमके वश हुए ॥ ८ ॥ महा बलवान् अक्ष, महात्मा हनुमानजीका बल और शत्रुके प्रति पराक्रम और अपना बलाबल विचार करकै युगक्षय कालके सूर्यकी समान अपने तेजसे बढ़नें लगा ॥ ९ ॥ और स्थिर भावसे टिककर कोपके वशहो रणसे विमुख न होनेंवाले पराक्रम सम्पन्न हनुमानजी पर स्वस्थ चित्तसे पैनी धारवाले बाणोंका प्रहारकर उनको युद्ध करनेंके लिये ललकारता हुआ ॥ १० ॥ अक्षनें धनुष बाण हाथमें लिया सो पवन कुमार हनुमानजीभी शत्रुओंको हरानेंके योग्यही पात्रथे, इससे कुछभी न थकेथे, व अतिशय अहंकार कियेथे; और उनका मनभी बड़े उत्साहसें युक्तथा ॥ ११ ॥ उनको उत्साहित देखकर सुवर्णका बना हुआ हृदयमें भूषण धारे, बाजू मनोहर कुंडल, प्रचण्ड पराक्रम इन सबसे सजे अक्ष-

नें हनुमानजी पर चढाईकी उसी समय दोनोंमें महा घोर युद्ध आरंभ हुआ, यह युद्ध देव और दानव गणोंकोभी भयका देने वाला हुआ ॥१२॥ वह दोनों जनें अपनेर वीर्यको दिखलाते हुए युद्ध करनें लगे उस समय पृथ्वीके सबही प्राणी चिल्लानें लगे सूर्य भगवानका तेज नष्ट होगया पवन की गति बंद होगई, पर्वत कांपनेंलगे आकाश मंडल शब्दसे पूर्ण होगया और समुद्र खल बलाय उठा ॥ १३ ॥ फिर निशाना ताकनें, बाण चढानें और बाण छोड़नेंमें चतुर अक्षनें, सुवर्ण मय पुष्प सुन्दर मुख, और पंख युक्त विषैले सर्पोंकी समान तीन बाण कपिश्रेष्ठ हनुमानजीके मस्तकमें मारे ॥ १४ ॥ एक साथ तीनों बाणोंके मस्तकमें लगनेंसे हनुमानजीके अंगसे रुधिर धारा वहनें लगी उनके नेत्र घूमनें लगे। और सर्व शरीर लोहू लुहान होगया। उस कालमें प्रभात कालके बाल सूर्यकी समान अरुण वर्ण पवनकुमार हनुमानजी शररूपी किरण मालसे ढककर, रश्मिमाली सूर्य भगवान्की समान शोभायमान होनें लगे॥ १५ ॥ तिसके पीछे वानर राज सुग्रीवजीके प्रधान मंत्री हनुमानजी, राक्षसश्रेष्ठ रावणके पुत्र विचित्र धनु और विचित्र तीक्ष्ण शस्त्र धारण किये अक्षको संग्राम भूमिमें अवलोकन करकै हर्षित हुए और तत्काल युद्धके लिये तैयार होकर अपना रूप बढ़ाते हुए ॥ १६ ॥ हनुमानजीका बल, वीर्य कोप यह समस्तही बढ़नें लगे। वह मन्दराचल पर टिके हुए सूर्यकी समान नेत्रोंके द्वारा उठीहुई अग्निकी किरणोंसे अक्ष कुमारको बल और वाहनोंके सहित भस्म करनें लगे ॥ १७ ॥ मेघोंके समूह पर्वतश्रेष्ठपर जिसप्रकार जलकी धारा वर्षातेहैं, वैसेही शररूप वृष्टि युक्त निशाचर स्वरूप. विचित्र शरासनरूप इन्द्र धनुसे शोभायमान होकर वानरश्रेष्ठ हनुमान रूप पर्वतपर बाण वर्षा करनें लगे॥१८॥ राक्षस अक्षका बल वीर्य, सायक ओर तेज समस्तही बढ़ा हुआ और संग्राममें विक्रमभी अति प्रचंडथा उस अक्षकुमारको युद्धमें देख कपिश्रेष्ठ हनुमानजी हर्षित हो मेघकी समान गंभीर गर्जनकर उठे ॥ १९ ॥ युद्धमें वीर्यसे गर्वित लाल नेत्र वाला अक्ष बाल स्वभावके मारे अतिशय क्रोधितहो, गज जिसप्रकार तृणसे ढके महाकूपमें चला जाताहै; वैसेही योधाओंमें प्रधान हनुमानजीको प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ जब वह अक्ष अति

बलसे बाणोंको छोड़नें लगा, तब पवनकुमार हनुमानजी भुजा और जां-
घें चलाय भयंकर रूप धारण कर परम उत्साह सहित तत्काल आकाश
मंडलको छूलेते हुए मेघकी समान शब्द कर उठे ॥ २१ ॥ उन्होंने जब
इस प्रकारसे ऊपरको छलांग मारी, तो राक्षसश्रेष्ठ, रथि प्रधान, प्रतापशाली
बलवान रथी अक्ष कुमार बाणोंकी वर्षा करता हुआ हनुमानजीको उनसे
छाय अति वेगसे उनके सामनें हुआ, उसनें ऐसे बाण वर्षाये कि जैसे बाद-
ल ओले वर्षाकर पर्वतको जलसे गीला करताहै ॥ २२ ॥ युद्धमें भयंकर
विक्रमकारी और मनसेभी अधिक वेगगामी वीर कपि पवनकुमार हनु-
मानजी पवनकी समान बाण समूहके बिचले मार्गमें प्राप्त होकर उसके स-
मस्त शर व्यर्थ कर रण क्षेत्रमें घूमनें लगे ॥ २३ ॥ युद्धमें तैयार अक्ष
शरासन ग्रहण करके अनेक प्रकारके श्रेष्ठ शरसमूहोंसे आकाशको छाय
देता हुआ। पवनकुमार हनुमानजी यह बात देखकर अक्षके ऊपर आ-
दर सहित दृष्टि डाल मनही मनमें चिन्ता करनें लगे ॥ २४ ॥ कि इतने-
हीमें महात्मा कुमार श्रेष्ठ अक्षने बाणोंसें इनकी भुजाका मध्य भाग घा-
यल किया; कार्य करनेंमें कुशल महाबाहु, हनुमानजी अक्षके युद्ध विक्रम-
की चिन्ता करके कहनें लगे ॥ २५ ॥ कि इस महाबलवान महात्मा बाल
सूर्यकी समान अक्ष कुमारनें वीर पुरुषकी समान कार्य कियाहै; सब भां-
तिके युद्ध कार्योंमें इसको चतुरताहै. सो इसलिये हमारी इच्छा इस स-
मय इसको वध करनेंकी नहीं होती ॥ २६ ॥ यह अक्ष महात्मा, महावी-
र्यवान युद्ध करनेंको तत्पर, अतिशय क्लेशका सहनेंवाला और भली भां-
तिसे कार्य करनेंमें चतुर, कर्म कुशल और गुणवान होंनेसे, नाग, यक्ष, औ-
र ऋषिगण निःसन्देह इसकी पूजा किया करतेहैं ॥ २७ ॥ पराक्रम और
उत्साह युक्त भय व आशंकादिके एक कालमेंही तिरोहित होंनेसे यह वीर
श्रेष्ठ सामने होकर हमारी ओर दृष्टि डाल रहाहै। उस लघु हस्त निशाच-
रका पराक्रम देखकर देव दानवोंके मनभी कंपित हो जातेहैं ॥ २८ ॥ प-
रन्तु बात यहहै कि जो हम इसको छोड़ देतेहैं तो यह निशाचर निश्चय-
ही हमारा अनादर करेगा; क्योंकि युद्धमें इसका वीरत्व धीरे२बढ़ताही
जाताहै क्योंकि आगेके बढ़ जानेमें किसी प्रकारसे अब उदासीनता न क-
रनी चाहिये। अर्थात् यह न समझे कि आगकी जरासी चिनगारी क्या

कर सकतीहै! इसलिये इसको हम अभी मारे डालतेहैं ॥ २९ ॥ महा बलवान और महा वीर्यवान हनुमानजी इस प्रकारसे शत्रुके पराक्रमकी चिन्ता करकै और अपनें कर्तव्यका निश्चय कर अति वेग सहित अक्षकुमारके संहारका विचार करते हुए, यह विचार कर पवनकुमार वीर्यवान हनुमानजीनें आकाश मार्गमेंही टिके २ बडा भार सहनेंवाले व अनेक भांतिके चक्र देनेंमें कुशल अक्षके रथके आठ घोड़े अपनी लातके प्रहारसे मार डाले ॥ ३० ॥ ३१ ॥ सुग्रीवजीके मंत्री हनुमानजी करकै लातके प्रहारसे घायल और पराजित होनेंसे अक्ष कुमारका बड़ा भारी रथ बैठक और कूबर टूट जानेंसे और घोडे मरनेसे शून्यहो पृथ्वीपर गिर पड़ा॥३२॥ घोड़े नष्ट होगये उग्र वीर्य वाले ऋषि जिस प्रकार तपके बलसे देह त्याग कर आकाश मार्गसे सुरलोकको चले जातेहैं; वैसेही महारथी अक्ष कुमार टूटा रथ छोड़ धनुष बाण खड्ग धारण कर आकाशको कूद गया ॥ ३३ ॥ इस प्रकारसे वह अक्षकुमार पक्षिराज गरुड़ और सिद्ध गणोंसे सेवित आकाश मार्गमें विचरण करनें लगा तब पवन समान वेग और विक्रम सम्पन्न हनुमानजीनें निकट पहुंचकर अति दृढ़ताईसे उसका चरण पकड लिया ॥ ३४ ॥ अण्डजेश्वर (पक्षियोंके राजा) गरुडजी जिस प्रकार महा सर्पोंको पकड़ लेतेहैं, ऐसेही अपने पिता पवन की समान वेगवान वीर्यवान महाकपि हनुमानजीनें, अक्ष कुमारको पकड और हजार वार घुमाय पृथ्वीपर संग्रांम भूमिमें फेंक दिया ॥ ३५ ॥ उसकी बाहें, जांघें, कमर, स्तन टूट गये, हड्डी और आंखोंका चूरा होगया, सब जोड़ अलग २ होगये और जोडोंके बंधन भी इधर उधर टूट कर गिर पड़े इस प्रकारसे पवनकुमार हनुमानजीने उस राक्षसको मार डाला ॥ ३६ ॥ वह अक्ष इस अवस्थामें रुधिर वमन करता हुआ पृथ्वी पर गिर पडा महाकपि हनुमानजीनें पृथ्वीपर पटक फिर उसके ऊपर आप कूदकर राक्षस पति रावणको महा भय उपजाया, कुमार अक्षके मर जानें पर महर्षिगण ज्योतिषचक्रके ग्रहगण यक्ष; और पन्नग गण व इन्द्र सहित देवताओंके वृन्द आयकर अतिशय विस्मय युक्त हो हनुमानजी को देखनें लगे ॥ ३७ ॥

निहत्यतंवज्रिसुतोपमंरणेकुमारमक्षंक्षत

जोपमेक्षणम् ॥ तदेववीरोभिजगामतो
रणंकृतक्षणःकालइवप्रजाक्षये ॥ ३८ ॥

उस काल इन्द्रके पुत्र जयन्तकी समान पराक्रम करनेवाले लाल नेत्र युक्त अक्षको महावीर हनुमानजी समरमें संहार करके प्रलयकालके कालकी समान समयकी वाट जोहनेंके लिये फिर उस तोरण पर बैठ गये ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

ततस्तुरक्षोधिपतिर्महात्माहनूमताक्षेनि
हतेकुमारे ॥ मनःसमाधायसदेवकल्पं
समादिदेशेंद्रजितंसरोषः ॥ १ ॥

जब हनुमानजीनें रणमें कुमार अक्षको मार डाला, तब राक्षसोंका पति महात्मा रावणने अपने मनके शोक वेगको रोक देवताओंकी समान अपने पुत्र इन्द्रजीतको क्रोधके वशहो युद्धमें जानेंकी आज्ञादी ॥ १ ॥ रावणनें मेघनादसे कहाकि पुत्र तुम सब अस्त्रोंके जाननेंवाले और सब शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ सुर असुर लोगोंको भी कँपानें वाले, इन्द्रादि समस्त ही देवता ओंने तुम्हारे पराक्रमको समरमें देखाहै. और ब्रह्माजीकी आराधना करके तुमने ब्रह्मास्त्र भी प्राप्त कर लियाहै ॥ २ ॥ तुम्हारे अस्त्रके बलको प्राप्तहो देवराज इन्द्रजीके आश्रित उनचास पवनोंके साथ देवता लोग भी युद्धमें टिकनेंको समर्थ नहींहैं ॥ ३ ॥ तुम्हारे सिवाय त्रिलोकमें ऐसा कोई भी नहींहै, जो युद्धमें न थकै, तुम अपनी बाहोंके वीर्य और तपोबलसे सब भांति रक्षितहो असाधारण बुद्धि शक्ति सम्पन्न और देश कालके जाननेंवालोंमें प्रधान हो ॥ ४ ॥ युद्धमें ऐसा कोई कार्य नहींहै कि जिसको तुम न कर सकतेहो। बुद्धिके साथ विचार करकै समस्त राज कार्यके निर्वाह करनें की तुममें शक्ति है. त्रिभुवनमें ऐसा कोई नहीं है कि जो पुरुष तुम्हारे बाहु बल और अस्त्र बलको न जानताहो ॥ ५ ॥ तुम्हारा तप, बल, पराक्रम. और युद्धमें अस्त्र बल यह सवही हमारी समान हैं, तुम्हारे रण क्षेत्रमें जानेंसे निश्चयही जय होंना विचार कर हमारा

मन कुछ भी नहीं ऊबता॥६॥अस्सी हजार किंकर गण जम्बुमाली, पांच सैनापति और मंत्रियोंके पुत्र गण यह सबही मारे गये ॥ ७ ॥ हाथी घोड़े और रथ सहित परम समृद्धि सम्पन्न सैना और महोदर व तुम्हारा सहोदर अक्षकुमार यह सबही मारे गये. परन्तु हे शत्रुओंके मारनें वाले उन लोगोंमें तुम्हारी समान बलका होना हम नहीं मानते; तुम उन सबसे बलीहो ॥ ८ ॥ इस समय उस वानरका प्रभाव व पराक्रम और तुम अपनी अति श्रेष्ठ बडी भारी सैनाका मारा जाना इत्यादि देख भाल सोच विचार कर सामर्थ्यके अनुसार बल दिखाओ ॥ ९ ॥ हे अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारे युद्धके लिये तैयार हो वहां पहुंचने पर बहुत सारी सैना भी न मारी जाय और बलका क्षय होनेसे शत्रु भी क्षीण हो जाय इसही प्रकारसे अपना बल और पराया बल देखकर तुम कार्य प्रारंभ करो ॥ १० ॥ हे वीर! साथमें सैना ले जानेका कुछ प्रयोजननहीं है क्योंकि सैना भागती है तौ झुन्डके झुन्ड होकर भाग निकलतीहै और सार वान अस्त्र शस्त्रोंको भी संगलें जानेंकी कुछ आवश्यकता नहीं क्योंकि वह अस्त्र शस्त्र भी टूटटाट जातेहैं और हनुमानके बलका भी कुछ ठिकाना नहीं अधिक क्या कहैं उस अग्नि समान वानरको शस्त्रादिकोंसे संहार करना कठिनहै॥११॥अब हमने जो कुछ कहा उसको स्थिर चित्तसे विचार करके तुमको अपना कार्य सिद्धकरना पडेगा यह विचारकर मन लगाय इस धनुषका दिव्य वीर्यस्मरण कर युद्धमें जाय निर्विघ्न अपना कार्य पूराकरो॥१२॥तुमको युद्धमें भेजना किसी प्रकारसे हमको उचित न- हीं है; परन्तु क्या कियाजाय यही राज धर्मकी विधि और क्षत्रियोंके लिये शास्त्र सम्मत वार्त्ता है॥१३॥ हे शत्रुओंके नाशकरने वाले! विविध शास्त्रोंमें और युद्धके विषयमें भलीभांति चतुरता प्राप्त कर लेनी चाहिये जो पुरुष संग्राम में विजय प्राप्त होनेंकी इच्छा करताहै उसको इन सब वातोंमें ज्ञान प्राप्त कर लेना कर्त्तव्यहै ॥ १४ ॥ देवताओंकी समान प्रभाव वाले इन्द्र जीतनें पिताका वचन श्रवणकर युद्धमें कृत निश्चयहो विना क्षणभरका विलम्ब किये रावणकी परिक्रमाकी ॥ १५ ॥ इन्द्रजीत जैसा युद्धमें बढा हुआथा वैसाही उत्साहवालाथा व अपने दल वाले राक्षस गणों करके सन्मानित होकर युद्धमें जाता हुआ ॥ १६ ॥ पर्वके

समय समुद्र जिस प्रकारसे बढ़ताहै कमल दलकी समान बड़े २ नेत्रवाले परम तेजस्वी श्रीमान् राक्षस राजनंदन मेघनादभी वैसेही रण उत्साहसे परिपूर्ण होकर युद्धके लिये निकला ॥ १७ ॥ अनन्तर इन्द्रकी समान असह्यवेगवाला इन्द्रजीत पक्षिराज गरुडकी समान वेगशाली तेज डाढ़वाले चार सर्प जिसमें जुते हुए ऐसे रथपर सवार हुआ ॥ १८ ॥ समस्त धनुषधारी और सम्पूर्ण अस्त्र जाननेंवालोंमें श्रेष्ठ शस्त्र ज्ञान सम्पन्न और रथ युद्ध विशारद इन्द्रजीत रथपर चढ शीघ्रतासे गमनकर जहां हनुमानजी बैठेथे उस स्थानमें पहुंचा ॥ १९ ॥ वानरवीर हनुमानजी उसके रथका शब्द और धनुषकी टंकारका शब्द श्रवण करकै अतिशय हर्षित हुए ॥ २० ॥ रणपंडित मेघनाद धनुष बाण और तेज फलके लगे हुए शर ग्रहण करकै हनुमानजीके सामने चला ॥ २१ ॥ जिस समय वह मेघनाद हर्ष सहित बाण लेकर निकला, उस समय दशों-दिशा मलीन होगईं, शृगाल इत्यादि पशुगण वारंवार चिल्लायकर भयंकर शब्द करनें लगे ॥ २२ ॥ नाग गण, यक्षगण, महर्षि गण, ग्रह गण, और सिद्ध गण वहां युद्ध देखनेंके लिये आये और आकाशमें पक्षी गण उड़ते२ संग्राम होगा इस हर्षके मारे ऊँचे शब्दसे शब्द करनें लगे ॥ २३ ॥ इस ओर इन्द्रजीतका रथ बड़ी शीघ्रताके साथ आताहुआ देखकर अति वेगसे गंभीर गर्जन करते हुए महावीरजी बढनें लगे ॥ २४ ॥ विचित्र धनुष धारी इन्द्रजीत दिव्य रथ पर सवार होकर, वज्रकी समान गंभीर शब्द युक्त सुन्दर धनुष पर टंकोर को देता हुआ ॥ २५ ॥ तिसके पीछे वैर बांधे हुए दैत्य और इन्द्रजीतकी समान दोनों जनें युद्ध करनें लगे । वह दोनों जनेंही तीक्ष्ण वेग युक्त महा बलवान और युद्ध में निडर चित्तवालेथे ॥ २६ ॥ अद्वितीय वीर महा कपि हनुमानजी बहुत लंबे चौड़े होकर संग्राम करनेंमें चतुर, वीर धनुषधारी, महारथी इन्द्रजीतके बाणोंका वेग विफल करके पवनके मार्गमें विचरण करनें लगे ॥ २७ ॥ यह देखकर परवीर घाती इन्द्रजीतनें बहुतसे बाण छोड़े यह समस्त बाण बड़े लम्बे चौडे तेज फलके लगें सुन्दर पंख युक्त सुवर्णसे चित्रित और वज्रकी समान वेगवानथे ॥ २८ ॥ हनुमानजी उसके रथ, मृदंग, भेरी नगाड़े खिचते हुए धनुषका घोर शब्द श्रवण करकै फिर उछल

गये ॥ २९ ॥ इन्द्रजीत निशानेंकी ओर स्थिरहो रहाथा, तथापि हनुमानजी उसके बाणोंको व्यर्थकर शीघ्रतासे उन बाणोंके दूरही दूर घूमने लगे ॥ ३० ॥ और फिर उन समस्त बाणोंके सन्मुख होकर बाण छोडनेंके समय दोनों हाथोंको फैलाय उनको पकड़कर मेघनादके सब बाणोंको विफल कर देते हुए कूदे ॥ ३१ ॥ वह दोनोही बलवान और युद्ध विशारद वीरथे; वह दोनोही वीर सब प्राणियोंके मनको हरनेंवाला अतिश्रेष्ठ युद्ध करनें लगे ॥ ३२ ॥ राक्षसनें तौ यह भेद न पायाकि यह हनुमान कैसे हमारे बाणोंको बचा जाते हैं; और हनुमानजीनें यह न जाना कि वह किस भांति इतनी शीघ्रतासे बाण चलायेही जाताहै; दोनों जनेंही देवताओंकी समान पराक्रमसम्पन्नथे; युद्ध करते हुए दोनोंही एक दूसरेके लिये सहनेंके अयोग्य होगये ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे महात्मा राक्षस राजका पुत्र मेघनाद बहुतेरेही अमोघ बाण (विफल न होनेंवाले) चलनें परभी हनुमानजीको न विंधा हुआ देखकर इनका रूप जाननेंके लिये ध्यान योगका आश्रयले एकाग्र चित्तसे चिन्ता करनें लगा ॥ ३४ ॥ फिर ध्यान योगसे हनुमानजीको अवध्य जानकर इनके पकड़नेंको क्या उपाय करना चाहिये इस विषयका विचार मेघनाद करनें लगा ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे विचार करकै अस्त्र जाननेंवालोंमें श्रेष्ठ मेघनादनें पितामह ब्रह्माजीके दिये हुए ब्रह्मास्त्रको हनुमानजीके ऊपर चढाया ॥ ३६ ॥ पवनकुमार हनुमानजीको ब्रह्मास्त्रसेभी अवध्य जान अस्त्रका मर्म जाननेंवाले महाबाहु रावणके पुत्र मेघनादनें ब्रह्मास्त्रसे हनुमानजीको बांध लिया ॥ ३७ ॥ राक्षस मेघनाद करके जब ब्रह्मास्त्रसे वानर श्रेष्ठ हनुमानजी बांधे जाकर एक बारही चेष्टा रहित होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३८ ॥ और फिर संभलकर अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीके प्रभावसे इस अस्त्रको अजमाया तौ अपना वेग कुछभी कम न पाया परन्तु ब्रह्माजीका वरदानी अस्त्रजान अपने पर तिनका बडा अनुग्रह माना; वानरश्रेष्ठ हनुमानजी ब्रह्मास्त्रसे बँधकर ब्रह्माजीके वरदेनेंके प्रभावसे कुछभी क्लेश नहीं पाते हुये ॥ ३९ ॥ और हनुमानजीनें अपने मनमें भली भांति विचार किया तौ उस अस्त्रको सब मंत्रोंसे अभिमंत्रित और ब्रह्माजीका वरदानी पाया ॥ ४० ॥ हनुमा-

नजीनें विचाराकि त्रिलोक गुरु ब्रह्माजीके प्रभावसे इस अस्त्रके बंधको छुडानेंकी शक्ति हममें नहीं है; इसलिये हम मुहूर्त्त भरतक इसको सहन करतेहैं॥४१॥पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे अस्त्रका वीर्य, ब्रह्माजीका वरदान अपनी इस अस्त्रसे छुटनेंकी सामर्थ्यको भली भांतिसे सोच विचार कर मुहूर्त्त भरतक ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करते रहे हनुमानजीको वरदान भी थाकि दो घडीसे अधिक तुमको अस्त्र पीडा न देगा ॥४२॥ हनुमानजीनें विचाराकि ब्रह्मा, इन्द्र, पवन यह सदाही हमारी रक्षा किया करतेहैं; इसलिये ब्रह्मास्त्रसे वँध जानें परभी हमको क्या भयहै? ॥ ४३ ॥ वरन जो वँधे रहेंगे तौ राक्षसगण हमको राक्षसराज रावणके पास लेजांयगे; और उस रावणसे वार्त्तालाप करनेंमें वड़ा फल निकलेगा, कि हम उसके मनकी वातको जानलेंगे इसलिये; शत्रुलोग हमको पकड़लें ॥ ४४ ॥ कार्य करनेंमें चतुर परवीरघाती हनुमानजी इस प्रकारका कर्त्तव्य निश्चय करके चेष्टा रहित भावसे पड़े रहे । और जव राक्षस लोग निकट आय वलात्कारसे पकड़ कर इनको अनेक प्रकारसे पकड़ने व धमकानें लगे तव हनुमानजी घोर नाद करते हुए ॥ ४५ ॥ इसके पीछे निशाचर लोग शत्रुओंके दमन करनेंवाले हनुमानजीको चेष्टा रहित देख उनको सन और वृक्षोंकी छालके रस्सोंसे खूव जकड़ कर वांधते हुए ॥ ४६ ॥ राक्षस रावण कौतूहलके वशहो यदि हमको देखनेंकी इच्छा करै तौ उसके साथ वात चीतभी हो जायगी, यह वात विचार कर हनुमानजीनें शत्रुओंका वल सहित पकड़ना, घुड़कना, धमकाना सहलिया ॥ ४७ ॥ जैसेहीकि रस्सियोंसे वांधेगये, वैसेही वीर्यवान कपि हनुमानजी ब्रह्मास्त्रके वंधनसे छूटगये, क्योंकि जहां किसी और रस्सी इत्यादिसे वांध दिया जाताहै, वैसेही ब्रह्मास्त्रका वंधन छूट जाताहै ॥ ४८ ॥ वीर मेघनादभी कपिकेशरी हनुमानजीको सन वल्कलादिसे वँधे और ब्रह्मास्त्रसे छूटे हुए देखकर चिन्ता करनें लगा कि और वांधनोंके वांधनेंसे ब्रह्मास्त्रके वंधन विफल हो जातेहैं ॥ ४९ ॥ हा! राक्षस लोगोंनें शस्त्रकी शक्ति कितनीहै, इसका विचार न करके हमारा किया हुआ यह वडा कार्य निरर्थक करदिया; अधिक क्या कहैं ब्रह्मास्त्रके व्यर्थ होंनेसे अव और किसी अस्त्रका प्रयोगभी नहीं किया जाय सकताहै; और एक वार व्यर्थ

होकर दुबारा यह शस्त्र चलभी नहीं सकता; इसलिये हम संशयको प्राप्त हुए-हैं ॥ ५० ॥ हनुमान्जीनें ब्रह्मास्त्रसें छूटकर कुछ बलनहीं दिखाया इसलिये राक्षस लोग विविध भांतिके बन्धनोंसे बांध और पकड़कर खेंचनें लगे॥५१॥ तिसके पीछे वह क्रूर स्वभाव राक्षस लोग हनुमानजीको खेचते और काल समान मुष्टियोंके प्रहारसे मारते२राक्षस राज रावणके निकट लेगये ॥ ५२॥ मेघनाद उनको ब्रह्मास्त्रसे छूटा व दूसरे वल्कलादि रस्सोंके बन्धनोंसे बँधा देखकर, सब मंत्रियोंको व रावणको दिखाता हुआ ॥ ५३ ॥ व और दूसरे मेघनादके साथी लोगोंने मत्त मातंगकी समान बन्धन अवस्थामें पड़े हुए हनुमानजीका सब वृत्तान्त रावणसे निवेदन किया ॥ ५४ ॥ उस समय यह कौनहै?किसका पुत्रहै? कहांसे और किसलिये आयाहै? और इसका सहायकारी कौनहै ? इस प्रकारकी कल्पना परस्पर सब राक्षस वीर करनें लगे ॥ ५५ ॥ व और दूसरे राक्षस लोग कहनें लगे ॥ ५६ ॥ महात्मा हनुमानजीनें थोड़ीहीसी दूर चलकर सहसा महा मूल्यरत्न भूषित राजमंदिर और राक्षस राज रावणके चरणोंके समीप बहुत सारे वृद्ध नौकर चाकर बैठे हुए देखे॥५७॥फिर प्रबल प्रताप वाले रावणनें देखाकि विकट आकार वाले राक्षस लोग हनुमानजीको इधर उधरसे खेंचे हुए लिये आय रहे-हैं ॥ ५८ ॥ कपिश्रेष्ठ हनुमानजीनें येभी देखाकि राक्षसपति रावण तेज और बलसे युक्त होकर घाम देते हुए सूर्यकी समान दीप्ति पाय रहा-है ॥ ५९ ॥ हनुमानजीको देखते ही रावणकी दृष्टि क्रोधके मारे लाल होकर घूमनें लगी; तब रावणनें वहां बैठे हुए कुल शील सम्पन्न वृद्ध प्रधान मंत्रियोंको हनुमानजीका सब वृत्तान्त जान लेनेंको कहा ॥ ६० ॥

यथाक्रमंतैःसकपिश्चपृष्टःकार्यार्थमर्थस्य
चमूलमादौ ॥ निवेदयामासहरीश्वरस्य
दूतःसकाशादहमागतोस्मि ॥ ६१ ॥

रावणकी आज्ञा पाय उन मंत्रियोंनें हनुमानजीसे पूछा कि तुम किसकी खोज. और किस कार्यके लिये यहां पर आयेहो ? तब हनुमानजीनें कहा कि हम कपिराज सुग्रीवके निकटसे दूत होकर यहां पर आयेहैं ॥ ६१ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०सुं० अष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥

ततःसकर्मणातस्यविस्मितोभीमविक्रमः ॥
हनुमान्क्रोधताम्राक्षोरक्षोधिपमवैक्षत ॥ १ ॥

भयंकर विक्रम करनेवाले हनुमानजीने इन्द्रजीतके कार्यको देख विस्मित होकर, लाल २ नेत्रकर रावणकी ओर दृष्टि करके देखा ॥ १ ॥ कि महा तेजमान रावण बड़े मोलका कांचन मय मुक्ता जाल लगा हुआ महा दीप्तिमान मुकुट ओढे उज्वल रूपसे शोभायमान हो रहाहै ॥ २ ॥ उसके दिव्य गहने समस्त हीरक खचित और बड़े मोलकी मणियोंसे प्रधानता चित्रित मानों मनकेही द्वारा बनाये गयेहैं ॥ ३ ॥ रावणका शरीर लाल चंदनसे चर्चित और बड़े मोलके रेशमीन वस्त्रोंसे ढका और विविध भांतिकी रचनाओंसे सजा हुआ था ॥ ४ ॥ वीस नेत्र भयंकर दर्शन वाले, अरुण वर्ण और आश्चर्य जनकथे; उसके दांत बड़े तीक्ष्ण, व दीप्तिमान और अधर समूह बड़े लंबेथे ॥ ५ ॥ वह नीले अंजनकी समान परम तेजस्वी राक्षसराज रावण दश मस्तकोंसे सर्पसे युक्त शोभित शिखर मन्दरकी समान, और उसका वदन मंडल पूर्ण चंद्रमाकी तुल्यहै इसलिये नवीन सूर्य युक्त मेघकी समान रावणकी शोभा होरहीहै ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ रावणके वीसौ हाथ पंचमुहे सर्पोंकी समान भयंकर श्रेष्ठ चंदनसे चर्चित्त, और उज्ज्वल बाजू, व केयूर उन बाहोंमें पड़े हुएथे ॥ ८ ॥ वह रावण रत्नोंके लगनेंसे चित्रित उत्तम बिछोंनोंसे शोभित, स्फटिक मणि जटित, सुविशाल विचित्र श्रेष्ठ आसनपर बैठाहै ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सजाहुआहै स्त्रियें चमर व्यजन हाथमें लिये हुये निकटही चारों ओर बैठकर रावणकी सेवा कर रहीहैं ॥ १० ॥ दुर्द्धर्ष, प्रहस्त, महापार्श्व, व निकुम्भ इन चार मंत्र जाननेंवाले मंत्रियोंसे ॥ ११ ॥ शोभित होनेंके कारण चारों समुद्रोंमें शोभित पृथ्वीके समान शोभायमान रावणथा ॥ १२ ॥ देव मंत्री लोग जिसप्रकार इन्द्रजीको सिखलाते हैं वैसेही मंत्रके जाननेवाले मंत्री लोग भी सिखाते हैं ॥ १३ ॥ हनुमानजीनें देखाकि महातेजस्वी राक्षस राज रावण मेरु पर्वतके शिखरपर जलवाले बादलकी समान टिका हुआहै ॥१४॥ भयंकर

बढानेंके लिये तुम अभीसे भला उत्तर विचार रक्खो ॥ ३ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! तुमही इस कार्यको पूरा करनेंकी सामर्थ्य रखतेहो, इसलिये जिसप्रकार कार्य करनेंसे दुःखका अंतहो, वही बिचार करना तुमको उचितहै, हे हनुमन्! तुम यत्नवान होकर हमारे दुःखकोभी दूर करो ॥ ४ ॥ हे हनुमन्! तुम यत्नमें स्थिर हुए हमारे दुःखका नाश करनेंवालेहो, यह सुन भयंकर कर्म करनेंवाले पवनकुमार हनुमानजी "जो आज्ञा" कह प्रतिज्ञाकर ॥ ५ ॥ मस्तक नवाय सीताजीको प्रणामकर चलनेंके लिये तैयार हुए । पवनकुमार हनुमानजीका जाना जान देवी जानकीजी ॥ ६ ॥ वाक्यसे गदगद हुई वाणीके द्वारा सीताजी हनुमानजीसे बोलींकि हेहनुमन्! हमारी कुशल श्रीरामचंद्रजीसे लक्ष्मणजीके सहित कहना ॥ ७ ॥ हेवानर श्रेष्ठ! मंत्रियोंके सहित सुग्रीवजीसे और वृद्ध वानरोंसे समस्तसेही तुम हमारी धर्म युक्त कुशल कहना ॥ ८ ॥ तुम उस बातमें यत्न करना कि जिस्से श्रीरामचंद्रजी हमको इस दुःख सागरसे उबारलें ॥ ९ ॥ हेहनुमन्! तुम उस प्रकार उनसे कहना कि जिस्से यशस्वी श्रीरामचंद्रजी हमारे जीवित रहते २ हमसे मिल जांय; ऐसे वचन कहनेंसे तुमको धर्म लाभ होगा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी सदाही उत्साहसे पूर्ण रहतेहैं, वह तुम्हारे मुखसे हमारे इन वचनोंको सुनतेही अवश्यही हमारी प्राप्तिके लिये अपने पौरुषको बढावेंगे ॥ ११ ॥ तुम्हारे मुखसे हमारे संवादसे मिश्रित वचन सुनकर वह वीर श्रीरामचंद्रजी यथाविधानसे पराक्रम प्रकाश करनेंमें अपना मन लगावेंगे ॥ १२ ॥ सीताजीके वचन सुनकर पवननंदन हनुमानजीने शिरसे हाथ जोडकर सीताजीको उत्तर दिया ॥ १३ ॥ हेदेवि! काकुत्स्थनंदन श्रीरामचंद्रजी बहुतही शीघ्र महावीर वानर और रीछोंकी सैनाके साथ यहां आय, शत्रुपर विजय पाय आपको दुःखसे छुडाय लेंगे ॥ १४ ॥ हम मनुष्य देव या सब असुरोंके बीचमें ऐसा किसीको नहीं देखते, जोकि बाण वर्षण करते हुए श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख टिकारहै ॥ १५ ॥ इतनाही नहीं वरन वह आपके लिये युद्धमें सूर्यको, इन्द्रको, व यमकोभी सह सकते और पराजित कर सकतेहैं ॥ १६ ॥ हेजनकनंदिनि। वह आपके लिये सागर सहित इस

पृथ्वीको जीत लेनेके लिये तैयार हुएहैं ! हेदेवि ! श्रीरामचंद्रजीकीही जयहोगी ॥ १७ ॥ हनुमानजीके वह युक्ति युक्त और भली भांतिसे कहे हुए सत्य वचन सुनकर जानकीजीनें इन वचनोंका बहुत मानकिया और बोलीं ॥ १८ ॥ इसके पीछे जानेंके लिये तैयार हनुमानजी पर वारंवार दृष्टि डालकर अपने पतिके स्नेह वाक्योंको भली भांति विचार कर बोलीं ॥ १९ ॥ हेशत्रुओंके दमन करनेवाले वीर ! यदि अच्छा समझो तौ एकदिन, इसी स्थानमें कहीं छिपाय कर टिके रहो; फिर श्रम दूर करके कल चले जाना ॥ २० ॥ हे अरिंदमन ! तुम्हारे निकट रहनेंसे इस मंद भागिनीकाभी अपार शोक एक मुहूर्त्तके लिये विध्वंश हो जायगा ॥ २१ ॥ परन्तु एकदिन यहां रह यहांसे जानें पर फिर जनें तुम यहांपर आओगे या नहीं. इसमेंभी संदेहहै; क्योंकि जो तुम न आये तौ निश्चयही हमारे जीवित रहनेंमें संशय होगा ॥ २२ ॥ क्योंकि तुम्हारे न देखनेंसे उत्पन्न हुआ शोक हमको और अधिक बढ़ कर भस्म कर डालेगा; कारणकि तुमको अबतौ देखा, और फिर न देखेंगी तौ यह शोक मानो हमको दुःखसे निकाल कर दुःखहीमें डाल देगा ॥ २३ ॥ हेवीर! तुम्हारी सहायता करनें वाले वानरों और ऋक्षोंके विषयमेंभी हमारे मनमें संदेह हुआहै, उस सेनाके वीचमें बड़ेभारी सुग्रीवजी ॥२४॥ और ऋक्ष वानरोंकी सेना किस उपायसे समुद्रके पार होगी? और श्रीराम लक्ष्मणजी यहां किस प्रकारसे आय सकेंगे ॥ २५ ॥ महा समुद्रके लांघनेंकी शक्ति तीन प्राणियोंकीहै; विनताके पुत्र गरुडजीकी, पवनजीकी और तुम्हारी ॥ २६ ॥ इसलिये हेवीर! इस दूर विक्रम कार्यकी सिद्धिके अर्थ तुमनें कौनसा उपाय स्थिर कियाहै, क्योंकि तुम कार्यके जाननें वाले पुरुषोंमें श्रेष्ठहो ॥ २७ ॥ अथवा हेपरवीर विनाशन! तुमतौ इकलेही सरलतासे सब कार्य कर सकतेहो, और ऐसा करनेंसे तुम्हारा यशभी बड़ा भारी होगा ॥ २८ ॥ परन्तु यदि श्रीश्रीरामचंद्रजी चतुरंग सैनाके साथ रावणको जीतकर मुझे ले विजयी हो अपनी नगरीमें चले जांय तौ ही यह कार्य उनके उपयुक्त हो ॥ २९ ॥ इसलिये शत्रुकी सैनाके संहारकारी श्रीरामचंद्रजी लंका नगरीको सैनासे घेरकर जो हमको यहांसे ले जांय तौ ही यह कार्य

सदृशहो ॥ ३० ॥ इसलिये हे वीर! जिससे उन महात्मा रणवीर श्रीराम चंद्रजीके विक्रम प्रकाश पावैं वैसाही उपाय तुमको करना चाहिये॥३१॥ श्री जानकीजीके अर्थ सहित और युक्ति युक्त वचन श्रवण करकै हनुमानजी उनको सब उत्तर देते हुये ॥ ३२ ॥ हे देवि! रीछ वानरोंकी सैनाके अधिपति वानर श्रेष्ठ बलवान सुग्रीवजी आपके उद्धार करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं॥३३॥हे देवि! राक्षस गणोंके संहारकारी वह सुग्रीवजी कोटि २ वानरोंकी सैना लिये शीघ्रही यहांपर आगमन करेंगे॥३४॥बड़े विक्रमवान साहसी महाबलवान मनोरथकी समान अति दूर गमन कारी असंख्योंवानरगण उनकी आज्ञाके आधीन मेंहैं॥३५॥क्या ऊपर क्या नीचे क्या तिरछे किसी ओर को जानेमें भी उनकी गति नहीं रुकती वह अतुल प्रभाव वाले अति दुष्कर कार्य करनेंमें भी काष्टित नहीं होते॥३६॥उनका उत्साह अति बड़ा है वह पवनके मार्गका अवलंबन करकै अति उत्साह सहित अनेक वार सागर और पर्वतोंके सहित इस पृथ्वी मंडलकी परिक्रमा करचुके हैं॥ ३७ ॥ सुग्रीवजीके निकट हमसे अधिक बलवान और हमारी समान बल वाले अनेक वनवासी वानर हैं, हमसे हीन तो एक भी वानर सुग्रीवजीके निकट नहीं है ॥ ३८ ॥ जब कि हम हीनबल होकरभी इस स्थानमें आय सकते हैं तब उन महा बलवान वानरोंकी तो बातही क्याहै? और भी देखिये साधारण व छोटे ही पुरुष ऐसे कार्योंमें भेजे जातेहैं परन्तु प्रधानोको कहीं कोई भी भेजताहै?॥३९॥इस कारण हे देवि! परिताप करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है; शोक दूरकीजिये वह समस्त वानरयूथपति एकही छलांग मारकर लंकामें आजायँगे ॥ ४० ॥और वह बलवान सहाय युक्त नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी हमारी पीठ पर चढकर चंद्रमा सूर्यकी समान उदित हो आपके निकट उपस्थित होंगे ॥४१ ॥वह दो नरश्रेष्ठ वीरवर श्रीश्रीराम लक्ष्मणजी एक साथ यहां आयकर लंका नगरीके धुरें अपने बाणोंके समूहसे उडाय देंगे ॥ ४२ ॥ हे श्रेष्ठ वर्ण वाली रघुकुलके हर्ष बढाने वाले श्रीरामचंद्रजी रावणको सपरिवार संहार करकै आपको ले अपनी नगरी अयोध्याको चले जांयगे ॥ ४३ ॥इस्से धीरज धरिये आपका मंगल हो कुछ कालतक और ठहरिये अब बहुतही शीघ्र आप प्रदीप्त अनलकी समान श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करेंगी ॥ ४४ ॥ तब पुत्र मंत्री और

बन्धु बान्धवोंके सहित रावणके मरनें पर चंद्रमासें रोहिणीकी समान आप मिलेंगी॥४५॥हेदेवि! जनकनंदानि! आप शीघ्रही शोकका पार देखेंगी आप देखेंगी श्रीरामचंद्रजीने बलप्रकाश करके रावणको संहार कियाहै ॥ ४६ ॥ वायुसुवन हनुमानजी इस प्रकार जानकीजीको समझा बुझाकर चलनेंके लिये तैयार हो फिर बोले ॥ ४७ ॥ हे आर्ये! आप बहुत ही शीघ्र देखेंगी कि वह शत्रुओंके नाश करनें वाले विजयी श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी धनुष हाथमें लिये लंकाके द्वार पर आयगये हैं ॥ ४८ ॥ नख, डाढोंको आयुध बनाये सिंह शार्दूलकी समान विक्रम वाले हाथियोंके समान एकत्र हुए वानरोंको भी देखोगी ॥ ४९ ॥ इस लंका नगरीमें पर्वतोंकी शिखर पर और मेघोंकी समान आकार वाले अनेक २ प्रधान २ वानर यूथपोंको गर्जता हुआ देखोगी ॥ ५० श्रीरामचंद्रजी आपके विना देखे कामदेवके बाणोंसे मर्दित होकर सिंहसे घायल हुए हाथीकी समान एक क्षण भरको भी शांति नहीं पाय सकतेहैं ॥ ५१ ॥ हे देवि! अब शोक या रोदन कुछ न कीजिये आप अपने मनसे भयको दूरकरें। हे शोभने! इन्द्रजीके साथ शचीकी नांई आपभी अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीसे मिलेंगी ॥ ५२ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे और कौन श्रेष्ठहै? और लक्ष्मणजीकी समानता भी कौन पाय सकताहै? सो वही अग्नि और वायुकी तुल्य दोनों भ्राताओंके आश्रयमें आयेहैं ॥ ५३ ॥

नास्मिंश्चिरंवत्स्यसिदेविदेशेरक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे ॥ नतेचिरादागमनंप्रियस्यक्षमस्वमत्संगमकालमात्रम् ॥ ५४ ॥

हे देवि! आपको इस राक्षसके घोर स्थानमें और अधिक दिन वास नहीं करना पड़ेगा अब बहुतही शीघ्र आपके स्वामी यहां आवेंगे;हम जब तक वहां जायकर उनके दर्शन नहीं करते हैं, आप तबही तक समयको परखती रहियेगा ॥ ५४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०सु०एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥३९॥

चत्वारिंशःसर्गः ॥

श्रुत्वातुवचनंतस्यवायुसूनोर्महात्मनः ॥
उवाचात्महितंवाक्यंसीतासुरसुतोपमा ॥ १ ॥

महात्मा पवनतनय हनुमानजीके वचन सुनकर देवकन्याकी समान सीताजी अपने हितकी बात कहती हुई ॥ १ ॥ हे हनुमन् ! अन्नके आधे पक जानेपर अनावृष्टिके पीछे जो वृष्टि होतीहै, और फिर अन्न उस्से दूना उत्पन्न होताहै, हमभी मरणमें निश्चय बुद्धि किये प्रियवक्ता तुमको पाय वैसेही प्रसन्न हुई हैं ॥ २ ॥ तुम हमारे ऊपर दया करकै ऐसा उपाय करो कि हम इन शोक क्षीण अंगोंसे उन पुरुष व्याघ्र श्रीरामचन्द्रजीको स्पर्श कर सकें ॥ ३ ॥ हे वानर कुलतिलक ! श्रीरामचन्द्रजीको चिह्न स्वरूप यह मणि देदेना; और चिह्नरूप यह बातेंभी उनसे कहना कि आपनें काकके प्रति एकाक्षिनाशिनी शक्ति चलायकर उसके प्राणोंकी रक्षा कीथी॥४॥औरभी कहना; फिर एक समय जब हमारा तिलक बिसन गयाथा, सो आपनें हमारे गालोंपर मैनसिलका तिलक बना दियाथा सो इस बातकाभी स्मरण करना आपको उचित है ॥ ५ ॥ वीर्यवान श्रीरामचन्द्रजी इन्द्र और वरुणजीकी समान पराक्रमी हैं, तौभी हमको राक्षस हर कर ले आया, और इन राक्षसोंहीके बीचमें हमको वास करना पड़ताहै ॥ ६ ॥ सो वह किस प्रकारसे इस बातको सह रहे हैं, उनसे इतनाभी कहना कि हमनें यह दिव्य चूडामणि अति यत्नसे रख छोड़ाथा । दुःखके समय हम इस मणिको देख मानों तुमकोही पाय आनन्दित हुआ करती थीं ॥ ७ ॥ इस समय यह जलसे उत्पन्न हुआ रत्न हमनें तुम्हारे निकट चिह्न स्वरूपमें भेजा, अब शोकमें डूबकर हम और अधिक जीवन धारण न कर सकैंगी ॥८॥ विविध भांतिके न सहनें योग्य दुःख मर्म भेदी वचन और राक्षसोंके साथ एक जगह वास, यह सब हम तुम्हारेही कारण सह रहीहैं ॥ ९ ॥ हे शत्रुदमन! और एक मासतक जीतीहैं; हे राजकुमार ! एक मास पीछे फिर तुम्हारे बिना इस जीवनको हम नहीं रक्खैंगी ॥ १० ॥ राक्षसोंका राजा रावण अति निर्दयीहै; तिसपर हमारी ओर उसकी दृष्टिभी अच्छी नहीं है । सो इसपर यदि हम सुनेंगी कि तुम आनेंमें विलम्ब करतेहो तौ एक क्षणभर कोभी हम नजियेंगी ॥११॥ वैदेहीजीके आंसु गिरनेंके साथ करुणासे कहे वचन श्रवणकर महातेजमान पवनकुमार हनुमानजी बोले ॥ १२ ॥ हे देवी ! हम सत्यकी सौगन्ध करकै कहते हैं कि आपके शोकमें श्रीराम-

चन्द्रजी समस्तही कार्योंसे विमुख होरहेहैं, और उन श्रीरामचन्द्रजीके शोकाकुल होनेसे लक्ष्मणजीभी संताप करते हैं॥१३॥ हे देवि ! इस समय बड़े भाग्य व अनेक कष्टोंसे आपको पायाहै अब संताप करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं; अब इसी मुहूर्त्तमें आप अपने शोकका अंत देखेंगी ॥ १४॥ वह निंदारहित दो पुरुष व्याघ्र राजकुमार आपके देखनेंको उत्साही हो लंकापुरीको भस्मकर डालेंगे ॥ १५॥ हेबड़े नेत्रों वाली! वह दोनों रघुवीर राक्षस रावणका बन्धु बान्धवोंके सहित व जितने राक्षसहैं, उन सबका संहार करके आपको अपनी पुरी राजधानी अयोध्याजीमें लेजांयगे॥ १६॥ हे निन्दा रहित! जिससे श्रीरामचंद्रजी निश्चय इसको आपही चिह्न समझें और जिससे उनकी प्रसन्नताहो, सो इस समय आप ऐसा कुछ और चिह्न; भी हमको दीजिये ॥ १७ ॥ तब सीताजी विस्मय युक्त होकर बोलीं कि हे हनुमन्! हमने तो पहलेही तुमको श्रेष्ठ अभिज्ञान (निशानी. चिह्न) प्रदान कियाहै; इसी हमारे केश भूषण रत्नको देखतेही श्रीरामचंद्रजी ॥ १८॥ हे वीर! तुम्हारे वचनका विश्वास करेंगे । तब वानर श्रेष्ठ हनुमानजीनें यह श्रेष्ठ मणि ग्रहणकर॥ १९ ॥ शिर नवाय देवी जानकोजीको प्रणामकर चलनेंके लिये विचार करते हुये॥ उनको छलांग मारनेंका मन किये ॥२०॥ व अति वेगसे बढ़ते हुए देखकर जनकनंदनी सीताजी नयनोंके नीरसे मुख गीलाकर दीनहो गदगद वाणीसे बोलीं ॥ २१ ॥ हे हनुमन् ! सिंहकी समान पराक्रमी दोनों भाई श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी व सुग्रीवजी और उनके मंत्रियोंसे सबहीसे हमारी (अनामेष) कुशल कहना ॥ २२ ॥ महा बलवान् श्रीरामचंद्रजी जिस्से हमको इस शोक सागरसे उद्धार करलें सो तुमको ऐसाही करना चाहिये ॥ २३ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके समीप जायकर हमारे इस असह्य शोकको व राक्षसोंसे जो हमारा अपमान होताहै उसको उनसे भली भांति कहना हे वानरवीर! तुम्हारा मंगलहो!२४॥

सराजपुत्र्याप्रतिवेदितार्थःकपिःकृतार्थःप
रिहृष्टचेताः ॥ तदल्पशेषंप्रसमीक्ष्य
कार्यंदिशंह्युदीचींमनसाजगाम ॥ २५॥

व सब भांतिसे कृतार्थ हो हनुमानजी संतुष्टहो राजकुमारी सीताजीका सं-

वादले और यह जानकर कि यह कार्य अब थोड़ाही बाकी रह गयाहै, उत्तर दिशाकी ओर जानेंका मन करते हुये ॥ २५ ॥ इ०श्रीम०वा०आ० सु०चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

सचवाग्भिःप्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया॥
तस्माद्देशादपाक्रम्यचिंतयामासवानरः॥ १ ॥

इसके पीछे वह वानरश्रेष्ठ सीताजीकी मधुर वचनावली द्वारा आदर मान पायकर गमन करनेंके अभिलापसे वहांसे चलकर चिन्ता करनें लगे ॥ १ ॥ इन कृष्ण नेत्रोंवाली जानकीजीका तो दर्शन किया, परन्तु शत्रुका बल दर्शन रूप एक थोड़ासा कार्य बाकी रहा जाताहै सो इसके विषयमें साम, दाम, दंड, भेद, इन चार उपायोंमेंसे एक दंडहीके द्वारा इस कार्यका साधन होना हम देखतेहैं ॥ २ ॥ क्योंकि राक्षस लोगोंको समझना कुछ फल न करैगा, और फिर इन धन धान्यसे भरे पुरे राक्षसोंको दान करनेंसेभी कुछ फल न निकलेगा और बलसे गर्वित पुरुषोंमें भेद डालनाभी कठिनहै इसलिये इस समय बचे हुए कार्यको पूरा करनेंमें पराक्रमही प्रकाश करनेंकी हमारी अभिलाषाहै ॥ ३ ॥ और पराक्रम प्रकाश करनेंके सिवाय पराये बलको जाननेंके लिये किसी दूसरे उपायसे हम कार्यकी सिद्धि नहीं देखते, हां जो कुछेक वीर मारे जांय तव यदि आगेको संग्राम करनेंके लिये राक्षस लोग कदाचित् कुछ नरम पड़ैं॥४॥पहले बड़े कार्यको पूरा करके जो दूत इस पहले किये हुए कार्यके अविरोधमें औरभी कई एक कार्य पूरे करदे वही पुरुष यथार्थमें कार्य करनेंके लायकहै ॥ ५ ॥ जो पुरुष बहुत सारा यत्न करके थोड़ेसे कार्यकी साधना करै उस कार्यका मुख्य साधन करनेंवाला नहीं कहा जा सकता, जो साधारण प्रकारसे अपना कार्य अनेक प्रकारसे साधन कर सकतेहैं, वही प्रधान कार्यके साधकहैं ॥ ६ ॥ यद्यपि प्रधान कार्य तो हमारा सीताजीका ही ढूंढ़ना था, वह तो करही चुके, तथापि राक्षसोंका बल और अपने बलके अंतरको भली भांतिसे जानकर वानरराज सुग्रीवजीके पास चले जांय तो ऐसा करनेंसे ही यथार्थ स्वामीका कार्य सर्व भांतिसे प्रति पालन करना

हो जायगा ॥ ७ ॥ अब इस समय किस उपायका आश्रय करनेंसे हमारे आगमनका शुभ फल फलैगा? किस उपायसे हम अनिष्टकारी राक्षसोंके साथ संग्राम करनेंमें लगें? और किस प्रकारसे रावण हमको संग्राम स्थलमें खड़ा देख अपनी सैनाके और हमारे बलकी निचाई उँचाई को जानें? ॥ ८ ॥ अपने आश्रित सैनापति, और मंत्रि गणोंके सहित रावणके संग्राममें आतेही हम उसके हृदयका अभिप्राय बल सरलतासे जान इस स्थानसें चले जांयगे ॥ ९ ॥ सो इसके लिये हमारे मनमें यह बात आतीहै कि यह जो क्रूर रावणका अनेक जातिकी तरु लता ओंसे पूर्ण नन्दन वनकी समान नयन और मनको प्रसन्न करानेंवाला उपवनहै॥१०॥ सो आग जिस प्रकार सूखे हुये वनको भस्म कर डालतीहै, वैसेही हमभी इस वनका नाश कर डालें। इस वनके उजाड़ होनेंके पीछे राक्षस पति रावण क्रोधित हो ॥ ११ ॥ हाथी, घोडे, रथोंसे व्याप्त, त्रिशूल, खड्ग, और पटा धारण करनें वाली बड़ी सैना हमारे सामने युद्धमें भेजैगा। तब महा भयंकर युद्ध होगा ॥ १२ ॥ हम भी भयंकर पराक्रमसे प्रचंड पराक्रम सम्पन्न राक्षसोंके साथ युद्ध करते हुये समस्त सैनाको संहार करके सुखसे वानरराज सुग्रीवजीके भवनमें गमन करेंगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार निश्चय करके भयंकर विक्रमशाली पवनकुमार हनुमानजी क्रोधित होकर महा वेगसे वृक्षोंको उखाड़नें तोड़नें लगे ॥ १४ ॥ थोड़ेही समयमें वीर्यवान हनुमानजीनें अनेक भांतिकी लता व वृक्षोंसे पूर्ण, मतवाले पक्षी कुलके शब्दसे शब्दायमान; वह सब प्रमदावन उजाड़ डाला ॥ १५ ॥ उस समय उस वनके सब वृक्ष टूट गये, जलाशयोंके किनारे खसक गये, और विविध भांतिके प्रिय दर्शन पर्वतके सब शृङ्ग चूर्ण होगये ॥ १६ ॥ अनेक प्रकारके जलचर पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान जलाशयोंका जल उछलनें और लाल वर्ण कमल फूलोंके वा द्रुम लता ओंके मलीन होजानेंसे ॥ १७ ॥ दावानलसे भस्म हुये वनकी नांई वह वन वहार विहीन होगया, ढकनोंके टूट जानेंसे सब लता विध्वंशित होकर ...नी इत्यादि वसनोंको खसकाये स्त्रीकी समान विह्वल होगई ॥ १८ ॥ ...चित्र गृह, सबका विध्वंश होगया, शार्दूलादि मृग और पक्षी गण व सब भांतिसे चिल्लानें और शिला गृह व सामान्य गृहके गिर जानेंसे, इस

महावनका स्वरूप भ्रष्ट होगया ॥ १९ ॥ रावणकी स्त्रियोंके रति बढ़ाने वाले अशोक वनके लता समूह रक्षाहीन होनेंके कारण वानरश्रेष्ठ हनुमानजीकें बलसे अति शोचनीय दशाको प्राप्त हुए ॥ २० ॥

ततःसकृत्वाजगतीपतेर्महान्महद्व्यलीकंमन
सोमहात्मनः ॥ युयुत्सुरेकोबहुभिर्महाबलैः
श्रियाज्वलंस्तोरणमाश्रितःकपिः ॥ २१ ॥

वह सौंदर्य सम्पन्न महाकपि हनुमानजी महात्मा रावणका महा अप्रिय कार्य साधन करकै इकलेही महा बलवान बहुत सारे राक्षसोंके साथ युद्ध करनेंकी इच्छाकर बलकी सम्पत्तिसे प्रज्वलित हो इन वनके बाहरी द्वार पर चढ़गये ॥२१॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०सुं०एकचत्वारिंशःसर्गः॥४१॥

द्वाचत्वारिंशः सर्गः ॥

ततःपक्षिनिनादेनवृक्षभंगस्वनेनच ॥
बभूवुस्त्रासंसंभ्रांताःसर्वेलंकानिवासिनः ॥ १ ॥

तत्पश्चात् पक्षियोंकी चिल्लाहटसे, और वृक्ष टूटनेंके खड़ २ मड़ २ शब्दोंसे त्रासित होकर लंकाके सबही निवासी चलायमानहो भीत होगये ॥ १ ॥ पशु पक्षी सबही भयके मारे उस स्थानसे उड़कर दूसरे स्थानोंमें छिपनें लगे; और राक्षसोंके निकट विविध भांतिके अमंगल लक्षण होनें लगे ॥ २ ॥ इस ओर विकराल वदन वाली सब राक्षसियोंने निद्रा त्यागकर उस टूटे फूटे वन और महावीर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीको देखा ॥ ३ ॥ वह महा बलवान् दीर्घबाहु हनुमानजी राक्षसियोंको देख उनको डरानेंके लिये भयंकर रूप धारण करते हुए ॥ ४ ॥ तब सब राक्षसियोंने पर्वतकी समान बड़े आकार वाले महा बलवान् वानर श्रेष्ठ हनुमानजीको देखकर जानकीसे बूझा ॥ ५ ॥ यह कौनहै ? किसका दूतहै ? कहांसे और किस कारणसे इस स्थानमें आयाहै ? और तुमसे इसनें किस कारण बातें की ? ॥ ६ ॥ हे विशालाक्षी ! यह सब तुम हमसे कहो, सुभगे! तुमको कोई भयनहीं है । हे असितापांगि! इस वानरनें तुम्हारे साथ क्या२ कथा वार्त्ता कही ॥ ७ ॥ तब जनककुमारी सर्वाङ्गसुन्दरी पतिव्रता सीताजी उन राक्षसियोंको उत्तर देनें लगीं कि कामरूपी राक्षस लोग अपनी

इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं सो भला हम उनको किस प्रकारसे जानें ॥ ८ ॥ इसलिये यह कौनहै और किस कार्यको पूरा करैगा! यह सब बातें तुमहीं जान सकतीहो कारण कि सर्पही सर्पके पांव जानताहै॥९॥ हमभी बहुत डरगई हैं, नहीं जानती कि यह कौनहै? हम समझती हैं कि यह कामरूपी राक्षस मायारूप बनाकर यहां आयाहै ॥ १० ॥ श्रीजानकीजीके वचन सुनकर राक्षसियें भयके मारे दौडीं, उनमेंसे कोई २ तो वनमेंही टिकरहीं; और कोई २ रावणको यह समाचार देनेंके लिये बडी शीघ्रतासे गईं ॥ ११ ॥ उन समस्त विकराल वदन वाली राक्षसियोंनें रावणके निकट पहुँचकर, विकराल वदनवाले वानरके आनेंका समाचार निवेदन किया ॥ १२ ॥ वह राक्षस बोले; कि हे राजन् ! अशोकवनके बीच एक भयंकर शरीरधारी अतुल पराक्रम सम्पन्न वानर आयाहै और न जानें उसनें सीताजीके साथ क्या कुछ वार्ताकी है? ॥ १३ ॥ हमनें उस मृगनयनी सीताजीसे बार २ पूछाकि उस वानरसे और तुमसे क्या बातचीत हुई, परन्तु सीताजीनें हम लोगोंसे किसी प्रकार उस वानर की कही बात कहनें की इच्छा नकी ॥ १४ ॥ वह वानर इन्द्रका दूत होगा? अथवा रामचन्द्रनेंही सीताके ढूंढनें की अभिलाषा करके इस वानरको भेजा होगा? ॥ १५ ॥ किसीकाभी दूतहो सो उसही अद्भुत वानरने आपका अनेक प्रकारके मृग गणोंसे सेवित मनोहर प्रमोद वन तोड़ फोड़कर उजाड़ कर दिया ॥ १६ ॥ उस वनमें ऐसा कोई स्थान नहीं कि जिसको उस वानरनें नहीं विध्वंश डाला; हां केवल जिस स्थानमें देवी जानकीजी रहती हैं; उसही स्थानको उस वानरनें नष्टनहीं किया ॥ १७ ॥ या तो जानकी की रक्षाके लिये, या मारे थकावटके उस स्थानको उस वानरनें छोड दियाहै, यह बात जानी नहीं जाती, अथवा जब उसनें इस महावन कोही तोड़ फोड़ डालाहै, तब उसको इस जरासे स्थानको तोड़नेमें क्या परिश्रमथा, वास्तवमें और बात नहीं; केवल उस वानरनें जानकीजीकी रक्षाकी है॥१८॥स्वयं सीतादेवी जिस मनोहर पल्लव पत्र युक्त शोभायमान बडेभारी शिंशपा वृक्षके नीचे बैठी हैं; बस उस वानरनें केवल उसी वृक्षको छोड दियाहै ॥ १९ ॥ जिस्सेकि उस उग्र मूर्त्ति वानरनें सीताजीके सहित वार्तालाप किया और वनको तोड ताड डाला, इसलिये आप उस

वानरको उचित दंड देनेकी आज्ञा दीजिये ॥ २० ॥ हे राक्षसनाथ ! आपनें अपने मनसे जिस सीताको ग्रहण कर लियाहै, सो उस सीतासे विना अपने जीवनकी आशा त्याग किये कोन बात चीत कर सकताहै ! ॥ २१ ॥ समस्त राक्षसियोंके यह वचन सुनकर रावण इस प्रकार जलबल गयाकि जिस प्रकार चिताकी आग एकवारही धूधू करके जल उठतीहै ॥ २२ ॥ क्रोधके मारे रावणके दोनों नेत्र चलायमान होंने लगे और दीपक अग्निकी शिखाके सहित तेल बुन्दोंकी समान उसके दोनों नेत्रोंसे आंसुओंकी बूँदें गिरनें लगीं ॥ २३ ॥ तिसके पीछे प्रबल प्रताप शाली रावणनें महातेजमान हनुमानजीको पकडनेंके लिये अपनी समान पराक्रम वाले अपने किङ्कर राक्षसोंको आज्ञादी ॥ २४ ॥ उन राक्षसोंमें अस्सी हजार ८०००० वेगवान किंकर कूट मुगदर इत्यादि शस्त्र हाथोंमें लेकर स्थानसे निकले ॥ २५ ॥ सबकेही पेट बडे २ डाढ़ेंभी मोटी और बडी सबही बडे भयंकर मूर्त्तिमान और प्रमाण रहित बलवालेथे सबही हनुमानजीको पकडनेंके लिये युद्ध करनेंको तैयारहो ॥ २६ ॥ बाहरके द्वार पर खडे उन वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके निकट पहुंच; अग्निके सन्मुख पतंगकी समान उनके सोंही वे राक्षस दौडे ॥ २७ ॥ और सबही चारों ओरसे घेर कर विविध भांतिकी गदा, सुवर्णके बंद बँधे हुए परिघोंसे और सूर्यकी समान प्रकाशित बाणोंसे ॥ २८ ॥ मुद्गर, पटा, शूल, फांसी और भालोंसे उन वानर श्रेष्ठ हनुमानजीके ऊपर वह राक्षस लोग चोट चलानें लगे ॥ २९ ॥ पर्वत समान आकार वाले तेजस्वी पवन कुमार हनुमानजीभी पृथ्वीपर अपनी पूंछ पटक बडे भारी शब्दसे गर्जन करनें लगे ॥ ३० ॥ पवनकुमार हनुमानजी बडी भारी देह धारण करते हुए भयंकर नादसे लंकाको पूर्ण करते अपनी पूंछको वार २ पृथ्वीपर पटकनें लगे ॥ ३१ ॥ उनके उस भयंकर चिल्लानें और पूंछ पटकनेंके शब्दसे उडते हुए पक्षी आकाशसे पृथ्वी पर गिरनें लगे; फिर हनुमानजी बडे शब्दसे पुकारते हुएकि ॥ ३२ ॥ अति बलवान् श्रीरामचंद्रजीकी जय ! महाबलवान् लक्ष्मणजीकी जय!! राघवपालित सुग्रीवजीकी जय !!! ॥ ३३ ॥ हम अमित कर्म करनें वाले कौशलपति श्रीरामचंद्रजीके दासहैं, हमारा नाम हनुमानहै! हम पवनके पुत्र समरमें शत्रुकी

सैनाका संहार किया करतेहैं ॥ ३४ ॥ इस समय हम संग्राममें सहस्र शिला और वृक्षोंका प्रहार करेंगे, तब एक रावणकी क्या चलाई, हजार रावणभी हमारी समानता नहीं कर सकेंगे ॥ ३५ ॥ हम समस्त राक्षसोंके सामनेही लंकापुरीको पीस पासकर जानकीजीको प्रणामकर अपने कार्य-को साध यहांसे चले जायँगे ॥३६॥ कपिश्रेष्ठ हनुमानजीका यह सिंहनाद सुनकर राक्षस लोग भयके मारे त्रासित होगये; और उन हनुमानजीको सन्ध्या कालके मेघकी समान उन राक्षसोंने ऊंचा देखा ॥ ३७ ॥ परन्तु अपने स्वामीकी आज्ञासे निशंक होकर वे राक्षस अनेक प्रकारके भयंकर अस्त्र शस्त्र धारण करकै चारों ओरसे हनुमानजी पर धाये ॥ ३८ ॥ जब महावीरजीको राक्षसोंने चारों ओरसे घेर लिया, तब हनुमानजीनें इस फाटकके समीप रक्खा हुआ लोहेका एक भयंकर परिघ ग्रहणकर लि-या ॥ ३९ ॥ विनतानंदन गरुड़जी फड़ फड़ाते हुए सर्पको पकड़ जिस प्रकार आकाशमें उड़कर घूमतेहैं वैसेही पवनकुमार हनुमानजी इस परिघको ग्रहण करकें निशाचरोंका संहार करते कूदनें फांदनें लगे ॥४०॥ हजारनेत्रवाले इन्द्रजी वज्रसे जिस प्रकार दैत्योंका संहार करतेहैं; वीर पवनकुमारजी वैसेही आकाशमार्गमें घूम घामकर इस परिघसे रावणके किंकर नाम राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार उन अस्सी हजार, किंकर नाम राक्षसोंको संहार महाबली पवनकुमार, युद्ध करनें की इच्छासे फिर उसी तोरण पर चढ़कर बैठे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे किसी प्रकारसे बचे बचाये अधमरे राक्षसोंने भयके मारे संग्राम भूमिसे भागकर रावणको यह संवाद दिया, कि महा बलवान राक्षस मारे गये ॥ ४३ ॥

सराक्षसानांनिहतंमहाबलंनिशम्यराजाप
रिवृत्तलोचनः ॥ समादिदेशाप्रतिमंपराक्र
मेप्रहस्तपुत्रंसमरेसुदुर्जयम् ॥ ४४ ॥

बड़ी भारी राक्षसी सैनाका संहार सुनकर राक्षसराज रावणके दोनों नेत्र घूमनें लगे। और उसनें संग्राममें जानेंके लिये अजीत प्रहस्तके बेटे जम्बुमाली नाम राक्षसको आज्ञादी ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥

ततःसकिंकरान्हत्वाहनूमान्ध्यानमास्थितः॥
वनंभग्नंमयाचैत्यप्रासादोनविनाशितः ॥ १ ॥

तिसके पीछे हनुमानजी उन अस्सी हजार किंकरोंका संहार करकै यह विचार करनें लगे कि हमनें वन तौ तोड़ ताड़ डाला परन्तु राक्षस कुलके अधिष्ठाता देवतालोगोंके मंदिर नहीं तोड़े ॥ १ ॥ इसलिये अभी बलको प्रगट कर इस मंदिरको भी तोड़ैं । वानरयूथपति हनुमानजी मनही मन यह संकल्प कर बल दिखाय ॥ २ ॥ छलांग मार मेरु पर्वतके शिखर की समान ऊंचे उस राक्षस अधिष्ठाता देवताके मंदिर पर पवनकुमार हनुमानजी चढ़े ॥ ३ ॥ वानर केशरी पवनकुमार हनुमानजी इस पर्वतकी समान देव मंदिर पर चढ़ अतिशय तेजयुक्त हुये, दूसरे सूर्यकी समान प्रकाशित हुए ॥ ४ ॥ इसके पीछे दुर्द्धर्ष हनुमानजी उस मनोहर देव प्रासादको एक वारही तोड़कर; अपनी स्वाभाविक लक्ष्मीसे प्रज्वलित पारिपात्र पर्वतकी समान शोभाय मान हुए ॥ ५ ॥ फिर हनुमानजी निज प्रभावसे अपना शरीर बहुतही बढ़ाय निर्भय शब्दसे लंकाको पूर्ण करते हुए अपनी भुजाओंसे शब्द करनें लगे ॥ ६ ॥ यहां तक कि उनके उस श्रवण कठोर बडे भारी बाहोंके शब्दसे मोहित होकर आकासमें उड़ते पक्षी और उस देव मंदिरके रक्षक सबही गिर पड़े ॥ ७ ॥ अस्त्र जाननें वाले श्रीरामचंद्रजीकी जयहो। महा बलवान लक्ष्मणजीकी जयहो ! !व श्रीरामचंद्रजीके प्रति पालित राजा सुग्रीवजीकी जयहो !!! ॥ ८ ॥ हम श्रेष्ठ कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीके दास, पवनके पुत्र शत्रुकी सैनाके संहार करनें वाले, हनुमान नाम वानरहैं ॥ ९ ॥ हजार २ वृक्ष और शिलाओंका प्रहार करकै जब हम संग्राम करेंगे; तब एक रावणकी क्या चलाई हजार रावण भी हमारी समानता नहीं कर सकेंगे ॥ १० ॥ हम सब राक्षसोंके सन्मुख, समस्त लंका पुरीको मसल मसलाय जानकीजीको प्रणाम कर कार्य साध अपने स्थानको चले जांयगे ॥ ११ ॥ यह कहकर देव मंदिरके शिखर पर बैठे हुए बड़े आकार वाले हनुमानजी राक्षसोंके अन्तःकरणमें भय उपजाय घोर शब्दसे गर्जन करनें लगे ॥ १२ ॥ उस भयं-

कर शब्दको सुनकर सैकड़ों हजारों मंदिररक्षक विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र फांस, खड्ग और परशे ग्रहण करके ॥ १३ ॥ वहां आय हनुमानजीको देख उनके ऊपर वह अस्त्र शस्त्र चलाने लगे; और विचित्र गदा सुवर्णके बंदोंसे बँधा हुआ शूल ॥ १४ ॥ और सूर्यकी समान प्रभावाले बाण चलाय कर उनके ऊपर प्रहार करना आरंभ कर दिया । उस कालमें वह महाकाय राक्षस बल गंगाजीके बड़े भारी कुण्डकी समान ॥१५॥ हनुमानजीको घेरकर परम शोभा धारण करता हुआ, यह देखकर पवन सुत हनुमानजी क्रोधितहो भयंकर रूप धार ॥ १६ ॥ बड़े वेगसे उस प्रासादका स्वर्णसे बना एक खंभ उखाड़ कर मारुतसुवन ॥ १७ ॥ बड़े वेगसे घुमानें लगे ॥ तब उस शत धार वाले खंभमेंसे अग्निकी चिनगारियोंने निकल कर उस समस्त मंदिरको भस्म कर दिया ॥ १८ ॥ उस प्रासादको भस्म होता हुआ देखकर हनुमानजीने सैकड़ों हजारों राक्षसोंको मारडाला कि जिस प्रकार इन्द्रजी वज्र चलाय असुरोंको मार डालतेहैं ॥१९॥ फिर हनुमानजी आकासमें टिक कर यह कहनें लगे कि हमारी समान बलवान महात्मा सैकड़ों हजारों वानर उत्पन्न हुए हैं ॥ २० ॥ वह सबही वानर सुग्रीवजीके वशमें हैं सो हम और दूसरे वह समस्त वानर गण समस्त पृथ्वी मंडल पर घूमते फिरते हैं ॥ २१ ॥ इन सब वानरोंमें से किसी २ का बल दश हाथी की समान किसीका शत हाथी की और किसीका हजार हाथी की समान है ॥२२॥ किसी २ का हाथियोंके समूह का बल है, कोई २ वायुकी समान बलवाले हैं और किसी२के बलका तो कुछ अंतही नहीं है ॥२३॥ इस प्रकारके नख और दांतों को आयुध बनाये शत, हजार, दश हजार, व लाख, करोड़ों अरबों वानरोंके साथ ॥२४॥

आगमिष्यतिसुग्रीवःसर्वेषांवोनिषूदनः ॥
नेयमस्तिपुरीलंकानयूयंनचरावणः ॥
यस्यत्विक्ष्वाकुवीरेणबद्धंवैरंमहात्मना ॥ २५ ॥

सुग्रीवजी यहां आयकर तुम सबको मार डालेंगे। महात्मा इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न हुए महावीर श्रीरामचंद्रजीके साथ जबकि तुम्हारा वैरभाव हो गया है, तब इस लंका पुरीकी तुम्हारी सबकी व रावणकी शीघ्रही समाप्ति हो जायगी ॥ २५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० सुं० त्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

संदिष्टोराक्षसेंद्रेणप्रहस्तस्यसुतोबली ॥
जंबुमालीमहादंष्ट्रोनिर्जगामधनुर्धरः ॥ १ ॥

प्रहस्तका पुत्र महाबलवान बड़े २ दांत वाला जम्बुमाली नाम राक्षस राक्षस पति रावणकी आज्ञासे धनुष धारण कर नगरसे बाहर निकला॥१॥ उसके पहरे कपड़ेभी लालथे, व लाल ही माला वह पहरेथा, कुन्डल युगल परम सुंदर दोनों नेत्र बड़े २ थे बड़े भारी डील डौल वाला बडा कोपी अति अजीत ॥२॥ धनुष इन्द्र धनुष की समान बड़ा जिसके देहमें वज्रकी समान शब्द निकलता हुआ, व उस धनुषपर सुन्दर बाणभी चढ़ा हुआ ॥ ३ ॥ रण दुर्जय प्रचंड स्वभाव जम्बुमाली ऐसे बड़ेभारी धनुषको अति वेगसे टंकोर देता हुआ, धनुषकी टंकारका वह घोर शब्द दिशा विदिशा और आकाश मंडलको सहसा पूर्ण करदेता हुआ ॥ ४ ॥ वेगमान हनुमानजी जम्बुमालीको गधेजुते रथपर सवारहो आया देखकर हर्षके मारे गर्जन करनें लगे ॥ ५ ॥ हनुमानजी उससमय तोरण खंभके ऊपर पक्षीकी समान स्थापित कीहुई कपोतपालिका पर बैठेथे। परम तेजस्वी जम्बुमालीने उनको बड़े तीखे बाणोंसे वींधडाला ॥ ६ ॥ जम्बुमालीने अर्द्धचंद्र बाणसे उनका वदनमंडल अंकुशाकार बाणसे मस्तक; और दश बाणोंसे उनकी दोनों भुजाओंको भेदा॥ ७ ॥ हनुमानजीका अरुण मुखमंडल बाणोंसे विद्धहोकर सूर्यकी किरण लगनेंसे, शरदऋतुके फूले कमलकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥८॥ आकाशमें दिखलाई देताहुआ महाकमल सुवर्णबिन्दुओंसे सींचे जानेंपर जिसप्रकार शोभित होताहै, हनुमानजीका अरुण वर्ण मुख मंडलभी रुधिर लगकर वैसाही शोभायमान हुआ ॥ ९ ॥ तब हनुमानजीनें राक्षसोंके बाणोंसे घायल होकर महा कोपकर बगलमेंही रक्खीहुई एक बड़ीभारी शिला देख॥१०॥ अति शीघ्रतासे उठाय अति वेगसे उसको जम्बुमालीके ऊपर चलाया बलवान राक्षसनें क्रोधकरके दशबाण चलाय उस शिला को काट डाला ॥ ११ ॥ तब महाबलवान हनुमानजीनें अपनी चलाई शिलाको विफल देखकर बड़ाभारी शालका वृक्ष उखाड़ उसको बड़े वीर्यसे घु-

माया ॥ १२ ॥ हनुमानजीको शालका वृक्ष घुमाते देखकर महा बलवान जम्बुमाली अनेक बाण चलानें लगा ॥ १३ ॥ उसनें चार बाणोंसे शालका वृक्ष काटकर, पांच बाणोंसे भुजा एक बाणसे हृदय, और दश बाणसे हनुमानजीकी छातीको विद्ध किया ॥ १४ ॥ हनुमानजी बाणजालसे सर्वांगमें विद्ध हो अतिशय रोषके वशहो वही परिघ घुमानें लगे ॥ १५ ॥ इसके पीछे मदोन्मत्त अतिशय वेगशाली पवनकुमार हनुमानजीनें अतिवेगसे घुमायकर वह परिघ जम्बुमालीकी विशाल छातीमें मारा ॥ १६ ॥ उस परिघके लगतेही जम्बुमालीका मस्तक, बाहु, जानु, धनु, रथ और अश्वगण व उसके बाण फिर यह कुछभी वहां पर न पाये गये ॥ १७ ॥ महाबलवान जम्बुमाली वानर हनुमानजीसे शीघ्र मृतक और चूर्णित होकर टूटे हुये वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १८ ॥ जम्बुमाली और महाबलवान्, अस्सीहजार किंकर नामक राक्षसोंके मरनेंका वृत्तान्त सुनकर कोपके मारे रावणके दोनों नेत्र अतिशय अरुण होकर घूमनें लगे१९

सरोषसंवर्तितताम्रलोचनःप्रहस्तपुत्रेनि
हतेमहाबले ॥ अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्र
मान्समादिदेशाशुनिशाचरेश्वरः ॥ २० ॥

इस प्रकारसे प्रहस्तके पुत्र महा बलवान जम्बुमालीके मरजानेंपर निशाचर पति रावणने अतिशय वीर्यवान पराक्रम सम्पन्न अपनें मंत्रीके पुत्रोंको उसीसमय युद्धमें जानेके लिये आज्ञादी ॥ २० ॥ इ०श्रीम०वा०आ० सुं० चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥

ततस्तेराक्षसेंद्रेणचोदितामंत्रिणःसुताः ॥
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्तसप्तार्चिवर्चसः ॥ १ ॥

तब ये सूर्यकी समान कांतिवाले सात मंत्री पुत्र रावणकी प्रेरणासे अपने स्थानसे निकले ॥ १ ॥ वे सब महाबलवान अस्त्र कुशल, अस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ परस्पर जयके अभिलाषी अतुल विक्रम सम्पन्न धनुषधारी व तेजस्वीथे ॥ २ ॥ सुवर्ण के जालसे बने, ध्वजा पताका युक्त, मेघकी समान शब्द करते घोड़े जुते हुए बड़े २ रथोंमें चढ़कर ॥ ३ ॥ विचित्र

वान् समस्त वीरोंमें श्रेष्ठ और बली, महामति पवनकुमार हनुमानजीकी स्तुति करनें लगे ॥ ४५ ॥ समस्त देवगण, महर्षि गण, गन्धर्वगण, विद्या धर गण, पन्नग गण और समस्त प्रधान २ वीरगण अति अनुपम परम प्रीति प्राप्त करते हुए ॥ ४६ ॥ इस समयमें महातेजवान कपिश्रेष्ठ हनुमानजी वन उजाड़ राक्षस कुल विनाश कर भयंकर लंकापुरीको भस्म कर शोभायमान हुए ॥ ४७ ॥ और जलती हुई पूंछसे निकलती हुई किरणोंसे युक्तहो बड़े भारी धवरहर मंडलके विचित्र भूमि अग्रभाग पर बैठे किरण सहित सूर्य भगवानकी समान शोभा धारण करते हुए ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे वानरराज सिंह महाकपि हनुमानजी समस्त लंका पुरीको पीड़ित करके, समुद्रके जलमें, अपने पूंछमेंलगी हुई आग बुझातेहुए४९॥

ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥
दृष्ट्वालंकांप्रदग्धांतांविस्मयंपरमंगताः ॥ ५० ॥

समस्त लंकाको भस्महोते देखकर देवगण,गन्धर्वगण और परमर्षिगण सबही अति विस्मित हुए ॥ ५० ॥ इ० श्रीम० वा०आ० सु० चतुःपंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ॥

संदीप्यमानांवित्रस्तांत्रस्तरक्षोगणांपुरीम् ॥
अवेक्ष्यहनुमाँल्लंकांचिंतयामासवानरः ॥ १ ॥

लंका नगरीको भस्म विध्वंश और वहांके राक्षसोंको त्रासित हुआ देखकर वानरश्रेष्ठ हनुमानजी चिन्ताकरनें लगे ॥ १ ॥ चिन्ता करते २ हनुमानजीको बड़ाभारी त्रास हुआ आपही अपनी निन्दाकरनें लगे, हनुमानजी बोले, कि हमनें इच्छानुसार लंकाको जलाय कर कैसा बुरा कार्य किया ॥ २ ॥ वह महात्मा लोगही धन्यहैं, जो जलसे प्रज्वलित अग्निकी समान उपस्थित हुए क्रोधको अपनी बुद्धिसे रोकतेहैं ॥ ३ ॥ मनुष्य क्रोधित होकर कौनसा पाप नहीं करता? मनुष्य क्रोधसे अन्धाहोकर बड़े पुरुषोंको भी मार डालताहै, और कठोर वचन कहकर साधु लोगोंका भी निरादर करताहै ॥ ४ ॥ क्रोधके वश हुए पुरुषको कदापि ज्ञान नहीं रहता वह नहीं जानता कि यह करनें योग्य वा यह करनें अयोग्यहै, ऐसा कोई

कार्य नहीं है कि जिसको क्रोधी पुरुष न कर सकै ॥ ५ ॥ सर्प जिस प्रकार पुरानी केंचलीको छोड़ देताहै, वैसेही क्रोध आनेंके कालमें, जो पुरुष अपनी सामर्थ्यके बलसे उसको त्याग देताहै, वही यथार्थ पुरुष कहाता है ॥ ६ ॥ हम पाप कारियोंके अगुऐहैं और महामूर्ख व निर्लज्जहैं इसीसे तौ सीताजीके लिये कुछ विचार न कर लंकामें अग्नि लगाय हमनें स्वामीकी हत्याकी ॥ ७ ॥ हमको धिःकारहै ! जब कि समस्त लंका भस्म होगई; तबं तौ आर्या जानकीजी भी निश्चयही भस्म होगई होंगी; हाय हमनें अज्ञानताके मारे अपने स्वामीका कार्य नष्ट कर दिया ॥ ८ ॥ जिसके लिये हमनें यह सब कुछ कियाथा वही कार्य हमनें अपने आप नष्ट कर दिया, हमनें लंकाका दाह करनेंके समय सर्व प्रकारसे सीताजी की रक्षा नहींकी ॥ ९ ॥ इसलिये जिसके कारण हमनें यह लंका जलाई उन्हीं श्रीरामचंद्रजीके कार्यका नाश होगया, हमनें सीताजीके दर्शन तौ पाये, परन्तु क्रोधसे ज्ञान रहितहो उस सीता दर्शन रूप कार्यकी जड़ही काट डाली ॥ १० ॥ जानकीजी निश्चयही भस्म होगई; कारणकि सबही पुरी जब जली तौ वह कहांको बची होंगी; लंकापुरीमें हम ऐसा स्थान नहीं देखते कि जो भस्म होंनेंसे बचाहो ॥ ११ ॥ जबकि हमनें बुद्धिकी विपरीततासे ऐसा कार्य कर डाला तब यहीं पर आजही प्राण त्यागना हमको उचित जान पड़ताहै ॥ १२ ॥ आज हम वड़वानलमें गिरेंगे, या अग्निमें गिर जलकर मरेंगे, नहीं तौ समुद्रमें रहनें वाले जीवोंको अपना शरीर सौंपदेंगे, अर्थात् समुद्रमें गिर पड़ेंगे ॥ १३ ॥ कारण कि जीवित रहनेंसे सुग्रीवजीके साथ साक्षात् करना कभी हमसे नहीं हो सकता, अथवा समस्त कार्यका विनाश करके पुरुषसिंह श्रीराम लक्ष्मणजीको भी हम किस प्रकारसे देख सकतेहैं ॥ १४ ॥ यह तीनों लोकोंमें विदितहै कि वानर जातिके स्वभावका क्या ठिकाना, सो हमनें क्रोधसे अन्धे बन निश्चयही अपनी वानरता दिखाई ॥ १५ ॥ जो कार्यको असमर्थ और अव्यवस्थ कर डालताहै उस राजसिक भावको धिक्कारहै, हमनें समर्थ होकर भी रजोगुण मूलक क्रोधके वश होकर सीताजीकी रक्षा नहींकी ॥ १६ ॥ कारणकि सीताजीकी मृत्यु होनेंसे श्रीरामचंद्रकी मृत्यु होजायगी, और श्रीराम, लक्ष्मणजीके मरजानेंसे सुग्रीवजीभी बन्धुबान्धवोंसहित मृतकहो

जांयगे ॥ १७ ॥ धर्मात्मा भातृवत्सल भरत और शत्रुघ्नजीभी यह समाचार श्रवणकर किसप्रकारसे जीवन धारण कर सकेंगे ? ॥ १८ ॥ जब इस प्रकारसे धर्ममें रतहुआ इक्ष्वाकुवंश नष्टहोजायगा, तब इसमें कुछ संदेह नहीं कि सब पृथ्वी परकी प्रजा शोकसंतापसे व्याकुल होजायगी ॥ १९ ॥ इसलिये हतभागी हमने रोषके दोषसे ढक निश्चयही सब लोकोंका विनाश किया ! हमारा बटोरा हुआ धर्म भी लोप होगया ॥ २० ॥ इस प्रकारसे चिन्ता करते २ पूर्व समयके शुभ शूचक समस्त कारण हनुमानजीको प्राप्त होनें लगे। इन शुभ कारणोंको विचार कर हनुमानजी । फिर चिन्ता करनें लगे ॥ २१ ॥ अथवा सर्वाङ्ग शोभना कल्याणी वह जानकीजी अपने तेज प्रभावसे सदाही रक्षित रहतीहैं; वह कभी विनाशको प्राप्त न हुई होंगी; कारण कि अग्नि अग्निको कभी नहीं जलाय सकता ॥ २२ ॥ तिसपर विशेषता यह कि जानकीजी अमित तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीकी भार्या हैं वह अपने साधु चरित्रोंके गुणोंसे सदाही रक्षित रहतीहैं; इस कारण अग्नि किस प्रकारसे उनको छू सकताहै ॥ २३ ॥ फिर एक बात यहभी तौ प्रमाणकीहै कि दाहक स्वभाव वाले, इस अग्निनें निश्चयही श्रीरामचंद्रजीके प्रभाव और सीताजीके पुण्य बलसे हमको दग्ध नहीं किया ॥ २४ ॥ श्रीरामचंद्रजीको श्रीसीताजी प्राणोंसेभी अधिक प्यारी हैं; और भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मणजीभी देवताहैं; इसलिये वह किस प्रकारसे विनष्ट होंगी ॥ २५ ॥ अथवा सब वस्तु ओंको दाहनें की सामर्थ्य रखनें वाले अग्निनें जब हमारी पूंछको नहीं जलाया, तब उन आर्या जानकीजीको वह किस प्रकारसे भस्म करेंगे ? ॥ २६ ॥ यह विचार फिर हनुमानजी विस्मितहो देवी जानकीजीके प्रभावसे समुद्रके जलमें हिरण्य नाभ मैनाक पर्वतके दर्शनकी सुधिकर चित्ता पूर्वक कहनें लगे ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहें, जानकीजी, तपस्या, सत्य वाक्य और अपने पतिव्रत धर्मसे आपही अग्निको भस्म कर सकती हैं; इस कारण अग्नि उनको जलानेंमें कभी समर्थ न होगा ॥ २८ ॥ जब इस प्रकार हनुमानजी देवी जानकीजीके धर्म निष्ठाकी चिन्ता कर रहेथे कि इतनेहीमें महात्मा चारण लोगोंके वचन उन्होंनें सुने ॥ २९ ॥ वह चारण गण यह कह रहेथे कि अहो ! हनुमानजीनें जो कार्य किया, निश्चयही और कोई दूसरा उसको

नहीं कर सकता ॥ ३० ॥ बाल, वृद्धोंकी राशियोंसे युक्त जनोंके शब्दसे पूर्ण, शब्द समन्वित, पर्वतकी गुफाके समान शब्दायमान ॥ ३१ ॥ निशाचर लोगोंके गृहोंमें भयंकर तीक्ष्ण. अग्नि लगाय, अटारियें फाटक और धवरहरोंके साथ समस्त लंका पुरीको जला दिया; परन्तु जानकीजीको बचालिया ? सो हमको बड़े आश्चर्य और अद्भुतकी वार्त्ता यह जान पड़तीहै ॥ ३२ ॥ चारण लोगोंके मुखसे इस प्रकारके अमृत तुल्य वचन सुनकर उस कालमें आनन्दसे अंजनीकुमार हनुमानजीका अंतःकरण परिपूर्ण होगया ॥ ३३ ॥ जिनसे निश्चय होजाय ऐसे शुभ निमित्तोंको देख, जिनसे परम फलकी प्राप्ति होजाय ऐसे कारण समूह और ऋषि लोगोंके वचन इन सबसे हनुमानजीके मनमें प्रसन्नता उपजी ॥ ३४ ॥

ततःकपिःप्राप्तमनोरथार्थस्तामक्षतांराज
सुतांविदित्वा ॥ प्रत्यक्षतस्तांपुनरेवदृ
ष्ट्वाप्रतिप्रयाणायमतिंचकार ॥ ३५ ॥

तिसके पीछे चारण लोगोंके वचनोंसे सीताजीके शरीरकी कुशल अवस्था जान हनुमानजीका मनोरथ सफल हुआ। परन्तु उन्होंने मनमें यह विचारा कि सीताजीके दर्शन कर फिर चलना चाहिये ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०सुं०पंचपंचाशःसर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशः सर्गः ॥

ततस्तुशिंशपामूलेजानकींपर्यवस्थिताम् ॥
अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्यापश्यामित्वामिहाक्षताम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे शिंशुपाके वृक्षके नीचे सीताजी घाव रहित शरीरसे बैठीथीं कि इतनेमें हनुमानजीनें वहां पहुंचकर सीताजीको प्रणाम करकै कहा कि हे देवी ! बड़े भाग्यकी बातहै कि हमनें आपको यहां कुशल सहित बैठे हुए देखा ? इस स्थानमें आप पर कोई विपद तो नहीं आई ॥ १ ॥ तब श्रीजानकीजीनें जानेंके लिये तैयार हनुमानजीको

वार २ निहार अपने पतिको स्नेहयुक्त वचन उनसे कहे * ॥ २ ॥ हे वत्स ! यदि तुम्हारेभी मनभावे तौ यहांके किसी स्थानमें आजका दिन विताकर चले जाना ॥ ३ ॥ हे पापरहित ! तुम्हारे निकट रहनेंसे एक मुहूर्त्तके लिये इस मन्द भाग्यवालीका महाशोक कुछेक हलका हो जायगा ॥ ४ ॥ परन्तु हे कपि शार्दूल ! तुम इस समय जाओगे तौ सही ! परन्तु फिर जबतक लौटोगे तबतक जनें हमारा जीवन रहे या न रहै॥ ५ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! हम मनके शोकसे महा व्याकुल होकर अतिशय दुःख पाय रहीहैं; इस समय तुम्हारे अदर्शनसे हमको औरभी अधिक दुःख विदारित करैगा ॥ ६ ॥ हे वीरश्रेष्ठ ! हमारे मनमें यह बड़ा भारी सन्देह होताहै कि यह बडेभारी सहायक ऋक्ष वानर ॥ ७ ॥ इस पार आनेंके अयोग्य समुद्रके पार किस प्रकारसे होंगे ? यह वानर ऋक्षोंकी सेना, व दोनों महाराजकुमार किस प्रकारसे इसके पार आवेंगे ॥ ८ ॥ समुद्रके लांघनेंकी इस लोकमें केवल गरुड़, वायु और तुम बस इन तीन जनोंकी सामर्थ्य है ॥ ९ ॥ इस कारण इस बडे कठिन कार्य शंकटमें किस उपाय को तुमनें स्थिर कियाहै ? क्योंकि तुम कार्य करनेंमें चतुरहो॥ १० ॥ तुम कर्म करनेमें बडे प्रवीण हो । हे शत्रु घातिन ? तुम तौ इस कार्यको अकेलेही कर सकते हो; तुम्हारे यशकी वृद्धि इस कार्यसे होगी ॥ ११ ॥ शत्रुओंकी सैनाको मर्दन करनें वाले श्रीरामचन्द्रजी यदि सैना साथ लेकर लंकामें चढ़ाई कर हमको लेजायँगे; तबही यह कार्य उनके योग्य होगा ॥ १२ ॥ इसलिये उन रणवीर महात्माका जिस्से योग्य विक्रम प्रगटै, सो तुमको ऐसाही उपाय करना चाहिये ÷ ॥ १३ ॥ सीताजी-

---

* गुजरी ॥ पूंछ बुझाइ गंवाइ सो तनु श्रम सिय पहँ ठाढ़ि भये कर जोरे ॥ चीन्ह कछुक मोहि देहिं यथा प्रभु शोक करहिं जननी जन भोरे ॥ पहुँचेइ जानि कृपालु खरारिहिं धीरज और धरहिं दिन थोरे ॥ हरषि उतार दयउ चूडामणि दारुण दुसह विपति सब मोरे ॥ तात विलोकि जात निज नयनन करुणानिधि पहँ कहव निहोरे ॥ धरि पद शीश चल्यो धुनि गर्जत रिपु मद भुज वल वारिधि वोरे ॥ आइ मिल्यो एहि पार कपिनसोंको कह सूरज मोद जितोरे ॥

÷ यह मणि प्रभुको दीजोजाई॥चरण कमल वंदनकर उनके तुम ऐसे कहियो समुझाई १ मन क्रम वचन चरणकी दासी प्रभुताको कैसे विसराई २ नैक कियो अवनाथ काकने ताको नाहिं कोउ रहेउ सहाई ३ अधम निशाचरनें अबघेरी अब क्यों नहीं छड़ावत आई ४ मिश्रसदा शरणागत पालक रक्षा करहु राम रघुराई ५

के वह अर्थ युक्त और हेतु सहित स्नेहसे सने वचन श्रवणकर वीर हनुमान उनको उत्तर देते हुए ॥ १४ ॥ आर्ये ! वानर और रीछोंकी सेनाके अधिपति सत्यवान वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी आपका उद्धार करनेंको कृत्य निश्चय हुए हैं ॥ १५ ॥ हे विदेहकुमारी सीते ! वानरराज वह सुग्रीवजी, हजारों, लाखों, करोडों वानरोंको साथ लेकर बडी शीघ्रतासे यहां आमेंगे ॥ १६ ॥ नरश्रेष्ठ वह दोनों वीर श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीभी एकत्रहो यहां आयकर लंका नगरीको बाण जालसे छाय देंगे ॥ १७ ॥ हे श्रेष्ठ मुखवाली ! वीर रघुनंदन रामचन्द्रजी बहुत शीघ्र रावणको बन्धु बान्धवों सहित मार तुमको अपनी अयोध्या पुरीमें लेजायँगे ॥ १८ ॥ सावधान होकर धीरज धारण करो, कुछ समय परखो ! हे भद्रे ! तुम बहुतही शीघ्रतासे देखोगी कि श्रीरामचन्द्रजीनें रणमें रावणको मारडाला ॥ १९ ॥ राक्षसराज रावणके मंत्री, बन्धु बान्धवोंके सहित मारे जानेंपर चन्द्रमाजीके साथ रोहिणीजीकी समान आपका मिलना श्रीरामचन्द्रजीसे होगा ॥ २० ॥ युद्धमें राक्षसोंको जीतकर आपका शोक । दूर करेंगे, वह काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रही रीछ वानरोंकी सैनाके साथ यहांपर आवेंगे ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे पवनकुमार हनुमानजी जानकीजीको समझाय बुझाय चलनेंमें स्थिर बुद्धिकर जानकीजीको प्रणाम करते हुए ॥ २२ ॥ आश्चर्यका अपना बल दिखाय प्रधान २ राक्षसोंको संहार अपना नाम सबको सुनाय सीताजीको समझाय बुझाय ॥ २३ ॥ लंका पुरीको व्याकुलकर रावणको धोखादे भयंकर बल दिखाय और जानकीजीको प्रणाम कर ॥ २४ ॥ हनुमानजी समुद्रके ऊपर होचलनेंके लिये तैयार हुए तिसके पीछे शत्रुओंके मारनें वाले कपिश्रेष्ठ हनुमानजी अपने स्वामीके दर्शनकी अति इच्छा कर ॥ २५ ॥ अरिष्ट नामक बड़े ऊंचे पर्वत पर चढ गये । यह पर्वत विशाल भुर्ज्जतरु शोभित नीलवर्ण वनराजिरूप वस्त्र पहर करके शिखरसे लगे हुए जलधर स्वरूप अपना डुपट्टा बनाये प्रीतिसे दिवाकर रूप शुभकारी स्पर्श मानों वहांकी सब वस्तुओंको जगाय रहाथा ॥ २६ ॥ २७ ॥ विविध भांतिकी धातुओंसे मानों वह सहस्र२ लोचन खोल रहा और मूंद रहाथा, चारों ओरही जलकेगिरनेंका शब्द होता हुआ ऐसा जान पड़ताथा मानों पर्वत कुछ पढ़ रहाहै ॥ २८ ॥

अनेक प्रकारके झरनोंका स्पष्ट शब्द ऐसा होरहाथा कि जिस्से अनुमान हो ताथा कि मानों पर्वत श्रेष्ठ संगीत कर रहाहै। बडे२ देवदारु वृक्षोंके ऊपर शोभित होनेंसे ऐसा ज्ञात होताथा मानों पर्वत राज हाथ उठाये खडाथा २९ सब जगह जल गिरनेंका शब्द ऐसा हो रहाथा मानों पर्वतराज आरत नाद कर रहाहै। बसन्तिक वृक्षोंके कंपायमान होनेंसे ऐसा जान पड़-ताथा कि मानों गिरिराज स्वयंही कंपायमान हो रहाथा ॥ ३० ॥ पव-नके आघातसे शब्द करते हुए छेद वाले वांशोंसे शोभितहो मानों पर्वत राज वंशी बजाय रहाथा भयंकर विषैले सर्पोंके गर्जनसे मानों पर्वत राज क्रोधके मारे लंबे २ श्वास ले रहाथा ॥ ३१ ॥ अंधकारसे ढककर कंदरा ओंनें गंभीर भाव धारण कियाहै जिस्से बोध होताहै कि मानों पर्वतश्रेष्ठ ध्यानमें मग्न हो रहाहै। मेघ खंडकी समान, किनारे २ वाले पर्वतोंसे मानों यह पर्वत सब जगह विचरण कर रहाथा ॥ ३२ ॥ बादलोंके छूनें वाले शिखर आकाशमें ऊंचे चले गयेथे, मानों पर्वत अपने शरीरको ऐंठ-ताथा, सब ओर अनेक शृङ्ग शोभितथे असंख्य गुफायें पर्वतकी शोभाय-मान हो रहीथीं ॥ ३३ ॥ अनेकानेक शाल, ताल, अश्व कर्ण व अनेक प्रकारके कांसोनें पर्वतको छाय रहाथा फूली फली फैली हुई लताओंकी कुंज पर्वतके स्थान २ में शोभायमान हो रहीथीं॥३४॥विविध भांतिके मृग के झुन्डके झुन्ड फिर रहेथे और बहुत सारी धातुयें जगह २ से निकल कर पर्वतको भूषित कर रहीथीं; बहुत सारें झरनें झर रहेथे, शिलाओंकी बहुत चट्टानें पड़ीथीं ॥ ३५ ॥ महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, और उरगगण उस पर्वत पर बसतेथे, लतावृक्ष प्राणियोंके आनें जानेंमें बाधा डालतेथे, गुफाओंमें सिंह विराज रहेथे ॥ ३६ ॥ उस पर्वत पर रहनें वाले व्याघ्रादि जन्तु ओंकी गिनती करना कठिनथा सब वृक्षोंके मूल फल अतिस्वाद युक्तथे वानर श्रेष्ठ हनुमानजी इस पर्वत पर चढकर ॥ ३७ ॥ श्रीरामचं-द्रजीके दर्शनकी इच्छासे शीघ्रताकिये आनंदसे प्रेरितहो उस पर्वतके रमणीक शिखर पर पाँव धरते हुए ॥ ३८ ॥ इस प्रकार अति बलसे और धमकेसे उस पर्वत पर पांव धराकि उस पर्वतकी शिला चूर्ण होगई; इस प्रकार पर्वतराज पर चढकर महा कपि हनुमानजी बढे ॥ ३९ ॥ कारण कि क्षार समुद्रके दक्षिण तीरसे, उनको उत्तर किनारे पर आनाथा, इस

कारण उस पर्वत पर चढ़ पवनकुमार हनुमानजी ॥ ४० ॥ भयंकर सर्पादिकोंसे युक्त समुद्रको देखते हुए, वायु जिस प्रकार आकाश मार्गमें गमन करतीहै पवनकुमार वेगवान हनुमानजी भी ॥ ४१ ॥ मनके द्वारा वैसेही उसी समय दक्षिणसे उत्तर समुद्रके पार पहुँच गये, छलांग मारनेके समय उस पर्वतोत्तमको हनुमानजीनें चरणसे पीड़ित किया ॥ ४२ ॥ ऐसे धमकके साथ उस पर्वत पर चरण रक्खाकि यह पर्वत पृथ्वीमें प्रवेश करनें लगा, उसके शिखर कांपनें लगे और पेड गिरनें लगे ॥ ४३ ॥ हनुमानजीके वेगसे मर्दितहो फूल वाले पेड टूट २ कर पृथ्वी पर ऐसे गिर पडे मानों इन्द्रके वज्रसे मारे गये ॥ ४४ ॥ गुफाओंके मध्यमें टिके हुए महा विक्रमवाले सिंह गणोंके भयंकर शब्द आकाशको भेदकर लोकोंके कानोंमें सुनाई आये ॥ ४५ ॥ डरके मारे सब विद्याधरोंकी स्त्रियां अपने २ वस्त्र खटाय भूषणोंको चिपटाय अचानक पर्वतको छोड़कर आकाश मार्गमें उड़ीं ॥ ४६ ॥ अति बड़े २ बलवान, बडी २ जीभ वाले महाविषधर सर्प गण गर्दन और मस्तकके टूटनेंसे पर्वत पर लोटनें लगे॥४७ किन्नर, उरग, गन्धर्व, यक्ष, और विद्याधर गण पर्वत श्रेष्ठको छोड कर आकाशका आश्रयलेते हुऐ ॥ ४८ ॥ श्रीमान् वह अरिष्ट पर्वत उन बलवान् करके पीडितहो ऊंचे २ वृक्ष और शृङ्गगणोंके सहित पातालमें पैठगया ॥ ४९ ॥ उस पर्वतका विस्तार दश योजन और उँचाईभी तीस योजनकीथी, सो उस समय हनुमानजीकी धमकसे पृथ्वीमें पैठ वह पृथ्वीके साथ बराबर मिल गया ॥ ५० ॥

सलिलंघयिषुर्भीमंसलिलंलवणार्णवम् ॥
कल्लोलास्फालवेलांतमुत्पपातनभोहरिः ॥ ५१ ॥

हनुमानजी बड़ी २ लहरें आते हुए महासमुद्रको लीला पूर्वक लांघने के लिये आकाश मार्गको उछलते हुए ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुंदरकांडे षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशःसर्गः ॥

आप्लुत्यचमहावेगःपक्षवानिवपर्वतः ॥
भुजंगयक्षगंधर्वप्रबुद्धकमलोत्पलम् ॥ १ ॥

बलवान् हनुमानजी उछलकर लीला पूर्वक आकाश रूप समुद्रको उतरनें लगे भुजंग, यक्ष और गन्धर्वगण ए इस समुद्रके खिले हुए कमल व उत्पल हैं ॥ १॥ चन्द्रमा जिसमें कुमुद सूर्य उस समुद्रका सुखर कारण्ड-व (जल मुर्ग) पुष्प और श्रवण नक्षत्र जिसके हंस समस्तमेंव उसके नील वर्ण शैवाल (शिवार) ॥२॥ पुनर्वसु नक्षत्र जिसका महामत्स्य मंगल उसका विशाल ऐरावत नक्षत्रही जिसका महा हस्ती स्वाती नक्षत्र जिसका हंस जिस करकै शोभायमान॥ ३ ॥ पवनहीं जिसकी तरंगे जिसमें चंद्रमा सूर्यकी शीतल किरणोंही शिशिरकालको शीतल नीर ऐसे समुद्र रूप आकाशमें विना परिश्रमके हनुमानजी तैरनें लगे ॥ ४ ॥ जानेके समय हनुमानजी मानो आकासको ग्रसेही लेतेथे चंद्रमाको मानों विलिख नहीं करते और नक्षत्र गण वा दिवाकर सहित आकाश मंडलको मानों हरणही किये लेतेथे ॥ ५ ॥ और बादलोंके समूहोंको खेंचते हुए थकावट रहित हो श्रीहनुमानजी अपार आकाश समुद्रके पार होने लगे ॥ ६ ॥ उस समय, श्वेत, अरुण, नील, मजीठ, और हरितरंगके बडे २ वारिद (मेघ) समूह खेंचे जाकर शोभायमान होनें लगे ॥ ७ ॥ पवनकुमार हनुमानजी वार २ मेघोंमें प्रवेशकर और प्रकाशित होकर चंद्रमाकी समान कभी निकल आते और कभी छिपजातेथे ॥ ८ ॥ वह श्वेत वस्त्र धारण किये हुए वीर हनुमानजी नानाप्रकारके वादलोंके बीचका मार्ग अवलंबन कर कभी प्रकाशित कभी अप्रकाशित होकर आकाशमें चंद्रमाकी समान जान पडनें लगे ॥ ९ ॥ आकाशमें गरुडजीकी समान मेघोंको चीरते फाडते व उनमेंसे निकलते पैठते हनुमानजी गमन करनें लगे ॥ १० ॥ और हनुमानजी चलते २ मेघकी समान भयंकर स्वरसे नाद करनें लगे महा तेजस्वी हनुमानजी मुख्य २ राक्सोंका संहार कर अपना नाम सबको सुनाय ॥ ११ ॥ लंकानगरीको व्याकुल और रावणको अत्यन्त व्य-थित कर महावीर निशाचरोंको पीडित और जानकीजीको प्रणाम क-र ॥ १२ ॥ महा तेजमान वीर्यवान हनुमानजी फिर समुद्रके बीचमें आय पहुंचे और क्रमसे पर्वतराजा सुनाम पर्वतको स्पर्श कर ॥ १३ ॥ प्रत्यंचोंसे छोडे हुए बाणकी समान अति वेगसे गमन करने लगे और थोडेही दूर पर रहे हुए महा पर्वतको देखते हुए॥१४॥ उस महेन्द्र पर्वतको देख महा

कपि हनुमानजीनें वडा नाद करके दशों दिशाओंको पूर्णकर दिया ॥१५॥ अपने सुहृद् लोगोंके दर्शनकी लालसा कर (कि जिनको हनुमानजी सीताजीकी सुधको जाते समय महेन्द्राचलपर बैठाल गयेथे) महाकपि हनुमानजी इस प्रकारसे महामेघकी समान शब्द करते २ उस पर्वत महेन्द्रके निकट पहुँचनें लगे ॥ १६ ॥ उस समय हनुमानजी वारंवार गर्जकर पूंछको कंपायमान करनें लगे आकाशमें गरुडजीके मार्गका आश्रय लिये हनुमानजीके घोर गर्जनसे ॥ १७ ॥ आकाश मंडल सूर्य मंडलके सहित मानो विदीर्ण होगया समुद्रके उत्तर किनारे जो महाबलवान॥१८॥ रीछ वानर गण पहले हीसे पवनकुमार हनुमानजीके देखनें की आशा किये बैठेथे वह सब महामेघकी समान हनुमानजीके गर्जनेंका घोर शब्द और उनके वेगका वडा भारी शब्द सुना ॥ १९ ॥ वह सब रीछ वानर गण उदासमन किये शोक करते हुए बैठेथे, उस समय मेघके गर्जनेंकी समान इनसबोंनें वानरश्रेष्ठ हनुमानजीका नाद सुना ॥ २० ॥ नाद करते हुए हनुमानजीका यह शब्द सुनकर अपने बन्धुका दर्शन करनेंकी इच्छासे सबही वानर लोक चट पटाये ॥ २१ ॥ तव वानर वर जाम्बवानजी प्रीतिके वश हर्षित चित्तहो सब वानरोंको पुकारकर बोले ॥ २२ ॥ लो यह देखो? हनुमानजी सर्व प्रकारसे कार्य सिद्धकर आये, इसमें कोई सन्देह नहीं है, जो कार्य सिद्ध नहोता तो यह कभी इस प्रकारका नाद न करते ॥ २३ ॥ हनुमानजीकी वाहोंका भयंकर वेग जनित शब्द सुनकर सब वानरलोक हर्षित होकर एक साथ खड़े होगये ॥ २४ ॥ वह सब हनुमानजीका दर्शन करनेंके लिये, एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर और एक शिखरसे दूसरे शिखरपर कूद २ कर जानें लगे ॥ २५ ॥ वानरगण प्रसन्न चित्तसे वृक्षोंकी डालें पकड़कर सन्मुख खड़े होगये। और उनके श्वेत वसनोंके कंपायमान होनेपर॥२६॥ पवन जिस प्रकार पर्वतकी गुफामें प्रवेशकर गर्जताहै, पवनकुमार बलवान् हनुमानजीभी वैसेही भयंकर गर्जना वहां आयकर करनेंलगे ॥ २७ ॥ हनुमानजीको आकाशगामी मेघकी समान वहां आते हुए देखकर सब वानरगण हाथजोड़कर खड़ेहोगये ॥ २८ ॥ इसी अवसरमें पर्वताकर, वेगवान महा वीर पवनकुमार हनुमानजी अरिष्टनाम पर्वतसे छलांग मारे हुए महेन्द्र

पर्वतके वृक्षयुक्त शिखरपर कूदे॥ २९॥ हनुमानजी हर्षसे पूरित अन्तःकरण युक्तहो आकाशसें पंख कटे पर्वतकी समान रमणीक पर्वतके झरना झरनेंके स्थानमें गिरे ॥ ३० ॥ समस्त वानरश्रेष्ठोंनें प्रीतिपूर्ण हृदयसे महात्मा हनुमानजीके समीप आय उनको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३१ ॥ हनुमानजीको घेर वानरगण परम प्रसन्न हुए और उन सबका वदन मंडल खिलगया ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे वानरोंनें कंद मूल फल और दूसरी भेंटकी वस्तुयें लायकर वानरसिंह पवनसुत हनुमानजीकी पूजाकी ॥ ३३ ॥ यह सब वानर आनंदमें मगन हो कोई ऊंचे शब्दसे गर्जने और कोई २ किलकारियें मारनें लगे। बड़े २ वानर अति हर्षित होकर हनुमानजीके बैठनेंको वृक्षके गुद्दे तोड़ लाये ॥ ३४ ॥ फिर महाकपि हनुमानजी पूजा-करनेंके योग्य जाम्ववान इत्यादि वृद्धवानरोंको और कुमार अंगदजीको प्रणाम करते हुए ॥ ३५ ॥ और अंगद व जाम्बवान्‌जीनेंभी इनकी पूजाकी और दूसरे वानरोंनें हनुमानजीको प्रसन्न किया, उन पूजनीय विक्रम वान महाकपि हनुमानजीनें संक्षेपमें सबसे कहाकि हम सीताजीको देख आये ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी वालिके पुत्र अंगदजीका हाथ पकड महेन्द्र पर्वतके रमणीक वनमें बैठे ॥ ३७ ॥ और पूछे जानेपर हनुमानजी वानर श्रेष्ठोंसे बोलेकि जानकीजी अशोक वनमेंहैं, हम उनको देख आयेहैं ॥ ३८ ॥ घोर रूपवाली राक्षसियें उन निन्दा रहित सीताजीकी रक्षा करतीहैं, वह एक वेणी धारण किये हुए श्रीरामचंद्रजीके देखनेंको बहुतही चट पटाय रहीहैं ॥ ३९ ॥ उपवासोंके करनेंसे थकित, दुर्बल, मलीन, जटा धारण कियेहैं, हनुमानजीको देख और उनके महा अर्थ युक्त अमृतकी समान वचन ॥ ४० ॥ सुनकर सर्व वानर गण बहुतही हर्षित हुए उन वानरोंमेंसे कोई २ सिंहनाद करनें लगे कोई २ साधारण गर्जनें लगे, और कोई २ शब्द करते हुए ॥ ४१ ॥ कोई २ किलकारी मारनें लगे और कोई वानरश्रेष्ठ आनंदित होकर अपनी पूंछ उठाय २ नचानें लगे ॥ ४२॥ कोई २ अपनी तिरछी और बड़ी पूंछको फटकारनें लगे. व और दूसरे श्रीमान् वानरश्रेष्ठ हनुमानजीको; ॥ ४३ ॥ पर्वतके शृङ्गोंपर हर्षित चित्तसे कूदकर छूनें लगे। जब हनुमानजी सीताजीके देखनेंका समाचार सुनाचुके तब अंगदजी उनसे बोले ॥ ४४ ॥ अंगदजी सब वानर वीरोंके

मध्यमें उत्तम वचन हनुमानजीसे बोले, बल वीर्यमें कोई भी वानर तुम्हारी समान नहींहै ॥ ४५ ॥ देखो तुम विना किसीकी सहायताके वड़े विस्तार वाला समुद्र लांघकर फिर यहां पर लौट आये हे वानर श्रेष्ठ ! वस एक मात्र तुमहींनें हम लोगोंको जीवदान दियाहै ॥ ४६ ॥ तुम्हारे अनुग्रहसे हम लोगोंका मनोरथ सफल हुआ, अव हम फिर श्रीरामचंद्रजीसे मिलेंगे; तुम्हारी प्रभु भक्ति, धीर्यता वीर्यता, सवही अतुलनीयहै ॥ ४७ ॥ भाग्य-सेही तुम यशस्विनी देवी रामप्यारी श्रीजानकीजीको देख आये हो, अब सीताजीके वियोगसे उत्पन्न हुआ श्रीरामचंद्रजीका दुःख छूट जायगा यह वड़े भाग्यकी वातहै ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे वानर गण, अंगद, हनु-मान, और जाम्बवान् जीको चारों ओरसे घेर, हर्षमें भर, उनके बैठनेंको विविध भांतिके शिलाखंड लाये ॥ ४९ ॥ और पर्वतकी उन बड़ी २ शिला ओं पर समुद्र लांघनेंका संवाद श्रवण करनेंके लिये समस्त वानर इन तीन वानरोंको घेरकर बैठे ॥ ५० ॥ लंका और रावणको भी देखना इन समस्त बातोंके श्रवण करनेंकी इच्छासे सवही हनुमानजीके मुखकी ओरको मुख कर बैठे ॥ ५१ ॥ सुरराज इन्द्रजी जिस प्रकार देवता लोगों करकै पूजे जातेहैं, वैसेही श्रीमान् अंगदजी बहुत सारे वानरोंसे घेरे जाकर वहां पर बैठे ॥ ५२ ॥

हनूमताकीर्तिमतायशस्विनातथांगदेनां
गदनद्धबाहुना ॥ मुदातदाध्यासितमुन्न
तंमहन्महीधराग्रंज्वलितंश्रियाभवत् ॥ ५३ ॥

कीर्त्तिमान हनुमानजी और यशवान अंगदजी, दो बाजुओंसे बाहें सजाय कर इस प्रकारसे हर्षमें भरे हुए बैठकर बैठनेंसे वह बहुत ऊंचा प-र्वतका शिखर अति शोभाय मान हुआ ॥ ५३ ॥ इ०श्रीम०वा०आ० सुन्दर कांडे सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशः सर्गः ॥

ततस्तस्यगिरेःशृंगंमहेंद्रस्यमहाबलाः ॥
हनूमत्प्रमुखाःप्रीतिंहरयोजग्मुरुत्तमाम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे हनुमान इत्यादि महा बलवान् वानरगण महेन्द्राचल

पर्वतके शिखरपर बैठकर परम प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ जब प्रसन्न होकर यह सब महात्मा वानर भलीभांति बैठे तब प्रसन्न चित्तहो ॥ २ ॥ जाम्बवाननें तिन महा कपि हनुमानजीसे कार्यका वृत्तान्त पूछा कि तुमनें देवी जानकीजीको कहां किस प्रकारसे रहते देखाहै ॥ ३ ॥ दुरात्मा रावण उनके प्रति किस प्रकारका व्यवहार किया करताहै! हे महाकपे ! यह सब वृत्तान्त ठीक २ हमसे तुम वर्णन करो ॥ ४ ॥ हे हनुमान ! तुमनें किस प्रकारसे देवी जानकीजीको पाया ? और उन्होंनें तुमसे क्या कहा ? इन सब बातोंको श्रवण कर फिर हम कर्तव्य स्थिर करैंगे ॥ ५ ॥ आत्मके जाननेंवाले श्रीरामचन्द्रजीके निकट जायकर, जिस वार्त्ताको कहना होगा, या जिस वार्त्ताको छिपाना होगा, सो तुम यह सब वार्त्ता ठीक २ कहो ॥ ६ ॥ जब जाम्बवानजीनें ऐसा कहा तौ हनुमानजीके सर्व शरीरमें रोमाञ्च हो आया, वह शिर झुकाय देवी जानकीजीको प्रणाम कर कहनें लगे ॥ ७ ॥ समुद्रके दक्षिण पार जानेंकी इच्छासे सावधान होकर हम आप लोगोंके सामनेही महेंद्र पर्वतसे आकाशमें कूदेथें ॥ ८ ॥ थोड़ी दूर समुद्रके उस पार जाते दूरसे विघ्न रूप दिखलाई देता मनोहर काञ्चनमय एक दिव्य शिखर हमनें देखा ॥ ९ ॥ उसको देख उस पर्वतको साक्षात् हमनें अपना विघ्न माना । तिसके पीछे उस सुवर्ण मय पर्वतके निकट जाय ॥ १० ॥ मनही मनमें हमनें कहाकि इस पर्वतको भय दिखलाना चाहिये यह विचार कर अति जोरसे उस पर्वतके शृङ्ग पर हमनें अपनी पूंछ दे मारी ॥ ११ ॥ सूर्यकी समान कांति युक्त उस पर्वतका शिखर फटकर हजार टुकड़े होगया, वह महा पर्वत अपनी ऐसी अवस्था जानकर वह पर्वत मनुष्य रूपहो॥१२ "पुत्र" यह सुन मधुर वचन कहकर हमारे हृदयमें अत्यानंद संचार करता हुआ कहनें लगा कि हम पवनके सखाहैं; इसलिये तुम हमको पितृव्य (चचा) समझो ॥ १३ ॥ हमारा विख्यात नाम मैनाकहै, हम इस समुद्रमें वास करते हैं, समुद्रमें रहनेंका यह कारण है कि पहले सब पर्वत श्रेष्ठोंके पंखथे ॥ १४ ॥ इस कारणसे यह पर्वत अनेक भांतिके उत्पात् आरंभ करके इच्छानुसार पृथ्वीपर विचरणर किया करते । भगवान पाकशासन इन्द्रजी पर्वत गणोंका ऐसा चरित्र श्रवणकर ॥ १५ ॥ वज्रसे मारकर सब पर्वतोंके पंख काट डाले; परन्तु तुम्हारे पिता पवन

जीनें उसकाल हमको इस विपदसे छुड़ा लियाथा ॥ १६ ॥ हे वत्स। उस काल पवनजीनें हमको उड़ायकर इस समुद्रमें ढकेल दिया। हे शत्रुओंके दमन करनें वाले! इस्से हम श्रीरामचन्द्रजीकी सहायता करना चाहते हैं ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी धर्म धारियोंमें प्रथम गिने जानेंके योग्यहैं; और उनका विक्रम इन्द्रजीकी समानहै। उन महात्मा मैनाकका यह वचन सुन ॥ १८ ॥ हमनें उस्से अपने सब कर्तव्य कार्यको निवेदन किया, और यहभी कहाकि विना इस कार्यको किये हम रुक नहीं सकते और हमारा मनभी जानेंके लिये चंचल हुआ, तब महात्मा मैनाकनेंभी हमको आज्ञादी ॥ १९ ॥ मनुष्यका रूप धारण किये वह पर्वत अपने शिखर पर खड़ाहो अन्तर्हित होगया और शरीरके सहित समुद्रमें प्रवेश कर गया ॥ २० ॥ तब हम उत्तम रूपसे वेगवान होकर बचे हुए मार्गको लांघनें लगे और बहुत दूरतक ऐसेही वेगमें भरे चले गये ॥ २१ ॥ फिर हमनें चलते२ सुरसा नाम नाग माताको देखा,वह देवी सुरसा बीच सागरमें हमारा मार्ग रोककर बोली ॥ २२ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! देवता लोगोंनें तुमको हमारा भोजन रूप बताय कर हमको यहां भेजाहै; इसलिये देवता लोगों करके बताये हुये भोजन तुमको हम भक्षण कर जायँगी ॥ २३ ॥ जब सुरसानें इस प्रकारसे कहा तब हमने हाथ जोड खडे रहकर प्रणाम करके उदास मुखहो उस्से कहा ॥ २४ ॥ शत्रुओंके दमन करने वाले दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मण और सीताजीके सहित दंडकारण्यमें आये ॥ २५ ॥ तब वनके वास करनेंके समय दुरात्मा रावण उनकी भार्या जानकीजीको हरण करके लेआया इसलिये हम श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे दूतहो सीताजीके खोजनेंको जा रहेहैं ॥ २६ ॥ तुम श्रीरामचन्द्रजीके अधिकारमें वास करतीहो, सो सीताजीके ढूंढनेंमें तुमकोभी श्रीरामचन्द्रजीकी सहायता करना उचितहै; अथवा श्रीजानकीजीको देख और उनका वृत्तान्त अक्लिष्ट कर्मकारी श्रीरामचन्द्रजीसे निवेदन कर २७॥ हम तुम्हारे मुखमें प्रवेश करेंगे; यह प्रतिज्ञा हम तुमसे सत्यही सत्य करते हैं, इस प्रकारसे हमनें कहा परन्तु काम रूपिणी सुरसा ॥ २८ ॥ हमको उत्तर देती हुई कि कोईभी पुरुष हमको लंघन करके नहीं जाय सकता; कारण कि हमको वरदानही ऐसा दिया है ! जब सुरसानें ऐसा कहा

तौ हम दश योजनके बड़े होगये ॥ २९ ॥ और फिर क्षणभरकेही मध्यमें हमनें अपने शरीरको औरभी पांच योजन बढ़ाया। परन्तु सुरसानें हमारी देहके प्रमाणसे अपना मुख औरभी अधिक फैलाया ॥ ३० ॥ उसको बड़ा भारी मुख फैलाये देख हमनें अपनें शरीरको बहुतही संकुचित किया हम उसी समय अंगूठेके समान छोटा रूप बनाय उसके वदनमें बड़ी शीघ्रतासे प्रवेशकर और फिर तत्क्षण हो बाहर आगये यह देख देवी सुरसा फिर अपना रूप धारण करकै फिर हमको पुकार कर बोली ॥ ३२ ॥ हे सौम्य तुम सुख पूर्वक चले जाओ और महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके सहित सीताजीको मिलाओ। और अर्थ सिद्ध करनेंके लिये निर्द्वन्द्व होकर जाओ ॥ ३३ ॥ हे वानर ! तुम सुखीहो ! हमतुम्हारे ऊपर प्रसन्नहैं, जब सुरसानें ऐसा कहा तौ सबही प्राणी "धन्य २!" कहकर हमारी प्रशंसा करनें लगे ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे हम गरुड जीकी समान बडे भारी आकाश मंडलमें प्रवेश करनें लगे पर हमारी छाया खिचनें लगी, तब हमनें इधर उधर देखा परन्तु कोई दृष्टि हमको न आया ॥ ३५ ॥ इस प्रकार हमारी गति रुक जानेंसे हम दशों दिशाओंकी ओर देखनें लगे, तथापि हमनें कुछभी न देख पाया कि किसनें हमारी गतिको रोकाहै ॥ ३६ ॥ तब हम विचारनें लगेकि किस कारणसे हमारी गति रोकनेंको यह विघ्न उपस्थित हुआ ॥ ३७ ॥तिसके पीछे शोक करते २ हमनें नीचेको दृष्टि डाली तौ हमनें देखाकि एक घोर रूपवाली राक्षसी समुद्रके जलमें पडी हुईहै ॥ ३८ ॥ हमारी गति यद्यपि रुक गईथी परन्तु हमारे मनमें इस्से कुछभी भय उत्पन्न नहीं हुआ यह देखकर वह भयंकर राक्षसी विकट शब्दसे हँसकर घोर शोर करती हुई अशुभ वचन हमसे बोली ॥ ३९ ॥ उसनें कहाकि हे महाकाय हम बहुतकालसे भोजन न पायकर अतिशय क्षुधित हो तुमको भोजन करनेंका अभिलाष करतीहैं तुम कहांजाओगे? इसलिये तुम हमारे इस शरीरकी तृप्ति कराओ ॥ ४० ॥हमनें "बहुत अच्छा" कहकर उसके वचनोंको अंगीकार किया तिसके पीछे उसके शरीरके प्रमाणसे बहुत बडा हमनें अपने शरीरको किया ॥ ४१ ॥ उस राक्षसीनें हमको भोजन करनेंके लिये बडा भारी भयंकर मुख फैलाया उसनें उसबातको नहीं जानाकि हम कामरूप धारीनें कामरूप

धारण किया है ॥ ४२ ॥ परन्तु फिर हमनें पलक मारतेही अपने बड़े शरीरको छोटा बनाय उसके मुखमें प्रवेश कर उसके कलेजेको ग्रहण कर आकासको उछलगये ॥ ४३॥ हम करकै हृदय कट जानेंपर वह भयंकर पर्वताकार राक्षसी दोनों बाहोंको फैलाय लवण समुद्रमें गिर पडी ॥४४॥ उसी समय महात्मा आकाश चारियोंका मधुर वचन हमनें सुन पाया कि "हनुमानजीनें भयंकर राक्षसीको बड़ी शीघ्रतासे मारडाला" ॥ ४५ ॥ इस प्रकार उस राक्षसीको संहार कर हमनें फिर चिन्ताकी । कि सीताजीके देखनेंमें कुछ विलम्ब हुआ ऐसे चिंता करते २ अपने कार्यको याद करते चले; और बहुत दूर चल पर्वतयुक्त ॥ ४६ ॥ समुद्रका दक्षिण तीर देखा जहां लंकानाम पुरीहै सूर्य भगवानके छिपनेंके समय हम राक्षसोंके रहनेंकी पुरीमें ॥ ४७ ॥ प्रवेश करते हुए परन्तु भयंकर विक्रम कारी राक्षस लोग हमको नहीं जानतेथे, परन्तु वहांभी प्रवेश करते हुए हमारे सन्मुख प्रलयकालीन मेघकी समान ॥ ४८ ॥ रूप धारण किये अट्टहास करती कोई राक्षसी उठ खडी हुई, और हमको मारनेंकी इच्छा करती हुई; तब हम अग्निके समान लाल केशर वाली उसके ऊपर ॥४९॥ अपने बांये हाथका मूका मारके उस भयंकर राक्षसीको पराजित करके सन्ध्याके समय पुरीमें प्रवेश करते हुए, तब उसनें डरकर हमसे कहा-कि ॥ ५० ॥ हे वीर ! हमही साक्षात् इस लंका पुरीकी अधिष्ठात्रीहैं; जबकि तुमनें पराक्रम प्रगट करकै हमको पराजित किया तिस्से तुम सब ही राक्षसोंको निःसन्देह जीत लोगे ॥ ५१ ॥ तिसके पीछे हमनें जानकीजीका खोज करनेंके लिये समस्त रात्रिमें लंका पुरीमें घूमते घामते हम रावणके रनवासमें, बैठे, परन्तु वहांभी हमनें सुमध्यमा जानकीजीको न देख पाया ॥ ५२ ॥ रावणके स्थानमें सीताजीको न देख पायकर हम शोक सागरमें डूब गये, कि जिसका पार हम न पासके ॥ ५३ ॥ जब कि हम इस प्रकारसे शोक कर रहेथे तब रावणके स्थानसे अति निकट अति मनोहर उपवन हमनें देखा, यह उपवन अति ऊंची सुवर्णमय प्राकारोंसे घिराथा ॥ ५४ ॥ हम इस छहर दीवारीकी भीत पर चढ़कर इस बागके लगे हुए अनेक भांतिके वृन्दोंकी शोभा देखते २ उस अशोक वनके मध्य एक बडा भारी शिंशुपाका वृक्ष देखते हुए ॥ ५५ ॥

उस वृक्षपर चढ़तेही बहुतही निकट कांचन वर्ण कदली वन और वर वर्णिनी जानकीजीको हमनें देखा ॥ ५६ ॥ उपवास करनेंसे उन श्यामा और कमल दल नेत्र वाली राम प्यारी श्रीजानकीजीका चन्द्रमुख शोक संतापसे अति मलीन होगयाहै, केवल एक मलीन साड़ी पहरे हैं, केशोंमें धूरि छाय रहीहै ॥ ५७ ॥ और अंगका गठनभी शोक संतापसे क्षीण होगयाहै वह सदाही अपने स्वामीके हितमें लगी हुई हैं क्रूर स्वभाववाली विकटाकार राक्षसियें जानकीजीको घेरे हुएहैं ॥ ५८ ॥ कि जैसे मांस रुधिरकी खानेपीनेवाली शेरनियें हरिणीको घेर लेतीहैं; इस प्रकारसे वे राक्षसियें वारंवार उनको धमका कर डरा रहीं हैं ॥ ५९ ॥ शीतकालके आजानेंसे कमलनी जिस प्रकार सूख जातीहै, वैसेही उन जानकीजीका शरीर श्रीरामचंद्रजीकी चिन्तासे मलीन होगयाहै; वह एक वेणी धारण किये अत्यन्त दीनभाव युक्त और श्रीरामचंद्रजीकी चिन्तामें मग्नहो राक्षसियोंके बीचमें पृथ्वीपर पड़ीहैं ॥६०॥ अधिक क्या कहैं वह रावणकी ओरसे संपूर्णतः निवृत्तहो मरनेंका निश्चय किये हुएहैं । क्योंकि रावण उनको छलसे हर लायाहै, सो हम किसी प्रकारसे उन मृग छौनाकेसे नेत्रवाली रामप्यारी श्रीजानकीजीके निकट अति शीघ्रतासे पहुँचे ॥ ६१ ॥ और उन श्रीरामचन्द्रजीकी परम यशस्विनी श्रीजानकीजीकी यह अवस्था देख हम उसी शिंशपाके वृक्षपर चढ़गये ॥ ६२ ॥ तिसके पीछे रावणके स्थानके निकटही क्षुद्र घंटिका और नूपुरादिका अति गंभीर शब्द हमनें सुना ॥ ६३ ॥ तब हमनें बहुत अकुलाय अपना बड़ा भारी रूप त्याग दिया; और छोटा रूप बनाया पक्षीकी समान शिंशपा वृक्षके सघन पत्तोंमें बैठे ॥ ६४ ॥ इसी अवसरमें महा बलवान रावण और उसकी स्त्रियें जहां सीताथीं वहांपर आय पहुँची ॥ ६५ ॥ उस समय श्रेष्ठ मुख वाली श्रीजानकीजी राक्षसपति रावणको देखतेही बहुत त्रासित होगई, और अपने अंगोंको संकुचित कर अपनी बाहोंसे स्तनोंको ढांपकर थरथरानें लगीं ॥ ६६ ॥ और इधर उधर निहार किसीकोभी अपना रक्षा करनेवाला न देखकर कंपायमान होने लगीं ॥ ६७ ॥ तब रावण महा दुःखित श्रीरामचन्द्रजीकी परमप्यारी श्रीजानकीजीसे कहनें लगा

कि हम शिर झुकायकर तुम्हारे चरणोंमें गिरे, सो तुम हमारा आदर करो ॥ ६८ ॥ हे गर्व करनें वाली जानकी! यदि तुम घमंड करके हमको प्रसन्न न करोगी तौ हे जानकी! दो मांसके बीतनेंपर हम तुम्हारा रुधिर पी जांयगे ॥ ६९ ॥ दुराचारी रावणके यह वचन सुन सीताजी अत्यन्त क्रोधितहो रावणसे उत्तम वचन बोलीं ॥ ७० ॥ रेराक्षसनीच! हम अतुल प्रभाव वाले श्रीरामचंद्रजीकी स्त्रीहैं, और इक्ष्वाकु कुल तिलक महाराज दशरथजीकी पुत्रवधूहैं ॥ ७१ ॥ हमारे लिये अनुचित वचन कहकर तुम्हारी जीभ क्यों नहीं गिरजाती? रेअनार्य! रेपाप! तुम्हारे वीर्यको धिक्कारहै, कि तुम श्रीरामचंद्रजीके निकट रहते हमको नहीं लाय सके ॥ ७२ ॥ वरन जब वह आश्रममें नहींथे तिस समय तू हमको हरण करके लाया; तू श्रीरामचंद्रजीकी बराबर नहीं है; अथवा तूतौ उनका दास होनेके योग्यभी नहीं है ॥ ७३ ॥ कारणकि श्रीरामचंद्रजी सत्य बोलनेंवाले, शूर, रणमें प्रशंसा करनेंके योग्य और अजेयहैं। श्रीजानकीजीके ऐसे कठोर वचन श्रवण करके ॥ ७४ ॥ दशशिरवाला रावण तिसी समय क्रोधके वश होकर चिताकी अग्निके समान जलबल गया, और दोनों क्रूर नेत्रोंको घुमाय दहिना मुष्टिक उठाय ॥ ७५ ॥ श्रीजानकीजीका संहार करनेंको तैयार हुआ। उस समय रावणकी सब स्त्रियें हाहाकार कर उठीं, तब उस दुष्टात्माकी स्त्रियोंके मध्यसे उठकर उसकी भार्या ॥ ७६ ॥ पटरानी मन्दोदरी नामकनें तिस कामातुर रावणको मीठे वचनोंसे रोककर कहाकि ॥ ७७ ॥ तुम्हारा विक्रम इन्द्रकी समानहै, और जानकीजीभी किसी बातमें कुछभी हमसे अधिक सुन्दरी नहींहैं; इसलिये सीतासे तुम्हारा क्या प्रयोजनहै? आप अब हमारे साथ विहार कीजिये ॥ ७८ ॥ अथवा हे प्रभो! देव, गन्धर्व, और यक्षोंकी कन्याओंके साथ आप विहार करें, इस सीताको लेकर आप क्या करेंगे? ॥ ७९ ॥ जब मन्दोदरीनें ऐसा कहा तब वह समस्त स्त्रियें इकट्ठीहो मिलकर महाबल रावणको तिसी काल वहांसे अपने गृहको लेगईं ॥ ८० ॥ जब रावण चला गया तब विकट मुखवाली राक्षसी सीताजीको अतिदारुण निठुर वचन कह २ कर बहुतही धमकानें लगीं ॥ ८१ ॥ परन्तु श्रीजानकीजीनें उन राक्षसियोंके वचनोंको तृणकी समान समझा।

इसलिये जानकीजीके निकट उन राक्षसियोंका तर्जना गर्जना सबही विफल होगया ॥ ८२ ॥ मांस भोजन करनेंवाली राक्षसियें वृथा गर्जन और वृथा चेष्टा करके फिर रावणके निकट जाय सीताजीका यह बड़ा विचार कहती हुईं ॥ ८३ ॥ इस प्रकार राक्षसपतिकी अनुकूलताका कार्य सिद्ध करनें और राक्षसोंकी आशा व उद्यम विफल होंने पर वह राक्षसियें अतिशय थककर सोय गईं ॥ ८४ ॥ जब राक्षसियें नींदके वश हुईं; तब पतिका हित चाहनेंवाली जनक लडैती जानकीजी अतिशय दुःखित और दीनभाव युक्तहो करुणा सहित विलाप और शोक करने लगीं ॥ ८५ ॥ कि इसी अवसरमें त्रिजटा नामक राक्षसी, उन सब निशाचरियोंके बीच-मेंसे उठकर बोली, तुम सब सीताजीको न खाय सकोगी; वरन अपनेही आप अपना २ मांस खालो ॥ ८६ ॥ राजा जनकजीकी कन्या दशरथ-जीकी पुत्रवधू पतिव्रता कृष्ण नेत्र वाली सीताजीको तुम न खानें पाओगी आज हमनें रोमाञ्चकारी दारुण स्वप्न देखाहै ॥ ८७ ॥ जिस्से कि राक्षस लोगोंका विनाश और हमारे राजाका पराजय होना हमनें देखाहै; उस कालमें यह जानकीजीही श्रीरामचंद्रजीसे हम लोगोंका उद्धार करनेंमें समर्थ होंगी ॥ ८८ ॥ इस कारण हमारी बड़ी अभिलाषाहै कि इन सीताजीसे हम अपनी रक्षाके लिये प्रार्थना करें; क्योंकि जानकीजी दुःखित हुईहैं ॥ ८९ ॥ यदि इस स्वप्नका वृत्तान्त हम इनसे कहदें तब सब दुःख दूर होकर उनको अतिशय सुख उत्पन्न होगा, इसलिये जनकनंदिनी सीताजीको प्रणाम करके हम लोग प्रसन्न करें ॥ ९० ॥ तब यह हम सबको महाविपदसे रक्षा कर लेंगी; लजीली बाला श्रीजानकीजी इस बातसे स्वामी की विजय सूचक जान प्रसन्न हो ॥ ९१ ॥ बोलीं कि यदि त्रिजटाका कहना सत्य होगा तब हम तुम सबकी रक्षा करेंगी। हे वानरगण! सीता जीकी ऐसी दारुण अवस्था देख कर कुछ समय तक हम चिन्ता करते रहे ॥ ९२ ॥ परन्तु किसी प्रकारसे भी हमारा मन सुख प्राप्त करनेंको समर्थ न हुआ। तौ फिर हम यह उपाय खोजनें लगे कि शान्ति न पाई हुई जानकीजीसे हम किस प्रकार वार्ता करें ॥ ९३ ॥ विचारते २ उपाय स्थिर कर फिर हम उनके सन्मुख इक्ष्वाकुवंशकी स्तुति करने लगे। राजर्षि गुण कीर्त्तन युक्त हमारे वचन सुनकर ॥ ९४ ॥ देवी जानकीजी

आंसू भरकर हमसे बोलीं, कि हे वानरश्रेष्ठ! तुम कौनहो! और किसके पठाये यहां पर आयेहो? ॥ ९५ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके साथ किस प्रकारसे तुम्हारी मित्रता हुई यह सब वार्त्ता तुम हमसे कहो हमनें उनके यह वचन सुनकर कहा ॥ ९६ ॥ हे देवि! भीम विक्रम प्रबल प्रताप युक्त वानरोंके नाथ सुग्रीव नाम वानर तुम्हारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीके सहायक हुएहैं ॥ ९७ ॥ हम हनुमान् नाम वानर उन्हीं सुग्रीवजीके दासहैं। अक्लिष्ट कर्म करनेंवाले तुम्हारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीनें हमको आपके पास भेजाहै; इसीकारणसे हम यहां पर आयेहैं ॥ ९८ ॥ हे यशस्विनी! पुरुष सिंह श्रीरामचंद्रजीनें चिह्न स्वरूप आपको यह अँगूठी दीहै ॥ ९९ ॥ इस समय हमको आपकी कौनसी आज्ञाका पालन करना होगा सो हम जान्ना चाहतेहैं। अथवा क्या हम आपको श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके निकट समुद्रके उत्तर किनारे पर लेजांय! ॥ १०० ॥ जनक लड़ैती सीताजी यह वार्त्ता सुनकर हमें उत्तर देती हुई कि हमारी यह कामनाहै कि श्रीरामचंद्रजी स्वयं रावणको वंश सहित ध्वंश करके हमको अपने स्थान पर लेजांय ॥ १०१ ॥ तब हमनें निन्दा रहित आर्यादेवी जानकीजीको शिर नवाय प्रणाम कर एक ऐसा चिह्न मांगा कि जिसे देखकर श्रीरामचंद्रजीको आनंद होवे ॥ १०२ ॥ फिर वह श्रेष्ठ मुखवाली सीताजी हमसे बोलीं कि तुम यह श्रेष्ठ चूडामणि ग्रहण करो महाबाहु श्रीरामचंद्रजी इसको पायकर तुमको अधिक सन्मानित करेंगे ॥ १०३ ॥ श्रीजानकीजीने यह कहकर हमको वह श्रेष्ठ चूडामणि देदी और महा व्याकुल होकर श्रीरामचंद्रजीके निकट कहनेंके लिये हमसे काक इत्यादिका इतिहास वर्णन करतीहुई ॥ १०४ ॥ तिसके पीछे हमनें यह कहकर कि "हम फिर यहां पर आवेंगे" कृतचित और सावधान होकर राजपुत्री जानकीजीकी प्रदक्षिणा करकें उनको प्रणामकिया॥१०५॥ तब वह गद् २वाणीसे फिर हमें कहती हुई कि हे हनुमन्! हमारा वृत्तान्त तुम श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार निवेदन करना ॥ १०६ ॥ कि जिस्से वह वीर श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मण उस वृत्तान्तको सुनकर सुग्रीवजीके साथ बहुतही शीघ्र यहांपर आवें॥ १०७ ॥ रावणने हमारे जीनेंकी दोमासकी अवधि नियत की है सो हमारा जीवन दोही मासहै, इसकारण जो दोमासके

मध्यमें श्रीरामचंद्रजी यहांपर न आय पहुंचेंगे तौ हमको नाथहीनकी समान जीवन त्यागना पडेगा फिर श्रीरामचंद्रजी हमको न देख पावेंगे ॥१०८॥ उनके करुणा भरे वचन सुनते ही हमको क्रोध उत्पन्न हुआ और अब क्या करना कर्त्तव्य है इस प्रकारकी चिन्ता हम कार्यके अंत में करनेलगे ॥ १०९ ॥ उस समय मारे क्रोधके हमारा शरीर पर्वतकी समान बढगया तब हमनें युद्ध करनेंकी आशासे अशोक वनका उजाड़ना आरंभ किया ॥११०॥ जब वन उजड़कर नष्ट होगया और वहांके समस्त मृग पक्षी त्रासित होकर इधर उधर घूमने लगे तब विकट मुखवाली राक्षसियें जागकर वनकी इस अवस्थाको देखने लगीं ॥ १११ ॥ और हमको वनमें खड़े देखकर सबने एकत्र हो शीघ्रतासे रावणके निकट जाय उस्से यह सब वृत्तान्त निवेदन कियाकि ॥ ११२ ॥ हे राजन्! एक दुरात्मा वानरने आपका महाबल और वीर्य न जानकर आपको परम प्यारा किसीके न जाने योग्य अशोक वन उजाड़ डाला ॥ ११३ ॥ उसमें अति कुबुद्धि आई है, इसीसे तौ उसने आपका कुप्यारा आचरण कियाहै इस कारण कि जिस्से वह फिर यहांसे लौट कर न जायसके आप उसके प्राण वधकी आज्ञा दीजिये ॥ ११४ ॥ राक्षसपति रावणने यह सुनकर अपने मनमाने किंकर नाम अति अजीत अस्सी हजार राक्षसोंको भेजा ॥ ११५ ॥ उन अस्सी हजार राक्षसोंके शूल और मुद्गर धारण करके अशोक वनमें आतेही गदा प्रहारसे हमने उन सबका संहार किया॥११६॥ उन राक्षसोंमें से जो किसी प्रकार से बचे बचाये उन लोगोंनें बडी शीघ्रताके साथ रावणके निकट जायकर उस अस्सी हजार सैनाके नाशहोनेंका वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ११७ ॥ फिर हमनें अत्युत्तम लंकाकी अधिष्ठाता देवताके मन्दिरके विनाश करनेंका संकल्प करके एक थंभके आघातसे उस मंदिरके रखवाले राक्षसोंको मार डाला॥११८॥और महाक्रोध करकै लंकाके अलंका रूप उस मंदिरको सम्पूर्ण तोड़ फोड़डाला । तब रावणने प्रहस्तके बेटे जम्बुमालीको लड़नेंके लिये भेजा॥११९॥ हमने विकटाकार भयानक निशाचर गणोंसे वेष्टित बल सम्पन्न समर विशारद उस राक्षसको ॥ १२० ॥ लोहेके परिघसे उसके साथियों समेत मार डाला राक्षस रावणनें यह वृत्तान्त श्रवणकर महाबल मंत्रीके पुत्रोंको॥१२१॥

पैदलोंकी बड़ी भारी सैनाके सहित युद्ध करनेंको भेजा हमनें उन सबको भी परिघके प्रहारसे यमपुरको भेजदिया ॥ १२२ ॥ लंकापति रावणने संग्राममें लघु विक्रम प्रगट करनें वाले मंत्री पुत्रोंको हत हुआ श्रवण करके पांच महा शूर सैनापतियोंको भेजा ॥ १२३ ॥ हमने सैना सहित उन पांचोंको मार डाला। तिसके पीछे रावणने फिर अपने महाबली पुत्र अक्ष को ॥१२४॥ बहुत सारे राक्षसोंके साथ युद्ध करनेंके लिये भेजा मन्दोदरी नंदन वह रण पंडित महावीर वह कुमार ॥ १२५ ॥ असि चर्म धारण करके आकाश मार्गमें कूदता हुआ तब हमनें उसके दोनों चरण पकड शतवार घुमाय कर फेंक दिया ॥ १२६ ॥ अपने पुत्र अक्षको मरा हुआ सुन रावणने अपने दूसरे पुत्र मेघनादको रण करनेंके लिये भेजा॥१२७॥ यह मेघनाद रण दुर्मद और बडा भारी बलवान है परन्तु उसके संग आई हुई समस्त सैनाका हमनें॥१२८॥ संहार कर डाला और संग्राममें उसका भी पराक्रम नष्ट कर दिया यह कार्यकर हम अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए कारणकि महाबलवान महाबाहु मेघनादको रावणने अति विश्वाससें युद्धमें भेजाथा ॥१२९॥ परन्तु इन्द्रजीत हमारे सहनेंके अयोग्य पराक्रम को जानकर कि हम उनको नहीं जीत सके । और अपनी सैनाको विध्वंशित देख ॥ १३० ॥हमको ब्रह्मास्त्रसे बांधकर अति वेगसे चलागया उसके पीछे वहां फिर राक्षसोंने हमको फिर रस्सियोंसे बांधा ॥ १३१ ॥ और रावणके निकट वह लोग हमको पकडकर लेगये दुरात्मारावणनें हमको देखकर पूछाकि ॥ १३२ ॥ तू किस कारणसे लंकामें आयाहै और राक्षसोंके मारनेंका तेरा क्या प्रयोजन? तब हमनें कहा कि हमने यह समस्त कार्य श्रीजानकीजीके लिये किये हैं ॥ १३३ ॥ हे रावण! हम सीताजीके दर्शन करनेंकी अभिलाषासे ही आपके स्थान पर आयेहैं हम पवनजीके औरस पुत्र हनुमान नाम वानर हैं ॥ १३४ ॥ हम श्रीरामचंद्रजीके दूत और वानरराज सुग्रीवजीके मंत्रीहैं। और हम श्रीराम-चंद्रजीके दूत होकर तुम्हारे पास आयेहैं ॥ १३५ ॥ उस समय सुग्रीवजीनें आपके निकट जो कुछ हमें कहनेंकी आज्ञादीहै, सो कहतेहैं तुम सुनो ॥ १३६ ॥ हेराक्षसराज! वानरपति महाभाग सुग्रीवजीनें अपनी कुशल कहकर फिर आपकी कुशल पूछीहै; और धर्मार्थ काम

युक्त परम मंगल मय हितकारी वचन कहे हैं ॥ १३७ ॥ उन्होंने कहाहै कि जब हम विशाल वृक्ष राजि शोभित ऋष्यमूक पर्वत पर वास करतेथे तब श्रीरामचंद्रजीके साथ मित्रता होगई है ॥ १३८ ॥ हेराजन्! तब श्रीरामचंद्रजीनें हमसे कहाकि "राक्षस हमारी भार्याको हरण करके लेगयाहै। सो उनके ढूंढ़नेमें सहायता देनेके लिये तुमको प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी" ॥ १३९ ॥ यह कहकर उन्होंनें लक्ष्मणजीके साथ अग्निको साक्षी करके हमसे मित्रताकी, क्योंकि वालिनेंभी उनका राज्य व स्त्री हरण कर लीथी ॥ ४० ॥ और उन्होंने केवल एकही बाणसे युद्धमें वालिको मार कर हमको वानरगणोंके महाराज पदपर प्रतिष्ठित किया ॥ १४१ ॥ इस कारण समस्त अंतःकरणसे उनकी सहायता करना हमारा अवश्य कर्त्तव्यहै। इसलिये उन हनुमानको दूत स्वरूप हमनें धर्मानुसार तुम्हारे निकट भेजाहै ॥ १४२ ॥ अब वानरवीर लोगोंसे लंकाका विनाश न होते २ तुम बड़ी शीघ्रताके साथ सीताजीको श्रीरामचंद्रजीको सौं पदो ॥ १४३ ॥ वानर वीरोंके वीर्य प्रभावको कौन नहीं जानताहै? इन वानरोंको देवता लोग अपनें शत्रुओंको मारनेंके लिये स्वर्गमें बुलाय कर लेजातेहैं ॥ १४४ ॥ वानरराजसुग्रीवजीनें यही सब बातें कहला भेजीथीं ॥ सो हमनें तुमसे कहीं। यह सुन नेत्रोंसे भस्म करते हुए हमको रावणनें देखा ॥ १४५ ॥ उस भयंकर कर्मकारी राक्षस रावणनें हमारा बल न जानकर आज्ञादी कि इस वानरको मारडालो ॥ १४६ ॥ तिसके पीछे विभीषण नामक उनके महा मतिवाले छोटे भाईनें हमारे अर्थ राक्षस राज रावणके निकट प्रार्थना करके कहा ॥ १४७ ॥ हे राक्षसशार्दूल इसका वध करना उचित नहीं है; इस संकल्पको आप छोड़ दीजिये आपनें जो स्थिर कियाहै, वह मार्ग राज शास्त्रसे बाहरहै ॥ १४८ ॥ हे राक्षस! राजनीतिमें कहींभी दूतका वध नहीं कहा गयाहै; विशेषतः दूत जो जैसा अपने स्वामीके निकट सुनकर आताहै, वैसाही कहताहै इसमें दूतका क्या दोष? ॥ १४९ ॥ हे अतुल विक्रम! चाहे बड़ा भारी अपराधही क्यों न कियाहो; परन्तु शास्त्रमें कहींभी दूतके वधकी व्यवस्था नहीं; हां केवल नाक कान आदि काटकर विरूप करना लिखाहै॥१५०॥ जब विभीषणजीनें इस प्रकारसे कहा, तब रावणनें राक्षस लोगोंको आज्ञा-

दी कि इसकी पूंछको भस्म कर दो ॥ १५१ ॥ रावणकी यह आज्ञा पाय राक्षस, लोगोंने हमारी पूंछमें, सन, वृक्षोंकी छाल, और वस्त्र इत्यादि लपेटे ॥ १५२ ॥ कवच शस्त्र आदि धारण किये प्रचंड विक्रमकारी राक्षसोंनें हमको काठके डंडों और मूकोंसे मारकर हमारी पूंछमें आग लगादी१५३॥ हमनें राक्षसों करके विविध भांतिसे बांधे और यंत्रित किये जाकर भी कुछ पीड़ा न पाई, क्योंकि हमको तौ लंका देखनें की इच्छाथी॥ १५४॥ तब उन शूर बली राक्षसोंने हमको बांध और पूंछमें अग्नि लगाय सारी नगरीमें पुकारा कि देखो इस वानरदूतकी पूंछ जलाई जाती है ॥ १५५॥ तब हमनें उस अपने बड़े भारी शरीरको छोटासा करके सब बंधनोंको तोड़ डाला, हमारा रूप छोटा होतेही वह सब बंधन ढीले पड़गयेथे, उनको दूर बहाय अपना स्वभाविक रूप धारण किया ॥ १५६ ॥ और तब हम लोहेका एक बड़ा भारी परिघ उठाय उस्से राक्षसोंका संहार करनें लगे; उन समस्तको मार फिर नगरके द्वारपर उछलकर चढ़ गये१५७॥ उस प्रदीप्त पूंछकी अग्निसे प्रजाको जलाते हुए प्रलय कालके अग्निकी समान राज भवनसे लेकर नगरके फाटकतक हमनें समस्त लंका पुरीको भस्म कर दिया; सब पुरीको जलाकर भी हमें कुछ श्रम नहीं प्राप्त हुआ ॥ १५८ ॥ जब सब पुरी भस्म होगई, तौ हम विचार करनें लगे कि लंकामें ऐसा स्थान नहीं जो भस्म न हुआ हो; इसकारण समस्त पुरीके जल जानेपर जानकीजीभी इसके संगही भस्म होगई इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ १५९ ॥ लंकाको जलाते हुए हमनें जानकीजीको भस्म कर डाला इस कारण हमनें श्रीरामचन्द्रजीका बड़ाभारी कार्य नष्ट कर डाला ॥ १६० ॥ इस प्रकार शोकसे व्याकुल होकर चिन्ताकर रहेथे कि इतनेंमेंही चारण लोगोंका यह मधुर वचन हमनें सुना ॥ १६१॥ कि इस वानरश्रेष्ठनें बड़ा अद्भुत कार्य किया कि समस्त लंकापुरीको जलाय जानकीजीको बचालिया, तब हमनें उनकी वाणी सुन व और भी ॥ १६२ ॥ शुभ निमित्तोंके होंनेसे जानाकि जानकीजी भस्मनहीं हुई, कारणकि पूंछके ऊपरका वस्त्र तौ सब जलगया, परन्तु अग्निनें हमको नहीं जलाया ॥ १६३ ॥ हमारा हृदयभी प्रफुल्ल होगयाहै और सुगन्धि युक्त पवनभी चल रहीहै इन शुभलक्षण और महागुणकारक समूहोंसे ॥ १३४॥ और ऋषिलोकोंके वचनोंका मर्म जानकर उसकाल ह-

मारे हृदयमें हर्ष उत्पन्न हुवा, तब हमनें फिर जानकीजीका दर्शनकर उनके निकटसे विदा पाय ॥ १३५ ॥ अरिष्ट पर्वतपर आरोहण (चढ़)कर आप सब लोगोंका दर्शन पानेंकी अभिलाषासे फिर समुद्रको उतरनें लगे ॥ १३६ ॥ और वायु, सूर्य, चन्द्र, गन्धर्व, व सिद्धगण सेवित मार्गका आश्रयले गमन करते २ हमनें आप लोगोंका दर्शन किया ॥ १३७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके प्रसाद और आप सबके तेज प्रभावसे सुग्रीवजीकेसमस्तही कार्य हमनें सिद्ध किये ॥ १३८ ॥

एतत्सर्वंमयातत्रयथावदुपपादितम् ॥
तत्रयन्नकृतंशेषंतत्सर्वंक्रियतामिति ॥ १३९ ॥

हमनें लंकामें जो कुछ कियाहै वह सबही आप सबसे कहा, इस समय जो कार्य नहीं कियागया और बाकीहो उसको आप लोग पूरा कीजिये ॥१३९॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये भाषानुवादे कात्यायन गोत्रोद्भव पं ज्वालाप्रसादमिश्रकृते सुन्दरकांडे अष्टपंचाशःसर्गः ॥५८॥

एकोनषष्टितमः सर्गः

एतदाख्यायतत्सर्वंहनमान्मारुतात्मजः ॥
भूयःसमुपचक्रामवचनंवक्तुमुत्तरम् ॥ १ ॥

पवनकुमार हनुमानजी समस्त वृत्तान्त इसप्रकार वर्णन करकै फिर और कहनें लगे ॥१॥ जनकनंदिनी सीताजीका स्वभाव देखकर हमारा मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ । और इस्से श्रीरामचन्द्रजीका उद्योग और सुग्रीवजीका उत्साहभी सफल होगया ॥ २ ॥ हे वानरवीर गण! पतिव्रता साधवी स्त्रियोंका चरित्र जिस प्रकारका होना चाहिये, आर्या सीताजी! सर्व प्रकारसे वैसेही श्रेष्ठ चरित्रकी रक्षा करती हैं वह अपने तपके प्रभावसे सब लोकोंको धारण और क्रोधमें भरकर समस्त लोकोंको भस्म कर सकती हैं ॥ ३ ॥ राक्षसपति रावणभी सर्वथा अतिशय तप करकै युक्त है, बस इसीलिये हरण समयमें सीताजीका अंग छूने परभी वह नहीं भस्म होगया, यह तप काही प्रभावहै कि इसका शरीर भस्म नहीं हुआ॥४॥ पतिव्रता जनक लड़ैती जानकीजी क्रोधके वश होकर जो कुछ कर सकतीहैं; वह हाथसे छूनेंपरभी अग्निकी शिखा नहीं कर सकती । जो हो

जिस प्रकारका कार्य हुआ, वह तौ सबही हमनें आप लोगोंसे कहा ॥ ५॥ अब हम चाहते हैं कि जाम्बवान् इत्यादि मुख्य २ वानर लोगोंकी आज्ञा लेकर राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे जानकीजीको लंकासे लायकर मिलाय देना हमें उचित ज्ञात होताहै ॥ ६ ॥ जो तुम यह शंका करो कि विना श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण, सुग्रीवके लंकामें गये यह कार्य कैसे होसकताहै, तौ सुनो कि हम इकलेही समस्त राक्षसोंके सहित लंकापुरी व रावणको नष्टकर सकते हैं, इसमें किसी दूसरेसे सहायता लेनेंकी क्या आवश्यकताहै ? ॥ ७ ॥ तिस पर आप सरीखे परम ज्ञानी, सब अस्त्र शस्त्रके जाननेंवाले, बलवान, विजयकी अभिलाषा किये और समर्थ वीर गण संग २ लंकाको चलें तब तौ फिर कहनाही क्या ? ॥ ८ ॥ हम रावणको उसके भ्राता, पुत्र, नौकर, चाकर, मंत्री आदि, व सेनाके सहित युद्धमें मार डालेंगे ॥ ९ ॥ ब्रह्मास्त्र रौद्रास्त्र, वायवास्त्र, और वरुणास्त्रभी इत्यादि ॥ १० ॥ संग्राममें बड़े दुर्निरीक्ष अस्त्र शस्त्रभी इन्द्रजीत चलावेगा, तथापि हम उन सबका नाशकर राक्षसोंका मूल सहित विनाश कर डालेंगे ॥ ११ ॥ आप लोगोंकी आज्ञाके बिना हमारा विक्रम रुकरहाहै । पर्वत समस्त हमारी वांहोंके बलसे निरन्तर चलाये जाकर ॥१२॥ निशाचरोंकी तौ क्या चलाई देवता लोगोंकोभी युद्धमें नष्टकर सकतेहैं आप लोगोंकी आज्ञा न पानेंसे हमारी राक्षस रावणके मार डालनेंकी प्रवृत्ति निवृत्ति होगई है ॥ १३ ॥ समुद्र चाहे वेला भूमिको लांघ जाय, और मन्दराचलभी चाहे अपने स्थानसें चलायमान होजाय, तथापि शत्रुकी सैना संग्राममें जाम्बवान् को नहीं कंपायमान कर सकती ॥ १४ ॥ और विशेषतः वालिकुमार वीर अंगदजीही इकले राक्षसोंमें प्रधान २ राक्षसोंके मारनेंको समर्थ हैं ॥ १५ ॥ महात्मा नीलके बड़े भारी ऊरुवेगसे आहत होकर मन्दराचल पर्वतभी विदीर्ण होसकताहै, फिर विचित्रता क्याहै कि जो राक्षसलोग समरमें उनको पायकर व्याकुल होजायँगे ॥ १६ ॥ समस्त सुर, असुर, गन्धर्व, उरग, विहंग, इनके बीचमें मैन्द या द्विविदकी समान कौन वीरहै ! सो आप बतावें॥१७॥वानरश्रेष्ठ जोकि अश्विनी कुमारके यह दो पुत्र हैं, और अति बलवानहैं; इनके विरुद्ध युद्ध करनेंवाला हम किसीकोभी नहीं देखते ॥ १८ ॥ और हमनेंभी अकेलेही लंकापुरीको विध्वंश दग्ध और

भस्म करकै समस्त राज मार्गोंमें इस प्रकार पुकार २ कर अपना नाम सबको सुनाया ॥ १९ ॥ अति बलवान् श्रीरामचंद्रजीकी जय! महाबलवान श्रीलक्ष्मणजीकीजय! राघवपालित सुग्रीवजीकी जय! ॥२० ॥ हमकोशलराज श्रीरामचंद्रजीके दास पवनके पुत्र हमारा नाम हनुमानहै इस प्रकारसे सब कहीं हमने सबके नामका कीर्त्तन कियाहै ॥ २१ ॥ तिसके पीछे हमने दुराचारी रावणकी अशोकवाटिकामें प्रवेश करके देखा कि पतिव्रता जानकीजी शिंशुपाके वृक्षके नीचे दीनभावसे बैठीहैं ॥ २२ ॥ शोक संतापसे पीड़ित और राक्षसियोंके घेरे रहनेंसे जानकीजीके देहकी कांति मेघरेखासे ढकी हुई चंद्ररेखाकी समान प्रभाहीन होगईहै ॥ २३ ॥ श्रेष्ठ मुखवाली जनककुमारी सीताजी पतिव्रताहैं; इस कारण रावणको तौ वह कुछ गिनतीहीं नहीं उस दुरात्मा रावणनें केवल बलसे गर्वित होकर उनको रोक रक्खाहै ॥ २४ ॥ वह शोभायमान, जनककुमारी सीताजी जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रसे व्यवहार करतीहैं, ऐसे और चिन्ताओंका त्याग करके केवल एक श्रीरामचंद्रजीकीही चिन्तामें मग्न रहतीहैं ॥ २५ ॥ सीताजी धूरि वदनमें लगाये केवल एक सारी धारणकिये राक्षसियोंके बीचमें बैठीहैं; और वह विकटरूपवाली राक्षसियें वारंवार उनको धमका रहीहैं ॥ २६ ॥ जानकीजी दीनभावसे उन राक्षसियोंके मध्य केवल एक अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीकी चिन्ता करती हुई केवल एक वेणी धारण किये ॥ २७ ॥ खुली भूमिमें शयन करतीं हुई, हिमके आगमनसे कमलनीकी समान विवर्ण हो गई हैं, मरणका उन्होंने निश्चय करलियाहै, रावणमें उनकी कुछभी प्रवृत्ति या अभिलाषा नहीं है ॥ २८ ॥ हमनें किसी प्रकारसे उन मृगछौनाकेसे नेत्र वाली श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी जानकीजीको अपना विश्वास उत्पन्न कराय संभाषण कर उनसे सब वृत्तान्त प्रगट किया ॥२९॥ वह श्रीरामचंद्रजीके साथ सुग्रीवजीकी मित्रता सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई, वह श्रीरामचंद्रजीमें अत्यन्त अनुरागिणी और पतिव्रता गुणकी आधारहैं, उन्होंने जो अबतक रावणको नहीं मारडाला, सो इसमें एक रावणके तप बलकाही हेतुहै ॥ ३० ॥ तथापि सीताजीको रोक करके रावण मृतकसा हो गयाहै श्रीरामचंद्रजीका उसको मारना तौ केवल

निमित्त मात्र होगा ॥ ३१ ॥ पड़वा तिथिको पढ़नेंसे जिस प्रकार विद्याका क्षय हो जाताहै; वैसेही रावणकी महाक्षय दशा आन पहुँचीहै ॥ ३२ ॥

एवमास्तेमहाभागासीताशोकपरायणा ॥
यदत्रप्रतिकर्तव्यंतत्सर्वमुपकल्प्यताम् ॥ ३३ ॥

जनककुमारी सीताजी शोक परायणहो इस प्रकारसे समयको विताय रहीं हैं सो इस समय जो कुछ करना उचितहै उसका सर्व प्रकारसे आप लोग विचार कीजिये ॥ ३३ ॥ इ०श्रीम० वा० आ० सुं० एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमःसर्गः ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वावालिसूनुरभाषत ॥
अश्विपुत्रौमहावेगौबलवंतौप्लवंगमौ ॥ १ ॥

वालिके पुत्र अंगदजीहनुमानजीके यह वचन सुनकर बोलेकि हे वानर श्रेष्ठ अश्विनी कुमारके यह दोनों पुत्र महा बलवानहैं ॥ १ ॥ विशेष करके ब्रह्माजीके वरदान देनेंसे वह अत्यन्त वीर्य युक्तहैं। प्राचीन कालमें सर्व लोकके पितामह कमलयोनि ब्रह्माजीनें अश्विनी कुमारका सन्मान करनेंके लिये ॥ २ ॥ इन दोनों वानरोंको वरदान दिया कि तुमको कोई नहीं मार सकेगा, इस प्रकार वरदान पानेंसे उन्मत्तहो इन महा बलवान दोनों वीरोंनें देवताओंकी बड़ीभारी सेनाको मथकर ॥ ३ ॥ अमृत पान कियाथा; इस कारण यह दोनों क्रोध करके अवश्य रथ और हस्ति समस्त लंका पुरीका नाश करनेंको समर्थ हैं ॥ ४ ॥ इस कारण और सब वानरोंकी बात तौ दूर रहे हम अकेले ही घोर पराक्रमसे महाबलवान राक्षसोंके सहित समस्त लंका और दुरात्मा रावणका संहार कर सकते हैं ॥ ५ ॥ तुम सरीखे बलवान और वानर वीर गणोंके साथ मिलकर जो हम इस कार्यको पूराकरैं तौ इसमें विचित्रताही क्याहै? ॥ ६ ॥ तुम लोगतौ सबही विजयकी इच्छा किये और शक्ति युक्तहो तुम करकै तौ लंका जीतही लीजायगी परन्तु हमने तौ यह सुना है कि केवल एक पवनकुमार हनुमानजीके ही बलसे लंका भस्म होगई है ॥ ७ ॥ जो कुछहो तुम सबही विख्यात बल पौरुषवाले हो इस कारणही सीताजीको देखाहै परन्तु

साथनहीं लेते आये ऐसा श्रीरामचंद्रजीके निकट निवेदन करना तुम्हारे लिये हम युक्ति युक्त नहीं विचारते ॥८॥ हे वानर श्रेष्ठ गण क्या तडकने में क्या पराक्रम में वरन किसी वातमें भी सुरासुर सहित समस्त लोकोंमें कोई पुरुष तुम्हारी समान नहींहै ॥ ९ ॥ इसलिये समस्त राक्षसोंके साथ लंकाको जीत रावणको संहार और सीताजीको ले कार्य सिद्ध कर हर्षितचित्तसे फिर श्रीरामचंद्रजीके पास चले ॥१०॥ हनुमानजीने बहुत राक्षसोंको मारही डाला अब बचे बचायोंको मारकर एक जानकीजीको यहांपर ले आनेके सिवाय और कौनसा कार्य हमको वाकी रहाहै? ॥ ११ ॥ हे वानर श्रेष्ठ गण! इसलिये हम लोग जानकीजीको ले श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके पास पहुँचाय देंगे। अब उन किष्किन्धाके रहनेंवाले समस्त वानरोंको दुःख भागी करनेंकी क्या आवश्यकताहै? ॥१२॥ इस कारण से हमही लंकामें जाय प्रधान २ राक्षसोंका संहार करके फिर राम लक्ष्मण और सुग्रीवजीके दर्शन करेंगे ॥ १३ ॥ जब अंगदजीने ऐसा विचार किया तौ कार्यके जाननें वाले वानरश्रेष्ठ जाम्बवानजी परम प्रसन्न होकर अर्थ युक्त वचन कहनें लगे ॥ १४ ॥ हेमहाबुद्धे! इस प्रकारकी बुद्धि युक्ति सिद्ध नहीं है क्योंकि हम तौ दाक्षिण दिशामें जानकीके खोजनें हीको केवल भेजे गयेहैं ॥ १५ ॥ कुछ सीताजीको संगले आनेके लिये न कपिराज सुग्रीवजीनें न बुद्धिमान श्रीरामचंद्रजीनें हमको आज्ञादी है। सो यदि हम जानकीजीका उद्धार करके ले भीगये तौ यह कार्य किसी प्रकार श्रीरामचंद्रजीको नरुचैगा ॥ १६ ॥ कारणकि उन राजशार्दूल श्रीरामचंद्रजीने अपनी कुल मर्यादाके अनुसार यह प्रतिज्ञा की है कि हम स्वयंही सीताका उद्धार करेंगे ॥ १७ ॥ सो वह किस प्रकारसे उन मुख्य वानरोंके आगेकी हुई उस प्रतिज्ञाको मिथ्या करेंगे इस कारण सीताजीके लेजानेपर जबकि वह न प्रसन्न होंगे फिर भला वह निष्फल कार्यके करनेंकी क्या आवश्यकताहै ॥ १८ ॥ हे वानरश्रेष्ठो! बल वीर्यका दिखलाना सब वृथा जायगा इसकारण हम सबको वहां चलना चाहिये जहांकि श्रीरामचंद्रजी हैं; और वहां चलकर महा तेजमान सुग्रीवजीसे इस कार्य को निवेदन करें ॥ १९ ॥

तिराजपुत्र ॥ यथातुरामस्यमतिर्निवि
ष्टातथाभवान्पश्यतुकार्यसिद्धिम् ॥ २० ॥

वह जैसा कुछ कहेंगे वैसाही कियाजायगा हे राजपुत्र! आपने जो विचार किया इसको हमभी भली भांति मानतेहैं तथापि श्रीरामचंद्रजीनें जो संकल्प कियाहै उसके अनुसार उनके कार्यकी सिद्धि तौ देखना चाहिये ॥ २० ॥ इ० श्रीम० वा० आ० सुं० षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥

ततोजांबवतोवाक्यमगृह्णंतवनौकसः ॥
अंगदप्रमुखावीराहनूमांश्चमहाकपिः ॥ १ ॥

अंगदादि वीर वानर लोगोंने और महा कपि हनुमानजीने जाम्बवानजीके इन वचनोंको ग्रहण किया ॥१॥ तिसके पीछे वह वानर श्रेष्ठ गण हनुमानजी को आगे करके प्रसन्न होकर महेन्द्राचलसे उछल छलांग भर२कर चलने लगे ॥२॥ मेरु मन्दरकी समान वह बडे आकारवाले समस्त वानर गण महा मतवाले हाथीकी समान मानो आकाशमंडलको व्याप्त करतेचले ॥३॥ और सिद्ध इत्यादि प्राणियोंसे सन्मानित होकर आत्मज्ञान सम्पन्न महा बली आति वेगवान हनुमानको मानो दृष्टिसें निहारते हुएसे चले जातेथे ॥ ४ ॥ वह सबही वानरगण श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि और हनुमानजीके वह अपने यशलाभ करनेंको संकल्प किये हुएथे सीताजीके देखने और लंकाके भस्म होंनेसे सबकेही मनोरथ पूर्ण और मन उत्साह युक्त हो रहेथे ॥ ५ ॥ सबही प्रिय संवाद देनेके लिये तैयारथे सबही संग्राम करनेंके लिये उत्साही और सबही हर्षित अंतःकरण युक्त हो रावणसे श्रीरामचंद्रजीका वैर लेनेंको संकल्प ठान बैठेथे ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे वह मनस्वी वानरवृन्द आकाशमें उछलते कूदते गमन करते हुए नंदन-वनकी समान सैकड़ों हजारों वृक्षोंसे शोभित ॥ ७ ॥ मधुवन नामक सुग्रीवजीसे रखाये जाते हुए वनमें, पहुँचे,इस वनमें कोई जीव नहीं जानें पाते यह सबका मनमोहनकारीथा ॥ ८ ॥ अधिक करके महात्मा वानर राज सुग्रीवजीके मामा दधिमुख नामक महावीर वानर सदा इस वनकी रक्षा करतेथे ॥ ९ ॥ वानरेन्द्र सुग्रीवजीके वनमें पहुँचकर सबही वानर

गण बहुत हर्षित हुए ॥ १० ॥ मधुयुक्त उस अति रमणीक वनको देख सब वानर गणोंनें अत्यन्त प्रसन्नहो उसके मधुर फल खानें और वहां का मधुपान करनेंके लिये अंगदजीसे पूछा ॥ ११ ॥ तिसके पीछे जाम्बवान् आदि वानर श्रेष्ठोंके वचन मान उनका आदर कर कुमार अंगदजीनें वहांके फल खानें और मधुपान करनेंके लिये वानरोंको आज्ञादी ॥ १२ ॥ बुद्धिमान वालिकुमार अंगदजीकी आज्ञा पाय समस्त वानर गण ऐसे वृक्षों पर चढ़ गये कि जिनपर भ्रमर गुंजार कर रहेथे ॥ १३ ॥ उन पर चढ़ सुगन्धि युक्त फल मूल खाय सबही अत्यन्त हर्षितहो मधु पीपी कर मतवाले होगये ॥ १४ ॥ मधुपान करकै सबही वानरगण सम्मत कर मुदित मनसे नांचने लगे ॥ १५ ॥ तिसके पीछे कोई नांचनें लगे, कोई प्रणाम करनें लगे, कोई कुछ पढनें लगे, कोई इधर उधर घूमनें लगे, कोई ऊपरको उछलनें लगे. व कोई २ योंही निरर्थक वचन कहनें लगे ॥१६॥ कोई एक दूसरेको चिपटानें लगे; और किसी २ नें परस्पर लड़ाई झगड़ा आरंभ किया, कोई २ एक वृक्षसे दूसरे पर कूदनें, और कोई २ वृक्षों परसे पृथ्वी पर कूदने लगे ॥ १७ ॥ और कोई २ पृथ्वीसे उछलकर अति वेगके साथ बड़ेभारी २ वृक्षोंकी फुलंचियों पर चढ़नें लगे, कोई गानें लगे, कोई हँसी ठट्ठा करकै किसीके पास जानें लगे, कोई रोदन करनें लगे, कोई किसीके रोनेंकी नकल करते हुए ॥ १८ ॥ उसकी ओरको दौड़े, और कोई २ किसीको पीड़ा देनें लगे, और कोई २ किसीको अतिशय व्यथित करते हुए उसके निकट जानें लगे इस प्रकारसे समस्त वानर गण समाकुल होगये, उस सैनामें ऐसा कोई वानर नहींथा जो मत्त या अतिशय मत्त न हुआहो ॥ १९ ॥ तिसके पीछे समस्त मधु वनके फल खाये हुए और वृक्षोंके पत्तेतक नष्ट हुए देखकर दधिमुख क्रोधित हो उन वानरोंको रोकनें लगा परन्तु मदमत्त वानरोंने शान्त न होकर ॥ २० ॥ उस वनके रखवालेको बुरा भला कहना आरंभ किया, यह देखकर अति तेजस्वी वनरक्षक, प्रधान वानर वीर दधिमुख फिर वानर लोगोंके उपद्रवसे वनके रक्षा करनेंकी मति कर ॥ २१ ॥ किसी २ वानरको भय रहितहो कठोर वचन कहे, किसी २ को बराबर लातोंकी मारदी, किसीके साथ क्लेश किया, और किसी २ को मीठे २

वचनोंसे समझानें बुझानें लगा ॥ २२ ॥ परन्तु मदसे मतवाले होनेंके कारण वानरोंका वेग रोकनेंको अयोग्य होगया। तब दधिमुखनें बल पूर्वक निवारण किया तब सब वानर लोगोंनें इसके पीड़न करनेंसे कुछ राजदंडभी न होगा क्योंकि हम संवाद ही ऐसा लायेहैं, यह विचार सब मिलकर निःशंक चित्तसे दधिमुखको इधर उधरसे पकड़कर घसीटनें लगे ॥ २३ ॥

नखैस्तुदंतोदशनैर्दंशंतस्तलैश्चपादैश्चस
मापयंतः ॥ मदात्कपिंतेकपयःसमं
तान्महावनंनिर्विषयंचचक्रुः ॥ २४ ॥

नखोंसे नोंच नांच, दांतोंसे काट कूट, लातें लगाय, पृथ्वीमें गिराय, मृत प्राय करके मतवाले पनसे विशाल मधुवनको एक वारही नष्ट कर डाला ॥ २४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ० सुं०एकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥

द्वाषष्टितमःसर्गः

तानुवाचहरिश्रेष्ठोहनूमान्वानरर्षभः ॥
अव्यग्रमनसोयूयंमधुसेवतवानराः ॥ १ ॥

यह देखकर वानर श्रेष्ठ हनुमानजी उन सब वानरोंसे बोलेकि हे वानर गण! तुम लोग निःशंक चित्तहोकर मधुपान करो॥ १ ॥ जोकि इस मधु- पान करनें या फल खानेंमें तुम्हारा विरोध करेंगे हम स्वयं उनको रोकेंगे; वानरश्रेष्ठ अंगदजी हनुमानजीके यह वचन सुन ॥ २ ॥ प्रसन्न चित्तसे उत्तर देते हुए हे वानरगणो! तुम प्रसन्नतासे मधुपानकरो क्योंकि हनु- मानजी कार्य को सिद्ध करकै आयेहैं ॥ ३ ॥ अकृत कार्य होंने परभी जबकि इनके वचनोंका पालन करना अवश्य कर्तव्यहै; तब इस प्रकारके न्याय युक्त वचनोंको पालन करनें व कुछ अधिक कहनेंकी आवश्यकता नहीं ॥ ४ ॥ बड़े २ वानरगण कुमार अंगदजीके मुखसे यह वचन सुन अति प्रफुल्लित होकर वारंवार धन्य २ कहकर उनकी पूजा करते हुए॥५॥ तिसके पीछे नदी वेगसे जिसप्रकार वृक्षोंमें प्रवेश करतीहै, वैसेही उन वा- नरोंने मधुवनमे प्रवेश करकै बलात्कारसे वनके रखवालेको पकड़ ॥ ६ ॥

जानकीजीको देखने और उनका वृत्तान्त श्रवण करनेंसे और अंगदजीकी आज्ञापानेंसे वानरलोक भयरहितहो मधु पीपीकर सुरस फल भोजन करनेलगे ॥७॥ इस प्रकारसे सवहीनें मधु पीकर मत्तहो. जो रक्षक निवारण करनें आयेथे उन सवको भलीभांति मार लगाय धमकानें डरानें लगे ॥ ८ ॥ वे वानर हाथोंकी अंजलियोंमें भर २ कर मधुपान करनें लगे। कोई २ हर्षित चित्तसे झुन्डके झुन्ड मिलकर ॥ ९ ॥ ढेर २ मधु नष्ट करनें लगे कोई भक्षण करने लगे कोई पीनें लगे, कोई २ इधर उधर फेंकनें लगे ॥ १० ॥ कोई २ मधुपीनेंसे अत्यन्त उन्मत्त होकर मधुके छत्तोंसे एक दूसरेको मारनेंलगे और अनेक वृक्षोंके डुग्गोंको पकड़े हुए झूलतेथे ॥११॥ कोई २ मधुपान करनेंसे अतिशय ग्लानिके मारे पत्तोंको बिछायकर उस पर शयन करनें लगे,कोई २ मधुपान करकै मत्त और हर्षित होकर॥१२॥ उन्मत्तकी समान परस्पर लिपट झपटकरनें लगे; कोई २ खसकते कोई २ इधर उधर मतवालापन करते. कोई हर्षितहो पक्षियोंकी समान शब्द करते ॥ १३ ॥कोई २ मधुपान करनेंसे मत्तहो पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं कोई २ ढिठाईसे किसी दूसरेको देखकर हँसी करने लगे और कोई कुछ और ही करतेथे ॥ १४ ॥ कोई २ रोनें लगे, कोई २ ऐसा कार्य करनें लगे जो दूसरेकी समझमें न आवै. कोई २ वाक्यका यथार्थ अर्थ परित्याग करकै अपरार्थ ग्रहणकर लेते वहां पर जोकि रखवाले और दधिमुखकेनौकर चाकरथे ॥ १५ ॥ उनको इन मतवाले भयंकराकार वीर वानर लोगोंनें चरण पकड २ कर फेंक दिया, इस कारण वह रखवाले और नौकर चाकर भीत होकर दशोंदिशाओंको भाग गये ॥ १६ ॥ उन सवनें अतिशय उत्कंठित मनसे दधिमुखके पास गमन करकै कहाकि हनुमानजीकी सम्मतिसे वानर लोगोंनें वल पूर्वक मधुवनका नाश कर दिया ॥ १७ ॥और हम लोगोंके पांव पकड़ २ कर उठाय २ आकाशमें फेंक दिया ॥ १८ ॥ दधिमुख वानरोंके वचन सुन और मधुवनको नष्ट हुआ देख क्रोधकर उन रखवालोंको समझानें बुझानें लगा ॥ १९ ॥ कि तुम लोग आगे २ चलो और हमभी तुम्हारे पीछेही पीछे आयकर वल सहित उन वानरोंको रोकेंगे; फिर देखेंगे कि वह किस प्रकार मधुपान करते और फलोंको खाते हैं ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ गण दधिमुखके यह वचन सुनकर फिर उस-

के सहित मधुवनकी ओर चले ॥ २१ ॥ इन वानरोंमेंसे दधिमुख एक बडे भारी वृक्षको उठायकर अतिवेगसे अपने साथियोंके सहित मधुवन वाले वानरोंपर धाया ॥ २२ ॥ तिसके पीछे शिला, पाषाण और वृक्षोंको ग्रहण करकै रोषमें भर सबही वहां जाय पहुँचे जहां हनुमान इत्यादि वानर गण टिके हुएथे ॥ २३ ॥ वहां गमन करकै वह लोग क्रोधके मारे दातोंसे होठोंको चबाय २ वारंवार तिरस्कार करकै बल सहित उन फल खाते मधुपीते वानरोंको रोकने लगे ॥ २४ ॥ तिसके पीछे हनुमान इत्यादि कपि कुंजर गण दधिमुखको क्रोधित देखकर अति वेगसे उसके सन्मुख दौडे ॥ २५ ॥ और महा बलवान् महाबाहु दधिमुख वृक्ष हाथमें लिये अति वेगसे जैसेही आयाकि वैसेही अंगदजीनें क्रोधकर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये॥२६॥वह मदपीनेंसे ज्ञान रहित होरहेथे; इस कारण दधिमुखको श्रेष्ठ विचारकर अपना बड़ा जानकरभी अंगदजीनें उसके ऊपर कृपानकी, वरन उसको पकडकर बल पूर्वक पृथ्वीपर पटक दिया ॥२७॥ पटकतेही दधिमुखके हाथ, जांघ, मुख आदि सब अंग टूट गये । महावीर दधिमुख लोहूलुहानहो एक मुहूर्ततक विह्वल और मूर्छित होगया ॥ २८ ॥ तिसके पीछे वानरवीर दधिमुख कुछ एक सावधानहो उन वानरोंसे किसीप्रकार अपनी जान बचाकर चुपकेसे एकान्तमें आय निकट आये हुए अपने नौकरों चाकरोंसें बोले ॥ २९ ॥ कि भाई जहांपर हमारे राजा विपुलग्रीव सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके सहित विराजमानहैं आओ हम सब जन उसी स्थानपर चलें ॥ ३० ॥ फिर उन राजाके निकट पहुँचकर अंगदजीके समस्त दोष हम उनसे निवेदन करेंगे; वह क्रोध परायण राजा यह वृत्तान्त श्रवण करतेही समस्त वानरोंका नाश कर देंगे ॥ ३१ ॥ क्योंकि मनोहर मधुवन महात्मा सुग्रीवजीको अत्यन्त प्याराहै अधिक करकै इस वनको उनके बापदादे, परदादेतक भोग कर गयेहैं देवता लोगभी तौ इस वनकी सीमापर नहीं आ सकते, फिर दूसरेकी तौ बातही क्याहै ॥ ३२ ॥ राजा सुग्रीवजी इन मधुके लालची. मरणके निकट पहुंचे वानर लोगोंको दंड देकर बन्धु बान्धवोंके सहित मार डालेंगे ॥ ३३ ॥ विशेष करकै राजाके न माननेंवाले यह दुरात्मा वानर अवश्यही मारडालनेंके योग्यहैं, जब यह मारडाले जांयगे, तब हमारा यह सबरसे उत्पन्न हुआ क्रोध सार्थक होजाय

गा ॥ ३४ ॥ महाबलवान दधिमुख मधुवनके रखवालोंसे ऐसा कहकर त-तक्षण उन नौकर चाकरोंके सहित आकाशमें कूद झटपट सुग्रीवजीके पास चला ॥ ३५ और सूर्यके पुत्र बुद्धिमान सुग्रीवजी जहांपर विराजमान होरहेथे एक पलक मारतेही वहांपर पहुँच ॥ ३६ ॥ श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी, व सुग्रीवजीके दर्शन कर एक सार भूमिको निहार दधिमुख आकाससे पृथ्वीमें उतरा ॥ ३७ ॥ मधुवनके रखवालोंका जमादार महावीर दधिमुख इसप्रकारसे उन सब वानरोंके साथ नीचे उतरकर ॥ ३८ ॥

सदीनवदनोभूत्वाकृत्वाशिरसिचांजलिम् ॥
सुग्रीवस्याशुतोमूर्ध्नाचरणौप्रत्यपीडयत् ॥ ३९ ॥

शिरसे हाथ जोड़े दीनवदन किये तिसी समय सुग्रीवजीके दोनों चरणोंपर गिरा ॥३९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

ततोमूर्ध्नानिपतितंवानरंवानरर्षभः ॥
दृष्ट्वैवोद्विग्नहृदयोवाक्यमेतदुवाचह ॥ १ ॥

दधिमुखको शिर झुकाये चरणोंपर पड़े हुए देखकर वानरराज सुग्रीवजीनें उत्कंठित चित्त होकर कहनें लगे ॥ १ ॥ उठो! उठो! आप किस-कारणसे हमारे चरणोंमें गिरे? सत्य२कहिये हम आपको अभय देतेहैं ॥२॥ आप किसके भयसे भीत होकर यहांपर आयेहैं? जिसका अनुष्ठान करनेंसे सब प्रकारसे मंगल होनेकी संभावनाहै, आप उसकाही वर्णन कीजिये। हे वानर प्रधान! मधुवन पर तो किसी प्रकारकी विपद नहीं आई, सो सब वृत्तान्त सुननेंकी हमारी इच्छा होतीहै ॥ ३ ॥ महात्मा सुग्रीवजीनें जब इस प्रकारसे धीरज बँधाया तब महाप्राज्ञ दधिमुख उनके चरणोंपरसे उठकर बोला ॥ ४ ॥ हेराजन्! आपनें, या वालीनें, या ऋक्षराजनें पहले जिस वनको कभी किसीको इच्छानुसार भोग करनें नहीं दिया, हनुमान, इत्यादि वानरोंनें उसही मधुवनको एक वारही नष्ट कर डाला ॥ ५ ॥ हमनें इन समस्त वनचारियोंके साथ उनको निवारण किया परन्तु उन वानरोंनें हमारा निरादर करकै इच्छानुसार फल खाये और मधुपान किया ॥६॥

हे देव! जब वह उस मधुवनका नाश करनें लगे तब इन समस्त वनपालोंने उनको रोकाथा परन्तु उन्होंनें कुछ कहा न मानकर अपनी इच्छानुसार सब कुछ खाया पिया ॥ ७ ॥ उन लोगोंनें हम सबका निरादर कर मन मानें फल खाये, मधु पिया, बचे बचाये फल और मधुको फेंका, फिर निवारण करनेंपर भ्रुकुटि टेढी कर दिखाई ॥ ८ ॥ जब इस प्रकारसे अपमान हुआ तौ यह सब अत्यन्त क्रोधित हुए और उन वानर श्रेष्ठोंनेंभी क्रोध करके इन्हें रोका मारा पीटा व यथोचित अपमान किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर महाक्रोध कर झकझोर इन दीनोंको उपवनसे निकाल कर पीछेसे लाल नेत्र दिखाय धमकाया ॥ १० ॥ और किसीको चनकटे लगाये, किसी२को जांघोंसे मारा, व अनेकों को उठाय आकाशमें फेंक दिया ॥ ११ ॥ आप सबके स्वामीके रहते हुएभी यह सब वीर इस प्रकारसे मारे पीटे गयेहैं, और वह समस्त वानरभी मधुवनमें मन माना खाय पी रहेहैं ॥ १२ ॥ दधिमुख वानर सुग्रीवजीके निकट इस प्रकारसे समस्त वृत्तान्त वर्णन कर रहेथे कि इतनेंमें परवीर घाती प्राज्ञ लक्ष्मणजी सुग्रीवजीसे बूझतें हुए ॥ १३ ॥ हे राजन्! यह वनपाल वानर किस कारणसे तुम्हारे निकट आयाहै? और किस प्रयोजनको दुःखित भावसे यह निवेदन कर रहाहै ॥ १४ ॥ जब महात्मा लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे वचन कहकर सुग्रीवजीसे बूझा तौ वाक्य विशारद सुग्रीवजी उनको उत्तर देते हुए ॥ १५ ॥ हे आर्य ! वानर वीर दधिमुखनें हमसे यह कहा कि अंगदादि महाबलवान वानर लोगोंने मधुवनके फल खाय २ वहांका मधु पी डाला ॥ १६ ॥ सो ऐसा कहनेंसे जान पड़ताहै कि वह लोग कार्य कर आये सिद्ध न हुआ होता तो कदापि वह ऐसा व्यतिक्रम न करते जब कि वह लोग वनके फल मूल खाय मधु पी रहेहैं तब निश्चयही उन्होंनें कार्य सिद्ध कर लिया ॥ १७ ॥ और इसीलिये इस बलशाली दधिमुखका निरादर करकै उनलोगोंने रक्षकोंके ऊपर जांघोंका प्रहार किया जब कि यह लोग उन्हें रोकतेथे ॥ १८ ॥ यह बलवान दधिमुख नाम वानर मधुवनके व हमारे स्वामीहैं, हमने स्वयं इनको वहां स्थापित कियाहै और किसीनें नहीं वरन हनुमानजीनेंही देवी जानकीजीको देखाहै ॥ १९ ॥ इस बातमें कोईभी संदेह नहीं है। कारण कि हनुमानजीके सिवाय और कोईभी इस कार्यमें कारण नहीं होसकता

क्योंकि कार्यकी सिद्धि और बुद्धि हनुमानजीमें हीहैं व्यवसाय, वीर्य, और पंडिताई यह सबही गुण एक वानर श्रेष्ठ हनुमानजीमेंहीहैं; तिसपर जिस समाजके प्रेरक जाम्बवान् व अंगदजी हैं ॥ २१ ॥ और अधिष्ठाता हनुमानजी हैं; वहांपर किसी कार्यका विपरीत आचरण नहीं होसकता। इसी कारण अंगदादि वीरोंनें हर्षित होकर मधुवनका विध्वंस किया ॥ २२ ॥ हम जानते हैं कि दक्षिण दिशाको जो वानरश्रेष्ठ गयेथे उन्होंनेंही उस दिशाको खोज जानकीजीका खोज लगाय उस वनके फलादि खाय उसको विध्वंश किया ॥ २३ ॥ उन वानरोंनें समस्त वनका विनाश किया, फल मधु खा पीकर वनके रखवालोंको लातोंके आघातोंसे मारडाला ॥ २४ ॥ दधिमुख नामक प्रख्यातपराक्रम मधुरभाषी यह वानर यही वृत्तान्त कहनेंके अर्थ हमारे पास आयाहै ॥ २५ ॥ हे महाबाहु सुमित्रानंदन ! जबकि उन लोगोंनें आतेही मधुपान करना आरंभ कियाहै तब निश्चयही यह वानर सीताजीका पता लगा आये, सो वह अतिशय यशके भागीहैं ॥ २६ ॥ इसलिये बिना सीताजीके देखे एकभी वह लोग देवतासे प्राप्त हुआ हमारा यह दिव्य मधुवन कभी नहीं उजाड़ते २७ परम यशस्वी धर्मात्मा राम लक्ष्मणजी सुग्रीवजीके मुखसे निकले हुए यह शुभकारी वचन सुन बहुत ॥ २८ ॥ हर्षित हुए, और वारंवार प्रसन्न चित्त हुए, दधिमुखके वचन सुन हर्षित हो सुग्रीवजी ॥ २९ ॥ दधिमुख वन पालसे फिर बोले कि हम सन्तुष्टहैं जो इतना बड़ा कार्य करकै उन्होंने मधुवनको उजाड़कर उसके फल खाये व मधु पिया ॥ ३० ॥ इस्से उन कार्य किये हुए वानर लोगोंका किया हुआ वनका उजाड़ना, मारना, पीटना, भक्षण, पान, और अपमानभी क्षमा करना पड़ेगा । इसलिये आप शीघ्र वहां जायकर मधुवनकी रक्षाकरो और हनुमानादि समस्तही वानर लोगोंको अति शीघ्र हमारे पास भेज दो ॥ ३१ ॥ हम श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीके साथ मिलकर उनसे यह वृत्तान्त स्वयंही बूझेंगे, कि उन लोगोंनें जानकीजीके देखनेंका यत्न किया, इन सब बातोंके सुन्ने की हमें बहुत इच्छा हुईहै ॥ ३२ ॥

प्रीतिस्फीताक्षौसंप्रहृष्टौकुमारौदृष्ट्वासिद्धा

थौवानराणांचराजा ॥ अंगैःप्रहृष्टैःकार्यसिद्धिं विदित्वाबाह्वोरासन्नामतिमात्रंननंद ॥ ३३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी यह वार्त्ता सुनकर अतिशय पुलकित हुए और प्रीतिके मारे उनके दोनों नेत्र फड़कनें लगे और इसी समय वानर राज सुग्रीवजीकेभी सर्वाङ्गमें रोमाञ्च होआया, इन शुभ लक्षणोंको देख कार्यकी सिद्धि विचार सुग्रीवजी अति पुलकित हुए * ॥ ३३ ॥

इ० श्रीम० वा० आ० सुं० त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तुहृष्टोदधिमुखःकपिः ॥ राघवंलक्ष्मणंचैवसुग्रीवंचाभ्यवादयत् ॥ १ ॥

सुग्रीवजीके वचन सुन दधिमुख हर्षितहो श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजी, और सुग्रीवजीको प्रणाम करके, उन समस्त शूरता सम्पन्न वानरोंके साथ आकाशमार्गको उछला ॥ १ ॥ २ ॥ वह जिस मार्गसे होकर आयाथा, उसीमार्गमें शीघ्रतासे गमन करके आकाश मार्गसे पृथ्वी पर कूदकर मधुवनमें प्रवेश करता हुआ॥३॥वहां प्रवेश करके उसनें देखाकि वह उद्धत समस्त वानर यूथपति मधुका परिणाम भूत मलमूत्र करते हुए हर्षित चित्तसे समय बिताय रहेथे ॥४॥ वीर दधिमुख उन वानरोंके निकट जाय शिरसे हाथ जोड़कर हर्षित चित्तसे यह मधुर वचन बोला ॥ ५ ॥ हे सौम्य इन वनपाल वानर लोगोंनें न जानकर रोषमें भरकर आपलोगोंको रोकाहै, सो इस रोकनेसे आप क्रोध न कीजिये ॥ ६ ॥ आप बहुत दूरसे आयकर इस समय थक गये होंगे; विशेष करके आप हमारे युवराजहैं और इस वनके स्वामीहैं, इसलिये आनंद सहित अपना मधुपियो व फल खाओ ॥ ७ ॥ हे महाबलवान्! हमारा यह अज्ञानसे किया हुआ रोष आपको क्षमा करना पड़ेगा। आपके पिता वालि जिस प्रकार पहले वानरोंके राजाथे ॥ ८ ॥ इस समय वैसेही सुग्रीवजी व आप वानरोंके स्वामीहैं। हे वानरश्रेष्ठ! और कोई वानरोंका राजा नहींहै। हमनें आपके जानक... कि हनुम...

* दोहा ॥ सुनत आगमन कपिनको, रघुपति करुणा ऐन ॥ मन प्रसन्न तनु पुलक हो, भरि आये जलनैन, ।

चचा सुग्रीवजीके निकट गमन करके ॥ ९ ॥ आपके सबके आनेंका संवाद निवेदन कियाकि मधुवनमें सब अंगदादि आगये सो इन सब वानरोंके साथ आपका आना श्रवणकर ॥१०॥ मधुवनके उजाड होनेंको सुनकर कुछ कोप न करते हुए और बहुत प्रसन्नहो हर्षित चित्तसे तुम्हारे चचा वानर राज सुग्रीवजीनें हमसे कहा ॥ ११ ॥ कि, बडी शीघ्रतासे उन सब वानरोंको यहांपर भेज दो । अंगदजी दधिमुखके यह मधुर वचन सुनकर ॥ १२ ॥ सब वीर वानरोंको पुकार कर यह वचन बोले कारणकि वचन बोलनेंमें बडे चतुरथे, अंगदजी बोले हे वानर यूथपगण ! हमको शंका होतीहै कि यह वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीनें सुनलियाहै ॥ १३ ॥ जबकि दधिमुख बडे हर्षसे यह वचन कह रहाहै, तब हमनें जानाकि यह वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीनें सुनलियाहै इस कारण अब हमारा यहां पर अधिक देर रहना उचित नहीं है ॥ १४ ॥ देखो ! आप सबनें जितना चाहा उतना मधुभी पान कर लियाहै, सो अब तौ कुछ बचाभी नहीं है, इस कारण इस समय सुग्रीवजीके निकट जानाही कर्त्तव्यहै॥१५॥आप सब वानरश्रेष्ठ मिलकर जैसा हमसे कहैंगे वैसाही करैंगे। कारण कि कार्य करनेंके विषयमें हम आप लोगोंके आधीनहैं ॥१६॥ यद्यपि हम युवराजहैं, तथापि हममें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आप लोगोंको आज्ञा देसकें, कारणकि आप सब कार्य किये हुएहैं, सो आप लोगोंको बलसे पीडा पहुंचाना उचित नहीं है ॥ १७ ॥ वनवासी वानर गण युवराज अंगदजीके यह वचन सुनकर हर्षित चित्तसे उत्तर देते हुए ॥ १८ ॥ हे राजन् ! प्रभु होकर कौन पुरुष ऐसे दीन वचन कह सकताहै। वरन प्रभु तौ ऐश्वर्यके मदसे मत्त होकर यह कहा करताहै कि जो कुछहैं सो हमहैं ॥ १९ ॥ आपकेही मुखसे निकल कर ऐसे वचन शोभा पातेहैं और कोई ऐसे वचन कहनेंके योग्य नहीं आप जिस प्रकारके अतिनम्र और विनयीहैं, सो जिस्से आगेको आप अवश्यही अपने भाग्यकी उन्नति देखेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २० ॥ इस समय वानर वीरोंके राजा महात्मा सुग्रीवजी जहां विराजमानहैं वहां जानेंके लिये हम सबही अत्यन्त उत्कंठित हो रहेहैं ॥ २१ ॥ परन्तु आपके निकट हम सत्यही सत्य कहतेहैं कि विना आपकी आज्ञाके वानर लोग कहींको एक पग चलनेंकीभी सा-

मर्थ्य नहीं रखते ॥ २२ ॥ जब उन वानरोंनें ऐसा कहा तौ अंगदजी उनको उत्तर देते हुए कि बहुत अच्छा चलो हम सबही लोग यहांसे चलें यह कह महाबलवान् सब वानर आकाशको उछले ॥ २३ ॥ अंगदादि वानरोंको आकाशमें कूदते देख. और दूसरेभी सब वानर कलसे फेंके हुए पत्थरके समान आकाश मंडलको ढककर उनके पीछे २ चले ॥२४॥ इस प्रकार वह सब वानर अंगद व हनुमानजीको आगेकर अतिवेगसे सहसा आकाश मार्गमें चले ॥ २५ ॥ पवनसे चलायमान बादलोंके झुन्डकी समान अति घोर गर्जन करते २ वह सब वानर किष्किन्धाके निकट पहुँचे अंगदजीको आते देखकर वानरोंके राजा सुग्रीवजी ॥ २६ ॥ शोक संतप्त चित्त कमल लोचन श्रीरामचंद्रजीसे बोले. कि आपका मंगल हो.आप सावधान हूजिये निःसंदेह देवी जानकीजीका पता लग गया॥२७॥ हे शुभदर्शन! कारण कि हमारा नियत किया समय बीत गयाहै; सो बिना देवी जानकीजीको देखे यह लोग कभी यहां पर नहीं आय सकतेथे। और अंगदजीके हर्ष सहित शब्द करनेसे भी भलीभांति ज्ञात होताहै ॥ २८ ॥ कि जो कार्य सिद्ध न होता तौ वानर श्रेष्ठ युवराज महाबाहु अंगद कभी हमारे निकट नहीं आय सकते थे ॥ २९ ॥ जो वानर लोग बिना कार्य सिद्ध किये ऐसे कार्यको करते तौ अंगदजी का मन मलीन, भ्रान्त और उदास होता इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ ३० ॥ और अधिक करकै जानकीजीके बिना देखे हमारे पुरुषाओं करकै रक्षित पिता पितामहादिकोंका प्राप्त यह मधुवन वह लोग कभी न उजाड़ते ॥ ३१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! कौशल्याजी आपको उत्पन्न करकै सत्पुत्र वती हुई हैं आप सावधान हूजिये इसमें कोई सन्देह नहीं हनुमान जानकीजीको देख आये ॥ ३२ ॥ हनुमानजीनेही जानकीजीको देखाहै. और किसीनें नहीं; हनुमानजीके समान दूसरा कोई ऐसे कार्यके साधन करनेका हेतु नहीं हो सकता कारणकि हनुमानजीमें ही बुद्धि व इस विषयकी सिद्धिहै ॥ ३३ ॥ व्यवसाय शूरता, और पंडिताई यह समस्तही गुण हनुमानजीमेंही विराजमानहैं; तिसपर जहां जाम्बवान् अंगद कार्यकी प्रेरणा करानेंवाले ॥ ३४ ॥ और स्वयं हनुमानजी अधिष्ठाता उस कार्यके अन्यथा होनेकी किसी प्रकारकी संभावना नहीं है हे अमितविक्रम! इस समय आप कुछ चिन्ता न

कीजिये ॥ ३५ ॥ देखिये वानर लोग गर्वित और उद्यम युक्त होकर यहां पर आयेहैं, जो कार्य सिद्धि करकै न आये होते; तौ यह लोग कभी इतना आडम्बर न करते ॥ ३६ ॥ मधुके पान करनें और मधुवनके उजाड़ डालनेंसे हमनें जान लिया कि यह लोग कार्य सिद्धि कर आये। तिसके पीछे राजा सुग्रीवजीको आकाशमें आते हुए वानर गणोंका किलकिला शब्द सुनाई दिया ॥ ३७ ॥ वह वानर गण हनुमानजीके कार्य सिद्ध कर आनेंसे गर्वित होकर यह चिल्लाहट कर रहेथे तिस्से ऐसा जान पड़ाकि वह मानों कार्यकी सिद्धिका समाचार दे रहेहैं ॥ ३८ ॥ उन वानरोंका यह शब्द श्रवण करकै वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीनें हर्षित चित्त होकर अपनी पूंछ उठाकर घुमाई ॥ ३९ ॥ इस ओर वह सब वानर अंगद व हनुमानजीको आगे करकै श्रीरामचंद्रजीके दर्शनकी अभिलाषासे आगमन करनें लगे ॥ ४० ॥ तिसके पश्चात् अंगदादि वीर वानरगण ! अत्यन्तहर्षित और गर्वित होकर सुग्रीव और श्रीरामचंद्रजीके समीप आकाशसे उतरते हुए ॥ ४१ ॥ उन वानरोंमें महाबाहु हनुमानजीनें सबसे प्रथम शिर झुकाय प्रणामकर श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन किया कि जानकीजी अपने स्वभावकी रक्षा करती कुशल सहितहैं ॥ ४२ ॥ हनुमानजीके मुखसे, "जानकीजीको हमने देखा" यह मधुर अमृतोपम वचन सुनकर श्रीराम लक्ष्मण, दोनों महाराजकुमार परम हर्षित हुए ॥ ४३ ॥ तब पवनकुमार हनुमानजीको निश्चितार्थ जान परम प्रसन्नहो अधिक सन्मानके साथ सुग्रीवजीको लक्ष्मणजी देखने लगे ॥ ४४ ॥

प्रीत्याचपरमोपेतोराघवःपरवीरहा ॥
बहुमानेनमहताहनूमंतमवैक्षत ॥ ४५ ॥

परवीरघाती श्रीरामचंद्रजी भी परम प्रीति व अति आदर मानसे कपि श्रेष्ठ हनुमानजीको देखने लगे ॥ ४५ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०सुं० चतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥

ततःप्रस्रवणंशैलंतेगत्वाचित्रकाननम् ॥
प्रणम्याशिरसारामंलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे हनुमानादि वानर गण सबही विचित्र कानन युक्त प्रस्रवण पर्वत पर आय महाबली श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम ॥ १ ॥ व सुग्रीव जीको प्रणाम कर युवराज अंगदजीको आगेकर सीताजीका वृत्तान्त कहनें लगे ॥ २ ॥ यथाक्रमसे रावणके अंतःपुरमें सीताजीका रुद्ध होना. राक्षसियोंका उनको डराना. धमकाना और श्रीरामचंद्रजीके प्रति सीताजीका अचल अनुराग, और रावणनें सीताजीके मारनेंके लिये जो दो मासकी अवधि नियतकीहै ॥ ३ ॥ यह सब वृत्तान्त उन वानरोंनें श्रीरामचंद्रजीके निकट निवेदन किया वैदेहीजीकी कुशल सुनकर श्रीरामचंद्रजीनें उत्तर दिया ॥ ४ ॥ हे वानरगण! देवी जानकीजी कहां हैं? और वह देवी हमारे प्रति किसप्रकारका व्यवहार करतीहैं? सो तुम समस्त विस्तार सहित हमसे वर्णन करो ॥ ५ ॥ वानर लोगोंने श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सीताजीके वृत्तान्त जाननेंमें पंडित हनुमानजीको इस विषयका ठीकर समाचार कहनेंके लिये कहा ॥ ६ ॥ वचन बोलनेंमें चतुर पवनकुमार हनुमानजी शिर झुकाय सीता देवी और उनकी अधिष्ठित दक्षिण दिशा दोनोंको प्रणाम करके ॥ ७ ॥ जिस प्रकार जानकीजीका दर्शन कियाथा उसको वर्णन करने लगे । तिसके पीछे स्वयंही अपने तेजकी प्रभासे दीप्तिमान कांचन मंडित दिव्यमणि ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके हाथमें समर्पण कर हाथ जोड़ कर कहने लगे । कि हम सत योजन विस्तार वाला समुद्र नांघकर ॥ ९ ॥ जानकीजीको खोजते २ गमन करने लगे, वहांपर दुष्टात्मा रावणकी लंका नाम नगरी ॥ १० ॥ दक्षिण समुद्रके दक्षिण किनारे पर वस्तीहै वहां जायकर हमनें उस रावणके अंतःपुरमें देवी जानकीजीको देखा ॥ ११ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! वह जानकी आपमें ही चित्त लगाये प्राण धारे हुएहैं; राक्षसियें चारों ओरसे घेरकर उनको वारंवार डरा धमका रहीहैं ॥ १२ ॥ हे श्रीराम ! वनके बीच कुरूपिणी राक्षसियें ही उनकी रक्षा करतीहैं । उन जानकीजीनें सदासे सुख भोग कियाहै, परन्तु इस समय वह आपके विरहमें दारुण दुःख पाय रहीं हैं ॥ १३ ॥ रावणके अन्तःपुरमें रोकी जाकर निशाचरियोंसे रक्षितहो एक वेणी धारे व्याकुलहो सदाही आपका ध्यान किया करतीहैं ॥ १४ ॥ खुली पृथ्वीमें शयन करनेंसे विवर्णाङ्गीहो शरदऋतुके आगमनसे कमलिनीकी समान

जानकीजी होगई हैं, रावणकी ओर उनकी कुछभी प्रवृत्ति या मन नहीं लगा है, वह आपमेंही चित्त लगाये मरणमें बनाय निश्चय किये हुए हैं ॥ १५ ॥ हे पापरहित महाराज श्रीरामचंद्रजी ! इस प्रकार किसी भांति जानकीजीको हमनें खोज पाया, तत्पश्चात् हमनें इक्ष्वाकु वंशियोंका वर्णन किया ॥ १६ ॥ हे नरशार्दूल ! तब किसी प्रकारसे हमनें उनको विश्वास दिलाया, तिसके पीछे देवी जानकीजीसे वार्त्तालाप होनें पर यहांका समाचार उनसे कहा गया ॥ १७ ॥ इसी समय हमारे मुखसे आपकी व सुग्रीवजीकी परस्पर मित्रता होना सुन जानकीजी अत्यन्त प्रसन्न हुईं. आपमें सदा उनकी एकान्तिक भक्तिहै, व उनका पतिव्रतभी अचलहै ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! इस प्रकारकी अवस्थामें हमनें जानकीजीको देखाहै; वह जिस प्रकार कठोर तप करनेवालीहैं तैसेही आपके प्रति अतिशय भक्ति मतिहै ॥ १९ ॥ उन्होंने हमको चिह्न रूप यह मणि देकर कहाकि तुम चित्रकूटमें हुई उस काककी घटना ॥ २० ॥ कहकर व हेपवनकुमार ! यहां परभी जो कुछ तुमनें देखाहै वह समस्तही श्रीरामचंद्रजीसे कहना । व जिस प्रकार हमको देखाहै वहभी उन प्राणनाथसे कहना, ऐसा श्रीजानकीजीनें हमसे कहा ॥ २१ ॥ और यह भी कहाकि इस मणिकी रक्षा हम बड़े यत्नसे करती रहीं; इस प्रकारके वचन सुग्रीवजीके आगे हनुमानजीनें श्रीरामचंद्रजीसे कहे ॥ २२ ॥ जानकीजीनें यह भी कहाहै कि श्रीरामचंद्रजीको यह कांचन मणि देकर उनसे कहना कि हमनें इसकी रक्षा बड़े यत्नसे कीहै; और आपने हमारे माथे पर जो मैनशिलका तिलक कर दियाथा उसकी भी याद करनेंको आपसे कहाहै ॥ २३ ॥ उन्होंने यह भी कहाहै कि यह जो मणि हनुमानके हाथ भेजतीहैं तो जब हम बहुत कष्ट पातीथीं तब इस मणिकोही आपका स्वरूप जानकर अतुलानंद पातीथीं हे अनघ ! उन देवी जानकीजीनें फिर भी आपसे यह कहाहै ॥ २४ ॥ कि हे दशरथकुमार ! हम राक्षसोंके वशमें पड़ी हैं, हम केवल एक मासतक और जियेंगी, परन्तु एक मासके वीत जानेपर हम किसी प्रकार न जी सकेंगी ॥ २५ ॥ मृगीके समान प्रफुल्ल नेत्रवाली रावणके अंतःपुरमें रुकी हुई उन धर्मचारिणी दुर्बल गात वाली जानकीजीनें हमसे यह कहाहै ॥ २६ ॥ हे राघव ! जो हमारा

जाना हुआ था वह समस्तही हमनें आपसे कहा, इस समय सब प्रकारसे आपको समुद्र उतरनेंका उपाय करना चाहिये * ॥ २७ ॥

तौजाताश्वासौराजपुत्रौविदित्वातच्चाभि
ज्ञानंराघवायप्रदाय ॥ देव्याचाख्यातंसर्वमे
वानुपूर्व्याद्वाचासंपूर्णवायुपुत्रःशशंस ॥ २८ ॥

राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंको प्रसन्न हुआ जान पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकार चिह्न चूडामणि श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें देकर आदिसे अंततक जानकीजीका सब समाचार वर्णन करते हुए ॥ २८ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० सुं० पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥

एवमुक्तोहनुमतारामोदशरथात्मजः ॥
तंमणिंहृदयेकृत्वारुरोदसहलक्ष्मणः ॥ १ ॥

जब हनुमानजीने इस प्रकारसे कहा तब दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी उस मणिको हृदयसे लगायकर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करनें लगे ॥ १ ॥ उस अत्यन्त श्रेष्ठ मणिको देखकर श्रीरामचन्द्रजी शोकसे व्याकुलहो नेत्रोंमें आंसूभर सुग्रीवजीसे बोले ॥ २ ॥ बछडोंको देखकर स्नेहके मारे पुत्र वत्सला गऊके थनोंमेंसे जैसे दूध चूनें लगताहै, वैसेही इस श्रेष्ठ मणिको देखकर हमारा मन इस समय पिगल गयाहै ॥ ३ ॥ हमारे श्वशुर राजा जनकजीनें विवाहके समय सीताजीको यह मणि रत्न दान कियाथा, और उस समय जिस्से कि यह मणि अति शोभायमानहो वैसे-ही सीताजीनें इसको अपने चूड़ेपर बांध लियाथा ॥ ४ ॥ बुद्धिमान् इन्द्र-जीनें यज्ञमें प्रसन्न होकर समुद्रसे निकली हुई देव पूजित यह मणि जनक-जीको दीथी ॥ ५ ॥ हे सौम्य! इस समय इस मणिको देखकर हमारे पिताका और जनकजीका वह रूप हमको याद आताहै ॥ ६ ॥ हे विभो! यह मणि हमारी उन प्रियतमा सीताजीके मस्तकहीपर शोभायमान हो-ताथा, आज इस मणिको देखकर हमको ऐसा मालूम पड़ताहै कि मानों

* चौ० ॥ सीताकी अति विपति विशाला ॥ विनहिं कहे भल दीन दयाला ॥ दोहा ॥ निमिषर करुणा यतन, जाहिं कल्प सम वीत ॥ वेग चलिय प्रभु आनिये, भुजबल खल दल जीत ॥ १ ॥

हमें प्यारीही मिल गई ॥ ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! उन विदेहकुमारी सीताजीनें हमारे लिये क्या कहाहै ! वह वृत्तान्त तुम वार २ वर्णन करो उन जानकीजीनें मूर्च्छित पुरुषके ऊपर जल छिड़कनेंसे जीव दान करनेंकी समान वचन रूप वारिसे हमको जिलायाहै ॥ ८ ॥ जब कि विना जानकीजीके केवल हमकोही समुद्रसे उत्पन्न हुई मणि देखनी पड़ी, तब इस्से अधिक और क्या अधिक दुःख हो सकताहै ? ॥ ९ ॥ हे वीर ! जानकीजी यदि और एक मासतक जियेंगी तौ समझेंगे कि उन्होंने बहुत समयतक प्राण धारण किया। हे वीर ! परन्तु हम अब उन इन्दीवरनयना जानकीजीके विरहमें, क्षणभर भी प्राण धारण करनेंको समर्थ नहीं हैं ॥ १० ॥ हे हनुमान ! हमारी प्राणप्रिया सीताजीको जिस स्थानमें तुमनें देखाहै, हमकोभी उसी स्थानमें लेचलो जब कि समाचार मिलगया तब तौ क्षणभर भी टिकनेको अब हमें सामर्थ्य नहीं है ॥ ११ ॥ हमारी वह सती श्रेष्ठ नितम्बोवाली जानकीजी अत्यन्त भीत होकर भयंकर राक्षसियोंमें सदा किस प्रकारसे रहती हैं ॥ १२ ॥ अंधकारसे छूटा हुआ शरद ऋतुका चन्द्रमा मेघसे ढककर जिस प्रकार प्रकाशित नहीं होता; इसी प्रकार निश्चयही जानकीजीका वदन मंडल शोभायमान न होता होगा ॥ १३ ॥ हे हनुमन् ! जानकीजीनें क्या कहाहै ? तुम हमारे निकट उसको यथार्थ वर्णन करो, पीडित पुरुष जिस प्रकार औषधिको प्राप्त करकै जीवनको पाताहै, हमभी वैसेही उनकी कहनको सुनकर जीवन लाभ करेंगे ॥१४॥

मधुरामधुरालापाकिमाहममभामिनी ॥
मद्विहीनावरारोहाहनुमन्कथयस्वमे ॥
दुःखाद्दुःखतरंप्राप्यकथंजीवतिजानकी ॥ १५ ॥

हे हनुमन् ! सौम्य मूर्त्ति मधुर वचन बोलनें वाली हमारी उन सर्वाङ्ग सुन्दरी श्रेष्ठ नितम्बवाली भामिनी जानकीजीनें हमारे विरहमें दुःखित होकर हमसे क्या कहाहै ! सो तुम वर्णन करो, और यहभी कहो कि सहनेंके अयोग्य दुःख सहकर श्रीजानकीजी किस प्रकारसे प्राण धारण कर रहीं हैं ॥ १५ ॥ इ०श्रीम०वा० आ० सुं० षट्षष्टितमःसर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

एवमुक्तस्तुहनुमान्राघवेणमहात्मना ॥
सीतायाभाषितंसर्वंन्यवेदयतराघवे ॥ १ ॥

रघुवंशावतंस श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर हनुमानजी उनसे सीताजीका समस्त वृत्तान्त वर्णन करनें लगे ॥ १ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! पहले चित्रकूट पर्वत पर जो वृत्तान्त होगयाथा, देवी जानकी-जीनें उसकोही चिह्न स्वरूप आदिसे अंततक वर्णन कियाहै ॥ २ ॥ हे भरतजीके वड़े भाई ! आपके सहित एक दिन जानकीजी सुखसे सोयकर आपसे पहलेही उठ बैठीथीं कि इतनेमेंही अचानक एक काकनें उड़कर उनके स्तनोंके बीचमें घाव कर दिया ॥ ३ ॥ हेभरतजीके वड़े भ्राता श्रीरामचंद्रजी आप फिर जानकीजीके गोदमें शिरधर सोय गयेथे, परन्तु उस काकनें फिर उनकी छातीमें चोंच मारी व पंजे चलाये कि जिस्से उनकी छाती विदीर्ण होकर अत्यन्त पीड़ा देंने लगी ॥ ४ ॥ जब उसनें फिर घाव किया तब जानकीजीके शरीरमेंसे रुधिर निकलनेंके कारण आपके सब अंग भीग गये और आपभी जाग-पड़े ॥ ५ ॥ हेपरवीर घाती ! आप सुखसे सोये हुएथे; उस समय काकके वार २ सतानेसेही देवी जानकीजीनें आपकी नींद छुटाई ॥ ६ ॥ हे महा-बाहो ! उन श्रेष्ठ वर्णवाली जानकीजीके स्तनोंमें घाव देखकर आप विष-धर सर्पके समान श्वास लेकर क्रोधसे बोले ॥ ७ ॥ हेभीरु! पंजोंसे तुम्हारे दोनों स्तनोंके बीचमें किसनें घाव कर दियाहै? क्रोधमें भरे हुए पंचमुहे सर्पके साथ कौन खेल करताहै? ॥ ८ ॥ कि इतनेमेंही आपनें इधर उधर देखकर, हठात् रुधिर लगे हुए तीखे पंजोंसे युक्त एक काकको देखा, वह श्रीजानकीजीकी ओर मुखकिये खड़ाथा ॥ ९ ॥ वह काक और कोई नहींथा केवल इन्द्रका पुत्र जयन्त था, वह पवनकी समान अति वेगसे एक पलक मारते पातालके मध्यको भागा॥ १० ॥हेबुद्धिवानोंमें श्रेष्ठ! हेमहाबाहो! उस समय आपके नेत्र मारे क्रोधके घूमने लगे; उस काकके प्रति आपकी क्रोध वासना उपस्थित हुई ॥ ११ ॥ अपने आसनके बिछे हुए कुशोंमेंसे एक कुश लेकर उसको ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित किया ,यह

कुश प्रलयकी अग्निके समान उस काकके सन्मुख चला ॥ १२ ॥ तिसके पीछे आपनें उसको काकके सम्मुख चलाया। प्रकाशमान कुश उस काकके पीछे २ दौड़ा ॥ १३ ॥ सब लोगोंने भीत होकर किसीनेंभी उसको अपने यहां आश्रय न दिया वह त्रिलोकीमें घूमा परन्तु कहींभी उसनें अपने उद्धार करनेंवालेको न देखा ॥ १४ ॥ हेशत्रुओंके दमन करनें वाले! तब वह कहीं ठिकाना न पायकर आपहीकी शरणमें आया हेकाकुत्स्थ! वह शरणागत होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ १५ ॥ उसको शरणमें आये जान वधके योग्य होनें परभी आपनें कृपा करके उसके जीवनकी रक्षा की। परन्तु केवल अस्त्र व्यर्थ करना उचित नहीं है॥१६॥यह कहकर श्रीरामचंद्रजी! आपनें उस काककी दहिनी आंख फोड दीथी। उस कालमें वह काक राजा दशरथजी और आपको प्रणाम करके ॥१७॥ विदाले अपने स्थानको चला गया; आप इस प्रकारके अस्त्र शस्त्र जाननें-वालोंमें श्रेष्ठ महाबलवान् और मर्यादा पुरुषोत्तमहैं ॥ १८ ॥ तथापि हे श्रीरामचंद्रजी! आप किस कारणसे राक्षसोंके ऊपर अस्त्र नहीं चलातेहैं? क्या दानव, क्या गन्धर्व, क्या देव, क्या पवन गण ॥ १९ ॥ हे श्रीराम-चंद्रजी! कोईभी तुम्हारे सामने संग्राममें नहीं हो सकताहै आप अति-शय वीर्यवानहैं, हमारे प्रति आपका यदि कुछभी आदरहो ॥ २० ॥ तो शीघ्रही व्यर्थ न होनेंवाले बाणोंकें समूह चलाय कर युद्धमें रावणका विनाश कीजिये अपने बड़े भाईकी आज्ञाले वह शत्रुओंके तपानेंवाले नर श्रेष्ठ लक्ष्मणजीही ॥ २१ ॥ किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करतेहैं। वह दोनों पुरुषश्रेष्ठ अग्नि और पवनकी समान तेजस्वी ॥ २२ ॥ देवता लोगोंकोभी अजेयहैं; फिर वह किस कारणसे हमारा यहां रोका रहना सह रहेहैं। निःसन्देह ऐसा ज्ञान होताहै कि हमाराही कोई महापापहै जो समर्थ होकरभी शत्रुओंके तपानेंवाले श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी हमारी रक्षा नहीं करतेहैं ॥ २३ ॥ श्रेष्ठ जानकीजीके यह करुणा भरे विलापके वचन सुन ॥ २४ ॥ हमनें उनसे फिर कहाकि हम आपके निकट सत्यकी शपथ करके कहतेहैं; कि आपके दर्शन न पानेंके शोकसे श्रीरामचंद्रजीका मन किसी कार्यमें नहीं लगता ॥ २५ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके दुःखसे कातर होनेंसे लक्ष्मणजीभी महा संतापित हो रहेहैं जबकि हमनें अनेक कष्टोंसे

आपका दर्शन पायाहै तौ अब शोक करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं है॥ २६ ॥ हेभामिनी! आप इसी समयसे अपने दुःखका अंत आया जानिये; वह दोनों नर सिंह शत्रुओंके तपानेवाले राजकुमार॥२७॥आपका दर्शन पानेंके लिये उत्साहित होकर लंकानगरीको भस्म कर डालेंगे;हेश्रेष्ठवर्ण वाली! क्रूरकर्म करनें वाले रावणको बन्धु बान्धवोंकेसहित समरमें मारकर॥ २८ ॥ आपको ले निश्चय अपने स्थानको लौट जांयगे इसमें कुछभी सन्देह नही । हे श्रेष्ठवर्णवाली! हेनिन्दारहित! और कोई ऐसी निशानी दीजिये कि जिसके देखनेंसे श्रीरामचंद्रजी हमारा विश्वास मानें कि यह जानकीजीको देखआये ॥ २९ ॥ यह सुन और प्रसन्नहो सब ओर दृष्टिकर वेणीमें गूंधनके योग्य यह उत्तम मणि ॥ ३० ॥ अपने डुपट्टेके अंचलसे खोलकर हमको देदी हेरघुकुल प्रिय! हे महाबलवान्! हमने आपके लिये दोनों हाथ फैलाय यह मणि ग्रहणकी ॥ ३१ ॥ और शिर झुकाय हम गमन करनेंकी शीघ्रता करते हुए सीताजी हमको चलनेंके लिये तैयार देख और समुद्र पार होनेंके उत्साही देख श्रेष्ठ वाणी बोलीं॥ ३२ ॥ जानकीजी हमको समुद्र पार होंनेको बढ़ता हुआ देखकर आंसू भर दीनहो गद्गद वाणीसे बोलीं ॥ ३३ ॥ हमको उछलनेंके लिये तैयार देख सीताजी व्याकुल और शोकसे व्याप्त होकर हमसे बोलीं कि हे महाकपे! तुम्हीं भाग्यवान हो ॥ ३४ ॥ क्योंकि तुम उन कमल लोचन महाबाहु श्रीरामचंद्रजी और हमारे उन महाबाहु यशस्वी देवर लक्ष्मणजीका दर्शन करोगे ॥ ३५ ॥ जानकीजीके यह वचन सुनकर हमनें उनसे कहाकि हेदेवी! जनकनंदिनी! आप शीघ्र हमारी पीठपर चढ़िये ॥ ३६ ॥ हेश्यामनेत्रोंवाली महाभागे! जो तुम हमारी पीठपर चढ़ बैठोगी तौ अभी तुम लक्ष्मणजी, सुग्रीव, और अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीके दर्शन कर सकोगी ॥ ३७ ॥ तब देवी जानकीजीनें कहाकि हेकपिश्रेष्ठ! पतिव्रत धर्म ऐसा नहीं है कि हम तुम्हारी पीठपर अपनी इच्छानुसार चढ़ें ॥ ३८ ॥ हेवीर! इससे पहले जो राक्षस रावणनें हरणके समय हमारे अंगोंको छुआ सो हमारा इसमें क्या वश, कालकरके पीडित होनेंसेही ऐसा हुआहै ॥ ३९ ॥ हेकपिशार्दूल! वह दोनों राजकुमार जिसस्थानमें विराजमानहैं तुम इकलेहीं वहांपर जाओ, इस प्रकारका उपदेश करके वह

फिर हमसे बोलीं ॥ ४० ॥ हेहनुमान्! सिंहकी समान पराक्रम वान श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीसे और मंत्रियोंके सहित सुग्रीवजीसे हमारी कुशल वार्त्ता कहना ॥ ४१ ॥ और तुम इस प्रकारसे यहांका समस्त वृत्तान्त कहना कि जिस्से महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी हमको इस दुःख समुद्रमेंसे उबारलें ॥ ४२ ॥ उनके निकट पहुँचकर तुम हमारे इस अतिशय शोकवेगकी और इन राक्षसियोंसे हमारे पीडित होनेंकी समस्त वार्ता कहना हे वानर प्रवीर! मार्गमें तुम्हारा मंगलहो ॥ ४३ ॥

एतत्तवार्यानृपसंयतासासीतावचः
प्राहविषादपूर्वम् ॥ एतच्चबुद्धागदि
तोयथात्वंश्रद्धत्स्वसीतांकुशलांसमग्राम् ॥ ४४ ॥

हे राजन्! श्रेष्ठ सीताजीनें अति विनतीसे व शोक युक्त होकर यह सब बातें आपसे कहीं हैं हमनें जिस प्रकारसे जो वार्त्ता आपसे निवेदन कीहै, उनको जानकर आप विश्वास कीजिये कि सीताजी कुशलसे हैं * ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ० सुन्दरकांडे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ॥

अथाहमुत्तरंदेव्यापुनरुक्तःससंभ्रमम् ॥
तवस्नेहान्नरव्याघ्रसौहार्दादनुमान्यच ॥ १ ॥

हे पुरुष शार्दूल! जब हम चलनेंके लिये तैयारही होगये, तब जानकीजीनें यह जानकर कि आपका स्नेह हमपरहै, आदर सहित बचे बचाये कार्यके करने को हमसें कहा ॥ १ ॥उन्होंनें कहा कि तुम इस प्रकारसे विविध कथा दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजीसे कहना कि जिस्से वह शीघ्र समरमें रावण को मारकर हमारा उद्धार करलें ॥ २ ॥ हे शत्रुओंको मारने वाले वीर! यदि तुम्हें भावे तौ किसी गुप्त स्थानमें आजदिन टिक कल प्रातःकाल श्रम मिटायकर चले जाना ॥ ३ ॥ हे वानर! तुम्हारे यहांपर रहनेंसे अत्यन्त मंद

* सीताकी कहा विपति सुनाऊं। निजपद नैन दिये रघुनायक निशिदिन जपत रहत तवनाऊं १ इक पल युग सम तिन कहँ वीतत कहां तलक सब कहि समुझाऊं २ आज्ञादीजे विलम नकीजै लंका सागर मध्य डुबाऊं ३ मिश्रहिये ऐसी आवत है लाय जानकी अभी मिलाऊं॥४॥

भागिनी हमारे इस शोकका वेग एक मुहूर्त्त भरके लिये छूट जायगा ॥ ४ ॥ हे विक्रमवान्? तुम्हारे चले जानेपर, फिर लौटकर जब तक तुम यहां नआओगे तब तक हम तुम्हारी वाट देखती रहेंगी, परन्तु इस वातमें सन्देहहै कि जब तक हमारा जीवन रहे या नरहे ॥ ५ ॥ हम दुरावस्थासे युक्त और दुर्भागिनीहैं; सो इस समय यह विचारकर कि तुम्हारा दरशन फिर होगा या नहीं हमारा समय वड़ेकष्टसे कटैगा इस कारण इस समय औरभी दूना दुःख हमको संतापित करैगा? ॥ ६ ॥ और हेवीर! हमको यहभी बड़ाभारी सन्देह होताहै, कि तुम्हारे बड़ेभारी सहायक ऋक्ष और वानर ॥ ७ ॥ किस प्रकारसे इसपार होनेके अयोग्य समुद्रके पार सब वानर रीछ किसप्रकारसे होंगे; और वह दोनों राजकुमारही किस प्रकार समुद्रके पार होंगे? ॥ ८ ॥ हेपाप रहित! समुद्रको लांघनेकी गति विनतानंदन गरुड़; पवन, और तुम केवल इन तीन प्राणियों में है ॥ ९ ॥ इस कारणसे वाक्य जाननें वालोंमें श्रेष्ठ! हे वीर! तुमनें इस कठिण कार्यके करनेंका क्या उपाय स्थिर कियाहै? सो बताओ ॥ १० ॥ हे शत्रुओंके मारनें वाले! यद्यपि तुम अकेलेही सरलतासे इस कार्यको पूरा कर सकतेहो, परन्तु ऐसा करनेसे केवल तुम्हाराही यश बढ़ैगा ॥ ११ ॥ परन्तु जो श्रीरामचंद्रजी रावणको उसकी सब सैनाके साथ संहार करकै विजयीहो अयोध्याजीको हमारे साथ जाँयगे तौ उनका यशभी होगा॥ १२ ॥ राक्षस रावणनें उनकी भार्या हमको जिस प्रकार छल करकै हरण कियाहै, सो रघुवंशमें उत्पन्न हुए श्रीरामचन्द्रजीके योग्य यह कार्य नहीं है कि हम यहांसे लुकछिप कर जायें ॥ १३ ॥ शत्रुकी सैनाके संहार करनें वाले काकुत्स्थ कुल तिलक श्रीरामचंद्रजी यदि सैनासे लंका नगरीको व्याकुल करकै हमको साथ ले अपनी नगरी अयोध्याको लौटें; तौ यही कार्य उनके योग्य होगा ॥ १४ ॥ इस कारण जिस कार्यमें, उन शुद्ध शूर महात्माका योग्य कार्य प्रगटहो और जिस्से उनके विक्रमकाभी प्रकाश होजाय तुमको वैसाही उपाय करना चाहिये ॥ १५ ॥ हमनें उन जानकीजीके युक्ति युक्त अर्थ सम्पन्न स्नेहसाने वचन सुनकर पीछेसे उत्तर दिया ॥ १६ ॥ कि हेदेवि! रीछ और वानरोंके अधिपति सत्यनिष्ठ वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजीनें आपका उद्धार करनेंकी प्रतिज्ञाकी है ॥ १७ ॥ उन सुग्रीवजीकी आज्ञाके वशमें

महाविक्रमवान सत्यसम्पन्न इच्छानुसार शीघ्र चलनें वाले महाबली अगणित वानरहैं ॥ १८ ॥ क्या ऊपर क्या नीचे, क्या टेढ़े वरन किसी ओर जानेंमें भी उनकी गति नहीं रुकती; वह वानर किसी कार्य करनेमें व्याकुल नहीं होते; और उन लोगोंके बलका भी कुछ पार नहीं ॥ १९ ॥ उन महाभाग वानरोंमें पवनके मार्गसे प्रबल बलसे परिपुष्ट होकर वारंवार इस पृथ्वीकी परिक्रमाकी है॥ २० ॥ सुग्रीवजीके निकट हमसे अधिक और तुम्हारी तुल्य बल वाले बहुतसे वानर हैं परन्तु हमसे छोटा तो और कोई वानर है ही नहीं ॥ २१ ॥ जब कि हमही इस पार होनेके अयोग्य समुद्रके पार आगये तब फिर उन महाबलवान वानरोंके विषयमें अधिक क्या कहैं और देखिये कि बड़े पुरुषको कोई कभी किसी कार्य के लिये नहीं भेजता केवल छोटे ही लोग सब कार्योंके लिये भेजे जातेहैं॥२२॥ हे देवि! अब विलाप करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं है आपका शोक दूर हो वह समस्त वानर यूथपति एक छलांग ही भरकर लंकामें आ जायँगे॥२३ और हे महाबाहो वह दो नरश्रेष्ठ श्रीराम, लक्ष्मणजी भी हमारी पीठपर सवार होकर उदय हुए सूर्य और चंद्रमाकी समान आपके पास आ जायँगे॥२४॥ आप बहुतही शीघ्र देखेंगी कि सिंह तुल्य शत्रुओंके मारनें वाले श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी धनुष धारण करके लंकाके द्वार पर आय पहुँचेंगे ॥ २५ ॥ आप शीघ्र देखेंगी कि नख और दांतोंको आयुध बनाये सिंह शार्दूलकी समान पराक्रम करनेंवाले गजराज तुल्य वानरगण शीघ्रही लंकामें इकट्ठे हो आयेहैं ॥ २६ ॥ आप बहुतही शीघ्र श्रवण करेंगी कि पर्वताकार वानर वीर गण लंकाके मेघ समान ऊंचेमलयके कँगूरोंपर गर्जन कर रहेहैं ॥२७॥ और आप शीघ्रही देखेंगीकि वनवाससे लौटकर शत्रुओंसे दमन करनें वाले श्रीरामचंद्रजी को अयोध्याके राज्य सिंहासन पर आपके सहित बैठेहैं ॥ २८ ॥

ततोमयावाग्भिरदीनभाषिणाशिवाभि
रिष्टाभिरभिप्रसादिता ॥ उवाहशांतिंमम
मैथिलात्मजातवातिशोकेनतथातिपीडिता ॥ २९ ॥

चौपाई—यद्यपि तव दुख सों रघुनाथा, विलपत सीय धुनत निजमाथा ॥

तद्यपि मम मुखसों हितकारी, सुनत वचन शुभ धरणि कुमारी ॥ तुरतहि दीन भावको त्यागी, भई तव चरण कमल अनुरागी ॥ हौं प्रिय वचनन सों समुझायो, त्यागि शोक सिय हर्ष बढायौ ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० सु० पं० ज्वालप्रसादमिश्रकृतेभाषानुवादे चतुर्विंशत्साहस्रिकायां संहितायामष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

* इसके आगे युद्धकाण्डहै जिसकी आदिमें यह श्लोकहै।रामचंद्रजी, हनुमानजीके यथावत कहे हुए सम्पूर्ण वचन सुनकर अतिशय प्रसन्न हो इस प्रकारसे उत्तर देते हुए ॥ १ ॥

इति वाल्मीकीय रामायणका सुंदरकाण्ड समाप्त ।

दोहा–जग जीवन जानकि रमण, जनमन आनँद कंद। ॥
चरण शरण दै चक्रसों, काटहु कलुषनि फन्द? ॥
निराधार नद मध्यमें, नैया डूवी जाय ॥
तुमविन हे करुणायतन, कौन उवारे आय? ॥
शान्ति करो मोचित धरो, वलदेवहु श्रीराम! ॥
जासों कुछ औरहुकहों , तव गुण चरित ललाम ॥
जनक लडैती जानकी, जगमाता यश खानि! ॥
अव ज्वाला प्रसादपै, होहु प्रसन्न भवानि! ॥
दुष्ट निकंदन वीरवर, हे श्रीपवनकुमार ॥
प्रभुज्वाला प्रसादके, शंकट दीजेटार ॥

इति श्री सुन्दरकांड समाप्त ।

शुभमस्तु.

पुस्तकमिलनेकाठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास–

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना वंबई.

सेतुबंधन
विभीषणभेट
अंगद शिष्टाई

विभीषणराज्यप्राप्ति
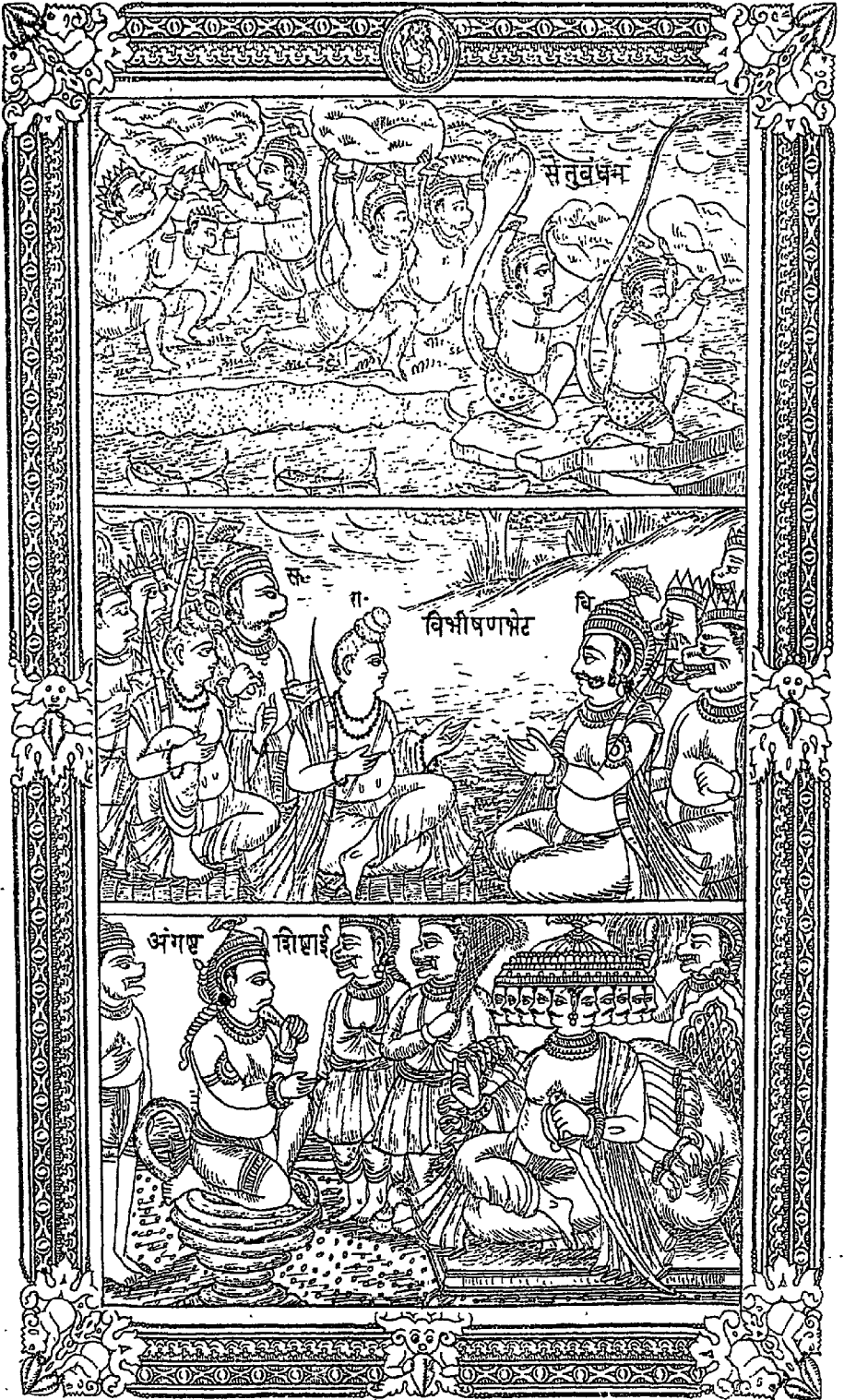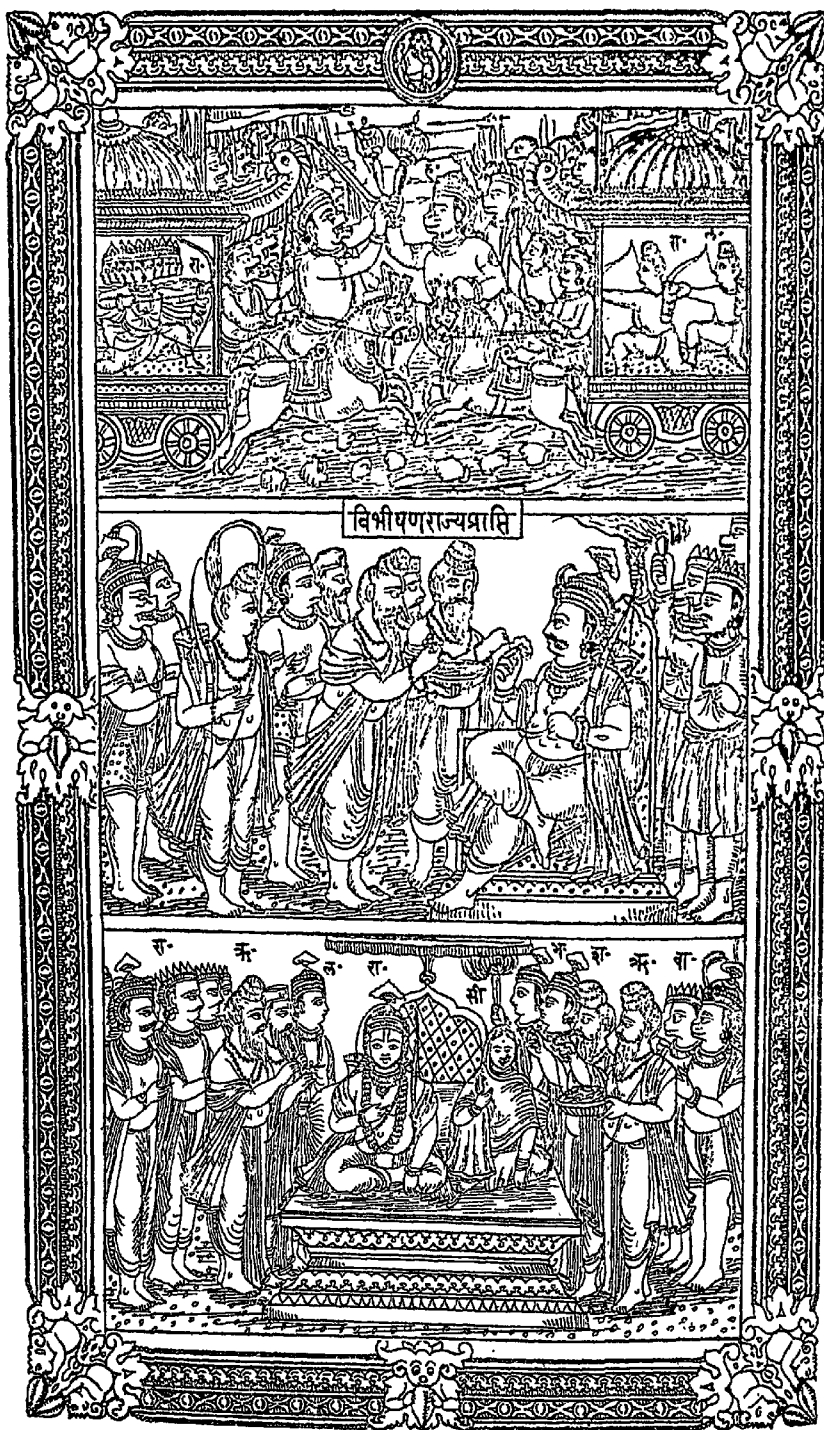
श्रीरघुवीरायनमः ।

श्रीवाल्मीकीयरामायणे लंकाकाण्ड भाषा प्रारभ्यते ।

दोहा–भक्तन मन आनंद करन, दुष्टन मारनहार ॥
तपनि वंश अवतंश प्रभु, सुख शोभा आगार ॥
जनक सुताके टारि दुःख, रावण करि संहार ॥
सबकी सत संग पुष्प कहि, चढ़ि श्रीराजकुमार ॥
अवधपुरीमें आयकर, ग्रहण कियो जिमिराज ॥
सो सब भाषामें कहब, वंदि राम रघुराज ॥
सेठ शिरोमणि गुणसदन, सज्जन जन आनंद ॥
खेमराज गृह श्री सदा, वास करै निर्द्वन्द ॥
शिव शक्ति सुर शेष शशि, सहित वाणि गणराज ॥
जन ज्वाला प्रसाद मन, वास करहु सब आज ॥ ५ ॥

प्रथमः सर्गः ॥

श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंयथावदभिभाषितम् ॥
रामःप्रीतिसमायुक्तोवाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके यथावत कहे हुए इन वचनोंको श्रवणकर अतिशय प्रसन्नहो इस प्रकारसे उत्तरदेते हुए ॥ १ ॥ हनुमानने समस्त लोकोंसे न होनेंके योग्य जो बड़ा भारी कार्य कियाहै; ऐसा कार्य पृथ्वी पर दूसरे से होना तो दूर रहै, कोई मनसेभी नहीं कर सकता ॥ २ ॥ गरुड़, वायु, और हनुमान, इन तीन जनोंके सिवाय और किसी दूसरेकी गति हम ऐसी नहीं देखते जो महा सागरको लांघ जाय ॥ ३ ॥ देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग, व राक्षस लोगोंसेभी अजेय उस रावणसे पाली जातीहुई लंका पुरीमें ॥ ४ ॥ बल सहित प्रवेश करकै. कौन जीवित रहकर वहांसे चला आ सकताहै लंकापुरी राक्षस लोगोंसे रक्षित होनेके कारण जैसीकि प्रवेशकरनेंके योग्य होगई है ॥ ५ ॥ सोवीर्यवान हनुमा-

नजीके अतिरिक्त और किसमें सामर्थ है कि जो वहां प्रवेश करसकै? इस प्रकारसे अपने विक्रमके योग्य बल प्रकाश करकै हनुमानने सुग्रीवजीका बड़ाभारी भृत्यकार्य पूरा कियाहै ॥ ६ ॥ जो सेवक स्वामी करकै अति कठिन कार्यमें लगाये जानें परभी उसे मनलगाय कर अनुराग सहित सिद्धकरताहै. पंडित लोग उसको पुरुषोत्तम कहते हैं ॥ ७ ॥ जो सेवक एक कार्यमें नियुक्त होकर प्रभुके हितकारी और दूसरे कार्योंके आजानें पर उन्हें समर्थ होकरभी नहीं करता वह मध्यम पुरुषहै ॥ ८ ॥ जो सेवक समर्थ होकर बतलाया हुआ कार्य अति यत्नसे पूरा नहीं करता, वह अधम पुरुष कहा जाताहै ॥ ९ ॥ परन्तु हनुमानजीनें राजाज्ञामें नियुक्तहोकर अपना कर्तव्य कार्य यथावत् पूरा कियाहै. और अधिक करकै इन्होंनें अपनी लघुताई नदिखाकर सुग्रीवजीको अत्यन्त सन्तुष्ट कियाहै ॥ १० ॥ हनुमानजी जानकीजीको देख आये, इस्सेहम और महा बलवान् लक्ष्मण व दूसरे रघुवंशियोंनें आत्म घात रूप घोर अधर्मसे रक्षा पाई है, क्योंकि जानकीका समाचार नपानेंसे हम निश्चयही प्राण त्यागनकरते, फिर हमारे बिना लक्ष्मण इत्यादि कोईभी प्राण धारण करनेंमें समर्थ नहीं होते ॥ ११ ॥ किन्तु दीन अवस्थामें ऐसेप्यारे संवाद देनेवाले हनुमान का इस कार्यके योग्य हम कुछभी प्रिय नहीं करसकते. यही बात हमारे अंतःकरणको अत्यन्त खेद कर रही है ॥ १२ ॥ जो हो. इस समय हमारा यह लिपटाय कर मिलनाही सर्वस्वदान स्वरूप महात्मा हनुमानका कार्यके योग्य पुरस्कार होवै ॥ १३ ॥ सर्व कार्योंके करनेंमें समर्थ हनुमानजी सीताजीकी सुधि लेकर जो लंका से आये तब रघुसत्तम श्रीरामचंद्रजीसे पहले कहे हुए वचन कहकर प्रीति पुलकित शरीरसे उनको भेंटते हुए ॥ १४ ॥ रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ और फिर क्षणभरतक चिन्ता करकै कपिराज सुग्रीवजीके सन्मुखही फिर यह वचन बोले ॥ १५ ॥ कि हम सर्व प्रकारसे सीताजीके ढूडनेमें यत्नकरकै यद्यपि कार्य सिद्धिकर चुकेहैं परन्तु इस समुद्रको देखकर फिर हमारे मनका उत्साह टूटाजाताहै ॥ १६ ॥ यह आयेहुए वानर गण किस प्रकारसे दुष्पार. अतिजलवाले समुद्रके दक्षिण पार पहुंचेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि, सीताजी लंका पुरीमें हैं, ऐसा वृत्तान्त हमारे निकट कहा गयाहै। परन्तु वानर लोगोंके

समुद्र पार जानेंका, क्या उपायहै, इस पूछनेंका क्या उत्तर होगा ॥ १८॥

इत्युक्त्वाशोकसंभ्रांतोरामःशत्रुनिबर्हणः ॥
हनूमंतंमहाबाहुस्ततोध्यानमुपागमत् ॥ १९ ॥

शत्रुओंके मारनेंवाले शोकसे संतापित श्री रामचंद्रजी महात्मा हनुमान जीसे ऐसा कह फिरकुछ चिन्ता करनेंलगे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयःसर्गः ।

तंतुशोकपरिद्यूनंरामंदशरथात्मजम् ॥
उवाचवचनंश्रीमान्सुग्रीवःशोकनाशनम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे हनुमानजी शोकसे संतापित हुए दशरथजीके पुत्र श्री रामचंद्रजीसे इस प्रकारके शोक नाश करनेंवाले वचन कहनें लगे ॥ १ ॥ हेवीर! आप किस कारणसे साधारण मनुष्योंकी समान ऐसा संताप करतेहैं? अब आप ऐसा संताप न कीजिये; जिसप्रकार उपकार न माननेंवाला पुरुष दूसरेके साथ सौहृद छोड़ देताहै. वैसेही आप इस वृथा संतापको त्याग कीजिये ॥ २ ॥ हे रघुनंदन! जबकि शत्रुका समस्त वृत्तान्त और वासस्थान जाना गयाहै तब तो फिर हम आपके संतापका कोईभी कारण नहीं देखतेहैं ॥ ३ ॥ आप मतिमान शास्त्रोंके जाननें वाले. दीर्घदर्शी और पंडितहैं; इसलिये योगी पुरुष जिस प्रकार अपनेको दूषण लगानें वाली बुद्धिका त्याग करदेतेहैं, वैसेही आपभी इस प्रयोजन नाशकरनें वाली. अशुभदायिनी बुद्धिको छोड़ दीजिये ॥ ४ ॥ हम लोग सबही मछली व नाके आदि जीवोंसे पूर्ण इस महा समुद्रको लांघकर लंकापर चढ़ आपके शत्रुका नाश करेंगे ॥ ५ ॥ हेवीर! उत्साह रहित, दीन स्वभाव और शोकाकुल पुरुषके सबही प्रयोजन नष्ट होजातेहैं; और ऐसाही पुरुष विपदोंमें पड़ा करताहै ॥ ६ ॥ यह रण करनेंमें चतुर समस्त वानर यूथपति गण आपका प्रियकार्य सिद्ध करनेंकी वासनासे अग्निमेंभी प्रवेश करनेंका उत्साह करतेहैं, फिर समुद्रका पार जाना क्या बड़ी बात है ॥ ७ ॥ हमनें इन लोगोंके हर्षित वदनका भाव देख कर इस

प्रकारका, दृढ़ निश्चय कियाहै ॥ ८ ॥ इस समय जिसप्रकारसे हम विक्रम प्रकाश करके आपके शत्रु उस पाप कर्म करनेवाले रावणका विनाश करके जानकीजीको लासकें ऐसा उपाय आप कीजिये ॥ ९ ॥ हे राघव! इस समुद्रके ऊपर जिसप्रकार सेतु बँध जाय और हम सब जिसप्रकारसे उस राक्षसराजकी लंकापुरीको देख सकें इस समय आप वैसाही उपाय कीजिये ॥ १० ॥ आपनें त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई लंकापुरीको जैसेही देखा कि वैसेही आप मनमें, निश्चय समझ लीजिये कि रावणका विनाश होगया ॥ ११ ॥ मकरालय समुद्रके ऊपर बिनासेतु बांधे इन्द्रादि देवगण अथवा असुर गण कोईभी उस लंकापुरीके रूंधनेंको समर्थ नहीं होसकते ॥ १२ ॥ आप यह निश्चयही जानलीजिये कि लंकातक समुद्रके ऊपर पुल बंध जातेही उसपरसे होकर समस्त सैना पार उतर जायगी; और फिर विजयकी प्राप्ति होनेमेंभी कुछ सन्देह नहीं कारण कि यह समस्त काम रूपी वानर संग्राम करनेमें बड़े चतुरहैं ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप इस सर्व विनाशिनी विकल बुद्धिको छोड़ दीजिये, कारण कि पृथ्वीपर शोकहीहै जो मनुष्यके वीर्यको नष्ट किया करताहै ॥ १४ ॥ जो कार्य शूरताका अवलम्बन करकै कियाजाताहै वह तुरंत शूरताका किया कार्य करनेवालेको भूषण होजाता है ॥ १५ ॥ कारण कि नष्ट होंने या खोयजानेंपर आप सरीखे महात्मा शूर पुरुष गणोंकाभी नाश करनेंको शोकही कारणहै। इस कारण हे महाप्राज्ञ! ऐसे समय आप महात्मा अपने तेज बलसे शूरता और धीरताका ग्रहण करके वही कीजिये कि जो ऐसे समयमें मनुष्य किया करतेहैं ॥ १६ ॥ आप बुद्धिमान लोगोंमें श्रेष्ठहैं और सब शास्त्रोंके अर्थभी भली भांतिसे जानतेहैं, फिर हमैं और अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै; हमं समान मंत्री लोगोंके साथ रहनेंपर आप अवश्यही शत्रुको जीतलेंगे ॥ १७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हम तीनोंलोकोंके मध्यमें ऐसा किसीको नहीं देखते कि जो आपके धनुष धारण कर संग्राममें खड़े होनेंपर आपके सामने खड़ा हो सकै ॥ १८ ॥ आप वानर गणोंको जिसकार्यका भार देंगे, उसकार्यका किसीप्रकार नाश नहीं होगा, हम समस्तही

इस अक्षय समुद्रके पार होकर देवी जानकीजीको ले आवेंगे ॥ १९ ॥ इस कारणसे आप शोकको छोड़कर क्रोधका ग्रहण कीजिये, क्योंकि उद्यम रहित होकर क्षत्रिय सौभाग्यवान नहीं होसकता, जो क्षत्रिय अत्यन्त क्रोधी होताहै; तौ सबही उससे भय माना करतेहैं ॥ २० ॥ हम तौ सबही कुछ यत्नकिये तैयार बैठेहैं, इस कारण आप इस समय इस भयंकर नदीपति समुद्रके पार होनेका कोई सूक्ष्म (बारीक) उपाय विचारिये ॥ २१ ॥ हमारी इस सैनाके समुद्र पार होतेही निश्चय आप विजयको प्राप्त करैंगे और मनमें आप समुद्रका लांघा जाना और विजयका होनाभी समझही लीजिये ॥ २२ ॥ यह रणवीर कामरूपी वानर गण शिला और वृक्षोंकी वर्षा करकै समरमें शत्रु गणोंको मारडालेंगे ॥ २३ ॥ हे रणप्रिय! हमारे मनमें तौ यह आताहै. कि किसीप्रकार समुद्रके पारहुए और रावणका युद्धमें नाश हुआ ॥ २४ ॥

किमुक्त्वाबहुधाचापिसर्वथापिजयीभवान् ॥
निमित्तानिचपश्यामिमनोमेसंप्रहृष्यति ॥ २५ ॥

हे राजन् अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै; आप सबही प्रकारसे विजयको प्राप्त करेंगे कारण कि इधर उधर शुभ निमत्तोंको हम देखतेहैं, और हमारे मनमें हर्षभी अत्यन्त होरहाहै ॥ २५ ॥ इ०श्रीम० वा० आ० लं०द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥

सुग्रीवस्यवचःश्रुत्वाहेतुमत्परमार्थवत् ॥
प्रतिजग्राहकाकुत्स्थोहनूमंतमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

तिसके पीछे परमार्थके जाननेवाले काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके यह युक्ति युक्त वचन सुनकर उन सबको अंगीकार करते हनुमानजीसे बोले ॥ १ ॥ हेहनुमन्! तपस्याके बलसे इस समुद्रका पुल बांधदेना, इसका समस्त जल शोखलेंना अथवा जिस प्रकारसे कहो हम सबही भांति इस समुद्रके पार जाय सकतेहैं ॥ २ ॥ जबसे तुमको वहांसे आये हमनें देखाहै तबसे कई एक बातोंको जाननेंके लिये हमारी इच्छा हुईहै. सो तुम हमारे निकट वह सब वर्णन करोकि; उस गमन करनेके

अयोग्य लंकापुरीमें कितने किलेहैं? ॥ ३ ॥ राक्षस रावणके यहां सेना कितनीहै? द्वारोंपरके दुर्ग किस प्रकारकेहैं? वहां पर खुदीहुई परिखा परिघ, और पृथ्वीके भीतर अटारियें हैं या नहीं? राक्षस लोगोंके रहनेंके स्थान कैसेहैं॥ ४ ॥ तुम दर्शन करने, वर्णन करने दोनों बातोंमेंही अत्यन्त चतुरहो, इस कारण लंकामें जो कुछ तुमनें देखाहो वह निःशंक चित्तसे हमारे निकट यथार्थ वर्णन करो ॥५॥ तब वचन बोलनेंमें चतुर पवनकुमार हनुमानजी श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर फिर उनसे बोले ॥ ६ ॥ हेराजन्! वह लंकापुरी गुप्त भावसे राक्षसों करके जिस प्रकारसे रक्षित होतीहै वह हम सब कहतेहैं आप श्रवण करें ॥ ७ ॥ राक्षस लोग रावणके तेजसे सावधानहो परम समृद्धि पायकर स्नेह सहित जिस प्रकार लंकाके मध्यमें वास करतेहैं वह समुद्रकी भयानकता ॥ ८ ॥ सैना समूहका विभाग. उनके वाहनोंकी गिनती. और कर्मादिका यथावत् वर्णन करतेहैं, आप श्रवण करें । वानरश्रेष्ठ हनुमानजी यह कहकर वहांके रत्ती २ जाने समाचारोंको कहनें लगे ॥ ९ ॥ लंकापुरी सदाही हर्षसे परिपूर्ण, मतवाले हाथियोंसे विराजमान अनेक स्थानोंमें रथोंसे सुशोभित, राक्षस लोग सदा इस पुरीकी रक्षा किया करते हैं यह पुरी घोडोंसे भरी हुई है और धर्षण करनेंके अयोग्यहै ॥ १० ॥ उस पुरीके महा अर्गला (मूसला) युक्त बड़े दृढ किवाड़ लगे हुए बड़े भारी चार द्वारहैं ॥ ११ ॥ उन चार द्वारोंमें भीतरेसे बाण और शिलादि फेंकनेके लिये दृढ़ और बड़े भारी इषु पल यंत्र (कल) लगे हुये हैं । कि जिस्से आतीहुई शत्रुकी सैना बाहरहीसे रोक दी जातीहै ॥ १२ ॥ राक्षस रावणनें वहां पर लोहेके सारसे-बनी हुई शिला और सैकडों हजारों *पैनी शतघ्नियें सजाय रक्खीं हैं.जोकि साफकीहुई रक्खी और महा भयंकर जान पड़तीहैं, लाखों शत्रु जिनके द्वारा दूरसेही मार डाले जांय ॥ १३ ॥ मूंगा. मणि. वैदूर्य. और मुक्तादिसे जड़ित उसकी वह सुवर्णसे बनीहुई छहर दिवारी पर बड़े दुःखसेभी कोई नहीं जायसकता ॥ १४ ॥ उस छहर दिवारीके चारों ओर परिखा युक्त, मीन सेवित, भयंकर नाकोंसे व्याप्त और बहुत सारे शीतल जलसे

* शतघ्नी नाम तोपकाहै ॥

परिपूर्ण अगाध जलाशयहै ॥ १५ ॥ उस पुरीके चारों द्वारों पर खांवेके पार होनेके लिये चार संक्रमहैं, और उनके निकटमें बहुतसे शतघ्नी इत्यादि यंत्र रक्खे और बहुतसे संग्राम करनेंके स्थानभी बने हुएहैं ॥१६॥ शत्रुकी सैनाके आजानें पर वह चारों संक्रमहीं उनकी चढाईसे पुरीकी रक्षा करतेहैं, और वहां पर जो यंत्र लगे हुएहैं उनको घुमातेही खांवेका जल चारों ओरको उफन उठताहै कि जिस्में शत्रुकी सेना डूब जातीहै ॥ १७ ॥ उन चार संक्रममें एक संक्रम सबसे अधिक दृढ बलवान् अकम्पा और अति बड़े २ कंचनके अनेक खंभों और वेदिकाओंसे शोभायमानहै॥१८॥ हे श्रीरामचंद्रजी! रावण युद्धाभिलाषी होकर बल देखनेके लिये प्रमाद रहित और सावधान व अक्षुभित अन्न वरणसे इस संक्रमके निकट शत्रुसे लडनेको तैयार हो जाता है ॥ १९ ॥ राक्षसराज रावणकी राजधानी लंकापुरी पर्वतके शिखरपर वसीहुई है, विना किसीका अवलम्बन किये उस पर चढना होताहै । वह देवता लोगों के दुर्गकी समान अतिशय दुर्गमहैं । उसमें नदीदुर्ग, गिरि दुर्ग और प्रकारके कृत्रिम दुर्ग विराजमानहैं वहांपर देवता लोग भी तो जानेंका साहस नहीं करते ॥ २० ॥ हेराघव! यह लंका पुरी पार जानेंके अयोग्य समुद्रकें उस पार वसी हुई है जलका दुर्ग रहनेंसे वहांपर नांवमें आने जानेको भी मार्ग नहीं है. इस कारण आजतक उस पुरीकी कोई भी विशेष वार्त्ता नहीं जानता॥ २१॥ पर्वतके शिखर अनेक दुर्गोंके बने रहनेसे अश्व गजसे परिपूर्ण अमरावती की समान यह लंका नगरी शत्रुओं करकै बडे दुःखसे जीतनेके योग्य-है ॥ २२ ॥ महाराज! परिघा. शतघ्नी (तोप) व और बहुत सारे यंत्र उस दुरात्मा रावणकी लंकापुरीको शोभायमान किये हुए हैं ॥ २३ ॥ उस पुरीके पूरववाले फाटकपर शूल हाथमें लिये बडे दुर्जय दशहजार राक्षस रात्रि दिन युद्ध करनेंके लिये तैयार रहते हैं, वह खड्ग युद्ध करनेंमें बडे चतुरहैं ॥ २४ ॥ दक्षिणके द्वारपर लाख राक्षस रहतेहैं; और वहांपर चतुरंगिणी सैनाके सहित और भी अनेक श्रेष्ठ वीर रहते हैं ॥ २५ ॥ पश्चिमके फाटकपर ढाल तरवार लिये सब अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें कुशल दशलाख राक्षस रहते हैं ॥ २६ ॥ रथी और अश्वारोही दश करोड श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए राक्षस रावण करकै अत्यन्त पूजित हो उत्तरके

द्वारपर टिके रहते हैं ॥२७॥ और लंका पुरीके मध्य स्कन्धावारमें करनेमें बीचवाले पडावपर एक करोड छब्बीस लाख राक्षस रहते हैं जो कि युद्ध करनेमें बडे कुशलहैं व और भी इतने राक्षस वहां रहते हैं कि उनकी गिनती ही नहीं हो सकती॥२८॥हम उस महाबल राक्षसोंकी सैनाका चौथाई भाग नष्ट कर आये;पुरीमें आने जानेके लिये जो चार संक्रम बनेथे उनको तोड़ फोड डाला और लंकाको जलातेमें हमनें छहर दिवारीको तोड़ २ उस्से खांवे को पाटदिया ॥ २९ ॥ आप यह निश्चय जान लें कि हम किसी न किसी प्रकारसे समुद्र के पार जांयगे, और लंका नगरी भी वानरों से नाशको प्राप्त होगी ॥ ३० ॥ आपको अधिक सैनाका प्रयोजन क्या है? हे राघव! केवल अंगद. द्विविद, मैन्द, जाम्बवान, पनस, नल, और सेनापति नील इन कई एक जनोंसे ही कार्य सिद्ध हो जायगा ॥ ३१ ॥ वस हम इतने वानर समुद्रके पार होकर रावणकी महापुरीमें जायकर पर्वत, वन परिखा तोरण सहित ॥ ३२ ॥ धवरहरे व प्राकारोंके सहित लंकापुरीका नाश कर सीता देवीको आपके निकट ले आवेंगे ॥ ३३ ॥

एवमाज्ञापयक्षिप्रंबलानांसर्वसंग्रहम् ॥
मुहूर्तेनतुयुक्तेनप्रस्थानमभिरोचय ॥ ३४ ॥

हे महाराज! इस समय आप बडे २ सैनापतियोंको ऐसी आज्ञा देकर शीघ्रही शुभ मुहूर्तमें युद्ध यात्रा करनेके लिये तैयारियें कीजिये ॥ ३४ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे तृतीयःसर्गः॥३॥

चतुर्थः सर्गः ।

श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंयथावदनुपूर्वशः ॥
ततोऽब्रवीन्महातेजारामःसत्यपराक्रमः ॥ १ ॥

सत्य पराक्रम श्रीमहातेजमान् श्रीरामचंद्रजी हनुमानजी करकै यथा वत कहे इन समस्त वाक्योंको आदिसे अंततक सुनकर इस प्रकारसे बोले ॥ १ ॥ हे हनुमान्! हम उस भयंकर स्वरूप राक्षसकी लंका पुरी शीघ्रही विध्वंस कर डालेंगे, यह जो तुमनें कहा, यह समस्तही हमको सत्य जान पड़ताहै ॥ २ ॥ हे सुग्रीव! तुम इसी मुहूर्तमें युद्धकी यात्रा

करनेंके लिये तैयारहो जाओ, कारणकि सूर्य भगवान इस समय, मध्य आकाशमें टिकेहैं; और ऐसे विजय देंनेवाले अभिजित मुहूर्तमें. यात्रा करना बहुत ही ठीकहै ॥ ३ ॥ तौ हम इस विजय मुहूर्तमें यात्राकरेंगे. तौ रावण किसी प्रकारसेभी अपने जीवनकी रक्षा करनेंमें समर्थ न होगा जिसप्रकार विष पान करकै आतुर मनुष्य, मृत्युके समयमें अमृतकी समान औषधीके स्पर्श करनेंसेभी अपने जीवनकी आशा करताहै, वैसेही हम युद्ध यात्रा करनेंके लिये चलदिये, जानकीजीभी यह समाचार पाय जीवनकी आशा न छोड़ देंगी ॥ ४ ॥ चंद्रमाके इस समय उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें टिकनेंसे हमारा सिद्ध देंनें वाला यह ग्रह हुआहै, परन्तु कालको इसका हस्तके सहित योग होंनेसे यह हमारा निधन नक्षत्र हो जायगा, कारणकि पुनर्वसु नक्षत्रमें हमारा जन्म हुआथा । इसलिये हे सुग्रीव! हम समस्त सैनाको साथलेकर, आजही युद्धके लिये यात्रा करेंगे ॥ ५ ॥ आगे जो शुभ लक्षण हमको हो रहेहैं इसको देख कर हमको बोध होताहै, कि हम सब रण भूमिमें रावणका नाश करकै जानकीजीको लेआ वेंगे ॥ ६ ॥ हमारे दाहिने नेत्रके ऊपरका भाग वारं वार फड़ककर मानो रामचंद्र तुमनें विजय पाई, यही प्रभास करताहै ॥ ७ ॥ तिसके पीछे अर्थ विशारद धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वानरराजसुग्रीव और लक्ष्मणजी से पूजे जाकर फिर यह बोले ॥ ८ ॥ सैनापति नील. वेग वान शत २ सहस्र २ वानरोंकी सैना साथ लेकर मार्ग देखनेंके लिये इस सैनाके आगे २ चलें ॥ ९ ॥ हे सैनापति सुग्रीव ! जहां उत्तम फल. मूल और मीठा शीतल जल वहतहै, तुम नीलको ऐसे मार्गसे सैनाको लेजानेंकी आज्ञादो ॥ १० ॥ दुरात्मा राक्षस गण मार्गमेंके फल और जल इत्यादि सब वस्तुओंमें विषादि मिलाकर कहीं उनको दूषित नकरदें, इस कारण सदा तुम उनकी रक्षा करते रहना * ॥ ११ ॥ वानर लोग छलांग मारकर टीकरी और वृक्षादि ऊंचे स्थलोंमें चढ़ २ कर पृथ्वीके नीचे टिके वनके किले और वनोंमेंभी भली भांति देखेंकि कहीं शत्रुकी सैना तौ घात लगाये नहीं बैठीहै ॥ १२ ॥ हमारी इस सैनामें बालक या वृद्ध होनें-

* मूलमें विष मिलानेंकी कथा नहीं है. यह टीका कारका अभिप्राय है ॥

के कारण जो कोईभी साररहित ज्ञातहो उसको किष्किन्धा पुरीमेंही छोड़ चलो; कारणकि हमारा यह. लंकाका. समर. कार्य अत्यन्तही घोर होता हुआ जान पड़ताहै, इस लिये विक्रम सम्पन्न सैनाकेही सहित वहां पर जाना उचितहै ॥ १३ ॥ शत सहस्र महा वलवान वानर सिंह. इसमहा सागरकी समान वानर सैनाको लेकर चलें ॥ १४ ॥ पर्वताकार गज महा बलवान गवय और गवाक्ष मद गर्वित गो वृषभकी समान सैनाके आगे २ चलें ॥ १५ ॥ कूदनेवालोंमें अग्रगण्य वानरश्रेष्ठ ऋषभ दक्षिण दिशाकी रक्षा करते हुए वानर सैनाके साथ चलैं ॥ १६ ॥ मतवाले हाथीकी समान दुर्जैय वेगवान गन्धमादन नाम वानर सैनाके सहित वांई ओरकी रक्षा करताहुआ गमन करै ॥ १७ ॥ जिस प्रकार देव-राज इन्द्रजी ऐरावत हाथीपर सवार होकर चलतेहैं वैसेही हम हनुमान-जीके कंधेपर चढ़कर समस्त सैनाको हर्ष उत्पन्न कराते सैनाके बीचमें चलेंगे ॥ १८ ॥ और सार्वभौम नामक हाथीपर चढ धनाधिपति यक्ष राज कुबेरजीकी समान यमराजकी समान कोप किये अंगदजीकी पीठ पर चढकर लक्ष्मणजी हमारे साथ २ चलें ॥ १९ ॥ ऋक्षराज जाम्बवान्, महाबाहु सुषेण और वेगदर्शी यह तीन सैनाके पीठकी रक्षा करते चलें ॥ २० ॥ जिस प्रकार तेजस्वी वरुणजी सब लोकके पश्चार्द्धकी रक्षा करतेहैं, वैसेही कपिराज सुग्रीव सैनाके जघन देशकी रक्षा करें, वानर श्रेष्ठ महाबलवान् सैनापति सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर वानर लोगोंको श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञानुसार कार्य करनेको आज्ञा देते हुए ॥ २१ ॥ आज्ञा पातेही वह महाबलवान् वानरगण उछल २ कूद २ अपने आश्रमके स्थान गुफा और पर्वतके शिखरोंमेंसे बाहर आये॥ २२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मणजीसे सुपूजितहो दक्षिण दिशाको यात्रा करते हुए ॥ २३ ॥ शत २ सहस्र २ कोटि २ अरब २ वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजीके साथ चली ॥ २४ ॥ उस कालमें हर्षित, कौतुक युक्त और सुग्रीव पालित वह बड़ी भारी वानरी सैना श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चली ॥ २५ ॥ कोई २ वानर सैनाकी रक्षा करनेके लिये चारों ओर कूदते फांदते व गर्जन करते हुए आगे लगे हुए फल मूलादिकी शुद्धाशुद्ध परीक्षा करनेके लिये आगे बढे, कोई सिंहनाद.

कोई सामान्य नाद करके दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २६ ॥ वह वानर गमन करनेंके समय सुगंधि युक्त मधुर फल भक्षण करते, और मंजरी पुष्प शोभित महा वृक्षोंको उखाड २ अपने ऊपर लादकर ले चले ॥२७॥ कोई२गर्व्वित होकर एक दूसरेको उठाकर ले चलते. और कंधेसे पृथ्वीपर गिराने लगे। कोई २ क्रम २ से चलनें लगे, और कोई ऊंचेमें गमन करते हुए दूसरोंको पृथ्वीपर गिराने लगे ॥ २८ ॥ रावण व और दूसरे समस्त राक्षसोंको हम मार डालेंगे, वानरलोग श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख वारंवार यह कहकर गर्जन करनें लगे ॥ २९ ॥ महावीर ऋषभ गन्धमादन, और नील बहुत सारे वानरोंके साथ मार्गोंको शोध करते हुए सैनाके आगे २ चलनें लगे ॥ ३० ॥ शत्रुओंके संहार करनेंवाले श्रीरामचंद्र लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीवजी बलशाली और भयंकर मूर्त्ति वानर गणोंके साथ उनके मध्य भागमें गमन करनें लगे ॥ ३१ ॥ महाबलवान् शतबलि दशकिरोड वानरसैनाको संगलिये अकेलाही उस समस्त वानर सैनाकी रक्षा करनें लगा ॥ ३२ ॥ एक अरब वानरोंकी सैना संगलिये महाबलवान्, केशरी, पनस, गज, और अर्क उस सैनाके एक पार्श्वकी रक्षा करते हुए चले ॥ ३३ ॥ सुषेण और जाम्बवान्, असंख्यरीछोंकी सैनाको संग लिये सैनाके मध्यमें टिके सुग्रीवजीको आगे करके सैनाके पश्चात् भागकी रक्षा करते जातेथे ॥ ३४ ॥ पीछे वानरकी सैना चलते २ चारों ओरके नगरोंमें पीडा करके वहां उपद्रव न मचावै, इसकारण कूदनें फांदनें वालोंमें श्रेष्ठ वानर पुङ्गव महा बल सैनापति नील सर्व प्रकारसे उनको रोकता हुआ चला ॥ ३५ ॥ बलीमुख*पजङ्घ, जङ्घ रभस+यह शीघ्रतासे चलनेके लिये सब सैनाको उत्साहित करनें लगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे वीर्यवान वानरोंकी सैनाने जाते २ अनेक प्रकारके वृक्षोंसे शोभित पर्वत श्रेष्ठ सह्य पर्वत देखा (यहां प्रथम विश्राम) और खिले हुए कमल फूलोंसे शोभायमान सरोवर और श्रेष्ठ तडागभी इस सैनाने देखे परन्तु भयंकर कोप करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा जान डरकेमारे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

---

* किसी २ मूल ग्रन्थमें "बलीमुख" के बदले "दरीमुख" यह पाठ दृष्टि आताहै ॥

+दो एक मूल ग्रंथोंमें "रभस" के बदले "सरभ" यह नामान्तर देखा जाताहै ॥

वानर लोग नगर और जनपदके निकटभी न जाते। महा सागरकी स-समान भयानक वह वानरोंकी बड़ी भारी सेना ॥ ३९ ॥ भयंकर शब्द करते हुए महा सागरकी नांईं शब्द करती क्रमसे सह्य पर्वतकी प्रथम सीमापर आय पहुंची; श्रीरामचंद्रजीके पार्श्वमें वह कपि कुंजर वानर गण ॥ ४० ॥ श्रेष्ठ सारथिसे चलाये जाकर श्रेष्ठ घोड़ोंकी समान छलांग मारकर शीघ्रतासे गमन करनें लगे। उस काल अंगद व हनुमानके ऊपर चढे हुए वह पुरुष श्रेष्ठ श्रीराम लक्ष्मण ॥ ४१ ॥ राहु और केतुसे छुए हुए सूर्य चंद्रमाकी समान शोभा धारण करते हुए । फिर वानर राज सुग्रीव, और लक्ष्मणजीसे सुपूजित होकर ॥ ४२ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे सैना सहित दक्षिण दिशाको चले फिर भवियष्त् कर्मका तत्त्व जाननेंवाले अंगदजीके कंधेपर सवार लक्ष्मणजी शुभ वाणीसे ॥४३॥ परिपूर्ण अर्त्थ युक्त वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोले हे रघुनाथ! हरी हुई वैदेहीजीको पाय शीघ्रतासे रावणको मार॥४४॥आप पूर्ण मनोरथ हो धन जनसे पूर्ण अयोध्याको लौट जांयगे, हे राघव! पृथ्वी और आकाशमें हम बड़े भारी निमित्त ॥४५॥ शुभ करनेंवाले और आपके कार्यको सिद्धि बतानेवाले देखतेहैं। यह देखिये मन्द, शीतल, सुगन्धित अनुकूल पवन. सैनाको सुख देनेके लिये चलरहाहै ॥ ४६ ॥ समस्त मृग पक्षी गण वियोग रहित श्रवण सुख दायी स्वरसे शब्द कर रहेहैं। सब दिशायें प्रसन्नहैं दिवाकर विमल किरणोंसें प्रकाश कर रहेहैं ॥ ४७ ॥ प्रसन्न किरणवाले भृगुनंदन शुक्रजीभी आपके पीछेहैं! देखिये आकाश मेघ इत्यादिकी मलीनतासे रहित होकर विमल होगयाहै, इस कारण ब्रह्मर्षि और परमर्षि गण ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते विमल किरणोंका प्रकाश प्रगटाते उदय हुएहैं ॥४८॥ महात्मा इक्ष्वाकु गणोंके पितामह राजर्षि त्रिशंकुजी, विश्वामित्रजीके बनाये सप्तर्षि मंडलके बीचमें पुरोहित वशिष्ठजीके साथ विमल दीप्ति प्रकाशित कर रहेहैं ॥ ४९ ॥ और इक्ष्वाकुलोगोंका परमहितकारी विमल व उपद्रव रहित विशाखा नक्षत्रभी वैसेही प्रकाशित होरहा है ॥ ५० ॥ यह देखिये राक्षस लोगोंके हितका करनेंवाला निर्ऋति दैवत मूलनक्षत्रभी झुके हुए दंडाकार उदय हुए धूमकेतु ग्रहसे स्पर्शित हो पीड़ा और संताप पाय रहाहै ॥ ५१ ॥ महाराज! इन सब बातोंको देख भालकर

जान पड़ताहै कि राक्षसोंको विनाश करनेहींके लिये यह सब निमित्त उदय हुएहैं; कारण कि जिसकी मृत्यु निकट आजातीहै, उसको ही नक्षत्र और गृहोंकी पीड़ा होती है ॥ ५२ ॥ सरोवरोंका जल मधुर और विमलहै, समस्त वृक्ष अकालमें फल उठेहैं; समस्त वृक्षोंके अकालमें फूलनेंसे उनकी सुगन्धि उनकी ऋतुसेभी अधिक हुईहै ॥ ५३ ॥ हे प्रभो! इस व्यूहाकारसे सजी हुई वानरोंकी सैनानें तारकासुरसे संग्राम करनेंमें रत देवसैनाके समान अधिक शोभा धारणकीहै । हे आर्य! आप यह समस्त शुभ निमित्त देखकर प्रसन्नताको प्राप्त होवें ॥ ५४ ॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहकर श्रीरामचंद्रजीको समझाया तिसके पीछे वह वानरोंकी सेना, पृथ्वीके बड़ेभारी भागको ढककर गमन करनें लगी ॥ ५५ ॥ उस कालमें नख दाँतोंको आयुध बनाये उन ऋक्ष. वानर और गो पुच्छ वानरोंके कर चरणसे उठी हुई धूलकी राशिनें ॥ ५६ ॥ सूर्यकी शोभाको ढककर समस्त दक्षिण दिशाको भयंकर अंधकारसे छाय लिया ॥ पर्वत वन आकाश सहित वह वानर वाहिनी ॥ ५७ ॥ दक्षिणदिशाको गमन करनें लगीं. जैसे मेघमाला आकाशको छाय लेतीहै, जब बहुत योजनों तक व निरन्तर वानरोंकी सेना उतरनें लगी ॥ ५८ ॥ तव उनके खलभलानेंसे नदियां स्वभाविक गतिको छोड़ विपरीत गतिको वहतीथीं । इस प्रकारसे यह बड़ी भारी सेना विमल वारि पूर्ण सरोवर, वृक्ष पूर्ण पर्वत, ॥ ५९ ॥ समान भूमि प्रदेश और फल फूल युक्त वनोंके बीचमें प्रवेश करती हुई, ऊंचीनीची, तिर्छी सीधी सब ओरको सब प्रकारसे जातीथी ॥ ६० ॥ बड़े भारी पृथ्वीके भागको ढककर वह बड़ी भारी सैना गमन करनें लगी उस कालमें वायुकी समान वेगवान उन वानरोंके मुखसे हर्षका लक्षण प्रगट हो रहाथा ॥ ६१ ॥ और वह सब वानर "श्रीरामचंद्रजीके अर्थ संग्राम करेंगे" कहकर विक्रम और मार्गमें परस्पर हर्ष वीर्य और बलको दिखातेथे ॥ ६२ ॥ और यौवनोचित अनेक प्रकारके दर्प चिह्न दिखायकर क्रूर ध्वनि करते व क्रीड़ा करतेथे, उन गजकी समान वानरोंमें कोई २ बड़ी शीघ्रतासे चलते, और कोई २ आकाश मार्गमें गमन करनें लगे ॥ ६३ ॥ और कोई २ हर्ष सहित रावणको सुनानेंके लिये किल

किला शब्द करते, कोई २ पूंछ फटकारनें लगे, कोई २ पृथ्वीपर चरण मारनें लगे ॥ ६४ ॥ और कोई २ बाहें फैलायकर वृक्ष और पर्वतोंको उखाड़नें व तोडनें पर्वताकार कुछेक वानरगण पर्वतोंके शृङ्गोंपर चढकर ॥ ६५ ॥ महानाद करके हँसते क्रीड़ा करनें लगे, कोई २ हँसते हुए विक्रम प्रकाश करके प्रबल वेगसे बहुत सारी कोमल वेलोंको तोड़ पृथ्वीपर गिराते ॥ ६६ ॥ जँभाई लेते विक्रमसे वृक्षादिकोंको उखाड़ २ फेंक २ उनसे क्रीड़ा करनें लगे। उन अनेक स्थानसे आये हुए, सहस्रों लक्षों, करोड़ों अर्बों. खर्बों ॥ ६७ ॥ घोररूपी वानरोंसे पृथ्वी पूर्णहो गई। वह वानरोंकी बडी भारी सैना दिन रात चली जातीथी * ॥ ६८ ॥ हर्ष प्रमुदित. युद्धाभिलाषी और सुग्रीवजीसे पालित सर्व वानरगण शीघ्रतासे चले जातेथे। सीताजीके छुड़ानेंकी उनको इतनी शीघ्रताथी कि एक मुहूर्त्तभी इन लोगोंनें कहीं विश्राम न लिया ॥ ६९ ॥ अनन्तर उन वानर लोगोंनें सन्मुखही विविधवन शोभित अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त सह्यपर्वत देखा और उस पर चढगये ॥ ७० ॥ और श्रीरामचंद्रजी भी विचित्रकानन युक्त सह्य व मलय दोनों पर्वतोंकी नदियां व झरनें देखते भालते चले जातेथे ॥ ७१ ॥ उन पर्वतोंपर लगे हुए चम्पक, तिलक. आम, अशोक. सिन्धुवार. तिमिष, करवीरादि वृक्ष वानर गण चलते हुए तोड़ते जातेथे ॥ ७२ ॥ कोई २ अशोक, करञ्ज, प्लक्ष,न्यग्रोध. जामन. आमला. और पुन्नागादि वृक्षोंको तोडते उखाड़ते चलतेथे ॥ ७३ ॥ पत्थरोंपर लगे हुए अनेक जातिके वन वृक्ष वायुके वेगसे चलायमान होकर अपने पुष्पोंको पृथ्वीके ऊपर बखेर रहेथे ॥ ७४ ॥ स्पर्श करनेंसे सुखका देनें वाला सुशीतल चन्दन सुगन्धि युक्त वन वायु बहनें लगा, और भ्रमरगण उस सुरभि सुगन्धिसे मोहित होकर मधुके प्राप्त करनेंकी लालसा किये आकाशमेंही अपनी चेष्टा प्रकाशित करनें लगे ॥ ७५ ॥ परन्तु यह पर्वत राज सह्य अनेक धातु ओंकेही द्वारा विशेष करके शोभायमान होरहाथा. उस कालमें उन समस्त धातुओंकी रेणुनें पवनसे चलायमान होकर ॥ ७६ ॥ उस बड़ीभारी वानर सैनाको ढकलिया. कारणकि उस पर्वतपर सब ओरसे रमणीक और फूली हुई ॥ ७७ ॥ केतकी, सिन्धु-

* यह दूसरा निवास हुआ ॥ दिन रातमें एक पहर विश्राम यह तीसरा निवास हुआ

वार, वासन्ती सुगन्धिपूर्ण, माधवी कुन्द जोकि फूल रहाथा ॥ ७८ ॥ चिरबिल्व, मधुक, वञ्जुल, अर्थात् स्थलपद्म, वकुल, रंजक, तिलक, पुष्पित नागकेशर ॥ ७९ ॥ आम पाटली, अर्थात् गुलाब कोविदार फूले हुएथे मुचुलिन्द, अर्ज्जुन, शिंशुपा, कुटज आदि वृक्ष फूले हुए महक रहेथे ॥ ८० ॥ हिन्ताल, तिनिश, चूर्णक, कदम्ब, नील, अशोक, साखू अंकोल, पद्मक ॥ ८१ ॥ आदिसब वृक्षोंको देखकर वानरोंनें छिन्न भिन्न कर डाला उस रमणीक पर्वतपर रमणीक सरोवर और छोटी २ तलैयां ॥ ८२ ॥ चक्रवाकोंसे युक्त कारण्डवनिषेवित प्लव अर्थात् जल मुरगावी, व क्रौञ्च युक्त वराह मृगोंसे सेवित ॥ ८३ ॥ स्थान २ में भयानक व्याघ्र, रीछ, और सिंह क्रीडा कर रहेहैं और भयंकराकार बहुत सारे सर्पोंसे युक्त वहांकी वापियेंथीं ॥ ८४ ॥ वहाँके समस्त सरोवर सुगन्धि पूर्ण, फूले कमल, कुमुद, व और दूसरे जलवाले फूलोंसे शोभित थे ॥ ८५ ॥ पर्वतोंके शिखरपर अनेक प्रकारके पक्षी बैठे हुए बराबर मधुर स्वरसे गान कर रहेथे, वानरगण इन समस्त सरोवरोंमें नहाय और जल पीकर फिर खेल करनेंलगे ॥ ८६ ॥ समस्त वानर पर्वतोंके शिखर एक दूसरेको ढकेलनें और वृक्षोंके अमृत समान मीठे फल व सुगन्धित पुष्प तोड़कर खाय २ फेंकनें लगे ॥ ८७ ॥ वानर लोग मदोन्मत्त होकर अनेक प्रकारके वृक्षोंको तोड़नें लगे, और बहुत सारे द्रोण, प्रमाण लटकते हुए मधुफल खानें लगे ॥ ८८ ॥ मधुकी समान पिङ्गल वह वानर श्रेष्ठ गण मधुपान करतेहुए वृक्षोंको तोड़नें; लताओंको वसीटनें लगे ॥ ८९ ॥ और पर्वतके सम्पूर्ण शिखरोंको कम्पायमान करते हुए वह वानर श्रेष्ठ गमन करनें लगे। कोई २ वानर मधुपान करनेंसे तृप्त होकर वृक्षोंपर चढ २ गर्जने लगे ॥ ९० ॥ उनमें कोई २ वानरगण वृक्षों परसे उतर रहेथे और कोई वृक्षोंपर चढ़ रहेथे उस कालमें वह देश वानर श्रेष्ठोंसे परिपूर्ण होकर जड़हन धान्यसे पूर्ण खेतकी समान शोभायमान होनें लगे ❋ ॥ ९१ ॥ तिसके पीछे कमललोचन श्रीरामचंद्रजी

* सजेउ जब प्रभुको कटक अपार ॥ चौंकि सिद्ध मुनि जगेउ डगेउ महि अहि सहिसक्यों नभार ॥ फरकेउवाम अंग भुज सियके रावण हूंके धाम ॥ इत भये मंगल शकुन हरष उत हरष शोक पर नाम, चूमातिजात विजय पद पगपग सुर डर हुलसन घोर ॥ रह्योपूरि धुनि सूर्य जयंति जय कोशलराज किशोर ॥

* यह चौथा विश्रामहुआ.

सह्य और मलय गिरिको नांघकर महेन्द्राचल पर आये। अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भूषित उसके शिखर पर चढ़े॥ ९२॥ दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी उसके शिखर पर चढ़ कच्छप मीनों इत्यादिजीवोंसे पूर्ण जलनिधि (समुद्र) को देखते हुए॥ ९३॥ तब श्रीरामचंद्रजी व और सबनें सह्य और मलय महा पर्वतोंको लांघकर भयंकर शब्दयुक्त समुद्र देखा॥९४॥तब रमण करनें वालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी पर्वतश्रेष्ठ से नीचे उतरकर सुग्रीव और लक्ष्मणजीके साथ अति शीघ्रतासे समुद्रके उत्तम वेला वनमें आये॥ ९५॥ वहां पर आयकर श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि समुद्रके किनारेवाले पहाड़ोंकी तली सदा समुद्रके प्रवाहसे धौत होतीहै, श्रीरामचंद्रजी जन रहित तीर भूमि देखकर कहने लगे॥ ९६॥ हे बन्धु सुग्रीव! देखते २ हम सब समुद्रके किनारे पर आय पहुंचे; इस समय समुद्र पार जानेके विषयमें वह चिन्ता हमारे मनमें इस समुद्रको देखकर उदित हुई है कि जो पहलेभी उदय नहीं हुईथी॥९७॥इस विशाल समुद्रका दूसरा किनारा दृष्टि नहीं आता; विना किसी श्रेष्ठ उपायके किये इस समुद्रका उतरना कुछ सहज बात नहीं है॥ ९८॥ हमारे विचारमें तो यह आताहै कि यहीं पर वानरोंकी सैनाका ठहरजाना उचित है, और यह वानरोंकी सैना जिस प्रकारसे समुद्रके पार होजाय, ऐसी मंत्रणा तुमलोग स्थिरकरो॥ ९९॥ सीताजीके हरणसे पीड़ित महाबाहु सीतापति महासागरके निकट पहुँच कर सुग्रीवको इस प्रकारसे सैनाके टिकनेकी आज्ञा देतेहुए॥ १००॥ उन्होंनें सुग्रीवसे कहा हेकपि श्रेष्ठ इस वेला भूमिमेंही सैनाको टिकादो कारणकि समुद्रके पार होंनेके विषयमें परामर्श करनेंका समय आन पहुँचाहै॥ १०१॥ अपनी सैनाको छोडकर कहीं कोई नहीं जाय; कारणकि यहांपर राक्षसोंकी नियत की हुई अनेक गुप्त सेना है, शूर वानर लोग सैनाके निवास स्थानके बाहर घूमते हुए ऐसे भयसे इस सेनाकी रक्षा करें॥ २॥ सुग्रीवजी श्रीलक्ष्मणजीनें श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर, उस वृक्षपूर्ण समुद्रके किनारे पर समस्त सेनाको टिकाया॥ ३॥ उस समय महासागरके समीप टिकी हुई वह वानर सैना मधु पिङ्गल वर्ण जलसें पूर्ण दूसरे महासागर

की समान शोभायमान होनें लगी ॥ ४ ॥ तिसके पीछे वह वानर श्रेष्ठ गण वेला वनको प्राप्त हो उसी स्थानमें टिककर समुद्रके दूसरी पार जानें की अभिलाषा करनें लगे ॥ ५ ॥ उस समय वानरसैनासमूहकी चिल्लाहटका शब्द समुद्रको महानादके शब्दको लोप करकै श्रवण गोचर होनें लगा ॥ ६ ॥ सुग्रीवजीसे पालित वह वानरवाहिनी ऋक्ष वानर और गोपुच्छ इन तीन भागोंमें बँटकर श्रीरामचंद्रजीका कार्य सिद्ध करनेंको यत्न वती हुई ॥ ७ ॥ समुद्रके किनारे पर टिकी वह वानर अनी सैना पवन वेगसे चलायमान होनेके कारण अति तरंगे उठते हुए समुद्रको देखनेलगी ॥८॥ अति कठिनसे पार जानेके अयोग्य राक्षस सेवित समुद्रको देखते हुए, वानर यूथप गण वहां बैठेथे ॥ ९ ॥ जो उदधि समुद्र बडे २ नाके और घडियालोंके रहनेके कारण भयंकर हो रहाथा प्रदोष कालके समय जब उसमें फेन आजाताहै, तब ऐसा जान पडता है मानो हँस रहाहै; और जब यह अपनी तरंगोंका विस्तार करताहै, तब यही उसका नृत्यभाव जाना जाया करताहै ॥ १० ॥ इस समय चंद्रमाके उदय होनेसे समुद्रका जल बढ़नें लगा और चंद्रमाका प्रतिबिम्ब उसके वक्षस्थलमें शोभायमान होनें लगा । यह समुद्र पातालकी समान भयंकर उसके इधर उधर तिमिङ्गिल मत्स्य शोभा दे रहेथे ॥ ११ ॥ उस कालमें महासागर तरंगोंके अग्रभावसे मानो फेन रूप चन्दनको पीस रहाथा और चंद्रमा अपनी किरण समूहोंसे उसको ग्रहण करकै दिगङ्गनाओंके अंगोंमें लेपनकर रहाथा ।" यह सागर प्रकाशित फण वाले सर्पोंसे युक्त व और जलचर जीवोंसे भरे अनेक पर्वतोंसे व्याप्त ॥ १२ ॥ होनेके कारण मार्ग रहित सब किसीके जानेके अयोग्य, और असुर लोगोंके वास करनेकी भूमिहै, मत्स्य नाके और नागादिके भोगका स्थान उन्हीं जीवोंके पवनके संयोगसे चलायमान होनेके कारण॥१३॥ जलराशि कभी ऊपरको उठताथा कभी फिर नीचेको चलाजाताथा, समुद्रमें भयंकराकार जलसर्प जो रहतेथे उनके फणोंकी मणिकी किरण जो जलपर छिटकती उससे ऐसा जान पडताथा कि मानो किसीने जलके ऊपर अग्निकी चिनगारियें बखेर दीहैं, ऐसा समुद्र घोर असुरोंके रहनेका पातालतो स्थानही था ॥ १४ ॥ समुद्र आकाशकी समान और आका-

शके समुद्रकी समान होनेंसे सागर और आकाश विशेष रहित होनेंसे एकही से जान पडतेथे ॥ १५ ॥ समुद्रमें आकाशका प्रतिबिम्ब और आकाशमें समुद्रकी ऊंची लहरोंका जल मिलजानेंसे और दोनों ही तुल्य रूप नक्षत्र दीप्त और रत्न ज्योतिके रहनेंसे दोनों ही एक से जान पडते थे ॥ १६ ॥ आकाशमें मेघमाला समुद्रमें तरंग माला, इसलिये आकाशमें समुद्र और समुद्रमें आकाश मिला हुआथा ॥ १७ ॥ प्रबल तरंगोंके उठनेसे महाकाशमें महाभेरीको बराबर भयंकर शब्द होरहाथा क्योंकि समुद्रमें लहरोंके उठनेसे शब्द करताथा और फिर वह लहरें आकाशमें एक दूसरीसे टक्करा कर शब्द करतीथीं इस्से भी समुद्र और आकाशकी समता पाई गई ॥ १८ ॥ जलजीव समाकुल जलनिधिका जल पवनके द्वारा चलायमान होकर सब रत्न अपनी लहरोंके द्वारा ऊपरको उछाल रहाथा कि जिस्से ऐसा जान पड़ताथा कि महासागर क्रोधित होकर मानो इन रत्नोंको फेंक रहाथा ॥१९॥ वह महात्मा पवनसे चलायमान समुद्रके जलको पवनके संयोगसे आकाशमें उठता देखते हुए कि जैसे समुद्र कुछ प्रलाप वचन कह रहाहै ॥ १२० ॥

ततोविस्मयमापन्नाहरयोददृशुःस्थिताः ॥
भ्रांतोर्मिजालसन्नादंप्रलोलमिवसागरम् ॥ १२१ ॥

इस प्रकारसे वह महाबलवान वानरगण चिन्ता युक्त होकर वारि विक्रम और जल शब्दसे परिपूर्ण महासागर और पवन कंपित तरंग, विहँसित आकाशको देखनेलगे ॥ १२१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमःसर्गः ॥

सातुनीलेनविधिवत्स्वारक्षासुसमाहिता ॥
सागरस्योत्तरेतीरेसाधुसाविनिवेशिता ॥ १ ॥

वह वानरोंकी समस्त सैना सेनापति नील करके समुद्रके तीर पर टिकाई जाकर विधि विधानसे रक्षित होंने लगी ॥ १ ॥ वानर पुङ्गव मैन्द और द्विविद उस सैनाकी रक्षा करनेंके लिये उसके चारों ओर घूमनें

लगे ॥ २ ॥ जब सब सैना नद नदीपति समुद्रकेतीर पर इस प्रकारसे टिकगई तब श्रीरामचंद्रजी अपनी बगलमें बैठे हुए लक्ष्मणजीसे बोले ॥३॥ वत्स लक्ष्मण! ज्यों ज्यों काल चला जाताहै, त्यों त्यों शोकभी बीतता जाताहै, परन्तु हमारे लिये तौ यहबात विपरीतसी जान पड़तीहै, क्योंकि सीताजीके न देखनेंसे हमारा शोक दिन २ बढ रहाहै घटता नहीं ॥ ४ ॥ इस कारण हमें दुःख नहीं है, कि हमारी प्यारी दूरहैं, और इस कारणभी हमको दुःख नहीं होता कि उनको रावण हरण कर ले गयाहै;परन्तु धीरे २ उनका जीवन जो क्षीण होता जाताहै; बस दुःख एक इसी कारणसे है ॥ ५ ॥ हे पवन! हे समीर! जहांपर जानकीजी हैं तुमभी वहीं पर जाओ, वरन उनका शरीर स्पर्श करके फिर आनकर तुम हमारा अंग छूना। जो तुम ऐसा करो तौ जिस प्रकार गरमीके तापसे नेत्रोंकी ज्योति खोये हुए मनुष्यको चंद्रमाके देखनेंसे फिर दृष्टि मिल जातीहै, प्यारीको स्पर्श करके जो तुम हमको स्पर्श करोगे, तौ सीताजीके शोकसे संतापित हुआ जो हमारा शरीरहै वह शीतल हो जायगा ॥ ६ ॥ जिस समय कि उनको रावणनें हरण कियाथा, उस समय जो उन्होंनें 'हानाथ!' यह कहकर जो हमको पुकाराथा; सो वही शब्द हमारे मनमें इस समय विषवत टिका हुआ हमारे शरीरको दग्ध कर रहाहै ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण हमारा शरीर दिन रात कामानलमें भस्म होरहाहै; प्यारीका जो विरहहै; वही तौ उस अग्निमें मानों काठ पड रहाहै और उनके विरहकी जो चिन्ता, वही मानों इस आग्निकी निर्मल शिखाहै ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! तुम यहींपर रहो; हम इकलेही समुद्रमें प्रवेश करके सोये रहतेहैं, कारणकि जब हम जलमें प्रवेशकर शयन करेंगे, तौ प्रज्वलित कामानल वहां हमें दग्ध नहीं करसकेगा ॥ ९ ॥ "वह वामोरु सीताजी और हम यह दोनोंही एक पृथ्वी परहैं हेलक्ष्मण! बस अबतक हम इसी आशासेही जीवन धारण कियेहैं ॥ १० ॥ जिस प्रकार जलसे पूर्ण खेत जब सूख जाताहै; तब उसमेंके जमे हुए धान, उस खेतकी जल पूर्ण अवस्थाके वशहो कदाचित जीवितभी रहतेहैं, वैसेही ॥ सीता जीवन धारण कियेहैं।" यही सुनकर हम जीवन धारण किये हुएहैं ॥ ११ ॥ हाय! कितने दिनमें शत्रुको जीतकर कमलनेत्रवाली धन धान्य युक्त राज्य लक्ष्मीकी

समान श्रीमति उन जानकीजीका दर्शन हम पावेंगे ॥ १२ ॥ हाय! रोगी पुरुषके रसायन पीनेंकी समान कब उन सुन्दर दर्शनवाली जानकीजीका मुखकमल झुकाकर हम अधरसुधा पियेंगे? ॥ १३ ॥ कितनें दिनोंमें वह जानकीजी हँसती हुई ताल फलके समान पीन व ऊंचे स्तनयुगल कम्पायमान करके हमको भली भांति भेंटकर तृप्त करेंगी ॥ १४ ॥ वह श्याम नयनवाली जनककुमारी जानकीजी हम समान स्वामीके रहते राक्षसोंके वशमेंहो अनाथकी समान किसीकोभी अपना छुटानें वाला नहीं पातीहैं॥१५॥हाय! कैसे दुःखकी बातहै, राजर्षि जनककी लडैती पुत्री महाराजाधिराज दशरथजीकी पुत्र वधू और हमारी प्राणसम प्यारी भार्या होकरभी जानकीजी किस प्रकारसे राक्षसोंके बीचमें शयन करती होंगी१६ चन्द्रकला जिस प्रकार शरत्कालमें सुनील मेघ मालाको भेदन करकै उदित होतीहै, वैसेही जानकीजी हमारे भुजबलसे दुर्द्धर्ष राक्षसोंको दलन-करकै प्रकाशित होंगी ॥ १७ ॥ हेलक्ष्मणजी! एक तौ प्राण प्यारी जान-कीजी स्वभावसेही दुर्बलहैं; तिसके ऊपर देश कालके शोक व उपास को पाय कर औरभी अधिक दुर्बल होगई होंगी॥१८॥ या कितनें दिनोंमें हम उस दुरात्मा राक्षस रावणके वक्षस्थलमें बाण मारकर जानकीजीको प्राप्त-कर सकेंगे और अपना शोक दूर करैंगे ॥ १९ ॥ सुर सुन्दरी समान पति-व्रता जानकीजी कब उत्कंठित हो हमारे गलेसे लगकर आनंदके आंसू बहामेंगी?॥ २० ॥ नहीं जानते कि सीताजीके वियोगसे उत्पन्न हुआ यह घोर शोक मलीन वस्त्रकी नांई कब हम छोडेंगे? ॥२१॥ बुद्धिमान् रामचं-द्रजी सीताजीके शोकमें अधीर होकर इस प्रकारसे विलाप करनें लगे। इस ओर दिनका अंत जान भगवान भास्कर हीन कांतिहो अस्ताचलको गमन करते हुए ॥ २२ ॥

आश्वासितोलक्ष्मणेनरामःसंध्यामुपासत ॥
स्मरन्कमलपत्राक्षींसीतांशोकाकुलीकृतः ॥ २३ ॥

यद्यपि रामचंद्रजी सीताजीके शोकसे अति संतापित होरहेथे, परन्तु लक्ष्मणजीके समझानें बुझानेंसे सावधानहो सन्ध्या वन्दनादिमें अपना मन लगाते हुए ॥ २३ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०लं०पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठःसर्गः ।

लंकायांतुकृतंकर्मघोरंदृष्ट्वाभयावहम् ॥
राक्षसेंद्रोहनुमताशक्रेणेवमहात्मना ॥
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्हियाकिंचिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥

इस ओर राक्षसोंका स्वामी रावण लंकाके मध्यमें महाबलवान इन्द्रजी-की समान हनुमानजीका किया वह घोर भयानक कार्य देख लाजके मारे कुछेक शिर झुकाकर राक्षसोंसे कहनें लगा ॥ १ ॥ कि देखो केवल एक-ही वानरनें आकर इस अजेय लंकापुरीको व्याकुल कर दिया और वह इ-स पुरीमें प्रवेश करके जनक कुमारी जानकीजीकोभी देख गया, और ह-माराभी अपमान करनेंमें उसनें कुछ कसर नहीं की ॥ २ ॥ हनुमाननें अकेलेही देवीका बड़ा भारी मन्दिर तोड़ ताड़ डाला, और उसनें बड़े२ राक्षसोंका संहार करके इस लंकापुरीको फूंक फांक कर मलीन कर दिया ॥ ३ ॥ जोहो, अब तुम सब बताओ कि हम तुम्हारे लिये किस कार्यका प्रारंभ करें? और यहभी कहोकि इस समय तुम सबकोभी कौन कर्म करना उचितहै तिस कर्मका परिणाम वाञ्छनीयहो ऐसा कोई उपा-य इस समय तुम लोग बताओ ॥ ४ ॥ इस समय रामचंद्रके विरुद्धाचर-णमें सलाह करना ठीकहै, कारण कि पंडित लोग मंत्रणा करनेंहीको विजय प्राप्तिका मूल बतलातेहैं ॥ ५ ॥ पृथ्वीमें, उत्तम, मध्यम अधम,यह तीन प्रकारके पुरुष दृष्टि आया करतेहैं, सो इस समय हम उन समस्त समवेत पुरुषोंके गुण दोष वर्णन करतेहैं तुम लोग सुनो॥६॥ जो पुरुष हित-कारी और मंत्रके निर्णय करनेंमें समर्थ मंत्रि लोगोंके साथ कार्यमें परामर्श करताहै;अथवा बराबर अपना दुःख सुख भोगनेंवाले मित्र और बन्धु बान्ध-वोंके साथ॥७॥परामर्श करकै, देवताकी सहायता पानेंका यत्न कर कार्यका आरंभ करताहै; पंडित लोग ऐसे पुरुषको उत्तम पुरुष कहा करतेहैं॥८॥जो पुरुष इकलाही धर्म और अर्थका विचार करकै अकेलाही कार्यका आरंभ क-रताहै उसकोही मध्यम पुरुष कहतेहैं, गुण दोषका विचार या देवताका आश्रय ग्रहण न करकै 'मैं अकेलाही इस कार्यको कर लूंगा यह निश्चय कर-ता हुआ कार्य करनें लगताहै वह अधम पुरुष कहा जाताहै ॥९॥१०॥जिस

प्रकार पुरुषोंके मध्यमें उत्तम मध्यम और अधम यह तीन विभागहैं मंत्री लोगोंके मंत्र निर्णय करनेंके विषयमेंभी वैसेही, उत्तम, मध्यम, और अधम यह तीन विभागहैं ॥ ११ ॥ जिस सलाहमें सब एकमत होकर नीति शास्त्रके अनुसार सब सम्मति किया करते हैं; उसे उत्तम मंत्र कहते हैं ॥ १२ ॥ जहां पर प्रथम मंत्रियोंकी अलग २ मति होकर विचार किया जाताहै और फिर पीछेसे कार्यके समय फिर सबकी सम्मति एक होजाती है वही मध्यम मंत्र कहलाताहै ॥ १३ ॥ और जिसमंत्रणामें सबका अलग २ मत होनेंसे मंत्रिगण विरुद्ध भाषीहो, और कभी एकमति होजाँय, तौभी उसका परिणाम मंगलदाई नहीं होता, ऐसी परामर्श अधम मंत्र कहलातीहै ॥ १४ ॥ हे मंत्रिगण! तुम सब मंत्रणा कार्यमें पंडितहो; जो कर्तव्य और श्रेष्ठहो उसको एक मतावलम्बी होकर स्थिर करो; बस वही हमारा कर्तव्य होगा ॥ १५ ॥ विचार करके देखो, कि रामचंद्र असंख्य वानरोंकी सैना साथ लेकर लंकाके ऊपर चढ़ाई करनें आयरहे हैं ॥ १६ ॥ वह रघुनंदन रामचंद्र सगरके वंशमें उत्पन्न हुएहैं इस्से निश्चयही जान पड़ताहै कि वह तपोबल अथवा दिव्य अस्त्र बलसे, किसी प्रकारसे भीहो अनुज लक्ष्मण और समस्त वानरोंकी सेनाके सहित समुद्रके पार आजांयगे ॥ १७ ॥

समुद्रमुच्छोषयतिवीर्येणान्यत्करोतिवा ॥
तस्मिन्नेवंविधेकार्येविरुद्धेवानरैःसह ॥
हितंपुरेचसैन्येचसर्वंसंमंत्र्यतांमम ॥ १८ ॥

जबकि उनके दलवाले एकही वानरनें यहां आयकर ऐसा कार्य निर्वाह किया परन्तु रामचंद्र यातो बाणोंसे समुद्रको सुखाय देंगे, या उसके ऊपर पुल बनावेंगे अथवा और कोई उपाय ग्रहणकर समुद्रके पार आय वानरोंके साथ जब लंकामें आवें उस काल हमारी पुरी और सैनाका जिस्से मंगलहो, सो ऐसे उपायको तुम लोग विचारकर स्थिर करो॥१८॥

इ० श्रीम० वा० आ०लं० षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥

इत्युक्ताराक्षसेंद्रेणराक्षसास्तेमहाबलाः ॥

ऊचुःप्रांजलयःसर्वेरावणंराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥

वह महाबलवान् राक्षसगण राक्षसोंके स्वामी रावणसे इस प्रकार कहे जाकर सबही हाथ जोड़कर कहनें लगे ॥ १ ॥ महाराज शत्रुकी ओरका बलाबल विनाजानें सलाह करना निर्बोधका कार्यहै । राजन् ! आपके पास मुद्गर, शूल शक्ति ऋषि पटाधारी ॥ २ ॥ बडी भारी सैना है फिर आप किस कारणसे विषाद करते हैं? आपनें पातालमें जायकर सर्पोंको युद्धमें जीत लियाहै ॥ ३ ॥ कैलाशके शिर पर रहनें वाले बहुत सारे यक्षोंके सहित कुबेरसे बड़ाभारी संग्राम करके उसको आपनें अपने वशमें कियाहै ॥ ४ ॥ हे महाराज जो अपनेको महेश्वरका सखा कहकर अपनी बड़ाई किया करते हैं आपनें रोषमें भरकर रणभूमिमें इन लोकपालोंकोभी जीता ॥ ५ ॥ और पराजित कर यक्षोंको जीत दंडदे, उनमेंसे अनेकोंको मार डालकर कैलाश वनसे आप यह पुष्पक विमानले आये ॥ ६ ॥ हे राक्षसोंके स्वामी! दानव नाथ मयनें आपके भयकी शंकाकर आपके सहित मित्रता करनेंकी वासनासे अपनी कन्या मन्दोदरी आपको स्त्री बनानेंके लियेदी ॥ ७ ॥ कुम्भीनसीके प्यारे स्वामी वीर्यवान अजीत दानवोंके स्वामी मधुके सहित युद्ध करके आपनें उसको अपनें वशमें किया ॥ ८ ॥ हे महाबाहो! आपनें पातालमें गमन करके नागोंको जीत लियाहै । और वासुकि. तक्षक. संख्य और जटी इत्यादि सब नाग गण आपके वशमें आय गयेहैं ॥ ९ ॥ फिर अक्षय बलवान शूर और वरदान पाये कालकेय दानवोंसे आपने वर्ष भरतक युद्धकर उनको परास्त कियाहै ॥ १० ॥ हेशत्रु दमन कारी! हेराक्षस नाथ ! फिर आपनें उनको अपने वशमें करके उनके निकटसे अनेक मायाकी विद्या ग्रहणकी ॥ ११ ॥ हेमहाभाग ! आपनें रणभूमिमें चतुरंगिणी सेनाके सहित शूर और महा बलवान् जलनाथ वरुणके पुत्रोंको पराजित कियाहै ॥ १२ ॥ हेराजन्! आपने मृत्यु दंड रूप महानाकोंसे युक्त. यातना रूप शाल्मली द्रुम मंडित काल पाश रूप महा तरंगसे पूर्ण यम किंकर रूप पन्नग परिपूर्ण ॥ १३ ॥ महा ज्वरके होनेंसे किसीके न सहनें योग्य यम बलके सागर यमलोक रूप महा सागरमें स्नान करके ॥ १४ ॥ विपुल जयको प्राप्त हुएहैं, और आपनें मृत्युकोभी रोक

दिया; हेमहाराज! वहांपर आपका उत्तम युद्ध देखकर समस्त लोक सन्तुष्ट हुएथे ॥ १५ ॥ जिस प्रकार वृक्षोंकी राशिसे पृथ्वी परिपूर्ण हो जातीहै, वैसेही पूर्व समयमें देवेन्द्रकी समान पराक्रमवाले बहुत सारे वीर्य क्षत्रियोंसे यह पृथ्वी परिपूर्ण होगईथी ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं, यह रामचंद्र, बल वीर्य,उत्साह या गुणमें उन क्षत्रियोंकी समान नहींहैं कि जिन अजेय क्षत्रियोंको आपने पहले सरलतासे रणमें संहार कर डालाथा; फिर रामके लिये क्या सोच विचार॥१७॥हेमहाराज! आपको कष्ट करनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं आप स्थिर रहिये; आप जान लीजिये कि अकेला इन्द्रजीतही समस्त वानरोंकी सैनाका विनाश कर देगा॥१८॥विशेष करके इन मेघनादनें दिव्य यज्ञका आरंभ करके आषुतोष श्री शिवजीका संतोष साधन करके उनसे दुर्लभ वर लाभ कियाहै ॥ १९ ॥ यह वीरही शक्ति तोमर रूप मीन सेवित विकीर्ण अस्त्ररूप शैवाल पूर्ण गजरूप कच्छप और अश्वरूप भेक संकुल ॥ २० ॥ रुद्र और आदित्य रूप महाग्राह समाकुल, वायु. और वसुगण रूप महासर्प युक्त. रथ, अश्व. और गजरूप जल राशि पूर्ण और पदाति रूप बड़ी भारी पुलिनसे युक्त ॥ २१ ॥ यही देव सैनारूप महासागरको प्राप्तहो देवराज इन्द्रको बांधकर लंकामें लेआ-याथा ॥ २२ ॥ हेराजन्! फिर मेघनादनें पितामह ब्रह्माजीके कहनेंसे उन सर्व देवके नमस्कार करनें योग्य शम्बर और वृत्रासुरके मारनें वाले इन्द्रको छोड़ दिया, और देवताओंका राजा इन्द्रभी छूटकर स्वर्गको चला गयाथा ॥ २३ ॥

राजन्नापदयुक्तेयमागताप्राकृताज्जनात् ॥
हृदिनैवत्वयाकार्यात्वंवधिष्यसिराघवम् ॥ २४ ॥

*हेमहाराज! आप नर वानर रूप साधारण जनसे जो विपदकी शंका करतेहैं यह नितान्त अनुचित बातहै क्योंकि आप निश्चयही रामका संहार कर डालेंगे ॥ २४ ॥ इ०श्रीम०वा० आ०लं०सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

---

* हेमहाराज आप इन्द्रजीतको इस कार्यका भार देदीजिये बस निश्चय रखिये कि यह इन्द्रजीतही राम और समस्त वानरोंकी सैनाका नाश कर देगा ॥ २४ ॥

अष्टमः सर्गः ॥

ततोनीलांबुदप्रख्यःप्रहस्तोनामराक्षसः ॥
अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंशूरःसेनापतिस्तदा ॥ १ ॥

तिसके पीछे नीले मेघकी समान कान्तिवाला वीर सेनापति प्रहस्त नामक राक्षस हाथ जोड़कर रावणसे बोला ॥ १ ॥ कि महाराज! दो मनुष्य और वानरोंकी तौ बातही क्याहै हम तौ रण भूमिमें देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, और सर्प गणोंकोभी पराजित कर सकते हैं ॥ २ ॥ हम लोग भोगके वश होकर जिस समय मतवाले होरहेथे; और विपदके आजानेंकीभी उस समय कोई शंका नहींथी; इस कारणसेही हनुमान हम लोगोंको धोखा देगया; जो ऐसा नहोता; तौ हम लोगोंके जीवित रहते वह वनचारी वानर किसी प्रकारसे जीता हुआ यहांसे नहीं जायसकता ॥ ३ ॥ जो हो आप आज्ञा कीजिये हम अभी आपकी आज्ञासे, शैल कानन युक्त इस पृथ्वीको वानर रहित कर देंगे ॥ ४ ॥ हमही सब राक्षसों की रक्षा वानरोंके भयसे करेंगे आप निश्चिन्त रहैं; सीताजीका हरण करनेंसे आपके ऊपर कोई विपद न पड़ैगी ॥ ५ ॥ तिसके पीछे दुर्मुख नामक राक्षस बड़ा क्रोधकरकै रावणसे बोला, हेमहाराज! केवल एकही वानर आकर हमारा सबका अपमान कर गयाहै; सो इसको हम किसी प्रकारसे नहीं सह सकते ॥ ६ ॥ हम लोग अपना अपमान होना किसी प्रकारसे सहनकर भी लेते, परन्तु नगरी और अंतःपुरका दाहन करकै उस वानरनें राक्षस राजाका जो अपमान कियाहै, वह नितान्तही असह्यहै उसको हम नहीं सह सकते ॥ ७ ॥ महाराज! आप अभी आज्ञा दीजिये; हम इसी मुहूर्त्तमें गमन करकै अकेलेही उन वानरोंकी इतिश्री करदें। वह वानरगण भयानक समुद्र, आकाश और पातालमें प्रवेश करकैभी अपनी रक्षा करनेंको समर्थ नहोंगे ॥ ८ ॥ तिसके पीछे महा बलवान राक्षस वज्रदंष्ट्र अत्यन्त क्रोधातुर होकर मांस व रुधिरसे सनाहुआ बड़ाभारी परिघ ग्रहण करके बोला ॥ ९ ॥ कि राम लक्ष्मणके जीवित रहते उस तपस्वी दीनस्वभाव हनुमानका प्राण विनाश करनेंसे हमको क्या फल होगा? ॥ १० ॥ हेमहाराज! अब हम अकेलेही उस वानरी सैनाको खल

बलायकर इस परिघसे राम लक्ष्मण और सुग्रीवका नाश करके लौट आमेंगे ॥ ११ ॥ हेराजन्! आपसे विनतीहै; कि इस समय आप हमारी एक और बात सुनें; आप जान रक्खें कि जो उपाय करनेंमें चतुर और उद्योगीहै विजय लक्ष्मी उनकेही हाथमें रहतीहै, अर्थात् वही लोग शत्रुको जीत लेतेहैं ॥ १२ ॥ कामरूपधारी भयंकराकार शूर बहुत राक्षस लग भग तीन सहस्रके एक निश्चयकर ॥ १३ ॥ मनुष्य रूप धारण रघुवंश कुल मणि श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचकर बड़ी सावधानीके साथ कहैं कि ॥ १४ ॥" हम सबको तुम्हारे पास तुम्हारे छोटे भाई भरतजीनें भेजाहै " यह श्रवणकर श्रीरामचंद्र सेनाको छोड़ वहीं बहुतही शीघ्र हमारी सेनाके साथ मिल जाँयगे ॥ १५ ॥ तिसके पीछे हमभी शूल, शक्ति, गदा, धनु, बाण और खड्ग इत्यादि अस्त्र शस्त्रले सज सजायकर उनके निकट जांयगे ॥ १६ ॥ और अलग २ दल बांध आकाशमें टिककर शिला शस्त्रादि वर्षाय २ उस वानर सैनाको घायलकर मृत्युके वशमें कर देंगे ॥ १७ ॥ हेमहाराज! इस प्रकारका कार्य करनेंसे राम लक्ष्मण अवश्यही हमारी इस अनीतिके चक्करमें पड़ जांयगे; तिनके पीछे जब वानर सैनाका नाश होजायगा, तब यह दोनोंजन अपने आपही मर जांयगे॥१८॥ जब इस राक्षसने ऐसा कहा तो प्रतापशाली वीर्यवान कुम्भकर्णका बेटा निकुम्भ क्रोधित हो सब लोकोंके रुवानेंवाले रावणसे बोला ॥ १९ ॥ कि आप सब जन यहीं पर महाराज रावणके साथ निश्चिन्त मनसे रहैं हम अकेलेही जाकर रामचंद्रके सहित लक्ष्मणको मारडालेंगे ॥ २० ॥ और सुग्रीव हनुमानके साथ उस वानरोंकी सैनाका भी संहार कर डालेंगे तिसके पीछे पर्वताकार वज्रहनु नाम राक्षस ॥ २१ ॥ क्रोधके मारे जीभसे अधरोंको चाटता हुआ बोला, कि तुमलोग आलस्य छोड अपना२ कार्य सिद्ध करनेंके लिये शीघ्रताकरो ॥ २२ ॥ और कहीं न जाओ; लो हम अकेलेही उन वानरोंकी सैनाको भक्षण किये आतेहैं । आप सब लोग सावधान और निश्चिन्त होकर वारुणि और मधुपान करके विहार कीजिये ॥ २३ ॥

अहमेकोवधिष्यामिसुग्रीवंसहलक्ष्मणम् ॥

सांगदंचहनुमंतंसर्वांश्चैवात्रवानरान् ॥ २४ ॥

हम अकेलेही राम लक्ष्मण और सुग्रीव अंगद हनुमानादि समस्त वानरोंका संहार कर डालेंगे॥२४॥इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०लं०अष्टमःसर्गः॥८॥

नवमः सर्गः ॥

ततोनिकुंभोरभसःसूर्यशत्रुर्महाबलः ॥
सुप्तघ्नोयज्ञकोपश्चमहापार्श्वमहोदरौ ॥ १ ॥

तिसके पीछे कुम्भकर्णका बेटा निकुम्भ, रभस, महाबलवान् सूर्य शत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, ॥१॥ अग्निकेतु, अजेय, रश्मिकेतु राक्षस इन्द्रशत्रु, तेजस्वी महाबलवान रावणका बेटा इन्द्रजीत ॥ २ ॥ प्रहस्त, विरूपाक्ष महाबलवान वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, निकुंभ, दुर्मुख नाम राक्षस॥३॥ परिघ, पटा, शूल, कांशी, शक्ति, परशा, धनुष, सुवर्णके फलके लगे हुए बाण; अत्यन्त द्युतिमान खड्ग ॥ ४ ॥ इत्यादि अस्त्र शस्त्र धारण कर परम क्रोध युक्त खड़े होकर महा तेजस्वी अग्निकी समान प्रज्वलित हो यह सब राक्षस रावणसे बोले ॥५॥ कि हम आजही रामचन्द्र लक्ष्मण सुग्रीव, और उस लंकाके जलानेवाले दीन स्वभाव हनुमानका प्राणभी संहार कर डालेंगे ॥ ६ ॥ तब विभीषण अस्त्रधारी उन वीर पुरुषोंको रोककर उन सबको अपने २ आसनो पर बैठनेके लिये कह, विज्ञ विभीषण हाथ जोडकर रावणसे बोले ॥ ७ ॥ हे प्रभो! साम, दान, व भेद इन तीन उपायोंसे जो कार्य सिद्ध नहीं किया जाय सके, तब नीति शास्त्रके जाननें वालोंने उस कार्यके सिद्ध करनेके लिये विक्रम प्रगट करना अर्थात् दंड देना लिखाहै ॥ ८ ॥ शत्रुओंकी अवस्थाको देख असावधान, आलस्यी और रोगादिकसे पीडित शत्रुके प्रति विधिवत् दंड प्रकाश करनेंसे वह शत्रु वशमें होजाताहै ॥ ९ ॥ परन्तु तुम लोग उन प्रमाद विहीन जयाभिलाषी देव सहाय क्रोधको जीते हुए और अजेय रामचंद्रको किस प्रकार जीतनेका साहस करते हौं॥ १० ॥ पहले किसने जान पाया था कि हनुमान नदनदीपति घोर समुद्रको लांघकर दो मुहूर्तके मध्य इस लंकामें चला आवेगा क्या तुम लोगोंमेंसे पहले किसीनें इस बातका अनु-

भव कियाथा?॥ ११ ॥ हे निशाचर गण! शत्रुलोगोंकी वीर्यशाली अगणित भयंकर सैनाहै, सो ऐसे शत्रुओंकी सहसा अवज्ञा [बेपरवाही) करना उचित नहींहै ॥ १२ ॥ उन यशस्वी रामचंद्रनेही पहले राक्षस राजका कौन भारी अपकार कियाथा कि जिस्से यह जनस्थानसे उनकी भार्याको हरण करके लेआये! ॥ १३ ॥ यदि कहोकि "रामचंद्रने खरको मारडालाहै" परन्तु खरनें तौ प्रथमही श्रीरामचंद्रजीका अपकार किया कि जिस्से वह मारागया; इसी कारणसे हम खरके मारनेंमें रामचंद्रजीका कोई दोष नहीं देखते कारणकि सामर्थ्यके अनुसार अपनी रक्षा करना सब प्राणियोंका कर्त्तव्यहै ॥ १४॥ सो खर दूषणादिके वधका बदला लेनेके लियेही सीताजीका हरण किया गयाहै, परन्तु हम लोगोंपर अब बहुतही शीघ्र सीताके हरणसे उत्पन्न हुई विपद् आनकर पड़ेगी, इस कारण इस आनेंवाली विपद्का हेतुविना झगड़ेके जानकीको त्यागही देना उचितहै। क्योंकि जिसके परिणाममें क्लेश उपस्थित हो उस कार्यको करनेंकी आवश्यकताही क्याहै ॥१५॥ रामचंद्रजी अतिशय वीर्यवान और धार्मिकहैं, विनाकारण उनके साथ वैरभाव करनेंकी आवश्यकता क्याहै? हे राजन्! हमारी यह विनतीहै कि श्रीरामचंद्रजीको सीता देदीजिये ॥ १६ ॥ रामचंद्र जबतक हाथी घोड़ोंसे परिपूर्ण अनेक रत्नोंसे युक्त इस लंकापुरीको बाणोंसे छिन्न भिन्न न करैं आप उस्से पहलेही जानकीको रामचंद्रके हाथमें सौंपदो ॥ १७ ॥ जबतककि वह घोर बड़ी भारी अजेय वानरोंकी सैना हमारी लंकापुरीको छिन्न भिन्न न करै, तिस्से पहलेही रामचंद्रजीको आप सीताजी लौटादें ॥ १८ ॥ हे महाराज! जो आप अपनी राजीसे उन रामचंद्रकी स्त्री सीताजीको उन्हैं न लौटा देंगे, तौ यह लंकापुरी नष्ट हो जायगी, और महा वीर्यवान यह राक्षसभी मारे जांयगे ॥ १९ ॥ हम तौ बंधु होनेसे आपके हितकीही कहतेहैं, सो आप हमारे वचन मानकर सीताको रामचंद्रके हाथमें समर्पण कर दीजिये॥ २० ॥ हे महाराज! वह राजकुमार रामचंद्र जबतक आपका वध करनेंके लिये सूर्यकी किरणोंके, समान प्रकाशित व चमकते फलके, पंख लगे, अमोघ बाण न छोड़ें; तिसके पहलेही जानकी आप उन्हें देदें ॥ २१॥ हे महाराज! सुख और धर्मके नाश करनेंवाले क्रोधका आप परित्याग क-

र दीजिये ! जिसकी सेवा करनेसे लोकानुराग और कीर्तिकी वृद्धि होती है, आप उसकाही आश्रय ग्रहण करें; आप प्रसन्न होकर समझलें कि जानकीको आप उन्हें देदेंगे तो हम सब अपने स्त्री पुत्रादिकोंके संग सुखसे समय बिताय सकेंगे ॥ २२ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥
विसर्जयित्वातान्सर्वान्प्रविवेशस्वकंगृहम् ॥ २३ ॥

राक्षसोंका स्वामी रावण विभीषणके ऐसे वचन श्रवण कर सबको बिदादे अपने रनवासवाले भवनमें चलागया ॥ २३ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० लं० नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ।

ततःप्रत्युषसि प्राप्ते प्राप्तधर्मार्थनिश्चयः ॥
राक्षसाधिपतेर्वेश्म भीमकर्माविभीषणः ॥ १ ॥

महा तेजस्वी किरणयुक्त सूर्य जिसप्रकार आकाशमें प्रकाशित होतेहैं, वैसेही दूसरे दिन प्रभात कालको धर्मार्थके तत्त्व जाननेवाले भयंकर कर्मकारी और श्रेष्ठ महा द्युतिमान् विभीषणजी ॥ १ ॥ शैल, शृङ्ग, समूहसदृश पर्वत शिखरकी समान ऊंचे सुविभक्त, बड़े, दूर, दिवार दालानसे युक्त, महा जनोंसे पूर्ण ॥ २ ॥ बुद्धिमान् बड़े २ शरीरवाले अनुरागी हितकारी और कार्य साधनमें समर्थ राक्षसोंसे घेरे जाकर सब भाँतिसे रक्षित ॥ ३ ॥ मतवाले हाथियोंके श्वास लेनेसे व्याकुल पवन, शंख शब्दकी समान बाजे आदिके बड़े भारी शब्दसे परीपूर्ण तुरहीके बजनेसे निनादित ॥ ४ ॥ स्त्री जनोंसे पूर्ण, रात्रिके शेष होनेसे प्रकाशित राजमार्ग उत्तमभूषणभूषित, तपाये हुए सुवर्णके बने द्वारोंसे शोभित ॥ ५ ॥ गन्धर्व और देवगणोंके स्थानोंकी समान, नाग भवनकी समान रत्न समूहसे परीपूर्ण मन्दिरमें ॥ ६ ॥ महा मेघमें सूर्यका प्रवेश करनेसे जैसी शोभा होतीहै वैसेही शोभाको धारण करते हुए अपने बड़े भाई रावणके द्युतिमान् भवनमें वीर श्रेष्ठ विभीषणजी प्रवेश करते हुए ॥ ७ ॥ वहांपर प्रवेश करते हुए विभीषणजीने वेदवादी राक्षस विप्रोंसे उच्चा-

रित पुण्य रूप पवित्र पुण्याह शब्द अपने भ्राताकी विजय सूचकतामें सुना ॥ ८ ॥ विभीषणजीने देखा कि, वेद मंत्र जाननेवाले महा बलवान् ब्राह्मण लोग, अक्षत, घृत और दधिसे पूजे गयेहैं ॥ ९ ॥ तिसके पीछे अपने तेजसे प्रदीप्त राक्षस लोगोंसे पूजित महाबाहु विभीषणजीने सिंहासन पर बैठे हुए कुबेरके छोटे भाई रावणको प्रमाण किया ॥ १० ॥ और रावणनेभी विभीषणजीको सदाचारानुरूप, आशीर्वाद देकर आसन ग्रहण करनेको कहा, राजाज्ञा पातेही विभीषणजी सुवर्णके आसनपर बैठ गये ॥ ११ ॥ महात्मा विभीषणजी, एकान्त जन रहित, केवल मंत्रियोंकेही जाने योग्य स्थानमें बैठे अपने बडे भाई रावणको हितकारी व अर्थयुक्त वचन कहने लगे ॥ १२ ॥ प्रथम यथा क्रमसे बडे भाईकी आदर मर्यादाकर देशकाल ऊंच नीच जाननेमें कुशल विभीषणजी यह बोले ॥ १३ ॥ हे शत्रुओंके तपाने वाले ! जबसे सीताजी इस लंकापुरीमें आई हैं, तबसेही अनेक प्रकारके अशुभशूचक दुर्निमित्त दिखाई देतेहैं ॥ १४ ॥ इस समय मंत्र पूर्वक अग्नि आहुति पायकरभी अपने तेजसे नहीं बढता । अधिक क्या कहैं कि प्रदीप्त करनेके समय उसमेंसे धुआं निकलताहै. चिनगारियें उडती हैं, और शिखामें बराबर धूम निकलताही रहताहै ॥ १५ ॥ हे महाराज ! अग्नि होमशाला और वेद पढनेके स्थानोंमें सर्पादि दिखाई देते और हवन करनेके लिये जोरवीरादि बनाई जाती हैं; उनमें चैंटियें चढी हुई दिखाई देती हैं ॥ १६ ॥ गौओंका दूध सूखगयाहै, श्रेष्ठ गज मद विहीन होगयेहैं; और घोडे यथेष्ट आहार पाकरभी भूखेकी समान और चारा पानेकी आशामें दीनभावसे शब्द करते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् ! गधे, ऊंट, खच्चड़, रोम ऊंचे कर २ के आंसू डाल २ रोय रहेहैं; चिकित्सा शास्त्रके द्वारा यद्यपि उनकी औषधीभी भली भाँति की जाती है, परन्तु तथापि वे अपने स्वभाव पर नहीं आते ॥ १८ ॥ क्रूर स्वभाववाले कौवे दल बांध २ कर चारों ओर शोर करते हैं और कभी २ उनके झुण्डके झुण्ड विमानोंके ऊपर "काँय, काँय" शब्द करते दिखाई देते हैं ॥ १९ ॥ गृध्र पीड़ित होकर पुरीके ऊपरी भागमें गिरा करते हैं और शृगालिया सन्ध्याके समय पुरीके निकट आनकर चिल्लाया करती हैं ॥ २० ॥ पुरीके द्वारपर

व्याघ्रादि मांस खानेवालोंका चौपायेंके गिरनेके शब्दकी समान बडा भारी घोर शब्द सुनाई आया करता है ॥ २१ ॥ हे वीर ! आये हुए रामचंद्रको सीताजीका दे देनाही इन दुर्निमित्तोंकी शांतिका यथार्थ उपाय (प्रायश्चित्त) जान पडताहै ॥ २२ ॥ हे राजन् ! लोभ अथवा मोहसे यदि कोई विरुद्ध बात हमारे मुखसे उच्चारण कीगई हो तौ आप हमारा दोष क्षमा कर दीजिये ॥ २३ ॥ सीताजीके हरणसे दुर्निमित्त आजकल दिखाई देते हैं; यह इन सब जनोंके और राक्षस, राक्षसी, अन्तःपुर व समस्त लंकापुरीकेही लिये बुरे जान पडते हैं ॥ २४ ॥ यद्यपि भयके मारे कोई मंत्री आपके निकट इस सलाहको न उठासके, तथापि हमने जो कुछ देखा या सुनाहै वह अवश्यही आपके निकट प्रगट करदेना कर्तव्यहै अब जैसा कुछ उचित जान पडै वैसा आप कीजिये ॥ २५ ॥ भ्राता विभीषण राक्षसोंके बीचमें बडे भ्राता राक्षस श्रेष्ठ रावणसे उसके व अपने मंत्रियोंके सामने इस प्रकारसे शुभदायक वचन कहकर चुप होरहे ॥ २६ ॥ तब सीताकामी लंकापति रावण विभीषणजीके इस प्रकार न्याय युक्त महा अर्थ समन्वित, हेतुगर्भ, वर्त्तमान व भविष्य कालमें शुभकारी यह वचन सुन क्रोध करके उत्तर देता हुआ ॥ २७ ॥ हम किसीके निकट सेभी भयका कारण नहीं देखतेहैं, रामचंद्र किसी प्रकार जानकीजीको प्राप्त नहीं होसकेंगे कारण कि वह लक्ष्मणके बड़े भाई रामचंद्र इन्द्रादि देवगणोंके साथ मिलकरभी रणभूमिमें हमारे सामने नहीं टिक सकेंगे ॥ २८ ॥

इत्येवमुक्त्वासुरसैन्यनाशनोमहाबलः संयतिचं डविक्रमः ॥ दशाननोभ्रातरमाप्तवादिनंविस र्जयामासतदाविभीषणम् ॥ २९ ॥

रणभूमिमें प्रचंड पराक्रम करनेवाला सुरसेनाका नाशकारी महाबलवान रावण हितकी कहनेवाले भ्राता बिभीषणको यह कहकर बिदा करता हुआ ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ।

सबभूवकृशोराजामैथिलीकाममोहितः ॥
असन्मानाच्चसुहृदांपापःपापेनकर्मणा ॥ १ ॥

पापचारी राक्षसराज रावण भार्याहरणका पाप कर्म करनेवाला विभीषणादि सुहृद्गणोंका निरादर करके जानकीजीकी कामनासे अत्यन्त मोहित हो दुर्बल होने लगा ॥ १ ॥ काममोहित और निरन्तर जानकीजीका स्मरण करता हुआ समयको बीत जाता हुआ देखकर उस काल विभीषणके सिवाय और सब सुहृद् व मंत्रियोंके सहित मन लगाय; उसके विषयमें सलाह करनेका अवसर आया जान ॥ २ ॥ सुवर्णकी जालियोंसे विभूषित. मूंगे मणिसे शोभायमान अच्छे सीखे सिखाये घोड़े जिसमें जुतरहे ऐसे महा रथमें सवार होता हुआ ॥ ३ ॥ और उस मेघकी समान शब्द करते हुए श्रेष्ठ रथपर चढ़कर वह दशवदन राक्षस श्रेष्ठ रावण सभाकी ओर गमन करने लगा ॥ ४ ॥ उस समय सर्व अस्त्र शस्त्रोंको धारण किये बहुत सारे राक्षस ढाल तलवार ग्रहण करके रावणके आगे २ चले ॥ ५ ॥ बहुत सारे विकट वेषधारी अनेक भूषण पहरे राक्षस लोग रावणके अगल बगल पश्चाद्भागकी रक्षा करते हुए चले ॥ ६ ॥ महारथी गण रथपर सवार होकर व और दूसरे राक्षस शस्त्र सहित कोई हाथीपर कोई दिव्य घोडोंपर सवार होकर रावणके साथ २ जाने लगे ॥ ७ ॥ व कोई राक्षस गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, फरशा, नालादि, अस्त्र लेकर रावणके साथ चले उस समय हजारों तुरही बजने लगीं ॥ ८ ॥ जब राक्षस रावण सभामें जानेकेलिये निकला उस समय चारों ओरसे हजार २ तुरही और शंखोंके शब्दका बड़ा भारी घोर शब्द होने लगा, रथका शब्द होने लगा ॥ ९ ॥ महारथी रावण अपने रथका शब्द चारों ओरको सुनाता अनेकप्रकारकी शोभायुक्त राज मार्गमें जाय पहुंचा. राक्षसराज रावणके मस्तकपर श्वेत वर्णका प्रकाशमान छत्र ॥ १० ॥ विमल पौर्णमासीके चंद्रमाकी समान शोभा धारण करता हुआ सुवर्णसे बने तथा युक्तिसे शुद्ध स्फटिक मणिकी समान ॥ ११ ॥ दो चमर पंखे उजले उसकी बांई और दाहिनी बगलमें

शोभितहो रहेथे मार्गमें बहुत सारे राक्षस गण रथके समीप हाथ जोडे खडे हुएथे ॥ १२ ॥ वह सब राक्षस श्रेष्ठ रावणको झुक २ कर शिर नवाय २ प्रणाम करते । इस प्रकार राक्षसोंसे स्तुति किया जाता हुआ और विजयके लिये आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रुदमनकारी रावण ॥ १३ ॥ विश्वकर्मोकी बनाई हुई सभामें पहुँचा; यह सभा सुनहरी रूपहरी विस्तारोंसे शोभित थी और विशुद्ध स्फटिक मणियोंसे शोभायमान ॥ १४ ॥ उजला व सुनहरी चँदोवा ऊपर तनरहाथा, और छःसौ पिशाच उस प्रभा वाली सभाकी सदा गुप्त भावसे रक्षा कर रहेथे ॥ १५ ॥ ऐसी विश्वकर्मोकी बनाई सभामें महातेजस्वी रावण प्रवेश करता हुआ। तिसमें वैदूर्य मणिसे प्रियका नाम मृगका अतिकोमल चर्म लग रहथा ॥ १६ ॥ ऐसे सीढ़ी लगेहुए परमासन पर रावण बैठा । तिसके पीछे रावण बहुतसे पराक्रमवान दूतोंको आज्ञा देने लगा ॥ १७ ॥ कि तुमलोग लंकाके रहनेवाले राक्षसोंके बहुतही शीघ्र हमारे पास ले आओ; कारण कि शत्रु लोगोंके साथ बड़े भारी कार्यमें हमको अड़ना पड़ेगा ॥ १८ ॥ दूतलोग राक्षसोंको स्वामी रावणकी ऐसी आज्ञा पाय कर लंकावासी राक्षसोंके स्थानोंमें प्रवेश करतेहुए विहारमें रत, शयनकिये हुए ॥ १९ ॥ उद्यानमें क्रीड़ाकरते हुए राक्षस लोगोंके निकट राक्षसेश्वर रावणकी आज्ञाका प्रचार करते हुए निडर होकर लंकामें घूमने लगे, राक्षस लोग राक्षसनाथ रावणकी आज्ञाको जानकर कोई मनोहर रथपर चढ कोई अलग घोड़ेपर सवारहो, कोई हाथीपर चढ़ और कोई पैदलही चलने लगे ॥ २० ॥ उसकालमें लंकापुरी, रथ कुंजर और अश्व गणोंसे समाकीर्णहो गिरते हुए पक्षियोंसे व्याप्त आकाशमंडलकी समान शोभायमान हुई ॥ २१ ॥ तिसके पीछे समस्त सभाके द्वारपर पहुँच अपनी २ सवारियें छोड़. सिंह जिस प्रकार पर्वतकी गुफामें प्रवेश करता है; इसी प्रकार पैदलही सभामें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ वहां पहुँचकर उन्होंने राजाके चरणोंका वंदन किया, तब रावणनेभी उन राक्षसोंका अत्यन्त सन्मान किया, फिर रावणकी आज्ञा पाकर कोई कुरसीपर कोई बिछौनों पर व कोई ऐसेही भूमिपर बैठ गये ॥ २३ ॥ राक्षस गण राजाकी आज्ञाके अनुसार सभाके बीचमें पहुँचकर यथा योग्य रावणकी

स्तुति करनेलगे ॥ २४ ॥ मंत्रके जाननेमें चतुर मंत्रीलोग और गुणवान सर्व शास्त्रोंके जानने वाले बुद्धि लोचन शत २ सहकारी मंत्रिगण व प्रधानादि यथाक्रमसे उस सभामें आये ॥ २५ ॥ इस प्रकार उस सुवर्णमय रमणीक राक्षसोंके स्वामी रावणकी सभामें मंत्र स्थिर करनेके लिये क्रम २ से अनेक वीरगणभी झुण्डके झुण्ड, उस सभामें आन पहुँचे ॥२६॥ तिसके पीछे यशस्वी महात्मा विभीषणजी शोभायमान घोड़ोंसे युक्त, सुवर्णसे चित्रित मंगल चिह्नोंसे शोभित अति बड़े रथपर चढ़कर अपने बड़ेभाईकी सभामें आये ॥ २७ ॥ विभीषणने सभामें प्रवेश करके निज नाम सबको सुनाय अपने बड़े भाईके चरणोंमें प्रणाम किया। शुक और प्रहस्त यह दोनों सभामें आये हुए सभासदोंको अलग २ आसन देने लगे २८ ॥ उसकालमें सुनहरी और विविध मणि भूषण धारी, श्रेष्ठ भूषण पहरे सभामें विराजमान उन सब राक्षसोंके शरीरोंमें लगे श्रेष्ठ अगर चंदनकी गंध व फूल मालाओंकी सुगन्धि सभामें चारों ओर महकनेलगी ॥ २९ ॥ सभामें बैठे हुए सबही चुप चापथे, किसीके मुखसे कोई बात या मिथ्या बात नहीं उच्चारण होती और ऊंचे स्वरसे किसीके मुखसे कोई बात नहीं निकलतीथी। कारण कि, वह उग्रवीर्यवाले राक्षस लोग पूर्ण मनोरथ होकरही मानों अपने स्वामी रावणका मुख देख रहेथे ॥ ३० ॥

सरावणःशस्त्रभृतांमनस्विनांमहाबलानांसमितौमनस्वी ॥ तस्यांसभायांप्रभयाचकाशेमध्येवसूनामिववज्रहस्तः ॥ ३१ ॥

तिस कालमें उस सभामें विराजमान शस्त्रधारी सुन्दर चित्त राक्षस गणोंके बीचमें बैठा हुआ चिन्ता शील रावण सभाके मध्य वसु गणोंके बीचमें बैठे हुए इन्द्रकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥३१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशःसर्गः ।

सतांपरिषदंकृत्स्नांसमीक्ष्यसमितिंजयः ॥

प्रबोधयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे संग्राममें जीतनेवाला रावण समस्त सभाको देखकर सेनापति प्रहस्तको इस प्रकारसे आज्ञादेता हुआ ॥ १ ॥ हे सेनापते ! अस्त्र शस्त्रके जाननेवाले रथ, अश्व, गज और पैदल, यह चार प्रकारके योधालोग जिस्से अति सावधानीसे नगरकी रक्षाकरे तुम उनको वैसाही उपदेश दो. कारण कि, हमने दूतोंके मुखसे सुना है कि, रामचंद्र समुद्रके तीर पर आगये ॥ २ ॥ सावधान चित्त प्रहस्त राजाकी आज्ञा पालन करनेके लिये. राजपुरीके भीतर और बाहर यथा विधानसे सेनाको स्थापित करताहुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे नगरकी रक्षाके लिये अलग २ सैना नियत करके फिर सन्मुख आयकर प्रहस्त यह बोला ॥ ४ ॥ हे राजन् ! आपकी आज्ञानुसार हमने सब कार्य किया बलवान राक्षसोंकी सेना नगरीके भीतर बाहर रक्षा करनेको स्थापित कर दीगई, इस समय मनकी घबडाहट छोडकर कर्त्तव्य कार्य जो कुछ हो उसको शीघ्र कीजिये ॥ ५ ॥ सुखका चाहने वाला राजा रावण हित चाहने वाले प्रहस्तके वचन सुन सब सुहृद् गणोंको पुकार कर यह बोला ॥ ६ ॥ कि विपदके समय प्रिय अप्रिय सुख दुःख हानि लाभ हित अहित इन सब बातोंको भलीभाँतिसे जान लेना तुमको उचित है ॥ ७ ॥ हम भलीभाँति जानते हैं कि, तुम परस्पर सलाह करके जो कार्य किया करते हो वह कदापि निष्फल नहीं होताहै क्योंकि पहले बहुत कार्य हमने तुम्हारी सम्मातिसे सिद्ध किये हैं ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्र जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रह, नक्षत्र और मरुद्गणसे सेवित होकर स्वर्गके सुखका भोग किया करते हैं, वैसेही तुम्हारी अनुकूलतासे हम लंकापुरीका राज्य करते हैं ॥ ९ ॥ इस संकटके समय हम तुम लोगोंसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं हमारे पिछले भाई कुंभकर्ण सोय रहे थे, इस लिये विना उनके जागे हमने तुम सबसे भी कुछ नहीं कहा ॥ १० ॥ शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ वह कुम्भकर्ण छै माससे सोय रहे थे सो यह आज जागकर सभामें आये हैं, इस लिये हमने जिसकार्यको कियाहै आज वह समस्त तुम लोगोंसे कहते हैं ॥ ११ ॥ कि हम राक्षस गणोंके घूमनेके स्थान दंडक वनसे रामचंद्रकी प्यारी नारी जनककुमारी सीताको हरण करके ले आये हैं ॥ १२ ॥ वह अलसगामिनी हमारी शेज पर नहीं आना

चाहती। इस त्रिलोकीमें सीताके समान हमारा मन हरण करने वाली और कोई नहीं है ॥ १३ ॥ उसकी कमर पतली है पश्चाद्भाग मोटा है वदन मंडल शरद ऋतुके चंद्रमाकी समान है, वह देखनेमें सुवर्णसे बनी हुई भूमि और मयकी बनाई हुई मायाके समान जान पड़ती है ॥ १४ ॥ उनके चरणतल लाल वर्ण और कोमल हैं, उनके नखोंकी अरुण दीप्ति है कि जिसके देखनेही से हमारे अंगमें अनंगके बाण लगे हैं ॥ १५ ॥ वह प्रकाशमान अग्निकी समान दीप्तिमान और सूर्य किरणके समान प्रभायुक्त हैं उनकी आँख ऊंचीहैं, दोनों नेत्र सुन्दर और वदन रमणीकहैं ॥ १६ ॥ जिसके देखते ही हम उसके वशहो कामके पाले पडे हैं। इस विषयमें क्रोध व हर्ष बराबर होनेसे कुवर्ण हो जाते ॥ १७ ॥ व शोक संताप सदा होनेसे कामने हमको बहुत सताया है। उस स्त्री सीताने हमसे एक वर्षका समय माँगा है ॥ १८ ॥ वह विशाल नेत्र वाली जानकी अपने स्वामी रामचंद्र की राह परख रही है वह सुन्दर नेत्रवाली उस सीताकी प्रतिज्ञा हमने मानली है ॥ १९ ॥ इस समय हम मार्ग चलनेसे थके हुए घोडेकी समान कामकी ताडनासे अत्यन्त चलायमान हो गये हैं। और वनवासी वानर गण किस प्रकारसे इस अक्षोभ्य समुद्रको तरेंगे ॥ २० ॥ और दशरथके पुत्र राम लक्ष्मणही बहुत मत्स्य व्यालोंसे युक्त किस प्रकारसे इसके पारहोंगे। अथवा जब कि एकही वानरने इतना बड़ा हमारा अपमान किया ॥ २१ ॥ तब किस प्रकारसे उनके कार्यकी शांति जानी जासक्ती है सो तुम लोग कहो; यद्यपि मनुष्योंसे हमको किसी प्रकारसे भयकी संभावना नहीं है, तथापि इस विषयमें जोकुछ कर्तव्य है वह तुम लोग स्थिर करो ॥ २२ ॥ हमने पहले देवासुर संग्राममें तुम लोगोंकी जय लक्ष्मी पाई थी, इस कारण आय पहुँचे हुए कार्यमें तुमलोग सहायता करो। कारण कि, हमने जानलिया है कि सुग्रीवादि वानरोंको संग लिये ॥ २३ ॥ वह नृपकुमार राम लक्ष्मण समुद्रके उत्तर किनारेपर वह सीताका समाचार अपने दूतके मुखसे पाय समुद्रके उस पार आय पहुँचे ॥ २४ ॥ जिस्से कि इस समय सीताको नलौटाना पड़े और राम लक्ष्मणका विनाशभी होजाय, ऐसी उचित मंत्रणा इस समय तुम लोग विचारो ॥ २५ ॥ विशेषतः इतनी बाततौ निःसन्देहही याद रक्खो कि

युद्ध होनेपर उसमें जयतौ हमारीही होगी कारण कि, वानर लोग समुद्रके पार आय हमको जीतनेमें समर्थ नहीं हैं; व और किसी दूसरेकी समार्थ्यभी जगत्में हम नहीं देखते कि जो समुद्र उतरकर यहां लड़ने आवे ॥ २६ ॥ तब कामी बड़े भाईके करुणा सहित ऐसे वचन सुनकर मध्यम भ्राता कुम्भकर्ण अतिशय क्रोधितहो कहने लगा ॥ २७ ॥ हे बड़े भाई साहब! आप जब कि राम लक्ष्मणके निकटसे बलपूर्वक जानकीको हरण कर लाये तब हम लोगोंके सहित विचार न करके स्वयंही आपने एक क्षण भरमें इस बातका विचारकर लिया होगा। अतएव यमुनाने पृथ्वीमें उतरनेके समय जिसप्रकार पहले अपने कुण्डोंको पूर्णकर फिर समुद्रको परिपूर्णकर समुद्रके जलसे अपनी उन्नतिको नहीं प्राप्त किया, वैसेही आपने जो चलायमान चित्तका कार्य किया है, सो उसके परिणामके समय हम लोगोंकी सलाहसे अब क्या कल्याण होगा? ॥२८॥ हे राजन्! ऐसे कार्यको करनेके पहले सब लोगोंसे आपको सलाह लेना ठीक था; परन्तु आपने ऐसा करके राम लक्ष्मणके विनाजाने उनको धोखा देकर जानकीको हरणकर ले आये; यह कार्य आपने अत्यन्त अनुचित कियाहै ॥२९॥ हेदशानन जो राजा कर्त्तव्य कार्यके विषयमें परामर्श स्थिर करके न्यायानुसार कार्य करते हैं; उनको पीछेसे कभी संताप नहीं भोगना पड़ता॥३०॥ यदि सलाह विनास्थिर किये जोकार्य किये जातेहैं, वह कार्य पशु हिंसादि यज्ञ प्रयुक्त हव्य पदार्थकी समान वह कष्टके कारण होजाते हैं॥३१॥जो प्रथम करने लायक कार्योंको पीछे और पीछे करने लायक कार्योंको पहले कर डालतेहैं, वह राजाके नीति और अनीतिको कुछभी नहीं जानताहै ॥ ३२ ॥ हे महाराज! राजाके पास अधिक सैना रहनेहीसे विजय होती है ऐसा नहीं है, परन्तु पक्षियोंने जिसप्रकार स्वामिकार्तिकके किये रन्ध्रसे क्रौञ्च पर्वतको उलंघन कियाथा, वैसेही शत्रु राजा लोगभी अपने शत्रुके कार्यमें छिद्र देखतेही उसको कुछ नहीं समझतेहैं ॥ ३३ ॥ आपने परिणामका फल न विचार कर प्रबलकी स्त्रीके हरनेका यह जो महा पापका कार्य कियाहै, तिससे विषका मिला हुआ मांस भोजन करतेही भोजन करनेवालेके प्राणोंका विनाश कर डालताहै, वैसेही श्रीरामचंद्रजीने उस समय जो आपके प्राणोंका संहार नहीं किया यही आपके परम भाग्यकी बात

है ॥ ३४ ॥ परन्तु जब कि तुमने इस अनुचित कार्यको करहीडाला और शत्रुओंके सहित समर करनेका विचार कर लिया, तब हमी उन शत्रुओंका संहार करके इस कार्यकी शान्ति करेंगे ॥ ३५ ॥ यदि इन्द्र, सूर्य, अग्नि, पवन, कुबेर और वरुण तुम्हारे साथ शत्रुताई करें, तौभी हम उनके सहित संग्राम करनेमें विमुख न होकर उन तुम्हारे शत्रुओंको मारही डालेंगे ॥ ३६ ॥ तब वह हमारा यह पर्वताकार शरीर और तीक्ष्ण डाढें देखकर गर्जना सुनकर इन्द्रभी भयको प्राप्त होजायगा ॥३७॥आप निश्चिन्त रहिये, रामचंद्र एक बाण छोडकर दूसराबाण न छोड़ने पावेंगे; कि हम उनका रुधिर पान करलेंगे हम ॥ ३८॥ दशरथ कुमार राम लक्ष्मणका नाश करके आपके प्रीति उपजानेवाली विजयके लिये यत्न करेंगे और लक्ष्मणके सहित रामचंद्रको संहार, हम वानर दलके यूथप लोगोंकोभी भक्षणकर जॉयगे ॥३९॥

रमस्वकामंपिबचाग्र्यवारुणींकुरुष्वकार्याणि
हितानिविज्वरः ॥ मयातुरामेगमितेयमक्षयं
चिरायसीतावशगाभविष्यति ॥ ४० ॥

इससमय आप सावधान चित्त होकर सुख सहित अपने हित कार्यको साधन करनेमें रत होजाइये और वारुणी पान करके इच्छानुसार विहार कीजिये; जब हम रामचंद्रका संहार कर डालेंगे तब सीता सदाके लिये आपके वश होजायगी ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ।

रावणंक्रुद्धमाज्ञायमहापार्श्वोमहाबलः ॥
मुहूर्तमनुसंचिंत्यप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

तिसके पीछे महाबलवान् महापार्श्व रावणको क्रोधायमान देखकर एक मुहूर्त भरतक चिन्ताकर हाथ जोड़ रावणसे बोला ॥ १ ॥ कि हेमहाराज ! आप जो रामचन्द्रके आश्रममें प्रवेश करके उनकी स्त्रीको हरण करके ले आये हैं यह कार्य तो आपके योग्यही हुआहै परन्तु जो पुरुष मृग और सर्पोंसे सेवित वनमें प्रवेश करके मधुको प्राप्त हो-

करभी उसको न पिये वह बड़ा मूर्ख है ॥ २ ॥ यदि आप कहें कि पर नारीके भोग करनेसे ईश्वरकी आज्ञाके विपरीत कार्य करना होताहै और इस्से अधिकभी होताहै, परन्तु आपको भय क्याहै ? क्योंकि आप धर्मके प्रवर्तक यमादि ईश्वर गणोंकेभी ईश्वरहैं; इस कारण इस समय शत्रुलोगोंके मस्तकपर पांव धरकर आप सीताके साथ विहार कीजिये ॥ ३ ॥ हे महा बलवान् ! यदि विहार करनेके समय सीता आपके अनुकूल नहो तो आप मुर्गेकी प्रवृत्ति धारण करके वारंवार बल प्रकाशकर उसको भोगकर विहार कीजिये ॥ ४ ॥ हे महाराज ! जहां सीता आपके वशमें हुई, फिर पीछेसे किसी भयके आपपर आनेकी कोई संभावना नहीं; यदि समयानुसार कोई भय आवेभी तो उसको रोक दिया जायगा ॥ ५ ॥ फिर आपके पास तो बलकीभी कमती नहीं है कारण कि, महाबलवान कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत हमारे सहायक हैं, तब तो हम वज्र हाथमें लिये इन्द्रकोभी पराजित कर सक्तेहैं ॥ ६ ॥ राजन् ! नीतिशास्त्रके जानने वाले पंडित लोगोंने कार्यकी सिद्धिके लिये साम, दाम, भेद, दंड यह चार प्रकारके उपाय स्थिर कियेहैं, तिसमें पिछले उपाय अर्थात् दंडको हम श्रेष्ठ मानतेहैं ॥ ७ ॥ ॥ हे महाबलवान् ! आपके शत्रुलोग जब इस लंकापुरीमें आजायँगे तो इसमें कोई संशय न समझिये कि, हम शस्त्रके प्रतापसे उनको अपने वशमें करलेंगे ॥ ८ ॥ तब राक्षसराज रावण महापार्श्वके गर्व सहित यह वचन सुनकर उसकी प्रशंसा करता हुआ बोला ॥ ९ ॥ हे महापार्श्व ! तुमने जो कुछ कहा वह सबही सत्य २ है, परन्तु जिस लिये जानकीको हमने अबतक बलसे नहीं भोगा; उसका कोई गुप्त कारणहै; सो इसमें जो कुछ रहस्यहै, वह हम अभी तुमसे कहते हैं ॥ १० ॥ हमने एक दिन पुञ्जिकस्थली नाम एक अप्सराको ब्रह्माजीके निकट जाते देखा, इस अप्सराका शरीर अग्निकी शिखाके समान चमकताथा ॥ ११ ॥ वह हमको देखतेही मानो आकाशमें मिलती हुईसी जाने लगी, तब हमने बलपूर्वक उसे उसी समय नंगी करके भोगा, तब वह अप्सरा कमलनीकी समान कांपती हुई ब्रह्माजीके निकट पहुंची ॥ १२ ॥ और ऐसा जान पड़ताहै, कि उसने ब्रह्माजीके निकट अपनी इस दुरअवस्थाकाभी सब वृत्तान्त कहाही होगा; तब ब्रह्माजीने अत्यन्त क्रोधित

होकर हमको यह शाप दिया ॥ १३ ॥ हे अधम! यदि आजसे तू किसी स्त्रीके ऊपर बलकर उस्से भोग करेगा तो तेरा मस्तक निश्चयही शतखंड हो जायगा ॥ १४ ॥ हम उसी ब्रह्मशापसे भीत होकर उन विदेहराज नंदिनी सीताको अपनी शुभ शेजर चढानेकी चेष्टा नहीं करते ॥ १५ ॥ हमारा वेग समुद्र तुल्य और गति वायुकी समानहै, सो हमारे विक्रमको न जान करही राम लंकाकी ओरको चढ़नेकी चेष्टा करते हैं ॥ १६ ॥ हमारे पर्वतकी गुहामें सोते हुए सिंह और क्रोधित यमराजकी समान विराजमान रहनेसे ऐसा कौनहै जो हमारा विश्राम तोडनेका साहस कर सकताहै ? ॥ १७ ॥ रामचंद्रने संग्राममें दो जीभवाले सर्पोंकी समान हमारे धनुषसे छूटे हुए बाण नहीं देखे हैं, इसी कारणसे वह हमारे निकट आय रहेहैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार उल्कासमूहसे गतिवाले हाथीको दग्ध किया जाताहै, वैसेही हम वज्रतुल्य बाण धनुषसे वर्षाकर रामचंद्रको भस्म कर डालेंगे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे समस्त तारा गणोंकी ज्योति जाती रहतीहै, वैसेही हम अपनी सेनाके सहित जायकर रामचंद्रकी सेनाका नाश कर डालेंगे ॥ २० ॥

नवासवेनापिसहस्रचक्षुषायुधास्मिशक्योवरु
णेनवापुनः ॥ मयात्वियंबाहुबलेननिर्जितापु
रापुरीवैश्रवणेनपालिता ॥ २१ ॥

अधिक क्या कहें सहस्र लोचन बलवान् इन्द्र और वरुणभी हमको परास्त नहीं करसकते और अधिक करके पहलेही हमने इस कुबेर पालित लंकापुरीको अपने बाहु बलसे अपने वश कियाथा ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ।

निशाचरेंद्रस्यनिशम्यवाक्यंसकुंभकर्णस्य
चगर्जितानि ॥ विभीषणोराक्षसराजमुख्य
मुवाचवाक्यंहितमर्थयुक्तम् ॥ १ ॥

राक्षसराज रावणके वचन और कुम्भकर्णके गर्जनायुक्त वचन सुन-

कर महात्मा विभीषणजी रावणके ऐसे हितकारी और अर्थयुक्त वचन कहने लगे ॥ १ ॥ हे महाराज ! आप किसलिये यह वक्षस्थल रूप फण, चिन्ता रूप विष, हास्य रूप तीक्ष्ण दंत, पंचाङ्गुलिरूप पांच शिर वाले बडे भारी सीता रूप सर्पको यहां पर लेआयेहैं ? ॥ २ ॥ हेराजन् ! जबतक पर्वतके शिखरकी समान और नख दांतको आयुध बनाये वानर गण लंकापुरीको न घेरलें, तिस्से प्रथमही आप श्रीरामचंद्रजीको सीता समर्पण करदें॥३॥जबतक श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए वज्र समान और वायुकी समान वेगवान बाण राक्षस श्रेष्ठोंके मस्तकोंको न काट डालें तिससे प्रथमही आप रामचंद्रजीको जानकी देदें ॥ ४ ॥ हे महाराज ! जिस समय रामचंद्रजी युद्ध करेंगे, उस समय कुम्भकर्ण महापार्श्व, महोदर, अथवा अतिशय यह लोग कोईभी उनके सामने खड़े न होसकेंगे ॥ ५ ॥ यदि रामचंद्रजी लंकामें आय पहुँचे तब चाहे आपकी रक्षा सूर्य और समस्त देवगणभी करें अथवा इन्द्र व यमका आश्रय ग्रहण करने या आकाश पातालमें प्रवेश करने परभी यहाँसे तुम जीते हुए नहीं निकल सकोगे ॥ ६ ॥ तिसके पीछे प्रहस्त विभीषणके ऐसे वचन सुनकर बोला कि " संग्रामके होने पर हम कदाचित् न देव दानवोंसे भय करते हैं ॥ ७ ॥ अधिक क्या कहैं जब कि, यक्ष, गन्धर्व, उरग, अथवा पतंग श्रेष्ठ गणसेभी हमको भयकी संभावना नहीं, तब भला मनुष्य रामचंद्रसे हमको कौन भय होसकताहै " ॥ ८ ॥ राजाके हित चाहनेवाले, व धर्म, अर्थ, काम, इस त्रिवर्गके तत्त्वकी भली भाँति जाननेवाले विभीषणभी प्रहस्तके अमंगलकारी वचन सुनकर यह अर्थयुक्त वचन बोले ॥ ९ ॥ हेप्रहस्त ! राक्षसराज महोदर कुंभकर्ण और तुम यह जो वृथा गाल बजातेहो कि, हम रामचंद्रको जीतलेंगे, परन्तु अधार्मिकके स्वर्गगमन करनेकी समान तुम लोग कोईभी इस कार्यके करनेको समर्थ नहीं होंगे ॥ १० ॥ हे प्रहस्त ! जिसको जहाजकी सहायता नहीं ऐसे पुरुषके समुद्र पार जानेकी समान तुम हम अथवा समस्त राक्षस गणोंसे किस प्रकारसे उन अर्थ विशारद श्रीरामचंद्रजीका वध हो सकताहै ? ॥ ११ ॥ अधिक करके यह इक्ष्वाकु कुलनंदन महारथी श्रीरामचंद्रजी अतिशय धार्मिकहैं । प्रहस्त ! हमारी बात तो दूर रहे ! ऐसे सब कार्यमें सामर्थ्यवान् पुरुषके संग्राममें देवता

लोगभी मूढ़की समान हो जातेहैं ॥ १२ ॥ प्रहस्त ! जबतक रामचंद्रजीके छोड़े हुए तेज और अमोघ बाणोंने तुम्हारे शरीरको भेदकर उसमें प्रवेश नहीं कियाहै, तबतक तुम राक्षसराजके सन्मुख वृथा बकवाद करतेहो ॥ १३ ॥ अबतकभी श्रीरामचंद्रजीकी बाँहोंसे छूटे हुए प्राण हरण कारी वज्रतुल्य वेगशाली तीखे बाण तुम्हारे शरीरको भेदकर फिर उनके तरकसमें जायकर नहीं प्रवेशे हैं. प्रहस्त ! इसी कारणसे तुम इसी भाँति अपनी बडाई मारतेहो ॥ १४ ॥ प्रहस्त ! बलवान् राक्षसराज रावण, त्रिशीर्ष, मेघनाद, तुम, कुम्भकर्ण, अथवा उसका पुत्र निकुम्भ तुम लोग कोईभी रणभूमिमें इन इन्द्रकी समान विक्रमी रामचंद्रजीका विक्रम सहन करनेको समर्थ नहीं होंगे ॥ १५ ॥ देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, अतिरथ और अकम्पन, इनमेंसे कोईभी श्रीरामचंद्रजीके संग युद्ध करनेका साहस न करेंगे ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं हमारे राजाही कुबुद्धिके वश हुए हैं और तुमही लोग इनके मित्ररूपी अमित्रहो और तुम लोगोंकीही सलाहसे राक्षस कुलका नाश होजायगा ॥ १७ ॥ हमारा तुम सबसेही यही कहनाहै कि, अनन्तबलयुक्त शरीरधारी हजार-शीर वाले महा बलवान सर्पोंके मुखमें फँसे हुए रावणको किसीप्रकार मुख से निकलना बताओ अर्थात् रामचंद्रजी इन्हें माराही चाहते हैं तुम लोग बचाओ ॥ १८ ॥ जिसप्रकार किसी पुरुषको भूत लगनेपर उसके सुहृद् लोग केश ग्रहणादिरूप दंड देकर उसकी रक्षा करतेहैं ऐसेही तुम सब लोगोंको मिलकर रावणकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १९ ॥ प्रहस्त ! सुचरित्र रूप जलपूर्ण रामचंद्र रूप समुद्रकी तरंगसे ढका हुआ, काकुत्स्थ रूप पातालमें यह रावण गिराहीचाहताहै, सो इस राक्षसकी यत्नसे तुमलोग रक्षा करलो ॥ २० ॥ हम इस लंकापुरीके राक्षसराजके व इनके सुहृद् और सबही राक्षसोंके हितार्थ कहते हैं कि–राक्षसराज श्रीरामचंद्रजीको सीताजी देडालें ॥ २१ ॥

परस्यवीर्यंस्वबलंचबुद्ध्वास्थानंक्षयंचैवतथैववृद्धिम् ॥ तथास्वपक्षेप्यनुमृश्यबुद्ध्यावदेत्क्षमंस्वामिहितंसमंत्री ॥ २२ ॥

जो मंत्री विचार करके, शत्रुकी ओरका वीर्य और अपनी ओरका वीर्य, बल क्षय, इन बातोंके विषयमें भलीभाँति शोच विचार और परामर्शकरके अपने स्वामीको हितकी बात कहते हैं वेही यथार्थ मंत्रीहैं ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० लं० चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ।

वृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्तन्निशम्ययत्नेनाविभीषणस्य ॥
ततोमहात्मावचनंबभाषेतत्रेंद्रजिन्नैर्ऋतयूथमुख्यः ॥ १ ॥

बृहस्पतिजीके तुल्य बुद्धिमान् विभीषणजीके यह उदार वचन सुनकर राक्षसश्रेष्ठ महाबलवान् मेघनाद कहने लगा ॥ १ ॥ हे कनिष्ठ तात! आप डरेहुएकी समान किस कारणसे ऐसे अनर्थकारी वचन कह रहे हैं. पौलस्त्य कुलमें जन्म लेनेवालेकी बात तो दूररहे, सहज सहज, दुर्बल मनुष्य कुलमें जन्मा हुआ मनुष्यभी ऐसा नहीं करेगा और नऐसा कार्य करेगा ॥ २ ॥इस कुलमें एक केवल छोटे चचा विभीषणही बलवीर्य पराक्रम धीरता शूरता और तेजहीन पुरुष उत्पन्न हुए हैं ॥३॥ हे डरपोक! आप यह क्या मर्यादा दिखातेहैं ? हमारा तो केवल एकही साधारण राक्षस उन दो राजकुमारोंको मारडालेगा ॥ ४ ॥ आप जानतेहीहैं कि; देवराज इन्द्र त्रिलोकका राजाहै; परन्तु हम उसको बाँधकर पृथ्वी पर ले आये व देवता लोग इस भयंकर वृत्तान्तको देख भयभीत हो दशों दिशाओंको भागगये ॥ ५ ॥ फिर हमने बलपूर्वक ऐरावत हाथीके दोनों दांत उखाड़ लिये; उस समयमें वह इन्द्रका हाथी आर्त नाद करता हुआ पृथ्वीपर गिरा तिस समय हमारा यह पराक्रम देखकर समस्त देवता लोगोंने भयपा-याथा ॥ ६ ॥ हमने देवता लोगोंका गर्व हरण कियाहै और रणभूमिमें दैत्योंका नाश करके उनकी स्त्रियोंको शोक उत्पन्न करायाहै, इस कारण ऐसे वीर्यशाली होकरभी किस कारण हम इन साधारण मनुष्य राजपुत्र राम लक्ष्मणसे युद्ध करनेको समर्थ न होंगे ! ॥ ७ ॥ धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणजी इन्द्रके समान अजेय महा तेजस्वी इन्द्रजीतके यह वचन सुनकर महा अर्थ युक्त वचन कहनेलगे ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! तुम कार्य अकार्यका विचार करनेमें अत्यन्त अज्ञानीहो कारण कि, अबतक तुम्हारी

बुद्धि बालककी समान पकी नहीं हैं; इस कारण तुम अपना नाश करनेके अर्थही ऐसे प्रळाप वचन कह रहेहो ॥ ९ ॥ मेघनाद ! तुम नाम मात्रको रावणके पुत्र और अत्यन्त सुहृद्हो, परन्तु वास्तवमें तुम इनके परमशत्रुहो कारण कि राक्षसराजको घोर विपदमें पडे हुए देखकरभी तुम उनको निवारण नहीं करते ॥ १० ॥ इन्द्रजीत ! तुमने जो खोटे मंत्रके यह वचन कहे तिससे हमारे मतसे तुम मार डालनेके योग्यहो और जिसने ऐसे चपल चित्त बालकको यहाँ लाकर मंत्रियोंके बीचमें परामर्श करनेको बुलाया, उसकोभी मार डालना उचित है ॥ ११ ॥ हे मेघनाद ! तुम कार्य अकार्यका विचार नहीं जानते, बडे बोलनेवाले विनय रहित तीक्ष्ण स्वभाव अदीर्घदर्शी मूर्ख दुर्मति और दुरात्माहो, इसी कारणसे बालककी समान ऐसा कहते हो ॥ १२ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी रण भूमिमें खडे होकर ब्रह्मदंडकी समान व कालाग्निकी समान प्रकाशित तीखे बाण छोडेंगे तब उन बाणोंको कौन सहनेमें समर्थ होगा यह हम जाना चाहते हैं ॥ १३ ॥

धनानिरत्नानिसुभूषणानिवासांसिदिव्यानिम णींश्चचित्रान् ॥ सीतांचरामायनिवेद्यदेवींवसे मराजन्निहवीतशोकाः ॥ १४ ॥

हे बडे भाई साहब ! आपसे अधिक और क्या कहें धन, रत्न वसन भूषण और मणिके सहित रामचंद्रजीको तुम सीता देडालो, ऐसा हो जायतौ तुम स्वच्छन्द होकर अपनी इस लंकापुरीमें वसे रहो ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० लं० पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ।

सुनिविष्टंहितंवाक्यमुक्तवंतंविभीषणम् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंरावणः कालचोदितः ॥ १ ॥

जब धर्मात्मा विभीषणजीने इस प्रकार अर्थ युक्त हितकारी वचन कहे तब रावणने काल प्रेरितकी समान उनको यह कठोर वचन कहे ॥ १ ॥ शत्रु अथवा क्रोधित सर्पके साथ एकत्र वास करले, परन्तु नाम मात्रके मित्र और शत्रुकी सेवा करनेवाले इस प्रकारके मित्रके साथ कभी वास

नहीं करना योग्यहै ॥ २ ॥ हे बिभीषण त्रिलोकमें कौनसी बातको हम नहीं जानतेहैं, हम जाति वालोंका यह स्वभाव भली भांति जानतेहैं, कि बिरादरीमें एक आदमी पर विपद् पडनेसे दूसरे आनंदित होतेहैं ॥ ३ ॥ बिभीषण! जाति वाले लोग,—इसमेंभी प्रधान पंचगण, विद्वान धार्मिक और वीर पुरुषोंका निरादर करतेहैं और उनको परास्त करनेंके लिये वह लोग सदाही छिद्र ढूंढ़ा करतेहैं ॥ ४ ॥ जातिसे अधिक भयानक और कौनहै! इन बिरादरीके मनका भाव जानना अति कठिनहै यह जातिरूपी आततायीगण परस्परमें विपद आई हुई देखकर परस्पर हर्ष प्रकाश किया करतेहैं ॥ ५ ॥ बहुत दिन हुए कुछ हाथी पद्मवनमें भ्रमण कर रहेथे उस कालमें उन्होंनें कई एक हाथी सवार देखे कि जिनके हाथमें फंदेभीथे उन हाथियोंने इनको देखकर बिरादरी वालोंके संबंधमें कुछ श्लोक कहेथे जो कि तुमसे वर्णन करते हैं * ॥ ६ ॥ उन्होंने कहाथा कि हम अग्नि, पाश, अथवा और शस्त्रोंके देखनेंसे नहीं डरते, परन्तु इन स्वार्थ पर जातिवाले लोगोंको देखकर हमें अत्यन्य भय लगताहै ॥ ७ ॥ कारण कि यह जाति वालेही हाथी पकड़नें वालोंको बताय देतेहैं; इसही कारणसे कहते हैं समस्त भय और समस्त कष्टोंके जातिवाले कारणहैं ॥ ८ ॥ हमनें सैकड़ों वार देखाहै कि जगत्में जितने प्रकारके भयहैं, उनमें जाति वालोंसे भय होताहै,उसकाही परिणाम विशेष कष्टभारी होताहै,जैसे गायोंमें हव्य कव्यादिके लिये दुग्ध, स्त्रियोंमें चंचलता. और ब्राह्मण लोगोंमें तपस्या होतीहै, इसी प्रकार निःसन्देह जाति वाले लोगोंसे सदाभय रहताही है ॥ ९ ॥ हे बिभीषण! हमनें जो शत्रु गणोंको पराजित करके अतुलनीय ऐश्वर्य प्राप्तकिया है, व तीनों लोक हमारा

---

*जाति वालोंके सम्बन्धमें एक औरभी किमदन्ती प्रसिद्धहै कि एक समय एक सघन वनमें होकर कई एक गाडियें जाय रहीथीं इन सब गाडियोंमें केवल कुल्हाडियें भरी हुईथीं। जिनको देखकर वनके वृक्ष अतिघबडाये और बोले कि अब एक वृक्षभी इस वनका न बचेगा हा! हमारे भाग्यही ऐसे हैं, उस समय किसी दूसरे वृक्षनें कहा कि भाई जबतक हमारे जाति वाले इन कुल्हाडियोंकी सहायता नहीं करते, तब तक कुछ यह हमारा नहीं कर सकतीं। अर्थात् जब हमारी जाति वाले वृक्षोंके बेंटे इन कुल्हाडियोंमें पड़ेंगे तब यह हमको काटनेंमें समर्थ होंगी। बस जाति वालेही समस्त अनर्थके मूलहैं।

आदर करतेहैं. सो हे सौम्य हम जानतेहैं कि हमारा यह सौभाग्य तुम्हारे असंतोषका अत्यन्तही कारण हुआहै॥१०॥जैसे कमलके पत्ते पर जलकी बूंदें गिरनें पर वह किसी प्रकार उसपत्र पर नहीं ठहर सकती हैं, वैसेही क्रूर स्वभाव वाले पुरुषके साथ मित्रता करनेंसे वह मित्रता किसी प्रकार उसके अन्तःकरणमें नहीं जमती ॥ ११ ॥ शरदकालका मेघ जिसप्रकार गर्जता और वर्षताहै, परन्तु उससे किसी प्रकारभी पृथ्वी नहीं भीजती वैसेही दुर्जनके साथ कितनोही मित्रता प्रगट की जाय वह वास्तवमें किसी फलकी न देनेवाली होकर केवल वृथा गर्जनें और वर्षनेंकी तुल्य होतीहै ॥ १२ ॥ जिसप्रकार भौंरा प्यासा होकर पुष्पोंसे इच्छानुसार मधु पानकर परितृप्त होनें पर फिर उन पुष्पोंपर क्षण भरके लियेभी नहीं, वैठता इसीप्रकार दुर्जनके साथ मित्रता करनेंसे वह केवल अपनाही कार्य निकाल लेताहै. विभीषण? तुमभी ऐसेहीहो॥१३॥ जिसप्रकार मधु-लोभी भौंरा कांश फूल पर आप विशेष यत्नकरनें परभी मधुको नहीं प्राप्तहोता, वैसेही दुर्जनके साथ मित्रता करनेंसे उसके पाससे कोई फल नहीं प्राप्त होता ॥ १४ ॥जिसप्रकार हाथी प्रथम जलमें स्नान करके फिर शुन्डसे धूरि फेंककर स्नानकृत निर्मलताका नाश करके अपने गातको मलीन करताहै, वैसेही दुर्जनके साथ मित्रता करनेंसे वह अपना कार्य सिद्ध करलेने पर स्वयंही पहले स्नेहको भूलकर मित्रताका नाश करले ताहै ॥ १५ ॥ हे कुलकलंक तुझसे और अधिक क्या कहैं? तेरे जीव-नको धिक्कारहै तू हमारा सगाभाई होनेहीके कारण ऐसी वात कह कर अबतक जीवितहै, नहीं तो और कोई ऐसा कहता तो अबतक उसका हमनें नाश कर दियाहोता॥१६॥न्याय वचन कहनें वाले बिभीषणजी रावण करके इस प्रकार घोर वचनोंसे निन्दित होनें पर गदा ग्रहण करके अपने चारमंत्रि योंके सहित आकाशमें उछल गये ॥ १७ ॥ और अत्यन्त क्रोधित होकर आकाशमें टिक कर अपनें भ्राता राक्षसराज रावणसे कहनें लगे ॥ १८ ॥ हे महाराज आप बड़े भ्राता होनेंके कारण पिताकी समान माननें लायकहैं,इस लिये आप जो कुछभी कहैं वह समस्तही हमको सहन करलेना चाहिये, परन्तु आप धर्मका मार्ग परित्याग करके परदारहरणादि रूप घोर अधर्मके आचरण करने लगेहैं इसी कारणसे वडे भाई होंने परभी

आज हम आपके यह घोर वचन नसह सके ॥ १९ ॥ हेवीर! हमनें हितकी कामनासे तुमको हितकी वार्त्ता कहीथी परन्तु कालके वशको प्राप्त होकर तुमनें हमारे वचन नहीं सुने, यथार्थमें जिस पुरुषकी मृत्यु निकट आतीहै, उसकी यही दशा होतीहै जो तुम्हारीहै ॥ २० ॥ हे महाराज! सदा मीठी बात कहनेंवाले अनेकहैं, परन्तु श्रवण करनें अप्रिय और परिणाम में शुभ दायक वचनोंके कहनें वाले और श्रवण करनें वाले दोनोंही दुर्लभहैं ॥ २१ ॥ जिस प्रकार घरमें आग लग जानें पर फिर उसकी आग बुझानेंमें आलस्य नहीं करना चाहिये, वैसेही आपको सब प्राणियोंके नाशकरनें वाले कालकी फांसीमें बँधकर नष्ट होते देखकरही हमनें ऐसे हितकारी वचन कहेथे ॥ २२ ॥ महाराज! हम तुम्हें रामचंद्र करके प्रदीप्त अग्निकी समान सुवर्ण भूषित तीखे बाणोंसे मरा हुआ देखनेकी इच्छा नहीं करते इसी कारणसे हमनें इस प्रकारके हित वचन कहेथे ॥ २३ ॥ रेतेका पुल चाहै कितनाही दृढ़ क्योंन होवे, वर्षा कालके आते ही वह टूट जाताहै, वैसेही पुरुष कितनाही बलवान् अस्त्रका जाननें वाला और शूर क्यों नहो कालके आनेही पर उसका विनाश होजाताहै ॥ २४ ॥ हे महाराज! जो कुछभी हो तुम स्वामी हो गुरुहो हमने आपके हितकी कामनासे जो कुछभी कहाहै यदि उसमें कोई अपराध आपने पायाहो तौ उसको क्षमाकर दीजिये॥२५॥ लीजिये हम जाते हैं, आप हमको विदा देकर सुख प्राप्त कीजिये और राक्षसोंके सहित यह लंका पुरी भी सर्व प्रकारसे आपकी रक्षाकरे ॥ २६ ॥

निवार्यमाणस्यमयाहितैषिणानरोचतेतेवचनं
निशाचर ॥ परांतकालेहिगतायुषोनराहितं
नगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥ २७ ॥

हमतौ मंगलकी कामनासे आपकों रोकते थे, परन्तु आपनें हमारे कहनेको न माना,महाराज! आयु बीत जानें पर लोग जिस प्रकार कालके वश होकर अपने इष्ट मित्रोंके कहे हुए वचनोंको किसी प्रकारसे नहीं मानते; हे राक्षसनाथ! अब तुम्हारीभी वही दशा आय पहुँची है, जो ऐसा न होता तौ हम सरीखे सुहृद लोगोंके वचनोंका ऐसा अनादर क्यों किया-

जाता॥ ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ।

इत्युक्तापरुषंवाक्यंरावणंरावणानुजः ॥
आजगाममुहूर्तेनयत्ररामःसलक्ष्मणः ॥ १ ॥

विभीषण राक्षसराज रावणको इस प्रकार घोर वचन कहकर जिस स्थानमें श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित विराजमानथे एक मुहूर्त्त भरमें वहां पहुँच गये ॥ १ ॥ वानर यूथपोंने पृथ्वी परसे आकाशमें टिके हुए तेजसे प्रकाशमान सुमेरु पर्वतके शिखरकी समान उन विभीषणजीको देखा ॥२॥ कवच बख्तर और शस्त्रधारी उत्तम भूषण भूषित पराक्रम शाली चार मंत्रियोंके सहित ॥३॥ उन मेघ और पर्वतकी समान, वज्रकी समान जिनके अंग प्रकाशमान श्रेष्ठ आयुध धारण किये दिव्य भूषण वस्त्रधारी॥४॥बुद्धिमान वानरराज सुग्रीवजी इन पांच जनोंको देख कर समस्त वानर गणोंके सहित चिन्ता करनें लगे॥५॥सुग्रीवजी इस प्रकार एक मुहूर्त्त भरतक चिन्ता करके हनुमानादि वानरोंसे यह उत्तम वचन बोले॥६॥यह देखो हमको निश्चय जान पड़ताहै कि यह सब अस्त्र शस्त्रधारी राक्षस हम लोगोंका प्राणनाश करनेंही के लिये चारराक्षसोंके साथ यहांपर आया है॥७॥सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर यह समस्त वानर श्रेष्ठ वृक्ष और पर्वतादि ग्रहण करके यह बोले॥८॥किहे महाराज! आप शीघ्रही इन दुरात्मा लोगोंका वध करनेके लिये हमको आज्ञा दीजिये हम बहुतही शीघ्र इन पांचों का नाश करके पृथ्वीपर गिरा देंगे॥९॥जब वानर लोगोंने परस्पर इस प्रकार से कहा तब विभीषणजीने समुद्रके उत्तरतीर पर पहुँच क्षण भरतक विश्राम ले आकाशमें हो टिके॥१०॥उन दीर्घ दर्शी सुग्रीव और दूसरे वानर गणों को पुकारकर दीर्घ व गंभीर स्वरसे कहा॥११॥ राक्षस गणोंका स्वामी रावण नामक दुराचारी एकराक्षसहै,हम उसके छोटे भाईहैं और हमारा नाम विभीषणहै ॥ १२ ॥ वही दुरात्मा जटायुको मारकर जन स्थानसे जनक लड़ैती सीताजीको हरण करके लेगयाहै । क्रूर स्वभाव वाली राक्षसियोंसे रक्षित होकर जानकीजी उसके अधिकारमें दीनभावसे वास करतीहैं ॥ १३॥

हमनें " श्रीरामचंद्रजीको जानकी दे डालिये, इत्यादि बहुतसे नीति युक्त वचन कह २ कर रावणसे वारंवार विनय कीथी ॥ १४ ॥ परन्तु मृत्यु जिसकी निकट आईहै ऐसा पुरुष जिस प्रकार औषधिका सेवन नहीं करता, ऐसेही, मृत्युकाल निकट आनेंसे उसने हमारे हितकारी वचनोंको ग्रहण नहीं किया ॥१५॥ वचन मान लेनातो दूर रहा, हमको उसनें अनेक प्रकारके कटुवचन कहकर दासकी समान उसनें हमारे साथ वर्ताव कियाहै तिरस्कार कियाहै हम इसी कारणसे पुत्र परिवारको त्यागकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आयेहैं ॥ १६ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजी सर्व लोकोंके शरण देनें वालेहैं; इस कारण आप महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे निवेदनकरें कि विभीषण आयेहैं ॥ १७ ॥ तब वानर राज सुग्रीवजी विभीषणके वचन सुनकर शीघ्रही श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट गये और क्रोध सहित कहनें लगे ॥ १८ ॥ हमको जान पड़ताहै, कि शत्रुकी ओर का कोई भेदिया असावधानीसे हमारी सेनामें प्रवेशकर आयाहै; इस कारण अवसर पानेंसे उल्लू जिस प्रकार कौओंको मार डालताहै, ऐसेही यह हम लोगोंको मारडालेगा ॥ १९ ॥ हे शत्रुतापन! जिस्से वानर लोगोंका मंगल हो? आप इसी प्रकारसे कार्य अकार्यका विचार सेना सन्निवेश, उनको शिक्षादेना. और शत्रु लोगोंकी सैनाका वृत्तान्त जाननेंके लिये दूत नियतकीजिये, इस्से अवश्य आपका मंगल होगा ॥ २० ॥ राक्षस लोग कामरूपी और अतिशय बलवान होते हैं, वह लोग गुप्तभावसे टिककर कूट उपायसे दूसरेका बुरा किया करतेहैं, इसलिये उन लोगोंके ऊपर विश्वास करना हम ठीक नहीं समझते ॥ २१ ॥ हमको तो यह विश्वास होताहै कि यह राक्षस राज रावणका गुप्त भेदियाहै; यह हम लोगोंके बीचमें प्रवेश करके निःसन्देह हम लोगोंमें परस्पर भेद डलवा देंगे ॥ २२ ॥ अथवा जबकि हम इसका विश्वास करके जैसेही कि असावधान होंगे वैसेही यह बुद्धिमान हम लोगोंको मार डालेंगे ॥ २३ ॥ यदिकहो कि आया हुआ राक्षस जो कोईभी हो सेनाके बीचमें आनेहीसे हमारे बलकी वृद्धि करेगा परन्तु यह बात नीति विरुद्ध है, कारण कि पंडित लोगोंनें कहाहै कि युद्धके समय "अपने मित्र प्रेरित और वर्षाकालमें भृति द्वारा संग्रहीत और अपने बंधुओंका बल यह त्रिविध बल ग्रहण करले" परन्तु

शत्रुकी सेनाको कभी ग्रहण न करै ॥ २४ ॥ यह आया हुआ पुरुष आपके शत्रु राक्षस राज रावणका भाईहै; जातिमें राक्षसहै । और शत्रु पक्षसेही इसनें आगमन कियाहै फिर भला यह किस प्रकार विश्वास करनें योग्यहै ॥ २५ ॥ राक्षसोंके स्वामीका छोटा भाई यह विभीषण चार राक्षसोंके साथ आपकी शरणागतमें आयाहै॥ २६॥ परन्तु आप निश्चयही जानेंकि यह विभीपण रावणका पठाया आयाहै हेक्षमा शील ! जो कुछभीहो, हमारी, सम्मतिमें तौ इस रावणके पठाये हुए बिभीषणको आप दंडही दीजिये ॥ २७ ॥ यह कुटिल बुद्धि मायावी राक्षस प्रथम आपको अपना विश्वास कराय, यहांपर विराजमान रह फिर समय पाय आप पर प्रहार करनेंके निमित्तही रावणका भेजा हुआ यहां पर आयाहै ॥ २८ ॥ हेमहाराज ! यह क्रूर विभीपण रावणका भाईहै; इस कारण शीघ्रही तीक्ष्ण दंड विधान करके इसके चारों मंत्रियोंके साथ इसको मरवाडालिये ॥ २९ ॥ वाक्य विशारद सैनापति सुग्रीवजी क्रोधमें भर वाक्य कुशल श्रीरामचंद्रजीसे यह कहकर मौन धारण करते हुए ॥ ३० ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर समीपमें बैठे हुए हनुमानादि वानर गणोंसे यह वचन बोले॥ ३१ ॥ वानर राज सुग्रीवजीनें रावणके छोटे भाई विभीषणके विपयमें जो युक्ति युक्त वचन कहे हम जानतेहैंकि इन समस्त वचनोंको, तुम लोगोंनें सुनाहीहै ॥ ३२ ॥ सुहृदके कार्याकार्यमें संदेह उपस्थित होनें पर अखंड मंगलाभिलाषी बुद्धिमान और विचार समर्थ मंत्रियोंको, ऐसा उपदेश अवश्यही करना चाहिये; इस कारण तुम लोग इस विषयमें अपनी २ सम्मति प्रकाश करो ॥ ३३ ॥ आलस्य रहित वानर गण श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर उनका प्रिय करनेंकी कामनासे विनय व नम्रता युक्तहो बोले ॥ ३४ ॥ हेरघुनंदन ! हेश्रीरामचंद्रजी ! आप त्रिलोकीकी समस्त बातोंको जानतेहैं; तथापि सुहृद भावसे हम लोगोंसे जो कुछ आपनें पूछा, यह केवल हम लोगोंका सन्मान बढ़ानेंके लिये ॥३५॥ आप सत्यव्रत, शूर, धार्म्मिक और विपुल विक्रमकारीहो, इष्ट मित्रोंके प्रति तुम्हारा अटल विश्वासहै, आप बड़े विचारवानहैं, ॥ ३६ ॥ इस समयमें आपके निकट बुद्धिमान, चतुर कार्य कुशल मंत्रीलोग एक २

करके अपनी २ सम्मति प्रगट करें ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे वानर युवराज बुद्धिमान अंगदजी बिभीषणका चरित्र परीक्षा करनेंके लिये श्रीरामचंद्रजीसे कहनें लगे ॥ ३८ ॥ हेमहाराज! बिभीषण शत्रुकी ओरसे आया हुआहै, इस कारण इस्से शंका करना चाहिये; व सहसा इसका विश्वास करनाभी योग्य नहींहै ॥ ३९ ॥ क्योंकि क्रूर स्वभाव वाले राक्षस लोग सदा अपने मनका भाव छिपाये घूमा करते, और अवसर पायकर ऐसा प्रहार करतेहैं। कि वह अनर्थ महा भयंकर हो उठताहै ॥४०॥ पहले हिताहितका विचार करके बल संग्रह करना चाहिये, जिसमें अधिक गुणहो उस बलको संग्रह करै, और जिसमें गुणसे दोष अधिकहों उस बलका त्याग करै ॥ ४१ ॥ हे महाराज! इसी कारणसे हम कहतेहैं कि जो आप इस आये हुए बिभीषणमें अधिक दोष देखें, तब तौ उसका त्याग कर दीजिये, अथवा जो वह विशेष गुणशालीहो तौ शंका रहित चित्तसे उसका ग्रहण कीजिये ॥४२॥ तिसके पीछे शरभ नामक वानर क्षण भरतक चिन्ता करकै यह अर्थ युक्त वचन बोला कि हे नर शार्दूल! बिभीषणके चरित्रकी परीक्षा करनेंके निमित्त एक दूत उसके पास भेजिये ॥४३॥ फिर दूतके मुखसे यथार्थ मनका अभिप्राय जानकर यथाविधि अपनी सूक्ष्म बुद्धिसेभी विचार और परीक्षा करकै इसको ग्रहण कर लीजिये ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे मंत्रजाननेंमें चतुर जाम्बवानजी यथा शास्त्र विचार करते हुए यह गुण सहित और दोष रहित वचन बोले ॥४५॥ हे राजन्! बिभीषण राक्षस राजको शंकटमें पतित देखकरभी जब कि वे अवसरमें उसके अधिकारसे हमारे अधिकारमें आयाहै तब तौ निश्चयही जाना जाताहै कि आपके सहित वैर बांधे हुए राक्षसोंके स्वामी रावणनेंही इसको भेजाहै; इस कारण इस्से अनभल होनेंकी सम्पूर्ण संभावनाहै; इस कारण इसका त्यागही देना ठीकहै ॥ ४६ ॥ नीति अनीतिके जाननेंमें पंडित मैन्द नामक वानर विचार करके यह अर्थ युक्त वचन बोला ॥४७॥ हे नृपति! यह बिभीषण रावणका छोटा भाईहै; प्रथम तौ इस्से मधुर वाणीके द्वारा समस्त बात पूछनी चाहिये ॥ ४८ ॥ हे नर श्रेष्ठ! पहले यह जान लेना उचितहै कि इस बिभीषणका स्वभाव दुष्टहै अथवा नहीं, तिसके पीछे बुद्धिसे बिचारकर जो करनें योग्यहो वह कीजियेगा ॥ ४९ ॥ तिसके पश्चात् सर्व शास्त्रोंके जाननें वाले मंत्री श्रेष्ठ

हनुमानजी यह अर्थ युक्त मिताक्षर मधुर सन्दर्भ व श्रवण सुखकारी वचन कहनें लगे ॥ ५० ॥ कि हे वचन बोलनें वालोंमें श्रेष्ठ! आप अत्यन्त बुद्धि शक्ति सम्पन्न और समस्त शास्त्रोंके अर्थको निरूपण करनेंमें समर्थ हैं, हमको जान पडताहै कि यदि सुर सचिव बृहस्पतिजीभी परामर्श देनें वाले हों तौ वहभी आपको परामर्श नहीं दे सकते; वही क्या वरन कोई-भी आपके वचनोंका अनादर नहीं कर सकता ॥ ५१ ॥ हे राजन्! हम तर्क करनेमें कुशल, मंत्रि पद वाच्य, अतिशय बुद्धिमान् या इच्छानुसार ऐसा नहीं करतेहैं, परन्तु इस बडे भारी कार्यके उपस्थित होनेंसे जब आपने सन्मान देकर पूछा तब हम आपके गौरवसे यह वचन कहते हैं ॥ ५२ ॥ हे महाराज! आपके अंगदादि मंत्री लोगोंनें बिभीषणके दोष गुणकी परीक्षा करनेंके विषयमें, जो कुछ कहा इसमें दोषभी अनेकहैं। विशेषता इस समय बिभीषणके चरित्रादिकी परीक्षा करना ठीक नहीं हो सकेगा ॥ ५३ ॥ बिभीषणको यहांपर बुलाकर उसका वृत्तान्त पूछनेंके अतिरिक्त उसके मनका भाव और बल व वीर्य्योदिका विषय कुछभी नहीं जाना जाय सकता, परन्तु सहसा आपके समीपभी उसको लाना अनुचित है ॥ ५४ ॥ दूत भेजनेंके संबंधमें आपके मंत्रियोंनें जो कुछ कहाहै, सो विना प्रयोजन हुए इसकीभी हम कुछ आवश्यकता नहीं देखते ॥ ५५ ॥ और जाम्ववान्जीनें जो " बिभीषण राक्षस राजको शंकटमें पतित देख-करभी जबकि कुछ अवसरमें उसके अधिकारसे हमारे अधिकारमें आयाहै।" इत्यादि कहाहै; परन्तु बिभीषण अनवसरमें जो रावणको परित्याग करके जिस कारणसे यहां आयाहै, उसके संबंधमें हम कुछ कहना चाहतेहैं, आप लोग स्थिर चित्तसे उसको श्रवण करें ॥ ५६ ॥ आपके व रावणके दोष गुण विचार, अधार्म्मिक रावणके समीपसे जो अत्यन्त धर्मात्मा आपके निकट बिभीषण आये तौ आपके निकटका यह देश सुदेशहै,और ऐसेही धर्मात्मा पुरुषके निकट पहुँचानें वाला कालभी श्रेष्ठ कालहै,यह कुछभी कुदेश व कुकाल नहींहै ॥ ५७ ॥ कारण कि रावणमें दौरात्म और आपको गुणवान और अधिक विक्रम सम्पन्न देख जो बिभीषण आपके निकट आयाहै,इस्से तौ उसका अधिक बुद्धिमानी हीका कार्य हुआहै ॥ ५८ ॥ अज्ञात कुलशील दूतके द्वारा बिभीषणका वृत्तान्त

जाननेंके विषयमें जो कुछ मैन्दनें कहाहै,हमनें इसके संबंधमें भी जो कुछ विचार करके सिद्धान्त कियाहै,वहभी आपलोग सुनें ॥ ५९ ॥ हे महाराज! बिभीषण बुद्धिमानहै, इसकारण अज्ञात कुल शील किसी पुरुषके सहसा उनसे कुछ पूछनेंपर,उसके मननें कोई शंका अवश्य होगी। फिर सुख पानेंकी लालसासे जो आपके साथ वह मित्रता करने आयाहै वह दूषित होजायगी, कारणकि बुद्धिमान पुरुषसे कोई वात पूछनें पर सहसा उसके मनमें शंका होजातीहै, वास्तवमें आया हुआ पुरुष मित्रहो तो मिथ्या अनुसन्धान करनेंसे उसके मनमें अन्तर पड़नेंकी संभावनाहै। और यहभी कुछ बात नहीं कि प्रश्न करतेही किसीकी भाव गति जानली जावै ॥ ६० ॥ हे राजन्! शत्रुके मनका भाव सरलतासे एक साथही जानलेना अत्यन्त कठिनहै; इस कारण कुछ दिन बिभीषणको यहां रखकर उसका व्यवहार देखिये; बस उसकी बातोंसेही उसका अभिप्राय प्रगट होजायगा; चलाये हुए वाण समूहसे जिसप्रकार वीरोंकी वीरता जान लीजातीहै, वैसेही व्यवहार करनेंसे पुरुषकी प्रकृति(आदत)जान लीजाती है॥६१॥जो कुछभीहो हमनें तो जहांतक परीक्षाकीहै, तिस्से तो विभीषणके वाक्यादिमें कोई खोटा आशय जाना नहीं गया, और उसके मुखपरभी अप्रसन्नताका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता; इस कारण उसके चरित्र संबंध में हमको तो कोईभी संदेह नहीं है ॥ ६२ ॥ जिसके अंतःकरणमें कपट भरा होताहै, वह सावधान और अशंक होकर किसीप्रकारसे वचन नहीं कह सकता। सो हे महाराज! जो विभीषण शठ होता तो कभी शंकारहित और सावधानीसे आपके निकट नहीं आय सकता, और उसके वचनोंमेंभी कोईदोष नहीं पायाजाता अतएव हमको तो उसके प्रति कोई सन्देह नहीं है ६३॥ मनका भाव छिपानेंको कितनीही चेष्टा की जावै, परन्तु वह किसी प्रकारसे नहीं छिपसकती, कारणकि अंतःकरण शठतासे पूर्णहो या श्रेष्ठहो, वह सहसा प्रकाशित होहीजाताहै ॥ ६४ ॥ हेकार्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी! देशकालके संबंधमें विचार करके जोकार्य कियाहै, उसका परिणाम अवश्यही सफल होताहै, इस कारण, इन बिभीषणका आना सफलहै ॥ ६५ ॥ कारणकि यह बिभीषण आपको रावणके वधमें उद्योगी देख, रावणको बल गर्वित और पापकार्यमें लगा हुआ देख, वालिका

नाश और सुग्रीवको राज्य पाये जान ॥ ६६ ॥ जिस प्रकारका वालिको मारकर आपने सुग्रीवको राज्य दियाहै वैसेही रावणका विनाश करके आप उसकोही लंकाका राज्यदेदेंगे, यही आशा करके विभीषण आपकी शरणमें आयेहैं; अतएव आदर मान सहित इनका ग्रहण करनाही कर्तव्यहै ॥ ६७ ॥

यथाशक्तिमयोक्तंतुराक्षसस्यार्जवंप्रति ॥
प्रमाणंत्वंहिशेषस्यश्रुत्वाबुद्धिमतांवर ॥ ६८ ॥

हे बुद्धिमान। हमनें विभीषणके चरित्रकी सरलताके संबंधमें अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ कहा, वह समस्तही आपनें श्रवण किया,अब जो कुछ कहना कर्तव्यहो वह आप लोग कीजिये ॥ ६८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लं० सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥

अथरामःप्रसन्नात्माश्रुत्वावायुसुतस्यह ॥
प्रत्यभाषतदुर्धर्षःश्रुतवानात्मनिस्थितम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे सर्व शास्त्रोंके जाननेंवाले अजीत श्रीरामचंद्रजी यत्न सहित पवनकुमार हनुमानजीके वचन सुनकर अतिशय प्रसन्नता प्राप्त करते हुए यह उत्तर देते हुएकि ॥ १ ॥ हे वानरगण! तुम लोग हमारा हित सिद्ध करनेंके लिये यत्न करतेहो, इस कारण विभीषणके संबंधमें हमको जो कुछ कहनाहै, वह समस्तही तुम्हारे समीप वर्णन करतेहैं; श्रवणकरो ॥ २ ॥ जबकि विभीषण मित्रता करनेंके लिये, हमारी शरणमें आयाहै, तब तौ चाहै उसमें अत्यन्त दोषभीहों तथापि हम उसको नहीं त्याग सकते; अधिक करके ऐसा आचरण करने अर्थात् शरणागतको शरण न दैनेसे साधु लोगोंके निकट निन्दनीयहोना पड़ताहै* ॥ ३ ॥ तिसके पीछे वानर राज सुग्रीवजी, श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर मनमें अनेक भांतिके तर्क और परामर्श करते विभीषणजीके चरित्रमें दोष दिखलानेंवाले यह हितकारी वचन बोले ॥ ४ ॥

* शिबिराजानें अपना प्राण देकर कबूतरको बचाया, और दधीचिनें देवतालोगोंको शरणदी जान अपने शरीरकी अस्थि देदी ॥

यह निशाचर अच्छे चरित्रवालाहो, या बुरे चरित्र वालाहो, जबकि यह अपने भ्राताको ऐसे शंकटमें पड़ा देखकर उसे छोड़ यहां चला आया ॥ ५ ॥ तब विपदमें पड़ा हुआ देखकर बिभीषण जिसका त्यागन करे ऐसा हम उसका कोई अन्तरंग मित्र नहीं देखते हे महाराज! बिभीषण इस समय आपकी शरणमें आताहै, परन्तु किसी विपदमें हम लोगोंके पड़तेही यह उसी समय हमको त्यागकर यहांसे चला जायगा वानर नाथ सुग्रीवजीका वचन सुन सबकी ओर निहार ॥ ६ ॥ सत्यपराक्रम काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजी मुस्कुराकर पुण्यलक्षण लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण! वानरराज सुग्रीवजीनें जो कुछ कहाहै, वह विना बहुत कालतक वृद्धजनोंकी सेवा किये, और शास्त्रोंके विना पढ़े सुने कोईभी ऐसे वचन कहनेंको समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ ॥ सुग्रीवजीनें बिभीषणका एक दोष जो बताया कि इसनें अपने भाईको छोड़ दियाहै, तिसका संबंधभी सर्वभूप साधारण प्रत्यक्ष सर्वलोकप्रसिद्ध और प्रथमसे सूक्ष्मतर औरभी कुछ कहनाहै ॥ ९ ॥ पंडित लोग—जाति और निकट रहनेंवाले दूसरे राजाकोही शत्रु बतायकर कीर्तन किया करते हैं, कारण कि शंकट पड़नेंसे, यही लोग राजाका नाश करनेंकी चेष्टा किया करते हैं, हे लक्ष्मण! रावणका भ्राता बिभीषणभी राक्षसोंके स्वामी रावणको शंकटमें पड़ा हुआ देखकर उसका नाश करानेंके लियेही यहां पर आया है। जबकि यह बिभीषण अपनी जातिके शत्रु रावणके भयसे यहां पर आयाहै, यदि यह अपनेभाईसे प्रीतिकर उसके प्रेरणाकिये यहां पर आते तौ कोई विश्वासघातकता दोषोंकी सम्भावना होसकती, यह तौ पापचारी अपने भ्राताके आचरणसे विरुद्ध होंनेके कारण उससे निकाले जाकर यहां आये हैं इस कारण हम इनमें किसी प्रकारकाभी दोष नहीं देखते ॥ १० ॥ जातिवाले लोग चाहै कितनेही निष्पाप हों परन्तु अपना हितसाधनेंकी सदाही चेष्टा किया करते हैं; इस कारण जातिवाले लोग हित कारी होंने परभी राजाके शंका दिलानेंवाले होते ही हैं ॥११॥ हे सुग्रीव! तुमनें शत्रुकी सैना साथ रखनेंमें जो दोष बतायेहैं, हम उसके संबंधमेंभी यह नीतिशास्त्र सम्मत उत्तर देतेहैं, तुम सुनो ॥ १२ ॥ हम बिभीषणके जातिवाले नहीं हैं, इस कारण वह हमारा नाश करके

हमारा राज्य अधिकार करनेंको यहां नहीं आयेहैं; वरन अपने भ्राताका बिनाश कराय उसका राज्य पानेंकी आशासे हमारे पास आये हैं हमको ज्ञात होताहै कि विभीषण कार्य अकार्यके विचार करनेंमें समर्थहैं इसकारण इनका ग्रहण करनाही योग्यहै ॥ १३ ॥ यह बात प्रसिद्धहै कि भाई लोग परस्पर मिलकर अव्याकुल चित्त और सन्तुष्ट मनसे वास करतेहैं; परन्तु कालक्रमसे सबकी राज्यलाभलालसा बलवती होनेंपर परस्पर भेद पड़जाताहै । तिसके पीछे जातिवालोंकी रीति जिसप्रकारसे चली आईहै, उसके अनुसारही युद्ध कुलाहल और परस्पर भेद पड़जाताहै, इस कारण बोध होताहै कि विभीषण अवतक रावणके साथ सुहृदतासे वास करताथा, अब किसी कारण वश शत्रुता होनेंपर उसका बिनाश करके उसका राज्य पानेंकी आशासे हमारी शरणागत हुआहै इस कारण विभीषणका ग्रहण करनाही उचितहै ॥ १४ ॥ हे वत्स! जो तुम ऐसी शंका करो, कि भरतनें राज्य पायकरभी किस कारणसे उसे ग्रहण न किया; परन्तु हे लक्ष्मण! पृथ्वीपर भरतकी समान निर्लोभी भ्राता और हमारी समान पिताके वचन माननेंवाला पुत्र, और तुम्हारी समान सर्व यत्नसे सब प्रकारका सुख छोड़ छाड़कर, मित्रकार्यको साधन करनेंवाले सुहृद अत्यन्त दुर्लभहैं ॥ १५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीव व लक्ष्मणजीसे यह वार्ता कही तब बुद्धिमान सुग्रीवजी खड़ेहो प्रणाम कर यह बोले ॥ १६ ॥ हे क्षमाशील! ऐसा समझमें आताहै कि रावणनेंही इस राक्षसको यहांपर भेजाहै । इस कारण हमारी सम्मतिसे तो इसका मारडालनाही उचितहै ॥ १७ ॥ हे पापरहित! यह कुटिल बुद्धिवाला राक्षस रावणके द्वारा पठाया जाकर आपके हमारे, व सैनाका विनाश करनेंहीके लिये यहांपर आयाहै । यह विश्वासमें डालकर हमारे ऊपर प्रहार करैगा ॥ १८ ॥ यह लक्ष्मणजीकेही ऊपर चोट चलावेगा; इस कारण रावणका भ्राता यह क्रूर विभीषण मंत्रि लोगोंके साथ वध करडालनेंहीके योग्यहै ॥ १९ ॥ वचन बोलनेंमें चतुर सैनापति वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी, वाक्य विशारद श्रीरामचंद्रजीसे ऐसा कहकर मौन हुए ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीके यह वचन सुन एक क्षणभर चिन्ताकरके वानर राज सुग्रीवजीसे यह शुभ वचन बोले ॥२१॥ हे सुग्रीव! राक्षस विभीषण दुष्ट

हो अथवा भलाहो, परन्तु यह हमारा कुछभी बुरा नहीं कर सकता ॥२२॥ हे वानर राज! एक साधारण राक्षस विभीषणकी क्या चलाई, यदि हम इच्छा करैं तो क्षणभरमेंही पृथ्वीके समस्त पिशाच, दानव, यक्ष, और राक्षसोंके उंगलीके पोरू ऐसेही संहार कर सकतेहैं ॥ २३ ॥ और तुमनें शत्रु सेनाके ग्रहण करनेंमें जो दोष बतायाहै, इसके संबंधमें हमनें एक इतिहास सुनाहै; वह तुम्हें सुनातेहैं, कि एक समय कोई व्याधा अपनी स्त्री को घरसे निकालकर कबूतरके घोसलेसे युक्त एक पेड़केनीचे आया और उस समय वर्षा होरहीथी महा शीत पड़ रहाथा उस कबूतरकी कबूतरीको उसने पहले जंगलमें पकड़ लियाथा भूख प्यास और जाड़ेसे व्याधा व्याकुलथा कबूतरनें आश्रममें आये हुए उस शत्रुको शीतसे आरत देख अग्नि लाय शीत निवारण कर साध्यानुसार उसकी सेवा करकै पीछे उसकी क्षुधा निवारण करनेंको अपना मांसतक देदेताहुआ अर्थात् उस अग्निमें कूद पड़ा और शरणागत वत्सलताके कारण विमानमें बैठ स्वर्गको गया यह देख व्याधेको ज्ञान हुआ तब वह कबूतरीको छोड़ तप करने गया और कबूतरीभी उसी अग्निमें प्राण त्याग स्वर्गको गई ॥ २४ ॥ हेवानरश्रेष्ठ सुग्रीव! जबकि जड़जीवनेंभी भार्याके मार डालनेंवाले शरणमें आये शत्रुका निरादर न करके यथा विधिसे उसका सन्मानही किया, फिर भला हम क्षत्रिय होकर किस प्रकारसे शरणमें आये शत्रुका अनादर करैं ॥ २५ ॥ प्रथम महर्षि कण्वजीके पुत्र सत्यवादी महर्षि कण्डुजीनें जो कुछ धर्म युक्त गाथा गाईथीं; हम उन्हें कहतेहैं तुम सुनो ॥ २६ ॥ हेशत्रुओंके तपानेंवाले सुग्रीवजी! "चाहै शत्रु क्यों नहो, परन्तु हाथ जोड़ दीन भावसे अपने घरमें आयकर प्रार्थना करै तौ धर्म रक्षाके लिये उसको नहीं मारना चाहिये ॥ २७ ॥ शत्रु आतरहो, या अहंकार युक्तहो, परन्तु कातरभावसे उसके शरण आनेंपर प्राण देकरभी उसकी रक्षा करना उचितहै, ऐसा करनेंहीसे यथार्थ धार्मिकपनका कार्य होताहै ॥ २८ ॥ परन्तु, यदि, भय, मोह अथवा इच्छानुसारही हो, अपनी शक्तिके अनुसार जो शरणागतकी रक्षा नहीं करता, तौ पाप ग्रसित होकर उसको सब लोकमें निंदाका पात्र बनना पड़ताहै ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे शरणागतको रक्षा न करनें पर यदि वह शरणागत किसी

प्रकारसे नाशको प्राप्त होजाय, तौ वह नाशको प्राप्त हुआ पुरुष उस रक्षा न करनें वालेके पुण्यका भागी होकर स्वर्गमें चला जाताहै ।" ॥ ३० ॥ हेसुग्रीव ! शरणागतकी रक्षा न करनेंसे अवश्यही वीर्यहीनकी समान खोटे यशको प्राप्त कर पवित्र स्वर्गसें भ्रष्ट होना पड़ताहै ॥ ३१ ॥ इस कारण हम उन महर्षि कण्डुके धर्म युक्त यशके बढ़ानें और स्वर्गके प्राप्त करानेंवाले श्रेष्ठ उपदेश वचन यथावत् प्रतिपालन करेंगे, जिस्सेकि हमको विशेष फल प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥ हेसुग्रीव! हमारा सबसे बड़ा संकल्प यहीहै कि जो केवल एकही वार "मैं आपकी शरण आया" यह वचन कहकर हमारी शरणमें आवैगा, वह कोईभी क्यों नहो; हम उसी समय उसको अभय दान देदेंगे *॥३३॥ हे वानर श्रेष्ठ सुग्रीव! आया हुआ पुरुष विभीषणहो, अथवा स्वयं रावणहीहो, तथापि हम अभय प्रदान करतेहैं कि तुम शीघ्र उसको हमारे निकट लेआओ ॥ ३४ ॥ वानरराज सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर सौहार्द भावसे परि पूरितहो इस प्रकार श्रीराघवजीको उत्तर देते हुए ॥ ३५ ॥ हे धर्मज्ञ! आप वीर्यवान और राजसमूहोंके शिरोमणि स्वरूपहैं, इस कारण साधु सेवित मार्गका आश्रय लेकर आप इस प्रकारकी कल्याण जनक आज्ञा देंगे; इसमें विचित्रताही क्याहै? ॥ ३६ ॥ एकतौ परम चतुर हनुमानजीनें भावरूप और अनुमानसे बिभीषणके चरित्रकी परिक्षाकी दूसरे आपके वचन सुनकर अब हमारा अंतःकरणभी बिभीषणको शुद्ध स्वभाव समझताहै ॥ ३७ ॥ इस कारण हे श्रीरामचंद्रजी! महाप्राज्ञ बिभीषणजी हमारे तुल्य होवें, और हम लोगोंके साथ उनकी मित्रताई स्थापित कराई जावै ॥ ३८ ॥

ततस्तुसुग्रीववचोनिशम्यतद्धरीश्वरे णाभिहितंनरेश्वरः॥ विभीषणेनाशुजगामसंगमंपतत्रिराजे नयथापुरंदर ॥ ३९ ॥

तब नरेन्द्रजीभी सुग्रीवजीके यह पुनीत वचन सुनकर इन्द्र जिस प्रकार पक्षिराज गरुडजीके साथ शोभायमान हुएथे, वैसेही राक्षसराज

*दोहा-शरणागतको जे तजहिं, निज अनहित अनुमान। तेनर पामर पाप मय, तिनहिं विलोकत हान। चौपाई–कोटि विप्र वध लागहिं जाहू । आये शरण तजौं नहिं ताहू ॥

बिभीषणके साथ मिलकर शोभायमान हुए ॥ ३९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० लंकाकांडे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥

राघवेणाभयेदत्तेसन्नतोरावणानुजः ॥
विभीषणोमहाप्राज्ञोभूमिंसमवलोकयत् ॥ १ ॥

रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें जब इस प्रकारसे अभय दान दिया, तब महा पंडित रावणके लघु भ्राता बिभीषणजी पृथ्वीकी ओर देखते हुए ॥ १ ॥ आकाशसे अपने चार मंत्रियोंके साथ हर्षितहो भूमिपर उतरे, और अपने चारों मंत्रियोंके साथ भक्तिभावसे श्रीरामचंद्रजीके निकट आये ॥ २ ॥ फिर अपने चारों राक्षसोंके साथ उनके चरणोंमें गिरकर बिभीषणजी श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ बिभीषणजीनें युक्ति युक्त धर्म संगत, व प्रसन्नता उपजानेंवाले वचन श्रीरामचंद्रजीसे कहे, कि हम रावणके सगे छोटे भाई उस्से अपमानित होकर ॥ ४ ॥ लंका, मित्र और धनादि समस्त परित्याग करके आपको सर्व प्राणियोंका शरण देनें वाला देखकर आपकी शरणमें आयाहूं * ॥ ५ ॥ अब हमारा जीवन, सुख, और राज्यलाभ समस्त आपकेही आधीनहै । बिभीषणके यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ६ ॥ मानों समझाते हुए व नेत्रोंसे पानही करतेसे बोले कि हे बिभीषण! प्रथम तुम राक्षसोंका बलाबल सब यथार्थ २ हमारे निकट वर्णन करो ॥ ७ ॥ अक्लिष्ट कर्म करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें जब ऐसा कहा तब राजा बिभीषण रावणका बल विस्तार सहित वर्णन करनें लगे ॥ ८ ॥ हे राजकुमार! ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे रावण,—गन्धर्व, उरग और पक्षी इत्यादिक सबसेही अवध्यहै ॥ ९ ॥ रावणसे छोटा वीर्यवान महा तेजस्वी और युद्धमें देवराज इन्द्रजीके समान

---

* शरण हरण भय जस उदार श्रवणनि सुनि आयो इतै । मैं कृपालु दशभाल बंधुलघु निपट निरादरधार ॥ श्र० ॥ निशिचर कुल कर तूति अधम अघ जानु न सपनेहुं शुभाचार ॥ श्र० ॥ भव रुज ग्रसित त्रासित छिन पल पल दीन हीन मति सब प्रकार ॥ श्र० ॥ गद२ प्रेम खस्यो महि टेरत पाहि २ करुणाअगार ॥ श्र० ॥ सूरज दीन दयालुहिं भायउ मिलेउ मेटि सब विपति भार ॥ श्र० ॥

पराक्रमी कुम्भकर्ण नामक हमारा एक और बडा सहोदरहै ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! कैलास पर्वत पर मणिभद्र नामक महादेवजीके गणको युद्ध करके हरायाथा, वही प्रहस्त नामक राक्षस रावणका सैनापतिहै; कदाचित् इसका नाम आपने सुनाही होगा ॥ ११ ॥ गोधारूप अंगुली त्राण धारी इन्द्रजीत मेघनाद कवचविहीन होकरभी धनुष बाण हाथमें ले रणभूमिमें टिका रहकर इच्छानुसार अदृश्यभी होसकताहै ॥ १२ ॥ हे राघव! इन्द्रजित् यज्ञद्वारा हुताशनको तृप्त करता हुआ अत्यन्त बड़ी व्यूह युक्त रण भूमिसे अन्तर्ध्यान होकर अन्तरिक्ष में अदृश्य भावसे शत्रुओंके ऊपर प्रहार किया करता है॥ १३ ॥ जो कि युद्धमें बल लोकपालों की समान प्रगट किया करते हैं ऐसे महोदर, महापार्श्व, और अकम्पन इत्यादि राक्षस गण रावणके सैनापति हैं ॥ १४ ॥ हे महाराज! राक्षस राजा रवण; मांस रुधिर भक्षण करनेंवाले इच्छानुसार रूप धारण करनें वाले एक अरब महाबलवान राक्षसोंके साथ लंकापुरीमें रहताहै ॥१५॥ इन राक्षसोंको साथ लेकर दुरात्मा रावणनें देवता लोगोंके साथ युद्ध कियाथा लोकपाल गण राक्षस लोगोंका असह्य तेज न सहन करकै भाग गयेथे ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी विभीषणके मुखसे इस वचनको सुनकर और रावणके बलाबलको जान मनही मन चिन्ताकर बोले ॥ १७ ॥ हे विभीषण! तुमने रावणकी जितनी सैनाहै उसको बताया वह हमनें तत्त्वसे सब जाना ॥ १८ ॥ जो कुछभी हो तुम निश्चय जानो कि हम प्रहस्त और इन्द्रजीतके सहित रावणका संहार करकै तुमको लंकाका राज्य देदेंगे ॥ १९ ॥ यद्यपि रावण पाताल अथवा ब्रह्मलोकमेंभी चलाजाय तथापि वह जीवित रहते हमसे छुटकारा पानेंको समर्थ नहींहोगा ॥ २० ॥ हम लक्ष्मण आदि तीन भ्राताओंकी शपथ करकै कहते हैं कि पुत्र और बंधुबान्धवगणोंके सहित रावणका विनाश किये विना हम अयोध्यापुरीको न जांयगे ॥ २१ ॥ अमानुषकर्मकारी श्रीरामचंद्रजी के वचन सुनकर धर्मात्मा विभीषणजी शिर झुकाय रामचंद्रजीके दोनो चरणोंकी वंदना करकै कहने लगे ॥२२॥ रावणकी सेनाके आतेही सबसे प्रथम हम उसमें प्रवेश करके राक्षसगणोंका वध और सबसे लंकाके विध्वंस करनेमें यथा साध्य आपकी सहायता करेंगे ॥ २३ ॥ जब विभीषणजीने इस प्रकार

से कहा तब श्रीरामचंद्रजी प्रसन्नता प्राप्त करकै उनको भेंट कर लक्ष्मणजी-को समुद्रके जल लानेंकी आज्ञा देकर कहा॥२४॥हे महानद! समुद्रके जलसे अभिषेक करकै महाप्राज्ञ विभीषणको राजा बनानाही हमारा अभिप्राय है अधिक क्या कहैं; हम इनके व्यवहारसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुएहैं ॥ २५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तब सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण-जीनें उस आज्ञाके अनुसार वानर यूथप गणोंके बीचमें विभीषणको रा-ज्य पदपर अभिषिक्त किया ॥ २६ ॥ विभीषणके ऊपर श्रीरामचंद्रजी-की ऐसी प्रसन्नता देखकर वानरगण किल किला शब्द करके महात्मा विभीषणजीकी बड़ाई करनें लगे ॥ २७ ॥ तब हनुमान् और सुग्रीवजी विभीषणजीसे बोले कि हम लोग किस प्रकारसे अपनी सर्व वानरोंकी सैनाके सहित इस अक्षोभ्य वरुणालय महा समुद्रके पार उतरेंगे ॥ २८ ॥ तुम इसका कोई उपाय बताओ कि जिस्से हम सर्व सेनाके सहित नद नदीके पति वरुणजीके स्थान समुद्रके पार उतर जांय ॥ २९ ॥ जब इस प्रकार महात्मा विभीषणजीसे कहागया तब वह बोले कि महाराजा धिराज रामचंद्रजी समुद्रकी शरणमें जांय यही हमें उचित जान पड़ता है ॥ ३० ॥ कारणकि शरण जानेसे यह अप्रमाण जलवाला महामति समुद्र सगर वंशमें अपनी उत्पत्तिमान श्रीरामचंद्रजीको अपने पार जाने-का अवश्यही इनका कार्य सिद्ध कर देगा ॥ ३१ ॥ इसके पीछे पंडितश्रेष्ठ राक्षसनाथ विभीषणकरकै इस प्रकार कहे जाकर वानर सुग्रीवजी लक्ष्मण-जीके सहित रामचंद्रजीके निकट गये॥३२॥फिर बड़ी गरदन वाले सुग्रीव-जी श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुँचकर विभीषणजीके कहे वह शुभवचन जोकि समुद्र पार जानेके संबंधमें थे यथावत श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन किये ॥ ३३॥ इन वचनोंको श्रवण करते ही स्वभावसेही धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें भी मान्यकिया और महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वानरराज सुग्रीवजीसे बोले ॥ ३४ ॥ कारण कि इन दोनों जनोंको सत्क्रिया करनेंके योग्य समझाहै, हे लक्ष्मण! विभीषणकी परामर्श हमकोभी अच्छी लग-तीहै ॥ ३५ ॥ हे सुग्रीव ! तुम पंडितहो और सलाह देनेंमें चतुर हो इस कारण तुम दोनौं जन सलाह करकै जोकुछ तुम्हारा मतहो वह हमसे

प्रकाशकरो ॥ ३६ ॥ तब वीरश्रेष्ठ लक्ष्मण और सुग्रीवजी इस प्रकारसे कहे जाकर उस समयके अनुसार उचित वचन बोले ॥ ३७ ॥ कि हेनर-व्याघ्र! बिभीषणजीनें इस समय जो सारवान सुन्दर परामर्श दियाहै, वह भला किसकारणसे हमें अप्रीति कर होगा ॥ ३८ ॥हम लोगोंको विश्वासहै कि इस महासमुद्र पर विना सेतु बांधे देवता लोगोंके साथ सुरपति इन्द्र जीभी लंकामें प्रवेश करनेंकी सामर्थ्य नहीं रखते हैं ॥ ३९ ॥ इस कारण अब कुछभी विलम्ब करनेंकी आवश्यकता नहीं है, शीघ्र महात्मा बिभीषणजीके वचन पालनमें तैयार होकर आप समुद्रकी शरण जाइये, और जिस्से हम लोग सब सेनाके सहित रावण पालित लंका पुरीमें उपस्थित होसकें इसकी चेष्टा कीजिये ॥ ४० ॥

एवमुक्तःकुशास्तीर्णेतीरेनदनदीपतेः ॥
संविवेशतदारामोवेद्यामिवहुताशनः ॥ ४१ ॥

जब श्रीरामचंद्रजीसे ऐसा कहा गया तो वह श्रीरामचंद्रजी वेदीके बीचमें स्थापित हुई अग्निके समान नदनदीपति समुद्रके तीर कुश विछायकर समुद्रके तीर पर बैठ गये ॥ ४१ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०लं० एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः॥

ततोनिविष्टांध्वजिनींसुग्रीवेणाभिपालिताम् ॥
ददर्शराक्षसोऽभ्येत्यशार्दुलोनामवीर्यवान् ॥ १ ॥

तिसके पीछे शार्दूल नामक कोई बलवान राक्षस समुद्रके तीर टिकी हुई सुग्रीव पालित इस वानरोंकी सैनाके निकट आय सबसेना भली भांतिसे देखता हुआ ॥ १ ॥ यह दुरात्मा राक्षसराज रावणका दूत सब सेनाको भली भांति देख बड़ी शीघ्रतासे लंकाको गया, ॥ २ ॥और वहां पहुंचकर राजा रावणसे कहता हुआ; कि वानर और रीछोंकी सैना का समूह लंकापर आगया ॥ ३ ॥ महाराज! यह सैना अप्रमाण और अगाध दूसरे समुद्रहीकी समान उमड़ आईहै और महाराज दशरथजीके राम लक्ष्मण दोनों भाई ॥ ४ ॥ उत्तम रूप सम्पन्न सीताजीके लिये

यहांपर आये हैं। यह दोनों महातेजस्वी समुद्रके तीर सेनाके सहित टिके हुए हैं ॥ ५ ॥ महाराज! उनकी समस्त सेना दशयोजनकी लंबाई, दशयोजनकी चौडाई; व १२५ योजनकी ऊँचाई में पड़ी हुई है। आप हमारे वचनोंको सत्य विचारकर शीघ्रही उसका वृत्तान्त जानलें ॥ ६ ॥ हे राजन्! शीघ्र दूत लोगोंको भेजियेकि वह लोग इस बातको जान आवें कि शत्रुको पराजित करनेंके लिये साम या भेद कौनसा उपाय ग्रहण करना चाहिये ॥ ७ ॥ शार्दूलके वचन सुनकर राक्षसोंका स्वामी रावण, अपना उस कालके लिये उचितकार्य स्थिर करता शुकनामक एक कार्यके जाननेंवाले राक्षससे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ८ ॥ हे शुक! तुम बहुत शीघ्र सुग्रीवके निकट जाओ, और हमारे वचनानुसार हम जिस प्रकारसे कहतेहैं; उसमें किसी प्रकारका अंतर नपडे और अकातर चित्तसे मधुर और पुरुषोचित्त वचनोंसे उन वानरराज सुग्रीवसे यह हमारा कहा हुआ सन्देश कह आओ ॥ ९ ॥ उनसे कहनाकि हे वानरनाथ! रामचंद्रकी सहायता करनें पर कुछ तुम्हारी धन संपत्ति बढनेंकी संभावना नहीं. और जो उनकी सहायता न करोगे तो कुछ हानि नहीं होगी; विशेष करके तुम महाराजकुलमें उत्पन्न हुए ऋक्षरजस वानर राजके पुत्रहो; और तुम स्वयंभी महा बलवानहो इसलिये हमारे भाईकी समानहो। इसलिये रामचंद्रजीके सहायक होकर हमारे विरुद्ध अस्त्र शस्त्र धारण करना तुमको उचित नहीं है ॥ १० ॥ हे सुग्रीव! हम बुद्धिमान् दशरथके पुत्र रामचंद्रजीकी स्त्री हरणकर लाये इसमें तुम्हारी क्या हानिहै जो कुछभी हो अब तुम किष्किन्धाको लौट जाओ ॥ ११ ॥ तुम निश्चय जान रक्खो कि तुम्हारे वानरगण किसी प्रकारसे लंकाके अधिकार कर लेनेमें समर्थ नहीं होंगे। सुग्रीव! नर वानरोंकी बाततो जानेंही दो! देव गण या गन्धर्व गणभी परस्पर मिलकर लंकामें प्रवेश नहीं कर सकतेहैं ॥ १२ ॥ राक्षस राज रावणकी यह आज्ञा सुनकर राक्षस शुक पक्षीका रूप धारण करके शीघ्रतासे आकाशको उड़गया ॥ १३ ॥ इसके पीछे समुद्रके ऊपर आकाश मार्गमें बहुत दूर चलकर वानरोंकी सैनाके निकट पहुंच आकाशमें टिकेही टिके वह वचन सुग्रीवजीसे कहे ॥ १४ ॥ दुरात्मा रावणनें जो वचन कहेथे वैसेही समस्त वचन उसनें सुग्रीवजीसे

कहे, राक्षस शुक इस प्रकारसे कह रहाथा कि वानरोंनें ताक और आकाशमें कूदकर उसको पकड़ लिया ॥ १५ ॥ कोई २ उस राक्षसको काटनें फाड़नेंके लिये तैयार हुए और किसी २नें प्राण संहार करनेंके लिये उसको घूंसोंसे मारना प्रारंभ किया। वानरगण शुककी इस प्रकारसे दुरवस्था करनें लगे, कारणकि वह इनके वशमें पड़गयाथा ॥ १६ ॥ फिर वानरोंनें बलसे आकाशमेंसे पृथ्वीपर उसको उतारा, और मार धाड़करनें लगे, तब शुक अत्यन्त पीड़ित होकर बोला ॥ १७ ॥ किहे श्रीरामचंद्रजी! आप निवारण कीजिये, कहीं ऐसा नहो कि यह वानरगण मुझ दूतको प्राणोंसें मारडालें, विशेषकरकै जो दूत शत्रुके वशमें पड़कर अपना छुटकारा करनेंके लिये स्वामीका सन्देश छिपाया और कालोचित अपने गढ़े हुए अनुराग युक्त वचन कहे, हेमहाराज! ऐसाही दूत मारडालनेंके योग्यहै ॥ १८ ॥ तब करुणामय श्रीरामचंद्रजी शुकके वचन और विलाप सुनकर; शुकको मार डालनें पर उतारु वानर यूथ गणोंसे बोले कि तुम लोग दूतके प्राण मतलो ॥ १९ ॥ तब दूत शुक राक्षस वानरोंके भयसे भीतहो छोटा आकार बनाय आकाशमें टिक वहींसे फिर यह कहनें लगा ॥ २० ॥ हेमहाबलवान—पराक्रम—सत्व सम्पन्न सुग्रीवजी! हम लौटकर लोकोंके रुवानें वाले रावणसे क्याकहैं? वह आप हमसे कह दीजिये ॥ २१ ॥ वानरगणोंके स्वामी महा बलवान सतोगुणी हरीश्वर सुग्रीवजी इस प्रकारसे पूछे जाकर राक्षसराज रावणसे कहनेंके लिये अदीनभावयुक्त राक्षस दूत शुकसे यह बोले ॥ २२ ॥ कि हे शुक! तुम रावणसे यह कहनाकि, हेरावण! तुम हमारे मित्र, उपकारी प्रिय, अथवा दयाके पात्र नहींहो, वरन परिवारके सहित श्रीरामचंद्रजीसे शत्रुता करनेंके कारण तुमकोभी वालिकी समान मारडालना उचितहै ॥ २३ ॥ हे राक्षसेश्वर! हम बहुतही शीघ्र बडी भारी सैनाके साथ भ्राता और बन्धु बांधवोंके साथ तुम्हारा नाश करकै तुम्हारी लंकापुरीको भस्म करडालेंगे ॥ २४ ॥ हे रावण! जो इन्द्रादि देवगणभी तुम्हारी रक्षा करें, अथवा काम सूर्यके मार्गमें चले जाओ; या पातालमें प्रवेश कर जाओ, या महादेवके चरणोंका आश्रयलो तथापि श्रीरामचंद्रजीसे तुम्हारा छुटकारा गाध दूरत्र राम लक्ष्मणा, तुम अपनेंको अपने छोटे भ्राता सहित मृतकही स-

मझो ॥२५॥ जो तुम्हें वचानेंमें समर्थहो, हम त्रिलोकी में ढूंढ़भाल करकेभी किसी राक्षस, पिशाच, गन्धर्व या असुर लोगोंमेंभी ऐसा किसीको नहीं देख पाते ॥ २६ ॥ तुम जरायुक्त वृद्ध गृध्रराज जटायुको मार करके अपनेको बलवान समझकर गर्व न करो,जो तुममें बल होता तौ तुम श्रीरामचंद्रजीकेआश्रममें न रहनेंपर चोरके समान जानकीको हरण करकै न लाते,वरन उनके सन्मुखसे हरण करते ॥ २७ ॥ हे रावण! जो तुम्हारे प्राणोंको हरण करेंगे तुम उन देवता लोगोंसेभी अजीत महात्मा महाबलवान रघुश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको नहीं जानतेहो इसी कारणसे तुमनें ऐसा कार्य कियाहै ॥ २८॥ इसके पीछे कपिश्रेष्ठ वालिके पुत्र अंगदजी बोलेकि हेमहाप्राज्ञ! यह निशाचर रावणका दूत नहींहै, वरन हमको तौ यह गुप्त भेदिया मालूम होताहै ॥२९॥ इस राक्षसनें यहां पर आकर हमारी सब सेना और व्यूहको भली भांतिसे जांचलिया, इस कारण लंकाके वृत्तान्त जनानेंके लिये यह वहांपर न जाना चाहिये, इस कारण इसका बांधलेना उचितहै, हमें तौ यही अच्छा लगताहै ॥ ३० ॥ जब अंगदजीनें ऐसा कहा तब वानर राज सुग्रीवजीकी आज्ञासें वानर लोगोंनें कूद उसको पकड़कर बांधलिया जब वानरोंनें पकड़ा तब वह अनाथकी समान रोदन करने लगा ॥ ३१ ॥ उस समय वह राक्षस प्रचंड वानर वीरोंकरकै इस प्रकार मार खाय बड़े शब्दसे दशरथकुमार महात्मा श्रीरामचंद्रजीको पुकारता हुआ रोनें लगा " कि हेरघुनंदन! वानर लोगोंनें बल पूर्वक मेरे पंख उखाड़ डाले; और नेत्र फोड़नेंके लिये तैयार हुएहैं ॥ ३२ ॥ आप इन लोगोंको रोकिये; नहीं तौ ऐसा करनेंसेमैं मर जाऊंगा, मैंने तौ अपने जन्मके समयसे मृत्युके समय तक जितनें पाप कियेहैं, आपही उन समस्त पापके फलको पावेंगे ॥ ३३॥

नाघातयत्तदारामःश्रुत्वातत्परिदेवितम् ॥
वानरानब्रवीद्रामोमुच्यतांदूतआगतः ॥ ३४ ॥

उस समय परम दयालु श्रीरामचंद्रजीनें ऐसी व्यथा सुनकर उसके जीवनकी रक्षाकी और वानर लोगोंको उसके मारनेंका निषेध करके आये हुए दूतको छोड देनेकी आज्ञादी ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये लंकाकांडे विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥

ततःसागरवेलायांदर्भानास्तीर्यराघवः ॥
अंजलिंप्राङ्मुखःकृत्वाप्रतिशिश्येमहोदधेः ॥ १ ॥

तदनन्तर दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी समुद्रके तीर कुशा बिछायकर उनके ऊपर समुद्रसे वर प्रार्थना करनेंकी अभिलाषसे हाथ जोड़कर पूर्वमुख हो बैठे ॥ १ ॥ हाय! शत्रुओंके नाश करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी जो भुजायें सुवर्णके गहनोंसे विभूषित होती, वही भुजंग, भोग, सदृश भुजा श्रीरामचंद्रजीके शिरके नीचे तकियेका कार्य कर रहीं है॥२॥ जिनकी मणिकाञ्चनमय केयूर मुक्ता व और दूसरे भूषणोंसे युक्त बांहोंको अनेक वार परम रूपवती स्त्रियोंनें वारंवार दबाया, व सहलाया था ॥ ३ ॥ जिनके अंग चंदन और अगर इत्यादि सुगन्धित । द्रव्यसे लिप्त रहते, जो प्रभात कालीन सूर्यकी समान अरुण वर्णके कुंकुमसे चर्चित रहते ॥ ४ ॥ जो सीताजीके साथ सुन्दर सेजपर शयन करते, उनको इस समय तक्षकके गंगाजल सेवित सम्भोगकी समान भोग करना पड़ताहै ॥ ५ ॥ जो युद्धके समय यमराजकी समान भयंकर, जो शत्रुओंका शोक बढ़ानें वाले, और इष्ट मित्रोंके आनंद अत्यन्तको उछलानें वालेहैं आज वही समुद्रके तीर पर पड़ेहैं ॥ ६ ॥ जिनका दहना हाथ परिघकी तुल्य, वांया हाथ बाण छोड़नेंसे प्रत्यंचाके आघात चिह्नसे युक्त ॥ ७ ॥ व जिन भुजाओंसे हजारों गोदान किये गयेहैं आज वही दोनों कर तकियेका कार्य कर रहेहैं ! यातौ । तीन दिनतक निरशन व्रत करके समुद्रको उतरहीं जांयगे जो समुद्र न उतरनें देगा तौ इसका मरणही होगा ॥८॥ यह विचार कर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी समुद्र उतरने पर दृढ़ विश्वास बांध मौन व्रत धारण कर तीर्थोपवासकी रीतिसे विना कुछ खाये पिये मौनावलम्बन करके लेटरहे ॥ ९ ॥ कुशकी शेजपर शयन करके नियम धारण पूर्वक पृथ्वीपर लेटे २ श्रीरामचंद्रजीनें तीन रात्रि बिताईं ॥ १० ॥ नीति विशारद धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे तीन रात्रि वास करके नदीपति समुद्रकी उपासनाकी ॥ ११ ॥ यद्यपि इस प्रकार परम पवित्रतासे श्रीरामचंद्रजीनें समुद्रकी पूजाकी, परन्तु

महामन्दमति नदीपति समुद्रनें इस भांति श्रीरामचंद्रजीसे पूजा पाय करभी उनको दर्शन न दिया ॥ १२ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीनें समुद्रके ऊपर बड़ा क्रोध किया; उनके नेत्र लाल हो आये, और तब वह निकट बैठे हुए अपने छोटे भाई सुलक्षणयुक्त लक्ष्मण जीसे यह बोले ॥ १३ ॥ जबकि समुद्रनें तीन दिनतक इस प्रकार विनती करने परभी हमको दर्शन नदिया, तब इस्सेतौ उसका गर्व करनाही पाया जाताहै हम भली भांति जानतेहैं कि शान्ति,क्षमा सरल वृत्ति और प्रिय वचन बोलना॥१४॥ इत्यादि जो साधु लोगोंके गुणहैं; यह गुणरहित दोष युक्त दुर्जनोंके सन्मुख प्रयोग करनेंसे उसकी असामर्थताको जताते हैं । अर्थात् गुण रहित पुरुषोंके प्रति इन गुणोंका प्रकाश करना निष्फलहै । जोकोई गुण न होंने परभी लोगोंके निकट अपनी शूरता इत्यादिकी, प्रशंसा करे और अपना गुण सबसे कहनेके लिये इधर उधर दौडता फिरै ॥१५॥ और दंड देनेका प्रयोजन नहोंने परभी जो लोगोंको तीक्ष्ण दंड दियाकरै ऐसे पुरुषका बुरे चरित्रवाले और अहंकारी लोगही सत्कार कियाकरते हैं । प्रथम उपाय समझानें बुझानेंसे न कीर्ति मिलती, न सब ओर यश फैलताहै ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मण अधिक कहां तक कहैं कि शान्त स्वभाव होनेंसे रणभूमिमें जयकी प्राप्तिभी नहीं होसकती हे लक्ष्मण ! इस्से आजही हमारे चलाये हुए बाणोंसे मरे कटे मत्स्योंसे युक्त मकरालय ॥ १७॥ समुद्रकी जलराशिको सब जगह ढकाहुआ देखोगे हेसुमित्रानंदन लक्ष्मण! मेरे बाणोंसे विदीर्ण अनेक सर्पोंके शरीरभी तुम देखोगे ॥ १८ ॥ सर्प और मत्स्य गणोंके बड़े २ भारी शरीर व जलके हाथियोंकी कटी हुई शुन्डैं देखोगे, शंख सहित, सीपी जालसे युक्त मछली, व मकरोंके साथ ॥ १९ ॥ इस समुद्रको आजही महा युद्ध करके हम शोष लेंगे हमको क्षमा गुणका आधार देखकर मकरालय समुद्र ॥ २० ॥ हमको मनमें अतिशय कापरपुरुष समझताहै; इस कारण क्षमाका अवलंबन करनेंसे समुद्र हमारे पर अपना गर्व प्रकाश करताहै । इससे इस क्षमाको ! व हमको भी धिक्कारहै ! सामकाही अवलंबन करनेंसे समुद्र अबतक हमारे निकट न आया ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! अब तुम हमारा धनुष व विषधर सर्पोंकी समान विषवत बाण शीघ्र यहां पर ले आओ, कि हम समु-

द्रको सुखा डालें कि जिससे वानर गण पैदलही समुद्रके पार उतर जावें ॥ २२ ॥ जो समुद्र किसीके लांघनें योग्य नहींहै, जो समुद्र वड़ी २ तरंगोंसे युक्तहै, और जिसकी सीमा किनारेकी भूमितक नियतहै हम आज क्रोधित होकर उसी समुद्रको खलबलादेंगे ॥ २३ ॥ हम बाणोंको चलाय कर महा समुद्रकी सीमाको स्थिर नहीं रक्खेंगे, महा दानवोंके रहनेंके स्थान इस समुद्रको हम अवश्य शुष्ककर डालेंगे ॥ २४ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें यह कहकर धनुष धारण किया, व क्रोधके मारे उनके नेत्र फड़कनें लगे; और उस काल श्रीरामचंद्रजी प्रज्वलित प्रलयकी अग्निके समान दुर्द्धर्ष होगये ॥ २५ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी वड़े भारी धनुष पर रोदा चढाय कर उसकी फटकारसे समस्त जगत्को कम्पित करके इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र चलातेहैं, वैसेही प्रचंड बाणोंको छोड़नें लगे ॥ २६ ॥ श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुए तेज प्रदीप्त वह समस्त बाणश्रेष्ठ महा वेगसे समुद्रके जलमें पैठ गये, जिससे समुद्रके रहनें वाले सर्पगण त्रासित होगये ॥ २७ ॥ उस काल मछली मकरादि प्राणियोंसे युक्त समुद्रका वड़ा भारी वेग, प्रचंड पवनके लगनेंसे अत्यन्त भयंकर शब्द करनें लगा ॥ २८ ॥ समुद्रमें सब ओरसे तरंगोंके वडे २ समूह उठे, व स्थान २ पर सर्पोंके ढेरके ढेर छितरानें लगे, सब ओरसे धूम उठकर लहर आनें लगी इस भांति अतिशीघ्र ऐसा समुद्रका रूप होगया ॥ २९ ॥ ऐसी अवस्थामें सर्पगण व्यथित होगये और उनके नेत्र व मुख मंडल प्रदीप्त हो आये व उस समय पातालके रहनें वाले नाग लोगों तकके त्रासकी सीमा न रही ॥ ३० ॥ समुद्रमें विन्ध्य और मन्दराचल पर्वतकी समान हजार २ तरंगे उठनें लगीं व उनमें नाके व मत्स्य आदि बहुतसे जल जन्तुभी उछलनें लगे ॥ ३१ ॥ क्रमसे समुद्रकी तरंगें बराबर उछलनें लगीं नाग राक्षसादिके घबड़ानेंसे वड़ियालोंके उफन जानेंसे समुद्रमें महा घोर शब्द होंने लगा ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी लंबी श्वास लेकर जिस समय बड़े भारी धनुषको खेंचनें लगे उस समय लक्ष्मणजीनें झट पट आगे बढ़कर यह धनुष हमें दीजिये यह कह निवारण कर इस रामचंद्रजीके धनुषको ग्रहण किया ॥ ३३ ॥ उस समय लक्ष्मणजी बोले कि हे प्रभो! जबकि समुद्रके प्रति बाण न

चलाकर और प्रकारसे आपका कार्य सिद्ध हो सकताहै; तब फिर ऐसे कठिन कार्यका क्या प्रयोजनहै? हम आपसे कहतेहैं कि आपसरीखे महात्मा पुरुष क्रोधके वश होना कदापि कर्तव्य नहीं है। आप अपनी सदाकी साधुकी वृत्तिकी ओर एकवार दृष्टि कीजिये ॥ ३४ ॥

अंतर्हितैश्चापितथांऽतरिक्षेब्रह्मर्षिभिश्चै ॥
वसुरर्षिभिश्च ॥ शब्दःकृतःकष्टमितिब्रु
वद्भिर्मामेतिचोक्त्वामहतास्वरेण ॥ ३५ ॥

यह देखिये अंतरिक्षमें अन्तर्हित हुए ब्रह्मर्षि और सुरर्षि गण "हा कष्ट! इस दारुण शब्दसे कष्ट प्रकाश करते हुए (मा) (मा) अर्थात् ऐसा मत करो ऐसा मतकरो यह शब्द कह कहकर आपको निवारण कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० लं० एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥

अथोवाचरघुश्रेष्ठःसागरंदारुणंवचः ॥
अद्याहंशोषयिष्यामिसपातालंमहार्णवम् ॥ १ ॥

तब रघु श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी समुद्रको लक्ष बनाय यह अति दारुण वचन बोले कि "हम आज पातालके सहित इस समुद्रको सुखा डालेंगे ॥ १ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी समुद्रसे बोले कि हमारे बाणोंके द्वारा तुम्हारा जल जन्तुओंके साथ सूख जायगा, व तुम्हारे भंडारमें बडी भारी धूरि उडैगी ॥ २ ॥ हे समुद्र! हमारे धनुषसे बराबर बाण छूटनेपर जब तुम्हारा जल सूख जायगा, तब वानरगण पैदलही तुम्हारे पार उतर जांयगे ॥ ३ ॥ हे दानवोंके स्थान समुद्र! तुम हमारे पौरुष और विक्रमको नहीं जानतेहो! जो कुछभीहो, परन्तु अब हमारे प्रभावके मर्मको तुम समझ सकोगे ॥ ४ ॥ महा बलवान् श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे कहकर ब्रह्मदंड नामक बाणको ब्राह्म मंत्रसे अभिमंत्रित किया, और उसको बडे भारी धनुषपर चढाकर खेंचने लगे ॥ ५ ॥ जिस समय महा बलवान् श्रीरामचंद्रजीनें बाणको खेंचा उस समय पृथ्वी मानों फटनें लगी; और स्वर्ग विदीर्णसा होने लगा, सब पर्वत कंपायमान होने लगे ॥ ६ ॥ दशों दिशाओंको अंधकारने छाय लिया लोक इत्यादिक

कुछभी नहीं देखने लगे, सरोवरोंके सहित समस्त नदियें खल बलाय उठीं ॥ ७ ॥ नक्षत्र गणोंके साथ सूर्य चंद्रमाकी तिरछी गतिहोगई। आकाश मंडल सूर्य नारायणकी किरणोंसे युक्त होने परभी अंधकारसे छायगया ॥ ८ ॥ अन्तरिक्षमें बडे शब्दसे युक्त होकर वारंवार वज्रपात होनें लगा और आकाश मंडल शत २ उल्कापातोंसे प्रकाशमान हो गया ॥ ९ ॥ भयानक पवनके वेगसे वृक्ष टूटकर गिरने लगे, व वारंवार अति शीघ्रतासे वादल इधर उधर उड़कर जाने लगे ॥ १० ॥ बडे २ पर्वतोंको टकराता हुआ पवन उनके कंगूरोंको गिरानें लगा चारों ओर दामिनीकी आग प्रगट होनेसे ॥ ११ ॥ वारंवार वज्र गिरनें लगा उसके साथही साथ जितनें प्राणी दिखलाई देतेथे वह समस्त वज्रसे उत्पन्न हुए शब्दके साथ चिंघाडकर उठे ॥ १२ ॥ और जो प्राणी अदृश्यथे वहभी सब इस भयंकर वज्रके शब्दको सुन भयके मारे कंपित शरीर होकर भयंकर शब्द करतेहुये ऐसे व्याकुल की नांई जहां तहां लेट रहे ॥ १३ ॥ व्यथित हृदय होनेंके कारण उनमें चलनें फिरनेंकी कुछभी सामर्थ्य नहीं रही; सब जहांके तहां स्पन्दन विहीनहो पडे रहे फिर समस्त प्राणियोंके साथ, व तरंग, नाग, और राक्षसोंके सहित ॥ १४॥ समुद्रोंकी तरंगोंनें विकटाकार रूप धारण किया, सहसा समुद्रका वेग इतना भयानक होगया कि जहां सदा वेला भूमि तक जल जाया करताथा उस सीमाको उल्लंघनकर विनाही प्रलयकालके आये चारकोस तक दूर चला गया॥१५॥ शत्रुओंके मारनेंवाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी नदनदीपति समुद्रको चलायमान होते देखपरभी आप चलायमान न हुए और अस्त्र को न लौटाते हुए अथवा, अपना अपना अस्त्र परित्याग नहीं करते हुए ॥ १६ ॥ फिर सूर्य भगवान जिसप्रकार उदयाचल सुमेरुके बीचों बीचमें उदय होकर शोभायमान होतेहैं, वैसेही समुद्रके बीचों बीचसे समुद्र उठकर शोभाको प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ इसके साथहीसाथ प्रदीप्त वदन सर्प गण मुख फैलाये दृष्टि आये समुद्रका आकार चिकनी वैदूर्य मणिकी समानथा, व उसका शरीर तपाये हुए सुवर्णके भूषणोंसे शोभितथा ॥ १८ ॥ समुद्रके गलेमें रत्नोंकी माला विचित्र वस्त्र, पहरे हुए, उसके नेत्र फूले हुए कमल दलको तुल्य और शिरपर अनेक प्रकारके फूलोंकी माला शोभायमान हो-

हीथीं ॥ १९ ॥ उसके सब भूषण उत्तम सुवर्णकेथे, उन गहनोंमें वही र-त्न जड़ेथे जो कि समुद्रके गर्भसे उत्पन्न हुएथे ॥ २० ॥ उसकाल सर्व धातु करके भूषित हिमवान पर्वतकी समान समुद्र शोभायमान हुआ, और उसकी तरंगोंके समूह इधर उधर उठकर व गिरकर बादलोंको स्प-र्शते और हवाके झोके उसमें लगते ॥ २१ ॥ गंगासिन्धु इत्यादि सम-स्त नदियें समुद्रको चारों ओरसे घेरे हुईथी, देखते २ सागर श्रीरामचंद्र-जीके निकट आनेंको आगे बढ़ा और धनुष धारण किये हुए रावणके शत्रु श्रीरामचंद्रजीसे हाथ जोड़कर बोला ॥ २२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पृथ्वी, पवन, आकाश, जल और अग्नि, यह समस्तही अपने २ स्वभावके वश होकर रहतेहैं ॥ २३ ॥ हे शुद्धस्वभाव! हम स्वभावसेही अगाध और लांघनेंके अयोग्यहैं, यदि लोग सहजसेही हमारे पार चले जायसकें, अथवा हममें थोड़ा जल होजाय तौ आपही बतलाइये, कि ऐसा होनेंसे हमारे स्वभावमें अंतर पाया या नहीं? ॥ २४ ॥ हे राजकुमार! हम काम-नाके हेतु लोभके अर्थ अथवा भयसे युक्तहो कभीभी नाके और म-त्स्योंसे युक्त अपनी जलराशिको नहीं रोक सकते ॥ २५ ॥ हे प्रभो! आपकी जैसी इच्छाहै हम भी वही करनेंको तैयार हैं और जो आप करेंगे उसको भलीभांतिसे सहन करनेंकोभी हम राजीहैं, आपकी सैना जिस स-मय पार जायगी, उस समय जलके जीव उस सैनाको भक्षण न करेंगे; अधिक कहांतक कहें आपकी वानरी सैनाके पार होनेंके समय यह जल राशि बीच २ में उनको उत्तम स्थल दिखलावेगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी बोले कि, हे समुद्र! हमारा यह बाण अमोघहै, निरर्थक नहीं होता इस कारण किस स्थानमें इसको चलावें सो तुम बताओ ॥ २७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर और उनके हाथमें महाभयंकर बाण देखकर समुद्र महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ २८ ॥ कि जिसप्रकारसे आप लोगोंमें विख्यातहैं, वैसेही यहां से उत्तर दिशामें द्रुमकुल्य नामक हमारा कोई सुविख्यात पुण्य स्था-नहै ॥ २९ ॥ वहांपर उग्रस्वभावयुक्त क्रूर कर्म करनेंवाले पाप-चारी बहुतसे आभीर चोर वास करते हुए हमारा जलपान कि-याकरतेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! उन पापकर्म करनेवालोंके जल छूनें

से जो पाप होताहै उसको हम नहीं सहन कर सकतेहैं, इस कारण यह श्रेष्ठ बाण उस स्थानमें छोड़कर आप सफल करैं ॥ ३१ ॥ तब दयानिधि रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें महात्मा जलनिधिके वचन सुन उसके बताये हुए स्थानमें वही प्रदीप्त बाण वहांपर छोड़ा ॥ ३२ ॥ वह वज्रकी अग्निके समान प्रदीप्त बाण जिस स्थानमें गिराथा वह स्थान तबसे पृथ्वीपर मरु कान्तार नामसे विख्यात हुआहै ॥ ३३ ॥ जिस समय वह बाण गिरा तब उस बाणकी चोटसे पृथ्वी पीड़ित होकर घोरशब्द करनें लगी उस समय शतधार होकर पातालसे पृथ्वीपर जल निकलनें लगा ॥ ३४ ॥ यह जल कुएके आकारमें बदलकर " व्रण " नामसे विख्यात हुआ। यह निकलती हुई जलराशि समुद्रके समान दिखाई देने लगी ॥ ३५ ॥ उस बाणके घोर शब्दसे पृथ्वीमें प्रवेश करनेंपर रहनें वालोंकी जिसपर जीविकाथी उन सरोवर व तड़ागादिका समस्त जल सूखगया ॥ ३६ ॥ उस समयसे वह स्थान (मरु कान्तार) नामसे प्रसिद्ध हुआ कमल लोचन श्रीअमरविक्रम दशरथसुत श्रीरामचंद्रजीनें इस स्थानको सुखायकर पीछे उस मरुभूमिको वर दियाकि ॥ ३७ ॥ इस स्थानमें विशेष करके रोग नहीं हुआ करेंगे यह पशुगणोंके चरनेंको अनुकूल होगा अधिक करके फल मूल व रस पूर्ण अनेक भांतिके औषधि युक्त स्नेहपूर्ण क्षीर सहित सुगन्धित वृक्षोंसे यह स्थान परिपूर्ण होगा ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे वरदान पायकर यह स्थान अनेक गुणोंका आधार हुआ, और उसके समस्त मार्गभी यात्रियोंके लिये सुख-दायक हुए ॥ ३९ ॥ जब उन चोरोंका देश इस प्रकारसे जलबल शुष्क होगया, तब उस स्थान पर नद नदियोंके पति समुद्रनें सर्व शास्त्रोंका मर्मजाननें वाले श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन कहे ॥ ४० ॥ हेसौम्य ! यह नल नाम वानर श्रीमान् विश्वकर्माका प्यारा पुत्रहै; इसनें अपने पितासे सर्ववस्तुओंके जाननेंकी सामर्थका वर पायाहै ॥ ४१ ॥ इस कारण अपने पिताकी समान सामर्थयुक्त अतिउत्साही यह वानर हमारे ऊपर सेतु (पुल) बनावै हम उसको धारण किये रहैंगे * ॥ ४२ ॥ यह कहकर

* नलको वरदानथा कि जो वस्तु छूकर पानीमें डालैंगे वह जहांकी तहां तैसेही जलके ऊपर स्थित रहैगी ॥

समुद्र अन्तर्ध्यान होगया, तिसके पीछे वानरश्रेष्ठ नलनें खड़े होकर महाबलवान श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन कहे ॥ ४३ ॥ कि हेमहाराज! समुद्रनें जो कुछ कहा वह समस्तही सत्यहै, हम पिताके वरदानके प्रभावसे इस बड़े भारी विस्तार वाले मत्स्योंके स्थान समुद्रके ऊपर सेतु बनावेंगे ॥ ४४ ॥ हमारी तौ यह संभावनाहै कि संसारमें और दूसरे उपायोंकी बराबरीसे एक दंडही सबसे बड़ा उपायहै। उपकार न माननेंवाले पुरुषके प्रति क्षमा, शान्त वचन, या दान किसीसेभी काम नहीं निकलता; इस कारणसे जो उपकार न माननेंवाले पुरुषको क्षमा, अथवा दान देताहै; उसको धिक्कारहै ॥ ४५ ॥ अतएव ऐसे पुरुषको तौ दंडही देना उचितहै। देखिये कि इस भयंकर रूपवाले सागरनेंही दंडके भयहीसे अपनें ऊपर पुल बंधवानेंके लिये आप रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीको स्थान देदिया ॥ ४६ ॥ जो कुछभी हो समुद्रनें ठीकही कहाहै कारणकि उसके कहनेंसे हमको याद आताहै, कि पहले मन्दर पर्वतपर विश्वकर्माजीनें हमारी माताको हेदेवि! तुम्हारा पुत्र हमारेही समान उत्पन्न होगा, यह वरदान दियाथा ॥ ४७ ॥ सो हम उनही महात्मा विश्वकर्माजीके औरसपुत्र उनकीही समान सब कुछ बनानेमें चतुरहैं। आप लोगोंके न पूछनें पर हमनें आपसे अपने गुण नहीं कथन कियेथे, कारणकि अपनें मुखसे अपनी बड़ाई करना महालाजकी बातहै ॥ ४८ ॥ हम निश्चयही समुद्रके ऊपर पुल बनाय सकेंगे इस कारण आजही वानर लोगोंको इस पुलकी तैयारी करनेंकी आज्ञा दीजिये ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी करके प्रेरित असंख्य वानरश्रेष्ठगण हर्षित मन कूदते फांदते महावनमें प्रवेश करते हुए ॥ ५० ॥ फिर वह पर्वतोंकी समान आकारवाले वानर यूथपति गण पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंको उखाड २ समुद्रके किनारे पर लानेंलगे ॥ ५१ ॥ उन वानरगणोंनें, शाल अश्वकर्ण धव कुटज अर्ज्जुन ताल तिलक तिनिश ॥ ५२ ॥ वेल सतपत्री फूला हुआ कठचम्पा आम अशोक इत्यादि वृक्षोंसे समुद्रके किनारेकी भूमि परिपूर्ण कर डाली ॥ ५३ ॥ इस प्रकारसे वह वानर गण जड़ सहित और जड़ रहित वृक्षोंको ग्रहण करकै इन्द्र ध्वजकी समान चारों ओरसे लानें लगे ॥ ५४ ॥ वह वानर अनेक स्थानोंसें ताल दाड़िम

(दारमी)नारियल बहेड़ा करील बकुल और नींब आदि समस्त वृक्षोंको सब ओरसे तोड़ उखाड़ कर ले आये ॥ ५५ ॥ हाथियोंके समान आकार वाले बड़े २ पर्वत खंड और पर्वतोंको उखाड़कर कलोंके द्वारा उनको समुद्रके तीरपर लेआये ॥ ५६ ॥ जब वानरगण वार २पर्वतोंको समुद्रमें फेंकतेथे तब समुद्रका जल उफन कर बराबर आकाशको चला जाता और फिर नीचे गिर जाताथा ॥ ५७ ॥ इसप्रकार चारों ओरसे पत्थरोंके पड़नेंसे समुद्रका जल खलबलाय गया। और बहुतसे वानरोंनें १०० शत योजनका लंबा सूत समुद्रके इस पारसे उस पारतक सिधाई टेढ़ाई की परीक्षा करनेंके लिये थामा ॥ ५८ ॥ जो कुछहो इस प्रकारसे महा वीर नल विचित्र कर्म करनें वाले वानरोंके साथ समुद्र पर पुल बांधनें लगे ॥ ५९ ॥ कोई २ वानर दंड ग्रहण करके अपने आधीन हुए वानरोंसे कार्य करानें लगे; और कोई इधर उधर वृक्षादिकोंको ढूंढ़नें लगे, इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे सैकड़ों हजारों वानर ॥ ६० ॥ जितना आकार मेघ और पर्वतोंकी समानथा तृण काठ और फूले हुए वृक्ष व पत्थरोंसे सेतु बांधनेंका प्रारंभ करनें लगे ॥ ६१ ॥ हाथीकी समान आकारवाले बहुत सारे वानर गण पर्वतकी समान बड़े पत्थरोंके खंड और पर्वतोंके शिखर ग्रहण करते हुए पुलके सन्मुखको दौड़नें लगे ६२॥ उस कालमें पर्वतोंके शिखर और पर्वतोंके खंड बराबर पड़नेंसे समुद्रमें घोर शब्द होनें लगा ॥ ६३ ॥ पवननंदन हनुमानजी सरलतासे, जो शैल उठायकर लाते और पुलके ऊपर डालदेते, विश्वकर्माके पुत्र नल लीलापूर्वक बाँये हाथसे उस पुलका समस्त कार्य आरंभ करनें लगे, इस प्रकारसे पर्वताकार शीघ्र कर्मकारी वानरोंनें अत्यन्त आनंदके सहित पहले दिन चौदह योजन लंबा पुल बनायाथा ॥ ६४ ॥ भयंकराकार महाबल वानरोंनें दूसरे दिन इस प्रकार शीघ्रता प्रगट करके उन वानरोंनें और नया वीस योजन सेतु निर्माण किया ॥ ६५ ॥ तीसरे दिवस शीघ्र कर्मकारी पर्वताकार वानर लोगोंने इक्कीस योजन और अधिक बनाया ॥ ६६ ॥ उन महा वेगवाले वानरोंने चौथे दिन बाईस योजन सेतु और अधिक बनाया ॥ ६७ ॥ पांचमें दिन उन शीघ्र कर्मकारी वानरोंने तेईस योजन पुलको और बनाया, कि जिस्से चार शत कोशका

लंबा पुल बनगया, और लंकाके नीचे वेला भूमिमें वह पुल उन वानरोंनें मिलादिया ॥ ६८ ॥ इस प्रकारसे विश्वकर्माके पुत्र बलशाली वानर श्रेष्ठ नलनें अपने पिताकी समान चतुरता दिखायकर समुद्रके ऊपर सेतु बांधा ॥ ६९ ॥ मत्स्यादि जीवोंके स्थान समुद्रके ऊपर नलका बनाया, वह अच्छी बनावटका पुल आकाशवाले देव मार्गकी समान शोभायमान होनेंलगा ॥ ७० ॥ उसी समय, देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि गण आकाशमें टिके रहकर यह अद्भुत व्यापार सेतुका देखकर परम सन्तुष्ट हुए ॥ ७१ ॥ नलके बनाये चालीस कोश चौड़े, व चारसौ कोशके लंबे, इस दुष्कर पुलको देखकर देवता और गन्धर्व गण अति विस्मित हुए ॥ ७२ ॥ कार्यसिद्धिकी सूचना जानकर वानरगण आनंदके मारे कूदनें लगें, व कोई २ अति जोरसे कूदकर गर्जनें लगे अचिन्तनीय अद्भुत व रोमहर्षण ॥ ७३ ॥ इस सेतुके बंधनेंको देखकर, सब प्राणी मोहित होगये महाबलवान लाखों करोडों वानर गण इस प्रकारसे ॥ ७४ ॥ सेतु बांधकर समुद्रकी दूसरी पार चले गये । अतिविशाल अच्छी तरहसे बनाया हुआ शोभायमान सुन्दर समानभूमियुक्त अच्छा चिकना सेतु ॥ ७५ ॥ समुद्रके केशविन्यास करनेंकी समान शोभा प्राप्त करनें लगा, तिसके पीछे गदा हाथमें लिये समुद्रके दूसरी पार बिभीषणजी ॥ ७६ ॥ अपने मंत्रियोंके साथ शत्रु लोगोंका संवाद और उनका माया कार्य जाननेंके लिये घूमनें लगे । इस ओर वानरराज सुग्रीवजी सत्य पराक्रमवान श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७७ ॥ कि हे वीर! यह मध्यवर्ती समुद्रका मार्ग बहुत दूरतक है, इस कारण आप हनुमानजीकी, और लक्ष्मणजी अंगदजीकी पीठपर चढलें ॥ ७८ ॥ आकाशमें चलनेंवाले यह दोनों वीर आप दोनों जनोंको सवार कराकर ले जांयगे । इस प्रकार इस सैनाके आगे २ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी अंगद हनुमानकी पीठपर चढे ॥ ७९ ॥ धनुष धारण किये धर्मात्मा सुग्रीवजीके साथ चलनेंलगे वानरोंमेंसे कोई २ बीचमें, और कोई२पीछे२इधर उधर जानें लगे ॥ ८० ॥ बहुतसे वानर जलमें पैरते हुए बहुतसे पुलके ऊपर होकर चले, और कोई २ गरुड़जीकी समान चतुरता प्रगट करके, आकाश मार्गमेंही गमन करनें लगे ॥ ८१ ॥ वानरोंकी सैनामें पुलके ऊपर गमन करनेंके समय

इस प्रकारका बडा भारी शब्द कियाकि; जिस्से उन्होंनें इस अपने शब्दसे समुद्रके भयंकर उछलनेंके शब्दकोभी मूंद लिया ॥ ८२ ॥ इस प्रकारसे वानर गण नलके बनाये सेतुकी सहायतासे समुद्रके पार हुए, और वहां पहुंचकर सुग्रीवजीनें उनको अधिक फल मूल पूर्ण समुद्रके किनारेपर टिकाया ॥ ८३ ॥ सिद्ध देवता लोग रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका यह अद्भुत दुष्कर कर्म देखकर सहसा आकाश मार्गमें प्रगट हो, मंदाकिनीके पवित्र जलको वर्षायकर अलग२श्रीरामचंद्रजीका अभिषेक करनेंलगे ॥ ८४ ॥

जयस्वशत्रून्नरदेवमेदिनींससागरां
पालयशाश्वतीःसमाः ॥ इतीवरामंनर
देवसत्कृतंशुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ ८५ ॥

और बोले, "हे नरदेव ! आप शत्रु लोगोंको पराजित करके बहुत कालतक इस सागर सहित पृथ्वीका पालन करो" इस प्रकार अनेक शुभ वचन कह २ कर उन राजश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको आशीर्वाद देनें लगे ॥ ८५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥

निमित्तानिनिमित्तज्ञोदृष्ट्वालक्ष्मणपूर्वजः ॥
सौमित्रिंसंपरिष्वज्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

सर्व कारणोंके जाननेंवाले लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी अनेक भांतिके बहुविध अघोर सगुन देखकर सुमित्राजीके पुत्र लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाय यह बोले ॥ १ ॥ कि हे लक्ष्मण ! जिस स्थानमें शीतल जल और फलवाले वृक्षहों उसी स्थानमें ऋक्ष, गोपुच्छ और सब वानरोंकी सैना विभागसे व्यूह रचना करकै टिकै ॥ २ ॥ रीछ, वानर, और राक्षस गणोंके विनाश रूप अतिघोर लोकक्षयकारी अशुभ निमित्त देखतेहैं, किं जिस्से बड़ा भारी नाश राक्षसोंकी सैनाका होगा ॥ ३ ॥ यह देखो, पवन विरुद्धभावयुक्तहो धूलके सहित चल रहीहै; पृथ्वी कम्पायमान हो रहीहै; पर्वताग्र चलायमानहैं, वृक्ष अचानक टूटटकर गिर रहेहैं ॥ ४ ॥

गिद्ध, गीदड़, बाज आदि मांस भक्षी जीवोंके वर्ण समान धौले रंगवाले मेघ अत्यन्त कठोर शब्दसे गर्जन करके रुधिरकी बूंदोंके मिले हुए जलकी वर्षा करतेहैं ॥ ५ ॥ संध्या समय लाल चंदनकी समान अत्यन्त घोर लाल वर्ण होगयाहै. और सूर्य मंडलसे प्रकाशमान अंगारे गिरतेहैं ॥ ६ ॥ जिनको देखकर क्रूर स्वभाववाले पशु पक्षीगण सूर्यके सामनेको मुखकर दीनभाव और करुणाभरी वाणीसे वारंवार शब्दकर रहेहैं. हे लक्ष्मण! हमारे अंतःकरणमें अत्यन्त भय उत्पन्न होताहै ॥ ७ ॥ रात्रिमें पहलेकी समान चंद्रमाका उदय नहीं होता, वरन वह लाल और काली किरणोंसे युक्त और पौषके सहित उदित होताहै ॥ ८ ॥ निर्मल सूर्यमंडलमें नीले वर्णके दाग दिखाई देतेहैं, हे लक्ष्मण! सूर्यके बाहरी भागमें छोटा शुष्क लाल घेरा बन गया ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण! प्रबल धूरिके उडनेसे नक्षत्रगण ढककर दृष्टि नहीं आते इन सबको देखकर बोध होताहै कि युगान्तका समय आगयाहै ॥ १० ॥ कौए, बाज, और गिद्धगण सहसा ऊपरसे गिरते हैं; शृगाल इत्यादि जल जन्तुगण भय उत्पन्न करानेवाला बड़ाभारी भयंकर शब्द कर रहे हैं ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! इन सब उत्पाती चिह्नोंको देखकर हमको निश्चय जान पड़ता है कि यहां की पृथ्वी बहुतही शीघ्र वानर और राक्षस गणोंके छोडे हुए पर्वत शूल और अस्त्र इत्यादि खड्गोंसे ढककर और मरे हुए वीरोंकी मांस व रुधिर गिरनेसे धूल रहित हो कीचमें पूर्ण हो जायगी ॥ १२ ॥ इस कारण हम आजही वानर गणोंके साथ अतिशीघ्र रावणसे पाली जाती हुई अजीत लंका पुरीमें चले जांयगे ॥ १३ ॥ संग्राममें शत्रुओंका निरादर करनेवाले लोकोंको आनंद देनेंवाले विभु श्रीरामचंद्रजी यह कहकर हाथमें धनुष धारण करके सबसे आगे लंकाकी ओरको चले ॥ १४ ॥ विभीषण, सुग्रीव और दूसरे वानरगण भी अति भारी शब्द करते हुए श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ शत्रुका कुल निर्मूल करनेंको चले ॥ १५ ॥

राघवस्यप्रियार्थंतुसुतरांवीर्यशालिनाम् ॥
हरीणांकर्मचेष्टाभिस्तुतोषरघुनंदनः ॥ १६ ॥

रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी श्रीजानकीजीके उद्धारके लिये वीर्यवान वानर गणोंका ऐसा कार्य और यत्न देखकर अतिशय सन्तुष्ट करते हुए ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥

सावीरसमितीराज्ञाविरराजव्यवस्थिता ॥
शशिनाशुभनक्षत्रापौर्णमासीवशारदी ॥ १ ॥

इस प्रकारसे वह आये हुए समस्त वानर वीर लोग राजकुमार श्रीरामचंद्रजी करकै व्यूहमें स्थापित होकर शोभित नक्षत्रराजि विराजित शरद कालीन पूर्णमासीकी रात्रिके समान शोभा धारण करते हुए ॥ १ ॥ वहांकी पृथ्वी समुद्रकी समान प्रकाशित उस रामचंद्रजीकी सैनाके वेगसे अत्यन्त पीडित होकर वारंवार कंपायमान होने लगी ॥ २ ॥ लंकामें टिके हुए भयंकर राक्षसोंके भयंकर कुलाहलका शब्द और भेरी मृदंगोंका शब्द इन समस्त वानरोंने सुना ॥ ३ ॥ और इसको सुनकर वह यहांतक हर्षित हुए कि वह किसी प्रकारसे उन राक्षसोंके शब्दको न सहनकर सकें और बड़ाभारी उत्कंठ शब्द करनें लगे ॥ ४ ॥ तिस समय राक्षस लोगोंने आकाशमे मेघ गर्जनेकी समान वानर लोगोंका उत्कट गर्जना सुना, और कांप उठे ॥ ५ ॥ इसी समय दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी ध्वजा पताकाओंसे शोभित लंकापुरीको देखकर सीताजीके लिये मनही मनं अतिदुःखित हुए ॥ ६ ॥ कि इस समय वह मृगनयनी सीताजी रावणके घरमें रोकी हुई हैं; मंगलग्रहसे ग्रसी हुई रोहिणी नक्षत्रके समान जानकीजीकी शोचनीय अवस्था होगी ॥ ७ ॥ तब महावीर श्रीरामचंद्रजी लंबे २ श्वास लेकर लक्ष्मणजीके सन्मुख दृष्टि करकै, उस कालके हितकर वचन उनसे बोले ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! निहारकर देखो कि विश्वकर्माजीनें पर्वत त्रिकूटके ऊपर इस लंकापुरीको बनायाहै, कि जिस्से ऐसा जान पडताहै, कि विश्वकर्माजीनें इस पुरीको मानों अपने मनहीसे बनायाहै, इसकी शोभा देखकर यह समझमें आताहै कि मानों आकाशमें कुछ तसवीरसे खिंची हुई हैं ॥ ९ ॥ देखो लंकानगरी सत

भूमिक महलोंसे युक्त विमानोंसे युक्त होकर श्वेतवर्णके मेघसे ढके विष्णुजीके पद आकाशकी समान शोभायमान हो रहीहै ॥ १० ॥ इस लंका नगरीमें अनेक प्रकारके चित्ररथ वनकी समान, अनेक पुष्प वन हैं, इन पुष्पवनोके समस्त वृक्ष अनेक भांतिके फल पुष्प और पक्षियोंसे युक्तहैं ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! यह देखो! सुशीतल मन्द पवनके झोंके वृक्षोंकी डालियोंको हिलाय रहेहैं, पक्षीगण मतवाले होकर उनपर बैठे हुएहैं सुंदर वायु वेगकरके चलायमान होनेके डरसे मानों भौंरे घबडा-कर फूलोंमें घुसे बैठतेहैं; कोकिलगण मानो वसन्तकोही मनमें आया हुआ समझकर अपनी " कुऊ!! " कुऊ !! का प्रचार कररहीहैं ॥ १२ ॥ इस प्रकार दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीसे कहकर शास्त्रमें कहे हुए कर्मके अनुसार, वानर सैनाको यथा योग्य स्थानमें टिका दिया ॥ १३ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीनें सब सैनाको आज्ञादी कि पुरुष व्यूहके मध्यमें नील सहित अंगदजी अपनी सेनाके साथ अव-स्थान करैं ॥ १४॥ और इस वानर सैनाके दाहिनी ओर वानरश्रेष्ठ ऋषभ नामक वानर अवस्थान करै ॥ १५ ॥ तथा मदोन्मत्त हाथीके समान दुर्धर्ष गन्धमादन वानर सैना गणोंके साथ इस सैनाके बांई ओर ठहरैं ॥ १६ ॥ और हम लक्ष्मणजीके सहित सावधान होकर सबसे आगे रहेंगे, वानर श्रेष्ठ महा बलवान जाम्बवान,सुषेण और वेगदर्शी ॥ १७ ॥ यह ऋक्षोंमें मुख्य तीन जने कुक्षिकी रक्षा करेंगे । वरुणजी जिस प्रकार अपने तेजसे पृथ्वीके पिछले अर्द्ध भागकी रक्षा करतेहैं; वैसेही वानरराज सुग्रीवजी इस सैना समूहके जवन देशकी रक्षा करें ॥ १८ ॥ वीरश्रेष्ठ वानरगणोंसे रक्षित यह वानरवाहिनी इस प्रकारसे व्यूह मध्यमें स्थापित, और बँट-कर घन घोर घटासे घिरे हुए आकाशकी समान शोभायमान हुई ॥१९॥ वानरगण पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्षोंको ग्रहण करकै मानों लंका नगरीको विध्वंश करनेंकी अभिलाषा सेही उस पर चढ़ाई करते हुए॥२०॥ उस समय वह वानरगण ऐसे उत्साहित हुए कि उन लोगोंनें मनमें विचारा कि यातो पर्वतोंके शिखर चलाय कर लंकाको चूर्ण कर देंगे,अथवा घूंसे मार २ कर उसके धवरहरोंको तोड़ ताड़ डालेंगे, यह विचार कर वानरगण आनंदमें आधीर होगये ॥ २१ ॥ इसके पीछे महातेजस्वी

श्रीरामचंद्रजी, वानरराज सुग्रीवजीसे यह बोलेकि हे सखे! अबतो सब सैना यथा स्थानमें टिक गई इस कारण अब इस रावणके दूत शुकको छोड़ देना चाहिये ॥ २२ ॥ महा बलवान वानरोंके राजा सुग्रीवजीनें श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञानुसार राक्षसराज रावणके दूत शुकको छोड़ देते हुए ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके कहनेंसे छुटकारा पाय वानरोंसे सताया हुआ शुक अति त्रासितहो राक्षसराज रावणके निकट उपस्थित हुआ ॥ २४ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण शुकको आया हुआ देख कुछेक हँसकर उस्से बोला कि यह क्या? तुम्हारे श्वेत पंख उखड़ गये इनकी यह दशा कैसे हुई? ॥ २५ ॥ कहीं तुम उन चंचलचित्त वानर लोगोंके वशमें तो नहीं पड़ गयेथे? इस प्रकार पूछे जाने पर, राजकुमार श्रीराम चंद्रजीके कहनेंसे छूटा भयभीत शुक राक्षस पति रावणको यह उत्तर देता हुआ ॥ २६ ॥ शुक बोलाकि. महाराज! हम समुद्रके उत्तर तीर जायकर प्रथम मधुर वचनोंसे वानर गणोंको समझानेंके लिये जिस प्रकारसे आपनें कहा था,, वैसेही आपके आज्ञा किये वह वीरोचित वचन आरंभ करता हुआ ॥ २७ ॥ परन्तु वानर लोगोंने हमको देखतेही क्रोधायमानहो ऊपर आकाशमें छलांग मारकर हमको पकड़ लिया; और वह हमारे सब पंख उखाड़नें और घूंसोंसे हमारे प्राण तक निकाल-नेंको तैयार हुए ॥ २८ ॥ उन वानरोंनें न तो हमसे कोई बात पूछी; न हमें कोई प्रश्नही करनें दिया; कारण कि वह वनचारी वानर स्वभावसे क्रोधी होतेहैं. और बिना कुछ सोचे विचारे शीघ्रतासे कार्य किया करते हैं; इस कारणसे प्रथमही वह हमको मार लगानें लगे ॥ २९ ॥ तिसके पीछे जिनके हाथमें विराध. कबन्ध और खरका प्राण संहार कियाहै और जो सुग्रीवके साथ सीताजीको ढूंढ़नेंको निकलेहैं, उनको हमनें देखा ॥ ३० ॥ वह समुद्रमें पुल बांध उसके द्वारा खारी सिन्धुके पार आये हैं। मानों वह राक्षस कुल निर्मूल करनेंकी वासनासेही धनुष धारण करके लंकामें आय पहुँचेहैं ॥ ३१ ॥ पहाड़ी मेघोंकी समान उनकी वानर और रीछोंकी इतनी सैनाहै कि जिसके देखनेंसे ज्ञात होताहै कि इसने सब पृथ्वीको ढक रक्खाहै ॥ ३२ ॥ हे महाराज! आ-पकी और वानरराज सुग्रीवजीकी सैनाके बीचमें देव गणोंके साथ दानव

लोगोंकी समान परस्पर सन्धि होनेंकी कोई संभावना नहीं ॥ ३३ ॥ इसकारण यातौ आप बहुत शीघ्र श्रीरामचंद्रजीको सीता समर्पण करदें अथवा उनके साथ युद्ध करैं अतएव इन दोकार्योंमेंसे आप एक करैं ॥ ३४ ॥ शुकके ऐसे वचन सुनकर रावणके दोनों नेत्र अत्यन्त लाल होगये, और उन नेत्रोंसे रावण शुकको जलाता हुआसा शुकसे बोला॥३५॥ कि यदि देव दानव और गन्धर्वगण एक साथ मिलकर हमारे साथ युद्ध करैं, अथवा त्रिलोकीके सब रहनेंवाले भी विरुद्ध होजांय तथापि हम भय पायकर कभी जानकीको रामके समर्पण न करेंगे ॥ ३६ ॥ * अहो! ऐसा शुभ समय कब आय पहुँचेगा कि जिस समय मतवाले भ्रमर गण जिसप्रकार फूले हुए वृक्षके सामनेंको दौडतेहैं, वैसेही हमारे बाण उन रामचंद्रके सन्मुख दौड़ेंगे ॥ ३७ ॥ कब हमारे धनुषसे छूटे हुए प्रदीप्त बाणोंसे अंगमें रुधिर लगे हुए उन रामको हम अपने बाणोंसे जला डालेंगे, कि जिसप्रकार उल्का हाथीको जलातीहै ॥ ३८ ॥ हे शुक! हम निश्चय कहतेहैं कि जिसप्रकार सूर्य उदय होकर छोटे २ तारा गणोंका तेज हरण कर लेतेहैं; वैसेही हमभी बड़ीभारी सैना साथ लेकर रामचंद्रकी अल्प साधारण सैनाका नाश कर डालेंगे ॥ ३९ ॥ अधिक क्या कहैं; हमारा वेग समुद्रकी तुल्य और बल पवनकी समानहै; हमको तौ ऐसा जान पड़ताहै कि राम हमारे बलाबलको कुछभी नहीं जानते, इसी कारणसे वह हमारे साथ युद्ध करनेंका साहस करतेहैं ॥ ४० ॥ रामचंद्रनें हमारे विषधर सर्पकी समान चलाये हुए बाणोंकी बिकट मूर्ति नहीं देखीहै ॥ इसी कारणसे वह हमारे साथ युद्ध करनेंका साहस करतेहैं ॥ ४१ ॥ रामचंद्रनें कभी हमारे साथ युद्ध नहीं कियाहै, इस कारण वह हमारे वीर्यको नहीं जानते; जबकि युद्धके समय हमारी चापमई वीणा बाणसे बजैगी, तब फिर हमको पहचाननेंके लिये रामचंद्रको चिन्ता नहीं करनी पड़ैगी ॥ ४२ ॥ ॥ अतएव उस धनुष रूपी वीणाको

* कवित्त ॥ जान देहों लंक निरशंक सब जान देहौं जान देहौ बसन कुबेर बेगवानकी ॥ जान देहौं सुभट विकट कट जान देहौं, जान देहौं सकल समाज रज धानकी ॥ कुंभ औ निकुंभ रघुनाथकों न जान देहौं जान देहौं हाथी रथ प्यारीतू समानकी । जान देहौं सकल शरीर पीर जान देहों जान देहौं जान पै न जान देहौं जानकी ॥ १ ॥

हम, प्रत्यञ्चा शब्द रूप रण शंकुल शब्द युक्त दुःखी लोगोंके गान सहित बाणोंके शब्दकी सन्नाहट होती हुई शत्रु सैनारूपी नदीमें स्नान कर समरमें बजामेंगे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

नावासवेनापिसहस्रचक्षुषायुद्धेस्मिशक्यो वरुणेनवास्वयम् ॥ यमेनवाधर्षयितुं शराग्निनामहाहवेवैश्रवणेनवास्वयम् ॥ ४५ ॥

हे शुक! अब अधिक कहनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं है हजार आंख वाला इन्द्र अथवा वरुण हमको कोईभी युद्धमें नहीं जीत सकता; यम-अथवा स्वयं कुबेरभी हमारे बाणकी अग्निके सामनें समरमें खड़े नहीं होसकते ॥ ४५ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०लं०चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः ॥

सबलेसागरंतीर्णेरामेदशरथात्मजे ॥ अमात्यौरावणःश्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥ १ ॥

दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी अपनी सैनाके सहित महा समुद्रके पार होकर लंकामें आयेहैं; इस वृत्तान्तको सुनकर रावण शुक शारण नामक अपने दो मंत्रियोंको बुलायकर कहनें लगा ॥१॥ कि रामचंद्रनें समुद्रके ऊपर पुल बांध लिया कि जिसके ऊपर होकर समस्त वानर सैना बड़ी कठिनसे पार होनेके योग्य समुद्रके पार चली आई; हमनें कभी ऐसा काम किसीको करते हुए नहीं देखा ॥ २ ॥ रामनें साधारण मनुष्य होकर सेतु बांध लियाहै; यह बात किसी प्रकारसे विश्वाश करनेंके योग्य नहींहै, जो कुछभी हो अब हमको यह जान लेना बहुतही आवश्यकीय बातहै; कि रामचंद्रके साथ कितनी सैना आईहै ॥ ३ ॥ इस कारण तुम दोनों जन गुप्त रूपसे वानरोंकी सैनामें प्रवेश करकै उस वानर सैनाकी संख्या, और उसके बल वीर्यका पता लगा लाओ ॥ ४ ॥ जो समस्त वानरोंके यूथपहैं और जो रामचंद्रके मंत्रीहैं, और जो वानरगण सुग्रीवके सखाहैं, और जो वानरलोग सैनाके आगे चलनेवालेहैं, और जो वानर गण शूर होनेके कारण रण विख्यातहैं ॥ ५ ॥ और जिसप्रकार उस महार्णव

समुद्रके ऊपर पुल बँध गयाहै, वह महा बलवान वानर गण जिसप्रकारसे टिके हुएहैं ॥ ६ ॥ और महा बलवान रामचंद्र लक्ष्मणका उद्योग वीर्य व आदिका वृत्तान्त भली भांतिसे तुम दोनों जान जाओ ॥७॥ और उन महा तेजस्वी वानरोंका सेनापति कौनहै, यहभी तुम दोनों भली भांति जानकर शीघ्रही यहांपर चले आओ ॥ ८ ॥ मंत्री शुक और शारण इस प्रकार रावणकी आज्ञा पाय वानररूप धारण कर बलवान वानरोंकी सैनामें प्रवेश करते हुए ॥ ९ ॥ वह दोनों अचिन्त्यनीय रूयें खड़े करनेवाली वानरोंकी सैना देखकर उसकी गिनती नहीं करसके ॥ १० ॥ कारण कि इस समय वह असंख्य वानर सैना समुद्रके पार होकर कुछ पर्वतोंके शिखरपर कुछ झरनोंमें कुछ पर्वतोंकी गुफाओंमें और कुछ समुद्रके किनारे वन उपवनोंमें पड़ीथी, कुछ सैना समुद्रके पार हो रहीथी, कुछ पार होगईथी और कुछ पार होनेंकी तैयारी कर रहीथी ॥ ११ ॥ कुछ सैना व्यूहमें चली आईथी कुछ आय रहीथी, इस प्रकारसे घोर शब्दकर गरजती हुई वह सैना सब जगह छाय रहीथी। दोनों राक्षसोंनें इस अक्षोभ्य वानरी सैनाको समुद्रके समान देखा ॥ १२ ॥ वह दोनों जने वानरोंकी सैना देखते हुए इधर उधर घूम रहेथे कि इतनेमें महा तेजमान विभीषणजीनें उन लोगोंको देखा और उनको पकड़कर श्रीरामचंद्रजीके पास लेजाय कर कहा ॥ १३ ॥ बिभीषणजी बोले कि हेशत्रुओंके तपानें वाले! यह दो निशाचर राक्षसराज रावणके मंत्री, शुक सारण नामक लंकामें, वास करतेहैं; यह दोनों दूत बनकर यहां आयेहैं ॥ १४ ॥ यह दोनों राक्षस श्रीरामचंद्रजीको देखतेही अत्यन्त भयभीत हुए, और अपने जीवनकी आशाको जलांजलि देते हुए; व हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोले ॥ १५ ॥ हे सौम्य राक्षसोंके राजा रावण करकै प्रेरितहो आपकी सैना संख्या जाननेंके लिये यहां पर आयेहैं ॥ १६ ॥ प्राणियोंके हितकारी शूर दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी. इन दोनों राक्षसोंके करुणा सहित वचन सुन मन्द २ हँसकर यह बोले कि ॥ १७ ॥ जो तुम लोगोंनें हमारी समस्त सैना देख लीहो, मंत्रियोंके सहित सुग्रीवजीका व हमारा बलवीर्यभी यदि तुम जान चुकेहो, अथवा रावणनें जिस प्रकार कह दियाथा उससेभी सिवाय

यदि तुम लोगोंनें कुछ काम कियाहो, तौ हम उन सबको क्षमा करतेहैं, तुम निर्विघ्न यहांसे चले जाओ ॥ १८ ॥ यदि कोई बात देखनेंको वाक़ी रह गईहो उसकोभी देख जाओ; अथवा यह विभीषण फिरसे तुमको समस्त दिखादेंगे ॥ १९ ॥ तुम दोनों हमारे वशमें पड़नेंके कारण अपने जीवनकी आशा नछोड़ो; कारणकि तुम लोग दूत शस्त्रविहीन और शरणमें आनेंके कारण किसी भांतिसे मार डालनेंके योग्य नहींहो ॥२०॥ जो कुछ भी हो. विभीषण! यद्यपि शुक सारण कपटरूपसे हमारी सैनामें प्रवेश करनेंके कारण सुग्रीवादिकोंसे मार पानेंके योग्यहैं, तथापि इन लोगोंपर अत्याचार न करके इन्हें छोड़ही देना उचितहै ॥२१॥ श्रीरामचंद्रजी विभीषणसे यह कहकर फिर शुक और सारणसे कहने लगे। तुम दोनों जने लंकामें जायकर कुवेरके छोटे भाई रावणसे जैसा हम कहैं वह समस्तही यथार्थ २ कह देना ॥ २२ ॥ कि तुम जिस वलका आश्रय लेकर हमारी प्राणप्यारी स्त्री सीताको हरण करकै लेगये हो इस समय सेना और वन्धु वान्धवोंके सहित तुम अपना वही वल दिखाओ ॥ २३ ॥ तुम कल प्रातःकालही फाटक शोभित और प्राचीर वेष्टित लंका नगरी और समस्त राक्षसोंकी सेनाको हमारे वाण समूह द्वारा विध्वंशित होते देखोगे ॥२४॥ वज्र हाथमें लिये देवताओंके स्वामी इन्द्रजी जिस प्रकार दानव लोगोंके ऊपर वज्र छोड़तेहैं; वैसेही हम कल प्रभातको तुम्हारे ऊपर अपना क्रोध छोड़ेंगे ॥ २५ ॥ राक्षस शुक और सारणको जब इस प्रकारसे आज्ञादी; तब वह धर्मवत्सल रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे " आपकी जयहो " कहकर ॥ २६ ॥ लंका नगरीमें आये और राक्षसराज रावणसे कहनें लगे हेराक्षसेश्वर! जैसेही हमनें वानरोंकी सैनामें प्रवेश किया। वैसेही हमको विभीषणनें वध करनेंके लिये पकडा ॥ २७ ॥ तब हमको पकडे हुए देखकर अमित तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें हमको छुड़ादिया कि जहां एकही स्थान पर चार पुरुष श्रेष्ठ ॥ २८ ॥ सर्व अस्त्र शस्त्रोंके जाननें वाले, शूर. दृढ़ विक्रमवान लोकपालोंकी समान शूर, दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी श्रीमान् लक्ष्मण, और विभीषण ॥ २९ ॥ व महा तेजमान महेन्द्र समान विक्रम शाली सुग्रीवजी केवल यही चारों फाटक और वाहर दिवारीसे युक्त लंकापुरीको ॥ ३० ॥ विना और दूसरे

वानरोंकी सहायता लिये त्रिकूट पर्वतसे उखाड़ सकतेहैं, व दूसरे स्थान पर स्थापित कर सकतेहैं, जिस प्रकारका हमनें श्रीरामचंद्रजीका रूप देखा, और उनके बाण समूहका परिचय लिया तिस्से और तीन जनोंका प्रयोजन नहीं; ॥ ३१ ॥ केवल इकले श्रीरामचंद्रजीही लंकापुरीको छिन्न भिन्न कर सकते हैं। हेमहाराज! जैसा मैंनें देखा;उस्से तौ यही जान पड़ाकि राम लक्ष्मण और सुग्रीव करकै रक्षित उस वानरोंकी सैनाको समस्त देवता व असुर लोगभी नहीं जीत सकते ॥ ३२ ॥

प्रहृष्टयोधाध्वजिनीमहात्मनांवनौकसांसंप्रति
योद्धुमिच्छताम् ॥ अलंविरोधेनशमोविधीयतां
प्रदीयतांदाशरथायमैथिली ॥ ३३ ॥

हेराजन् ! वह महाबलवान वानरोंकी समस्त सैना रण करनेंमें चतुरहैं; उसके समस्त वानर यह राह परख रहेहैं कि कब युद्धहो, इस कारण उनसे विरोध करनेंकी कुछ आवश्यकता नहींहै, आप दशरथके पुत्र श्रीरामचंद्रजीको जानकी देकर उनके साथ संधि कर लीजिये ॥ ३३ ॥ इ० श्रीम० वा०आ०लं०पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशःसर्गः ॥

तद्वचःसत्यमक्लीबंसारणेनाभिभाषितम् ॥
निशम्यरावणोराजपर्यभाषतसारणम् ॥ १ ॥

राक्षसराज रावण शारण भाषित यह सत्य और वीरोचित वचन सुनकर उससे बोला ॥ १ ॥ कि यदि देव दानव और गन्धर्वगण एकसाथ मिलकर हमारे साथ युद्धकरें अथवा त्रिलोकीके रहनें वालेभी समस्त हमसे विरुद्ध होजांय तथापि हम भय पायकर कभी जानकीको रामचंद्रके समर्पण न करेंगे ॥ २ ॥ हे सौम्य! वानर लोगोंनें तुमको बहुतही सतायाहै तुम इसी कारणसे अत्यन्त पीड़ित होकर सीताको लौटानेंकी अभीसे परामर्श देतेहो ॥ ३ ॥ विशेष करकै हमारे शत्रु लोगोंमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है कि जो रणभूमिमें हमको जीतसकै यह कठोर वचन कहकर राक्षसोंका स्वामी रावण ॥ ४ ॥ हिमवानको समान ऊंचे श्वेत श्रीमान्

धवरहरके शिखर पर चढ़गया। यह धवरहर कई तालके वृक्षोंको ऊपर नीचे करनेंसेभी बहुत ऊंचाथा ॥ ५ ॥ क्रोध मूर्छित रावण उन दोनों दूतोंके साथ उस धवरहरे पर चढ़कर, समुद्र, पर्वत, और वनतक ॥ ६ ॥ समस्त पृथ्वीको वानरोंसे पूर्ण देखता हुआ। उन अपार सहन करनेंके अयोग्य महाबलवान वानरोंकी सेनाको विश्राम करते हुए ॥ ७ ॥ देख-कर राक्षसोंका स्वामी राजा रावण सारणसे पूछता हुआ कि इन वानर लोगोंमें कौन २ प्रधानहैं? कौन वीरहैं? और कौन २ महा बलवानहैं? ॥८॥ और कौन २ वानर गण अत्यन्त उत्साह युक्त होकर सर्व प्रकारसे वानर सैना अग्रभागमेंकी रक्षा करतेहैं? और सुग्रीवके मंत्री कौन वानरहैं? और वह कौन २ वानर गणहैं, जो यूथनाथोंकेभी यूथपतिहैं? ॥ ९ ॥ और उन लोगोंका पराक्रम कैसाहै, हेसारण! तुम यह समस्त वृत्तान्त हमारे निकट ठीक २ वर्णन करो, जब राक्षसोंके स्वामी रावणनें ऐसा पूछा तब सारण ॥ १० ॥ जो कि समस्त मुख्य अमुख्य वानरोंको जानताथा मुखिया २ वानरोंके नाम धाम और बल विक्रमको बतानें लगा कि जो वानर लंकाके सन्मुखको गर्जन करता हुआ खड़ाहै ॥ ११ ॥ यह शतसहस्र वानरोंका यूथपति है; इसके गर्जनेंसे बड़ी भारी चाहर दिवारी और फाटकोंसे युक्त ॥ १२ ॥ व सर्व शैल, वन कानन सहित लंका पुरी कंपायमान होरहीहै, और जो वानर शाखामृगोंका अधिपति महात्मा सुग्रीवजीकी ॥ १३ ॥ सेनाके आगे खड़ा हुआहै, यह नील नाम वीर यूथपोंका स्वामीहै। और यह जो वीर्यवान वानर दोनों बाहें उठाये मनुष्योंकी समान पृथ्वीपर चरण धरता हुआ चला आताहै ॥ १४ जो वारंवार लंकाकी ओर देखकर जँभाई लेताहै, और कोपके मारे जिसकी दृष्टि कुटिल, होगई है, व जो वानर आकाशमें पर्वतके शृंगकी समान ऊंचा और कमल रजकी समान पीत जिसकी देहका रंगहै ॥ १५॥ और जोकि क्रोधमें भरनेंके कारण वारंवार अपनी पूंछको फटकार रहाहै जिसकी पूंछके शब्दसे दशों दिशाएें गूंज रहींहैं ॥ १६ ॥ हेमहाराज! वानरराज सुग्रीव करके युवराज पद पर अभिषेकित यह युवराज अंगद आपको युद्ध करनेंके लिये पुकार रहेहैं ॥ १७ ॥ हेमहाराजवरुणजी! जिस प्रकार इन्द्रके लिये पराक्रम प्रकाश करतेहैं; ऐसेही सुग्रीवके प्रिय

और अपने पिताकी समान पराक्रमवान यह वालिकुमार अंगदभी श्रीरामचंद्रजीके लिये पराक्रम प्रगट करनेको तैयार हुआहै ॥ १८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके हितकारी वेगवान हनुमानजी जो यहां पर आय लंकामें जो जानकीजीको देख गयेथे; उन्होंने सब कार्य इन अंगदजीही की सलाहसे कियेथे ॥ १९ ॥ यह वीर्यवान अंगद असंख्य वानर यूथप गणोंके साथ आपका संहार करनेंहीके लिये सैना समेत आगे बढ़ा आताहै॥२०॥ जिस वीरनें समुद्रके ऊपर सेतु बांधाहै, यह वही नल नाम वानर संग्रामका अभिलाष किये, बड़ी भारी सेनाके साथ वालिसुत अंगदजीके पीछे टिका हुआहै ॥ २१ ॥ हे महाराज! यह चन्दन वन निवासी जो कि अपने अंगोंको थाम २ हर्षित होकर नाद करतेहैं। यह समस्त वानर इसी वीर नलके पीछे २ चलतेहैं ॥ २२ ॥ यह समस्त वानर अपने यूथप नलके साथ इकलेही लंकाको मसलना चाहतेहैं; वह वानर नल कहताहै कि मैंही लंकाको विध्वंश करूंगा, और यह चांदीके रंगका चपल, भयंकर विक्रमकारी ॥२३॥ बुद्धिमान, व शूर श्वेत, वानर त्रिलोकीमें विख्यात है देखिये कि यह कैसी शीघ्रतासे सुग्रीवजीके पास जाताहै और फिर लौट आताहै ॥ २४ ॥ जिसको युद्धमें आगे बढ़ते हुए देखकर वानरोंकी सैनाके आनंदकी सीमा नहीं रहती। यह वानर पूर्वकालमें गोमती नदीके तीर रम्रणाक पर्वतपर वास करताथा ॥ २५ ॥ अब संयोजन नाम पर्वतपर जोकि बहुत पर्वतोंसे घिरा हुआहै यह कुमुद नामक वानर यूथप राज्य करताहै ॥ २६ ॥ और यह सहस्र कोटि आठ लाख वानरोंको हर्षसहित खेंचता हुआ चला आताहै, व जिसके बाल बहुत लंबे हैं, और बड़ीभारी पूंछके इधर उधर लटकते हैं ॥ २७ ॥ उनमें कुछ ताम्ररंग वाले, कुछ पीले कुछ बहुतही श्वेत इस्से अत्यन्तही भयंकर लगतेहैं, इस वानरका चंड नामहै, यह सदा प्रसन्नचित्त रहकर युद्ध करनें की अभिलाष किया करताहै, हे महाराज! यह वीर भी केवल अपनी ही सैनाकी सहायतासे लंकाको मर्दन करना चाहताहै ॥ २८ ॥ और यह जोसिंह समान पिंगल वर्ण बड़े केशरवाले वानरको आप देखते हैं, इसके नेत्र मानों लंकाको दग्ध करनेंहीकेलिये तैयार होकर एकाग्र चित्तसे इधरको देख रहेहैं ॥ २९ ॥ हे राजन्! यह रंभनाम यूथपहै विन्ध्याचल. कृष्णाचल और सह्य इन तीन मनोहर पर्वतोंमें इसके

रहनेका स्थानहै॥ ३० ॥ इस वानर श्रेष्ठके संग २ में दशलाख तीस असं-ख्य अतिभयंकर रूपवाली ॥ ३१ ॥ घोर विक्रमकारी वानरोंकी सैना चला करती है यहभी अपने ही वानरोंके तेज प्रभावसे लंकाको मर्दन किया चाहता है ॥३२॥और यह जो अपने कानोंको सकोड़ता और वारंवार जंभाई लेरहाहै जिसको अपनी मृत्युका भय नहीं है; और यह अपनी सेनाकी सहायताभी नहीं प्रार्थना करताहै ॥ ३३ ॥ क्रोधके मारे जिसका सर्व शरीर कांप रहाहै, और जो बलवान अपनी पूंछको नचाय २ तिरछा होकर देख २ सिंह नाद कररहाहै ॥ ३४ ॥ जोकि अपनी वीरताईके गर्वसे सदा निडर रहताहै; और रमणीक सात्वनाम पर्वतपर जो रहताहै हे राजन्! इस बडे भारी यूथपका नाम शरभ है ॥ ३५ ॥ हे राजन्! इस शरभके एक लक्ष्य चालीस विहार यूथप हैं ॥ ३६ ॥ मेघ जिस प्रकार आकाशको ढंककर स्थित होते हैं उन मेघोंकीही समान जो वानर देवताओंके वीचमें इन्द्रजीकी समान आकाशको ढककर बैठता है ॥ ३७ ॥ भेरी वजनेंके शब्दकी समान जिसके पीछे चलनेंवाले युद्धकी आशा लगाये वानरोंका गर्जन बराबर सुनाई आताहै ॥ ३८ ॥ यह परिपात्र पर्वत श्रेष्ठ पर सदा रहा करताहै, और युद्धमें सहनें योग्य नहीं है। यह पवन समान वानर यूथपहै ॥३९॥ एक लक्ष पचास हजार यूथप इस वानरकी पूजा किया करते हैं, कि जिन वानरोंके यूथ पृथक् पृथक् हैं ॥ ४० ॥ जो वीर बड़ी भारी भयंकर पराक्रम कारी वानरोंकी सैनाके वीचमें रहकर समुद्रके तीर टिके दूसरे सूर्यकी समान शोभा विस्तार कर रहा है ॥ ४१ ॥ यह मेघकी समान विनत नामक यूथपति घूमता हुआ सदा नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णासा नदीका जल पिया करताहै ॥ ४२ ॥ साठ लाख वानर इस वीरके आधीनमें सैनापतिका कार्य करते हैं। यह देखिये कथन नामक यूथपति आपको युद्ध करनेंके लिये पुकार रहाहै ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! इस वीरके आधीनमें जो समस्त बल विक्रम शाली यूथपति हैं; उनमेंसे प्रत्येकके आधीनमें वैसेही वानरोंकी बलवान सैनाहै, व जिसके शरीरका गेरु-आवर्ण है; और अपनी देहको पुष्ट कर रहाहै ॥ ४४ ॥ यह तेजस्वी गवय नामक वानर क्रोधमें भर आपके सहित युद्धकरनेंको तैयार हुआहै, हे महाराज! यह गवय ऐसा बलके घमंडमें है कि और किसी वानरको वीरही

नही समझता ॥ ४५ ॥ इसके आधीनमें जो सत्रह लाख वानरोंके यूथपहैं; यह उनकी ही सहायतासे लंकाको विध्वंश करनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ४६ ॥

एतेदुष्प्रसहावीरायेषांसंख्यानविद्यते ॥
यूथपायूथपश्रेष्ठास्तेषांयूथानिभागशः ॥ ४७ ॥

हे महाराज! इन सहनेके अयोग्य वानर वीरोंकी गिनती नहीं करीजा सकती कारण कि इनमें जो बडे २ यूथपति हैं फिर उनमे भी प्रत्येकके आधीनमे अनेक यूथनाथ हैं; और फिर उन यूथ आधीनमे भी अलग सैना है ॥ ४७ ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥

तांस्तुतेसंप्रवक्ष्यामिप्रेक्षमाणस्ययूथपान् ॥
राघवार्थेपराक्रांतायेनरक्षंतिजीवितम् ॥ १ ॥

सारण फिर बोला कि हेराजन् आप जो यह समस्त पराक्रम वाले यूथप देखते हैं; उनको अपने जीवनका कुछ भी माया मोहनहीं है; वह श्रीरामचंद्रजीके लिये पराक्रम प्रकाश करके अपना जीवन देदेनेको तैयार हुए हैं; अब हम इन सबका समाचार आपसे कहते हैं ॥ १ ॥ जिसकी पूंछके अत्यन्त चिकने, लम्बे लाल पीले उजले और अत्यन्त श्वेत वाल इधर उधर छिटके हुए हैं ॥ २ ॥ और इधर उधर छिटकनेके कारण सूर्य किरणकी समान प्रकाशित होरहे हैं; और भूमि स्पर्श करते चलतेहैं जिसके बलका कुछ परिणाम नहीं यह वानर हर नामसे विख्यात है ॥३॥ इसके ही पीछे सैकडों हजारों वानर सैना वृक्षोंको धारण किये चलती है इन सबकी कामना लंकापर चढ़ाई करनेकी है ॥ ४ ॥ यह सबही यूथपति वानरराज सुग्रीवजीके किङ्कर युद्ध करनेके लिये आये हैं । महा मेघकी समान नील वर्णके खडे हुए जिन वानरोंको आप देखते हैं ॥ ५ ॥ उनका रंग अंजनकी समान है और युद्धमें यह सत्य पराक्रम के करने वालेहैं, और समुद्रके तीरवाली वालूके कणोंकी समान इनकी संख्याका पार नहीं पाया जाता ॥ ६ ॥ यह पर्वत नद नदी इत्यादि

में वास किया करते हैं हे राजन्! देखिये, यह जो दारुण रीछ सब आपकी ओरको देख रहे हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! इनके बीचमें ही इनका यूथप बैठा हुआ है; वह देखनेंमे भयंकर आकार है; और उसके दोनों नेत्र भी भयंकर हैं; आकाश जिस प्रकार सबभांति मेघमालासे ढककर शोभायमान होताहै; वैसेही यह यूथपति अपूर्व शोभासे सुशोभित है ॥ ८ ॥ पर्वतों में श्रेष्ठ ऋक्षवान पर्वतपर इसका वास और सदा नर्मदा नदीके निर्मल जल पीनेंका उसका अभ्यास है, समस्त रीछोंके अधिपति इसका नाम धूम्र है ॥ ९ ॥ पर्वतकी समान आकारवाले इसके छोटे भ्राताकी ओर आप निहारिये यह भी रूप और पराक्रममें अपने भ्राताकी समानही है ॥१०॥ इसका नाम जाम्बवान्है यह महा यूथपतियोंका यूथपति सद्गुरुका उपासक है इसका स्वभाव यद्यपि शान्त है और यह अपने बडे भाईकी आज्ञामें रहता भी है परन्तु इसके प्रति शस्त्र चलानेहींसे यह उसको सहन नहीं कर सकता है॥११॥इस जाम्बवान्के साथ बुद्धिमान देवराज इन्द्रजी नें मित्रता स्थापनकी है, जब देवासुर संग्राम हुआथा; तब जाम्बवान्नें। इन्द्रकी भारी सहायताकर उनसे अनेक वर पाये हैं ॥१२॥उन्होंनें उस युद्ध में पर्वतके अग्र भागपर चढ महामेघकी समान बहुतही शिलाओंकी वर्षा करके घोर गर्जन कियाथा और मृत्युसें कुछ भय नहीं खाया ॥१३॥ इनकी सेनाके शरीर राक्षस और पिशाचोंकी तुल्य रोमवाले हैं, उस सेनाकी कुछ गिनती नहीं हो सकती और इनका बल भी अमितहै॥१४॥ देखिये इन जाम्बवानको यह क्रोध किये व तड़कते हुए निहार रहे हैं ॥हे राजन्! यह कि जिसको सब वानर देखते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् यह वानरनाथ इन्द्रकी पूजा करने वालाहै। यह देखिये बड़ीभारी सेनाको साथ लिये हुए यही रंभ नामक यूथप वानर है ॥ १६ ॥ महाराज जो वानर पर्वतपर रहनेके समय एक योजन चलनेके समय बगलसे एक योजन आगे चरणोंसें एक योजन व ऊपरको अपने शरीरसे एक योजन बढकर चलता है॥१७॥चौपायोंमें इसकी समान भयंकर मूर्त्ति और किसी की नहीं देखी जाती यह वानरोंका पितामह सन्नादन नामक यूथपति है, कदाचित् इसका नाम तो आपने सुनाही होगा ॥ १८ ॥ इसनें बुद्धिमान इन्द्रजीसे संग्राम करके जय प्राप्तिकी थी, यह वही सन्नादन नाम

यूथपोंका भी यूथपहै॥१९॥और यह जो वानर युद्धके समय इन्द्रके समान पराक्रमी दिखाई देताहै यह गन्धर्वकी कन्यामें अग्निसे उत्पन्न हुआहै ॥२०॥ जब कि देवासुर संग्राम हुआ तब यह वानर देवता लोगोंकी ओरसे लड़-नेंको खड़ा हुआथा, और जहांपर कुबेरजीकी राजधानी अलकापुरीहै वही स्थान इसका विहार स्थानहै ॥ २१ ॥ तुम्हारे भ्राता कुबेरजी जिस प्रकार बहु किन्नर सेवित पर्वतोंपर विहार किया करतेहैं; यह वानर उनके विहार करनेंमें बड़ा सुख देताहै ॥ २२ ॥ और वनमें श्रेष्ठ बलवान वहींपर । वैसेही विहार किया करताहै, युद्ध करनेंमें इसकी समान और कोई वीर दिखाई नहीं देता, इस यूथपति वानरका नाम कथन है ॥ २३ ॥ इसके आधीनमें करोड हजार वानरोंकी सैना रहतीहै; यह वीरभी केवल अपनी सेनासेही लंका नगरीको मर्दन करनेंकी इच्छा करताहै ॥ २४ ॥ जो वानर राजरूपी शम्बसादन असुरके साथ वानर श्रेष्ठ केशरीका संग्राम हुआ जान, और वही वैर याद करके गंगाके समीप टिके हुए गजयूथोंको त्रासित किया करताहै इस सैनापतिको आप दे-खिये ॥ २५ ॥ हे महाराज! यह यूथपति जब तक पर्वतकी गुहामें शयन करके गर्जन किया करताहै, उस समय गज यूथप गण दूरसे इसके उस भयंकर शब्दको सुनकर खडे हो जातेहैं; और पेड़भी टूट जातेहैं ॥ २६ ॥ यह वानर बडी भारी वानरी सैनाका सैनापतिहै यह गंगाके पीछेके भाग वाले उशीर बीज, और पर्वत श्रेष्ठ मन्दरपर रहकर यह परम प्रस-न्नता प्राप्त किया करताहै ॥ २७ ॥ देवराज इन्द्रजी जिस प्रकार अमरावतीमें वास किया करतेहैं, वैसेही यह वानरश्रेष्ठ वहां रमण किया करताहै ॥ २८ ॥ जो कि वीर्य विक्रमसे गर्वित और अमित बलशाली है; यह वानर उन्हीं सब महात्मा वानरोंका प्रेरकहै ॥ २९ ॥ हे राजन्! यह दुर्द्धर्ष प्रमाथी नामक यूथपहै, जिसको कि पवनसे उठे हुए मेघकी समान आप चलते हुए देखतेहैं ॥ ३० ॥ और जिसके साथ वानरोंकी सैना, क्रोध करती वेगसे चलती पवनसे कम्पायमान अरुण रंगकी आप देखतेहैं ॥ ३१ ॥ जिस सैनाके चारों ओर आप वानरोंकी उडाई हुई लाल रज देखतेहैं, और हे महाराज! यह उजले मुखके महाबली गो पुच्छ नाम महा बलवान ॥ ३२ ॥ वानर जो कि अब्बों सेतु बंधपर दिखाई देते

हैं; हे महाराज! बस इन्हीं गोपुच्छ वानरोंका महाराज यह गवाक्ष नामक यूथपहै ॥ ३३ ॥ देखिये इसी गवाक्ष यूथपको घेरे हुए सब गो पुच्छ वानर लंकाको मर्दन करना चाहतेहैं; और गर्ज रहेहैं। जहांपर भौंरे सदा जाया करते और जहां वृक्षोंमें सदा फल लगे रहतेहैं ॥३४॥ सूर्य जिसको अपनी स्थान वर्णवाला समझकर. प्रतिदिन जिस पर्वतकी प्रदक्षिणा किया करतेहैं; और जिस पर्वतकी अरुण कांतिसे जहांके सब पक्षी अरुण वर्णकेही दृष्टि आते ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! जिस रमणीक पर्वतपर सदा महर्षि लोग रहा करतेहैं, और उसको नहीं त्याग करते; और जहां सर्व कामनावाले वृक्ष सर्व फलोंसे युक्त ॥ ३६ ॥ व जिस पर्वत श्रेष्ठपर बडे मोलके मधु आदि मीठे २ पदार्थ उत्पन्न होते, हे राजन् तिसही सुवर्णके पर्वत ॥ ३७ ॥ मुख्यपर वानरोंमें मुख्य केशरी नाम यूथप रहताहै ॥ साठ हजार रमणीक काञ्चन पर्वतोंके मध्यमें॥३८॥ सावर्णि मेरू नामक जो सबसे बड़ा पर्वतहै, पाप रहित जैसे राक्षसोंमें आपहैं पीले रंगके और बहुत श्वेत व बहुत ताम्रवत अरुणमुख वाले, और मधुकी समान पीले रंगवाले ॥ ३९ ॥ वानर इस पर्वत पर वसतेहैं, इन सबके बडे तीक्ष्ण दंत, और नख आयुधहैं; सिंहकी समान चौदन्ते, व्याघ्रकी समान बडे स्वभाव युक्त ॥ ४० ॥ सब अग्निकी समान देदीप्यमान तीक्ष्ण विषवाले विषधर सर्पोंकी समान बडी भारी और चौडी पूछवाले ॥ ४१ ॥ मतवाले हाथी महा पर्वत और महामेघकी समान पिंगल वर्ण गोल नेत्र युक्त महा भयंकर गतिवाले और भयंकर शब्द करनेंवाले जो वानर वास करतेहैं ॥४२॥ देखिये; मानो वही सब वानर गण यह लंकाको मर्दन करनेंके लिये आय रहेहैं। इनके बीचमें इनका वीर्यवान यूथप टिका हुआहै ॥ ४३ ॥ और वह नित्य राज्यकी कामना करके सूर्य भगवानकी पूजा किया। करताहै, हेराजन्! यह समस्त पृथ्वीपर विख्यात हुआ शतबलिनाम वानर यूथपहै ॥ ४४ ॥ हेमहाराज! यह वीर शतबली, ऐसा विक्रमी बलवान और पौरुष युक्तहै, कि इसनें अपनी सैनाहीसे लंका मर्दन करनेंका विचार स्थित कर रक्खाहै ॥ ४५ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, नल, और नील इत्यादि वानरगण समस्तही प्राणोंका मोह छोड़कर श्रीरामचंद्रजीका

प्रिय करनेंके लिये ॥ ४६ ॥ एक २ योधा शत २ करोड़ वानरोंकी सैना संग लिये आयेहैं, सब विन्ध्याचलके रहनें वाले और दूसरे वानर गणभी जो लघु विक्रमीहैं; और बहुत होंनेके कारण जिनकी गिनती नहीं हो सकती ॥ ४७ ॥

सर्वेमहाराजमहाप्रभावाःसर्वेमहाशै
लनिकाशकायाः ॥ सर्वेसमर्थाःपृथि
वींक्षणेनकर्तुंप्रविध्वस्तविकीर्णशैलान् ॥ ॥ ४८ ॥

हेमहाराज! इन सबही वीर गणोंकी देह महापर्वतकी समान है, सबही महाप्रभाववाले, और सबही शिला वर्षाय कर क्षण कालमें सारी पृथ्वी को ढक सकतेहैं ॥ ४८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंका० सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः ॥

सारणस्यवचःश्रुत्वारावणंराक्षसाधिपम् ॥
बलमादिश्यतत्सर्वंशुकोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सारणके वचन सुनकर राक्षसपति रावण शुकसे श्रीरामचंद्रजीकी सेनाका समाचार पूछता हुआ; तब शुक बोला ॥ १ ॥ हेराजन्! आप जिनको मतवाले महागजोंकी समान गंगाके तीर वाले वट वृक्षोंकी समान, और हिमवान पर्वतपर उपजे हुए शाल वृक्षकी समान देख-तेहैं ॥ २ ॥ यह समस्तही सहनेंके अयोग्य बलवान और कामरूप धारण करनें वालेहैं; यह युद्धमें देव गणोंकी समान पराक्रम प्रगट करनें वाले-हैं ॥ ३ ॥ इन समस्त वानरोंकी गिनती नौ करोड़ हजार, पांचकरोड़, सात करोड़ हजार, शंकु सहस्र, और शत वृन्द ॥ ४ ॥ और यह किष्कि-न्धाके रहने वाले सुग्रीवके मंत्री यह वानर गण देवता और गन्धर्वके वीर्यसे वानरोंकी जातिमें उत्पन्न हुएहैं; और यह इच्छानुसार रूप धारण करनें वालेहैं ॥ ५ ॥ देवताओंकी समान दोनों एकहीसे रूपवाले मैन्द और द्विविद नामक जो वानर आप देखतेहैं इसकी समान पुरुष लडनें वाला और कोई नहींहै ॥ ६ ॥ कारणकि ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन दोनों

वानरोंने अमृत पान कियाहै; इस समय यह दोनोंभी अपने प्रतापसे लंकाके उखाड़नेका यत्न कर रहेहैं ॥ ७ ॥ मदान्ध हाथीकी समान जिस वानरको तुम खड़े देखतेहो, यह वीर क्रोधित होकर बल पूर्वक समुद्र-कोभी खलबलाय डालताहै ॥ ८ ॥ हेराजन् जो लंकामें प्रवेश करके जानकीजीका और आपका पता लगा गयाथा, आपनें इसको पहलेभी देखाहै, परन्तु देखिये ! अब यह फिर आयाहै ॥ ९ ॥ यह केशरीका बड़ा बेटा पवनकुमारके नामसे विख्यातहै, इसका दूसरा नाम हनुमानहै; यही समुद्रको लांघकर जानकीके देखनेको यहां आयाथा ॥ १० ॥ हे प्रभो! यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला वानरोंमेंश्रेष्ठ और रूप बल सम्पन्नहै, जिस प्रकार पवनकी गति कोई नहीं रोक सकता, वैसेही उनकी गति नहीं रुकसकती इस कारण जहां इच्छाहो वहां पर यह जाय सकताहै ॥ ११ ॥ बालकपनमें एक दिन यह वीर उदय होते हुए सूर्य भगवानको देखकर बिना सूर्यको हरण किये पृथ्वीपरके किसी फलसे हमारी भूंख न मिटैगी " मनही मन यह विचारकर बलसे दर्पितहो तीन हजार योजन ऊपरको कूद गया, यह सूर्य मंडल पर पहुंच गया था ॥ १२ ॥ १३ ॥ परन्तु देव ऋषि और राक्षसोंसे धर्षित न होनेके योग्य उन सूर्य भगवानको न प्राप्त होकर इन्द्रजीके वज्र मारनेसे यह उदया-चलपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥ हेमहाराज ! पहले इस वीरकी हनु (ठोड़ी) अत्यन्त दृढ़थी परन्तु शिलापर गिरनेसे इनकी एक हनु कुछ एक टूट जानेसे, इसी कारणसे यह वीर्य पहले वृत्तान्तके अनुसार हनुमान नामसे विख्यात हुआहै ॥ १५ ॥ वानरोंका संग होनेसे यद्यपि हमने इस वानरको जान लियाहै, परन्तु इसका बलरूप और प्रभाव वर्णन करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है, हमको तो यह जान पड़ताहै, कि यही वीर अकेला लंका पुरीका नाश करनेकी शक्ति रखताहै ॥ १६ ॥ हे राजन् ! पहले जिन वीरनें आपके प्रतापसे रोकी हुई अग्निको प्रज्वलित करके उसको लंकामेंही छोड़ाथा, भला फिर आप किस कारणसे अब उस हनुमान वीरको भूलतेहैं ? यह वीर अकेलाही लंका मथन करना चाहताहै, व एकबेर करभी चुकाहै ॥ १७ ॥ हनुमानके निकटमेंही जो श्याम वर्ण कमल लोचन वीर बैठे हुएहैं, यह सबही इक्ष्वाकु गणोंके

अतिरथहैं, और लोक इनकेही बल पौरुषकी कथा गाया करतेहैं ॥ १८ ॥
हे महाराज ! धर्म जिस्से कभी चलायमान नहीं होता, और जो कभी
धर्मका उल्लंघन नहीं करते, वेदविदगणोंके अग्रणीय जो वीर ब्रह्मअस्त्र
और समस्त वेद जाने हुएहैं ॥ १९ ॥ जो अपने बाणोंको छोडकर आ-
काश मंडलको भिन्न और पृथ्वीको विदारण कर सकतेहैं; जिनका
पराक्रम इन्द्रकी समान, और क्रोध मृत्युकी समान भयानकहै ॥ २० ॥
और जनस्थानसे आप इनकीही भार्या सीताको हरण करके ले आयेहैं,
यह वही रामचंद्रजी आपसे युद्ध करनेके लिये यहां पर आयेहैं ॥ २१ ॥
श्रीरामचंद्रजीकी दाहिनी ओर यह जो विशुद्ध कांचन वर्ण चौडी छाती
वाले अरुणनयन आकुञ्चित, नील, केश दाम, भूषित (काले घुंघरारे
वालोंसे शोभायमान) वीरको जो आप देखते हैं ॥ २२ ॥ यही श्रीरा-
मचंद्रजीका हित करनेमें रत उनके छोटे भाई लक्ष्मणनामकहैं । नीति-
शास्त्र और युद्ध विद्या इन दोनों बातोंमें यह बडे चतुरहैं शस्त्र धारि-
योंमें श्रेष्ठहैं ॥ २३ ॥ इनको रणमें कोई नहीं जीत सकता, श्रीरामचंद्र-
जीका अपकार करनेवालेके ऊपर यह क्षमा नहीं करते; सबको जीतनें
वाले, विक्रम वान, महाबली, श्रीरामचंद्रजीके मानों दहिनें हाथ व बाहर
के प्राण समानहैं ॥ २४ ॥ यह लक्ष्मण अपने भ्राता श्रीरामचंद्रजीके
हितकारी कार्यमें ऐसे अनुरागीहैं, कि इनके लिये अपने प्राणोंका भी
त्यागनेका मोह भी नही करते हे महाराज ! यह वीरभी इकलेही सर्व
राक्षसोंका संहार करनेके लिये कहतेहैं ॥ २५ ॥ चर आपने मंत्री राक्ष-
सोंके साथ वीर रामचंद्रजीकी बांई बगलमें इनके पक्षमें होकर बैठेहैं; वही
राजा विभीषणहैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! विभीषण राजराजेश्वर श्रीराम-
चंद्रजी करकै लंकाके राज्यमें अभिषेकित होकर आपके साथ युद्ध कर-
नेंकी कामनासे क्रोधमें भरे हुए बैठेहैं ॥ २७ ॥ जिनको आप अटल
पर्वतकी समान बीचमें बैठे हुए देखतेहैं यह सब वानरोंके राजाहैं; इनके
बलका कुछ परिणामही नहीं ॥ २८ ॥ यह तेज यश बुद्धि और बलके
प्रभावसे, पर्वतोंके मध्यमें हिमवान पर्वतकी समान समस्त वानरोंसे
अधिक शोभायमान होतेहैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! यह प्रधान वीर यूथ-
पति लोगोंके साथ किष्किन्धामें पर्वतके दुर्ग वाली वृक्ष युक्त व कोई और

जहां न पहुंचसके, ऐसी गुहामें वानर यूथपोंके साथ रहते हैं ॥ ३० ॥ और देवता व मनुष्य लोगोंकी प्रार्थनीया लक्ष्मी जिसमें सदा टिकी रहती है, वह शतपुष्पीके पुष्प वाली कांचनमयी माला जिनके गलेमें शोभायमान हो रहीहै ॥ ३१ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें वीरश्रेष्ठ वालिका प्राण संहार करके, यह माला वालिकी स्त्री तारा, और किष्किन्धाका राज्य यह समस्तही इन सुग्रीवको दियाहै ॥ ३२ ॥ हे महाराज! संख्या के जाननेंवाले पंडित लोग शत गुणीत शत सहस्रसे एक कोटि, शत सहस्र कोटिसे शंकु कहतेहैं ॥ ३३ ॥ शत सहस्र शंकुसे महाशंकु, एक शत २ महा शंकु सहस्रसे एक वृन्द ॥ ३४ ॥ सहस्र वृन्दको सौसे गुणा करनेंसे एक महा वृन्द, और हजार महा वृन्दको सौसे गुणा करनेंसे पद्म कहलाताहै ॥ ३५ ॥ जो हजार पद्मको शतसे गुणा किया जाय तौ एक महापद्म होताहै, हजार महा पद्मको शतसे गुणाकरनेंसे एक खर्व होताहै ॥ ३६ ॥ सहस्र खर्वको शत द्वारा गुणन करनेंसे एक समुद्र होताहै, और हजार समुद्रको शतसे गुणा करनेंसे एक महोघ कहलाता है ॥ ३७ ॥ इस गणितसे सहस्र महा करोड सौशंकु हजार महाशंकु सहस्र कोटि, शत २ शंकु व हजार महापद्म, शत वृन्द, ॥ ३८ ॥ हजार महावृन्द, और शत वृन्द व हजार महापद्म, और शत खर्व ॥ ३९ ॥ और शत समुद्र, शत महोघ, करोड महोघ, और करोड समुद्र ॥ ४० ॥ इतनी तौ सैना बिभीषण वीरके साथ लिये, और अपनें मंत्रियोंको साथ लिये वानरेन्द्र सुग्रीवजी आपको युद्ध करनेंके लिये पुकारते हैं, यह बड़ी शक्तियुक्त महा बलवान् और महा पराक्रमी हैं ॥ ४१ ॥

इमांमहाराजसमीक्ष्यवाहिनीमुपस्थितां
प्रज्वलितग्रहोपमाम् ॥ ततःप्रयत्नःपरमोवि
धीयतांयथाजयःस्यान्नपरैःपराभवः ॥ ४२ ॥

हेमहाराज! प्रज्वलित ग्रहकी समान इस आईहुई वानरोंकी सैनाको देखकर जिस्से उसका उपायहो, और शत्रुलोग कहीं हमको जीतकर विजयी न होजांय इस बातका आप विशेष यत्न करें ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे अष्टविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥

शुकेनतुसमादिष्टान्दृष्ट्वासहरियूथपान् ॥
लक्ष्मणंचमहावीर्यंभुजंरामस्नदणम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे दशानन शुकके मुखसे सैना गणोंके भुज वीर्यका समाचार पाय और श्रीरामचंद्रजीके दक्षिण बाहु स्वरूप महाबलवान लक्ष्मणजीको ॥ १ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके समीप बैठेहुए अपने भ्राता बिभीषणको व भयंकरपराक्रमकारी वानरराज सुग्रीवजीको बैठे देख ॥ २ ॥ व उनके निकट इन्द्रके औरसपुत्र वालिकुमार महावीर अंगद, हनुमान, और अजीत जाम्बवान् ॥ ३ ॥ व उनकी बगलमें सुषेण कुमुद, नील, नल, गज, गवाक्ष, शरभ, मैन्द और द्विविद ॥ ४ ॥ इत्यादि वानर गणोंको देखतेही रावण कुछ उदासभी हुआ; और फिर उदासीनताके आकारको छिपानेको यथार्थ वचन कहनें वाले, शुक, सारण दोनों निशाचरोंको बहुतही धिक्कारता हुआ निन्दा करनें लगा ॥ ५ ॥ राक्षसराज रावण सामनें बैठे प्रणाम करते हुए उन दोनौं राक्षसोंसे रोष सहित गदगद वाणीसे यह वचन बोला ॥ ६ ॥ तुम लोगोंने जो वचन हमसे कहे, यह उपजीवी मंत्रियोंको किसी प्रकारसे कहनें कर्त्तव्य नहीं हैं, और अपनें स्वामीके प्रति निग्रह या अनुग्रह करनाभी योग्य मंत्रीका कार्य नहींहै ॥ ७ ॥ तुम लोगोंनें विना पूछेजानें परभी जोकि युद्धकरनेंके लिये आये श्रेष्ठ शत्रुके बलकी श्रेष्ठताका वर्णन किया, क्या यह राक्षसराजके मंत्रीका उचित कार्य हुआहै? ॥ ८ ॥ हम समझ गये कि तुम दोनों जनोंनें; आचार्य, गुरु, और वृद्ध लोगोंकी वृथा पूजा कीहै, कारणकि तुम लोगोंको जो सीखनी चाहियेथी वैसी सार राजनीति तुमनें अभीतक नहीं सीखीहै ॥ ९ ॥ यदि कुछ राजनीतिका मर्म समझभी गयेहो परन्तु तुम लोगोंनें उसको ग्रहण नहीं कियाहै मूर्ख पुरुषके समान तुम केवल शास्त्रके भारको धारण कियेहो हमारा कैसा भाग्यहै कि हम ऐसे अयोग्य मूर्ख मंत्रियोंसे युक्त होकरभी इस राज्यका भार बराबर उठाये हुएहैं ॥ १० ॥ जो कुछभीहो हमको कठोर वचन कहते हुए तुमको प्राणोंकी शंका नहीं हुई। कारणकि शुभ और अशुभ हमारी आज्ञाको

पाय जीभ सबही कुछ कह जातीहै फिर ऐसे राजाको अशुभ वचन कहनें क्या उचितहैं? ॥ ११ ॥ वनमें आग लाग जानेंपर चाहें वृक्ष किसीप्रकारसे कुछ जीवित भी रह जांय परन्तु राजाका द्रोह करनेवाले (वागी) अपराधी लोग किसीप्रकार[illegible] ॥ श्रीरामचंद्रजीनें वीरश्रेष्ठ वालको तुम्हारे पहले कि यह माला वालिकी स्त्री तारा, और किष्किन्धाका कोमल न होजाता तो इसही घड़ी शत्रुक और प्रशंसा करने वाले तुम दोनों पापाचारियोंको हम मारडालते ॥ १३ ॥ लोग जैसे कृतघ्नहो और हमारे प्रति स्नेहहीन होगये हो, तिस्से तुम निश्चय ही मार डालनेंके योग्य हो परन्तु तुम्हारे पहले किये हुए उपकारोंका स्मरण करके हमने तुम्हें नहीं मारा अच्छा जो हुआ सो हुआ अब तुम दोनों हमारे निकटसे दूरहो जाओ और फिर कभी हमारी सभामें प्रवेश न करना ॥ १४ ॥ जब रावणनें शुक सारणसे ऐसा कहा, तब वह दोनों जन जय शब्द द्वारा रावणको प्रणाम करके लज्जित भावसे सभासे उठकर बाहर निकल गये ॥ १५ ॥ इनदोनोंके चले जानें पर रावणनें " दूत लोगोंको शीघ्र हमारे निकट ले आओ" समीप बैठे हुए महोदरको यह आज्ञादी । महोदरभी दूत लोगोंको शीघ्रही रावणके पास जानेंका आदेश देता हुआ ॥ १६ ॥ तब दूतगण राजाकी आज्ञा सुन शीघ्र वहां आय "जयहो" ऐसा आशीर्वाद कर रावणकी वन्दना हाथजोड करते हुए ॥ १७ ॥ फिर राक्षसराज रावण उन भयविहीन, शूर विश्वासी दूतोंसे बोला ॥ १८ ॥ कि तुम लोग रामचंद्र और परम प्रसन्नता सहित जो मंत्री लोग उनके संग आयेहैं, उनके कार्य व मनकी वात जाननें के लिये यहांसे शीघ्र ही वहां पर जाओ ॥ १९ ॥ हमारे शत्रु लोग किस प्रकारसे सोतेहैं? और जागते रहकर क्याकरते हैं? और अब आगेको क्या करेंगे? यह वातें तुम लोग बड़ी सावधानीके साथ भलीभांती जान बूझकर यहां चले आओ ॥ २० ॥ कारणकि चतुर राजा लोग दूतोंकी सहायतासे शत्रु लोगोंकी अवस्था जानकर रणभूमिमें सरलतासे उनको भगाय देतेहैं ॥ २१ ॥ दूत गण " जो आज्ञा " कह और शार्दूलको आगे कर हर्षित अंतःकरणसे राक्षसराज रावणकी प्रदक्षिणा करनें लगे ॥ २२ ॥ फिर वह राक्षसश्रेष्ठ महोदरकी प्रदक्षिणा करके जहां पर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित विराजमानथे उस स्थानमें गमन

करतेहुए ॥ २३ ॥ दूत लोगोंनें गमन कर सुवेल पर्वतके समीपमें गुप्तभावसे टिककर श्रीरामचंद्रजीके सहित लक्ष्मण सुग्रीव, और विभीषणको देखा ॥ २४ ॥ और हम, बड़ी भारी वानरोंकी सैनाको देख तेही यह दूतगण भयके मारे आजुंरामरःल होगये; परन्तु उन राक्षसों को देखकर धर्मात्मा राक्षसोंके र मुखसे सैना गणोंके णजीनें बन्दरोंसे उनको इच्छा पूर्वक पकड़वाय लिया, और "पापाशय" कहकर, उनमेंसे दूतोंके सरदार शार्दूलको बंधवाया ॥ २६ ॥ परन्तु वानर लोगोंसे मार डाले जाते हुए देखकर उस दूतको श्रीरामचंद्रजीनें छुटाय दिया, व इसी प्रकार और दूसरे राक्षस दूतोंकोभी सौम्य स्वभाव श्रीरामचंद्रजीनें छुटाय दिया ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे वह राक्षस दूत विपुल विक्रम कारी वानरोंके हाथसे भलीभांति पीट कुटकर. लंबी २ श्वास लेते हुए चेतना रहित की समान फिर लंका पुरीमें आये ॥ २८ ॥

ततोदशग्रीवमुपस्थितास्तेचाराबहिर्नि
त्यचरानिशाचराः ॥ गिरेःसुवेलस्यसमी
पवासिनंन्यवेदयन्रामबलंमहाबलाः ॥ २९ ॥

तिसके पीछे महा बलवान नित्य बाहर घूमनेंवाले निशाचर वह दूत गण रावणके समीप पहुंच कर, सुवेल शैलके निकट टिकी हुई श्रीरामचंद्रजीकी सैनाके समाचार कहनें लगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥

ततस्तमक्षोभ्यबलंलंकाधिपतयेचराः ॥
सुवेलेराघवंशैलेनिविष्टंप्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥

तिसके पीछे दूत लोगोंनें सुवेल पर्वतके निकट पहुंच कर श्रीरामचंद्रजीकी अचल सैनाका जो समाचार पाया था वह समस्त रावणसें निवेदन किया ॥ १ ॥ राक्षसराज रावण दूतोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीकी सैनाका लंकामें आना सुन भीतरेसे बहुतही उदास हुआ और उसी समय शार्दूल नाम दूतसे बोला ॥ २ ॥ अरे निशाचर ! तू विवर्ण और दीनकी समान हो रहाहै, इसका कारण क्या ! शत्रुओंनें बल सहित क्रोधित होकर

कहीं तुझे अपने वशमें तो नहीं कर लियाथा? जो कुछभी हुआ वह समस्तही हमसे ठीक २ वर्णन कर ॥ ३ ॥ भयके मारे व्याकुल शार्दूल इस प्रकारसे पूछे जानें पर राक्षसशार्दूल रावणको मन्द २ वचनोंसे उत्तर देता हुआ ॥ ४ ॥ हे महाराज ! रामचंद्रसे रक्षित उन अमित विक्रम कारी उन बलवान वानर श्रेष्ठोंके बला बलका विचार करना दूत लोगोंको साध्य नहीं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! पर्वता कार वानर गण चारों ओरसे मार्गोंकी इस प्रकारसे रक्षा करतेहैं, कि उन वानर श्रेष्ठोंके बलाबलका विचार करना-तो दूर रहै, हम उनसे कोई प्रश्न या बात चीत कुछभी न करसके ॥ ६ ॥ हम लोग घूमते २ जब रामचंद्रजीकी सैनामें पहुंच गये,तब विभीषणजीके साथ रहनेंवाले चार मंत्री राक्षसोंनें हमको पहँचान लिया, और पहँचान कर उन्होंनें हमें पकड़ बांधकर सेनामें इधर उधर घुमाया ॥ ७ ॥ बांध-कर लेजानें व घुमानेंके समय वानरोंकी सैनाने हमको जांघ, मूका, दन्त, लातसे भली भांति मार कूटकर काटा व डराया ॥ ८ ॥ इस प्रकारसे सब कहीं घुमाय २ फिर वह हमको रामचंद्रजीके पास लेगये; उस समय अत्यन्त मार पड़नेंके कारण हमारा शरीर लोहू लुहान होरहाथा, व इ-न्द्रियें विचलित होंनेके कारण हम विह्वल होरहेथे ॥ ९ ॥ जब कि वानर गण हमारे प्राण लेनेंको तैयार हुए उस समय हम सबनें हाथ जोड़कर रामचंद्रजीसे प्राणोंकी भीख मांगी,तब उन्होंने दया करकै हमें छुड़ाय दि-या और कहा ॥ १० ॥ " हे दूतगण! तुम राक्षस राजके निकट पहुंचकर उस्से कहना कि रामचंद्र पर्वत और शिलाओंके द्वारा समुद्रमें सेतु बांधकर लंकाके द्वारपर शस्त्र सहित टिके हुएहैं ॥ ११ ॥ वह गरुड़ व्यूह बनाये और वानरोंसे विष्टित होकर युद्धकी राह परख रहेहैं; उन्होंनें हमको तौ छोड़ दिया, परन्तु लंकाको वह घेरेही पड़ेहैं ॥ १२ ॥ अब या तौ उन रामचंद्रके साथ युद्ध कीजिये, अथवा उन्हें सीता लौटा दीजिये, कारण कि अब वह कोटकी भीतके पास आयाही चाहतेहैं" ॥ १३ ॥ तब राक्ष-सोंका स्वामी रावण शार्दूलके मुखसे यह बचन सुनकर मनमें एक क्षण भरकी चिन्ता करकै यह महत् वचन बोला ॥ १४ ॥ कि जो देवता, दा-नव, या गंधर्व गण हमारे विरुद्ध युद्ध करनेंको खड़े होजांय, या त्रिलोकीके रहने वालेभी हमारे विरुद्ध होजायँ, तथापि हम भीत होकर सीता रामचं-

द्रको नहीं देंगे ॥ १५ ॥ यह कहकर महा तेजस्वी रावण फिर कहनें ल-
गा कि तुम लोग हमारी आज्ञा पाय दूत भावसे सब कहीं घूमेंहो; इस
कारण बताओ तो वानरोंमें कौन २ वीरहैं! ॥ १६ ॥ और यहभी बता-
ओकि न सहनें योग्य वह वानर गण किसके पुत्रहैं? किसके पोते हैं? उनके
शरीरकी कांति कैसीहै? और उनमें कौन २ शूर विख्यातहैं ॥ १७ ॥
क्योंकि यह सुनकर हम उनका बलाबल जान पीछेसे उनके प्रति विधा-
नका यत्न करेंगे, कारण कि जयकी इच्छा करनेंवाले राजाको प्रथम शत्रु
सैनाकी संख्या जान लेनी, और इनका बलाबल जान लेना अवश्य कर्त-
व्यहै ॥ १८ ॥ दूतश्रेष्ठ शार्दूलसें रावणनें पूछा तब रावणके निकट उसनें
यह वचन कहनें आरंभ किये ॥ १९ ॥ हे महाराज! उस सैनामें ऋक्षराज-
का पुत्र अजीत गदगद उसका पुत्र जाम्बवान्, जोकि समरमें अति अजे-
यहै ॥ २० ॥ गदगदका दूसरा पुत्र केशरीनाम, वानरभी यहांहै, और इ-
न्द्रजीके गुरु बृहस्पतिजीका पुत्र धूम्र नामभी इस सैनामेंहै, जिसके शरीर-
के दूसरे पुत्र हनुमान वानरनें अकेलेही सब वानरोंका अनादर कर डा-
लाथा ॥ २१ ॥ वीर्यवान सुषेण जो कि धर्मात्मा धर्मका पुत्रहै, वहभी य-
हां आयाहै, और सरल स्वभाव युक्त चंद्रमाका पुत्र दधिमुख वानरभी इ-
स सैनामें हैं ॥ २२ ॥ यहांपर सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी नामक यह तीन
वानरभी आयेहैं उनको देखनेंसेही ज्ञात होताहै कि मानो विधाताने वान-
र रूपमें साक्षात् मृत्युकोही रच डालाहै ॥ २३ ॥ अग्निका पुत्र नील
स्वयं इस सैनाका सेनापति होकर आयाहै। और पवनपुत्र विख्यात ह-
नुमानभी इस सैनामें टिका हुआहै ॥ २४ ॥ इन्द्रका नाती वालिका पुत्र
अंगदभी अश्विनी कुमारके पुत्र महाबली मैन्द वद्विविदभी इस वाहि-
नीमेंहैं ॥ २५ ॥ और कालान्तम यम सदृश वैवस्वतादि यमके पांच पु-
त्र. गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, और गन्धमादन यह सबही वीर यहांपर
टिके हुएहैं ॥ २६ ॥ देवताओंके पुत्र और जो दशकोटि शूर श्रीमान् वा-
नर गण जो युद्धकी कामना करकें लंकामें आयेहैं, उनके विषयको हम-
से कहकर पूरा नहीं किया जायगा ॥ २७ ॥ जो युवा अवस्थाके हैं,
वीर कुलमें प्रथम गिनेंजानेंके योग्य वे दशरथमहाराजके पुत्रहैं, इनके
हाथसे खर दूषण और त्रिशिराका संहार हुआहै ॥ २८ ॥ अधिक

क्या कहैं! उन श्रीरामचंद्रजीकी समान संसारमें और किसी-का पराक्रम नहीं देखा जाताहै, उन्होंनें युद्धमें अजीत विराध, और यमराजकी समान कवन्धका प्राण संहार कियाहै ॥ २९ ॥ संसारमें कोईभी पुरुष श्रीरामचंद्रजीके गुणग्राम वर्णन करनेंको समर्थ नहीं है; उन्होंनें जनस्थानमें आगमन करके अनेक राक्षसोंका प्राण संहार कियाहै, वैसेही यह वीर पुरुष लक्ष्मणजी रामचंद्रजीके एक ओर बैठे शोभाको प्राप्त हुएहैं, हमारा विश्वासहै कि इनके बाण चलानेंपर इन्द्रके जीवन रक्षा होंनेमेंभी सन्देहहै फिर और दूसरोंकी तौ गिनती क्या है ॥३०॥३१॥ सूर्यके दो पुत्र श्वेत व ज्योतिर्मुख नामक यहां हैं, और वरुणका पुत्र हेमकूट नाम वानरभी इस वाहिनीमें आयाहै ॥ ३२ ॥ विश्वकर्माका पुत्र वानर श्रेष्ठ नल और अति विक्रम युक्त वेगवान वसुका पुत्र दुर्धरभी यहांपरहै ॥ ३३ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे लंकाका राज्य पायकर उसका हित साधन करनेंकी वासनासे आपके भ्राता राक्षस शार्दूल बिभीषणजी वहांपर विराजमान हैं ॥ ३४ ॥

इतिसर्वंसमाख्यातंतथैवंवानरंबलम् ॥
सुवेलेधिष्ठितंशैलेशेषकार्येभवान्गतिः ॥ ३५ ॥

हमनें सुवेल शैलपर टिककर वानर सैनाके समाचार जो कुछ जानेहैं, वह आपसे कह सुनाये; इसके पीछे अब जो कुछ कर्त्तव्यहो वह आप कीजिये ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० लं० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥

ततस्तमक्षोभ्यबलंलंकायांनृपतेश्चराः ॥
सुवेलेराघवंशैलेनिविष्टंप्रत्यवदेयन् ॥ १ ॥

इस प्रकार सुवेल पर्वतपर लंकाके मध्यमें टिके हुए श्रीरामचंद्रजी और उनकी सैनाको राक्षसनाथ रावणको उसके दूतोंने बताया ॥ १ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावणने दूतोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीका समाचार पाय अत्यन्त व्याकुल होकर मंत्री लोगोंको बुलाया ॥ २ ॥ रावणनें मंत्रियोंसे कहला भेजा कि हे मंत्रिगण! अब हमारे मंत्रणा करनेंका समय आय पहुंचाहै; इसलिये शीघ्रही सावधान होकर तुम यहांपर आओ ॥ ३ ॥

राक्षसराज रावणकी आज्ञा जानकर मंत्रिलोग शीघ्रही वहांपर आय पहुंचे तब लंकापति रावण उन राक्षस मंत्रिलोगोंके सहित मंत्रणा करनें लगा ॥ ४ ॥ और जब मंत्रणाका कार्य पूरा होगया, तब मंत्रिलोगोंको विदा देकर दुर्द्धर्ष रावण अपने स्थानको चलागया ॥ ५ ॥ तिसके पीछे राक्षस नाथ मायावी रावण महाबलवान महादुष्ट विद्युज्जिह्व नाम राक्षसको साथ ले जहां रामप्यारी श्रीजानकीजीथीं वहांपर जानेंकी इच्छा करता हुआ ॥ ६ ॥ जानेंके समय रावण भली भांति मायाके जाननेंवाले विद्युज्जिह्व नामक राक्षससे बोला कि हे निशाचर! आओ हम दोनों जनें मायाके बलसे जनककुमारी सीताजीको मोहित करें ॥ ७ ॥ इसलिये तुम माया विरचित श्रीरामचंद्रजीका मस्तक और एक बाण सहित धनुष ग्रहण करके सीताके समीप हमारे पास आना ॥ ८ ॥ तब मायावी विद्युज्जिह्व राक्षसनें रावणके वचनोंको मान माया विस्तार करके उसको रामचंद्रका मायामय कटा हुआ शिर दिखाया ॥ ९ ॥ जिसको देखकर राजा रावण बहुत सन्तुष्ट हुआ और परितोषिक स्वरूप विद्युज्जिह्वको बहुतसे गहने इत्यादि देकर सीताजीके दर्शनकी लालसासे अशोक वाटिकाको गया ॥ १० ॥ कुबेरके छोटे भाई बली रावणनें अशोक वनमें प्रवेश करके दूरसेही शोकसे कर्षित अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करती हुई, और अदीनताके योग्य होकरभी दीनकी समान नीचेको मुख किये पृथ्वीपर बैठी हुई जनकनंदिनी जानकीजीको देखा ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि जिनको चारों ओरसे राक्षसियें घेरे हुएथीं, तिसके पीछे कुछ एक आगे बढकर रावण हर्षसहित अपना नाम कहताहुआ ॥ १३ ॥ बडी ढीठता पूर्वक जानकीजीसे यह वचन बोला, हे भद्रे! हमारे बहुत विधि समझानें बुझानेंपरभी तुम जिसका आश्रयकर हमारे वचनोंका अनादर करती हो ॥ १४ ॥ तुम्हारे वही खरके मार डालनेंवाले स्वामी रामचंद्र समरमें मारे गये, इस कारण अब तुम्हारी जड़ही कटगई, और गर्भभी मैंने तुम्हारा तोडा ॥ १५ ॥ हे मूढे जनकनंदिनी! अब इस समय उस मरे हुए पतिको लेकर क्या करोगी? इस कारण इस आये हुए विपदकालमें इस दुर्बुद्धिको छोडकर तुम हमारी भार्या बनो ॥ १६ ॥ हे अल्पपुण्य वाली पंडितमानिनि मूढे जानकी! तुम इतनें दिनसे

जिन रामचंद्रकी आज्ञामें दिन बिताय रहीथीं अब तुम्हारी उस आज्ञाका अंत होगया, इस कारण हेभद्रे! अब तुम सब स्त्रियोंके बीचमें पटरानी होकर दिन बिताओ ॥ १७ ॥ हेसीते! दारुण वृत्रासुरके वधकी समान तुम अपने स्वामीके वधका वृत्तान्त सुनो, रामचंद्र हमको मार डालनेंके लिये समुद्र पार वानरोंके स्वामी सुग्रीवकी बड़ी भारी सैनाके संग आये ॥ १८ ॥ और जिस समय सूर्य अस्ताचलको चले, उसी समय उन्होंनें सैना गणको समुद्रके उत्तरतीर पर टिकाया और स्वयंभी आप वहां टिकरहे ॥ १९ ॥ परन्तु वानरोंकी सेना मार्गमें अत्यन्त थक जानेंके कारण जब सुखसे सोयगईं, तब हमारे प्रथम सेही नियत किये हुए दूत लोग उनके कार्योंको देख भालकर आये ॥ २० ॥ तिसके पीछे सैनापति प्रहस्त हमारी बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर जहां राम लक्ष्मण वास करतेथे, वहां जाय उसनें सोतेही रामचंद्रकी सैनाको मार डाला ॥ २१ ॥ इस सैनाको;—पटा, परिघ, चक्र, दुधारा, और दंड नामक महास्त्र, बाणोंके जाल. तीक्ष्ण शूल बड़े मुद्गर, कूट ॥ २२ ॥ लट्ठ तोमर, पाश, और मूसल इत्यादि बड़े २ आयुध उठाकर राक्षस लोगोंनें वानरोंके ऊपर चलाये; जिनके चलानेंसे समस्त वानर मर गये ॥ २३ ॥ उस समय रामचंद्र सुखकी नींदमें सोय रहाथा इस कारण वह युद्ध करनेंको आगे नहीं बढ़ा; परन्तु पराई सैनाके मथन करनें वाले प्रहस्तनें सरलता युक्त हो अपने हाथकी फुरती दिखा, तलवारसे रामचंद्रका शिर काट डाला ॥ २४ ॥ बिभीषणको इस अवस्थामें जितना दंड देना चाहियेथा; उतना दंड देनेंमें कसर नहीं की गई;इस समय वह प्राणोंके भयसे भाग गयाहै, और लक्ष्मणभी कोई उपाय देखकर बची बचाई वानरोंकी सेनाके साथ भाग गया ॥ २५ ॥ हेसीते! वानरराज सुग्रीव गरदन टूट जानेंसे रणभूमिमें पड़ेहैं, और राक्षस गणोंनें हनुमानकी ठोड़ी तोड़कर उसकोभी रणभूमिमें मार डाला ॥ २६ ॥ जब यह देखकर जाम्बवान् भयके मारे उठनें लगा तब राक्षस लोगोंनें बहुतसे पटे मार २ कर उनकी जांघें तोडदी; ऐसी चोट खाय वहभी मर गया, और जड़ कटे पेड़की समान वहां पर पड़ाहै ॥ २७ ॥ वानरश्रेष्ठ मैन्द और द्विविद नामक दौनों जनें लंबे २ श्वास लेते रुदन करते २ लोहू लुहान शरीर

हो मर गये ॥ २८ ॥ प्रथमही अस्त्र प्रहार करके इन शत्रुओंके मारने वाले लोगोंके हाथ काट डाले गयेथे, पनस फल जिस प्रकार पृथ्वीपर गिरताहै, वैसेही वानर पनस पृथ्वीपर शरीरको फैलाये हुए पड़ाहै ॥ २९ ॥ वानर दधिमुख अनेक प्रकारके बाण चलाये जानेसे मस्तक हीन होकर पर्वतकी कन्दरामें सदाके लिये सोय गयाहै । और महातेजस्वी कुमुद नाम वानरभी चुप चाप शब्दरहित हो पृथ्वीपर पड़ाहै ॥ ३० ॥ अंगदभी बहुतसे बाणोंसे छिन्न होकर मारागया, उसका अंगभी भूमिपर पड़ा हुआहै, और उसके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकल रहीहैं ॥ ३१ ॥ और वायु वेगके प्रभावसे चलायमान मेघ मालाकी समान हाथी व रथोंके टकरानें और पिचनेंसे जितनी वानरसैना मारी गईहै उसकी कुछ गिनतीही नहीं हो सकती ॥ ३२ ॥ सिंह जिस प्रकार महा गजोंके पीछे दौड़ताहै, वैसेही राक्षस लोगोंके हाथसे असंख्य वानर सैना भागती हुईभी गिरगई ॥ ३३ ॥ रीछ लोग वानर दलके साथ मिल व छिपकर वृक्षोंपर चढ़ गयेहैं, और कोई २ समुद्रमें गिर गयेहैं, और कोई २ आकाशका आश्रय ग्रहण किये हुएहैं ॥ ३४ ॥ समुद्रके किनारों पर पर्वत और बनोंमें जिन पीले अंगवाले वानरोंने आश्रय लियाथा; यह समस्त विरूपाक्ष राक्षसके हाथसे मार डाले गये ॥ ३५ ॥ हेजानकी ! इस प्रकार हमारी सैनागण करके तुम्हारे स्वामी सर्व सैनागणके साथ मार डाले गयेहैं तुम्हें विश्वाश दिलानेंके लिये हम उनका रुधिर से सना व कटाहुआ मस्तकभी यहां लेआयेहैं ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे परम दुर्जय राक्षसेश्वर रावण सीताजीको सुनानेंके लिये उनके निकट बैठीहुई राक्षसीसे बोला ३७॥ कि हेनिशाचरि ! जो राक्षस रण भूमिसे स्वयं रामचंद्रका शिर काट कर ले आयाहै, उस क्रूरकर्मकारी विद्युज्जिह्व राक्षसको शीघ्र यहां बुलालाओ ॥ ३८ ॥ तिसके पीछे रावणके ऐसा कहतेही यह मायावी विद्युज्जिह्व धनुष बाणके सहित मायामय रामचंद्रजीका कटाहुआ शिर ग्रहण कर रावणके आगे आय प्रणाम करता हुआ ॥ ३९ ॥ रावण मंत्री श्रेष्ठ महाजीभवाले विद्युज्जिह्वको आगे आया हुआ देखकर बोला ॥४०॥ रामचंद्रका कटा हुआ मस्तक तुम इन जानकीको दिखाओ, कारणकि इस समय यह कृपणा सीता अपने स्वामीकी अंतिमा अवस्था देखें ॥ ४१ ॥

जब राक्षस विद्युज्जिह्वसे रावणनें ऐसा कहा तब वह प्रियदर्शन शिर सीताजीको दिखायकर शीघ्रही अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे रावण बोला, हेसीते! देखो यह उन्ही रामचंद्रका त्रिलोकविख्यात दीप्तिशील और बडा भारी धनुषबाण है यह कहकर रावणने वह भयंकर धनुष फेंकदिया ॥ ४३ ॥ हे सीते! पहँचान लो यह वही रोदा चढ़ाया हुआ रामचंद्रजीका धनुषहै, जिसको रात्रि कालमें रामचंद्रजीका प्राण संहार करके प्रहस्त लायाहै ॥ ४४ ॥

सविद्युजिह्वनसहैवतच्छिरोधनुश्चभूमौ
विनिकीर्यमाणः ॥ विदेहराजस्यसुतां
यशस्विनींततोऽब्रवीत्तांभवमेवशानुगां ॥ ४५ ॥

तिसके पीछे रावण विद्युज्जिह्वका लाया हुआ वह मस्तक और यशस्विनी सीताजीके सामनें रखकर उनसे बोला" जो होंना था सो तौ होगया, अब तुम्हारा कर्तव्य यहीहै कि तुम हमारे वशमें होजाओ ॥ ४५ ॥ इ०श्रीम वा०आ०लं०एकत्रिंशः सर्गः॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥

सासीतातच्छिरोदृष्ट्वातच्चकार्मुकमुत्तमम् ॥
सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातंचहनूमता ॥ १ ॥

तब सीताजी रामचंद्रजीका शरासन और उनका मस्तक देख और वह सुधिकर जो कि हनुमानजीनें कहाथा कि वानरराज सुग्रीवकी रामचंद्रजीसे मित्रता हुईहै बहुत देरतक रोंई ॥ १ ॥ जानकीजीने देखा कि कटे हुए मस्तकके दोनों नेत्र रामचंद्रजीकेही समानहैं, वैसाही मुखका रंग, केश, और ठोडी, व चूडामणिके सहितभी इसका कुछ अनमेल नहींहै ॥ २ ॥ जनकनंदिनी सीताजी औरभी अनेक प्रकारके चिह्न देख निश्चय अपने स्वामीकी मृत्युका होना जान अत्यन्त दुःखित हुईं और कुरीं जिसप्रकार शोकसे व्याकुल होकर विलाप करतीहै, वैसेही विलापसे कैकेयीकी निन्दा कर कहनें लगी ॥ ३ ॥ हे कैकेयी! तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई, हे क्लेशको प्यार करनेंवाली तुमसेही रघुकुलनंदन श्रीरामचंद्रजी निहत हुए, तुझकोही प्राप्त होकर बड़े भारी रघुकुलका

नाश होगया ॥ ४ ॥ हाय!!! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें तेरा ऐसा क्या बुरा कियाथा, कि जो तैंनें चीरवसन पहरायकर हमारे सहित उनको बनो वासदिया!!! ५ ॥ इतनाही कहकर तपस्विनी छोटी अवस्थावाली जानकी-जीकी देह कम्पायमान होनेलगी, और वह जड़ कटे हुए केलेकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ६ ॥ तिसके पीछे बड़े नेत्रोंवाली सीताजी सावधान होकर बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त करती हुई, और अपने निकट उस मस्तकको रखकर विलाप करनें लगीं ॥ ७ ॥ हा महाबाहो! हम जीवित हुईभी मारी गईं!, तुमनें वीर श्रेष्ठकी समान अपने पिताका सत्य प्रतिपालन किया, परन्तु हमनें विधवाहोकर तुम्हारी यह सबसे पीछे अवस्था देखी ॥ ८ ॥ हा नाथ! पहले स्वामीका मरण होनेंसे वह स्त्रीके दोषसेही मरण कहलाताहै परन्तु हमको साध्वी (पतिव्रता) जानकरभी तुम किस कारणसे साधुकी समान पहलेही मृतक होगये ॥ ९ ॥ हाय! हम महादुःखके समुद्रमें डूबती हुई बड़े कष्टसे दिन वितायरहीहैं, हमें भरोसा था कि तुम हमे इस विपदसे छुड़ाओगे, परन्तु! हमारे जले भाग्यसे आज तुमहीं मृतक होगये ॥ १० ॥ हानाथ! तुम सरीखा पुत्र पायकर-भी हमारी वह सास कौशल्याजी किस कारणसे विभाना बच्चेकी गायके समान वत्सरहित होगई? ॥ ११ ॥ हे रामचंद्रजी! वशिष्ठ आदि दैवके जाननेंवाले महर्षियोंनें तुमको बड़ी आयुवाला कहाथा, परन्तु हमारे कुभाग्यसे तुम अल्पायु होकरही मृतक होगये, हा! अब उन महर्षियों-के वचन मिथ्या हुए ॥ १२ ॥ तुम पंडित होकरभी जो सावधानताका नाश होनेंके कारण शत्रुके वशमें पड़े, सो यह सब बात कालसे होहुईहै, कारण कि कालही सर्व भूतोंका ईश्वरहै ॥ १३ ॥ हा नीतिशास्त्रविशारद! तुम तो सब विपदोंसे बचनेंका उपाय जान तेथे, और इन विपदोंके निवारण करनेंमें समर्थ होकरभी तुम किस कारणसे इस अदृष्टकी मृत्युके वश हुए ॥ १४ ॥ हा कम-ललोचन! हमहीनें क्या क्रूर घोर रूपवाली कालरात्रि स्वरूप हो तुम्हें चिपटाय, तुम्हारी प्राणवायुको हरण कर लियाहै ? ॥ १५ ॥ हा महाबाहो! पुरुषश्रेष्ठ! तपस्विनीकी समान हमको परित्याग कर प्रियतमा स्त्रीकी समान पृथ्वीको छातीसे लगाये तुम कहां पड़ेहो? ॥१६॥

तुम हमारे साथ सुगन्धित द्रव्य और हारोंसे सदा जिसकी पूजा किया करतेथे और जो हमको भी बहुतही प्याराथा उसी तुम्हारे इस सुवर्ण मय धनुषकी यह क्या अवस्था हुई है? ॥ १७ ॥ हा पापरहित ! तुम निश्चयही स्वर्गधाममें हमारे श्वशुर पिताकी समान महाराज दशरथ-जीके व और दूसरे पितृलोगोंके साथ में मिल गयेहो ॥ १८ ॥ जो आ-काशमें नक्षत्रके स्वरूपमें टिक रहेहैं उन राजर्षि त्रिशंकुके पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण करके, तुमनें अपने पिताके वचनोंका पालन रूप बड़ा भारी कार्य किया, परन्तु ऐसा पुण्य प्राप्त करके भी जो ऐसे पवित्र वंश को त्याग आप स्वर्गको चले गये यह बहुतही अनुचित हुआ ॥ १९ ॥ हा राजन् ! तुमनें बालकपनमें ही जिस बालिकाको अपनी सम सुख दुःख भोग करनेंवाली, स्त्री कहकर स्वीकार कियाथा, अब तुम किस कारणसे उसकी बातका उत्तर नहीं देते ? प्यारे ! अब हमारी ओरको दृष्टि उठायकर भी नही देखते ॥ २० ॥ हे काकुत्स्थ ! तुमनें विवाहमें पाणिग्रहण करनेंके समय "तुम्हारे सहित धर्म कर्मका आचरण करेंगे" ऐसी जो प्रतिज्ञाकीथी,इस समय उसको याद करके हमको भी अपने साथ लेते चलो ॥ २१ ॥ हे भली गतिको पहुंचे हुए! हमको दुःख भोग करनेंके लिये इस लोकको छोडकर तुम किस वास्ते परलोकमें चले गये ॥ २२ ॥ हाय !!! तुम्हारा यह मंगलमय मनोहर शरीर केवल हमही भेंटतीथीं अब वही शरीर राक्षस लोगों करके इधर उधर खेंचा जाता होगा! ॥२३॥ तुमनें बहुत दक्षिणाके साथ अग्निष्टोमादि यज्ञ करके जो संस्कार कियेथे, इस समय अग्निहोत्रद्वारा तुम वह संस्कार क्यों नहीं ग्रहण करते ॥ २४॥ हाय ! हम तीन जने अयोध्या पुरीसे वनवास करनेंको आयेथे; परन्तु अब कौशिल्याजी इकले लक्ष्मणजीकोही लौटा आये देखकर शोकके समुद्रमें डूब जांयगी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे जब वह लक्ष्मणजीसे तुम्हारा वृत्तान्त पूछेंगी. तब लक्ष्मणजीभी निश्चयही वानरोंकी सैनाका वध, और जिस राक्षसोंसे तुम मार डाले गये वह सर्व वार्ता कहेंगे ॥ २६ ॥ हा राघव ! उस समय तुमको सोते हुए नाशको प्राप्त और हमको राक्षसके घरमें घिरी हुई सुनैगी, तब क्या उनका हृदय शतखंड नही हो जाय-गा? ॥ २७ ॥ हाय ! मुझ खोटे शीलवालीकेही लिये पापरहित राजकुमार

श्रीरामचंद्रजीके समुद्रके पार होकर एक गौके खुरभर पानीमें डूब गये ॥ २८ ॥ हाय ! आर्यपुत्र श्रीरामचंद्रजीनें अज्ञानकेही वश इस कुल नाशिनीके साथ विवाह कियाथा, कारण कि मुझ भार्याकेही परिणाममें श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु हुई ॥२९॥ हे आर्य ! जब कि हम अतिथि लोगोंके प्रिय तुम्हारी भार्याहो इस थोड़ी उमरमेंही यहां शोक करनेंको रहगई, तब निश्चयही जान पड़ताहै, कि पहले जन्ममें, हमनें, गौदान, सुवर्ण दान व पृथ्वीदानादि कुछभी नहीं किया ॥ ३० ॥ हे रावण ! तुम शीघ्रही यह पति स्त्रीका मिलनरूप भलाईका देनेंवाला कार्य पूरा करो, कि श्रीरामचंद्रजीके पीछे अब हमकोभी मार डालो ॥ ३१ ॥ हे दशशीश ! तुम हमारे स्वामीके मस्तकके साथ हमारा मस्तक और उनके शरके साथ हमारा शरीर मिलादो । रावण ! महानुभाव पतिके साथही जाना हमको अच्छा लगताहै ॥ ३२ ॥ बडे२नेत्रवाली जनककुमारी जानकीजी अपने स्वामीका मस्तक और वह बड़ा भारी धनुष देखते २ अत्यन्त दुःखसे संतापित होकर विलाप करनें लगी ॥ ३३ ॥ इधर जानकीजो तौ इस प्रकार रोदन कर रहींथी, कि इतनेंमें सैनाका एक निशाचर राक्षस रावणके सन्मुख आन पहुंचा ॥ ३४ ॥ और उसनें " आर्य पुत्र ! आपकी जयहो" यह कह रावणको प्रसन्नकर हाथ जोड प्रणाम किया और कहा कि प्रहस्तनाम सैनापति आयाहै ॥ ३५ ॥ वह फिर विशेष करके बोलाकि हे प्रभो ! महावीर प्रहस्तनें सर्व मंत्रियोंके साथ मिलकर आपके दर्शन पानेंकी आशासे हमको यहां भेज दियाहै ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! ऐसा जान पड़ताहै कि निश्चय कोई राजकार्य आनकर पड़ाहै जो कि अति आवश्यकीयहै, इसी कारणसे वह लोग यहांपर आये हैं इस कारण आप उनको दर्शन दीजिये ॥ ३७ ॥ राक्षसके मुखसे राक्षस रावण ऐसी घबड़ा हटका समाचार पाय अशोक वनको छोड़ मंत्रियोंको देखनेंको जाता हुआ ॥ ३८ ॥ और उन मंत्रियोंके मुखसे श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जान उसके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार और उस लायक कार्यके अनुष्ठान करनेंके निमित्त सभामें आया ॥ ३९ ॥ इस ओर जैसेही कि रावण यहांसे चला गया, कि वैसेही उसके संगरमें

वह माया कल्पित रामचंद्रजीका शिर और विचित्र धनुषभी अन्तर्ध्यान होगया ॥ ४० ॥ इस समयमें राजा रावण भयंकर विक्रमकारी मंत्रियोंके सहित रामचंद्रजीके संबंधमें इस समय क्या कर्त्तव्यहै यह मंत्रणा करनें लगा ॥ ४१ ॥ तब रावण अपने समीप बैठे हुए हितकारी अपने सेनापति लोगोंसे समयानुसार वचन बोला ॥ ४२ ॥ कि बहुत शीघ्र भेरी (बिगुल) बजवाकर तुम लोग शीघ्रही हमारी सैनाको यहां बुला लाओ; परन्तु किसीसेभी बुलानेंका कारण न कहना ॥ ४३ ॥

ततस्तथेतिप्रतिगृह्यतद्वचस्तदैवदूताःसहसाम
हद्बलम् ॥ समानयंश्चैवसमागतंचन्यवेदयन्भ
र्तरियुद्धकांक्षिणि ॥ ४४ ॥

तिसके पीछे वह युद्धाभिलाषी दूत गण "तथास्तु" कहकर राक्षस राज रावणके वचन कहकर वचन मान, उस बड़ी भारी राक्षसी सैनाको वहां लायकर रावणके निकट उनके आगमनकी वार्ता रावणसे निवेदन की ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥

सीतांतुमोहितांदृष्ट्वासरमानामराक्षसी ॥
आससादाथवैदेहींप्रियांप्रणयिनीसखी ॥ १ ॥

इधर सीताजीको मोहित निहार अत्यन्त हितकारिणी सीताजीकी सरमा नाम राक्षसी सखी जानकीजीके निकट आई ॥ १ ॥ और मीठे वचनोंकरके उस रावणके संताप देनेंसे मोहित हुई परम दुःखित जानकीजीको वह समझानें बुझानें लगीं ॥ २ ॥ यद्यपि सरमा सीताजीकी रक्षा करनेंमें नियुक्त तोथी, परन्तु वह सीताजीकी अनुरागिनी और पक्षपातिनीथी, इस लिये सीताजीके साथ उनकी घनी मित्रता हो गईथी ॥ ३ ॥ उसनें अपनी प्रियसखी जानकीजीको लगभग चेतना रहित देखा घोड़ी जिस प्रकार पृथ्वीपर लोटा करतीहै, वैसेही पृथ्वी कुमारी पृथ्वीपर लोट रहीथीं, सरमा उनको उठाकर सखीके स्नेहसे समझानें बुझानें लगी ॥ ४ ॥ हेसखी! रावणनें तुमसे जो कुछ कहाथा,

और तुमनें उसको जिस प्रकारसे उत्तर दियाथा, इसलिये तुह्मारे प्रति अधिक स्नेह होनेके कारण उन बातोंके श्रवण करनेमें हममें कसर नहींकी ॥५॥ हम रावणके भयसे तुमको छोड़कर अबतक निबिड़ वनमें टिक रहीथीं। परन्तु हेबड़े नेत्रोंवाली जो कुछ कार्यहो तौ हम तुम्हारे लिये रावणसेभी कुछ शंका नहीं करतीं॥ ६ ॥ हे मैथिलि! वह राक्षसोंका, स्वामी रावण जिस कारणसे इस स्थानको घबड़ाहटके साथ छोड़ चला गयाथा, वह समस्तही कारण उसके पीछे२ जायकर हम जान आई हैं॥७॥ उन सर्व्वान्तर्यामी श्रीरामचंद्रजीके सोते रहते उनके सैनाके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता और उस अवस्थामें उन पुरुषसिंह श्रीरामचंजीका वध करना भी युक्तियुक्त नहीं हो सकता॥ ८॥ श्रीरामचंद्रजीकी बात तौ दूर रही; इन्द्र करके रक्षित देवता लोगोंकी नाई श्रीरामचंद्रजीसे रक्षित, वह वृक्ष हाथोंमें लेकर लड़नेंवाले वानरोंको भी कोई नहीं मार सकता॥ ९ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीकी सुगोल दोनों भुजा जंघातक लम्बीहै, उनके सब शरीर पुष्टहैं; प्रतापवान धनुष धारण करनेंवाले कवच व स्तर धारण किये वह धर्मात्मा तीन लोकमें विख्यातहैं ॥ १० ॥ वह अत्यन्त घोर पराक्रम करनेंवाले, और नित्यकाल अपने परायेकी रक्षा करनें वाले, नीति शास्त्रके असाधारण जाननेंवाले परम कुलीनहैं, भ्राता लक्ष्मणभी उनके साथही रहतेहैं ॥ ११ ॥ हेसीते! शत्रुकी सैनाके नाश करनें वाले, अचिन्त्य बल पौरुष युक्त, शत्रुके संहारकारी अपने लघु भ्राता लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजी नहीं मारे गये॥ १२ ॥ अन्याय बुद्धियुक्त क्रूर कर्म करनेंवाले सर्व प्राणियोंका विरोध करनेंवाले भयंकर रावणनें तुम्हारे निकट माया फैलाय यह धनुष बाण और शिर दिखलानेंका कार्य कियाहै ॥ १३ ॥ हेसीते! शोक बीतकर अब तुम्हारे बड़े भारी कल्याणका समय आयाहै। हेमान्ये! तुम बहुतही थोड़े समयमें बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त करोगी, कारणकि तुम्हारे लिये जिस मंगल मय कार्यका प्रारंभ हमनें कियाहै, वह तुम सुनों ॥ १४ ॥ हम देख आईहैं कि श्रीरामचंद्रजी वानर सैनाके सहित समुद्रके पार होकर महा समुद्रके दक्षिण किनारे पर टिके हुएहै ॥१५॥ हमनें अंतरीक्षमें टिक कर स्वयं देखाहै कि परिपूर्णार्थ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी समुद्रके तीर टिकी वान-

रोंकी सैनासे रक्षित होकर अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ विराजमानहो रहेहैं ॥ १६ ॥ और राक्षसोंके स्वामी रावणनें जिन लघु विक्रमी दूतोंको भेजाथा उन लोगोंनेंभी लौटकर रावणके निकट " रामचंद्रजी समुद्रको उतर आये " यह समाचार दिया ॥ १७ ॥ हेविशालनेत्रवाली ! राक्षस नाथ रावण यह वार्ता सुन करकेही मंत्रि लोगोंके साथ परामर्श करताहै १८ ॥ सरमा यह बात कह रहीथी कि इतनेमें जानकीजी और सरमा दोनोंनें रावणकी सैनाका समरमें तैयार होंनेके लिये भयंकर सिंहनादको सुना ॥ १९ ॥ मधुर वचन बोलनेंवाली सरमा सैनाकी तैयारीकी चरचा देंनेवाली भेरीका महाशब्द सुनकर सीताजीसे बोली ॥ २० ॥ हेभीरु! जिस भेरीके शब्दको सुनकर सैना बख्तर धारण व समरकी तैयारी करतीहै; अतएव मेघके गर्जनेंकी समान यह उसकी भेरीका शब्द तुम सुनो ॥ २१ ॥ मदमाते हाथी समस्तही सजगये, रथोंमें घोड़े जुतगये कवच बख्तर पहरे हुए असंख्य वीरगण भाला हाथमें लिये घोड़ों पर सवारहोरहेहैं ॥ २२ ॥ और अस्त्रधारी अगणित वीरगण आगे बढ़रहेहैं, और राजमार्ग अद्भुत रूप धारण किये सैनासे इस प्रकार छाय रहाहै ॥२३॥ कि जिस प्रकार वेगयुक्त शब्दायमान समुद्र तरंगोंसे परिपूर्ण होताहै । सिपाहियोंके अस्त्र शस्त्र ढाल बख्तर ॥ २४॥ रथ घोड़े हाथी,और रावणके अनुगमनकारी राक्षसोंका शब्द होरहाहै योधा लोग हर्षितमन और अति वेगसे युद्धके लिये तैयारहोरहेहैं ॥ २५ ॥ यह देखो ! ध्वजा इत्यादिकी अनेक वर्णवाली प्रभा प्रकाशमान हो रहीहै जैसे ग्रीष्म कालमें वनके जलांनेंवाले सूर्यकी अनेक वर्णवाली प्रभा निकलतीहै ॥ २६ ॥ हेसीते ! यह घंटोंकी ध्वनि रथोंका खर २ शब्द और तुरेही निनाद, और घोड़ोंके हिंन हिनानेंका शब्द तुम श्रवण करो रावणके अनुयायी राक्षसगण हथियार उठाये गमन कर रहेहैं; देखते २ भयंकर रुओंको खड़ा करनेंवाली तैयारीयें होंने लगी, देखो ! शोकका नाश करनेंवाली लक्ष्मी तुम्हारे अंगोंमें शोभायमान होरहीहै; राक्षसलोगोंको श्रीरामचंद्रजीसें भय उत्पन्न हुआ है ॥२७॥ कि जिस प्रकार इन्द्रजीसे दैत्योंको भय उत्पन्न होताहै। हे कमल-दल सम नेत्रवाली जितेन्द्रिय अचिंत्य विक्रमकारी तुम्हारे पति श्रीरामचं-द्रजी समरमें रावणको संहार करकै तुमको प्राप्त करेंगे ॥ २८ ॥ इन्द्रजीनें

जिस प्रकार विष्णुजीकी सहायतासे शत्रु लोगोंपर विशेष पराक्रम प्रकाश कियाथा, वैसेही तुम्हारे स्वामी श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राता लक्ष्मणजीके साथ संग्राममें राक्षसोंके ऊपर विचित्र विक्रम प्रगट करेंगे ॥ २९ ॥ जब शत्रुका नाश होजायगा, तब तुम्हारा मनोरथभी पूर्ण होगा और हम तुम्हें यहां आये हुए तुम्हारे स्वामीके अंगमें विराजमान देखेंगी ॥ ३० ॥ हेजानकी! उन चौंड़ी छातीवाले अपने स्वामी श्रीरामचंद्रजीको भेंटकर तुम उनकी छातीपर बहुतही शीघ्र आनंदके आंसू बहाओगी ॥ ३१ ॥ हेदेवी! तुम कई महीनोंसे जो जांघोंतक लम्बायमान एक मात्र वेणी धारण किये हुएहो सो महाबलवान श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही इस चोटीको बहुत शीघ्र अपने करपंकजोंसे सुधारदेंगे और तुम बहुतही शीघ्र इस विपदसे छूटोगी ॥३२॥ हेदेवी! जिस प्रकार सांपनि पुरानी केंचलीको छोड़ देतीहैं; वैसेही तुम उदय हुए चंद्रमाकी समान अपने स्वामीका वह मुख देखकर आनंदके आंसू छोड़ोगी ॥ ३३ ॥ हेरामप्यारी जानकी! सुखके योग्य श्रीरामचंद्रजी बहुतही शीघ्र रणभूमिमैं रावणका संहार करकै तुम्हारे साथ सुख प्राप्त करेंगे ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार यथोचित वर्षा होनेंसे धान्ययुक्त पृथ्वीकी अपूर्व शोभा होतीहै वैसेही तुम श्रीरामचंद्रजीके प्रेम व्यवहारसे सन्मानित होकर अत्यन्तही सन्तोष भोग करोगी ॥ ३५ ॥

गिरिवरमभितोविवर्तमानोहयइवमंडलमाशुयःक रोति ॥ तमिहशरणमभ्युपैहिदेविदिवसकरंप्रभवो ह्ययंप्रजानाम् ॥ ३६ ॥

हेदेवी जानकि! जो पर्वतश्रेष्ठ सुमेरुके चारों ओर अश्वकी समान गोलाकार गतिसे घुमा करतेहैं; अब तुम उन्ही प्रजा लोगोंका मंगल करनें वाले अपने कुलदेवता सूर्य भगवानकी शरणमें जाओ * ॥३६॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० लं० त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

अथतांजातसंतापांतेनवाक्येनमोदिताम् ॥

* सूर्य कुलके रामचंद्रकी तुम वधू हो सो दयानिधान सूर्यभगवान तुम्हारी विपत दूर करैंगे यह आशय है

सरमाह्लादयामासमहींदग्धामिवांभसा ॥ १ ॥

ग्रीष्म ऋतुके तापसे संतापित हुई पृथ्वीको जलसे सींचनेकी समान सरमानें इस प्रकारके वचन कह कर,उस रावणके वचनों करके मोहित जानकीजीका संतापित हृदय शीतल किया ॥ १ ॥ तिसके पीछे समयको जाननेंवाली सरमाने प्रिय सखी जानकीजीको हितकी कामनासे हँसकर उस समय जानकीजीसे कहा ॥ २ ॥ हेअसितलोचने! जानकी! हमनें गुप्त भावसे जायकर श्रीरामचंद्रजीका संवाद जान तुम्हारे निकट आयकर कहैंगी ॥ ३ ॥ हमारें आश्रय रहित आकाशमे गमन करनें पर पवन या विनताके पुत्र गरुडजी भी हमारी गतिको नहीं रोक सकते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि सीताजी शोक संतापसे क्षीण शरीर होगईथीं परन्तु सरमाके धीरज युक्त वचनोंसे उनको कुछेक धीरज आया, और फिर वह मधुर कोमल वाणीसे सरमासे बोली ॥ ५ ॥ निःसन्देह तुम आकाश पातालमें जायसकती हो; और वह भी हम जानती हैं कि ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको कि हमारे लिये तुम न कर सको ॥ ६ ॥ जो कुछ भी हो यदि हमारा प्रियकार्य सिद्धकरना तुम चाहती हो और यदि इस कार्यमे तुम्हारी स्थिर मति हुई हो तौ रावण इस स्थानसे जायकर इस समय हमारे संबंध में क्या विचार कर रहाहै; यह जान आओ कारण कि यही बात जाननेंकी हमारी इच्छा हुई है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार लोग मदिरा पान करके मोहित होजाते है वैसेही मायाके बलसे क्रूर शत्रु रावण हमको मोहित करनेकी चेष्टा कर रहा है॥८॥ सरमे।रावण सदा घोर राक्षसियोंसे हमारी रक्षा कराताहै; और उनसे हमको डरवा धमकायकर हमारी निन्दाभी कराता है॥९॥हमारा मन हमारे वशमें न रहकर सदा रुवा हुआ शंकायुक्त रहताहैं; सखि! अधिक क्या कहैं, हम रावणके भयसेही अशोक वनमें वास करतीं हैं, परन्तु क्षणभरके लियेभी हमारे मनकी व्याकुलता दूर नहीं होती ॥ १० ॥ हे सरमे! रावणकी सभामें हमारे छोड दैनेके सम्बंधमें अथवा और कोई दूसरी परामर्श हो; वह यदि तुम हमारे निकट समस्त प्रकाश करके कहो; तौ तुम्हारी हमारे ऊपर बडीही दया होगी; बस यही वरदान हम तुमसे मांगतीहैं ॥ ११ ॥ मृदु वचन बोलनेंवाली

सरमानें सीताजीके ऐसे वचन सुनकर अपने दुपट्टेके अंचलसे उनका आंसूयुक्त मुखमंडल पोंछकर कहा ॥ १२ ॥ कि हे जानकी! यदि तुम्हारी यही इच्छाहै तौ हम सत्य करकै कहती हैं कि तुम्हारे शत्रु रावणका सब वृत्तान्त जानकर हम शीघ्रही यहांपर लौटेंगी ॥ १३ ॥ सरमा जानकीजीसे ऐसे वचन कहकर रावणकी सभामें चलीगई; और मंत्रिलोगोंके साथ रावणकी जो सलाह हो रहीथी वह समस्तही उसनें सुनी ॥ १४ ॥ तिसके पीछे सरमा बनाय निश्चय करके दुरात्मा रावणकी सलाहके समस्त समाचार जान शीघ्रही मनोहर अशोक वनमें चली आई ॥ १५ ॥ उस सरमानें अशोक वाटिकामें आय जानकीजीको इस प्रकारसे अपने राह परखते हुए देखाकि जिस प्रकार कमलफूलोंसे भ्रष्ट होकर लक्ष्मीजी बैठी हैं ॥ १६ ॥ तब सीताजीनें मधुर वचन कहनें वाली सरमाको फिर आयाहुआ देखकर, प्रेमसहित भली भांति उनसे भेंटी और स्वयं उसके बैठनेंको आज्ञा देकर कहा ॥ १७ ॥ कि हे सखि! इस आसनपर बैठकर उस क्रूरकर्मकारी रावणकी समस्त सलाह तुम हमसे कहो ॥ १८ ॥ जब सीताजीनें सरमासे इस प्रकार कहा तब सरमा मंत्रिलोगोंके सहित रावणकी जो परामर्श हुईथी उसका समस्त भेद जानकीजीसे कहनें लगीं ॥ १९ ॥ सरमा बोली कि हे जानकी! वृद्ध लोगोंनें और रावणकी मातानें तुमको श्रीरामचंद्रजीके निकट लौटा देनेंके लिये मधुर वाणीसे यह अत्युत्तम वचन रावणसे कहे ॥ २० ॥ "कि हे रावण! शीघ्रही श्रीरामचंद्रजीको आदर सहित तुम सीताजीको लौटादो; हे राजन्! उनका पराक्रम तौ तुम जानतेही हो, कि जनस्थानमें उन्होंनें कैसा अद्भुत कर्म कियाथा बस पराक्रमका तौ प्रमाण तौ इतनाही बहुत है ॥ २१ ॥ हे राजन्! समुद्रके पार आकर हनुमानजी सीताको देखकर गया यह क्या कुछ थोडी बात है? हे राक्षसराज! श्रीरामचंद्रजी साधारण मनुष्य नहीं है; कारण कि ऐसा कौन मनुष्यहै जो रणभूमिमें राक्षसोंको मार सकताहै" ॥ २२ ॥ हे जानकि! इस प्रकारसे वृद्धमंत्री और रावणकी मातानें तुम्हें छोड देनेंके लिये रावणको बहुत समझाया बुझाया; परन्तु लालची पुरुष जिस प्रकार धनको किसी भांति नहीं छोड़ता वैसेही रावणकी इच्छा तुम्हें छोड़नेंकी नहींहै ॥ २३ ॥ हे

सीते! रावणनें अपने सब मंत्रियोंके साथ यह निश्चय कियाहै कि हम प्राण रहते रामचंद्रकी सीता रामचंद्रको कभी नही देंगे ॥ २४ ॥ राक्षसोंके साथ स्वयं रावणभी जबतक न मरजायगा तबतक केवल मृत्युका भयंकर युद्ध न करनेंमें मति नहीं करेगा और न तुमको त्यागही करेगा ऐसा उस रावणनें निश्चय सिद्धान्तकर लियाहै ॥ २५ ॥ हे श्यामनेत्रवाली! तुम कुछभी चिन्ता न करो, श्रीरामचंद्रजी संग्राममें चलाये तीक्ष्ण बाणोंकी सहायतासे रावणका गर्व्व खर्व्व करके तुमको अपनी राजधानी अयोध्यापुरीमें ले जांयगे ॥ २६ ॥ सरमा इस प्रकारसे कहरहीथी कि इतनेमें सैनाकी तैयारीके और शंखका भेरीयुक्त बड़ा भारी शब्द उठा कि जिस्से समस्त पृथ्वी कांप गई ॥ २७ ॥

श्रुत्वातुतंवानरसैन्यनादंलंकागताराक्ष
सराजभृत्याः ॥ हतौजसोदैन्यपरीतचेष्टाः
श्रेयोनपश्यंतिनृपस्यदोषात् ॥ २८ ॥

तब लंकामें टिके हुए रावणके भृत्य राक्षसलोग वानरोंकी सैनाका यह कठोर सिंहनाद सुनकर अपनेंको अत्यन्त हीन कार्य और दीनभाव युक्त समझाते हुए और रावणकी दुर्बुद्धि होनेंके कारण वह लोग उस समय किसी प्रकारके कल्याणका सुख न देखसके ॥ २८ ॥ इ० श्रीम० वा० आ०लं० चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥

तेनशंखविमिश्रेणभेरीशब्देननादिना ॥
उपयातिमहाबाहूरामःपरपुरंजयः ॥ १ ॥

पराये पुरको जितनेंवाले महाबलवान श्रीरामचंद्रजी, भेरी शंख मिश्रित शब्दके साथ संग्राम करनेंके लिये तैयार हुए ॥ १ ॥ राक्षसपति रावण वह बड़ाभारी शब्द सुनकर मुहूर्त्त भरतक अपने मनमें सोच विचार करके समस्त मंत्री गणोंकी ओर देखनें लगा ॥ २ ॥ महाबलवान वानर रावण मंत्रीयोंको अपने सन्मुख कर सब सभाको अपने शब्दसे गुंजाता हुआ मंत्रीयोंसे बोला ॥ ३ ॥ जगतको संताप देनेंवाला क्रूर-

स्वभाव राक्षस रावण रामचंद्रजीके पराक्रमकी व उनके समुद्र उतरनेंकी निन्दा करनें लगा ॥ ४ ॥ रावण मंत्रीयोंसे बोला कि तुम लोगोंनें जो रामचंद्रके समुद्रके उपर आने और उनके बल विक्रम पौरुषके विषयमें जो कुछकहा वह समस्तही हमनें सुना, और तुम लोग सफल पराक्रम होकरभी जो रामचंद्रके पराक्रमको जानकर उत्साहहीनहो परस्पर एक दूसरेका मुख देख रहेहो यहभी समस्त हमनें जानाहै ॥ ५ ॥ रावणनें ऐसा कहातौ महा पंडित माल्यवान नामक रावणका नाना रावणके वचन सुनकर बोला ॥ ६ ॥ हेमहाराज! जो राजा चौदह विद्या निधान होकर नीतिशास्त्रके अनुसार कार्य करताहै, वही शत्रुलोगोंको वश करकै अपने ऐश्वर्यको सदा भोगते रहतेहैं ॥ ७ ॥ जो राजा समयके अनुसार शत्रुके साथ संधि और विग्रह (लड़ाई) करकै अपने पक्षको बढाताहै, वही बड़ेभारी ऐश्वर्यको प्राप्त करताहै ॥ ८ ॥ राजा किसी समयभी शत्रुको तुच्छ समझकर छोड़ नहींदे जो आप शत्रुसे कम बलवानहो, या समान बलवालाहो, तबतौ संधि करले; परन्तु जो शत्रुसे अधिक बलवालाहो तबतौ शत्रुसे विग्रहही करना उचितहै ॥ ९ ॥ हेरावण! हमारी सम्मतिमें तौ जिसके लिये श्रीरामचंद्रजीसे युद्ध करतेहो उसी सीताको लौटायकर उन रामचंद्रजीके साथ संधिकरनाही तुमको उचितहै ॥ १० ॥ देवता गन्धर्व, व ऋषि लोग सबही की यह कामनाहै कि रामचंद्रजीकी जीतहो; इस कारण उनके साथ विरोध न करकै आपके संधिकरलैनी उचितहै ॥ ११ ॥ भगवान पितामह ब्रह्माजीनें सुर व असुर लोगोंके आश्रय वाले धर्म अधर्मरूप दो पक्ष बनायेहैं ॥ १२ ॥ हेनिशाचर! हमनें सुनाहै कि उसमें धर्म महात्मा देवताओंका, और अधर्म राक्षस लोगोंका पक्ष कह लाया जाताहै ॥ १३ ॥ जिस समय सतयुग लगताहै; उस समय धर्म अधर्मको ग्रास करलेताहै परन्तु जब अधर्म धर्मको लील लेताहै तब कलिराजकी अवाई होतीहै ॥ १४ ॥ परन्तु तुमने दिग्विजयके समय महाऐश्वर्य सिद्ध करनेंवाले धर्मको छोड़ देव ब्राह्मणोंको पीड़ा पहुंचाय अधर्मका आचरण कियाहै, इसी कारणसे तुम्हारे शत्रु लोग ऐसे प्रबल होगयेहै ॥ १५ ॥ तुम्हारे चित्तके दोषसे उत्पन्न वह हुआ अधर्मही इस समय हमको ग्रासकिये लेताहै, परन्तु देवता

लोगोंके नित्य किये हुए धर्म कार्य उनके पक्षको बढा रहेहै ॥ १६ ॥ तुमनें स्वतंत्र होकर चलनें और भोग विलासमें आसक्त होकर सदांही अग्निकी समान तेजस्वी ऋषिलोगोंको अत्यन्त क्रोध उपजायाहै ॥ १७ ॥ हे रावण! उन ऋषिलोगोंका प्रभाव प्रदीप्त अग्निकी समान अत्यन्तही दुर्द्धर्ष है उनके अंतःकरण तपोबलसे शुद्ध होगयेहैं; वह लोग धर्मके अनुग्रहमें टिके हुएहै ॥ १८ ॥ हे रावण! वह द्विजातीगण! वेदका उच्चारण करते हुए राक्षस लोगोंको रोकते वेदाध्ययन ध्यान रूप मुख्य यज्ञसे ब्रह्माकी पूजा करकै विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दिया करतेहैं ॥ १९ ॥ जिसप्रकार ग्रीष्मकालमें अत्यन्त तेजवान सूर्य भगवानके उदय होनेंपर बादल इधर उधरको भाग जातेहैं; वैसेही राक्षस लोग उन ब्राह्मणकी वेद ध्वनी सुनकर चारों ओरको भाग जातेहैं; सो अग्नि तुल्य तेजस्वी ऋषि लोगोंके अग्निहोत्रसे उठा हुआ ॥ २० ॥ धुआ राक्षस लोगोंके घरमे उनके तेजको ढककर दशों दिशाओंमें फैला हुआहैं; वह व्रत धारण किये ऋषि लोग जिस २ पुण्यवान, स्थानमें ॥ २१ ॥ तपस्या करतेहैं; वह वहीसे राक्षस लोगोंको संतापित किया करतेहैं और तुमको कदाचित् यह गर्वहो कि वरदान पानेंके प्रभावसे हमारा मरणहोभी नहीं सकता, सोहे महाराज! यही वर तौ तुमनें ब्रह्माजीसे मांगाथा कि हम, देव, दानव पक्षसे न मरें; मनुष्य और वानरोंको तौ कुछ गिनकर इनसे तौ अवध्य मांगाही नहीं ॥ २२ ॥ परन्तु महाबलवान दृढ़ विक्रमकारी अजेय मनुष्य और गोपुच्छ वानर यहां आयकर गर्जन कर रहेहैं; इनसे कैसे निवटोगे; कारणकि इनकें रोकनेंका पहलेसे आपनें कोई उपाय नहीं कियाहै ॥ २३ ॥ इस समय अनेक प्रकारके घोर उत्पात और विविध भांतिके घोर दुर्निमित्त दिखलाई देतेहैं; कि जिस्से हमको यह ज्ञात होताहैं कि समस्त राक्षसोंका नाश होजायगा ॥ २४ ॥ हे रावण! हम गधोंको भयंकर शब्दसें रैंकता हुआ देखतेहैं; और बादल घोर शब्दसे गर्जे २ कर गरम रुधिरकी वर्षा करतेहैं. कि जिसको देखकर अत्यन्त डर लगताहै ॥ २५ ॥ सवारीके समस्त पशुगण रोतेहैं, कि जिस्से बराबर उनकी आंखोंसे आसुओंकी बूंदे गिरती रहतीहैं; और समस्त दिशा विदिशा धूरिसे छाये रहनेंके कारण पहलेकी समान प्रकाशित

नहीं होती ॥ २६ ॥ गीध गीदड, सर्प, इत्यादि मांस खानेंवाले पशु पक्षी गण लंकानगरकी फुलवाड़ियोंमें प्रवेश करके झुन्ड़ बांध २ भयंकर शब्द करतेहैं ॥ २७ ॥ शृगालियें पीले २ दांत निकाल कर आगे २ हँसती हुई, चलतीहैं सब स्त्रियां स्वप्नमेंही बात करते २ उठकर अपने घरोंको छोड़ चली जातीहैं। अथवा यह कि स्वप्नमें पीले दांतवाली काली स्त्रियां घरोंमें धरी हुई चीज बस्तुसे हँस २ बाते करतीहैं ॥ २८ ॥ कौओंके अर्थ जो बलिकी सामग्री दीजातीहै, उसे कुत्तेखाजातेहैं । गायोंसे गधे, और न्यौलोंसे चूहोंकी उत्पति होतीहै ॥ २९ ॥ व्याघ्रोंके साथ बिलाव, कुत्तोंके साथ शुअर, राक्षसोंके साथ किन्नर, और मनुष्योंके साथ राक्षस मैथुन करतेहैं ॥ ३० ॥ पीले वरणके लालचरणवाले बहुत सारे कबूतर राक्षस लोगोंके विनाशार्थेही मानों कालके भेजे हुए घरोंमें घूमते-हैं ॥ ३१ ॥ और घरके भीतर पाली हुई सारिका परस्पर क्लेश करती चीची कूची शब्द करतीहैं, व लड़नेंके लिये दूसरे जंगली पक्षीभी उनके पास आते उनसे लडते २ वह सारिका एक दूसरेसे गुथकर अपने अड्डो-परसे गिर पड़तीहैं ॥ ३२ ॥ पशु और पक्षीगण सूर्यकी ओरको मुख-कर २ रोतेहैं विकराल रूप और शिर मुंड़ाये काले पीले वर्णका कालपु-रुष ॥ ३३ ॥ सन्ध्याके समय हम लोगोंके घरोंमें प्रवेश करके घूमता फिरताहै । इसी प्रकारके और दुष्ट निमित्त हम लोगोंको दिखाई देते-है ॥ ३४ ॥ "नराकार धारण किये श्रीरामचंद्रजीको हम तो पुराण पु-रुषोत्तम विष्णुही जानतेहैं कारण कि मनुष्यमें दृढ़ पराक्रम होना क-दापि संभव नही ॥ १ ॥ जिन्होंनें समुद्रमें महा अद्भुत सेतु बांध लिया, वह नारायण विष्णुजी न होकर मनुष्य किस प्रकारसे होसकतेहैं? इस लिये हे रावण! तुम श्रीरामचंद्रजीसे मेल मिलाप करलो ॥ २ ॥" और श्रीरामचंद्रजीकोही इन सब दुर्निमित्तोंका कारण जान परिणाममें जिस कार्यको सुखकारी समझो उसीको करो ॥ ३५ ॥

इदंवचस्तस्यनिगद्यमाल्यवान्परीक्ष्यरक्षोधिपते मनःपुनः ॥ अनुत्तमेषूत्तमपौरुषोबलीबभूवतूष्णीं समवेक्ष्यरावणम् ॥ ३६ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ उत्तम पौरुषवाला बलवान माल्यवान यह वचन कहकर राक्षस राज रावणके मनकी परीक्षा करता हुआ उसके मुखका भाव देखकर चुप होगया ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥

तत्तुमाल्यवतोवाक्यंहितमुक्तंदशाननः ॥
नमर्षयतिदुष्टात्माकालस्यवशमागतः॥ १ ॥

दुष्ट बुद्धिवाला रावण माल्यवानके कहे हुए वह हितकारी वचन सुनकर, कालके वश होंनेसे उसके वचनोंको सहन नहीं करसका ॥ १ ॥ वरन क्रोधके मारे उसके दौनों नेत्र घूमनें लगे, फिर क्रोधके वश हो और मुंह टेढ़ा करकै रावण माल्यवानसे बोला ॥ २ ॥ तुमने शत्रुपक्षको प्रबल विचार करकै हमारा हित साधनेंकी कामनासे जो कठोर वचन कहे उनको हमनें ग्रहण नहीं किया ॥ ३ ॥ रामचंद्र मनुष्य होंनेंके कारण स्वभावसेही दुर्बलहैं, और केवल वानरलोगही उनकी सहायता करनेंवालेहैं; यदि उसमें कुछ सामर्थही होती तौ वह अपने बापदादोंका राज्य छोड़कर वनकोही क्यों आता ॥ ४ ॥ और जिन हमनें देवता लोगोंकोभी भय उत्पन्न करादियाहै, और सर्व विक्रमवान राक्षसोंके हम राजाहैं, फिर हमको जो तुम असमर्थ समझते हो इसका कारण क्याहै ॥ ५ ॥ हमको जान पड़ताहै कि वीर लोगोंसे वैर या शत्रुकी पक्षपातता तरफदारी अथवा हमारे उत्साहसे उत्साहित होकर हमको औरभी उत्साह दिलानेंको तुमनें ऐसे कठोर वचन कहे ॥ ६ ॥ कारण कि उत्साह करनेंका आशय न होंनेंसे कौंन शास्त्रके तत्वका जाननेंवाला पंडित युद्धमैं सामर्थवान राज्यपर विराजमान अपने स्वामीको ऐसे कठोर वचन कह सकताहै ॥ ७ ॥ कमलहीन लक्ष्मीकी सुन्दरताई जिस प्रकारसे होतीहै, वैसेही हम जनस्थानसे जानकीको हरण करकै ले आये, इस समय क्या रामचंद्रसे डरकर हम उनको सीता देदें? ॥ ८ ॥ यह बात सत्यहै कि कोटि २ वानरोंकी सैनाके सहित व सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ रामचंद्र लंकामें आयेहैं; परन्तु हम तुमसे कहतेहैं, कि थोड़ेही दिनोंमें तुम उनको

हमारे हाथसे सेनासहित नाशको प्राप्त हुआ देखोगे ॥ ९ ॥ जिसके साथ युद्धमें देवता लोगभी खड़े नहीं होसकते, वह दिग्विजयी रावण क्या कभी युद्ध करनेंसे डरेगा? ॥ १० ॥ चाहें हमारे दोखंड होजांय, परन्तु तौभी हम किसीसे नहीं दबेंगे; यद्यपि यह हमारे स्वभावका दोषहै तौ सही, तथापि स्वभाव अलंघनीयहै, इस कारण हम उसको त्याग नहीं सकते ॥ ११ ॥ रामचंद्रका समुद्रमें सेतु बांधना देखकर जो तुम डरगये, भला बतलाओ तौ कि इसमें विस्मयकी क्या बातहै, यह सेतुतौ बड़ी सरलतासे बंधा है हम चाहें तौ ऐसे २ हजारों सेतु बँधवादें ॥ १२ ॥ रामचंद्र वानरोंकी सैनाके साथ समुद्रके पार उतरकर यहां आये तौ हैं, परन्तु हम तुमसे शपथके साथ प्रतिज्ञा कहतेहैं. कि वह जीता हुआ लौटकर किसी प्रकारसे यहांसे जानेंको समर्थ न होगा ॥ १३ ॥ यह कहकर रावण बहुतही क्रोध करता हुआ, तब निशाचर माल्यवान लज्जाके मारे नीचेको मुख करकै बैठ गया, और किसी बातका उत्तर न देता हुआ ॥ १४ ॥ परन्तु रावणकी यथोचित जय सूचक आशिर्वादसे बढती मनाय उसकी आज्ञा लेकर अपने गृह चला गया ॥ १५ ॥ तब लंकापति रावण सब मंत्रियोंके साथ परामर्श करकै भली भांति शोच विचार लंकापुरीकी रक्षा करनेंके लिये पहरेदारोंको नियत किया ॥ १६ ॥ राक्षस प्रहस्तको पूर्व द्वारपर और महावीर महापार्श्व, और महोदरको दक्षिणके द्वारपर रावणनें रहनेंकी आज्ञादी, ॥ १७ ॥ और पश्चिमके द्वारपर रहनेंके लिये इन्द्रका जीतनेंवाला मेघनाद अत्यन्तही मायावी और बहुत सैनाको संग लिये हुएथा ॥ १८ ॥ और शुक सारण नामक मंत्रियोंको उत्तरके द्वारसे हटाकर जहांकि श्रीरामचंद्रजीकी सैना पड़ी हुईथी, रावणनें आज्ञादीकि उत्तरके द्वारपर हम स्वयंही ठाडे रहेंगे ॥ १९ ॥ महा पराक्रमवान महावीर्य युक्त राक्षस विरूपाक्षको रावणनें बहुत सारे राक्षसोंके साथ लंकाके बीचों बीचमें जहां सैनाकी छावनी थीं रहनेंके लिये आज्ञादी ॥ २० ॥ राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावण लंकामें इस प्रकारसे सब ओर राक्षसोंको रक्षाके लिये नियुक्त करके, काल प्रेरित होनेसे अपनेंको कृतार्थ मानता हुआ कि बस सब होगया अब किसी प्रकारका खटका नहीं ॥ २१ ॥

विसर्जयामासततःसमंत्रिणोविधानमाज्ञाप्यपुर

स्यपुष्कलम् ॥ जयाशिषामंत्रिगणेनपूजितोवि
वेशसोंतःपुरमृद्धिमन्महत् ॥ २२ ॥

रावण इस प्रकारसे लंकाकी चौकसीके लिये राक्षसोंको नियत करके मंत्रिगणको विदा देकर और आपभी जयसूचक आशीर्वादसे पूजित होकर, धनजन पूर्ण अपने वडे भारी रनवासमें प्रवेश करता हुआ ॥ २२ ॥

इ० श्रीम० वा० आ० लं० षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥

नरवानरराजानौसतुवायुसुतःकपिः ॥
जांबवानृक्षराजश्चराक्षसश्चविभीषणः॥ १॥

इधर मनुष्योंके राजा श्रीरामचंद्रजी वानरराज सुग्रीव, कपिश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी, ऋक्षराज जाम्बवान, राक्षसराज विभीषण ॥ १ ॥ वालिके पुत्र अंगदजी सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण, कपिश्रेष्ठ शरभ, अपने परिवार सहित सुषेण, मैन्द और द्विविद ॥ २ ॥ गज, गवय, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस अपने दुश्मनके राज्य लंकामें आकरभी एकत्रहो वैठकर कहनें लगे ॥ ३ ॥ असुर, उरग, और गन्धर्व गणोंकरभी जो अजेयहै, ऐसी रावणसे पाली जाती हुई लंकापुरीमें हम आगयेहैं ॥ ४ ॥ लंकेश्वर रावण यहांपर सदांही वड़ी सावधानीसे रहताहै; अव जिस प्रकारसे कार्यकी सिद्धि होवे ऐसी परामर्श हम सबको करना उचितहै ॥ ५ ॥ जब सबनें यही कहा तव रावणके छोटे भाई विभीषण उनके वचन सुनकर, ग्रामीणादिदोष रहित अर्थयुक्त यह उदार वचन बोले ॥ ६ ॥ कि अनल पनस सम्पाति और प्रमति नामक हमारे यह चारों मंत्री लंकामें जायकर इसी समय वहांसे लौटकर यहां आयेहैं ॥ ७ ॥ यह चारों पक्षियोंका रूप बनायकर शत्रुके दलमें प्रवेश करके, रावणनें जो लंकापुरीकी रक्षा करनेंका उपाय किया, उसको भली भांतिसे जानकर यह हमारे निकट आये हैं ॥ ८ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी दुरात्मा रावणके पुर रक्षा करनेंके विषयमें, हमनें अपने मंत्रियोंसे जो कुछ जानाहै, वह समस्तही कहतेहैं ॥ ९ ॥ कि प्रहस्त बहुत सारी सैनाके साथ पूर्व द्वारपर टिकाहै. और महावीर्यवान महापार्श्व व महोदर लंकाके दक्षिणद्वारकी रक्षा करतेहैं ॥ १० ॥ पटा खड्ग

इत्यादि विविध अस्त्र शस्त्रधारी और शूल मुद्गर हाथमें लिये असंख्य शूर राक्षस गणोंके साथ रावण पुत्र इन्द्रजित लंकाके पश्चिम द्वारकी रक्षा करता है ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारके और दूसरे हथियार धारण किये शूरवीर रावणके पुत्रभी संगहैं, और सहस्रों लक्षों शस्त्रपाणि राक्षसोंको संग लिये ॥ १२ ॥ मंत्रका जाननेंवाला रावण उद्विग्नचित्त होकर लंकाके उत्तर फाटक पर स्वयं स्थित हुआहैं॥१३॥राक्षस विरूपाक्ष शूल, खड्ग, व धनुष धारी बड़ी भारी सैनाके साथ लंकाके बीचों बीचमें जहां छावनीहै टिका हुआ है ॥ १४ ॥ हमारे मंत्रिलोग लंकाकी समस्त घाटियोंको इस प्रकारसे देखकर शीघ्रही हमारे पास लौट आयेहै ॥ १५ ॥ दश हजार बीसहजार घोड़े, व करोड़ों राक्षस ॥ १६ ॥ जो कि अति बलवान और अति विक्रमकारी, समर करनेंमें अत्यन्तही आत ताई है, और राक्षसराज रावणका कार्य सिद्ध करनेंको यत्न किये हुएहैं ॥ १७ ॥ हेपृथ्वीनाथ! इन करोड़ २ सैनाके एक २ राक्षसके साथ उसका असंख्य परिवारभी मिल जाकर युद्धके समय इकट्ठाहो जाताहै ॥ १८ ॥ महाबलवान् विभीषणजीनें मंत्रियोंसे सुना हुआ यह लंकाका वृत्तान्त निवेदन करके अपने चारों मंत्री श्रीरामचंद्रजीको दिखा दिये ॥ १९ ॥ व उन चारों मंत्रियोंनें कमलदलकी समान नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावणके छोटे भाई श्रीमान् विभीषणजी रामचंद्रजीका हित साधन करनेंकी वासनासे उनसे बोले, कि रावणके बलकी क्या बातहै, जब यह रावण कुबेरके साथ युद्ध करताथा ॥ २१ ॥ उस समय साठ लाख राक्षस इसके साथ युद्ध करनेंको गयेथे । हेराजन्! वह दुरात्मा राक्षसगण पराक्रम, वीर्य, तेज, बल, धीरता, और दर्प किसी बातमें किसी प्रकार रावणसे कम नहीं ॥ २२ ॥ हेराजन्! आप क्रोध न कीजिये, हमनें; भयदिखानेंके लिये, ऐसा नहीं कहा, वरन केवल आपका क्रोध प्रदीप्त करनेंहीके लिये ऐसा कहाहै; कारणकि आप क्रोधित होकर अपने वीर्यके बलसे देवता इन्द्रादिकोंकोभी दंड देसकते हैं ॥ २३ ॥ हम निश्चयही कहतेहैं कि आप इस बड़ी भारी चतुरंगिनी सैनाको व्यूहाकारमें स्थापन करके रावणको भलीभांति मर्दन करेंगे ॥ २४ ॥ रावणके छोटे भाई

विभीषणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी शत्रुगणोंका संहार करनेंके लिये यह वचन बोले ॥ २५ ॥ वानरश्रेष्ठ नील बहुत सारे वानरोंको साथ लेकर लंकाके पूर्वद्वारपर टिके हुए प्रहस्तके साथ युद्ध करेंगे ॥ २६ ॥ और वालिपुत्र अंगदजीभी बड़ी भारी सैनाके साथ दक्षिण द्वार पर महापार्श्व और महोदरसे लड़कर उनका विध्वंस करैं ॥ २७ ॥ अतुलबलशाली पवन कुमार हनुमानजी बहुत सैनाको साथ लेकर पश्चिम द्वार पर जावें, और वहां मेघनादसे युद्ध करें ॥ २८ ॥ दैत्य दानवोंके समूहोंके संग और महात्मा ऋषि लोगोंके साथ जो सदांही अपकार करताहै, महा नीचस्वभावयुक्त वरदान पानेके मदसे मदान्ध ॥ २९ ॥ जो कि सब लोकोंकी प्रजाओंको संतापित करताहै, और सब लोकोंको कुछ नहीं गिनता, उस राक्षसोंके स्वामी रावणका वध हम स्वयंही जायकर करेंगे ॥ ३० ॥ जहां कि रावण अपनी सैनाके साथ टिका हुआहै, हम लक्ष्मणजीके सहित लंकापुरीके उस उत्तर द्वारको पीड़ित करनेंके समय प्रवेश करेंगे ॥ ३१ ॥ बलवान वानरेन्द्र सुग्रीवजी, वीर्यवान ऋक्षराज जाम्बवान और राक्षसराज रावणके छोटे भाई विभीषणजी यह सब मिलकर मध्यम गुल्ममें अर्थात् सैना समूहके बीचमें रहकर उसकी रक्षा करैं ॥ ३२ ॥ रण स्थलमें कोईभी वानर मनुष्यका रूप धारण नहीं करे, कारण कि इस संग्राममें मनुष्यका चिह्न केवल हमही लोग धारण किये रहेंगे ॥३३॥ हे वानरगण! तुम लोगोंका चिन्ह वानरहीहै, इस कारण तुम सब यही रूप धारण किये रहना, केवल हम सात जन मनुष्यका रूप धारण करकै शत्रुसे युद्ध करेंगे ॥ ३४ ॥ उनमें हम महा तेजस्वी लक्ष्मणजी सखा विभीषणजी, और इनके सचिव चारों राक्षस बस यह सात जन मनुष्यका रूप धारण करकै युद्ध करेंगे, इनके सिवाय मनुष्यका रूप धारण किये और जिस कोई कोभी देखेंगे मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ सब कार्योंके करनेंमें समर्थ बुद्धिमान स्वामी श्रीरामचंद्रजी धार्मिक विभीषणजीसे यह कहकर सुवेल पर्वतपर चढ़नेंकी अपनी बुद्धि करते हुए ॥ ३६ ॥ क्योंकि, वह सुवेल पर्वतका तट श्रीरामचंद्रजीको बहुत रमणीयतर दिखायी दिया ॥ ३७ ॥

ततस्तुरामोमहताबलेनप्रच्छाद्यसर्वांपृथिवीं महात्मा ॥ प्रहृष्टरूपोभिजगामलंकांकृत्वामतिंसोरिवधेमहात्मा ॥ ३८॥

इस प्रकारसे महा बलवान श्रीरामचंद्रजी शत्रुका वध करनेंके लिये कृतनिश्चय होकर अपनी बड़ी भारी वानर सेनासे पृथ्वीको ढककर हर्षित अंतःकरणसे लंकाके जंगलमें विराजमान होनें लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

सतुकृत्वासुवेलस्यमतिमारोहणंप्रति ॥ लक्ष्मणानुगतोरामःसुग्रीवमिदब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ सुवेल पर्वत पर चढनेंकी अभिलाषा करकै वानरराज सुग्रीवजीसे बोले ॥ १ ॥ मंत्र जाननेंवाले, धर्मके जानकर अनुरागी चित्त और समस्त विधान समझानेंवाले बिभीषणजीसे भी श्रीरामचंद्रजीने कहा ॥ २ ॥ कि चलो हम सब जन द्रुम (वृक्ष) और धातु युक्त सुवेल पर्वतपर चढकर आज वहांपर रात्रि वितामेंगे ॥३॥ और सुवेल पर्वतपरसे जो मृत्युके समय तक दुःख भोग करनेके लिये हमारी भार्याको हरण करकै ले आया है, उस दुरात्मा रावणके गृह दीख पडेंगे ॥ ४ ॥ जिस क्रूर राक्षसने राक्षसी बुद्धिके वश होकर, धर्म सदाचार और कुलकी ओर दृष्टि न करकै यह निन्दनीय कार्य कियाहै उस राक्षसोंमें नीच रावणका नाम लेनेंपरभी हमको क्रोध उत्पन्न होताहै, हे सुग्रीव! हम इस रावणके ही अपराधसे समस्त राक्षसोंका नाश देखते हैं; देखो एक जन कालकी फांसीमें पड़कर पापाचार करताहै; परन्तु इकले उस दुष्टात्माके अपराधसे उसका समस्त कुलभी नष्ट होताहै ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजी रावणके प्रति क्रोधमें भरकर यह वचन कहते सुवेल पर्वतपर वास करनेंके लिये उसकें शृङ्गोंपर चढ़ते हुए ॥ ६ ॥ विक्रमवान लक्ष्मणजीभी बाण सहित धनुष हाथमें लिये एकाग्र मनसे श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चले ॥ ७ ॥ तिनके पीछे अपने मंत्रियोंके साथ सुग्रीवजी

चले, और सुग्रीवजीके पीछे २ विभीषणजी, तत्पश्चात् हनुमान, अंगद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, रंभ, जाम्बवान्, सुषेण, शतवलि, वानरश्रेष्ठ दुर्मुख, इत्यादि पर्वतोंके चरनेंवाले वानर वायु वेगसे उस पर्वतपर ॥ ८ ॥ चढ़े और सुवेल पर्वत पर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे; पर्वतपर चढ़नेके समय उन समस्त वानरोंको कुछभी समय न लगा; वहांपर सबनें चढकर ॥ ९ ॥ उस पर्वतके रमणीय शिखरोंपर आरोहण कर त्रिकूट पर्वतके शिखरपर वसी हुई सुन्दर तोरण छहर दिवारी युक्त आकाशको स्पर्शही करती हुईसो ॥ १० ॥ राक्षसोंसे पूर्ण लंका पुरीको वानर यूथपोंने देखा कोटकी भीत और खंबोंपर चढे राक्षसोंसे घिरी हुई उस लंकापुरीमें व नील वर्णवाली राक्षसी सैनाकी श्रेणीको मानों दूसरी दुर्ग प्राचीर (शहर पनाह) तुल्य वानरश्रेष्ठोंनें देखी ॥ ११ ॥ युद्धकी अभिलाषा किये वानर गण उन समस्त राक्षसोंकी सैनाको देख रामचंद्रके सामनेंही सिंहनाद करने लगे॥१२॥ तिसके पीछे सन्ध्या राग रंजित दिवाकर सूर्य भगवान अस्ताचलको गमन करते हुए, और रात्री होआई, उस समय पूर्ण चंद्रमाके उदय होनेंसे रात्रिभी प्रदीप्त तुल्य बोध होनें लगी ॥ १३ ॥

ततःसरामोहरिवाहिनीपतिर्विभीषणेनप्रतिनं
द्यसत्कृतः ॥ सलक्ष्मणोयूथपयूथसंयुतःसुवेल
पृष्ठेन्यवसद्यथासुखम् ॥ १४ ॥

तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी अपनें सैनापती वानरयूथप व विभीषणजीसे पूजित और सन्मानित होकर लक्ष्मणजीके साथ यूथपति और यूथ गणोंके सहित यथा सुखसे सुवेल पर्वतके शृंगोंपर वास करनें लगे ॥१४॥
इ० श्रीम० वा० आ० लं० अष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

तांरात्रिमुषितास्तत्रसुवेलेहरियूथपाः ॥
लंकायांददृशुर्वीरावनान्युपवनानिच ॥ १ ॥

तिसके पीछे वानरोंकी सैनाके यूथप सुवेल पर्वतके शिखर पर वह

रात्रि विताय लंका पुरीके समस्त वन व उपवनोंको देखते हुए ॥ १ ॥ यह समस्त उपवन, विशाल समान सुखदाई, लम्बे चौड़े और देखतेही मन मोहतेथे, जिनको देखकर वानर गण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २ ॥ वानरोंनें देखाकि इन वन उपवनोंमें, चम्पा, बकुल, शाकुल, शाल, ताल छाय रहे हैं, और तमाल कटहरसे छायकर यह वन नागवेलिसे युक्त हैं ॥ ३ ॥ हिन्ताल, अर्ज्जुन, कदम्ब, तिलक, कर्णिकार, व पाटलसे समा युक्त ॥४॥ व फूले फले बृक्षोंसे शोभित होंनेके कारण यह लंकापुरी देव नाथ इन्द्रजीकी अमरावती पुरीके समान शोभित होतीथी ॥ ५ ॥ विचित्र पुष्प और कोंपलवाले लाल पत्तोंसे शोभित वनराजि और नीलवर्णकी पत्र सहित घास उस लंकापुरीको सीमा रहित शोभायमान कर रहीथी ॥ ६ ॥ जिस प्रकार मनुष्य गहने पहरतेहैं, वैसेही वहांके रमणीक वृक्ष मनोहर सुगन्धिवाले पुष्प और फल धारण कर रहेथे ॥ ७॥ वह चैत्ररथ और नन्दनवनकी समान सब ऋतुमें मनोहर, और वहांही वनराजिमें भौंरोंके घूमनेंसे वह वन परम रमणीक लगताथा ॥ ८ ॥ उस वनमें झरनोंके किनारे, चकई चकवा, जलमुर्ग, बगला, मोर, कोकिल इत्यादि पक्षी नाच २ कर मधुर २ बोल रहेथे ॥ ९ ॥ सदाही मतवाले पक्षियोंसे युक्त भौंरोंसें परिपूर्ण कोकिल गणोंसे वृक्ष समूल सेवित पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान ॥ १० ॥ भ्रमरोंकी गुंजारसे पूरित, क्रौंचीकी वाणीसे सुहावने मनभावनें जल कुक्कुटोंके शब्दोंसे पूरित राक्षसोंके शब्दसे शब्दायमान ऐसे वन उपवनोंमें ॥ ११ ॥ हर्षित व प्रमुदित होकर काम रूपी वानरगण प्रवेश करते हुए; जब वह महा तेजस्वी वानरगण उपवनोंमें पैठे ॥ १२ ॥ तब पुष्पोंका संसर्ग होनेसे सुगन्धित पवन प्राण वायुकी समान चलनें लगा । उस वानरोंकी सैनामेंसे कुछ एक यूथपति यूथसे निकलकर सुग्रीवकी आज्ञासे पताका शोभित लंका पुरीको चले गये ॥ १३ ॥ जानेंके समय वह वानरगण भयंकर शब्द करकैं मृग, हाथी, सर्प और समस्त पशु पक्षीयोंको त्रासित और समस्त लंका पुरीको कंपायमान करनें लगे ॥ १४ ॥ वह महा वेगवान वानर गण दोनों चरणोंसे पृथ्वीको ऐसा पीड़ित करनें लगे; कि उनके चरणोंसे उठी हुई धूरिनें आकाशको छाय लिया ॥ १५ ॥ रीछ, सिंह, भैंसे, हाथी

और पक्षिगण उन वानरोंके भयंकर शब्दसे भीत होकर दशों दिशा ओंमें भाग गये ॥ १६ ॥ जिसके अतिऊंचे शिखर आकाशको भेदकरके उठेहैं वह त्रिकूट पर्वतफूलोंसे छानेके कारण उन वानरोंको सुवर्णकी समान जान पड़नें लगा ॥ १७ ॥ वह शत योजनके विस्तार वाला विशाल सुन्दर दिखावयुक्त समान और ऊंचा श्रीमान् त्रिकूट पर्वत ऐसा ऊंचाथा कि पक्षीभी उसके शिखर पर नहीं पहुंच सकतेथे ॥ १८॥ पदचारी मनुष्यों की बात तौ दूर रहै वहां पर मनका पहुंचनाभी दुःसाध्यथा। उस त्रिकूटके ऊपर वसी हुई रावणसे पाली जाती हुई लंकापुरी ॥ १९ ॥ यह लंकानगरी दशयोजनकी लम्बी, और वीस योजनकी चौडीथी, वह पुरी श्वेत वर्णवाली प्राचीर (कोटकीभीत) जो कि बादलकी समान बडी ऊंचीथी, और सुवर्ण व चांदीके पर्वतोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभायमानथी ॥ २० ॥ ग्रीष्मके अंतमें आकाश जिस प्रकार घटावली (बादलोंसे) शोभित होताहै, वैसेही बडे २ प्राकार और विमानोंसे लंकानगरी अत्यन्त शोभायमान हो रहीथी ॥ २१ ॥ जिस लंकामें राजमंदिर जिसमें कि सहस्रो खम्भ लगे हुएथे; जो देखनेमें कैलास पर्वतकी समान इतना ऊंचाथा कि मानों वह आकाशमें कोई बात लिख रहाथा ॥ २२ ॥ और असंख्य राक्षस गण सदा जिसकी रक्षा करतेथे, ऐसा राक्षसराज रावणका वह चैत्य नामक राज मंदिर समस्त लंका नगरीका भूषण रूप हुआथा ॥ २३ ॥ पुरीके स्थान २ में मनोहर कानन दृष्टि आतेथे अनेक प्रकारके धातु उत्पन्न करनें वाले पर्वतोंकी असीम शोभाहोरहीथी, और बीच २ में रमणीय उद्यान शोभा विस्तार कर रहेथे ॥ २४ ॥ विविध भांतिके विहारोंसे युक्त मृग गण निषेवित कुसुमोंसे शोभायमान अगणित राक्षसोंसे रक्षित वह लंका पुरीथी ॥२५॥ तिसके पीछे लक्ष्मीवान लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी अमरावतीकी समान समृद्धार्थ धन अन्न जनसे परिपूर्ण लंका नगरीको देखकर अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥

तांरत्नपूर्णांबहुसंविधानांप्रसादमालाभिरलंकृतांच ॥
पुरींमहायंत्रकवाटमुख्यांददर्शरामोमहताबलेन॥२७॥

इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी बड़ी भारी वानरी सैनाके साथ वहां पर विराजमान होकर उस राज्य पूर्ण धवरहरोंकी श्रेणीसे शोभायमान अनेक बड़े २ यंत्र और किवाड़ोंसे युक्त लंका नगरीको देखते हुए ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशःसर्गः ॥

ततोरामःसुवेलाग्रंयोजनद्वयमंडलम् ॥
उपारोहत्ससुग्रीवोहरियूथैःसमन्वितः॥ १ ॥

इसके पीछे श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके साथ सुग्रीवजीको संगलेकर दोयोजनके विस्तारवाले सुवेल पर्वतके शिखर पर चढ़ते हुए ॥ १ ॥ वहां पर चढ़कर एक मुहूर्त्त भरतक टिक दशों दिशाओंको श्रीरामचंद्रजीनें निहारा, तब विश्वकर्माजीकी बनाई त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई लंका नगरी ॥ २ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखी, यह पुरी अच्छे नियम द्वारा क्रम २ से बनाई गईथी, और रमणीकवनभी इसमें चारों ओर शोभायमानथे, उस लंकामें बने हुए ऊंचे द्वारके (गो पुरके) ऊपर राक्षसोंके राजा अति दुर्द्धर्ष रावणको मस्तक पर॥ ३ ॥ विजय छत्र लगाये;अगल बगल दो श्वेत चँवर ढुलते लाल चंदन लगाये, लाल कपड़े व लालही गहनोंसे भूषित ॥ ४ ॥ और नीले बादरके रंगका सुवर्ण जड़ित उत्तरीय वस्त्र धारण किये, छातीमें ऐरावत हाथीके दांत लग जानेंसे घाव युक्त होनेंके कारण उसके चिह्नसे युक्त ॥ ५ ॥ खरगोशके रुधिरकी समान रंगवाला लाल वस्त्र पहरे सन्ध्याकी धूपसे ढके हुए बादलके समूहकी समान आकाशमें विराजमान ॥ ६ ॥ वानरोंनें और श्रीरामचंद्रजीनें देखा, ऐसे राक्षसराजको देखतेही सुग्रीवजी सहसा उठ खड़े हुए ॥ ७ ॥ वह सुग्रीव क्रोधके वेगसे परिपूर्ण और अपनें बल विक्रमसे उत्साहित होकर पर्वतके ऊपरसे छलांग मारकर उसी गोपुरके स्थानमें पहुंच गये जहांकि रावण खड़ाथा ॥ ८ ॥ तिसके पीछे वहां पर भय रहित मनसे कुछ देरतक खड़ेहो रावणके प्रति एक दृष्टिसे देख उसको तृणकी समान समझ कठोर वचन कहनेंलगे ॥ ९ ॥ कि हे निशाचरा

हम सर्व लोकके स्वामी श्रीरामचंद्रजीके दासहैं; हम उन पृथ्वीनाथके अनुग्रहसे जिस प्रकारके तेजस्वी हुएहैं, तिस्सै तौ आज किसी प्रकार हमसे छुटकारा पानेको समर्थ न होगा ॥ १० ॥ वानर राज सुग्रीवजी यह कह छलांग मार सहसा उसके मस्तक पर चढ़गये और रावणके शिरपरसे विचित्र मुकुट उतार पृथ्वीपर फेंक दिये, और फिर पृथ्वीपर उतर दुवारा उसके ऊपर झपटे ॥ ११ ॥ निशाचर रावण सुग्रीवको अति वेग सहित दूसरी वार आते हुए देखकर बोलाकि, हेसुग्रीव! जबतक तुम हमें दृष्टि नहीं आये तबहीतक तुम सुग्रीवथे, परन्तु अब हीनग्रीवहो जाओगे ॥ १२ ॥ रावणनें यह कहकर सुग्रीवजीके दोनों हाथ पकड़ उनको पटक दिया, परन्तु सुग्रीवजीनेभी जलसे लुढ़कती गेंदकी समान शीघ्रतासे उठ रावणकी दोनों बाहें पकड़ उसको पृथ्वीपर पटक डाला ॥ १३ ॥ जब वह परस्पर इस प्रकारसे युद्ध करनें लगे, तब दोनोंके शरीरसे पसीना वहनें लगा, रुधिरकी धारा बहनेंके कारण दोनोंके देह लाल होगये, परस्पर लिपटनेंके कारण दोनोंके शरीरिक व्यापार बंद होगये, और दोनोंही एक दूसरेसे मिले हुए सेमल और ढाकके वृक्षोंकी समान शोभित होनें लगे ॥ १४ ॥ महाबलवान राक्षसराज रावण और वानरनाथ सुग्रीवजी इस प्रकारसे परस्पर मुक्का, लात, जांघ चनकटा आदिके आघातोंसे एक दूसरे को पीडित करनें लगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार बहुत समयतक लंकाके सामने वाले फाटककी वेदीपर इन दोनोका बाहुयुद्ध होता रहा तिसके पीछे यहां तक युद्ध हुआ कि कभी २ दोनो लात चलायकर कभी २ वह रावण इनके शरीरको ऊपर उछालताथा और कभी यह सुग्रीव इसके शरीरको ऊपर उछालकर गिरा देतेथे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे दोनो दोनोको दबाय एक दूसरेसे लिपट दुर्ग प्राचीरकी खाई में गिरे वहां, थोडी देर दोनोही चेष्टा रहित होकर निर्ज्जीवसे पडे रहे और फिर अतिकठिनतासे पृथ्वी पकड़ वहांसे निकले उसकाल दोनों ही वारंवार लंबी श्वासें ले रहेथे ॥ १७ ॥ क्रोध शिक्षा और बलके सहित यह मार्गमें घूमते हुए दोनों दोनोंको वारंवार लिपटते हुए ऐसे जान पड़ने लगे कि मानों दोनों २ को वारंवार रस्सीसे बांध रहेहैं ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दांत निकले

सिंह व शार्दूलशिशुके सहित समरमें आसक्त हो हाथीके पाठोंकी समान दोनों दोनों बाहोंसे आघात प्रतिघात करते हुए दोनो ही एक साथ पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकारसे वह दोनो वीर परस्पर एक दूसरे को वारंवार मारते और उछाल देतेथे, और, उत्साह शिक्षा व बल सहित अनेक प्रकारकी चतुरता भी दिखाते थे, परन्तु तथापि उन दोनों वीरोंमे से शीघ्र कोई भी न थका ॥ २० ॥ मतवाले हाथियोंकी समान वह दोनों वीर हाथीकी शुन्डके समान आकार वाली अपनी दौनों भुजाओंसे एक दौनो को निवारण करते हुए वहुत विलम्बतक युद्ध करकै मंडलाकर होकर लड़ने लगे ॥ २१ ॥ किसी भोजन करनेंकी वस्तु को भोजन करनेके लिये लड़ते हुए दो विलावोंकी समान यह दौनों वीरभी एक दूसरेका प्राण संहार करनेंमे यत्न करने लगे ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे युद्ध विशारद राक्षसेन्द्र और वानरेन्द्र कभी विचित्र मंडल[1] कभी विविध स्थान[2] गो मूत्राकार[3] गति कभी विचित्रगत प्रत्यागत ॥ २३ ॥ कभी टेढ़ी और चक्राकार गति, कभी परस्परका प्रहार बचाय कुटिलतासे चलना, और चोटकै प्रहारको युक्तिसे बचाना व कौशल पूर्वक मूष्टिक आदिसे बचना, दूसरे के प्रहार करनेपर आगे को कूद जाना ॥ २४ ॥ शीघ्रतासे सन्मुखको दौड़ना, ऊपरको कूद जाना सविग्रह अवस्थिति[4] अर्थात् विग्रह दिखा एक स्थानमें टिके रहना कभी पराङ्मुख गति कभी पीछेको हटकर शीघ्रतासे कूद जाना, बगलमें होकर अपद्रुत (जांघ पकड़नेके लिये झुक जाना) अवप्लुत[5] ॥ २५ ॥ उपन्यास कभी अ-

---

१ मंडलके चार भागके हैं चारि मंडल, करणमंडल, खंडमंडल और महामंडल, जिस मंडलमें एक चरण चलानेका कार्य पडताहै, उसे चारि, जिसमें दौनो चरण चलायें जाते हैं उसे करणमंडल, जहां कही एक करण मंडलोंका संयोग होता, उसे खण्ड, और तीन या इस्से अधिक जहां खण्ड मंड़ल होते उसे महा मंडल कहते हैं ॥

२ दौनों चरणोंका तिरछा चलाना-वैष्णवादि छ स्थान हैं ॥ वैष्णव, संपाद, वैशाख, मंडल, प्रत्यालीढ, अनालीढ,

३ गोमूत्र गत्ति कुटिल भावसे चलना अर्थात् टेढे मेंढे हीकर कलना ॥

४ युद्धका आरंभ करकै सन्मुख खडे रहना॥

५ शत्रुको मारनेंके लिये पांव उठाकर दौडना शत्रुवाहोंको न पकड ले इस कारण वाहोंको ऊंची किये रहना ॥

पन्यास इस प्रकारसे युद्ध विशारद पारदर्शी दोनोंही वानरेन्द्र सुग्रीव और राक्षस नाथ रावण चतुरता दिखलायकर घूमने लगे ॥ २६ ॥ इतनेहीमें राक्षस रावण वानर सुग्रीवजीसे अपने छुटकारेका उपाय न देखकर अपनी माया दिखलानेपर तैयार हुआ, इसे जानकर वानरराज सुग्रीव ॥ २७ ॥ रावणको छोडकर आकाशमें कूद गये, वानर राज सुग्रीवजीको न देखकर रावण धोखा खाय वहांपर खड़ाही रहगया ॥ २८ ॥ तिसके पीछे सूर्यके पुत्र वानरराज सुग्रीव अत्यन्त परिश्रमसे निशाचर पति रावणको पराजित और स्वयंभी विजय रूप कीर्ति पाय अति विशाल आकाशको लांघकर वानरोंकी सेनाके मध्यमें टिके हुए श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २९ ॥

सइतिसवितृसूनुस्तत्रतत्कर्मकृत्वापवनगतिरनीकंप्राविशत्संप्रहृष्टः ॥ रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षंतरुमृगगणमुख्यैःपूज्यमानोहरींद्रः ॥ ३० ॥

तिसके पीछे हर्षित अन्तःकरण और पवनवेग तुल्यसे वानरोंकी सनाके बीचमें प्रवेशकर उन वानरोंसे पूजितहो युद्धका वृत्तान्त निवेदन करते हुए श्रीरामचंद्रजीके आनंदको बढानें लगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

अथतस्मिन्निमित्तानिदृष्ट्वालक्ष्मणपूर्वजः ॥ सुग्रीवंसंपरिष्वज्यरामोवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके पीछे दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीके शरीरमें युद्धके चिह्न देख उनको भेंटकर कहनें लगे ॥ १ ॥ हे सखे तुमनें हमारे साथ विना सलाह कियेही साहस प्रकाश कियाहै, सो राजा लोग कभीभी ऐसा साहसका कार्य करनेंमें नही लगतेहैं अर्थात् राजाओंका ऐसा साहस करना अनुचितहै ॥ २ ॥ हे साहसप्रिय वीर! तुमनें जिस प्रकारके महा साहसका कार्य कियाहै, इस्से हमें वानरोंकी सहायताको और विभीषणजीकोभी तुम्हारे यहांपर लौटनेंमें संदेह हुआथा ॥ ३ ॥ हे शत्रुदमन

१ शत्रुकी बांहै पकडनेंके लिये अपनी बांहै बढाना ॥

कारी! जो करनाथा सो कर चुके, परन्तु अब आगेको ऐसा साहस कभी न करना, कारण कि तुम्हारा जो किसी प्रकारसेभी कुछ अनभल होगया तो हम सीताको लेकर क्या करेंगे? ॥ ४ ॥ हे महाबलवान् शत्रुओंके मारनेंवाले! तुम्हारा कुछभी अपमान होनेंपर, हम भरत, उनसे छोटे लक्ष्मण शत्रुघ्न अथवा इस अपने शरीरहीको लेकर क्या करेंगे? ॥ ५ ॥ यद्यपि महेन्द्र और वरुणजीकी तुल्य हम तुम्हारे बल विक्रमको जानतेहैं, परन्तु तथापि तुम्हारे अबतक न आनेसे हमनें अपनें मनमें इस प्रकारसे स्थित कियाथा ॥ ६ ॥ कि रणभूमिमें, पुत्र सैना, और वाहनोंके सहित रावणका संहार करके विभीषणको लंकापुरीका राज्य दे देंगे ॥ ७ ॥ हे महाबल फिर अयोध्यामें जाय भरतजीको राज्यभार सोंप अपने शरीरकोभी त्याग करदेंगे जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी उनसे बोले॥८॥हे वीर रघुनंदन! हम अपने पराक्रमको जानकर आपकी भार्याके हरण करनेंवाले रावणको देख करभी हम किस प्रकार उसे विना दंड दिये रह सकतेहैं ॥ ९ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सुग्रीवजीकी बड़ाई करते हुए लक्ष्मी सम्पन्न लक्ष्मणजीसे बोले॥१०॥ कि आओ हम सब जन सुशीतल जल और फल मूल शोभित वनस्थलीका आश्रय ले सैनाको विभाग कर व्यूहकी रचना करके उसमें टिकें ॥ ११ ॥ इस समय हम लोकोंका क्षय करनेंवाले भयंकर भय चिह्न देखतेहैं इस युद्धमें जोकि होनेंवालाहै, अनेक २ वीर्यवान ऋक्ष, राक्षस और वानर गणोंका विनाश होगा ॥ १२ ॥ यह देखो भयंकर पवन चल रहीहै पृथ्वी और पर्वतोंके शिखर तरु कंपायमान होरहेहैं; और समस्त पर्वतभी शब्दायमान होरहे हैं ॥ १३ ॥ व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओंकी समान भयंकर क्रूर जलद जाल (बादल) रुधिरकी बूंदोंसे मिला हुआ अशुभ जल वर्षातेहैं ॥ १४ ॥ सन्ध्यामें लाल चन्दनकी समान लाल ललाई रंगसे दारुण मूर्ति धारण-कीहै, सूर्य मंडलसे अग्निके अंगारे जलते हुए गिरतेहैं ॥ १५ ॥ दीन स्वभाव क्रूर बुरे पशु और पक्षीगण सूर्यके सन्मुख होकर बड़ी दीनतासे रोतेहैं; कि जिनको सुनकर अत्यन्त भय उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥ रात्रिमें चंद्रमा उदय होकर लोकोंको संताप किया करताहै; और प्रलय कालकी

समान उसके चारों ओर काली और लाल किरणें दिखलाई देतीहैं हे ल-क्ष्मण! चंद्रमाका ऐसा विपरीत भाव बहुतही बुराहै ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण देखो! सूर्यके मंडलमें नीले दाग दिखलाई देतेहैं; चंद्रमाकी भांति सूर्य मंडलभी रूखा, छोटा, बुरा और लाल वर्णका होगयाहै ॥ १८ ॥ हे ल-क्ष्मण चंद्रमाके प्रति नक्षत्रमें यथावत् न टिकनेंसे निश्चय ज्ञात होताहै कि मानो शीघ्रही प्रलय काल आया चाहताहै ॥ १९ ॥ गिद्ध, बाज, और कौये ऊपरसे सहसा गिरतेहैं, और शृगालियां मानों ऊंचे स्वरसे अशुभ समाचारकोही प्रगट कर रहीहैं ॥ २० ॥ वानर राक्षसोंके छोड़े हुए वृक्ष शूल और खड्गादिकोंसे मरी हुई सैनाके मांस व रक्तसे यहांकी, पृथ्वी प-रिपूर्ण होजायगी ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण! जो कुछभी हो वानर गणोंके सा-थ बल पूर्वक आज हम रावणसे पाली जाती हुई दुर्द्धर्ष लंकापुरीमें प्रवेश करेंगे ॥ २२ ॥ वीर श्रेष्ठ महाबलवानं श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे यह कहकर पर्वतके शृङ्गसे नीचे उतरनेंकी इच्छा करते हुए ॥ २३ ॥ धर्मा-त्मा श्रीरामचंद्रजीनें उस पर्वतपरसे उत्तर शत्रुओं करकै बड़े दुःख-सेभी भयभीत न होनेंवाली अपनी वानरी सैनाको देखा ॥ २४ ॥ सु-ग्रीवजीके साथ श्रीरामचंद्रजीनें, कवच बख्तरादिकी सामग्री धारण कर सुग्रीवजीको व्यूह बनानेंके लिये कहा और युद्ध करनेंके लिये वानरों-को आज्ञादी ॥ २५ ॥ तिसके पीछे महा बलवान श्रीरामचंद्रजी विजय मुहूर्त्तमें बड़ी भारी सैनाके साथ धनुष धारण करकै लंकापुरीकी ओर मुख कर संग्राम करनेंको चले ॥ २६ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी चले तौ वा-नरराज सुग्रीव, हनुमान ऋक्षराज, जाम्बवान् नल नील और लक्ष्मण उनके पीछे २ चले ॥ २७ ॥ रीछ और वानरोंकी बड़ी भारी सैना वि-स्तारित पृथ्वीके एक बड़े भागको ढक कर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी-के पीछे २ गमन करनें लगी ॥ २८ ॥ शत्रुओंका विनाश करनेंमें सम-र्थ हाथियोंके समान आकारवाले वानरोंनें गमन करनेंके समय असंख्य पर्वतोंके शिखर और बड़े २ वृक्ष ग्रहण कर लिये ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीरामचंद्रजी बहुतही शीघ्रतासे राक्षस रावणकी लंकापुरीके द्वारपर पहुंचे ॥ ३० ॥ यह लंकापुरी बहुत सारी पताका-

ओंके लगनेंसे शोभायमान होरहीथी, रमणीक फुल वाडियोंसे शोभितथी; उसकी दुर्ग प्राचीर अति विचित्रथी, परिखा (खदें) व द्वारोंपरके स्थान अति विशालथे; इस कारण बड़े दुःखसेभी वहां कोई नहीं पहुंच सकता-था ॥ ३१ ॥ देवताओंकोभी अति दुःखसे प्रवेश करनेंके योग्य लंकापुरी-पर श्रीरामचंद्रजीके बचनोंसे प्रेरित वानर गण यथायोग्य स्थानोंको दबाय २ बैठगये ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण करकै अनुज लक्ष्मणजीके साथ पर्वतके शिखर समान ऊंचे उत्त-र द्वारको रोककर अपनी सैनाकी रक्षा करनें लगे ॥ ३३ ॥ महाराजाधिराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी वीर लक्ष्मणजीको साथ लेकर रावणसे रक्षित लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जहां पर रावण स्वयं विराजमान था रामचंद्रजीके सिवाय और कोईभी उसकी रक्षा करनेंको समर्थ नहीं होगा यही विचार कर वीरदशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित स्वयं उस रावणपालित लंका पुरीके उत्तर द्वारको घेर लेते हुए ॥ ३५ ॥ वरुणजीसे रक्षित महासागर और दानवोंके दलसे रक्षित पाताल पुरीकी समान शस्त्रलिये भयंकर रूप राक्षसों करके सर्व प्रकारसे व रावणसेभी रक्षा किया जाताहुआ, उत्तर द्वारके देखनेंसे अल्पवीर्य वालोंको अत्यन्त भय लगताथा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और वहां पर वानर लोगोंने राक्षस वीरोंके अनेक अस्त्र और कवच देखे सेनापति नील वानरोंकी सैनाके साथ पूर्व द्वार पर पहुंचा ॥ ३८ ॥ इन नीलके साथ वीर्यवान मैन्द और द्विविद यह दोनों वानरभीथे महा बली वालिके पुत्र अंगदजी दक्षिणके द्वार पर गये ॥ ३९ ॥ अंगदजीके साथ ऋषभ, गज, गवय और गवाक्ष, यह चार वानरभी दक्षिण द्वार परगये। महावीर हनुमानजीनें पश्चिम द्वारको जायकर घेर लिया ॥४०॥ प्रजङ्घ, तरस, व और दूसरे वीर सैनापति उन हनुमानजीके साथ दक्षिण द्वार परगये, और मध्यके गुल्म पर स्वयं सुग्रीवजी जाउठे ॥ ४१ ॥ कि जिनके साथ सर्व वानरश्रेष्ठथे, कि जिनमें गरुड़ और पवनकी समान बलथा, इस वानरोंकी सैनामें छत्तीस करोड़ विख्यात वानरोंके यूथपथे ॥ ४२ ॥ यह सब वानर वहां पर मिलकर

आये कि जहां सुग्रीवजीथे, रामचंद्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मण और विभीषणजीनें ॥४३॥ लंकाके प्रत्येक द्वार पर करोड़ २ वानरोंको नियुक्त करते हुए सुषेण जाम्बवान् बहुतसी वानरोंकी सैनाको संगलेकर श्रीरामचंद्रजीके पीछे ॥ ४४ ॥ अत्यन्त निकटवाले मध्य गुल्म पर बहुतसी सैनाके साथ जाय टिके इस प्रकार वानर शार्दूलगण कि जिनके दांतभी सिंहकी समान तीक्ष्णथे, वृक्ष और पर्वतोंको धारण करके हर्षित मनसे युद्धकी राह परखनें लगे ॥४५॥ नख और दांतोंको आयुध बनाये विचित्र देहवाले वह वानरगण क्रोधमें भरकर अपनी पूंछको फटकारने अंग चलानें और मुख विरानेंके आकार करनें लगे॥४६॥इन वानरोंमें किसी२ के दश हाथियोंका बलथा, किसी २ के शत हाथियोंका बलथा, और किन्हीं २ में हजार हाथियोंकी समान बल विक्रमथा ॥४७॥ उन वानरोंमें कोई २ अमोघ सङ्घ और कोई २ के शत अमोघ सङ्घ हाथियोंकी समान बलशालीथे, और कोई २ यूथपतिसे ऐसे बलशालीथे, कि उनकी तुलना किसीके साथ नहीं हो सकती ॥ ४८ ॥ टीढ़ियोंकी समान उस वानरोंकी सैनाका ऐसा विचित्र समागम हुआथा कि पहले कभी भी ऐसा समागम नहीं हुआथा ॥ ४९ ॥ लंका पर पहुंचे हुए वानर गणों करकें वहांकी पृथ्वी और कूदते फांदते हुए वानरोंसे आकाश परिपूर्ण हो रहाथा ॥ ५० ॥ इनके सिवाय युद्धकी अभिलाषा करके असंख्य वानर और रीछगण चारों ओरसे लंकाके द्वारों पर आय २ जुटनें लगे ॥ ५१ ॥ उस समय समस्त पर्वतश्रेष्ठ गिरि त्रिकूट समस्त वानरोंसे छाया हुआ जान पड़नें लगा, अति द्वार पर सन्निवेशित सैनाका वृत्तान्त जाननेंके लिये एक कोटि वानर गण लंका पुरीके चारों ओर घूमनें लगे ॥ ५२ ॥ लंका नगरी, वृक्ष हाथोंमें लिये वानरों करके इस प्रकार सर्व भावसे घेरी गई कि वहां पवनका प्रवेश करनाभी कठिन ज्ञात होंनें लगा ॥ ५३ ॥ मेघाकार और इन्द्र तुल्य पराक्रम कारी वानर गणोंसे पीड़ित होकर राक्षस गण अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ समुद्रके ऊपर सेतु बँधनेंसे जिस प्रकार उसके जलका अत्यन्त भयंकर शब्द होताहै, वैसेही अतिभारी वानरोंकी सैनाका तुमुल शब्द प्रगट

होनें लगा * ॥ ५५ ॥ उस बड़े भारी शब्दसे पर्वत, वन कानन प्राकार और फाटकोंके सहित समस्त लंका द्वीप वारंवार कम्पायमान होनें लगा ॥ ५६ ॥ अधिक क्याकहैं उस समयमें वह वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्र लक्ष्मण व सुग्रीवजी करकै रक्षित होनेंके कारण देवता व राक्षसोंसेभी जीतनेंके अयोग्य जान पड़तीथी ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे राक्षसोंका वध करनेंके लिये सैना स्थापनकर कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निश्चय करनेंके लिये मंत्रियोंके साथ सलाह करनेमें लगे और वारंवार कार्यका निर्णय करनेमें आगे बढ़े ॥ ५८ ॥ श्रीरामचंद्रजी साम दाम भेद दंड इन चारों उपायोंको जानतेथे, परन्तु उपस्थित कार्यमें शेष उपाय अर्थात् दंड देनाही श्रेष्ठ विचार करकै राजधर्ममें मन लगाते हुए और बिभीषणजीकी परामर्शके अनुसार यही कर्त्तव्य स्थिर करके ॥ ५९ ॥ वालिके पुत्र अंगदजीको बुलायकर उनसे बोले, कि हेसौम्य! तुम हमारे वचनोंको जायकर रावणसे कहना; ॥ ६० ॥ तुम निर्भय होकर समस्त लंका पुरीको लांघते हुए चले जाना, और राक्षसोंका भय छोड़ उनसे कहनाकि हेलक्ष्मीरहित, ऐश्वर्यहीन मृत्युके निकट पहुंचे चेतना रहित राक्षस ॥ ६१ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष और राजाओंका ॥ ६२ ॥ जो पाप बिनाविचारे व गर्वसे तुमनें कियाहै, उस पापके भोगनेंका समय अब आगयाहै; अब उन पापोंका दारुण परिणाम फलनाही चाहताहै, ब्रह्माके वरदानसे ये गर्व तुमको हुआहै, आज वह चूर्ण कर देंगे ॥ ६३ ॥ तुमनें जो हमारी भार्याका हरणरूप अपराध कियाहै; हम उसका उचित दंड देनेंके लिये

* कवित्त ॥ चढ़त कटक महाराज रामचंद्रजीके गरद गगन रवि झंपिगो झडाकदै ॥ फूटिगो जलधवन्ध लूटिकै दुवनपुर, छूटिगोमवीस वन हटिगो हडाकदै ॥ श्रीपति सुजान भने चिरिगो बराह रद फिरिगो सुमेरगिरि२गो धड़ाकदै ॥ धुंधरकी धरनिमें फलक्यो फनिन्द फन दरकी कमठ पीठ कड़की कड़ाकदै ॥१॥ उज्वल अमल आभा अधिक विराजमान गंगाकी तरंग सुर लोककी निसैनीहै ॥ रसरौद्र पूरन सरस्वती सहित जहां स्यामता सहित रविसुता सुखदैनी है ॥ भट अवतंश महाराज रघुवंश मणि कहैं रसरूप जाकी धारा अति पैनीहै । महामदमत्त बलवन्त बड़े बैरिनको तारिवेको थारी तरवार यौं त्रिवेनी है ॥ २ ॥ जानदैहौं भरत अवध सब जान दैहौं जान दैहौं कौशिला हमारी मात प्रानकी ॥ जानदैहौं सकल जहानको सुकौनकाम कहं रघुनाथ ऐसो वचन प्रमानकी ॥ जानदैहौं लषन सुकंठमें विचार कहौं जान दैहौं खेल पेल अपने सवानकी । जानदैहौं धनुष कमान वान जान दैहौं; जानदैहों जान पै न जान दैहों जानकी ॥

साक्षात् कालकी समान लंकाके द्वारपर टिक रहेहैं ॥ ६४ ॥ यदि हमारे साथ युद्ध करनेंही की तेरी इच्छाहै, तौ युद्धमें हमारे हाथसे तेरी मृत्यु होनेंपर तेरे भाग्यमें देवता महर्षि राजाओंकी गति प्राप्त होगी॥६५॥ रे राक्षसाधम! तैनें जो बल और मायाका आश्रय करकै हमारी कुटीसे दूरकरकै सीताको हरण कियाहै, अब वही बल और वही माया तुमको दिखानी चाहिये ॥ ६६ ॥ यदि तुम सीताको समर्पण करकै हमारे शरणागत नहोगे; तौ जान लेनाकि अत्यन्त तीखे बाणोंसे हम समस्त लोक राक्षस शून्य करेंगे; इस्से जानकीको देदे क्योंकि जानकी किसी प्रकारसे हम नहीं छोड़ सकते ❋ ॥ ६७ ॥ धर्मात्मा राक्षस श्रेष्ठ बिभीषण हमारी शरणमें आयेहैं; हम इनकोही निष्कंटक लंकाका राज्य व तुम्हारा सब ऐश्वर्य दान कर देंगे ॥ ६८ ॥ तुम जिस प्रकारके पापाचारी और सज्ञानहीनहो,और तिसपर ऐसा अधर्म्माचरण करके इन मूर्ख मंत्रियोंकी सहायतासे अब अधिक कालतक राज्य नहीं कर सकोगे॥६९॥ हेराक्षस! यदि शरणमें आना तुम्हारा मन माना न होवे तौ धीरता और शूरताका आश्रय लेकर युद्ध करो कारणकि युद्ध करनें पर हमारे चलाये हुए बाणोंसे तुम्हारा देह पवित्रहो जायगा, और तुमनें जन्मसे लेकर अबतक जो पाप कार्य कियेहैं उनसे तुम्हारा छुटकाराहो जायगा ॥ ७० ॥ हे निशाचर! तुम यदि पक्षीकी देह धारण करकै त्रिलोकीके मध्यमें भी घूमोगे,तथापि हमारी दृष्टिसे अलग हो जानेंको अथवा अपने जीवनके रक्षा करनेंको तुम समर्थ न होगे॥७१॥अब तुम्हारा जीवन हमारे ही हाथमें है; इस कारण तुम्हारे हितके निमित्त ही कहते हैं, कि तुम पर लोक सदगति प्राप्त करनेंके लिये दानपुण्य जो कुछ करनें हैं वह कर लो, और तुम्हारा मरण देखकर लंकानगरी प्रमुदित होवै ॥ ७२ ॥ दुष्करकर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजी करकै इस प्रकारसे कहे जाकर ताराकुमार अंगदजी मूर्तिमान अग्निकी समान आकाश मार्ग में गमन करने ❋ ॥ ७३ ॥

❋ खर भर भये लंक संकित सब रजनीचर अकुलाते हैं। सहि न जात वह तेज वदनकी मूँदि नयन रह जाते हैं॥ दाह कलंक कीस सोइ आयउ श्रवननिलागि सुनाते हैं॥ कौन विधाता अबकी रासै यह कहते बिलखाते हैं॥ कहि लंकेशहि पोच शोच सब पुरवासी घबडाते हैं। बिन पूछें मग लंका गढकी कर जोरे बतलाते हैं। मुकुट शीशकर गदा विराजे सूर्य तेजमन भातेहैं। दशग्रीव मानके मथन हेतु बलशीव वालिसुत आते हैं॥

इसके पीछे एक मुहूर्त भरके बीचमें रावणके मंदिर पर पहुंचकर मंत्रि लोगोंके साथ बैठे अविचालित हृदय रावणको अंगदजी देखते हुए॥७४॥ तिसके पीछे सुवर्णके बाजूसे भूषित प्रदीप्त अग्निकी समान वानरश्रेष्ठ अंगदजी रावणके निकट ही आकाशसे उतर स्वयं अपना नाम सबको सुनाय मंत्रियोंके सहित रावणसे वह श्रीरामचंद्रजीके कहे हुए वचन यथार्थ २ कहनें लगे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ अंगदजी बोले कदाचित्त तुमने हमारा नाम सुनाही होगा, जो न सुना हो तौ अब सुनों कि हम वालिके पुत्र हैं और अंगद हमारा नामहै । इस समय दुष्कर कर्म करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीके दूत होकर यहां आये हैं ॥ ७७ ॥ कौशल्याजीको आनंद बढ़ानेवाले श्रीरामचंद्रजीनें तुमसे कह दियाहै कि—रे पुरुषोंमें नीच क्रूर! तुम लंकापुरीसे निकल हमसे युद्धकरो ॥ ७८ ॥ हम पुत्र जाति बांधव और मंत्रियोंके सहित तेरा संहार करेंगे रावण तुम्हारे मर जानेंपर त्रिभुवनकी व्याकुलता और घबडाहट जाती रहेगी ॥ ७९ ॥ हम तुम्हारा संहार करकै देव दानव, यक्ष, गन्धर्व सर्प राक्षस और ऋषि लोगोंके कण्टकका उद्धार करेंगे ॥ ८० ॥ तुम हमारे चरणोंमें झुककर आदर सहित यदि हमको जानकी न देदोगे तौ निश्चयही तुम नाशको प्राप्त होगे; और तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य बिभीषणका हो जायगा ॥ ८१ ॥ जब वानरवीर अंगदजीने इस प्रकारके कठोर वचन कहे तब राक्षसोंका राजा रावण क्रोधके वश हुआ ॥ ८२ ॥ वह रावण अत्यन्त ही क्रोधके वशहोकर अपने मंत्रियोंसे बोला कि तुम अभी इस वानर को पकडकर इसका प्राण संहार कर डालो ॥ ८३ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनकर घोर रूपवाले चार निशाचर उन प्रदीप्त अग्निकी तुल्य अंगदजीको पकडनेके लिये तैयार हुये ॥ ८४ ॥ वीरश्रेष्ठ बुद्धिमान तारा कुमार अंगदजीने समर्थ होकर भी अपना बल राक्षसोंको दिखलानेके लिये स्वयं ही अपनेंको पकड़वा दिया ॥ ८५ ॥ जब राक्षस लोग अंगदजीकी बांहें बांध रहे थे, तब अंगदजी सहसा उन राक्षसोंके सहित पर्वतके शृङ्गोंकी समान ऊंचे बडे भारी राज मंदिरपर कूदकर चढ गये ॥ ८६ ॥ अंगदजीके कूदनेंके समय राक्षस लोग ऐसे त्रासित हो उठेकि वह समस्त राक्षस रावणके सामनेही पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ८७ ॥ तिसके पीछे महा

प्रतापी अंगदजीनें पर्वतके शिखरकी समान ऊंचे रावणके राज मंदिर पर चढ़कर उस पर बलसे एक पद प्रहार किया ॥ ८८ ॥ वज्रधारी इन्द्रजीके वज्र मारनेंसे जिस प्रकार पूर्व कालमें हिमाचलका शृङ्ग चूर्ण होगयाया वैसेही रावणके सन्मुख उसके देखते २ राज मंदिर फटकर गिर पड़ा ॥८९॥ इस प्रकारसे अंगदजी राज मंदिरके शिखरको तोडकर वारंवार अपना नाम सबको सुनाय अत्यन्त घोर सिंहनाद करते हुए आकाशको उछल गये ॥ ९० ॥ वीर अंगदजी इस प्रकारसे राक्षसोंको दुःखी और वानर गणोंको हर्ष उप जाते हुए वानर गणोंके बीचमें बैठे श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंच गये ॥ ९१॥ राजमंदिरके टूटनेंपर रावणको अत्यन्तही क्रोध उत्पन्न हुआ और वह श्रीरामचंद्रजीके दूतका बल और अपने होनेवाले विनाशको निश्चय जानकर चिन्ता सहित वारंवार लंबे २ श्वास लेने लगा ॥ ९२ ॥ इस ओर महा बलवान श्रीरामचंद्रजीभी. हर्षित किल किलात वानर गणोंसे वेष्टित होकर शत्रुका नाश करनेंके लिये युद्धमेंही अपने मनको लगाते हुए ॥९३॥ पर्वताकार महाबलशाली सुषेणभी कामरूपधारी बहुत सारे वानरोंकी सैना संगलेकर आगे बढ शोभायमान हुआ ॥ ९४ ॥ वह अजेय सुषेण नाम वानर कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञासे तारागणोंसे घिरे हुए चंद्रमंडलकी समान बहुत सारी सैनाको साथ लेकर लंकाके समस्त द्वारोंपर घूमनें लगा ॥ ९५ ॥ लंकाके मयदानमें समुद्रकी सीमातक उठी हुई असंख्य अक्षौहिणीके प्रमाणवाली वानरोंकी सैना देखकर॥९६॥ राक्षस लोगोंमेंसे कोई २ विस्मित हुए कोई २ भीत हुए और कोई २ रणके उत्साहसे मत्त होकर अतिशय आनंदको प्राप्त हुए ॥ ९७ ॥ वानरोंकी सैनानें लंकाके दुर्गकी भीतको छाय लियाथा; जिस्से ऐसा ज्ञात कि वानर गणोंके घेरनेंसे प्राकार (दुर्गकी भीत) गिरकर पृथ्वीमें मिल गया, ऐसा दीन भाव युक्त राक्षसोंने देखा ॥ ९८ ॥ यह देखकर राक्षस लोग भयके मारे हा! हा! कार करनें लगे ॥ ९९ ॥

तस्मिन्महाभीषणकेप्रवृत्तेकोलाहलेराक्षसराज योधाः ॥ प्रगृह्यरक्षांसिमहायुधानियुगांतवा ताइवसंविचेरुः ॥ १०० ॥

इस प्रकारसे राक्षसोंकी राजधानी लंकापुरीमें कठोर कुलाहल होनें लगा, तब वीर राक्षस गण प्रचंड अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके युगान्त कालके राहुकी समान इधर उधर घूमनें लगे ॥ १०० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥

ततस्तेराक्षसास्तत्रगत्वारावणमंदिरम् ॥
न्यवेदयन्पुरींरुद्धांरामेणसहवानरैः ॥ १ ॥

इसके पीछे राक्षस लोगोंने रावणके गृहमें प्रवेश करके निवेदन किया कि श्रीरामचंद्रजीनें सैनाके समेत लंकापुरीको वे चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥ पुरीके रोके जानेंका समाचार सुनतेही राक्षस रावण क्रोधके मारे अधीर होगया, और प्रति द्वार पहलेसे दूनी सैना नियतकर स्वयं बडे ऊंचे धवरहर पर चढ़ा ॥ २ ॥ और देखाकि शैल, वन, और कानन सहित समस्त लंका असंख्य युद्धकी अभिलाषी वानरगणोंसे घिर रहीहै ॥ ३ ॥ उन सब वानरोंके बडे भारी जमाओंसे मानों लंकापुरीका वर्ण पीलासा हो रहाथा इनको देखकर रावणके मनमें यह चिन्ता होनें लगी कि किस प्रकारसे वानरोंका नाश किया जाय ॥ ४ ॥ बहुत देरतक यह चिन्ता करकै वह धीर धारण करके नेत्र फैलाय २ राम लक्ष्मण और उनकी सैनाके समूहको देखनें लगा ॥ ५ ॥ वहांपर श्रीरामचंद्रजीनें हर्षित अंतःकरणसे सैनाके सहित लंकापुरीके प्राकारके निकट पहुँच गुप्त राक्षसोंकी पुरी लंकाको सब जगह राक्षसोंसे पूरित होकर रक्षाकी जाती हुई देखा ॥ ६ ॥ ध्वजा पताकाओंसे शोभायमान लंकापुरीको देखतेही सीतापति रघुनाथजीके विरहसे उत्पन्न हुए दुःखकी अवाई हुई और इसी समय श्रीरामचंद्रजी मनही मनमें कहनें लगे ॥ ७ ॥ हाय! इसी स्थानमें वह मृग छौनाकेसे नेत्रवाली कृशाङ्गी जनककुमारी जानकी हमारे लिये पीडित और शोकसे संतापित होकर पृथ्वीमें शयन करतीहैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार वैदेहीजीके दुःखको विचारकर अत्यन्तही कातर हुए; और शीघ्रही युद्ध करनेके लिये

उन्होंने वानर लोगोंको आज्ञादी ॥ ९ ॥ वानर लोग सरलतासे कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीकी इस प्रकारसे आज्ञा पाय समस्तही वानर एक साथ आगे बढनेंके लिये सिंहनाद कर२ के चारों दिशाओंको परिपूरित करते हुए ॥ १० ॥ उस कालमें वह वानरयूथपतिगण समस्तही "हम लोग पर्वतोंके शिखरसे इस लंका नगरीको तितर वितर करेंगे अथवा घुमाकर उसको चूर्ण कर डालेंगे," इस प्रकारसे सबही मनमें कहनें लगे ॥ ११ ॥ वह वानरोंके समस्त यूथप पर्वत शृङ्ग बड़े २ शिखर और अनेक प्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर हाथमें ले लड़नेंको तैयार हुए ॥ १२ ॥ राक्षसोंके नाथ रावणनें देखा कि असंख्य वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजी-का प्रिय कार्य सिद्ध करनेंके लिये लंकापर चढ़ी ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे वह शिला और वृक्षोंको लेकर युद्ध करनेंवाले अरुण मुख स्वर्णकी स-मान प्रभावान वानरगण श्रीरामचंद्रजीके लिये जीवतक छोड़नेंको तैया-र होकर सबही लंकाकी ओरको धाये ॥ १४ ॥ वह वानरगण लंका नगरीके निकट आयकर वृक्ष और पर्वतों शिखर व मुष्टि प्रहारसे लंका-के पुरीके प्राचीर (भीत) और असंख्य फाटक तोड़नें फोड़नें लगे॥१५॥ वह वानर गण अति बड़े २ पर्वतके टुकड़ोंसे, तिनकोंसे, काठसे व धूल डाल २ कर निर्मल जलसे शोभायमान लंकाके खांबेको पूर्ण करनें लगे॥१६॥ और जो समस्त वीर कि लंकापुरीकी प्राचीरपर चढ़गये, उनमें कोई २ वानर सहस्र यूथका अधिपति था कोई करोड़ यूथका और कोई २ शत करोड़ यूथका स्वामी था, वह वानरगण लंकामें प्रवेश करके कांचन निर्मित तोरण और कैलाश पर्वतकी समान उन तोरणोंके ऊपर बने हुए बड़े स्थानोंको तोड़नें फोड़नें लगे ॥१७॥१८॥ महा गजकी समान अगणित वानरगण ऊपरको छलांगें भरते तड़कते, व गर्जते हुए लंकाके चारों ओर घूमनें लगे ॥ १९ ॥ दोहा ॥ जयति जयति भ्राता सहित, महा-बली रघुराज ॥ राघव पालित सूर्य सुत, जीतहिं सहित समाज ॥ २० ॥ इस प्रकारसे पुकारते व गर्जन करते हुए कामरूपी वानर गण लंकाके प्राकारपर घूमनें लगे ॥ २१ ॥ यूथपति वीर सुबाहु, वीरबाहु, नल और पनस यह यूथपति गण सैनाको नगरीमें प्रवेश करानेके लिये लंकाकी छहरदिवारीको तोड़ते पुरमें प्रवेश करते हुए, इसी समय इन वानर वी-

रोंनें लंकाके निवास स्थानको पीड़ित किया २२ ॥ कुमुद नाम रण विजयी महा बलवान् वानर दश करोड़ वानरोंको संग लेकर पूर्वके द्वारको घेर लेता हुआ ॥ २३ ॥ व उसी कुमुदकी सहायता करनेंके लिये बहुतसे वानरोंको साथ लिये वानरश्रेष्ठ प्रसभ, और महाबाहु पनस नाम वानरभी तैयार हो खड़ा होगया ॥ २४ ॥ वीरश्रेष्ठ बलवान वानर शतबलि वीस करोड़ वानरोंकी सैनाके सहित लंकाके दक्षिणद्वारको घेर लेता हुआ ॥ २५ ॥ ताराका पिता बलवान सुषेण करोड़ २ वानरोंकी सैनाको संग लेकर लंकाके पश्चिमद्वारपर विराजमान हुआ ॥ २६ ॥ उत्तर द्वारको घेरकर महा बलवान श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीके साथ खड़े हुए,और सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीकी सहायता करनेंके लिये तैयार होगये ॥२७॥ भयंकराकार महावीर्यवान, महाकाय गोपुच्छ गवाक्ष नामक वानर एक करोड़ वानरोंको साथ लेकर श्रीरामचंद्रजीकी पार्श्वमें रक्षा करनें लगा ॥ २८ ॥ व श्रीरामचंद्रजीकी दूसरी बगलमें शत्रुओंका तपानेंवाला महा बलवान धूम्र करोड़ रीछोंके साथ विराजमान होनें लगा ॥ २९ ॥ कवच बख्तर पहरे गदा हाथमें लिये महा वीर्य विभीषणजी अपने चारों मंत्रियोंके साथ महा बलवान श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचे ॥ ३० ॥ गय, गवाक्ष, गवय, शरभ, और गंधमादन यह कई एक वानरगण समस्त वानर सैनाकी रक्षा करनेंके लिये चारों ओर घूमनें लगे ॥ ३१ ॥ निशाचर पति रावण यह समस्त वृत्तान्त जानकर अत्यन्तही क्रोधके वश हुआ, और शीघ्रही अपनी सैनाको युद्ध करनेंके अर्थ बाहर निकलनेकी आज्ञा देता हुआ ॥ ३२ ॥ राक्षस लोगोंनेंभी रावणके मुखसे यह वचन सुनकर भेरी बजाकर उसके शब्दके साथ इस आज्ञाका सब कहीं प्रचार कर दिया ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे चारों ओरसे राक्षस लोगोंकी सुवर्णकोणाभिहत सोनेके दंडेसे ताडित और चंद्रमाकी समान उजले मुखवाले ढकनोंसे युक्त भेरियें बजनें लगीं ॥ ३४ ॥ घोर रूपवाले राक्षस लोगोंकी मुख पवनसे परिपूर्ण हो घोर शब्दसे युक्त सैकडों हजारों शंख एक समयमेंही बजनें लगे ॥ ३५ ॥ मेघमाल्यके साथ बिजलीके मिलनें और बगलोकी लंगारके सम्मिलित होंनेसे जिस प्रकार शोभा होतीहै वैसेही शुकपक्षीकी

समान नीले देहवाले राक्षस लोगोंके मुखमें लगे हुए शंख शोभायमान हुए ॥ ३६ ॥ इसके पीछे राक्षस लोग रावणकी आज्ञा पाय प्रलयकालके समय उछलते हुए समुद्रकी तरंगोंकी समान महावेगसे बाहर निकल कर चले ॥ ३७ ॥ इन राक्षसलोगोंको आते देखकर वानरोंकी सैना चारों ओरसे सिंहनाद करनें लगी. कि जिस्से बहुत दूर पर टिका हुआ मलयपर्वतभी शृङ्ग शिखर और कन्दराओंके साथ गूंजनें लगा ॥ ३८ ॥ शंख नगाडोंके बजनें, और वानर गणोंके सिंहनाद करनेंसे पृथ्वी आकास और समुद्रभी पूर्ण होगया ॥ ३९ ॥ हाथियोंकी चिंघाड घोड़ोंकी हिनहिनाहट रथोंके खर खर शब्द व राक्षस लोगोंके चरण धरनेंके शब्दसे पृथ्वी पूर्ण होगई, ॥ ४० ॥ इसके पीछे फिर वानर और राक्षसोंके घोर संग्रामका प्रारंभ हुआ; कि जैसा पूर्वकालमें देवताओंके साथ असुरोंका संग्राम हुआथा ॥ ४१ ॥ राक्षस लोग वारंवार अपने २ विक्रमका प्रकाश करके; प्रदीप्त, शक्ति, शूल, फरसे और गदा चलाय २ कर वानरोंका प्रहार करने लगे ॥ ४२ ॥ वेगवान बड़े शरीरवाले वानर गणभी, नख, दांत, वृक्ष और पर्वतके शिखर चलाय २ कर राक्षसोंको मारनें लगे ॥ ४३ ॥ तिस समय उस वानरोंकी सैनामेंसे " वानर राज सुग्रीवजीकी जयहो " ऐसा बड़ा भारी शब्द हुआ और इधर " राक्षस रावणकी जयहो " ऐसा शब्द सुनाय अपने २ नामको बताय परस्पर दोनों दल लड़नें लगे ॥ ४४ ॥ भयंकर आकारवाले राक्षसगण लंकाकी दुर्ग प्राचीरपर चढ़कर वानरोंको भिन्दिपाल, और शूलादि अस्त्रोंसे मारनें लगे ॥ ४५ ॥ यह देखकर पृथ्वीपर टिके हुए वानर लोगभी क्रोधसे आकाशमें कूद और भुजाओंके प्रहारसे कोटकी भीत पर चढ़े हुए राक्षसोंको नीचे पृथ्वीमें गिरानें लगे ॥ ४६ ॥

ससंप्रहारस्तुमुलोमांसशोणितकर्दमः ॥
रक्षसांवानराणांचसंबभूवाद्भुतोपमः ॥ ४७ ॥

उस समय वानर और राक्षस लोगोंका ऐसा भारी घोर संग्राम हुआकि दोनों ओर वाले वीरोंके शरीरसे निकले हुए मांस और रुधिरसे रण भूमि कीचड़से परिपूर्ण होगई; और वह समर ऐसा हुआ; कि जैसा पहले

कभी नहीं हुआथा ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि-काव्ये लंका कांडे द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥

युद्ध्यतांतुततस्तेषांवानराणांमहात्मनाम् ॥
रक्षसांसंबभूवाथबलरोषःसुदारुणः ॥ १ ॥

इस प्रकारसे महाबलवान वानर और राक्षसगण जब युद्ध करनें लगे, तब उनमें परस्पर जय लाभ करनेंकी कामनासे अत्यन्त दारुण क्रोध हुआ ॥ १ ॥ वह समस्त वीर राक्षस गण सुवर्णके आभूषण पहरे, घोड़े व अग्निकी शिखाके समान आकारवाले चमकते दमकते हाथियोंपर और सूर्यकी समान प्रभावान रथोंपर चढ़ मनोहर कवच बख्तर धारण कर ॥ २ ॥ दशों दिशाओंमें निहारते भयंकर कर्म करनेंवाले राक्षस रावणके जयकी कामना किये संग्राम करनेंको आये ॥ ३ ॥ इन राक्षसोंकी सैनाको आता हुआ देखकर जयकी इच्छा किये बड़ी भारी वानर सैनाभी राक्षस लोगोंकी सैनाके सन्मुख धाई ॥ ४ ॥ जब इस प्रकार वानरोंकी सैना राक्षसोंपर धांई, व राक्षसी सैना वानरों पर धाई तब राक्षस वीर वानरगणोंका द्वंद्व युद्ध होंनें लगा ॥ ५ ॥ जिस प्रकार अन्धकासुरके साथ युद्ध करते हुए महादेवजीका संग्राम हुआथा, वैसेही महा तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीके साथ इन्द्रजीतका युद्ध होंनें लगा ॥ ६ ॥ रणमें अति अजेय सम्पाती नाम वानर राक्षस प्रजङ्घके साथ युद्ध करनें लगा और वानर श्रेष्ठ हनुमानजी, जम्बुमाली राक्षससे जायकर भिड़े ॥ ७ ॥ उस संग्राम भूमिमें रावणके छोटे भाई बिभीषणजी अत्यन्त क्रोध युक्तहो शत्रुघ्न नामक राक्षसके साथ युद्ध करते हुए ॥ ८ ॥ महा बलवान गजनाम वानर तपन राक्षसके साथ अति पराक्रमसे युद्ध करनें लगा, और महा तेजस्वी नील नाम सैनापति निकुम्भ नाम राक्षससे जाय भिड़ा ॥ ९ ॥ वानरोंके राजा सुग्रीवजी राक्षस प्रघसके साथ द्वन्द्व युद्ध करनें लगे और विरूपाक्ष नामक राक्षसके साथ श्रीमान् लक्ष्मणजीका युद्ध होंनें लगा ॥ १० ॥ दुर्द्धर्ष, अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न, और यज्ञकोप यह चार राक्षस श्रीरामचंद्रजीके साथ युद्ध करने

लगे ॥ ११ ॥ घोर रूपवान वज्रमुष्टि और अशनिप्रभ नामक यह दो राक्षस मैन्द व द्विविद नामक दो वानरोंके साथ युद्ध करनें लगे ॥ १२ ॥ भयंकराकार रणमें दुर्जय वीर प्रतपन नामक राक्षस, तीक्ष्ण वेगवान नल नामक वानरके साथ संग्राम करनें लगा ॥ १३ ॥ त्रिलोक विख्यात बलवान धर्मका पुत्र महाकपि सुषेण विद्युन्माली राक्षसके साथ युद्ध करनेंको जाय उठा ॥ १४ ॥ व और दूसरे भयंकर पराक्रम करनेंवाले वानर गणभी अगणित राक्षसोंके साथ घोर द्वन्द्व युद्ध करनें लगे, ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे उस रणभूमिमें अपने २ जयकी अभिलाषा किये वीर राक्षस और वानर गणोंका तुमुल रोमहर्षण कारी युद्ध प्रारंभ हुआ ॥१६॥ राक्षस और वानर गणोंकी पर्वताकार देहसे प्रहारोंके लगनेंसे जो रक्तकी धार निकलतीथी, वही नदीकी समान और उनके शरीरके रोमसमूहथे वही शैवाल की समान जान पड़नें लगे ॥ १७ ॥ वज्रधारी इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र चलातेहैं, वैसेही इन्द्रजीत मेघनादनें क्रोधसें मूर्छित होकर शत्रुओंकी सैनाको विदारण करनेंवाले अंगदजीको ताककर एक गदा इनके ऊपर चलाई ॥ १८ ॥ वानरश्रेष्ठ वेगवान अंगदजीनें मेघनादकी चलाई गदा पकड़ करकै उसके अश्व, सारथी और सुवर्णसे चित्रित रथको चीर्चर कर डाला ॥ १९ ॥ प्रजङ्घ राक्षसनें तीन बाणद्वारा संपाति नाम वानर पर प्रहार किया, तदनन्तर संपातिनें एक अश्वकर्णके वृक्षको उखाड़कर प्रजङ्घके मस्तकपर चलाया ॥ २० ॥ रथोंमें बैठेहुए महाबलवान जम्बुमाली नाम राक्षसनें क्रोधमें भरकर हनुमानजीके बीच छातीमें एक शक्ति मारी ॥ २१ ॥ शक्ति लगनेंपर हनुमानजीनें अति शीघ्रताके साथ उसके रथपर कूद उसमें एक लात मारी कि जिस्से वह रथ चूर्ण होगया; और उसके सहित उस राक्षसकाभी नाश कर दिया ॥ २२ ॥ भयंकराकार प्रतपन नामक राक्षस शब्द करता हुआ नल नाम वानरकी ओर दौड़ा वीर नलनेंभी विक्रम प्रकाश करकै उस राक्षसकी दोनों आंखें निकालली ॥ २३ ॥ बाण चलानेंमें चतुर उस राक्षसके बाण चलानेंसे यद्यपि नलका शरीर छिन्न भिन्न होरहाथा, परन्तु तौभी उन्होंनें उसकी आंखें निकालली, इधर प्रघस नामक राक्षसनें समस्त सैनाको निगल जाना विचारा परन्तु वानरोंके राजा ॥ २४ ॥ सुग्रीवजीनें महा

वेगसे सप्तपर्णका वृक्ष उखाड़ उसके प्रहारसे प्रघस नाम राक्षसको मारडाला, भयंकराकार राक्षसको बाण वर्षासे व्याकुल कर ॥ २५ ॥ फिर एक बाणसे लक्ष्मणजीनें उस अपने शत्रु विरूपाक्ष नामक राक्षसको संहार किया। दुर्द्धर्ष अग्निकेतु व रश्मिकेतु मित्रघ्न व यज्ञकोप इन चार राक्षसोंनें श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाणोंकी वर्षाकी ॥ २६ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें अत्यन्त क्रोध करके अग्निकी शिखाकी समान लप लपाते चार भयंकर बाणोंसे उन चारों राक्षसोंका शिर काट डाला ॥२७॥ मैन्द नामक वानरनें घूंसा मारकर रणमें वज्रमुष्टिका संहार किया, तब यह राक्षस रथ और घोड़ोंके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा कि जैसे कोई नगरकी ऊंची अटारी भहराय पड़े ॥ २८ ॥ सूर्य नारायण जिस प्रकार अपनी किरणोंसे बादलोंको अलग २ करके उड़ाय देतेहैं वैसेही वीर निकुम्भ राक्षसनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर नील अंजनकी समान प्रभावाले सैनापति नीलके शरीरको बींध डाला, और तिसके पीछे दूसरी बार फिर शतबाण छोड़ नीलका शरीर भेद यह निकुम्भ राक्षस अति ऊंचेस्वरसे ठट्ठा करके हँसनें लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ परन्तु सैनापति नीलनें राक्षसनिकुम्भके रथका पहिया ग्रहण कर, चक्र धारण किये हुए विष्णुजीकी समान निकुम्भ और उसके सारथिका मस्तक काट डाला ॥ ३१ ॥ वज्रकी समान कठिन प्रहार करनें वाले द्विविद नाम वानरनें सर्व राक्षसोंके सामनेही पर्वतके शिखरका प्रहार करके राक्षस अशनिप्रभके ऊपर चोट चलाई ॥ ३२ ॥ राक्षस अशनिप्रभनेंभी वज्रकी समान बाणोंसे वृक्ष ग्रहण करके युद्ध करते हुए वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविदको विद्ध किया ॥ ३३ ॥ परन्तु बाणोंके लगनेंसे द्विविदको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और इन्होंनें एक शालका वृक्ष उखाड़ कर अश्व और रथके सहित राक्षसका संहार किया ॥ ३४ ॥ रथमें बैठा हुआ राक्षस विद्युन्माली स्वर्ण भूषित अनेक बाणोंको चलाय सुषेणजीको पीड़ित करके वारंवार सिंहनाद करनें लगा ॥ ३५ ॥ तब वानरोंमें श्रेष्ठ सुषेणजीनें उसको रथमें बैठा हुआ देखकर एक पर्वताकार शिला चलाय उसके रथका चूर्ण करदिया ॥ ३६ ॥ तब निशाचर विद्युन्माली अत्यन्त शीघ्र चतुरता सहित रथपरसे उतर कर अजेय गदा लेकर पृथ्वीमें खड़ा

होगया ॥ ३७ ॥ तब वानर सुषेण, राक्षसको खड़ा हुआ देखकर क्रोधितहो शिला ग्रहण करके उसकी ओरको दौड़े ॥ ३८ ॥ निशाचर विद्युन्माली इनको शिला ग्रहण किये आता हुआ देखकर शीघ्रतासे वानर श्रेष्ठ सुषेणजीकी छातीमें गदाका प्रहार करता हुआ ॥ ३९ ॥ वानरश्रेष्ठ सुषेणजीनें उस गदाको कुछभी न समझ कर उस राक्षस विद्युन्मालीकी छातीमें प्रथमही ग्रहणकीहुई अपनी शिलाको चलाया ॥ ४० ॥ निशाचर विद्युन्माली उस शिलाके प्रहार लगनेंसे पीड़ित और चूर्णित हृदय होकर पृथ्वी पर गिरा कि जिस्से उसकें प्राणतक निकल गये ॥ ४१ ॥ इस प्रकारसे उस द्वन्द्व युद्धमें सुर गणसे असुर गणोंकी समान शूर निशाचरोंके समूह वीर श्रेष्ठ वानरों करके मर्दित होनें लगे ॥ ४२ ॥ भाले, गदा, शक्ति, तोमर और बाणोंके प्रहार लगनेंसे रथ और समरके घोड़े समस्तही पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ४३ ॥ मरे हुए मतवाले, हाथियोंसे, वानर, राक्षसोंसे, रथके टूटे पहियोंसे, जुआ व धुरे आदिकोंसे ॥ ४४ ॥ संग्राम भूमि परिपूर्ण होगई, इसी कारणसे उस घोर रूप संग्राममें सहस्रों शृगाल घूमनें लगे; अनेक भांतिसे राक्षस और वानरोंके कबन्ध नृत्य करनें लगे ॥ ४५ ॥ अधिक क्या कहैं यह संग्रामभी वैसाही हुआ जैसा कि देवासुर संग्राम पूर्वकालमें हुआथा ॥ ४६ ॥

निहन्यमानाहरिपुंगवैस्तदानिशाचराः
शोणितगंधमूर्छिताः ॥ पुनःसुयुद्धंतरसासमा
श्रितादिवाकरस्यास्तमयाभिकांक्षिणः ॥ ४७ ॥

परन्तु उस कालमें रक्त गन्धसे मूर्छित निशाचरोंनें वानर वीरों करके अत्यन्त पीड़ित हो करकैभी फिर अत्यन्त बलके साथ युद्ध करना प्रारंभ किया, और वह राक्षस लोग सूर्य भगवानके छिपनें और रात्रिके आनेंकी बाट देखने लगे ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

युध्यतामेवतेषांतुतदावानररक्षसाम् ॥

रविरस्तंगतोरात्रिःप्रवृत्ताप्राणहारिणी ॥ १ ॥

जब राक्षस और वानर गणोंमें सहज २ करके घोर युद्ध होनें लगा तब सूर्य भगवान अस्ताचलका आश्रय ग्रहण करते हुए; और देखतेही देखते जीव, जीवननाशिनी रात्रि आय पहुँची ॥१॥ तिस समय परस्पर वैर बांधे हुए जयके अभिलाषी घोररूपी उन वानर व राक्षसोंका रात्रि युद्ध आरंभ हुआ ॥ २ ॥ उस दारुण अंधकारको वानर लोग "तू राक्षसहै" और राक्षस "तू वानरहै" यह कहकर परस्पर परस्परको आघात करनेंलगे ॥ ३ ॥ उसकाल उस सैनाके बीचमें मारडालो फाड़डालो भागता क्यों है लौट करआ इस प्रकारसे कठोर शब्द सुनाई आने लगे ॥ ४ ॥ उस अंधकारमें काले वर्ण वाले राक्षस लोग सुवर्णका बना कवच धारण करनेसे प्रदीप्त औषधिवन भूषित पर्वतराजोंकी समान जान पड़नें लगे ॥ ५ ॥ उस अपार अन्धकार में क्रोधसे भरे हुए राक्षस लोग वानरोंकी सैनामें अति वेगसे प्रवेश करके उनको भक्षण करनें लगे ॥ ६ ॥ भयंकर क्रोध किये हुए वानर गणभी छलांग मार २ कर अपने तीक्ष्ण दांतोंसे काट कर राक्षस लोगोंके सुवर्णसे मंडित घोड़े और सर्पाकार ध्वजाओंके डंडे खंड २ करने लगे ॥ ७ ॥ उस संग्राम भूमिमें बलवान वानरगणोंनेंभी राक्षसोंकी सैनाको खल बलाय दिया, हाथी और हाथियोंके सवार पताका और ध्वजा शोभित रथ ॥ ८ ॥ सबको यह वानर गण क्रोधमें मूर्छित होकर खेंचनें व दांतोंसे काटनें लगे । लक्ष्मण और श्रीरामचंद्रजीभी विषकी समान बाण धारा वर्षायकर ॥ ९ ॥ दीखते अन दीखते बडे २ राक्षसोंका संहार करनें लगे । उस कालमें घोडोंके खुरोंसे रथके पहियोंसे उठी हुई धूरिने ॥ १० ॥ युद्ध करती हुई सैनाके कान और नेत्र पृथ्वीपरसे उड़कर मूंदलिये, इस प्रकारसे कठोर और रोम हर्षण कारी संग्राम आरंभ हुआ; तब उस संग्राममें घोर नदी रुधिरकी वहनें लगी ॥ ११ ॥ तिसके पीछे शंखका शब्द, रथ चक्रकी खर २ ध्वनि भेरी मृदंग और ढोलोंका अद्भुत अनुपम शब्द होनें लगा॥ १२ ॥ घायल हुए व ताडित हुए राक्षसोंकी आरत वाणी और अस्त्र शस्त्र चलानेके शब्दसे व वानर गणोंके दारुण शब्दसे संग्रामभूमि परिपूर्ण होगई ॥ १३ ॥ शक्ति, शूल, और परशु इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे मरे हुए वानर और पर्वता-

कार कामरूपी राक्षस लोगोंके गिरनेसे ॥ १४ ॥ वह रण भूमि शस्त्र रूप पुष्पोंसे शोभायमान उद्यान (फुलवाड़ी) की समान जानपड़ने लगी। सब जगह ही रुधिरके वहनेंसे कीचड़ हो जानेंसे वह संग्राम भूमि सबके न देखनें योग्य और न प्रवेश करने योग्य हो गई ॥१५॥ वास्तवमें राक्षस और वानर गणोंकी प्राण हरण करने वाली वह रात्रि कालरात्रिकी समान सबही प्राणियोंको अत्यन्त भयंकर हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे उस दारुण अंधकारमें समस्त ही राक्षस श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाण वर्षाते हुए आगे बढ़े ॥ १७ ॥ उस समय जब भयंकर क्रोधकिये हुये राक्षस सिंहनाद करते जब श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखको दौडे; तब प्रलयकालके समयमें सात समुद्रकी समान कोलाहल रूप बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ १८ ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजीनें एक पलक मारनेंके समय इनमेंसे छै राक्षसोंको अग्निकी लपटके समान तीखे बाणोंसे मारा ॥ १९ ॥ अजेय, यक्षशत्रु, महापार्श्व, महोदर, बड़े शरीरवाला वज्रदंष्ट्र, शुक और सारण ॥ २० ॥ यह छै राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे मर्ममें चोट खायकर अपनें २ जीवको ले रणभूमिसे भागगये ॥ २१ ॥ उस कालमें महारथी श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार अग्निकी लपटके समान बाण चलानेंलगे कि जिस्से पलभरमें दशोंदिशा व विदिशाओंमें अंधकार छायगया ॥ २२ ॥ जिस प्रकार अग्निके मुखमें गिरकर पतंगे जल जाते हैं; वैसेही जो राक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धायेथे उनका उसी समय नाश हो गया ॥ २३ ॥ सबही कहीं सुवर्ण लगे बाणोंके गिरनेंसे, वह रात्रि पटबीजनों करके युक्त शरदृऋतुकी रात्रिके समान विचित्र ज्ञात होनें लगी ॥ २४ ॥ ५ लोगोंके सिंहनाद और भेरीके शब्दसे शब्दायमान होनेंके कारण वह रात्रि औरभी घोर भयंकर होगई ॥ २५ ॥ सर्व प्रकारसे बढ़ा हुआ बड़ा भारी शब्द त्रिकूट पर्वतकी कन्दराओंमें प्रवेश करके गुंजार करनें लगा ॥ २६ ॥ श्याम रंगवाले महाशरीरधारी गोपुच्छ वानर गण अपनी बांहोंसे राक्षसोंको पकड़ फिर भक्षण करनेंलगे ॥ २७ ॥ अंगदजीभी शत्रुका विनाश करनेंकी वासनासे रणमें प्रवेश करके रावणके पुत्र इन्द्रजीतके ऊपर प्रहार करते हुए, और उसके सारथि व घोड़ोंको मार डाला, परन्तु मायाविशारद इन्द्रजीत अंगदजी करके घोड़े और

सारथिके मारे जानें परभी रथको छोड़कर उसी स्थानमें अन्तर्ध्यान होजाता हुआ ॥ २८ ॥ देवता, और ऋषिलोगोंके प्रशंसा करनेंके योग्य वालिकुमार अंगदजीका ऐसा कठिन कार्य देखकर उनकी व राम लक्ष्मण इन दोनोंकीभी अनेक प्रशंसा करनें लगे ॥ २९ ॥ इन्द्रजीतके रणका पराक्रम सबही जानतेथे इसीलिये उसको अंगदजी करकै पराजित देखकर सबही आनंद करनें लगे ॥ ३० ॥ सुग्रीव, विभीषण, व और दूसरे वानर गणभी शत्रुको पराजित देखकर सिंहनाद करनें लगे, और साधु साधु कहकर अंगदजीकी अनेक प्रकारसे बड़ाई करते हुए ॥ ३१ ॥ भयंकर कर्मकारी अंगदजीसे संग्रामभूमिमें पराजित होकर इन्द्रजीत बड़ा लज्जित हुआ, और उसको अत्यन्त क्रोध हो आया ॥ ३२ ॥ तब वह दुष्ट ब्रह्माजीके वरदान पानेंसे गर्वितहो अत्यन्त क्रोधकर अन्तर्ध्यान होगया ॥ ३३ ॥ और किसीको दिखाई न देता हुआ आकाशमें टिककर वज्रकी समान बाण चलानें लगा और रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके सबही अंग उसनें बींध डाले ॥ ३४ ॥ उस मेघनादनें क्रोधित होकर संग्राममें श्रीरामचंद्रजीके सब अंगोंको बाणोंसे भेदा, उसनें अपनी मायासे समरमें दोनों भ्राताओंको मोहित किया ॥ ३५ ॥ वह छलसे युद्ध करनें वाला निशाचर इन्द्रजीत अन्तर्ध्यान रह सब प्राणियोंको न दीखकर मायाके बलसे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको बाणोंके बन्धनोंसे बांधलेता हुआ ॥ ३६ ॥ उन पुरुषसिंह श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको क्रोधित इन्द्रजीत करकै नागमय बाणसमूहोंसे बँधनें पर वानर लोग विस्मित होकर देखनें लगे ॥ ३७ ॥

प्रकाशरूपस्तुयदानशक्तस्तौबाधितुंराक्षस
राजपुत्रः ॥ मायांप्रयोक्तुंसमुपाजगामबबं
धतौराजसुतौदुरात्मा ॥ ३८ ॥

राक्षसराज रावणके पुत्र इन्द्रजीतनें जिस समय देखाकि राम लक्ष्मणको सन्मुख संग्राममें जीत लेना कुछ सहज बात नहीं है; तब उस समय दुरात्मा निशाचर मायाके बलका आश्रय करके सबके सन्मुख

अन्तर्ध्यान होकर उन दोनों राज कुमारोंको बांधलेता हुआ ॥ ३८ ॥
इ०श्रीम०वा०आ०लं०चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥

सतस्यगतिमन्विच्छन्राजपुत्रःप्रतापवान् ॥
दिदेशातिबलोरामोदशवानरयूथपान् ॥ १ ॥

तब उस दुष्टात्मा मेघनादके खोजनेंके लिये महा प्रतापी राजकुमारजीनें दश बलवान वानर यूथपोंको आज्ञादी ॥ १ ॥ उनमें दो तौ सुषेणके भाईथे और वानरोंमें श्रेष्ठ नील, वालिकुमार अंगद, अतिवेगवान शरभ ॥२॥ द्विविद हनुमान महाबलवान, प्रस्थ, ऋषभ, और ऋषभस्कन्ध इन्हीं दश शत्रुओंके तपानेवाले वानरोंको श्रीरामचंद्रजीने आज्ञादी ॥ ३ ॥ यह सुनकर वह वानर गण अत्यन्त आनंदित होकर बड़े २ वृक्षोंको उठाय दशों दिशाओंको खोजते हुए आकाशमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥ अस्त्रके जाननें वाले इन्द्रजीतनें ब्रह्मास्त्र मंत्र पढ़े हुए बाणोंसे उन वेगवान वानरोंकी गति रोकदी ॥ ५ ॥ वह वेगवान वानरगण बाण जालसे छिन्नभिन्न होकर बादलसे ढके हुए सूर्यकी समान अंधकारमें छिपे हुए इन्द्रजीतको नहीं देखसके ॥ ६ ॥ इतनेही अवसरमें रणदुर्जय रावणका पुत्र मेघनाद सर्व देहके भेद करनेंवाले बाणोंसे राम लक्ष्मणजीको विद्ध करता हुआ ॥७॥ वह दोनों भाई क्रोधित मेघनादके चलाये सर्पमय बाणोंसे ऐसे विद्ध हुए कि उनके शरीरका कोई स्थानभी विना घावके न रहा॥८॥ उनके घावोंसे बहुत सारा रुधिर बहनेंके कारण वह दोनों भाई फूले हुए टेटेशूके वृक्षोंकी समान शोभायमान होने लगे॥९॥तिसके पीछे लाल२नेत्र किये अंजनवाले पर्वतकी समान काला रावणका बेटा मेघनाद अदृश्यही रहकर उन दोनों भ्राताओंसे यह वचन बोला ॥ १० ॥ अरे बाण जालसे बंधे हुए दो राजकुमारो! तुम्हारी बात तौ दूर रहै हम जिस समय अदृश्य होकर युद्ध करतेहैं, उस समय स्वर्गके पति इन्द्रभी हमारा दर्शन नहीं कर सकते, या हमको प्राप्त नहीं होसकतेहैं ॥ ११ ॥ जो कुछभी हो अब हम बहुतही शीघ्र कंकपत्र लगे बाणोंसे भली प्रकार तुमको बींधकर यमराजके गृहमें भेजे देतेहैं ॥ १२ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी

दोनों भाइयोंसे ऐसा कह मेघनाद अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उनको घाय-ल कर वारंवार हर्षसे सिंहनाद करनें लगा ॥ १३ ॥ उस घोर रूप संग्रा-ममें काले अंजनकी समान श्याम रंगवाला मेघनाद अपने धनुषपर टंकार दे वारंवार अत्यन्त घोर बाण जाल बर्षानें लगा ॥ १४ ॥ इसके पीछे वह मेघनाद धर्मात्मा श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजीके मर्म स्थानमें तीखे बाण मारकर हर्ष सहित वारंवार सिंहनाद करता हुआ ॥ १५ ॥ उस समय वह दोनों वीर रणभूमिमें बाणोंके बंधनसे बंधकर एक पल-भरभी किसी ओर देखनेंको समर्थ न हुए ॥ १६ ॥ परन्तु इस समय वह बाणोंके फलकोंसे पीड़ित हो गयेथे, व उनके अंगभी कट गयेथे, इस्से वह दोनों जन रस्सीसे रहित कम्पायमान महेन्द्रके ध्वज युगलकी समा-न शोभित हुए ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे महा बलवान जगतपति श्रीराम-चंद्रजी व लक्ष्मणजी मर्ममें घाव लग जानेंसें पीड़ित होकर पृथ्वीपर गि-रपड़े ॥ १८ ॥ वह दोनों वीर सब अंगोंमें बाण लगनेंके कारण अत्यन्त पीड़ित होकर वीरोचित सेजपर शयन करते हुए, व उनके सब अंगोंसे रु-धिरकी धारा निकलनें लगी ॥ १९ ॥ उनके अंगमें एक उंगलभी ऐसा स्थान नहींथा कि जहां बाण न लगाहो, और उंगलियोंके पोरुवोंसे लेकर कोईभी उनके अंगका स्थान नागमय बाण समूहसे अविचलित या साबित नहीं रहा, सबही अंग कटेथे ॥ २० ॥ वह दोनोंजन काम रूपी क्रूर राक्षस करकै बाणोंसे ऐसे घायल हुए कि जिस प्रकार झरनेंसे जलकी धार निकलतीहै; वैसेही इनके सब अंगोंसे रुधिरकी धारा निकलनें लगी ॥ २१ ॥ पहले श्रीरामचंद्रजी राक्षस इन्द्रजीतके दारुण बाणसे विद्ध होकर पृथ्वीमें गिरपड़े; जिस प्रकार इन्द्रजीतनें पहले इन्द्रको युद्धमें हरा-याथा वैसेही श्रीरामचंद्रजीकी पराजयभी उसको आनंदकी देनेंवाली हुई ॥ २२ ॥ फिरभी इस दुष्ट मेघनादनें सुवर्णके फोंके लगे हुए रजकी समान सब कहीं पहुंचनेंवाले बाणोंसे, व अनेक प्रकारके भालोंसे, व छठेके दांतोंके समान वह सिंह दशनके समान आकारवाले बाणोंसे श्रीरामचंद्र जीको मारा ॥ २३ ॥ तब शर सहित तीन स्थानोंपर झुके हुए रुक्म-भूषित और मुष्टिस्थानोंसे अलग शरासनको त्यागकर श्रीरामचंद्रजी वीरोचित सेजपर शयन करते हुए; उस समय उनमें कवच बख्तर धारण

करनेंकीभी कुछ सामर्थ्य न रही ॥ २४ ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको बाणोंकी सेजपर सोया हुआ देखकर लक्ष्मणजी जीवनकी आशा त्याग-करते हुए ॥ २५ ॥ और उन कमलदललोचन रणतोषण शरण देनेंवा-ले अपने भ्राताको पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर विलाप करनें लगे ॥ २६ ॥ वानरगणभी श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी अवस्था देखकर अत्यन्त सन्तापित हुए और शोकके मारे नेत्रोंमें आंसू भरकर बड़े शब्दसे रोनें लगे ॥ २७ ॥

बद्धौतुतौवीरशयेशयानौतेवानराःसंप
रिवार्यतस्थुः ॥ समागतावायुसुतप्रमुख्या
विषादमार्ताःपरमंचजग्मुः ॥ २८ ॥

हनुमान इत्यादि मुखिया २ वानर लोग राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नाग फाँससे बँधा हुआ और वीरोचित सेजपर शयन किये हुए देखकर चारों ओरसे घेरकर अत्यन्त विलाप करनें लगे ॥ २८ ॥ इ०श्रीम०वा० आ०लं०पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥

ततोद्यांपृथिवींचैववीक्षमाणावनौकसः ॥
ददृशुःसंततैर्बाणैर्भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥

इसके पीछे वानर लोगोंनें भयके मारे आकाश और पृथ्वीको खोज करकै देखा कि राम लक्ष्मण दोनों भाई नागफाँससे बँधेहुए पड़े हैं ॥ १ ॥ तिसके पीछे इन्द्र जिस प्रकार जलधारा वर्षाय कर थँम जाते हैं, वैसेही इन्द्रजीत इन दोनों वीरोंको बाणजालसे घायल और बाँध करकै थमगया, तब सुग्रीव विभीषणके सहित उस स्थानमें आये ॥ २ ॥ तिसके पीछे नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद, और अंगद हनुमानजीके साथ वहांपर आय श्रीरामचंद्रजीके निमित्त शोक करनें लगे ॥ ३ ॥ उन समस्त वानरोंनें देखा कि राम लक्ष्मण शरविद्ध होनेंके कारण चेष्टारहित हैं, उनके सब शरीरमें रुधिर बहरहा है, श्वास मन्द २ चल रहा है, और वह बाणोंकी सेजपर बाणोंसे विंधेहुए पड़े हैं ॥ ४ ॥ तेजहीन सर्पकी जो अवस्था होती है, दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीकीभी वही अवस्था होर-

हीथी वह धीरे २ लंबे २ श्वास ले रहे थे, वह सर्वाङ्गमें रुधिर लगाये सुवर्णसे ध्वजाओंके डंडेकी समान पृथ्वीपर पड़ेहुए शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५ ॥ वह वीरशय्यापर शयन करनेंके कारण हाथ पांव आदि न हिलाते डुलाते अपने उन यूथपोंके बीचमें लोटे हुएथे जो कि उनके चारों ओर खड़े रोतेथे ॥ ६ ॥ बाणजालसे विंधेहुए श्रीरामचंद्रजीको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर विभीषणके सहित सबही वानर अत्यन्त व्यथित होते हुए ॥ ७ ॥ यद्यपि इस समय वानरगण रावणके पुत्र मेघनादको आकाशमें ढूंढ़ रहेथे, परन्तु मायासे अदृश्य होनेंके कारण उसको कोईभी न देख सका ॥ ८ ॥ परन्तु विभीषण इस मायाको जानते थे, इस कारण जैसेही कि उन्होंनें दृष्टि की, वैसेही मायाके बलसे ढके हुए, उस अपने भाईके पुत्र- (भतीजे) मेघनादको इन्होंनें देखा कि वह अनुपम कर्म करनेंवाला, संग्रामभूमिमें अप्रतिद्वन्द्व ॥ ९ ॥ वरदान पानेंसे गर्वित वीर अन्तर्ध्यान होकर सन्मुखही आकाशमें टिका हुआ है, ऐसे मेघनादको तेज, यश, विक्रम संयुक्त विभीषणजीनें देखा ॥ १० ॥ इसके पीछे इन्द्रजीत मेघनाद इन श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनों वीरोंको वीरशेजपर पड़ाहुआ देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो अपना कर्म सबको सुनाता हुआ, सब राक्षसोंको सन्तोष दिलाता कहनें लगा ॥ ११ ॥ कि जो सब जगत्में बड़े बलवान विख्यात हैं. जिनके हाथसे खर दूषण मारे गये, उन्हीं राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंका आज हमनें अपनें बाणोंसे संहार कर डाला ॥ १२ ॥ यदि सुर असुर, और समस्त ऋषिलोगभी यहां आनकर इकट्ठे हो इनको नागफाँससे छुटानेंका यत्न करैं, परन्तु किसी प्रकारसेभी यह नागफाँस टूटनेंवाली नहीं ॥ १३ ॥ जिनके लिये हमारे पिता भय और शोकसे अत्यन्तही व्याकुल थे, जिनके कारण वह हमारे पिता सेजपर विना अंगके लगायेही तीन पहर रात्रि बितादेते हैं ॥ १४ ॥ जिनके लिये लंकाके रहनेंवाले समस्तही लोग वर्षाके समयवाली नदीकी समान व्याकुल थे, उस अनर्थके मूलकोही आज हमनें उखाड़ डाला॥१५॥ शरदकालके मेघ जिस प्रकार निष्फल होते हैं; वैसेही राम-लक्ष्मण व और समस्त वानरोंका विक्रम निष्फल हो गया ॥ १६ ॥ राक्षस लोगोंसे यह वचन कहकर उनके सन्मुखही वानरोंके यूथनाथोंकोभी ताड़ना

करनें लगा ॥ १७ ॥ उस अमित्र घाती अति धनुर्द्धर मेघनादनें वीर नील-पर नल और मैन्द व द्विविद वानरपर तीन २ अति तीखे बाण चलायकर उनको वींध डाला ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जाम्बवानकी छातीमें एक बाण मारकर उसनें हनुमानजीके ऊपर दश बाण चलाये ॥ १९ ॥ गवाक्ष और शरभके ऊपर महा पराक्रमी वेगवान मेघनादनें दो दो बाण चलाये और उनकोभी वींध डाला ॥ २० ॥ और बड़ी शीघ्रताके साथ उसने गोपुच्छ वानरोंके स्वामी ऋक्षराज धूम्र और वालिकुमार अंगदजीके ऊपर बहुत असंख्य बाण चलाये ॥ २१ ॥ महा सत्वयुक्त बलवान रावणकुमार उन अग्निकी शिखाके समान लपलपाते बाण समूहसे वानरोंको मारकर सिंह-नाद करनें लगा ॥ २२ ॥ वह महाबाहु मेघनाद बाणोंकी चोटसे वान-रोंको शंकित और पीड़ित करकै बिकट हँसनें लगा और राक्षस लोगोंको पुकारकर बोला ॥ २३ ॥ हे निशाचर गण! श्रवण करो; हमनें बराबर बाणोंकी वर्षा करके अंतमें राम लक्ष्मणको नागफाँससे बांधही लिया॥२४॥ छलसे युद्ध करनेंवाले राक्षस लोग मेघनादकी बात सुनकर उसके कार्यसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उसकी उपमारहित वीरताको देखकर अत्य-न्त विस्मित होरहे ॥ २५ ॥ तब मेघाकार राक्षस लोग " राम मारे गये " यह मनमें निश्चय करके सबही सिंहनाद करते हुए इन्द्रजीत मेघनादकी बड़ाई करनें लगे ॥ २६ ॥ और उन दोनों भ्राता श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको विना हाथ पैर हिलाते डुलाते और श्वास रहित पृथ्वीमें पड़े देख तब राक्षसोंनें निश्चय जान लिया कि यह मृतक होगये ॥ २७ ॥ तिसके पीछे रणमें विजय करने वाला इन्द्रजीत रणमें विजय पाय कर राक्षसोंको आनंदित कराता हुआ लंकामें प्रवेश करता हुआ ॥ २८ ॥ इसी समयमें कपिराज सुग्री-वजी राक्षसराज रावणके पुत्र मेघनादके बाणोंसे श्रीराम लक्ष्मणके समस्त अंग विद्ध और रुधिरसे भीगे देखकर अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ उस समय बड़े चतुर विभीषणजी नेत्रोंमें आंसूभरे हुए दीन भावसे युक्त और क्रोधाकुल नेत्र वानरराज सुग्रीवजीसे बोले कि हे सुग्रीव! त्रासको छोड़ो और रोनेंकाभी कुछ काम नहीं ॥ ३० ॥ युद्धका फल इसी प्रका-रसे हुआ करताहै, कारण कि कभी किसीको सदा जय नहीं प्राप्त हुआ

करतीहैं, हे वीर! यदि हम लोगोंका भाग्य प्रसन्न होजायगा ॥ ३१ ॥ तौ महाबलवान महात्मा इन दोनों भाइयोंका मोह बहुतही शीघ्र छुट जायगा; हेवानरपति! तुम निश्चय जानना कि जो लोग सत्य और धर्मके अनुरागी होतेहैं; उन लोगोंको कभी मृत्यु उपस्थित नहीं होती, इसलिये तुम अनाथकी समान शोक न करके अपनेको और हमको सावधान करो ॥३२॥ विभीषणजीनें यह कहकर प्रथम अपने हाथमेंलिये हुए जलसे सुग्रीवजीके दोनों नेत्र धोय दिये॥ ३३॥तिसके पीछे फिर जल हाथमें लेकर उसको शोक निवारण विद्यासे अभिमंत्रितकर उस्से फिर सुग्रीवके दोनोंनेत्र धोदिये ॥३४॥तब बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीवजीके नेत्र जलसे पोंछ समयके अनुसार व्याकुलताके निवारण करनें वाले वचन विभीषणजी बोले ॥ ३५ ॥ हेसखे! यह व्याकुल होनेंके योग्य समय नहींहै जान लो कि ऐसे कठिन समयमें स्नेहभी मृत्युका कारण होजाताहै॥३६॥इस कारण इन सब कार्योंकी विनाश करनें वाली विकलताको छोड़कर जिस्से श्रीरामचंद्रजीकी अनुगामी सैनाका मंगल होवे ऐसा तुमको करना उचितहै ॥ ३७ ॥ अथवा जब तक श्रीरामचंद्रजीका मोह छूटकर उनको संज्ञा प्राप्तहो तब तक तुम उनकी रक्षा करते रहो; जान लो कि जब काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजीनें चैतन्यता प्राप्त करली तब फिर हमको कोईभी भय न रहैगा ३८॥ श्रीरामचंद्रजीकी मोहकी अवस्था जो तुम देखतेहो यह सब कुछभी नही है, लक्षणसे अनुमान होताहै कि किसी प्रकारसेभी श्रीरामचंद्रजीकी मृत्यु होनें वाली नहीं; जीवका जीवन नष्ट होनें पर जो श्री दुर्लभहै,इन श्रीरामचंद्रजीके शरीरमें वही श्री स्पष्ट दिखलाई देतीहै ॥३९॥ हेसुग्रीव! जो हुआसो हुआ तुम सावधान होवो; और अपनी सैनाकोभी ढांढस बँधाओ, और हमभी अपनी सैनाको फिर स्थिर करतेहैं ॥ ४० ॥ हे वानरश्रेष्ठ! यह देखो, वानर गण नेत्र फैलाय २ भीत और शंकित होकर परस्पर एक दूसरेके कानही कानमें श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता कर रहेहैं ॥ ४१ ॥ हमको इधर उधर घूमते हुए देखकर व समस्त वानर वाहिनीकोभी हर्षित देख पहरनेंसे मलगिजी व कुंभलाई हुई मालाके त्याग करनेंके समान सब वानर अपनी व्याकुलताको छोडेंगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे वह

राक्षसोंके इन्द्र विभीषणजी वानर राज सुग्रीवजीको यह कह समझाय बुझाय फिर भागी हुई सैनाको धीरज बँधाने लगे ॥ ४३ ॥ इस ओर माया विशारद इन्द्रजीत सब सैनाको साथ लेकर लंका नगरीमें प्रवेशित हो अपने पिता रावणके निकट जायकर पहुंचा ॥ ४४ ॥ फिर रावणके निकट जाय हाथ जोड़ प्रणामकर रामचंद्र व लक्ष्मणके मारे जानेकी प्रिय वार्त्ता वह मेघनाद निवेदन करता हुआ ॥ ४५ ॥ राक्षस मंडलके बीचमें बैठा हुआ रावण अपने दोनों शत्रुओंका मारा जाना सुनकर खड़ाहो हर्षित अंतःकरणसे पुत्रको हृदयसे लगाता हुआ ॥ ४६ ॥ तब रावणनें अति प्रसन्नता सहित पुत्रका मस्तक सूंघकर पुत्रसे युद्धका समस्त वृत्तान्त पूछा, पुत्र इन्द्रजीतनेंभी सब चरित्र पितासें निवेदन किया ॥४७॥ जिस प्रकारसे राम और लक्ष्मणको संग्राममें नागपाशसे बांधकर चेष्टा-हीन और प्रभाहीन किया, वह सब वृत्तान्त रावणसे इन्द्रजीतनें कहा॥४८॥

सहर्षवेगानुगतांतरात्माश्रुत्वागिरं
तस्यमहारथस्य ॥ जहौज्वरंदाशरथेः
समुत्थंप्रहृष्टवाचाभिननंदपुत्रम् ॥ ४९ ॥

महाबलवान महारथ इन्द्रजीतके मुखसे संग्राममें जीतनेका समाचार पाय अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, और उस समय उसके अंतःकरणसें श्रीरामचं-द्रजीका भय दूर होगया, तब वह हर्षित वचनोंसे पुत्रकी बड़ाई करनें लगा ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध-कान्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

तस्मिन्प्रविष्टेलंकायांकृतार्थेरावणात्मजे ॥
राघवंपरिवार्याथररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥

तिसके पीछे जब रावणका पुत्र मेघनाद रण विजयी होकर लंकाको चलागया, तब वानर श्रेष्ठ गण श्रीरामचंद्रजीको चारों ओरसे घेरकर उन-की रक्षा करनें लगे ॥ १ ॥ हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, पनस, महा वानर सानुप्रस्थ ॥ २ ॥ जाम्बवान, ऋषभ,

सुन्द, रम्भ, शतबलि और पृथु इत्यादि यह सबही वानर यूथगण वृक्षोंको हाथमें ग्रहणकर सैनाका व्यूह बनाय श्रीरामचंद्रजीकी रक्षा करनें लगे ॥ ३ ॥ उस कालमें रक्षामें नियुक्त हुए वानर गण इस प्रकारकी सावधानतासे चारों ओर देखने लगे कि जो कहीं तनक शब्दभी हुआ तौ वह लोग " राक्षस आगया" ऐसा जान करके उसही ओरको दौड़नें लगे ॥ ४ ॥ इस ओर रावण हर्षित मनसे प्रियपुत्र इन्द्रजीतको विदा देकर सीताजीके रक्षा कार्यमें नियत हुई राक्षसियोंको बुलाता हुआ ॥ ५ ॥ त्रिजटा व और भी सब राक्षसियें रावणकी आज्ञ जानकर वहां पर आई,तब राक्षसोंका स्वामी रावण हर्ष भरे मनसे यह कहता हुआ ॥ ६ ॥ कि तुम सब सीताको समाचार दो कि इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये उनसे यह कह व फिर उन्हें पुष्पक विमानपर चढ़ायकर रण भूमिमें मरे हुए दोनों भाइयोंको दिखालाओ ॥ ७ ॥ उस जानकीसे तुम कहना कि जिनके आश्रयके गर्वके मारे तुम इतनें दिनोंतक हमसे विरुद्धथीं, इस समय वही तुम्हारे स्वामी अपने भाईके सहित मार डाले गये हैं ॥ ८ ॥ अब सीता रामके सहित मिलनेंकी आशाको भली भांतिसे त्यागकर और शोक व शंकाको छोड़ सर्व गहनोंसे भूषितहो हमारे वशमें हो जाय ॥ ९ ॥ जान पड़ताहै कि आज वह बड़े नेत्रोंवाली जानकी संग्राम भूमिमें लक्ष्मणजीके सहित रामचंद्रको प्राण रहित और अपनी कोई और गति न देखकर जब वहांसे लौटेगी; तब आपही हमारे वशमें पड़ैगी ॥ १० ॥ तब यह सब राक्षसी दुरात्मा रावणके यह वचन सुनकर और " ऐसेही होगा " कहकर जहां पुष्पक विमान रक्खाथा वहांपर गईं ॥ ११ ॥ तिसके पीछे वह राक्षसी गण रावणकी आज्ञासे वह पुष्पक विमान लेकर अशोक वनमें वास करती हुई सीताजीके निकट पहुंचीं ॥ १२ ॥ और पतिके शोकसे दुर्बल हुई सीताको उन राक्षसियोंनें अपनें हाथसे पकड़कर पुष्पक विमानपर चढ़ाया ॥ १३ ॥ (रावण) त्रिजटाके साथ सीताजीको पुष्पक विमानमें सवार कराकर ध्वजा पताकाओंसे शोभायमान लंकापुरीमें घुमानें लगा ॥ १४ ॥ उस राक्षसपति रावणनें घुमानेंके कालमें चारों ओर यह पुकारवाया कि " संग्रामभूमिमें इन्द्रजीतके हाथसे राम लक्ष्मण दोनों भाई मारे गये ॥ १५ ॥

इस पीछे जनककुमारी सीताजी त्रिजटाके सहित रणभूमिमें जाय कर देखती हुई कि लगभग समस्त वानरसैनाही मरी पड़ीहै ॥ १६ ॥ मांसके खानें वाले राक्षस लोग हर्षित अंतःकरणसे चारों ओर घूमरहेहैं; और वानर गण दुःखित मनसे श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट खड़े हुएहैं ॥ १७ ॥ तिसके पीछे जनककुमारी जानकीजीनें देखा कि राम और लक्ष्मणजी बाणोंसे पीड़ित होंनेंके कारण चेतना रहितहो बाणोंकी शेजपर पड़े हुए हैं ॥ १८ ॥ वह दोवीर श्रेष्ठ दोनों भाई राम और लक्ष्मणजी कवच हीन धनुष त्याग किये सब अंगोंमें बाण विंधवाये पृथ्वी पर पड़े हुएहैं ॥ १९ ॥ जानकीजीनें देखा—वह वीराग्रगण्य पुरुषश्रेष्ठ पुण्डरीकाक्ष दोनों भ्राता, दो अग्निकुमारोंकी समान बाणोंकी शेज पर शयन किये हुएथे ॥ २० ॥ उन पुरुष श्रेष्ठ दोनों वीरोंको ऐसी अवस्थामें बाणोंकी शेजपर शयन किये हुए देख जनककुमारी सीताजी दुःखकी अधिकाईके मारे वारं वार विलाप करनें लगीं ॥ २१ ॥ कृष्ण लोचन वाली व कोमल अंगवाली जानकीजी अपने स्वामी और लक्ष्मणजीको धूरिमें लोटता हुआ देखकर रोदन करनें लगीं ॥ २२ ॥

सबाष्पशोकाभिहतासमीक्ष्यतौभ्रात
रौदेवसुतप्रभावौ ॥ वितर्कयंतीनिधनं
तयोःसादुःखान्विताावाक्यमिदंजगाद ॥ २३ ॥

इस प्रकारसे जनक कुमारी जानकीजी सुर सुत समान दोनों भाइयोंको ऐसी अवस्थामें देख "यह मृतक होगये" ऐसा मनमें स्थिर करती हुई और शोकके मारे उनका वदन मंडल आंसुओंकरके पूर्णहो जानेसे वह अत्यंत दुःखके मारे कहनें लगीं ॥ २३ ॥ इ० श्रीम० आ० ल० सप्तचत्वारिंशःसर्ग ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

भर्तारंनिहतंदृष्ट्वालक्ष्मणंचमहाबलम् ॥
विललापभृशंसीताकरुणंशोककर्शिता ॥ १ ॥

अपने स्वामी और महाबलवान लक्ष्मणजीको मृतक देखकर मारे शोक

के दुर्बल सीताजी अत्यन्त करुणा भरी वाणीसे इस प्रकार विलाप करनें लगीं ॥ १ ॥ हाय; सामुद्रिकके जाननें वाले पुरुष हमको देखकर कहतेहैं कि तुम पुत्रवती होकर सदा सुहागन रहोगी, परन्तु आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेंसे उनके वह वचन मिथ्या हुए ॥ २ ॥ और जो लोग हमको देखकर कहते कि तुम यज्ञ करने वाले राजाकी स्त्रीहोगी; हाय; आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेंसे वह ज्ञानी लोगभी मिथ्यावादी हुए ॥ ३ ॥ हाय! और उन ज्ञानी लोगोंने हमको देखकर यहभी कहा-था कि तुम वीरराजाकी सब रानियोंमें बडी होगी, परन्तु बड़े शोककी बात है कि आज श्रीरामचंद्रजीके मर जानेंसे उन ज्ञानी लोगोंकी बातभी मिथ्या हुई ॥ ४ ॥ ज्योतिष शास्त्रके जाननें वाले ब्राह्मणोंने हमको देख प्रतिज्ञा करके हमारे अभिषेकके सम्बन्धमें जो शुभकारी वार्त्ता कहीथी, सो आज श्रीरामचंद्रजीके मृतक हो जानेसे उनके वचनभी विफल हो गये ॥ ५ ॥ दोनों चरणोंमें पद्म चिह्न रहनेसे जो कुलकी स्त्रियां नरेन्द्र पतियोंके साथ अधिराज स्थानपर अभिषेचित होतीहैं, वे पद्माकार रेखा रूप हमारे चरणोंमेंहैं ॥ ६ ॥ क्या आश्चर्य है कि जिन सब कुलक्षणोंके रहनेसे दुर्भाग्यवती स्त्रियें विधवा अवस्थाको प्राप्त होतीहैं; हम विशेष रूपसे देख भालकरभी अपने शरीरमें वैसा कोई कुलक्षण नहीं देखती वरन जबकि हम ऐसे सुलक्षण युक्त होकरभी विधवा हुई; इस्से निश्चयही बोध होताहै कि यह पद्म चिह्न इत्यादि हमसे हत होगये ॥ ७ ॥ हा! लक्षण जाननेंवाले पंडित लोग जिस पद्मचिह्नका "अमोघ" फलकहा करतेहैं श्रीरामचंद्रजीके निहत होनेसे आज हमारे जान तो यह सब मिथ्या होगये ॥ ८ ॥ देखो स्त्रियोंके समस्त सुलक्षण हममें हैं, नील, पतले, और बराबर हमारे केशहैं, दोनों भौंयें परस्पर मिली हुई नहीं हैं दोनो जांघें गोल और रोम रहितहैं, दांतोंकी पंक्ति विरल है ॥ ९ ॥ नेत्रोंके कोये, नेत्र, हाथ, पांव, घुटने, उरू, यह सब हमारे मोटेहैं, चढा उतार, चिकने लाल नखहैं, उंगलियें, समस्त बराबर हैं ॥ १० ॥ हमारे परस्पर मिले हुए स्तन ऐसे मोटे और ऊंचेहैं मानो दोनो स्तनकोरक उनमे पैठेही जातेहैं, हमारे स्तनोके निकटवाली बगल व उरू विशालहै नाभि ऊंची पार्श्ववाली और सुगंभीरहै ॥ ११ ॥

हमारा वर्ण शान पर चढ़ी मणिकी समान उजलाहै, रोम समस्त कोमल हैं, इस प्रकार दश इन्द्रियें और मन बुद्धिसे हमको सब शुभ लक्षण वाली ही कहते हैं ॥ १२ ॥ हमारे उंगलियोंके पोरुवोंपर सब यव पूरे हैं. कोई रेखासे खंडित नहीं और हाथ पैरकी सब उंगलियें घनीहैं, और समस्त अंग शोभासे युक्त हैं; इन सब लक्षणोंसे लक्षण जाननें वाले लोग हमको मन्दस्मिता कहा करतेथे ॥ १३ ॥ हा! ज्योतिष शास्त्रके जाननें वाले ब्राह्मण लोगोंनें कहाथा कि " पतिके साथ तुम अधिराज्यपर अभिषिक्त होगी " परन्तु यह सबही आज मिथ्या होगया ॥ १४ ॥ हा! यह दोनों भ्राता जनस्थानके कंटकको दूर करके हमारा पता लगाय लांघनें के अयोग्य समुद्रके पार होकर अंतमें हमारे भाग्यसे गायके खुरके गढ़ेमें भरे हुए जलमें डूबगये ॥१५॥ हाय! इन दोनों वीरोंने वरुण आग्नेय इन्द्र वायव्य और ब्रह्मशिर नामक जिन अस्त्रोंको प्राप्त कियाथा. किस कारणसे यह सब अस्त्र इन्होंनें इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये ❋ ॥१६॥ हाय! हाय! मुझ अनाथिनिके नाथ इन्द्रकी समान पराक्रमकारी राम और लक्ष्मणजी मायाके बलसे अन्तर्ध्यान हुए इन्द्रजीतके हाथसे संग्राम भूमिमें मारे गये हैं ॥ १७ ॥ इन्द्रजीतनें अदृश्य रह करही ऐसा किया है; परन्तु संग्राममें वह किसी प्रकारसेभी ऐसा नहीं कर सकता कारण कि रणभूमिमें रघुनंदनकी दृष्टिके सामनें पड़कर मनकी समान वेगवान् शत्रुभी जीता हुआ लौटकर नहीं जाय सकता ॥ १८ ॥ जो कुछभी हो कालके लिये कोईभी कार्य दुष्करनहीं है. और को तौ जीतभी लियाजाय सकता है, परन्तु कालको कोई जीतनें वाला नहीं, यदि ऐसा न होता तौ यह दोनों भ्राता रणमें क्यों मारे जाते? ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजी, महारथी लक्ष्मणजी जननी अथवा अपने लियेभी हमें ऐसा शोक नहीं; परन्तु तपस्विनी सास कौशल्याजीके परिणामकी चिन्ता करके हमारी छाती फटी जाती है ॥ २० ॥ वह सदा यही चिंता किया करती हैं कि—कब राम लक्ष्मण वधूके सहित व्रत समाप्त करके आवेंगे? कब हम उनको देखनें पावेंगी! ॥ २१ ॥ जब जनक कुमारी सीताजी इस प्रकारसे विलापकर रहीथीं तब त्रिजटा नाम रा-

❋ "किस कारणसे उन्होंनें यह सब अस्त्र इस कुसमयमें स्मरण नहीं किये।" यह कथा मूलमें नहीं है; परन्तु टीकाकारका अभिप्रायहै.

क्षसीनें कहा कि--हे देवि! तुम अब विलाप न करो, कारण कि तुम्हारे स्वामी अभी जीवितहैं ॥ २२ ॥ हे देवि! भ्राता राम और लक्ष्मण जिस प्रकारसे जीवितहैं, इसका बड़ा भारी कारण हम कहती हैं; तुम उसको श्रवण करो ॥ २३ ॥ यह वानरगण क्रोध प्रकाश कररहे हैं और उनके मुखों पर हर्षके चिह्नभी दिखाई देते हैं; परन्तु रणस्थलमें राजाके मरजानें पर उसकी सैनाके मुखपर कभी इस प्रकारके चिह्न प्रकाशित नहीं होते ॥ २४ ॥ हे वैदेही औरभी सुनो; यदि श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी जीवित न होते. तो यह पुष्पक विमान किसी प्रकारसे भी तुमको धारण न करता, क्योंकि यह अपने ऊपर विधवा स्त्रियोंको नहीं चढ़ाता है ॥ २५ ॥ हम जानती हैं कि युद्धमें सेनापति या प्रधानकी मृत्यु हो जानें पर सैनाके लोगोंमें उत्साह और उद्यम नहीं रहता; परन्तु इन वानरोंमें हम यह सब बातें पातीहैं, यदि श्रीरामचंद्रजीका कोई अंग नष्ट हुआ होता तो निश्चयही विनामांझी की नौकाके समान यह सैना संग्राम भूमिमें इधर उधर फिरती ॥ २६ ॥ परन्तु हे तपस्विनी! यह वानरोंकी सैना बड़ी सावधानतासे उद्वेग रहितहो दोनों भ्राता राम लक्ष्मणजीकी रक्षा करती है; इस कारण हमें ज्ञात होताहै, कि यह मृतक न होकर मूर्छित होगये हैं यह बात हमने प्रीतिके कारण तुमसे कहीहै. ॥ २७ ॥ हेजानकी! तुम इस समय सावधान होवो, हमको स्पष्ट अनुमान करनेंसे जान पड़ताहैकि राम लक्ष्मणजीका कुछ अमंगल नहीं हुआ, तुम्हारे प्रति हमारा स्नेह जो है इसी कारण तो हम तुमसे यह बात करती हैं ॥ २८ ॥ हेमैथिलि! हमनें पहले कभी तुमसे कोई मिथ्या वार्त्ता न कही, न अबकहैं, हे देवि! अधिक क्याकहैं तुमने अपने निर्मल चरित्रके प्रभावसे हमारे अंतःकरणको अपने वशमें कर लियाहै ॥ २९ ॥ हमनें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीकी जो सौम्य मूर्त्ति देखीहै; तिसको देखकर हम निश्चयही कह सकतीहैं कि इनको पराजित करनेकी सुर व असुरोंके सहित इन्द्रमेंभी सामर्थ्य नहीं है, फिर यह राक्षस बिचारे तो हैं ही क्या वस्तु? ॥ ३० ॥ हेरामप्राणवल्लभे! और एक बात आश्चर्यकी यहभी है कि यह दोनों बाणोंसे विद्ध और संज्ञाही न होकर पृथ्वी पर गिर पड़े हैं; परन्तु जिस परभी इनकी सुन्दरताईमें कुछ अन्तर नहीं आयाहै ॥ ३१ ॥

बहुधा देखनेंमें आताहै कि प्राणियोंका जीवन नष्ट या शक्तिहीन होनेपर उनके मुखकी शोभा नहीं रहती वरन मुखकी आकृति बिगड़ जातीहै हेजनककुमारी! हम इसीलिये कहतीहैं कि तुम शोक दुःख और मोहको छोड़ो; कारणकि यदि राम लक्ष्मण जीव रहित होते तौ इनके शरीरोंपर ऐसा लावण्य किसी प्रकारसेभी नहीं रहता ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मिथिलाराजनन्दिनी, देवकन्याओंकी समान सीता; यह समस्त वचन श्रवण कर हाथ जोड़कर बोलीं कि तुमनें जो कुछ कहा वही समस्त वचन तुम्हारे सत्यहैं ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे त्रिजटा उस मनके वेगकी अनुसार शीघ्र चलनें वाले पुष्पक विमानको लौटाय कर दीन सीताजीको फिर लंका पुरीमें प्रवेश कराती हुई ॥ ३५ ॥ तदनन्तर जनक पुत्री सीताजी त्रिजटाके सहित अशोक वनके समीपमें उपस्थित हो समस्त राक्षसियोंके सहित फिर उसमें प्रवेश करती हुई ॥ ३६ ॥

प्रविश्यसीताबहुवृक्षखंडांतांराक्षसेंद्रस्यवि
हारभूमिम् ॥ संप्रेक्ष्यसंचिंत्यचराजपुत्रौ
परंविषादंसमुपाजगाम ॥ ३७ ॥

इस प्रकारसे जानकीजीनें राक्षसोंमें इन्द्र रावणकी विहार भूमि अनेक वृक्षोंसे युक्त अशोक वाटिकामें प्रवेश किया; परन्तु इन्होंनें दो राजकुमारोंको जिस अवस्थामें पड़ा देखाथा, अशोकवननें आनेंके समय वही चिन्ता आयकर इनके मनको अत्यन्त व्याकुल और हृदयको मथनें लगी ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०लं०अष्टचत्वारिंशःसर्गः ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥

घोरेणशरबंधेनबद्धौदशरथात्मजौ ॥
निःश्वसंतौयथानागौशयानौरुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥

दशरथ कुमार श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी नाग फाँसमें बँधे हुए बाणोंकी सेज़पर पड़ेथे, व उनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहाथा; हाथी जिस प्रकार गर्जन किया करताहै; उस समय यह दो भ्राताभी इसी भांति लंबेर श्वास लेनें लगे॥ १ ॥ सुग्रीवादि मुख्य २ बलवान वानर श्रेष्ठ गण शोकसे

अत्यन्त पीड़ित होकर उनको चारों ओरसे घेर कर खड़े होगये ॥ २ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी दृढ़ नाग फांसमें बँधे हुएथे; परन्तु अपनी दृढ़ता और बलकी अधिकाईके अनुसार वह इस समय सचेत हुए ॥ ३ ॥ जाग कर श्रीरामचंद्रजी अपने छोटे भइया लक्ष्मणजीको दीन वदन किये शरीरसे रक्त वहाते पृथ्वीपर शयन करते हुए देखकर आतुर पुरुषकी समान रोदन करनें लगे ॥ ४ ॥ कि जब हमनें प्राणोंसेभी अधिक अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मणजीको युद्धमें पराजित और पृथ्वी पर पड़े हुए देखा, फिर भला अब हम सीताका उद्धार करके क्या करेंगे, और हमारे इस जीवन धारण करनेंकाभी क्या प्रयोजनहै? ॥ ५ ॥ हाय ! पृथ्वी पर ढूंड़नेंसे सीताकी समान अनेक । स्त्रियां पाई जासकतीहैं; परन्तु त्रिलोकीमें ढूंड़-नेंसेंभी लक्ष्मणकी समान संग्रामका मंत्री भाई हम नहीं पाय सकेंगे "मिलहिं न जगत् सहोदर भ्राता" ॥ ६ ॥ जो यह सुमित्राजीके आनंद बढ़ानें वाले लक्ष्मणजी मृतक होगयेहैं तब हम इसी मुहूर्त्तमें समस्त वानरोंके सन्मुखही प्राण त्याग करेंगे ॥ ७ ॥ क्या कष्टहै ! जबकि हम अयोध्या-जीमें लौटकर जांयगे तब माता, कौशल्या, कैकेयी, और पुत्रके दर्शनकी लालसा किये माता सुमित्राजीसे क्या कहेंगे ॥ ८ ॥ हादैव! जो हम अयोध्या पुरीको विना लक्ष्मणकेही चलेजांय; तौ कुररीकी समान कम्पा-यमान उन वत्स रहित सुमित्राजीको हम क्या कहकर समझावेंगे ॥ ९ ॥ हा ! हम जिनके साथ बनमें आयेथे, उन लक्ष्मणजीके विना अयोध्यामें लौट कर हम यशस्वी भरत और शत्रुघ्नसे क्याकहैंगे कुछ समझमें नहीं आता १० जब कि अपने पुत्र लक्ष्मणजीके लिये सुमित्राजी हमारी निन्दा करेंगी; त-ब वह वचन हमसे किस प्रकार सहे जांयगे;इसकारण यहीं पर जीवन त्या-ग देना हमारा कर्तव्य है ॥ ११ ॥ हा! हम बड़े ही दुष्कार्यके करनें वाले और अतिशय अनार्य हैं, इसलिये हमको धिक्कारहै; अहो! हमारेही कारण हमारे छोटे भाई लक्ष्मण बाणोंकी सेजपर लेटे हुए मृतककी समान पड़ेहैं ॥१२॥ भैया लक्ष्मण! जब हम कुछ शोक करते तब तुम सदाही हमको सम-झाते परन्तु आज हम इस प्रकारके पीड़ित होरहे हैं,तथापि तुम मृतककी स-मान हमसे कुछभी वार्तालाप नहीं करते और न हमें समझाते हो॥ १३॥हाय!

आज इस रणभूमिमें जिन करके असंख्य राक्षस वशको प्राप्त होकर पृथ्वीमें शयन कररहे हैं; वही शूर श्रेष्ठ लक्ष्मणजीभी बाणोंसे घायल होकर आज बाणोंकी सेज पर शयन कररहे हैं ॥ १४ ॥ हा लक्ष्मण! तुम रुधिरसे भीगे हुए होकर बाणोंकी सेजपर शयनकरके शर रूप प्राप्त अस्तगामी सूर्यकी समान शोभा धारण किये हुएहो ॥ १५ ॥ हाय! तुम्हारे सब मर्मस्थानों में बाणोंके लगनेंसे तुम कुछ कहनेंको समर्थ नहीं हो; परन्तु कुछ न कहनें परभी तुम्हारे नेत्रोंके लाले पनसे तुम्हारे मनकी समस्तही व्यथा प्रगट होरही है ॥ १६ ॥ हाय! जिस प्रकार हमारे वनके आनेंके समय तुम महाद्युतिमान हमारे पीछे२ आयेथे, वैसेही हमभी तुम्हारे पीछे२ आज यम लोकमें गमन करेंगे ॥ १७ ॥ हाय! जो सदाही अपने बन्धुजनोंके प्रति प्रीति दिखलातेथे और हमारीभी आज्ञामें सदाही रहतेथे; आज इस कुभागी मुझ दशरथके पुत्रकी कुनीतिसेही उन लक्ष्मणजीकी ऐसी दशा हुई ॥१८॥ हाय! यह वीर लक्ष्मणजी भी जब कि महा कोपके वश होजाते; तबभी कभी इन्होंनें हमको कोई कठोर वचन न सुनायाथा. ऐसातौ हमको स्मरणनहीं होता अर्थात् इन्होंनें कभी हमको कठोर वचन नहीं कहा॥१९॥ हाय! जो लक्ष्मण दोबांहों वाले होकरभी जबकि एक वेगमेही पांच २शत बाण छोडतेथे. तब अस्त्र चलानेमें यह सहस्र बाहों वाले कार्त्तवीर्यसेभी अधिकथे; कारणकि वह तौ हजार बाँहें होंनेपर एक कालमें पांचशत बाण चलाताथा; परन्तु यह दोबांहोंसेंही एक कालमें पांच शत बाण छोड़तेथे ॥ २० ॥ हा! जो वीर अपने अस्त्रोंके बलसे इन्द्रके वज्रादि अस्त्रोंको भी निवारणकर सकतेथे;और पहले जिनको बड़े मोलकी शैया पर शयन करनेंसेभी निद्रा न आतीथी; आज वही लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे मृतक होकर पृथ्वीपर शयन कररहे हैं ॥ २१ ॥ हाय! हमनें जो " विभीषणको लंकाका राजा बनावेंगे " ऐसी प्रतिज्ञाकीथी, और अब इस प्रतिज्ञाको पूरा न करसके बस इस समय वही मिथ्या प्रलाप हमारी आत्माको दग्ध किये डालताहै ॥ २२ ॥ हे सुग्रीव! जबकि हम प्राणत्याग करेंगे; तब रावण तुमको बलहीन समझकर अवश्य ही कोई न कोई उपद्रव करेगा, इस कारण तुम इसी मुहूर्त यहां परसे अपनें देश किष्किन्धाको चले जाओ ॥ २३ ॥ हे सुग्रीव! तुम अंगद व सब सैनाकोभी आगे२

करकै नील नल और भी सैनाके सब सामान सहित समुद्रके पार होकर शीघ्रता करकै यहांसे चले जाओ ॥ २४ ॥ हनुमाननें हमारे लिये रण भूमिमें औरसे न होनेके योग्य जो कठिन कर्म किये, और ऋक्षराज जाम्बवान व गोपुच्छके राजानें जो कठिन कर्म हमारे लिये किये तिस्से हम परम प्रसन्न हैं ॥ २५ ॥ और अंगदनेंभी बड़ेभारी कर्म किये, व मैन्द, द्विविद, केशरी और सम्पातिनाम वानरनें भी युद्धमें हमारे लिये बड़े घोर कर्म किये ॥ २६ ॥ गवय, गवाक्ष, शरभ, गज, व औरभी दूसरे वानरोंनें अपने प्राणतककी बाजी लगाकर युद्ध करनेंके लिये तैयार होकर संग्राम कियाहै ॥ २७ ॥ हे सुग्रीव! मनुष्य भाग्यको कभी उल्लंघन नहीं करसकता जो मित्रको मित्रके साथ और सुहृदको सुहृदके साथ करना उचित है; वह मेरे लिये ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव ! तुमने अधर्म और शक्तिके अनुसार सबही कुछ किया; हेवानर श्रेष्ठो! तुमनेभी हमारा मित्रकार्य भली भांतिसे किया ॥ २९ ॥ इसलिये अब हम तुमको आज्ञा देते हैं कि तुम्हारी सबकी जहां पर इच्छा हो वहांपर चले जाओ; जब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते रहे, तब उसकाल जितनें वानरोंनें उनका वह विलाप सुना; उन सबके नेत्रोंसेही आंसुओंकी धारा गिरनेलगीं ॥ ३० ॥ इतनेंमेंही विभीषणजी सब सैनाको धीरज बँधाते जहांके तहां सब को टिकाते गदा ग्रहणकर अति शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके पासआये ॥ ३१ ॥

तंदृष्ट्वात्वरितंयांतंनीलांजनचयोपमम् ॥
वानराद्रुद्रुवुःसर्वैमन्यमानास्तुरावणिम् ॥ ३२ ॥

परन्तु नील अंजनके ढेरकी समान उस वीर विभीषणको शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके समीप आते देखकर वानर उनको इन्द्रजीत समझकर चारों ओर भागनें लगे ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे भाषानुवादे कात्यायनकुमार पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृते एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशः सर्गः ॥

अथोवाचमहातेजाहरिराजोमहाबलः ॥

किमियंव्यथितासेनामूढवातेवनौर्जले ॥ १ ॥

इसके पीछे महा बलवान् महातेजवान् वानरराज सुग्रीवजी बोले कि जलके बीचमें प्रचंड पवनके लगनेंसे नौकाकी समान किस प्रकारसे यह वानरोंकी सैना ऐसी चलायमान हुई ॥ १ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुन वालिके पुत्र अंगद बोले क्या तुम महारथी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको नहीं देखते ! ॥ २ ॥ जो दशरथकुमार बड़े वीर होनेपरभी बाणजालसे विंधे हैं, इनके सब अंगोंसे रुधिर निकल रहा है, और बाणोंकी शय्यापर सोय रहे हैं जबकि यही ऐसी अवस्थामें पड़कर दुःख पाय रहे हैं तब सैनाके इस प्रकारसे चलायमान होनेंका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? तिसके पीछे वानरोंके स्वामी सुग्रीवजी अपने भतीजे अंगदसे बोले कि वत्स! वानरगण जो ऐसे चलायमान हुए हैं, इसका कोई बड़ा भारी कारण है ऐसा समझ पड़ताहै कि कोई भय आया होगा ॥ ३ ॥४॥ यह देखो वानर गण व्याकुल मुख किये समस्त अस्त्र शस्त्रोंको त्याग चारों ओरको भागे जाते हैं; और भयके मारे उन सबके नेत्र लाल और चंचल हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देखो ! यह सब ऐसे डरगये हैं कि भागनेंमें कुछभी लाज नहीं करते, कोई सन्मुख पड़कर गतिको रोकै तो उसको खैंचकर पीछे ढकेल देते; और कोई गिरजाय तो उसको लांघते हुए सब भागे जाते हैं; और कोई पीछेकी ओरको दृष्टि नहीं करता ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी ऐसा कहरहे थे कि इतनेमें वीर विभीषणजी गदा हाथमें लिये वहां आय पहुंचे और विजयसूचक आशीर्वाद देकै वचनोंसे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और वानरराज सुग्रीवजीको प्रणाम करते हुए ॥ ७ ॥ तब सुग्रीवजी विभीषणजीकोही वानरगणोंके भयका कारण जानकर समीपमें बैठे हुए ऋक्षराज जाम्बवान्से यह वचन बोले ॥ ८ ॥ यह विभीषण यहांपर आये हैं; इनकोही देख और रावणका पुत्र मेघनाद समझकर भयके मारे चकितनेत्र होकर वानरगण यह शंका करकै कि फिर वह भय आया भागे जाते हैं ॥ ९ ॥ इस कारण आप शीघ्रही त्रासित और चारों ओरको भागी जाती हुई इस वाहिनीको पुकारकर सावधान करो, कि यह इन्द्रजीत नहीं वरन विभीषणजी आये हैं ॥ १० ॥ तब ऋक्षराज जाम्बवा-

नजी सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर भागते हुए वानरोंको लौटनेको पुकारनें लगे ॥ ११ ॥ तिसके पीछे समस्त वानर गणभी जो कि भागे जाते थे ऋक्षराज जाम्ववान्जीके वचन सुन और बिभीषणको आयाहुआ देख भय त्यागकर लौट आये ॥ १२ ॥ तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषणजी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनोंहीके शरीर बाणोंसे छाये और रुधिरसे नहाये देख मनमें बहुतही दुःखी हुए ॥ १३ ॥ विभीषणजीनें अपनें हाथमें जल लेकर स्वयं महात्मा श्रीरामचंद्रजीके और लक्ष्मणजीके नेत्र धोये और फिर शोकित मनसे नेत्रोंमें आंसू भरा देख और विलाप करनें लगे ॥१४॥ हाय! यह दोनो सत्वसम्पन्न समरप्रिय भयंकर विक्रमकारी दोनों भाई कपटयुद्ध करनेंवाले निशाचरोंसे ऐसी दुरवस्थाको प्राप्त हुएहैं ॥ १५ ॥ हाय! रावणके पुत्र और हमारे भतीजे दुरात्मा मेघनादकी राक्षसी कुटिल बुद्धिसे यह सरल बुद्धिवाले दोनों राजकुमार धोखा खाय गये हैं ॥ १६ ॥ यह बाणोंसे युक्त और शरीरमें रुधिर निकलनेंके कारण पृथ्वीमें पड़े रहनेंसे कांटोंसे युक्त सैंजनेके वृक्षकी समान जान पड़ते हैं ॥ १७ ॥ हाय! जिनके वीर्यके ऊपर भरोसा करकेही हमनें लंकाकी राज्यगद्दीपर बैठनेंकी अभिलाषा की थी, इस समय वही पुरुषश्रेष्ठ दोनों राजकुमार अपनी देहका नाश करनेके लियेही पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ १८ ॥ हाय! इनकी ऐसी अवस्था होनेपर हम तौ जीते हुए मर गये; और मनमें जो राज्यप्राप्त करनेंकी बलवती आशा हुई थी, वहभी नाशको प्राप्त हुई, परन्तु शत्रु रावणकी प्रतिज्ञाभी पूरी हुई और इसके मनोरथभी पूरे हुए ॥ १९ ॥ जब कि विभीषणजी इस प्रकारसे विलाप कर रहे थे, तब बलवान सत्वसंयुक्त वानरराज सुग्रीवजी उनको हृदयसे लगाय भलीभांति भेंटकर बोले ॥ २० ॥ हेधर्मज्ञ! आप निश्चय जानलें कि रावण अथवा इन्द्रजीतका मनोरथ किसी प्रकारसे पूर्ण नहीं होगा। और निश्चयही लंका पुरीका राज्य आपको मिलैगा, इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ २१ ॥ यह दोनों भ्राता गरुड़जीके उपासकहैं, बस गरुड़जीके आतेही राम लक्ष्मण दोनों भाई संज्ञा प्राप्त करेंगे, और इनका मोह दूर होजायगा, और फिर यह बहुतही शीघ्र संग्राम भूमिमें रावणको वंश सहित विध्वंस करेंगे ॥ २२ ॥ सुग्री-

वजी राक्षस श्रेष्ठ विभीषणजीको इस प्रकारसे समझा बुझाकर निकट बैठे हुए अपने श्वशुर सुषेण नामक यूथपसे बोले ॥ २३ ॥ कि तुम इन दोनों भ्राता राम और लक्ष्मण व और दूसरे शूर वानर वीरोंको किष्किन्धा पुरीमें लेजाओ, और जबतक इन शत्रुओंके मारनें वालोंको चैतन्यता न प्राप्त होवे, तब तक उसी स्थानमें इनकी रक्षा करते रहना ॥ २४ ॥ और इस ओर हमभी, इस रावणको पुत्र पौत्र और बान्धवोंके साथ संहार करके, राव[illegible] हरी हुई जानकीजीका उद्धार करके लेआवेंगे, कि जैसे नष्ट हुई राज्य लक्ष्मी[illegible] चन्द्रजीनें फिर प्राप्त कियाथा ॥ २५ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर सुषेण [illegible] कि ॥–"पहले हमनें देवता व असुरोंका बड़ा भारी संग्राम देखाथा" ॥ २६ ॥ [illegible] संग्राममें बाण चलानेंमें अति चतुर और शस्त्रास्त्रके कर्ममें अति कुशल राक्षसोंनें जब रण करनेंमें [illegible] र देवता लोगोंको बाणाके समूहसे वारंवार ढक लियाथा ॥ २७ ॥ तब दे[illegible]वता गुरु बृहस्पतिजी उन देवताओंको पीड़ित चेतना रहित और विनाशप्रह[illegible]को प्राप्त देखकर, मंत्र विद्याके प्रभावसे व यथायोग्य औषधियोंसे उनकी ओ[illegible]चिकि-त्सा करते रहेकि जिस्से वह समस्त देवता फिर जीवित होगये ॥ २८ ॥ हेराजन्! तिन औषधियोंको लानेंके अर्थ सम्पाति पनसादि वानर व[illegible]न[illegible]हुतही शीघ्र क्षार समुद्रके निकट जांय ॥ २९ ॥ कारणकि यह वानर उनके [illegible] दो पहाड़ी बूंटियोंको भली भांति जानतेहैं उन दोनों बूटियोंमें एकका [illegible] नाम (संजीवनी) और एकका नाम (विशल्यकरणी) अर्थात् घावकी पीड़ा[illegible]को दूर करनें वालीहै ॥ ३० ॥ जिस स्थान पर देवता लोगोंनें समुद्रको म[illegible] कियाथा वहांपर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वतहैं उन्हीं पर्वत[illegible] यह दोनों बूटियेंहैं ॥ ३१ ॥ इन दोनों बूटियोंको देवताओंनें क्षीर समुद्र[illegible] बीचमें स्थापित कर दियाहै; इस कारण, हेराजन्! और किसी वानरको वहाँ जानेंकी अवश्यकता नहीं; यह पवनके पुत्र वेगवान हनुमानही वहाँ पर जांय; सुषेण यह वचन कहही रहेथेकि इतनेमें दामिनीमाला शोभि[illegible] मेघ, और प्रबल आंधी उठकर समुद्रके जल और पर्वतोंको कम्पायमान करनें लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ प्रबल पंखोंकी पवनके लगनेंसे द्वीपोंमें लगे हुए जो बड़े २ वृक्षथे उनकी शाखायें टूट गईं, और वह वृक्ष सब महासमुद्रके जलमें उड़कर जायगिरे ॥ ३४ ॥ देखते २ समुद्रके निवासी बड़े शरीर

वाले सर्प गण भयंकराकारसे व्याकुल होंने लगे, । और जल जन्तु गण बड़ी शीघ्रतासे लवण समुद्रके जलमें प्रवेश कर गये ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे समस्त वानर लोगोंनें एक मुहूर्त्त भरके बीचमें प्रदीप्त अग्निकी समान प्रकाशित विनताके पुत्र गरुड़जीको आते हुए देखा ॥ ३६ ॥ उन गरुड़जीके आतेही, जिन्होंने बाण रूपसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको बांध रक्खाथा, और जो अतिशय बलवान्थे, ऐसे वह समस्त नाग डरके मारे अतिशीघ्रतासे भाग गये ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे विनता नन्दन गरुड़जी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको प्रणाम करके उनके अंगको अपने हाथोंसे स्पर्श करते हुए इन दोनों भ्राता ओंको चंद्रमाकी समान द्युति वाले मुख मंडल अपने हाथसे सुहरानें लगे ॥ ३८ ॥ गरुड़जीके कर स्पर्शसे इन दोनों भ्राता ओंके शरीरमें जितने घावथे वह सब भर गये, और वह दोनों जन पहलेहीकी समान चिकना शरीर और प्रथम हीकी समान शोभा धारण करते हुए ॥ ३९ ॥ इनका तेज, पराक्रम, शरीरका बल, महा गुण उत्साह, दर्शन शक्ति, बुद्धि और स्मरण शक्ति यह सब बातें पहलेसे दुगनी होगई ॥ ४० ॥ तिस समय महा तेजस्वी गरुडजीनें इन्द्र तुल्य भाइयोंको उठाकर अति हर्षसे अपने हृदयसे लगा लिया; तब श्रीरामचंद्रजी हर्षित अंतःकरण युक्त गरुड़जीसे बोले ॥ ४१ ॥ कि तुम्हारेही प्रसादसे हम इन्द्रजित कृत घोर विपदसे शीघ्र छूट गये, और अब हमारे शरीरोंमें भी प्रथम हीकी समान बल आगयाहै ॥ ४२ ॥ अधिक क्याकहैं पितामह अज और पिता दशरथजीको देख हमें जिस प्रकारका आनंद होता, आपका दर्शन करनेंसे भी हमारे हृदयनें वैसीही प्रसन्नता प्राप्तकीहै॥४३॥ आपनें स्वर्गीय हार और दिव्य अनुलेपन धारण कियाहै; दिव्य अलंकारसे अलंकृत होकर आपने विमल वस्त्र युगल धारण कियेहैं; इस कारण पत्यही सत्य बताइये कि आपकोनहैं? ॥ ४४ ॥ तब ऐसा सुनकर महा तेजस्वी विनताके पुत्र महाबल पक्षिराज गरुड़जी आनंदसे उत्फुल्ल नेत्रहो प्रीति सहित श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ४५ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी! हम आपके प्राणके समान प्रिय बाहर घूमनें वाले सखाहैं; हमारा नाम गरुड़है; आपकी सहायता करनेंके अर्थही यहां पर आयेहैं ॥ ४६ ॥ कारणकि

महा पराक्रमकारी दैत्य महाबलवान वानर गण और गन्धर्वादिकोंके सहित देवता लोग या स्वयं इन्द्रभी ॥ ४७ ॥ मायाके बलसे क्रूर कर्म कारी मेघनादका रचा हुआ यह अति दारुण नागरूपी बाण बन्धन नहीं छुड़ा सकतेथे, इसी कारण आपको इस शंकटसे छुटानेंके लिये हम आये॥४८॥ तीक्ष्ण दन्त युक्त महा विषधर यह कद्रूके पुत्र नाग गण राक्षसी मायाके प्रभावसेहो बाण रूप होकर आपका आश्रय किये हुएथे॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ! सत्य पराक्रम कारी श्रीरामचंद्रजी! समरमें रिपुघाती इन भ्राता लक्ष्मणजीके सहित आप अपनेको बड़ाही भाग्यवान समझें; कारणकि भाग्यहीसे आप इस घोर बन्धनसे मुक्त हुएहैं॥ ५० ॥ आपकी यह अत्यन्त शोचनीय दशा सुनकर हम बड़ीही शीघ्रतासे इस स्थानमें आये हैं, हमारा यह आना केवल आपसे स्नेह करनेंहीके कारण हुआ ॥ ५१ ॥ इस समय अनायासमें यह कार्य हुआ कि हमनें आपको इस महा घोर सर्प रूपी बाण बन्धनसे छुटा दिया, अब आगेको आप सदाही सावधान रहाकरैं ॥ ५२ ॥ आपकी समान शुद्ध स्वभाव वाले शूर लोग रणभूमिमें सदा सरलतासेही युद्ध किया करतेहैं; परन्तु राक्षस गण सदाही संग्राममें छलते युद्ध किया करतेहैं॥ ५३ ॥ इस कारण आप रण भूमिमें इन राक्षस लोगोंका किसी प्रकारसे भी विश्वास न कीजिये, कारण कि यह लोग सदाहीसे क्रूर बुद्धि वाले होतेहैं; अबतो आप एक इन्द्रजीत हीके दृष्टान्तसे जान गये कि राक्षस लोग कैसे कुटिल होतेहैं ॥ ५४ ॥ महा बलवान विनताके पुत्र गरुड़जी यह कहकर दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीको भेंट स्नेह सहित यह वचन बोले ॥ ५५ ॥ हे मित्र! श्रीरामचंद्रजी हे धर्मज्ञ! शत्रुके प्रतिभी आप बहुतही अनुग्रह किया करतेहैं। इस समय हम आपकी आज्ञा लेकर अपने स्थानमें जानेंकी इच्छा करतेहैं॥५६॥ हे श्रीरामचंद्रजी हमारे प्रति तुम्हारा सखा संबन्ध किस प्रकारसे हुआ इसके जाननेंको आप कौतूहल प्रकाश नकीजिये, युद्धमें विजय प्राप्त करके जिस समय आप अपने देशको लौटेंगे उसी समय यह सम्बन्ध आपको ज्ञात हो जायगा ॥ ५७ ॥ हे वीर श्रीरामचंद्रजी! आपके बाणोंकी तरंगोंके वेगसे लंकापुरी विध्वंस होकर केवल बालक और बूढे लोगोंकी रहनेंकी भूमि हो जायगी हम निश्चय कहते हैं कि आप बहुत

ही शीघ्र संग्राममें रावणका संहार करके सीताजीको प्राप्त कर सकेंगे ॥ ५८ ॥ शीघ्र विक्रम वीर्यवान सुवर्ण (गरुड) जी श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंको रोगरहित करते यह कहकर वानरोंके बीचमें बैठे श्रीरामचंद्रजीकी ॥ ५९ ॥ प्रदक्षिणा कर पवनकी समान वेग धारण कर आकाश मार्गको गरुडजी चलेगये ॥ ६० ॥ तिसके उपरान्त दोनो रघुवीरोंको रोग रहित देखकर वानर यूथपगण मनमे आनंद मनाय सिंहनादकर अपनी पूंछको कम्पायमान करने लगे ॥ ६१ ॥ इसके पीछे भेरियोंका शब्द उठा मृदंगोंकी नाद होनें लगी इतने शंख बजे कि उनकी ध्वनि आकाशमें गुंजारती रही और सब वानर लोग हर्षित होकर प्रथमहीकी समान क्रीडा करने लगे ॥ ६२ ॥ व और भी शत सहस्र पर्वतोंसे युद्ध करने वाले विकराल वानरगण विविध भांतिके वृक्षोंको उखाडते फांदते कूदते दलके दल खडेहो ॥ ६३ ॥ राक्षसोंको त्रासित करते हुए बड़ाभारी नादकरने लगे और वह सब वानर युद्धकी कामनासे आगे बढकर लंकापुरीके द्वारपर जाय पहुंचे ॥ ६४ ॥

तेषांतुभीमस्तुमुलोनिनादोबभूवशाखामृगयूथपानाम् ॥ क्षयेनिदाघस्ययथावनानांनादः सुभीमोनदतांनिशीथे ॥ ६५ ॥

ग्रीष्म कालके अंत समय रात्रिके समय शब्दायमान घनघटा समूहके भयंकर गर्जनकी समान उन वानर यूथनाथोंको भयंकर कठोर सिंहनाद श्रवण गोचर होने लगा ॥ ६५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशः सर्गः ॥

तेषांतुतुमुलंशब्दंवानराणांमहौजसाम् ॥ नर्दतांराक्षसैःसार्धंतदाशुश्रावरावणः ॥ १ ॥

इस ओर विभीषण इत्यादि राक्षस गणोंके सहित शब्दायमान उन महातेजस्वी वानर वृन्दोंका तुमुल कठोर सिंहनाद राक्षसोंके स्वामी रावणने सुना ॥ १ ॥ वह रावण स्पष्ट गंभीर और कठोर सिंहनाद वार २ श्रव-

ण करके अपने मंत्रियोंसे जोकि वहां बैठेथे यह कहने लगा ॥ २ ॥ जब कि हर्षितचित्त हुए उन वानरोंका यह घोर सिंहनाद सुनाई आता है, जब कि बादलकी समान वह वानर गंभीर गर्जन कर रहे हैं ॥ ३ ॥ तब इसमे कोईभी सन्देह नहीं है कि उनको कोई बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुईहै यह देखो उनके बड़े भारी शब्दसे क्षार समुद्रभी खल बलाय रहाहै ॥ ४ ॥ वह दोनों भाई राम और लक्ष्मण तीक्ष्ण बाणोंसे बंध गयेथे; परन्तु इस समय उन वानर वृन्दोंका यह बड़ा भारी शब्द उठनेंसे हमको अत्यन्तही शंका होतीहै ॥ ५ ॥ राक्षसोंका स्वामी रावण निज मंत्रियोंसे ऐसा कह अपने निकट बैठे हुए राक्षसोंसे बोला ॥ ६ ॥ कि इन वनवासी वानर लोगोंका ऐसे शोकके समय एका एकी आनंदित होनेंका कारण तुम लोग जानकर शीघ्र आओ ॥ ७ ॥ राक्षसगण इस प्रकारसे रावणकी आज्ञा पाय सावधानहो एक धवरहरे पर जोकि अति ऊंचाथा चढ़े और तब उन्होंने देखा कि महात्मा सुग्रीवजी उस वानर वाहिनीकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी यह दोनों भ्राता भी नाग फांससे छुटकर उठ बैठेहैं, यह देखकर यह राक्षस अत्यन्तही विषादित हुए ॥ ९ ॥ उस समय यह राक्षस त्रासित मनसे कोटकी अति ऊंची भीतसे नीचे उतरनें लगे, उनके मुखकी कान्ति मलीन होगई और वह सब अत्यन्त दीन भावसे रावणके निकट आये ॥ १० ॥ उन दीन मुख वचन बोलनेंमें चतुर राक्षसोंनें रावणके अप्रिय वचन यथार्थ २ निवेदन किये ॥ ११ ॥ कि जो राम लक्ष्मण संग्राम भूमिमें इन्द्रजीतके द्वारा बाणोंसे विंध गयेथे और तिसके बाद जिनकी दोनो भुजायें कुछ भी हिलडुल नहीं सकती थीं ॥ १२ ॥ इस समय हमनें देखाकि गजेन्द्र विक्रम कारी वह दोनों भ्राता दो गजोंकी समान नागफांशको तोडकर बाणबन्धनसे छूट रण भूमिमें विराजमान होरहेहैं ॥ १३ ॥ महाबलवान राक्षसोंका स्वामी राक्षसोंके मुखसे यह समाचार सुनकर चिन्ताके वशमें हुआ, और शोचके मारे उस समय उसका मुखमंडलभी प्रभाहीन होगया ॥ १४ ॥ तब रावण कुछ एक रुष्ट होकर कहनें लगा कि मेघनादनें संग्राम स्थलमें भलीभांति मान मर्दनकर अति घोर वर प्राप्त किये हुए विषधर सर्पोंकी समान सफल और सूर्यवत्प्रकाशित बाणोंसे जिनको बंधन कियाथा ॥ १५ ॥

जबकि वह शत्रु ऐसे बाण बन्धनसेभी छुटगये तब हमको ऐसा नहीं जान पड़ता कि हम इस राक्षसोंकी सैनासे विजयको प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥ आश्चर्यहै कि जिन सब अस्त्रोंने संग्राम भूमिमें वारंवार शत्रुगणोंको प्राण हरण कियेथे, आज वही अग्निकी समान तेजस्वी अस्त्र हमारे कुभाग्यहीसे निष्फल होगये ॥ १७ ॥ यह कहकर रावण अत्यन्त क्रोधमें भरकर सर्पकी समान लंबे २ श्वासलेने लगा; और कुछ देर पीछे रावण राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए धूम्राक्षसे कहता हुआ ॥ १८ ॥ कि हे भयंकर विक्रमकारी ! वानर गणोंके और रामचंद्रका संहार करनेंके लिये तुम बड़ीभारी सैनाको संग लेकर शीघ्र युद्ध करनेंको जाओ ॥ १९ ॥ राक्षस धूम्राक्ष, बुद्धिमान राक्षसोंके स्वामी रावणकी ऐसी आज्ञा पाय उसकी प्रदक्षिणा करता हुआ अतिशीघ्र राजभवनसे बाहर निकला ॥ २० ॥ राक्षस धूम्राक्षने राजद्वारके बाहर आयकर सैनाध्यक्षसे कहा कि,– हम युद्धमें जाना चाहतेहैं, इस कारण कुछभी विलंब न लगायकर झटपट सैनाको सजाओ ॥ २१ ॥ धूम्राक्षके वचन सुन सैनाध्यक्षनें रावणकी आज्ञानुसार समस्त सैनाको बहुतही शीघ्र सजाया ॥ २२ ॥ घोररूपी राक्षसगण सिंहनाद करते हुए हर्षित मनसे धूम्राक्षके चारों ओर खड़े होगये, वह समस्त राक्षस अतिशय बलवानथे उनकी कमरमें घंटे लगे हुए बज रहेथे ॥ २३॥ विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर, शूल, मुद्गर, गदा, पटा, दंड, मूसल आदि धारण किये ॥ २४ ॥ बड़े २ मुद्गर, धनवासी, भाले, फांसी, फरसे आदि अस्त्र शस्त्र लिये समस्त राक्षसगण मेघकी समान गर्जन करते हुए चले ॥ २५ ॥ उन राक्षसोंमें कोई २ कवच धारण करकै ध्वजा पताकासे शोभायमान विचित्र चित्रित रथोंमें सवार हुए और कोई २ सुवर्ण जाल मंडित विविध भांतिके मुखवाले गधोंपर चढ़े ॥२६॥ और कोई २ राक्षस अति शीघ्रतासे चलनें वाले घोडों पर चढ़ चले और कोई २ मदान्ध हाथियोंकी पीठपर सवार हुए; इस प्रकारसे वह राक्षस व्याघ्र लोग अजेय व्याघ्रकी समान गमन करनें लगे ॥ २७ ॥ महावीर धूम्राक्ष कनकभूषित भेडियां सिंह और व्याघ्र मुखवाले गधे जुते हुए रथमें बैठकर रणमें जानें लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार महावीर धूम्राक्ष बड़ीभारी राक्षसोंकी सैनाके

जहां पर हँसते हुए मुखसे हनुमानजी डट रहेथे लंकाके उस पश्चिम

द्वारपर आया ॥ २९ ॥ कठोर शब्द करनें वाले गधे जुते, श्रेष्ठ रथपर सवार हो, महा घोर, भयंकर विक्रमकारी राक्षसको जाताहुआ देख ॥ ३० ॥ आकाशमें प्राप्त हुए क्रूर शकुन विविध अमंगलकारी चिह्नोंसे उस राक्षस को निवारण करते हुए कि पहले तो धूम्राक्षके रथकी छत्री पर एक बड़ा भयंकर गिद्ध आकाशसे गिरा ॥ ३१ ॥ मांसके खानेंवाले, पक्षिगण गुँथी हुई मालाकी समान लंगार (श्रेणी) से उसके रथकी ध्वजापर गिरनें लगे और रुधिरमें सना हुआ अत्यंत श्वेत कबंध धूम्राक्षके निकट पृथ्वी पर गिरा ॥ ३२ ॥ अत्यन्त भयंकर शब्द करता हुआ कबंध धूम्राक्षके सन्मुख गिरा । बादलोंसे रुधिरकी वर्षा होनें लगी, और पृथ्वी कंपायमान हुई ॥ ३३ ॥ और वज्रकी समान शब्द करता हुआ पवन चलनें लगा, घोर अंधकारसे ढक जानेंके कारण दशोंदिशा अप्रकाशित होगई ॥ ३४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष राक्षस लोगोंके यह अमंगल भयजनक घोर उत्पात देखकर हृदयमें अत्यन्त भय करता हुआ;और उसके साथ चलनें वाली राक्षसोंकी सैनाभी यह अचानक अमंगल शकुन देखकर मूर्च्छित होगई ॥ ३५ ॥

ततःसुभीमोबहुभिर्निशाचरैर्वृतोभिनिष्क्रम्यरणोत्सुकोबली ॥ ददर्शतांराघवबाहुपालितांमहौघकल्पांबहुवानरींचमूम् ॥ ३६ ॥

तिसके पीछे रण करनेंकी इच्छा किये महाबलवान भयंकररूप राक्षस धूम्राक्ष असंख्य निशाचर गणोंके सहित, लंकापुरीसे बाहर आय श्रीरामचंद्रजीकी बाहुसे रक्षित प्रलयके समुद्रकी समान उन वानरोंकी सैनाको देखता हुआ कि जिसका कुछ ओर छोर नथा ॥ ३६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० लं० एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशः सर्गः ॥

धूम्राक्षंप्रेक्ष्यनिर्यातंराक्षसंभीमविक्रमम् ॥ विनेदुर्वानराःसर्वेप्रहृष्टायुद्धकांक्षिणः ॥ १ ॥

युद्धकी अभिलाषा किये वानरगण भयंकर विक्रमकारी राक्षस धूम्रा-

क्षको युद्ध करनेके लिये आये हुए देखकर हर्षित मनसे सिंहनाद करनें लगे ॥ १ ॥ तिसके पीछे धीरे २ उन वानर और राक्षसोंका घोर कठोर युद्ध प्रारंभ हुआ उस समय वह बड़े २ वृक्ष, शूल, मुद्गर चलाय २ कर परस्पर परस्परके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ २ ॥ निशाचरोंनें वानर लोगोंको सब भांतिसे घेर लिया, और, वानर गणभी वृक्षोंको चलाय २ राक्षसोंको पृथ्वीपर शयन करानें लगे ॥ ३ ॥ राक्षसभी क्रोधमें भरकर तीखे बाण समूह और सीधे चलनें वाले घोर रूप कंकपत्रयुक्त बाणोंसे वानरोंका नाश करनें लगे ॥ ४ ॥ उस समय महाबलवान वानरगण भयंकर गदा, शूल, पटा, मुद्गर घोर परिघ और चित्र विचित्र शूलोंकेद्वारा॥५॥ राक्षसोंसे विदारितहो क्रोधमें भरकर और उत्साहसे भरपूरहो भयरहितकी समान युद्धके कर्म करनें लगे ॥ ६ ॥ वानरोंके शरीर बाणोंसे घायल होनें लगे; उनकी देहमें स्थान २ परघाव होगये, वह वानर यूथप राक्षसोंके निकटसे अपनी पराजय सहन न करकै बड़े २ वृक्षोंको ग्रहणकर उनकी ओर दौड़े ॥ ७ ॥ भयंकर वेगवान वानर लोग सिंहनाद करके वीर राक्षसोंका संहार करनें लगे ; चोट चलानेंके समय सबही एक दूसरेको अपना २ नाम बतानें लगे ॥ ८ ॥ उस कालमें अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्ष और विविध भांतिकी शिलाओंके चलाये जानेंसे वह वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध अद्भुत जान पड़नें लगा ॥ ९ ॥ उस समय कितनेंही रुधिर पान करनें वाले निशाचरगण जीतिजानेंसे प्रसन्न वानरोंसे मारखाय रुधिर डालनें लगे ॥ १० ॥ इसी प्रकारसे किसी २ की देह छिन्न होगई , कोई २ वृक्षोंकी चोटसे मरगये, कोई २ शिलाओंकी चोटसे पिसकर चूर्णकी समान होगये, और कोई २ तीक्ष्ण दांतोंके ही प्रहारसे चीर फाड़कर काटे गये ॥ ११ ॥ कोई २ ध्वजा ओंसे मर्ल डाले गये कोई खड्गोंसे मारे गये और छूटे हुए रथोंसेभी विध्वंसित होकर कितनेही राक्षस अत्यन्त व्यथित हुए ॥ १२ ॥ पर्वतोंके शिखरकी समान पर्वताकार हाथी वानर गण और सवारोंके सहित मरे हुए घोड़ोंसे वह समर भूमि पूर्ण होगई ॥ १३ ॥ भयंकर विक्रमकारी वेगवान वानरगण वारंवार छलांग मारते हुए अपने नखोंसे निशाचरोंके मुखोंको चीरनें फाड़नें लगे ॥ १४ ॥ तब राक्षस इस अवस्थाको पाय अत्यन्त विषादित

हुए, उनके बाल खुलगये, और वह बराबर वहते हुए रुधिर गन्धसे मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १५ ॥ इसी समयमें बहुत सारे राक्षस गण क्रोधसे प्रदीप्त हो वेगवान वानरोंको, वज्रकी समान लात मारनेंके लिये उनकी ओर दौड़े ॥ १६ ॥ परन्तु वेगवान वानरगण;—घूंसा, लात, दांत, और वृक्षोंसे उनको इस प्रकारकि मार देनें लगे, कि वह राक्षस उनके सामने स्थिर न रहकर भांग निकले ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसश्रेष्ठ धूम्राक्ष अपनी सैनाको चलायमान देखकर क्रोधमें भर वानरोंके ऊपर प्रहार करनें लगा ॥ १८ ॥ तब कोई २ वानर तौ बाण लगनेंसे मर्दित होगये और उनके शरीरसे रुधिर वहनें लगा, और अनेक वानर मुद्गरोंसे घायल होकर पृथ्वीपर गिरते हुए ॥ १९ ॥ कोई २ वानर परिघसे, और कोई पटेसे कुचल डाले गये, और कोई धनवासी लगनेंके कारण घायल होनेंसे विह्वलहो जीव गँवाय संग्राम भूमिमें गिरपड़े ॥ २० ॥ और बहुतसे वानर क्रोधित राक्षसों करकै रण भूमिमें मारे जायकर रुधिर वहती हुई देहसे पृथ्वीपर गिर पड़े और कोई २ लोहू लुहान होकर भागनें लगे ॥ २१ ॥ इस दारुण संग्राममें राक्षस गण क्रोधके मारे यमराजकी समान मूर्त्ति धारणकर वानरोंके हृदय चीरनें फाड़नें लगे, कि जिस्से कोई २ वानर एक ओर को गिर पड़े; और कोई २ त्रिशूलसे घायल हुए और बहुतसे अस्त्रके प्रभावसे भाग निकले ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका भयंकर युद्ध होने लगा, दोनो ओरसे अनेक अस्त्र शस्त्र चले, और शिला समेत वृक्षोंकी वृष्टि होनें लगी ॥ २३ ॥ धीरे २ रणभूमि गीत विद्याका रूप धारण करती हुई, राक्षसोंके धनुषोंके रोदोंका शब्द वीनाके तारका कार्य करनें लगा और वीरोंको गिरनेंके समय जो हिचकियें आनें लगीं, वही ताल गिनीगई, और हाथियोंका गर्जनाही उस समय गीतकी समान जान पड़ताथा, इस प्रकार यह द्वन्द्वयुद्ध गन्धर्व विद्याकी तुल्य शोभाको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ राक्षस धूम्राक्ष इस प्रकारसे संग्राम भूमिमें धनुष धार बाण वर्षाय सर्व दिशा छाय हँसते २ सब वानरोंको मार भगाय देता हुआ॥२५॥ धूम्राक्षके हाथसे वानरोंकी सैनाको अत्यन्त पीड़ित देखकर हनुमानजी क्रोधके मारे घुमाते बड़ी भारी शिला ग्रहण करकै उस्से युद्ध करनेंके आगे बढ़े ॥ २६ ॥ पिता पवनकी तुल्य पराक्रमं शाली हनुमानजी

क्रोधके मारे अरुण नयनहो उस बडी भारी शिलाको धूम्राक्षके रथपर अति जोरसे मारते हुए ॥ २७ ॥ राक्षस सैनापति धूम्राक्ष, महावेगसे इस शिलाको अपने ऊपर आती देख बडी शीघ्रताके साथ रथसे छलांगमार गदा ग्रहण कर पृथ्वी पर खड़ा होगया ॥ २८ ॥ हनुमानजीकी चलाई गदाके प्रहारसे केवलधूम्राक्षका रथही चूर्ण नहीं हुआ, वरन, चक्र, कूबर, ध्वजा और धनुष बाण तक नष्ट करके वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी धूम्राक्षके रथको छोड़ कर शाखा और पत्तोंके सहित वृक्षोंसे राक्षसोंका विध्वंश करनें और उनको भगानें लगे ॥ ३० ॥ तब वृक्षोंके द्वारा पीड़ित होनेंसे राक्षसोंके शिर फूट गये और इस कारण रुधिरकी धारा निकलनेंसे वह पृथ्वी पर गिरनें लगे कुछेक राक्षस मार डालेगये और कितनोंनें अपने प्राणोंकी आशा छोड़दी ॥ ३१ ॥ पवन-कुमार हनुमानजी इस प्रकारसे राक्षसोंकी सैनाको तितर वितर कर भगाय एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके धूम्राक्षके सामनें दौड़े ॥ ३२ ॥ वीर्यवान राक्षस धूम्राक्षभी हनुमानजीको अपनी ओर आता हुआ देख सिंहनादकर एक गदा उठाय उनके सन्मुख हुआ ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे धूम्राक्षनें क्रोधमे भरकर वह अपनी बहुत कांटोंसे युक्त गदा क्रोधित हनुमानजीके शिरपर मारी ॥ ३४ ॥ परन्तु पवनकी समान बलवान हनुमानजी उस भयंकर वेग वाली गदाका प्रहार अपनें शिरमें लगनेंसेभी उस प्रहारको कुछभी नहीं समझते हुए कि जानें कहां लगा ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे अञ्जनी, हृदय नंदन पवन कुमार हनुमानजीनें अपनी वह पहली ग्रहणकी हुई बड़ी भारी शिला धूम्राक्षके ऊपर चलाई, कि जिस गिरि शृङ्गके प्रहा-रसे उस राक्षसके अंग फटकर फैलगये ॥३६॥ पर्वत जिस प्रकार फटकर गिर जाताहै, वैसेही धूम्राक्षके अंग फट जानेंके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गये; और मरनेंसे बचे बचाये राक्षस गण सैना-पति धूम्राक्षको मरा हुआ देखकर अत्यन्तही त्रासित हुए; और वानर गणोंकी मार खाय मरनेके निकट पहुंच भयके मारे शीघ्रही लंका पुरीको भागगये ॥ ३७ ॥

सतुपवनसुतोनिहत्यशत्रून्क्षतजवहाःसरितश्चसं

विकीर्य ॥ रिपुवधजनितश्रमोमहात्मामुदमगमत्कपिभिःसुपूज्यमानः ॥ ३८ ॥

महाबलवान पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे शत्रुओंका संहार करते हुए रणभूमिमें रुधिर की नदी बहाय शत्रुके मारनेके श्रमसे अत्यन्त थकित होंने परभी वानर गणों करके पूजितहो अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त करते हुए ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये लंकाकांडे द्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥

धूम्राक्षंनिहतंश्रुत्वारावणोराक्षसेश्वरः ॥ क्रोधेनमहताविष्टेनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥ १ ॥

राक्षसोंका स्वामी रावण धूम्राक्षका संग्राममें मरना सुन अत्यन्त क्रोध युक्तहो सर्पकी समान लंबे २ श्वास त्याग करनें लगा ॥ १ ॥ तिसके पीछे क्रोधसे अधीरहो लंबे २ और गरम २ श्वास छोड़ता हुआ रावण क्रूर स्वभावी महाबलवान वज्रदंष्ट्र नामक राक्षससे बोला ॥ २ ॥ हेवीर! तुम राक्षसोंकी सैनाके साथ रणभूमिमें जायकर दशरथ कुमार रामचंद्र और वानर गणोंके साथ सुग्रीवका नाश कर आओ ॥ ३ ॥ रावणकी ऐसी आज्ञापाय अति शीघ्रतासे मायावी राक्षसोंका ईश्वर वज्रदंष्ट्र बहुतसे राक्षसोंको संग लेकर चला ॥ ४ ॥ और उसके साथमें, हाथी, घोड़े, गधे ऊंट, इत्यादि जीवगणभी चलनें लगे, और चित्र विचित्र ध्वजा पताकाओंसे यह सब विशेष सुशोभितथे ॥ ५ ॥ वीर वज्रदंष्ट्र विचित्र बाजू बांधे शोभायमान मुकुट शिर पर धारे युद्ध करनेंको चला, उसका शरीर बख्तरसे ढका हुआथा, और हाथोंमें धनुष बाणथा ॥ ६ ॥ उसका रथ ध्वजा पताकाओंके लगनेसे शोभायमानथा, तपाया हुआ सुवर्णभी उसमें बहुत स्थानों पर लगा हुआथा; ऐसे रथकी प्रदक्षिणा करके वज्रदंष्ट्र उसपर सवार हुआ ॥ ७ ॥ तेगा, तोमर, मूसल, तीक्ष्ण फरसें, भिन्डिपाल, धनुष, शक्तिपटा ॥ ८ ॥ खड्ग, चक्र, गदा; इत्यादि और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये पैदल सैना वज्रदंष्ट्र नामक राक्षसके साथ २ चली ॥ ९ ॥

वह राक्षस श्रेष्ठ सबही उजले और दीप्त चित्रित वस्त्र पहर रहेथे, उस सैनाके पीछे २ मदमाते हाथी, गमन करनेंके समय चलते हुए पर्वतोंकी समान ज्ञात होतेथे ॥ १० ॥ वह समस्त हाथी युद्ध करनेंमें बड़े कुशलथे, उन पर भाला अंकुशादि धारण किये वीर लोग चढ़ेथे व औरभी महाबली सर्व लक्षण सम्पन्न वीर गण उन पर चढ रहेथे ॥ ११ ॥ उस समय वह चलती हुई राक्षस सैना वर्षा समयकी श्रेणीसे शोभित गर्जती हुई मेघ मालाकी समान शोभायमान होनें लगी ॥ १२ ॥ उस समय वह सैना निकलकर वहां पर जहां कि यूथपति अंगदजी लंकाके दक्षिण द्वारपर टिके हुएथे राक्षसोंकी सैना जैसेही निकलीकि उसके अशुभकी सूचना करनें वाले अमंगल दृष्टि आनें लगे ॥ १३ ॥ आकाशसे विनाही मेघके तीव्र बिजलीके सहित उल्का गिरनें लगीं । घोर रूपवाली शृगालियें अग्निकी लपटें उगालती हुई अशुभ शब्द करनें लगीं ॥ १४ ॥ और मृगादि पशुगण चिल्लाय २ कर राक्षसोंके संहारको बतानें लगे, चलते २ वीर योद्धा लोग एका एक पैर फिसलनेंसे भयंकर भांतिसे गिरनें लगे ॥ १५ ॥ परन्तु महा बलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस यह समस्त उत्पात उठानें वाले लक्षण देखकर भी धीरज धारण कर समरका अभिलाषी हो लंका गढ़से बाहर निकला ॥ १६ ॥ इस ओर विजयी वानर समूह राक्षसोंको आया हुआ देखकर ऐसा सिंहनाद करनें लगे, कि उसकी गुंजारसे दशों दिशायें पूर्ण होगईं ॥ १७ ॥ तिसके पीछे परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंकी आशा किये भयंकर रूप महाबलवान वानर और राक्षसोंका घोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ १८ ॥ उस समय उन अति उत्साह वाले वीरोंकी देह, मस्तक, अधर, इत्यादि अंग कट जानेंसे व रुधिरमें शरीर डूबजानेंसे वह पृथ्वीपर गिर जानें लगे ॥ १९ ॥ समरसे न लौटने वाले और परिघकी समान लंबी २ बांह वाले वीरगण लड़ते २ परस्पर लिपट जाते, और तिसके पीछे विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र चलानें लगते ॥ २० ॥ उस घोर संग्राम भूमिमें वृक्ष पर्वत और अस्त्र शस्त्रोंका भयंकर हृदयको फाड़नेंवाला शब्द सुनाई आनें लगा ॥ २१ ॥ संग्राममें रथके चक्रोंका घर घर शब्द धनुषकी टंकार शंख भेरी और मृदंगोंका बड़ा कठोर शब्द हुआ ॥ २२ ॥ अनन्तर कोई राक्षस वानर वीर

सब अस्त्र शस्त्रोंको त्याग करकै, तल, चरण और घूमनेंसे मल्ल युद्ध और कोई वृक्षोंको लेकर युद्ध करनें लगे ॥ २३ ॥ उस समय कोई २ राक्षस युद्धमें मतवाले वानर गणोंसे जांघसे मारे जाकर अपने शरीरको तुड़वाते हुए, और कोई राक्षस वानरोंकी चलाई हुई शिलाओंके प्रहारसे पिसकर चूर्ण होगये ॥ २४ ॥ तिसके पीछे वज्रदंष्ट्र यह समस्त व्यापार देख वानरोंको त्रासित करता हुआ लोक संहार करनेंके लिये तैयार फांसी हाथमें लिये हुए यमराजकी समान रणभूमिमें घूमनें लगा ॥ २५ ॥ उस समय विविध अस्त्र शस्त्र धारी अस्त्रवित् बलवान निशाचर गण क्रोधसे मूर्छित होकर वानरोंकी सैनाका संहार करनें लगे ॥ २६ ॥ परन्तु महावीरजी रणभूमिमें राक्षसों करकै वानर लोगोंको मरते देखकर प्रलय कालके अग्निकी समान द्विगुण कोप करते हुए ॥ २७ ॥ इन्द्र तुल्य पराक्रम शाली अंगदजी भी क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर सिंह जिस प्रकार छोटे २ मृगोंका नाश करताहै वैसेही वृक्षोंको उठाय २ यह राक्षसोंका घोर विनाश करनें लगे ॥ २८ ॥ यद्यपि यह राक्षस लोग भी बड़े विक्रमीथे परन्तु इन्द्रकी समान घोर विक्रम कारी अंगदजीके द्वारा मारे जानेंसे ॥ २९ ॥ इन राक्षसोंके शिर कट गये, कि जिस्से यह राक्षस कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिरनें लगे। रथ चित्र विचित्र ध्वजा पताका अश्व और वानर राक्षसोंके मृतक शरीरोंसे ॥ ३० ॥ और रुधिरके सोतेसे ढकनेंके कारण वह रण भूमि अत्यन्त भयंकारी होगई । हार, बाजू वस्त्र और कटे हुए शस्त्रोंसे सजनेंके कारण ॥ ३१ ॥

भूमिर्भातिरणेतत्रशारदीवयथानिशा ॥ अंगदस्यचवेगेनतद्राक्षसबलंमहत् ॥ प्राकंपततदा तत्रपवनेनांबुदोयथा ॥ ३२ ॥

वह रणभूमि शरद ऋतुकी रात्रिके समान शोभा धारण करती हुई जिस प्रकार पवनके वेगसे मेघोंका जाल तितर वितर होकर पड़जाता है, वैसेही अंगदजीकी वीरता और उन करकै मर्दित होनेंसे राक्षसोंकी सैना कम्पायमान हुई ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशः सर्गः ॥

स्वबलस्यचघातेनअंगदस्यबलेनच ॥ राक्ष
सःक्रोधमाविष्टोवज्रदंष्ट्रोमहाबलः ॥ १ ॥

तब महाबलवान वज्रदंष्ट्र राक्षस अपनी सेनाका नाश और अंगदजीके बलका प्रकाश देखकर अत्यन्तही क्रोध करता हुआ ॥ १ ॥ उस समय वह वज्रदंष्ट्र वज्रकी समान प्रभावाला भयंकर धनुष बाण शब्दितकर और उसे चढ़ाय वानरोंकी सैनापर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥२॥ रथपर चढ़े हुए विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण किये बड़े २ शूर निशाचरभी युद्ध करनें लगे ॥३॥ कूदनें फादनेंमे चतुर शूर वानर गणभी एकत्र हो शिला हाथमें लेकर सर्व प्रकारसे युद्ध करनें लगे ॥ ४ ॥ उस रणभूमिमें राक्षसोंने वानर श्रेष्ठोंके ऊपर सहस्र २ घोर कठोर बाण चलाये ॥५॥ मतवाले हाथियोंकी समान वानर वीर गणभी राक्षसोंको ताक २ कर बडे २ वृक्ष और बडी २ शिलायें चलाने लगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार संग्रामसें न लौटने वाले और समराभिलाषी उन राक्षस और वानरोंका महाघोर युद्ध आरंभ हुआ ॥ ७ ॥ उनमें से किसी २ के शिर कट गये और किसी किसीके चरण और हाथ कट गये और शस्त्रोंसे कट जानेके कारण उनके सब अंगोंमें रुधिर वहने लगा ॥ ८ ॥ असंख्य वानर और राक्षस गण मर २ कर पृथ्वी पर गिर पडे, तब उनके मृतक शरीरोंपर सहस्रों काक, गिद्ध, व गीदड बैठ मांस खाय २ नाचनें लगे ॥ ९ ॥ डरपोकोंको डरावने वाले कबंध उडनें लगे रणभूमिमें असंख्य सैनाके हाथ पैर शिर कटकर शरीरसे अलग होने लगे ॥ १० ॥ तिसके पीछे वानरोंकी सैनाकरकै मारीहुई निशाचरोंकी वह सैना राक्षस वज्रदंष्ट्रके सन्मुखही रणभूमि छोड-कर भागनेंका आरंभ करनें लगी ॥ ११ ॥ वानरोंकी सैनाके हाथसे राक्षसोंको मारा जाता हुआ और भयसे भीत देखकर ॥ १२ ॥ प्रताप शाली राक्षसोंका सैनापति वज्रदंष्ट्र कोपसे परिपूर्ण हो गया उसके दोनोंनेत्र क्रोधके मारे लाल हो आये वह धनुष करकै वानरोंकी सैनामें प्रवेश करकै उसको ताडित करने लगा ॥ १३ ॥ और अपनी कुटिल गतिसे कंक पत्र लगे हुए अगणित बाण चलाय २ वानर सैनाको घायल करने लगा,

उस महा प्रतापी वज्रदंष्ट्रने अत्यन्त कोपमें भरकर वानर गणोंको यथा क्रमसे सात, आठ; नौ और पांच २ बाण चलाय उन वानरोंके शरीरको भेदा ॥ १४ ॥ तब भयके मारे सब वानर गण भागने लगे उनके शरीर बाणोंके लगनेंसे छिन्नभिन्न होगये सताई हुई प्रजा जिस प्रकार ब्रह्माजीके निकट जाया करतीहै वैसेही वानर गण अंगदजीके निकट दौडकर आने लगे ॥ १५ ॥ तब महा बलवान अंगदजी वज्रदंष्ट्रके द्वारा वानरोंको भागा हुआ देखकर उसकी ओर क्रोधसें दृष्टि करते हुए। राक्षस सैनापति वज्रदंष्ट्रभी अंगदजीको वार २ क्रोधकी दृष्टिसे देखनें लगा ॥ १६ ॥ तब वज्रदंष्ट्र और अंगदजी दोनो ही अत्यन्त क्रोधमें भरकर युद्ध करनें लगे उस समय वह दोनो मतवाले हाथी और केशरी (सिंह) की समान जान पड़तेथे ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंकी सैनाके पति वज्रदंष्ट्रनें अग्निकी शिखाके समान हजार बाण चलायकर वानर सैनापति अंगदजी के मर्म स्थानमें प्रहार किया ॥ १८ ॥ उस अत्यन्त हजार बाणका प्रहार लगनेंसे वालिकुमार अंगदजीके सब शरीर से रुधिर निकलने लगा और इन्होनें भयंकर शब्दसे गर्जकर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके ऊपर एक बडा भारी वृक्ष चलाया ॥ १९ ॥ राक्षस वज्रदंष्ट्रने उस बडे भारी वृक्षको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर अति सावधानीसे बाण चलाय उसके टुकडेकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजीनें वज्रदंष्ट्रका ऐसा विक्रम देखकर एक अत्यन्त बडी शिला ग्रहण करकै उसके ऊपर चलाय सिंह नादकरने लगे ॥ २१ ॥ परन्तु वीर्यवान राक्षस वज्रदंष्ट्र उस शिलाको गिरता हुआ देख रथसे छलांग मार भ्रमरहितहो गदा हाथमें ले पृथ्वीपर खड़ा होगया ॥ २२ ॥ तिसकाल अंगदजीकी चलाई हुई शिलाने अत्यन्त जोरसे गिरकर रणभूमिके बीचमें टिका हुआ, चक्र और कूवरके सहित वज्रदंष्ट्रके रथको चूर्ण कर डाला ॥ २३ ॥ तब वानरोंके सैनापति अंगदजीनें वृक्षोंसे शोभायमान एक पर्वतका शिखर उखाड़कर उस राक्षस वज्रदंष्ट्रके शिरपर देमारा ॥ २४ ॥ उस घोर शैल शृङ्गकी चोट लगनेंसे रुधिर वमन करता हुआ वज्रदंष्ट्र मूर्च्छित होगया, और एक मूहूर्त भर-तक चेतना रहित हो अपनी गदाको पकड़े हुए लंबे श्वास चलानें लगा ॥२५॥ फिर कुछ देरमें चेतना पाय राक्षस वज्रदंष्ट्रनें क्रोधमें भर सन्मुख

खडे हुए वालि कुमार अंगदजीको छातीमें एक गदा मारी॥ २६ ॥ तिसके पीछे गदा युद्ध छोड वह वानर और राक्षस दोनों मूका,लात,चनकटा इत्यादि मार २ बाहु युद्धकर परस्पर एक दूसरे पर चोट चलानें लगे॥२७॥दोनोंकेही शरीरसे रुधिर निकलनें लगा. घोर कठोर प्रहारोंके लगनेंसे दोनों वीरही थक गये; उस समय वह ऐसे ज्ञात होतेथे मानों रणभूमिमें मंगल और बुध ग्रह घूम रहेहैं ॥ २८ ॥ तब परम तेजस्वी वानर श्रेष्ठ अंगदजी पुष्प और फलोंसे शोभायमान एक बडा भारी वृक्ष उखाडकर रणभूमिमें खडे होगये ॥२९॥ परन्तु निशाचर वज्रदंष्ट्रने किंकिणी जालसे युक्त विमल ऋषभके चर्मसे बनी ढाल और चमडेके म्यानसे ढकी हुई तलवार निकाली तब वालिकुमार अंगदजीनेंभी मृगचर्मसे बनी हुई जयकी सूचना करनें वाली बडी ढाल और खड्ग ग्रहण किया ॥ ३० ॥ उस समय विजयकी अभिलाषा किये वह दोनों वानर और राक्षस विचित्र मार्गमें घूमतेहुए परस्परमें एक दूसरेके ऊपर चोट चलानें लगे ॥ ३१ ॥ परस्पर युद्ध करते हुए उन दोनों वीरोंके सर्वाङ्गोंमें रुधिर निकलनेंके कारण वह दोनों फूले हुए दो टेसू वृक्षोंकी समान शोभायमान हो रहेथे, परस्पर जांघोंको सकोड़ कर यह दोनों वीर थककर पृथ्वीमें बैठते हुए ॥ ३२ ॥ कपि कुंजर अंगदजी एक निमेष मात्रमें दंडसे आहत हुए सर्पकी समान तड़ककर उठे, उनके दोनों नेत्रोंनें दीप्ति मान अग्निके समान प्रभाव धारण किया ॥ ३३ ॥ तब महाबलवान अंगदजीने अत्यन्त तीक्ष्ण और विमल चमकते दमकते खड्गकी चोटसे वज्रदंष्ट्रका शिर काटकर पृथ्वीपर गिरादिया ॥ ३४ ॥ राक्षस वीर वज्रदंष्ट्रकी देह दोखंड होकर गिर पड़ी; सर्व शरीरसे रुधिर निकलनें लगा, उसकी दोनों आंखें उलट गई और रुन्ड परसे पृथक होकर शिर नीचे गिरपड़ा॥३५॥राक्षसगण वज्रदंष्ट्रको मरा हुआ देखकर भयके मारे विह्वलहो लंकापुरीको भागगये। भागनेंके समय वानर वीरोंनें उनके ऊपर ऐसी मार धाड़ मचाईकि राक्षसोंके मरनेंमें कुछ कसर न रही। यह राक्षस इस अवस्थामें व्याकुल वदन और दीन भाव युक्तहो लज्जासे मुखको नीचा करके लंकामें प्रवेश करते हुए॥ ३६ ॥

निहत्यतंवज्रधरःप्रतापवान्सवालिसूनुः

कपिसैन्यमध्ये ॥ जगामहर्षमहितेमहा
बलःसहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३७॥

इस प्रकारसे इन्द्रकी समान प्रतापवान वह महाबल शाली वालि कुमार अंगदजी वानरोंकी सैनाके वीचमें उस राक्षस वज्रदंष्ट्रको मार परम प्रसन्नता प्राप्त करते हुए, और देवता लोगोंके वीचमें बैठे सहस्र लोचन इन्द्रकी नाई वानरगणोंसे पूजित हुए ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० लं० चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥

वज्रदंष्ट्रंहतंश्रुत्वावालिपुत्रेणरावणः ॥ बला
ध्यक्षमुवाचेदंकृतांजलिमुपस्थितम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे लंकापति रावण वालिके पुत्र अंगदजीके हाथसे वज्र-दंष्ट्र राक्षसको मरा हुआ सुन निकटही हाथ जोड़कर खड़े हुए सैनापति प्रहस्तसे वोला ॥ १ ॥ कि भयंकर विक्रम करनें वाले दुर्द्धर्ष निशाचर लोक समस्त अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंमें पंडित राक्षस अकम्पनको अपना सेनापति वनायकर युद्ध करनेके लिये जाँय ॥ २ ॥ यह अकम्पन वीर शत्रु लोगोंको दमन करनेंमें वड़ा चतुरहै,यह अपनी सैनाकी रक्षा करनें वाला और युद्ध कार्यका प्रेरकहै; विशेष करकै यह हमारा एक हित-कारी वन्धुहै युद्ध कार्यमें इसका वड़ा अनुरागहै ॥ ३ ॥ यही महा वल-वान सुग्रीवके सहित रामचंद्र और लक्ष्मणको युद्धमे पराजित करेंगे; और इसमेंभी कोई सन्देह नहीं कि इनके हाथसे युद्धमें और वानरवीर गणभी मारे जायँगे ॥ ४ ॥ शीघ्र पराक्रम करनें वाला महा वलवान् प्रहस्त रावणकी ऐसी आज्ञाको पायकर सव सैनाको युद्ध करनेंके लिये चलनेंकी आज्ञा देताहुआ ॥ ५ ॥ तव वह अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारी भयंकर नेत्र और भयंकराकार प्रधान २ राक्षसगण सैनापतिकी यह आज्ञा पायकर युद्ध करनेंके लिये निकले ॥ ६ ॥ राक्षसोंके सेनापतिका वर्ण मेघतुल्य और शब्द मेघके गर्जन करनें की समानथा; वह तपाये हुए सुवर्णसे विभूषित रथपर सवार होता हुआ ॥ ७ ॥ उसके साथ २ भयंकराकार अगणित राक्षसोंकी सैना युद्ध करनेंके लिये निकली इस वीर

अकंपनको संग्राम स्थानमें देवता लोगभी कंपायमान करनेंको समर्थ नहीं थे ॥ ८ ॥ यह तेजस्वी अकंपन अपनी सेनाके बीचमें साक्षात् सूर्य भगवान् की समान शोभायमान होंने लगा जब यह युद्ध करनेंकी इच्छासे चला, तब क्रोधकर दौडते हुए अकम्पनके ॥ ९ ॥ रथमें जुते हुए घोडोंको अचानक दीनभाव प्राप्त हुआ,युद्ध करनेंको प्रसन्नतासे चलेजाते हुए अकम्पनका वांया नेत्रभी फडकनें लगा ॥ १० ॥ इसका मुखमंडल मलीन होगया, और कंठस्वर विरूपताको प्राप्त हुआ, उस दिनके समय दुर्दिन आय पहुंचा पवन रूखे पनसे वहनें लगी ॥ ११ ॥ और मृग पक्षीगण सबही भयका उपजानें वाला क्रूर शब्द करना आरंभ करनें लगे; परन्तु सिंहकी समान ऊँचे कंधोंवाला और शार्दूलकी समान विक्रमकारी ॥ १२ ॥ वह अकम्पनवीर; इन उत्पातोंको कुछभी नहीं समझता हुआ रणभूमिको चला; वह निशाचर राक्षसोंकी सैनाके साथ लंकापुरीसे निकला ॥ १३ ॥ इस सैनाका इस प्रकारका बड़ाभारी शब्द हुआ कि जिस्से ससुद्रमेंभी खलबली पडगई, और वानरोंकी सैनाभी उस शब्दसे त्रासित होकर ॥ १४ ॥ उसी समय वृक्ष और पर्वतोंको उठाय २ युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़ी। तब उन वानर और राक्षसोंका महा घोरयुद्ध आरंभ हुआ ॥ १५ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी और रावणके लिये प्राणतक त्यागना दोनो ओरके वीरोंनें विचारा दोनोंही बलवान विक्रम शाली और पर्वताकारथे ॥ १६ ॥ राक्षस और वानरगण परस्पर एक दूसरेको मार डालनेंके लिये तैयारथे। अति वेगवान तिन वानर और राक्षसोंका शब्द समरमें ॥ १७ ॥ श्रवण गोचर होंनें लगा, दोनो दलोंकेही क्रोध सहित गर्जनेंका महा भयानक शब्द उठा, दोनो दलोंमें धूम पड़नेसे बड़ी भारी लाल २ धूल उड़ी ॥ १८ ॥ वानर और राक्षसोंके चरणोंकी उडी हुई धूलसे दशोंदिशा पूर्ण होगई, यह धूल धूमर वर्णकी कुछ २ लाल पन लिये हुएथी ॥ १९ ॥ इस धूरनें सब दिशाओंको ढक लिया, न राक्षस, न वानर, न ध्वजा, न पताका, न ढाल, न अश्व; न गज ॥ २० ॥ न हथियार, न रथ, कुछभी उस धूलके उड़नेंसे नहीं दीख पड़तेथे। संग्राममें गर्जन करकें धावमान होते हुए वानर और राक्षसोंका बड़ा भारी शब्दही ॥ २१ ॥ केवल कठोर युद्धमें सुनाई देताथा, परन्तु किसीका कोई रूप दिखाई नहीं देताथा। अधिक क्या कहैं यहां

तक हुआकि रूप न दिखाई देनेके कारण वानरगण वानरोंकोही मारनें लगे, वानर और राक्षस लोग अंधकारके मारे राक्षसोंहीको संहार करनें लगे, वानर और राक्षस दोनोंही अपनी २ ओर वालोंको; और अपने २ शत्रुओंकोभी मारतेथे ॥२२॥२३॥ वानर और राक्षसगण यहां तक लड़े कि पृथ्वी रुधिरसे गीली होगई और इनके शरीरोंमें रुधिरकी कीच लिपट गई, जब रुधिरसे कीच उठी तब धूल जातीरही ॥२४॥ तिसके पीछे देखतेर पृथ्वी मृतक शरीरोंसे पूर्ण होगई। वृक्ष, शक्ति, गदा, फांसी, शिला, परिघ, तोमर, आदि अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ २५ ॥ वानर और राक्षसगण परस्पर एक दूसरे पर चोट चलानें लगे। परिघाकार वाली बाहोंसे युद्ध करते हुए पर्वकी समान ॥ २६ ॥ भयंकर कर्मकारी वानर गण राक्षसोंका संहार करनें लगे; और राक्षसोंनेंभी प्रास तोमर हाथोंमें ले ॥ २७ ॥ व औरभी परम दारुण अस्त्र शस्त्रोंसे वानरोंको मारा तिसके पीछे राक्षसोंका सैनापति अकंपन क्रोध करता हुआ ॥ २८ ॥ भयंकर कर्मकारी सब राक्षसोंको हर्षित करानें लगा; वानर लोगभी राक्षसोंको बड़े २ वृक्ष और बड़ीरशिलायें ग्रहण कर ॥ २९ ॥ बल पूर्वक राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र उनको विदारण करनें लगे, कि उसी अवसरमें वानर वीर, कुमुद, नल, ॥३०॥ मैन्दादि सब महा-क्रोध कर बड़ावेग करनें लगे। यह महावीर वानर गण बड़े २ वृक्षोंको लेकर सैनाके मुखमें टिके हुए ॥ ३१ ॥

कदनंसुमहच्चक्रुर्लीलयाहरिपुंगवाः ॥ ममं
थूराक्षसान्सर्वेनानाप्रहरणैर्भृशम् ॥ ३२ ॥

लीलासेही खेलसा करते हुए राक्षसोंकी बड़ीभारी दुर्दशा करनें लगे; इन वानर श्रेष्ठोंनें यहां तक वृक्ष चलाये, कि बहुतसे राक्षस मृतक होगये। इन वानरोंनें औरभी अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे राक्षसोंका मान मथडा-ला ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये लंकाकाण्डे पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशःसर्गः ॥

तद्दृष्ट्वासुमहत्कर्मकृतंवानरसत्तमैः ॥ क्रो

धमाहारयामासयुधितीव्रमकंपनः ॥ १ ॥

तब वानर वीरगणोंका अद्भुत विक्रम देखकर और उनके बड़ेभारी कार्यको विचारकर राक्षस सैनापति अकंपननें अत्यन्त क्रोधकिया ॥ १ ॥ वह वीर अकंपन शत्रुलोगोंका ऐसा कर्म देखकर बड़ा भारी विचित्र शरासन ग्रहण कर उसपर टंकारदे क्रोधसे मूर्छितहो अपने सारथिसे बोला ॥ २ ॥ हेसारथे! यह बलवान वानर गण संग्राममें अगणित राक्षसोंको संहार कर रहेहैं, इस कारण जहांपर यह वानरहैं, वहीं पर हमारा रथले चलो ॥ ३ ॥ जो वानर लोगकि वृक्ष और शिलारूप हथियार धारण किये हुए हमारे सामने टिकेहैं; यह समरकी अभिलाषा किये भयंकर कोप करनें वाले वानर अतिशय बलवानहैं ॥ ४ ॥ इस कारण हम पहले इनकेही संहार करनेंकी इच्छा करतेहैं, कारणकि हम देखते हैं कि कई एक वानरोंसेही समस्त राक्षसोंकी सैना मथी जा रहीहै॥ ५ ॥ ऐसा सुनकर जब सारथिनें घोड़े हाँके तब राक्षस श्रेष्ठ अकंपन, वानर गणोंके सामने जाय दूरसेही उन वानरोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ तिस समय उस अकम्पनके साथ युद्ध करना तो दूर रहै वानर गण रणमें उसके सामनेभी नहीं टिकसके, वरन उसके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और छिन्नभिन्न होकर सबही इधर उधरसे भागनें लगे ॥ ७ ॥ परन्तु महाबलवान हनुमानजी अपनी जातिवाले वानरोंको अकम्पनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और मृत्युके मुखमें धरे हुए देखकर उसके सामनेंको बढ़े ॥ ८ ॥ तिस समय उन महाकपिको देखकर सब महावीर वानर गण फिर रण भूमिमें आ करकै हनुमानजीको घेरकर खड़े होगये ॥ ९ ॥ हनुमानजीको युद्ध करनेके लिये पहुंचा हुआ देखकर वह भागे हुए वानरश्रेष्ठ गणभी, बल प्राप्त करते हुए कारण कि बलवानसे सहाय पायकर दुर्बल भी बलवान होजातेहैं ॥ १० ॥ पर्वताकार हनुमानजीको आगे खड़ा हुआ देखकर राक्षस अकम्पन उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा, कि जिस प्रकार इन्द्रजी पृथ्वी पर जलकी धारा वर्षातेहैं ॥ ११ ॥ परन्तु महा बलवान वानर हनुमानजी अपने शरीर पर गिरते उन बाणोंकी कुछभी चिन्ता न

करते हुए अकम्पनके संहार करनेंका विचार करते हुए ॥ १२ ॥ वह महा तेजस्वी पवनकुमार हनुमानजी पृथ्वीको कंपायमान करते हँसते २ उस राक्षस अकम्पनके सन्मुख धाये ॥ १३ ॥ इस समय यह हनुमानजी घोर सिंहनाद करते हुए उनका रूप अत्यन्त असह होगया और वह प्रदीप्त अग्निकी समान अपने तेजसे आपही प्रकाशित हुए ॥ १४ ॥ वानर श्रेष्ठ क्रोधयुक्त हनुमानजीनें अपने आपको जब आयुधसे हीन जाना तब अति वेगसे इन्होंनें एक पर्वत उखाड लिया ॥ १५ ॥ और एक हाथसे उस महा पर्वतको ग्रहण कर पवननंदन हनुमानजी वारंवार सिंहनाद करकै उस पर्वतको घुमानें लगे ॥ १६ ॥ पहले देवराज इन्द्रजी संग्राममें जिस प्रकार नमुचि दैत्य पर दौड़ेथे, वैसेही श्रीहनुमानजी राक्षसश्रेष्ठ अकंपनकी ओर दौड़े ॥ १७ ॥ परन्तु अकम्पननें हनुमानजीको गिरि शृंग लिये आता हुआ देखकर दूरसेही बड़े भारी अर्द्धचन्द्र बाण चलाय इस पर्वतको खंड २ कर डाला ॥ १८ ॥ हनुमानजी उस पर्वतको राक्षसके बाणोंसे आकाश मार्गमेंही कटा और इधर उधर छितराया देखकर क्रोधके मारे अधीर होगये ॥ १९ ॥ तब क्रोध और गर्व किये हुए उन वानर श्रेष्ठ हनुमानजीनें महापर्वतकी समान ऊंचे एक अश्व कर्ण वृक्षके नीचे जाय अति शीघ्रताके सहित उसको उखाड़ लिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे महा द्युतिमान हनुमानजीनें शाखा फुलंची युक्त उस अति ऊंचे अश्व कर्णके वृक्षको ग्रहण करकै परम प्रसन्नता सहित उसको रण स्थलमें घुमाय कर एक वार पृथ्वीपर देमारा ॥ २१ ॥ उस कालमें क्रोध पूर्ण हनुमानजी करकै उस वृक्षके घुमानेंसे अनेक वृक्ष टूट गये, और उनके चरणोंके वेगसे वसुमती पृथ्वी घूमनें लगी ॥ २२ ॥ महावीर हनुमानजी उस वृक्षको घुमाय २ हाथी हाथियोंके साथ, रथी, रथ और भयंकर पराक्रम करनें वाले राक्षसोंको संहार करनें लगे ॥ २३ ॥ तब राक्षस गण वृक्षका प्रहार करते हुए प्राण हरण करनेंवाले यमराजकी समान उन क्रोधित अंजनीके पुत्र हनुमानजीको देखकर भागनें लगे ॥ २४ ॥ राक्षस सेनापति महावीर अकम्पन उन महावीर्य क्रोधित हनुमानजीको राक्षसोंके लिये भय उत्पन्न कराते देखकर अत्यन्तही क्रोध करता हुआ और उस समय उस अकम्पननें घोर नादसे गर्जन करना आरंभ किया ॥ २५ ॥ और

शरीरको विदारण करनें वाले अत्यन्त तीखे चौदह बाण उसनें हनुमान-जीके देहमें मारे ॥ २६ ॥ उस कालमें तीखे नाराच और शक्तियोंके लग-नेंसे हनुमानजीका शरीर ऐसा विद्ध हो रहाथा कि उस समय वह वृक्ष युक्त गिरिवरकी समान शोभित होतेथे ॥ २७ ॥ महा बलवान महाकाय और महावीर्यवान हनुमानजी फूले हुए अशोक और धूम रहित अग्निकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ २८ ॥ तिसके पीछे पवनकुमार हनुमानजीनें अति शीघ्रतासे एक वृक्ष उखाड़ कर अत्यन्त वेगसे राक्ष-सोंके सैनापति अकंपनके शिर पर मारा ॥ २९ ॥ क्रोधसे पूर्ण महाबल-वान वानरोंमें इन्द्र हनुमानजी करकै इस प्रकारसे वृक्षद्वारा घायलहो वह राक्षस तत्क्षणही पृथ्वीमें गिरकर मृतक होगया ॥ ३० ॥ समस्त राक्षस राक्षसोंके स्वामी अकम्पनको मृतक और पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, और भूडोलके समय जिस प्रकार वृक्ष काँपतेहैं, ऐसेही कम्पायमान होनें लगे ॥ ३१ ॥ उस समय वह हारे हुए राक्षस वानर लोगोंसे खेदे जाकर अपने अस्त्र शस्त्र त्यागकर लंकाके सन्मुख भागनें लगे ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंके बाल छूट रहेथे उन्होंने पराजित होकर मान मर्यादाको जल दे दिया, भयके मारे उनके सब अंगोंमें पसीना आ रहाथा, और प्राणोंका डर करकै उनके चित्त स्थिर नहींथे ॥ ३३ ॥ उस समय उनको इस प्रकारका भय हुआथा कि वह राक्षस भागनेंके समय वारंवार पीछे को देखनें लगे, और आपही परस्पर एक दूसरेको मारते हुए नगरमें प्रवेश करते हुए ॥ ३४ ॥ जब वह महाबल राक्षस लंका-पुरीको चले गये तब समस्त वानर एकत्रहो हनुमानजीकी पूजा करनें लगे और उन नीति विशारद सत्व सम्पन्न हनुमानजीने भी भेंटकरकै, व संभाषण करकै उन सब वानरोंकी यथायोग्य रूपसे बडाईकर प्रति-पूजित किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे वह विजयी वानर गण मृतक राक्षसोंको ऐसा समझकर कि कदाचित यह जीवित न हों फिर इधर उधर खेंचने लगे ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार शत्रुओंके मारनें वाले विष्णुजीने संग्रामभूमिमें भयंकर रूप महा बलवान मधुकैटभादि महा असुरोंको मारकर बडी भारी शोभा धारण कीथी वैसेही यह महा कपि पवनकुमार हनुमानजी राक्षसोंको ऐसा संहारकरकै वीरोंकी शोभासे शोभित हुए ३८॥

अपूजयन्देवगणास्तदाकपिंस्वयंचरामोति
बलश्चलक्ष्मणः॥ तथैवसुग्रीवमुखाःप्लवंगमा
विभीषणश्चैवमहाबलस्तदा ॥ ३९ ॥

उस समय आकाशमें टिके हुए देवता गण सुग्रीवादि मुख्य २ वानर गण, महा बलवान विभीषण अति बलवान लक्ष्मण और स्वयं श्रीरामचंद्रजी भी उन महाकपि हनुमानजीकी वारंवार प्रशंसा करने लगे ॥३९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये लंकाकांडे षट् पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ।

अकंपनवधंश्रुत्वाक्रुद्धोवैराक्षसेश्वरः ॥ किं
चिद्दीनमुखश्चापिसचिवांस्तानुदैक्षत ॥१ ॥

अकम्पनके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर निशाचर पति रावण अत्यन्त क्रोधयुक्त हुआ और दीन मलीन मुखहो मंत्रीलोगोंके मुखकी ओर देखने लगा ॥ १ ॥ रावण एक मुहूर्त्त भर तक चिन्ता करके मंत्रीलोगोंके सहित सलाहकर समस्त लंकाकी मोरचे वंदी देखनेके लिये दशघडी दिन चढे लंकाके तीर घूमने को चला ॥ २ ॥ रावणने नगर मे घूमकर देखाकि ध्वजा पताका युक्त और बहु व्यूह समन्वित वह लंकानगरी राक्षस लोगों करके सब भांतिसे रक्षित हो रहीहै ॥ ३ ॥ तब राक्षसोंका स्वामी रावण उस लंका नगरीको सब भांतिसे वानरोंके द्वारा रूंधीहुई देखकर यथा समयमें युद्ध विशारद प्रहस्तसे अपने हितकारी यह वचन बोला ॥ ४ ॥ रावण बोलाकि हे युद्ध विशारद शत्रुकी सैना चारो ओर से रूंध कर पुरीको जिस प्रकारसे संताप दे रहीहै इस्से तो युद्ध करनेके सिवाय छुटकारा पानेका हम दूसरा उपाय नहीं देखते ॥ ५ ॥ परन्तु इस समय हमारे इन्द्रजितके कुम्भकर्णके निकुम्भके अथवा हमारे सैनापति तुम्हारे सिवाय, और कौन इस बड़े भारी भारको उठा सकताहै ॥ ६ ॥ इस कारण तुम शीघ्रही रथ पर सवारहो सैनाको साथले जिस स्थानपर वानर गण टिके हुएहैं; वहां पर युद्ध करनेंके लिये जाओ ॥ ७ ॥ ऐसा हम जानतेहैं कि "तुम लड़नेंके

लिये आयेहो" यह बात सुनतेही वह वानरोंकी सैना चलायमान होजायगी; हम निश्चय कहतेहैं कि राक्षसोंका सिंहनाद सुनकर यह वानर भयके मारे इधर उधर भाग जांयगे ॥ ८ ॥ हे वीर ! जिस प्रकारसे हाथी सिंहकी सिंहनादको नहीं सह सकतेहैं; वैसेही वह नीति रहित चपल और चंचल चित्त वानरोंकी सैना तुम्हारा भयंकर गर्जना नहीं सह सकेगी हे प्रहस्त! सब वानरोंकी सैनाके इधर उधर भाग जानेंसे वह स्वामी शक्तिहीन सहाय रहित रामचंद्र और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणके सहित तुम्हारे वशमें होजांयगे ॥९॥ १० ॥ हे वीर ! यद्यपि आपत् अर्थात् युद्धमें मरण संशय युक्तहै; कारण कि यह नहीं जाने कि कौन मारा जायगा. और निःसंशयमें अमंगलहै, इस कारण इसका प्रतिलोम और अनुलोम, जिसमें प्रवृत्तिहो वही तुम करो * ॥ ११ ॥ जब रावणनें यह कहा तब सैनापति प्रहस्त शुक्राचार्य जिस प्रकार दैत्येन्द्रसे कहा करते हैं वैसेही राक्षसोंके स्वामी रावणसे यह बोला ॥ १२ ॥ हे महाराज! पहले हम लोगोंनें नीतिके जाननें वाले मंत्रियोंके सहित इस सम्बन्धमें परामर्श कियाथा. परन्तु उसकालमें परस्पर एक मत न होनेसे हम लोगोंमें विवाद भी हुआ ॥ १३ ॥ उस समय हमनें जानकीका दे देनाही निश्चय कियाथा; और यह भी हमनें कहाथा कि सीता न देनेंसे युद्ध भी होगा सो हे महाराज ! इस समय हमें वही युद्ध प्राप्त हुआहै ॥ १४ ॥ हे राक्षसनाथ ! जो कुछभीहो आपने दान, सन्मान और मीठे वचनोंसे सदाही हमारा सन्मान किया करतेहैं; इस कारण इस समय हम आपके लिये किसी प्रकार हितकारी कार्य करनेंमें कोई कसर न रक्खेंगे॥ १५ ॥ अपना प्राण पुत्र परिवार और धन कुछभी हम रखना नहीं चाहते; इस कारण हम कहते हैं कि इस समय आपके अर्थही युद्धमें इस जीवनको भी हमदेंगे ॥ १६ ॥ सैनापति प्रहस्तनें राक्षसपति रावणसे यह कहकर सामने आकर खडे हुए सैनाध्यक्षसे कहा ॥ १७ ॥ कि जलदीसे बडीभारी राक्षसोंकी सैनाको सजायकर लेआओ; हमारे बाणोंके वेगसे रणमें मृतक हुए ॥ १८ ॥ वान-

* तात्पर्य;—युद्ध क्षेत्रमें तुम्हारीभी मृत्यु होगी इसकी क्या स्थिरता है? परन्तु इसमे जय लाभकरना एक प्रकारसे स्थिर सिद्धान्त है इसकारण युद्धमें तुम्हारे लिये जानाही अच्छा है युद्धसे विमुख होना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं हैं ॥

रोंके मांससे आज वनके रहनें वाले पशुपक्षी भलीभांति तृप्तहोंगे। प्रह-स्तके यह वचन सुनकर महा बलवान् सैनाध्यक्ष लोगोंनें ॥ १९ ॥ तिस राक्षस राजके गृहमें लायकर सैनाको इकट्ठा कर दिया, एक मुहूर्तमें अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये॥२०॥राक्षस वीरोंसे लंकापुरी ऐसी पूर्ण हुई मानो हाथियोसे पूर्ण होगई। कोई राक्षस अग्निको तृप्त करते हुए कोई ब्राह्म-णोंको प्रणाम करते हुए ॥ २१ ॥ ऐसे राक्षसोंके घृतकी सुगन्धिसे युक्त होकर सुगन्धित पवन चलनें लगा और विविध प्रकारकी मालायें जो मंत्रोंसे पढ़ी हुईथीं राक्षसोंने ग्रहणकी ॥२२॥ और संग्राममें जानेंके लिये वह राक्षस रण-के आयुधोंसे सजनें लगे, तिसके पीछे कवच और धनुषधारी वह राक्षसगण अति वेगसे राक्षस राज रावणको देखकर प्रहस्त नाम सैनापतिको घेर खड़े होगये। फिर राजाकी आज्ञासे अति घोर भेरी बजवाय ॥२३॥२४॥ सर्व अस्त्र शस्त्रोंसे पूर्ण और तैयार रथपर सजा सजाया प्रहस्त नाम सैनापति सवार हुआ इस रथमें अत्यन्त वेगवान् घोड़े जुतेथे और सर्व भांतिसे चतुर सारथीभी इसपर चढ़ा हुआथा ॥ २५ ॥ इस रथका शब्द बड़े भारी मेघ-गर्जनकी समानथा चन्द्र सूर्यकी समान इसमें प्रकाशथा, सर्पाकार ध्वजा इसपर लटक रहीथीं। सुन्दर गुम्मजदार ॥ २६ ॥ सुवर्णके जालसे युक्त अपनी सुन्दरताईकी शोभाको मानो आपही हँस रही है, ऐसे रथपर रावणकी आज्ञासे सैनापति प्रहस्त सवार होकर ॥ २७ ॥ बड़ी भारी राक्षसोंकी सैना संगले लंकासे बहुतही शीघ्र निकला। उस समय मेघकी गर्जनेंकी समान नगाडोंका शब्द होनें लगा व और दूसरे बाजोंके शब्दसेभी पृथ्वी और दशोंदिशा पूर्ण होगई ॥ २८ ॥ जब वह सैनापति प्रहस्त चला, तब बहुत सारे शंखभी बजनें लगे और बड़े उच्च शब्दसे घोर गर्जन करते हुए राक्षस गणभी आगे २ चले ॥२९॥ प्रहस्तके साथ इस प्रकारसे महाकाय और भयंकर रूपवाले यह राक्षस आगे बढ़ोनारान्तक, कुम्भहनु, महानाद, समुन्नत, प्रहस्तके यह चारमंत्री प्रहस्तको घेरकर लंकासे निकले ॥ ३० ॥ हाथियोंके यूथकी समान बडीभारी राक्षसोंकी सैनाके साथ वह प्रहस्त घोर व्यूहकी रचना करता हुआ लंकाके पूर्व द्वारसे निकला ॥३१॥ प्रहस्तकी सैना बड़े भारी विस्तार वाले समुद्रकी समानथी। वह प्रहस्त कराल कालकी समान भयंकर मूर्ति धारण कर सेनाको संगले समर भूमिके

सन्मुख गमन करनें लगा ॥ ३२ ॥ जब प्रहस्त निकला तब उसके साथ-वाले शब्द करते हुए राक्षसोंके निकलनेसे ऐसा बड़ा भारी नाद उत्पन्न हुआ कि लंका नगरीके समस्त प्राणी पुञ्जविकट स्वरसे चिल्लानें लगे॥३३॥ मांस रुधिरके खानें पीनें वाले गिद्ध आदि, विना मेघके आकाशमें मंडलाकारसे रथके ऊपर घूमने लगे ॥ ३४ ॥ भयंकर रूपवाली शृगालियें भयंकर शब्दसे बोलकर मुखसे अग्निकी लपटें छोडती चिल्लाने लगीं अन्तरिक्षसे वार२ उलूका गिरनें लगीं, पवनभी रूखेपनसे चलनें लगा॥३५॥ परस्पर एक दूसरेके क्रोधितहो युद्ध करनेंसे सब ग्रहोंकी प्रभा हीन होगई। साक्षस सैनापतिके रथपर मेघमाला गंभीर शब्दसे गर्जन करके॥३६॥रुधिर की वर्षा करनें लगी और उसके आगे चलती हुई सैना परभी रुधिर वर्षा रथकी ध्वजापर गिद्ध बैठ गया; और दक्षिण मुख होकर शब्द करने लगा॥३७॥ और अपनें दोनों पंखोंको फैलायकर सैनापति प्रहस्तकी समस्त प्रभा और श्रीको हरण कर लेता हुआ । समरसे विमुख नहोनेवाले सारथिकीभी श्री जाती रही ॥ ३८ ॥ और घोड़ोंके सिखानेंवालेके हाथसे, व सारथिके हाथसे वारंवार चाबुक गिर पड़नें लगा जो युद्धमें जानेंकें समयकी शोभा और दीप्तिथी वह एक मुहूर्त भरमें नाशको प्राप्त हुई, घोड़ोंका पैर फिसलनें लगा इस प्रकारसे विख्यात बल पौरुष वाला प्रहस्त जब लंकासें युद्ध करनेंको निकला, तब रणभूमिमें वानरगण, वृक्ष शिला इत्यादि अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हुए उसके सन्मुख दौड़े॥३९॥ ४० ॥ इस समय वानरगण कटकटाय कर गर्जनें लगे और वह बड़े २ वृक्ष और बड़ी शिलायें ग्रहण करके पर्वतोंके शृङ्गोंको तोड़ते हुए धीरे २ आगे बढ़े ॥ ४१॥ तिसके पीछे वानर और निशाचरोंकी सैना ऐसा गर्जन और सिंहनाद करनें लगी । दोनोंही ओरकी सैना युद्धकी वासनासे हर्षित चित्तहोरहीथी ॥ ४२ ॥ यह दोनों वानर और राक्षसगण एक दूसरेका नाश करना चाहतेथे, उस कालमें दोनों सैनाके वीर दोनों ओरके वीरोंको लड़नेंके लिये पुकारतेथे, बस यही शब्द उस काल श्रवण होताथा ॥४३॥

ततःप्रहस्तःकपिराजवाहिनीमभिप्रतस्थे
विजयायदुर्मतिः॥विवृद्धवेगश्चविवेशितां

चमूंयथामुमूर्षुःशलभोविभावसुम् ॥४४॥

तिसके पोछे राक्षसोंकी सैनाका पति खोटीमतिवाला प्रहस्त युद्धमें जय पानेंकी वासनासे; पतंग जिस प्रकार मृत्युके निकट पहुंचकर प्रदीप्त अग्निकी शिखामें गिर जाताहै, वैसेही अत्यन्त वेगसे वानरोंकी सैनामें प्रवेश करता हुआ ॥ ४४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७॥

अष्टपंचाशः सर्गः ॥

ततःप्रहस्तंनिर्यांतंदृष्ट्वारणकृतोद्यमम् ॥ उ
वाचसस्मितंरामोविभीषणमरिंदमः ॥ १ ॥

तिसके पोछे शत्रुदमनकारी श्रीरामचंद्रजी प्रहस्तको संग्राम करनेंके लिये तैयार देख हँसकर विभीषणजीसे पूछनें लगे ॥ १ ॥ यह महाकाय वीर्यवान निशाचर जो बड़ी भारी सैनाके साथ अतिवेगसे यहांपर आय रहाहै; इसका बल और पौरुष कैसाहै ॥ २ ॥ हेमहाबाहो! हमको इस वीर्यवान निशाचरका यह समस्त वृत्तान्त सुनाओ, तव श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर विभीषणजी उत्तर देते हुए ॥ ३ ॥ कि यह प्रहस्त नामक निशाचर राक्षसराज रावणका सैनापतिहै; लंकापुरीमें जितनीभर रावणकी सैनाहै यह विख्यात पराक्रम अस्त्रोंका जाननेंवाला वीर्यवान और शूर निशाचर उस तीन भागवाली सैनामेंसे एक भाग सैना अपने साथ लेकर यहां आयाहै ॥ ४ ॥ और इस ओर सैनापति प्रहस्त भयंकर पराक्रम दिखाता, गर्जता हुआ बहुत सारे राक्षसोंकी सैनाके साथ निकला ॥ ५ ॥ महाबलवान वानरगण बड़ी भारी प्रहस्तकी सैनाको देखकर अत्यन्त क्रोध युक्त होकर गर्जन करनें लगे ॥ ६ ॥ खड्ग, शक्ति छंड, ऋष्टि, शूल, बाण, मूसल, गदा, परिघ, प्रास, विविध भांतिके फरसे, ॥ ७ ॥ चित्र विचित्र, धनुष लिये, जीतनेंकी इच्छा किये वानरोंके ऊपर धावमानहोते हुए राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र शोभायमान होतेथे, यह देखकर समरके अभिलाषी वानरगणभी पुष्पित वृक्ष, और पर्वतोंके शिखर, और बड़ी २ शिलायें ग्रहण करते हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ दोनों ओरकी सैनामें भयंकर संग्राम आरंभ हुआ; दोनोंही ओरके वीर शिला और बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥ राक्षस गणोंनें संग्राममें अगणित वान-

रोंको मार डाला और वानरोंनेभी असंख्य राक्षसोंका प्राण संहार किया ११॥ वानरोंमेंसे कोई२ राक्षसोंके शूल प्रहारसे मारे गये और कोई २ दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे मृतक हुए; कोई परिघकी चोटसे रणभूमिमें गिरे और फरसे के प्रहारसे किसी२ का शिर कटगया ॥ १२ ॥ किसीनें पृथ्वीपर गिरकर प्राणत्याग, दिया किसी २ का हृदय छिन्नभिन्न होगया किसी २ के शरीरमें बाणही लगे, कि जिस्से वह गिरे ॥ १३ ॥ कोई २ वानर शूर राक्षसों करके खड्गमें दो टुकडे कर डाले गये; किसी २ वानरकी बगलही कट गईथी; इस्से वहभी पृथ्वीपर पड़ेथे ॥ १४ ॥ इसी प्रकारसे बड़ा क्रोध करकै वानरोंनें राक्षसोंके ऊपर पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंका प्रहार किया, कि जिस्से वह पिसकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १५ ॥ कोई २ राक्षस वानरोंके चनकटे खाय और कोई २ घूंसे खाय २ कर मारे गये, कोई २ रुधिर उगलनें लगे, और किसी २ राक्षसके मुख सूखकर फैल गयेथे ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे राक्षस और वानरोंकी सैनाके बीचमें आरत वाणी सिंहनाद और गर्जन करनेंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे वह विकराल वदन क्रूर निशाचर और वानर गण वीर मार्गमें टिके हुए क्रोधमें भर भय छोड़ युद्ध करते हुए अद्भुत कर्म करनें लगे ॥ १८ ॥ प्रहस्तके मंत्री नरान्तक, कुम्भहनु, महा नाद, और समुन्नत, नामक यह चारों राक्षस भी अनेक वानरोंका संहार करनें लगे ॥ १९ ॥ परन्तु द्विविद नाम वानरनें इनको इस प्रकारसे कूद२ कर वानरोंको मारते देख पर्वतका शृङ्ग उठाय उस्से राक्षस नरान्तकका प्राण संहार किया ॥ २० ॥ कपिश्रेष्ठ दुर्मुखनें एक बड़ा भारी वृक्ष उठाय उस्से शीघ्र कर्मकारी निशाचर समुन्नतको मार डाला ॥ २१ ॥ महावीर तेजस्वी जाम्बवानजीनें अत्यन्त क्रोधमें भरकर महानादकी छातीमें एक बड़ी भारी शिलामार उसको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ २२ ॥ कपिवर वीर्य-वान तारनें बड़े भारी वृक्षके प्रहारसे कुम्भ हनुके ऊपर चोट चलाई कि जिस्से उसका प्राण निकल गया ॥ २३ ॥ परन्तु रथपर चढ़ा हुआ प्रहस्त उन वानर लोगोंके इस कर्मको न सहकर धनुष धारण करकै वानरोंका घोर नाश करनें लगा ॥ २४ ॥ उस कालमें दोनों ओरकी सैनाके वेगसे इधर उधर भ्रमण करनेंसे उनकी वह विचित्र गति आवर्तके समान जान

पड़नें लगी, और उससे खलभलायमान अप्रमेय समुद्रकी समान शब्द होनें लगा ॥ २५ ॥ उस रणभूमिमें दुर्मद निशाचर प्रहस्तनें अत्यन्त क्रोधित होकर बाणोंका झड लगाकर वानरोंको मारने लगा ॥ २६ ॥ उस समय वह रणभूमि वानर और राक्षस गणोंके मृतक देहोंसे परिपूर्ण होगई कि जिस्से वह ऐसी ज्ञात होनें लगी मानों यह भयंकर पर्वतोंसे घिर रही है ॥२७॥ वसन्तऋतुके आगमनसे खिले हुए पलाशके फूलोंसे जिस प्रकार पृथ्वी शोभायमान होतीहै, वैसेही रणभूमिमें रुधिरकी नदीनें प्रवाहित होकर अत्यन्त शोभा धारणकी ॥ २८ ॥ मरे हुए वानर राक्षस इसके तट टूटे हुए अस्त्र शस्त्रही किनारे वाले बड़े २ वृक्ष रुधिरका वहनाही जल-राशि ऐसी यह रणभूमि उस कालमें यम सागरगामिनी नदीसी ज्ञात हुई ॥ २९ ॥ प्लीहा और यकृत जिसकी घनी कीचड इधर उधर पडे हुए इसके शिवार वीरोंकें कटे हुए रुण्डही इस नदीके बड़े मच्छ व काटे हुए अंग जलकी घासके समान ॥ ३० ॥ रक्त मांसकी चाहना करनेंवाले गृध्रही इस नदीके हंस, कंक रूप सारसही जिसमें बैठेहैं, और चरबीही जिसका फेनरूपहै; और आरत वाणीही जिसका बादलोंका गर्जना रूप शब्दहै ॥ ३१ ॥ कायर पुरुषोंके लिये यह युद्धमय नदी अति दुःखसे पार होनेके योग्यहै; शरद कालमें जैसे श्रेष्ठ नदी हंस सारस पक्षियोंसे सेवित होतीहै ऐसी ॥ ३२ ॥ नदीमें गजयूथपतिगण जिस प्रकारसे पद्मरज शालिनी नलिनीके पार उतर जातेहैं; वैसेही वह राक्षस और वानर मुख्य२ गण अति सरलतासे इस नदीके पार उतरनें लगे ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे प्रहस्तको रथपर सवार हुआ बाणोंकी वर्षा करते हुए वानर गणोंको विदारित करते देख सैनापति नील अत्यन्त वेगसे धाये ॥ ३४ ॥ सैनापति प्रहस्त बड़े भारी मेघकी समान बलशाली और आकाशमें टिके हुए पवनकी समान नीलको रणभूमिमें अपनी ओर झपटकर आता हुआ देख ॥ ३५ ॥ अपने सूर्यकी समान रथको चलायकर नीलके सन्मुख आया तिसके पीछे धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ सैनापति प्रहस्त अपने बडे भारी धनुषको खेंच-कर ॥ ३६ ॥ सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा; वह समस्त महावेगवान बाण नीलके शरीरपर गिर और नीलकी देहको

फोड़ उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३७ ॥ मानो क्रोधित सर्प पृथ्वीमें प्रवेश कर रहेहैं, सैनापति नील अग्निकी समान बाणोंसे घायल होकर ॥ ३८ ॥ वह परम दुर्द्धर्ष वीर्यवान् महा कपि एक वृक्ष उखाड़कर प्रहस्तके ऊपर प्रहार करते हुए ॥ ३९ ॥ राक्षस श्रेष्ठ प्रहस्त इस घोर प्रहारसे अत्यन्त दुःखित और व्यथित होकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हो वारंवार सिंहनादकर एकही वानरोंके सैनापति नीलके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ ४० ॥ वानरोंके सैनापति नील इन दुरात्मा प्रहस्तके बाणोंको न रोक सके और नेत्र मूंदकर उन समस्त बाणोंको सहन कर लिया । जैसे कि शरद ऋतुकी शीघ्र वर्षाको वृषभ सहन कर लेताहै ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार बडे दुःखसे सहनेके अयोग्यभी प्रहस्तके बाण सैनापति नीलनें नेत्र मूंद करकै सहन कर लिये ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे वह महा बलवान् सैनापति नील प्रहस्तके बाणोंकी वर्षा देख क्रोधित हो एक बडाभारी शालका वृक्ष ग्रहण करते हुए, और उसको चलाय कर प्रहस्तके रथमें जुते हुए चार घोडोंका संहार किया ॥ ४३ ॥ और क्रोधमें भरकर उस दुरात्मा राक्षस प्रहस्तका धनुषभी नीलनें बल पूर्वक ग्रहण करके तोड डाला; धनुष तोडकर वानर सैनापति नील वारंवार सिंहनाद करनें लगे ॥ ४४ ॥ धनुषहीन होनेपर सैनापति प्रहस्त घोर मूसल ग्रहण करकै रथसे छलांग मारकर पृथ्वीपर कूद पडा ॥ ४५ ॥ दोनों घोर युद्ध करनें लगे; दोनों जिस प्रकार वैर बांधे हुएथे; वैसेही बलवानभीथे । युद्ध करते २ दोनोंका शरीर कट गया; और दोनोंहीके शरीरसे रुधिर बहनें लगा ॥४६॥ दोनोंही तीक्ष्ण दाँतोंके प्रहारसे परस्पर एक दूसरेको काटनें लगे, दोनोंका विक्रम और चेष्टा सिंह शार्दूल की समानथी॥४७॥वृत्रासुर वृत्रासुरके मारनेंवाले इन्द्रमें जिस प्रकारसे युद्ध हुआथा; इसही प्रकारसे यह दोनों वीर समरमें यश प्राप्त करनेकी वासनासे युद्धकरने लगे दोनो ही परस्पर एक दूसरेको विना जीते हुए समरसे लौटनेंवाले नहीं थे ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे विपुल बल शाली सैनापति प्रहस्तनें नीलके माथेपर मूसलका प्रहार किया; जिसके प्रहारसे नीलके माथेसे रुधिर बहनें लगा ॥ ४९ ॥ जब अंगोंसे रुधिर निकलने लगा, तब महाकपि सैनापति नीलनें अत्यन्त क्रोधित हो एक बड़ा भारी वृक्ष ग्रहणकर प्रहस्तकी छातीमें प्रहार किया ॥ ५० ॥ परन्तु सैनापति

वीर प्रहस्त उस प्रहारको कुछभी न समझता हुआ वही बड़ाभारी मूसल ग्रहण कर अत्यन्त जोरसे वलवान् वानर श्रेष्ठ नीलके सन्मुख धाया। महा कपि नील उस उग्र वेगवान् राक्षसको सन्मुख दौड़े आते हुए ॥ ५१ ॥ देख एक महा शिला ग्रहण करके उस समरकी अभिलाषा करनेंवाले मूसलसे युद्ध करते हुए ॥ ५२ ॥ प्रहस्तके मूसल प्रहार करनेंसे पहलेही उसके मस्तकपर वह शिला मारी कपिश्रेष्ठ नीलकी चलाई हुई उस घोर और महा शिलानें प्रहस्तके मस्तकको खंड २ कर डाला; उस समय उस प्रहस्तकी इन्द्रियें लोप होगईं, वल जाता रहा, देहकी श्री नष्ट होगई; और वह प्राण रहित होकर जड़ कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिर पडा॥५३॥ ॥५४॥तिस काल प्रहस्तका मस्तक धड़से अलग हो जानेंपर उससे और उसके शरीरसे इस प्रकारसे रुधिरकी धारें गिरनें लगी, कि जिस प्रकार पर्वतसे झरना झरते हैं ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सैनापति नीलके हाथसे जब प्रहस्त मारा गया, तब निशाचरोंकी बची हुई वह कंपायमान करनेंके अयोग्य बड़ी भारी सैना शिर झुकायकर लंकाको चली गई ॥ ५६ ॥ जिस प्रकार पुल पांव देके टूट जानें पर सब जल निकल जाताहै और नहीं रुक सकताहै, वैसेही सैनापति प्रहस्तके मारे जानेंपर वह निशाचरगण वहां टिकनेंको समर्थ न हुये ॥ ५७ ॥ उस सैनापति प्रहस्तके मारे जानें-पर वह निशाचर गण शोकके समुद्रमें डूबकर चेतना रहित होगये, और पीछे सब उद्यम छोड़ राक्षसपति रावणके मन्दिरमें आय ध्यान करते हुए पुरुषकी समान मौन धारण किये रहे ॥ ५८ ॥

ततस्तुनीलोविजयीमहाबलःप्रशस्यमानः
सुकृतेनकर्मणा ॥ समेत्यरामेणसलक्ष्मणे
नप्रहृष्टरूपस्तुबभूवयूथपः ॥ ५९ ॥

इस ओर महावीर सैनापति नील युद्धमें जय प्राप्त करकै श्रीरामचन्द्र-जी और लक्ष्मणजीके निकट आये, तत्काल सवही उनकी इस वीरताकी वहुतसी वडाई करनें लगे ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० लङ्का० अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ॥

तस्मिन्हतेराक्षससैन्यपालेप्लवंगमानामृषभेणयुद्धे॥
भीमायुधंसागरवेगतुल्यंविदुद्रुवेराक्षसराजसैन्यम्॥ १ ॥

वानर श्रेष्ठ नीलके हाथसे जब सैनापति प्रहस्त संग्राम भूमिमें मारा गया तब भयंकर अस्त्र शस्त्रधारी समुद्रके वेगकी समान राक्षस रावणकी भागी हुई ॥ १ ॥ गुप्त सैनानें लंका नगरीमें रावणके निकट जाय "अग्निके पुत्र नीलके हाथसे प्रहस्त मारा गया" उसको यह सम्वाद सुनाया। राक्षस रावण सैनाके मुखसे प्रहस्तका मरना सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ ॥ २ ॥ रणभूमिसें प्रहस्तको मराहुआ सुनकर रोषके परवश और शोकसे विकल चित्त होकर देवराज इन्द्रजी जिसप्रकार देव सैनाके अधिनायकोंसे कहतेहैं इसीभांति रावण राक्षस दलके यूथनाथोंसे बोला ॥ ३ ॥ कि जिनकरके इन्द्रके बलका मथनकारी हमारा वह सैनापति अपने अनुयायी वर्ग और हाथी घोडेके सहित मार डालागया ऐसे शत्रुको अब तुच्छ नहीं समझना चाहिये ॥ ४ ॥ इसकारण शत्रुओंका विनाशकरनें और विजय प्राप्त करनेंके लिये हम स्वयंही अद्भुत रणभूमिमें जायँगे अब शोच विचार करनें कीभी कुछ आवश्यकता नहीं ॥५॥ प्रदीप्त अग्निसे वनके जलनेंकी समान आज हम बाण समूहोंसे रामचंद्र व लक्ष्मणके सहित उस वानरोंकी सैनाको मार डालेंगे ॥ ६ ॥ अपने प्रकाशित शरीरसे प्रकाशमान होता हुआ अमरराज इन्द्रजीका शत्रु रावण यह कह कर दामिनीकी समान दमकते हुए उत्तम घोडे जोते हुए रथपर सवार हुआ ॥ ७ ॥ उस समय शंख, भेरी, और ढोल बजनें लगे; वीरगण कोई बांहोंको थपकनें लगे कोई २ किल किलानें लगे और कोई २ सिंहनाद करनें लगे! इस प्रकारसे राक्षस रावण पवित्र स्तोत्रसे पूजित होकर शीघ्रही युद्ध करनेंको चलता हुआ ॥ ८ ॥ उस कालमें पर्वत व बादलकी समान आकारवाले और अग्निकी समान दीप्त नेत्र युक्त मांस खानेवाले राक्षसोंके संगमें वह राक्षसपति रावण भूतोंके संग अमरनाथ रुद्रकी समान शोभायमान होने लगा ॥ ९ ॥ तिसके पीछे उस महातेजस्वी रावणनें सैनाके सहित नगरसे बाहर आय महासमुद्र और महा मेघकी समान शब्दायमान पर्वत, वृक्ष, हाथमें लिये रण करनेंको तैयार और उग्ररूप वाली

बल शाली निराली वानरोंकी सैनाको देखा ॥ १० ॥ इस ओर भुजगेन्द्र सदृश वह युगाल शाली अपनी सैनामें टिके हुए सुन्दर दर्शन रघुनन्दन श्रीरामचंद्रजी उस परम प्रचंड राक्षसकी सैनाको देखकर शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणजीसे बोले ॥ ११ ॥ रंग बिरंगी ध्वजा पताकाओंसे शोभित महेन्द्रचलकी समान हाथी घोड़ोंसे युक्त और प्रास खड्ग शूल इत्यादि भांति २ के अस्त्र शस्त्रोंसे परिपूर्ण यह किस वीरकी सैना है ॥ ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर इन्द्र तुल्य वीर्यवान विभी-षणजी उन महाबलवान राक्षस श्रेष्ठोंकी सैनाका परिचय श्रीरामचंद्रजीके समीप निवेदन करने लगे ॥ १३ ॥ विभीषणजी बोले हे राजन्! प्रभात कालके उदय होते हुए सूर्यकी समान जो महाबलवान राक्षस हाथीपर चढकर उसके मस्तकको कम्पायमान करता हुआ आताहै उसका नाम अकम्पन है (यह दूसरा अकम्पन था) ॥ १४ ॥ जो रथपर चढ़कर वारंवार इन्द्रके धनुषकी तुल्य अपने धनुषको कंपायमान करता है जिसके रथपर सिंह ध्वज लगाहै,जो तिरछे दांत वाले हाथीकी समान शोभायमान हो रहाहै वही वरदान पाया हुआ राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीतहै १५ विन्ध्याचल अस्ताचल और महेन्द्र पर्वतकी समान अप्रमेय देहवालाहै जो धनुषधारी अतिरथहै और अपने धनुषपर टंकार देता हुआ आय रहा है इसही बडे आकारवाले वीरका नाम अतिकायहै ॥ १६ ॥ प्रभात कालके सूर्यकी समान लाल २ नेत्र किये जो महाबलवान राक्षस घंटे नादकी समान नादकरते हुए क्रूर स्वभाववाले हाथीके ऊपर चढकर गर्जन कर रहाहै यही महात्मा महोदर नाम वीर है ॥ १७ ॥ जो सन्ध्या कालके मेघ और पर्वतकी समान आकार वालाहै और सुवर्णके गहनोंसे भूषित घोडों पर चढकर मारीच्याकार झालर लगा प्रास उठाये हुएहै इस वज्रकी समान वेगवान वीरका नाम पिशाचहै जो तीक्ष्ण शूल ग्रहण करकै वज्रसे भी अधिक वेगवान चंद्रमाकी समान प्रकाशमान और बिजलीकी समान श्रेष्ठ बैलपर चढ़कर चला आताहै वह बडा यशस्वी त्रिशिरानामक राक्षसहै ॥ १९ ॥ विशाल और चौडी छातीवाला और सौदामिनीकी समान रूपवानजो वीर स्थिरभावसे अपने धनुषको टंकारता और कंपायमान करता चला आताहै और जिसके रथकी ध्वजापर

शेषजीका चिह्न दिखाई देताहै उसका नाम कुम्भहै ॥ २० ॥ निशाचरोंकी सैनाका पताकारूप जो अद्भुत कर्म करनेंवाला वीर सुवर्ण और हीरोंसे खचित प्रकाशमान धूम सहित परिघलिये हुए आगमन करताहै इसका नामनिकुम्भहै ॥ २१ ॥ जो बड़े शरीरवाला वीर अग्निकी समान तेज युक्त पताका शोभित, चापखड्ग बाण समूहसे परिपूर्ण रथपर चढ़ा हुआ शोभायमान हो रहाहै इसकाही नाम नरान्तक कहतेहैं ॥ महाराज! यह वीर अपनी समान योद्धा न पायकर अपनी बांहोंकी चुलबुलाहट मिटानेंको पर्वतके शृङ्गोंसेही युद्ध किया करताहै ॥ २२ ॥ जिसनें देवता लोगोंकाभी गर्व नाश कियाहै, और विविध प्रकारके घोर रूप वाले विकट नेत्र युक्त व्याघ्र, ऊंट हाथी, मृग, घोड़ेके समान मुखवाले भूतोंके संग जो शोभितहै ॥ २३ ॥ और भूतोंसे घिरे हुए शिवजीकी समान शोभायमान हो रहाहै, और जहांपर महीन सौ कमानियोंका बना हुआ चंद्रमाकी समान उज्वल व श्रेष्ठ छत्र लगा दिखाई देताहै, इसी स्थानमें राक्षसोंका स्वामी विराजमानहै ॥ २४ ॥ हेमहाराज! जिसने इन्द्र और यमराजके गर्वकाभी नाश कियाहै, और जिसके मुखपर हलते हुए कुन्डल दीख पडतेहैं, यह वही हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतकी समान भयंकराकार निशाचर पति सूर्यकी समान प्रकाशमान हो रहाहै ॥ २५ ॥ तिसके पीछे शत्रुनाशी श्रीरामचंद्रजी, विभीषणसे कहने लगे कि अहो ! राक्षसराज रावणका तेज कैसा प्रदीप्तहै! और बडाही तेजस्वीहै ॥ २६ ॥ इसके देहकी किरणें चारों ओर ऐसी फैल रहीहैं, और यह सूर्यकी समान ऐसा दुष्प्रेक्ष्य हुआहै कि इसका तेजसे ढका हुआ रूप हमको नहीं दीख पाताहै ॥२७॥ इस राक्षसोंके स्वामी रावणका शरीर जिस प्रकारसे प्रकाशित हो रहाहै, देवता और दानव वीर गणोंका शरीरभी ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ करताहै ॥ २८ ॥ महाबलवान राक्षस जो कि रावणके अनुगामी वर्ग हैं वह सबही पर्वतोंके समान बड़े आकारवाले दीप्तायुधधारीहैं; और देहकी चुलबुलाहट निवारण करनेके लिये सबही पर्वतोंके सहित युद्ध किया करतेहैं ॥ २९ ॥ यह राक्षस रावण प्रदीप्त भयंकर दर्शन और तीक्ष्ण देह वाले राक्षसोंके संग होनेसे भूत गणोंके साथ यमराजकी समान जान पडताहै ॥ ३० ॥ बडेही भाग्यकी बातहै

कि आज यह पापात्मा हमारे दृष्टि गोचर हुआहै इसलिये सीता हरण होंनेसे जो क्रोध हमारे मनमें उत्पन्न हुआहै, वह क्रोध आज हम इसके ऊपर छोडेंगे ॥ ३१ ॥ वीर्यवान श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर धनुषपर रोदा चढ़ाय आगे बढे, और लक्ष्मणजीभी इनके पीछे २ चले ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे महात्मा राक्षसपति रावण उन महा बलवान राक्षसोंसे बोला कि तुम लोग हमारी आज्ञासे इस समय जाय लंकाके चार पुर द्वार राजमार्ग और घरोंमें शंका रहित मनके सुख सहित टिके रहो३३॥ कारण कि एकत्र हुए महाबलवान वनवासी वानरगण तुम लोगोंके सहित हमारी पुरीसे बाहर आनेका यह छिद्र पाय, प्रवेश करनेंके अयोग्य वीर शून्य लंका पुरीको मर्दन करके विध्वंश कर डालेंगे ॥ ३४ ॥ जब राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार पुरीकी रक्षा करनेको उसमें प्रवेश करते हुए; तब निशाचर पति रावणभी अपने मंत्रियोंको विदा देकर स्वयं बडे २ मत्स्य आदि जीवोंसे परिपूर्ण महा समुद्रकी समान उस बडो भारी वानरोंकी सैनाको विदारण करने लगा ॥ ३५ ॥ तब वानरराज सुग्रीवजी, प्रदीप्त बाण सहित धनुष धारण किये राक्षसोंके स्वामी रावणको अचानक आया हुआ देख एक बडा भारी पर्वतका शिखर उखाडकर निशाचर पतिकी ओर दौडे ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे बहुत वृक्ष और कंगूरोंसे शोभित वह पर्वतका शृङ्ग इन्होंने राक्षस रावणके ऊपर चलाया परन्तु रावणनें अपने ऊपर गिरते २ उस पर्वतके शृङ्गको सुवर्णकी फोंका लगे हुए बाणोंसे सहसा खंड २ कर डाला॥ ३७॥ वह बड़े भारी और उत्तम कंगूरे व तरु श्रेणी विराजित पर्वतका शृङ्ग जब पृथ्वीमें गिर पड़ा तब निशाचर नाथ रावणनें क्रोधित होकर महा सर्पकी तुल्य यमराजकी समान एक बाण ग्रहण करता हुआ ॥ ३८॥ इस कुमति वाले रावणनें सुग्रीवजीके मार डालनेंकी वासनासे यह महा वेगवान बाण उनके ऊपर चलाया यह बाण चिनगार निकलते अग्निकी समान प्रदीप्तथा उसकी गति वज्र और पवनके समान थी ॥ ३९ ॥ षड़ानन स्वामी कार्त्तिक जीकी चलाई हुई उस शक्तिनें जिस प्रकार क्रौञ्च पर्वतको भेद डालाथा, वैसेही रावणकी बाहोंसे छूटे हुए उस बाणनें इन्द्रजीके वज्रकी समान प्रकाशित देह वानर राज

सुग्रीवजीके ऊपर गिरकर उनके हृदयको भेद डाला ॥ ४० ॥ धीर श्रेष्ठ वानरराज सुग्रीवजी उस बाणके प्रहारसे अत्यन्त आरत और चेतना रहित हो घोर शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े राक्षसगण उन को रणभूमिके मध्य मूर्छित होकर पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखकर आनंद के मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ४१ ॥ फिर गवाक्ष गवय सुषेण ऋषभ ज्योतिर्मुख नल इत्यादि वानरगण अपनी २ देहको बढाय पर्वतोंको उठाय २ राक्षसराज रावणके सन्मुख दौड़े ॥ ४२ ॥ परन्तु राक्षसोंके स्वामी रावणनें अत्यन्त तीखे शत बाण चलाय उनके प्रहारको व्यर्थ कर सुवर्णकी फोक लगे हुए बाणोंसे उन वानरश्रेष्ठोंके ऊपर प्रहारकिया तब वह भयंकर शरीरवाले वानर गणभी राक्षसनाथ रावणके बाणोंके लगनेसे छिन्न भिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥४३॥ तब राक्षस रावण बाणोंके ढेरके ढेर चलायकर उग्र स्वभाववाली उस वानरोंकी सैनाको बाण जालसे छानें लगा इस प्रकार रावणके बाणोंसे मर्ममें चोट खाय वानरोंमेसे अनेक मर गये और अनेक गिर पड़े, अनेक छिन्न भिन्न होगये और उनमेंसे अनेक भयके मारे विह्वल होकर शरणागत प्रतिपालक अनाथ नाथ श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये ॥ ४४ ॥ वानरोंको शरणमें आया हुआ देखकर धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा श्रीरामचंद्रजी सहसा आगे बढ़नेंको तैयार हुए कि इतने हीमें लक्ष्मणजीनें हाथ जोड़कर उनसे यह परमार्थ युक्त वचन कहे॥४५॥हे आर्य ! हम अकेलेही इस दुरात्मा रावणका संहार कर सकतेहैं, इस कारण हे विभो ! आप निश्चय जानें कि इस निशाचरको हमहीं मार डालेंगे ॥ ४६ ॥ यह वचन सुनकर सत्य पराक्रम महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें कहा कि हे लक्ष्मण ! जाओ ! परन्तु रणमें भली भांति सावधान रहना ॥ ४७ ॥ तुमसे इतना कहनेंका यही अभिप्रायहै, कि रावण अत्यन्त वीर और महाबलवानहै, उसका पराक्रम अद्भुतहै, जब उसको क्रोध उत्पन्न होजाताहै. तब त्रिलोकवासी समस्त जनभी इसके पराक्रमको नही सह सकते इसमें कोईभी सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥ तुम उस रावणके प्रहार करनेंका अवसर खोजते रहना और सावधान चित्तसे अपनी रक्षा करते रहकर अपने प्रहारके समय शत्रुपर दृष्टि रक्खो. व धनुष पर

बाण चलाय संभलकररिपुपर चलाओ ॥ ४९ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी उनको प्रणाम करते हुए, और उनकी पूजाकी, व श्रीरामचंद्रजीनेंभी इनको गलेसे लगाय कर भेंटा जब लक्ष्मणजी युद्ध करनेंको गये ॥५०॥ तब युद्धमें आगे बढ़कर लक्ष्मणजीनें देखा कि हाथीकी शुण्डके समान चढ़ा उतार बांहोंवाला राक्षस रावण भयंकर धनुष उठाय अनिवार बाणोंकी वर्षा करता हुआ वानरोंको ढक रहाहै, और वानर लोगभी छिन्नभिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिर रहेहैं ॥ ५१ ॥ इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको आगे बढ़ा हुआ देखकर उनको रोक आप रावणके बाणजालको चीरते फाड़ते उसके सन्मुख धाये ॥ ५२ ॥ तिसके पीछे बुद्धिमान हनुमानजी रावणके रथपर चढ़ दहिनी भुजाका तमाचा उठाय उसको भय दिखाते हुए बोले ॥ ५३ ॥ कि तुम वरदानके प्रभावसे देवता, दानव, गन्धर्व और राक्षस लोगोंसेही अवध्य हुएहो, परन्तु वानर लोगोंसे तुमको सम्पूर्ण भयकी सम्भावनाहै ॥ ५४ ॥ इससमय पांच उँगलियोंके सहित हमारा दहना हाथ जो उठा हुआ देखते हो यही तेरी देहमें बहुत कालके बसे हुए प्राणोंको सदाके लिये निकाल कर अलग करेगा ॥ ५५ ॥ भयंकर पराक्रमकारी रावण हनुमानजीके वचन सुन क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर उनसे कहता हुआ ॥ ५६ ॥ कि हे वानर! तुम शंकारहित होकर शीघ्र हमारे ऊपर प्रहार करके अचल कीर्त्ति को प्राप्त करो; तिसके पीछे तुम्हारे पराक्रमकी परीक्षा करके फिर हमभी तुम्हारा संहार करेंगे ॥५७॥ रावणके वचन सुनकर हनुमानजी बोले कि हमारे पराक्रमको और अधिक जाननेंकी क्या आवश्यकताहै, यदि तुम हमारा पराक्रम जानही लेना चाहतेहो तौ हमसे विनाशको प्राप्त हुए अपने पुत्र अक्षकुमारकी याद करलो ॥ ५८ ॥ महातेजस्वी वीर्यवान राक्षसोंके स्वामी रावणने हनुमानजीसे ऐसा सुन उन पवनकुमारकी छातीमें एक लातमारी; उस लातके लगनेसे हनुमानजी वारंवार विचलित भी हुए॥५९॥ परन्तु उन महातेजस्वी हनुमानजीनेंभी एक मुहूर्तमें स्थिरहो अत्यन्त क्रोध सहित एक लात रावणके ऊपर चलाई ॥ ६० ॥ तब दशमुख रावण उन महाबलवान हनुमानजीके चरणकी चोट खाय भूडोलके समय कांपते हुए पर्वतकी समान कम्पायमान होंनेलगा ॥ ६१ ॥

उस कालमें सिद्ध चारण ऋषि देवता और असुरगण रावणको संग्राम भूमिमें इस प्रकारसे लातके प्रहारसे चेतना रहित होते देखकर आनंदके मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६२ ॥ तिसके पीछे रावण कुछ देरमें चेतना पायकर स्थिर हो हनुमानजीसे बोला कि हे वानर! तुम अपने वीर्यके प्रभावसे बड़ाई करनेंके योग्य हुए हो और इस बातसे हमभी बड़ाई करनेंके योग्य हुए हैं कि तुम समान बलवान हमारे शत्रु हुए हैं ॥ ६३ ॥ जब रावणनें इस प्रकारसे कहा तब हनुमानजी बोले हे रावण ! मेरे वीर्यको धिक्कारहै, कारणकि मेरी लातके प्रहारको खायकर भी तू अबतक जीवितहै ॥ ६४ ॥ रेनिर्बोध तू वृथा क्यों गर्व करताहै ! और एक बार प्रहार कर देख; तिसके पीछे हमारा यह घूंसा तुझको यमराजके भवनमें पहुंचा वेगा ॥ ६५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर वीर्यवान रावणके क्रोधकी अग्नि भड़क उठी, और दोनों नेत्र लाल हो आये, और उसनें अपने दहिने हाथकी मुट्ठी बांधकर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ ६६ ॥ हनुमानजी भी बड़ी छातीमें घूंसेका प्रहार लगनेंसे वारंवार चलायमानहो चेतना रहित हुए महा बलवान हनुमानजीको विह्वल देखकर ॥ ६७ ॥ अतिरथ रावण रथपर चढ़ा हुआ शीघ्र नीलके सन्मुख आया, राक्षसोंके राजा दशग्रीव प्रतापशाली रावणनें ॥ ६८ ॥ पराये मर्मको भेदनेंवाले भयंकर सर्पके विषकी समान बाणोंके समूहसे वानरोंके सैनापति नीलको मारा ॥ ६९ ॥ परन्तु वानरोंके सैनापति नीलनें बाणोंसे घायल होकर भी एक हाथसे एक पर्वतका शृङ्ग ग्रहण कर राक्षसपति रावणके ऊपर चलाया ॥ ७० ॥ इतनेही में इस ओर महा तेजस्वी हनुमानजी चेतना प्राप्तकर सावधान हो समर करनेंकी वासनासे चारों ओर निहार राक्षस रावणको नीलके साथ युद्ध करते हुए देख क्रोधमें भरकर बोले ॥ ७१ ॥ कि हे रावण ! इस समय तुम नीलके साथ युद्ध कर रहेहो, इस कारण इस समय तुम्हारे ऊपर धावमान होना हमें उचित नहींहै; नहीं तो अभी तुम्हें हम भलीभांति सिखावन देते ॥ ७२ ॥ परन्तु अतुल तेजस्वी बलशाली राक्षसेन्द्र रावणनें हनुमानजीके वचनोंका निरादर करके, उस नीलके छोड़े हुए पर्वतके शिखरको ताककर, ऐसे सात बाण छोड़े कि जिससे वह शृङ्ग खंड २ होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ७३ ॥

तव परवीरघाती वानर सैनापति नील संग्राम भूमिमें उस पर्वतके शृङ्गको खंड २ होकर पृथ्वीपर गिरा हुआ देख कोपके मारे प्रलयकी अग्निके समान जल उठे ॥ ७४ ॥ उस समय वह सैनापति नील अश्वकर्ण, धव, शाल और बौरे हुए आम इत्यादि वृक्ष उखाड़ २ समरमें रावणके ऊपर चलानें लगे ॥ ७५ ॥ राक्षसोंके राजा रावणने इन समस्त चलाये हुए वृक्षोंको देखते २ खंड २ कर डाला और नीलके ऊपर बाणोंकी घोर वर्षा करने लगा ॥ ७६ ॥ मेघ जिस प्रकार जल वर्षातेहैं वैसेही लंकेश्वर रावणके बाण वर्षासे घबड़ाय वानर सैनापति नील अपनी देहको छोटा बनाय कूदकर रावणकी ध्वजापर कूद गये ॥ ७७ ॥ तब दशानन रावण अग्नि पुत्र नीलको अपनी ध्वजापर बैठा हुआ देखकर क्रोधके मारे जल उठा यह देखकर वानर सैनापति नीलनें घोर सिंहनाद किया ॥ ७८ ॥ इस प्रकारसे वानरोंके सैनापति नील कभी रावणकी ध्वजाके डंडेपर, कभी धनुषपर, और कभी २ रावणके मुखके आगे विराजमान होनें लगे, सैनापति नीलकी यह अनुपम वीरता देखकर श्रीरामचंद्र, लक्ष्मण हनुमानजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ७९ ॥ रावणनें भी सैनापति नीलकी यह अद्भुत रणकी चतुरता देख अत्यन्त विस्मितहो एक अद्भुत प्रदीप्त अग्नि बाण ग्रहण किया ॥ ८० ॥ इस ओर वानरगण रावणको नीलकी शीघ्रता और चंचलतासे रावणको सम्भ्रान्त चित्त देख आनंदसे कुलाहल करनें लगे ॥ ८१ ॥ रावणभी वानर दलका ऐसा शब्द सुनकर इस प्रकारका क्रोधयुक्त और सम्भ्रान्त चित्त हुआ कि अपने कर्तव्यको वह निश्चय न कर सका कि अब क्या करना चाहिये ॥ ८२ ॥ तिसके पीछे उस महा तेजस्वी राक्षसोंके पति रावणनें अग्नेयास्त्रसे युक्त बाण ग्रहण करकै ध्वजापर बैठे हुए नीलकी ओर दृष्टि करके कहा ॥ ८३ ॥ तब महातेजवान राक्षसोंके स्वामी रावणनें नीलसे कहाकि हे वानर! तुमने वारंवार मायासे अपना छोटारूप बनायकर हमको धोखा दिया ॥ ८४ ॥ परन्तु अब जो समर्थ हो तौ अपने जीवनकी रक्षा कर कारणकि हमनें देखा कि तैंने मायाके प्रभावसे वारंवार अपने रूपको छोटा बनायाहै सो अबभी वही छोटा रूप बनाकर अपने जीवनकी रक्षाकर ॥ ८५ ॥ परन्तु तुम्हारे अनंत चेष्टाओं करकै जीवनकीरक्षामें यत्नवान होने पर

भी आग्नेयास्त्र युक्त हमारा यह बाण प्राण रक्षा करते हुए तुम्हारे प्राणों-का नाश कर देगा ॥ ८६ ॥ महाबाहु राक्षसराज रावणनें यह कहकर आग्नेयास्त्रसे शर सन्धानकर सैनापति नीलके ऊपर वह बाण चलाया ॥ ८७ ॥ तब सैनापति नीलकी छातीमें वह अग्निबाण लगा, कि जिसके लगनेंसे वह जलते हुए सहसा गिर पडे ॥ ८८ ॥ परन्तु अपने तेज और पिता अग्निके माहात्म्यसे इस आग्नेयास्त्रसे उनके प्राणोंका नाश नहीं हुआ वह केवल दोनों जांघोंको पकडे हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८९ ॥ इस ओर समरका अभिलाषी रावण वानरश्रेष्ठ नीलको चेतना रहित देख मेघके समान शब्द करते हुए अपने रथको चलायकर सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजीकी ओर चला ॥ ९० ॥ प्रतापवान रावण लक्ष्मणजीको प्राप्त होकर वानरोंको निवारण कर अपने तेजसे विराज मान हो वारंवार अपने धनुषको टंकारनें लगा ॥ ९१ ॥ तब प्रबल बल शाली सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी रावणको इस प्रकारसे धनुषपर टंकार देते देखकर बोले; हे राक्षस नाथ ! वानरोंके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है, क्योंकि वह तुम्हारी समानके नहीं हैं, इस कारण उनसे युद्ध न करकै हमारे साथ युद्ध करो हम तुमसे युद्ध करनेंके लिये तैयार हैं ॥ ९२ ॥ यह कहकर लक्ष्मणजी धनुषपर टंकार देंने लगे; तब राक्षस राज दशानन उनके प्रति शब्द पूर्ण वचन और धनुषकी टंकारका उग्र शब्द श्रवण करकै और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे आगे खड़ा देखकर क्रोधसे पूर्ण यह वचन बोला ॥ ९३ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारा समय पूर्ण होगया इस कारणसे तुम्हारी बुद्धिमेंभी विपरीतता आगई है; इसही कारणसे हो या हमारे सौभाग्य हीसेही जबकि तुम आज हमारी दृष्टिके मार्गमें पड़ेहो तब निश्चयही हमारे बाणोंसे छिन्न भिन्न इसी मुहूर्तमें तुम यमलोककी यात्रा करोगे ॥ ९४ ॥ रावणके यह वचन सुनकर महावीर लक्ष्मणजी विस्मय रहितहो बोले; हे रावण ! तुम पापी लोगोंके अगुएहो, इसीसे निर्लज्जहो, गर्ज २ कर अपने उज्वल दांत बाहर निकाल ऐसी बकवादकर रहेहो परन्तु महा प्रभाव लोग कभी ऐसा नहीं कहते ९५॥ हे राक्षसेन्द्र ! हम तुम्हारे वीर्य बल प्रताप और पराक्रमको भली भांति जानतेहैं (अर्थात् सूने आश्रमको पायकर जानकीको हर लायेहो इस्से,

यह ध्वनि निकलतीहै) इसलिये अब ऐसे बकवाद करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं है,हम धनुष बाण धारण करकै टिके हुए हैं, तुमभी आगेको बढ़ो॥९६॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब रावणनें लक्ष्मणजीके ऊपर श्रेष्ठ फोंक लगे हुए सात बाण चलाये सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीनें तीखे धार युक्त सुपुंख बाणोंसे उन रावणके चलाये बाणोंको काट डाला ॥ ९७ ॥ तब लंकापति रावण शरीर कटे सर्पोंकी समान उन बाणोंको सहसा खंड २ देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ, व और दूसरे तीखे बाण लक्ष्मणजीके ऊपर चलानें लगा ॥ ९८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई वीर लक्ष्मण-जीनें उन बाणोंसे चलायमान होकर अपने धनुषको चढ़ाकर बाणोंकी वर्षा करनें लगे; और छुरे, अर्द्धचन्द्र, व तीखे फलके लगे हुए भालोंसे रावणके चलाये हुए बाणोंको खंड २ कर डाला ॥ ९९ ॥ उन अमोघ बाणोंके जालको निष्फल देख और लक्ष्मणजीकीभी शीघ्रतासे विस्मित हो रावणनें फिर तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ १०० ॥ तब लक्ष्मणजीनेंभी अपने धनुषको चढ़ाय इन्द्रके वज्रकी समान वेगवान अग्निकी समान तीक्ष्ण धारवाले बाण राक्षसपति रावणके वध करनेंके लिये छोड़े ॥१०१॥ परन्तु राक्षसोंके स्वामी रावणनें उन समस्त बाणोंको काटकर ब्रह्माजीके दिये हुए प्रलयकी अग्निके प्रचंड बाणसे लक्ष्मणजीके माथेमें प्रहार किया ॥ १०२ ॥ लक्ष्मणजीनें रावणके बाणसे अत्यन्त पीडित आरत होकर क्षण भरको चलायमान हुए, परन्तु अनेक कष्ट करकै क्षणभरमेंही चेतना पाय अपने गिरे हुए धनुषको उठायकर उसपर बाण चढ़ाय इन्द्रके शत्रु रावणका धनुष काट डाला ॥ १०३ ॥ दशरथ कुमार लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे रावणका धनुष काटकर अत्यन्त तीखे तीन बाण उस रा-क्षस राजके मारे रावण उन बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर मोहित होगया और फिर अत्यन्त कष्टसे मूर्छासे जागा ॥ १०४ ॥ लक्ष्मणजीसे धनुष कट जानें और उनके बाणोंसे ताडित होनेंके कारण उग्र सामर्थ्यवान देव-शत्रु रावणके अंगोंमें चरबीसे मिला हुआ रुधिर निकलनेसे और दूसरा उपाय नदेखकर उसने ब्रह्माजीकी दीहुई अमोघ(अव्यर्थ)शक्ति ग्रहणकी॥१०५॥ राक्षसोंके राजा रावणनें सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीको ताककर संग्राम भूमिमें वानरोंको त्रास उपजानेंवाली और धुरों सहित अग्निकी समान

जलती हुई वह शक्ति छोड़दी ॥ १०६ ॥ भरतजीके छोटे भाई लक्ष्मण-जीनें उस शक्तिको अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर उसको ताक असंख्य अग्निकी समान बाण छोड़े तथापि वह शक्ति किसी प्रकारसे व्यर्थ न होकर लक्ष्मणजीकी विशाल भुजामें आनकर प्रवेश करती हुई ॥ १०७ ॥ तब वह शक्तिमान रघुवीर लक्ष्मणजी शक्तिसे घायल होकर पृथ्वीमें गिर पडे; उनको इस प्रकारसे पृथ्वीमें गिरते हुए देखकर राक्षसराज रावण सहसा उनके निकट चला गया, और उनको उठानेंके अभिप्रायसे भुजाओंसे बल सहित ग्रहण करता हुआ ॥ १०८ ॥ परन्तु आश्चर्य ! जो महावीरनें हिमालय, मन्दर, सुमेरु; वरन सब प्राणियोंके सहित त्रिलोकके उठानेंको समर्थ हैं, परन्तु वही वीर रावण आज लक्ष्मणजीके उठानेंको किसी प्रकारसे समर्थ नहीं हुआ ॥ १०९ ॥ ब्रह्माजीकी शक्तिके छातीमें लगनेंसे यद्यपि लक्ष्मणजी मूर्च्छितभी हुए तथापि विष्णुजीभी जिन श्रीरामचन्द्र-जीको यथार्थतासे नहीं जानते कि इनमें कितनी सामर्थ्य है; ऐसे ऐश्वर्य युक्त सबके प्रेरणा करनेंवाले श्रीरामचन्द्रजीका इन लक्ष्मणजीनें स्मरण किया, इस कारण चौदह भुवनोंसे कोटि गुणी अधिक गरुआई लक्ष्मण-जीमें आगई कि जिससे रावण इनको उठा नहीं सका ॥ ११० ॥ देवताओंका कण्टक रावण इस बातको जानकरही देव दानवोंका गर्व हरनें वाले लक्ष्मणजीको उठाने के लिये अपनी बीसों भुजा ओंसे बहुतेरी चेष्टा करता हुआ परन्तु इस्से किसी प्रकारसे लक्ष्मणजीकी मर्यादा उल्लंघन नहीं हो सकी ॥ १११ ॥ इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजी लक्ष्मणजीको मूर्छित हुआ देख क्रोधित हो रावणके सन्मुख धाये और वज्रकी समान मूका बांधकर अति वेगसे उसकी छातीमें मारा ॥ ११२ ॥ राक्ष-सोंका स्वामी रावण उस मूकेके प्रहारसे चेतना रहित और रथसे गिरकर अपनी दोनों जांवों के बल कांपता थर थराता पृथ्वीपर गिर पड़ा॥११३॥ इस समय रावणके मुख नेत्र और कानोंसे बहुतही रुधिर वहनें लगा और वह ज्ञानरहित हो घूमता २ फिर अपने रथपर जाकर गिरा॥११४॥ ऐसा मूर्छित यह रावण हुआ कि हाथ पैर कुछभी इसके नहीं चलतेथे, तब भयंकर विक्रमकारी रावणको मूर्छित हुआ देखकर ॥ ११५ ॥ वानर ऋषि सिद्ध और इन्द्रादि देवगण सिंहनाद करनें लगे तिसके पीछे

तेजस्वी हनुमानजी रावणसें पीडित लक्ष्मणजीको ॥ ११६ ॥ अपनी दोनों बाहोंसे ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके पास लाये सुमित्रानंदन लक्ष्मण जी शत्रु लोगोंसे कंपायमान होनेके योग्य नहीं इसकारण रावणके उठाने से न उठे परन्तु हनुमानजीकी सौहार्दता और परम भक्तिसे प्रसन्न होकर वह उनके लिये बहुतही हलके होगये ॥ ११७ ॥ तिसके पीछे वह शक्ति संग्रामभूमिको छोड़े हुए लक्ष्मणजीको त्याग कर रावणके रथमें आय अपने स्थानपर विराजमान हुई ॥ ११८ ॥ अतुल तेजस्वी रावणनेभी उस बड़े भारी संग्राममें चैतन्यताको पाय फिर अपना बड़ा भारी धनुष और तीक्ष्ण बाण ग्रहणकिये ॥ ११९ ॥ इस ओर शत्रुओंके मारनेंवाले लक्ष्मणजीभी अपने अचिन्तनीय वैष्णव अंशको स्मरणकर व्यथित और सावधानचित्त हुए ॥ १२० ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाके अनेक वीरोंको रावणके हाथसे मृतक होते देखकर शीघ्रतासे उसकी ओर चले॥१२१॥ श्रीरामचंद्रजीको संग्राम करनेंके लिये तैयार देखकर वीर हनुमानजी उनसे हाथ जोड़कर बोलेकि हमारी पीठपर सवार होकर आप रावणका वध कीजिये॥१२२॥विष्णुजीने जिस प्रकार गरुड़जी पर सवार होकर देवताओंके वैरी दैत्योंका संहार कियाथा, श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर॥१२३॥ महाबाहु हनुमानजीकी पीठ पर चढ़े और श्रीरामचंद्रजीनें रावणकोभी रथपर चढ़ेहुए देखा ॥ १२४ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी उस रावणको देखकर विष्णुजीनें जिस प्रकार क्रोधितहो अस्त्र धारण कर राजा बलिपर दौड़ेथे वैसेही रावणके सन्मुख धाये ॥ १२५ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी अपने धनुष पर वज्रके शब्दकी समान कठोर टंकारदे रावणसे यह गंभीर वचन बोले ॥१२६॥ रेराक्षस शार्दूल! खड़ा रह खडारह! तू हमारे ऐसे कुप्यारे कार्यको करके क्या स्थानमें भागकर छुट कारा पायसकताहै?॥१२७॥तुम यदि भागकर इन्द्र, यम, सूर्य, ब्रह्मा, अग्नि अथवा श्रीशंकरजीकेभी शरणमें जाओ, या दशों दिशाओंमें कहीं जाकर छिपो तथापि आज हमारे हाथसे तुम किसी प्रकारसे निस्तार नपासकोगे ॥ १२८ ॥ राक्षसराज! तेरे द्वारा घायल होकर लक्ष्मण विषादित हुएहैं, हम इसी दुःखसे आज प्रतिज्ञा करके तुम्हारे पुत्रोंके सहित तुम्हारी मृत्युके स्वरूप हो रणभूमिमें

आयेहैं ॥ १२९ ॥ विचारकर याद कर ले कि जनस्थानके रहनेंवाले श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र धारण किये अद्भुत दर्शन चौदह हजार (१४०००) राक्षसोंका हमनेही प्राण संहार कियाहै ॥ १३० ॥ महाबलवान रावणनें श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन महावेगवान पवनकुमार हनुमानजीकी पीठमें जोकि श्रीरामचंद्रजीको अपने ऊपर चढ़ा रहेथे ॥ १३१ ॥ अत्यन्त क्रोध युक्तहो पहला वैर संभाल, कालाग्निकी समान प्रकाशित अत्यन्त तीखे बाण मारे ॥ १३२ ॥ जोकि, हनुमानजीके लगे, परन्तु संग्राममें रावणके बाणोंसे ताड़ित हुए स्वभावसेही महा तेजस्वी हनुमानजीका तेज औरभी अधिक बढ़ा ॥ १३३ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीकी पीठमें रावणके बाणोंसे घाव हुआ देख अत्यन्त क्रोध करते हुए ॥ १३४ ॥ उन श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणोंको चलायकर पहिये, घोड़े, छत्र, पताका, सारथि, शूल और खड्गके सहित रावणका रथ चूर्ण और छिन्नभिन्न करके रत्ती २ काट डाला ॥ १३५ ॥ जिस प्रकार भगवान इन्द्रजीनें सुमेरु पर्वतको चूर्ण कियाथा, वैसेही वज्र और अशनि समान बाणोंसे उन्होंनें इन्द्रके शत्रु रावणकी छातीमें चोटदी, और विविध भांतिके गहनोंसे युक्त भुजामेंभी प्रहार किया ॥ १३६ ॥ पहले वज्र अथवा अशनिके आघातसेभी क्षुभित या चलायमान नहीं हुआ; वही वीरश्रेष्ठ रावण श्रीरामचंद्रजीके बाणसे घायल होकर ऐसा आरत और चलायमान हुआकि उसका धनुष उसके हाथसे गिर पड़ा ॥ १३७ ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजीनें रावणको ऐसा व्याकुल देख एक अर्द्ध चंद्र दीप्त बाण ग्रहण कर उससे राक्षसपतिका सूर्यकी समान प्रकाशित मुकुट काट डाला ॥ १३८ ॥ इस समयमें राक्षस राज रावणकी अवस्था विषहीन सर्प और तेजहीन सूर्यकी समान हुई । मुकुटके कट जानेंसे रावणकी समस्त सुन्दरता जाती रही तब श्रीरामचंद्रजी उससे बोले ॥ १३९ ॥ हेराक्षस ! तुमनें घोर युद्ध कियाहै तुम्हारे हाथसे हमारी सैनाके अनेक वीर मारे गयेहैं इस समय हम तुमको इसी कारणसे बहुत थका हुआ देखतेहैं; यही विचारकर हमनें आज अपने बाणोंसे तुमको यमराजके गृहमें नहीं पठाया ॥ १४० ॥ हेराक्षसराज! तुम संग्राम करके श्रमके मारे अत्यन्त कातर हुएहो इस

लिये हम सलाह देतेहैं कि तुम इस समय लंकामें जायकर सावधान होवो। सावधान होनेंके पीछे धनुष धारण कर जबकि फिर संग्राम भूमिमें आगमन करोगे उसी समय तुम हमारा पराक्रम जान सकोगे ॥ १४१ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तौ लंकानाथ रावण लंका पुरीको झटपट चला गया, उसका वीर गर्व और उत्साह जातारहा, धनुष कट कुट गया घोड़े और सारथीभी नष्ट हुए रावणका शरीर बाणोंके लगनेंसे घायल होरहा उसकी चूडामणि लुप्त होगई ऐसी अवस्थाको पाय मनमें अति दुःखित रावण लंकापुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ १४२ ॥ देवता और दानव गणोंका शत्रु महाबलवान निशाचरपति रावण जब इस प्रकारसे लंकाको चलागया तब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित रणभूमिमें जो वानर पड़ेथे; और उनके अंगोंमें जो बाण गड़ेथे उनको निकलवा डाला और सबकी व्यथा निवारणकी ॥ १४३ ॥

तस्मिन्प्रभग्नेत्रिदशेंद्रशत्रौसुरासुराभूतग
णादिशश्च ॥ ससागराःसर्वमहोरगाश्चत
थैवभूम्यंबुचराःप्रहृष्टाः ॥ १४४ ॥

इस ओर इन्द्रके शत्रु रावणको रणसे भागा इस प्रकारसे लंकामें प्रवेश करते देखकर, सुर, असुर, महर्षि, उरग, भूतगणादिक और समस्त सागर व भूचर जलचरादि सबही प्राणी प्रसन्न हुए ॥ १४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये कात्यायन कुमार पंडित ज्वाला प्रसाद मिश्रकृते भाषानुवादे युद्ध कांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ॥

सप्रविश्यपुरींलंकांरामबाणभयार्दितः ॥
भग्नदर्पस्तदाराजाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥

इसके पीछे लंकेश्वर दशानन श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्यथित हृदय होकर लंका पुरीमें प्रवेश करता हुआ,उसके हृदयमें श्रीरामचंद्रजीका भय तबतक प्रबलथा दिग्विजयी होनेंका इतने दिनोंतक जो अभिमान था आज वह अभिमान चूर्ण होगया ॥ १ ॥ सिंहके निकट हाथी और पन्नग

राज गरुड़जीके निकट सर्पकी अवस्था जिस प्रकार होजातीहै, श्रीरामचं-द्रजीके निकट रावणकी भी आज वही अवस्था हुई थी ॥ २ ॥ रावण घरमें बैठकर विकसित सौदामिनीकी समान तेजशाली और ब्रह्म दंडकी समान बाणोंको याद करकै अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे सुवर्णके बने सिंहासन पर बैठ राक्षसोंकी ओर निहार रावण बोला ॥ ४ ॥ हा ! हमनें जो कठोर तप कियाथा; हम जानतेहैं कि आज वह तप वृथा होगया; हम इन्द्र तुल्य प्रतापी होकर जब कि एक साधारण मनुष्यसे रण भूमिमें हार गये; तब हमारी वीरताही क्या हुई ॥ ५ ॥ पूर्व कालमें प्रजापति ब्रह्माजीनें हमसे कहाथा कि हे राक्षसराज ! मनुष्यके हाथसेही तुमको भयहै, इस समय उनकी वही बात हमको याद आतीहै; देखतेहैं कि अब सत्य सत्यही मनुष्यसे हमको घोर भय आ पहुँचा; कि जिसका ठिकाना नहीं ॥ ६ ॥ हमनें वरदान पानेंके समय ब्रह्माजीसे, देवता, गन्धर्व, दानव यक्ष, राक्षस, और सर्प इन सब जातियोंसे न मारे जांय, यह वर मांगा था मनुष्यकी जातिको अपदार्थ समझकर "मनुष्य जातिसे भी हम न मारे जाँय, ऐसा वरदान हमनें नहीं मांगा ॥ ७ ॥ पूर्व समय इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न हुए महाराजाधिराज अनरण्यनें जो शाप हमको दियाथा सो जान पड़ताहै कि उसही शापका फल फलनेंके लिये उनके वंशमें दशरथ कुमार रामचंद्रका जन्म हुआ होगा ॥ ८ ॥ महाराज अनरण्यनें कहाथा कि हे राक्षसोंमें नीच ! हमारे वंशमेंसे एक ऐसे वीर पुरुष जन्म ग्रहण करेंगे कि जिसके हाथसे तुम, तुम्हारे पुत्र, मंत्री, समस्त सैना अश्व, सारथि, ॥ ९ ॥ इन सबके साथ हे दुर्मति नराधम ! तुम संग्राममें मारे जाओगे; हमनें पूर्वकालमें एक बार वेदवतीके प्रति बल प्रकाश करकै उसके सतीपनका अपमान कियाथा ॥ १० ॥ सो अब जान पड़ताहै कि उन वेदवती हीनें इन महाभागा जनकनंदिनीके रूपमें जन्म ग्रहण कियाहै, इनसेही हमारा नाश होगा, इनके अतिरिक्त देवी उमा, *नन्दीश्वर, रम्भा, और वरुणजीकी कन्या पुञ्जिकस्थलीनें ॥ ११ ॥ जो

---

* जब रावणने कैलाश उठाया तब पार्वतीने शाप दिया कि स्त्रीके निमित्त तेरा मरण होगा नंदीश्वरकी वानराकार मूर्त्ति देखकर हँसा तब उन्होंने शाप दिया कि वानरही तेरा नाश करैंगे, रंभा निमित्त नल कूवरके शापकी कथा लिख चुकेहैं । वरुणकी कंन्या पुंजिकस्थाको रावणने पकडा तौ ब्रह्माने शाप दिया कि स्त्रीहरणसे मरण होगा ॥

शाप हमको दियेहैं, इससमय हमको वही शापकी दशा उपस्थित हुईहै; ऋषिलोगोंके वचन कभी मिथ्या होंनेवाले नहीं, हे राक्षसगण ! यह समस्त जान बूझकर अव जो कुछ कर्तव्यहो सो तुम करो ॥ १२ ॥ इससमय राजमार्ग और कोटकी भीतके किनारे २ राक्षसलोग रक्षाकरनेंको टिक रहेहैं अति गंभीरता युक्त देव दानव गर्व खर्व कारी ॥ १३ ॥ पितामह ब्रह्माजीके शापसे सोतेहुए कुम्भकर्णको भी अव जगाना उचितहै । अपने आपको समरमें श्रीरामचंद्रजीसे हारा और प्रहस्तको मारा हुआ जान ॥ १४ ॥ और कुम्भकर्णको महावलवान जाना तव महावली रावणनें राक्षसोंको आज्ञादी, कि सव द्वारोंपर प्रथम यत्न करो, और फिर सव प्राकार पर चढ़कर उसको रखाओ ॥ १५ ॥ और नींदके वश हुए कुंभकर्णकोभी जगाओ, कारण कि वह कामके मारे हमारे विचले भाई सदा सोयेही रहतेंहैं ॥ १६ ॥ पितामह ब्रह्माजीसे वर पानेके अनुसार निशाचर कुंभकर्ण छैमहीनेतक सोया हुआ रहकर केवल एक दिनको जागताहै परन्तु इससमय उसको सोये हुए केवल नौही दिन * हुएहैं, इसकारण उसको यत्न सहित इससमय जगानाही कर्तव्यहै ॥ १७ ॥ एक वही महाबाहु इस भयंकर युद्धमें बड़ा चतुर है; वही सव वीरोंका शिरोमणिहै, वही राम लक्ष्मण और समस्त वानरोंका वहुत शीघ्र विनाश करैगा ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण राक्षसोंमें श्रेष्ठ कुंभकर्ण ऐसा महावल शाली होकरभी ग्राम्यसुखमें (स्त्रीपुत्रादिकोंके सुख) अनुरागी रहकर मूढ सोयाही रहताहै ॥ १९ ॥ हम उस दारुण संग्राम भूमिमें रामचंद्रसे यद्यपि हारगयेहैं परन्तु कुंभकर्णके जागनेंपर हमको यह शोक नहीं दुःखित करैगा ॥ २० ॥ हमपर ऐसी घोर विपद् पड़नेंके समयभी यदि इन्द्रकी समान पराक्रम करनेंवाला कुम्भकर्ण हमारी किसी प्रकारकी सहायताके कामोंमें न आवै.तव फिर हम उसको लेकर क्या करेंगे॥२१॥ राक्षसोंके राजा रावणके ऐसे वचन सुनकर सव राक्षसगण अति शीघ्रतासे कुम्भकर्णके स्थानको गये ॥ २२ ॥ रक्त मांस प्रिय वे राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार कुंभकर्णके लिये सुगन्धितमाला और श्रेष्ठ २ भोजन करनेंकी सामग्री इकट्ठी करकै लेजानें लगे ॥ २३ ॥

* कुंभकर्णके जागनेका नियम नहींथा वर्षों सोताही रहताथा क्योंकि "नव सप्तदशाष्टौच आसानिति" इस्से महीनौ और अगस्त्यके वाक्यसे वर्षोंका सोना पाया जाताहै ॥

तिसके पीछे वह राक्षस कुम्भकर्णकी गुहामें प्रवेश करते हुए, यह गुफा अतिरमणीक थी, यहांपर फूलोंकी सुगान्धि आय रहीथी, इस गुहाका द्वार अति विस्तार वालाथा; यह गुफा चार कोशकी लंबी चौड़ी- थी ॥ २४ ॥ वह महाबली राक्षस कुम्भकर्णके श्वासोंकी पवन लगनेके कारण बहुतही कंपायमान हुए और बड़े कष्टसे स्थिर हो अति यत्न सहित उस गुफामें पैठे ॥ २५ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंनें रत्नकांचन बनें हुए फर्ससे युक्त उस रमणीक गुफामें प्रवेश करकै सोते हुए भयंकर विक्रम कारी कुम्भकर्णको देखा ॥ २६ ॥ सब राक्षस लोग मिलकर कुम्भकर्ण- की निद्रा तोड़नेका उपाय करनेलगे इन राक्षसोंनें देखाकि महावीर्य कुम्भकर्ण सोता हुआ विकराल हो रहा है और पर्वतकी समान पड़ा है ॥ २७ ॥ कुम्भकर्णके सब रुँये ऊपरको खड़ेथे वह सर्पकी समान लंबे २ श्वासोंकी पवनसे मानों राक्षसोंको घूमाय रहाथा ऐसा भयंकर कर्मकारी कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ २८ ॥ इसका मुख पातालकी समान बड़ाथा नाक के स्वरभी बहुतही लंबे चौडेथे उसके सब शरीरमें (जोकि शेजपर पड़ाथा) चरबी और रुधिरकी दुर्गन्ध आय रहीथी॥२९॥ वह सुवर्णका बाजू पहरे हुएथा उसके शिरपर मुकुट सूर्य भगवानकी किरणोंकी समान प्रकाशित हो रहाथा ऐसे राक्षसव्याघ्र शत्रुओंका नाश करनेंवाले कुम्भकर्णको राक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥ तिसके पीछे राक्षसोंने कुम्भकर्णके निकट पर्वताकार तृप्तिकर जीवजन्तुओंकी राशि उसके खानेंको खडी करदी ॥ ३१ ॥ असंख्य मृग महिष और शूकर इकट्ठे किये गये इसके पीछे अद्भुत ढेरका ढेर अन्नभी राक्षसव्याघ्रोंने वहांपर संग्रह किया ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे राक्षस लोगोंनें रुधिरके भरे हुए घड़े और विविध भांतिके माँस भी इकट्ठे करकै कुम्भकर्णके निकट रखदिये ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे उसकी देहमें सुगन्धित उत्तम चंदन लगाया और वह सब राक्षस उसको श्रेष्ठ २ हार और चन्दनकी सुगन्धिको सुँघानें लगे ॥ ३४ ॥ निशाचर गण उस शत्रुनाशी कुम्भकर्णके सन्मुख तीव्रगंधवाली धूप इत्यादि सुगन्धियें रखकर बादलके समान गंभीर शब्दसे गर्जकर उसकी स्तुति करनें लगे ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाकी समान श्वेत शंखोंको वायु पूरित कर बजाने लगे जब कुम्भकर्ण न जागा तौ

क्रोधमें भरकर सिंहनादभी करनें लगे ॥ ३६ ॥ कोई २ राक्षस बडे शब्दसे चिल्लानें लगे; कोई २ बाजे आदि अंग बजाय २ ताल देते, कोई उसके चरण उठाय पृथ्वीपर पटक देते; और कोई २ कुम्भकर्णके जागनें के लिये विविध भांतिसे शब्दही करनें लगे ॥ ३७ ॥ उस समय शंख, भेरी और ढोलकी नादके सहित बाहु स्फोटन और सिंहनादका शब्द श्रवण करकै पक्षीगण चारों ओरको उड़े परन्तु उडते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥ परन्तु जब नीदसे अचेत हुआ महाबलवान महात्मा कुम्भकर्ण निशाचर गणोंके घोर सिंहनाद करनेंसेभी न जागा, तब राक्षसोंनें क्रोधित होकर भुशुण्डी, मूशल, और गदा इत्यादि अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे प्रचंड निशाचर गण पर्वतोंके शिखर, मूसल गदा और मूकोंसे पृथ्वीपर सुखसे सोये हुए कुम्भकर्ण की छातीमें अत्यन्त बलसे प्रहार करनें लगे, परन्तु किसीसेभी कुछ न हुआ ॥ ४० ॥ यह राक्षसगण महाबलवान होकरभी कुम्भकर्णके प्रबल श्वासोंकी पवनके आगे किसी प्रकार ठहरनेंको समर्थ नहीं हुए ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे भयंकर विक्रमकारी वह राक्षस गण धोती जांघिये आदि अपनें वस्त्रोंको संभालकर मृदंग, ढोल, भेरी शंख और कुम्भ नामक बाजोंको बजानें लगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे दश हजार नीले अंजनकी ढेरकी समान उस कुम्भकर्णको जगानेके लिये बड़ेही यत्न करनें लगे ॥ ४३ ॥ वह राक्षस अनेक प्रकारके प्रहार, गर्जन और भांति २ के बाजे बजाकरभी उस कुम्भकर्णको नहीं जगाय सके ॥ ४४ ॥ जब वह राक्षस इन सब कार्योंके करनेंका कुछ फल न पाते हुए, तब उन राक्षसोंकी मति इस्सेभी भारी उपाय करनें की हुई, वह राक्षसगण उन्हींके अनुसार ऊंट गधे और हाथियोंको, वारंवार दंडोंसे चाबकोंसे और अंकुशोंसे मार कर कुम्भकर्णके ऊपर चलानें लगे ॥ ४५ ॥ सब इकट्ठे होकर भेरी शंख, और अति जोरसे मृदंग बजानें लगे और कुम्भकर्णके शरीरमें बड़े भारी कांटे लगे काठोंसे ठोकनें लगे ॥ ४६ ॥ और मुद्गर व मूसलसेभी कुंभकर्णको यह राक्षस अति जोरसे मारनें लगे, तिस कालमें उस तुमुलनिनादसे पर्वत और समस्त बनोंके सहित लंका पूर्ण होगई, परन्तु कुम्भकर्णकी नींद न टूटी ॥ ४७ ॥ तिसके पीछे सुव-

णंके बने हुए सहस्रों नगाड़े एकही संग बजाये गये और चारों ओर उनकी ध्वनि गूंज उठी परन्तु कुम्भकर्ण न जागा ॥ ४८ ॥ जबकि कुंभ- कर्ण शापसे ग्रसित रहनेंके कारण ऐसी घोर निद्रामें सोया रहकर किसी प्रकारसे न जागा तब यह सब राक्षस अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे उन कोप युक्त भयंकर कर्मकारी राक्षस कुम्भकर्णको जगानेंके लिये अपना २ पराक्रम दिखानें लगे ॥ ५० ॥ कोई २ नगाड़े और भेरी बजानें लगे, कोई २ सिंहनादही करते हुए किसी २ नें उसके वाल पकड़ कर खेंचे और कोई २ उसके कानोंको काटनें लगे ॥ ५१ ॥ और बहुतसे राक्षस सैकड़ों जलके भरे हुए घड़े लेकर कुम्भकर्णके कानोंको जलसे भरनें लगे, तथापि नींदमें मस्त कुम्भकर्ण कुछभी चलायमान न हुआ ॥ ५२ ॥ और दूसरे कूट, मुद्गरादि हाथसें लिये बलवान निशाचर गण मुद्गरोंसे उसके मस्तक, छाती, और सब अंगोंमें चोट देनें लगे॥५३॥ बहुत सारे राक्षस रस्सियोंके बन्धनसे बांधकर उसके शरीरमें शतघ्नियोंका प्रहार करनें लगे; इस प्रकारसेभी मार खाय कर कुम्भकर्णनें निद्राके सुखको नहीं त्यागा ॥ ५४ ॥ तब राक्षसोंनें उसके ऊपर अति वेग सहित हजारों हाथियोंकी दांय चलाई, तब हाथियोंके पैरोंसे दबनेंका सुख पाय कुम्भकर्ण जाग उठा ॥ ५५ ॥ कुम्भकर्ण उन गिराये हुए पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंसे मार खाय करभी निद्रा नाशके वश, भूंखसे व्याकुलहो वारंवार जंभाई लेता सहसा उठ कर बैठ गया ॥ ५६ ॥ तिसके पीछे राक्षसेन्द्र कुम्भकर्ण वज्रसेभी अधिक सारवान और अचल शृङ्ग व नाग भोगकी समान दोनों बांहोंको फैलाय घोड़ीके समान अपने विकट मुखको खोल ॥ ५७ ॥ जँभाई लेंनेके समय उसका वदन पातालकी समान गंभीर और मुख मंडल सुमेरु गिरिपर उदय हुए सूर्यकी समान दृष्टि आया ॥ ५८ ॥ जब जँभाई लेता हुआ वह निशाचर जागा तब जिस प्रकार पर्वत परसे निकल कर पवन वहताहै उसही भांति कुम्भकर्णकी श्वासका पवन वहनें लगा ॥ ५९ ॥ जब कुम्भकर्ण जागा तब उसका रूप संसारको जलानेंके लिये तैयार प्रलय कालीन कालकी समान जान पड़नें लगा ॥ ६० ॥ उसकी दोनों आंखें प्रकाशमान अग्निकी समान थीं, उनसे बिजलीसी निकल रहीथी; मानों वह कुम्भकर्ण प्रकाशमान महा

ग्रह था ॥ ६१ ॥ तिसके पीछे उसके भोजन करनेंको जो महिष शूक-रादि विविध प्रकारकी सामग्री गईथी वह इकट्ठी कीगई; वह सब उन राक्षसोंनें कुम्भकर्णको दिखाये, तब महाबलवान कुम्भकर्ण उन सबको भक्षण करनेंमें लगा ॥ ६२ ॥ बहुत दिनोंसे भूंखा प्यासा वह इन्द्रका शत्रु राक्षस कुम्भकर्ण ढेरके ढेर विविध भांतिके मांस खाय और असंख्य चरबी; व मदिराके घड़ोंको पान करके अपनी प्यास बुझाता हुआ॥६३॥ राक्षसगण उसको तृप्त जानकर धीरे २ उसके आगे बढ़ते गये और शिर झुकायकर प्रणाम कर उसके चारों ओर खड़े होगये ॥ ६४ ॥ उसकी आंखें नींदके वश होनेसे कुछ एक खुली, और लाल २ हो रहींथीं; उस कुम्भकर्णनें चारों ओर दृष्टि डालकर राक्षसोंको देखा ॥ ६५ ॥ राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्ण इन सब राक्षसोंको समझाय बुझाय फिर अकालमें जगा-नेंके कारण विस्मितहो इन सबसे बोला ॥ ६६ ॥ हेराक्षस गण! तुमनें आदर सहित अति यत्नसे किस कारण हमको जगाया! महाराज निशाचर नाथ कुशलसे तौहैं? इस समय भयका तौ कोई कारण नहीं है? ॥ ६७ ॥ अथवा इस पूछनेंका क्या प्रयोजनहै जबकि तुमनें हमको ऐसी शीघ्रतासे जगायाहै तब तौ कोई बड़ा भारी भय आ पहुंचाहै इसमें कोईभी संदेह नहीं ॥ ६८ ॥ जो कुछभीहो आज हम राक्षस राजका भय दूर कर देंगे; महेन्द्र पर्वतको उखाड़ और तोड़ फोड़कर फेंक देंगे अथवा अग्निके तेजको खर्वकर देंगे ॥६९॥ जब कि हमारी समान सोते हुए वीरको जगाया गयाहै; तब इस्का साधारण कारण नहीं जान पड़ता; इससे हमारे जगानेंका क्या कारण है वह तुम यथार्थ२कहो ॥७०॥ शत्रुओंके नाश करनें वाले कुम्भकर्णके ऐसा कहनें पर रावणका यूपाक्ष मंत्री हाथ जोड़कर बोला ॥ ७१ ॥ हे महाराज ! हम लोगोंको देवकृत कोई भय नहीं पड़ाहै परन्तु इस समय मनुष्योंसे हमको तुमुल भय आन पहुंचाहै ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! मनु-ष्योंसे इस समय जैसा भय हमको पहुंचाहै दैत्य अथवा दानवोंसेभी ऐसा भय हमको कभी नहीं हुआ ॥ ७३ ॥ सीताके हरणसे संतापित हुए श्रीरामचन्द्रही हमारे इस बड़े भारी भयके कारण हैं, उनकीही पर्वताकार वानरोंकी सैनासे लंकापुरी घिरी हुई है ॥ ७४ ॥ पहले केवल एकही वानर करके लंका जलाई गई, और कुंजरवा अपने साथियोंके सहित

हितकुमार अक्षभी मारा गयाहै ॥७५॥ और की बात तो क्याकहैं देवता लोगोंका कण्टक स्वयं पुलस्त्यनंदन राक्षस राज रावणभी सूर्यकी समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके सामनेंसे भागकर चले आये हैं, सोभी जब श्रीरामचन्द्रजीनें दया करके उनसे कहाकि "जाओ भागजाओ इस समय हमनें तुम्हें छोड़ दिया ॥ ७६ ॥ देव, दैत्य, और दानवोंसेभी जिन महाराजकी कभी पहले दुरवस्था नहीं हुई, आज रामचन्द्र करके ऐसी प्राण संशयकारिणी दशा उनको आई, उन रामचन्द्रनें दया करके राजाको प्राणोंसे नहीं मारा ॥ ७७ ॥ उस समय कुम्भकर्ण यूपाक्षके वचन सुनकर और संग्राम भूमिमें अपने भ्राता रावणका पराजय होना जानकर नेत्र घुमाय उससे बोला ॥ ७८ ॥ हे यूपाक्ष! हम प्रथम सबसे पहले वानरोंकी सैनाके सहित राम और लक्ष्मणका नाश करकै पीछेसे अपने बड़े भाई-के चरणोंको देखेंगे ॥ ७९ ॥ हम वानर लोगोंके मांस और रुधिरसे राक्ष-सोंको तृप्त करेंगे; और हम स्वयं राम और लक्ष्मणका रुधिर पियेंगे॥८०॥ राक्षस सैनापति वीरोंमें मुख्य महोदर कुम्भकर्णके ऐसे गर्वित और रोषके मारे दोष युक्त वचन सुनकर हाथ जोड़कर बोला ॥ ८१ ॥ कि हे महा-बाहो! रावणके वचन सुनकर और उनके गुण दोष विचार पीछेसे शत्रु लोगोंको आप जीतें ॥ ८२ ॥ विपुल बलशाली महा तेजस्वी कुम्भकर्ण महोदरके ऐसे वचन सुनकर राक्षसोंके साथ २ उस स्थानसे चलनेंका अभिलाषी हुआ ॥ ८३ ॥ उस कालमें कुछ एक निशाचर भयंकर नेत्र वाले भीमरूप और भयंकर पराक्रम कुम्भकर्णको जागा हुआ देखकर पहले हीसे रावणके निकट चले गयेथे ॥ ८४ ॥ उन्होंनें वहां जाकर देखा कि रावण दिव्य सिंहासन पर बैठाहै; तब उन राक्षसोंने यह देखतेही हाथ जोड़कर रावणसे कहा ॥ ८५ ॥ हे राक्षसेश्वर! आपके भ्राता कुम्भकर्ण जाग गये हैं अब वह सीधेही वहांसे रणभूमिको चले जाँय या आप इस स्थानमें उनके साथ साक्षात् करनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ८६ ॥ तब लंका-पति रावणनें हर्षित होकर उनसे कहाकि हम एकवार कुम्भकर्णको देख-नेंकी इच्छा करते हैं; तुम परम आदर मानके साथ उसको संग लेकर यहांपर चले आओ ॥ ८७ ॥ वे राक्षस रावणकी आज्ञाके अनुसार उसके

वचनोंको स्वीकारकर कुम्भकर्णके निकट आनकर निवेदन करते हुए८८॥ राक्षस राज रावण आपके देखनेंकी इच्छा करतेहैं; इस कारण आप गमन करनेंमें स्थिर निश्चय कीजिये; हम लोगोंके निवेदन करनेंसे आप अपनें बड़े भ्राताका आनंद बढ़ावें ॥ ८९ ॥ महावीर दुर्द्धर्ष कुम्भकर्ण अपने भ्राताकी आज्ञाको जान और उसे माथे पर चढ़ाकर (बहुत अच्छा) कह सेजपरसे उठा ॥ ९० ॥ और हर्षित मनसे मुखधो स्नानकर परम सुखपाय बलको बढ़ानेंवाली मदिराके पीनेंका अभिलाष करता हुआ ॥ ९१ ॥ तब राक्षस लोग रावणकी आज्ञाके अनुसार विविध भांति मदिरा और विविध प्रकारके भोजन पदार्थ लेआये ॥ ९२ ॥ तेज बल युक्त कुम्भकर्ण मदिराको पीकर कुछ एक मतवाला और तीव्र स्वभाव होकर चलनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ९३ ॥ कुम्भकर्ण हर्षित होकर कालान्तक यमराजकी समान शोभायमान होनें लगा उस कालमें कुम्भकर्ण जब राक्षसोंके साथ २ अपने भ्राता रावणके भवनमें गमन करनें लगा; तब उसके वारंवार चरण धरनें उठानेंसे पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ९४ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् अपनी किरणोंके जालसे पृथ्वीको प्रकाशित करतेहैं, वैसेही कुम्भकर्ण भी अपनी कान्तिसे राज मार्गको प्रकाशित करता हुआ चला। इन्द्रजीके ब्रह्माजीके भवनमें जानेंकी समान हाथ जोड़े हुए राक्षस रूपी मालासे घिरकर कुम्भकर्ण अपने भ्राताके स्थानको जानें लगा ॥ ९५ ॥ वह पर्वतके शृङ्गकी समान शत्रु ओंका नाश करनें वाला अप्रमेय वीर जब राजमार्गमें चला जाताथा तब बाहर खड़े हुए वनवासी वानर अपने यूथपतियोंके साथ इसको देखतेही त्रासित हुए ॥ ९६ ॥ उन वानरोंमेंसे कोई २ सबके शरण देनेंवाले श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये और कोई २ दुःखी होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, कोई २ दशों दिशा ओंमें भागगये; और कोई २ मारे भयके पृथ्वीपर गिरकर सोयरहे ॥ ९७ ॥

तमाद्रिशृंगप्रतिमंकिरीटिनंस्पृशंतमादित्यमिवात्मतेजसा ॥ वनौकसःप्रेक्ष्यविवृद्धमद्भुतंभयार्दितादुद्रुविरेयतस्ततः ॥ ९८ ॥

अधिक क्या कहैं! जिसनें अपने तेजसे सूर्यको भी उल्लंघन कर दियाहै;

उस पर्वतके शृङ्गकी समान किरीट धारी बड़े ऊंचे और अद्भुत दर्शन वीर कुम्भकर्णको देखतेही, वानरोंमें जिसनें जहां सुभीता पाया वह भयके मारे उसी स्थानमें भाग गया ॥ ९८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध कांडे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥

ततोराममोमहातेजाधनुरादायवीर्यवान् ॥
किरीटिनंमहाकायंकुंभकर्णददर्शह ॥ १ ॥

तिसके पीछे महा तेजस्वी वीर्यवान् धनुष धारण करनें वाले श्रीरामचंद्रजीनें उस किरीट धारी महाकाय कुम्भकर्णको देखा ॥ १ ॥ पहले समयमें आकाश मापते समय वामनजीके समान उस पर्वताकार राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्णको देखकर श्रीरामचंद्रजी सतर्क हुए ॥ २ ॥ परन्तु सजल, जलद, (पानी सहित बादल) की समान आकार वाले सुवर्णके बाजू पहरे उस वीरको धीरे २ बढ़ता हुआ देखकर वानरोंकी बड़ी सैना फिर भाग खड़ी हुई ॥ ३ ॥ तब रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानरोंकी सैनाको त्रासित और राक्षस कुम्भकर्णको बढ़ा हुआ देखकर विस्मय युक्तहो विभीषणजीसे बोले ॥ ४ ॥ लंकाके बीचमें पर्वतकी समान मस्तक पर किरीट धारण किये, वानरोंकेसे नेत्र वाला दामिनी युक्त मेघकी समान यह कौन वीरहै ? ॥ ५ ॥ यह तो पृथ्वीका एक बड़ा पताका रूप अकेलाही जान पड़ताहै; कारणकि इसके केवल देखनेहीसे समस्त वानरोंकी सैना भागी जातीहै ॥ ६ ॥ हमनें पहले कभी इस प्रकारका अद्भुत प्राणी नहीं देखा; इसलिये यह महाप्राणी राक्षसहै या असुरहै; यह हमको ठीक २ बताओ ॥ ७ ॥ सरलतासे कठिन कर्म करने वाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे इस भांति कहे जाकर महाप्राज्ञ विभीषणजी बोले ॥ ८ ॥ जिसनें संग्राम भूमिमें यमराज और इन्द्रको भी हरा दियाथा यह वही विश्रवाका पुत्र प्रतापवान् कुम्भकर्णहै, इसके प्रमाण की समान और कोई राक्षस नहीं है ॥ ९ ॥ हे रामचंद्रजी ! इस करके ही संग्राम भूमिमें दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर और पन्नग गण हजारों वार हारकर इसके सामनेसे भागे हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! इस महा बलवान् टेढे नेत्र वाले

कुम्भकर्णको मारना तौ दूर रहे; जब यह शूल हाथमें लेकर खड़ा होताहै; तब देवता गण भी इसको काल समान समझकर मोहित होजाते हैं॥११॥ और दूसरे राक्षस श्रेष्ठ तौ वरदान पाय उसकेही बलसे बलवान् हुएहैं, परन्तु यह महा बलवान् कुम्भकर्ण स्वभावसेही तेजस्वीहै ॥ १२ ॥ इस महा बलवान् महात्मा कुम्भकर्णने जन्म ग्रहण करतेही जब यह बहुत बालक था हजारों प्रजा पुञ्जोंको भक्षण कर लिया ॥ १३ ॥ तब प्रजागण ऐसी अवस्था देखकर प्राणके भयसे अत्यन्त भीत हुए, और देवराज इन्द्रकी शरणमें जायकर उनसे अपनी इस दुर्गतिको निवेदन किया॥१४॥ यह सुनकर इन्द्रनें क्रोधितहो इनके ऊपर वज्र चलाया यह महात्मा कुम्भ-कर्ण वज्रसे कुछ चोट खाय और विचलित होकर भी वारंवार सिंहनाद कर नेंलगा ॥ १५ ॥ उस कालमें सिंहनाद करते हुए राक्षस श्रेष्ठ कुम्भकर्णका वह घोर शब्द सुनकर प्रजा फिर बहुतही भयभीत हुई ॥ १६ ॥ तिसके पीछे महा बलवान कुम्भकर्णनें ऐरावत हाथीके दांत खेंचकर उखाड़ उस्से इन्द्रकी छातीमें प्रहार किया ॥ १७ ॥ अत्यन्त दारुण प्रहारसे वज्रधर इन्द्रजी बहुत व्याकुल हुए उनके सब शरीरसे रुधिर बहनें लगा; ब्रह्मर्षि और दानव गण यह अवस्था देखकर अत्यन्त विषाद करनें लगे ॥ १८ ॥ और सबही इन्द्र और प्रजाके साथ मिलकर सहसा प्रजापति ब्रह्माजीके निकट गये; और वहां उन्होंनें प्रजागणोंको भक्षण करना देवता लोगोंको सताना, आश्रमोंका विध्वंसित होना और पराई स्त्रीका हरण, रूपी कुम्भकर्णकी यह सब दुष्टता ब्रह्माजीसे निवेदनकी ॥ १९ ॥ तब इन्द्रजीनें कहाकि यह यदि नित्य प्रति प्रजाको भक्षण किया करैगा; तौ बहुतही शीघ्रतासे सब लोग उजाड़ होजांयगे ॥ २० ॥ सर्व लोगोंके पितामह ब्रह्माजीने इन्द्रजीके वचन सुनकर गायत्र्यादि मंत्रोंसे राक्षसोंको आह्वान करके उनमें कुम्भकर्णको भी देखा ॥ २१ ॥ परन्तु कुम्भकर्णको देखते ही ब्रह्माजीको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ तब क्षण भरके पीछे घबडाये हुएसे ब्रह्माजी कुम्भकर्णसे बोले॥ २२ ॥ हम निश्चयही जानते हैं कि विश्रवाने तुमको लोकका विनाश ही करनेंके लिये उत्पन्न किया है; हम इसीलिये तुमको यह शाप देतेहैं कि तुम आजसे मृतक की समान होकर बराबर शयन करते रहो ॥ २३ ॥ जब पितामह

ब्रह्माजी नें ऐसा शापदिया तब कुम्भकर्ण उनके आगेही नींदसे ग्रसित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा यह देख रावण अत्यन्त व्याकुल होकर बोला ॥२४॥ भगवन् यह कांचन वृक्ष बढाहै सो फल आनेंके समय आप क्यों इसको काटते हैं हे प्रजापते विशेष करके अपने नातीको ऐसा शापदेना आपको किसी प्रकारसे उचित नहीं है ॥ २५ ॥ आपके वचन किसी प्रकारसे मिथ्या होनेवाले नहींहै निश्चयही कुम्भकर्णको निद्रा घेरेगी परन्तु आपके निकट यह प्रार्थना है कि आप इसके जागनें और सोनेका उपयुक्त समय नियत कर दीजिये ॥ २६ ॥ राक्षसपतिके यह वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी बोले कि यह छःमहीनेतक सोता रहकर केवल एक दिनके लिये जागा करैगा और फिर दूसरे दिन छैः महीनेके लिये सो जाया करेगा ॥ २७ ॥ जागनेके दिन यह क्षुधासे व्याकुलहो पृथ्वीपर घूमा करैगा और प्रदीप्त अग्निकी समान मुख फैलायकर सब लोकोंको भक्षण करेगा ॥२८॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस समय तुम्हारे प्रतापसे भीत और विपद में पड़कर लंकापति रावणनें कुम्भकर्णको जगवायाहै ॥ २९ ॥ हे रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी ! हम निश्चय कहते हैं कि यह भयंकरविक्रमकारी वीर कुम्भकर्ण अपनी गुफासे निकलकर क्रोधमें भर वानरोंके भक्षण करनेंको तैयार होगा ॥ ३० ॥ इस कुम्भकर्णको देखते ही वानरगण भाग रहे हैं परन्तु जब यह क्रोधित होकर रणभूमिमें खड़ा होगा उस काल वानरोंमें से कौन इसको निवारणकर सकैगा॥३१॥इस कारणसे सब वानरोंके मध्यमें इस बातका प्रचारित कर दियाजाय कि यह मूर्ति सजीव नहीं है वरन रावण तुम लोगोंको डरवानेके लिये यह कल बनाई है बस इस बातको सुन सब वानर भय रहित होजांयगे ॥ ३२ ॥ वानर लोगोंके हितकारी और युक्ति युक्त विभीषणजीके कहे हुए वचन सुनकर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सेनापति नील से बोले॥३३॥हे अग्निकुमार तुम जायकर सब वानरोंका व्यूह बनाओ और सावधान होकर लंकाके पुर द्वार राजमार्ग व और भी सब मोर्चे घेरलो ॥ ३४ ॥ हमारी आज्ञानुसार तुम सब शैल शृंग वृक्ष और शिला इकट्ठी कर रक्खो तुम लोग अस्त्र और पर्वतादि धारण करकै सावधानतासे टिके रहो॥३५॥वानर सैनापति कपि कुंजर नीलनें श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय समस्त वानरोंमें उस आज्ञाका प्रचार करादिया ३६॥

तिसके पीछे गवाक्ष, शरभ, हनुमान, और अंगद, यह समस्त वानर पर्वतोंके शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकारसे वह जययुक्त वानरगण श्रीरामचंद्रजीके वचनोंसे सावधानहो शत्रुकी ओरके राक्षसोंको वृक्षोंसे मारनेंलगे ॥ ३८ ॥

ततोहरीणांतदनीकमुग्रंरराजशैलोद्यतवृक्षहस्तम् ॥ गिरेःसमीपानुगतंयथैवमहन्महांभोधरजालमुग्रम् ॥ ३९ ॥

वानरगण जब कि वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग ग्रहण करकै लंकाके द्वारपर जाय डटे; तब पर्वतके निकटवाली मेघमाला जिस प्रकार प्रकाशित होतीहै, वैसेही यह वानर प्रकाशित हुए ॥ ३९ ॥ इ०श्रीम०वा० आ०लं० एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमःसर्गः ॥

सतुराक्षसशार्दूलोनिद्रामदसमाकुलः ॥ राजमार्गंश्रियाजुष्टंययौविपुलविक्रमः ॥ १ ॥

इस ओर निद्राके मदसे आकुल विपुल विक्रमकारी राक्षसशार्दूल कुम्भकर्ण शोभायमान राजमार्गमें गमन करनें लगा ॥ १ ॥ वह परम दुर्जय वीर कुम्भकर्ण सहस्र राक्षसोंके साथ जिस समय राजमार्गमें जाय रहाथा, उस समय दोनों ओर जो धवरहरोंकी श्रेणीथीं उनके ऊपरसे कुम्भकर्णके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होनें लगी ॥ २ ॥ कुम्भकर्णनें इसप्रकारसे गमन करते हुए अति निकट अपने भाई रावणके सुवर्णकी जालियोंसे युक्त, सूर्यकी समान प्रकाशमान विपुल और रमणीक गृहको देखा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान बादलके मध्यमें प्रवेश करतेहैं वैसेही उस वीरनें राक्षसपति रावणके स्थानमें प्रवेश करकै, देवराजके हंसासनसमासीन ब्रह्माजीके दर्शनकीनाई सिंहासनपर बैठे हुए अपने बड़े भाई रावणको देखा ॥ ४ ॥ वीरश्रेष्ठ कुम्भकर्ण राक्षसगणोंके साथ जिस समयकि रावणके भवनमें जारहाथा, उससमय उसके प्रति पगके धरनेंसे पृथ्वी कंपायमान होरहीथी ॥ ५ ॥ वीर कुंभकर्णनें गमन कर भवनमें जाय उदासमनसे पुष्पक विमानमें बैठे

हुए अपने भ्राताको देखा ॥ ६ ॥ रावणभी आयेहुए कुंभकर्णके दर्शन पातेही शीघ्रता सहित हर्षित अंतःकरणसे उठकर कुंभकर्णको अपने समीप लाया ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त रावणके आसनपर बैठनेंके पीछे महा बलवान कुंभकर्ण अपने भ्राताके चरणयुगल वंदन करकै बोलाकि "हमें क्या करना होगा?" ॥८॥ रावण कुम्भकर्णको प्रणाम करता हुआ देखकर हर्षित अंतःकरणसे फिर उठकर उसे भलीभांति अपने हृदयसे लगाता हुआ ॥ ९ ॥ महा बलवान् कुम्भकर्णभी अपने भ्राता करकै भेंटे जाकर और यथायोग्य रूपसे आदर पाय श्रेष्ठ व देवताओंके बैठनेंके योग्य आसनपर बैठा ॥ १० ॥ तब कुम्भकर्ण क्रोधके मारे लाल२ नेत्र करकै रावणसे बोला कि हे महाराज! किसकारणसे आपने ऐसे यत्नसे हमको जगवायाहै? ॥ ११ ॥ किससे आपको भय पहुंचाहै? और किसको आज हम यमराजके भवनोंमें भेजें? यह समस्त वृत्तान्त आप हमारे निकट प्रकाश करकै कहिये; कुम्भकर्ण क्रोधसे यह वचन कह मौनरहा, और अपनें लघुभ्राताके वचन सुनकर रावणभी क्रोधके मारे अपनी दोनों आँखोंको घुमानें लगा ॥ १२ ॥ हेमहाबलवान्! तुम बराबर शयन करकै सुखसे सोरहेथे इसलिये रामचंद्रसे जो भय हमको उपस्थित हुआहै वह तुम कुछभी नहीं जानतेहो? ॥ १३ ॥ महाबलशाली श्रीमान् दशरथके पुत्र रामचंद्र सुग्रीव सहित समुद्रके पार आयकर हमारे जाति कुलका नाश कर रहेहैं ॥ १४ ॥ लंकाके वन उपवनोंकी ओर एकवार निहार कर देखो कि वानरोंनें सेतुबांध उसकी सहायतासे सुखपूर्वक समुद्रके पारहो इन सबको वानरसागरकी समान कर दिया ॥ १५ ॥ जो राक्षस बड़े२ प्रधान कहकर प्रसिद्धथे; वही सब रणभूमिमें वानर गणोंसे मारे गयेहैं, परन्तु हमनें वानरोंका मरना एक दिनभी नहीं श्रवण किया, और न कभी पहले हमनें वानरोंको युद्धमें जीता ॥ १६ ॥ इनसेही हमको भय उत्पन्न हुआहै, और इस समय तुम इस शंकटसे हमारा त्राण (उद्धार) करो तुमहीसे यह विपद नाशको प्राप्त होगी,इसी कारणसे तुमको जगाया गयाहै ॥ १७ ॥ हमारा समस्त खजाना खाली होगयाहै; इसलिये तुम हमारा उद्धार करो, और बालक बूढ़ेही जिस पुरीमें रहेहैं, ऐसी लंका पुरीकी तुम रक्षा करो ॥ १८ ॥ हेशत्रुओंके नाश करनेवाले! महाबाहो!

हमनें पहले कभी किसी भ्रातासे ऐसे दीन वचन नहीं कहे परन्तु आज तुम हमारा कहना मान अपने भ्राताके लिये अति कठिन कर्म करनेंके लिये तैयार होवो। ॥ १९ ॥ हेराक्षसश्रेष्ठ! तुमनें देवासुरसंग्रामके समयमें व्यूह बनाकरके अनेक बार देवताओंको रणभूमिमें पराजित कियाथा; इस कारण तुम्हारा तौ हमें बड़ा भारी भरोसा है और हम तुमसे स्नेहभी अधिक करतेहैं ॥ २० ॥ हेभयंकरपराक्रमकारी! हम त्रिलोकीमें किसीकोभी तुम्हारी समान बलवान नहीं देखते; कारण तुमही हमारे लिये अधिक वीर्य प्रकाश करो ॥ २१ ॥

कुरुष्वमेप्रियंहितमेतदुत्तमंयथाप्रियंप्रिय रणबांधवप्रिय ॥ स्वतेजसाव्यथयसपत्न वाहिनींशरद्घनंपवनइवोद्यतोमहान् ॥ २२ ॥

प्रचंड पवन जिस प्रकारसे शरद समयके मेघको उड़ा देतीहै; वैसेही तुम अपने तेजके प्रभावसे शत्रुकी सैनाके धुरें उड़ादो हेबान्धव प्रिय! हेसमराभिलाषी! तुम हमारे हितार्थ यह उत्तम कार्य पूराकरो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमःसर्गः ॥

तस्यराक्षसराजस्यनिशम्यपरिदेवितम् ॥ कुंभकर्णोबभाषेदंवचनंप्रजहासच ॥ १ ॥

राक्षसराज रावणके ऐसे विलापके वचन सुनकर कुम्भकर्ण हँसता हुआ बोला ॥ १ ॥ हमनें परामर्श होनेंके समयमें जिस दोषकी शंका कीथी, आपने उन हितकारी वचनोंपर श्रद्धा नहीं की, इसी कारणसे अब आपको वही दोष आय प्राप्त हुआहै ॥ २ ॥ कुकर्म करनेंवाले जन जिस प्रकार शीघ्रही नरकमें पड़ा करतेहैं; ऐसेही तुमको अपने पापकर्म करनें-का फल बहुत शीघ्र मिलगया ॥ ३ ॥ हेमहाराज! आपनें केवल वीर्यके घमंडके वशमें हो पहले इस सम्बन्धमें कुछ चिन्ता नहींकी; और ऐसे निन्दनीय कार्यके विषयमें कुछ सुविचारभी नहीं किया ॥ ४ ॥ जो ऐश्वर्यके

मदसे मदवाले होकर पहले करनें योग्य कार्य पीछे, और पीछे करनें योग्य कार्योंको पहले किया करतेहैं; उन्होंनें नीति अनीतिको कुछभी नहीं जाना ॥ ५ ॥ जिस प्रकार संस्कारके अयोग्य अग्निमें दीहुई आहुति विफल होजातीहै वैसेही देशकालको विना विचारे जो कार्य किये जातेहैं; वह समस्तही विपरीत और दूषित होजातेहैं ॥ ६ ॥ जो राजा विचार करनेंके पीछे, कर्त्तव्य, क्षय, वृद्धि स्थान और सभादिके विषयमें चिन्ता करके मंत्रियोंके साथ सब कार्योंका आरम्भोपाय पुरुष, द्रव्य, सम्मत, देशकाल विभाग, विपरीतप्रतिकार और कार्यसिद्धि, इन पांचोको विचार करता हुआ कार्य करताहै; वह नीतिमार्गसे कभी चलायमान नहीं होता॥७॥ जो राजा मंत्रिलोगोंके सहित सभादिके कार्याकार्यका विचार करते हैं, वह बुद्धिबलसे मंत्रिलोगोंके मनका भाव और उनमें कोन यथार्थ सुहृद और कोन केवल खुशामद करके मनको वहलाया करताहै, यह सब वह जानतेहैं ॥ ८ ॥ हे राक्षसनाथ ! सब लोगोंमें कोई प्रभातकाल, कोई मध्याह्नकाल और कोई रात्रिकाल इन तीनों कालमें यथाक्रमसे धर्म और कामकी सेवा करते हैं, कोई २ एकही समयमें धर्म कामादि रूप दंडका सेवन करतेहैं; और कोई २ एक कालमेंही तीनोंकी सेवा किया करते हैं ॥ ९ ॥ इन तीनोंमेसे कौन श्रेष्ठहै, इसको जो सुनकरभी नहीं जान सकतेहैं; वह राजाही हो अथवा राजकुमारहीहो, सबके सबही विफल हो जातेहैं और वह बहुश्रुत कहकर नहीं मानाजाता अर्थात् उसका शास्त्र ज्ञान व्यर्थ है ॥ १० ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ ! साम, दान, भेद, विक्रम पहले कहे हुए पांच योग नीति और अनीति ॥ ११ ॥ और अर्थ धर्म काम सम्बन्धी मंत्रणा मंत्रीलोगोंके साथ उचित समय पर जो बुद्धिमान राजा किया करते हैं उनको कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥ बुद्धिमान अर्थके तत्त्वोंको जाननें वाले मंत्रिलोगोंके सहित अपने शुभ परिणामका विचार करके जो राजा कार्य किया करताहै; उसकी भाग्यलक्ष्मी अचल होकर टिकी रहती है ॥ १३ ॥ परन्तु कोई २ पुरुष किसी प्रकारसे जो परामर्श करनेंमें बुलाये गये, तौ वे पशुबुद्धिलोग मारे ढिठाईके शास्त्रका अर्थ न जाननें वाले पुरुषसे कुछ औरका औरही अर्थ कह देतेहैं; ॥ १४॥ जो शास्त्रको न जानतेहों; उनका वचन राजा कभी ग्रहण नहीं करै; कारण

कि वह अहितकारी करनेंवाला होताहै, कारण कि वे लोग अर्थशास्त्रके न जाननेंसे धनकी बड़ी आशा रखते, और ठकुर सुहाती बात कह देतेहैं इससे उनकी बातका क्या ठीकहै ? ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहित बातको ऐसा नोन मिर्च लगायकर कहते, कि मानों यह बड़ाही हित कर रहेहैं,ऐसे धूर्तोंको मंत्रणा कार्यसे बाहर निकालदेना चाहिये, कारण कि उनसे सब कार्य भ्रष्ट होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! ऐसेभी अनेक मंत्री होतेहैं, जो सब कुछ जाननेंवाले शत्रुओंके साथ सलाह करके विपरीत कार्य करके स्वामीका विनाश कर देतेहैं ॥ १७ ॥ राजाको उचितहै कि उन मंत्रियोंको जो मित्रबने हुए वैरी हैं व्यवहारसे जानले और जान बूझकर उनका त्याग करदे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार पक्षीगण स्वामिकार्तिकजीसे विदारित किये हुए क्रौञ्च पर्वतके छिद्रमें प्रवेश करतेहैं, वैसेही शत्रु लोगभी चपल और इधर उधर दौड़कर धानेंवाले राजामें छिद्र पायकर प्रवेश किया करतेहैं ॥१९॥ जो शत्रुको तुच्छ समझकर अपनी रक्षा नहीं करतेहैं; वह बड़े भारी अनर्थको प्राप्त होकर स्थानसे भी भ्रष्ट होजाते हैं ॥ २० ॥ रानी मन्दोदरी और हमारे छोटे प्रिय भ्राता विभीषणजीनें जो कुछ कहाथा, वही कहना हमारे हितका करनें वालाहै; तिसके पीछे जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये ॥ २१ ॥ तब दशमुख रावण कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुनकर भ्रुकुटि चढ़ाय क्रोध प्रगटकर यह कहनें लगा ॥ २२ ॥ हे कुम्भकर्ण ! हम तुम्हारे गुरु और आचार्यकी समान पूजनीयहैं सो तुम हमको उलटा उपदेश देतेहो ! जो कुछभीहो इस वार्त्तालापसे क्या प्रयोजनहै ! जो कुछ हमनें कहा उसको तुम पूरा करो ॥ २३ ॥ और हमने,—विभ्रमसे चित्तके मोहसे और बल वीर्यके घमंडके मोहसे वशमें होकर पहले जो तुम सबका उपदेश नहीं सुना; सो उसही उपदेशको अब फिरसे कहनेंकी क्या आवश्यकताहै ? ॥ २४ ॥ बीत गये हुए कार्यके लिये सोच करना कर्तव्य नहीं है, कारणकि जो बीतगया वह तो बीतही गया, इसलिये हे वीर ! इस समय जो करना उचितहो; उसकीही चिन्ता तुम करो; हमको अन्याय करनेंसे जो दुःख उत्पन्न हुआहै वह तुम अपने विक्रमसे दूर करो ॥ २५ ॥ यदि हमारे प्रति तुम्हारा स्नेहहो, यदि तुम्हारे शरीरमें बल विक्रमहो; यदि हमारा यह कार्य तुम्हारे मनमें बड़ा भारी कार्यहो तौ हमको इस दुःखसे

छुटाओ ॥२६॥ जोविपदमें पड़े हुए और दीनभावापन्न लोगोंके ऊपर दया किया करतेहैं वह सुहृदहैं परन्तु नीतिके मार्गसे चलायमान होंने पर भी जो सहायता किया करतेहैं बन्धु उनकोही कहते हैं ॥ २७ ॥ रावणके इस प्रकार धीर और करुणा वचन कहनें पर कुंभकर्णनें (भाई साहब क्रोधित होगये) यह जानकर धीरे २ मधुर वाणीसे कहनेका अभिलाष किया॥२८॥ महावीर कुम्भकर्ण अपने भ्राताको महाविकलेन्द्रिय देखकर समझाता बुझाता हुआ कुंभकर्ण बोला ॥ २९ ॥ हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर हमारे वचन सुनो ऐसे संतापित होनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं है; क्रोध छोड़कर सावधानचित्त होजाइये ॥ ३० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हमारे जीवित रहते हुए आप मनमें कभी ऐसे सन्तापको स्थान न दीजिये, । हम निश्चय कहते हैं कि जिनके लिये आपको इतना संतापित होना पड़ाहैं; हम उनका नाश कर डालेंगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! आपचाहें जिस अवस्थामें हों वही समय हमको हितके वचन कहने चाहिये, इस कारणही बन्धु भाव और भ्राताके स्नेहके वश होकर हमने आपसे ऐसा कहा ॥ ३२ ॥ शंकट पड़नेके समयमें स्नेह आधीन हुए बन्धुके लिये जो कुछ करना उचितहै. हम उससे विमुख नहीं हैं, आज युद्धमें जाकर हम शत्रुओंकी सैनाका नाश करतेहैं सो आप देखैं ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! आज हमसें संग्राम भूमिमें भ्राताके सहित रामचंद्रके मारनें पर आप वानरोंकी सैनाको भागता हुआ देखैंगे ॥ ३४॥ हे महाभुज ! आज मुझ करकै रणभूमिसे लाये हुए रामचंद्रके मस्तकको देखकर आप सुखी और जानकी दुःखी होंगी ॥ ३५ ॥ युद्धमें जिनके बन्धु बान्धव मारे गयेहैं आज लंकावासी वह निशाचर गण बड़े भारी सुखका मूल रामचंद्रका मारा जाना देखेंगे ॥ ३६ ॥ युद्धमें बान्धव लोगोंका विनाश होनेंके कारण जो लोग शोकाकुल होकर अश्रु छोड़ रहेहैं आज रणभूमिमें शत्रुओंका विनाश करकै उनके आंसुओंको पोंछेंगे ॥ ३७ ॥ आज पर्वताकार वानरराज सुग्रीव रणभूमिमें सूर्यके सहित वादलके समान फैला हुआ, और रुधिरसे भीगा हुआ देखोगे॥३८॥ हे अनघ! कैसा आश्चर्यहै कि रामचंद्रके विनाशकी अभिलाष किये यह समस्त राक्षसगण व हम यह सबही आपको अनेक प्रकारसें समझा रहेहैं, तथापि आप क्यों ऐसे व्यथित होतेहैं ॥ ३९ ॥ हेराक्षसोंके नाथ! रामचं-

द्रके लिये आपको भय अच्छा! वह पहले हमारा नाश करे पीछे आपका अधिक क्याकहैं यदि हम पहले मारे जांय तौ हमको इसकेलिये कुछ संतापित न होंना चाहिये ॥ ४० ॥ हे शत्रुओंके तपानें वाले! हे अतुल विक्रम! इस समय जैसी इच्छाहो वैसीही आज्ञा हमको दीजिये। शत्रुओंके साथ युद्ध करनेंके लिये आपके जानेंका क्या प्रयोजनहै अब और किसीको युद्धमें भेजनेंके लिये न देखिये ॥ ४१ ॥ हमही अकेले आपके महाबल-वान शत्रुका प्राण संहार कर डालेंगे यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु ॥४२॥ कुबेर और वरुण यह समस्तभी हमारे विमुख युद्धमें खड़े होजांय तौ हम उनकोभी संहार करेंगे युद्ध करनेंकी कथा तौ दूर रहै जिस समय हम तीक्ष्ण शूल धारण करकै खड़े होजांयगे तौ उस कालमें हमारा यह पर्वताकार शरीर ॥ ४३ ॥ और तीक्ष्ण दंत देख व सिंहनाद श्रवण करकै इन्द्र भी डरकर भाग जायगा; अथवा अधिक कहनेंकी क्या आवश्यकताहै, जबकि हम अस्त्र शस्त्रोंको चलाय २ कर शत्रुओंको मलते होंगे ॥ ४४ ॥ उस कालमें अपने जीवन बचानेंकी आशा किये कोई जन हमारे सन्मुख टिकनेंके लिये समर्थ न होगा; न शक्ति, न गदा, न असि, न तीखे बाण, इनमेंसे किसीकोभी हम नहीं चाहते ॥ ४५ ॥ हम क्रोधित होकर केवल अपनी बाहोंके बलहीसे जो इन्द्रभी होतौ उसकोभी मार डालेंगे, यदि वह राम हमारे मूकेके वेगको सहकर जीवित रहैं ॥ ४६ ॥ तौ हमारे बाण उस रामचन्द्रके रुधिरको पान करेंगे। इसलिये हे महाराज! आप हमारे जीवित रहते हुए आप किस कारणसे संताप करते हैं ॥ ४७ ॥ लीजिये हम आपके शत्रुका प्राण संहार करनेंके लिये जातेहैं आप रामचंद्रका भय छोड़ दीजिये, क्योंकि हम घोर युद्धमें उनको मार डालेंगे ॥ ४८ ॥ हम राम लक्ष्मण सुग्रीवको और जिस वानरनें राक्षसोंका नाश करकै लंकापुरी जलाईथी उस हनुमानकोभी संहार करैंगे ॥ ४९ ॥ और वहांपर जो वानरगण युद्ध करनेंके लिये आयेहैं उनकोभी हम खा डालेंगे! हे महाराज! हमनें आपके बड़े भारी यशकी कामना करकै इस असाधारण कामके करनेंकी अभिलाषा कीहै ॥ ५० ॥ हेराजन् यदि इन्द्र अथवा ब्रह्मासेभी आपको भय पहुंचाहो तौ हम उनकोभी मार डालेंगे! हमारे क्रोधित होनेंपर देवता लोग पृथ्वीपर सोते हुए दीखेंगे ॥ ५१ ॥ हम यम-

राजकाभी नाश करदेंगे अग्निको भक्षण कर डालेंगे; और हम सूर्यकोभी आकाशसे तारागणोंके सहित पृथ्वीपर गिरादेंगे ॥ ५२ ॥ इन्द्रको मार डालेंगे, समुद्रको पान कर जायँगे, पर्वतोंको चूर्ण २ करदेंगे और पृथ्वीका भी हम विदीर्ण करेंगे ॥ ५३ ॥ हम बहुत समयसे सोय रहेथे, परन्तु आज समस्त जीव इस कुम्भकर्णसे भक्षित होकर इसका विक्रम देखें अधिक क्या कहैं यह त्रिलोकभी हमारे पेटको भरनेंके लिये पूरी न होगी ॥ ५४ ॥ हेराजन्! हम दशरथकुमार रामचंद्रको वध करके आपको असीम सुख प्राप्त करनेंके लिये चले लक्ष्मणके सहित रामचंद्रका विनाश करकै हम समस्त वानरोंके यूथपोंको खालेंगे ॥ ५५ ॥

रमस्वराजन्पिबचाद्यवारुणींकुरुष्वकृत्या निर्विनीयदुःखम् ॥ मयाद्यरामेगमितेयम क्षयंचिरायसीतावशगाभविष्यति ॥ ५६ ॥

इस समय आप मनके सुखसे मदिरा पानकर स्त्रियोंके सहित विहार करते रहैं,और जितनाभर मनका दुःखहै वह आप छोड़दें।आप निश्चय रक्खें कि यमराजके भवनमें रामचन्द्रके पहुंच जानेंपर सीता सदाके लिये आपके वशमें होजायगी ॥ ५६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

तदुक्तमतिकायस्यबलिनोबाहुशालिनः ॥ कुंभकर्णस्यवचनंश्रुत्वोवाचमहोदरः ॥ १ ॥

विशालबाहु बड़े भारी देहवाले महाबलवान् कुम्भकर्णके ऐसे वचन सुन- कर राक्षस महोदर कहने लगा ॥ १ ॥ हे कुंभकर्ण! तुम बड़े भारी कुलमें जन्मे- तोहो परन्तु ढिठाई और गर्वके मारे तुम यथार्थ अवस्थाको नहीं जान सकते, इसी कारणसे कौन समय क्या करना चाहिये यहभी तुम नहीं जानते ॥ २ ॥ हमारे राजा क्या नीति अनीतिको नहीं जानतेहैं;तुम बालक पनसेही ढीठहो, इसी कारणसे ऐसे अनर्थक वचनोंका जाल फैलाया करतेहो ॥ ३ ॥ राक्षसराज देश और कालके विभागको जानतेहैं;इनसे अपने ओरकी और शत्रुके ओ- रकी देश उन्नति छिपी नहीं है, और अपने पक्षके क्षय वृद्धिके अभावमें किस

प्रकारसे रहना होताहै,इन सब बातोंकोही यह जानतेहैं॥४॥जिसनें कभी बड़े बूढेकी पूजानहीं की ऐसी प्राकृत बुद्धिवाले और बलसे गर्वित लोग जो कार्य किया करतेहैं, क्या नीति जाननेंवाले लोग वैसे कार्योंको कर सकते हैं ॥ ५ ॥ तुमने जो धर्म अर्थ और कामको पृथक् २ समयमें सेवन करनेंका वर्णन किया, इन सबका उपदेश औरोंको देना तौ दूररहा; तुम स्वयंही स्वभावसे इन सबको नहीं जानते ॥ ६ ॥ देखो, कर्महो, धर्म, अर्थ, और काम इन तीनोंका कारणहै, क्रियाहीन पुरुषका किसी प्रकारसेभी पुरुषार्थ नहीं है;इसकारण अनुष्ठाताको शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ताहै॥७॥ धर्म, अर्थ, यह दोनों मोक्षकोभी देतेहैं; और इन करकै स्वर्गकी प्राप्ति व महाराज्यादिक लोगभी मिल सकतेहैं, जो अधर्म और अनर्थकी प्राप्तिहो तौभी कभी २ अपराधीको सुख प्राप्त होजाताहै ॥ ८ ॥ पुरुष इस लोक और परलोकके लियेभी कर्म करतेहैं और कामपर आरूढ हुआ पुरुषभी सामर्थ कर्मोंके फलोंको प्राप्त कर लेताहै ॥ ९ ॥ हमनें महाराजके इस विषयको अपने अन्तरके साथ भला कहाहै, इस लिये राक्षसराजके मनमें जोकि निश्चय होगया है उस कार्यकाही अनुष्ठान करना ठीक है कारण कि शत्रु गणोंके प्रति साहस प्रगट करनेंमें कुछ भी अनीति दृष्टि नहीं आती ॥ १० ॥ और तुमने जो अभिमानके वश होकर विना दूसरेकी सहायताके अकेलेही शत्रुओंको जीतनेकी बात कही यहभी हमारे विचारमें असंगत और असाधुपन है श्रवणकरो ॥११॥ कि जिन रामचंद्रने पहले जनस्थानमें असंख्य महाबलवान राक्षसोंका संहार किया है विना किसी कीसहायता लिये तुम उनको अकेले किस प्रकारसे विनाश करोगे ॥ १२ ॥ उस समय जनस्थानमें जो महातेजस्वी राक्षसगण रामचंद्रजीसे हारकर संग्रामसे भाग आयेथे वे रामचंद्रके भयसे भीत होकर ऐसे छिपे हुएहैं कि तुम अबभी उनको युद्धमें आया हुआ नहीं देखोगे ॥ १३ ॥ आहा! कैसे आश्चर्यकी बातहै कि तुम जान बूझकर भी क्रोधित होकर सोये हुए केसरी और श्रेष्ठ सर्पकी समान दशरथ कुमार रामचंद्रको जगानेकी इच्छा करते हो ॥ १४ ॥ जो रामचंद्र अपनें तेजसे प्रदीप्त हैं और क्रोधवश होनेके कारण अत्यन्त दुर्द्धर्ष हैं सो कौन पुरुष मृत्युकी समान सहन करनेके अयोग्य उन वीर श्रेष्ठके निकट बढ़नेंकी

इच्छा करताहै॥१५॥हे तात! यह समस्त राक्षस गण इकट्ठे होकर रामचंद्रके सन्मुख टिक कर जीते हुए नहीं रह सकते हैं हमेंतो इसमें भी सन्देहहै इसलिये रामचंद्रसें युद्ध करनेके लिये अकेले तुम्हारा जाना हमारी सम्मतिमें नहीं आता॥१६॥स्वयं हीनबल होकरभी कौन पुरुष अपना जीवही देनेंके लिये दूसरे प्राकृत शत्रुकी समान बलवान शत्रुको अपने वशमें लानेकी इच्छा कर सकताहै ?॥ १७ ॥ हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! त्रिलोकीमें जिनकी समान कोईभी नहीं है तुम किसलिये सूर्य और इन्द्रकी समान इन इक्ष्वाकु वंशावतंश श्रीरामचन्द्रजीके साथ अकेलेही युद्ध करनेंका अभिलाष करतेहो॥ १८॥ राक्षस महोदरनें क्रोधित होकर कुम्भकर्णसे ऐसा कह राक्षसोंके बीचमें बैठे हुए फिर लोगोंके रुवानें वाले रावणसे कहा ॥ १९ ॥ आप सीताको प्राप्त करनेंमें किसलिये देर कर रहे हैं, यदि आपकी इच्छाहो तौ सीता इसी समय आपके वशमें होसकतीहै ॥ २० ॥ हमनें सीताको वशमें करनेंका एक उपाय स्थिर कियाहै; यदि आपकी बुद्धिमें भी वह भला ज्ञातहो तौ उसको सुनकर आप कीजिये ॥ २१ ॥ वह उपाय यहहै कि आप सब कहीं ऐसा ढंडोरा पिटवा दीजिये कि द्विजिह्व, संहारी, कुम्भकर्ण वितर्दन, और मैं (महोदर) यह पांच राक्षस रामचन्द्रका विनाश करनेंके लिये गमन करेंगे ॥ २२ ॥ इस ओर हम रणभूमिमें गमन करके यत्न सहित युद्ध करके यदि आपके शत्रुको जीतसकें तब तौ हमको और किसी उपायके करनेकी अवश्यकता न पड़ैगी ॥ २३ ॥ परन्तु यदि हम लोगोंके बड़ाभारी युद्धकरनें पर भी आपका शत्रु जीवित रह जाय तब हमनें मनमें जो उपाय स्थिर कियाहै उसको ही किया जाय ॥ २४ ॥ वह उपाय यहहै कि हम लोग राम नामाङ्कित तीक्ष्ण बाणोंसे अपनी देहको कटाय अंगोंसे रुधिर वहाय समरभूमिसे यहां आमेंगे ॥ २५ ॥ हमलोग आप पर प्रगट करेंगे कि हम राम लक्ष्मणको भक्षण करके चले आये तिसके पीछे इस कार्यका पुरस्कार पानेंको हम आपके चरणोंमें प्राथना करेंगे ॥ २६ ॥ हे महिपाल, तिसके पीछे नगरमें आय सबकहीं हाथीपर एक राक्षसको चढवाय इस प्रकारसे पुकारवादेना कि भ्राता और अपनी सब सैनाके सहित रामचन्द्र मारा गयाहै ॥ २७ ॥ आप मानों ऐसा होनेसे बड़ेही प्रसन्न हुएहैं; इस प्रकारसे दास दासियोंको

और नौकरों चाकरोंको भोजनके पदार्थ धन धान्य रत्नादि देना ॥ २८ ॥ तिसके उपरान्त वस्त्र, भूषण, और गन्ध प्रदान कीजियेगा और उनके सन्तोष करानेंको उन्हें सुरादेना; और आपभी मन सहित आनंदमें मग्नहो सुरा-पान करना ॥ २९ ॥ तिसके पीछे सुहृद गणोंके सहित राम लक्ष्मण सब राक्षसोंके सहित भक्षण कर लिये गये; इस प्रकारकी जन श्रुति (अफवाह) जब सब ओर फैलेगी, तब इसको सीताभी सुनेंगी, ॥३०॥ तब आप अशोक वनमें प्रवेश करकै एकान्तमें सीताको समझाना बुझाना और धन धान्य रत्न और कामना करने लायक वस्तुओंसे लुभाना ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! नाथ हीन सीताका अभिलाष होंनेपरभी ऐसे शोकके उत्पन्न करानें वालेंसे धोखाखाय. आपके वशमें होजायगी ॥ ३२ ॥ जानकी अपने प्यारे पतिको नाश हुआ देख सब भांतिकी आशा छोड़ स्त्री स्वभावकी लघु ताईसे आपके वशमें पड़कर आपहीका आश्रय ग्रहण करेंगी ॥ ३३ ॥ उन सीतानें पहले अनेक प्रकारके भोग सुख भोगेथे, कभी दुःखका मुखभी नहीं देखा, इस समय वह महादुःख भोग रही हैं; बस वह यह समझकर कि आपके निकट रहनेंसे बड़ा सुख मिलेगा; आपके वशमें होनेंके लिये असम्मत नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! हमारे विचारमें तो यही बात उचित जान पड़तीहै और इससेही आपका अभिलाष पूर्ण होगा; इस कारण आप संग्राममभूमिमें रामचन्द्रके सहित युद्ध करनेंका अभिलाष न कीजिये, क्योंकि उस्से सुख प्राप्त न होकर बरन बड़े भारी अनर्थके होनेकी संभावनाहै ॥ ३५ ॥

अनष्टसैन्योह्यनवाप्तसंशयोरिपुंत्वयुद्धेनजयञ्ज
नाधिप ॥ यशश्चपुण्यंचमहान्महीपतिःश्रियंच
कीर्तिंचचिरंसमश्नुते ॥ ३६ ॥

हेजनाधिप ! जो महान महीपति अपने आप संशयमें न पड़कर और सैनाको नाश न करके विना युद्ध किये शत्रुलोगोंको जीतलेतेहैं; वह विपुल यश, सुख, सम्पति और कीर्त्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे चतुःषष्टितमःसर्गः॥६४॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥

सतथोक्तस्तुनिर्भर्त्स्यकुंभकर्णोमहोदरम् ॥
अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठंभ्रातरंरावणंततः ॥ १ ॥

जब महोदरने यह कहा तब महाबलवान् कुम्भकर्ण उसकी निन्दा करता हुआ राक्षसराज रावणसे यह वचन बोला ॥ १ ॥ हेमहाराज! आप यथा सुखसे विंचरण करैं हम उस दुरात्मा रामचंद्रको वध करके आपका घोर भय दूर करके आपको शत्रु रहित कर देंगे ॥ २ ॥ शूर लोग कालमेंभी विना जलके बादलकी समान कभी गर्जन नहीं करते हमनें जो गर्जन कियाहै;आप संग्रामभूमि मेंभी हमको वही कार्य करते हुए देखेंगे ॥ ३ ॥ अधिक क्या कहैं वीर लोग अपनी बड़ाई करके कभी अपनेको छोटा नहीं बनाते; और वह लोग जो कार्य किया करतेहैं; उसको वह अद्भुत और दूसरेसे न होंने योग्य न होनें पर कभी नहीं करते ॥ ४ ॥ हेमहोदर! तुमनें जो वृथा ऐसे वचन कहे यह कायर बुद्धि रहित अपने आपको पंडित माननें वाले, और उजड्ड राजाहीको रुचिकर हो सकतेहैं ॥ ५ ॥ तुम लोग डरपोक और कायर पुरुषहो प्यारे वचनोंसे राजाके मनको सन्तुष्ट रखनाही तुम्हारा कार्यहै। तुम लोगोंसे राजाके कर्त्तव्य कर्मोंकी भली भांति अंगहीनता होतीहै ॥ ६ ॥ हा! लंकापुरीकी कैसी दुर्दशाहै! केवल एक राजाही बचगयेहैं, कोषागार (खजाना) शून्य होगया, सैना मारी गई, । और मित्रोंका चिह्न धारण किये शत्रुलोगोंसे महाराज घिर रहेहैं ॥ ७ ॥ हम तुम्हारी इस दुर्नीतको युद्धसे भगानेंके लिये शत्रुके जीतनेंको कृत निश्चय होकर संग्राममें जातेहैं ॥ ८ ॥ बुद्धिमान कुम्भकर्णनें जब यह कहा तब राक्षस रावण उस्से हँसकर बोला ॥ ९ ॥ हेवत्स! युद्ध विशारद! हम निश्चय कहतेहैं कि महोदर रामचंद्रको देखकर डर गया होगा इसी कारणसे इसका युद्ध करनेंका अभिलाष नहींहोता ॥ १० ॥ हेकुम्भकर्ण! क्या सुहृदतामें, क्या बलके प्रभावसे तुम्हारी समान अपना पुरुष हमारा कोईभी नहींहै, इस कारण तुम शत्रुलोगोंका वध साध करनेंके लिये और विजय पानेंके अर्थ शीघ्र लंकापुरीसे बाहर

चलो ॥ ११ ॥ हेशत्रुनाशी ! तुम घोर नींदमें मग्नथे, हमनें शत्रुको जीत लेनेहीके अर्थ तुमको जगवायाहै; इस समय राक्षस लोगोंपर घोर शंकट पड़ा देखकर ॥ १२ ॥ फांसी हाथमें लिये यमराज जिस प्रकारसे दौड़तेहैं; उनकीही समान तुमभी शूल हाथमें धारण कर युद्धकी यात्रा करो। और सूर्यकी समान प्रभावाले राम लक्ष्मणको मार कर पीछेसे वानरोंकोभी भक्षण कर लेना ॥ १३ ॥ हम जानतेहैं कि तुम्हारी भयंकर मूर्त्ति देखनें पर वानर लोग प्राणोंके डरसे भाग जायँगे, और राम लक्ष्मणकाभी हृदय विदीर्ण होजायगा ॥ १४ ॥ राक्षस श्रेष्ठ रावण महाबलवान कुम्भ-कर्णसे यह कहकर जयकी आशासे यह समझाकि, मानो दूसरा जन्म हुआ ॥ १५ ॥ उस समय रावणका अंतःकरण पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान निर्मल होगया, रावण कुम्भकर्णके बल विक्रमको जानताथा; इसलिये उसको युद्धके लिये तैयार देख इसके आनंदकी सीमा न रही ॥ १६॥ कुम्भकर्णभी राक्षसराज रावणके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर परम सन्तुष्ट हुआ, और युद्धमें जानेंकी तैयारियें करनें लगा ॥ १७ ॥ शत्रुओंको मारनेंवाला वीर कुंभकर्णने अति वेगसे काले लोहेका बना हुआ अति तीक्ष्ण शूल लिया। यह शूल प्रदीप्त, तपाये हुए सुवर्णसे भूषित था ॥१८॥ यह शूल इन्द्रके वज्रकी समान और अशनिके समान भारीथा, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, और पन्नगोंके मारनेंको यह समर्थथा ॥ १९ ॥ बड़ी भारी रत्न मालासे शोभित होनेंके कारण उस शूलसे अग्नि निकल रहीथी ऐसे शत्रु ओंके रुधिरसे रँगे हुए शूलको ग्रहण करके ॥ २० ॥ महा तेजस्वी कुम्भकर्णनें रावणसे कहा; हम अकेलेही रणमें जाते हैं, तुम्हारी सैना यहीं पर रहै ॥ २१ ॥ आज हम क्षुधित होनेंके कारण क्रोधित होकर वानर गणोंको भक्षण करैंगे, कुंभकर्णके वचन सुनकर रावणनें कहा॥२२॥ कि हे कुंभकर्ण! तुम शूल, मुद्गर ग्रहण किये सैनाको साथ लेकर यहांसे जाओ, कारण कि वह वानर गण महा बलवान शूर और रण करनेंमें बड़े निपुणहैं ॥ २३ ॥ तुम सदाही मतवाले रहतेहो; इसलिये तुमको अकेला देखकर वह उसी समय विनाश कर डालेंगे; हम इसी कारणसे कहते हैं कि तुम परम दुर्द्धर्ष सैनाको साथ लेकर राक्षस लोगोंके अहितकारी शत्रु गणोंका विनाश कर आओ ॥ २४ ॥ यह कह महा तेजस्वी रावणनें

आसन परसे उठ मणिकी माला कुंभकर्णके गलेमें पहरायदी ॥ २५ ॥ फिर बाजू अंगूठी आदि श्रेष्ठ २ भूषण और चंद्रमाकी समान उज्ज्वल हार महात्मा कुंभकर्णको रावणने पहराया ॥ २६ ॥ कुंभकर्णके कानोंमें मनोहर दो कुंडल शोभायमान हुए, और उसके गलेमें अति सुगन्धित शोभायमान माला रावणनें पहराई ॥ २७ ॥ बड़े कानवाला कुम्भकर्ण सुवर्णके बाजू, केयूर और वह दूसरे आभूषणोंसे भूषित होकर प्रदीप्त अग्निकी समान शोभायमान होने लगा ॥ २८ ॥ उसकी कमरमें काला तगड़ीका डोरा देखनेसे ऐसा जान पड़ताथा, मानो समुद्रसे अमृत मथन करनेंके समय सर्पद्वारा मन्दर पर्वत दृढ रूपसे बँधा हुआहै ॥ २९ ॥ कुम्भकर्णनें सुवर्ण का बना हुआ बिजलीकी प्रभाके समान वर्म (बख्तर) धारण किया, वह तेजके प्रभावसे दमक रहाथा, बड़ा भारी था, अभेद्य था, इस बख्तरसे, सन्ध्या समयके मेघसे रँगे हुए हिमालय पर्वतकी समान कुम्भकर्णनें अपूर्व शोभा धारणकी ॥ ३० ॥ कुंभकर्ण समस्त भूषणोंसे भूषित और हाथमें बड़ा भारी शूल लेकर ऐसा ज्ञात हुआ, कि मानों त्रिविक्रमसे विष्णुजी, स्वर्ग मृत्यु, और पाताल लोकके तापनेंको तैयार हुएहैं ॥ ३१ ॥ महा बली कुम्भकर्ण रावणसे भलीभांति मिल भेंटकर उसकी प्रदक्षिणा कर प्रणाम करकै युद्ध करनेंके लिये चला ॥ ३२ ॥ राक्षसराज रावणनें उस समय उसको मंगल सूचक आशीर्वाद दिया, उस कालमें शंख व नगाड़ोंका कठोर शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ श्रेष्ठ हथियार लगाये हुए सैना चली मेघकी समान शब्दायमान रथ, हाथी, घोड़े और रथी लोग उस सैनाके पीछे २ चलनें लगे ॥ ३४ ॥ सर्प, ऊंट, गधे, सिंह, हाथी मृगादि पक्षियोंके ऊपर सवार होहोकर राक्षस लोग महा बलवान कुंभकर्णके पीछे २ गमन करनें लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे वह महोत्कट रुधिरकी गन्धसे मतवाला और तीक्ष्ण शूल धारण किये हुए देव दानवोंका शत्रु कुंभकर्ण चला; उस कालमें उसके मस्तकपर छत्रलग रहाथा, और चारों ओरसे उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रहीथी ॥ ३६ ॥ कुंभकर्णके पीछे २ बहुतसे पैदल सारवान महा बलवान भयंकर पराक्रम कारी और भयंकर नेत्र वाले राक्षस हाथोंमें शस्त्र लिये चले ॥ ३७ ॥ राक्षसोंकी आँखें लाल होरहीथीं मूर्त्तिनीले अंजनके ढेरकी समान थी; वह राक्षस गण शूल, खड्ग फरसोंके और

दूसरे अस्त्र शस्त्र धारण करके गमन करनें लगे ॥ ३८ ॥ और भिन्दि-पाल, परिघ, गदा, मूसल, ताल स्कन्ध बड़े २ क्षेपणीय शस्त्रादि लिये वह दुष्ट राक्षस चले ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महावीर कुम्भकर्णनें इस समस्त सैनाको साथ ले भयंकर मूर्त्ति धारण कर युद्ध करनेंके लिये यात्रा की॥४०॥उस समय कुंभकर्णका देह शत धनुष अर्थात् तीन शत हाथही चौडाईमें था, और एक शत छेः धनुष अर्थात् ११८हाथका लंबाथा छकड़ेके पहियोंकी समान नेत्र थे; और पर्वतकी समान दिखाई देताथा ॥ ४१ ॥ भस्म हुए पर्वतकी समान बड़े भारी मुखवाला कुंभकर्ण व्यूहकी रचना करके अपनी सैनासे मृदु हँसकर बोला ॥ ४२ ॥ हे राक्षसगण! तुम लोग वानरोंके यूथ पतियोंको देखते हो हम इनको इस प्रकारसे भस्म कर डालेंगे कि जैसे अग्नि पतंगको भस्म कर देतीहै ॥ ४३ ॥ अथवा वनचारी वानरलोगोंका अपराध ही क्या है वह तो हम समान पुरुषोंकी पुरी और फुलवाडियोंके ही भूषणहैं ॥ ४४ ॥ हमारे विचारमें रामचंद्र ही लंका घेरनेकी मूल हैं इसलिये आज रामचंद्र व लक्ष्मणको मारडालनेंसे और सब अपने आपही से मर जांयगे ॥ ४५ ॥ कुंभकर्ण यह बात कह ही रहाथा कि इतनेंमें ही महाबलवान योद्धा लोग समुद्रको कंपायमान ही करते से मानो घोर सिंहनाद करने लगे ॥ ४६ ॥ महा बुद्धिमान कुंभकर्ण युद्धके लिये निकल रहाथा कि इतनेमे चारों ओर अति घोर दुर्निमित्त होनें लगे॥४७॥उल्का व वज्रसे युक्त मेघ गण गर्द्दभकी समान अरुण रंग होगये और समुद्र वनके सहित पृथ्वी कंपायमान होने लगी ॥ ४८ ॥ घोर रूप शृगालियें अँगारोंको मुखमें दिये शब्द करने लगीं और पक्षी गण अशुभ मंडल बांधकर दहिनी ओर चलने लगे ॥ ४९ ॥ जबकि कुंभकर्ण मार्ग चल रहाथा तब उस समय उसके शूल पर गिद्ध बैठगया और उसका वामा नेत्र फड़ककर वांया हाथभी कंपायमान होने लगा ॥ ५० ॥ सन्मुख बडी भारी भयंकर जलती हुई उल्का गिर पडी सूर्य भगवान प्रभा-हीन होगये और जिस्से सुख प्राप्त हो सके ऐसी वायु भी नहीं चली ॥ ५१ ॥ परन्तु कालवशसे प्रेरित हुआ कुंभकर्ण उन रोमहर्षण बडे २ उत्पातोंको कुछभी न समझता हुआ चला ही गया ॥ ५२ ॥ पर्वताकार कुंभकर्ण पैदल ही चलकर कोटकी भीतके वाहर आया कि उसमें मेघमाला की समान

अद्भुत वानरोंकी सैनाको देखा ॥ ५३ ॥ पर्वताकार राक्षस वीर कुंभकर्णको निहारकर पवनसे उडाये हुए मेघकी समान सब वानर लोग इधर उधर भागने लगे ॥ ५४ ॥ वीर कुंभकर्ण प्रचंड वानरोंकी सैनाको मेघ जालकी समान इधर उधर भागता हुआ देखकर हर्षके मारे मेघकी समान गंभीर शब्दसे सिंहनाद करनें लगा ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार आकाशमें मेघोंका गर्जना शब्द हुआ करता है ऐसेही कुंभकर्ण की घोर सिंहनाद सुनकर वानरोंमेंसें बहुतसे जड़कटे शाल वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५६ ॥

विपुलपरिघवान्सकुंभकर्णोरिपुनिधनायविनिःसृतोमदात्मा ॥ कपिगणभयमाददत्सुभीमंप्रभुरिवकिंकरदंडवान्युगांते ॥ ५७ ॥

इस प्रकारसे शत्रुका विनाश करनेंके लिये आया हुआ बड़ाभारी शूल हाथमें लिये हुए महा बलवान कुंभकर्ण किंकर गणोंके साथ प्रलयकालीन दंड हाथमें लिये शंकरजीकी समान वानर लोगोंको भयंकर भय उत्पन्न करानें लगा ॥ ५७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥

सलंघयित्वाप्राकारंगिरिकूटोपमोमहान् ॥ निर्ययौनगरात्तूर्णंकुंभकर्णोमहाबलः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त पर्वताकार महावीर कुंभकर्ण लंकाके प्राकार (कोटकी-भीत) को लांघ अति शीघ्रता पूर्वक नगरके बाहर निकला ॥ १ ॥ वह कुंभकर्ण समुद्रको कंपायमान पर्वतोंको चलायमान, और वज्रको पराजित करके घोर सिंहनाद करनें लगा ॥ २ ॥ वानर गण, इन्द्र, यम और वरुणसेभी न मारे जानें योग्य भयंकर नेत्रवाले उस राक्षसको देखकर डरके मारे भागनें लगे ॥३॥ तब वालिके पुत्र अंगदजी वानरोंको भागते हुए देखकर नल नील गवाक्ष और कुमुदसे बोले ॥ ४ ॥ यह क्या! और साधारण वानर लोगोंकी समान तुम लोगभी भयके मारे विह्वलहो कहांको भागे जाते हो ! क्या तुम अपने २ परिवार और अपने २ बड़े भारी वीर्यको भूलगये ॥५॥ हेसौम्य स्वभाव वालो ! भाग करके प्राणरक्षा करनेंकी क्या आवश्य-

कताहै? जो कुछभीहो इस समय तुम लौट आओ,जिसको देखकर तुम लोग भय करतेहो यह तो केवल धोखाही धोखाहै, इसमें युद्ध करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ६ ॥ हेवानर लोगो! तुम सबके लौट आनेंपर हम सब एकत्रहो मिलकर विक्रम प्रकाश करके राक्षसोंके उठाये हुए बड़े भारी धोखेको नाश कर देंगे ॥ ७ ॥ अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर वानरगण धीरज बांध बड़ी कठिनाईसे लौटे और वृक्ष पर्वतादि ग्रहण करके युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए ॥ ८ ॥ मदमाते हाथियोंकी समान वह वानर गणोंनें उत्साह सहित लौटतेही क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ ९ ॥ परन्तु महाबलवान् कुम्भकर्ण बड़े २ पर्वतोंके शृङ्ग, शिला, और फूले फले हुए वृक्षोंसे ताड़ित होकरभी क्षणभरके लियेभी चलायमान नहीं हुआ ॥ १० ॥ अधिक करके शिला और वृक्ष फूले हुए उसके शरीर पर गिर खंड २ हो पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ ११ ॥ अग्निके वनको जलानेंकी समान क्रोधमें भरकर महा तेजस्वी कुंभकर्णभी वानरोंकी उस सैनाको अति यत्नके साथ मथनें लगा ॥ १२ ॥ उस कालमें बहुतसे वानरगण अरुण रंगके पुष्पोंसे शोभित वृक्षोंकी समान। लाल २ रुधिरसे देह भिगाये पृथ्वीपर गिर २ कर शयन करनें लगे॥ १३ ॥ उनमेंसे कोई २ वानर किसी ओरको न देखकर भागते हुए लांघनेंके अभिप्रायसे समुद्रमें गिरनें लगे; और कोई २ सघन वनोंमें छिप गये ॥ १४ ॥ अधिक क्या कहैं उसकालमें अनेक वानर वीर उस राक्षस कुंभकर्णसे लीला सहित मारे जाकर मरनेके निकट पहुंच जिस मार्गसे समुद्रके पार हुएथे उसी मार्गसे भागनें लगे ॥ १५ ॥ रीछ गणभी भयके मारे विवर्ण मुखहो कोई २ गुफामें प्रवेश करगये, कोई २ वृक्षोंपर चढ़े, और कोई २ पर्वतोंपर आरोहण करते हुए ॥ १६ ॥ कोई २ पर्वतों परसे नीचे उतर आये और कोई २ नीचे नहीं उतरे वही पर रहे; कोई २ मृतक होगये, और कोई २ मृतक तुल्य होकर पृथ्वीपर सोरहे ॥ १७ ॥ तब अंगदजी वानरोंकी यह अवस्था देखकर उनसे बोले तुम लोग लौटो, हम फिर युद्ध करेंगे॥ १८॥ हे वानर गण! तुम रणभूमिको छोड़कर भागे जातेहो परन्तु हम सारी पृथ्वीपर भी तुम्हारे कहीं रहनेंका स्थान नहीं देखते कि तुम वहां भयरहत होकर बच जाओ और अपने २ प्राणोंकी रक्षा कर सको, इसलिये

शीघ्र लौट आओ; इस प्रकारकी प्राण रक्षा करनेंसे क्या होगा; क्योंकि जहां रहोगे वहां सुग्रीव तुम्हें मरवा डालेंगे ॥ १९ ॥ हे अतुल गतिवान पौरुषयुक्त वानरों ! तुम यदि अपने आयुधोंका त्याग करकै इस प्रकारसे भाग अपने प्राणोंकी रक्षा करोगे; तब तुम्हारी स्त्रियें जो तुम्हारा उपहास करेंगी; वह उनका हँसना ही मृत्युकी समान होजायगा ॥ २० ॥ आश्चर्य! तुम सबने बडे २ कुलोंमें जन्म ग्रहण कियाहै सो तुम साधारण वानरोंकी समान भयभीत होकर कहां भागे जातेहो ? तुम लोग जबकि अपना विपुल विक्रम भूलकर भीत हुए हो तब तुम अति नीच और राजद्रोही हो ॥ २१ ॥ अपनी २ उग्रता दिखलानें, और वानर राज सुग्रीवका हित साधन करनेंके लिये तुमनें उस समय जो बड़ी २ बातें मारी थीं वह समस्त बातें कहां अन्तर्ध्यान होगईं ॥ २२ ॥ जिसको सत्पुरुष लोग धिक्कार दिया करते हैं, उस भीरुके नरकमें गिरने आदिके प्रवाद सुनाई देतेहैं इस कारण सत्पुरुषोंके सेवन करनें योग्य मार्गमें चलकर भयको त्यागदो; क्यों भय खातेहो ? ॥ २३ ॥ यदि आयुके पूरा होजानेसे हम सब शत्रुओंसे नाशको प्राप्त होकर रणभूमिमें देवात् पृथ्वीपर गिरें तौ अवीर गणोंको प्राप्त होंनेके अयोग्य ब्रह्म लोकको हम प्राप्त करेंगे ॥ २४ ॥ और वीर गणोंके सुखसे भोग करनेंके धनको प्राप्त करेंगे, और जो समरमें शत्रु लोगोंका नाश करसके तौ इस लोकमें अतुल कीर्त्तिको प्राप्त करेंगे ॥ २५ ॥ जिस प्रकार पतंग दीप्तिमान अग्निके निकट होकर अपने जीवनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता, वैसेही कुंभकर्णभी रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके निकट आयकर फिर जीता हुआ लंकाको लौटकर नहीं जासकैगा॥ २६॥ विशेष करके हम लोग महावीर और बहुत सारे होकरभी यदि एक राक्षससे भय पायकर भाग जांयगे और इस प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षाकरेंगे तौ इस्से हमारा यश नष्ट होजायगा ॥ २७ ॥ कनकका बाजू पहरे शूर श्रेष्ठ अंगदजीके यह वचन सुन भागकर चले जाते हुए वानर लोग शूर गणोंके आगे निन्दा पानेके योग्य वचन बोले ॥ २८ ॥ हे वीरश्रेष्ठ ! महा बलवान् कुम्भकर्ण अति घोर संग्राम कर रहाहै, इस समय हम लोग उसके सन्मुख किसी प्रकारसे खड़े नहीं हो सकते हैं, जो कुछभीहो हमें अपना प्राण अत्यन्त प्याराहै;इस कारण भाग जानेमेंही हमारी भलाई है ॥ २९ ॥

वानरोंके यूथपति भयंकर नेत्रवाले भयंकर रूपवान कुम्भकर्णको आया हुआ देखकर केवल इतनाहीं कहकर चारों ओरको भागनें लगे, ॥ ३० ॥ परन्तु अंगदजीनें समझाय बुझाय लालच दिखाय, उन भागते हुए वानर गणोंके यूथनाथोंको किसी प्रकारसे फिर लौटारा ॥ ३१ ॥ तब बुद्धिमान अंगदजीने उन सब वानरोंको उत्साहित किया, और यूथपति लोगभी युद्ध करनेंके लिये वाट जोहनें लगे ॥ ३२ ॥

प्रहर्षमुपनीताश्चवालिपुत्रेणधीमता ॥
आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्चसर्वेवानरयूथपाः ॥ ३३ ॥

इसके उपरान्त शरभ, मैन्द, धूम्र, नील, कुमुद, सुषेण, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद और पवनकुमार हनुमानादि मुख्य २ वानर अतिशीघ्रतासे समरभूमिकी ओर चले ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

तेनिवृत्तामहाकायाःश्रुत्वांगदवचस्तदा ॥
नैष्ठिकींबुद्धिमास्थायसर्वेसंग्रामकांक्षिणः ॥ १ ॥

अंगदजीके वचन सुनकर समस्त वानर लौटपडे; और अपनी मृत्युका होना मनमें ठान युद्ध करनेंका अभिलाष करते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे बलवान अंगदजीके वचनोंसे वह सब प्रकारसे युद्ध करनेंको आरूढ हुए और उन लोगोंका वीर्य प्रदीप्त होनेसे वह सब फिर पराक्रम प्रकाश करनें लगे ॥ २ ॥ वह समस्त वानरगण अपने प्राणोंकी आशा छोड़कर मरणमें कृत निश्चयहो कठोर युद्धका आरंभ करतेहुए ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त वह बड़े शरीर वाले वानर गण, वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग उठायकर कुम्भ-कर्णके सन्मुख धाये ॥ ४ ॥ परन्तु वीर्यवान महाकाय कुम्भकर्ण क्रोधमें भर गदा उठाय शत्रुओंको धर्षित करके चारों ओरसे उनके ऊपर प्रहार करनें लगा ॥ ५ ॥ उस समय असंख्य वानरवीर कुम्भ-कर्णके प्रहारसे ताडितहो अपनी देह पृथ्वीपर पसारकर सोगये ॥ ६ ॥ जिस प्रकार गरुडजी सर्पोंको भक्षण करते हैं वैसेही अत्यन्त क्रोधित हुआ कुम्भकर्ण, एक २ वारमें सोलह अठारह, और बीस तीसतक वानरोंको

अपनी बांहोंसे पकडकर मुखमें डालकर खाय जाताथा ॥ ७ ॥ वानर लोगभी बड़े कष्टसे सावधान चित्तहो इकट्ठे हुए और वृक्ष व पर्वतोंको हाथमें ग्रहणकर रणभूमिमें विराजमान होंने लगे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त लंबमान बादलकी समान वानरश्रेष्ठ द्विविद एक पर्वत उखाड़के पर्वताकार कुम्भकर्णकी ओर दौड़ा ॥ ९ ॥ उस वानर श्रेष्ठनें पर्वतका शिखर उखाड़तेही कुम्भकर्ण पर चलाया, परन्तु वह पर्वतका शिखर कुम्भकर्णके ऊपर न गिरके उसकी सैनापर गिरा ॥ १० ॥ उस पर्वत शृङ्गके गिरनेंसे उस सैनाके अश्व, गज, और रथ समस्त चूर्ण होगये । तब वानर द्विविद और एक पर्वतका शृङ्ग चलायकर और राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ११ ॥ वानर श्रेष्ठ द्विविदके चलाये शैल शृङ्गनें अत्यन्त वेगसे गिरकर राक्षसोंके रथ सारथियोंके सहित चूर्णकर डाले ॥ क्षण भरमें रण भूमि राक्षसोंके रुधिरसे गीली होगई॥१२॥तब रणमें बैठे हुए महावीर राक्षस लोग भयंकर सिंहनाद करके कालाग्निकी समान बाण चलाय २वानरोंका नाश करनें लगे॥ १३ ॥ इस ओर महा बलवान वानर गणभी बड़े वृक्षोंको उखाड़कर रथ, अश्व, हाथी,ऊंट, और राक्षसोंको विध्वंश करनें लगे॥१४॥ महावीर हनुमानजीनें आकाश मार्गमें टिककर पर्वतोंके शृङ्ग विविध शिलाखंड और अनेक वृक्ष कुम्भकर्णके मस्तकपर चलाये ॥ १५ ॥ राक्षसवीर महाबलवान कुंभकर्णने देखते २ इन सब शैल शृंगादिकोंको शूलसे खंड २ कर डाला और पलक मारतेमे वृक्षादिकोंको चूर्ण करदिया ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त कुंभकर्ण तीक्ष्ण शूल हाथमें लेकर वानर सैनाकी ओर दौड़ा, यह देखकर हनुमानजी एक बड़ा भारी पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करके उसके सन्मुख खडे रहे॥१७॥तब हनुमानजीनें अत्यन्त क्रोधमें भरकर वह पर्वतका शृङ्ग अतिवेगसे पर्वत श्रेष्ठकी समान निशाचर कुंभकर्णके मारा कि जिसके लगनेंसे वह अत्यन्त कातर और व्याकुल हुआ; और उसके अंग; रुधिर और वसा (चरबी) से भीगगये ॥ १८ ॥ तब महावीर कुंभकर्णनें बिजलीके समान प्रकाशमान और शब्दित शूल घुमायकर पर्वत जिसप्रकार जलते हुए अग्निके शृङ्गको धारण करताहै, वैसेंही वह शूल हनुमानजीकी बाहोंमे मारा उस समय ऐसा जान पड़ा मानो कुमारने शक्ति चलायकर क्रौञ्च पर्वतको फोड़ डाला ॥ १९ ॥ अत्यन्त दारुण प्रहारसे

रणभूमिमें वानर वीर हनुमानजी अत्यन्त विह्वल हुए, उनके मुखसे अनिवारित रुधिरकी धारा वहनें लगी; और प्रलयकालीन मेघके गर्जनकी समान अत्यन्त भयंकर गर्जन करनेंलगे ॥ २० ॥ राक्षसगण हनुमानजीको अचानक इस प्रकार व्यथित देखकर हर्पसे सिंहनाद करनें लगे और वानरगण भयसे दुःखित हृदयहो कुंभकर्णके निकटसे भागनेंलगे ॥ २१ ॥ तिसके पीछे भयंकर पराक्रमकारी वानर सैनापति नीलनें सैनाको सावधान करके कुंभकर्ण पर एक बड़ा भारी पर्वतका शृंग चलाया ॥ २२ ॥ दूरसे उस पर्वतके शृङ्गको आता हुआ देखकर बलवान कुंभकर्णने घूसा मारकर उसको चूर्ण करडाला देखते २ उस पर्वत शृङ्गमेसें चिनगारियें निकलनें लगीं और ज्वाला सहित उसके टुकड़े पृथ्वीपर गिरनेलगे ॥ २३ ॥ उस समय ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष, और गन्धमादन यह पांच वानरश्रेष्ट कुंभकर्णकी ओर धाये ॥ २४ ॥ यह पांचों वानर वृक्षोंके आघातसे, पर्वतोंके प्रहारसे चपतकी मारसे लातोंकी चोटसे, और मूकोंकी मारसे पर्वताकार कुंभकर्णपर प्रहार करनेंलगे ॥ २५ ॥ परन्तु कुंभकर्ण उन सब प्रहारोंको सुखका स्पर्श समझकर कुछभी पीडित नहीं हुआ, और उसनें महावेगसे ऋषभको अपनी बांहोंसे पकड़कर अपनी छातीमे लगालिया ॥ २६ ॥ वानर श्रेष्ठ ऋषभ कुंभकर्णकी बांहोंके प्रहारसे पीड़ित होकर उसी समय पृथ्वीपर गिर पड़ा उसके मुखसे बराबर रुधिरकी धारा वहनें लगी ॥ २७ ॥ उसके उपरान्त इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णनें रणभूमिमें मूका मारकर शरभको जांघके प्रहारसे नीलको और लात मारकर गवाक्षके ऊपर प्रहार किया २८॥ यह सब वानर वीर अत्यन्त दारुण प्रहारसे मर्ममें घायल होकर गिरगये, उनके सब अंगोंमें रुधिरकी धारा वहनेंसे वह जड़कटे हुए टेसूके वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ २९ ॥ उन महाबलवान मुख्य वानरोंके पृथ्वीपर गिरनेंसे असंख्य वानरोंकी सैना कुंभकर्णके सन्मुख दौड़ी ॥ ३० ॥ पर्वताकार वानरश्रेष्ठ गण छलांग मारकर पर्वताकर कुंभकर्णके शरीरपर सवार होकर वारंवार दांतोंसे उसको काटनें लगे ॥ ३१ ॥ वह वानरश्रेष्ठ गण, नख दन्त मूका और बांहोंसे महाबलवान कुंभकर्णको मारनेलगे॥३२॥ उसकालमें पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण हजारों वानरोंके लिपट जानेसे विराजित पर्वतश्रेष्ठकी समान ॥ ३३ ॥ गरुडजी जिसप्रकार

सर्पोंको भक्षण करतेहैं, वैसेही वह महाबलवान कुंभकर्ण क्रोधमें भरकर अपनी बाहोंसे वानरोंको पकड़ २ कर खानेलगा ॥ ३४ ॥ परन्तु वानरगण कुंभकर्ण करके उसके पातालकी समान मुखविवरमें डाले जाकर नाकके छेद और कानोंमें होकर निकलने लगे ॥ ३५ ॥ वह पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ अत्यन्त क्रोधित होकर वानरोंको भक्षण करता हुआ समस्त वानरोंकी सै-नाको पटकर२ कर उसके अंग भंग करने लगा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार राक्षस कुंभकर्ण रणभूमिमें मांस आर रुधिरकी कीचड़ उठाय प्रलय कालके प्रदीप्त अग्नि समान वानरोंकी सैनाके बीचमे घूमनें लगा॥३७॥ इन्द्रजी वज्रधारण करकै जिसप्रकार शोभित होतेहैं, फांसी हाथमें लिये यमराज जिसप्रकार शोभायमान होतेहैं वैसेही शूल धारण करकै कुंभकर्णकी चमत्कार शोभा हुई ॥ ३८॥ जिसप्रकार अग्नि ग्रीष्मऋतुमें ग्रीष्मके समयमें सूखे हुए वनको जलातेहैं, वैसेही कुंभकर्णभी वानरोंकी सैनाको भस्म करनें लगा ॥ ३९ ॥ तब मोरचोंसे तितर वितर हुए वानरगण कुंभकर्णसे वध्यमान होकर भयके मारे उद्विग्न मनसे विकट नादकरनें लगे ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे वानर गण कुंभकर्णसे मारे जाकर उत्साह रहित होगये, और अत्यन्त भीतहो व्यथित मनसे श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें गये ॥ ४१ ॥ वालिकुमार अंगदजी महारणमें वानरोंको कुंभकर्णके डरसे भागा हुआ देखकर वेग सहित उसके सन्मुख दौड़े ॥ ४२ ॥ उन वीर वालिकुमार अंगदजीने बड़ा भारी पर्वत-का शृंग ग्रहणकरकै कुंभकर्णके अनुगामी सब राक्षसोंको त्रासित कर॥४३॥ वह पर्वताकार शिखर कुंभकर्णके मस्तकपर चलाया इन्द्रका शत्रु कुंभक-र्ण उस शिखरके लगनेसे ॥ ४४ ॥ क्रोधके मारे अत्यन्त प्रज्वलितहो उठा और वेगसे वालिकुमार अंगदजीके ऊपर धाया ॥ ४५ ॥ महानाद करकै कुंभकर्णने समस्त वानरोंको त्रासितकर अत्यन्त रोषसे वह शूल महा-बलवान अंगदजीके ऊपर छोड़ा ॥ ४६ ॥ परन्तु युद्धविद्याविशारद कपि श्रेष्ठ अंगदजी उस शूलको आता हुआ देख अपने शरीरको छोडकर दूरको कूदगये, और उस शूलको व्यर्थ कर दिया ॥ ४७ ॥ तिसके पीछे वेगसे उछलकर वीरश्रेष्ठ अंगदजीनें कुंभकर्णकी छातीमें इस प्रकार जोरसे लातमारी कि पर्वतकी समान कुंभकर्णभी उस लातके लगनेंसे मूर्छित होगया ॥ ४८॥ विपुल बलशाली कुंभकर्णनें क्षणभरमें

चेतना पाय हँसकर अंगदजीकी छातीमें एक मूकामारा, कि जिसके लगनेंसे वीरश्रेष्ठ अंगदजी मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ४९ ॥ वानर शार्दूल अंगदजी जब पृथ्वीपर गिरकर मूर्छित होगये तब कुंभकर्ण शूल ग्रहण करके सुग्रीवजीके सन्मुख धाया ॥ ५० ॥ वीरश्रेष्ठ वानरराज सुग्रीवजी महा बलवान कुंभकर्णको आता हुआ देखकर आपही उछल गये ॥ ५१ ॥ वह महा बलवान सुग्रीवजी एक पर्वतको उखाड़कर महा बलवान कुंभकर्णके ऊपर चलाय स्वयं अतिवेगसे उसके ऊपरको दौडे ॥ ५२ ॥ परन्तु कुंभकर्ण वानरराज सुग्रीवजीको वीर दर्पसे आता हुआ देखकर, अपने हाथ पांव फैलाकर सुग्रीवजीके सन्मुख हुआ ॥५३॥ महा २ वानरोंके भक्षण करनेंसे जिनके सर्वाङ्गोंमें वानरोंका रुधिर लगा हुआथा उस कुंभकर्णको सन्मुख खडा हुआ देखकर सुग्रीवजी कहनें लगे ॥ ५४ ॥ हेवीर! तुमनें हमारी ओरके प्रधान २ वीरोंको मारकर वीरताका परिचय दियाहै, हमारी बहुत सारी सैना तुमने भक्षणभी करली है, अधिक क्याकहैं तुमनें यह कार्य करकै अनुपम यश प्राप्त कियाहै ॥५५॥ इसलिये इस समय तुम इन वानरोंको छोडदो, साधारण वानरोंके साथ युद्ध करनेंसे तुमको क्या फल मिलेगा? हे राक्षस! जो युद्धकी वासना हो तौ हम यह पर्वतका शृङ्ग चलाते हैं, तुम आज हमारे साथ युद्ध करो ॥ ५६ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके वीरता धीरता युक्त ऐसे वचन सुनकर राक्षस शार्दूल कुंभकर्ण बोला ॥ ५७ ॥ तुम प्रजापति ब्रह्माजीके पोते और ऋक्षराज वानरके पुत्रहो विशेष करकै तुममें धीरता और पौरुषहै; इसीलिये तुम ऐसा गर्जन करतेहो ॥ ५८ ॥ तिसके पीछे वानर राज सुग्रीवजीनें राक्षसराज रावणके छोटे भ्राता कुंभकर्णके ऐसे वचन सुनकर, उस पर्वतके शिखरको घुमाय कुंभकर्णके ऊपर चलाया, वज्र और अशनिके समान वह शैल शृङ्ग कुंभकर्णकी छातीमें लगा ॥ ५९ ॥ परन्तु वह पर्वतका शृङ्ग कुंभकर्णकी बड़ी छातीमें लगकर सहसा चूर्ण होगया, तिसके चूर्ण होंनेसे वानरगण शोकित हुए और राक्षस गण आनंदके मारे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६० ॥ शैल शृङ्गकी ताड़नासे कुंभकर्ण अत्यन्त कुपित हुआ वह मुख फैलायकर सिंहनाद करनें लगा। इसके उपरान्त क्षण कालमें बिजलीकी समान प्रकाशमान शूल ग्रहणकर व

घुमाय उसनें वानर रीछोंके पति सुग्रीवजीका प्राण संहार करनेंके लिये उनके ऊपर चलाया ॥ ६१ ॥ कि इतनेहीमें पवनकुमार हनुमानजीनें मूर्छासे जाग अति वेगसे उछलकर कुंभकर्णकी भुजा ओंके चलाये सुवर्णकी मालासे शोभित और पैने उस शूलको दोनों बाहोंसे पकडकर तोड डाला ॥६२ ॥ महावीर हनुमानजीने सौ भारके वने हुए उस काले लोहेके शूलको अपनी जांघ पर रखकर लीला पूर्वक तोड़ डाला जिसको देखकर वानरोंके आनंदकी सीमा न रही ॥ ६३ ॥ हनुमानजीसे शूलको टूटा हुआ देखकर वानरोंकी सैना आनंदसे सिंहनाद करती हुई आगेको धाई ॥ ६४ ॥ त्रासितहोकर राक्षसभी युद्ध करनेंसे विमुख होगये, उनको देखकर वानर गण हर्षितहो वारंवार सिंहनाद करनें लगे, और शूलको टूटा हुआ देखकर हनुमानजीकी वड़ाई करनें लगे ॥ ६५ ॥ राक्षसपति महावलवान कुंभकर्ण शूलको इस प्रकारसे टूटा हुआ देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और लंकाके समीप स्थित मलयाचलका एक शृङ्ग उखाड़कर सुग्रीवजीके निकट आय उसने इनके ऊपर प्रहार किया ॥ ६६ ॥ वानरोंके राजा सुग्रीवजी उस पर्वतके शृङ्गोंसे अत्यन्त घायल और चेतना रहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े उनको मूर्छित होकर पृथ्वीमें पड़ा देख निशाचरगण आनंदसे सिंहनाद करनें लगे ॥ ६७ ॥ उसके उपरान्त प्रचंड पवन जिस प्रकारसे वादलोंको उड़ा कर ले जाता है वैसेही कुंभकर्ण अद्भुत वीर्यवान घोर पराक्रमकारी वानरेन्द्र सुग्रीवके निकट आय उनको काखमें दवाय उडा ले चला ॥ ६८ ॥ उस कालमें सुमेरु पर्वतकी समान आकारवाला कुंभकर्ण, महामेघकी समान सुग्रीवजीको ग्रहण करकै वड़े ऊंचे शृङ्गोंसे युक्त चलते हुए मेरु पर्वतकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ ६९ ॥ और वानरराज सुग्रीवजीको पकड़ा हुआ देखकर देवता लोग अत्यन्त विस्मितहो अनेक प्रकारसे शोकका जताने वाला हाहाकार शब्द करनें लगे और वीरश्रेष्ठ राक्षसेन्द्र कुंभकर्ण उन समस्त शब्दोंको श्रवण करता हुआ निशाचरोंसे वड़ाई पाता लंकाको चला ॥ ७० ॥ इन्द्रकी समान वीर्यवान इन्द्रका शत्रु कुंभकर्ण उस समय इन्द्रकी समान वानरोंके स्वामी सुग्रीवजीको पकड़कर मनमें निश्चय करता हुआ कि, इस सुग्रीवके मरनें पर रामचंद्र व लक्ष्मणके सहित समस्त वानरोंकी सैना अपने आप मर

जायगी ॥ ७१ ॥ उस समय इधर उधर भागती हुई वानरोंकी सैनाको निहार और कुंभकर्णसें पकड़े हुए सुग्रीवजीको देख वानर ॥ ७२ ॥ पवन कुमार वडे बुद्धिमान हनुमानजी अपने मनमें चिन्ता करनें लगे; कि सुग्रीवजी तौ इस भांतिसे पकडे गये अव हमको क्या करना उचितहै ॥७३॥ इस समय जो कुछ करना उचितहै, हम वही समस्त पूर्ण करनेंके निमित्त पर्वताकार देह धारण करके निश्चयही निशाचर कुंभकर्णका संहार करेंगे ॥ ७४ ॥ हम देखतेहैं कि हमारे हाथके मूका लगनेंसे युद्धमें कुम्भकर्णका सव शरीर फट जायगा और वह मरजायगा तव वानरराज सुग्रीवजीके समस्त वानरोंके आनंदकी सीमा न रहेगी ॥ ७५ ॥ अथवा हमारी इस प्रकारकी सहायताका क्या प्रयोजनहै ? यह वानरराज सुग्रीवजी यदि असुर व सर्पोंके सहित देवता लोगोंसे पकड़े जाँय तथापि यह अपने आपहीसे अपनेको छुटालेंगे ॥ ७६ ॥ ऐसा जान पड़ताहै कि पर्वतके प्रहारसे अत्यन्त चोट खानेंके कारण इन सुग्रीवजीका ज्ञान लोप हुआ होगा, इसी कारणसे स्वयं जो कुम्भकर्णसे रणस्थलमें वह पकडे गये हैं, ॥ ७७ ॥ इस वातको अवतक नहीं जान सकेहैं हमको निश्चय है कियह मामा सुग्रीवजी इसी मुहूर्तमें चेतनाको पाय अपना और वानर गणोंका जिस्से मंगल होगा उसकी चेष्टा करेंगे ॥ ७८ ॥ और जो अवश्यही हम महा वलवान सुग्रीवजीको ऐसे कष्टसे छुटादें तौ इनकी निरंतर कीर्त्तिका नाश होगा; और इसही कारणसे हमारे साथ अनवनाव होजानाभी संभव है ॥ ७९ ॥ इसलिये हम क्षणभर परखकर इन शत्रुसे छुटे हुए वीरका पराक्रम देखें । और इतने इस भागी हुई वानरोंकी सैनाको समझावें बुझावें ॥ ८० ॥ पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारकी चिन्ता करके इस वड़ी भारी वानरोंकी सैनाको फिर समझा बुझाकर स्थापित करनें लगे ॥ ८१ ॥ इस ओर कुम्भकर्ण उन दीप्तिमान् महा वानर सुग्रीवजीको ग्रहण करके विमान, मार्ग, ग्रह, और फाटको पर वैठे हुए राक्षसों करकै उत्तम पुष्पोंकी वर्षासे पूजितहो लंकामें प्रवेश करता हुआ ॥ ८२ ॥ तव अक्षत चंदन युक्त जलकी वर्षासे धीरे २ सींचे जानेंके कारण और मार्गकी शीतलताई लगनेंसे धीरे २ महा वलवान सुग्रीवजीकी मूर्छा जागी ॥ ८३ ॥ इस प्रकारसे वह महा वलवान सुग्रीवजी वहुत कष्टसे

वेतना पाय अपनेको लंकापुरीके मार्ग वीच उस महा बलशाली कुम्भकर्ण की बाहोंमें फँसा देख विचार करनें लगे ॥ ८४ ॥ कि इस प्रकारसे जब यह हमको पकड़े हुए हैं तब हमसे क्या होसकताहै ? जो कुछभीहो आज इस अवस्थामेंभी हम ऐसा कार्य करेंगे कि जिस्से वानर गणोंका मंगल और हितकारी कार्य सिद्ध हो ॥ ८५ ॥ यह विचारकर महा बलवान सुग्रीवजीनें तीखे दांत और नखोंके आघातसे अति शीघ्रता पूर्वक कुम्भकर्णकी नाक काट डाली, व दोनों कानभी साफ उडादिये । और अपने पावोंके तीक्ष्ण नखोंसे उसकी दोनों बगलें चीर फाड़ डालीं ॥ ८६ ॥ उस समय नाक कानके कटजानेंसे नख औ दांतोंसे भली भांति विदीर्ण होनेंसे और सर्वाङ्ग रुधिर द्वारा भीगजानेंसे कुम्भकर्णनें अत्यन्त क्रोधित होकर सुग्रीवजीको पृथ्वीपर पटक दिया और उनको पीसनें लगा ॥ ८७ ॥ परन्तु वानरराज सुग्रीवजी उस भयंकर बलवान कुम्भकर्ण करके पीसे जाकर व और दूसरे राक्षस लोगोंसे सर्व प्रकार मार खाकरभी गेंदकी समान लुढ़कते हुए झटपट बडे वेगसे आकाशको उछलगये और श्रीरामचन्द्रजीके निकट आयकर खड़े हुए ॥ ८८ ॥ उस कालमें महा बलवान् कुंभकर्ण नाक कान विहीन होकर रुधिर उगलता हुआ बहुत सारे झरनोंसे युक्त पर्वतराजकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ ८९ ॥ रुधिरसे भीगा हुआ भयंकर रूप और बड़े आकारवाला रावणका छोटाभाई कुम्भकर्ण रुधिर उगलता हुआ शोभित हुआ ॥ ९० ॥ महावीर कुंभकर्णका आकार नीले अंजनकी समान काले रंगकाथा, सन्ध्या फूलनेंके रंगसे रँगे हुए मेघकी समान उसकी शोभा अनुपमथी; ऐसे अति भयंकर रूप निशाचरनें फिर युद्धभूमिमें चलनेंके लिये अभिलाष किया ॥ ९१ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके चले जानेंपर रौद्र मूर्त्ति इन्द्रका शत्रु कुम्भकर्ण दूसरी बार रणभूमिकी ओरको दौड़ा और अपनेंको आयुधहीन विचार कर एक मुद्गर इसनें ग्रहण किया ॥ ९२ ॥ इसके उपरान्त वह महाबलवान राक्षस कुंभकर्ण सहसा लंका पुरीसे निकल प्रलय समयके अग्नि जिस प्रकार प्रजा गणोंको भस्म करतेहैं, वैसेही वानरोंको भक्षण करनें लगा ॥ ९३ ॥ मांस रुधिरका लालची कुंभकर्ण भूंखा हुआथा इस कारणसे मोहके मारे ज्ञानहीन होकर उग्र

वानरोंकी सैनामें प्रवेश करके, उसनें वानर राक्षस, पिशाच या रीछोंमें जिसको पाया॥ ९४॥ वह वीर कुंभकर्ण क्रोधके मारे एक दो तीन या इस्से अधिक वानर गणोंको राक्षसोंके सहित एक हाथसे उठाय अपने मुखमें डालनें लगा॥ ९५॥ उस समय वसा (चरबी) और रुधिरकी धारा वहनेंसे उसका शरीर भींग गया, वानर गण पर्वतके शृङ्गोंसे उसको प्रहार करते जातेथे, तथापि उसनें वानरोंको भक्षण करनेंमें कोई कसर नहीं रक्खी॥ ९६॥ इस प्रकारसे कुंभकर्णके क्रोधमें भरकर वानरोंके भक्षण करते दौड़ने पर वानरगण भक्ष्यमान होकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणागतमें गये॥ ९७॥ इस ओर कुंभकर्ण, सात, आठ, वीस, तीस वानरोंको अपने हाथोंसे पकड़२कर उनको अपने पेटमें डालता हुआ रणभूमिमें दौड़ने लगा॥ ९८॥ इसके उपरान्त मेद, चरबी और रुधिर अंगोंमें लगाये तीक्ष्ण दांत वाला कुंभकर्ण दोनों कानोंके शेषमें आंतोंकी माला पहरे महा प्रलयमें बढ़े हुए कराल मूर्त्ति कालकी समान वानरोंकी सैनापर शूल चलानें लगा॥ ९९॥ उसी समयमें गोहके चर्मसे बनाहुआ अंगुलित्राण (गुस्ताना) पहरे वीर वेषधारी शत्रुकी सैनाका नाश करनें वाले सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजी युद्ध करनेंके लिये आये॥ १००॥ वीर्यवान लक्ष्मणजीनें कुंभकर्णके शरीरमें सात बाण मारकर फिर औरभी बाण ग्रहण करके उसके ऊपर छोड़े॥ १०१॥ कुंभकर्ण उन अस्त्रोंके प्रहारोंसें पीडित हो उन बाणोंको हाथोंसे पकड २ अपने विक्रम प्रभावसे खंड२ करकै फेंक दिये यह देख सुमित्राजीके आनंद बढानेवाले बलवान लक्ष्मणजीनें महा कोप किया॥ १०२॥ पवन जिस प्रकार संध्या समयके मेघको उड़ानें जाताहै वैसेही कुंभकर्णके सुवर्णमय शुभ शुक्र कवचको लक्ष्मणजीनें बाणोंसें रूंध दिया॥ १०३॥ उस कालमें नीले अंजनकी समान कुंभकर्ण सुवर्णभूषित बाणोंसे पीड़ित होकर मेघमाला घिरे हुए सूर्यभगवानकी समान शोभायमान होनें लगा॥ १०४॥ तिसके पीछे राक्षस वीर कुंभकर्ण मनुजवीर लक्ष्मणजीसे मेघकी समान गंभीर स्वरसे निरादरके प्रगट करनें वाले वचन कहनें लगा॥ १०५॥ जिसनें संग्रामभूमिमें यमकोभी सरलतासे जीत लियाहै, उस कुंभकर्णके साथ निर्भय युद्ध करकै तुमनें आज बड़ी भारी वीरता प्रकाशकी॥ १०६॥ जिस समय

हम अस्त्र शस्त्र धारण करके साक्षात् मृत्युकी समान घूमतेहैं, उस समय हमारे साथ युद्ध करना तौ एक ओर रहै, जो हमारे सामनें उस समय खड़ाभीहोजाय, वही धन्यवाद देनेंके योग्यहै ॥ १०७ ॥ कारणकि सब ओरसे देवताओंके बीचमें घिरे हुए ऐरावत हाथीपर सवार देवराज इन्द्रभी पहले कभी रणभूमिमें हमारे सामनें टिकनेंको समर्थ नहीं हुए ॥ १०८ ॥ परन्तु हेलक्ष्मण! तुमनें बालक होंने परभी आज अपने बल और पराक्रमसे हमको सन्तुष्ट कर दियाहै, इसलिये हम तुम्हारी अनुमति लेकर रामचंद्रके निकट जानेंका अभिलाष करतेहैं ॥ १०९ ॥ हम संग्राम भूमिमें तुम्हारे वीर्य बल और उत्साहसे परम संतोषको प्राप्त हुएहैं; इस कारण तुम्हैं छोड़कर अब हम रामकेही मार डालनेंकी इच्छा करतेहैं कारणकि उसके मारे जानेंपर सैना सबही मरजायगी ॥ ११० ॥ रामचंद्रके मर जानेपर बचे बचाये जो कोईभी समरमें टिके रहेंगे, हम अपने प्रचंड बलसे युद्ध कर उनके मानकोभी मथ डालेंगे ॥ १११ ॥ जब कुंभकर्णनें स्तुति युक्त और घोर यह वचन कहे तौ सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी हँसते हुए यह वचन बोले ॥ ११२ ॥ हेवीर। तुमने जो इन्द्रादि देवताओंसे असह्य पराक्रम पायाहै, वह सत्यहै, और हमनें आज तुम्हारा वह पराक्रम सत्य देखा ॥ ११३ ॥ और श्रीरामचंद्रजीको जो तुमनें पूछा यह दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजी अचल पर्वतकी समान विराजमानहो रहेहैं। यह सुन लक्ष्मणजीका अनादर कर वह निशाचर चला ॥ ११४ ॥ महाबलवान कुंभकर्ण लक्ष्मणजीको छोड़ पृथ्वीको कंपायमान करता हुआ श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ ११५ ॥ इसके उपरान्त दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीनें घोर अस्त्रोंका प्रयोग करके कुंभकर्णके हृदयको ताककर उसमें तीखे बाण मारे ॥ ११६ ॥ राक्षस कुंभकर्ण श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे विंधकर सहसा उनकी ओर धाया । उस समय कुंभकर्णका शरीर क्रोधके मारे फडकने लगा ॥ ११७ ॥ राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे विंधकर श्रीरामचंद्रजीको छोड क्रोधके मारे वानरोंको तित्तर वित्तर करता हुआ धाया ॥ ११८ ॥ इसी समयमें श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए मोरपंखोंसे शोभित उन समस्त

बाणोंके कुंभकर्णकी छातीमे घुसजानेसे इस कुंभकर्णकी हाथसे गदा छुट कर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ११९ ॥ वह कुंभकर्ण औरभी जितने हथियार लगाये था वहभी सब पृथ्वीपर गिरपडे इस प्रकारसे जब उस महाबलवान कुंभकर्णने अपनेको आयुधहीन देखा॥ १२० ॥ तब उसने मूकों और हाथोंके चपत लगायर२ कर बड़ाभारी युद्ध आरंभ किया जिस प्रकार पर्वतसे झरने गिराकरतेहैं वैसेही कुंभकर्णका रुधिरसे भीगाहुआ शरीर बाणो से अतिविद्ध होनेके कारण रुधिरके धाराओंको छोड़ने लगा अर्थात् उससे रुधिरकीधारें निकलने लगीं॥ १२१ ॥ उस समय वह वीर तीक्ष्णकोप और रुधिरकी गंधसे मूर्छित होकर वानर राक्षस और रीछोंको भक्षण करता हुआ दौड़ने लगा॥१२२॥इसके उपरान्त यमराजके समान भयंकर पराक्रमकारी बलवान कुंभकर्णनें एक पर्वतका शृङ्ग उखाड श्रीरामचंद्रजीके मारनेंको चलाया परन्तु रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी फिर धनुष चढायकर सीधे चलने वाले सात बाणोसे बीचमेंही उस पर्वतके शृङ्गको खंड २ कर देते हुए॥ १२३ ॥ तिसके उपरान्त धर्मात्मा भरतजीके बडे भाई श्रीरामचंद्रजीनें सुवर्णकी फोंक लगे हुए बाणोंसे उसका बडा भारी कवच काट कर फेंक दिया ॥ १२४ ॥ अपनी कांतिसे मेरु पर्वतके शिखरकी समान प्रकाशमान वह कवच पृथ्वीपर गिरा, और दो शत २०० वानर उसके नीचे दबगये ॥ १२५ ॥ उस समय धर्मात्मा लक्ष्मणजी स्वस्थ मनसे कुंभकर्णके वध करनेंको बहुतसे उपाय सोचते विचारते श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२६ ॥ हे महाराज! कुंभकर्णको इस समय वानर और राक्षसोंका कुछभी भेद ज्ञान नहीं है, देखिये! यह रुधिरकी गन्धसे मतवाला होकर अपनी पराई दोनों सैनाके वीरोंको पकड २ कर खा रहाहै॥१२७॥ हे राजन्! इस्से वानरश्रेष्ठगण इसके ऊपर चढ़ जावें; और प्रधान यूथपति इसके ऊपर चढ़कर इसको चारों ओरसे घेरे रहैं ॥ १२८ ॥ इस्से यह दुर्मति राक्षस वानरोंके बोझसे अत्यन्तही पीडितहो पृथ्वीपर घूमता हुआ और वानरोंको संहार नहीं कर सकैगा ॥ १२९ ॥ बुद्धिमान राजकुमार लक्ष्मणजीके ऐसे वचन सुनकर महाबलवान वानरगण कुंभकर्णके ऊपर चढ़ गये ॥ १३० ॥ परन्तु वानरोंके चढ़नेंपर कुंभकर्णनें अत्यन्त पीड़ितहो हाथी जिस प्रकार अपने ऊपर चढनेंवालेको गिराताहै

ऐसेही गरदन कंपायमान करके वानरोंको गिरा दिया ॥ १३१ ॥ वानरोंको गिरा हुआ देखकर श्रीरामचंद्रजी "कुंभकर्ण क्रोधित हुआहै" यह विचार उत्तम धनुष बाण धारण कर सहसा उठ खड़े हुए ॥ १३२ ॥ तब मारे क्रोधके लाल नेत्रकर नेत्रोंसे मानों भस्मही करतेहुए श्रीरामचंद्रजी उसके ऊपर अतिवेगसे दौड़े ॥ १३३ ॥ और कुंभकर्णके बलसे पीड़ित हुए उन यूथपति वानरोंको हर्षित कराया ॥ १३४ ॥ महावीर श्रीरामचंद्रजीके हाथमें दृढ़ प्रत्यंचा सहित सुवर्णके वेल बूटेसे बना हुआ धनुष और कंधेपर उत्तम बाणोंसे भराहुआ तरकश लगाथा, वह श्रीरामचंद्रजी वानर लोगोंको समझाते बुझाते कुंभकर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े ॥ १३५ ॥ महाबलवान वीरधुरीण श्रीरामचंद्रजीके चलनेपर लक्ष्मणजी उनके पीछे २ चले और परम दुर्जय वानर गण उनको चारों ओरसे घेरे हुए गमन करनें लगे ॥ १३६ ॥ इस प्रकार गमन करते हुए दशरथकुमार श्रीरामचंद्रजीनें, रुधिरसे शरीर भीगे महाबलवान महावीर्य किरीटधारी, शत्रुनाशी कुंभकर्णको देख पाया ॥ १३७ ॥ इसके संगमें असंख्य राक्षसोंकी सैनाथी, वह क्रोधसहित वानरोंकी सैनाको खोजता फिरताथा, जिस प्रकार दिगपाल हस्ती क्रोधित होताहो; वैसेही यह राक्षस वीर सबको व्याकुल कर रहाथा ॥ १३८ ॥ उसका आकार विन्ध्याचल और मन्दराचल पर्वतकी समान था सुवर्णका बाजू वह पहरेहुएथा, उसके मुखसे अनिवारित रुधिरकी धारा गिर रहीथी जिसके देखनेसे वह वर्षा कालीन मेघकी समान जान पड़ताथा ॥१३९॥ जीभसे अपने रुधिर लगे दोनो गलफडोंको कुंभकर्ण बारंबार चाट रहाथा, वह यमराजकी समान आकार धारण किये बराबर वानरोंकी सैनाका संहार कर रहा था ॥ १४० ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनें प्रज्वलित्त अग्निकी समान उस उग्र मूर्त्तिवाले राक्षस कुंभकर्णको देख अपने धनुष पर टंकारदी॥१४१॥ परन्तु राक्षसश्रेष्ठ कुंभकर्ण उस धनुषकी टंकारको नही सहन करसका वरन वह दूना क्रोधकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ १४२ ॥ इसके उपरान्त भुजगराजसदृश बाहुयुगलशाली श्रीरामचंद्रजी कुंभकर्णको पवनसे उठायेहुए मेघकी समान आताहुआ देखके कहनें लगे ॥ १४३ ॥ हे राक्षसपति! तुम विषाद न करो! यह देखो हम धनुष हाथमें

लिये खडे हुएहैं । हमकोही राक्षसोंके कुलका अंत करनेंवाला राम जानो हे वीर! तुम इसी मुहूर्तमें जीवविहीन होगये ॥ १४४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके ऐसा कहनें पर" यही रामचंद्रहै" ऐसा जानकर कुंभकर्ण विकट स्वरसे हँसता हुआ क्रोधके मारे वानरोंकी सैनाको भगाता श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ १४५ ॥ इसके उपरान्त सब वनवासी वानरोंके हृदयविदारण करता, मेघके गर्जनकी समान विकट भयंकर स्वरसे हँसता हुआ ॥ १४६ ॥ महा तेजस्वी कुंभकर्ण श्रीरामचंद्रजीसे बोला, हमको, विराध– कबन्ध खर अथवा मारीच मनमें न समझ लेना हम कुंभकर्ण आयेहैं॥१४७॥हमारा यह काले लोहेका बना हुआ बड़ा भारी मुद्गर देखो हमने इससेही पहले देवता और दानव लोगोंको जीत लिया है ॥ १४८ ॥ हमको नाक कान हीन हुआ जानकर तुम हमारा निरादर मत करना, कारणकि नासिका और कान कटजानेंसे हमको कुछभी पीड़ा नहीं हुईहै ॥ १४९ ॥ हेपापरहित इक्ष्वाकुशार्दूल! तुम हमारे शरीर पर पहले अपना बल वीर्य दिखाओ तिसके पीछे तुम्हारा विक्रम और पौरुष देखकर हम तुमको भक्षण करेंगे ॥ १५० ॥ कुंभकर्णके वचन सुनकर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें फोंकलगेहुए बाण उसके ऊपर चलाये, परन्तु वज्रकी समान वेगवान उन सब बाणोंके लगनेंपरभी देवताओंका शत्रु कुंभकर्ण कुछभी दुःखी या चलायमान नहीं हुआ॥ १५१ ॥ जिन बाणोंसे और दूसरे राक्षस मार डाले गये और वानर श्रेष्ठ बाली मारागया. वही वज्रकी समान बाण कुंभकर्णके शरीरमें कुछभी व्यथा उपजानेंको समर्थ नहीं हुए ॥ १५२ ॥ इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णनें पानीकी धाराके समान वह समस्त बाण अपनें शरीरमें धारण करके अति उग्र वेगवाले मुद्गरके प्रहारसे श्रीरामचंद्रजीके सब बाणोंका वेग निवारण कर दिया ॥ १५३ ॥ इसके उपरान्त कुंभकर्ण जिस्से देवताओंकी सैनाभी भागगईथी उसी रुधिर लगे हुए उग्र वेगवान मुद्गरके प्रहारसे बड़ी भारी वानरोंकी सैनाको भगानें लगा ॥ १५४ ॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीनें वायव्य नामक श्रेष्ठ अस्त्र ग्रहणकर कुंभकर्णके ऊपर चलाय उस्से मुद्गरके सहित उसकी बांह काटडाली और कुंभकर्णभी बांह कट जानेंसे कठोर शब्द करनें लगा ॥ १५५ ॥ पर्वतके शृङ्गकी समान मुद्गर

युक्त श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे कटाहुआ वह हाथ वानरराज सुग्रीवजीकी सैनामें गिरा, कि जिस्से बहुतसी वानरोंकी सैना दवकर मरगई ॥ १५६ ॥ भागे हुए और वचे वचाये देहमें पीड़ा पाय वानर गण व्याकुल वदनसे एक बगल खड़ेहो मनुष्योंमें इन्द्र श्रीरामचन्द्रजी और राक्षसोंमें इन्द्र कुंभकर्णका घोर संग्राम देखनें लगे ॥ १५७ ॥ इसके उपरान्त बड़े भारी खड्गसे कटे हुए पर्वतकी समान श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे हाथ कटा हुआ कुम्भकर्ण दूसरे हाथसे एक वृक्ष उखाड़कर नरेन्द्र श्रीरामचंद्रजीकी ओर दौड़ा ॥ १५८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें सुवर्णसे चित्रित ऐन्द्रास्त्रसंयोजित बाणसे शालवृक्षके सहित सर्पके शरीरकी समान चढ़ा उतार ऊपरकों उठा हुआ उसका वह हाथभी काट डाला ॥ १५९ ॥ कुंभकर्णकी पर्वतकी समान उस कटी हुई भुजानें चेष्टाहीन हो पृथ्वीपर गिर तडपते हुए वृक्ष पर्वत और वानर राक्षसोंको चूर्ण कर डाला ॥ १६० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजीनें उस राक्षसको फिरभी सिंहनाद करके आते हुए देख दो तीखे अर्द्ध चन्द्रबाण ग्रहण करके उसके दोनों पांव काटडाले ॥ १६१ ॥ उसके वह दोनों पांव दिशा, विदिशा, पर्वतोंकी गुफा, समुद्र लंका और वानर व राक्षसोंकी सैनाको शब्दायमान करते हुए पृथ्वीमें गिरे ॥ १६२ ॥ जैसे अन्तरिक्षमें राहु चन्द्रमाको ग्रास करनेंके लिये दौड़ताहै वैसेही हाथ पांव कटा कुंभकर्ण उस समय घोड़ेके मुखकी समान अपना मुख फैलाय शब्द करता हुआ आकाश मार्गसे होकर सहसा श्रीरामचन्द्रजीकीओर दौड़ा ॥ १६३ ॥ कुंभकर्णको इस प्रकारसे आता हुआ देखकर रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीनें सुवर्णके फोंक लगेहुए बाणोंसे उसका मुख पूर्ण कर दिया, तब बाणोंसे समस्त मुख पूर्ण हो जानेंके कारण कुंभकर्ण कुछभी नहीं बोल सका और सूक्ष्मसा शब्द करके मूर्छित हो गया ॥ १६४ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजीनें सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान दीप्तियुक्त, ब्रह्मदंड और कालदंडकी सदृश शत्रुओंको नाश करनेवाला अति तीक्ष्ण सुन्दर फोंकलगा प्रचंड पवनके वेगकी समान ऐन्द्र नामक बाण लिया ॥ १६५ ॥ जिसमें कि हीरे और सुवर्णकी फोंक लगीथी, प्रदीप्त सूर्य अग्निके समान प्रकाशित, और इन्द्रके वज्रकी तुल्य वेगवाला

यह बाण निशाचर कुंभकर्णके ऊपर चलाया ॥ १६६ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी भुजाओंसे चलाहुआ वह बाण अपनी प्रभासे प्रकाशित कराता हुआ धुंआरहित अग्निकी समान भयंकर दर्शनहो, इन्द्रवज्रकी समान विक्रमकारी उस राक्षसके ऊपर पहुंचा ॥१६७॥ जिसप्रकार पूर्वकालमें पुरन्दर इन्द्रजीनें वृत्रासुरका मस्तक काट डालाथा वैसेही हिलतेहुए दोकुंडलोंसे शोभायमान दांत निकलाहुआ कुंभकर्णका मस्तक पहुंचतेही उस बाणने काट डाला ॥ १६८ ॥ उसकालमें कुंभकर्णका कुंडलहीन बड़ा भारी मस्तक सूर्यके उदय होनेसे मलीन हुए आकाशमें टिके चन्द्रमाकी समान शोभायमान हुआ॥१६९॥राक्षस कुंभकर्णका पर्वतकी समान मस्तक श्रीरामचंद्रजीके बाणसे कटकर जब लंकाके कोटकी भीत सैना निवास स्थान और प्राकारपर जैसेही गिरा, कि उसके गिरतेही धमाकेसे यह ढह पड़े ॥१७०॥ हिमालयकी समान बड़े आकारवाले उस राक्षसका धड़ समुद्रमें जायकर गिरा, और बड़े २ ग्राह, मीन, सर्पगण, और पृथ्वीकोभी मर्दित करता हुआ जलमें डूबगया ॥ १७१ ॥ देवता और ब्राह्मण लोगोंके शत्रु महाबलवान उस कुंभकर्णके रणभूमिके मध्य मारे जानेंपर पृथ्वी और समस्त पर्वत कंपायमान होनेलगे और देवतालोग हर्षके मारे कठोर सिंहनाद करनेंलगे ॥ १७२ ॥ आकाशमें टिके हुए देव, देवर्षि, पन्नग, गरुड़, गुह्यक यक्ष और गन्धर्वगणोंके सहित समस्त प्राणीही श्रीरामचंद्रजीका पराक्रम देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ १७३ ॥ राक्षसराज रावणके चिन्ताशील बन्धुबान्धवगण कुंभकर्णके ऐसे दारुण वधसे अत्यन्त दुःखीहो जिसप्रकार मृगराजसिंहको देख हाथी भागतेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजी और वानरोंको देखकर शब्द करते हुए भागनें लगे ॥ १७४ ॥ उसकालमें श्रीरामचंद्रजी देवता लोगोंके काल स्वरूप कुंभकर्णका संग्राम भूमिमें संहारकर अपनी सेनाके बीचमें बैठे राहुके मुखसे छूटे हुए सूर्यकी समान शोभायमान हुए ॥ १७५ ॥ उस भयंकर बलवान शत्रुके मारे जानेपर हर्षके मारे वानर लोगोंके मुख कमलके फूलकी समान खिलगये और वह सब उस समय जगत् पूज्य श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनेलगे ॥ १७६ ॥

सकुंभकर्णस्सुरसैन्यमर्दनंमहत्सुयुद्धेषुकदाचना

जितम् ॥ ननंदहत्वाभरताग्रजोरणेमहासुरं
वृत्रमिवामराधिपः ॥ १७७ ॥

अमरराज इन्द्रजी महाअसुर वृत्रासुरका संहारकरके जिस प्रकारसे आनंदित हुयेथे वैसेही भरतजीके बड़े भ्राता श्रीरामचद्रंजीनें जो कभी किसीसे महारणमें नहीं हाराथा उस देवताओंकी सैनाके मर्दन करनेवाले कुंभकर्णका नाशकरके परम हर्ष प्राप्तकिया ॥ १७७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये भाषानुवादे कात्यायनकुमारपंडितज्वालाप्रसाद मिश्रकृते सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ॥

कुंभकर्णंहतंदृष्ट्वाराघवेणमहात्मना ॥ राक्षसा
राक्षसेंद्रायरावणायन्यवेदयन् ॥ १ ॥

कुंभकर्णको महाबलवान श्रीरामचंद्रजीसे मराहुआ देखकर राक्षस लोगोंनें राक्षसोंके स्वामी रावणके समीप जाकर निवेदन किया ॥ १ ॥ हे राजन्! कालकी समान आपके भ्राता कुंभकर्ण कालधर्म संयुक्त हुए प्रथम रणभूमिमें पहुंचतेही पहुंचते उन्होंनें समस्त वानरोंकी सैनाको भगादिया और जब वानरगण उनके निकट आये तो सहस्रों लक्षोंको उन्होंनें खा लिया ॥ २ ॥ इस प्रकार एक मुहूर्त भरतक सबको संतापितकर और आपभी संतप्त हो फिर वह कुंभकर्णश्रीरामचंद्रजीके तेजसे आपही बुझ गये उनका मस्तकविहीन देह (रुण्ड) भयंकर दर्शनवाले समुद्रमें प्रवेश करगया ॥ ३ ॥ उनका नाक कान विहीन रुधिरसे सनाहुआ पर्वतकी समान मस्तक लंकाके द्वारको रूंधे हुए डटा हुआहै ॥४॥ अधिक क्या कहें तुम्हारे भ्राता कुंभकर्णको श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीड़ित और हाथ पाँव रहित होकर दावानलसे भस्म हुए वृक्षकी समान अनावृत देहसे प्राण त्याग करनें पड़े हैं ॥ ५ ॥ महाबलवान कुंभकर्णको रणभूमिमे मरा हुआ सुनकर रावण शोकसे संतापित हो मूर्छा खाय पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥ उस देवान्तक नरान्तक त्रिशिरा और अतिकाय यह सब अपने चचाके मरनेंका समाचर पाय शोकसे आतुर रोनें

लगे ॥ ७ ॥ महोदर और महापार्श्व यह अपने सौतेले भाईको सरल कर्मकारी श्रीरामचंद्रजीके हाथसे नष्ट हुआ सुनकर शोकसे अत्यन्त अधीर होगये ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त राक्षसश्रेष्ठ रावण बडे कष्टसें चेतना पाय कुंभकर्णके मारेजानेसे इन्द्रियोंकी व्याकुलताके वश दीनभावसे विलाप करताहुआ कहनें लगा ॥ ९ ॥ हावीर! हा शत्रुगर्वखर्वकारी हा महाबलवान्!हा कुंभकर्ण! प्रारब्धके वश तुम हमको छोड़कर यमराजके भवनको चले गये ॥ १० ॥ हा महाबलवान्! तुम हमारे और व हमारे बन्धु बान्धवोंके हृदयमें गडे हुए फलके विनाही उखाडे हम सबको छोड़ शत्रुकी सैनाको भगाय अकेले ही कहांको चले गये * ॥ ११ ॥ हा वीर! तुम हमारे दाहिने हाथथे इसी कारणसे हम सुर या असुर लोगोसे भय नहीं करतेथे परन्तु आज हम अपनी उस बांहके गिरनेंसे लोप होनेंके निकट पहुंचगये ॥ १२ ॥ हाय! जिस कालके समयकी अग्निके समान वीरनें देवता और दानव गणोंका भी गर्व खर्व कियाथा सो एक दशरथकुमार रण भूमिमे किसप्रकारसे उसको मार डालने के अर्थ समर्थ हुआ ॥ १३ ॥ हा वज्रकी चोट खानेंपरभी जिसको कुछ पीडा नहीं ज्ञात होतीथी वही वीर किस प्रकारसे आज रामचंद्रके बाणसे पीड़ितहो पृथ्वीपर शयन कररहा है ॥ १४ ॥ हा ! यह देखो भइया ऋषि लोगोंके साथ आकाशमें टिके हुए देवता गण तुमको रणमें मराहुआ देखकर हर्षके मारे सिंहनाद कर रहे हैं ॥ १५ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि वानरगण अवसर पायकर आज ही लंकाके द्वार और दुर्गपर चढ़ आवेंगे ॥ १६ ॥ हमको अब राज्यसें क्या प्रयोजन है और हम सीताको भी अब लेकर क्या करेंगे कारण कि कुंभकर्णविहीन होकर अब हम जीवन धारण करनेंका भी अभिलाष नहीं करते ॥ १७ ॥ हम यदि उस भाईके मारनेंवाले रामचंद्रको संग्राममें नहीं मार सकते तो वृथा इस जीवनके बोझको रखनेंसे हमारे लिये मरना

* हाय भ्राता किधरको सिधारे॥ आजतक दुःख मैने नमाना युद्ध संसारमें भैत ठाना मुझको दीखे कही ना ठिकाना फिर जियूंगा मैं किसके सहारें ॥१॥ जो बडे शूरमाये निशाचर जिनका मुझको भरोसा सहोदर युद्धमें जो न हारे कहींपर अब गये वीरवे सारे मारे॥२॥ जो विभीषणने हमको सुनाया उसका कहना सभी आगे आया अपनो मुंह जाता अब ना दिखाया कौन धीरज बंधावै हमारे ॥३॥ जानकी कालके रूप आई गढकू मेरे हुई दुःखदाई उसकी माय नही जानि जाई जो लिखा है टरै वो न टारे ॥ ४ ॥

ही भला है ॥ १८ ॥ हम भ्राताहीन होकर एक क्षणभरकों भी प्राण नहीं रखसकते इस कारण जिस स्थानमें हमारे भाई कुंभकर्ण सोये हैं हमभी आज उसी स्थानमें गमन करेंगे ॥ १९ ॥ हा! कुंभकर्ण हमनें पहले देवता लोगोंके अनेक अपकार कियेहैं परन्तु आज तुम्हारे मारे जानेसे जो हम इन्द्रको नहीं जीतसकेंगे तौ देवता लोग हमारी हँसी करेंगे ॥२०॥ हाय! हमनें अज्ञानके मारे महात्मा बिभीषणके जो शुभ वचन नहीं माने आज उसका ही परिणाम हमारे ऊपर आय पहुंचाहै ॥ २१ ॥ जबसे हमनें कुंभकर्ण और प्रहस्तके मारेजानेंका संवाद सुनाहै तबसे बिभीषण के वचन हमको लज्जा देरहे हैं ॥ २२ ॥ हाय! हमने धार्मिक श्रीमान् बिभीषणको जो यहांसे निकाल दियाहै, आज उसी दारुण कर्मका शोक दिलानेंवाला परिणाम आय पहुंचाहै ॥ २३ ॥

इतिबहुविधमाकुलांतरात्माकृपणमतीवविल
प्यकुंभकर्णम् ॥ न्यपतदपिदशाननोभृशार्त
स्तमनुजामिंद्ररिपुंहतंविदित्वा ॥ २४ ॥

उस समय रावण इन्द्रके शत्रु कुंभकर्णको माराहुआ सुनकर शोकाकुल मनसे दीनभावयुक्तहो अनेक प्रकारके विलाप करनेंलगा, इसके उपरान्त शोकका वेग अत्यन्त प्रबल होनेसे रावण मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० अष्टषष्टि-तमःसर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमःसर्गः ॥

एवंविलपमानस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥ श्रुत्वाशो
काभिभूतस्यत्रिशिरावाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

शोकसे व्याकुल दुरात्मा रावणके इस प्रकारसे विलापके वचन सुन त्रिशिरा नाम राक्षस कहनें लगा ॥ १ ॥ हेमहाराज! आपनें जिस प्रकारसे कहा, हमारे ऐसे गुणसम्पन्न मध्यम चचा मारे तौ अवश्य गये, परन्तु कोईभी वीर पुरुष आपकी समान विलाप नहीं करता ॥ २ ॥ हेस्वामी! आप किस कारणसे साधारण पुरुषकीनांई अपने आपही आप ऐसे

शोकसे संतापित हो रहेहो? हम निश्चय जानतेहैं कि आप इस त्रिभुवन-काभी नाश कर सकतेहैं ॥ ३ ॥ आपके पास पितामह ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति, कवच, बाण, धनुष और मेघकी समान शब्दायमान रथहै कि जिसमें सहस्र गधे जुतेहैं ॥ ४ ॥ आपने तो विनाही शस्त्र ग्रहणकिये अनेक वार देवता लोगोंको पराजय कियाहै; इस कारण अब सर्व भांतिके आयुध धारण करनेंसे निश्चयही आप रामचंद्रके जीतनेंको समर्थ होंगे ॥ ५ ॥ अथवा आप सुखसहित विश्राम करें हम अकेलेही समरमें जायकर आपके शत्रुओंका नाश करेंगे कि जिस प्रकार गरुड़ सर्पोंका नाश करतेहैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार इन्द्रनें शम्बरासुरको और विष्णुजीने नरकासुरको मार डालाथा, वैसेही हमभी रणभूमिमें रामचंद्रका संहार कर उनको पृथ्वी पर लुटा देंगे ॥ ७ ॥ राक्षसोंके स्वामी रावणनें त्रिशिराके ऐसे वचन सुन-कर कालप्रेरितहो अपना दूसरा जन्म होना मानता हुआ (अर्थात्) रावणनें तो जान लियाकि वस अब हम मरगये, और सब आशा जाती रहीथी, परन्तु त्रिशिराके वचन सुन फिर हमको आशा हुई और इस प्रकार हमनें अपना दूसरा जन्म समझा ॥ ८ ॥ तब त्रिशिराके ऐसे वचन सुनकर तेजस्वी अतिकाय, देवान्तक; और नरान्तक युद्ध करनेंके लिये हर्ष प्रकाश करनें लगे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त इन्द्रकी समान पराक्रम शाली राक्षसश्रेष्ठ वीरवर रावणके पुत्र गण "आगे हम जांयगे आगे हम जांयगे" ऐसा कह गर्जन करनें लगे ॥ १० ॥ सबही अंतरिक्षमें चलनेंवाले सबही सब प्रकारकी माया जाननेंवाले, सबही देवता लोगोंका दर्प तोड़नें वाले, और सबही समरमें जीतनेंके अयोग्यथे ॥ ११ ॥ सबही बलशालीथे, सबहीकी कीर्त्ति फैली हुईथी, और सबही जायकर कभी हारे हुए नहीं सुने गयेथे ॥ १२ ॥ देवता, गन्धर्व, किन्नर, और उरग चाहें किसीसेभी उन्होंनें युद्ध किया परन्तु पराजित नहीं हुए कारणकि युद्ध करनेंमें बड़े पंडितथे ॥ १३ ॥ सबही बड़े भारी विज्ञानीथे, और सबही वरदान पाये हुएथे ॥ १४ ॥ उस समय सूर्यकी तुल्य शत्रुकी सैनाको मथनेंवाले अपने वीर पुत्र गणोंके बीचमें बैठाहुआ राक्षसराज रावण दानवगर्वखर्वकारी देवता लोगोंके बीचमें बैठे देवराज इन्द्रजीकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ १५ ॥ इसके पीछे रावणनें अपने पुत्रोंको छातीसे लगाय उत्तमर

भूषण पहराय बड़े आशीर्वाद देकर उनको समरमें भेजा ॥ १६ ॥ रावणनें युद्ध करनेंको उत्तम वीर सहोदर महोदर, और महापार्श्व दो भाइयोंको अपने पुत्रोंकी रक्षा करनेंके निमित्त समरमें भेजा ॥ १७ ॥ वह सब शत्रुओंके मारनेंवाले महात्मा रावणको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके युद्ध करनेंके लिये यात्रा करते हुए ॥ १८ ॥ वह छैः राक्षस घावको भरनें वाली बूटी और सब सुगन्धित पदार्थ स्पर्श करके संग्राममें विजय पानेंकी वासनासे चले ॥ १९ ॥ त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, और महापार्श्व, यह छैः निशाचर मानो कालसेही भेजे जाकर संग्राममें गमन करते हुए ॥ २० ॥ नीले बादरके रंगकी समान ऐरावतके कुलसे उत्पन्न हुए सुदर्शन नाम हाथीपर महोदर सवार हुआ ॥ २१ ॥ तरकस और बाणोंसे अलंकृत सर्वायुधधारी, वह वीर हाथीपर सवार होकर अस्ताचलपर आरोहण करते हुए सूर्यभगवानकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ २२ ॥ रावणका पुत्र त्रिशिरा दिव्य घोड़े जिसमें जुते, और सब भांतिके अस्त्र शस्त्रभी भर रहेथे ऐसे एक श्रेष्ठ रथपर सवार हुआ ॥ २३ ॥ धनुष धारण किये हुए त्रिशिरा रथपर सवार होकर बिजली, उल्का ज्वाला, और इन्द्र धनुष युक्त बादलकी समान शोभायमान हुआ ॥ २४ ॥ तीन सुवर्णके शृङ्गोंसे हिमवान पर्वतकी जैसी शोभा होतीहै, वैसेही त्रिशिरा अपने तीन मस्तकों पर तीन किरीट धारण करके श्रेष्ठ रथपर सवार हो शोभित होनें लगा ॥ २५ ॥ धनुष धारण करनेंवालोंमें प्रथम गिनें जानेंके योग्य रावणका पुत्र अति तेजस्वी अतिकाय श्रेष्ठ रथपर आरोहण करता हुआ ॥ २६ ॥ इस रथके पहिये और धुरे सुगठितथे अनुकर्ष और कूबरयुक्त दो विशेष अंगोंसे यह शोभितथा, इसमें बाण शरासन, प्रास, खड्ग और परिघ यह सबसजे सजाये रक्खेथे ॥ २७ ॥ वीरश्रेष्ठ अतिकायके शिरपर विचित्र कांचनमय मुकुटथा वह अनेक प्रकारके गहनोंसे भूषितथा; सुमेरु जिस प्रकार अपनी प्रभासे सबको प्रकाशित करताहै, वैसेही अतिकाय अनुपम शोभा पानें लगा ॥ २८ ॥ राक्षसशार्दूल गण उन महा बलवान राजकुमारोंको चारों ओरसे घेरे हुएथे, इस्से वह राजकुमार देवता लोगोंसे घिरे हुए इन्द्रजीकी समान शोभित होनें लगे ॥ २९ ॥ निशाचर नरान्तक उच्चैःश्रवाकी समान

एक श्वेतवर्ण कनक भूषित पवनकी समान वेगसे जानेवाले एक बडे भारी घोड़ेपर चढ़ा ॥ ३० ॥ तेजस्वी नरान्तक उल्काकी तुल्य भाला हाथमें लिये हुए मोरपर चढे शक्ति हाथमें लिये स्वामिकार्तिककी समान शोभायमान होने लगा ॥ ३१ ॥ राक्षस देवान्तक सुवर्ण लगा हुआ एक परिघ ग्रहण करके इसप्रकार शोभित हुआ, कि समुद्र मथनेंके समय विष्णु-जीनें जिस प्रकार बांहोंसे मन्दराचलको धारण कियाथा ॥ ३२ ॥ महा तेजस्वी वीर्यवान् महापार्श्व गदा ग्रहण करके रणभूमिमें कुवेरजीकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार देवता लोग अमरावतीसे चलते हैं; वैसेही वह वीरगणभी लंकापुरीसे युद्ध करनेंके लिये चले, तुरंग घोडे, मातंग हाथी, और मेघकी समान शब्दायमान रथोंपर चढ़ २ कर ॥ ३४ ॥ बड़े २ आयुधले लेर कर महाकाय, महात्मा राक्षस लोग चले, व सूर्यकी समान तेजस्वी महात्मा राजकुमार ॥ ३५ ॥ किरीट धारण किये हुए आकाशमें प्रकाशमान ग्रहोंके समान शोभायमान हुए उन राक्षसलोगोंके हाथोंमेंकी ग्रहणकीहुई आयुधोंकी श्रेणी (पांति) ॥ ३६ ॥ ऐसी शोभित हुई जैसे शरदऋतुके समय आकाशमें उडती हुई हंसोकी पांति शोभायमान होती है; या तो मरही जायँगे या शत्रुलोगोंको ही जीतलेंगे ॥ ३७ ॥ ऐसा निश्चयकर वह सब महात्मा वीर युद्ध करनेंके लिये चले, उनमेंसे कोई २ गर्जनेंलगे कोई२ सिंहनाद करनें लगे और कोई २ शत्रुकी ओर बाणोंकी वर्षा करनेंलगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे रणमें दुर्मद वह महात्मा वीर चले, उन राक्षसोंके घोर सिंह नाद करनेंसे पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ३९ ॥ वह और दूसरे राक्षसोंकेभी सिंहनाद करनेंसे आकाशभी मानों फूटही गया; इस प्रकारसे वह महाबलवान राक्षस हर्षयुक्त होकर समर करनेंको चले ॥ ४० ॥ उन महाबली अत्यन्त आनंदित राक्षसोंनें वृक्ष शिलादि हाथमें लिये ऊपरको उठाये हुए वानरोंको देखा ॥ ४१ ॥ वानरलोगोंनेभी देखाकि राक्षसोंकी सैना, युद्ध करनेंके लिये आगे बढ़ रहीहै; यह समस्त सैना हाथी घोड़े और रथोंसे परिपूर्णथी और किंकिणियोंके शब्दसे शब्दायमानथी ॥ ४२ ॥ इस सैनाका आकार नीले मेघकी समानथा और इस सैनाके हाथमें अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रथे और उसका तेज दीप्त अग्नि

और सूर्यकी समान उज्ज्वलथा॥ ४३॥ वानर लोग राक्षसोंको युद्धके लिये आया हुआ देखकर पर्वतोंको ग्रहण करके वारंवार सिंहनाद करनें लगे ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त वानरयूथपति लोगोंका घोर शब्द श्रवण करके राक्षस लोगोंनें उसको असह्य समझ और परमानंदसे सब मिलकर अपने आपही आप सिंहनाद करनेंलगे ॥ ४५ ॥ इसके पीछे वानर वीर गण पर्वत धारण करके शिखरधारी पर्वतोंकी समान राक्षसोंकी सैनामें प्रवेश करते हुए॥ ४६ ॥ वृक्ष और पर्वतको ग्रहण करके कोई २ वानर तौ क्रोधके मारे आकाशको चले गये और वहांसे राक्षसोंपर टूटे और कोई२ वृक्ष शिलादि ग्रहण करके पृथ्वीपरही राक्षसोंसे जाय जुटे ॥ ४७ ॥ कोई २ वानरश्रेष्ठ बहुत शाखावाले वृक्षोंको ग्रहणकर युद्ध करनें लगे इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका तुमुल संग्राम होनेंलगा ॥४८॥ वानरगण बराबर वृक्ष और शिला राक्षसोंके ऊपर वर्षारहेथे और राक्षस लोगभी वानरोंके शरीरोंमें बाण गाड़ रहेथे ॥४९॥ धीरे२ दोनों ओरसे घोर सिंहनाद होनें लगा शिलाधारी वानर लोग शिलाके प्रहारसे राक्षसोंको चूर्ण करनें लगे ॥ ५० ॥ वानरगण रणमें क्रोध करके कवच धारण किये हुए राक्षसोंका संहार करनेंलगे कोई रथपर चढ़े हुए वीरोंको ॥ ५१ ॥ वानर लोग मारते हुए इस प्रकारसे असंख्य राक्षसोंकी सैना वानरोंके हाथसे मारीगई। बहुत राक्षसोंकी सैना वानरोंके हाथसे मारीगई । बहुत राक्षसोंका शरीर शृङ्गोंके प्रहारसे चूर्ण होगया, और किसी २ का नेत्र घूंसा मारनेंसे निकल पड़ा ॥ ५२ ॥इस प्रकार दारुण प्रहारसे राक्षसगण विच-लित और गिरकर कठोर आरत शब्द करनें लगे, और राक्षसलोगभी कपि कुंजरोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारतेथे ॥५३ ॥शूल,मुद्गर, खड्ग, भाला, शक्ति, इत्यादिसेभी मारतेथे, और दूसरे अस्त्र शस्त्रोंसे परस्पर जयकी इच्छा किये एक दूसरेको मारतेथे ॥ ५४ ॥ धीरे २ इस प्रकारका युद्ध हुआ कि वानर और राक्षसगणोंका शरीर परस्परके शत्रुओंके रुधिरसे रंगगया वानर और राक्षस लोगोंके चलाये पर्वत खड्ग इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ ५५ ॥ केवल मुहूर्तभरमें रणभूमि ढकगई और वहां पर रुधिरकी नदी वहनेंलगी, उस कालमें वानरोंसे मारेहुए रणमें मतवाले राक्षसोंके पड़े हुए पर्वताकार देहोंसें रणभूमि परिपूर्ण होगई ॥ ५६ ॥

जब मारते २ और चलाते २ वृक्ष पर्वतादि टूट फूट गये तब वानरगण अपनें अंगोंसे युद्ध करनें लगे ॥ ५७ ॥ वानरश्रेष्ठगण राक्षसोंको उठाय २ राक्षसोंपर दे दे मारतेथे और राक्षसश्रेष्ठगण वानरोंको उठाय२ वानरोंपर देदे मारतेथे ॥ ५८ ॥ राक्षसलोग वानरोंके चलाये शिला और पर्वतोंको बलसे ग्रहण करके उनको उनकेही ऊपर चलानेंलगे; और वानर गणभी राक्षसोंके अस्त्र शस्त्र छीनकर उनसेही राक्षसोंका नाश करनें लगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकारसें वह वानर और निशाचरगण पर्वतोंके शृङ्गोंसे रणभूमिमें परस्पर एक दूसरेपर चोट चलाते हुए सिंहनाद करनें लगे ॥ ६० ॥ वानरोंके हाथसे राक्षसोंके धनुष टूटगये कवच किर्चे२ होगये, और वह मरनेंभी लगे। जिस प्रकार वृक्षसे गोंद निकलताहै वैसेही राक्षस लोगोंके देहसे रुधिरकी धारा वहनें लगी ॥ ६१ ॥ वानर लोग रथको चलायर२कर रथ तोड़नें लगे,हाथीको उठाय २ हाथीपर मारनें लगे और घोड़ोंको उठायकर घोड़ोंका संहार करते हुए ॥ ६२ ॥ वानरगण शिला वृक्षसे राक्षसोंको मारतेथे और राक्षसगण वानरोंके छोड़े वह शिला वृक्ष, तेज छूरे अर्द्धचन्द्र और भाला आदि अस्त्र शस्त्रोंसे काट डालतेथे ॥ ६३ ॥ उस समय फेंकेहुए पर्वतोंसे अस्त्र शस्त्रोंके कटेहुए वृक्षोंसे और राक्षस वानरोंके शरीरसे रणभूमि दुर्गम होगई ॥ ६४ ॥ गर्वित और हर्षित चित्त प्रदीनता युक्त समरमें अनुषंगी वानरगण भय छोड, नख, दांत, वृक्ष,शिला, आदि अस्त्र शस्त्रोंको चलाय २ राक्षसोंके साथ युद्ध करनें लगे ॥ ६५ ॥ इस प्रकारसे कठोर युद्धमें वानरगण हर्षित होकर जब निशाचरोंका संहार करनें लगे; तब महर्षि और देवतालोग यह युद्ध देखकर आनंदका कुलाहल करतेथे ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त मत्स्य जिस प्रकार महासमुद्रमें प्रवेश करताहै, वैसेही नरान्तक पवनकी समान वेगवान एक घोड़े पर सवार हुआ तीक्ष्ण शक्ति ग्रहण करके वानरोंकी सैनामें प्रवेश कर गया ॥ ६७ ॥ उस महाबलवान वीर नरान्तकनें प्रकाशमान भालेसे सातसौ वानरोंको मारडाला व एकही क्षणमें इन्द्रके शत्रु महात्मा इस राक्षसनें वानरश्रेष्ठों की औरभी बहुतसी वानरोंकी सैना मारडाली ॥ ६८ ॥ इस महात्माको घोड़ेकी पीठपर संग्राम भूमिके मध्य वानरोंकी सैनामें घूमता हुआ विद्याधर और महर्षि लोगोंनें देखा ॥ ६९ ॥

वह जिस ओरको चला जाताथा उसी ओर मार्गमें रुधिर मांसकी कीच और गिरे हुए पर्वताकार वानरोंके शरीरोंसे ढकता जाताथा ॥ ७० ॥ वानर लोग जिस २ स्थानमें भाग जानेंलगे नरान्तक उसही स्थानपर जाकर उनका संहार करनें लगा ॥ ७१ ॥ अग्निके वनको जलानें की समान निशाचर नरान्तक जब वानरोंकी सैनाको भस्म करनें लगा वैसेही वनचारी वानरोंनेभी वृक्ष उखाड़ने आरंभ किये और जैसेही कि उसपर चलाये वैसेही भालेसे कटकर ऐसे गिरे कि जैसे वज्रसे कटकर पर्वत गिरेथे संग्राममें नरान्तकनें प्रकाशमान उस भालेको उठाया ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ वह महा बलवान राक्षस नरान्तक संग्रामभूमिमें चारों ओर घूमनें लगा और सर्व वानरोंको इस प्रकारसे युद्धमें मर्दित करताथा जैसे वर्षा कालमें प्रचंड पवन झोके देकर सर्वको व्याकुल करताहै ॥ ७४ ॥ वीर्यवान् राक्षसका पराक्रम देखकर वानर लोग न तो भागही सके न युद्धही करसके, वह घोर विपदमें घिरगये, उन वानरोंनें कुछ उपाय न देखकर जैसेही कूदकर और कहीं जानेंका उद्योग किया, वैसेही अस्त्र चलाकर नरान्तकनें ऊपरही सबको मार डाला ॥ ७५ ॥ सूर्यकी समान तेज युक्त केवल उस एकही शूलके मारनेंसे समस्त सैना भागगई और कुछ पृथ्वी-पर गिर पडी ॥ ७६ ॥ वानरलोग वज्र पड़नेंकी तुल्य उस भालेके प्रहा-रको न सहकर अत्यन्त दारुण आरत नाद करनें लगे॥ ७७॥ जिसप्रकार वज्रके गिरनेंसे पर्वतका शृङ्ग गिर पड़ताहै, वैसेही वानरोंकी सैनाने गिरकर अपूर्व मूर्त्ति प्रकाशकी ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त जो महावीर वानरश्रेष्ठ गण पहले कुंभकर्णके मारे हुए संग्राममें मूर्छित पडेथे, वह सावधान होकर सुग्रीवजीके निकट गये ॥ ७९ ॥ और सुग्रीवजीनें नरान्तकके भयसे वानरोंकी सैनाको इधर उधर भागता हुआ देखा ॥ ८० ॥ सुग्रीव-जीनें वानरोंकी सैनाको भागता हुआ देखकर दूरको निहारकर देखा कि भाला धारण किये घोडेपर सवार हुआ नरान्तक आगमन कररहा है ॥८१॥ उसको आता हुआ देखकर महा तेजस्वी वानर सुग्रीवजी इन्द्रके समान पराक्रमशाली वालिके पुत्र वीर श्रेष्ठ अंगदजीसे कहनें लगे, यह घोडे पर चढ़ा हुआ निशाचर जोकि वानरोंकी सैनाको भगाताहुआ चला आता-है, जाओ इस वीर राक्षसको तुम शीघ्र मारकर आओ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

वीर्यवान् अंगदजी वानरोंके राजा सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर वानरोंकी सैनामेंसे इस प्रकार निकले, कि जिस प्रकार सूर्य भगवान घटासे निकल आतेहैं ॥ ८४ ॥ उस कालमें निविड कृष्ण पर्वतकी समान आकार वाले वह वानरश्रेष्ठ अंगदजी बाहोंमें दो बाजू धारण कियेहुए धातुमय पर्वतकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ ८५ ॥ केवल नख, दांतके अतिरिक्त और कोई भी आयुध नहीं धारण किये महा तेजस्वी वालि कुमार अंगदजी नरान्तकके निकट पहुंच कर बोले ॥ ८६ ॥ खडा रह, साधारण वानरोंके मारनेंसे क्या होगा? इस वज्रकी समान भालेसे तू हमारी छातीमें प्रहार कर ॥ ८७ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर नरान्तक अत्यन्त क्रोधित हुआ, और क्रोधके मारे लंबे २ श्वास लेता हुआ, दांतोसे होठोंको चाटता वालिकुमार अंगदजीके निकट गया ॥ ८८ ॥ इसके उपरान्त प्रकाशमान भाला उठाकर उसनें अंगदजीके ऊपर चलाया परन्तु वह भाला अंगदजीकी वज्र समान छातीमें लगकर और टूटकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ८९ ॥ गरुडजी जिस प्रकार सर्पका शरीर छिन्न भिन्न कर डालते हैं; वैसेही उस भालेको चूर्ण देखकर नरान्तकके घोडेके मस्तकमें एक लात मारी ॥ ९० ॥ उस दारुण प्रहारसे उस पर्वताकार घोडेके चारों पांव टूट गये, नेत्रोंकी पुतलियें बाहर निकल आईं, जीभ मुंहसे निकल आई, मस्तक चूर्ण होगया, घोडा मृतक होकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ९१ ॥ घोडेको मृतक होकर पृथ्वीपर पडाहुआ देखकर महा प्रभाव नरान्तकनें अत्यन्त कोप किया, और मूका उठायकर वालि कुमार अंगदजीके मस्तकमें मारा ॥ ९२ ॥ उस प्रहारसे अंगदजीका मस्तक फट गया और उस्से गरम २ रुधिरकी धारा वहनें लगी, और वह मूर्छित होगये, परन्तु एक क्षणभरमेंही वह चेतना पाय अत्यन्त विस्मित और क्रोधसे दूने प्रज्वलित होगये ॥ ९३ ॥ उसके उपरान्त उन महाबलवान वालिके पुत्र अंगदजीनें नरान्तककी छातीमें मृत्युकी समान महावेगसे पर्वतके शृङ्गकी नांई एक मूका मारा ॥ ९४ ॥ उस मूकेके लगनेसे राक्षसकी छाती टुकड २ कर टूट गई; उसके मुखसे रुधिरकी धारा निकलनेंलगी सर्व शरीर रुधिरसे भीग गया, उस समय वह नरान्तक वज्रके गिरनेंसे टूटे हुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरकर मर

गया ॥ ९५ ॥ उस संग्राममें जब वालिनंदन अंगदजी करके उग्र वीर्यवान निशाचर नरान्तक मारा गया तब आकाशसे देवता गणोंका और रण भूमिमें वानरोंका बड़ा भारी शब्द होनें लगा ॥ ९६ ॥

अथांगदोराममनःप्रहर्षणंसुदुष्करंतंकृतवा
न्हिविक्रमम् ॥ विसिस्मियेसोप्यथभीम
कर्मापुनश्चयुद्धेसबभूवहर्षितः ॥ ९७ ॥

इस प्रकारसे भयंकर कर्म कारी अंगदजी श्रीरामचंद्रजीके हर्ष जनक इस प्रकारका कठिन विक्रम प्रगट करके श्रीरामचंद्रजीको हर्षित कराय, और फिर आप भी समर करनेंके लिये उत्साह प्रगट करनें लगे ॥ ९७ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०यु०एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥

नरांतकंहतंदृष्ट्वाचुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ॥
देवांतकस्त्रिमूर्धाचपौलस्त्यश्चमहोदरः ॥ १ ॥

नरान्तकको मरा हुआ देखकर देवान्तक, त्रिशिरा, और महोदर इत्यादि निशाचर गण अत्यन्त क्रोध करते हुए ॥ १ ॥ वेगवान राक्षस महोदर मेघकी समान हाथीपर चढ़ा हुआ वालिकुमार वीर्यवान अंगदजीके सन्मुख दौड़ा ॥ २ ॥ और बलवान देवान्तकभी अपने भाईके वधसे अत्यन्त दुःखी होकर घोर परिघ धारण करकै अंगदजीकी ओरको धाया ॥ ३ ॥ वीर त्रिशिरा उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए आदित्यकी समान रथपर सवार होकर वालिकुमार अंगदजीकी ओर झपटा ॥ ४ ॥ उन अंगदजीके ऊपर जब दर्पके नाश करनेंवाले तीन राक्षस श्रेष्ठ इस प्रकारसे दौड़े तब अंगदजीनें बहुत शाखाओंसे युक्त एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़ डाला ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त देवराज इन्द्रजी जिसप्रकारसे वज्र चलातेहैं; वैसेही अंगदजीनेंभी देवान्तकको लक्ष करकै बहुत शाखा युक्त उस वृक्षको चलाया ॥ ६ ॥ परन्तु राक्षस त्रिशिरानें विषधर सर्पकी समान उसको काट डाला और अंगदजीभी उस वृक्षको कटा हुआ देखकर कूदगये ॥ ७ ॥ अनन्तर उन कपि कुंजर अंगदजीके पर्वत और वृक्षोंकी वर्षा करनें पर, त्रिशिरानें क्रो-

धित होकर उन समस्त वृक्ष पर्वतोंको काट डाला ॥ ८ ॥ दूसरी ओरसे महोदरभी बाणोंकी वर्षा करके जब उन अंगदजीके चलाये वृक्ष और पर्वतोंको काटनें लगा, तब त्रिशिरा अवसर पाय बाण हाथमें ले वीर वालिकुमार अंगदजीकी ओर धाया॥९॥हाथीपर सवार हुआ मदोदरनेंभी अंगदजीकी ओरको झपटकर क्रोध सहित वज्रकी समान भालेसे उनकी छातीमें प्रहार किया ॥ १० ॥क्रोध युक्त देवान्तकभी अति वेगसे आय अंगदजीकी छातीमें परिघ मारकर भागा ॥ ११ ॥ इस प्रकारसे यद्यपि तीन राक्षस वीरोंने एक साथही अंगदजीके मारा तथापि वालिकुमार महा तेजस्वी प्रतापवान् अंगदजी कुछभी व्यथित न हुए ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त परम दुर्जय वानर श्रेष्ठ अंगदजीनें महा वेगसे उस हाथीके मस्तकमें एक लात मारी जिसपर महोदर चढ़ा हुआथा ॥१३॥ उस लातके घोर प्रहारसे उस हस्तिराजके दोनों नेत्र वाहर निकल आये; और वह हाथी अत्यन्त दारुण शब्द करनें लगा और मरगया तव वालिके पुत्र महावलवान् अंगदजीनें उस हाथीका एक दांत निकालकर ॥ १४ ॥ देवान्तककी ओर दौड़ उस दांतसे रणभूमिमें उसको मारा जिसके लगनेसे वह तेजस्वी देवान्तक ऐसा विह्वल हुआ जैसे पवनके लगनेंसे वृक्ष कंपित होताहै ॥ १५ ॥ उसके मुखसे लाखके रंग कैसा वहुतही रुधिर निकलनें लगा इसके पीछे महा तेजस्वी वीर वर देवान्तकनें अति कष्टसे चेतना पाय ॥ १६ ॥ अंगदजीकी छातीमें अति वेगसे एक गदा मारी वानरोंमें इन्द्र अंगदजी गदाके प्रहारसे घायलहो ॥ १७ ॥ जांघोंके वल पृथ्वीपर गिरे, और क्षणभरके पीछे फिर उठ वैठे उनके उठनेंके समय तीन सीधे चलनेंवाले बाण ॥ १८ ॥ जो कि अति घोरथे अंगदजीके माथेमें मारे, अंगदजीको तीन राक्षस श्रेष्ठों करके घिरा हुआ जान ॥ १९ ॥ हनुमान् और नीलभी उनके निकट चले आये; तव नीलनें त्रिशिराको ताककर उसके मस्तकपर एक पर्वतका शिखर चलाया ॥ २० ॥ परन्तु बुद्धिमान रावणके पुत्र त्रिशिराने तीखे बाणोंसे उस शिखरको खंड २ कर डाला उस कालमें शत बाणोंसे वह पर्वतका शिखर जब चूर्ण करडाला गया ॥ २१ ॥ तव चिनगारियें और अग्नि निकलता हुआ वह पर्वतका शृङ्ग पृथ्वीपर गिर पड़ा उस पर्वतके शृङ्गको व्यर्थ देख हर्षितहो महाबली देवान्तक ॥ २२ ॥ परिघ ग्रहण करके

समरमें हनुमानजीकी ओर दौड़ा, उसको सामनेंसे आता हुआ देखकर कपि कुंजर हनुमानजीनें ॥ २३ ॥ कूदकर वज्रकी समान मूका उसके शिरपर मारा तब उन महाकपि बलशाली वीर पवनकुमारने उसके मस्तकपर प्रहार करके सिंहनाद किया कि जिससे समस्त निशाचर गण कंपायमान होंनेंलगे ॥ २४ ॥ उस घूंसेके लगनेसे राक्षस राजके पुत्र देवान्तकका मस्तक पिसकर टूटगया दांत और नेत्र निकल पड़े और जीभ लंबी होकर मुखके बाहर निकलआई, और वह प्राण रहितहो सहसा पृथ्वीपर गिरपड़ा२५ उस राक्षस वीर प्रधान महाबलवान् देवताओंके शत्रु देवान्तकके रणभूमिमें मारे जानेंपर त्रिशिरानें क्रोधितहो नीलकी छातीको ताककर उग्र और तीखे बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २६ ॥ इस ओर वीर श्रेष्ठ महोदर क्रोधित होकर पर्वताकार हाथीपर सवारहो सूर्य जिस प्रकार मन्दराचलपर आरोहण करतेहैं वैसेही नीलके सामनेको झपटता हुआ ॥ २७ ॥ अनन्तर नीलके शरीरको बाणोंके जालसे बींधनें लगा उस समय ऐसा जान पड़ाकि इन्द्र धनुष युक्त मेघ वारंवार गर्जन करके पर्वतपर जलकी वर्षा कर रहाहै ॥ २८॥ वानरोंकी सैनाके पति नील उस बलवान राक्षससे घिरकर विद्ध शरीर और बाणोंसे रोके जाकर और देहमें घाव खायकर अत्यन्त व्यथित हुए, उनका शरीर अवश हुआ, चेतना जाती रही और मूर्छा आय गई ॥ २९ ॥ परन्तु महावीर नीलनें एक क्षणभरमें चेतना पाय वृक्षोंके सहित एक पर्वत उखाड़ और कूदकर वह पर्वत महावीर महोदरके शिरपर देमारा ॥ ३० ॥ महोदरभी पर्वतके लगनेसे उस बड़े भारी हाथीके सहित चूर्णित और प्राण रहित होकर वज्रसे छूटे हुए पर्वतकी समानं पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३१ ॥ अपने चचा महोदरको मरा हुआ देखकर त्रिशिरा अत्यंत क्रोधित हुआ; और यह धनुष पर बाण चढ़ाय तीखे बाणोंसे हनुमानजीको बींधनें लगा ॥ ३२ ॥ तब पवनकुमार हनुमानजीनेंभी क्रोधित होकर एक पर्वतका शिखर चलायाकि तिसको बलशाली त्रिशिरानें खंड २ कर डाला ॥ ३३ ॥ संग्राम भूमिमें पर्वतके शिखरको व्यर्थ हुआ देखकर कपि श्रेष्ठ हनुमानजीनें रावणके पुत्रको निशाना बनाय उसके ऊपर वृक्षोंकी वर्षा करनी आरंभकी ॥ ३४ ॥ परन्तु प्रतापशाली त्रिशिरा उन सब वृक्षोंको तीखे बाणोंके समूहसे

आकाश मार्गमेंही काट कर सिंहनाद कर उठा ॥ ३५ ॥ यह देख हनुमानजी कूदकर त्रिशिराके घोड़े पर चढ़ उस घोड़ेको अपने नखोंसे इस प्रकार चीर फाड़ डालाकि जैसे सिंह हाथीको चीर डालताहै ॥३६॥ इसके उपरान्त रावणके पुत्र त्रिशिरानें जिस प्रकार यमराज प्रलय कालमें काल रात्रिको पाय सब प्रजाको भक्षण कर लेतेहैं वैसेही शक्ति ग्रहण करके पवनकुमार हनुमानजीकी ओर चलाई ॥ ३७ ॥ वानर शार्दूल हनुमानजीनें आकाशसे छूटती हुई उल्काकी समान उस बड़ी भारी शक्तिको पकड़ कर तोड़ डाला और बड़ा भारी सिंहनाद करनें लगे ॥ ३८ ॥ उस भयंकरी शक्तिको हनुमानजीसे टूटा हुआ देखकर वानर लोग हर्षसे मेघकी समान गर्जन करनें लगे ॥ ३९ ॥ उसके उपरान्त राक्षस श्रेष्ठ त्रिशिरानें खड्ग उठाय कर वानरोंमें इन्द्र हनुमानजीकी छातीमें मारा॥४०॥ वीर्यवान पवनकुमार हनुमानजीनेभी खड्गके प्रहारसे घायलहो त्रिशिराकी छातीमें एक लातमारी ॥ ४१ ॥ उस लातके लगनेसे राक्षसके हाथसे सब अस्त्र शस्त्र छूटपड़े और वह महा तेजस्वी अति शीघ्र मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४२ ॥ महाकपि हनुमानजी उसके हाथसे खड्ग छीनकर राक्षसोंके मनमें शंका उपजाय सिंहनाद करनें लगे ॥ ४३ ॥ परन्तु राक्षस त्रिशिरा उस शब्दको न सहन करके उसी समय उठा और कूदकर उसनें हनुमानजीकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ ४४ ॥ महाकपि हनुमानजी उस मुष्टिके प्रहारसे अत्यन्त क्रोधित हुए और क्रोधमें भरकर उन्होंने राक्षस श्रेष्ठके मुकुटको पकड़ लिया ॥ ४५ ॥ देवराज इन्द्रजीनें जिस प्रकार वृत्रासुरका मस्तक काट डालाथा वैसेही हनुमानजीनें अत्यन्त क्रोधसे उस तीक्ष्ण खड्गसे उस कुंडलसे अलंकृत और किरीट शोभित उसके तीनो मस्तक काट डाले॥४६॥ जिस प्रकार आकाश मार्गसे नक्षत्र गिरा करतेहैं वैसेही उस इन्द्र शत्रु निशाचर त्रिशिराके प्रदीप्तअग्निकी समान नेत्र वाले, नेत्र निकले हुए और पर्वतकी समान मस्तक पृथ्वीपर गिरे ॥ ४७ ॥ इस प्रकार इन्द्रकी समान पराक्रम शाली हनुमानजीसे त्रिशिराका संहार होंनेपर पृथ्वी चलायमान हुई वानर गणोंनें सिंहनाद किया, और राक्षस लोग चारों ओरको भागने लगे ॥४८ ॥ त्रिशिरा युद्धमें उन्मत्त, महोदर और महा दुर्द्धर्ष देवान्तक और नरान्तककोभी मारा हुआ देख४९॥

और इस वृत्तान्तको न सहकर क्रोधयुक्त राक्षस श्रेष्ठ महापार्श्वने लोहेकी बनी हुई दीप्ति युक्त एक गदा ग्रहणकी ॥५०॥ इस बड़ीभारी गदामें सुवर्ण की पहियें लगी हुईथी मांस लगा हुआथा शत्रुओंका रुधिर जिसमें लगा हुआथा और लाल झागभी उसमें लग रहेथे॥५१॥ उसका अग्रभाग तेजसे प्रदीप्त हो रहाथा उसमें लाल माला पड़ी हुई शोभायमान हो रहीथी कि जिसके देखनेसे ऐरावत महापद्म और सार्वभौम इत्यादि दिग्गजोंको भी डरलगे ॥५२॥ राक्षस वीर महापार्श्व क्रोधमें भरकर उस गदाकोग्रहण करकै प्रलयकी अग्निकी समान वानर सैनाकी ओरको धाया ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त वानर श्रेष्ठ ऋषभ कूदकर महापार्श्वके सन्मुख आय उसके सन्मुख खडे हो गये॥५४ ॥महापार्श्वनें उस पर्वताकार ऋषभको अपने सन्मुख विराजमान देखकर वह वज्रकी समान गदा उसकी छातीमें मारी ॥ ५५ ॥ राक्षसकी चलाई उस गदाके लगनेंसे वह वानरश्रेष्ठ कंपायमान हुआ और उसकी छाती टूटजानें से उसमेंसे बहुत रुधिर बहनें लगा ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त वानरयूथपति ऋषभ बहुत विलंबमें मूर्छासे जागा क्रोधके मारें उसके अधर फडकनेलगे और उसने महापार्श्वकी ओरको देखा ॥ ५७ ॥ पर्वताकार उस वेगवान् वानर वीरश्रेष्ठ ऋषभने अत्यन्त वेगसे सहसा आय मूका उठायकर उसकी छातीमें मारा ॥ ५८ ॥ वृक्षकी जड कट जानेपर जो दशा होतीहै वैसेही वह राक्षस महापार्श्व लोहूलुहान शरीरसे पृथ्वीपर गिरपडा तब वानरवीर ऋषभ समय पाय उस राक्षसके हाथसे यम दंडकी समान प्रचंड गदा ग्रहण करके घोर गर्जना करने लगा ॥ ५९ ॥ एक मुहूर्त भर तक यह राक्षस मृतक तुल्य पडारहा तिसके उपरान्त चैतन्य पाय कूदकर सन्ध्याकालीन बादल के रंगकी समान उस महापार्श्वनें वरुणजीके पुत्र उस ऋषभनाम वानरपर चोट चलाई ॥ ६० ॥ यह चोट ऐसी लगी कि वानर श्रेष्ठ मूर्छित हो पृथ्वीपर गिरपडा एक मुहूर्तके उपरान्त मूर्छा जागनेपर वह पर्वताकार ऋषभनें राक्षस महापार्श्वके हाथसे छीनीहुई गदाको खेंच अत्यन्त बलसे महापार्श्वकी छातीमें मारी ॥ ६१ ॥ वह गदा देवता यज्ञ और ब्राह्मणो के शत्रु इस रौद्ररूप निशाचरके शरीरमें भयंकर रूपसे लगी, कि जिसके

लगनेसें उसके शरीरसे बहुत रुधिर वहनें लगा जैसे पर्वतराज हिमवानसे गेरु आदि धातु वहा करती हैं ॥ ६२ ॥ इसके उपरान्त महात्मा ऋषभके सन्मुख वह महापार्श्व दौड़ा परन्तु फिर महात्मा उस वानरनें उस भयंकर गदाको तोल और जांचकर वारंवार वल पूर्वक ग्रहणकर ॥ ६३ ॥ महापार्श्वके शिरपर प्रहारकिया अपनी ही गदासे इसप्रकार घायलहो महापार्श्वकी जीभ निकल आई और दांतभी टूटकर बाहर आन पडे ॥ ६४ ॥ और वह वज्रसें टूटे हुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ा उसके दोनों नेत्र निकल पडे और वह प्राणरहित होगया उस राक्षस महापार्श्वके गिरतेही राक्षसोंकी सैना भागगई ॥ ६५ ॥

तस्मिन्हतेभ्रातरिरावणस्यतन्नैर्ऋतानांबलमर्णवाभम् ॥ त्यक्तायुधंकेवलजीवितार्थंदुद्रावभिन्नार्णवसन्निकाशम् ॥ ६६ ॥

इसप्रकारसे उस रावणके भ्राता महापार्श्वके मरजानेसें वह समुद्र समान निशाचरोंकी सेना अस्त्र शस्त्र त्यागकरके केवल अपना जीवही वचानेंको उछलतेहुए समुद्रकी भांति चारों ओरको भागगई ॥ ६६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ॥

स्वबलंव्यथितंदृष्ट्वातुमुलंलोमहर्षणम् ॥ भ्रातृंश्चनिहतान्दृष्ट्वाशक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १ ॥

अति भयंकर लोमहर्षणकारी अपनी सेनाका संहार देख और इन्द्रकी समान पराक्रमकारी देवान्तक नरान्तक त्रिशिरा इन तीन भाइयोंको मृतक देख ॥ १ ॥ और अपने दोनो चचा महोदर व महापार्श्वको भी संग्राममें मरा हुआ निहारकर ॥ २ ॥ ब्रह्माजीसे वरदान पाया हुआ देवता दानवोंका अहंकार तोड़नें वाला पर्वताकार अतिकाय नामक राक्षस समरमें बडा क्रोध करता हुआ॥३॥ सहस्र सूर्योंके उदय होनसे जिसप्रकार तेज होताहै ऐसे ही यह राक्षस अतिकाय अति तेजस्वी था यह इस समय रथपर चढ़कर वानरोंकी सेनाके सन्मुख दौड़ा ॥ ४ ॥ यह कुंडलसें

अलंकृत और किरीटधारी वीर अतिकाय धनुष पर टंकार देता हुआ वारंवार अपना नाम सबको सुनाय घोर शोरसे सिंहनाद करने लगा॥५॥ उसके सिंहकी समान गर्जनसे वारंवार नामके कीर्तनसे और रोदेकी टंकारका भयंकर शब्द श्रवण करनेसे वानरोंको भयसे अत्यन्त त्रास उपजा ॥६॥ वानर लोग उसकी भयंकर मूर्त्ति देखकर "यह एक दूसरा कुंभकर्ण आया है" ऐसा विचार भयके मारे परस्पर एक दूसरेका आसरा ग्रहण करनें लगे॥७॥राजा बलिको छलनेंके समय विष्णुजीनें जिस मूर्त्तिसे तीनों लोकों का नाप लियाथा ऐसेही मूर्ति इस राक्षसकी देखकर वानरोंके यूथप इधर उधर भागनें लगे ॥८॥ वह मूढचित्त वानरगण अतिकाय राक्षसको संग्राम भूमिमें आता हुआ देखकरही सबको शरण देंने वाले लक्ष्मणजीके बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आये ॥९॥ इसके उपरान्त रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि राक्षस वीर अतिकायका आकार पर्वतकी समानहै, वह रथपर बैठा हुआहै, वह हाथमें प्रचंड धनुष लिये दूरसेही गंभीर गर्जन करताहुआ चला आताहै, देखनेंसे वह काल मेघकी समान जान पड़ताथा ॥१०॥ श्रीरामचंद्रजी उस मायावी अति-कायकी मूर्ति देखकर अत्यन्त विस्मित हुए, और वानरोंको समझाते हुए विभीषणजीसे बोले ॥११॥ कि सिंहकी समान आंखोंवाला जो पर्वतकी समान धनुष धारण किये हुए वीर हजार घोड़ोंके नेहहुए विशाल रथमें सवार होकर चला आताहै, सो यह कोन वीरहै? ॥१२॥ तीक्ष्ण शूल और तीक्ष्ण भाले मुद्गरादिद्वारा सजनेंसे तौ भूतगणोंसे वेष्टित महेश्वर शिवजीकी समान जान पड़ताहै; इस वीरका क्या नामहै?॥१३॥ जोकि कालजिह्वाकी समान प्रकाशमान रथ और शक्तियोंको धारण किये हुए विराजमान हो रहाहै ॥१४॥ इन्द्रधनुष जिस प्रकार आकाशको शोभित करताहै, वैसेही यह वीर सुवर्णका सुसाज शरासन धारण करकै रथको सुशोभित कर रहाहै ॥१५॥ जो सूर्यकी समान तेजमय रथपर आरोहण करकै प्रधान रथीके स्वरूपमें रणभूमिको शोभायमान करता हुआ युद्ध करनेंके लिये चलाआताहै ॥१६॥ जिसके रथकी ध्वजापर राहुकी मूर्तिहै,जो सूर्यकी किरणोंके समान बाण चलाय करकै दशों दिशा-ओंको ढकताहुआ आगमन कर रहाहै ॥१७॥ जो निशाचर मेघकी

समान शब्दायमान तीन जगहसे झुका हुआ सुवर्णकी पीठसे युक्त अलंकृत धनुष लियेहुये इन्द्र धनुषकी समान शोभायमान हो रहाहै ॥ १८ ॥ जिसका मेघकी समान शब्दायमान ध्वजा पताकासे शोभित चार सारथियोंसे चलाया जाताहुआ रथ घर्राता हुआ चला आताहै ॥ १९ ॥ जिस रथपर अड़तीश तर्कस भयंकर धनुषभी इतनेही और कांचनके समान पिंगल वर्णवाली जिसपर वहुतसी ज्या रक्खी हुई हैं ॥ २० ॥ जिसके दो खड्ग जिसकी दोनों वगलोंको शोभायमान कर रहेहैं;जिनके चार २ हाथके कब्जेही देखकर मालूम पड़ताहै कि इन दोनो खड्गोंमेंसे प्रत्येक दश २ हाथका लंवा होगा ॥ २१ ॥ जिसके गलेमें पड़ी हुई लाल माला शोभायमान हो रहीहै; जिसका वदन कालकी समान है; यह महापर्वतकी समान घोर रूपवाला काले रंगका राक्षस मेघमें छिपे हुए सूर्यकी समान शोभायमान होरहाहै ॥ २२ ॥ जिस प्रकार हिमवान अति ऊंचे अपने दो शृङ्गोंसे शोभितहों वैसेही यह निशाचरभी सोनेके वाजू जिनमें वंधे हुए, ऐसी दो वांहोंसे वैसाही शोभायमान होरहाहै ॥ २३ ॥ इसका सुन्दर नेत्रयुक्त मुख कुंडल युगलसे ऐसा शोभायमान हो रहाहै, कि जो पुनर्वसु नक्षत्रके मध्यमें गये हुए परिपूर्ण निशाकर(चंद्रमा)की समान जान पड़ताहै ॥ २४ ॥ हे महावाहो ! जिसको देखकर वानरगण मारे भयके चारों ओरको भागे जातेहैं यह राक्षस कौन है; यह तुम हमारे निकट प्रकाश करो ॥ २५ ॥ अमित तेजस्वी रघुवंशावतंस राजकुमार श्रीरामचंद्रजी करके इसप्रकारसे पूछे जाकर महातेजमान विभीषणजी वोले ॥ २६ ॥ कि दशगरदनवाला महा तेजमान राजा कुवेरजीका छोटा भाई, भयंकर कर्मकारी राक्षसोंका स्वामी जो महात्मा रावणहै ॥ २७ ॥ यह वीर्यवान उसकाही पुत्र, हैऔर रावणकीही समान इसमें वलहै; वृद्धोंकी सेवा करनेवाला विख्यात वलवाला और सव शस्त्र धारणकरनेवालोंमें यह अगुआहै ॥२८॥ यह वीर घोड़ेपर चढ़नेमें रथ अथवा हाथीपर सवार होनेमें खड्ग धनुष अथवा भालादि अस्त्र शस्त्रोंसे युद्ध करनेमें और साम दान भय भेद विषयक राजनीति और मंत्र (सलाह) देनेमें चतुरहै ॥ २९ ॥ इसकेही वाहु वलका आश्रय करके लंकापुरी निर्भय विराजमान हो रहीहै। यह धान्य मालिनी राक्षसीके गर्भसे उत्पन्न हुआहै इसका नाम अतिकायहै ॥ ३० ॥

इस निशाचरनें पूर्वकालमें पवित्रभावसे बहुत सारी तपस्या करके पितामह ब्रह्माजीको प्रसन्न कियाथा और उनकेही अनुग्रहसे इसनें अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र पायकर अपने शत्रुओंको पराजित कियाहै ॥ २१ ॥ यह स्वयंभू प्रजापति ब्रह्माजीके वरसे सुर असुर किसीसेभी नहीं मरसकता इसनें तपोबलसे दिव्य कवच और सूर्यकी समान प्रकाशित रथभी पायाहै ॥ ३२ ॥ बहुत सारे देव दानवगण इसके हाथसे हारगयेहैं, इसनें राक्षसोंकी रक्षा करके यक्षोंका संहार कियाहै ॥ ३३ ॥ इसनें रणभूमिमें बाणोंसे बुद्धिमान देवराज इन्द्रजीके वज्रको रोक दिया, और जलराज वरुणजीकी फांसीकोभी इसनें व्यर्थ करदिया ॥३४॥ देवता और दानवलोगोंके दर्पका नाश करनेंवाला यह वही राक्षसश्रेष्ठ बलवान अतिकायहै॥३५॥ हे पुरुषोत्तम! शीघ्रतासे इसका विनाश करनेंमें यत्न कीजिये कारण कि यह सबसे पहले वानरोंकी सैनाकोही बाणोंसे संहारकररहाहै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त बलवान् अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाके बीचमें प्रवेश करके धनुष पर टंकारदे वारंवार सिंहनाद करनें लगा ॥ ३७ ॥ भयंकराकार उस राक्षसको श्रेष्ठ रथपर चढ़ा हुआ देखकर मुखिया २ वानर गण उनके सामनेको दौड़े ॥ ३८ ॥ कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील, शरभ यह कई एक वानरवीर इकट्ठे होकर वृक्ष और पर्वतोंके शृङ्ग धारण करके अतिकायपर एकही संग धाये ॥ ३९ ॥ परन्तु अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकायनें कनकभूषित बाणोंसे उन वानरोंके चलाये समस्त वृक्ष और पर्वतोंको काटडाला ॥ ४० ॥ तिसके पीछे उस रणपंडित अस्त्रविशारद बलशाली निशाचरनें स्वच्छ लोहेके बाणोंसे सन्मुखको दौड़े आतेहुए उन वानरोंको ताड़ित किया ॥ ४१ ॥ वानर लोग भी अतिकायकी बाण वर्षासे छिन्न गात्र और पराजित होकर वह इसका कुछभी बदला उस राक्षससे न लेसके ॥ ४२ ॥ युवाअवस्थाके आनेंसे गर्वित मृगराज (सिंह) जिस प्रकार मृगके झुण्डोंको भयभीत करताहै वैसेही वह अतिकायनाम राक्षस वानरोंकी सैनाको त्रासित करनें लगा ॥ ४३ ॥ जो वानर रीछ कि युद्धमें विमुख थे उनपर अतिकायनें अस्त्रका प्रहार नहीं किया इसके उपरान्त वीरवर अतिकाय धनुष धारण करके श्रीरामचंद्रजीके सन्मुखहो उनसे गर्वसहित यह वचन

बोला ॥ ४४ ॥ हम किसी साधारण वीरके साथ युद्ध करनेंका अभिलाष नहीं करते यह हम धनुष वाण हाथमें लिये बैठेहैं यदि किसीको युद्ध करना आता हो या किसीमें शक्ति हो तौ वह शीघ्र आकर हमारे साथ युद्ध करै ॥ ४५ ॥ राक्षस अतिकायके ऐसे वचन सुनकर शत्रुनाशी लक्ष्मणजी न सहकर मुसकातेहुए धनुष वाण हाथमें लेकर उठे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मणजीनें उठतेही तरकससे वाण ग्रहण किया, और अतिकायके सन्मुखही अपने बड़े धनुष पर टंकोर दी ॥ ४७ ॥ उनके धनुषकी टंकोरसे वहांकी सब पृथ्वी सागर और समस्त दिशायें परिपूरित होगईं, और राक्षसोंको बहुतही त्रास हुआ ॥ ४८ ॥ सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीके धनुषकी टंकारका ऐसा भयंकर शब्द सुनकर महा तेजस्वी रावणका पुत्र भी अत्यन्त विस्मित हुआ ॥ ४९ ॥ अतिकायनें लक्ष्मणजीको युद्धके लिये उठाहुआ देख क्रोधितहो तीक्ष्ण वाण धारण कर उनसे यह कहा ॥ ५० ॥ अरे लक्ष्मण! तुम बालकहो; इसलिये समर कार्यमें भी चतुर नहीं हो हम तौ तुम्हारे लिये कालकी समानहैं इस कारण हमारे संगमें युद्धका अभिलाष त्याग करके शीघ्र भाग जाओ ॥ ५१ ॥ तुम्हारी बात तौ दूर रहै; पृथ्वी आकाश, अथवा हिमवान पर्वत भी हमारी वांहोसे छोड़े हुए इन बाणोंका वेग सहन करनेंको समर्थ नहींहै ॥ ५२ ॥ सुखसे सोई हुई कालकी अग्निको क्यों जगानेंकी इच्छा करतेहो! क्यों हमारे हाथसे प्राण खोतेहो धनुष बाण त्यागकर शीघ्रही भाग जाओ ॥ ५३ ॥ अथवा यदि गर्वके वश होकर लौटना नहीं चाहतेहो तौ एक क्षणभर खडे रहो, वस प्राणोंका त्याग करके एक वारही सीधे यमराजके घरपर चले जाना ॥ ५४ ॥ शत्रुके दलका गर्व खर्व करनेंवाले शिवजीके त्रिशूलकी समान तपाये हुए सुवर्णसे भूषित हमारे इन तीखे बाणोंको तुम देखो॥५५॥ सिंह जिस प्रकार क्रोधित होकर गजराजके रुधिरको पान करताहै वैसेही शिवजीके शूलकी समान यह बाण तुम्हारा रुधिर पान करेंगे॥५६॥ बलशाली मनस्वी श्रीमान् राजकुमार लक्ष्मणजी रणभूमिमें अतिकायके ऐसे सरोष और गर्वित वचन सुन अत्यन्त क्रोधित होकर बोले ॥ ५७ ॥ हे दुरात्मन्! तुम केवल वचनोंहीके कहनेंसे वीर नहीं होसकते, कारण कि केवल अपनी बड़ाई करनेंसे लोग गुणवान् कहाकर नहीं विख्यात

होते यह मैं धनुष बाण हाथमें लेकर टिकाहुआहूं तुममें जितनी कुछ सामर्थ्य हो अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ५८ ॥ जिसमें पौरुषहै लोग उसकोही शूर कहते हैं; इसलिये तुम वृथा अपनी बड़ाई न मार करके कार्यके द्वारा अपनेको प्रकाश करो ॥ ५९ ॥ तुम रथपर सवार होकर अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र ले युद्ध करनेंके लिया आये हो इस समय बाण छोड़कर या और कोई अस्त्र चलायकर तुमही अपना पराक्रम दिखाओ ॥ ६० ॥ तिसके पीछे पवन जिस प्रकार पके हुए तालके पत्तेको गुच्छेसे गिरा देती है, वैसेही तीखे बाणोंसे हम तुम्हारा मस्तक गिरादेंगे ॥ ६१ ॥ आज हमारे तपायेहुए सुवर्णसे भूषित बाण, बाणोंसे किये हुए छेदमेंसे निकलते हुए तेरे शरीरमेंके रुधिरको पान करेंगे॥६२॥ बालक समझकर निरादर करना उचित नहींहै हम बालकही हों या वृद्धहीहों हमारेही हाथसे रणमें निश्चय तेरी मृत्यु होगी ॥ ६३ ॥ कारणकि बालकरूपी विष्णुजीके तीन चरणोंसे त्रिलोकी नांपलीगईथी लक्ष्मणजीके हेतुयुक्त और परमार्थसमन्वित वचन सुनकर अतिकायनें अत्यन्त क्रोधितहो श्रेष्ठ बाण चलाये ॥ ६४ ॥ उस काल लक्ष्मणजी और अतिकायका वह युद्ध देखनेंके लिये महात्मा विद्याधर, भूत, देव, दैत्य, महर्षि, और, गुह्यकगण सबही आये ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त अतिकायनें क्रोधमें भरकर धनुषपर बाण चढ़ाय मानों आकाश ग्रास करनेंके अभिप्रायसेही लक्ष्मणजीकी ओर चलाया ॥ ६६ ॥ परन्तु परवीरघाती लक्ष्मणजीनें उस विषधर सर्पकी समान फुंकारते हुए तीखे बाणको एक अर्द्ध चन्द्र नामक बाणसे काट डाला ॥ ६७ ॥ निशाचर अतिकायनें शरीर कटे हुए सर्पकी समान उस बाणको कटा हुआ देखकर अत्यन्त क्रोध किया, और पांच बाण हाथमें लिये, ॥ ६८ ॥ अति शीघ्रतासे लक्ष्मणजीके ऊपर चलाये; परन्तु लक्ष्मणजीनें अपने निकट पहुंचते हुए उन बाणोंको काट डाला ॥ ६९ ॥ परवीर विनाशी वीर्यवान लक्ष्मणजीनें अपने तीखे बाणोंसे उन सब बाणोंको काटकर एक तेजसे प्रकाशमान पैना बाण ग्रहण किया ॥ ७० ॥ उसको श्रेष्ठ धनुषपर चढ़ाकर लक्ष्मणजीनें खेंचा और अतिवेगसे उस बाणको छोड़ दिया ॥ ७१ ॥ अपनी कमरसे खेंचे हुए और लगभग पलक झुकगये

उस बाणको उस राक्षसश्रेष्ठके बीच माथेमें तानकर लक्ष्मणजीनें मारा ॥ ७२ ॥ वह तीक्ष्ण बाण उस भयंकर राक्षसके माथेमें विंधकर रुधिरकी धारा निकलता हुआ उस समय ऐसा जानपड़ा मानों पर्वतमें रुधिरसे सनाहुआ सांप घुसरहाहै ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार पूर्व कालमें शिवजीके बाणसे त्रिपुरासुरके पुरद्वार कंपायमान हुएथे वैसेही लक्ष्मणजी- के बाणोंसे राक्षस वीर व्यथित होकर कांपा, इसके उपरान्त महाबलवान् अतिकाय क्षण भरमें सावधान हो मनही मनमें विचारकर कहनें लगा॥७४॥ धन्य लक्ष्मण! तुम्हारा बाण चलाना देखकर हम तुमको बड़ाई करनेंके योग्य शत्रु समझते हैं। तिसके पीछे यह अतिकाय, मुख वाय, दोनों बाहें फैलाय अपने रथपर चढ़ा हुआ रणभूमिमें इधर उधर घूमनें लगा ॥ ७५ ॥ उस कालमें वह राक्षस धनुषको खेंचकर एकही वारमें एक, तीन, पांच और साततक बाण धनुषपर चढ़ायकर छोड़नें लगा॥७६॥ जिस प्रकार सूर्य नारायण आकाशमंडलको दीप्ति युक्त करते हैं वैसेही राक्षसोंमें इन्द्र अतिकायके धनुषसे छूटे हुए काल समान सुवर्णकी फोंक वाले बाणोंनें आकाशमें अग्निसी लगाकर उसको प्रदीप्त कर दिया ॥७७ ॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें सावधान चि- त्तसे तीखे बाणोंके द्वारा उस राक्षसके चलाये हुए वह समस्त बाण काट डाले ॥ ७८ ॥ महा तेजस्वी इन्द्रके शत्रु रावणका पुत्र अत्यन्त क्रोध करता हुआ तब उसनें एक और तीखा बाण ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ उसने एक पलकके मध्यमें बाण चढ़ायकर जैसेही छोड़ा कि वैसेही वह लक्ष्मणजीकी छातीमें आनकर लगा ॥ ८० ॥ जब अतिकायका वह बाण लक्ष्मणजीकी छातीमें लगा तो मतवाले हाथीके जिस प्रकारसे मद चुआ करताहै,वैसेही महावीर लक्ष्मणजीके रुधिरकी धारा गिरनेलगी ॥ ८१ ॥ तिसके उपरान्त बहुत शीघ्र लक्ष्मणनें वह बाण अपनी छातीसे निकालकर अलग फेंक दिया और अपनी व्यथाको दूर कर सावधानहो मंत्र पढकर एक तीक्ष्ण बाण लिया ॥ ८२ ॥ अब अग्नि अस्त्रसे उस बाणको संयुक्त किया; तब उस बाणनें इन महात्मा लक्ष्मणजीके धनुषकोभी दीप्तमान किया ॥ ८३ ॥ महातेजस्वी अतिकायनेभी रौद्र बाण ग्रहण किया और उसको चढ़ाय कर रौद्र मंत्रसे अभिमंत्रित किया

इस बाणका आकार भुजंगकी समानथा और इसमें सुवर्णकी फोंक लग रहीथी ॥ ८४ ॥ जिस प्रकार यमराज कालदंडको चलातेहैं वैसेही लक्ष्मणजीनें उस दिव्यास्त्रसे संयोजित बाणको अतिकायपर चलाया ८५॥ निशाचर अतिकायनेंभी आग्नेयास्त्रसे अभिमंत्रित बाणको अपने ऊपर आता हुआ देखकर सूर्यके मंत्रसे अभिमंत्रित हुआ अपना रौद्र बाण चलाया ॥ ८६ ॥ दोनों बाणही क्रोधित सर्पराजकी समान आकाशमें परस्पर एक दूसरेको भस्म करनें लगे दोनों बाणही तेजके प्रभावसे प्रदीप्त और अधिक उग्रथे वह लड़ते २ पृथ्वीपर गिरे ॥ ८७ ॥ वह दो उत्तम बाण परस्पर एक दूसरेको जलाते हुए शिखा रहित व दीप्ति हीन होंनेके कारण अंतमें क्षार होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८८ ॥ इसके उपरान्त क्रोधितहो कर जब अतिकायनें त्वाष्ट्र ऐषिकास्त्र चलाया तब वीर्यवान लक्ष्मणजीनें उसको ऐन्द्रास्त्रसे काटकर फेंक दिया ॥ ८९ ॥ ऐषिक बाणको नष्ट देखकर रावणके पुत्र अतिकायनें एक बाणको यम देवताके मंत्रसे अभि मंत्रित किया ॥ ९० ॥ अतिकायनें बहुतही शीघ्र यह बाण लक्ष्मणजीके ऊपर चलाया; लक्ष्मणजीनें पल भरमें वायवास्त्रसे राक्षसके चलाये उस बाणको काट डाला ॥ ९१ ॥ इसके उपरान्त महातेजवान वीर श्रेष्ठ लक्ष्मणजी निरन्तर राक्षसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगे कि जिस प्रकारसे मेघ जलको वर्षातेहैं ॥ ९२ ॥ परन्तु वह बाण अतिकायके वज्रमय कवचमें ज्योंही लगे कि वैसेही उनके फलके टूटगये और वह सब पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९३ ॥ परवीर घाती महायशवान लक्ष्मणजीनें उन समस्त बाणोंको व्यर्थ देखकर एकही साथ हजार बाण अतिकायके ऊपर चलाये ॥ ९४ ॥ परन्तु अभेद बख्तर पहरनेंके कारण निशाचर श्रेष्ठ महाबलवान अतिकाय संग्राम भूमिमें उन बाणोंकी वर्षासे कुछभी व्यथित न हुआ ॥ ९५ ॥ इस भांतिसे पुरुषोत्तम लक्ष्मणजी जब किसी प्रकारसे उस निशाचरको पीडित नहीं करसके तब पवन देवतानें उनके निकट आयकर कहा ॥ ९६ ॥ इस निशाचरनें ब्रह्माजीसे वर पायाहै और इस समय यह अनेक कवच पहरे हुएहै, इस कारण ब्रह्मास्त्रसे तुम इसका वध करो; कारण, कि इस ब्रह्मास्त्रके अतिरिक्त और किसी बाणसे तुम इसको नहीं मार सकोगे ॥ ९७ ॥ इन्द्रकी समान वीर्यवान सुमित्रा रानीके पुत्र

लक्ष्मणजीने पवनके वचन सुन ब्रह्ममंत्रसे अभिमंत्रित कर एक उग्र वेगवान बाणले धनुष पर चढाया ॥ ९८ ॥ सुमित्राकुमार लक्ष्मणजीनें श्रेष्ठ अभिमंत्रसे अभिमंत्रित कर जब वह तीक्ष्ण फलक युक्त बाण धनुषपर चढ़ाया; तब दिशा, विदिशा, चंद्रमा इत्यादि समस्त महा ग्रह पृथ्वी व आकाश त्रासितहोगये और शब्दायमान हुए ॥ ९९ ॥ लक्ष्मणजीनें, रणभूमिमें यमदूत और वज्रकी समान वह तीक्ष्ण फोंक वाला बाण ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित करके इन्द्र शत्रु रावण पुत्र अतिकायके ऊपर चलाया ॥ १०० ॥ उत्तम सुवर्णसे चित्रित वज्रकी फोंक लगा हुआ और पवनकी समान वेगसे आते हुए लक्ष्मणजीके छोड़नेंसे औरभी प्रचंड वेगवान् उस संग्राम भूमिमें अतिकायनें देखा ॥ १०१ ॥ उस बाणको वेगसे आता हुआ देखकर अतिकाय बड़ी शीघ्रताके साथ अत्यन्त पैंने बाणोंसे उस बाणको काटनें लगा; परन्तु गरुड़जीके समान वेगवान वह बाण बाणोंसे न रुककर अतिकायके निकट पहुंचही तो गया ॥ १०२ ॥ महावीर रावणका पुत्र अतिकाय प्रदीप्त कालकी अग्निके समान उस ब्रह्मास्त्रको निकट आते देखकर उसके ऊपर यद्यपि शक्ति, ऋषि, शूल, गदा, बाण, फरशा इत्यादि चलाकर उसको काटनें लगा; परन्तु किसीसेभी कुछ न हुआ ॥ १०३ ॥ परन्तु उस अग्निकी समान प्रदीप्त बाणनें उन समस्त अद्भुत आयुधोंको विफल करके अति बलसे अतिकायका किरीट शोभित मस्तक काट डाला ॥ १०४ ॥ लक्ष्मणजीके बाणसे कटा हुआ और लोहेकी टोपी इत्यादि शोभित राक्षस अतिकायका शिर हिमाचलके शृङ्गके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १०५ ॥ मरनेंसे बचे बचाये राक्षस उस वीर अतिकायको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखी हुए ॥ १०६ ॥ वानर लोगोंके प्रहारसे जर्जरित विषादित मुख और दीन भाव युक्त वह निशाचर गण सहसा महा शब्दकर विकट स्वरसे शब्द करनें लगे ॥ १०७ ॥ इस प्रकारसे वह राक्षस गण अपने सैनापतिके मारे जानें पर अत्यन्त दुःखित और भीत होकर अति शीघ्रतासे लंकाकी ओर भागे ॥ १०८ ॥

प्रहर्षयुक्ताबहवस्तुवानराःप्रफुल्लपद्मप्रतिमान

नास्तदा ॥ अपूजयँल्लक्ष्मणमिष्टभागिनंहते
रिपौणीमबलेदुरासदे ॥ १०९ ॥

भयंकर और दुर्द्धर्ष राक्षसके मारे जानेंपर वानर लोगोंके आनंदकी सीमा न रही उन वानरोंके मुखके रंगनें खिले हुए कमलको पराजित किया। वह सबही वीर श्रेष्ठ लक्ष्मणजीकी वीरताको सराहसराहकर उनका उचित सन्मान करते हुए ॥ १०९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे एकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥

अतिकायंहतंश्रुत्वालक्ष्मभेनमहात्मना ॥
उद्वेगमगमद्राजावचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

महात्मा लक्ष्मणजीसे अतिकायका संहार हुआ सुनकर राक्षस राज रावण बहुतही उदास हुआ और कहनें लगा ॥ १ ॥ सर्व शस्त्रास्त्र धारण करनें वालोंमें श्रेष्ठ, दारुण क्रोध युक्त धूम्राक्ष वीर श्रेष्ठ अकम्पन, प्रहस्त और कुंभकर्ण ॥ २ ॥ इत्यादि महाबलशाली वीर गण जो युद्धमें अद्वितीय और संग्राम जीतनेंका अभिलाष करतेथे; यह सबही शत्रुके हाथसे पराजित होनें वाले नहींथे; और सदा. शत्रुको जीततेथे ॥ ३ ॥ हाय!सरल स्वभाव वाले श्रीरामचंद्रजीके हाथसे सेना सहित यह सबही वीर मारे गये अनेक शस्त्र विशारद महाकाय राक्षस ॥ ४ ॥ और भी अनेक रक्षास जोकि बड़े शूरथे मारे गये और विख्यात बल वीर्य वाले हमारे पुत्र इन्द्रजीतने ॥ ५ ॥ वरदान पाये हुए घोर बाणोंसे दोनो भाइयों को बांध लियाथा कि जिस बन्धको महा बलवान सुर असुर कोई भी नहीं छुटा सकतेथे ॥ ६ ॥ वरन इस घोर बन्धनको यक्ष गन्धर्व पन्नग कोई भी नहीं छुटा सकतेथे; फिर हम नहीं, जानते कि अपने प्रभावसे, मायासे अथवा किसी मोहन मंत्रसे ॥ ७ ॥ वह दोनों भाई राम लक्ष्मण उस शर बन्धनसे छूट गये; और जो शूर योद्धा वीर राक्षस भेजे हुए रणमें गये ॥ ८ ॥ वह सबही युद्धमें महा बलवान वानरोंसे मारडाले गये; हम ऐसा किसीको नहीं देखते जो आज युद्धमें जायकर लक्ष्मणके सहित रामचंद्रको सुग्रीव

व विभीषण और उनकी सैनाके सहित मार डाले ॥ ९ ॥ अहो! जिसके विक्रमसे निशाचर मारे गयेहैं; वह रामचंद्र अत्यन्त बलवानहैं और उसके अस्त्र बलको भी धन्यवादहै ॥ १० ॥ [हमको बोध होताहै कि वह अनामय वीर रघुनंदन नारायणही होंगे, कारणकि भयसेही लंका नगरीके द्वार और तोरण सब रुके हुयेहैं] इस समय अति सावधानीसे लंका पुरीकी रक्षा करना कर्तव्यहै जहां पर सीता देवी विराजमानहैं उस अशोक वाटिकाकी भी रक्षा भलीभांति करनी चाहिये ॥ ११ ॥ अशोक वन राजपुर, या और कहीं सैनानिवास स्थानों में कोई आवै, या कोई बाहर जावै, उसको वारंवारसे सर्व प्रकार परीक्षा करके देखना ॥ १२ ॥ सब ओरसे तुम लोग जा टिके रहो और सब कहीं सैनाभी टिकी रहै, हे निशाचरो वानरोंके स्थान और उनके पद सदा देखते रहो ॥ १३ ॥ प्रदोषके समय, आधीरातके समय या प्रातःकालके समय किसी समय भी वानरोंको छोटा मत समझो कि यह हैं हीक्या?॥ १४॥ कारणकि हम सबके निकट बड़ी भारी वानरोंकी सैना तैयार पड़ीहै न जानें किस समय लंकापर आन कर धावा करदे यह सब राक्षस लंकापति रावणके वचन सुनकर ॥ १५ ॥ महा बलवान तौ थेही उस रावणकी आज्ञानुसार जहां तहां टिके ॥ १६ ॥ राक्षस राज रावण सब राक्षसोंको ऐसी आज्ञा देकर हृदयमें शोक रूप प्रदीप्त बाण धारण किये हुए अपने भवनमें प्रवेश करता हुआ ॥ १७ ॥

ततःससंदीपितकोपवन्हिर्निशाचराणामधिपो महाबलः ॥ तदेवपुत्रव्यसनंविचिंतयन्मुहुर्मुहु श्चैवतदाविनिःश्वसन् ॥ १८ ॥

शोकसे पीड़ित निशाचर पति रावण अपने पुत्रोंकी शंकट की अवस्था विचारकर कोपसे जलबल उठा और वारंवार लंबे २ श्वास लेनें लगा॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० युद्ध० द्विसप्ततितमःसर्गः॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥

ततोहतान्राक्षसपुंगवांस्तान्देवांतकादित्रिशिरोतिकायान् ॥ रक्षोगणास्तत्रहतावशिष्टास्ते रावणायत्वरिताःशशंसुः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त जब मरनेंसे बचे बचाये राक्षसोंनें देवान्तक अतिकाय और त्रिशिरा इत्यादि निशाचरोंको मारा हुआ देख राक्षस राज रावणसे यह समाचार कहते हुए ॥ १ ॥ तब रावण उन राक्षसोंके मुखसे यह अशुभ वार्ता सुनकर रोते २ मोहको प्राप्तहुआ; इसके पीछे पुत्रोंके नाश और भ्राताओंके संहारकी घोर विपत्तिकी चिन्ता करते हुए कुछ समयतक ध्यान साधेरहा ॥ २ ॥ तब शोक सागरमें डूबते हुए राजा रावणको देख परम श्रेष्ठ राक्षस राज रावणका पुत्र इन्द्रजित (मेघनाद) बोला ॥३॥ हे राक्षस नाथ! हे पिता! इन्द्रजितके जीवित रहते आप इस प्रकार संतापमें न जलिये; आप निश्चय जानें कि रणमें इन्द्रजीतके बाणसे घायल होकर कोईभी अपने प्राण नहीं रख सकता ॥ ४ ॥ आप देखेंगे कि लक्ष्मणजीके सहित आजही रामचन्द्रके सब अंग हमारे बाणोंसे कट जायँगे; वह मेरे अस्त्रसे प्राण त्याग करके आजही पृथ्वीपर शयन करेंगे ॥ ५ ॥ आप इन्द्रजीतकी दैव और पौरुष संयुक्त यह निश्चित प्रतिज्ञा श्रवण करें, कि हम आजही लक्ष्मणके सहित रामचन्द्रको अमोघ बाणोंसे नाश करदेंगे ॥ ६ ॥ अधिक क्याकहैं बलिके यज्ञमें वामन रूपी विष्णुजीकी समान आज इन्द्र, यम, रुद्र, अग्नि, साध्य गण, और सूर्य यह सबही आज हमारे अप्रमाण विक्रमको देखेंगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार रावणसे कह व उसकी आज्ञा लेकर प्रसन्न चित्तहो मेघनाद श्रेष्ठ गधेजुते वायुकी समान वेगसे चलनें वाले रथपर सवार हुआ ॥ ८ ॥ सूर्यके समान दिव्य रथपर सवार होकर महा तेजस्वी मेघनाद झटपट युद्ध भूमिको गया; कि जहां पर शत्रुनाशी श्रीरामचन्द्रजी विराजमानथे ॥ ९ ॥ जब मेघनादको रणमें जानेंके लिये तैयार देख श्रेष्ठ धनुषधारी भयंकर विक्रमकारी अनेक महा बलवान राक्षस हर्ष सहित उस महात्माके पीछे २ चले॥१०॥ कोई २ हाथीपर चढ़कर चले कोई २ घोड़ेपर सवार होकर गमन करनें लगे, कोई २ व्याघ्रपर कोई२ * वृश्चिक पर, कोई २ मार्जार (बिलाव) पर कोई २ गधे ऊंट और सिंहपर आरोहण करके चले ॥ ११ ॥ कोई २ पर्वताकार सिंहोंके ऊपर, और गीदडोंके ऊपर, और काक हँस और मयू-

* वृश्चिकादि आंकरके वाहन भीथे ।

रादि पक्षियोंके ऊपर भीम विक्रम राक्षस सवार होकर, भाला, मुद्गर, निस्त्रिंश, फरसा,गदा,भुशुन्डि, षष्टि, शतघ्नी और परिघादि आयुध उठाय सज्जित होकर गमन करनें लगे ॥ १२ ॥ क्रमसे शंख और भेरि बजनेंके शब्दसे दशोंदिशा पूर्ण होगई इस प्रकारसे वीर्यवान राक्षस राजका पुत्र इन्द्रजित युद्ध करनेंके लिये चला ॥ १३ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेंपर आकाशकी जिस प्रकारसे शोभा होतीहै वैसेही शत्रुओंके मारनें वाले इन्द्रजीतके शिरपर शंख और चन्द्रमाकी नाईं उज्ज्वल श्वेत वर्णका छत्र-था ॥ १४ ॥ धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ वह मेघनादके ऊपर हेम भूषित सुंदर चामर ढल रहाथा ॥ १५ ॥ उस कालमें सूर्यकी समान तेजस्वी उस अप्रमेय वीर्यवान इन्द्रजीतके रूपसे लंका नगरी तेजसे प्रकाशमान सूर्य-नारायणसे शोभित आकाश मंडलकी नांई प्रकाशमान होनें लगी॥ १६ ॥ अनन्तर वह अग्निकी समान शत्रु दमनकारी महा तेजस्वी राक्षस श्रेष्ठ इन्द्रजित युद्धमें जय दिलानें वाले निकुम्भलास्थित रणभूमिमें पहुंच गया और वहां पहुंचते ही उसनें अपने रथके चारों ओर सैनाको स्थापित कि-या॥ १७ ॥उस स्थान का नाम निकुम्भलाथा अग्नि तुल्य तेजस्वी इन्द्र-जित यहां पर उत्तम मंत्रोंसे विधि पूर्वक अग्निमें होम करनें लगा॥ १८॥उस प्रतापशाली राक्षसोंमे श्रेष्ठ इन्द्रजितनें प्रथम अग्निमें माला और सुगन्धित द्रव्य चढ़ायकर तिसके पीछे खीर अक्षतसे उसका संस्कार पूराकरकै हवन कर्मको आरंभ करता हुआ ॥१९॥ उस यज्ञ कुण्डके चारों ओर जहां शर-पत बिछानें चाहिये वहां उसनें सब शस्त्र बिछाये व बहेडीकी लकडीका ईंधन बनाया समस्त लालही वस्त्र धारण किये और लोहेका स्रुवा बनाया कारण कि मारणमें यही पदार्थ कार्यमें आतेहैं॥२०॥ पतभालोंके ऊपर अग्निस्था-पन कर सम्पूर्ण काले वर्णका छागले उसकी गर्दन पकड़ जीवित ही उसे अग्निमें डालदिया ॥ २१ ॥ उस छागकी जैसेही आहुति दीगई कि वै सेही अग्नि विधूम होगई और शिखा विस्तार करके जल उठी और अग्निमें जो जयसूचक जो सब चिह्न दृष्टि आतेहैं वह सब प्रकाशितहुये॥२२॥इसके उपरान्त तपाये हुए सुवर्णकी समान अग्नि दाहिनी ओरको घूमती हुई अपनी शिखाके साथ स्वयं अग्नि कुंडमेंसे उठे और मैघनादकी दीहुई आहुती उन्होंनें ग्रहणकी ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त अस्त्र विशारद इन्द्र-

जीतनें अपना अस्त्र धनुष रथ कवच मंत्रसे अभिमंत्रित किया ॥ २४ ॥ जब उस वीर मेघनादने अग्निमें आहुति दी और सब अस्त्रोंको ब्रह्म मंत्रसे अभिमंत्रित किया उस समय चंद्र सूर्य इत्यादि ग्रह नक्षत्र गणोंके सहित समस्त आकाश मंडल त्रासित होगया ॥ २५ ॥ इन्द्रकी समान प्रभाव शाली और अग्निकी समान प्रदीप्त वह अप्रमेय वीर्यवाला इन्द्रजीत इस प्रकारसे अग्निमें आहुति दे धनुष बाण शूल अश्व और रथके सहित आ-काशमें जाय अन्तर्ध्यान होगया ॥ २६ ॥ तिसके उपरान्त ध्वजा पताका शोभित और अश्व रथ युक्त वह राक्षसोंकी सैना भी युद्धकी वासनासे सिंहनाद करती हुई चली ॥ २७ ॥ इस सैनाके राक्षस निकुंभिलासे निक-लते ही महा वेगसे अलंकृत असंख्य बाण तोमर और अंकुशोंसे वानर वीरोंको मारने लगे ॥ २८ ॥ रावणका पुत्र मेघनाद अपनी सैनाको समर करता हुआ देखकर क्रोधमें भरकर कहने लगा; कि तुम सब वान-रोंका संहार करनेंकी इच्छासे युद्ध करते रहो ॥ २९ ॥ विजयकी अभि-लाषा किये हुए राक्षस गण यह बात सुनतेही वानरोंके ऊपर घोर बाणोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ३० ॥ वानरोंकी सैनाके ऊपर आकाशमें टिका हुआ इन्द्रजीतभी नालीक, नाराच, गदा और मूसल इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे वानर गणोंको विद्ध करनें लगा ॥ ३१ ॥ वृक्षोंको आयुध बनाये हुए वानर-गणभी राक्षसोंसे इस प्रकार समरमें मारे जाकर उन राक्षसोंके ऊपर पर्वत और वृक्षोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ३२ ॥ महा तेजस्वी महा बलवान राव-णका पुत्र इन्द्रजीत इससे अत्यन्त क्रोधित होकर वानरोंकी देहको छिन्न भिन्न करनें लगा ॥ ३३ ॥ वह इन्द्रजीत संग्राम भूमिमें राक्षस लोगोंको हर्षित कराता हुआ एक २ बाणसे पांच, सात और नौनो वानरोंको मारनेंलगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे रणमें अजित इन्द्रजित सुवर्णभूषित सूर्यकी समान बाणजालसे वानर लोगोंको छिन्न भिन्न करता हुआ ॥ ३५ ॥ मेघनादके बाण मारनेंसे पीडित और व्यथित होकर वानरोंके शरीर विंधनें लगे, देवता लोगोंके हाथसें वानर लोगोंकी जैसी अवस्था हुईथी उस कालमें रावणकुमार इन्द्रजीतके हाथसे वानरोंकीभी वही दशा हुई ॥ ३६ ॥ अनेक वानरश्रेष्ठगण क्रोधमें भरकर बाण रूपी किरणोंसे अलंकृत गिरते हुए सूर्यकी समान उस इन्द्रजीतके सन्मुखको धाये ॥ ३७ ॥ और

बहुतसे वानरअपना शरीर कटाय दुःखपाय, देहोंसे रुधिर बहनेके कारण ज्ञानहीनहो भागनें लगे ॥ ३८ ॥ परन्तु वह वानर लोग श्रीरामचंद्रजीका कार्य साधन करनेंके लिये प्राणतक अर्पण करके वृक्ष शिला उठाय २ फिर युद्ध करनेंको लौटे ॥ ३९ ॥ वह समस्त वानर मेघनादको ताक २ कर उसके ऊपर अनवरत वृक्ष और शिलाकी वर्षा करनें लगे ॥ ४० ॥ महातेजवान रावणके पुत्र मेघनादनें इन सब वानरोंके फेंकेहुए प्राण हरनें वाले शिला वृक्ष और पर्वतोंको अपने तीखे बाणोंसे खंड़ २ कर डाला ॥ ४१ ॥ तब मेघनाद विषधर सर्पके समान विषैले और अग्निकी समान बाण समूहसे उस वानरोंकी सैनाको छिन्न भिन्न करनें लगा ॥४२॥ उस महावीर्यवान मेघनादनें अत्यन्त तीक्ष्ण मर्म विदारण करनेंवाले अठारह बाणोंसे नीलको और नव बाणोंसे नलनाम वानरको दूरसेही खड़े रहकर रणभूमिमें मारा ॥ ४३ ॥ उस महावीर्यवाननें सात मर्म विदारी बाणोंसे नीलको बींधडाला और पांच बाणसे संग्रामभूमिमें गजको विद्ध किया ॥४४॥ इस प्रकारसे दश बाणोंसे जाम्ववानको व फिर तीस बाणोंसे नलको मर्माहत किया; इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीव, ऋषभ अंगद और द्विविदको तीक्ष्ण बाणोंसें मारकर मृतकतुल्य कर दिया ॥४५॥ इस प्रकारसे उस मेघनादनें अत्यन्त घोर वरदानसे प्राप्त तीक्ष्ण बाणोंसे इन वानरोंको मारा और समस्त वानरोंकोभी असंख्य बाणोंसें मारा ॥ ४६ ॥ क्रोधसें कालाग्निकी समान मूर्छितहो उस महा पराक्रमी मेघनादनें सूर्यकी समान प्रकाशित शीघ्रगामी भली भांतिसे चलाये हुए बाणोंसे ॥ ४७ ॥ वानरोंको एक बारही मर्दित कर डाला बाणोंसे पीड़ित होनेंके कारण व्याकुल और रुधिरसेभीगी हुई वानरोंकी सैनाको ॥ ४८ ॥ देखकर मेघनाद अत्यन्त हर्षित हुआ और फिर महातेजस्वी रावणका पुत्र मेघनाद ॥ ४९ ॥ दारुण शब्द और बाणोंकी वर्षा करके वानरोंकी सैनाको यह इन्द्रजीत सब प्रकारसे मर्दित कर कंपायमान करनें लगा ॥ ५० ॥ मेघनाद सहसा अपनी सैनाको छोड़कर वानरोंकी दृष्टिसे लोप होगया और अदृश्य रहकर नीला बादर जिस प्रकार जलकी वर्षा करताहै वैसेही वानरोंको ताककर उनके ऊपर अनिवारित बाणोंकी वर्षा करनें लगे ॥५१॥ इन्द्रजीके वज्र चलानेंसे जिस प्रकार पर्वत पंख कटाकर नीचे गिरेथे,

वैसेही वानरलोग राक्षसी मायासे मोहित होगये, इनका सब शरीर राक्षसके बाणोंसे कटगया और वह धीरे २ विकट स्वरसे शब्द करके रणभूमिमें गिरनें लगे ॥ ५२ ॥ उस समय वानरगणने सेनामें केवल इन्द्रजीतके छोड़े हुए अत्यन्त तीखे बाणोंको देखपाया; परन्तु मायाके बलसे छिपे हुए उस इन्द्रके शत्रु मेघनादको न देखा कि कहां खड़ा हुआ बाणोंकी वर्षा करताहै ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त राक्षसपति महाबलवान इन्द्रजीत सूर्यकी समान गांसीलगे हुए बाणोंसे सब दिशाओंको छायलिया; और अत्यन्त पैंने बाणोंसे वानरोंको मारनेंभी लगा ॥ ५४ ॥ और प्रदीप्त अग्निकी समान अंगारे व चिनगारियोंसे युक्त शूल, निस्त्रिंश, और परशु इत्यादि सब आयुधोंको ग्रहण करके वानरराज सुग्रीवजीकी सैनाके ऊपर वह मेघनाद वर्षानें लगा ॥ ५५ ॥ इस प्रकार इंद्रके शत्रु मेघनादके बाणोंसे जब वानर गणोंका शरीर छिन्नभिन्न होकर रुधिरसे भीग गया तब वह समस्त वानर खिले हुए टेसूके वृक्षकी समान शोभायमान हुए ॥ ५६ ॥ उस समय कोई२ वानर ऊपरको नेत्र उठाये आकाशकी ओर देख रहेथे; कि इतनेंमेंही बाण आनकर उनकी आंखोंमें लगा; तब वह परस्पर एक दूसरेका आश्रय लेनेलगे और कोई पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त हनुमान सुग्रीव अंगद गन्धमादन जाम्बवान सुषेण वेगदर्शी ॥ ५८ ॥ मैन्द, द्विविद, नील, गवाक्ष, गवय, केशरी, विद्युदंष्ट्र यह वानर ॥५९॥ और सूर्याानन ज्योतिमुख तथा दधिमुख वानर पावकाक्ष नल और कुमुद वानरोंको ॥ ६० ॥ शूल सें वानरश्रेष्ठोंको मारा और तीखे अभिमंत्रित बाणोसे राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीत मेघनाद सूर्यकी समान वर्णवाले बाणोंसे और गदा इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंसे वानरोंके यूथनाथोंको इस प्रकार वींधताहुआ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके ऊपर सूर्यके किरणोंकें समान बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ अद्भुत श्रीसम्पन्न श्रीरामचंद्रजीके ऊपर सर्व प्रकारसे वह बाणोंकी वर्षा वर्षाई गई, परन्तु वह उस समय बाण वर्षाको जलकी धाराके तुल्य विचार करकै लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! यह देखो इन्द्रका शत्रु राक्षसोंमें श्रेष्ठ मेघनाद इन्द्रजित महा अस्त्रका आश्रय लेकर उग्र वानरोंकी सैनाको मार रहाहै, यह ब्रह्माजीके वरदानसे पाये हुए बाणोंके

समूहसे फिर भी हमको पीडित कर रहाहै ॥ ६४ ॥ यह भयंकर शरीर वाला अस्त्र उठाये महा बलवान इन्द्रजित ब्रह्माजीसे वर पायकर आकाशमें अन्तर्ध्यान होगयाहै, फिर भला इस प्रकार छिपे हुए रहकर युद्ध करते हुए इस राक्षस मेघनादका हम किस प्रकारसे वध करनेंमें समर्थ होंगे॥६५॥ हे बुद्धिमान ! जिन्हौंनें इस विश्वको बनायाहै यह सब बाणभी उन्हीं ब्रह्माजीके बनाये जान पड़तेहैं, कि जिनका विजय चिन्तासे बाहर होंनेके कारण अपना उवार पार नहीं रखता, इसलिये पितामह ब्रह्माजीके सन्मान की रक्षा करनेंके लिये जिस प्रकार अब हम इन गिरतेहुए बाणोंको सहैं वैसेही तुम भी अव्याकुल चित्तसे इन समस्त बाणोंको सहन करो ॥६६॥ यह देखो ! यह राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीत बाणोंके जालको वर्षाकर दशों दिशाओंको छाय रहाहै, और वानरराज सुग्रीवजीके अनेक सैनापति मरगये हैं कि जिस्से यह समस्त वानरोंकी सैना शोभाहीन हुई ॥ ६७ ॥ जो हम ऐसा करकै इस राक्षसके बाणोंकी वर्षा को सह लेंगे तौ इन्द्रजीत हमको हर्ष रोष रहित युद्धसे निवृत्त और चेतना रहित हो पृथ्वीपर पड़ा देख संग्रामभूमिमें अपनी जय समझ निश्चयही लंकाको चला जायगा ॥ ६८ ॥ इसके उपरान्त मेघनादके बाणोंसे श्रीरामचंद्र, व लक्ष्मणजी पीड़ितहो मूर्छाखाय पृथ्वीपर गिर गये, यह देखकर राक्षस राजका पुत्र मेघनाद युद्धमें अपनी जय समझ हर्षमें भर घोर सिंहनाद करनें लगा ॥ ६९ ॥

ततस्तदावानरसैन्यमेवंरामंचसंख्येसहलक्ष्मणेन ॥ निषूदयित्वासहसाविवेशपुरींदशग्रीवभुजाभिगुप्ताम् ॥ संस्तूयमानःसतुयातुधानैः पित्रेचसर्वंहर्षितोभ्युवाच ॥ ७० ॥

इस प्रकारसे राक्षसराजनंदन मेघनाद श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके सहित समस्त वानरोंकी सैनाको समरमें पराजित कर सहसा रावणकी बाहोंसे पाली जाती हुई लंका पुरीमें प्रवेश करता हुआ और यहां पर निशाचर लोगोंनें उसकी बहुतही स्तुतिकी, और हर्ष सहित उसनें अपने पिताके

निकट समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ७० ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥

तयोस्तदासादितयोरणाग्रेमुमोहसैन्यंहरियूथपानाम् ॥ सुग्रीवनीलांगदजांबवंतोनचापि किंचित्प्रतिपेदिरेते ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समरंभूमिमें व्याकुल हुआ देखकर अंगद, नील, जाम्बवान् व और दूसरे वानर यूथपति गणोंकी सैना निरुपाय और चेष्टा रहित होकर मोहको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ तब बुद्धिमान लोगोंमें आगे गिनेजानेके योग्य विभीषणजी सबको ऐसा विषादित देखकर वानरराज सुग्रीवजीके वीरोंको अनुपम वचनोंसे समझानें बुझानें लगे ॥ २ ॥ हे वीरगण! तुम लोग डरो मत यह शोक करनेंका अवसर नहींहै, तुम जो इन्द्रजीतके बाणजालसे श्रीराम लक्ष्मणजीको व्याकुल और मृतक देखतेहो भगवान स्वयंभू ब्रह्माजीको सन्मानही करनेंके लिये श्रीराम लक्ष्मणजीनें ऐसा कियाहै ॥ ३ ॥ स्वयंभू ब्रह्माजीनें इन्द्रजीतको यह बड़ा भारी अमोघ (अव्यर्थ) वीर्य वाला ब्रह्मास्त्र दान कियाहै, यह दोनों राजकुमार इस अस्त्रकी मर्यादा रक्षा करनेंके लियेही ऐसी अवस्थाको प्राप्त होकर गिरे हैं, जो कुछभी हो फिर इसमें शोक करनेंका या घबड़ानेंका क्या कारणहै ? ॥ ४ ॥ पवन कुमार हनुमानजी विभीषणजीके वचन सुनकर उनकीही कही ब्रह्मास्त्रकी मर्यादाको "यथार्थ है" ऐसा कहतेहुए बोले ॥ ५ ॥ हे राक्षसकुलतिलक! राक्षस वीर इन्द्रजीतके चलाये हुए ब्रह्मास्त्रसे लग भग हमारी समस्त सैना मारी गई हैं; इस समय जो वानर कि जीवितहैं उनको समझाना बुझाना हमारा कर्तव्यहै ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त हनुमानजी और विभीषणजी यह दोनों वीर उस रात्रिमें मसाल हाथमें लेकर रणभूमिमें घूमनें लगे ॥ ७ ॥ उन्होंने रणभूमिमें घूमते हुए। देखा कि हाथ जांघ, पैर, उंगली, मस्तक और पूंछ कटे हुए अनेक वानररणभूमिमें पड़े हुए हैं; बहुत वानरोंके शरीरसे रुधिरकी धारा वहरहीहै; किसी २ वानरका भयके मारे पयःश्राव

होगयाहै ॥ ८ ॥ पर्वताकार प्रधान २ वानरोंके गिरनेंसे रणभूमि परिपूर्ण होरहीहै और बहुतसारे अस्त्र शस्त्रभी टूटे फूटेहुए पड़ेहैं ॥ ९ ॥ सुग्रीव अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवन्त सुषेण और वेगदर्शी ॥ १० ॥ मैन्द, नल ज्योतिर्मुख और द्विविद वानरोंकोभी हनुमान और विभीषण जीनें रणभूमिमें मृतक हुए देखा ॥ ११ ॥ इस संग्रामके मध्यम दिनके पांचमें भागमें अर्थात् छैः घड़ीमें ब्रह्माजीके अस्त्रसे रावणके पुत्र मेघनादनें सड़सठ करोड वानरोंको मार डालाथा; उन सबको उन दोनों वीरोंनें देखा ॥ १२ ॥ हनुमानजी विभीषणजीके सहित समुद्रके प्रवाहकी समान विस्तारवाली भयंकर वानर सैनाकी यह दशा देखकर जाम्बवानको खोजनें लगे ॥ १३ ॥ बहुत ढूंड भाल करनेंके पीछे शीघ्र बुझनेंवाली अग्निके समान सैकड़ों हजारों बाणोंसे विंधेहुए जराग्रसित वृद्ध प्रजापतिके पुत्र वीर जाम्बवानको ॥ १४ ॥ देखकर पौलस्त्य विभीषणभी उनके समीप जायकर बोले कि हे आर्य ! इस दारुण तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षासे आपके कहीं चोट तौ नहीं लगी ॥ १५ ॥ विभीषणजीके वचन सुनकर ऋक्षश्रेष्ठ जाम्बवानजी अत्यन्त कष्टसे वचन उच्चारण कर कहनेंलगे ॥ १६ ॥ हे महावीर्यवान ! तीखे बाणोंसे हमारा शरीर ऐसा विद्ध हुआहै; कि हम आपको अपने नेत्रोंसे देखभी नहीं सकते हैं; केवल आपका बोल सुनकर ही हम आपको राक्षसोंका स्वामी विभीषण मानते हैं ॥ १७ ॥ हे सुव्रत! जिनको पुत्र प्राप्त करके अंजनी सुपुत्रवती हुई है और पवन देव पुत्रवान हुएहैं वह वानर श्रेष्ठ हनुमान क्या जीवित हैं? ॥ १८ ॥ जाम्बवानके वचन सुनकर विभीषणजी बोले हे आर्य ! आप आर्यपुत्र श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको छोड़कर प्रथम किस कारणसे हनुमानजीका वृत्तान्त पूछते हैं? ॥ १९ ॥ आपने रघुनंदन, वानर सुग्रीवजी अथवा अंगदजीके प्रति स्नेहानुराग न दिखाकर हनुमानजीमें जो ऐसा स्नेह प्रकाश किया इसका कारण क्याहै ? ॥ २० ॥ विभीषणजीके वचन सुनकर जाम्बवन्तजीनें कहा; हे राक्षसशार्दूल! हमनें जिस कारणसे और सबको छोड़कर केवल हनुमानजीका वृत्तान्त पूछा, उसका कारण श्रवण करो ॥ २१ ॥ यद्यपि यह वानरोंकी सैना मारी तौ गई है, परन्तु वीर श्रेष्ठ वानर हनुमानजीके जीवित रहते, हम किसीको भी मरा हुआ नहीं

समझते परन्तु पवनकुमार हनुमानजीके मर जानेंसे हम लोग जीतेहुए भी मरेही हैं॥ २२॥ इस्से जो हनुमान जीवितहों तव हमें जीवनकी आशा होगी नहीं तो जीना क्याहै कारणकि वह पवनकी समान समरमें वेगवान हैं और वीर्यमें अग्निकी समान हैं हेतात! हनुमानजीका जीना सुनकर फिर हमें जीनेंकी आशा होगी ॥ २३ ॥ तव महावीर हनुमानजी वृद्ध जाम्ववानके निकट जायकर उनके चरण पकड़ विनीत भावसे प्रणाम करकै अपना नाम वतायकर वोले कि हम आपकी कृपासे जीतेहैं ॥२४॥ तव हनुमानजीके वचन सुनकर रीछराज अत्यन्त कातर रहनें परभी आनन्दके मारे अत्यन्त हर्षित हो अपना दूसरा जन्म समझते हुए ॥२५॥ इसके उपरान्त महा तेजमान जाम्ववानजी हनुमानजीसे वोले कि हे वानर श्रेष्ठ! आओ प्रथम इन सव वानरोंकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्यहै॥२६॥ हे वीर! इस समय हम और किसीको नहीं देखते केवल तुमही इन लोगोंके परम सखाहो और तुम्हारा पराक्रमही इन लोगोका उद्धार करनेंमें यथेष्ट होगा, विशेष करकै इस समय तुम्हारे उस पराक्रम प्रकाश करनेंका समय आयाहै ॥ २७ ॥ रीछ और वानरवीरगणोंकी इस समस्त सैनाको हर्षित कराओ और पीड़ित हुए श्रीराम, व लक्ष्मणजीके अंगोंमेंसे वाण निकाल डालो ॥ २८ ॥ हे शत्रुदमनकारी हनुमान्! तुम इस समय महासमुद्रके पार वहुत दूरतक गमन करकै पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर पहुँ-चोगे ॥ २९ ॥ इसके आगे सुवर्णमय ऋषभनाम पर्वत श्रेष्ठहै; हे शत्रु दमन कारी! वहां पर तुम कैलास पर्वतके शिखर भी देखोगे ॥ ३० ॥ वहां पर इन दोनों शिखरोंके मध्यमें समस्त औषधियोंसे युक्त अतुल प्रभा युक्त और प्रदीप्त ओषधि पर्वत तुमको दिखाई देगा ॥ ३१ ॥ हे वानरशार्दूल! तुम उस पर्वतके शिखर पर चार प्रकारकी ओषधि देख पाओगे, तुम देखोगे कि वह अपने प्रभावसे दशों दिशाओंको प्रकाश मान कर रही होंगी ॥ ३२ ॥ उनके मृतसञ्जीवनी [मरे हुए को जिलानें वाली] विशल्यकरणी [अंगोंकी व्यथा दूर करनेंवाली] सुवर्णकरिणी, [घाव आदिकसे हुई विवर्णताको दूरकर अंग सुन्दर करतीहै] और सन्धानकरणी, [लगातेही घावको भर देती है] यह चार नामहैं ॥ ३३ ॥ हे गन्धवह [पवन] नन्दन हनुमान्! तुम इन सव औषधियोंको जितनी

जलदी ला सकते हो, उतनी जलदी लेआओ, और वानरोंको प्राणदान देकर इन लोगोंको आनंदित करो ॥ ३४ ॥ उस समय पवननंदन हनुमानजी जाम्बवन्तके वचन सुनकर पवनके वेगसे जिस प्रकार समुद्र उफन जाताहै, वैसेही प्रबल वेगसे आपभी उद्धतहो उठे ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त कूदनेंके लियेही जब यह त्रिकूट पर्वतके आगे खड़े हुए तब दूसरे पर्वतके समान जान पड़तेथे ॥ ३६ ॥ तिस काल वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके पांवों द्वारा अत्यन्त पीड़ित होंनेसे वह पर्वत अपने स्थानमें रहनेंको असमर्थ हो टूटकर झुक पड़ा ॥ ३७ ॥ वानर श्रेष्ठ हनुमानजीके वेगसे पीड़ित होनेसे उस पर्वतके समस्त वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े और उसके समस्त शिखर फटगये कि जिनसे अग्नि निकलनें लगी और सब शृङ्गभी फट गये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके सब वृक्ष टूट गये शिला ओंका चूरा होगया, और वह पर्वतभी पीड़ित होकर घूमनें लगा; उस पर्वतके रहनेंवाले वानर लोग उस पर नहीं टिकसके ॥ ३९ ॥ लंकाके गृह और पुरद्वार टूट गये, और कंपायमान होनेलगे सबही शंकायुक्त हुए; उस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों राक्षसोंकी पुरी लंका नाच रहीहै ॥ ४० ॥ पर्वताकार वानरवीर पवनकुमार पर्वतको पीड़ित करके समस्त पृथ्वीको समुद्रके सहित चलायमान कर देते हुए ॥ ४१ ॥ हनुमानजी चरणके आघातसे पृथ्वीको विदीर्ण करके घोड़ीके मुखकी समान प्रदीप्त मुख फैलाय राक्षसोंको शंकित करके घोर गर्जन करनें लगे ॥ ४२ ॥ लंकामें टिके हुए राक्षस लोग अचानक कठोर गर्जन सुनकर चमक उठे, और बात तो अलगरही उस समय किसीकोभी हिलनें डुलनेंतककी सामर्थ्य न रही ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त भयंकर विक्रमकारी शत्रुओंके मारनें वाले श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करके उनका कार्य साधन करनेंके लिये तैयार हुए * ॥ ४४ ॥ श्रीहनुमानजी सर्पाकार अपनी पूंछ ऊपरको उठाय, दोनों कानोंको सकोड़ घोड़ीकी समान मुख फैलाय अति प्रचंड वेगसे आकाश मार्गमें

* किसी किसी पुस्तकमें लिखाहै "नमस्कृत्वा समुद्राय मारुतिर्भीमविक्रमः" परन्तु यह पाठ असंगतहै प्राचीन सब पुस्तकोंमें यही श्लोकहै "नमस्कृत्वाय रामाय मारुतिर्भीमविक्रमः । राघवार्थे परं कर्म समीहत परंतपः ॥

कूदे ॥ ४५ ॥ हनुमानजीके कूदनेंके वेगसे वृक्ष, शिला, शैल, और पर्वत पर रहनें वाले छोटे वानरभी ऊपरको उछलगये; परन्तु यह सब पदार्थ क्षीणबल होनेंके कारण हनुमानजीका प्रबल वेग न सहकर सबके सब समुद्रके जलमें जायकर गिरे ॥ ४६ ॥ इस ओर गरुडजीके वेगकी समान वीर्यवान पवनकुमार हनुमानजी अपनी सर्पाकार दोनों बांहें फैलाते मानों सब दिशा ओंको खेंचते हुएसे उस पर्वतराजके सामनेंको चले ॥ ४७ ॥ उस कालमें बलशाली वह वीर हनुमानजी महातरंगोंसे व्याप्त महा सागर और उसके जलमें घूमनें वाले जल जीव समूहोंको देखते २ विष्णुजीके हाथसे छूटे हुए चक्रकी समान प्रचंड वेगसे गमन करनें लगे ॥ ४८ ॥ उस कालमें पिता पवनकी समान वेगसे गमन करनेंवाले हनुमानजीनें असंख्य पर्वत, वृक्ष, सरोवर, नदी, तट और बहुत जनोंसे समाकुल जनपद देखे ॥ ४९ ॥ पिताकी समान पराक्रम शाली वीर हनुमानजीको सूर्य भगवानका आश्रयले गमन करनेंपरभी उनको कुछभी परिश्रम नहीं ज्ञात हुआ ॥ ५० ॥ पवनश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजी पवनकी समान अति वेगसे गमन करते हुए अपनें शब्दसे दशों दिशाको शब्दायमान करने लगे ॥ ५१॥ भयंकर पराक्रमकारी महाकपि हनुमानजीनें जाम्बवानजीके वचनोंको यादकर अत्यन्त वेगसे गमन करते २ हिमवानपर्वत राजको देखा ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त असंख्य सोते, कन्दर, झरनोंसे युक्त और श्वेतवादलके समान उजले वर्णवाला सुन्दर २ शिखर और विविध वृक्षोंसे शोभित उस पर्वत श्रेष्ठ पर हनुमानजी गमन करते हुए ५३ ॥ हनुमानजीनें अतिऊंचे सुवर्णके शृङ्गोंसे सुशोभित उस महा पर्वतपर पहुंचकर देवर्षि गणोंसे सेवित वहांके उत्तम पवित्र महाश्रमोंका दर्शन किया ॥ ५४ ॥ ब्रह्मकोश, रजतालय, इन्द्रालय और त्रिपुरके संहार कालमें जिस स्थानसे रुद्रजीनें अस्त्र छोड़ाथा जहां भगवान हयग्रीवजी विराजमान होरहेथे, जिस स्थानमें ब्रह्मास्त्रके अधिष्ठात्रीदेवता विराज तेथे वह सब आश्रम और समस्त यमके किङ्कर गणोंको हनुमानजीनें देखा ॥ ५५ ॥ अग्नि और कुबेरजीका स्थान सूर्यकी समान प्रभाशाली सूर्यगणोंका सम्मिलन स्थान, ब्रह्मा जय श्रीशंकरजीका पिनाक नामक धनु, और वसुन्धराकी नाभि, अर्थात् सब प्राजापत्य स्थानोंको देखा॥५६॥

[महावीर पवन कुमार हनुमानजीनें उस हिमालय पर विघ्नेश्वर (गणेशजी) नंदिकेश्वर, देवता लोगोंसे वेष्टित कुमार कार्तिकेय और कन्या गणोंके साथमें दीप्तिमती हैमवती (दुर्गाजीको) देखा] इसके उपरान्त हिमवत शिखर कैलाश; जाम्बवन्तके बताये हुए वृक्ष पर्वत श्रेष्ठ सुवर्णका पर्वत देखकर सब औषधियोंसे प्रदीप्त औषधि पर्वत हनुमानजीनें देखा ॥ ५७ ॥ पवनकुमार हनुमानजी कूदकर अनलकी राशिके समान प्रदीप्त उस औषधिपर्वतपर पहुंचकर जाम्बवानकी बताईहुई सब महौषधियोंको खोजनें लगे और इन औषधियोंको अग्निके समान प्रकाशमान देख हनुमानजी विस्मितभी हुए ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे महाकपि हनुमानजी हजार योजन मार्ग चलकर सब ओषधि युक्त उस पर्वतपर पहुंचकर घूमनें लगे॥५९॥परन्तु उस पर्वत श्रेष्ठके ऊपर जो समस्त महौषधिथीं, वह यह समझकरकि हमको ढूंढ़नेंको कोई आयाहै सबही अदृश्य होगई॥६०॥ उन समस्त औषधियोंको न देख पायकर क्रोधके मारे हनुमानजीके दोनों नेत्र अग्निकी समान लाल होगये और वह उन औषधियोंका ऐसा कार्य न सहन करके बारंबार सिंहनाद करते हुए उस पर्वतसे बोले ॥६१॥ हे पर्वत! तुम जो श्रीरामचंद्रजीके प्रति दया प्रगट नहीं करते यह कैसा कार्य तुमनें निश्चय कियाहै? यदि तुमनें अपनी सामर्थ्यपर भरोसा रखके कार्यमें ऐसी उदासीनता प्रकाशकी तौ आज हमारे बाहुबलसे व्याकुल होकर तुम अपनेको रत्ती २ चूर्ण हुआ देखोगे ॥ ६२ ॥ यह कह कर हनुमानजीने शृङ्ग प्रस्तर, खण्ड, मातङ्ग और सुवर्ण आदि धातुओंके उस अनेक शिखरवाले और सहस्रों धातुओंसे प्रज्वलित शृङ्ग सानु समन्वित उस पर्वतको सहसा ग्रहण करके अतिवेगसे उखाड़ लिया ॥ ६३ ॥ गरुड़जीकी समान अति उग्र वेगवाले हनुमानजी उस पर्वतशृङ्गको उखाड़ आकाशमें उछल गये और सुरेन्द्र व असुरगणोंके सहित समस्त लोकोंको त्रासित करते२ असंख्य आकाशचारियोंसें स्तुति किये जाते हुए अतिवेगसे गमन करते हुए ॥ ६४ ॥ सूर्यकी समान रूप सम्पन्न वह वीर हनुमानजी सूर्यकी समान पर्वत ग्रहण करके सूर्यके मार्गमें उपस्थित हो दूसरें सूर्यकी समान शोभाधारण करते हुए ॥ ६५ ॥ पर्वताकार हनुमानजी उस पर्वतको ग्रहण करके अग्निकी ज्वालासे युक्त

हाथमें सहस्र धार चक्र द्वारा शोभित विष्णुजीकी समान शोभायमान होनें लगे॥६६॥ उस कालमें लंकाके मैदान में खड़े हुए वानरगण उनको देखकर सिंहनाद करने लगें और हनुमानजी भी उनको देखकर सिंहनाद कर उठे उस अत्यन्त दारुण शब्दको श्रवणकरकै लंका निवासी निशाचर गणभी भयंकर घोर सिंहनाद करने लगे ॥६७॥ इसके उपरान्त महाबलवान हनुमानजी पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके ऊपर वानरोंकी सेनामें उतरकर मुख्य२ वानरोंको प्रणाम करकै बिभीषणजीको लिपटायकर मिले ६८ इस ओर मनुष्य राजकुमार राम और लक्ष्मणजी सब महौषधियोंकी सुगन्धि सूंघकर उसी समय घाव रहित होगये और वानर वीर गणभी घावरहित हो उठ बैठे॥६९ जिसप्रकार रात्रिके आनेसे समस्त जीव सोजातेहैं और रात्रि बीत जाने पर जाग उठते हैं वैसेही एक क्षणमें समस्त वानर रोगरहित होकर उठ बैठे और जो वानर रणमें मृतक हो गयेथे उन वानरोंकी भी देहोंमें प्राण आय गये॥ ७० ॥परन्तु उन महौषधियोंसे, राक्षस कोईभी नहीं जिया। कारण कि जबसे वानर और राक्षसों का युद्ध आरंभ हुआथा उस समयसे ही रावणकी आज्ञाके अनुसार परिमाण जाननेके लिये ॥ ७१ ॥ जो राक्षस रणमें वानर वीरोंसे मारे जातेथे वह समस्त राक्षसोंके द्वारा तुरत ही समुद्रमें फेक दिये जातेथे फिर भला राक्षस कैसे जियें॥ ७२ ॥

ततोहरिर्गंधवहात्मजस्तुतमोषधीशैलमुदग्रवेगः ॥ निनायवेगाद्धिमवंतमेवपुनश्चरामेणसमाजगाम ॥ ७३ ॥

इसके उपरान्त जब सब समस्त वानर जी गये तब अत्यन्त वेग सम्पन्न गन्धवहनंदन [पवनकुमार] वानरश्रेष्ठ हनुमानजी उस औषधि पर्वतको ग्रहणकरकै वेगसे हिमालय पर्वतपर जहांका तहां स्थापन करकै फिर श्रीरामचंद्रजीके निकट चले आये ॥ ७३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडेचतुःसप्ततितमःसर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥

ततोब्रवीन्महातेजाःसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ अर्थ्यं विज्ञापयंश्चापिहनूमंतमिदंवचः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त वानरराज सुग्रीवजी किसी एक कार्यको विचार करके हनुमानजीसे यह कहते हुए ॥१॥ जब कि कुंभकर्ण मारा गया और रावणके पुत्र भी मारे गये तिस्परभी यह रावण अपनी लंकापुरीकी रक्षा करनेमें समर्थ होगा ऐसा तौ हमें ज्ञात नहीं होता ॥२॥ इसलिये इन सब वानरोंमें जो महाबलवान् और शीघ्रविक्रमकारी वानरगणहैं वह वानर गण शीघ्रही मसालें हाथमें लेकर लंकापुरीको जलावें ॥ ३ ॥ जब वानरराज सुग्रीवजीनें इस प्रकारसे आज्ञा दी तौ उसी दिन सूर्य छिपनेंके पीछे घोर रात्रिमें वानरश्रेष्ठगण मसालें हाथमें लेलेकर लंकाके सन्मुख गये ॥ ४ ॥ विरूपाक्ष राक्षसगण जोकि लंकाके द्वारकी रक्षा करतेथे वह सब वानरोंको लूके हाथमें लिये हुए देखकर घबड़ाये और वानरगणोंसे मार खाय कर भागगये ॥ ५ ॥ तब वानर लोगोंनें हर्षित अंतःकरणसे बाहर द्वारोंपर, अटारियोंपर, छज्जोंपर, विविध चर्या और धवरहरोंपर सबही जगह अग्नि लगादी ॥ ६ ॥ उस कालमें अग्निनें उन राक्षसोंके हजारों गृह भस्म कर दिये, और पर्वताकार समस्त धवरहर भस्महो पृथ्वीपर भयराय कर गिरनेंलगे ॥ ७ ॥ लंकाके स्थान २ में अगर, परम सुगन्धि युक्त चंदन, मुक्तामणि, उत्तम २ हीरे प्रवाल भस्म होंने लगे ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके क्षौम कौशेय, [रेशमीन] राङ्कव और उनके बने हुए वस्त्रादि भस्म होगये, आयुध व सुवर्णके पात्रभी जलकर मट्टीमें मिलगये ॥ ९ ॥ भांति २ अन्नादि धरनेंके स्थान घोड़ोंके व और दूसरेभी बहुत सारे अलंकार, हाथियोंके गलोंमें बांधनेंकी वस्तुयें और कमरमें बांधनेंके रस्से, रथोंके गहने, व भोजनादिके पात्र जो कुछभी बनेठने धरेथे ॥ १० ॥ योद्धागणोंके कवच वर्म इत्यादि, हाथी घोड़ोंके कवच, खड्ग, धनुष, प्रत्यंचा, बाण, माला, अंकुश, शक्ति ॥ ११ ॥ उनके बनेहुए वस्त्र वालोंके बनेहुए चामरादि असंख्य व्याघ्रचर्म, अण्डजात मृग मदादि और मुक्तामणि इत्यादिसे जड़ित चित्र विचित्र धवरहर ॥ १२ ॥ और विविध भांतिके अस्त्र शस्त्रादि इन सबको अग्निनें भस्म कर डाला अनेक प्रकारके चित्र विचित्र भवनभी अग्निने भस्म करदिये ॥ १३ ॥ सब गृहनिवासी राक्षसोंके भवन, सुवर्णके कवचादि पहरे माला भूषण श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये ॥ १४ ॥ मदपान करनेंसे चलायमान नेत्रवाले

मदमाते होनेके कारण विह्वलतासे चलनेवाले स्त्रियोंके कपड़े पकडे हुए शत्रुओंके ऊपर क्रोध धारे ॥ १५ ॥ गदा, शूल, खड्ग हाथोंमें ग्रहण किये भोजन पान करते अपनी २ प्यारियोंके साथ अमोल बिछौनोंपर शयन करते ॥ १६ ॥ भयभीतहो अपने २ पुत्रोंको साथ लेकर दशोंदिशाओंको भागते इस प्रकारसे शत २ सहस्र २ लंका निवासियोंके समूहके समूह ॥१७॥अग्निनें भस्म कर डाले; इसपरभी अग्नि प्रचंडहो धुधकरता हुआ अतिवेगसे बलरहाथा बड़े २ मोलके गंभीर गुण युक्त ॥ १८ ॥ सुवर्णके बने पूर्ण चंद्रमा, और अर्द्धचन्द्रसे युक्त उत्तम चन्द्रशाला कि जिनमें चित्र विचित्र झरोखे वनेथे, और वह पंचमहले दुमहले बनेथे इनको ॥ १९ ॥ मणि और विद्रुमके जड़ावसे चित्र विचित्र और जोकि मानो सूर्यके छूनेंहीको बनाये गयेथे । क्रौञ्च और मोरोंकी समान शोभित वर्ण भूषणोंके नादसे विनादित ॥ २० ॥ यह समस्त पर्वताकार धवर हरे अग्निनें जलादिये उस कालमें अग्निसे दीप्तमान समस्त तोरण ॥ २१ ॥ ग्रीष्म कालमें दामिनीसे विराजित घटाकी समान प्रकाश पानेंलगे अग्नि लगनेंसे प्रकाशित समस्त गृह ॥ २२ ॥ दावाग्निसे प्रकाशित महापर्वतके शिखरोंकी समान शोभायमान होनेलगे, समस्त विमानोमें सोती हुई श्रेष्ठस्त्रियें अग्निसे जलती हुई ॥ २३ ॥ सब अंगोंसे गहना निकाल २ कर ऊंचे शब्दसे हाहाकार करकै रोदन करनें लगीं ! अग्निसे जलाये समस्त भवन भी ॥ २४ ॥ इन्द्रके वज्रसे आहत हुए महापर्वतोंके शृ-ङ्गोंकी समान गिरनें लगे वह भस्म हुए समस्त धवरहर दूरसे ऐसे प्रकाशित होतेथे ॥ २५ ॥ कि मानों जलते हुए हिमवान पर्वतके शिखर जल रहेहैं. ज्वालासे प्रज्वलित हर्म्यादिकोंके भस्म होनेंसे ॥ २६ ॥ फूले हुए पलाशके वृक्षोंसे पूर्ण रात्रिमें वह समस्त लंकानगरी ज्ञात होंने लगी । उस कालमें अध्यक्ष लोगोंनें अग्निके भयसे भीत होकर हाथी और घोड़ोंको उनके थान परसे खोल दिया, उस समय ऐसा जाना गया मानों लंका-पुरी महा प्रलयमें घूमते हुए ग्राह मकरादिसे पूर्ण महा समुद्रकी समान होगई है ॥ २७ ॥ किसी स्थानमें हाथी घोड़ोंको खुला हुआ देखकर भागनें लगा और कहीं डरे हुए हाथियोंको देख घोड़ाही लौट पड़ता-था ॥ २८ ॥ जबकि लंका नगरी इस प्रकारसे दग्ध होगई, तब अग्निकी

शिखाओंकी परछांई समुद्रके जलमें पड़नेंसे समुद्र [illegible] कार्यको विचार करके
जान पड़ताथा ॥ २९ ॥ अधिक क्या कहैं वानर गणों [illegible] गया और रावणके
की हुई वह लंकापुरी एक मुहूर्त भरमें प्रलय कालमें प्रदीप्त [illegible] रक्षा करनेंमें
समान भस्म होगई ॥ ३० ॥ उस कालमें अग्निसे संतापित [illegible] सब वानरोंमें
और रुदन करती हुई राक्षसोंकी स्त्रियोंका शब्द सौ योजनसे [illegible] वह वानर
लगा ॥ ३१ ॥ उस समय जले अध जले जो राक्षस भागकर लंका[illegible] ॥ ३ ॥
को आतेथे युद्ध करनेंके लिये वानर वृन्द उनके सन्मुख जाय२ [illegible] दिन सूर्य
मारनें लगे॥३२॥उस कालमें वानर लोगोंके उद्योगसे और निशा[illegible]कर लंकाके
शब्दसे दशोंदिशा समुद्र, और समस्त पृथ्वी शब्दायमान होनें ल[illegible]रकी रक्षा
इस ओर दोनों राज कुमार महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजी याव[illegible]वड़ाये और
सावधान चित्तहो दोनोंनें श्रेष्ठ धनुष धारण किये ॥ ३४ ॥ उसके [illegible]गोंनें हर्षित
श्रीरामचंद्रजीनें जब अपनें वड़ेभारी उत्तम धनुषपर टंकोरदी [illegible] चर्या और
लोगोंका भयावह कठोर शब्द होनें लगा ॥ ३५ ॥ जिस समय अग्निनें उन
[illegible]चंद्रजीनें वड़ेभारी धनुषपर टंकोरदी; तब उस समय वह संहार[illegible] धवरहर
शब्द ब्रह्मात्मक वेदमय धनु; विस्फारण कारी भगवान भवानी [illegible]थान २ में
समान जान पड़नें लगे॥ ३६ ॥ वानरोंके गर्जन करनें और रा[illegible]ल भस्म
रोदन करनेंका शब्द और श्रीरामचंद्रजीके धनुपकी टंक[illegible] राक्षव और
तीनों शब्द एक दूसरेको मूंद लेते हुएसे सुनाई दे[illegible]के पात्रभी जलकर
और वानर गणोंका गर्जना, निशाचर गणोंका [illegible] श्रीरामचंद्रजी[illegible] और
धनुषके टंकोर यह तीनो शब्द दशों दिशाओंमें व्याप्त होगये ॥ ३८ [illegible]र
श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुए वाणोंसे उस लंका पुरीके कैलास पर्वत[illegible]भी
शिखरकी समान फाटक चूर्ण होकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ३९ [illegible]के
इस ओर विमान और गृहोंको गिरता हुआ व श्रीरामचंद्रजीके वाणोंको[illegible]के
देख राक्षस श्रेष्ठोंमें भी कठोर युद्धकी तैयारियां होनें लगी ॥ ४० ॥
जब राक्षस श्रेष्ठ गण सिंहनाद करके संग्राम करनेंके लिये तैयार होनें लगे
तब उस समय यह त्रिकाल रात्रिकी समान जान पड़नें लगी ॥ ४१ ॥[illegible]
इसी अवसरमें महा वलवान् वानर सुग्रीवजीनें वानर श्रेष्ठोंको यह आज्ञा[illegible] ॥
कि "हे वानर गण ! तुम लोगोंमेंसे जो वानर जिस द्वारके निकटहो [illegible] भूषण
उसी द्वारपर युद्ध करे ॥ ४२ ॥ श्रेणे [मोरचा] पर उपस्थित रहकर[illegible]नेत्रवाले

जो हमारी आज्ञाका निरादर करैगा, राजाज्ञाके अनादर करनेंवाले उस वानरको निःसन्देह मार डालेंगे ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त जब वह मुखियार वानर लूके हाथमें लिये सब द्वारोंको घेरेहुये खड़े रहे तब निशाचरराज रावणको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ॥४४॥जब रावणनें जंभाई ली तब दशों दिशा कलुषित होगईं और प्रलयकालीन रुद्रके रूपवान क्रोधके समान ॥रावणके शरीरमें भी क्रोधके चिह्न दिखाई देनें लगे ॥ ४५ ॥ तिसके उपरान्त निशाचरपति रावणनें क्रोधमें भरकर कुंभकर्णके पुत्र कुंभ और निकुंभको बहुत निशाचरोंके साथ युद्ध करनेंके लिये भेजा ॥ ४६ ॥ रावणकी आज्ञाके अनुसार, यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कंपन नामक चार राक्षस इन कुंभकर्णके दो पुत्रोंके साथ चले ॥ ४७ ॥ तब उस समय रावणनें राक्षसोंका भय दूर करनेंके लिये सिंहनाद करके उन महाबलवान् राक्षसोंसे कहा "हे निशाचर गण ! तुम सब इस रात्रिमेंही युद्ध करनेंके लिये जाओ" ॥ ४८॥ राक्षसगण राक्षसराज रावण करके इस प्रकारसे युद्धमें भेजे जाकर आयुध उठाय वारंवार सिंहनाद करते हुए लंकासे निकले ॥ ४९ ॥ तब राक्षसोंकें धारण कियेहुए अलंकारोंसे और शरीरोंके कांतिसें और वानरोंने किये अग्निसे आकाश प्रकाशित होगया ॥ ५० ॥ ऊपरसे चंद्रमा और तारागण व नीचे वानर राक्षसोंके भूषणोंकी प्रकाशमय कांतिसे दोनों सैनाओंके बीचमें टिकाहुआ आकाश प्रदीप्तमान होगया ॥ ५१ ॥ चंद्रमाकी चांदनी गहनोंकी कांति और जलतेहुए भवनोंकी अग्नि;—यह सब वानर और राक्षसोंको प्रकाशित करनें लगीं ॥ ५२ ॥ अग्निसे जलतेहुए गृहोंकी दीप्तिकी परछांई जब समुद्रके जलमें पडी तब चंचल तरंग माला शोभित समुद्र और भी अधिक शोभायमान हुआ ॥ ५३ ॥ ध्वजा पताकासंयुक्त, उत्तम खड्ग, फरसासहित, भयंकर घोड़े व हाथियोंके साथ अनेक प्रकारके पैदलोंके सहित ॥ ५४ ॥ प्रदीप्त शूल, गदा खड्ग, प्राश, तोमर, धनुष ऐसे राक्षसोंकी घोर विक्रमकारी और पौरुषयुक्त सैनाको ॥ ५५ ॥ प्रकाशमान देखा वह सैना शत २ किङ्किणीनिनादित, प्रज्वलित कुठार और सुवर्ण भूषणसे भूषित बाहु और प्रज्वलित भालोंसे युक्त ॥ ५६ ॥ महाशस्त्रोंको घुमाते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते हुए, गन्धमाला व मधुकी महकसे पवनको

मोदित करते ॥ ५७ ॥ शूरगणोंके भरे रहनेसे अतिघोर महा मेघके गर्जनकी समान शब्द करती ऐसी दुर्द्धर्ष राक्षसोंकी सैना आई हुई देखकर ॥ ५८ ॥ वानरोंकी सैनानें विचलित होकर ऊंचे स्वरसे सिंहनाद किया। फिर उस राक्षसोंकी बड़ी भारी सैनाके बीचमें ॥ ५९ ॥ अतिवेगसे कूद पड़े कि जैसे पतंगे अग्निमें कूद पड़तेहैं तिन राक्षस लोगोंके भुजोंके व्यापारसे कंपायमान किये गये वज्र व अशनिसें युक्त ॥ ६० ॥ राक्षसोंकी सैना फिर अत्यन्त शोभित हुई। इसके उपरान्त युद्ध करनेंके लिये तैयार वानरलोग उन्मत्तकी समान ॥ ६१ ॥ वृक्ष शैल, मूकोंसे कूद २ कर निशाचरोंको मारनें लगे। तब उन कूद २ कर आते हुए वानरोंके तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ६२ ॥ भयंकरविक्रमकारी राक्षस लोग शिर काटनें लगे निशाचरलोग वानर लोगोंके दांतोंसे काटे जाकर कर्ण रहित मूकोंके मारनेंसे शिर रहित और शिलाओंके प्रहारसे अंग भंगहो उस रणभूमिमें विचरण करनेंलगे ॥६३॥ व दूसरी ओरसे घोर रूप निशाचर गणोंने भी तीक्ष्ण खड्गसे मुख्य २ वानरोंका संहार करना आरंभ किया ॥ ६४ ॥ बलवान वानर वीरोंनेभी प्रबल राक्षसोंका संहार किया, एक २ जनके मारनेंको जैसेही तैयारहुआ कि वैसेही एक दूसरेनें आकर उसको ढकेल दिया कोई किसीको काटरहाथा कि दूसरेनें आनकर उसको काट खाया, कोई एक २ किसीकी निन्दाकर रहाथा कि वैसेही एक तीसरेनें आकर उसका निरादर किया; किसीके युद्ध चाहनेंपर दूसरा उस्से युद्ध कर रहाहै कि इतनेहीमें कोई आयकर बोला कि हम युद्ध करेंगे "क्यों क्लेशदेतेहो! तुम यहां खड़े रहो" रणभूमिमे तिसकाल एक दूसरेसे ऐसा कह रहेथे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ धीरे २ दोनों ओरका युद्ध अतिभयंकर हो उठा, राक्षस लोगोंके शस्त्र व्यर्थ होनेंलगे, उनके कवच आयुध समस्त छिन्न भिन्न होगये। राक्षसलोग बड़े २ भाले, मुष्टि, शूल, और तलवार उठाय रहगये ॥ ६७ ॥ "प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ॥ वानरान्दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे" ॥ ६८ ॥ इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका महा घोर युद्ध होनें लगा निशाचर लोग एकही वारमें सहस्र २ वानरोंको संहार करनेंलगे ॥ ६८ ॥ "राक्षसान्दशसप्तेति वानरास्त्वभ्यपातयन्। बलं राक्षसमालंब्य वानराः पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥

विप्रलंभितवस्त्रंचविमुक्तकवचध्वजम् ॥ बलंराक्षस मालंब्यवानराःपर्यवारयन् ॥ ६९ ॥

और वानर लोगभी इतनेही राक्षसोंको एक २ बाणसे रणभूमिमें मारते हुए और उनके वस्त्र फाड कवच तोड ध्वजा नष्ट करदी, उस युद्धमें वानरगण राक्षस लोगोंकी समान बलका आश्रय करके राक्षस लोगोंको निवारण करनें लगे ॥ ६९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे भाषानुवादे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥

प्रवृत्तेसंकुलेतस्मिन्वीरेघोरजनक्षये ॥ अंगदःकंपनंवीरमाससादरणोत्सुकः ॥ १ ॥

जब इस प्रकारसे लोकक्षयकारी घोर कठोर संग्राम होनें लगा तब महावीर अंगदजी युद्धका अभिलाष करके राक्षसवीर कंपनके सन्मुख जायकर उठ गये ॥ १ ॥ वेगवान कंपननेंभी युद्ध करनेंके लिये अंगदको पुकारकर अपनी गदासे उनको मारा कि जिस्से अत्यन्त घायलहो अंगदजी चलायमान होगये ॥ २ ॥ परन्तु तेजस्वी अंगदजीनें क्षण कालमें ही मूर्छासे जागकर एक पर्वतका शिखर उसके ऊपर चलाया कि उस प्रहारके लगतेही कंपन अर्दित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ३ ॥ कंपनको रणमें मराहुआ देखकर शोणिताक्ष अपने रथको चलाता हुआ निर्भयहो शीघ्रतासे अंगदजीके समीप गया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त वेगसे अंगदजीके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करनें लगा;वह कालकी अग्निके समान सायक वीरश्रेष्ठ अंगदजीके शरीरमें विंधगये ॥ ५ ॥ राक्षस वीरनें वानरवीरके प्रति क्रमसे छुरे, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णीशल्य और विपाट इत्यादिक अनेक प्रकारके बाण छोड़े प्रतापवान बलशाली वालिकुमार अंगदके शरीरमें जब यह समस्त बाण लगे तब उन्होंनें अत्यन्त वेगसे उस राक्षसका उग्र धनु और समस्त बाणोंको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त शोणिताक्ष क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे ढाल तरवार ग्रहण कर विना विचारे वेगसे कूद पड़ा ॥ ८ ॥ तब विपुल बलशाली अंगदजीनें शीघ्रतासे छलांग मारकर उस राक्षसको पकड़ा और उसके हाथसे बलपूर्वक ढाल तरवार छीन वारंवार सिंहनाद करनें

लगे ॥ ९ ॥ उसकाही खड्ग उसके बायें हाथपर इस प्रकारसे अंगदजीनें मारा, कि यज्ञोपवीतकी नांई उसके दोखंड होगये [बायाँ हाथ धड़में लगा रहा और दहिना हाथ शिरके संग] ॥ १० ॥ वालिकुमार अंगदजी शोणिताक्षका संहार करकै वारंवार सिंहनादकर और दूसरे शत्रुओंकी ओर दौड़े ॥ ११ ॥ यह देखकर महाबलवान यूपाक्ष क्रोधमें भरकर महा बली वालिके पुत्र अंगदजीके सामने आया ॥ १२ ॥ इस ओर कनका-ङ्गदभूषित वीर शोणिताक्षभी उस खड्गके प्रहारसे प्राणरहित न होकर फिर सावधानहो उठा और एक काले लोहेसे बनी हुई गदाको ग्रहण करकै दूसरीवार अंगदजीकी ओर झपटा ॥ १३ ॥ महाबलशाली प्रजंघभी यूपाक्षके साथ गदा हाथमें ले वालितनय अंगदजीके सन्मुख दौड़ा ॥ १४ ॥ उस कालमें कपिश्रेष्ठ वालिकुमार अंगदजी, इन्द्र और अग्निके बीचमें टिके हुए पूर्ण चंद्रमाकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ १५ ॥ मैन्द और द्विविद नामक यह दो वीर वानर अंगदके पार्श्वरक्षक थे यह दोनों परस्पर एक दूसरेका बल देखनेंकी इच्छासे अंगदजीके निकट खड़े हुए ॥ १६ ॥ इस ओर खड्ग बाण और गदाधारी महाकाय महाबलवान निशाचरगण क्रोधमें भर अत्यन्त सावधानतासे उस वानरोंकी सैनाके सन्मुख गमन करतेहुए ॥ १७ ॥ उस कालमें परस्पर समर करते हुए मैन्द द्विविद और अंगद इन तीन वानरश्रेष्ठोंके साथ प्रजंघ यूपाक्ष और शोणिताक्ष इन तीन राक्षसश्रेष्ठोंका बड़ाभारी रोमहर्षणकारी संग्राम होनें लगा ॥ १८ ॥ वानरोंने बड़े २ वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये परन्तु राक्षस वीर महाबलवान् प्रजंघने उन वृक्षोंको खंड २ कर डाला ॥ १९ ॥ कपि श्रेष्ठ रथ, घोड़े, वृक्ष लेकर राक्षसोंपर चलाये पर्वतोंके शृङ्ग जो कुछ भी पातेथे वहां चलातेथें परन्तु महाबलवान् यूपाक्षने बाण चलाय उन सबको टुकड़े २ कर डाला ॥ २० ॥ इसके उपरान्त वीर द्विविद और मैन्दने वृक्षोंको उखाड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाया इन सबको वीर्यवान् प्रतापशाली शोणिताक्षनें अधबीचमें ही तोड़डाला ॥ २१ ॥ इसी सम-यमें वीरश्रेष्ठ प्रजंघ परम मर्मभेदी विपुल खड्ग धारण करकै अति वेगसे अंगदजीकी ओर धाया ॥२२॥ तब विपुल बलशाली वानरेन्द्र वालिकुमार अंगदजीनें इस राक्षसको निकट आया हुआ देखकर एक अश्वकर्णवृक्ष

ले बड़े वेगसे उसके मारा ॥२३॥ और उस राक्षसके खड्गयुक्त हाथमें एक मूकाभी अंगदजीने माराकि उसके चोटसे उस निशाचरके हाथसे खड्ग गिर पड़ा ॥ २४ ॥ उस मूशलकी समान खड्गको पृथ्वीमें गिराहुआ देखकर महावीर प्रजंघनें वज्रकी समान मूका बांधकर अंगदजी पर उठाया॥२५॥ और महावीर्यवान वानरश्रेष्ठ अंगगजीके माथेमें वह मूका मारा उस मूकेके लगनेंसे अंगदजी एक मुहूर्तभरतक चलायमान रहे ॥ २६ ॥ परन्तु प्रतापवान तेजस्वी वालिकुमार अंगदजीने भी फिर शीघ्र चेतना पाय एक मूका मारकर प्रजंघके धड़से शिरको अलग करदिया ॥ २७ ॥ अपने चचा प्रचंडको संग्राममें मराहुआ देखकर यूपाक्ष आंखोंमें आंसू भर धनुष बाण छोड़ खड्ग धारण कर रथसे उतर पड़ा ॥ २८ ॥ परन्तु महा बलवान वीर द्विविदनें इस राक्षसकों आताहुआ देखकर क्रोधसहित इसकी छातीमें एक शिला मारी और अत्यन्तबलसे इस राक्षसको पकड़ लिया ॥ २९ ॥ अपने भाईको पकड़ा हुआ देखकर महातेजस्वी महा बलवान शोणिताक्षनें द्विविदवीरकी छातीमें एक गदा मारी ॥ ३० ॥ उस अत्यन्त दारुण प्रहारसे वानरवीर द्विविद चलायमान होगया परन्तु थोड़ीही देरमें स्थिरहो उस राक्षसकी दूसरी वार उठी गदाको देख इस वीरने छीन लिया ॥ ३१ ॥ इसी अवसरमें मैन्द अपनें भ्राताकी सहायता करनेंके लिये द्विविदके निकट आय पहुंचा और शोणिताक्ष यूपाक्ष नाम इन दोनों राक्षसोंसे यह दोनों वानरश्रेष्ठ मल्लयुद्ध करनें लगे परस्पर एक दूसरेको खेचते चाखते झटका झोरी करते कठोर युद्धकरने लगे ॥३२॥ तब द्विविदनें अपने मुखसे नखोंसे शोणिताक्षका मुख चीर फाड़ डाला और वकोट लिया और पकड़कर अत्यन्त बलसे पृथ्वीमें दवायकर पीस डाला ॥३३॥ तब वानरश्रेष्ठ वीर्यवान् मैन्दने अत्यन्त क्रोधितहो दोनों बांहोंसे यूपाक्षको उठाय पृथ्वीपर पटक दिया कि जिस्से यह राक्षस अत्यन्त पीड़ित और निहत होकर पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ ३४ ॥ मारनेंसे बची हुई राक्षसोंकी सैना राक्षसवीरोंको संग्राममें मृतक देख अत्यन्त दुःखी हुई और अति शीघ्रतासे वहां गई जहां कुम्भकर्णका पुत्र कुंभ खड़ाथा वहां जाकर इस सैनानें यह अशुभ संवाद कुंभसे निवेदन किया ॥ ३५ ॥ कुंभनेंभी उस समीप भागकर आई हुई सैनाको अनेक प्रकारसे समझाया बुझाया, अति

श्रेष्ठ महावीर्यवान् वानरोंसे ॥ ३६ ॥ महावीर राक्षसोंकी सैनाको मराहुआ देखकर महातेजस्वी कुंभनें संग्राममें अत्यन्त दुष्कर कर्म किया ॥ ३७ ॥ वह धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ कुंभ सावधानमनसे धनुष धारणकर विषधर सर्पोंकी समान फुंकारतेहुए देहविदारी बाण छोड़नें लगा ॥ ३८ ॥ उस कालमें कुंभका बाणसहित श्रेष्ठ धनुष, बिजली ऐरावतके सहित दूसरे इन्द्रधनुषकी समान शोभायमान होंनें लगा ॥ ३९ ॥ उस वीर कुंभनें सुवर्णकी फोंकवाले पत्रशोभित बाणोंको कानतक खेंचकर उनसे द्विविदको मारा ॥ ४० ॥ पर्वतके शृङ्गकी समान वानरोंमें श्रेष्ठ द्विविद उन बाणोंके लगनेंसे अत्यन्त घायलहो मुंहबाय और दोंनों पैर फैलाय विकलहो पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४१॥ मैन्दनें अपनें भ्राता द्विविदको उस महासंग्राममें व्याकुल होते देख एक बड़ी भारी शिला ग्रहण कर कुंभके ऊपर दौड़ा ॥ ४२ ॥ महाबलवान मैन्दनें राक्षसके ऊपर वह शिला चलाई परन्तु महातेजस्वी कुंभनें हँसते २ पांच बाणोंसे उस शिलाको काट डाला ॥ ४३ ॥ और विषधर सर्पकी समान एक और सुमुख बाण धनुषपर चढ़ायकर द्विविदके बड़े भाई मैन्दकी छातीमें कुंभनें मारा ॥४४॥ कुंभका चलाया हुआ वह बाण वानर यूथपति मैन्दके मर्मस्थानमें लगाकि जिस्से वह मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥४५॥ तब वानरवीर अंगदजी महाबलवान अपने दो मामा द्विविद और मैन्दको पीड़ित देखकर धनुष धारी कुंभके सन्मुख धाये ॥ ४६ ॥ महावत जिस प्रकार अंकुशसे हाथीको मारताहै, वैसेही कुंभनें अंगदजीके ऊपर कालेलोहेके बने प्रथम पांच बाण, और तिसके पीछे तीन बाण चलाये ॥४७ ॥ इस प्रकारसे महावीर्यवान कुंभ अंगदजीके ऊपर औरभी बहुत सारे अस्त्र शस्त्र चलाय उनको बींधनें लगा ॥ ४८ ॥ परन्तु उस सुवर्ण भूषित तीखे रुधिरसे सने हुए अंकुठधारवाले बाणोंके अंगोंमें लगनें परभी अंगदजी कंपायमान नहीं हुए ॥ ४९ ॥ और उस निशाचरके मस्तकपर शिला और वृक्षोंकी वर्षा करनें लगे, परन्तु वह सब शिला वृक्ष बारंबार काट डाले गये ॥ ५० ॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें श्रीमान् वालिके पुत्र अंगदजीके चलाये सब शिला वृक्ष काट डाले, इसके उपरान्त कुंभनें उन वानरयूथपको आता हुआ देखकर ॥ ५१ ॥ अंगदजीकी भौंहके बीचमें दो बाण

मारे; जिस प्रकार उल्कासे लोग हाथीको मारतेहैं; उन बाणोंके लगनेंसे ऐसा रुधिर वहनें लगा कि अंगदजीके नेत्र उस रुधिरसे ढकगये ॥ ५२ ॥ वालिकुमार अंगदजीनें उस समय एक हाथसे रुधिरसे गीले नेत्रोंको ढका व दूसरे हाथसे एक बड़ाभारी शालका वृक्ष जोकि निकटही था ले लिया ॥ ५३ ॥ उस पेड़को छातीसे दबाय एक हाथसे कुछेकनवाय उसके पत्ते व छोटीर डालियें तोड डाली और महासंग्राममें॥५४॥ मन्दर पर्वतके सदृश और इन्द्रध्वजकी समान उस वृक्षको सब राक्षसोंके सामनें अत्यन्त वेगसे कुंभके ऊपर चलाया ॥ ५५ ॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभनें सात देहको भेदनें वाले तीखे बाणोंसे अंगदके भेजे उस वृक्षको काटडाला व और एक बाण अतिशीघ्रतासे अंगदजीकी छातीमें मारा अंगदजीभी उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित और मोहित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ ५६ ॥ समुद्रके जलमें डुबेहुएकी समान अंगदजीको उस महारणमें व्याकुल होकर मूर्छित हुआ देख वानरश्रेष्ठोंनें यह वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीके निकट जायकर निवेदन किया ॥ ५७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें महासंग्राममें वालिके पुत्र महाबलवान अंगदजीको संग्राममें व्याकुल हुआ सुनकर जाम्बवान इत्यादि मुख्य२ वानरोंको अंगदजीकी सहाय करनेंकी आज्ञादी ॥ ५८ ॥ यह वानर शार्दूल गण श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाको सुनकर क्रोधितहो धनुष उठाये कुंभकी ओर दौड़े ॥ ५९ ॥ इन सबके हाथोंमें वृक्ष और पर्वतथे; क्रोधसे इन सबके नेत्र लाल होरहेथे यह सब अंगदजीके जीवनकी रक्षा करनेंके लिये आगे बढ़े ॥ ६० ॥ जाम्बवान् सुषेण, और वानर वेगदर्शी यह तीनों महा क्रोधकर कुंभके सन्मुख धावमान हुए ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार पत्थरोंके टुकड़ोंसे जलके सोतेको रोक दिया जाताहै वैसेही कुंभनें उन महाबलवान वानरश्रेष्ठोंको आता हुआ देखकर बाणोंसे उनकी गतिको रोक दिया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार महासमुद्रका जल वेलाभूमिको नहीं लांघ सकता वैसेही वह महाबलवान वानरश्रेष्ठभी उसके बाणोंको तोड़-कर आगे बढ़नेंमें समर्थ न हुए ॥ ६३ ॥ वानरश्रेष्ठ उन वानरोंको संग्राममें बाणोंकी वर्षासे मर्दित देख अपने भतीजे अंगदजीको पीछे छोड़ वानरराज सुग्रीवजी ॥ ६४ ॥ कुंभकर्णके पुत्र कुंभ पर झपटे जिस प्रकार वेगवान् केसरी पर्वतके शृङ्गोंपर चरते हुए हाथी

पर सिंह दौड़ताहै ॥ ६५ ॥ वह महाकपि सुग्रीवजी अश्व कर्णादि अनेक प्रकारके वृक्ष उखाड़ २ कर कुंभपर चलाने लगे ॥ ६६ ॥ परन्तु कुंभ-कर्णके पुत्र कुंभनें आकाशको छालेनेवाली दुर्द्धर्ष वृक्ष वृष्टिको तीखे बाणोंके समूहसे अति शीघ्र खंड २ कर डाला ॥ ६७ ॥ वह काटे हुए दुर्द्धर्ष सब वृक्ष घोर शतघ्नियोंकी समान दिखाई देने लगे, बाणोंकी वर्षाको वीर्यवान कुंभ करकै छिन्न भिन्न देख वानरोंके स्वामी श्रीमान् महा सत्व सम्पन्न सुग्रीवजी कुछभी व्यथित न हुए ॥ ६८ ॥ वानरराज राक्ष-सके बाणसे विंधकर अति सरलतासे उस दारुण आघातको सहलेते हुए उन सुग्रीवजीनें इसके उपरान्त कुंभके हाथसे बल पूर्वक इन्द्रके धनुषकी तुल्य ॥ ६९ ॥ उसका धनुष छीन तोड़ डाला वानरराज सुग्रीवजी ऐसा दुष्कर कर्म करकै छलांग मार ॥ ७० ॥ कोपकियेहुए दांत टूटेहुए हाथीकी समान खड़ेहुए कुंभसे जायकर बोले । हे निकुंभके बड़े भाई कुंभ ! तुम्हारे बाणोंका वेग वीर्य अति अद्भुतहै, तुममें विनय और प्रताप रावणकी नांईहैं; तुम्हारा विक्रम, बल, प्रह्लाद, इन्द्र कुबेर, और वरुणकी समान है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तुम सब प्रकारसे अपने पिता कुंभकर्णके अनुरूप पुत्रहो हे महाबाहो शत्रुदमनकारी जब तुम अकेले शूल हाथमें लेकर खड़े हो जाओ ॥ ७३ ॥ तब देवता लोगभी भयभीतहो तुम्हारे सन्मुख न आय सकेंगे; कि जिस प्रकारसे मनकी पीड़ा इन्द्रियोंके जीतनेंवाले पुरुषके सन्मुख नहीं खड़ी हो सकती [अर्थात् उसको पीड़ा नहीं देसकती] अच्छा जो हुआ सो हुआ आज तुम इस महासंग्राममें अपना विक्रम प्रकाश करो और हमारा विक्रम देखो ॥ ७४ ॥ तुम्हारे ताऊ रावणनें तो ब्रह्माजीके बरदानके प्रभावसेही देवता और दानव लोगोंको जीताथा, परन्तु कुंभकर्णनें अपनें वीर्यके प्रभावसे सुर असुर लोगोंको पराजित कियाथा ॥ ७५ ॥ तुम प्रतापमें रावणकी समान और धनुषविद्यामें इन्द्र-जीतकी तुल्य हो, इसलिये अब राक्षसोंके बीचमें एक तुमही हमको बल वीर्यमें श्रेष्ठ जान पड़तेहो ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार शत्रु लोगोंके साथ शम्बरा सुरका संग्राम हुआ था, वैसेही तुम्हारे साथ आज हमारा कठोर संग्राम होगा; समस्त प्राणी इस भयंकर समरको अपनी आंखोंसे देखेंगे ॥ ७७ ॥ तुमनें असाधारण कर्म कियाहै; तुमनें अपने अस्त्रकी चतुरताभी बाणों

को चलाय कर दिखाईहै, कि इन भीमविक्रमकारी जाम्बवान् आदि वानरोंको बाणोंसे रोक दियाहै ॥ ७८ ॥ तुम अकेले इन बहुत सारे वानरोंके साथ युद्ध करकै थक गयेहो; अतएव इस समय बल प्रकाश करकै तुम्हारे वध करनेंपर लोग निन्दा करैंगे इसी भयसे हम तुमको नहीं मार डालते हैं. एक क्षणभर विश्राम करकै तुम हमारा पराक्रम देखो ॥ ७९ ॥ सुग्रीवजीके ऐसे सारवान् सन्मानयुक्त वचनोंसे अग्निमें आहुति लगनेंके समान कुंभका तेज और भी बढ़ा ॥८०॥ इसके उपरान्त वीर्यवान कुंभनें दोनों बाहोंसे सुग्रीवजीको पकड़ लिया, वह दोनों जने उस समय मदचुआते हाथीकी समान वारंवार लंबे २ श्वास लेनें लगे ॥ ८१ ॥ परस्पर एक दूसरेका शरीर गांठनें लगे, दोनोंही एक दूसरेको खेंचतेथे अत्यन्त जोरसे लड़नेंकें कारण दोनोहींके मुखसे मारे परिश्रमके धुवें सहित अग्निकी शिखा निकल रहीथी ॥ ८२ ॥ दोनों वीरोंके चरणोंकी धमकसे पृथ्वी नीचेको धसनेंलगीं समुद्रमें बड़ी तरंगें उठनें लगी और समुद्र कंपायमानभी हुआ ॥ ८३ ॥ तिसके उपरान्त सुग्रीवजीनें कुंभको पकड़कर मानों समुद्रकी तली दिखलानेंके लियेही उसको अतिवेगसे लवणसमुद्रमें झोक दिया ॥८४॥ जब कुंभ समुद्रमें झोकागया तब समुद्रके जलकी राशि विन्ध्या और मन्दराचल पर्वतकी समान ऊंचा उठकर चारों ओर उफलाय उठा ॥ ८५ ॥ कुंभ एकक्षणभरके पीछे ही समुद्रसे निकलकर सुग्रीवजीके निकट आया और क्रोधमें भरकर उनकी छातीमें एक वज्रकी समान मूका मारा॥८६॥ उस भयंकर आघातसे सुग्रीवजीके शरीरकी खाल फट गई, अतिवेगसे रुधिरकी धारा वहनें लगी और उस महावेगसे चले हुए मूकेनें सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियें तोड़ डालीं ॥ ८७ ॥ जिस प्रकार वज्रके चलानेसे सुमेरु पर्वतसें अग्नि निकलतीथी वैसेही उस मूकेके लगनेंसे सुग्रीवजीकी छातीकी हड्डियोंमेंसे तेज निकलनें लगा ॥ ८८ ॥ महा बलशाली वीर्यवान वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीनें कुंभकरकै इस प्रकारसे चोट खाय वज्रकी समान महाबलसे मूंका बांधा ॥ ८९ ॥ सहस्रकिरणोंसे समुज्वल रवि मंडलकी समान वह घूंसा कुंभकी छातीमें मारा ॥ ९० ॥ तब उस प्रहारसे कुंभ अत्यन्त ताड़ित और विह्वल होकर लपटहीन अग्निके समान पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ९१ ॥ और वह निशाचर मूकेसे मारा

जायकर आकाशसे अपनें आपसे गिरेहुए मंगल ग्रहकी समान गिरकर शोभायमान हुआ ॥ ९२ ॥ मूकेके प्रहारसे कुंभकी छाती टूट गई और गिरे हुए कुंभकारूप महादेवजीके मारनेंसे गिरे हुए सूर्यकी समान शोभित हुआ ॥ ९३ ॥

तस्मिन्हतेभीमपराक्रमेणप्लवंगमानामृषभेण युद्धे ॥ महीसशैलासवनाचचालभयंचरक्षांस्यधिकंविवेश ॥९४॥

इस प्रकार भयंकर पराक्रमकारी वानरराज करकै रणभूमिमें जब कुंभ मारा गया, तब समस्त वन और पर्वतोंके साथ पृथ्वी चलायमान होगई व निशाचर गण औरभी अधिक भीत हुए ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्ध कांडे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमःसर्गः॥

निकुंभोभ्रातरंदृष्ट्वासुग्रीवेणनिपातितम् ॥ प्रदहन्निवकोपेनवानरेंद्रमुदैक्षत ॥ १ ॥

वानरराज सुग्रीवजीके हाथसे अपने भ्राता कुंभको निहत देखकर महावीर निकुंभ क्रोधसे लाल २ नेत्रकर जलाताही हुआसा मानों सुग्रीवजीकी ओर देखने लगा ॥ १ ॥ इसके उपरान्त उस वीरने काले लोहेका बना हुआ पांच अंगुलके प्रमाणवाला बन्धोंसें बँधा ज्वाला मालासे शोभित पर्वतके शिखरकी समान एक परिघ ग्रहण किया ॥ २ ॥ सुवर्णके बन्धनोंसे बँधा हुआ हीरे मणियोंसे जड़ा देखनेंमें यमराजके दंडकी समान राक्षस लोगोंके भयका नाश करनेंवाला ॥ ३ ॥ भयंकर विक्रमकारी निकुंभ इन्द्र ध्वजाकी समान ऐसा भयंकर परिघ घुमाय २ विकटाकार मुखसे वारंवार सिंहनाद करनेंलगा ॥ ४ ॥ वह राक्षसवीर छातीमें निष्क भूषण पहरेथा; बांहोंमें बाजू पहरे कांनोंमें विचित्र कुंडल धारण किये और गलेमें हार डाले हुएथा ॥५॥ निकुंभ इन समस्त गहनोंके पहरनेंसे और परिघ हाथमें लेनेंसे ऐसा शोभायमान हुआ जैसे विजलीकी कड़क और इन्द्र धनुसे युक्त मेघ शोभायमान होताहै ॥ ६ ॥ शब्दायमान धुर्ये

सहित अग्निकी समान उस परिघके अग्रभागसे महात्मा महाबलवान निकुंभकी आवह, प्रवह, आदि सात पवनकी गांठें खुलगई ॥७॥ यह वीर निकुंभ जब परिघको घुमायरहाथा तब ऐसा शोभायमान हुआ मानों गन्धर्व लोगोंके सहित उत्तम भवन युक्त गंधर्वनगरी सुरगृहयुक्त अमरावती, तारागण नक्षत्र चंद्र और दूसरे समस्त महाग्रहोंके सहित आकाश मंडलही घूमरहाहै ॥ ८ ॥ जो भूषणकि परिघमें शोभित हो रहेथे, उन सबकी प्रभा ऐसी बढ़ी कि क्रोध रूप काठसे दीप्तिमान निकुंभ रूप अग्नि प्रलयकालके अग्निकी समान प्रज्वलितहो उठी उस समय राक्षस अथवा वानरोंमेंसे कोईभी भयके मारे अस्त्र कोईभी चलानेंको समर्थ नहीं हुए परन्तु बलशाली हनुमानजी छातीको फैलायकर उसके आगे गये॥९॥१०॥ परिघकी समान बाहु वाले बलवान वीर निकुंभनें उस सूर्यकी समान प्रभावाले परिघको हनुमानजीकी छातीमें मारा ॥ ११ ॥ हनुमाजीकी वज्रकी समान पुष्ट छातीमें लगकर वह शूल शत खंड होगया; और शत २ उल्काकीनांई समस्त आकाशमें बिथरा गया॥१२॥ भूतलमें जिस प्रकार पर्वत अचल रहताहै वैसेही महावीर हनुमानजी परिघके लगनें पर अचल और अटलभावसे खड़े रहे ॥ १३ ॥ परन्तु महा कपि बलवान वानरश्रेष्ठ हनुमानजीनें निकुंभका मूका सहन कर अति बलसे मूका बांधकर ॥ १४ ॥ महा वीर्यवान महातेजस्वी निकुंभकी छातीमें यह घूंसा उठायकर पवनकी समान वेगवान विक्रमशाली हनुमानजीनें मारा ॥ १५ ॥ उस दारुण घूंसेके लगनेंसे निकुंभका बख्तर चर्म फूट गया और सब अंगोंसे रुधिरके सोते निकलनें लगे मेघमालामें जिस प्रकार सौदामिनी [बिजली] मिलजातीहै वैसेही अकस्मात् एक ज्योति निकलकर राक्षसकी छातीमें मिलगई * ॥ १६ ॥ निकुम्भ इस

* किसी ग्रंथमें इस सर्गके १६ संख्याके श्लोकमें "तत्र पुस्फोर चर्मास्य" के बदले "तत्र पुस्फोर वर्मास्य" यह पाठ लिखागयाहै; इस कारण बहुत अनुवाद करनेंवालोंनें वहांका कवच टूट गया ऐसा अर्थ कियाहै, हमारे विचारमें वर्मके स्थलमें चर्मपदका उल्लेख रहनेंसे हनुमानजीके पराक्रममें गौरवके अतिरिक्त कुछ लघुता नहीं प्रकाश होगी इसलिये और ग्रंथोंका पाठ युक्तियुक्त देखकर हमनें चर्मपदकाही प्रयोग किया ॥ प्रमाणके लिये वह श्लोक नीचे लिखतेहैं "तत्र पुस्फोर चर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम् । मुष्टिना तेन संजज्ञे मेघे विद्युदिवोत्थिता ॥ १ ॥

प्रकारसे चलायमान तौ हुआ परन्तु क्षणभरमेंही सावधान होकर उसनें महाबलवान हनुमानजीको पकड़ा ॥ १७ ॥ जिस समय निकुम्भ महावीर हनुमानजीको उठाय आकाश मार्गसे लंकाकी ओर जानें लगा, तब राक्षस लोग युद्धके इस वृत्तान्तको देखकर हर्षित मनसे कुलाहल करनें लगे ॥ १८ ॥ उस समय महावीर हनुमानजी अपनेको राक्षसके हाथमें पड़ा हुआ देखकर अत्यन्तही लज्जित हुए और उन्होंनें उस राक्षसकी छातीमें वज्रकी समान एक घूंसा मारा ॥ १९ ॥ हनुमानजी उसी समय राक्षसके हाथसे अपनेंको छुटाय कूदकर पृथ्वीपर खड़े होगये और निकुंभको पकड़कर उन्होंनें शीघ्रही पृथ्वीपर पटक दिया ॥ २० ॥ वह वेगवान वीर हनुमानजी क्रोधमें भरकर निकुंभको पृथ्वीपर पटक वारंवार पीसकर देदे मारनें लगे और आपभी कूदकर उसकी छातीपर चढ बैठे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त अपनी दोनों बाहोंसे पकडकर उसका शिर मरोर दिया, और उस भयंकर शब्द करतेहुएका शिर उखाड़कर फेंक दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार जब पवनकुमार हनुमानजीसे संग्राममें शब्द करता हुआ निकुंभ मारा गया तब अत्यन्त क्रोध पूर्ण श्रीरामचंद्रजीका और राक्षसोंमें श्रेष्ठ खरके पुत्र मकराक्षका युद्ध आरंभ हुआ ॥ २३ ॥

व्यपेतेतुजीवेनिकुंभस्यहृष्टाविनेदुःप्लवंगा
दिशःसस्वनुश्च ॥ चचालेवचोर्वीपपातेव
साद्यौर्बलंराक्षसानांभयंचाविवेश ॥ २४ ॥

निकंभके मारे जानें पर वानर लोगोंकी आनंद पूर्ण सिंहनादसे दशों दिशा शब्दाय मान, पृथ्वी चलाय मान और आकाश मानों पृथ्वीपर गिर पड़ा । निकुंभको मरा हुआ देखकर वानर लोगोंका भयंकर शब्द सुनकर राक्षसोंकी सैनामें अत्यन्त भयका संचार हुआ ॥ २४ ॥ इ०श्रीम०वा० आ०यु०भाषानुवादे सप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥

निकुंभंनिहतंदृष्ट्वाकुंभंचविनिपातितम् ॥ राव
णःपरमामर्षिप्रजज्वालानलोयथा ॥ १ ॥

इसके उपरान्त लंकापति दशानन रावण निकुंभ और कुंभके मरनेंकी वार्ता सुनकर अत्यंत क्रोधसे अग्निकी समान प्रज्वलित होगया ॥ १ ॥ राक्षस राज रावण,—क्रोध और शोकसे व्याकुल होकर विशाल नेत्रवाले खरके पुत्र मकराक्षसे बोला ॥ २ ॥ वत्स ! हम तुमको आज्ञा देतेहैं, तुम बड़ी भारी सैनाको साथ लेकर संग्रामभूमिमें जाय वानरोंके सहित उन रामचंद्र और लक्ष्मणको मार डालो ॥ ३ ॥ रावणके वचन सुनकर अपने को शूर माननेवाले बलशाली ढीठ खरके पुत्र राक्षस मकराक्षनें "बहुत अच्छा" कहकर रावणके वचनको स्वीकार किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह रावणको प्रणाम कर व उसकी प्रदक्षिणा कर रावणकी आज्ञानुसार उजले वर्णके गृहोंसे निकला ॥ ५ ॥ तब खरके पुत्र मकराक्षनें समीप ही खड़े हुए सैनाके नायकसे कहाकि तुम जलदीसे रथ तैयार कराओ और सब सैनाकोभी सजालाओ ॥ ६ ॥ व सैनाध्यक्षनें मकराक्षकी यह आज्ञापाय उसका रथ व सब सैनाको वहां सजाकर उपस्थित किया ॥ ७ ॥ निशाचर मकराक्ष रथ की प्रदक्षिणा करके शीघ्रही उसपर सवार हुआ और सारथिसे कहनें लगा सूत ! शीघ्रतासे रथको चलाओ ॥ ८ ॥ उसके उपरान्त मकराक्ष उन सब राक्षसोंको पुकार कर कहता हुआ" हे निशाचर गण! तुम हमारे आगे रहकर वानरोंसे युद्ध करना ॥ ९ ॥ और हमको महात्मा राक्षसोंके स्वामी रावणसे संग्राममें उन राम लक्ष्मण दोनोंके मारनेंको आज्ञा मिलीहै" ॥ १० ॥ इसलियें हेराक्षसगण आज हम उत्तम बाणोंसे राम लक्ष्मण सुग्रीव व और दूसरे वानरोंकाभी प्राण संहार करेंगे ॥ ११ ॥ जिस प्रकार अग्नि सूखे हुए काठकों जलाता है, वैसेही हमभी आज शूल चलायकर बड़ीभारी वानरोंकी सैनाको भस्म कर देंगे ॥ १२ ॥ तब वीरवर मकराक्षके वचनोंके अनुसार बलवान राक्षसगण युद्धके लिये तैयार हुए उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्र थे ॥ १३ ॥ वह राक्षस क्रूर स्वभाव पीले २ नेत्र वाले कामरूपी और भयंकरदर्शनथे उनके बाल बिखरे हुएथे आकार भयंकर था यह सब राक्षस मतवाले हाथीकी समान बड़ा भारी शब्द करनें लगे ॥१४॥ ऐसे बडे २ शरीरवाले राक्षस महावीर गण मकराक्षको घेरकर चलनें लगे उनके पैर धरनेकी धमकसे पृथ्वी कंपायमान होने लगी॥१५॥

उस समय भेरी शंख हजारों नगाड़ोंका और वीर लोगोंकी ताल देनेंका और सिंहनाद करनेंका बड़ाभारी शब्द हुआ॥१६॥रणभूमिमें जानेके समय सहसा मकराक्षके सारथीके हाथसे कोड़ा गिरपड़ा और अचानक रथध्वजभी पृथ्वीपर गिरा ॥ १७ ॥ मकराक्षके रथमें जुते हुए दीन दशाको प्राप्त हुए घोड़े विक्रमहीन हो व्याकुल पवनकी चालसे आंखोंसे आंसू गिराते हुए गमन करनें लगे ॥ १८ ॥ उस दुर्मति घोर राक्षस मकराक्षके युद्धमें जानेके समय धूलसे युक्त दारुण कठोर पवन चलनेलगी ॥ १९ ॥ परन्तु अत्यन्त वीर्यवान वह निशाचर उन दुर्निमित्तोंको देखकर भी उनकी कुछ भी चिन्ता नकरके जिस स्थानमें श्रीराम लक्ष्मणजी विराजमानथे उसी ओरको चला ॥ २० ॥

घनगजमहिषांगतुल्यवर्णाःसमरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ॥ अहमहमितियुद्धकौशलास्तेरजनिचराःपरिबभ्रमुर्मुहुस्ते ॥ २१ ॥

युद्धकी अभिलाषा किये राक्षसोंका आकार मेघ मातंग [हाथी] महिष[भेंस] की तुल्यथा उन राक्षसोंकी देहोंमें गदा खड्ग व और दूसरे अस्त्रोंके चिह्न प्रकाशमानथे वह सबही युद्धविद्यामें पंडितथे पहले हम युद्ध करेंगे पहले हम युद्ध करेंगे समस्त इस उत्साहमें सिंहनाद करते हुए रणभूमिमे विचरनें लगे ॥ २१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥

निर्गतंमकराक्षंतेदृष्ट्वावानरपुंगवाः ॥ आप्लुत्यसहसासर्वेयोद्धुकामाव्यवस्थिताः ॥ १ ॥

वानरश्रेष्ठ गण मकराक्षको युद्धकरनेके लिये निकला हुआ देखकर अति बलसे कूदते फांदते युद्धकी अभिलाषासे तैयार हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त देवता लोगोंके सहित दानव गणोंके समान राक्षसोंके साथ वानरोंका बडाभारी रोम हर्षणकारी युद्ध आरंभ हुआ ॥ २ ॥ उस समय वानर और राक्षसगण वृक्ष शूल गदा परिघादि चलाय २ कर परस्पर एक दूसरेको मारनें लगे॥३॥राक्षसलोग शक्ति खड्ग गदा भाला सांग पटा

भिन्दिपाल और बाणोंसे वानरोंको मारते हुए ॥ ४ ॥ फिर पाश मुद्गरादि श्रेष्ठ २ आयुधोंसें भी उन राक्षसोंने वानरोंको मारा कि जिस्से बहुत सारे वानर शार्दूल मर गये ॥ ५ ॥ खरके पुत्र मकराक्षके बाणोंसे इस प्रकार पीडित हो वानरगण मारे व्याकुल हो भागनें लगे॥६॥रणविजयी राक्षस लोग वानरोंको चारोंओर भागते हुए देखकर गर्वसहित सिंहनाद करनेलगे ॥७॥ जब वानरगण इस प्रकारसें चारोंओरको भागे तब श्रीरामचंद्रजी बाणोंकी वर्षा करके राक्षसोंको रोंकनेलगे ॥ ८ ॥ राक्षसोंको बाणोंसे रुद्ध देखकर राक्षस मकराक्षनें कोपकी अग्निसे प्रज्वलित हो यह कहा ॥ ९ ॥ हेराम! क्षणभर टिककर हमारे साथ द्वन्द्व युद्ध करो हम धनुषसे तीक्ष्ण बाण चलाय तुम्हारे प्राणोंको शरीरसे अलग करेंगे ॥ १० ॥ तुमने जब पहले दंडकारण्यमें हमारे पिताका संहार कियाथा, तबसे तुम्हारे ऊपर हमको क्रोध उपजाथा, आज तुमको आगे खड़े देखकर और अपने कार्यके साधन करनेंमें तैयार निहार हमारा वह क्रोध और भी बढ़ा जाताहै ॥ ११ ॥ रे दुरात्मन्! तुम इसी समय जो हमको उस महावनमें नहीं दीखपड़े इसीलिये हमारे समस्त अंग तबसे बराबर भस्म होरहेहैं ॥ १२ ॥ हे राम! भूंखे सिंहके निकटमें अपने आपहीसे मृगके चले आनेंकी समान आज भाग्यहीसे तुम हमारे देखनेंको आये हो ॥१३॥ जिन शूरवीर लोगोंको तुम पहले समरमें मार चुके हो आज हमारे बाणोंके वेगसे यमराजके भवनमें जायकर तुमभी उन सबके साथमें मिलोगे ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्र! अधिक कहनेका कुछ प्रयोजन नहींहै; हम केवल इतनाही कहतेहैं कि आज सब लोक हमको और तुमको इस संग्रामभूमिमें आयाहुआ देखें ॥ १५ ॥ हे दशरथकुमार! अस्त्र गदा बाहु, अथवा और जिस प्रकारके युद्धमें तुमको विशेष अभ्यास हो आज उसीसे तुम हमारे साथ युद्ध करो ॥ १६ ॥ दशरथनंदन श्रीरामचन्द्रजी मकराक्षके यह वचन सुनकर हँसते २ उस वृथा बकवाद करनेंवाले मकराक्षसे बोले ॥ १७ ॥ हे निशाचर! किस कारणसे बहुत सारी बकवाद करके अपनी बड़ाई कर रहाहै? तू युद्ध न करके केवल वचनोंहीसे जय प्राप्त करनेंके लिये समर्थ नहीं होगा ॥ १८ ॥ हमनें अकेलेही दंडकारण्डमें तुम्हारे पिता खर, त्रिशिरा, दूषण, और उनके संगी चौदह हजार

राक्षसोंका संहार कियाहै ॥ १९ ॥ रे पापी ! आज तेराभी प्राण संहार करा जायगा और तेरा मांस तीक्ष्ण चोंच और तीक्ष्ण पंजोंवाले गिद्ध, शृगाल और कौए खायकर तृप्त हो जाँयगे ॥ २० ॥ " रुधिरार्द्रमुखा हृष्टा रक्तपक्षाण्डजाश्च ये । खेचरा वसुधाराश्च भविष्यन्ति च सर्वतः ॥ २१ ॥ " जो आकाशके चरनेवाले और लाल पंख युक्त हैं वह सब पक्षीभी अपनी चोंचसे तेरा रुधिर पान करके हर्षितचित्तहो पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें घूमेंगे * ॥ २२ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें यह वचन कहे तब महाबलवान् मकराक्षनें समर करनेंके लिये तैयार होकर एकहीवारमें श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर अगणित बाणोंकी वर्षा की ॥ २३ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें अपनी बाण वर्षासे उन समस्त बाणोंको काटडाला, वह सुवर्ण की फोंक लगे, गांसीयुक्त समस्त बाण कटकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २४ ॥ इस प्रकारसे राक्षस खर और नरेन्द्र महाराज दशरथजीके पुत्र उन दोनोंके पुत्र मकराक्ष व श्रीरामचन्द्रजीका परस्पर तेज सहित मिलनें पर दोनोंका घोर युद्ध आरंभ हुआ ॥ २५ ॥ तिस काल उस रणभूमिमें आकाशमें शब्द करते हुए दो मेघोंकी समान दोनोंके धनुषकी टंकार और हाथसे खेचनें का और धनुषसे बाण छोड़नेंका शब्द सुनाई आनेंलगा ॥ २६ ॥ देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, और बड़े २ सर्पगण युद्ध देखनेंके लिये आकाशमें विराजमान हुए ॥ २७ ॥ उस समय दोनोंके शरीर जितनेंही बाणोंसे विंधे वैसेही वैसे दोनोंकी सामर्थ्य बढ़नें लगी, जब एक दूसरेको मारताथा, तब दूसराभी उसका उत्तर देनेंके लिये उसके उसी अंगमें घाव लगाताथा॥२८॥ श्रीरामचन्द्रजीनें जितनें बाण चलाये मकराक्षनें उन सबको काटडाला और राक्षस मकराक्षके छोड़े हुए बाण समूहोंको बाणोंकी वर्षा करके श्रीरामचन्द्रजीनें काट डाला ॥ २९ ॥ दोनों वीरोंके चलायेहुए बाणोंसे समस्त दिशा विदिशा भरगईं, और पृथ्वी आकाश दोनोंमें अंधकार छाय गया ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर मकराक्षका धनुष काटकर अठारह बाण चलायकर उसके सारथिको

---

* यह श्लोक प्राचीन पुस्तकोंमें है यद्यपि टीकाकारोंने एकार्थप्रतिपादक जानकर इस श्लोकको छोड़ दियाहै परन्तु वाल्मीकिजीकी कविताका छोडना उचित नहीं इस कारण यह श्लोक यहांपर लिखागया ॥

बांधा ॥ ३१ ॥ व और बहुतसे बाणोंसे रथको भेदकर उसमेंके जुतेहुए घोड़ोंकाभी संहारकिया तब राक्षस मकराक्ष रथहीन होकर पृथ्वीपर खड़ा रहगया ॥ ३२ ॥ पृथ्वीपर खड़ेहुए उस राक्षस मकराक्षनें सर्व प्राणियोंको भय दिलानेंवाला प्रलयकालकी समान प्रकाशित शूल अपने हाथमें ग्रहणकिया ॥ ३३ ॥ यह शूल राक्षस मकराक्षनें महादेवजीकी तपस्या करके प्राप्त कियाथा, यह भयंकर और अतिदुर्द्धर्ष था, यह अपने तेजसे आकाशमें प्रज्वलितहोरहाथा, देखनेंसे यह शूल दूसरे संहारास्त्रकी समान जान पड़ताथा जिसको देखकर सब देवता भयके मारे आरत हो दशों दिशाओंको भागगये; ऐसा बड़ाभारी प्रज्वलित शूल घुमायकर राक्षसनें क्रोधसहित वह शूल महात्मा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया उस आते हुए खरपुत्र मकराक्षके हाथसे चलायेहुए प्रज्वलित ॥ ३४ ॥ शूलको चार बाणोंसे आकाशमेंही श्रीरामचंद्रजीनें काट डाला । तपायेहुए सुवर्णसे शोभित वह दिव्यशूल श्रीरामचंद्रजीके बाणसे मर्द्दित और अनेक खंड होकर बड़ीभारी उल्काकी समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥ उस समय सरलकर्मकारी श्रीरामचंद्रजी करके उस शूलको कटा हुआ देखकर आकाशमें टिके हुए सब प्राणी " धन्यहो, धन्यहो" ऐसा कहनें लगे ॥ ३६ ॥ निशाचर मकराक्ष शूलको कटा हुआ देख मूका उठाय " खड़े रहो खड़े रहो " ऐसा कहकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ३७ ॥ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनेंभी उस राक्षसको आताहुआ देख मंद २ हँसते हुए धनुषको धारण किया और उस पर अग्नि बाण चढ़ाया ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजीके उस आग्नेयास्त्रसे राक्षस मकराक्षका हृदय फट गया और वह संग्राम भूमिमें गिरकर प्राण छोड़ता हुआ ॥ ३९ ॥ उस समय और सब राक्षस मकराक्षको मृतक देख राम बाणके भयसे अत्यन्त व्याकुलहो लंकाकी ओरको भागे ॥ ४० ॥

दशरथनृपसूनुबाणवेगैरजनिचरंनिहतंख
रात्मजंतम् ॥ प्रददृशुरथदेवताःप्रहृष्टा
गिरिमिववज्रहतंतथाविकीर्णम् ॥ ४१ ॥

इस ओर देवता लोग राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी करके खरके पुत्र निशाचर मकराक्षको मृतक और वज्रसे विदारण हुए पर्वतकी समान पड़े देखकर परम प्रसन्न हुए॥ ४१ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु० भाषानुवादे नवसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः॥

मकराक्षंहतंश्रुत्वारावणःसमितिंजयः॥ रो षेणमहताविष्टोदंतान्कटकटाय्यच॥ १ ॥

महावीर रावण मकराक्षकी मृत्युका समाचार सुनकर अत्यन्त क्रोध-युक्त हुआ और दांतसे दांत पीसकर "कटकट" शब्द करनेंलगा ॥ १ ॥ इसके उपरान्त क्षणभरतक "अब क्या करना उचितहै" यह चिन्ता करके महा क्रोधकर पुत्र इन्द्रजीतको संग्राममें जानेंकी आज्ञा देता हुआ ॥ २ ॥ रावणनें कहा, हेवीर! तुम सब प्रकारसे महाबलवानहो इस-लिये प्रगट होकर अथवा अन्तर्ध्यान होकर दोनों भ्राता राम और लक्ष्म-णको मार डालो ॥ ३ ॥ तुमनें जो रणभूमिमें अनुपमकर्मकारी इन्द्रको जीत लियाहै फिर भला "दो मनुष्योंको" तो देखतेही तुम मार डालोगे इसमें संदेहही क्याहै इन्द्रजीतनें राक्षसोंके स्वामी रावणकी इस प्रकारसे आज्ञा पाय यज्ञभूमिमें जाय अग्निमें यथाविधिसे होम करना आरंभ किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस स्थानमें राक्षसराजका पुत्र मेघनाद यज्ञकार्यमें दीक्षित हुआथा वहांपर कईएक लाल वस्त्र धारण किये हुए राक्षसियें अतिसावधानीसे आयकर इस यज्ञकी सेवा करनें लगीं ॥ ६ ॥ उस यज्ञमें शस्त्रही शरपतके तुल्य बिछरहेथे और उसके पूरा करनेंके लिये बहे-ड़ेकी लकड़ी, लाल वर्णके वस्त्र, और काले लोहेसे बना हुआ स्रुवा लाया गया ॥ ७ ॥ तब इन्द्रजीतनें तोमर स्वरूप शरपत्रोंसे अग्नि प्रज्वलितकी और एक जीते हुए काले छागकी गर्दन पकड़ी ॥ ८ ॥ और उस छागको अग्निमें होम दिया, होम करतेही वह शरपत्रोंपर फैली हुई अग्नि धूम रहित होगई, और उसमें निकली हुई शिखाओंसे विजयकी सूचना देनें वाले चिह्न प्रकाशित हुए ॥ ९ ॥ और तपाये हुए कांचनकी समान अग्निने दाहिनी ओरकी धूम लपटोंके सहित उठकर मेघनादकी दी हुई

आहुति ग्रहणकी ॥ १० ॥ रावणका पुत्र मेघनाद इस प्रकार अग्निको आहुतिदे दे दानव, और राक्षसोंकी तृप्ति करताहुआ व किसीको न दीखनें वाले शुभ लक्षणयुक्त रथपर सवारहुआ ॥ ११ ॥ उस कालमें चार घोड़ोंसे चलाये जाते उत्तम रथमें सवार होकर वह वीर बड़ाभारी धनुष और तीखे बाणसमूह ग्रहण करके परम शोभायमान होनें लगा ॥ १२ ॥ महावीर इन्द्रजीतका देह सुवर्णके वस्त्राभूषणसे शोभायमानथा उसका रथभी सुवर्णसे भूषितथा, उस रथमें मृगोंकी तसवीर बनरहीथी और अर्द्धचंद्रोंसेभी वह भली भांति अलंकृतथा ॥ १३ ॥ सोनेके वलयसे युक्त और प्रदीप्त अग्निकी समान उसका केतुभी वैदूर्यमणिसे सबप्रकार सज-रहाथा ॥ १४ ॥ उस सूर्यकी समान रथ और ब्रह्मास्त्रसे रक्षित होनेंके कारण महाबलवान रावणका पुत्र मेघनाद अत्यन्त अजीत होगया ॥ १५ ॥ समरविजयी इन्द्रजीत इस प्रकारसे अग्निमें होमकरके नगरसे बाहर नि-कला और राक्षसी मंत्रोंसे अन्तर्ध्यान होकर बोला ॥ १६ ॥ मिथ्या वनको निकले हुए राम और लक्ष्मणको संग्राममें मारकर हम रणमें बटोरी हुई जय अपने पिता रावणको देंगे ॥ १७ ॥ आज हम लक्ष्मणके सहित राम-चंद्रका नाशकर पृथ्वीको वानरविहीन और पिताजीको परम प्रसन्न करेंगे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त महावीर इन्द्रजीत रावणकी प्रेरणासे प्रेरित होकर क्रोधसहित युद्धभूमिमें आया, मेघनाद हाथमें तीक्ष्ण अस्त्र धारण करके औरभी अधिक तीक्ष्ण होगया ॥ १९ ॥ इन्द्रजीतने देखा कि वानर लोगोंके बीचमें तीन फणवाले सर्पकीसमान श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी खडेहैं [इनके बन्धनोंमें दो दो तरकस लग रहेथे और मस्तकके साथ तीन २ शिरवाले ज्ञात होतेथे, इस कारण तीन फणवाला सर्प कहा] यह श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वानर लोगोंके बीचमें खड़े रहकर बाणोंकी वर्षा कर रहेथे ॥ २० ॥ इन्द्रजीतनें उनको देखतेही पहचानलिया और मेघ जिसप्रकार जलकी धारा वर्षातेहैं वैसेही मेघनाद धनुषपर बाण चढा-यकर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २१ ॥ आकाशगामी रथपर सवार होकर वह वीर दृष्टिके ओझलहोकर टिका हुआ तीखे बाण समूहसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको वींधताहुआ ॥ २२ ॥ महावीर श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी राक्षसके बाण लगनेंसे धनुष चढायकर दिव्यास्त्रका प्रयोग

करते हुए ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके बाणोंसे आकाश मंडल छाय गया परन्तु वह समस्त बाण इन्द्रजीतके शरीरको स्पर्श नहीं करसके ॥ २४ ॥ राक्षसवीर इन्द्रजीतनें मायाके बलसे धुवें सहित अंधकार विस्तार करके दशों दिशाओंको छाय लिया, और आप उस अंधकार मंडलसे ढका रहकर किसी दूसरेकी दृष्टिमें न आनेंयोग्य होगया ॥२५॥ उस कालमें उसके रथका घर्घर शब्द धनुषकी टंकार घोडोंके पैर धरनेंका शब्द कुछभी सुनाई नहीं आताथा और मेघनाद स्वयम्भी भली भांतिसे लोप होगया ॥ २६ ॥ उस निबिड़ अंधकारमें सब दिशा विदिशा अंधकारसे छाय गई, महाबाहु इन्द्रजीत पत्थर वर्षानेंकी समान अद्भुत नाराच और बाणोंकी वर्षा आरंभ करता हुआ ॥ २७ ॥ मेघनाद क्रोधमें भरकर सूर्यकी समान प्रदीप्त बाण समूहसे रणभूमिमें श्रीरामचंद्रजीको मारनें लगा ॥ २८ ॥ पर्वतपर जिसप्रकारसे वृष्टि होती है वैसेही वह दोनों नर शार्दूल श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी मेघनादके बाणोंसे ताडित होकर घोररूप सुवर्णकी फोंक लगे बाणसमूह मेघनादके ऊपर चलानें लगे ॥ २९ ॥ वह समस्त कंकबाण आकाशमें मेघनादके समीप जायकर उसकी देहको भेद रुधिरसे भीग पृथ्वीपर गिरनेंलगे ॥ ३० ॥ इन्द्रजीतके बाण चलानेंसे श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीकी दीप्ति बढ उठी कि उन्होंनेभी राक्षसके चलायेहुए समस्त बाणोंको भाले चलाकर व्यर्थ करदिया ॥ ३१ ॥ यद्यपि श्रीराम लक्ष्मणजी इन्द्रजीतको देख नहीं पातेथे परन्तु जिस ओरसे उसके बाण चले आतेथे उसही ओरको यह दोनोंजन तीखे बाण चलानें लगे ॥ ३२ ॥अतिरथ इन्द्रजीतनेंभी सर्व दिशाओंमे रथ चलाते २ तीखे बाण समूहसे उन बाण वर्षाते हुए दोनों राजकुमारोंको मारना आरंभ किया॥ ३३ ॥ उस समय वह वीरश्रेष्ठ दोनों दशरथकुमार सुवर्णकी फोंक लगे मेघनादके बाणोंसे विंधकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंकी समान शोभायमान हुए ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार मेघसे ढके हुए सूर्यकी गति नहीं जानीजायसक्ती है; वैसेही कोईभी इन्द्रजीतकी गति, रूप, धनुष, अथवा बाण कुछभी नहीं देख सकता ॥ ३५ ॥ उस युद्धमें सैकड़ों हजारों वानर घायल हुए और मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३६ ॥

इसी अवसरमें क्रोधित होकर रामचंद्रजीके छोटे भ्राता लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोले कि जो आज्ञाहो तौ हम राक्षसोंके कुलको निर्मूल करनेंके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ें; हे महाबलवान! हमारी यही इच्छाहै कि इस लोकको राक्षसशून्यकरदें ॥३७॥ यह वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोलेकि एक राक्षसके लिये पृथ्वीके समस्त राक्षसोंको नहीं मार डालना चाहिये ॥ ३८ ॥ युद्ध न करते हुए छिपेहुए हाथ जोड़कर शरण आये हुए भागे हुए अथवा मतवाले शत्रुका मार डालनाही ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हेमहाभुज! इस कारण आज हम इसके वध करनेंके निमित्तही यत्नवान होकर विषधर सर्पकी समान बाण अति वेगसे छोड़ेंगे ॥ ४० ॥ हेवीर! मायाके बलसे अदृश्य रथ किये यह मायावी राक्षस जो किसी प्रकारसे वानर लोगोंकी दृष्टिमें आजावे तब तौ वानरोंके यूथपही उसको मार डालेंगे ॥ ४१ ॥ अधिक क्या है जो इन्द्रजीत, स्वर्ग लोक, मृत्युलोक, पाताल, अथवा आकाश, चाहे जहां प्रवेशकर छिप जावे तथापि हमारे अस्त्रोंसे यह भस्म और प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ ४२ ॥

इत्येवमुक्त्वावचनंमहार्थंरघुप्रवीरःप्लवगर्ष
भैर्वृतः ॥ वधायरौद्रस्यनृशंसकर्मणस्त
दामहात्मात्वरितंनिरीक्षते ॥ ४३ ॥

महात्मा रघुवीरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी यह महाअर्थयुक्त वचन कहकर वानरोंकी सैनाके संग खड़ेहुए क्रूरकर्मकारी राक्षसका प्राण संहार करनेंके लिये अनेक प्रकारसे उपाय उठानें लगे ॥ ४३ ॥ इ ० श्रीम ० वा० यु ० अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः॥

विज्ञायतुमनस्तस्यराघवस्यमहात्मनः ॥
सनिवृत्याहवात्तस्मात्प्रविवेशपुरंततः॥ १ ॥

महावीर इन्द्रजीत महात्मा श्रीरामचंद्रजीका ऐसा अभिप्राय जानकर उसी समय समरसे निवृत्त होकर लंकापुरीमें चलागया ॥ १ ॥ परन्तु वह

शूर मेघनाद शूर कुंभकर्ण इत्यादि तेजस्वी निशाचरोंके वधको विचार क्रोधसे लाल २ नेत्रकर फिर लंकापुरीसे निकला ॥ २ ॥ पौलस्त्यकुलमें उत्पन्न हुआ देवकंटक महा वीरवान् मेघनाद बहुत सारे राक्षसोंको साथ लेकर लंकाके पश्चिम द्वारसे निकला ॥ ३ ॥ और इन्द्रजीतनें वीर श्रेष्ठ दोनों भाई रामचंद्र और श्रीलक्ष्मणजीको युद्ध करनेंके लिये तैयार देख वैसे उनको अजीत विचार कर मायाका विस्तार किया ॥ ४ ॥ उस समय मायावी निशाचरनें रथके ऊपर मायाकी सीता बनाकर स्थापितकी इन्द्रजीतके साथ बड़ी भारी राक्षसोंकी सैनाथी. इन सीताजीको मार डालनेंकीही मेघनादकी कामना थी ॥ ५ ॥ वह दुर्मति इन्द्रजीत सबको मायासे मोहनेंके लिये उन मायामयी सीताजीका वध करनेंके निमित्त वानर लोगोंके सन्मुख गमन करता हुआ ॥ ६ ॥ इन्द्रजीतको दूसरीवार आया हुआ देखकर रणाभिलाषी वनचर वानरगण अत्यन्त क्रोधकर शिला हाथमें ले कूद २ कर आगे बढ़े ॥ ७ ॥ कपिकुंजर हनुमानजी बड़ाभारी पर्वतका शृङ्ग ग्रहण करकै उस दुर्द्धर्ष मेघनादके सामनें गये ॥ ८ ॥ और उन्होंनें देखाकि इन्द्रजीतके रथपर सीताजी विराजमानहै उनका शरीर उपवास करनेंके क्लेशसे दुर्बल होगयाहै उनके आन्तरमें आनंदका लेशमात्र नहीहै मस्तकपर बड़ीभारी एक वेणी पड़ीहै और वह दीन भावसे बैठी हुईहैं ॥ ९ ॥ वह रामप्यारी जानकीजी केवल एक मलीन वस्त्र पहररहीहैं सुन्दर मुखवाली होंनेपरभी उनके सर्वदेहकी ज्योति धूलिके जालसे ढकगई है ॥ १० ॥ हनुमानजीनें कुछ दिन पहलेही जानकीको देखाथा इस कारण उन्हौंने एक मुहूर्ततक देख भालकरही जान लिया कि यह जनककुमारी जानकी हैं ॥ ११ ॥ दीनभावयुक्त मैलसे शरीरयुक्त जानकीजीको रथमें बैठा हुआ देखकर हनुमानजी अत्यन्त व्यथित हुए और उनका मुख मंडल आंसुओंके गिरनेंसे गीला होगया तब हनुमानजी यह बोले ॥ १२ ॥ इस दुर्वृत्त इन्द्रजीतका क्या अभिप्रायहै हनुमानजी उस समय मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता करकै वानरवीर लोगोंके साथ मेघनादके सन्मुख दौड़े ॥ १३ ॥ राक्षसवीर इन्द्रजीत वानरलोगोंको आते हुए देख क्रोधके वश हो खड्ग निकाल मायाकी सीताजीका शिर काटनेंके लिये तैयार

हुआ ॥ १४ ॥ वह राक्षस वानरलोगोंके सामनेही सीताजीके ऊपर तल-वार चलानेको तैयार हुआ; उसकाल मायाकी सीता "हा राम! हा राम!" कहकर रोनें लगी ॥ १५ ॥ फिर मेघनादसे सीताजीके बाल पकड़े जाते हुए देखकर पवनकुमार हनुमानजी अत्यन्त व्याकुल हुए और दुःखके मारे उनके दोनों नेत्रोंसे आंसू निकलनेंलगे ॥ १६ ॥ श्रीराम-चन्द्रजीकी प्यारी भार्या उन सर्वाङ्ग सुन्दरी जानकीजीकी ऐसी अवस्था देखकर हनुमानजी अतिकैड़े वचनोंसे रावणके पुत्र इन्द्रजीतसे बोले॥१७॥ रे दुरात्मन्! तू जो रघुकुलकी लक्ष्मी जानकीजीके केश पकड़ता है; सो तू अपना नाशही करनेंके लिये ऐसा करताहै? विचार करके देख; परमपूज्य ब्रह्मर्षिवंशमें जन्म ग्रहण करके तुझको राक्षसयोनि धारण करनी हुई है ॥१८॥ तेरी जब कि स्त्रीहत्या करनेंमें ऐसी स्थिर मति हुई है, तब तुझको धिक्कारहै, तू अतिदुर्वृत्त, निर्लज्ज, और अनार्य है! रे पाप-पराक्रम! यदि ऐसा न होता तो ऐसे घृणित कार्यके करनेंमें तेरी ऐसी प्रवृत्ति क्यों होती?॥१९॥ रे निर्दयी! जिनसे गृह छूटगया, राज्य छूटगया, और पीछेसे श्रीरामचन्द्रजीके छुट जानेंसे जो महाकष्ट पाय रहीं हैं, सो इन्होंने तेरा क्या अपराध कियाहै; कि जिस्से तू इनका प्राण संहार करनेंको तैयार हुआहै?॥२०॥ रे वध करनेंके योग्य! जबकि तू हमारे हाथों में पड़ गयाहै तब किसी प्रकारसेभी सीताजीका वध करकै तू बहुत का-लतक जीवन धारण करनेंको समर्थ नहीं होगा ॥ २१ ॥ स्त्रियोंके मारनेंवा-ले जिस स्थानमें गमन करतेंहैं अथवा नरघातक चोर जिस स्थानको कलं-कित करते हैं तू उसी स्थानमें प्राणोंको छोड़कर उन्हीं सब लोकोंको जायगा ॥ २२ ॥ हनुमानजी केवल यही वचन कह आयुधधारी वान-रोंके साथ क्रोधमें भर राक्षसराजके पुत्र इन्द्रजीतके सन्मुख दौड़े ॥ २३ ॥ उस महावीर्यवान वानरोंकी सैनाको आताहुआ देखकर इन्द्रजीतनें महा कोपकर राक्षसोंकी सैनासे उनको रुकवाया ॥ २४ ॥ उस समय महावीर इन्द्रजीत हजार बाण चलाय वानरोंकी सैनाको चलायमान कर वानर श्रेष्ठ हनुमानजीसे यह वचन बोला ॥ २५ ॥ राम, सुग्रीव, अथवा तुम जिस कारणसे इस स्थानमें आयेहो आज हम तुम्हारे सामनेही उन जान-कीजीका वध करेंगे ॥ २६ ॥ अरे वानर! इसको मारकर तिसके पीछे

हम राम, लक्ष्मण, सुग्रीव अनार्य विभीषणके सहित तुझकोभी मार डालेंगे ॥ २७ ॥ रे बंदर! तैंने जो कहाकि "स्त्रीका वध करना कर्त्तव्य नहीं" सो राजनीतिके अनुसार शत्रुओंको जिस २ कार्यके करनेंसे पीड़ा पहुँचे वह कार्य करना उचित है उसके करनेंसे पापनहीं होता ॥२८॥ * भला यह न सही परन्तु पहले रामनें किस प्रकारसे ताड़काको मार डालाथा? उन्हौंनें जिस कारण यह कार्य किया हमभी इसी कारणसे इस रामकी भार्या जनककी बेटी सीताको मारडालेंगे ॥ २९ ॥ इन्द्रजीतनें यह वचन कहतेही तेजधारवाले खड्गसे अपने आप उन रोती हुई मायामयी जानकीजीके ऊपर प्रहार कर किया ॥ ३० ॥ जैसेही मेघनादनें प्रहार कियाकि बड़ी नितम्बवाली प्रियदर्शन वह जानकी यज्ञोपवीतके स्थानसे कटकर छिन्न भिन्न हो पृथ्वीपर गिरी ॥ ३१ ॥ तब इन्द्रजीतनें हनुमानजीसे कहाकि यह देखो? हमने अस्त्रके प्रहारसे रामचन्द्रकी प्यारी वैदेहीको मारडाला ॥ ३२ ॥ फिर जब कि जानकी ही मृतक होगई तब फिर तुमलोगोंको और वृथा परिश्रम करनेका क्या फल है! ॥ ३३ ॥ इन्द्रजीत इस प्रकारसे उन मायामयी सीताजीको खड्गसे मारकर हर्षित अंतःकरणसे अपने रथपर सवार हो घोर शब्दसे सिंहनाद करने लगा ॥ ३४ ॥ वानर लोग निकटही टिककर वज्रसमान कठोर शब्द सुनने लगे और उन्होंनें देखाकि महावीर इन्द्रजीत दुर्गमें प्रवेश करकै विकटाकार मुखसे कठोर हर्षकी ध्वनि कर रहाहै ॥ ३५ ॥

तथातुसीतांविनिहत्यदुर्मतिःप्रहृष्टचेताः
सबभूवरावणिः ॥ तंहृष्टरूपंसमुदीक्ष्यवा
नराविषण्णरूपाःसमभिप्रदुद्रुवुः ॥ ३६ ॥

दुर्मती रावणके पुत्र इन्द्रजीतने जब इस प्रकारसे उसमायाकी सीताका प्राण संहार किया तब वानरलोग उस हर्षित वीरको देखकर शोकाकुल हो चारों ओरको भागनें लगे॥३६॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकाशीतितमः सर्गः ८१॥

---

* अनेक रामायणोंमें २९ संख्याका श्लोक नहीं, हम नहीं जानते कि छापनेवालोंनें इसे क्यों छोड़ दियाहै । "ताडकाया वधं रामः किमर्थं कृतवान् पुरा ॥ तदहं हन्मि रामस्य महिषीं जनकात्मजां ॥ २९ ॥"

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥

श्रुत्वातंभीमनिर्ह्लादंशक्राशनिसमस्वनम् ॥
वीक्षमाणादिशःसर्वादुद्रुवुर्वानराभृशम् ॥ १ ॥

देवराज इन्द्रजीके वज्रकी शब्दकी समान इन्द्रजीतका वह भयंकर सिंहनाद सुनकर वानरलोग चारों ओरको निहारते हुए भागनें लगे ॥१॥ परन्तु पवनकुमार हनुमानजी उनको भयकेमारे शोकाकुल वदन और दीन भावसे भागाहुआ देखकर सवही से अलग २ कहने लगे ॥ २ ॥ हे वानर गण! तुम सब किस कारणसे रणका उत्साह छोडकर व्याकुल मुख किये भागे जाते हो? तुम्हारी यह शूरता कहांगई नामवाले शूर लोगोंको भागना उचित नहीं है इसलिये हम आगे २ चलते हैं और तुम सब हमारे पीछे २ चलो ॥ ३ ॥ बुद्धिमान हनुमानजी करकै इस प्रकार कहे जाकर वानरोंको क्रोध उत्पन्न हुआ और वह सवही उत्साहसहित शिला और वृक्षोंको ग्रहण करने लगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त वह सब वानरश्रेष्ठ हनुमानजीको घेरे हुए गर्जते २ महा समरके सन्मुख चले ॥ ५ ॥ वानर वीर हनुमानजी वानरोंकी सैनासे घेरे जाकर चलतेहुए जिसप्रकार अग्नि अपनी शिखाओंके संगमें शोभायमान होतेहैं वैसेही शोभायमान होकर शत्रुओंकी सैनाको भस्म करनें लगे ॥ ६ ॥ कालान्तक यमराज की समान महाकपि हनुमानजीनें वानरसैनाकी सहायतासे बहुत सारे राक्षसोंको मार डाला ॥ ७ ॥ हनुमानजीनें शोक और क्रोधसें अधीर होकर एक बड़ीभारी शिलाग्रहण करकै रावणके पुत्र मेघनादके रथ पर चलाई ॥ ८ ॥ परन्तु शिलाको रथके ऊपर आता हुआ देख सारथिनें संकेत [इशारा] ही किया कि सीखे सिखाये घोडे रथको दूरले जाय कर रक्षा करते हुए ॥ ९ ॥ तव वह हनुमानजीकी चलाई हुई शिला सारथिके सहित रथपर बैठे हुए इन्द्रजीतको न पायकर विफल हो पृथ्वीमें घुसगई ॥ १० ॥ वह शिला इस प्रकारके वेगसे चलाई गई थी कि जिस समय वह गिरी असंख्य राक्षसोंकी सैना उससे व्यथित हुई व कुचलगई ॥ ११ ॥ तव उस समय सैंकड़ों हजारों बलशाली बड़े २ शरीर वाले वानरगण पर्वतोंके शिखर और वृक्षोंको उठाये ॥ १२ ॥ अति शीघ्र-

तासे यह भयंकर विक्रमकारी वानर इन्द्रजीतके सन्मुख दौडे और इन समस्त वानरोंने मेघनादके सैनापर शिलावृक्षादिकी वर्षा करदी ॥ १३ ॥ वानर लोगोंनें राक्षसोंके ऊपर वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा करके उनमेंसे बहुत सारोंका नाश करदिया और विविध भांतिसे सिंहनाद करनें लगे भयंकर आकार वाले निशाचर गण घोर रूप वाले निशाचरोंको ॥ १४ ॥ अति वीर्यसे वृक्ष व शिलाके प्रहारसे चूर्ण करके पृथ्वीपर लुटानेलगे तब महावीर इन्द्रजीत वानरोंके हाथसे राक्षसोंको पीडित देखकर ॥ १५ ॥ क्रोध सहित हथियार उठाय शत्रुकी सैनामें प्रवेश करता हुआ उसने अपनी सैनाके बीचमें खड़े होकर बाणोंकी झडी लगादी ॥ १६ ॥ कि जिस्सें बहुतसे दृढ विक्रमकारी वानरगण मृतक होगये जोकि शूल वज्र, खड्ग, पटा, कूट व मुद्गरादिकोंसे मारेगये ॥ १७ ॥ उस समयमें वानरगणोंने भी मेघनादकी बहुत सैना मार डाली ॥ १८ ॥ महाबलवान् हनुमानजी स्कन्ध और शाखायुक्त शाल वृक्ष और शिलाओंके प्रहारसे भयंकर कर्मकारी राक्षसोंको मारने लगे ॥१९॥ और अपने पराक्रमसे शत्रुओंकी सैनाको निवारित करते हुए अपनी सैनासे बोले कि हे वानरो! लौटचलो अब इन राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी आवश्यकता नहींहै ॥ २० ॥ तुम सब श्रीरामचंद्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेंकी वासनासे प्राण तक देनेको तैयार होकर पराक्रम प्रकाश करतेहो परन्तु जिनके लिये युद्ध किया जाताहै वह जानकीजीही मारडाली गई हैं ॥ २१ ॥ चलो रामचंद्रजी व सुग्रीवजीको यह समाचार सुनादें; वह जैसी आज्ञा दें वैसेही किया जायगा ॥ २२ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानजी निर्भयहो यह वचन कह समस्त वानरोंको निवारित कर धीरे २ सेनासहित संग्रामसे लौटते हुए ॥ २३ ॥ हनुमानजीको श्रीरामचंद्रजीके निकट जाता हुआ देखकर दुष्टात्मा राक्षस इन्द्रजीत होम करनेंके लिये प्रथम निकुंभिला देवालयके वृक्षोंके समीप गमन करकै अग्निमें होम करता हुआ ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त यज्ञभूमिमें गमन करके अग्निमें होम आरंभ करनेंसे होममें रुधिरका पान करनेंवाली अग्नि प्रज्वलितहो उठी ॥ २५ ॥ उस कालमें ज्वालासे युक्त और होम तथा रुधिरसे तृप्त कीहुई वह उठीहुई तीव्र अग्नि संध्यासमयके सूर्यकी समान ज्ञान होनें लगी ॥ २६ ॥

अथेंद्रजिद्राक्षसभूतयेतुजुहावहव्यंविधिना विधानवित्॥ दृष्ट्वाव्यतिष्ठंतचराक्षसास्तेम हासमूहेषुनयानयज्ञः ॥ २७ ॥

इस प्रकारसे राक्षसलोगोंकी उन्नतिके हेतुके विधानको जाननेंवाला इन्द्रजीत जब यथाविधिसे होम करनेंलगा तब संग्राम करनेमें कुशल निशाचरगण स्थिरभावसे बैठेहुए इस यज्ञको देखनें लगे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥

राघवश्चापिविपुलंतंराक्षसवनौकसाम् ॥ श्रुत्वासंग्रामनिर्घोषंजांबवंतमुवाचह॥ १ ॥

उस ओर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वानर राक्षसोंका बड़ा भारी समरका शब्द सुनकर जाम्बवान्से कहनेंलगे ॥ १ ॥ हे सौम्य ! ऐसा जान पड़ताहै कि हनुमाननें अति दुष्कर कार्य कियाहै कारण कि अतिभारी भयंकर आयुध चलानेंका शब्द सुनाई देताहै ॥ २ ॥ इस कारण हे ऋक्षराज ! इन युद्ध करतेहुए वानरश्रेष्ठकी सहायता करनेंके लिये तुम अतिशीघ्रतासे अपनी सैनाके साथ जाओ ॥ ३ ॥ ऋक्षराज जाम्बवानजी "बहुत अच्छा" कहकर जिस स्थानमें वानरश्रेष्ठ हनुमानजी विराजतेथे अपनी सैनाके सहित उसी पश्चिमद्वारको गये ॥ ४ ॥ वहां जायकर ऋक्षराज जाम्बवानजीनें देखाकि हनुमानजी लौटे हुये आय रहेहैं और उनके साथमें जो वानरोंकी सैनाहै; युद्ध कर थकित शरीरसे हो वारंवार लंबे २ श्वास लेरहीहै ॥ ५ ॥ हनुमानजीनें मार्गमें उस नीले वादलकी समान समर करनेंके लिये तैयार भयंकर रीछोंकी सैनाको देखकर उन सबको लौटाया ॥ ६ ॥ महायशवान् हनुमानजी ऋक्ष और वानरोंकी सब सैनाके साथ दुःखित मनसे श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुचे और उनसे यह कहा ॥ ७ ॥ "हम सबनें संग्राम भूमिमें युद्ध करते २ देखा कि रावणके पुत्र इन्द्रजी-

तनें हम लोगोंके सामनेंही रोती हुई जानकीजीको मारडाला॥ ८॥ हे शत्रुओंका नाश करनेंवाले! उनकी ऐसी अवस्था देख हमारा चित्त उद्भ्रान्त और व्याकुल होगया तिस्से हम यह आपसे वृत्तान्त निवेदन करनेंके लिये यहां आयेहैं" ॥ ९ ॥ हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी मारे शोकके मूर्छितहो जड़ कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ १० ॥ देवताओंकी समान रघुनाथजीको ऐसी अवस्थामें पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर वानरश्रेष्ठ गण कूद २ कर उनके समीप आये ॥ ११ ॥ और सीताजीका विनाश होनेंके शोकसे प्रज्वलित निवारण करनेंके अयोग्य अग्निकी समान प्रदीप्त रघुनाथजीके शरीरमें कमलके पत्तोंको सुगन्धि युक्त जलसे छींटे मारनें लगे॥ १२॥ इसके उपरान्त लक्ष्मणजी दुःखित अंतःकरणसे शोकसे पीड़ित श्रीरामचंद्रजीको अपनी दोनों बांहोंसे पकड़कर हेतु और अर्थयुक्त यह वचन बोले ॥ १३ ॥ हे आर्य! धर्म निरर्थक जान पड़ताहै कारण कि आपनें इन्द्रियोंको जीतकर राज्यको त्याग व पिताजीका वचन पालनरूप जो धर्मका आचरण कियाहै, फिर धर्म तौ आपको अनर्थसे उद्धार करनेंके लिये समर्थ न हुआ॥ १४ ॥ स्थावर अथवा जंगम पशु आदि प्राणियोंके दर्शनसे जिस प्रकार उनका होना जाना जाताहै धर्मका ऐसा दर्शन न होनेसे हमको जान पड़ताहै कि धर्महैही नहीं॥ १५॥ धर्ममें अनुरागरहित स्थावर और वैसेही स्थावरधर्मविरोधी जंगम पशु आदि प्राणीपुंजको जिस प्रकार सुखी देखा जाताहै वैसा धर्मके आश्रयवाले सुखी नहीं देखे जाते; यदि धर्मसे कुछभी भला होता तौ आपकी समान धार्मिक मनुष्य कभी ऐसी विपत्तिमें नहीं पड़ते ॥ १६ ॥ यदि अधर्मसे दुःख और धर्मसे सुख प्राप्त होता तौ रावण नरकमें जाता और आप ऐसे दुःखमें किसी प्रकारसे नहीं पड़ते॥ १७॥ आपका दुःख और रावणको दुःखरहित देखकर ऐसा जान पड़ताहै कि परस्पर विरोधी धर्म और अधर्म श्रुतिविरुद्ध फल देतेहैं; कारण कि जिस प्रकार धर्मसे श्रुतिविरुद्ध दुःखरूप फल प्राप्त होताहै वैसेही अधर्मसे सुखरूप फल प्राप्त हुआ करताहै ॥ १८ ॥ अथवा यदि धर्मसे सुख प्राप्त होता तौ रावण इत्यादि अधार्मिकगणभी दुःखमें पड़ते ॥ १९ ॥ यदि धार्मिकलोग विपदमें नपड़कर अपने आचरण

किये हुए धर्मका सुखरूप फल प्राप्त करते तौ धर्म अधर्मको विरुद्ध फल रहित कहकर निर्देश किया जाता ॥ २० ॥ हे वीर! जो लोग सदा अधर्माचरण करतेहैं; उनकी श्रीवृद्धि और धार्मिकलोगोंकी विपत्ति देखकर धर्म और अधर्म यह दोनोंही निरर्थक जान पड़तेहैं ॥ २१ ॥ हे राघव! अधर्म पाप कर्म करनेंवाले पुरुषको नष्ट करनेंमें समर्थ नहीं होता कारण कि क्रिया शरीर रूप तीन क्षण स्थाई हो अधर्म आपही क्रियाके सहित चौथे क्षणमें नष्ट होताहै; तिसके पीछे वह और किसको नष्ट कर सकैगा? ॥ २२ ॥ यदि कर्मके लिये भाग्यको मान लिया जाय तौभी कार्यका करनेंवाला पुरुष उस पापमें लिप्त नहीं होसकता, कारण कि जिस विधानकी हुई विधिसे श्येनादि अभिचारिक यज्ञमें हिंसादि कार्य हुआ करतेहैं वह निधि अथवा उसका वतलानेंवालाही उसके लिये पापका भागी हो सकताहै ॥ २३ ॥ हे शत्रुनाशी! धर्म वर्त्तमान होनेपरभी वह वध इत्यादि करनेके पापमें लिप्त नहीं होसकता; कारण कि अपनी शक्तिसे अनुभूयमान असत्कल्प अप्रत्यक्षरूप धर्म स्वयं अचेतनहै, इस कारण वह स्व कर्त्तव्य शत्रुप्रतिकारादि कार्यको कुछभी नहीं जानताहै ॥ २४ ॥ हे साधुश्रेष्ठ! यथार्थ विचार करनेपर यदि कुछ धर्म होता तौ आपको किसी प्रकारके दुःख भोग करनेंकी संभावना नहीं होती, फिर जब कि आप ऐसा दुःख भोग कर रहेहैं, तब हमको यह नहीं जान पड़ता कि धर्म कुछ है ॥ २५ ॥ हमारे विचारसे धर्म एक क्षुद्र पदार्थहै; उस्से कार्य साधन नहीं होता, न उसमें कोई शक्ति है, हां वह केवल कार्य करनेंके समय बलकी सहायता किया करताहै; वह सुखका साधन करनेवाला नहीं हमारी सम्मतिमें उस दुर्बल मर्यादाहीन धर्मकी उपासना करना उचित नहींहै ॥ २६ ॥ यदि धर्म बलका सहायकही हुआ तब फिर उसकी पूजा करनें का क्या प्रयोजन! आप जो धर्मकी पूजा करतेहैं उस धर्मकी पूजा छोड़ जैसे आप धर्मकी पूजा करतेहैं वैसेही यत्न सहित पौरुषका आश्रय लीजिये॥२७॥ हेशत्रुओंके तपानेवाले यदि सत्य वचनहीं आपके विचारमें धर्म माना गयाहो तौ जब पिता दशरथजीनें आपको युवराज देना चाहाथा, तब प्रथम आपनें उस वचनको अंगीकार किया और फिर आपनें उस वचनको नहीं पाला; तब उसके लिये आपको अधर्म क्यों नहीं

हुआ! ॥ २८ ॥ हेशत्रुदमनकारी! यदि धर्म अथवा अधर्म इन दोनोंके बीचमें कोई बड़ा होता तौ, इन्द्रजी विश्वरूप मुनिका वध रूप अधर्म और तिसके पीछे यज्ञरूप धर्म इन दोनोंको न करते ॥ २९ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी! पौरुषका आश्रय किया हुआ धर्मही शत्रुके विनाशादिमें समर्थहै; इसी कारणसे लोग दोनोंका अनुष्ठान किया करतेहैं ॥ ३० ॥ हेरघुनंदन! देश, काल, और पात्रके अनुसार कार्य करनाही परम धर्म ज्ञात होताहै; परन्तु आपने उस कालमें राज्यको छोड़कर उस अर्थमूल धर्मकी मूल काट डाली ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार पर्वतसे नदियें निकलतीहैं वैसेही अनेक देशसे लाये जाकर बढ़े हुए अर्थसेही सब क्रिया प्रवर्तितहुआ करतीहै ॥३२॥ इसके विरुद्ध जिस प्रकार छोटी नदियें ग्रीष्मकालमें सूख जातीहैं वैसेही अल्प बुद्धि अर्थहीन पुरुषकी सब क्रिया नष्ट हो जातीहैं ॥ ३३ ॥ अनेक वार ऐसाभी देखा जाताहै कि पुरुष प्रथम सुख साधन अर्थ छोड़कर पीछेसे सुखका अभिलाषी होताहै, और काल पायकर जब वह अभिलाष बढ़ जाताहै तब वह पापके आचरण करनें आरंभ कर देताहै कि जिस्से दोष होजाताहै ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जिसके पास धनहै वही पुरुषहै और मित्र व बन्धु बान्धव गणभी उसीके हैं, धनवानही पुरुषहै धनवानही पंडितहै ॥ ३५ ॥ जिसके पास धनहै उसकाही विक्रमहै, जिसके पास धनहै वही बुद्धिमानहै; जिसके पास धनहै वही महावीर और वही गुणवानहै ॥ ३६ ॥ हेधीर! हमनें जो कुछ कहा धनका त्याग करनेंसे यही दोष होजातेहैं; परन्तु हम नहीं कह सकतेकि आपने किस बुद्धिके वश होकर राज्य छोड़ दिया ॥ ३७ ॥ जिसके पास धनहै उसके सबही कुछ वशमें है और वह सहजहीसे धर्म कामादिकोंको सिद्ध कर सकताहै परन्तु निर्धन पुरुष चाहै अनंत उद्योग करै उसका कोई प्रयोजनभी सिद्ध नहींहो सकता ॥ ३८ ॥ हेनरनाथ! हर्ष, काम, गर्व, धर्म, क्रोध, शम, और दम, यह समस्त धनहीसे होतेहैं ॥ ३९ ॥ धनके न होनेंसे तपस्वी लोगभी इस लोकमें पुरुषार्थरहित होजातेहैं, परन्तु जिस प्रकार बादल छाये हुए रातमें चंद्रमा व तारागण दृष्टि नहींआते वैसेही सुखका साधन करनेंवाला धर्म अपने आपसे दिखाई नहीं देता ॥ ४० ॥ हेवीर! आप पिताजीके वचनोंके अनुसार जो वनको चले आये तभी तौ राक्षसनें

आपकी प्राणोंसेभी अधिक प्यारी जानकीजीको हरण कर लियाहै जो आप नहीं आते तौ यह राक्षस कैसे हरलेता? ॥४१॥ हेवीर श्रीरघुनंदनजी! आप उठ बैठें इन्द्रजीतनें जो दुःखका मूल बड़ाभारी कार्य कियाहै, हम कार्यहीसे उस दुःखका प्रतिकार करेंगे ॥ ४२ ॥ हेबड़ी २ बांहोंवाले नर शार्दूल! आप उठें आप व्रतचारी और महात्मा होकरभी किस कारणसे परमात्मभूत अपने आपको भूलतेहैं? ॥ ४३ ॥

अयमनघतवोदितःप्रियार्थंजनकसुतानिधनं निरीक्ष्यरुष्टः ॥ सरथगजहयांसराक्षसेंद्रांभृशमिषुभिर्विनिपातयामिलंकाम् ॥ ४४ ॥

हेपापरहित! जानकीजीका मृतक होंना सुनकर जो क्रोध हमको उत्पन्न हुआहै इसी कारणसे हमनें आपकी प्रियकामनासे यह सब कहा; सो जो कुछभी हो आप उठ बैठें हम बाणोंके समूहसे रथ, तुरंग, मातंग और राक्षसश्रेष्टोंके सहित समस्त लंका नगरीका नाश करदेंगे ॥ ४४ ॥

इ०श्रीम०वा०आ०यु० त्र्यशीतितमःसर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥

राममाश्वासमानेतुलक्ष्मणेभ्रातृवत्सले ॥ निक्षिप्यगुल्मान्स्वस्थानेतत्रागच्छद्विभीषणः॥ १ ॥

भ्रातासे अधिक स्नेह करनेंवाले लक्ष्मणजी जब श्रीरामचंद्रजीको इस प्रकारसे समझा बुझारहेथे कि इसी अवसरमें बिभीषणजी सेनाको उनके अपने २ नियत किये हुए द्वारोंपर स्थापित करकै उस स्थानमें आये ॥ १ ॥ हाथियोंसे घिरनेंके कारण, हाथियोंके यूथपतिकी शोभा जिस प्रकारसे होतीहै वैसेही बिभीषणजी नीले बादलकी समान विविध प्रकारके आयुधधारी चार मंत्रियोंको संग लिये हुएथे ॥ २ ॥ उन्होंनें वहां आकर देखाकि महात्मा श्रीरामचंद्रजी शोकके भारसे दबेहुएहैं और वानर लोगभी रोते हुए उनके निकट बैठेहैं ॥ ३ ॥ महात्मा इक्ष्वाकुकुल-नंदन श्रीरामचंद्रजी मोहको प्राप्त होकर, अपने छोटे भ्राता लक्ष्मणजीकी गोदमें पड़े हुएहैं ॥ ४ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी

वह शोक सागरमें डूब रहेथे, उनको देखकर मनमें दुःखीहो विभीषणजीने कहाकि यह क्या बातहै? ॥ ५ ॥ तब महावीर लक्ष्मणजी, विभीषण सुग्रीव इत्यादि मुख्य २ वानरलोगोंकोभी दीनवदन देख नेत्रोंमें जल भरकर यह बोले॥ ६ ॥ हेसौम्य! "इन्द्रजीत करके जानकीजी मार डाली गईहैं" हनुमानजीके मुखसे यह वृत्तान्त सुनतेही रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी मोहको प्राप्त हुएहैं ॥ ७ ॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकारसे कहरहेथे, कि विभीषणजी उनको रोककर श्रीरामचंद्रजीसे यह भारी अर्थयुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ हेमनुष्योंमें इन्द्र! हनुमानजीनें दीन भावसे जो बात आपसे कही है वह समुद्रके सुखालेनेंकी समान असंभवहै [अर्थात् समुद्रको कोई नहीं सुखाय सकता] ॥ ९ ॥ हेमहाबाहो! हम दुरात्मा रावणके सीताके विषयके अभिप्रायको जानतेहैं, वह कभी सीताजीको नहीं मारनें देगा॥१०॥ हमने रावणके हितकीही कामनासे उस्से वारंवार कहाकि "जानकी श्रीरामचन्द्रजीको देदो;" परन्तु उनें हमारी इस बातपर कानतकभी नहीं दिया ॥ ११ ॥ सीताजीको वध करना तौ दूर रहा; महाराज! जब कि साम, दान, अथवा भेद इन तीन उपायोंसेभी जब कोई सीताजीका दर्शन नहीं पाय सकता; तब इन्द्रजीत संग्रामस्थलमें किस प्रकारसे उनका दर्शन प्राप्त करनेंमें समर्थ होगा? ॥ १२ ॥ हे महावीर! वह मायाकी सीता इन्द्रजीतने मारडाली होगी हम निश्चय जानते हैं कि राक्षस इन्द्रजीत इस उपायसे वानरोंको मोहित करके चला गयाहै ॥ १३ ॥ आज निकुम्भिलामें वह मेघनाद जाकर होम करैगा इन्द्रादि देवताओंके साथ अग्नि वहां पहुँचे हैं ॥ १४ ॥ जबकि वह यज्ञमें होम करके अग्निको प्रसन्नकर लेगा तब देवताओंके सहित इन्द्रकोभी संग्राममें रावणका पुत्र मेघनाद दुर्द्धर्षहोजायगा, हम निश्चय कहतेहैं कि अपना अभिलाष सिद्ध करनेंके लिये और वानरोंको पराक्रमहीनही करनेंके लिये उसनें ऐसी माया प्रगटकी है ॥ १५ ॥ जबतक उसका यज्ञ समाप्त न होजायगा तबतक हम सैनाके सहित वहां पहुंचजायँगे। हे नरशार्दूल! आप शोक संतापका त्याग कीजिये ॥ १६ ॥ कारण कि आपको शोकसे पीड़ित देखकर ही समस्त वानरोंकी सैना व्याकुल होरही है; इस कारण अब धीरज धर सावधान हो इस स्थानमें आप विराजमान रहैं ॥ १७ ॥

और सब सैनाके सहित लक्ष्मणजीको हमारे साथ भेज दीजिये ॥ १८ ॥ यह महावीर नरशार्दूल ! लक्ष्मणजी तीक्ष्ण बाण चलाय २ कर उसके यज्ञ कार्यमें विघ्न कर देंगे, जब उससे यज्ञ करना छुट जायगा तब हम उसे मार डालेंगे ॥ १९ ॥ इनके गरुडजीकी समान अंगयुक्त वेगशाली तीक्ष्ण रुधिरके पीनें वाले बाण गिद्ध इत्यादि अशुभ पक्षियोंकी समान उस राक्षसका रुधिर पियेंगे ॥ २० ॥ इसलिये हे महावीर ! जिस प्रकार वज्रधर दैत्योंके मारनेंके लिये वज्रको आज्ञा देतेहैं, वैसेही आपभी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीको हम लोगोंके साथ जानेंकी आज्ञादे दें ॥ २१ ॥ हे मनुजश्रेष्ठ ! शत्रुके मारनेंमें विलम्ब करना उचित नहीं है; इसलिये जिस प्रकार इन्द्रजी दैत्योंका वध करनेंके लिये वज्रको भेजते हैं वैसेही लक्ष्मणजीको आप हमारे संग भेजदें ॥ २२ ॥

समाप्तकर्माहिसराक्षसर्षभोभवत्यदृश्यः
समरेसुरासुरैः ॥ युयुत्सतातेनसमाप्तक
र्मणाभवेत्सुराणामपिसंशयोमहान् ॥ २३ ॥

हे महाराज ! वह राक्षसश्रेष्ठ जब कार्य अर्थात् होम समाप्त करलेगा, तब सुर और असुर लोगभी उसको नहीं देख सकते; बस जबकि वह होम समाप्त करकै युद्ध करनें लगेगा तब देवता लोगोंकोभी बड़ाभारी संशय उपस्थित होगा ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवःशोककर्शितः ॥
नोपधारयतेव्यक्तंयदुक्तंतेनरक्षसा ॥ १ ॥

शोकाकुल श्रीरामचन्द्रजी विभीषणके वचनोंको सुन करकै जो वचन कि विभीषणजीनें स्पष्ट २ कहेथे उनको धारण करनेंमें समर्थ न हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त परपुर जीतनेंवाले श्रीरामचन्द्रजी धीरज धारण करकै वानर लोगोंके निकट बैठे हुए विभीषणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे राक्षसराज

विभीषण! तुमनें जो वचन कहे हम फिर उनको श्रवण करनेंकी इच्छा करते हैं, इस कारण तुमको जो कुछ कहनाहो फिरसे कहो॥ ३॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके वाक्य विशारद विभीषणजीनें जो कुछ कहाथा उसकोही उन्होंनें फिर कहना आरंभ किया, विभीषणजी बोले ॥ ४ ॥ हे महावीर! आपने जिस प्रकारसे सैनाको स्थापन करनेंकी आज्ञादीथी, आपकी आज्ञानुसार उसी समय वह सैना उसी प्रकारसे श्रेणीबद्ध की गई ॥ ५ ॥ सब सैनाको सब प्रकारसे बांटकर विभागानुसार यथायोग्य सबके यूथपति नियत किये गये हैं ॥ ६ ॥ हे महाप्रभो! हमको और भी कुछ कहना है वह भी श्रवण कीजिये आप वृथाही शोकसे संतापित होरहेहैं; इसलिये हम लोगोंको भी संतापका वारा पार नहीं ॥ ७ ॥ हे राजन्! इस समय आप वृथा और अकारण शोकभारको छोड़ दीजिये कारणकि-आपको ऐसा चिन्तित देखकर शत्रु लोगोंको हर्ष बढ़ताहै ॥ ८ ॥ हे वीर यदि राक्षस लोगोंका नाश करना और सीताजीको फिर प्राप्त करनेंकी आप इच्छा रखते हों.तौ आप हर्षसहित अपना कार्य सिद्ध करनेंके लिये तैयार होजांयगे ॥ ९ ॥ हे रघुनंदन! हम एक हितकी वार्ता कहते हैं आप श्रवण करें; कि आप बड़ी भारी सैनाके संग लक्ष्मणजीको हमारे साथ करदें ॥ १० ॥ निशाचर इन्द्रजित निकुंभिला नाम देवालयमें यज्ञकरनेंके लिये गयाहै. वीरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी वहां जा विषधर सर्पोंकी समान बाणोंको धनुषसे चलाय उसके यज्ञमें विघ्न करैं ॥ ११ ॥ वीर इन्द्रजीतनें तपस्या करके ब्रह्माजीसे वरपाय ब्रह्मशिर नामक अस्त्र इच्छानुसार चलनेंवाले अश्व प्राप्त कियेहैं ॥ १२ ॥ जो इस समय निकुम्भिलासे कार्य सिद्ध करकै सैना सहित समर करनेको चला आवे तौ आप हम लोगोंको मृतक हुआही निश्चय कर लीजिये ॥ १३ ॥ ब्रह्माजीका ऐसा वरदानहै कि हे इन्द्रके शत्रु! तुह्मारा निकुम्भिला नाम देवालयमें बने हुये महाकालीके क्षेत्रमें उपस्थित होकर अभिचारि होम करनेंसे, पहले जो तुमपर शत्रु भावसे चढ़ाई करेगा वही तुमको मारडालनेमें समर्थ होगा ॥ १४ ॥ हे महावीर सब लोकोंके ईश्वर प्रजापति ब्रह्माजीनें उसको इस प्रकारका वरदान दियाहै; इसलिये इस समय आप उसके वध करनेंका उपाय निश्चय कीजिये ॥ १५ ॥ इस कारण

आप उसका संहार करनेके लिये महाबलवान लक्ष्मणजीको आज्ञा दीजिये कारणकि इन्द्रजीतके मारे जातेही आप सब इष्ट मित्रोंके सहित रावण कोभी माराही समझिये ॥ १६ ॥ विभीषणके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजीनें कहा. हे सत्य पराक्रम! हम उस निशाचरकी मायाको भली भांति जानतेहैं ॥ १७ ॥ वह ब्रह्मास्त्रका जाननें वाला चतुर महाबलवान मायावी वीर संग्राममें वरुण प्रमुख देवता लोगोंको भी मूर्छित कर सकताहै ॥ १८ ॥ हे महायशवीर! जिस प्रकार मेघके भीतर छिपनेसे सूर्यकी गति नहीं जानी जाती वैसे जब वह वीर रथपर सवार होकर आकाशमें विचरैगा तो उसकी गतिका भी जानना कठिनहै ॥ १९ ॥ तब भगवान् श्रीरामचंद्रजी विभीषणजीसे यह वचन कहकर शत्रु इन्द्रजीतके मायाके प्रभावको जानकर कीर्तिमान लक्ष्मणजीसे कहनें लगे ॥ २० ॥ हे वत्स! तुम हनुमान् प्रमुख वानरवीर लोगोंको संग लेकर और समस्त वानरोंकी सैनाके साथ इन्द्रजीतका नाश करनेंके लिये युद्धमें जाओ ॥ २१ ॥ ऋक्षोंके राजा जाम्बवानजी सैना सहित तुम्हारे साथ जावें जाओ तुम राक्षस राजके पुत्र मेघनादको जो कि बडा मायावीहै जाकर मार आओ ॥ २२ ॥ महात्मा निशाचर बिभीषणजी उस राक्षसकी समस्त मायाको जानते हैं इसलिये यहभी मंत्रियोंके सहित तुम्हारे साथ जाँय ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर भयंकर पराक्रमकारी लक्ष्मणजी और बिभीषणजी हाथका पहला धनुष त्यागकर और दूसरा श्रेष्ठ धनुष धारण करते हुए॥२४॥ इसके उपरान्त सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी बख्तर, कवच, खड्ग, व और दूसरे समस्त आयुध धारण करके श्रीरघुनाथजीके चरणछू हर्ष सहित उनसे बोले ॥ २५ ॥ जिस प्रकार हंसगण सरोवरमें गिरतेहैं वैसेही आज हमारे धनुषसे छूटे हुए बाण मेघनादके शरीरको भेदकर लंकामें गिरेंगे ॥ २६ ॥ हमारे बड़े भारी धनुषसे छूटे हुए समस्त बाण आजही घोर राक्षसका शरीर भेदकर चीर फाड़ डालेंगे ॥ २७ ॥ दिव्यकांतिवाले लक्ष्मणजी अपनें बड़े भ्राता श्रीरामचंद्रजीसे यह कमनीय वचन कह रावणके पुत्र इन्द्रजीतका संहार करनेंको अति शीघ्रतासे गमन करते हुए ॥ २८ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करकै इन्द्रजीत करकै रक्षित निकुम्भिला देवालयकी ओर जानेंको तयार हुए ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे राजकुमार

प्रतापवान लक्ष्मणजी अपनें भ्रातासे आशीर्वाद पाय बिभीषणजीके सहित शीघ्रतासे चले ॥ ३० ॥ बहुतसारे सहस्रों वानरोंकी सैनाको साथ लेकर हनुमानजी और बिभीषणजीभी अपने चार मंत्रियोंके सहित उनके साथ चले ॥ ३१ ॥ इन सबनें जाते २ द्वार रक्षा करनेंके लिये स्थापित वानरोंकी बड़ीभारी सैना और ऋक्षराज जाम्बवानजीकी सैनाकोभी देखा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार मित्रोंका आनंद बढ़ानेंवाले लक्ष्मणजीनें बहुत दूर जाकर श्रेणीबद्ध हुई राक्षसोंकी सैनाको दूर हीसे देखा ॥ ३३ ॥ श्रीलक्ष्मणजी मायावी वीरका संहार करनेंके लिये ब्रह्माजीकी कीहुई विधिके अनुसार उसीस्थानमें धनुष धारण करकै खड़े होगये ॥ ३४ ॥ महावीर अंगदजी पवनकुमार हनुमानजी और राक्षसराज बिभीषणजी प्रतापवान राज कुमार लक्ष्मणजीके संगथे ॥ ३५ ॥

विविधममलशस्त्रभास्वरंतद्ध्वजगहनंगहनं
महारथैश्च ॥ प्रतिभयतममप्रमेयवेगंति
मिरमिवद्विषतांबलंविवेश ॥ ३६ ॥

राक्षसोंकी सैना विविध प्रकारके चमकीले दमकीले अस्त्र शस्त्र धारणकरकै दीप्ति पाय रहीहै, वह सैना रथ, और ध्वजाके डंडोंसे अत्यन्त गहन व भयंकरथी उसके वेगका कुछ पार नहींथा लोग जिस प्रकार गंभीर अंधकारमें प्रवेश करतेहैं वैसेही महावीर लक्ष्मणजी शत्रुकी सैनामें प्रवेश करते हुए ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे० श्रीम ० वा ० आ ० यु ० पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ॥

अथतस्यामवस्थायांलक्ष्मणंरावणानुजः ॥
परेषामहितंवाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥ १ ॥

महावीर लक्ष्मणजीनें जब शत्रुकी सैनामें प्रवेश किया उस समय बिभीषणजी शत्रु लोगोंके लिये अहित कारी और अपनी ओरके लिये हितकारी वचन बोले ॥ १ यह जो मेघकी समान काले रंगकी राक्षसोंकी सैना दिखाई देतीहै वानर लोग अति शीघ्रतासे इनके साथ

शिलाओंको उठाय संग्राम करैं ॥ २ ॥ हे लक्ष्मणजी! आप अति शीघ्रतासे इस राक्षसोंकी सेनाको छिन्न भिन्न कीजिये, कारण निशाचरोंकी सैनाके छिन्न भिन्न होजानेंसे इस स्थानमें रावणका पुत्र इन्द्रजीत दिखाई देगा ॥ ३ ॥ जबतक यह अभिचारक होम पूरा नहीं होताहै; तबतक वज्रधारी इन्द्रजीके वज्रकी समान बाणोंसे तुम राक्षसोंकी सैनाको पीड़ा देतेरहो ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त सब लोगोंको भयके देनेंवाले क्रूर कर्मकारी अधार्मिक और मायावी दुरात्मा रावणके पुत्रको तुम विनाश करना ॥ ५ ॥ शुभ लक्षण युक्त लक्ष्मणजी बिभीषणजीके ऐसे वचन सुनकर बाणोंकी ऐसी वर्षा करनें लगे कि जिससे इन्द्रजीत जानले ॥ ६ ॥ वानर और रीछभी वृक्षोंको धारण करके इकट्ठेहो उस श्रेणीवृद्ध राक्षसोंकी सैनापर दौड़े ॥ ७ ॥ और राक्षस लोगभी वानरोंको मारडालनेंकी वासनासे तीखे बाण शक्ति और तोमर समूहके सहित वानरोंकी सैनाके सन्मुख हुए ॥ ८ ॥ इस प्रकारसे वानर और राक्षसोंका कठोर संग्राम आरंभ हुआ उनके बड़े भारी शब्दसे लंकापुरी सर्व प्रकारसे गुंजारनें लगी ॥ ९ ॥ विविध प्रकारके अस्त्र शस्त्र तीखे बाण और चलाये हुए घोर पर्वतोंके शृङ्ग और वृक्षोंसे आकाशमंडल ढकगया ॥ १० ॥ विकटाकार मुखवाले राक्षसलोग वानर श्रेष्ठोंके शरीरमें अस्त्रशस्त्र मारकर उनको दारुण भय उपजानें लगे ॥ ११ ॥ वानरगणभी शिलाहाथोंमें उठाय राक्षसोंके निकट जायरणभूमिमें उनका संहार करनें लगे ॥ १२ ॥ महाकाय महाबलवान वानर और रीछोंके संग युद्धकरते हुए राक्षसोंको बड़ाभारी भय उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ इस ओर अजेयरावण का पुत्र मेघनाद अपनी सेनाको शत्रु लोगों करके सबप्रकारसे मर्दित और व्याकुल देखकर अपने यज्ञको बिनाही पूराकिये उठबैठा ॥ १४ ॥ वह मेघनाद निकुम्भिला क्षेत्रके लगे हुए वृक्षोंके घने अंधकारसे निकलकर क्रोधसहित पहलेही जुते हुए सजे सजाये रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ उस कालमें कालेअंजनकी ढेरकी समान लालवदन और लालही नेत्र किये वह वीर बड़ाभारी धनुष ले सर्व प्राणियोंके संहारकारी मृत्युकीसमान प्रकाश होनें लगा ॥ १६ ॥ उस मेघनादको रथपर सवार हुआ देखतेही लक्ष्मणजीके सहित युद्धकी अभिलाषा किये राक्षस लोगभी लौट आये; जोकि

प्रथम भागनाही चाहतेथे ॥ १७॥ उसकालमें पर्वताकार शत्रु विनाशी वानरश्रेष्ठ हनुमानजी दुरासद वृक्षको उठायकर दौड़े ॥ १८ ॥ जिस प्रकार प्रलयकालकी अग्नि लोकोंको भस्म करती है; वैसेही असंख्य वृक्षोंसे महावीर हनुमानजीसे राक्षसोंकी सैनाको मूर्छित करनें लगे ॥१९॥ पवनकुमार हनुमानजी राक्षसोंकी सैनाको विध्वंशित देखकर सहस्र २ राक्षस उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगे ॥ २० ॥ तीखाशूल धारण करनेवाले निशाचर लोग शूलसे शक्ति हाथमें लिये निशाचरगण शक्तिसे पटाधारी पटेसे ॥ २१ ॥ व और दूसरे निशाचर लोग परिघ, गदा, शुभदर्शन कुंभ शतर शतघ्नी और लोहेके बने हुए मुद्गरोंसे ॥ २२ ॥ घोर फरश भिन्दिपालोंसेभी मारने लगे वज्रकी समान मूकोंसे और वज्रकीही समान लातोंसे वह राक्षस ॥ २३ ॥ पर्वतकी समान हनुमानजीको मारनें लगे । महावीर हनुमानजीनें भी क्रोधित होकर बहुतसारे राक्षसोंको मारडाला ॥२४॥ तब इन्दजीत पर्वताकार शत्रु दमनकारी हनुमानजीको मारता हुआ देखकर ॥ ॥ २५ ॥ सारथिसे कहने लगा कि जहांपर यह वानरहै उसीस्थानमें रथ ले चलो. कारणकि अब जो हम वहां न जायँगे तौ यह हमारी सैनाका क्षयही करता रहेगा ॥ २६ ॥ जैसेही कि इन्द्रजीतने यह कहा कि वह इन्द्रजीतको लेकर जहांपर हनुमानजी टिके हुएथे वहीं पर रथको लेगया ॥ २७ ॥ इन्द्रजित वहां पहुंचतेही वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके ऊपर बाण, खड्ग, पटा, फरशा इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २८ ॥ परन्तु महावीर हनुमानजी उन घोर बाणोंको सहन करकै अत्यन्त क्रोध करके उसी समय इन्द्रजीतसे यह बोले ॥ २९ ॥ रे दुरात्मा रावणके पुत्र इन्द्रजीत! तू यदि शूरता रखताहो तौ कुछ देर हमारे साथ युद्ध करनेमें समर्थ होगा; परन्तु पवनपुत्र हनुमान्के हाथमें पड़कर जीता हुआ लौट जानेंको तेरी सामर्थ्य नहीं होगी ॥ ३० ॥ तुझको जो द्वन्द्व युद्ध करनेंका अभिलाष हो तौ हमारेसाथ बाहुयुद्ध करकै जब तू हमारा वेग सहलेनेंको समर्थ होगा तब हम तुझे राक्षस लोगोंमें श्रेष्ठ समझेंगे ॥ ३१ ॥ इसी समयमें अत्यन्त चतुर बिभीषणजी हनुमानजीके मारनेंको धनुष लिये तैयार मेघनादको बताकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३२ ॥ यह देखिये रावणके जिस पुत्रनें सुर और असुर लोगोंको जीत लियाहै वही इन्द्र-

जीत फिरभी रथपर सवार होकर हनुमानजीके मारडालनेंकी अभिला-
ष करताहै ॥ ३३ ॥ इसलिये हे महाराज लक्ष्मणजी! आप जीवनका
अंत करनेंवाले शत्रुओंको निवारण करनेंवाले घोर रूप अनुपम बाणोंसे
इस रावणके पुत्र मेघनादको मारडालिये ॥ ३४ ॥

इत्येवमुक्तस्तुतदामहात्माविभीषणेनारिविभी
षणेन ॥ ददर्शतंपर्वतसन्निकाशंरथस्थितंभी
मबलंदुरासदम् ॥ ३५ ॥

शत्रुओंके डरानेंवाले विभीषणजी करके इस प्रकार कहे जाकर म-
हात्मा लक्ष्मणजी उस पर्वताकार रथपर बैठे हुए भयंकर बलवान इन्द्र-
जितको देखते हुए ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० यु० भा०
षड्शीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ॥

एवमुक्त्वातुसौमित्रिंजातहर्षोविभीषणः ॥ धनु
ष्पाणिंतमादायत्वरमाणोजगामसः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त राक्षसराज हर्षयुक्त विभीषणजी यह कहकर धनुष
धारी लक्ष्मणजीको संग लिये हुए अतिशीघ्रतासे गमन करनें लगे॥ १ ॥
विभीषणजीने थोड़ीही दूरपर जाय एक बड़े वनमें प्रवेश करके वह
कर्म लक्ष्मणजीको दिखाया ॥ २ ॥ इसके उपरान्त तेजस्वी विभीषण-
जी नीले बादरकी समान भयंकराकार बड़का वृक्ष दिखाकर लक्ष्मणजी-
से बोले ॥ ३ ॥ कि बलवान रावणका पुत्र मेघनाद इसी स्थानमें भूतों-
को बलि देकर पीछे संग्राम करनेंके लिये गमन करताहै ॥ ४ ॥ और
हे नरोत्तम! इसी कारण वह संग्राम भूमिमें सबकी दृष्टिसे लोपहो उत्तम
बाणोंके समूहसे शत्रुलोगोंको बांधलेताहै; और मारभी डालताहै ॥ ५ ॥
इसलिये जबतक वह बलवान राक्षस राजका पुत्र मेघनाद फिर इस ब-
ड़के नीचे आवै आप तिस्से पहलेही प्रदीप्त बाणोंसे उसका रथ काटकर
सारथिके सहित उसकोभी मार डालिये ॥ ६ ॥ मित्रोंके आनंद बढ़ानें-
वाले सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी "ऐसाही होगा" यह कहकर विचित्र धनु-

षपर टंकार दे युद्ध करनेंको वहां खड़े होगये ॥ ७ ॥ इस प्रकार बलशाली रावणका पुत्र मेघनादभी कवच और खड्ग धारण करके ध्वजासे शोभित अग्निकी समान वर्णवाले रथपर सवार हुआ दृष्टि आया ॥ ८ ॥ यह देखकर महा तेजस्वी लक्ष्मणजी उस अजेय रावणके पुत्र मेघनादसे बोले" हम तुमको बुलातेहैं, तुम सब प्रकारसे हमारे साथ संग्राम करो" ॥ ९ ॥ महा तेजस्वी चिन्ताशील रावणका पुत्र मेघनाद इस प्रकारसे कहे जाकर उस स्थानमें विभीषणको देखकर कठोर वचन कहता हुआ ॥ १० ॥ कि अरे निर्बोध! तू इसी स्थानमें जन्म ग्रहण करके इतना बड़ा हुआ तू हमारे पिताका साक्षात् भ्राता, फिर तू हमारा चचा होकर किस प्रकारसे भतीजेका बुराचींतनेको उतारू हुआहै ॥ ११ ॥ रे दुर्मते! तुझसे धर्म दूषित होताहै, कारणकि तुझको कर्तव्याकर्तव्यका विचार नहीहै; और एक उदरसे जन्म लेनेंका, अथवा जाति और जाति भावका तुझको कुछभी ज्ञान नहींहै ॥ १२ ॥ रे कुबुद्धिवाले! तू अपने बन्धु बान्धवोंको त्याग करता हुआ शत्रु लोगोंका सेवक होकर साधुलोगोंमें निन्दनीय और शोचनीय हुआहै ॥ १३ ॥ कहांतौ बन्धु बान्धवों और स्वजन लोगोंमें वास! कहां नीच शत्रुके साथ सहवास! परन्तु तेरी बुद्धि कार्य अकार्यका विचार करनेंमें समर्थ है इसलिये तू इन दोनो बड़ी भारी बातोंका अंतर नहीं जान सकताहै ॥ १४ ॥ स्वजन गुण रहित और शत्रु गुणवान होनेंपरभी गुणविहीन स्वजनही आश्रय लेनेंके योग्यहैं; कारण कि शत्रु मित्र होनेंवाला नहीं वह सदा शत्रुही रहताहै ॥ १५ ॥ विशेष कर जो अपने पक्षको छोड़करके पराये पक्षका आश्रय ग्रहणकरे, वह अपने पक्षके मारे जानें परही उसही शत्रुसे आपभी मारडाला जाता है ॥ १६ ॥ हे निशाचर! तू रावणका छोटा सगा भाई होकर जैसा निर्दयी कार्य करताहै. सगा जन होकर और कोईभी ऐसा कार्य नहीं कर सकता है ॥ १७ ॥ जब भतीजा मेघनाद इस प्रकारसे बोला, तौ विभीषणजीनें कहा, हे इन्द्रजित तुम हमारे स्वभावके विनाही जाने हुए किसलिये ऐसी वृथा बकवाद करे जातेहो! ॥ १८ ॥ हे असाधु राक्षस पुत्र! तुम यदि हमको चचा कहकर गौरव करतेहो तौ ऐसा कठोर भाव छोडदो। हमने

क्रूर कर्मकारी राक्षसोंके कुलमें जन्म ग्रहणतौ कियाहै तथापि जो गुण पुरुषोंमें प्रथम होताहै अर्थात् सतोगुण उसी सत्वगुणसे युक्त हमारा स्वभाव है राक्षसोंका स्वभाव नहींहै ॥ १९ ॥ न कभी दारुण कर्म करते हैं, न कभी अधर्ममें हम प्रवृत्त होतेहैं। हम तुमसे पूछतेहैं कि यदि भ्राता खोटे शील वालाहो तौ क्या उसका परित्यागहो सकताहै ॥ २० ॥ हम यदि धर्मत्यागी व पापाचारी होते तौ रावण हमको हाथपर स्थित सर्पकी समान त्यागकर सुखी हो सकता ॥ २१ ॥ पराया धन हरनेंमें तैयार और पराई स्त्रीके हरनेंवाले दुरात्माको जलते हुए गृहकी समान त्यागकरना ही उचित जानकर हमनें रावणका परित्याग कियाहै ॥ २२ ॥ जो पुरुप पराया धन ग्रहण करै और पराई स्त्री जिसनें ग्रहणकी हो और जिसके लिये बन्धु बान्धव शंका करतेहों उसका इन्हीं तीन दोषोंसे क्षय हो जाताहै, यह सब अवगुण तुम्हारे पितामें हैं ॥ २३ ॥ इस उपरान्त महर्षियोंका घोर वध, सब देवताओंसे लड़ाई क्रोध वैर और विरुद्धता ॥ २४ ॥ प्राण व ऐश्वर्यका नाश करनेवाले यह सब दोष तुम्हारे पिता हमारे बड़े भाई साहबमेंहैं, सो इन दोषोंनें इनके गुणोंको ढक लिया जैसे बादल पर्वत को छाय लेते हैं ॥ २५ ॥ इन सब दोषोंको देखकरही तौ हमनें तुम्हारे पिता और अपने ज्येष्ठभाई रावणको परित्याग कियाहै; अब तुम्हारे पिता तुम या लंका नगरी कुछभी नहीं रहैगी ॥ २६ ॥ हे राक्षस तुम बालकगर्वित और अतिशय दुर्विनीतहो इसी कारणसे ऐसे कालके फंदेमें फंसेहो, इस समय जो अभिलाषहो वह तुम हमको कहलो ॥ २७ ॥ रे राक्षसोंमें नीच ! तुमनें पहले हमको कड़वे वचन कहेथे इसीलिये तुम आज ऐसी घोर विपदमें पड़ेहो; अधिक क्याकहैं; इस समय वट वृक्षके नीचे प्रवेश करनाभी तुम्हारे लिये बड़ा कठिन कामहै ॥ २८ ॥ काकुत्स्थ लक्ष्मणजीको पराजित करकै तुम आज जीवित अवस्थामें लौटनेको समर्थ नहीं होगे; तुम संग्राममें नरदेव लक्ष्मणजीके साथ संग्राम करके उनके हाथसे मृतक हो यमराजके गृहमें गमन करके देवता लोगोंका संतोष रूप बड़ा भारी कार्य पूरा करोगे ॥ २९ ॥

निदर्शयित्वात्मबलंसमुद्यतंकुरुष्वसर्वायुधसा

यकव्ययम् ॥ नलक्ष्मणस्यैत्यहिबाणगोचरं
त्वमद्यजीवन्सबलोगमिष्यसि ॥ ३० ॥

हे इन्द्रजित! तुम सब प्रकारसे आयुध उठाय लक्ष्मणजी पर चलाय अपनी सामर्थ्य दिखाओ, परन्तु लक्ष्मणजीके बाण मार्गमें पतित होकर आज जीवित अवस्थाको तुम यहांसे नहीं जाय सकोगे ॥ ३० ॥ इ० श्री-म० वा० आ० यु० भाषानुवादे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥

विभीषणवचःश्रुत्वारावणिःक्रोधमूर्छितः ॥ अ
ब्रवीत्परुषंवाक्यंक्रोधेनाभ्युत्पपातच ॥ १ ॥

बिभीषणजीके वचन सुनकर भयंकर बलवान रावणका पुत्र मेघनाद क्रोधसे प्रज्वलित और क्रोधमें भर उठ कर अनेक कठोर वचन कहता हुआ ॥ १ ॥ वीर श्रेष्ठ इन्द्रजीतके हाथमें खड्ग व और दूसरे अस्त्र शस्त्र-भीथे उसके रथमें काले रंगके घोड़े जुते हुएथे वह काल मृत्युकी समान खड़ा होगया ॥ २ ॥ उसके हाथमें बड़ाभारी वेगवान धनुषथा और उस पर शत्रुओंके नाश करनें वाले भयंकर बाण मेघनादनें चढ़ाये ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त उस विपुल धनुष धारी समलङ्कृत अमित्रघाती, बलशाली इन्द्रजीतनें स्वाभाविक रूपसे भूषित लक्ष्मणजीको देखा ॥ ४ ॥ अपने तेजसे दीप्तिमान हनुमानजीकी पीठ पर सवार लक्ष्मणजीको उसनें देखा उनके देखनेंसे जानागया कि मानों उदयाचलपर सूर्य भगवान उदय हुएहैं ऐसे लक्ष्मणजीसे और उनके सहकारी बिभीषणजीको ॥ ५ ॥ व और दूसरे वानर शार्दूलोंको देख कर मेघनादनें कहाकि; हमारा पराक्रम देखो आज हमारे धनुषसे छूटी हुई दुरासह बाणोंकी वर्षा देखो, ॥ ६ ॥ जोकि आकाशसे वर्षती हुई जल धाराकी समान दिखाई देगी और उसको तुम सब सहोगे जिस प्रकार अग्नि रुईके ढेरको भस्म कर देतीहै वैसेही आज हमारे बड़ेभारी धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समूह तुम्हारी सबकी देहोंको विदीर्ण करेंगे ॥ ७ ॥ आज तीक्ष्ण शूल, शक्ति, ऋष्टि, पटा, व दूसरे शायक समूहसे काटकर हम तुम सबको यम लोकमें भेज देंगे ॥ ८ ॥ जिस समय हम संग्राममें बादलकी समान शब्द करके अति शीघ्रतासे

बाणवर्षण करते रहेंगे तब कौन हमारे सामने खड़ा रहनेको समर्थ होगा ? ॥ ९ ॥ हेलक्ष्मण! पहले हमारे वज्रकी समान बाणोंके प्रहारसे रात्रिके समय तुम दोनो भ्राता जो अनुचर लोगोंके साथ अचेत होकर गिर पड़ेथे ॥ १० ॥ सो क्या अब तुम उसको भूल गये, बोध होताहैकि भूलही गये। हम सर्पकी समान क्रोधमें भरकर खड़ेहैं आज इस समय जबकि तुम हमारे साथ युद्ध करतेहो तब निश्चयही आज तुम यमराजके भवनको सिधारोगे ॥ ११ ॥ अभय वदन रघुनंदन लक्ष्मणजी राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजितके ऐसे गर्वित वचन सुन क्रोधमें भरकर कहते हुए ॥ १२ ॥ अरे निशाचर! तुम वचनसे कार्यके दुर्गम पार कुछ चले गये परन्तु जो कार्यसे दुर्गम पार जाय सकतेहैं वही बुद्धिमान कहे जातेहैं ॥ १३ ॥ हेदुर्मते! कोई पुरुषभी जिसके साधनेंको समर्थ नहीं हो सकता तुम हीनार्थ होकरभी वचनोंसे हमारे पराजय रूप उस कार्यको साधन करते हुए अपनेको कृतार्थ समझतेहो ॥ १४ ॥ और तुमनें हमारे मूर्छित करनेंके विषयमें जो कहा, तौ तुमनें उस समय संग्राममें अन्तर्ध्यान हो कर जो कार्य किया उस कार्यकी वीर लोग प्रशंसा नहीं करते वैसा कार्य तौ तस्कर लोगही किया करतेहैं ॥ १५ ॥ हेनिशाचर! वृथा अपनी बड़ाई क्यों मारतेहो? जिस प्रकार हम तुम्हारे बाणोंके सामनें खड़ेहैं, वैसेही तुमभी सन्मुख समरमें टिककर अपने पराक्रमको दिखाओ ॥ १६ ॥ महाबलवान् समर विजयी इन्द्रजीतनें इस प्रकारसे कहे जाकर भयंकर धनुष पर टंकारदे तीक्ष्ण बाणोंका चलाना आरंभ किया ॥ १७ ॥ उस कालमें मेघनादके चलाये हुए सर्पके विषकी समान महा वेगवान बाणोंके समूह लक्ष्मणजीके शरीर पर गिरतेही श्वासलेते हुए सर्पकी समान पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे वेगवान रावणका पुत्र इन्द्रजित महावेगवाले बाणोंके समूहसे सुमित्राके पुत्र शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीको वींधता हुआ ॥ १९ ॥ मेघनादके बाण समूहसे अंग अति विंधाये रुधिरसे भीगे हुए लक्ष्मणजी धुंआ रहित अग्निकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ २० ॥ तब इन्द्रजीत अपना यह वीर युक्त कर्म देख बड़ाभारी सिंहनादकर गर्वित भावसे लक्ष्मणजीसे बोला ॥ २१ ॥ कि हेलक्ष्मण! आज हमारे बड़ेभारी धनुषसे छूटे हुए

जीवनका अंत करनेंवाले तीखी धारवाले बाण तुम्हारा जीवन ग्रहण करेंगे॥ २२ ॥ लक्ष्मण! आज हम करके तुम्हारे गिरनें और मृतक होनेंपर शृगाल, गिद्ध और बाज मांस खानेको तुम्हारे ऊपर टूटेंगे॥ २३ ॥ परम दुर्मति क्षत्रियोंमें नीति अनार्य राम आजही तुम सरीखे भक्त भ्राता को हमसे मारा हुआ देखेगा॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण! आज हमसे तुम्हारे मारे जानेंपर, राम तुम्हारा कवच छिन्न भिन्न धनुष टूटा हुआ और सब उत्तम अंगोंको कटा हुआ देखेगा॥ २५ ॥ रावणके पुत्र मेघनादनें जब कठोर भावसे यह कड़े वचन कहे तब अर्थके जाननेंवाले लक्ष्मणजीनें क्रोधमें भरकर उनको उत्तर दिया॥ २६ ॥ रे क्रूरकर्मकारी खोटी बुद्धि वाले निशाचर! ऐसा कहनेंकी क्या अवश्यकताहै? वचन बल छोडकर कार्यसे अपने कहे हुएको पूराकर दिखा ॥ २७ रे निशाचर ! विनाही कार्य किये हुए क्यों अपनी बड़ाई मारताहै? जिस्से तेरी बडाई करनेंमें हमारी श्रद्धा होसके ऐसा कार्यकर॥ २८ ॥ रे पुरुषोंमें नीच! यहदेख! हम वृथा अपनी बड़ाई और किसीकी निन्दा न करके और विनाही किसीके कठोर वचनके कहे तुमको वध करते हैं ॥ २९ ॥ लक्ष्मणजीनें यह कहकर धनुषको कानतक खेंच वेगवान अति तीखे पांच बाण इन्द्रजीतकी छातीमें मारे॥ ३० ॥ उस काल सुन्दर पंखोंके लगनेंसे अति वेगशाली और प्रकाशमान सर्पोंकी समान वह बाण इन्द्रजीतकी छातीमें सूर्यकी किरणोंके समान शोभापानें लगे॥ ३१ ॥ लक्ष्मणजीके बाणोंसे घायलहो, क्रोधमें भर राक्षसवीर मेघनादनेंभी तीन बाण मारकर लक्ष्मण जीको विद्ध किया॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे संग्राम भूमिमें परस्पर विजयकी अभिलाषा किये उन दोनों नर राक्षस सिंहोंका भयंकर और कठोर युद्ध होनें लगा ॥ ३३ ॥ दोनोंही विकराल बल संपन्न और विक्रमशालीथे दोनोंही परम अजेय, समान बल, और तेजवालेथे ॥ ३४ ॥ इसलिये उन दोनों वीरोंके संग्राममें भिड़नें पर वह दोनोंही, वृत्रासुर और इन्द्र, व आकाशमें टिके हुए ग्रहोंकी समान दुराधर्ष जान पड़नें लगे ॥ ३५ ॥ महाबल दो सिंहोंकी समान रणमें खड़े होकर दोनों जने असंख्य बाण चलाय असंख्य युद्ध करनें लगे॥ ३६ ॥ इस प्रकार नर राक्षस राजनंदन युगल संग्राममें विराजमान हो हर्षित अंतःकरणसे युद्ध करनें लगे " श्लोक

❀ परस्परं तौ प्रतिवर्षतुर्भृशं शरौघवर्षेण बलाहकाविव । अतीक्ष्मा विव्यथतुर्म्महाबलौ महाहवे शम्बरवासवोपमौ ॥ ३७ ॥

नरराक्षसमुख्यौतौप्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥ ३८ ॥

❀ अनुवाद " उस कालमें वासव (इन्द्र) और शम्बरासुरकी समान महावलवान दोनों वीर २ मेघोंकी समान बाणोंकी वर्षा करके एक दूसरेके ऊपर बाण वर्षानें लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० युद्धकाण्डे भा० अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥

ततःशरान्दाशरथिःसंधायामित्रकर्षणः ॥ सस
र्जराक्षसेंद्रायक्रुद्धःसर्पइवश्वसन् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त शत्रुओंके मारनें वाले दशरथ कुमार लक्ष्मणजी क्रोधितहो सर्पश्रेष्ठकी समान स्वाश छोड़ते हुए राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजीतके ऊपर बाण चलानें लगे ॥ १ ॥ तब लक्ष्मणजीके धनुषकी प्रत्यंचाका शब्द सुनकर राक्षसोंमें श्रेष्ठ इन्द्रजितका मुख विवर्ण होगया और उसनें लक्ष्मणजीकी ओर देखा ॥ २ ॥ राक्षसश्रेष्ठ रावणके पुत्र इन्द्रजितको विवर्ण वदन और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीको युद्धमें अनुरागी हुआ देख बिभीषणजीनें लक्ष्मणजीसे कहा ॥ ३ ॥ हे महावीर ! रावणके पुत्र मेघ-नादका मुख विवर्ण होगया व और भी जो दुर्निमित्त दृष्टि आतेहैं तिस्से निश्चय जाना जाताहै कि इसका उत्साह जाता रहा इसमें संदेह नहीं, इस लिये आप शीघ्रतासे इसका वध करनेंमें यत्नवानहो ॥ ४ ॥ बिभीषणजीके वचन सुनकर सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीनें तीक्ष्ण विषवाले विषधर सर्पोंकी समान बाण धनुषपर चढ़ायकर छोड़े ॥ ५ ॥ इन्द्रजीके वज्रकी समान कठिन स्पर्श वाले उन बाणोंसे घायलहो रावणका पुत्र मेघनाद मुहूर्त भर-तक मूर्छित रहा और उसकी सब इन्द्रियें विकल होगईं ॥ ६ ॥ परन्तु मुहूर्त भरके पीछेही सावधानहो चेतना पायकर उसनें देखाकि वीर श्रेष्ठ लक्ष्मणजी संग्राममें खड़ेहैं तब उसनें क्रोधके मारे लाल २ नेत्र-

कर लक्ष्मणजीके निकट ॥ ७ ॥ फिर जायकर उनसे यह कठोर वचन कहे: कि पहले युद्धमें तुम जो अपने भ्राताके साथ हमारी बाहोंके वन्धनमें बंध गयेथे वह क्या तुमको याद नहींहै? ॥ ८ ॥ जिस दिन हमारे साथ प्रथम युद्ध हुआ उस दिन हमनें नाग फांससे तुम्हारे भ्राताके सहित तुमको वज्रकी समान बाणोंसे बांधलियाथा, और तुम पृथ्वीपर पडे लोटतेथे क्या उस दिनको तुम भूलगये? ॥ ९ ॥ हम जानते हैं कि उस दिनकी तुमको याद नहीं रही, जो कुछभीहो, जबकि तुमनें हमारा नाश करना चाहाहै तब यमराजके भवनमें जानेंकीही तुम्हारी इच्छाहै ॥ १० ॥ अथवा यदि पहले युद्धमें हमारा पराक्रम न देखाहो तौ क्षणभर तक ठहरो, हम तुमको इसी समय अपनी सामर्थ्य दिखलाते हैं ॥ ११ ॥ मेघनादनें यह कहकर सात बाण लक्ष्मणजीके मारे, और हनुमानजी पर भी तीक्ष्ण धारवाले दश बाण चलाये ॥१२॥ और क्रोधके मारे दूने उत्साहसे युक्त होकर उस वीर्यवाननें बड़े बलसे सौ बाण बिभीषणजीके मारे ॥ १३ ॥ नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके लघुभ्राता लक्ष्मणजी इन्द्रजीतका ऐसा कार्य देख उसके विषयमें चिन्ता नकर हँसते २ यह बोले कि "ऐसे बाण चलानेसे क्या फल हो सकताहै" इस प्रकार कहा ॥१४॥ निडर वदन लक्ष्मणजीनें धनुष चढाय क्रोधमेंभर इन्द्रजीतके ऊपर घोर बाण चलायकर कहा ॥ १५ ॥ रे निशाचर! तुम्हारे अल्प वीर्यवाले और लाघवयुक्त बाण हमको क्लेशके देनेवाले नहीं वरन सुखहीके देनेवाले हुए हैं ॥ १६ ॥ तुमनें जिस प्रकारका प्रहार किया समरके अभिलाषी रणके बीच जाय शूर लोग युद्ध करते हुए कभी ऐसा प्रहार नहीं करते, लक्ष्मणजी यह कहकर बाणोंकी वर्षा करनें लगे ॥ १७ ॥ जिसप्रकार तारा गणोंका समूह पृथ्वीपर गिर पड़े, वैसेही लक्ष्मणजीके बाणोंसे इन्द्रजीतका सुवर्णसे बना हुआ कवच छिन्नभिन्न हो बिथरायकर रथके नीचे गिर पड़ा ॥ १८ ॥ उस कालमें वह वीर रावणके पुत्र मेघनादका लक्ष्मणजीके बाणोंसे जब कवचभी टूटगया, और उसके शरीरमें घावहो उनसे रुधिर निकलनें लगा; तब वह प्रभातकालीन सूर्यकी समान शोभायमान होनें लगा ॥ १९ ॥ तब भयंकर विक्रमकारी वीरश्रेष्ठ रावणके पुत्र मेघनादनें क्रोधकर हजार बाण संग्राममें लक्ष्मणजीके मारे ॥ २० ॥ तब राक्षसके

बाणोंसे लक्ष्मणजीकाभी बड़ा भारी दिव्य कवच छिन्नभिन्न होगया अब दोनों वीर बराबर हुए कारण कि लक्ष्मणजीनें मेघनादके कवचको काटा, मेघनादनें इनके कवचको काटा; इस्से इन दोनों जनोंकी बराबर ... हुई ॥ २१ ॥ बाणोंके लगनेंसे दोनों जने वारंवार श्वास ले लेकर भयानक युद्ध करने लगे, इन दोनों जनेके बहुत देरतक तीखे बाणोंसे सब प्रकार परस्पर एक दूसरेका शरीर विद्ध करनेंसे दोनोंके सब अंग कट गये और उनसे रुधिर बहनें लगा ॥ २२ ॥ रण करनेंमें चतुर भयंकर विक्रम-कारी; वह दोनों, महात्मा विजय प्राप्त करनेंके लिये यत्नवानहो परस्पर एक दूसरेके अंगोंको घायल करनें लगे ॥ २३ ॥ इन दोनों वीरोंके ध्वज और कवच कटगये और दोनोंके शरीरमें बाणोंके लगनेंसे घाव होगये और उससे गरम रुधिर निकलनें लगा कि जैसे झरनेंसे जल निकलताहै ॥ २४॥ जलकी वर्षा करते हुए नीले रंगके काले दो मेघोंकी समान इन दोनों जनोंनें भयंकर शब्दकारी घोर बाण वर्षानें आरंभ किये ॥ २५ ॥ इस प्रकारसे युद्ध करते हुए इन दोनों वीरोंको बहुत समय बीतगया, परन्तु इन दोनोंमेंसे कोई नहीं थका, न रणसे विमुखही हुआ ॥ २६ ॥ अस्त्र विद्या जाननें वालोंमें श्रेष्ठ दोनोंही परस्पर एक दूसरेको अपने शरीरको प्रबल दिखाते यहांतक कि इन दोनों वीरोंके चलाये हुए बाणोंसे आकाश ढक गया ॥ २७ ॥ इन दोनों नर व राक्षसोंने दोष विहीन लाघव संपन्न विचित्र और उत्तम बाण चलाय, घोर कठोर युद्ध आरंभ किया ॥ २८ ॥ इन दोनों वीरोंका अलग २ सिंहनाद करना सुनाई आने लगा, जिसने वज्रकी समान शब्द सुना, इस घोर दारुण शब्दसे उसकाही हृदय कांप गया ॥ २९ ॥ समरमें मतवाले दोनों वीरोंका शब्द अत्यन्त घोर कठोर शब्द करते हुए मेघोंकी समान श्रवण होताथा ॥ ३० ॥ विजय और कीर्ति पानेंको यत्न करते हुए उन बलशालियोंके शरीरमें सुवर्णकी फोंक लगे हुए बाणोंसे घाव होगये; और उन बाणोंसे रुधिरकी धार निकलनें लगी ॥ ३१ ॥ दोनों वीरोंकी देहोंके अंगोंसे निकले और रुधिर लगे सुव-र्णकी फोंकसेयुक्त बाण गिरकर पृथ्वीमें प्रवेश करगये ॥ ३२ ॥ और दूसरे निशाचर गण अपने तीक्ष्ण बाणोंसे आकाशमेंही हजारों टुकडे करके बिथरानें लगे, और बाणोंको बाणोंसे भिडाने लगे ॥ ३३ ॥

जिस प्रकार यज्ञभूमिमें दो अग्नियोंके चारों ओर कुशोंके ढेर रक्खे रहतेहैं; वैसे ही उन वीरोंके घोर युद्धमें सब बाणराशि हुई ॥ ३४ ॥ उस कालमें जब उन महाबलवानोंकी देहमें घाव होगये तब वह दोनोंजन वनमें लगे हुए पत्तोंसे विहीन और पुष्पोंसे ढके हुए टेसू और शाल्मलीके वृक्षोंके समान शोभायमान हुए ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे परस्पर विजयकी अभिलाषा किये लक्ष्मण और इन्द्रजीत वारंवार घोर कठोर संग्राम करनें लगे ॥ ३६ ॥ कभी लक्ष्मणजी इन्द्रजीत पर चोट चलातेथे कभी इन्द्रजीत लक्ष्मणजी पर प्रहार करताथा परन्तु इन दोनोंमेंसे कोई नहीं थका ॥ ३७ ॥ वह महावीर्य वेगवान वीर युगल शरीरमें प्रवेशित हुए बाण समूहसे आच्छादित होकर वृक्षोंके समाकुल दो पर्वतोंकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ ३८ ॥ उनके बाणसे युक्त रुधिरसे गीले समस्त गात्र जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित होगये ॥ ३९ ॥ इस प्रकार युद्ध करते २ उनको बहुत समय बीतगया परन्तु उनमेंसे कोईभी नहीं थका न कोई रणसे विमुख हुआ ॥ ४० ॥

अथसमरपरिश्रमंनिहंतुंसमरमुखेष्वजितस्य लक्ष्मणस्य ॥ प्रियहितमुपपादयन्महात्मासमरमुपेत्यविभीषणोवतस्थे ॥ ४१ ॥

इतनेमेंही महात्मा विभीषणजी संग्राममें अपराजित लक्ष्मणजीके रणका परिश्रम दूर करनेंके लिये उनका प्रिय और हित साधन करनेंकी वासनासे उनके निकट आय विराजमान होनें लगे ॥ ४१ ॥ इ०श्रीम० वा०आ०यु०भा०एकोन नवतितमःसर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमःसर्गः ॥

युध्यमानौततोदृष्ट्वाप्रसक्तौनरराक्षसौ ॥ प्रभिन्नाविवमातंगौपरस्परजयैषिणौ ॥ १ ॥

परस्पर जीतनेंकी इच्छा किये मदसे अन्धे दो हाथियोंकी समान युद्ध करते हुए व एकमें सटे हुए राक्षस श्रेष्ठ और मनुष्य श्रेष्ठको ॥ १ ॥ परस्पर समर करते हुए देखनेकी इच्छासे महाबलवान व शूर रावणके भाई

विभीषणजी आप संग्राममें खड़े हुए ॥२॥ इसके उपरान्त अपने श्रेष्ठ धनुष पर टंकारदे उन्होंनें राक्षस लोगोंके ऊपर तीक्ष्ण वाण चलाये॥ ३ ॥ जिस प्रकार वज्र महा पर्वतोंको विदारण करता है वैसे ही अग्निके समान इन सब बाणोंनें सावधानीसे गिरकर राक्षसोंके देहोंको विदीर्ण करनें लगे ॥ ४॥ विभीषणके अनुचर राक्षसश्रेष्ठ गणभी, शूल, असि, और पटेसे, राक्षसोंको मारने लगे ॥ ५ ॥ उस कालमें विभीषणजी उन सचिवराक्षसोंसे परिवृत्त होकर हिरस करनें वाले हाथीके वच्चोंसे परिवेष्टित महामातंगकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त काल जाननें वाले राक्षस श्रेष्ठ विभीषणजी राक्षसोंके वधकरनेंमें अभिलाषी वानर लोगोंको पुकारकर समयानुसार यह वचन बोले ॥ ७ ॥ कि यह इन्द्रजीतही रावणका एक मात्र आशयहै, इसके साथमें जो सैना है वहभी थोडीहीसी है फिर भला इस समय तुम लोग निश्चन्त और चेष्टारहित क्यों हो ॥ ८ ॥ इस पापी राक्षसके संग्राममें मारे जाने पर रावणके सिवाय मानों और सबही मारडाले गये ॥ ९ ॥ वीर प्रहस्त मारा गया, महा बलवान निकुंभ कुंभकर्ण, कुंभ, निशाचर धूम्राक्ष ॥ १० ॥ जंबु महामाली तीक्ष्ण वेग अशनिप्रभ, सुतघ्न, यज्ञकोप, राक्षस वज्रदंष्ट्र ॥ ११ ॥ संह्राद, विकट, अरिघ्न, तपन, व मंद, प्रवास, प्रजंघ, जंघ, ॥ १२ ॥ दुर्द्धर्ष, अग्निकेतु, वीर्यवान रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व राक्षस, सूर्यशत्रु, ॥ १३ ॥ अकंपन, सुपार्श्व, राक्षस चक्रमाली, कंपन, सत्ववंत, देवान्तक, नरान्तक ॥ १४ ॥ इत्यादि बलवान राक्षस श्रेष्ठोंको मारकर तुम अपनी बांहोंसे समुद्रको पार कर चुकेहो, इन व शीघ्रता से इस गोवधकी समान छोटे जलके पार तुमलोग होजाओ ॥ १५ ॥ हे वानरगण! बल दर्पित समस्त राक्षस मारे गये हैं तुम लोगोंको जीतनेंके लिये केवल एक यही वचा हुआहै ॥ १६ ॥ चचाके स्थानमें होकर पुत्रकी समान इन्द्रजीतको मार डालना अकर्तव्य होनें परभी हम श्रीरामचंद्रजीके लिये घृणा त्यागकर अपनें भतीजेका विनाश करेंगे ॥ १७ ॥ हेवानरश्रेष्ठगण! हम स्वयंही इसके वध करनेंका अभिलाष करतेहैं; परन्तु आंसुओंका जल दोनों नेत्रोंको रोक लेताहै इस कारण महाबाहु लक्ष्मणजी इसका वध करैं ॥ १८ ॥ और

तुम सब आगे बढकर अगल बगलकी रक्षा करनेंवाले इसके अनुचर लोगोंको मार डालो इस प्रकार जब अतितेजस्वी बिभीषणजीनें कहा तौ ॥ १९ ॥ वानर लोग अत्यन्त संतुष्ट हुए और हर्षित अंतःकरणसे अपनी २ पूंछ उठायकर कंपायमान करनें लगे। इसके उपरान्त मेघको देखकर मोर गण जिस प्रकारसे शब्द करतेंहैं, वानर शार्दूल गणभी वैसेही सिंहनाद और अनेक प्रकारके शब्द करनें लगे ॥ २० ॥ इसी अवसरमें ऋक्षराज जाम्बवानजी अपने दलके साथ आगे बढ़े और उनकी सैनानें, नख, दांत, चलाय, और पत्थरोंकी वर्षासे राक्षसोंको पीड़ित करना आरंभ किया ॥ २१ ॥ राक्षस लोग रीछोंके हाथसे अपना नाश होता देखकर अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण करकै निर्भयहो रीछोंको आच्छादितकर लिया ॥ २२ ॥ वाण, तीक्ष्ण फरसे, पटा, यष्टि, तोमर आदि आयुधोंसे राक्षसोंकी सैनाको मारते हुए जाम्ववानजीको समरमें सब राक्षस मारनें लगे ॥ २३ ॥पूर्वकालमें देवता और असुरलोगोंका जिस प्रकार बड़ाभारी सिंहनाद युक्त घोर युद्ध हुआथा उसी प्रकारसे रोष पूर्ण वानर और राक्षसोंका घोर युद्ध होने लगा ॥ २४ ॥ इसी अवसरमें महावीर हनुमानजीनेंभी पीठपर सवार हुए लक्ष्मणजीको विश्राम करनेंके लिये भूमिमें उतार क्रोधमें भर पर्वतका शृङ्ग उखाड़ ॥ २५ ॥ दुरासह सहस्रों राक्षस लोगोंका बड़ाभारी नाश करनें लगे इसी समयमें वली इन्द्रजीत अपने चचासे घोर युद्ध करकै॥२६॥ फिर परवीरघाती लक्ष्मणजीके सामनें धाया तब फिर उन वीरश्रेष्ठ नर और राक्षसका युद्ध आरंभ हुआ ॥ २७ ॥ महावली वेगवान दोनो वीर बाणोंके समूह वर्षण करते परस्पर एक दूसरेको चोट पहुंचाने लगे और दोनोही क्षण २ में अन्तर्ध्यान होनें लगे॥२८॥ चंद्रमा और सूर्य जिस प्रकार मेघमें छिप जातेहैं लक्ष्मण और इन्द्रजीतभी वैसेही कभी बाणोंके जालसे ढक जाते और कभी प्रकाशित होंने लगते यह दोनों वीर इस प्रकार लघु हस्ततासे कार्य करतेकि धनुषका ग्रहण करना और बाण चढाना और छोड़ना किसीनें नहीं देखपाया ॥ २९ ॥ उस कालमें कब धनुष ग्रहण करतेहैं व कब हाथ बदलतेहैं कब बाण लेते हैं कब तीरको खेंचतेहैं कब मुट्ठी बांधतेहैं और कब निशाना मारतेहैं यह किसीनेंभी नहीं जाना ॥ ३० ॥ इस प्रकार अन्तर्ध्यान रहकर अपनी २

हस्त लाघवता दिखाते जब दोनों जनें युद्ध करनें लगे; तब उनके धनुषके वेगसे छूटे हुए बाण जालसे ॥ ३१ ॥ आकाश मंडल व्याप्त होगया कि जिस्से सबही अदृश्य होगये कोई किसीको नहीं देखताथा केवल लक्ष्मणजी, रावणके पुत्र मेघनादको और मेघनाद लक्ष्मणजीको ताक कर बाण मारतेथे ॥ ३२ ॥ उस समय उस युद्धमें यह अपनी ओरका है यह पराई ओरका है इस बातके जाननेंमें घोर असुभीता हुआ, वह दोनों वीर अत्यन्त वेगसेतौ तीखे बाण चलाय रहेथे ॥ ३३ ॥ उनसें आकाशभी अंतर हितहो घोर अंधकारसे ढक गया; उन दोनोंके छोड़े तीखे सैकड़ों हजारों बाणोंसे ॥ ३४ ॥ सब दिशा विदिशा बाणोंसे व्याप्त होगई सब दिगन्तर भयंकर अंधकारसे पूर्ण होगया ॥ ३५ ॥ इस ओर सूर्य नारायणके छिप जानेंसे औरभी महा अंधियारा छाया. और वहांपर रुधि-रकी हजारों बड़ी बड़ी नदियें वहनें लगीं ॥ ३६ ॥ मांसके खानें वाले क्रूर पक्षीगण सब कहीं घोर शब्दसे चिल्लातेथे वहां पर वायु नहीं चलतेथे! अग्निभी नहीं जलतीथी ॥ ३७ ॥ यह देखकर महर्षि गण और चारण लोगोंके सहित सिद्ध गणभी " सब लोगोंका मंगलहो " यह वचन कहते २ उस स्थानमें आये ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त सुमि-त्राके पुत्र लक्ष्मणजीनें चार बाणोंसे राक्षसोंमें सिंह इन्द्रजीतके सुवर्ण भूषित काले रंगके! चारों घोडोंको बींधडाला ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे भालेसे जोकि पीत और पैनाथा और अति जोरसे खेंचकर चलाये हुये और सुवर्णसम प्रकाशित ॥ ४० ॥ इन्द्रके वज्रकी समान बहुतसे बाणोंसे इधर उधर रथ दौड़ाते हुए सारथिका उसी अशिनिकी समान बाणसे जोकि प्रत्यंचाके शब्दसे नाद कर रहाथा ॥ ४१ ॥ अति जल्द बाजीके साथ श्रीमान् लक्ष्मणजीनें उसका शिर काटडाला, सारथिके मारे जानेंपर महा तेजमान मंदोदरीका पुत्र इन्द्रजित ॥ ४२ ॥ ॥ स्वयं सारथिका कार्य करनें लगा और धनुषकोभी चलाता हुआ । उस कालमें जिन्होंनेभी वह उसका सारथीपनका कार्य देखा; वह सबही उसको अद्भुत माननें लगे ॥ ४३ ॥ जब मेघनाद सारथिका कार्य करता तब लक्ष्मणजी उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते । और जब वह सारथि होकर युद्ध करता, तब उसके घोडोंके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगादी जा-

तीथी ॥ ४४ ॥ इसी समयमें महा वीर लक्ष्मणजी इन्द्रजितको निर्भय विचरण करते देखकर शीघ्रतासे बाणोंको छोड़ उसको बींधने लगे ॥४५॥ सारथिको इस प्रकारसे मरा हुआ देख और आपभी इस प्रकारसे बाणोंसे पीड़ितहो रावणका पुत्र मेघनाद मनमें मलीन हुआ और उसका युद्ध उत्साह जातारहा ॥ ४६ ॥ वानरोंके यूथपति उस निशाचरको पीड़ित और उदास देख परम प्रसन्नहो लक्ष्मणजीकी बहुतही प्रशंसा करते हुए ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त प्रसाथी, रसभ, शरभ, गन्धमादन, यह चार वानरोंके यूथप राक्षस वीर मेघनादका वीरपन न सहकर उसके साथ युद्ध करनें लगे ॥ ४८ ॥ यह सब वानर बड़े वेगसे अपने संपूर्ण बलसे ऊपरको कूद उसके चारों घोड़ोंपर अति भयंकर विक्रम करके कूदे ॥ ४९ ॥ उन पर्वताकार वानरेंन्द्रोंके घोड़ोंकी पीठपर कूदनेंसे चारों घोड़ोंके मुखसे रुधिरकी धारा बहने लगी ॥ ५० ॥ वह घोड़े मथित होगये उनकी देह टूट गई, और वह मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपड़े जब उसके घोड़ेभी मरगये और बड़ाभारी रथभी टूटगया ॥ ५१ ॥ तब यह सब वानर अतिवेगसे कूदकर लक्ष्मणजीके पार्श्वमें आगये ॥ ५२ ॥ जब घोड़े मरगये और सारथीभी मारागया तब इन्द्रजित रथसे उतर कर बाणोंकी वर्षा करता हुआ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीकी ओर धाया ॥५३॥

ततोमहेंद्रप्रतिमःसलक्ष्मणःपदातिनंतंनिहतैर्हयोत्तमैः ॥ मृजंतमाजौनिशिताञ्छरोत्तमान् भृशंतदाबाणगतैर्व्यदारयत् ॥ ५४ ॥

यह देखकर सुरराज इन्द्रकी समान लक्ष्मणजी उस तीखे बाण चलाते हुए घोड़े मरजानेंसे पैदल हुए इन्द्रजीतको बाणोंके समूहसे वारंवार विदारित करनें लगे ॥५४॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०नवतितमः सर्गः ॥९०॥

एकनवतितमः सर्गः ॥

सहताश्वोमहातेजाभूमौतिष्ठन्निशाचरः ॥ इंद्रजित्परमक्रुद्धःसंप्रजज्वालतेजसा ॥ १ ॥

चारों रथके घोड़ोंके मरजानें और भूमिमें पैदल चलना होनेंके

कारण निशाचर इन्द्रजित अत्यन्त क्रोधित हुआ और तेजसे प्रज्वलितहो-उठा ॥ १ ॥ दो श्रेष्ठ हाथियोंके समान वह दो धनुषधारी श्रेष्ठ विजय की अभिलाष करकै परस्पर एक दूसरेको वाण मारनें लगे ॥ २॥ वानर और निशाचर गणभी अपने २ स्वामीको न छोड़ करकै उनके निकट-ही टिके रहे और परस्पर एक दूसरेको मारडालनें लगे ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त रावणका पुत्र मेघनाद अति हर्षसे राक्षसोंको हर्षित कराता और समझाता हुआ कहनें लगा ॥ ४ ॥ हे राक्षस श्रेष्ठ गण! सब दिशाओंमें घोरतर अंधकार छा जानेके कारण रणभूमिमें अपना पराया कुछभी नहीं जानाजाताहै ॥ ५ ॥ इसलिये वानर गणोंको मोहित करनेंके लिये तुम निर्भय युद्ध करो और इतनेंमें मैंभी रथपर सवार होकर आया ॥ ६ ॥ तुम लोग वानर लोगोंके साथ ऐसा घोर युद्ध करोकि हमारे नगरमें प्रवेश करनेंके समय यह लोग युद्ध करके जिससे हमारी गति नहीं रोक-सकें ॥ ७ ॥ यह कहकर रावणका पुत्र शत्रुनाशी मेघनाद वानरोंको धोखादे रथके हेतु लंका पुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ ८ ॥ बहुतही शीघ्र उसका मेह भूषित रथ सजकर तैयार होगया, और मेघनादनें उसमें दिव्य घोड़े जुतवाये और उस रथमें, प्रास, खड्ग व अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रभी रक्खे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त हितका उपदेश देने वाला अस्त्र शस्त्र निपुण एक योग्य सारथीके कर्ममें नियत करके महातेजस्वी मेघनाद रथपर सवार हुआ ॥ १० ॥ मन्दोदरीका पुत्र मेघनाद प्रधान राक्षसोंसे वेष्टित और कालकी फांसीसे बँधकर अति शीघ्रता पूर्वक अपनी पुरीसे निकला ॥ ११ ॥ रावणका पुत्र मेघनाद, इस प्रकार अत्यन्त तेजमानहो नगरी लंकासे निकल जिस स्थानमें बिभीषण और लक्ष्मणजी विराजमानथे उसी ओर गमन करता हुआ ॥ १२ ॥ मेघनादको रथपर सवार हुआ देखकर रानी सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी, राक्षस विभीषणजी, और महावीर वानरगण ॥ १३ ॥ उस बुद्धिमानके कार्यकी शीघ्रता विचार अत्यन्त विस्मित हुए इस ओर मेघनाद क्रोधित होकर रणमें वानर यूथपोंको॥१४॥ बाणोंसे मार कर एकही बारमें सैकड़ों हजारोंको गिरानें लगा, समर विजयी मेघनाद अपने धनुषको मंडलाकार कर ॥ १५ ॥ वानरोंको बड़ी जल्द-बाजीके साथ मारनें लगा। वह वानर गण भयंकर विक्रमकारी नाराचोंसे

वध्यमानहो ॥ १६ ॥ लक्ष्मणजीकी शरणमें प्राप्त हुए, जिस प्रकार प्रजापतिकी शरणमें प्रजा जातीहै, तिसके उपरान्त समरमें क्रोधसे प्रज्वलितहो रघुनंदन लक्ष्मणजीनें अपने हस्तकी शीघ्रता दिखाय मेघनादका धनुष काट डाला ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त जितनें शीघ्रता पूर्वक दूसरा धनुष ग्रहण किया और उसपर रोदाचढ़ाताही था कि लक्ष्मणजीनें तीन बाणोंसे उसकोभी खंड २ कर डाला ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे जब रावणके पुत्र मेघनादका धनुष कट गया तब सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीनें विषधर सर्पकी समान पांच बाण उसकी छातीमें मारे ॥ १९ ॥ लक्ष्मणजीके बड़े भारी धनुषसे छूटे हुये इन सब बाणोंनें उस निशाचरकी देहमें प्रवेश किया, और रुधिरसे भीगे लाल वर्णवाले सर्पोंकी समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २० ॥ जब धनुष कट गया और यह पांच बाण लगे तो मेघनादके मुखसे रुधिर निकलनें लगा; और फिर उस बलवान दृढ़ रोदेसे युक्त बड़ा प्रचंड श्रेष्ठ धनुष ग्रहण किया ॥ २१ ॥ और जिस प्रकार देवराज इन्द्रजी जल वर्षातेहैं वैसेही लक्ष्मणजीको ताककर अति लाघवतासे मेघनाद बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २२ ॥ मेघनादकी छोड़ी हुई बाणोंकी वर्षा यद्यपि बड़ी कठिनतासे सहनेके योग्यथी परन्तु शत्रु दमनकारी लक्ष्मणजीनें सरलतासे उस बाण वर्षाको रोक दिया ॥ २३ ॥ उस समय महातेजस्वी संभ्रान्त चित्त लक्ष्मणजीका, मेघनादके बाण काटनेंका यह वीर जनोंके योग्य कार्य देख सबही विस्मित हुए और जिस कार्यको जहांतक संभव होसका सबने मनमें अद्भुत समझा ॥ २४ ॥ उस संग्राममें सुमित्रा नंदन लक्ष्मणजीनें अपनी शीघ्रता दिखाय क्रोधमें भर प्रत्येक राक्षसके तीन २ बाण मारे; और असंख्य बाणोंसे राक्षस नंदन मेघनादको पीड़ित किया ॥ २५ ॥ रावणका पुत्र मेघनादभी इन बलवान शत्रु करके समरमें अति घायलहो लक्ष्मणजी पर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २६ ॥ परन्तु परवीरघाती धर्मात्मा रघुश्रेष्ठ लक्ष्मणजीनें उन समस्त बाणोंको अपने निकट आते २ अधबीचमेंही काट डाला ॥ २७ ॥ और उसके सारथिका शिर बड़ेभारी तीक्ष्ण भालेसे काट डाला, जब वह घोड़े, सारथिसे हीन होगये तबभी विह्वल होकर ॥ २८ ॥ ऐसी मंडलाकार गतिसे रथको लेकर घूमनें लगा कि वह घूमना अद्भुतकी समान जान

पड़ा, यह देखकर दृढ़ विक्रमकारी लक्ष्मणजी रोषके वश हुए॥ २९॥ और सबको त्रास उपजाय मेघनादके रथ घोड़ोंको बाण मारकर विद्ध किया, यह कर्म देख रावणका पुत्र मेघनाद रणमें क्रोध करता हुआ॥३०॥ और दश बाणोंसे उसनें रोम हर्षणकारी सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजीको मारा; वह विषधर सर्पोंकी समान वज्रतुल्य बाण लक्ष्मणजीके सुवर्णकी समान प्रभावाले कवचपर गिरकर खंड२ होगये ॥ ३१ ॥ तब रावणके पुत्र मेघनादनें उनके कवचको अभेद समझ उनके माथेमें तीन बाण मारे; जिनमें श्रेष्ठ फोंक लगी हुईथीं ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे अपने बाणोंकी चलानेंकी शीघ्रता क्रोधकर उसनें प्रगटकी उस शुभ माथेमें तीन बाणोंके गड़नेंसे रघुनंदन लक्ष्मणजी ॥ ३३ ॥ समरकी अभिलाषा किये रणमें तीन शृङ्गवाले पर्वतकी समान शोभायमान हुए राक्षस इन्द्रजित करके रणमें इस प्रकार आघात पाय, ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणजीनेंभी अति शीघ्रता पूर्वक पांच बाण मेघनादके मारे; यह बाण इस प्रकारसे खेंचकर लक्ष्यसे मारे गये कि कुंडल शोभित इन्द्रजीतके मुखमेंही लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे भयंकर विक्रमकारी महा धनुषधारी वीरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी और इन्द्रजित परस्पर एक दूसरेको बाणसे घायल करनेंलगे ॥ ३६ ॥ उस कालमें इन दोनों वीरोंकी देह रुधिरमें भीगजानेंसे फूलेहुए टेसूके दो वृक्षोंकी समान शोभायमान होनेंलगे ॥ ३७ ॥ वह दोनोंही विजयकी अभिलाषा करके धनुषकी चतुरता दिखाय घोर रूपी बाण छोड़ परस्पर एक दूसरेके सर्व शरीरमें मार पीड़ा देने लगे ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त रावणके पुत्र मेघनादनें क्रोधसे पूर्णहो अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे बिभीषणजीके शुभ वदनको वींध डाला ॥ ३९ ॥ लोहेकी गांसी लगे तीन बाणोंसे इन्द्र बिभीषणजीको वींध मेघनादनें एक २ बाणसे समस्त वानर यूथपोंको वींध डाला॥ ४० ॥ तब महातेजस्वी बिभीषणजीनें अत्यन्त क्रोधित होकर गदाके प्रहारसे दुरात्मा इन्द्रजीतके चारों घोड़ोंको मारडाला ॥ ४१ ॥ जब रावणके पुत्र मेघनादका सारथी मरगया और घोड़ेभी नाशको प्राप्तहुए, तब वह रथसे कूद एक शक्ति ग्रहणकर अपने चचा बिभीषणपर चलाता हुआ ॥ ४२ ॥ परन्तु सुमित्राके आनंद बढ़ानेंवाले लक्ष्मणजीनें उस शक्तिको गिरताहुआ देखकर तीखे बाण चलाय उसके दश टुकड़े कर

दिये कि जिस्से वह पृथ्वीपर गिरपड़ी ॥ ४३ ॥ धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ बिभीषणजीनेंभी उस अश्वविहीन मेघनादकी छातीको निशाना बनाय वज्रकी समान दारुण स्पर्शवाले पांच बाण चलाये ॥ ४४ ॥ वह निशानेको भेद करनेंवाले सुवर्णकी फोंक लगे समस्त बाण मेघनादकी देह फोड़ लाल वर्णवाले महा सर्पोंकी समान अरुण रंगके होगये ॥ ४५ ॥ तब इन्द्रजितनें अपने चचा बिभीषणजीके ऊपर महाक्रोध करकै यमराजका दिया हुआ महाबलसे युक्त उत्तम बाण ग्रहण किया ॥ ४६ ॥ भीम पराक्रमकारी महातेजस्वी लक्ष्मणजीनें रोषयुक्तहो इन्द्रजीत करकै चढाया हुआ वह महा बाण देख एक और बाण उठाया ॥ ४७ ॥ यह बाण स्वप्नमें अमितात्मा कुबेरजीनें लक्ष्मणजीको दियाथा; वह बाण जैसे दुर्जेयथा; वैसेही सुर असुर किसीके सहनेंके योग्य नहींथा ॥ ४८ ॥ उस कालमें इन दोनोंकी परिघाकार दोनो बांहों करकै दोनों ओरसे खेंचे जायकर दोनों धनुष दो क्रौञ्चपक्षियोंकी समान शब्द करनें लगे ॥ ४९ ॥ उन दोनों वीरों करकै श्रेष्ठ धनुषोंपर चढ़ेहुए वह उत्तम तेजसे प्रदीप्त दोनों बाण खेंचे जायकर प्रकाशमान होनेंलगे ॥ ५० ॥ जैसेही कि वे दोनों बाण खेंचकर छोड़गये वैसेही वह आकाशको प्रकाशमान करते हुए अतिवेगसे चले, और परस्पर एक दूसरेके मुखमें टक्कर मार वेगम भरे रहनेंके कारण गिर पड़े॥ ५१ ॥ तब उन घोर रूपवान उन दोनों बाणोंके परस्पर घिसनेंसे उनसे चिनगारियें और धुंआयुक्त दारुण अग्नि निकलनें लगी ॥ ५२ ॥ परस्पर टकरायेहुए दो महाग्रहोंकी समान वह बाण युगल संग्राममें सैकड़ों टुकड़े होकर पृथ्वीमें गिरपड़े॥ ५३ ॥ दोनोंको संग्राममें परस्पर टक्कर खानेसे खंड२ देखकर लक्ष्मण और इन्द्रजीत दोनोही लज्जित और क्रोधित हुए ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजीनें क्रोधमें भरकर वरुणास्त्र लिया और समरप्रिय मेघनादनें रुद्रास्त्र उठाया और दोनोंनें एक दूसरेके ऊपर चलाया ॥ ५५ ॥ तब मेघनादके चलाये हुए रौद्रास्त्रको लक्ष्मणजीके छोड़े हुए वरुणास्त्रनें नष्ट कर दिया, तब समर विजयी महातेजस्वी इन्द्रजीतनें मानों सब लोकोंका नाश करनेंहीके लिये आग्नेय बाण ग्रहण किया ॥ ५६ ॥ परन्तु वीर लक्ष्मणजीनें सौर्यास्त्र चलाय उसको निवारण करडाला, अस्त्रको निवारितहुआ देख मेघना-

द् क्रोधसे मूर्छित होगया ॥ ५७ ॥ और उसनें शत्रुओंका विदारण करनेंवाला तीक्ष्ण एक आसुरी बाण ग्रहण किया; जैसेही उसनें वोह बाण ग्रहण किया वैसेही उसके धनुषसे प्रभायुक्त कूट, मुद्गर ॥ ५८ ॥ शूल, भुशुण्डी, गदा, खड्ग, फरसे, इत्यादि निकलनेंलगे तिस अस्त्रको समरमें देख लक्ष्मणजीनें अत्यन्त घोर और दारुण ॥ ५९ ॥ किसी प्राणीसे निवारण न होनेंवाला सर्व शस्त्रोंको विदारण करनेंवाला द्युतिमान माहेश्वरास्त्र चलाय उस बाणको निवारण कर दिया ॥ ६० ॥ इस प्रकार परस्पर रोमहर्षणकारी तुमुल संग्राम होनेंलगा तब आकाशमें टिकेहुए सब प्राणी लक्ष्मणजीकी रक्षा करनें लगे ॥ ६१ ॥ जब इस प्रकार भयंकर शब्द युक्त वानर और राक्षसोंका महा घोर संग्राम हुआ तब इस युद्धके देखनेंको बहुतसे प्राणी स्वर्गसे आये कि जिनके आनेंसे आकाश मंडल शोभायमान होनें लगा ॥ ६२ ॥ गरुड़, समस्त पितृगण और ऋषि, देव गण गन्धर्व गण और उरगगण देवराज इन्द्रजीको आगे करके रणमें लक्ष्मणजीकी सबही रक्षा करनेंलगे ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त वीरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें अग्निकी समान स्पर्शवाला एक श्रेष्ठ धनुष मेघनादका संहार करनेंको धारण किया ॥ ६४ ॥ जिसके पूर्व ओरके पंख अति शोभायमानथे, जो बड़ा भयंकरथा, प्राणका नाश करनेंवाला था, क्रमसे गोलाकारथा, जिसमें सुवर्ण मढ़ाथा ॥ ६५ ॥ किसीसे भी निवारण होनेंके अयोग्य भयंकर सहनेके अयोग्य राक्षसोंको भय पहुँचानेवाला विषधर सर्पकी समान विषीला देवतालोगभी जिसकी पूजाकिया करतेहैं ॥ ६६ ॥ जिस करकै महातेजस्वी महावाहन, वीर्यवान् इन्द्रजीनें पूर्वकालके समय देवासुर संग्राममें दानवोंके दलको दलन कियाथा ॥ ६७ ॥ संग्राममें अपराजित नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजीनें अपने श्रेष्ठ धनुषपर वह शरश्रेष्ठ ऐन्द्रास्त्र चढ़ाया और बोले ॥ ६८ ॥ लक्ष्मीवान् महात्मा लक्ष्मणजी अपने अर्थको साधन करनेंवाले यह वचन बोले कि " दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी जो धर्मात्मा व सत्यवादी होवें और उनका पौरुष यदि प्रतिपक्षी वीररहितहो तौ हे बाण! तुम इस रावणके पुत्रका विनाश करो "॥ ६९ ॥ लक्ष्मणजीनें यह कहकर कानतक खेंच वह बाण समरमें इन्द्रजीतके ऊपर छोड़दिया ॥ ७० ॥ बाण त्या-

ग करनेंके समय परवीरघाती लक्ष्मणजीनें उस अस्त्रको ऐन्द्रास्त्रसेभी संयोजित किया॥ ७१ ॥ उस बाणको चलायकर लक्ष्मणजीनें कुण्डल युगलसे सजा तुल्यमान कुंडी आदि शिरस्त्राण सहित उसके शोभा युक्त मस्तकको काट शरीरसे अलग कर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ७२ ॥ उस कालमें राक्षसराजनन्दन मेघनादका वह अलग हुआ धड़ और रुधिर निकलताहुआ बड़ा भारी मस्तक गिरकर तेजसे प्रदीप्त होनेंकी समान दृष्टि आनेंलगा ॥ ७३ ॥ इस प्रकारसे कवच, कूंडी आदि शिरस्त्राण और शरासन युक्त रावणका पुत्र इन्द्रजित नाशको प्राप्त होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ७४ ॥ जिस प्रकार देवता लोग वृत्रासुरके वधसे आनंदित हुएथे, वैसेही इन्द्रजीतके मारे जानेंपर विभीपण प्रमुख २ वानरगण आनंद करनेंलगे ॥ ७५ ॥ और आकाशमें महात्मा देव, दानव, गन्धर्व, महर्षि और अप्सरागणोंका " जय जय " शब्द उठा ॥ ७६ ॥ इस प्रकार इन्द्रजितके मारे जानेंपर राक्षसोंकी बडी भारी सैना विजयी वानर वृन्दों करके बनाय मारनेंके निकट पहुंचकर चारों ओरको भागनें लगी ॥ ७७॥ वह राक्षसोंकी सैना वानर गणोंसे मार खाय कुछभी प्रतिकार न करसकी, और अस्त्र शस्त्र छोड़ वेगसे लंकाकी ओरको दौड़ी ॥ ७८ ॥ असंख्य निशाचर भयके मारे, पटा, फरशा, इत्यादि अपने २ आयुध डाल जिसका जिस ओरको अभिलाष हुआ वह उसी ओरको भागा ॥ ७९ ॥ वानर लोग करके मर्दित हो कोई लंकामें प्रवेश करताहुआ कोई समुद्रके जलमें गिरपडा, और कोई भयभीतहो पर्वतपर चढ़कर आश्रय ग्रहण करता हुआ ॥ ८० ॥ अधिक क्या कहैं उस कालमें इन्द्रजीतके मृतक हो जानेंको देख, और उसको पृथ्वीपर पड़ा निहार सहस्र २ राक्षसोंमेंसे किसीनें रणभूमिकी ओर एक वार निहारसकाभो नहीं ॥ ८१ ॥ जिसप्रकार सूर्य भगवानके छिप जानेंपर उनकी किरणभी उनके साथहीसाथ चली जाती हैं; वैसेही इन्द्रजितके मारेजानेंपर निशाचरगणभो दशोंदिशोंमें छिप गये ॥ ८२ ॥ उस कालमें ऐन्द्रास्त्रसे जीवनरहित वह महावीर इन्द्रजीत बुझीहुई अग्निके समान और किरणरहित सूर्यकी समान ज्ञात होनें लगा ॥ ८३ ॥ तिसके मरनेंपर सबको बड़ी भारी शान्ति हो गई, इस शत्रुके मारे जानेंपर संसारहर्षित हुआ, और सब लोकपतिभी

रावणके पुत्र मेघनादके मारे जानेंसे हर्षित हुए ॥ ८४ ॥ और महर्षियोंके साथ देवराज इन्द्रजीभी परम प्रसन्नता प्राप्त करते हुए; जबकि वह पाप-कर्म करनेंवाला राक्षस मारा गया ॥ ८५ ॥ तब आकाश मंडलमें श्रेष्ठ आशयवाले देवताओंके नगाडोंके बजानेंकी ध्वनि होनें लगी और अप्सरायोंका व महात्मा गन्धर्वोंका नाच होनें लगा ॥ ८६ ॥ देवता लोग फूलोंकी वर्षा करनेंलगे यह कर्म बड़ा अद्भुतसा हुआ, पृथ्वीपरकी उड़ती हुई धूल उस क्रूर कर्मकारी राक्षसके मरतेही शान्ति होगई ॥८७॥ जल निर्मल होगया, आकाशभी स्वच्छ होगया देवता दानव गण अत्यन्त हर्षित हुए, यह देवतादिक संपूर्ण संसारके भयदायक उस राक्षसके मरनें पर वहां आये ॥ ८८ ॥ व देवता, दानव, गंधर्व, एकत्र हो संतोष पाय सब कहनें लगे "अबसे ब्राह्मणगण निरुपद्रव और पापरहित हो सुख पूर्वक विचरण किया करैं" ॥ ८९ ॥ इसके उपरान्त वानरयूथपतिगण उस अनुपम बलवाले राक्षसश्रेष्ठ मेघनादको मृतक देखकर हर्षित अंतःकरणसे लक्ष्मणजीकी बड़ाई करनेंलगे ॥ ९० ॥ विभीषण, हनुमान, और ऋक्ष यूथपति जाम्बवान, "जयहो" ऐसा कह वंदनकर लक्ष्मणजीकी बहुतही प्रशंसा करतेहुए ॥ ९१ ॥ यह सुअवसर प्राप्तकर वानरगण किलकिलानें लगे, नाद करनें लगे, गर्जनें लगे और लक्ष्मणजीके चारों ओर एकत्र होकर खड़े होगये ॥ ९२ ॥ उनमेंसे कुछेक वानर मारे आनंदके अपनी पूंछको कंपायमान करनेंलगे, और कोई २ अपनी पूंछको पटककर ताल देनें लगे, और "लक्ष्मणजीकी सदा जयहो" ऐसा वचन सब को सुनानेंलगे ॥ ९३ ॥ चौपाई ॥ हर्षित ह्वै भेंटहि सब वानर, गावहिं लखन चरित गुण आगर ॥ ९४ ॥

तदसुकरमथाभिवीक्ष्यहृष्टाःप्रियसुहृदोयुधिल
क्ष्मणस्यकर्म ॥ परममुपलभन्मनःप्रहर्षंविनि
हतमिंद्ररिपुंनिशम्यदेवाः ॥ ९५ ॥

दोहा–हितू लखनके देवगण, निहत देख मघवारि ॥ भये मुदित रण बीच यह, दुष्कर कर्म निहारि ॥ ९६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तुलक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ बभू
वहृष्टस्तंहत्वाशत्रुंजेतारमाहवे ॥ १ ॥

जिसने पहले देवराज इन्द्रजीकोभी जीत लियाथा रुधिरसे शरीर भिगोय शुभ लक्षण युक्त लक्ष्मणजी उसी इन्द्रजितका वध करके परम प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ इसके उपरान्त लक्ष्मणजी वीर्यवान हनुमान, व जाम्बवान व और दूसरे सर्व वानर गणोंके सहित ॥ २ ॥ विभीषण और हनुमानजीसे भेंटकर जहां सुग्रीव और श्रीरामचंद्रजी विराजमानथे वहां आय पहुंच गये ॥ ३ ॥ लक्ष्मणजीनें वहां पहुंचकर श्रीरामचंद्रजीकी प्रदक्षिणाकी और प्रणाम करके अपने भ्राताके समीप बैठगये, जैसे इन्द्रजीके समीप वामनजी बैठतेहैं ॥ ४ ॥ वीर विभीषणजी मानों इन्द्रजितके घोर वधकी वार्ता पुकारते २ आये और महात्मा श्रीरामचंद्रजीके निकट उसको निवेदन किया ॥ ५ ॥ विभीषणजीनें हर्षित अंतःकरणसे श्रीरामचंद्रजीके समीप आयकर कहाकि "महाबलवान लक्ष्मणजीकरके रावणके पुत्र इन्द्रजीतका मस्तक काट डाला गया" ॥ ६ ॥ महावीर्यवान श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीके हाथसे मेघनादका माराजाना सुन अत्यन्त आनंद प्राप्त करते हुए लक्ष्मणजीसे उस समय बोले ॥ ७ ॥ लक्ष्मण तुम्हें धन्यहै! तुम्हारा दुष्कर कर्म देखकर हम परम प्रसन्न हुएहैं क्योंकि जब रावणका पुत्र मारागया तब हमारी जय होनेमें कुछभी संदेह नहींहै ॥ ८ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें यह वचन कहकर कीर्तिवर्द्धन भ्राता लक्ष्मणजीका शिर सूंघलिया; यद्यपि लक्ष्मणजी लजाये जातेथे परन्तु वीर्यवान श्रीरामचंद्रजीनें बलपूर्वक उठाकर अपनी गोदमें बैठाला ॥ ९ ॥ और उनको भली भांतिसे गाढ़ आलिंगन किया और हृदयसे लगाया व वारंवार स्नेहकी दृष्टिसे निहारा ॥ १० ॥ और श्रीरामचंद्रजीने देखाकि लक्ष्मणजीका सब शरीर छिन्न भिन्न हो रहाहै; और बाणोंकी गांसीके गड़नेसे व्यथितहैं; और वह युद्धके श्रमसे थक वारंवार लंबे २ श्वास ले रहेहैं, और कष्टसे अत्यन्त संतापितहैं ॥ ११ ॥ पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी वारंवार श्रीलक्ष्मणजीका शरीर सूंघकर उनके सब अंगोंपर हाथ फेरनें लगे; और उनको धीरज

बँधाते हुए यह वचन बोले ॥ १२ ॥ सैनाके योग्य परमकल्याणकारी कार्य आज तुमनें कियाहै, क्योंकि जब रावणका पुत्र मारा गया, तब रावण तो जानो मरहीचुका ॥ १३ ॥ दुरात्मा इन्द्रजीतके मृतक होनेसे अब हम अपनेको रणविजयी समझतेहैं, हेलक्ष्मण! बड़े भाग्यकी बातहै कि तुमनें दुष्ट रावणका समरमें ॥ १४ ॥ दहिना हाथ उस अवलंबके साथ काट लिया; और बिभीषणजी व हनुमान इन दोनोंनेंभी संग्राममें बड़ाभारी कर्म किया॥१५॥जबकि तीन दिन व तीन रात्रिमें यह शत्रु किसी प्रकारसे मार डाला गया; तब आज तुमनें हमको शत्रुरहित कर दिया कारणकि पुत्रका मारा जाना सुन रावण ॥ १६ ॥ बड़ीभारी सैनाको साथ लेकर युद्ध करनेंको आवेगा पुत्रका मरना सुन बड़ीभारी सैनाको साथले ॥१७॥ वह राक्षसराज पुत्रके वधसे संतप्तहो बड़ीभारी सैनाको साथले जैसेही यहां आवैगा; वैसेही हम उस दुर्जेयको मार डालेंगे ॥ १८॥ हेइन्द्रजितका नाशकरनें वाले! रणके बीच तुम्हारे सहायक रहते हमको सीता या, वसुमती (पृथ्वी) का प्राप्त करलेना कुछभी दुर्लभ न रहेगा ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें यह कह अपने भ्राता लक्ष्मणजीको धीरज बँधाया और उनको हृदयसे लगाय हर्ष सहित सुषेणसे यह वचन बोले ॥ २० ॥ हे महाप्राज्ञ! मित्रवत्सल सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी जिस्से शीघ्र घाव रहितहो सावधान होजाँय इस प्रकारकी औषधि तुमदो ॥ २१ ॥ मित्र वत्सल लक्ष्मणजीको जलदीसे घाव रहितकर महावीर रीछ और वानरोंकी सैना जो वृक्षोंको उठायकर युद्ध करतीहै ॥ २२ ॥ व इनके सिवाय और भी जो कोई युद्ध करतेहों और उनके बाणोंके लगनेसे घाव हुएहों इन सबको तुम अति यत्न करके सुखीकर दो ॥ २३ ॥ जब महात्मा श्रीराम-चन्द्रजीनें वानरयूथप सुषेणको ऐसी आज्ञादी तब लक्ष्मणजीको सुषेणनें परम औषधिका नासदिया ॥ २४ ॥ इस नासके सूंघतेही लक्ष्मणजीके अंगोंमें जो बाणोंकी गासियें गड़ रहीथीं, वह सब निकल गईं, घावभर आये, पीड़ा जातीरही और घावोंके चिह्नभी जाते रहे ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त सुषेणनें श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे बिभीषण प्रमुख सुहृद वर्ग और वानरयूथपतिगणोंकी चिकित्सा की ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे रानी सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणजी क्षणभरमें सावधान, घावरहित, श्रमहीन, और

विगतज्वर होकर आनंदित हुए ॥ २७ ॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीको रोगविहीनहो उठा हुआ निहार रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी वानरराज सुग्रीवजी और ऋक्षराज जाम्ववान अपनी २ सैनाके साथ सवही परम प्रसन्नताको प्राप्त करते हुए ॥ २८ ॥

अपूजयत्कर्मसलक्ष्मणस्यसुदुष्करंदाशरथिर्महात्मा ॥ वभूवहृष्टोयुधिवानरेंद्रोनिशम्य तंशक्रजितंनिपातितम् ॥ २९ ॥

महात्मा दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके उस कठिन कार्य की वहुत वड़ाई करते हुए और इन्द्रजीतके मारे जानेसे वानरोंके स्वामी सुग्रीवजीनें यथार्थ प्रसन्नता प्राप्तकी ॥ २९ ॥ इति० वा० आ० भाषानुवादे कात्यायनगोत्रोद्भव पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृते युद्धकाण्डे द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥

ततःपौलस्त्यसचिवाःश्रुत्वाचेंद्रजितोवधम् ॥ आचचक्षुरवज्ञायदशग्रीवायसत्वराः ॥ १ ॥

उधर मेघनादके वधका समाचार रावणके मंत्रियोंनें राक्षसोंसे सुन और फिर रणभूमिमें जाय उनकी लोथ देख पुत्रके वधका समाचार न जाननें वाले रावणके समीप जायकर कहा ॥ १ ॥ हे महाराज ! हमनें देखाकि लक्ष्मणजीनें विभीषणको सहायतासे रणमें आपके उस तेजस्वी पुत्र इन्द्रजीतको मारडाला ॥ २ ॥ हे राजन् ! जो वीर रणभूमिमें कभी किसीसे पराजित नहीं हुआ, आपका वही शूर श्रेष्ठ देवतालोगोंको जीतनेंवाला पुत्र लक्ष्मणजीसे मार डाला गया ॥ ३ ॥ वह लक्ष्मणको वाणोंसे तप्त-कर वीरलोकको चलागया, इस प्रकार अपने पुत्रका दारुण व भयंकर वध सुन ॥ ४ ॥ इन्द्रके जीतनेंवालेको मरा सुन रावणको एक साथ वड़ीभारी मूर्छा आयगई; तिसके उपरान्त वड़ी देरके पीछे मूर्छा जागी तौ राक्षसोंमें श्रेष्ठ राजा रावण ॥ ५ ॥ पुत्रशोकव्याकुल और विकलेन्द्रिय हो दीनभावसे विलापकर कहनें लगा, हा वत्स ! हा राक्षससैनापते ! हा

महा बलवान ! ॥ ६ ॥ तुम इन्द्रकोभी पराजित करके आज किस प्रकार लक्ष्मणके हाथसे मारे गये, हे पुत्र ! तुमतो क्रोधित होकर चाहते तौ बाणोंसे कालकोभी मारडालते ॥ ७ ॥ मन्दराचलके शृङ्गोंकोभी तोड़ फोड़देते; फिर लक्ष्मणकी तौ युद्धमें बातही क्याथी, आज हम उन वैवस्वत यमराजको फिर बड़ाईके योग्य समझते हैं ॥ ८ ॥ कि जिस करके महाबाहु तुमभी कालधर्मसे संयुक्त हुए । तुम जिस मार्गके यात्री हुएहो वीर लोग और देवता लोग उसी मार्गके अभिलाषी हुआकरते हैं कारण कि जो पुरुष स्वामीके लिये प्राण छोड़ताहै वह निश्चयही स्वर्गको जाता है ॥ ९ ॥ हाय ! आज इन्द्रजीतको मृतक हुआ देखकर समस्त देवता महर्षि लोकपालगण भयरहितहो सुखकी नींद सोमेंगे ॥ १० ॥ हा! एक इन्द्रजितके न रहनेंसे आज यह वनयुक्त पृथ्वी अथवा यह समस्त त्रिलोकीभी हमको सूनी जान पड़तीहै ॥ ११ ॥ जिस प्रकार हथनियें पर्वतकी कन्दरामें हाथियोंके मारेजानेंपर रोतीहैं, वैसेही आज हमारे रनवासमें राक्षस लोगोंकी स्त्रियोंका रोना सुन पड़ेगा ॥ १२ ॥ हे शत्रुदमनकारी! तुम यौवराज्य लंकापुरी, राक्षसकुल, पिता, माता, और अपनी स्त्रीको त्याग करके काहां चलेगये? ॥ १३ ॥ हा! वीर कहौ तौ हमारे परलोकमें चलेजानें पर तुम हमारा प्रेतकार्य करते, और कहां इसके विपरीत हमकोही तुम्हारा प्रेतकार्य करना पड़ा ॥ १४ ॥ हा पुत्र ! सुग्रीव, रामचंद्र और लक्ष्मणके जीवितरहते तुम हमारा कांटा विनाही निकाले कहां चलेगये? ॥ १५ ॥ राक्षसोंका राजा रावण इस प्रकारसे विलाप और संताप कर रहाथाकि इतनेमें उसके हृदयमें पुत्रके शोकसे भयंकर क्रोध रूपी अग्नि उदय हुई ॥ १६ ॥ जिस प्रकार ग्रीष्मकालमें किरणें अपने आपसे प्रदीप्त सूर्यके तेजको अधिक बढ़ा देती हैं, वैसेही पुत्रके वधसे उत्पन्न दारुण मनकी व्यथा उस स्वभावसेही कोपी रावणको औरभी संतप्त करनें लगी ॥ १७ ॥ जिस प्रकार वृत्रासुरके मुखसे, अग्नि निकलीथो वैसे ही क्रोधके मारे जँभाई लेते हुए रावणके मुखसे धुवेंके सहित अग्नि निकलनें लगी ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त पुत्र वधसे सन्तप्त शूरश्रेष्ठ रावणनें शोकके वश हो बहुत देरतक चिन्ताकरके जानकीजीको वध करनेंका अभिलाष किया ॥ १९ ॥ उसके घोरतर स्वभावसेही लाल

दोनों नेत्र क्रोधकी ज्वालासे और दूनें लाल होगये और अधिक प्रदीप्त हो उठी ॥ २० ॥ एकतौ रावणका रूप स्वभावसेही घोरथा तिसपर क्रोधाग्निसे मूर्छितहो वह लोकसंहार करनेंके लिये तैयार क्रोधित रुद्रकी समान होगया ॥ २१ ॥ जिस प्रकार जलतेहुए दो दीपकोंसे अग्निकी शिखाके सहित तेलकी बूंदें गिरतीहैं वैसेही उस क्रोधित रावणके दोनों नेत्रोंसें लाल२ आसुओंकी बूंदें गिरनें लगीं ॥ २२ ॥ रावण क्रोधके मारे दांतसे दांत रगड़कर कटकटानें लगा ॥ समुद्र मथनेंके समय जब मन्दराचल सर्प रूपी रस्सीसे खेंचा गयाथा; और उस खेचनेंसे जिस प्रकारका भयंकर शब्द उत्पन्न हुआथा, रावणके दांतोंका शब्दभी वैसाही हुआ ॥ २३ ॥ उस कालमें उस सर्वलोकभयदाता वीरको कालान्तक यमराजकी समान क्रोधित देखकर सबही चारोंओरको देखनें लगे, परन्तु कोईभी उसके निकट नहीं जाय सका ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त राक्षसोंके स्वामी राजा रावणनें अत्यन्त क्रोधित हो राक्षस लोगोंको संग्राममें पठानेंका अभिलाष करके कहा ॥ २५ ॥ कि हमनें कई हजार वर्षतक बड़ी भारी तपस्या की है, और उसी अवकाशमें ब्रह्माजीकोभी प्रसन्न कियाहै ॥२६॥ और उस तपस्याका फल स्वरूप हमनें उनके निकटसे ऐसा वर पायाहै कि देवता अथवा असुरगणसे हमको कभी भय पहुंचनेंकी संभावना नहीं ॥ २७ ॥ पितामह ब्रह्माजीनें सूर्यकी समान प्रकाशमान जो कवच हमको दियाहै; वह कवच वज्रसेभी उस समय नहीं टूटा जबकि देवता लोगोंसे और हमसे संग्राम हुआथा ॥ २८ ॥ हम वही कवच धारण करके रथपर सवारहो; जब संग्राममें जांयगे, तब साक्षात् इन्द्रकी समान होनें परभी आज कौन हमारे सामने हो सकैगा! ॥ २९ ॥ जो बड़ा भारी धनुष बाण हमको देवता व दैत्योंके साथ लड़ते देख प्रसन्न होकर ब्रह्माजीनें दियाहै ॥ ३० ॥ हे राक्षसगण! महासंग्राममें, राम और लक्ष्मणका वध करनेंके लिये आज सैकडों हजारों तुरही आदि मंगल बाजोंको बजाते२ हमारे उस धनुषको तुम लोग उठा लाओ ॥ ३१ ॥ पुत्रके वधसे संतापितहुआ क्रूर रावण यह कह क्षणभरतक चिन्ताकर क्रोधके वशीभूतहो सीताजीकेही मार डालनेंका अभिलाष प्रगट करता हुआ ॥ ३२ ॥ वह दीनदशायुक्त घोरदर्शन दुराशय रावणवीर

क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर समस्त निशाचर गणोंसे कहनें लगा ॥३३॥ वत्स इन्द्रजितनें मायाका आश्रय ग्रहणकर वानरोंको धोखा देकर कुछ मार यह कह दियाथा कि यह सीताका वध हुआ ॥ ३४ ॥ हमारे शत्रु मेघनादनें जो कुछ झूंठ कहाथा आज हम सत्य सत्यही क्षत्रियोंमें नीच रामचंद्रमेंही जी लगाये हुए जानकीको मारकर अपना हित साधन करेंगे मंत्रियोंसे ऐसा कह उसने अतिशीघ्रतासे अपनें खड्गपर हाथ फेरा ॥३५॥ यह खड्ग विमल गगनकी समान निर्मल था इसकी धार बड़ी तेजथी निमेषमात्रमें वेग सहित अपने मंत्री और अपनी स्त्रियोंके साथ ॥ ३६ ॥ रावण पुत्र शोकके मारे व्याकुल व चेतनारहितहो खड्ग उठायकर सहसा वहांको चला जहां जानकीजी थीं ॥ ३७ ॥ क्रोधमें भरे हुए रावणको जाता हुआ देखकर राक्षस लोग सिंहनाद करनेंलगे और परस्पर एक दूसरेको भेटकर यह कहनें लगे ॥ ३८ ॥ इन महाराजनें जब कि क्रोधित होकर पहले चारों लोकपालोंको जीतलियाथा, और दूसरे असंख्य शत्रुलोगोंका रणमें संहार कियाथा, तब आज इनका ऐसा रूप देखकर वह दोनों भाई राम और लक्ष्मण निश्चयही व्यथा पावेंगे ॥ ३९॥ त्रिलोकीके बीचमें कोईभी इसकी समान विक्रमकारी या बलवान नहीं है कारणकि त्रिभुवनके समस्त रत्न यही हरण करकै भोगते हैं ॥ ४० ॥ वह राक्षसगण आपसमें इस प्रकारसे कहते २ जब अशोकवनमें आये तब रावण क्रोधसे मूर्छितहो जानकीजीकी ओर धाया ॥ ४१ ॥ यद्यपि जानकीजीपर झपटनेंके समय हितकारी मंत्रियोंने " यह कर्त्तव्य नहीं है" ऐसा कहकर उसको समझायाभी, परन्तु मंगल ग्रह जिस प्रकार आकाशमें रोहिणीकी ओर दौड़ताहै, रावणभी वैसेही श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी जानकीजीकी ओर दौड़ाही चलागया ॥ ४२ ॥ जानकीजी राक्षसियोंसे रक्षितथीं, इन अनिंदिता जानकीजीनें दूरसे देखाकि रावण क्रोधितहो खड्ग धारण करकै उनके सामनें झपटकर आयरहाहै ॥ ४३ ॥ सुहृद लोगों करकै वारंवार निवारण किये जानेंपरभी न लौटे हुए खड्ग हाथमें लिये रावणको देखकर जानकीजी अत्यन्त दुःखी हुईं ॥ ४४ ॥ और अति दुःखसे जानकीजी विलाप कर कहनें लगीं, कि, जबकि यह दुर्मति

क्रोधमें भरकर हमारी ओर चला आताहै, कि सनाथ होनेंपरभी आज यह हमको अनाथाकी समान वध करैगा ॥ ४५ ॥ यद्यपि हम अपने स्वामीमेंही चित्त लगायेहुए हैं, परन्तु इसनें वारंवार हमसे " हमारी भार्या होवो " ऐसी प्रार्थनाकी, परन्तु हमने इसके वचनोंको नहीं माना ॥ ४६ ॥ तौ जानपड़ताहै कि हमने जो इसके वचनोंको अंगीकार नहीं किया, इसी कारण यह निराश और क्रोधके वशहो निश्चयही हमारा वध करनेंके लिये तैयार हुआहै ॥ ४७ ॥ अथवा वह नरव्याघ्र दोनों भ्राता श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी हमारे लिये आज संग्राममें इस अनार्य करकै आज मार डालेगयेहैं ॥ ४८ ॥ कारण कि असंख्य हर्षित निशाचर गणोंका अपने किसी प्यारेके लिये दुन्द मचाते बडाभारी भरव सिंहनाद हमनें सुना ॥ ४९ ॥ हा ! हमें धिक्कार है; हमारे लियेही वह दोनों राजकुमार मारे गये, अथवा पुत्रशोकसे व्याकुल होनेंके कारण श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीको न मार पायकर ॥ ५० ॥ यह रौद्र पाप निश्चय राक्षस हमारेही मारनेंको यहां आयाहै, हा ! हम ओछे स्वभाव वालीनें हनुमानके वचनानुसार कार्य न किया ॥ ५१ ॥ हम यदि श्रीरामचन्द्रजीसे विनाही जीते जाकर हनुमानजीकी पीठपर चढ़कर चली जाती तौ स्वामीकी गोदमें रहकर आज हमको ऐसा शोक नहीं करना पड़ता ॥ ५२ ॥ हे भगवान्! एकपुत्रवाली कौशल्याजी जब अपने इकलौते पुत्रको संग्राममें मृतक हुआ सुनैगी तौ निश्चयही उनका हृदय फट जायगा॥५३॥वह रोदन करके उस समय पुत्रका बालपन, युवा अवस्था और समस्त धर्म कार्योंको याद करके आंसुओंके जलमें डूब जांयगी ॥ ५४ ॥ हमको निश्चय जान पड़ताहै कि "पुत्रमृतक होगये" वह कौशल्याजी निराश और ज्ञानहीन हो किसी प्रकारसे उनका श्राद्ध करके अग्निमें जल जांयगी अथवा जलमें कूद पड़ैंगी ॥ ५५ ॥ हाय! जिसके लिये कौशल्याजीको ऐसा शोक प्राप्त हुआ उस असती और पापिनी कुबरी मन्थराको धिक्कारहै ! ॥ ५६ ॥ चंद्रमाके समान और ग्रहके वशमें पड़ीहुई रोहिणीकी समान श्रीजानकीजीको इस प्रकारसे विलाप करते देखकर ॥ ५७ ॥ इसी अवसरमें रावणका मंत्री; शीलवान् शुद्धवान् बुद्धिशाली सुपार्श्व नाम और दूसरे मंत्रियोंसे रोके जाकर राक्षसश्रेष्ठ रावणसे यह वचन

बोला ॥ ५८ ॥ हेदशग्रीव! आप कुबेरजीके साक्षात् छोटे भाई होकरभी किस प्रकारसे धर्मको छोड़ क्रोधके वशहो जानकीके वध करनेका अभिलाष करतेहैं ॥ ५९ ॥ हेवीर राक्षसेश्वर! यथाविधि व्रत अवलंबन करके वेदादिक विद्या पढकर और उसके अनुरूप अग्निहोत्रादि अपने कर्ममें अनुरागी रहकरभी आप किसलिये स्त्रीका वध करनेको तैयार हुएहैं ॥ ६० ॥ हे महाराज! आप सुन्दर रूपवाली जानकीको छोड़कर हम लोगोंके साथ संग्राममें उन रामचंद्रके ऊपर क्रोध प्रकाशकीजिये ॥६१॥ हेराक्षसराज! आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशीहै; इस कारण आज युद्धका सामान करके कल अमावस्याको सैनाको साथ ले विजयके लिये यात्रा कीजिये ॥ ६२ ॥ हेराजन्! आप शूर, बुद्धिमान्, और महारथीहैं, इसलिये हम निश्चय कहतेहैं कि आप श्रेष्ठ रथपर सवारहो खड्गसे दशरथकुमार रामको संहार कर जनककुमारीको प्राप्त करेंगे ॥ ६३ ॥

सतद्दुरात्मासुहृदानिवीदेतंवचःसुधर्म्यंप्रतिगृ
ह्यरावणः ॥ गृहंजगामाथततश्चवीर्यवान्पुनः
सभांचप्रययौसुहृद्वृतः ॥ ६४ ॥

इसके उपरान्त दुरात्मा वीर्यवान् रावण अपने मंत्री सुपार्श्वके ऐसे धर्मयुक्त वचन सुनकर अपने गृहको लौट गया; और फिर सुहृद लोगोंसे वेष्टित होकर सभागृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ६४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ० यु०भाषानुवादे त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ॥

सप्रविश्यसभांराजादीनःपरमदुःखितः ॥
निषसादासनेमुख्येसिंहःक्रुद्धइवश्वसन् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त राक्षस राज रावण क्रोधित सिंहकी समान लंबे २ श्वासले दीन वदनसे अपने सिंहासनपर जायकर बैठगया ॥ १ ॥ पुत्रके शोकसे अति दुर्बल और दुःखीहो रावण बलवान सब मुख्य २ राक्षस वीरोंसे बोला जोकि हाथ जोड़े खड़ेहुएथे ॥ २ ॥ आज तुम लोग सबही बचे हुए रथ, पदाति, हस्ती और समस्त अश्वोंके सहित संग्राम करनेके

लिये जाओ ॥ ३ ॥ बादलोंके जल वर्षानेंकी समान आज तुम लोग हर्षित अंतःकरणसे संग्राममें बाणोंकी वर्षा करके केवल एक रामकोही वध करनेंका यत्न करो ॥ ४ ॥ अथवा हमही तुम लोगोंके साथ कल महासमरमें तीक्ष्णबाणोंसे सबके सन्मुख रामचंद्रका नाश कर डालेंगे ॥ ५ ॥ राक्षस लोग रावणकी ऐसी आज्ञा पाय चतुरंगिणी सैनाको साथले शीघ्रही निकले ॥ ६ ॥ और वानरलोगोंको ताककर शरीरका अंत करनेंवाले परिघ, पटा, फरशे, बाण और खड्ग इत्यादि, आयुध उठायकर चलानेंलगे ॥ ७ ॥ वानरोंनेंभी राक्षसोंके ऊपर वृक्ष और पर्वत चलाने आरंभ किये ॥ ८ ॥ इस प्रकार सूर्यभगवानके उदय होतेही वानर और राक्षस लोगोंका घोर कठोर भयंकर युद्ध आरंभ हुआ ॥ ९ ॥ उस कालमें वानर और राक्षस गण विचित्र, पटा, प्रास, फरशा, खड्ग इत्यादि आयुधोंसे परस्पर एक दूसरेको मारनें लगे ॥ १० ॥ उस रणभूमिकी उड़ीहुई बड़ी भारी अद्भुत धूल वानर और राक्षस लोगोंके शरीरोंसे बड़ी भारी रुधिरकी धारा निकलनेंसे शान्त होगई ॥ ११ ॥ वहां जो रुधिरकी नदियें वहनें लगीं उन नदियोंके रथही मानों किनारे थे, बाणही मच्छ थे, ध्वजाही उसके किनारोंपरके वृक्ष थे, और इस नदीसें मृतक देह काठकी समान तैरते थे ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त वानरगण राक्षसोंके प्रहारसे छिन्न भिन्न और लोहू लुहानहो कूद कूदकर उनके ध्वज, चर्म, रथ, घोड़े, व सब अस्त्र शस्त्रोंको चूर्ण और तोड़ताड़कर फेंकनें लगे ॥ १३ ॥ और तीक्ष्ण नख, और दांतोंसे काट २ कर राक्षसोंके केश, कान, माथा और नाक इत्यादि अंग काटनेंलगे ॥ १४ ॥ जिस प्रकार बहुत सारे पक्षी फले हुए वृक्षकी ओर दौड़तेहैं वैसेही एक २ राक्षसके ऊपर सैंकड़ों वानर दौड़े ॥ १५ ॥ यह देखकर पर्वताकार निशाचरगण, भाले खड्ग फरशे और बड़ी २ गदा, उठाय २ घोर रूपवाले वानरोंको मारनें लगे ॥ १६ ॥ तब वह बड़ीभारी वानरोंकी सैना राक्षस लोगों करके मार खाय शरणके देनेवाले शरणागतवत्सल दशरथकुमार रामचंद्रजीकी शरणमें गई ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त महा तेजस्वी वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें धनुष ग्रहण करके राक्षसोंकी सैनामें पैठ बाणोंकी वर्षा करनी आरंभकी ॥ १८ ॥ मेघ जि-

स प्रकार, तपतेहुए सूर्यभगवानके निकट नहीं ठहरसकता, वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणप्रहारसे राक्षसोंका शरीर जलनेके कारण वह श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख नहीं ठहरसके ॥ १९ ॥ वह राक्षस लोग केवल श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ घोर कठिन कार्य देखनें लगे ॥ २० ॥ जिस प्रकार शरीरमें लगनेंसे वनकी पवन जानीजातीहै, वैसेही रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीभी राक्षसोंकी सैनाको चलायमान और महारथी लोगोंको दलन करकै उन लोगोंसे अनुमान किये जानें लगे परन्तु किसीनें उनको देखा नहीं ॥ २१ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी क्रमसे सब राक्षसोंकी सैनाको छिन्न भिन्न बाणोंसे विद्ध पीड़ित, मर्दित और नाश करनें लगे सबनेही इन सब कार्योंको देखा, परन्तु किसीनेभी शीघ्र कर्मकारी श्रीरामचंद्रजीको नहीं देख पाया; जिस प्रकार सब प्राणी समस्त इन्द्रियोंके स्वामी प्राणात्माको नहीं देखपाते, वैसेही श्रीरामचंद्रजी सबके शरीरोंमें बाणोंका प्रहार करतेथे, परन्तु कोईभी उनको नहीं देख पाताथा ॥ २२ ॥ २३ ॥ यह देखो राम हाथियोंकी सैनाका संहार करताहै, यह महारथी लोगोंका नाश करताहै यह तीक्ष्ण बाणोंको चलाय घोड़ोंके साथ पैदलोंकी सैना मार रहाहै ॥ २४ ॥ इस प्रकारसे वह सब राक्षस ऐसा शब्द कर करकै रणमें रामरूपधारी निशाचर लोगोंको सादृश्य वश रामचंद्रजी समझकर मारनें लगे ॥ २५ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीनें गन्धर्व नामक परमास्त्रसे सब राक्षसोंको मोहित किया, यद्यपि श्रीरामचंद्रजी इसी अस्त्रसे राक्षसोंकी समस्त सैनाको भस्म करभी रहेथे परन्तु तौभी उनको किसीनें नहीं देखा ॥ २६ ॥ वह निशाचर लोग कभीतौ रणमें हजार२ श्रीराम देखनें लगे और कभी उन्होंने देखा कि उस महा संग्राममें केवल एकही श्रीरामचंद्रजी विराजमान हैं ॥ २७ ॥ किसी २ समयमें उन राक्षसोंनें देखाकि उन महात्मा श्रीरामचंद्रजीके धनुषकी बनैटीके चक्रकी समान सुवर्णमयीकोटिही घूमतीहै; परन्तु रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी दृष्टि नहीं आते ॥ २८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीका शरीरही मानों जिसकी नाभिहै, जिनका बलही ज्वालहै वर्णही जिसके मानो आरागजहै प्रत्यञ्चा और तलका शब्दही मानों जिनका तेजहै, और बुद्धिही मानों गुणोदयहै ॥ २९ ॥ दिव्यास्त्रही मानों जिसका प्रत्यं-

चाके अंतहैं इसप्रकार रणमें घूमताहुआ राक्षसोंनें राम रूप चक्रको राक्षसोंका नाश करतेंहुए देखा ॥ ३० ॥ इस प्रकारसे वायुकी समान वेगयुक्त दशहजार रथी लोगोंकी अनी सवारोंके साथ अठारह हजार हाथी ॥३१॥ सवारोंके सहित चौदह हजार घोडे, और दो लक्ष पैदल राक्षसोंको ॥३२॥ जोकि कामरूपी थे दिनके आठवें भागमें अग्निकी शिखाकी समान वह समूहोंसे अकेले श्रीरामचंद्रजीनें मारडाला ॥ ३३ ॥ तब उस समय बचे बचाये निशाचरगण, अश्व, रथ, और ध्वजादिविहीन उत्साहसे रहित हो लंकापुरीको भाग गये ॥ ३४ ॥ उस कालमें वह रणभूमि,—मृतक, तुरंग मातंग और पैदल लोगोंके देहोंसे पूर्ण होनेंके कारण क्रोधसे पूर्ण महात्मा रुद्र (शिव) जीकी क्रीडा भूमिके समान होगई ॥ ३५ ॥ आकाशमें विराजमान, देवता, गन्धर्व, सिद्ध, और परमर्षि लोग श्रीरामचंद्रजीके उस कर्मकी " धन्य धन्य " कहकर बड़ाई करनें लगे ॥ ३६ ॥ इस उपरान्त धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी, सुग्रीव, विभीषण व हनुमानजीसे बोले ॥ ३७ ॥ वानरश्रेष्ठ ! जाम्बवान मैन्द द्विविदसेभी श्रीरामचंद्रजी बोले कि "इसप्रकारका भयंकर अस्त्रका बल यातौ हममें है, या श्रीमहादेवजीमें है " ॥ ३८ ॥

निहत्यतांराक्षसराजवाहिनींरामस्तदाशक्रसमोमहात्मा ॥ अस्त्रेषुशस्त्रेषुजितक्लमश्चसंस्तूयतेदेवगणैःप्रहृष्टैः ॥ ३९ ॥

इस प्रकारसे अस्त्र और शस्त्रके जाननेमें देवराज इन्द्रजीकी समान महात्मा श्रीरामचंद्रजी उस राक्षसराज रावणकी सैनाका नाश करते हुए और देवता लोग हर्षित होकर उनकी स्तुति करनें लगे ॥ ३९ ॥ इ०श्रीम० वा०आ०यु०भाषा०चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमः सर्गः

तानिनागसहस्राणिसारोहाणिचवाजिनाम् ॥ रथानांत्वग्निवर्णानांसध्वजानांसहस्रशः ॥ १ ॥

सवार जिनपर बैठे ऐसे सहस्रों हाथी व इसी प्रकार सवार सहित हजारों घोड़े हजारों रथ कि जिनमें ध्वजायें लगरहीं और रथी बैठे व घोड़े जुत रहे-

थे ॥ १ ॥ हजारों राक्षस जो कि गदा और भाला लेकर युद्ध करनेंवालेथे सुवर्णके चित्रविचत्र रूपवाले कामरूपी औरभी अनेक शूर राक्षस ॥ २ ॥ रावणके भेजेहुए इन सबकोही सरल कर्मकारी श्रीरामचंद्रजीनें सुवर्णभूपित तीखे बाणोंसे मारडाला ॥ ३ ॥ इन सब राक्षसोंको मराहुआ देख व सुनकर मरनेसें बचे बचाये राक्षस व निशाचरी सब इकट्ठे हो बैठे, और सबहीका मुख चिन्ताके मारे व्याकुलथा ॥ ४ ॥ इस समयमें जिनके पुत्र मरगयेथे, और जिनके पति मारेगयेथे, वह दुःखके वेगके मारे यह सब राक्षसोंके साथ एकत्रहो बैठकर दुःखसे विलाप करनेंलगीं ॥५॥ हाय! किसकु घड़ीमें नीचे पेटवाली कराल वदनयुक्त बूढ़ी शूर्पणखानें वनमें कामदेवकी समान रूपवान रामचंद्रजीको देखाथा ॥ ६ ॥ हाय! जिसको देखतेही लोग वध करनेंकी अभिलाषा करके, वह कुरूपयुक्त शूर्पणखाभी सब प्राणियोंके हितकारी महाबलवान् श्रीरामचंद्रजीको देख उनके प्रेमकी अभिलाषिनी हुईथी ॥ ७ ॥ हाय! उस राक्षसीनें सर्वगुण विहीना व कुमुखा होकरभी किस प्रकारसे ऐसे महातेजस्वी गुणवान श्रीरामचंद्रजीका कामके वशहो अभिलाष कियाथा ॥ ८ ॥ राक्षस लोगोंके दुर्भाग्यसे जरासे जीर्ण और श्वेत केशवाली शूर्पणखानें यह बड़ाभारी कुकार्य किया जोकि सब लोकोंमें निन्दनीय और हँसाईके योग्यथा ॥ ९ ॥ राक्षस गण खर दूषणका विनाश करनेंका श्रीरामचन्द्रजीका धर्षणरूपही शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीको देख ऐसी कामसे आरतहुईथी ॥ १० ॥ उस शूर्पणखाहीके रहनेंसे राक्षस लोगोंके वधके कारणकोही दशानन रावणनें सीताको लाय यह बड़ाभारी वैर बांधा ॥ ११ ॥ रावण जानकीजीको ले तौ आया, परन्तु उनको किसी प्रकारसेभी नहीं पायसकेगा अब उनके ही लिये रामचन्द्रसे इस रावणका घोर वैर बंध रहाहै ॥ १२ ॥ रावण जो जानकीजीको नहीं पावेगा, एक मात्र रामचन्द्रजी करकै विनाशको प्राप्त, ब्रह्माजीसे वरदान पायेहुए जानकीजीकी इच्छा करनेंवाला विराधभी उसमें प्रमाण है ॥ १३ ॥ जबकि उन महावीर श्रीरामचन्द्रजीनें जनस्थानमें भयंकरकर्मकारी चौदह हजार राक्षसोंको अग्निकी शिखाके तुल्य बाण चलायकर मारडाला तब यही उनकी वीरताका भरपूर प्रमाणहै १४॥ जबकि युद्धमें खर दूषण और त्रिशिरा इत्यादि वीरगण रामचन्द्रके सूर्य

समान वाण जालसे मारेगये, तब यही उनके बल वीर्यका पूरा प्रमाण है ॥ १५ ॥ चार कोशकी लंबी बाहोंवाला, रुधिरपान करनेंवाला कबन्ध क्रोधमें भराहुआ और सिंहनाद करताहुआ जब मारडालागया तब श्रीरामचन्द्रजीकी पुरुषोत्तमतामें यही पूरा प्रमाण है ॥ १६ ॥ रामचन्द्रजी करकै बलशाली मेघकी समान देवराज इन्द्रनंदन वालिही जब मारा गया, बस फिर अधिक दृष्टान्त देनेंकी कुछ आवश्यकता नहीं ॥ १७ ॥ उस रामचंद्रजीनें जो ऋष्यमूकपर्वतपर टिकेहुए दीनभावापन्न मनोरथ टूटे सुग्रीवको जो राज्य दिया बस यही उनके लिये पूरा दृष्टान्त है ॥ १८ ॥ हाय ! बिभीषणनें राक्षसलोगोंका हित साधन करनेंकी वासनासे, धर्म, अर्थ, युक्त, युक्ति, समन्वितही वचन कहेथे परन्तु राक्षसराज रावणको वह वचन नहीं भाये ॥ १९ ॥ यदि कुवेरका छोटा भाई रावण बिभीषणके वचनानुसार कार्य करता तौ यह दुःखसे व्याकुल समस्त लंकानगरी कभी मरघट भूमिकी नांई नहीं होती ॥२०॥हाय! श्रीरामचंद्रजी करकै महाबलवान कुंभकर्णका मरना सुन और लक्ष्मणजीसे दुर्द्धर्ष अतिकाय और प्रियपुत्र इन्द्रजितको मृतक सुन करभी ॥ २१ ॥ क्या रावणनें रामचंद्रके पराक्रमको नहीं जाना? ॥२२॥[श्लोक"पुरा हनुमता लंका दग्धा लाङ्गूलवह्निना॥ हतमक्ष कुमारश्च दृष्ट्वासौ नावबुद्ध्यते ॥२३॥" (अनुवाद) जबकि पहले अकेले वानर हनुमाननें लंका पुरीमें प्रवेश करकै कुमार अक्षका प्राण संहार किया और पूंछकी लगी हुई आगसे लंका पुरीको जलाया, तबभी राक्षस राज रावणको समझ नहीं आई॥२३॥]हाय! हमारा पुत्र,हमारा भइया हमारा स्वामी रणमें मारागया, हाय! यह हमें छोड़कर कहां चलेगये, "लंका पुरीके घर २ में राक्षसियोंका इस प्रकारसे रोना सुनाई आताहै ॥ २४ ॥ हजार हजार रथी अश्व, हाथियोंके सवार और पैदलगण शूर श्रीरामचंद्रजी करकै रणमें मार डाले गयेहैं ॥ २५ ॥ जान पड़ताहै कि रुद्र विष्णु देवराज इन्द्र, अथवा आप यमराजही रामरूप धार रणमें हमारा विनाश कर रहेहैं ॥ २६ ॥ हाय! रामचंद्रजी करकै वीरोंका नाश होनेंके कारण हम सब जीनेंकी आश निराशहो और भयंकर अंत न देखकरही ऐसा विलाप करतीहैं ॥ २७ ॥ शूरश्रेष्ठ रावणनें ब्रह्माजीके निकटसे जो

बड़ाभारी वर पायाहै उसी गर्वके मारे रामचंद्रजीसे जो महाघोर भय आयाहै, वह उसको नहीं जानताहै ॥ २८ ॥ जबकि रणमें रामचंद्र उसके मारनेंका निश्चय कर चुकेहैं तब देवता गन्धर्व पिशाच अथवा राक्षसोंमेंसे कोईभी उसकी रक्षा नहीं कर सकता ॥ २९ ॥ प्रति संग्राममें रावणकी ओर दुर्निमित्त दिखाईदेतेहैं और माल्यवान इत्यादि वृद्ध राक्षसगण रामचंद्रजीसे रावणका वध होना प्रगट करतेहैं ॥ ३० ॥ पहले जब ब्रह्माजीनें प्रसन्न होकर रावणको देव दानव और राक्षससे अभयरूप वरदान दियाथा, परन्तु उस समय रावणनें मनुष्यकी कोई बातही नहीं उठाईथी ॥ ३१ ॥ हमको तो ऐसा ज्ञात होताहै कि रावणके दुर्भाग्यसे स्वयं उसका और राक्षसोंके प्राणोंको अन्त करनेंवाला यह मनुष्यरूप आयाहै ॥ ३२ ॥ एक समय वरदान पायकर गर्वित हुए रावणके अत्याचारसे पीड़ित होकर देवता लोगोंनें कठिन तप करकै ब्रह्माजीकी उपासना कीथी ॥ ३३ ॥ देवता लोगोंका हित करनेंके लिये पितामह महात्मा ब्रह्माजीनें देवताओंकी तपस्यासे संतुष्ट होकर सबसे यह बड़े गौरवयुक्त वचन कहे ॥ ३४ ॥ कि आजसे दानव और राक्षसगण भयके मारे विह्वल होकर त्रिभुवनमें विचरण करते रहा करेंगे ॥ ३५ ॥ उसके उपरान्त इन्द्रादि लोगोंनें मिलकर त्रिपुरारी वृषध्वज महादेवजीका तप कियाथा ॥ ३६ ॥ पशुपति महादेवजी देवता लोगोंके तपसे प्रसन्न होकर बोले कि हे देवताओ! तुम्हारे मंगलके लिये राक्षस कुलका नाश करनेंवाली एक स्त्री उत्पन्न होगी ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार पहले समयमें क्षुधा नामक स्त्रीनें देवता लोगों करकै नियोजित हो दानव लोगोंको भक्षण कियाथा, सो जान पड़ताहै इस राक्षसनाशिनी सीतानेभी वैसेही देवतालोगोंकरकै नियुक्तहो हम लोगोंको भक्षण करनेंके लियेही जन्म ग्रहण कियाहै ॥३८॥ हाय! दुर्मति दुर्विनीत रावणकी खोटी नीतकेही वशसें यह घोर शोकयुक्त विनाश उपस्थित हुआहै ॥ ३९ ॥ हा! जिस प्रकार युगक्षय होनेंके समय कालके पंजेमें फँसे हुए जीवोंकी रक्षा कोई नहीं कर सकता, वैसेही हम सब रामचंद्रके वशमें पड़कर ऐसा किसीकोभी नहीं देखतीहैं जो हम लोगोंकी रक्षा करनेंमें समर्थहों ॥ ४० ॥ हाय! वनके बीच दावाग्निसे घिरी हुई हथनियोंकी समान हम इस बड़ीभारी

विपदमें पड़कर किसीकोभी अपना रक्षक नहीं देखतींहैं ॥ ४१ ॥ हाय! जिनसे हम सबको यह बड़ाभारी भय जान पड़ताहै महात्मा पौलस्त्य विभीषण यथा समयमेंही उनकी शरणमें गयेहैं ॥ ४२ ॥

इतीवसर्वारजनीचरस्त्रियःपरस्परंसंपरिरभ्य बाहुभिः॥ विषेदुरार्तातिभयाभिपीडिताविने दुरुच्चैश्चतदारुसुदाणम् ॥ ४३ ॥

भयके बोझसे पीड़ित शोकसे आरत राक्षसोंकी स्त्रियें ऐसा विलाप करती हुई परस्पर एक दूसरीको बांहोंसे चिपटायकर दारुण शब्द करके रोनेंलगीं ॥ ४३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ०यु० भा०पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ॥

आर्तानांराक्षसीनांतुलंकायांवैकुलेकुले ॥ रावणःकरुणंशब्दंशुश्रावपरिदेवितम्॥१॥

तब राक्षसोंके राजा रावणनें लंकाके भवन २ में राक्षसोंकी स्त्रियोंका तुमल करुणासहित आरत शब्द सुना ॥ १ ॥ रावण लंबे २ श्वास लेकर मुहूर्तभरतक चिन्ता करता रहा इसके उपरान्त क्रोधके मारे शरीर कांपनेसे उसको मूर्ति भयंकर होगई ॥ २ ॥ वह वीर राक्षसोंका स्वामी रावण क्रोधसे लाल २ नेत्र कर दांतोंसे होठोंको काटताहुआ मूर्ति कालकी अग्निके समान राक्षस लोगोंके अर्थभी अति कठिनसे देखनेंके योग्य हुआ ॥ ३ ॥ इसके पीछे मानों नेत्रोंसे सर्व प्राणियोंके जलानेंके अभिप्रायसेही क्रोधके मारे लड़खड़ाती वाणीसे समीपमें बैठे हुए निशाचरोंसे यह कहनें लगा ॥ ४ ॥ रावणनें महापार्श्व, महोदर, और विरूपाक्ष इत्यादि राक्षसोंसे कहा, कि हमारी आज्ञाके अनुसार तुम सैनाको निकलनेंके लिये कहो ॥ ५ ॥ रावणके यह वचन सुनकर भय पीड़ित निशाचरोंनें राजाकी आज्ञासे आज्ञानुसार निर्भय निशाचरोंकी सैनाको अति शीघ्र तैयार होनेंके लिये कहा॥६॥भयंकर राक्षसोंकी सैनाभी युद्ध करनेंके लिये तैयारहो“ बहुत अच्छा ” कह अनेक प्रकारके मंग-

लाचार मनाय संग्रामकी ओरको चली ॥ ७ ॥ व और दूसरे महारथी लोगभी हाथ जोड़कर रावणकी यथाविधिसे पूजा करकै उसकी विजय मनाय तैयार हुए ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त क्रोध मूर्छित रावणनें हँसते २ निशाचर महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्षसे कहा ॥ ९ ॥ कि आज हम युगान्त कालीन सूर्यकीनांई [युगक्षय होनेंके समय जो सूर्य उदय होतेहैं] प्रदीप्त, धनुषसे, छूटे हुए बाणोंके समूहसे राम लक्ष्मणको यमराजके भवनमें पठावेंगे ॥ १० ॥ आज वैरियोंका वध करकै खर, कुंभकर्ण, प्रहस्त, और इन्द्रजितके वधका वदला लेंगे ॥ ११ ॥ आज हमारे बाणरूप बादलोंके जालसे छायकर आकाश, दशों दिशा, अन्तरिक्ष अथवा सागर इनमेंसे किसीमेंभी प्रकाश न रहैगा ॥ १२ ॥ इस धनुष और श्रेष्ठ फोंकलगेहुए बाणोंसे आज हम भाग्यहीन वानरोंके यूथपति लोगोंका संहार करेंगे ॥ १३ ॥ आज पवनके वेगकी समान रथपर सवार होकर धनुष रूप समुद्रसे उत्पन्न हुई बाण रूपलहरोंके द्वारा हम वानरोंकी सैनाको मर्दित करैंगे ॥ १४ ॥ हम हाथीकी समान होकर केशर रूप रोमराजि विराजित और मुखरूप खिले हुए कमलफूलोंसे युक्त वानर रूपी तड़ागोंको मथ डालेंगे ॥ १५ ॥ आज संग्रामभूमिमें वानर लोगोंके बाणयुक्त समस्त वदन डंडीसहित कमलकी समान पृथ्वीको शोभित करेंगे ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं आज हम एक बाणको चलायकर सैकड़ों हजारों वृक्षोंसे युद्ध करनेंवाले वानरोंको पृथ्वीपर लुटादेंगे ॥ १७ ॥ जिन स्त्रियोंके भ्राता, स्वामी, अथवा पुत्रगण मारे गयेहैं हम आज शत्रु लोगोंका वध करके उनके आंसुओंको पोंछदेंगे ॥ १८ ॥ आज संग्राममें अपने बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर पड़े चेतना रहित वानरोंसे पृथ्वीको हम ऐसा ढक देंगे, कि विशेष यत्न करनेंपर किसी प्रकारसेभी पृथ्वी दृष्टि न पड़े ॥ १९ ॥ कौए, गिद्ध, व औरभी जो मांस खानेंवाले पशु पक्षीहैं आज बाणोंसे मृतक हुए वैरियोंके मांससे उन सबही पक्षियोंको हम छाय देंगे ॥ २० ॥ शीघ्र हमारा रथ तैयार करो, और धनुष लाओ, और बचे बचाये निशाचर लोग हमारे साथ समरमें चलनेंके लिये तैयार होजांय ॥ २१ ॥ राक्षसराज रावणके वचन सुनकर महापार्श्वनें सब सैनाको शीघ्रता करानेंके

लिये समीप खड़े हुए सैनाध्यक्षको आज्ञादी ॥ २२ ॥ शीघ्रतासे कार्य करनेंवाले सैनाध्यक्षोंने मिलकर लंकानगरीके घर२में घूम निशाचर गणोंको यह संवाद दिया ॥२३ ॥ इसके उपरान्त एक मुहूर्तभरके पीछे भयंकराकार राक्षस लोग अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण करकै घोर गर्जन करते२ आये ॥२४॥ उन राक्षसोंमेंसे किसीके हाथमें खड्ग, किसीके हाथमें पटा, किसीके हाथमें गदा, किसीके हाथमें शूल, किसीपै मूसल, किसीपै हल, किसीपै शक्ति, किसीपै कूट, मुद्गरथे॥२५॥कोई २ विविध प्रकारके लठ्ठ, चक्र तीक्ष्ण फरशे, भिन्दिपाल व शतघ्नी आदि औरभी अनेक प्रकारके श्रेष्ठ आयुध लिये हुए आये ॥ २६ ॥ इसके पीछे सैनाध्यक्ष लोग रावणकी आज्ञासे दश लाख रथ, तीस लाख हाथी ॥ २७ ॥ साठ करोड़ घोड़े गधे और ऊंट, असंख्य पैदल राजाकी आज्ञासे निकले ॥ २८ ॥ सैनापति लोगोंनें राजाके आगे सैना स्थापनकी और उसी अवसरमें सारथिनें उस रथको स्थापन किया ॥ २९ ॥ दिव्यास्त्र करके युक्त अनेक भूषणोंसे भूषित बहुत सारे हथियारोंसे समन्वित किंकिणीजालसे शोभायमान ॥ ३० ॥ अनेक भांतिके रत्न लगे हुए रत्नमय खंभोंसे विराजित, सुवर्णके हजार कलशों करके शोभित ॥ ३१ ॥ ऐसे रथको देखकर सब राक्षस बहुत विस्मयको प्राप्त हुए; उसको देख राक्षसोंका राजा रावण तुरन्त उठ खड़ा हुआ ॥३२॥ करोड़ सूर्यकी कांतिसम प्रकाशमान जलतीहुई अग्निके समान चमकता हुआ शीघ्रतासे आठ घोड़े जोड़कर ऐसा रथ सारथि ले आया अपने तेजसे दीप्तिमान भयंकरदर्शन रावण उसपर सवार होगया ॥ ३३ ॥ वह राक्षस सहसा बहुत राक्षसोंके साथ निकला। रावण सत्व और गंभीरतासे मानों पृथ्वीको विदारणही करताहुआ चला ॥ ३४ ॥ उस समय बड़ाभारी शब्द भेरीका चारों ओरसे होने लगा, और अनेक राक्षस मृदंग, पटह, शंख, कलह, बजानेलगे ! ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वह राक्षसोंका राजा सीताका हरनेवाला, कुचाली, ब्राह्मणोंको मारनेवाला, देवताओंको कंटक स्वरूप, छत्र चामर संयुक्तहो रामचंद्रसे युद्ध करनेको आरहाहै! यह ध्वनि चारोंओरसे सुनाई आनेलगी, ॥ ३६ ॥ उस बड़ेभारी शब्दसे पृथ्वी कंपायमान होंने लगी! और अकस्मात् उस शब्दको सुनकर वानर लोग भयसे भागनेलगे ॥ ३७ ॥ महाबाहु महातेजस्वी रावण

संग्रामभूमिमें युद्ध करनेके वास्ते जयकी इच्छा करके आया॥ ३८ ॥ जब रावणकी आज्ञाके अनुसार महापार्श्व, महोदर, दुर्द्धर्ष और विरूपाक्ष यह चार राक्षसभी रथपर सवारहुए॥ ३९॥ यह सब मनमें हर्षितहो जयकी आशासे मानों पृथ्वीको भेद करतेही हुएसे घोर सिंहनाद करके गमन करनें लगे॥ ४०॥ तेजस्वी रावण राक्षसोंकी सैनाके साथ धनुषको उठाय कालान्तक यमराजकी समान युद्ध करनेंको चला॥ ४१॥ तिसके उपरान्त अतिवेगवान् घोड़े जुतेहुए रथपर सवार हुआ रावण उसी द्वारसे होकर निकला कि जिसके सन्मुख श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी विराजमानथे॥ ४२॥ उसी समय सूर्यकी ज्योति मलीन होगई दशों दिशाओंमें अंधकार छायगया, अशुभ कारी पक्षी चारों ओर घोर शोर करनें लगे, पृथ्वी चलायमान होगई॥ ४३॥ घोर रूप पक्षी और शृगालियें अशुभ शब्द करनेंलगीं घोड़े वारंवार ठोकरें खानेंलगे और बादलोंसे रुधिरकी वर्षा होंने लगी रावणकी ध्वजाके आगे गिद्ध गिर पड़ा॥ ४४॥ रावणकी वाणी कुछ बिगड़ गई, वदन विवर्ण होगया, वायां नेत्र फड़कनें लगा, वांया हाथ कंपायमानहुआ॥ ४५॥ जब राक्षसश्रेष्ठ रावण युद्ध करनेंके लिये चला; तौ उसका मृतक होना प्रगट करनेंके लिये यह सर्व कुशगुन होंने लगे॥ ४६॥ बडी २ उल्का वज्रकी समान शब्द करतीं अन्तरिक्षसे गिरनेंलगीं; और कौओंके साथ मिलकर गिद्धगणोंनेंभी अशुभ चिल्लाहट करनी आरंभकी॥ ४७॥ परन्तु दशानन कालप्रेरितकीनांई मोहके वश अपने वधके निमित्तही प्रगट हुए इन सब घोर उत्पातोंको देखकरभी न समझताहुआ युद्ध करनेंके लिये चलाही गया॥ ४८॥ उस अवसरमें महाबलवान निशाचर लोगोंके रथोंका शब्द श्रवण करतेही वानरोंकी सैना युद्ध करनेंके लिये तैयारहुई, इसके उपरान्त परस्पर एक दूसरेको लड़नेंके लिये पुकारते हुए निशाचर और वानरोंका तुमुल युद्ध आरंभ हुआ॥ ४९॥ तब रावणनें क्रोध करके सुवर्ण भूषित बाणोंसे वानरोंकी सैनामें बहुतसे वानरोंको मार डाला॥५०॥ रावणके प्रहारसे किसीका मस्तक कटगया किसीका हृदय फटगया किसीका कान कटगया॥ ५१॥ और कोई २ श्वासहीन हो २ कर गिर

पड़े किसी २ की बगलेंही चीर फाड़डाली गई किसी २ के मस्तक फूटगये, और किसी २ के नेत्रही फूटगये॥ ५२॥

दशाननःक्रोधविवृत्तनेत्रोयतोयतोभ्येतिरथे नसंख्ये॥ततस्ततस्तस्यशरप्रवेगंसोढुंनशे कुर्हरियूथपास्ते॥ ५३॥

उस कालमें रावण क्रोधके मारे दोनों नेत्रोंको घुमाता रथको चलाता जिस २ स्थानमें जाताथा, उसी २ मोरचेके वानरगण उसके बाणोंका वेग नहीं सहनकरसकतेथे॥ ५३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे भाषानुवादे षण्णवतितमः सर्गः॥ ९६॥

सप्तनवतितमः सर्गः॥

तथातैःकृत्तगात्रैस्तुदशग्रीवेणमार्गणैः॥बभूववसुधातत्रप्रकीर्णाहरिभिस्तदा॥ १॥

इस प्रकार रावण करके बाणसमूहसे छिन्न शरीर हुए वानर गणोंसे रणभूमि परिपूर्ण होगई॥ १॥ जिस प्रकार पतंग जलती हुई आगकी लपटको नहीं सहसकते वैसेही किसी ओरके वानरभी रावणके बाण वर्षानेंको नहीं सहसके॥ २॥ अग्निकी ज्वालामें घिरकर जलतेहुए हाथियोंकी समान तीखे बाणोंसे पीडित हुए यह वानरगणभी रोते २ भाग खड़े हुए॥ ३॥ जिस प्रकारसे पवन बड़ी भारी मेघमालाकोभी उडाकर ले जाताहै वैसेही राक्षसराज रावण बाणोंके समूहसे वानर लोगोंको विध्वंसित करता हुआ आगे बढ़नेंलगा॥ ४॥ राक्षसोंमें इन्द्र रावण अति वेगसे वानरोंकी सैनाको पीड़ित करता और वेगसे गमन करता, रणभूमिके मध्यमें विराजमान श्रीरामचंद्रजीको देखताहुआ॥ ५॥ इस ओर सुग्रीवजी रणमें वानरोंको भागा हुआ और तित्तर वित्तर देख सुषेणको मोरचेपर स्थापितकर रणमें गमन करनेंका अभिलाष करतेहुए॥ ६॥ इसके उपरान्त वह वीर सुग्रीवजी अपनीही समान वीर वानरको अपनी श्रेणीपर स्थापितकर वृक्ष हाथमें ले शत्रुकी ओर दौड़े॥ ७॥ व और दूसरे वानर यूथपतिगण बड़े भारी पर्वतोंके शिखर और विविध भांतिके वृक्ष ग्रहण करकै उन सुग्रीवजीके अगल बगल और पीठकी ओरका आ-

श्रय करके गमन करनेंलगे ॥ ८ ॥ रणमें पहुंचतेही सुग्रीव बड़े ऊंचे शब्दसे गर्जे और बहुतसे राक्षसोंको मारने पीटने लगे ॥ ९ ॥ बड़े शरीरवाले वानरोंके राजा सुग्रीवजी युगक्षय होनेंके समय पवन जिस प्रकार बड़े वृक्षोंको चूर्ण करके तोड़ताड़देताहै वैसेही राक्षसोंको मार २ कर फेंका ॥ १० ॥ बादल जिसप्रकारसे वनमें पक्षियोंके ऊपर ओले वर्षातेहैं वैसेही सुग्रीवजी राक्षसवाहिनी (सेना) के ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ११ ॥ वानरराज सुग्रीवजीके चलाये पत्थर और वृक्षोंसे राक्षसोंके शिर फटगये और वह पृथ्वीपर इस प्रकार गिरनेंलगे कि जैसे इन्द्रजीके वज्र चलानेंसे पर्वत फूटकर गिरेथे ॥ १२ ॥ इस प्रकार महावीर सुग्रीवजी सिंहनाद करके राक्षसोंकी सैनापर धावा मार उसकी श्रेणीको तोड़ डाला, और उसको पराजित करके छिन्नभिन्न कर दिया ॥ १३ ॥ इसी अवसरमें राक्षसवीर विरूपाक्षनें विरुपाक्षहूं; इसप्रकार अपना नाम सबको सुनाय रथसे कूद हाथीपर सवार होगया ॥ १४ ॥ हाथीपर चढा हुआ महाबलवान् विरूपाक्ष भयंकर घोर शब्दसे सिंहनाद करता हुआ वानर लोगोंके ऊपर दौड़ा ॥ १५ ॥ और सैनाके मुखमें विराजमान होकर सुग्रीवजीके ऊपर घोर बाणोंकी वर्षा करता घबरायेहुए राक्षसोंको हर्षित करके फिर रणमें स्थापित करताहुआ ॥ १६ ॥ वानरराज सुग्रीवजी उस राक्षस करके तीखे बाणोंसे अति विद्धहो क्रोधमें भर वारंवार अति शब्दकर उस राक्षसके वध करनेका अभिलाष करतेहुए ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त शूर समर, विशारद वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीनें एक वृक्ष उखाड़ दौड़कर उस हाथीके मस्तकपर मारा जिसपर विरूपाक्ष चढ़ा हुआ था ॥ १८ ॥ जब वह महागज सुग्रीवजीके प्रहारसे अत्यन्त व्याकुलहो तीन हाथ पीछेको हटगया और आरत नाद करके चिंघाडताहुआ पृथ्वीपर बैठगया ॥ १९ ॥ वीर्यवान निशाचर विरूपाक्ष शीघ्रतासे छलांग मार मथित हुए हाथीसे उतर अपने शत्रु वानरराज सुग्रीवजीकी ओर धाया ॥२०॥ वह अति शीघ्र कर्मकारी वीर विरूपाक्ष गेंडेकी ढाल और खड्ग ग्रहण करके सामने खड़े हुए सुग्रीवजीकी निन्दा करता हुआ उनके निकट पहुंचा ॥२१॥ यह देखकर वानरराज सुग्रीवजीनेंभी क्रोधितहो मेघाकार एक बड़ी भारी शिला ग्रहण करके विरूपाक्ष राक्षसपर चलाई ॥२२॥ उस विपुल विक्रम

कारी राक्षसश्रेष्ठ विरूपाक्षनेंभी शिलाको अपने ऊपर गिरताहुआ देख किसी प्रकारसे उसको बचाय सुग्रीवजीके ऊपर खड्ग का प्रहार किया॥२३॥ वानरराज सुग्रीवजी बलशाली निशाचरके उस खड्गप्रहारसे घायलहो क्षण कालके निमित्त मूर्छितहो पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त झटफट उठ मुक्का बांध सुग्रीवजीनें उस महासंग्राममें वह घूंसा विरूपाक्षकी छातीमें मारा ॥ २५ ॥ निशाचर विरूपाक्षनें घूंसा खाय अत्यन्त क्रुद्धहो सब सैनाके सामनें खड्गसे सुग्रीवजीका ॥ २६ ॥ कवच काटकर गिरा दिया, तब सुग्रीवजी दोनों पैरोंको सकोड़ते हुए पृथ्वीपर गिरपड़े और फिर झटपट उठकर उस राक्षसकी छातीमें ॥ २७ ॥ वज्रकी समान एक लात बड़े भयंकर शब्दसे मारी, परंतु सुग्रीवजीकी उठाई हुई उस लातसे राक्षस बचगया ॥ २८ ॥ क्योंकि वह युद्धमें बड़ा निपुणथा और वानरराज सुग्रीवजीकी छातीमें उसने एक घूसा मारा, तब वानरराज सुग्रीवजी बहुत क्रोधित हुए ॥ २९ ॥ क्योंकि इनके प्रहारसे वह राक्षस बचगया। उसी बीचमें अवसर देख विरूपाक्ष राक्षसके सुग्रीवजीनें॥३०॥माथेपर और एक लात बड़े बलसे मारी इन्द्रके वज्रकी समान उस लातके लगनेंसे॥३१॥ पृथ्वीपर रुधिरसे भींगाहुआ और रुधिरही उगलताहुआ वह राक्षस गिर पड़ा, राक्षस विरूपाक्ष इस प्रकारसे गिरा जिस प्रकार सोतेसे जल गिराताहुआ पर्वत गिरे ॥ ३२ ॥ तब वानर लोगोंने झाग सहित रुधिरसे सने और बड़े २ नेत्र फैलाये राक्षस विरूपाक्षके निकट जायकर देखा कि ॥ ३३ ॥ उसके घूमते हुए दोनों नेत्र कंपायमान होतेहैं, और वह वीर सब देहमें रुधिर लगाये, इधर उधर करवटे लेता आरतवाणीसे चिल्लाय रहाहै ॥ ३४ ॥ उस कालमें राक्षस और वानर गणोंकी सैना समर करनेंके लिये अपने सामने खड़ीहुई वेगवान् और भयं-कराकार समुद्रकी समान पुल टूटे हुए दो महासमुद्रोंकी समान कठोर शब्द करनें लगी ॥ ३५ ॥

विनाशितंप्रेक्ष्यविरूपनेत्रंमहाबलंतंहरिपार्थिवेन ॥ बलंसमेतंकपिराक्षसानामुद्वृत्तगंगाप्रतिमंबभूव ॥ ३६ ॥

और वानरराज सुग्रीवजी करकै महाबलवान् विरूपाक्षको मृतक देखकर कपि और राक्षसोंकी सैना बढ़ीहुई तरंगसहित गंगाजीके जलकी समान होगई ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०यु०सप्तनवतितमःसर्गः॥९७॥

अष्टनवतितमःसर्गः ॥

हन्यमानेबलेतूर्णमन्योन्यंतेमहामृधे ॥
सरसीवमहाघर्मेसूपक्षीणेबभूवतुः ॥ १ ॥

उस कालमें तिस महासमरके बीच दोनों ओरकी सैना परस्पर एक दूसरेसे मारी जायकर ग्रीष्म समयके क्षीण जलवाले सरोवरकी समान होगई ॥ १ ॥ इस ओर अपनी सैनाका नाश और विरूपाक्षको मृतक देखकर राक्षसराज रावण दूना क्रोधितहुआ ॥ २ ॥ रावण अपनी सैनाका क्षय और वानर लोगोंके हाथसे उन बली मुख्योंका मरना देख समझता हुआ कि भाग्यही उलटाहै इसी कारणसे वह मनमें बहुतही व्यथित हुआ ॥ ३ ॥ और इसके पीछे अपने समीपही खड़े हुए महोदर से बोलाकि, हे महावीर! इस समय तुमही हमारी जयप्राप्तिके एक आशा रूपहो ॥ ४ ॥ इसलिये हे वीर ! तुम युद्धकी यात्रा करके अपना विक्रम दिखायकर शत्रुकी सैनाको संहार करो हमने इतने समयसे तुमको अन्न दान करके पाला पोसाहै इस समय तुम्हारा प्रत्युपकार करनेंका यथार्थ समय आन पहुंचा है ॥ ५ ॥ राक्षस रावणके यह कहनेपर राक्षसोंमें इन्द्र महोदर बहुत अच्छा कह शत्रुकी सैनामें प्रवेश करताहुआ कि जिस प्रकार पतंग अग्निमें प्रवेश करताहै॥६॥इसके उपरान्त उस महाबलवान् महोदरनें अपने स्वामीके वचन व अपने बड़ेभारी तेजसे वानरोंकी सैनाको मार विथराय दिया ॥ ७ ॥ महाबलवान् वानर लोगभी बड़ी २ शिलायें ग्रहण- कर भयंकर शत्रुओंकी सैनामें प्रवेशकर राक्षस गणोंका नाश करनें लगे ॥८॥ उस महासंग्राममें महोदरनें क्रोधित हो अपनी सुवर्णकी फोंकवाले तीखे बाणोंसे वानरोंमेंसे किसीका हाथ काटडाला और किसी २ की जांघें काटकर फेंक दीं ॥ ९ ॥ उस काल वानरगण राक्षस महोदरके प्रहारसे व्याकुल हो दशोंदिशाओंको भागनेंलगे, और कुछ एक भयसे भीतहो

सुग्रीवजीकी शरणमें गये ॥ १० ॥ तव वानरराज सुग्रीवजी अपनी सैनाके वानरोंकी छिन्नभिन्न दशा देख उनको पीछे रख आप स्वयं महोदरके सन्मुख जानेको आगे बढ़े ॥ ११ ॥ महातेजस्वी वानरराज सुग्रीवजीनें राक्षस महोदरका प्राण संहार करनेंके लिये पर्वततुल्य एक बड़ी भारी शिला ग्रहण करकै उसके ऊपर चलाई ॥१२॥ परन्तु महोदरनें उस शिलाको सहसा अपने ऊपर आताहुआ देखकर सावधानचित्त हो बाणोंसे उसको खंड २ करडाला ॥ १३ ॥ निशाचर महोदरसे बाण द्वारा हजारों टुकडे हुई वह शिला व्याकुल हुए दलबांधे गिद्धोंके चक्रकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ी ॥ १४ ॥ शिलाको खंड २ हुआ देखकर सुग्रीवजी अत्यन्त क्रोधित हुए, और एक बड़ा भारी शालका वृक्ष उस राक्षसपर चलाया परन्तु राक्षसनें उसकेभी खंड २ कर दिये ॥ १५ ॥ और उस निशाचरनें शत्रुओंकी सैनाको पीड़ा पहुंचानेंवाले उन सुग्रीव शूरको बहुत बाणोंसे मारा, तब सुग्रीवजीनें बहुत क्रोधितहो पृथ्वीपर पड़ाहुआ एक परिघ देखा ॥ १६ ॥ और उसको जलदीसे ग्रहणकर और निशाचरको दिखायकर, उस उग्र वेगवाले परिघसे उस राक्षसके श्रेष्ठ घोड़ोंको मारडाला ॥ १७ ॥ घोड़ोंके मरजानेंपर वीर राक्षस महोदर कूदकर उस अश्वविहीन महारथसे उतरपड़ा और उसने क्रोधमें भरकर एक महागदा ग्रहणकी ॥ १८ ॥ उस कालमें बिजलीसे युक्त दो बादलोंकी समान और दो बैलोंकी समान एक गदा लिये एक परिघ धारण किये वह दोनों वीर सिंहनाद कर २ के परस्पर समर करनें लगे ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त निशाचर महोदरने क्रोधसे लाल २ नेत्रकर वह गदा वानरराज सुग्रीवजी पर चलाई इस गदाका तेज सूर्यकी समानथा और यह प्रदीप्त होकर आगेको चली ॥ २० ॥ क्रोधसे लाल २ नेत्र किये महा बलवान वानरराज सुग्रीवजीनें गदाको अपने ऊपर आताहुआ देख परिघ उठाय ॥ २१ ॥ उसकी गदाके ऊपर चलाया, परन्तु वह परिघ ही गदाके प्रहारसे टूटगया; और वह गदाभी व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त तेजस्वी सुग्रीवजीनें एक काले लोहेका बनाहुआ घोररूप मूसल पृथ्वीपरसे उठाय लिया कि जो चारोंओर सुवर्णसे भूषित हो रहाथा, उस मूसलको उठायकर सुग्रीवजीनें चलाया ॥ २३ ॥ यह देखकर महोदरनेंभी

उसके विफल करनेंके लिये एक गदा चलाई, परस्पर एक दूसरेसे ट-करानेंके कारण गदा और मूसल दोनों चूर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त दोनों वीर अपने २ अस्त्र शस्त्रोंको व्यर्थ देखकर घूसमघासासे युद्ध करनेंके लिये तैयार हुए, यह दोनों ही वीर अतिशय तेजस्वी देखनेंमें प्रदीप्त अग्निकी समानथे ॥ २५ ॥ और दोनोंही परस्पर एक दूसरेके ऊपर चोट चलाय २ वारंवार सिंहनाद करनेंलगे। और दोनोंही एक दूसरेको लात मारकर पृथ्वीपर गिरानेंलगे ॥ २६ ॥ फिर शीघ्रही उठकर परस्पर एक दूसरेको मारते और एक दूसरेके ऊपरको हाथ चलाते परन्तु परस्पर कोईभी नहीं हारा ॥ २७ ॥ शत्रुघाती दोनों वीर इस प्रकारसे बहुत देरतक बाहुयुद्ध करतेरहे पर कोईभी किसीसे नहीं हारा, और दोनोंही थकगये तब महोदर राक्षसनें एक निकटही पड़ाहुआ खड्ग हाथमें लिया, और एक ढालभी ग्रहणकी ॥ २८ ॥ वेगशालियोंमें श्रेष्ठ वानरवीर सुग्रीवजीनेंभी ढालके सहित पृथ्वीपर पड़ाहुआ एक बड़ाभारी खड्ग ग्रहण किया, इस प्रकार ढाल तलवार ग्रहण करनें और चलानेंमें बड़े चतुर दोनोंवीर हर्षितहो खड्ग उठाय बड़े शब्द करतेहुए एक दूसरेके ऊपरको दौड़े ॥ २९ ॥ दक्षिणावर्त मंडल और इधर उधर दोनों वीर कावा देनेलगे दोनों अपनी २ विजयका अभिलाष करके क्रोध किये हुएथे ॥ ३० ॥ उसीसमयमें अपनी बड़ाई चाहनेंवाले शूर दुर्मति महोदरनें महावेगसे बड़ाभारी खड्ग सुग्रीवजीके बड़े बख्त-रमें मारा ॥ ३१ ॥ वह खड्ग लगकर सुग्रीवजीके बख्तरमें उलझ गया जैसेही वह राक्षस उस वर्ममेंसे खड्गको खेंचनेलगा वैसेही वानरराज सुग्री-वजीनें कुंडल शोभित और कूंडी आदि शिरस्त्राणसे युक्त उसका मस्तक काटकर फेंक दिया ॥ ३२ ॥ उसके मस्तकको कटकर पृथ्वीपर पड़ा देखकरही उस राक्षसेन्द्रकी सैना भागनें लगी ॥ ३३ ॥ महोदरके मारेजानें पर वानरोंके सहित वानरराज सुग्रीवजी आनंदित हुए, रावणनें कोप, किया और श्रीरामचंद्रजी हर्षित होकर प्रकाश पानें लगे ॥ ३४ ॥ सब राक्षसगण भयसे विह्वलहो और शोकाकुल मुखसे और दीन मनसे चारों ओरको भागनें लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे महा पर्वतके विदीर्णहुए एक भागकी समान महोदरको पृथ्वीपर गिराय विजयी सूर्यके पुत्र वानरेन्द्र

सुग्रीवजी अपने तेजसे दुर्द्धर्ष सूर्यकी समान शोभायमान हुए॥ ३६॥

अथविजयमवाप्यवानरेंद्रःसमरमुखेसुरसि
द्धयक्षसंघैः ॥ अवनितलगतैश्चभूतसंघैर्हरु
षसमाकुलितैर्निरीक्षमाणः ॥ ३७ ॥

तिस अवसरमें आकाशमें टिकेहुए देवता सिद्ध और राक्षसगण और पृथ्वीपर स्थित हुए सबही प्राणी हर्षसे प्रफुल्लनेत्रहो रणमें विराजमान उन वीर सुग्रीवजीको देखनें लगे ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे भाषानुवादे अष्टनवतितमःसर्गः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमः सर्गः ॥

महोदरेतुनिहतेमहापार्श्वेमहाबलः ॥ सुग्री
वेणसमीक्ष्याथक्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ १ ॥

सुग्रीवजीसे महोदरको मृतक देख महाबलवान निशाचर महापार्श्व क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर सुग्रीवजीको देखनेंलगा ॥ १ ॥ और गणोंके समूहसे अंगदजीकी भयंकर रूप सैनाको पीड़ित करनेंलगा मुख्य२ वानर लोगोंके उत्तम २ अंगोंमें बाण मार वह राक्षस ॥ २ ॥ काट २ गिरानेंलगा जिस प्रकार पवन गुच्छेसे फलको गिराताहै, उस राक्षसनें किसी२ की बाहैं काटडालीं ॥३॥ किसी वानरकी बगलें चीर फाड़ डालीं इस प्रकार वानर गण महापार्श्वकी बाण वर्षासे अत्यन्त पीडित होगये ॥ ४ ॥ वानरगण विषादित होगये उनको कार्याकार्यका विचारभी नहीं रहा, और वह सबही भागनें लगे, तब महा वेगवान अंगदजी अपनी सैनाको बलसहित राक्षस महापार्श्वसे मर्दित और उदास देख ॥ ५ ॥ पूर्णमासीके समुद्रकी समान वेग धारणकर सूर्यकी किरणोंके समान प्रभावाला एक काले लोहेका बनाहुआ परिघ ग्रहण किया ॥६॥ और वानरश्रेष्ठ अंगदजीनें वह परिघ संग्राममें महापार्श्व राक्षसपर चलाया उस परिघके प्रहारसे महापार्श्व चेतनाविहीनहो सारथिके सहित पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ७ ॥ उसी अवसरमें नीले अंजनके ढेरकी समान महावीर्ययुक्त तेजस्वी ऋक्षराज जाम्बवान मेघकी समान अपने दलसे कूदकर निकल आये ॥ ८ ॥ जाम्बवानजीनें अत्यन्त क्रोध

करके पर्वतके शृङ्गकी समान एक बड़ीभारी शिला ग्रहण करके महा-पार्श्वके रथपर दे मारी, कि जिस्से क्षणभरमें महापार्श्वका रथ चूर्ण २ होगया और घोड़े मृतक होगये ॥ ९ ॥ महा बलवान् महापार्श्वभी एक मुहूर्त्तभरमें चेतना पाय असंख्य बाण धनुषपर चढ़ाय अंगदजीके मारता हुआ ॥ १० ॥ और उसने तीन बाण ऋक्षराज जाम्बवानजीकी छातीमें मारे; और गवाक्षकोभी बहुत बाणोंसे बींधडाला ॥ ११ ॥ गवाक्ष व जाम्बवानजीको बाणोंसे पीड़ित देखकर क्रोधसे अधीरहो एक घोर परिघग्रहण किया ॥ १२ ॥ और अंगदजीनें लाल २ नेत्र करके वह लोहेसे बनाहुआ सूर्यकी किरणोंकी समान प्रभावाला परिघ दूर खड़ेहुए राक्षस ॥ १३ ॥ महापार्श्वके वध करनेके अभि-लापसे वालिकुमार अंगदजीनें दोनों भुजाओंसे पकड़ अति वेगसे घुमाय महापार्श्वके ऊपर चलाया ॥ १४ ॥ अतिवेग और बलसे छूटेहुए उस परिघनें उस राक्षसका धनुष खंडित किया, बाण काटडाला कुंडी आदि शिरस्त्राण गिरादिये ॥ १५ ॥ यह देखकर प्रतापवान् अंगदजीनें अति वेगसे उसके निकट जाय क्रोधमें भर उसके कुंडलशोभित कानके मूल अर्थात् कनपटीमें एक लात मारी ॥ १६ ॥ तब महाद्युतिमान् महापार्श्वनें क्रोधित होकर एक हाथमें एक बड़ाभारी फरशा लिया ॥ १७ ॥ यह फरशा तेल लगायकर साफ कियागया पर्वतसारसेभी अतिपुष्टथा, राक्षसने परम क्रोधसे वह फरशा अंगदजीके मारा ॥ १८ ॥ परंतु क्रोधपूर्ण अंगदजीनें अतिबलसे बांयीओर गिरेहुए उस फर्शेको व्यर्थ करदिया ॥ १९ ॥ अनन्तर पिताकी समान पराक्रमशाली वीर अंगदजीनें क्रोधित होकर वज्रकी समान मूका बांधकर ॥ २० ॥ राक्षसके हृदयमें मर्मके जाननें वाले अंगदजीने इन्द्रके वज्रकी समान स्पर्श करनेंवाला वह मूका मारा ॥ २१ ॥ उस मूकेके लगनेसे निशाचरका हृदय विदीर्ण होगया और वह प्राणरहित होकर रणमें पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥ इस महापार्श्वके निहत होकर पृथ्वीपर गिरनेंपर उसकी सैना भाग खड़ी हुई, तब रावण अत्यन्त क्रोधित हुआ ॥ २३ ॥ उस समय देवराज इन्द्रजीके सहित देवता लोगोंका और अंगदजीके सहित हर्षित वानर गणोंका ऐसा

तुमुल सिंहनाद होनेंलगा कि अटा अटारी और समस्त फाटकोंके सहित लंका नगरी मानों उस शब्दसे फूटीजातीथी ॥ २४ ॥

अथेंद्रशत्रुस्त्रिदशालयानांवनौकसांचैवमहाप्रणादम् ॥ श्रुत्वासरोषंयुधिराक्षसेंद्रःपुनश्चयुद्धाभिमुखोवतस्थे ॥ २५ ॥

इन्द्रका शत्रु राक्षसोंमें इन्द्र रावण संग्राममें शूर और वानर लोगोंका वह बड़ाभारी सिंहनाद सुनकर अत्यन्त क्रोधितहो फिर संग्राम करनेंको तैयार हुआ ॥२५॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०भा० नवनवतितमःसर्गः ॥९९॥

शततमः सर्गः ॥

महोदरमहापार्श्वौहतौदृष्ट्वासरावणः ॥ तस्मिंश्चनिहतेवीरेविरूपाक्षेमहाबले ॥ १ ॥

वह रावण महोदर व महापार्श्वको मारागया देखकर व महाबली वीर विरूपाक्षकोभी मराहुआ देखकर ॥ १ ॥ रावणको महाक्रोधहो आया और सारथिको शीघ्रसे प्रेरणा करता हुआ यह बोला ॥ २ ॥ आज हम राम लक्ष्मणको मारके मंत्रियोंके मारेजानेंका और पुरीके घेरे जानेका दुःख दूर करैंगे ॥ ३ ॥ इस समय रणमें रामरूपीवृक्षके उखाड़ डालनेंहीका मेरा अभिलाषहै,सीता इस वृक्षका पुष्प और फलहै, उसकी शाखा टहनियें सुग्रीव, जाम्बवान, कुमुद, नल ॥ ४ ॥ द्विविद, मैन्द, अंगद, गंधमादन, हनुमान, सुषेण व और सब वानरयूथहैं ॥ ५ ॥ अतिरथ बड़े आशयवाला रावण यह वचन कह रथके शब्दसें दशोंदिशाओंको शब्दायमान करता रघुनाथजीके सन्मुख दौड़ा ॥ ६ ॥ उस कालमें उस शब्दसे नदी पर्वत और वनोंके सहित समस्त पृथ्वी परिपूर्ण होकर कंपायमान होगई, और मृग व पक्षीगण अत्यन्त त्रासित हुए ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त राक्षसराज रावण अत्यन्त घोर अति दारुण तामस अस्त्र चलाय वानर लोगोंको सर्व प्रकारसे भस्म करनेंलगा ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीनें स्वयं उस अस्त्रको बनायाथा इस कारण वानरगण उसको नहीं सहसके और श्रेणि

योंसे कूद २ कर भागनेंलगे, कि जिनके भागनेंसे पृथ्वीपर बड़ी भारी धूल उड़ी ॥ ९ ॥ तब वानरोंकी बहुत सारी सैनाको रावणके उत्तम बाणोंसे चोट खाय इधर उधर भागतीहुई देख श्रीरामचन्द्रजी आगे बढ़े ॥ १० ॥ तब राक्षसशार्दूल रावणनें इस प्रकार वानरोंकी सैनाको भगाय वहांपर श्रीरामचन्द्रजीको विराजमान देखा जोकि कभी किसीसे हारे नहींथे॥ ११ ॥वह अपने भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विराजमानथे, जैसे विष्णुजीके साथ इन्द्रजी बैठेहों; जो कि बड़ाभारी धनुष उठाये मानों आकाशको स्पर्शही कर रहेथे॥ १२॥ कमलदलको समान विशाल नेत्रवाले बड़ी २ बाहों वाले शत्रुनाशी महातेजस्वी महाबली श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित॥२३॥वानरोंको रणमें भागते हुए और रावणकोभी बड़ीभारी तैयारीके साथ आताहुआ देखा;यह देखकर श्रीरामचंद्रजीनें हर्षितमनसे धनुष ग्रहण किया ॥ १४ ॥ और उस श्रेष्ठ धनुषको धारण करकै उसपर टंकार देंने लगे; और महावेगसे पृथ्वीको भेदकरही मानों सिंहनाद करनेंलगे ॥१५॥ उस कालमें रावणके बाण वरसानेंसे और श्रीरामचंद्रजीके धनुषपर टंकार देनेंसे इन दोनों तुमुल शब्दोंसे सैकड़ों हजारों राक्षस पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥१६॥ उस समय दो महाराजकुमार श्रीराम, लक्ष्मणजीके बाणोंके मार्गमें प्राप्त होकर राक्षसराज रावण चंद्र सूर्यके समीप पहुंचेहुए राहुग्रहकी समान शोभायमान होनेलगा ॥ १७ ॥ श्रीलक्ष्मणजी तीखे बाणोंके द्वारा प्रथमहीं रावणके सहित युद्ध करनेंका अभिलाषकर धनुषपर टंकारदे अग्निकी शिखाके समान बाण रावणके ऊपर चलानेलगे ॥ १८ ॥ परन्तु महातेजस्वी रावणनें अपने बाणोंके समूहसे धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मणजीके चलाये हुए उन समस्त बाणोंको आकाशमेंही रोकदिया ॥ १९ ॥ रावणनें अपने हाथोंकी शीघ्रता दिखाकर शरसे एक बाण, तीन सायकसे तीन बाण, और दश नाराचोंसे दश बाणोंको खंड २ करके फेंकदिया ॥ २० ॥ रावण इस प्रकारसे समरविजयी लक्ष्मणजीको छोड़ दूसरे पर्वतकी समान विराजमान श्रीरामचंद्रजीके निकट गया ॥ २१ ॥ उनको देखतेही क्रोधके मारे रावणके नेत्र लालहोआये और यह श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ २२ ॥ परन्तु रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें रावणके धनुषसें छूटीहुई उस बाणधाराको आताहुआ

देख भाले ग्रहण किये ॥ २३ ॥ और उन तीक्ष्ण भालेंसे रावणके उन क्रोधित सर्पकी समान फुंकार मारतेहुए दीप्तिमान महा घोर बाणोंको काटकर फेंक दिया ॥ २४ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी और रावण परस्पर एक दूसरेको ताककर अत्यन्त तीक्ष्ण अनेक प्रकारके बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २५ ॥ वह परस्पर एक दूसरेके बाणोंका वेग बचाय कूदतेहुए बांई और दाहिनी ओरको मंडलाकारहो घूमने लगे, परन्तु कोईभी पराजित नहीं हुए ॥ २६ ॥ उस समय दोनों वीर यमराज और अन्तककी समान रौद्रमूर्त्ति धारण किये बाणोंको चलाय २ महायुद्ध करतेथे, उनकी वह मूर्त्ति देखकर जीवलोक त्रासके मारे घबड़ा उठा ॥ २७ ॥ उसकाल ग्रीष्मऋतुके अंतमें विद्युन्मालाविलासित [बिजली सहित] मेघोंकीनांई इन दोनो वीरोंके चलायेहुए विविध बाणोंसे आकाशमंडल छायगया ॥ २८ ॥ उन दोनों वीरोंके गिद्धपक्ष युक्त महावेगसे उड़नेंवाले तीक्ष्ण बाणजालकी वर्षा होनेंसे मानों आकाश झरोखा युक्त होगयाथा [अर्थात् आकाश झझरी होगया] ॥ २९ ॥ उठे हुए दो महामेघोंकी समान उन दोनों वीरोंनें दिनके समयभी बाणोंकी वर्षा करके आकाशमंडलको महाअंधकारसे छायलिया ॥ ३० ॥ पहले समय वृत्रासुर और इन्द्रका युद्ध जिस प्रकारसें हुआथा वैसेही परस्पर एक दूसरेके वधकी इच्छा किये इन दोनों वीरोंका अचिन्तनीय अपूर्व बड़ा भारी युद्ध होनेंलगा ॥ ३१ ॥ यह दोनोही वीर युद्धविशारदथे धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ और अस्त्र जाननेंवालोंमें आगे गिनेजानेंके योग्य थे, दोनोंही विविध भांतिकी गतिसे गमन करनेलगे ॥ ३२ ॥ जिस २ मार्गमें वे दोनों वीर जातेथे, उस २ स्थानमेंही पवनके वेगसे उछलीहुई समुद्रकी तरंगोंकी समान बाणरूपी तरंगें उछलनेंलगीं ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त बाण चलानेमें व्यस्त लोकोंके रुवानेवाले रावणनें श्रीरामचंद्रजीके माथेको ताककर उसमें बहुतसें बाण मारे ॥ ३४ ॥ परन्तु रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें नीलोत्पलदल [नीले कमल] की समान प्रभायुक्त और रावणके बड़े भारी रौद्र धनुषसे छूटेंहुए उन सब बाणोंको मस्तकपर धारण कर लिया और कुछभी व्यथित नहीं हुए ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीनें रौद्रास्त्रका प्रयोग करनेके लिये क्रोधमें भरकर फिर बहुत

सारे बाणोंको ग्रहणकर उनको अभिमंत्रित किया ॥ ३६ ॥ अन्तररहित बाणवर्षणकारी महातेजस्वी वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी उन समस्त बाणोंको ग्रहण करकै राक्षसोंके स्वामी रावणपर चलातेहुए परन्तु यह सब अस्त्र व्यर्थ होगये ॥ ३७ ॥ राक्षसराज रावणका शरीर महामेघकी समान कवचसे रक्षितथा इसकारणसे श्रीरामचंद्रजीके बाण रावणके शरीरपर गिरकरभी उसको कुछभी पीड़ा नहीं देसके ॥ ३८ ॥ यह देखकर सर्व अस्त्र शस्त्रोंके चलानेमें कुशल रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण परमास्त्रसे फिर रावणके माथेको बींधडाला ॥ ३९ ॥ वे पांच मस्तकवाले सर्पकी समान छोड़ेहुए बाण रावणके बाणोंद्वारा रोकनेंपरभी रावणके माथेमें जाय लगहीगये, परन्तु कुछ घाव न करसकके पृथ्वीमें प्रवेश करतेहुए ॥ ४० ॥ रावणनें इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीके बाणोंको निवारण किया और क्रोधमें भर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर आसुरी बाण चलाये ॥ ४१ ॥ यह सब आसुरी बाण कोई सिंह और कोई व्याघ्रके मुखकी समानथे, बहुत कंक और काकमुखकी समानके, कुछ एक गिद्ध, बाज, और गीदड़की समान मुखवालेथे ॥ ४२ ॥ और कितनेंही बाणोंका भेड़ियोंके मुखकी समान अत्यन्त भयानक मुखथा जो कि अपने भयानक मुखोंको फैलायरहेथे, और बहुत पंचमुखी बाणथे जो कि इधर उधरको जीभ लपलपा रहेथे, इस प्रकारके अनेक बाण रावणनें चलाये ॥ ४३ ॥ इनमें अनेक बाणोंके मुख गधोंकी तुल्यथे शूकरोंके मुखोंवाले कुत्तोंके व मुरगोंके मुख और महाविषधर सर्पोंकी समान जिनके मुखका आकारथा ॥ ४४ ॥ महा तेजस्वी रावणनें यह व औरभी अनेक अस्त्र अपनी मायाके प्रभावसे उत्पन्न करकै श्रीरामचंद्रजीपर चलाये क्रोधित सर्प जिसप्रकारसे गमन करता है वह बाणभी वैसेही फुंकार करतेहुए श्रीरामचंद्रजीकी ओर गमन करनें लगे ॥ ४५ ॥ अग्नितुल्य तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी आसुरीबाणोंसे घिर कर अतिउत्साहसे आग्नेयास्त्र छोड़ते हुए ॥ ४६ ॥ जिस आग्नेयास्त्रमें अनेक बाणोंके मुख अग्निकी समान प्रज्वलितथे और बहुत सूर्यकीनांई प्रकाशित मुखवालेथे, अनेक बाण चन्द्राकार व अर्द्धचन्द्राकार मुखयुक्तथे और अनेक बाणोंका आकार केतुके मुखकी समानथा बहुत बाण ग्रह

और नक्षत्रोंकी समान वर्णके थे, अनेक बड़ीभारी उल्काओंकी भांतिथे ॥ ४७ ॥ और बहुत बाणोंकी जीभ बिजलीके समान आकार वालीथी, इस प्रकार विविध भांतिके बाण श्रीरामचंद्रजीनें चलाये । श्रीरामचंद्रजीके चलायेहुए बाणोंसे अति घोर बाण हत होकर ॥ ४८ ॥ आकाशमेंही नष्ट होकर सब टूट फूट गये, सरलकर्मकारी श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे रावणके अस्त्रोंकों नष्ट देखकर ॥ ४९ ॥ कामरूपधारी सब वानरलोग बहुतही हर्षित हुए सुग्रीवादि मुख्य २ वानर गण श्रीरामचंद्रजीके निकट आये और उनको भेंटकर अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ५० ॥

ततस्तदस्त्रंविनिहत्यराघवःप्रसह्यतद्रावणबाहुनिःसृतम् ॥ मुदान्वितोदाशरथिर्महात्माविनेदुरुच्चैर्मुदिताःकपीश्वराः ॥ ५१ ॥

इस प्रकारसे महात्मा रघुनंदन दशरथकुमार धनुषधारी श्रीरामचंद्रजी अपने अस्त्रोंके प्रभावसे रावणकी बांहसे छूटे हुए अस्त्रोंको विफलकर अत्यन्तही आनंदितहुए और कपीश्वर गण ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करनें लगे ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये भाषानुवादे युद्धकांडे शततमः सर्गः १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः ॥

तस्मिन्प्रतिहतेस्त्रेतुरावणोराक्षसाधिपः ॥ क्रोधंचद्विगुणंचक्रेक्रोधाच्चास्त्रमनंतरम् ॥ १ ॥

राक्षसराज रावणनें अपनें उस अस्त्रको विफल देखकर दूना क्रोध किया, व इसके उपरान्त मारे क्रोधके ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजीके ऊपर मयनाम दानवका बनाया महाभयंकर द्युतिमान् अस्त्र लेकर छोड़ा ॥२॥ जिस अस्त्रमेंसे शूल, गदा, मूसल, वज्रकी समान दृढ़ व दीप्तिमान औरभी बहुतसे अस्त्र शस्त्र निकले ॥ ३ ॥ उस अस्त्रमेंसे मुद्गर, कूट, पाश, प्रकाशित अशनि, यह सब सन २ करते ऐसे वेगसे निकले कि जैसे युगान्तमें पवन निकलकर चलताहै ॥ ४ ॥ परन्तु अस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाद्युतिमान् श्रीरामचंद्रजीनें श्रेष्ठ गान्धर्वास्त्रसे इस रावणके अस्त्र-

को काट डाला ॥ ५ ॥ जबकि मयका बनायाहुआ मायास्त्र वि-
फल होगया, तब रावण मारे क्रोधके अग्निकी समान होगया, तब उसनें
लाल२ नेत्र कर सोर अस्त्र चलाया ॥ ६ ॥ जिस अस्त्रसे अति प्रज्वलित ब-
ड़े २ सहस्रों लक्षों चक्र निकले, यह सब भयंकर वेगवाले चक्र रावणके
धनुपसे निकलनें लगे ॥ ७ ॥ उन दीप्तिमान चक्रोंसे समस्त आकाश
प्रकाशित होगया प्रदीप्त चन्द्र सूर्य और तारागणोंसे वेष्टित होनेंपर
जो आकाशकी अवस्था होतीहै उस समय रावणके बाणोंसे अन्तरिक्षभी
वैसाही होगया ॥ ८ ॥ परन्तु रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें समस्त सैनाके
सामने रावणके चलाये वह चक्र और समस्त विचित्र आयुध काट
डाले ॥ ९ ॥ राक्षसराज रावणनें उस अस्त्रकोभी व्यर्थ देख-
कर दश बाण लेकर श्रीरामचंद्रजीके मर्मस्थानमें मारे ॥ १० ॥
यद्यपि श्रीरामचंद्रजीके शरीरमें महातेजस्वी रावणके महाधनुष-
से छूटे हुए बाण लगे परन्तु वह कुछभी कंपायमान न हुए ॥ ११ ॥
जब समरविजयी श्रीरामचंद्रजीनें अत्यन्त क्रोध करके राक्षसके सर्व
शरीरमें अति पैने बहुतसे बाण मारे ॥ १२ ॥ इसी अवसरमें क्रोधित
श्रीरामचंद्रजीके लघु भ्राता, बली, परवीरघाती; लक्ष्मणजीनें सात बाण
हाथमें लिये ॥ १३ ॥ और उन दीप्तिमान तीक्ष्ण बाणोंसे लक्ष्मणजीनें रा-
वणकी मनुष्य चिह्नित रथकी ध्वजाके अनेक खंड कर दिये ॥ १४ ॥
परम श्रीयुत लक्ष्मणजीनें राक्षस रावणके सारथिका प्रकाशमान कुंडल
सहित शिरभी काट डाला ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त लक्ष्मणजीनें हाथीके
शुण्डके समान आकारवाला राक्षसराज रावणका धनुषभी पांच तीखे
बाणोंसे काट डाला ॥ १६ ॥ इसी समयमें विभीषणजीनें कूदकर गदासे
राक्षसराज रावणके नील मेघ और पर्वताकार उत्तम चारों घोडोंका संहार
किया ॥ १७ ॥ अपने रथमें जुतेहुए घोडोंको मराहुआ देख रथसे उत-
रकर रावणनें अपने भ्राता बिभीषणपर अत्यन्त कोप किया ॥ १८ ॥
महाशक्तियुक्त प्रतापवान् रावणनें प्रदीप्त वज्रकी समान महाशक्तिले
बिभीषणके ऊपरको चलाया ॥ १९ ॥ परन्तु उस शक्तिको बिभीषण-
जीके ऊपर गिरते २ लक्ष्मणजीनें तीन बाणोंसे समरमें काट डाला वानर-
लोग रावणकी शक्ति व्यर्थ देखकर समरमें घोर सिंहनाद करनें

लगे ॥ २० ॥ चिनगारियोंसे युक्त प्रकाशमान वड़ीभारी उल्का जिस प्रकारसे आकाशसे गिरपड़ती है वैसेही सुवर्णकी मालासे भूषित रावणकी वह शक्ति तीन खंड होकर पृथ्वीमें गिरपड़ी ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त महावीर रावणनें एक और दूसरी शक्ति ग्रहणकी, यह शक्ति अपने तेजसे आपही प्रकाशमानथी और यमराजके लियेभी कठोर व सहनेंके अयोग्यथी ॥ २२ ॥ उस कालमें महातेजस्वी बलशाली दुरात्मा रावण करकै अत्यन्त वेगसे घुमाईहुई वह प्रदीप्त वज्रकी समान प्रभायुक्त शक्ति प्रज्वलित होगई ॥ २३ ॥ इसी अवसरमें सुमित्रानंदन वीर लक्ष्मणजी विभीषणके प्राण बचनेंमें संशय देखकर उनकी रक्षा करनेंके लिये शीघ्रतासे उस शक्तिके सन्मुख आगये ॥ २४ ॥ राजकुमार लक्ष्मणजी विभीषणजीका प्राण बचानेंके लिये शक्तिधारी रावणके ऊपर अपने धनुषको नवाय बाणोंकी वर्षा करनेंलगे ॥ २५ ॥ महात्मा बलवान लक्ष्मणजीके बाणवेगसे रावण ऐसा घबड़ागया, कि वह अपने भ्राता विभीषणजीके वधका उत्साह छोड़ वैसा उन पर कुछ पराक्रम न दिखलासका ॥ २६ ॥ रावण अपने भ्राताकी रक्षा लक्ष्मणजीसे होते देखकर उनके सामने जाय कर खड़ा होगया और उन लक्ष्मणजीसे गर्वसहित यह वचन बोला॥२७॥ हे अपने बलकी बड़ाई चाहनेंवाले! तुम्हारे रक्षा करनेंसे हमारा भाई विभीषण तौ बचगया, परन्तु इस समय इसको छोड़कर यह शक्ति अब हम तुम्हारे ऊपर गिरातेहैं ॥ २८ ॥ परिघकी समान मेरी बाहोंसे छूटी हुई शत्रुका रुधिरपान करनेंवाली यह शक्ति तुम्हारा हृदय भेदकर प्राण निकाल बाहर आवैगी ॥ २९ ॥ यह कहकर रावणनें शक्ति चलाई यह शत्रुघातिनी मयदानवकी मायासे बनीहुई थी इसमें आठ घंट लगे हुएथे ओर घोर शब्द निकल रहाथा ॥ ३० ॥ वह लक्ष्मणजीका प्राण संहार करनेंके लिये अपने तेजसे दीप्तिमानथी रावणनें अत्यन्त घोर सिंहनाद करके यह शक्ति छोड़ी ॥ ३१ ॥ भयंकर वेगसे छूटीहुई और वज्र व अशनिकी समान वह शक्तिभी रणमें विराजमान लक्ष्मणजीकी ओर अतिवेगसे दौड़ी ॥ ३२ ॥ उस शक्तिको गिरताहुआ देखकर श्रीरामचंद्रजीनें भयरहित होकर कहा—कि लक्ष्मणजीका मंगलहो और यह शक्ति विफल और हतोद्यम होजावै ॥ ३३ ॥

श्रीरामचंद्रजी यह कहही रहेथे कि इतनेमें विपधर सर्पकी समान रावणकी घोर शक्ति रावणके हाथसे छुटकर वह बलवान लक्ष्मणजीकी छातीमें लगी ॥ ३४ ॥ देखते २ सर्पराज वासुकीकी जिह्वाकी समान दीप्तिमान यह भयंकर शक्ति महाद्युतियुक्त लक्ष्मणजीके हृदयमें बहुतही प्रवेश कर गई ॥ ३५ ॥ अति वेगसे चलाई और शरीरमें बहुत पैठी हुई उस रावणकी छोड़ी शक्तिसे भिन्न हृदयहो लक्ष्मणजी पृथ्वीपर गिर पड़े ॥३६॥ उस समय महावीर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीकी ऐसी अवस्था देखकर भायपनके स्नेहके वश होकर हृदयमें व्यथा पातेहुए ॥ ३७ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार नेत्रोंसे आंसू बहाते एक मुहूर्तभरतक चिन्ता करके युगान्तकालीन अग्निकी समान अत्यन्त क्रोधित हो उठे ॥ ३८ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजी को देखकर और यह विपादका समय नहींहै ऐसा विचारकर रावणका वध करनेंके लिये सर्व प्रयत्नसे युद्ध करनेंका अभिलाष करतेहुए ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त रणके बीच टिके हुए अचल पन्नगकी समान लक्ष्मणजीके निकट पहुँचकर श्रीरामचंद्रजीनें देखा कि उनके सब शरीरमें शक्तिके लगनेंसे रुधिर निकल रहाहै, और उनका हृदय विदीर्ण होगयाहै ॥ ४० ॥ कपिश्रेष्ठ गण बलशाली रावणकी छोड़ीहुई उस शक्तिके उद्धार करनेंमें किसी प्रकारसे समर्थ न हुए ॥ ४१ ॥ क्योंकि वेगवान जन उस शक्तिके उठानेंकी चेष्टा करतेथे तब राक्षस राजनें बाण समूहसे उनको मारा कि जिस्से वह पीड़ित होगये वह शक्ति लक्ष्मणजीको भेद पृथ्वीमें प्रवेश किये जातीथी ॥ ४२ ॥ बलवान श्रीरामचंद्रजीनें क्रोधमें भरकर संग्राममें दोनों हाथोंसे पकड़ और मरोर कर उस भयंकर शक्तिको तोड डाला ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी जिस समय उस शक्तिको खेंच रहेथे उसी समय बलशाली रावणनें मर्मभेदी बाणोंसे उनके सर्व मर्म स्थानोंको विद्ध किया ॥ ४४ ॥ परन्तु रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी उन सब बाणोंकी कुछ चिन्ता न करतेहुए लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाय महाकपि सुग्रीव व हनुमानजीसे बोले ॥४५॥ हे वानरश्रेष्ठगण! यह हमारा बहुत दिनोंका चाहा विक्रम प्रकाश करनेंका समय आय पहुंचाहै, इसलिये तुम सब जन लक्ष्मणजीको घेर यहां टिके रहकर इनकी रक्षा करो ॥४६॥ ग्रीष्मकालमें प्यासे चातकके जलपानेंकी समान बहुत दिनोंसे अभिलाषित यह पापात्मा पाप-

निश्चय रावण यहां हमारे सामनें आयाहै इस कारण शीघ्र इसका वध करनाही कर्तव्यहै॥४७॥हे वानरगण! बहुत दिन हुए कि तुम लोगोंके आगे जो प्रतिज्ञा की है आज इसी मुहूर्त्तमें हम उस सत्य प्रतिज्ञाकी मर्यादाकी रक्षा करेंगे तुम लोग शीघ्रही इस पृथ्वीको रामचंद्रसे शून्य या रावणसे शून्य देखोगे॥४८॥ राज्यका नाश होना, वनवास, दंडकारण्यमें प्रवेश, सीताहरण,और राक्षसोंके सहित युद्ध, यह जो सब दुःख पड़ेहैं ॥ ४९ ॥ और हमने घोर तर मानासिक क्लेश, और नरककी पीड़ाके समान जो शारीरक कष्ट पायेहैं,आज रणमें रावणका संहार करकै हम उन समस्त दुःखोंको भूल जांयगे ॥ ५० ॥ हम जिस कारणसे वानरोंकी सैनाको यहांपर लायेहैं, और जिसके कारणसे हमने वालिका प्राण संहार करकै सुग्रीवका राज्याभिषेक किया ॥ ५१ ॥ और जिसके लिये सेतु बांधकर महासमुद्रके पार हुएहैं ॥ ५२ ॥ यह वही पापी रावण आज हमारी दृष्टिके सन्मुख आयाहै अब हमारी दृष्टिके सामने आय रावण जीताहुआ नहीं बच सकता ॥ ५३ ॥ दृष्टिविषवाले सर्पकी दृष्टिमें जिस प्रकार किसीके जीवनकी रक्षा नहींहोसकती, जिस प्रकार गरुड़जीकी दृष्टिमें आजानेंसे सर्पका निस्तारा नहीं वैसेही यह दुरात्मा रावण हमारी दृष्टिको प्राप्त हुआहै, अर्थात् अब यह जीता नहीं बचैगा ॥ ५४ ॥ हे दुर्द्धर्ष वानरश्रेष्ठगण ! तुम लोग विना घबड़ाहटके पर्वतके ऊपर बैठकर हमारा और रावणका युद्ध देखो ॥ ५५ ॥ आज पर्वत गणोंके सहित सिद्ध, गन्धर्व, चारण इत्यादि त्रिलोकवासी प्राणीगण संग्राममें मुझ रामका रामपन देखें ॥ ५६ ॥ आज हम इस प्रकारका कर्म करेंगे कि जितने दिन पृथ्वी प्राणियोंको धारण किये रहैगी तबतक देवतालोगोंके साथ चराचर लोक सबही इस युद्धको कहा करेंगे ॥ ५७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीनें सावधानीसे यह वचन कह सात सुवर्णभूषित तीखे बाणोंसे संग्रामके बीचमें टिके हुए रावणको मारा ॥ ५८ ॥ मेघ जिस प्रकार जलकी धारा वर्षाताहै वैसेही रावणभी प्रसिद्ध २ बाणों और मूसल इत्यादि अस्त्र शस्त्रोंकी वृष्टि श्रीरामचन्द्रजीपर करनें लगा ॥ ५९ ॥ उसकाल परस्पर एक दूसरेके मारनेंकी इच्छा किये जाकर राम रावणके चलायेहुए श्रेष्ठ बाण और मूसलोंका कठोर शब्द उत्पन्नहुआ ॥ ६० ॥ राजा रावणके प्रदीप्त मुखवाले बाण परस्पर टकराय २ टूट फूटकर आका-

शसे पृथ्वीपर गिरनेंलगे ॥ ६१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी व रावण प्रत्यंचाका जो बड़ाभारी शब्द करतेथे, सब प्राणीही अति आश्चर्य युक्त होकर उसको देखनें लगे ॥ ६२ ॥

विकीर्यमाणःशरजालवृष्टिर्महात्मनादीप्तधनु ष्मतार्दितः ॥ भयात्प्रदुद्रावसमेत्यरावणोय थानिलेनाभिहतोबलाहकः ॥ ६३ ॥

परन्तु रावण धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकरके बाणोंकी वर्षासे ढककर व पीड़ित होकर भयके मारे पवनकी टकराये बादलकी समान भाग गया ॥ ६३ ॥ इति श्रीम०वा०आ०यु०भाषानुवादे एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥

शक्त्यानिपातितंदृष्ट्वारावणेनबलीयसा ॥ लक्ष्मणंसमरेशूरंशोणितौघपरिप्लुतम्॥१॥

बलवान रावण करके संग्राममें शक्तिसे गिरे हुए शूर लक्ष्मणजीको रुधिरसे डूबेहुए देखकर भी ॥ १ ॥ दुरात्मा रावणके सहित तुमुल युद्धको करके बाण समूहको छोड़ श्रीरघुनाथ सुषेण वानरसे बोले ॥ २ ॥ यह वीर लक्ष्मण रावणके वीर्यसे पृथ्वीपर गिरकर हाथ पैरहीन सर्पकी समान जो चेष्टा करते हैं यह देखकर हमको अत्यन्त शोक होताहै ॥ ३ ॥ अब हममें युद्ध करनेंकी शक्ति नहीं है, कारण कि प्राणसेभी अधिक प्यारे इन वीरको रुधिरमें डूबा हुआ देखकर हमारी आत्मा व्याकुल होरही है ॥ ४ ॥ यह समरमें बड़ाई पानेंके योग्य शुभलक्षण भ्राता लक्ष्मणही यदि मृतक होगये तो फिर सुखके भोगनेंसे या जीवन धारण करनेंसे हमको क्या फलहै ? ॥ ५ ॥ इस समय हमारा बलवीर्य मानों लज्जित हो रहाहै हाथसे धनुष मानों गिरा पड़ता है, और सब अस्त्र शस्त्र मानों छूटे पड़ते हैं व दृष्टि आंसुओंसे रुकीजातीहै ॥ ६ ॥ सब अंग इस प्रकार कंपायमान होतेहैं कि जैसे बुरा स्वप्न देखनेंसे रात्रिमें कांपते हैं; और बड़ी भारी चिन्ता हमको बढ़ीही चली जाती है, मरनेंकी इच्छाभी होतीहै ॥७॥

दुरात्मा रावण करके आघात पाये और मर्म स्थान विदीर्ण हुए अपने भ्राता लक्ष्मणको दुःखसे आरतहो विकृत शब्द करते देख हमारे मर्ममें अत्यन्त पीड़ा हुईहै ॥८॥ रणकी धूरिमें लोटतेहुए अपने भ्राता लक्ष्मणजीको गिरा हुआ देख श्रीरामचंद्रजीकी इन्द्रियें व्याकुल होगईं और वह शोकाकुल होकर फिर विलाप करनेलगे ॥९॥ हा! शूर लक्ष्मणके न रहनेपर विजयका प्राप्त होनाभी हमको प्यारा नहीं लगता, कारण प्रजा पुत्रको आह्लादित करतेहैं इस्सेही तो निशाकरका नाम चंद्रमाहै परन्तु अस्त होकर चंद्रमा प्रजाओंको हर्षित नहीं करते ॥ १० ॥ अथवा जब यह भ्राता लक्ष्मणही मृतक तुल्य होकर रणभूमिमें शयन कियेहुएहैं तब फिर युद्धकी कुछ आवश्यकता नहीं कारण कि युद्ध करना और प्राण रखना इन दोनों-हीसे कुछ प्रयोजन नहीं ॥ ११ ॥ हमारे वनको आनेपर जिस प्रकार यह महाद्युतिमान् हमारे पीछे २ आयेथे वैसेही हमभी प्राणोंको त्याग कर इनका साथ देंगे ॥ १२ ॥ हा! बन्धुजन जिनको सदा इष्टथे और जो सदाही हमारी आज्ञा पालन करनेंमें तत्पर रहतेथे वही वीर लक्ष्मण मायासे युद्ध करनेंवाले निशाचरों करकै ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुए-हैं ॥ १३ ॥ प्रति देशमें स्त्री और बांधव मिल सकतेहैं, परन्तु जहां सहो-दर भ्राता प्राप्त होजाय ऐसा देश हम कहीं नहीं देखते ॥ १४ ॥ जब दुर्द्धर्ष लक्ष्मणही नहीं, तब फिर राज्यकी हमको कुछ आवश्यकता नहीं। हाय! हम किस प्रकारसे पुत्र वत्सला माता सुमित्राजीसे लक्ष्मणजीकी मृत्युका समाचार कहेंगे ॥ १५ ॥ जननी कौशल्या और माता कैके-यीसे हम क्या कहैंगे और माता सुमित्राजी जो हमारा तिरस्कार करैं-गी, उसकोभी हम किस प्रकारसे सहेंगे ॥ १६ ॥ हा! महाबलवान् भरत अथवा शत्रुघ्न जब हमसे" भैया लक्ष्मण आपके साथ वनको गयेथे, पर-न्तु आप अब उनको विनाही साथ लिये कैसे लौट आये?" ऐसा पूछनें-पर हम उन्हें क्या उत्तर देंगे? १७ ॥ इस समय बन्धु बान्धवोंमें जाकर निन्दित होनेसे हमारा यहीं मरजाना अच्छाहै, हाय! न जानें हमनें प-हले जन्ममें कौनसा पाप कर्म कियाथा ॥ १८ ॥ कि जिससे यह ह-मारे धर्मात्मा भाई हमारे आगेही मृतकसे होकर पड़ेहैं ॥ हा भइया लक्ष्मण! हे मनुज श्रेष्ठ! हे शूर लोगोंमें प्रथम गिननेके योग्य! ॥ १९ ॥

तुम किस कारणसे हमको यहां छोड़ अकेले परलोकको चलेजातेहो? हा भइया! हम तुम्हारे लिये ऐसा विलाप कररहेहैं तथापि तुम किस कारणसे उठकर हमसे नहीं बोलते * ॥२०॥ अरे भ्राता! इस समय उठो, और आँखे खोलकर एक बार अपनें दीन भाईकी ओर निहारो तो॥ शोकसे आरत और प्रमत्त होकर पर्वतोंमें और वनोंमें घूमते २॥२१॥ जब हम शोक करतेथे; हे महाबाहो! तब तुमही हमको समझाते बुझातेथे, श्रीरामचंद्रजी शोकके मारे व्याकुलेन्द्रिय होकर जब इस प्रकारसे विलाप कर रहेथे॥ २२॥ तब सुषेण उनको समझाते बुझातेहुए यह परम वचन बोले हे नरशार्दूल! विकलताकी करनेंवाली इस बुद्धिका त्याग कर दीजिये॥ २३॥ लक्ष्मीके बढ़ानेंवाले लक्ष्मणजी मृतक नहीं होगयेहैं, शोक छोड़ दीजिये यह शत्रुके चलाये बाणोंसे पृथ्वीपर मृतकसे होकर पड़ेहैं, परन्तु वास्तवमें मृतक नहीं हुएहैं॥ २४॥ क्योंकि इनके मुखमें कुछभी विकार प्राप्त नही हुआहै, न इसपर श्यामता आईहै, और न प्रभाहीनही हुआहै, वरन इनका मुख सुन्दर और प्रभायुक्त दिखाई देताहै॥ २५॥ इनके हाथोंकी हथेलियें कमलपत्रकी समान लालवर्ण युक्तहैं; नेत्र प्रकाशमानहैं, हे प्रजापालक! मृतक पुरुषका रूप ऐसा नहीं दिखाई देताहै॥ २६॥ हे वीर! शत्रुदमनकारी! विषाद न कीजिये! लक्ष्मणजी अभी जीवितहैं; क्योंकि शीतल अंग किये और पृथ्वीपर सोतेहुए॥ २७॥ लक्ष्मणजीका श्वास सहित हृदय अभी वारंवार कंपायमान होताहै। महाप्राज्ञ सुषेणजी श्रीरामचंद्रजीसे ऐसा कहकर॥२८॥ समीपमेंही खड़ेहुए महाकपि हनुमानजीसे यह वचन बोले कि हे सौम्य! शीघ्र उस महोदय पर्वतको॥ २९॥ कि जिसको पहलेही वीर जाम्बवाननें तुमको बतायाथा जिसके दक्षिणशिखरपर महौषधियें उत्पन्नहोतीहैं उसको जायकर ले आओ॥ ३०॥ विशल्य करणी (जिसके सुंघातेही शरीरसे गड़े बाण निकल आतेहैं) सावर्ण्यकरणी [जिसके सुंघातेही घाव भर आतेहैं] संजीवकरणी [इसके सुंघानेसे मृ-

* चौ०—सुत वित नारि भवन परिवारा, होहिं जाहिं जग वारहिं वारा॥ अस विचार जिय जागहु ताता, मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता॥

तक जी उठताहै] सन्धानकरणी [इसके सूंघनेंसे सब अंगोंमें प्रथमसे अधिक बल होजाताहै] नामक जो चार महौषधियें हैं ॥ ३१ ॥ वीर वत्सल लक्ष्मणजीको जीवित करनेंके लिये इन औषधियोंको तुम लेआओ जब सुषेणने हनुमानजीसे ऐसा कहा तौ हनुमानजो औषधिपर्वतपर गये, परन्तु महौषधियोंको न पहँचाननेंके कारण इनको बड़ी चिन्ता हुई ॥ ३२ ॥ तब अमितबलशाली अंजनीकुमार हनुमानजीने मनही मनमें स्थिर किया कि अनर्थक चिंता करनेंका कुछ प्रयोजन नहीं लाओ अभी इस पर्वतके सम्पूर्ण शिखरकोही लिये चलतेहैं ॥ ३३ ॥ सुषेणजीनें जिस प्रकारके लक्षण बतायेथे उन लक्षणोंसे तौ यही जान पड़ताहै कि इसी शिखरपर बहुत सुखकी देनेवाली औषधियां हैं ॥ ३४ ॥ यदि हम वहां इन औषधियोंके लक्षण पूछनेको जांय और इस समय विशल्यकरणीको न लेजांयगे तौ समय बीतजानेसें दोषभी होगा और बड़ीभारी विकलताभी आनपड़ेगी ॥ ३५ ॥ महाबलवान हनुमानजीनें इस प्रकारकी चिन्ता करके शीघ्रजाय उस पर्वतश्रेष्ठको धारणकर तीन वार कंपायमान किया ॥ ३६ ॥ इस शिखरपर वृक्षफूल रहेथे इसको महाबलवान् हनुमानजीनें उखाड़लिया, वानरशार्दूल हनुमानजीनें दोनों हाथोंसे उठाय इसको तोललिया ॥ ३७ ॥ जलसे भरे हुए नीले वादलकी समान उस पर्वतके शिखरको ग्रहण करके हनुमानजी आकाशमें कूदगये ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त वेगसे लंकामें पहुंच पर्वतके शिखरको रख और क्षणभरतक विश्राम करके सुषेणसे कहते हुए ॥ ३९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! तुमनें जिन सब दवाइयोंको बतायाथा हम उन सबको न पहँचान कर सारे पर्वतके शिखरकोही यहां उठा लाये हैं ॥ ४० ॥ जब पवनकुमार हनुमानजीनें ऐसा कहा तब वानरश्रेष्ठ सुषेणनें उनकी प्रशंसा करके शिखरपरसे औषधियें उखाड़लीं ॥ ४१ ॥ देवताओंसेभी जो न होसकै ऐसा हनुमानजीका यह विचित्र कर्म देखकर समस्त वानरश्रेष्ठगण विस्मित हुए ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त महाद्युतिमान वानरोंमें श्रेष्ठ सुषेणजीनें उस औषधिको पीस लक्ष्मणजीकी नासिकामें उसका नशा दिया ॥ ४३ ॥ परवीरघाती शक्तिसे पीड़ित लक्ष्मणजी उस औषधिकी सुगंधिको सूंघकर घावरहित, व्याधिहीन शीघ्र

पृथ्वीपरसे उठबैठे ॥ ४४ ॥ लक्ष्मणजीको पृथ्वीपरसे उठताहुआ देखकर समस्त वानरलोग आनंदसहित "धन्यहो, धन्यहो" ऐसा कहकर लक्ष्मणजीकी बड़ाई करने लगे ॥ ४५ ॥ परवीरघाती श्रीरामचंद्रजीनें "आओ, आओ" यह पुकार नेत्रोंमें आँसूभर भली भांति लक्ष्मणजीको अपने हृदयसे लगाया ॥ ४६ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सुमित्रासुत लक्ष्मणजीको इस प्रकार हृदयसे लगायकर बोलेकि हे वीर! हमने भाग्यके बलसेही तुमको मृत्युसे फिर जीवित होते देखा ॥ ४७ ॥ विजयलाभ, सीता, अथवा जीवनधारण यह सब हमारे किसी काममेंभी नहीं आते। कारण कि तुम्हारे मृतक होजानेंपर हमारे प्राणधारण करनेंसे क्या फल होता? ॥ ४८ ॥ महात्मा रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें जब यह वचन कहे, तब लक्ष्मणजी दुःखित अंतःकरणसे और करुणाकी वाणीसे बोले ॥४९॥ हे सत्यपराक्रम! पहले वह प्रतिज्ञा करके पुरुषार्थरहित छोटे दुर्बल पुरुषकी समान आपको ऐसा कहना उचित नहींहै ॥ ५० ॥ प्रतिज्ञा पालन करनाही महत्त्वका लक्षण है; सत्यवादी महात्मा लोग कभीभी प्रतिज्ञाको भंग नहीं करतेहैं ॥ ५१ ॥ हे वीर! हमारे लिये आप इतने उत्साहहीन क्यों होतेहैं? आज आप रावणका संहार करके अपनी प्रतिज्ञाको पालनकीजिये ॥ ५२ ॥ हम जानतेहैं कि आपके बाणके वशमें होकर किसी शत्रुके प्राणोंकी रक्षा नहीं होसकती। जो सिंह तीक्ष्ण दांत निकाल गर्जकर आवे; तब महागज विचारेकाभी क्या प्राणहै जो उससे अपनी रक्षाकर सके ॥ ५३ ॥ जबतक सूर्य भगवान् अपना पूरा कार्य करके अस्ताचलको नचलेजाँय आप तिस्से पहलेही शीघ्रतासे इस दुरात्माका वध कर डालें; ऐसी हमारी इच्छाहै ॥ ५४ ॥

यदिवधमिच्छसिरावणस्यसंख्येयदिचकृतांहितवेच्छसिप्रतिज्ञाम् ॥ यदितवराजसुताभिलाषआर्य कुरुचवचोममशीघ्रमद्यवीर ॥ ५५ ॥

हे आर्य! यदि संग्राममें रावणका नाश करना और अपनेको सत्य प्रतिज्ञ कहलानेंकी आप इच्छा रखतेहो; और जो राजकुमारी जानकीजीके लाभ करनेंका आपको अभिलाष हो तौ शीघ्रतासे हमारे कहनेंके

अनुसार आप कार्य करैं ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० यु० भा० द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥

लक्ष्मणेनतुतद्वाक्यमुक्तंश्रुत्वासराघवः ॥
संदधेपरवीरघ्नोधनुरादायवीर्यवान् ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीके कहेहुए यह समस्त वचन सुन करकै परवीरघाती वीर्यवान रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी दिव्य धनुष धारणकर उसपर बाण चढ़ाय॥१॥ सब सैनाके सामनेही रावणके ऊपर बाणोंकी घोरवृष्टि करनेंलगे। इस ओर राक्षसराज रावणभी दूसरे रथपर सवार होकर राहु जिस प्रकार सूर्यके ऊपर दौड़ताहै वैसेही वह श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर दौड़ा जिस प्रकार मेघ जलकी धारासे महापर्वतपर जलकी वर्षा करतेहैं, वैसेही रथपर बैठाहुआ रावण वज्रकी समान बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको मारनेंलगा ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनेंभी अतिसावधानीसे प्रदीप्त अग्निकी समान सुवर्णभूषित बाणोंसे रावणको मर्दित करना प्रारंभ किया ॥ ४ ॥ परन्तु आकाशमें विराजमान हुए देवता गन्धर्व, और किन्नर गण, परस्पर इस प्रकारसे कहनें लगे कि रघुनंदन तो पृथ्वीपर खड़े होकर संग्राम करते हैं और रावण रथ-पर बैठकर युद्ध कररहाहै। इस कारण इन दोनों जनोंका युद्ध समान नहीं है ॥ ५॥ देवताओंके ऐसे वचन सुनकर देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमान् इन्द्रजी मातलीको बुलायकर बोले ॥ ६ ॥ हे मातले! शीघ्र हमारा रथ पृथ्वीपर लेजाय रणमें विराजमान रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके निकट जाय उनको इस रथपर बैठायकर कहना कि देवराज इन्द्रनें यह रथ भेजाहै, इसपर चढ़कर आप देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये ॥ ७ ॥ देवसारथि मातलि देवराज इन्द्रजी करकै इस प्रकार कहे जाकर उनको शिर झुकाय कर प्रणाम करकै बोला ॥ ८ ॥ कि हम आपकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र जायकर श्रीरामचंद्रजीका सारथ्य कार्य करतेहैं, मातलिनें यह कहकर उस उत्तम रथमें हरे रंगके घोड़े जोते वह रथ सुवर्णसे चित्रित होरहाथा सैकड़ों किंकिणियोंसे यह भूषितथा ॥ ९ ॥ प्रातःकालके सूर्यकी प्रकाशितथा उसके कूबर वैदूर्यमणिके बनेथे अच्छे घोड़े और

सुवर्णके भूषणोंसे भूपितथा, इसमें श्वेत रंगके चमरादि धरेथे ॥ १० ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित हरे रंगके घोड़े जिसमें जुतरहेथे, सुवर्णके भूषण जिसमें सर्व प्रकारसे लगरहेथे, उसकी ध्वजाका बांस सुवर्णका बना हुआथा ऐसा श्रीमान् देवराज इन्द्रजीका श्रेष्ठ रथ था ॥ ११ ॥ इस प्रकारसे इन्द्रका सारथि मातलि देवराज इन्द्रजीकी आज्ञा पाय रथपर सवार हो स्वर्गसे उतरा और श्रीरामचन्द्रजीके निकट आया ॥ १२ ॥ चाबुक हाथमें लिये रथपरही बैठा हुआ हजार नेत्रवाले इन्द्रजीका सारथि हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोला ॥ १३ ॥ हे महासत्वसम्पन्न शत्रुदमनकारी श्रीरामचंद्रजी ! आपकी विजय प्राप्तिके लिये देवराज इन्द्रजीनें यह रथ भेजाहै ॥ १४ ॥ और इन्द्रजीने आपको यह ऐन्द्र धनु; अग्निकी समान कवच सूर्यकी समान बाण और यह विमल तीक्ष्ण शक्ति दीहैं ॥ १५ ॥ हे देववीर रघुनाथजी ! हमारे सारथिपनकी चतुरतासे देवराज इन्द्रजी जिस प्रकार दानवोंका दलनकरते हैं, वैसेही आपभी इस रथपर सवार होकर राक्षस रावणका विनाश कीजिये ॥ १६ ॥ जब मातलिनें इस प्रकारसे कहा तब श्रीरामचन्द्रजीनें उस रथकी प्रदक्षिणाकी और अपनी कांतिसे सब लोगोंको विराजमान करके उसपर सवार हुए ॥ १७ ॥ उस समय राक्षस रावण महावीर श्रीरामचंद्रजीका अद्भुत और रोमहर्षणकारी द्वैरथ युद्ध होनें लगा ॥ १८ ॥ परम अस्त्रोंके जाननेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें गान्धर्वास्त्रसे सब गान्धर्व बाणोंको और दैवबाणसे सब देवास्त्रोंको काटडाला ॥ १९ ॥ राक्षसोंके राजा निशाचर रावणनें परमक्रोधित होकर महाघोर राक्षसास्त्र चलाया ॥ २० ॥ रावणके धनुषसे छूटे हुए काञ्चनभूषित महाविषधर सर्पका रूप धारण करके श्रीरामचंद्रजीकी देहमे आनकर लगे ॥ २१ ॥ यह बाण अपने प्रदीप्त मुखसे प्रदीप्त आग उगलते हुए मुख फैलाये हुए श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख आयकर चिपटनें लगे ॥ २२ ॥ उस कालमें उनका प्रकाशित महा विषवाले वासुकी नामकी समान स्पर्शकारी बाणोंसे सब दिशा विदिशा भरगई ॥ २३ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें उन पन्नगरूप समस्त बाणोंको आता हुआ देखकर घोर भयका देंनेवाला गरुडनामक अस्त्र छोड़ा ॥ २४ ॥ वह श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटाहुआ अग्निकी समान प्रभा वाला सुवर्णकी फोंकसे युक्त सर्पशत्रु बाण सुवर्णके पर लगाये गरुड

रूप हो चारोंओर घूमनेंलगा ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीके उसकामरूप धारी गरुडजीके रूपवाले बाण रावणके सर्पाकार बाणोंको काटनेंलगे ॥ २६ ॥ अपनें अस्त्रको व्यर्थहुआ देखकर राक्षसोंका राजा रावण क्रोधित श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाणोंकी घोर वर्षा करनेंलगा ॥२७॥ सरल कर्मकारी श्रीरामचंद्रजीको हजार बाणोंसे पीड़ितकर व औरभी बहुतसे बाण मार मातलिकी ओर दौड़ा ॥ २८ ॥ और इन्द्रकी ध्वजा पर एक बाण चलाया, और रावणनें उस सुवर्णमय ध्वजाको रथके निकट गिराकर ॥ २९ ॥ बाणोंके जालसे इन्द्रके घोड़ोंको मारा, तब देवता गन्धर्व, व चारण, दानवोंके सहित विषादित हुए ॥ ३० ॥ परमर्षि सिद्ध लोगभी रावणसे श्रीरामचंद्रजीको पीडित देख व्याकुल हुए और वानरराज सुग्रीव विभीषणभी अत्यन्त व्यथित हुए ॥ ३१ ॥ उस कालमें रामरूप चंद्रमाको रावणरूप राहुसे ग्रसित देखकर चंद्रमाके अति प्रिय रोहिणी नक्षत्र पर ॥ ३२ ॥ बुध ग्रह जायकर झटपट होरहा; जोकि ऐसा होनेपर प्रजापुञ्जोंके अत्यन्त अशुभका देनेंवाला होजाताहै धुएंके सहित लहरोंसे प्रज्वालितसा होताहुआ समुद्र ॥ ३३ ॥ क्रोधकर मानों सूर्यके छूनेके कारणही ऊपरको उछला. सूर्यभगवान् रूखे और श्याम वर्णके घेरेमें घिरगये, और उनकी किरणें मन्द होगईं ॥ ३४ ॥ और केतके युक्त होनेसे उस समय उनमें कबंध दिखाई देनेंलगा इक्ष्वाकुवंशियोंके सदा शुभकारी इन्द्राग्निदैवत विक्षत्र ॥ ३५ ॥ विशाखापर झटपट आयकर आकाशमें मंगल बैठगया। उस कालमें दशमुख और वीस भुजा वाला रावण धनुष धारण करके विराजमान होनेंलगा ॥ ३६ ॥ उस समय रावण अदृश्य मैनाक पर्वतकी समान जानपड़नेंलगा। पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजी राक्षस रावण करके॥३७॥ दूर किये जाकर संग्राममें बाणोंसे अपनेको नहीं छुटायसके व क्रोधके मारे भौंहें चढ़ाय कुछ एक लाल २ नेत्र करते हुए ॥ ३८ ॥ कि मानों निशाचरगण उस भ्रुकुटिके टेढ़े होनेसे भस्म होने लगे, उस समय बुद्धिमान रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका वह क्रोध पूर्ण वदन देखकर पृथ्वी कंपायमान होनेलगी और सब प्राणियोंको त्रास उपजा ॥ ३९ ॥ वृक्ष चलायमान हुए सिंह व शार्दूलयुक्त पर्वत वारंवार कांपनें लगे और नदियोंका पति समुद्र अत्यन्त खलबलायगया ॥ ४० ॥

गधे बड़ा कठोर शब्द करनेंलगे और उत्पातकी करनेंवाली बादलोंकी घटा दारुण शब्द करती हुई संपूर्ण आकाशमण्डलमें घूमनेंलगीं ॥ ४१ ॥ अधिक क्या कहें; उस कालमें क्रोधित श्रीरामचंद्रजीको और इन समस्त कठोर उपद्रवोंको देखकर सब प्राणियोंको त्रास हुआ और रावण-भी भयभीत हुआ, विमानोंमे बैठेहुए देवता गन्धर्व, उरग, ऋषि, दानव, दैत्यगण, व ग्रहआदि नक्षत्रगण ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ उस महाप्रलयकी समान युद्धको देखनेंलगे । वह दोनों वीर अनेक प्रकारके भयंकर रूपे अस्त्र शस्त्र चलाय परस्पर युद्ध करतेथे ॥ ४४ ॥ उस महासंग्रामके देखने वाले देवता और असुर लोगोंके बीचमें राम रावणका जय पराजय विषयक संदेह उपस्थित होनेंपर असुर लोग हर्ष सहित वारंवार "रावणकी जयहो" और देवता लोग वारंवार "श्रीरामचंद्रजीकी जयहो" इस प्रकारसे कहनेंलगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इसी समयमें महावीर रावणनें श्रीरामचंद्रजीके ऊपर अत्यन्त कोपकर उनके विनाश करनेंकी इच्छासे एक प्रचंड शूल ग्रहण किया ॥ ४७ ॥ यह शूल वज्रकी समान सारवान् महाशब्द करताहुआ; सर्व शत्रुदमनकारी पर्वतके शिखरकी समान कि जिसके देखनेंहीसे डरलगे ॥ ४८ ॥ धुंएसहित दीप्त प्रलयकी अग्निके समान कालकरकेभी बड़े दुःखसे सहनेके योग्य अतिभयानक अत्यन्त तीक्ष्ण और अव्यर्थ ॥ ४९ ॥ सर्व प्राणियोंको त्रास देनेंवाला, सबका विदारण और भेदन करनेंवाला इस प्रकारका शूल रोषसें जलते हुए रावणनें ग्रहण किया ॥ ५० ॥ यह शूल परम क्रोधित होकर वीर्यवान् रावणनें ग्रहण किया, रणके बीचमें असंख्य शूर राक्षसोंसे घेरे जाकर ॥ ५१ ॥ बड़े भारी शरीरवाले रावणनें उस शूलको उठाय बड़ा भारी नाद किया । क्रोधके मारे लाल२ नेत्रकर इसनें अपनी सैनाको हर्षित कराया ॥ ५२ ॥ रावणके उस घोर सिंहनादसे पृथ्वी अंतरिक्ष, दिशा, विदिशा सबही कंपायमान होनेंलगीं ॥ ५३ ॥ अतिकाय दुरात्मा रावणके सिंहनादसे सब प्राणियोंको त्रास उपजा, और समुद्र खलबला गया ॥ ५४ ॥ महावीर्यवान् रावण उस शूलको ग्रहण करके महाशब्दसे सिंहनादकर श्रीरामचंद्रजीसे कठोर वचन कहने लगा ॥ ५५ ॥ हे राम! हम क्रोधमें भरकर यह शूल ग्रहण करके तुम्हारे ऊपर चलातेहैं यह शूल

भ्राताके सहित तुम्हारे प्राणोंको हरण करैगा॥ ५६ ॥ समरमें अपनी बड़ाई चाहनेवाले राम! संग्राममें जितनें शूर राक्षस मारे गये हैं आज तुम्हारा विनाश करके हम उन सबका बदला लेंगे॥ ५७॥ इसलिये क्षण भरतक टिकेरहो लो हम यह शूल चलातेहैं, यह कहकर राक्षसोंके राजा रावणनें वह शूल चलाया॥ ५८॥ दामिनीकी श्रेणीकी समान चमकता हुआ वह आठ घंटे लगाहुआ भयंकर शूल रावणके हाथसे छूटकर महाशब्द करता आकाशमें प्रकाशितहो शोभायमान होनें लगा॥ ५९॥ महावीरवान रघुनंदन श्रीरामचद्रजीने उस घोरदर्शन प्रज्वलित शूलको देख धनुष झुकाय असंख्य बाण चलाये॥ ६०॥ जिस प्रकार इन्द्रजी जल वर्षायकर उठीहुई प्रलयकी अग्निको बुझाते हैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीनें बाणोंसे उस शूलको रोकनेका अभिलाष किया॥ ६१॥ परन्तु अग्नि जिस प्रकार पतंगोंको भस्मकर देतेहैं वैसेही रावणके छोड़ेहुए उस शूलनेंभी श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे उन सब बाणोंको भस्मकर डाला॥ ६२॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें देखाकि हमारे चलाये आकाशमें गये हुए बाण उस अद्भुत शूलसे टकरायकर चूर्णहो भस्म होगये तब श्रीरामचंद्रजीनें अत्यन्तही कोप किया॥६३॥ और इन्द्रजीकी दी हुई शक्ति कि जिसको मातलि लायाथा, उसको महा क्रोधितहो रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें ग्रहण किया॥६४॥युगान्तकालीन उल्काकी समान प्रभासहित घंटेके शब्दसे युक्त वह शक्ति बलवान श्रीरामचंद्रजी करके तोली जायकर आकाश मंडलको प्रकाशित करतीहुई॥ ६५॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीकी चलाईहुई वह शक्ति राक्षसोंमें इन्द्र रावणके शूल पर गिरी, और वह महाशूलभी उस शक्तिके लगनेंसे तेजहीन होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा॥ ६६॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीनें सीधे चलनेंवाले और वज्रकी समान तीक्ष्ण बाणोंसे रावणके रथके घोड़ोंका संहार किया॥ ६७॥ इसके पीछे फिर महाराज रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें बहुतसे तीखे बाण रावणकी छातीमें मारे और तीन बाण अतिजोरसे उसके माथेमें मारे॥ ६८॥ राक्षसश्रेष्ठोंके मध्यमें विराजमान राक्षसराज रावण जब बाणोंसे विद्ध हुवा तब उसके सब अंगोंसे रुधिर निकलनें लगा उस कालमें वह फूले हुए अशोक वृक्षकी समान शोभायमान होंने लगा॥ ६९॥

सरामबाणैरतिविद्धगात्रोनिशाचरेंद्रःक्षत
जार्द्रगात्रः ॥ जगामखेदंचसमाजमध्ये
क्रोधंचचक्रेसुभृशंतदानीम् ॥ ७० ॥

इस प्रकारसे जब संग्रामके मध्य राक्षसराजके सब गात्रोंमें रामचंद्रजीके बाण बहुतही लगे; तब वह रुधिरमें डूबकर अतिशय खिन्न होगया परन्तु एक क्षणभर में ही अत्यन्त क्रोधनें आकर उसके चित्तपर चढ़ाईकी॥७०॥
इ०श्रीम०वा०आ०यु०भा०त्र्यधिकशततमःसर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमःसर्गः ॥

सतुतेनतदाक्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितोभृशम् ॥
रावणःसमरश्लाघीमहाक्रोधमुपागमत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त राक्षसराज रावण श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुल और अत्यन्त पीड़ित होकर अत्यन्त क्रोध करताहुआ ॥ १ ॥ इसकी दोनों आंखें क्रोधके मारे लाल २ होगईं; वह वीर्यवान् रावण धनुष उठाय महा समरमें श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौड़ा ॥ २ ॥ और मेघ जिस प्रकार आकाशसे जलधारा वर्षायकर तालाबोंको भरदेतेहैं वैसेही वह सहस्र २ बाणरूप धारासे श्रीरामचंद्रजीको परिपूर्ण करताहुआ ॥ ३ ॥ परन्तु मह पर्वतकी समान कांपनेके अयोग्य वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी रणमें रावणके धनुषसे छूटेहुए उन बाणोंसे पूरित होकर कंपायमान नहीं हुए ॥ ४ ॥ अधिक करके वीर्यवान् रामचंद्रजीनें संग्राममें टिककर बाणोंके समूहसे उनमेंसे बहुत बाणोंको निवारण कर दिया और शेष बाणोंको सूर्यकी किरण समझकर ग्रहण कर लिया ॥ ५ ॥ तब लघुहस्तवाले निशाचरनें महाक्रोधकर महावीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीके हृदयमें वह हजार बाण मारे ॥ ६ ॥ इन बाणोंके प्रहारसे लक्ष्मणजीके बड़े भाईका शरीर रक्तसे लाल होगया जिससे ज्ञात होनेंलगा कि मानों फूलाहुआ टेसू खड़ाहै ॥ ७ ॥ महा तेजस्वी काकुत्स्थकुलतिलक श्रीरामचंद्रजीनें बाणके प्रहारसे क्रोधित होकर प्रलयकालके सूर्यकी समान तेजयुक्त बाण ग्रहण किये ॥ ८ ॥ इस प्रकारसें वह वीरयुगल राम रावण क्रोधमें भरकर परस्पर एक दूसरेके ऊपर इस प्रकारकी बाणवृष्टि करनेंलगे कि उन बाणोंसे उत्पन्न

हुए अंधकारसें परस्पर कोईभी किसीको नहीं देखसका॥ ९ ॥ इसके उपरान्त दशरथकुमार वीर श्रीरामचंद्रजी क्रोधितहो हँसकर कठोर वचन रावणसे कहनेंलगे ॥ १० ॥ हे राक्षसोंमें नीच ! तुम जनस्थानसे हमारे विनाजाने वशमें पड़ीहुई हमारी भार्याको हरण करकै ले आये हो इसकारण तुमको वीर्यवान् नहीं कह सकते ॥११॥ हम दोनों भाइयोंमेंसे कोईभी कुटीमें नहींथे; वस फिर जानकी उस महावनमें अकेली दीन भावसे टिकरहीथीं तुम उनको वैसी अवस्थामें बलपूर्वक हरण करकै अपनेको शूर समझते हो ॥ १२ ॥ अरे शूर! नाथविहीन स्त्रियोंके ऊपर परदाराहरणरूप कायरपुरुषोंका कार्य करकै तुम अपनेको शूर समझते हो ॥ १३ ॥ हे मर्यादारहित निर्लज्ज दुश्चरित्र! तुम गर्वके मारे अपनी मृत्युको लायकरभी अपनेको शूर कहकर मानतेहो ॥ १४ ॥ आहा! तुमने शूर प्रबल बलशाली और कुवेरके छोटे भ्राता होकरभी जो बड़ाईके योग्य बड़ाभारी कार्य किया है इस कार्यके करनेंसे तुम्हारा यश बहुतही बढैगा [यह निन्दाके वाक्य हैं]॥ १५ तुमने गर्वके वशमें पड़कर जो निन्दित और अहित कार्य कियाहै अब उसका बड़ाभारी फल तुमको मिलैगा ॥ १६ ॥ रे खोटी मतिवाले! तुम चोरकी समान सीताको हरण करकै जो अपनेको शूर समझते हो उस्से क्या तुमको लाज नहीं आती है?॥ १७ ॥ जिस समय हम कुटीमेंथे उस समय जो तुम बलपूर्वक सीताको हरण करते तौ उसी घड़ी तुम हमारे बाणोंसे मृतक होकर अपने भ्राता खरको देखते ॥ १८ ॥ रे दुर्मते ! तू मेरे नेत्रके सामनें आयाहै यह बहोत सुभाग्यकी बातहै, आज मैं तुझकूं तीक्ष्ण बाणोंसे यमराजके घरमें भेजदूंगा ॥ १९ ॥ आज मेरे बाणोंसे बींधाहुआ यह दीप्तिमान् कुंडलवाला तेरा मस्तक इस रणके धूलिमें गिर जायगा, और उसको मांस खानेंवाले जीव खेंचेंगे ॥ २० ॥ आज हम बाणोंके फलकोंसे तुम्हारे हृदयमें जो छेद करेंगे और तुम पृथ्वी-पर गिर जाओगे, तब प्यासे गिद्धगण तुम्हारे हृदय में बैठकर उसी छेदसे निकलाहुआ रुधिर पान करेंगे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार ग-रुडजी सर्पोंको खेंचतेह वैसेही आज तुम जब हमारे बाणोंसे घायलहो व मृतकहो गिरजाओगे तब पक्षीगण तुम्हारी आंतोंको खेंचते फि-

रेंगे ॥ २२ ॥ शत्रु दमनकारी वीर श्रीरामचंद्रजी समीप खड़े हुए राक्षसोंके स्वामी रावणसे यह वचन कह बाणोंकी वर्षा उसके ऊपर करनें लगे ॥ २३ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें रणमें शत्रुके वध करनेंका अभिलाष किया, तब उनका वीर्य, बल, हर्ष, अस्त्र बल दूना होगया ॥ २४ ॥ यद्यपि महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी सर्वज्ञथे तथापि सर्व अस्त्रोंके अधिष्ठाता देवता लोग उनके निकट आये और वह आनंदके मारे औरभी अति शीघ्रतासे बाण छोड़नेंलगे ॥ २५ ॥ तब राक्षसोंके मारनेंवाले रघुनाथजी अपने यह शुभ लक्षण देखकर फिर रावणको बाणोंसे पीड़ित करनें लगे ॥ २६ ॥ तब वानरलोगोंके छोड़ेहुए पत्थर और श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे वध्यमान होकर रावणका हृदय मानों घूमनेंलगा ॥ २७ ॥ परन्तु इस प्रकारकी मूर्छित अवस्थापर जबकि रावण बाण चलानें और धनुष खेंचनेंमेंभी असमर्थ हुआ, उस समय श्रीरामचंद्रजीनें उसके वधके लिये किसी प्रकार वीर्य प्रकाशितनहींकिया ॥ २८ ॥ परन्तु तौभी उसकी मूर्छासे पहले जो इन्होंनें विविध भांतिके अस्त्र शस्त्र छोड़ेथे उस्सेही राक्षसराजका प्राण जानेंपर होगया; और रावणकी अन्तिम दशा आयगई॥२९॥तब उसके रथका चलानेंवाला सारथि उसकी ऐसी अवस्था देखकर सावधानचित्तहो धीरे २ संग्रामसे उसका रथ अलग लेगया॥३०॥

रथंचतस्याथजवेनसारथिर्निवार्यभीमंजल
दस्वनंतदा ॥ जगामभीत्यासमरान्मही
पतिंनिरस्तवीर्यंपतितंसमीक्ष्य ॥ ३१ ॥

राक्षस पतिको वीर्यहीन और गिरा हुआ देखकर सारथि भयके मारे, उस बादलकी समान शब्द करनेंवाले रथको छिपायकर संग्रामभूमिसे अलग लेगया ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० यु० भा० चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमः सर्गः ॥

सतुमोहात्सुसंक्रुद्धःकृतांतबलचोदितः ॥
क्रोधसंरक्तनयनोरावणःसूतमब्रवीत् ॥१॥

कालसे प्रेरित रावण एक मुहूर्तभरमें मूर्छासे जाग क्रोधसे लाल २

नेत्र कर सारथिसे बोला ॥ १ ॥ हमको वीर्यहीन, अस्त्र चलानेमें असमर्थ, पौरुषविवर्जित, अल्पचित्त डरपोक, सत्वहीनके तुल्य तेजसे रहित ॥ २ ॥ राक्षसीमायानें क्या हमको छोड़ दिया! क्या हम अस्त्र विद्याको नहीं जानते? रे खोटी बुद्धि वाले! तू क्या अबभी बुद्धिसे हमको साररहित समझकर इच्छानुसार हमारा निरादर करताहै और अपनी इच्छानुसार चेष्टा करताहै? ॥ ३ ॥ हमारा अभिप्राय न जानकरही निरादर करके तू किसकारणसे हमारा रथ शत्रुके सामने रणभूमिके मध्यसे अलग ले आया? ॥ ४ ॥ रेअनार्य! सब लोक हमको जो शूर कहकर विश्वास करतेथे, सो आज तैंने हमारा सब दिनका इकट्ठा किया हुआ वह यश, वीर्य विक्रम, और शूरपनेंका विश्वास तूनें नष्ट कर दिया ॥ ५ ॥ प्रख्यात वीर्यवाला और विक्रमानुरागी शत्रु मेरे सामनें खडा रहकर युद्ध करताथा और वहा मैंभी उसके साथ युद्ध करनेंमें लुब्ध होगयाथा. रे नीच! तूनें मुझकूं शत्रुके सामने कायरपुरुष किया है ॥ ६ ॥ रेखोटीमतवाले! जब कि तू भूलकरभी संग्रामसे ले आयाहै और अब वहां नहीं ले जाता, तब हमारा यह अनुमान असत्य नहीं जान पड़ता कि तूने शत्रुसे उत्कोच[रिशवत-घूस] ग्रहणकर ऐसा कार्य कियाहै ॥ ७ ॥ कारण कि तैंने शत्रुकी समान जो कार्य कियाहै ऐसा कार्य हितकी अभिलाषा किये सुहृद लोग कभी नहीं कर सकतेहैं ॥ ८ ॥ जो कुछभी हो तू बहुत कालतक हम करके पालागयाहै इसलिये जो हमारे उपकार तुझको स्मरणहों तो जबतक हमारा शत्रु यहांपर पहुंचै उस्से पहलेही तुम हमारा रथ संग्रामभूमिमें उसके सामने शीघ्र लौटाय कर ले चलो ॥ ९ ॥ इस प्रकारके कठोर वचन जब दुर्मति रावणने कहे, तब शुभ बुद्धिवाला सारथि रावणसे यह हितकारी विनययुक्त वचन बोला ॥ १० ॥ न मैं डराहुआहूं, नमूढहूं, नमतवालाहूं, न स्नेहको भूलाहूं, न हम आपके कियेहुए सत्कारको भूलेहैं, न शत्रुके कहनेंसे हमनें यह कार्य कियाहै ॥ ११ ॥ रणभूमिसे रथका अलग करना अकर्तव्य होनें परभी हमनें आपके यशकी रक्षा करनेंके लिये हित साधन करनेंकी वासनासे स्नेह युक्त हृदय द्वारा हित समझकरही यह अप्रिय कार्य किया है ॥ १२ ॥ हे महाराज! हम सदा आपका प्रिय और हितकारी कार्य

किया करते हैं इस कारण अब इसके अर्थ ओछे आशयवाले अश्रेष्ठ पुरुषकीसमान आपका हमारे ऊपर दोष लगाना कर्तव्य नहींहै ॥ १३ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाके उदयसे बढ़ी हुई समुद्रकी जलराशि नदीके वेगको लौटा देतीहै, वैसेही हमनें आपके रथको जो संग्रामसे लौटायाहै इसका कारण आप श्रवण करें ॥ १४ ॥ जब हमनें देखाकि आप युद्धमें घोर परिश्रम करके थक गयेहैं और उससमय आपकी शक्ति शत्रुकी शक्तिसे निस्तेजभी होरहीहै ॥ १५ ॥ इसके अतिरिक्त घोड़ेभी बहुत देरतक रथमें जुते २ बहुत थकगये और उनकी देह पसीनेमें डूब गईथी और उस समय वह अश्व ऐसे व्याकुलथे जैसे अकालकी वर्षामें भीगनेसे गायें व्याकुल होतीहैं ॥ १६ ॥ जितनेभर दुर्निमित्त वहां होरहेथे उनको देखकर जान पड़ाकि यह समस्त मानो हमारे अमंगलके लियेही होरहेहैं ॥ १७ ॥ हे राक्षसराज! सारथिको अनेक बातोंपर दृष्टि रखनेंका प्रयोजनहै, देश कालका जानना, शुभ अशुभ लक्षण, संकेत, दीनता, हर्ष, खेद, और रथीका बलाबल जानते रहना सारथिका कर्तव्य कर्महै ॥ १८ ॥ पृथ्वीके ऊंचे नीचे स्थानोंको देखना, सम, विषम, ऊंचे, खाली, आदि स्थानोंको भी जानेरहना, युद्धका समय जानना, शत्रुके छिद्रोंको देखते रहना ॥१९॥ और किस समय शत्रुके सन्मुखको रथले जाना चाहिये, और किस समय लौटायकर भगाना चाहिये, और कब शत्रुके सामने ठहरना उचितहै, और कबतक शत्रुके पीछे खड़ा रहना उचितहै,यह सब बातें रथके हांकने वालेको जाननी योग्यहैं ॥ २० ॥ हमनें आपको विश्राम देनेंके लिये और रथमें जुते हुए घोडोंका दारुण श्रम दूर करनेके लियेही यह हितकारी कार्य कियाहै ॥ २१ ॥ हे स्वामी! हे वीर! मैं अपनी इच्छासे रणभूमिमेंसे रथको नहीं लाया, स्वामीके स्नेहके वश होकरही मैंनें यह कार्य किया है ॥ २२ ॥ हे वीर! शत्रुदमनकारी! इस समय आप जो कुछ आज्ञा देंगे वह सबही कार्य करके मैं आपका ऋण चुकादेऊंगा ॥ २३ ॥ सारथिके इस प्रकार वचन कहनेंपर रावण अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और उसकी बहुतसी बड़ाई करके युद्धकी वासनासे बोला ॥ २४ ॥ हे सूत! शीघ्र रामचंद्रके सामनेको रथ चलाओ, आज रावण संग्राममें शत्रुओंका विना विनाश किये नहीं लौटेगा ॥ २५ ॥ राक्षस रावणनें हर्षित अन्तःकरणसे

यह वचन कह सारथीको एक शुभजनक उत्तम भुजामें पहरानेंका गहना दिया, और सारथिनेंभी रावणके वचनानुसार रथ लौटाया ॥ २६ ॥

ततोद्रुतंरावणवाक्यचोदितःप्रचोदयामासहयान्ससारथिः ॥ सराक्षसेंद्रस्यततोमहारथः क्षणेनरामस्यरणाग्रतोभवत् ॥ २७ ॥

इसके उपरान्त राक्षसोंके स्वामी रावणका वह महारथ सारथि रावणके वचनसे शीघ्रताकर घोड़ोंको चलाताहुआ क्षणभरमें संग्रामके बीचमें खड़े हुए श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख आय गया ॥ २७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० भा० यु० पंचाधिकशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमः सर्गः ॥

ततोयुद्धपरिश्रांतंसमरेचिंतयास्थितम् ॥ रावणंचाग्रतोदृष्ट्वायुद्धायसमुपस्थितम् ॥ १ ॥

तब रघुनाथजीको समरमें थकाहुआ और चिन्ता युक्त व रावणको युद्ध करनेंके लिये सन्मुख खड़ा हुआ देख ॥ १ ॥ देवता लोगोंके सहित युद्ध देखनेंके लिये आयेहुए ऋषियोंमें श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी श्रीरामचन्द्रजीके समीप आयकर कहनें लगे ॥ २ ॥ हे वत्स महावीर रामचन्द्र! जिस्से तुम इन शत्रुलोगोंको हरानेंमें समर्थ होओ हम वैसाही एक सनातन अति गोपनीय स्तोत्र कहतेहैं श्रवण करो ॥ ३ ॥ हे रामचन्द्र ! तुम, सर्व शत्रुओंका विनाश करनेंवाला अक्षय और परममंगलकारी "आदित्य हृदय"नामक स्तोत्रका पाठकरो, तो निश्चयही जय प्राप्तकरसकोगे ॥४॥ हेवत्स ! जो सब मंगलोंके निदान हैं, पापपुञ्जके क्षयकारी चिन्ता और शोकके नाश करनेंवाले और परमायुके बढ़ानेंवाले हैं ॥ ५ ॥ तुम उन्हीं देवता व असुर लोगोंके नमस्कार करनें योग्य उदय होतेहुए मरीचिमाली भास्वर और भुवनेश्वर आदिनामोंसे प्रसिद्ध सूर्य भगवानकी पूजा करो ॥ ६ ॥ यह सर्वदेवमय तेजस्वी दिवाकर ज्ञानरश्मियोंसे (ज्ञानकी किरणोंसे) सब लोकोंको प्रकाशित किया करते, और समस्त किरणोंहीसे देवता व असुरगणोंकी रक्षा किया करते हैं ॥ ७ ॥

यह दृश्यमान देव दिवाकर, अतुल ऐश्वर्य और समस्त विद्याओंकी सृष्टि करनेंके लियेही योगके द्वारा दर्शनीय ब्रह्मरूप, अपने रचेहुए सब पदार्थोंका पालन करनेंके लियेही विष्णुरूप, और उनका विनाश करनेंके लियेही शिवरूप धारण करनेंके कारण ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वरके नामसे पुकारे जातेहैं । सब इन्द्रियोंको स्कन्दित अर्थात् सुखाय देते हैं इसी कारणसे स्कन्द, अपनी शक्तिसे सबको उपादान स्वरूप और कारण वस्तुमात्रके अधीश्वर होनेंसे प्रजापति, सुवर्णमय सुमेरुके शिखर-पर भ्रमण और वज्रादि अस्त्र शस्त्र धारण करते हैं इसलिये महेन्द्र ! सबके अन्तरकी धन अर्थात्चित्त शक्ति देतेहैं; इस कारणसे धनद,अपरोक्ष बुद्धिकी वृत्तिको कार्य विशेषसें कलित अर्थात् चलाते हैं,इसी लिये काल सबके अंतर्यामी होनेसें यम, अमृत छोड़ते हैं इस कारण चंद्रमा,जल राशिकी क्षय और वृद्धि करते हैं इस्से वरुण ॥८॥ सब प्रकारके बीज प्रदान करतेहैं इसीसे बीजके देनेवाले पितृगण,सब धनोंकी खानिहैं इसी कारणसे वसुगण प्रधान होनेंके कारण योगी लोग सदा साधना किया करते हैं, इस लिये साध्यगण सब रोगोंको शान्ति करनेंवाले हैं, इसी कारणसे अश्विनी कुमार; सब जीवोंके प्राण स्वरूप होनेंके कारण मरुद्गण, सर्वज्ञ होनेंसे मनु निरन्तर गमन करते रहते हैं इस्से वायु अपनी महिमामें आपही प्रतिष्ठित रहकर अपनी प्रभाको वहन करते हैं इसी कारणसे वह्नि, सब जीवात्मा इनसेही जन्म ग्रहण करते हैं; इस कारण प्रजा प्राणयात्राके प्रवर्त्तक होनेंसे प्राण; ऋतु अर्थात् ज्ञान और वसन्तादि सब ऋतुओंके उपादान होनेंसे ऋतु कर्ता और सब लोगोंको प्रकाशित करते हैं इसीलिये प्रभाकर कह-लाये जाते हैं, इसलिये उनको नमस्कार करना कर्तव्यहै ॥ ९ ॥ हे देव! तुम सब विषयोंको दान करके भोगते हो, इस्से आदित्य; अंतः-करणकी उपाधिसे चिदात्मवर्गको और अपनी किरणोंसे उठे हुए मेघा-दिद्वारा अन्नादिकी सृष्टि करतेहो इसी कारणसे सविता, सबको कार्यमें नियुक्त करतेहो, इसी अर्थ सूर्य; महाकाश और सबोंके हृदयरूपी आका-शमें विचरण करतेहो इस कारणसे खग समस्त जीवोंको पालन करतेहो इस्से पूषा; सर्वव्यापिनी लक्ष्मीजी विष्णुजीकी समान तुम्हारा आश्रय किये हुए हैं; इस निमित्त गभस्तिमान; तुम्हारा वर्ण सुवर्णकी समान है

इसलिये सुवर्ण सदृश सब लोकोंको प्रकाशित करतेहो इसलियेभानु; हिरण्य अर्थात् सुवर्ण, और उसका उपजानेवाला पाराही तुम्हारा रेत अर्थात् अण्डोपादक है इसी कारणसे हिरण्यरेता, और सब वस्तु ओंको प्रकाशित करतेहो इसीसे तुम्हारा नाम दिवाकर हुआहै तुमको नमस्कारहै; ॥ १० ॥ तुम सब दिशाओंमें व्यापरहे हो और तुम्हारे घोड़ोंका रंग हरा है, इसी कारणसें हरिदश्व, तुम्हारे ज्ञानकी सीमा नहीं किरणेंभी हजार प्रकारकी हैं; इस निमित्त सहस्रार्चि; तुमही दोनो नेत्र, दोनों कान नाकके दोनोंस्वर और मन इन प्राणात्मक सात इन्द्रियोंको विषयदेशमें लगा देतेहो इसी निमित्त सप्तसप्ती; किरणोंकी खानि होनेसे मरीचिनाम; अज्ञानरूप अन्धकारका नाश करतेहो इसलिये तिमिरो- न्मथ, अपवर्गादि रूप परमानंद तुमसेही होते हैं इसलिये शम्भु; भक्त वृन्दोंकी उत्पत्ति और विनाशरूप अनर्थ जनित दुःखका नाश करतेहो इसलिये त्वष्टा, प्रलय होनेंके पीछे मृत अण्ड अर्थात् ब्रह्माण्डको फिर जिलातेहो इसलिये मार्त्तण्डक; और विश्वमें व्यापकर विराजमान हो रहेहो इस कारणसे तुम्हारा अंशुमान नामहै; तुमको नमस्कारहै ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र स्वरूप होकर समस्त जगत्की उत्पत्ति स्थिती, और प्रलय करतेहो, इसीलिये हिरण्यगर्भ तीन तापके सतायेहुओंको विश्रामके स्थान होनेंके कारण शिशिर, स्वभावसेही सर्वेश्वर होनेंके कारण अहस्कर; ब्रह्मादिककोभी वेदविषयक उपदेश देतेहो इससे रवि, कालाग्नि रुद्र तुमसेही उत्पन्न हुए हैं इस लिये अग्निगर्भ, अविना- शिनी ब्रह्मविद्यासे तुम प्राप्त होतेहो; और देवमाता अदितिके गर्भसे तुमनें जन्म लियाथा इसलिये अदितिपुत्र, परमानंद और गगन इन दोनोंके आत्मा स्वरूपहो इसलिये शंख, और शिशिर अर्थात् जाड़े और हिमको दूर करतेहो इसलिये तुमने शिशिर नाशन नाम धारण कियाहै, तुमको नमस्कार है ॥१२॥ तुमनें अकाशकी सृष्टिकी है इसलिये व्योमनाथ अंधकारका नाश करतेहो इसलिये तमोभेदी; ऋक्, यजु; और साम इन तीन वेदोंके और इनके शिरोभाग समस्त उपनिषदोंके एक मात्र प्रतिपाद्य इसलिये ऋग्यजुः सामपारग, बादलके जल वर्षानेंकी समान भक्तोंको बराबर कर्मोंका फल देतेहो इस कारण घनवृष्टि, चैतन्य दानसे सात्विक

गणोंका उपकार करते और जलके उपजानेंसे अपांमित्र, और दुर्गम ब्रह्म-नाड़ी मार्गमें वानरकी नांईं शीघ्रतासे भ्रमण करतेहो इसलिये विन्ध्यवीथिप्लवङ्गम तुम्हारा नामहै; सो आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥ तुमनें सब प्रकारसे जगत्के निर्माण करनेंका संकल्प कियाथा, इसलिये आतापी, मंडल अर्थात् कौस्तुभादि मणि धारण करतेहो! इसलिये मंडली; सब भांतिसे मृत्युके सम्पादक होनेंके कारण मृत्यु; पिङ्गलनाड़ीके लौटानेंसे कर्म मार्गप्रवर्तक, और पीतवर्ण, इसलिये पिङ्गल; सबकाही संहार करतेहो इसलिये सर्वतापन सर्वज्ञ, और कायके कर्ता होनेसेकवि विश्वरूप होनेंसे विश्व, तुम्हारा स्वरूप बड़ाहै इसलिये महातेजमान पालन करनेंसे सबको अनुरागी करतेहो इस लिये कार्यवर्गके उत्पत्ति हेतुहो, इसीलिये सर्व भवोद्भव नाम धारण कियाहै; सो आपको नमस्कारहै॥१४॥ तुम अन्तर्यामी रूपसे नक्षत्र ग्रह तारा युक्त इस विश्वको सब भांतिसे पालन करतेहो इसलिये विश्वभावन, तुम अन्नादि समस्त तेज पदार्थके स्फूर्ति साधक चिन्मय तेजस्वरूपहो, इसी निमित्त तेजस्तेजस्वी, और तुम्हारा स्वरूप वारह प्रकारकाहै इसलिये तुम्हारा द्वादशात्मा नामहै तुमको नमस्कारहै ॥ १५ ॥ तुम पूर्वगिरि और पश्चिमगिरि नक्षत्रगणोंके पति गणपति और दिनके पतिहो सो तुमको नमस्कारहै ॥ १६ ॥ तुम ब्रह्म लोकतक सब लोकोंको जयके देनेवालेहो और जयनामक ब्रह्मद्वारपाल तुम्हारी मूर्त्तिहै; इसीलिये जय; ब्रह्मलोकादि जयसे लाभ किये मंगलात्मक और जयभद्राख्य द्वितीय ब्रह्मद्वारपालभी तुम्हारीही मूर्त्तिहै इसलिये जयभद्र, तुमनें पहले कल्पमें जब राममूर्त्ति धारण कीथी तब वानरश्रेष्ठ हनुमान तुम्हारेही अश्व अर्थात् वाहन हुएथे इसीसे हर्यश्व, सहस्र २ जीव तुम्हारे अंशहैं इस लिये सहस्रांशु, और प्रधान होनेके कारण आदित्य नाम तुमने धारण किया, इसलिये तुमको नमस्कारहै ॥१७॥ तुम बलवान इन्द्रियोंको जीतलेतेहो इसीलिये उग्र, प्राणियोंको विविध भांतिकी चेष्टा करनेंमें लगादेतेहो इसलिये वीर! प्राणसें प्रतिपाद्यहो इसीलिये सारंग, कमल दल और हृदय कमल इन दोनोंको खिलातेहो इसलिये पद्मप्रबोध और सब कार्योंमें समर्थ व अतिक्रोधी होनेंके

कारण तुमनें प्रचंड नाम धारण कियाहै; तुमको वारंवार नमस्कार-है ॥ १८ ॥ तुम, सृष्टि स्थिति और संहार करनेंवाले ब्रह्मा नारायण और रुद्रको अपने २ कार्यमें लगातेहो इसलिये ब्रह्मेशानाच्युतेश; सुर ब्रह्म ज्ञानके मार्गहो इसलिये आदित्यवर्चा, सचेतन, और अचेतन स-बको प्रकाशित करतेहो; इसलिये भास्वान्, सबका नाश करते-हो इसलिये सर्वभक्ष, और अज्ञान संहार समर्थ ज्ञानस्वरूपहो इसलिये तुम्हारा रौद्रवपुष नामहै; तुमको नमस्कार है ॥ १९ ॥ तुम तमघ्न अंधकारनाशक हिमघ्न, शत्रुघ्न हो, तुम्हारा स्वरूप काल और देशके परिच्छेदसे रहितहै, इसलिये जो अमितात्मा भगवतका किया उपकार भूल जातेहैं तुम उन्हीं अज्ञानी संसारियोंको संसाररूप अनर्थमें गिराकर नाश करतेहो, इसीलिये कृतघ्न; चिदानन्दके ज्योतिस्वरूपहो इसलिये देव और ज्योतिपतिनाम धारण कियाहै इसकारण तुमको नमस्कारहै ॥ २० ॥ तुम तप्तकाञ्चनकी समान होनेके कारण तप्तचामी कराभ, सब अज्ञानको हरण कर लेतेहो इसलिये हरि, सब विश्व तुम्हारा कर्म है इसलिये विश्वकर्मा, सब प्रकारके अंधकारका नाश करतेहो इस्से तमोभिनिघ्न, विलक्षण दीप्तिमानहो इसलिये रुचि, और दृश्य पंचकको साक्षात् देखतेहुए सब लोगोंके पाप पुण्यके साक्षी होनेके कारण तुम्हारा लोकसाक्षी नामहै, तुमको नमस्कारहै ॥ २१ ॥ यह प्रभु दिवाकरही प्रा-णियोंको उत्पन्न, पालन और संहार करतेहैं, सूर्य भगवानही अपनी किरण मालासे उनको संतापित करते और सींचतेहै ॥ २२ ॥ सबके सो जानेंपर प्राणियोंके अन्तर्यामी रूप दिवाकरही जागते रहाकरतेहैं, और यही अग्निहोत्रहैं, और यही उसका फलहैं ॥ २३ ॥ लोकमें जो अश्वमेधादि जो सब यज्ञहैं, यज्ञके अधिदेवता, यज्ञ फल व औरभी समस्त क्रियाहैं, परम प्रभु दिवाकर सूर्य भगवान उन सबमेंही वर्तमानहैं ॥२४॥ हे राघव! जो पुरुष मृत्युके मुखमें पड़ाहो, ज्वरादि रोगोंसे ग्रस्तहो, चोरादि भयसे व्याकुलहो, दुर्गम स्थानोंमें घिरगयाहो, यदि वह पुरुषभी सूर्य भगवानका स्तोत्र पढैगा तौ वहभी कष्ट नहीं पावैगा ॥ २५ ॥ हे रामचंद्र! तुम एकाग्रमनसे इन जगत्पति देवदेव सूर्य भगवानकी पूजा करके तीनवार यह "आदित्यहृदय" पाठकरो तौ तुम्हारी निश्चय

युद्धमें विजय होगी ॥ २६ ॥ हे महावीर! हम निश्चय कहते हैं कि ऐसा करनेंसे तुम इसी मुहूर्तमें रावणको संहारकर डालोगे" अगस्त्यजी यह वचन कहकर जिस स्थानसे आयेथे, फिर उसी स्थानको चलेगये ॥२७॥ महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी यह वचन सुनकर मनकी व्याकुलता दूर करतेहुए और चिन्ता रहित मनसे चित्तको वशमें कर उस मंत्रको धारण करतेहुए ॥ २८ ॥ पवित्र भावसे आचमन करके तीन वार इस मंत्रका जपकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए, उससमय लोकसाक्षी सूर्य भगवान उतरकर उनके दृष्टि आये ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त महावीर श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण करकै राक्षसराज रावणको सन्मुख आया हुआ देख उसका वध करनेंके लिये यत्न करनें लगे ॥ ३० ॥

अथरविरवदन्निरीक्ष्यरामंमुदितमनःपरमंप्रहृष्यमाणः ॥ निशिचरपतिसंक्षयंविदित्वासुरगणमध्यगतोवचस्त्वरेति ॥ ३१ ॥

इसी समयमें सूर्य भगवान रावणका मृत्युकाल आपहुंचा हुआ विचारकर अत्यन्त हर्षित हुए, और देवता लोगोंके बीचमें टिककर श्रीरामचंद्रजीको देख बोलेकि वत्स! तुम इस समय रावणका वध करनेंमें शीघ्रता करो ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० यु० भा० षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥

सारथिःसरथंहृष्टःपरसैन्यप्रधर्षणम् ॥ गंधर्वनगराकारंसमुच्छ्रितपताकिनम् ॥ १ ॥

इस ओर रावणका सारथि हर्षित मनसे रणभूमिमें शत्रुकी सैनाको भयभीत करानेंवाला रथ लेगया, यह रथ देखनेमें गन्धर्वनगरीकी तुल्य था, इसमें अति ऊंची पताका शोभायमानथीं ॥ १ ॥ इस रथमें सुवर्णके गहने पहनेहुए काले रंगके घोड़े जुतरहेथे और यह अनेक प्रकारकी युद्ध सामग्रीसे परिपूर्णथा व औरभी अनेक प्रकारकी ध्वजा पताका इसमें लग रहींथीं ॥ २ ॥ यह इतना ऊंचाथा कि जिस्से ज्ञात होताथा कि

मानों आकाशके लीलनेकोही तैयार हुआहै इसके शब्दसे पृथ्वी कंपायमान होतीथी वह अपनी सैनाका आनंद बढानेंवाला और शत्रुकी सैनाका नाश करनेवालाथा ॥ ३ ॥ ऐसे रावणके रथको शीघ्रहीं सारथि लाया, इसको सहसा आतेहुए शब्दायमान महाध्वजासे युक्त ॥ ४ ॥ राक्षसराज रावणका रथ नरराज श्रीरामचंद्रजीनें देखा इसमें काले रंगके घोड़े जुतेहुएथे और भयंकर तेजसे युक्तथा ॥५॥ और आकाशमें प्रभाकरकी समान दीप्तिमान विमानकी समान यह रथ था बिजलीके आकारकी पताकाओंसे सघन व इन्द्र धनुपके आकारवाले आयुधोंकी प्रजासे युक्त ॥ ६ ॥ और बाणोंकी धारा छोड़ताहुआ जलधारा छोड़ते हुए मेघकी समान इस आतेहुए रथको देखा ॥ ७ ॥ वज्रसे विदीर्ण होनेंपर पर्वतका घोर शोर जिसप्रकारसे होताहै वैसेही यह रथ घर्घर शब्द करता हुआ रणमें आयगया, दोयजके चंद्रमाकी समान टेढा धनुष वेगसे शब्द करते हुए ॥ ८ ॥ सहस्र नेत्रवाले इन्द्रके सारथि मातलिसे श्रीरामचंद्रजी बोले, मातलि! देखो शत्रुका रथ चला आताहै ॥ ९ ॥ यह देखो फिर वांई ओरको झुकाहुआ अतिवेगसे संग्रामभूमिमें चलाआताहै, जिस्से जान पड़ताहै कि रावण समरमें हमारा संहार करनेके विचारसेही चलाआताहै ॥ १० ॥ इसलिये तुम शत्रुके सामने गमन करके अति सावधानीसे टिके रहो, कारणकि सूर्यभगवान जिस प्रकार उठेहुए मेघको उड़ा देतेहैं वैसेही हमभी इस रावणके वध करनेंकी इच्छा करतेहैं ॥११॥ तुम क्षुभित या व्याकुल न होकर अचलहृदयसे और अव्यग्र नेत्रोंसे व लगाम को धारणकर शीघ्रतासे रथको चलाओ ॥ १२ ॥ तुम देवराज इन्द्रजीके सारथीहो इसलिये तुमको कुछभी कहनेंकी आवश्यकता नहींहै; तौभी युद्धाभिलाषी होकर जो कहाहै, यह केवल तुम्हारे याद करनेंके लिये सिखानेंके लिये नहीं ॥१३॥ सुरसारथी श्रेष्ठमातलिनें श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन परम प्रसन्नहो घोड़ोंको हांका ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त रावणके बड़ेभारी रथको मातलिनें दांयी ओर रखकर पहियोंकी उडीहुई धूरसे उस रथको ढांप दिया ॥ १५ ॥ तब दशवदन रावण क्रोधमें भरकर लाल२ नेत्र फैलाय, श्रीरामचंद्रजीके सामनें रथ लौटायकर उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ १६ ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजीनें

संग्राममें उस रावणके बाणजालसे पीड़ित होकर क्रोधमें भर किसी प्रकारसे धीरज धर बड़ेभारी वेगसे युक्त इन्द्रका धनुष ग्रहण करकै ॥ १७ ॥ सूर्यकी किरणोंके समान दीप्तियुक्त महावेगवान बाण छोड़े। इस प्रकार क्रोधित हो दो सिंहोंकी समान परस्पर सन्मुख खड़ेहुए, और एक दूसरेके मार डालनेंकी अभिलाषा किये उन दोनों वीरोंका युद्ध आरंभ हुआ॥ १८॥ उस समय रावणका विनाश चाहनेवाले देव गन्धर्व, सिद्ध और परमर्षि लोग उन दोनों रथियोंका युद्ध देखनेंके लिये एकत्रहुए ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त उसी समय श्रीरामचंद्रजीकी विजयके लिये और रावणकी क्षयके लिये दारुण रोमहर्षण उत्पात उत्पन्न होंने लगे ॥ २० ॥ बादल रावणके रथपर रुधिरकी वर्षा करनेंलगे और रावणके बांई ओर तीव्र वायु मंडल चलनें लगा ॥ २१ ॥ रावणका रथ जिस २ ओरको जाताथा आकाश मंडलमें घूमते हुए गिद्धगणभी उसी २ ओरको घूमते २ चलतेंथे ॥ २२ ॥ दिनके समयभी वह लंकानगरी जवाके फूलकी समान संध्याके रंगकी समान रंगजानेंसे समस्त लंकाद्वीप बलताहुआसा जान पड़नें लगा ॥ २३ ॥ राक्षसराज रावणके अशुभकी सूचना देनेवाली बड़ी २ उल्कायें वज्रकी समान शब्द करकै महाशब्दसे गिरकर राक्षसोंको विषादित करनेंलगीं ॥ २४ ॥ जिस स्थानमें रावणथा वहांकी पृथ्वी बारंबार कंपायमान हुई और राक्षस योद्धागणोंकी बाँहें मानों किसीनें पकड़लीं ॥ २५ ॥ राक्षसराज रावणके आगे पर्वतसे निकलीहुई सब धातुओंकी समान लाल, पीली, श्वेत और काली सूर्यकी किरणें दिखाई देने लगीं ॥ २६ ॥ अत्यन्त अमंगलजनक शृगालियें गिद्धोंके आगे २ चलकर मुखसे आगकी लपटें छोड़ती रावणके मुखको देखती क्रोधसे शब्द करनें लगीं ॥ २७ ॥ पवन रणभूमिमें धूरि उडायकर राक्षसराज रावणकी दृष्टिको छिपाय प्रतिकूलभावसे चलनेंलगे ॥ २८ ॥ विनाही मेघके घोररूप इन्द्रका वज्र सहनेके अयोग्य विकट शब्द करकै सब प्रकार रावणकी सैनापर गिरनेंलगा ॥ २९ ॥ धूलकी बड़ीभारी वर्षा होनेसे सब दिशा विदिशा घोर अंधकारसे ढकगई, और प्रकाश मंडल लोप हो गया ॥ ३० ॥ सैंकडों हजारों मैना पक्षी दारुण क्लेश करते २ रावणके रथपर गिरनेंलगे ॥ ३१ ॥ रावणके रथमें

जो घोड़े जुतेथे उनकी जांघोंसे अग्निकी चिनगारियें और नेत्रोंसे अग्निकी तुल्य गरम आंसू वहनें लगे ॥ ३२ ॥ उस समय रावणके नाशकी सूचना देनेवाले इस प्रकारके बहुतेरे भयानक दारुण उत्पात होंनेलगे ॥ ३३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके विजयकी सूचना देनेवाले और मंगल सूचक सब प्रकारके सुनिमित्त उत्पन्न हुए, ॥ ३४ ॥ उस समय श्रीरामचंद्रजीके पक्षवाले रामचंद्रजीकी विजय बतानेंवाले इन सुनिमित्तोंको देखकर प्रसन्न हुए और सबने रावणको मराहुआही समझा ॥ ३५ ॥

ततोनिरीक्ष्यात्मगतानिराघवोरणेनिमित्तानि निमित्तकोविदः ॥ जगामहर्षंचपरांचनिर्वृतिंच कारयुद्धेह्यधिकंचविक्रमम् ॥ ३६ ॥

सब निमित्तोंके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी आत्मगत इन समस्त सुनिमित्तोंको देखकर सावधान और आनंदित होकर युद्धमें अधिक विक्रम प्रकाश करनें लगे ॥ ३६ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०यु०सप्तोत्तर शततमःसर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमःसर्गः ॥

ततःप्रवृत्तंसुक्रूरंरामरावणयोस्तदा ॥ सुमहद्द्वैरथंयुद्धंसर्वलोकभयावहम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त फिर रामचंद्रजी और रावणका सब लोकोंका भय देनेंवाला बड़ाभारी द्वैरथयुद्ध आरंभ हुआ ॥ १ ॥ उस समय राक्षस और वानर गणोंकी सैना अस्त्र शस्त्र और वृक्षादि धारण करके युद्ध करनेंके लिये तैयार होनेंपरभी चेष्टा रहितहो खड़ी रहगई ॥ २ ॥ उस समय वह बलवान नर रामचंद्र और राक्षस रावण जब परस्पर युद्ध करनेंलगे तब सबही अत्यन्त विस्मित हुए और सबके चित्त दग्धायगये ॥ ३ ॥ वह बड़ी २ बांहोंवाले सैनाके योद्धा इन दोनो वीरोंको देखकर बहुतसारे अस्त्र शस्त्र उठाये खड़े रहगये परन्तु परस्पर कोई किसीके साथ समर नहीं करताथा ॥ ४ ॥ राक्षसोंकी सैना रावणको और वानरोंकी सैना श्रीरामचंद्रजीकी ओर विस्मित भावसे देखनें लगीं, तौ उस समय यह

दोनों सेना चित्र लिखीसी जान पड़तीथी ॥ ५ ॥ राम और रावण निमित्त देखकर निश्चन्तबुद्धि हुए और क्रोधसे विचलित न होकर निर्भय युद्ध करनेंलगे ॥ ६ ॥ इन दोनोंमेंसे श्रीरामचंद्रजीनें तौ जान लिया कि "हम जीते होंगे" और रावणनें मनमें ठानलिया कि "हमको मरनाही है" इस प्रकार निश्चय करते, शक्तिके अनुसार अपनी सामर्थ्यको दोनों जनें दिखानेंलगे ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त रावणनें बड़ा क्रोध करके रामचंद्रजीके रथकी ध्वजाको ताक धनुषपर बाण चढाय छोडे ॥ ८ ॥ परन्तु वह समस्त बाण इन्द्रके रथकी ध्वजाको प्राप्त न होकर अद्भुत शक्तिवाले रथपर लग पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीनें क्रोधके मारे लाल नेत्रहो धनुष धारण करके इसका बदला लेनेको रावणकें विरुद्ध बाण चलानेंका निश्चय किया ॥ १० ॥ उन्होंने रावणकी ध्वजाको ताककर बाण चलाया, यह बाण अपने तेजसे आपही प्रदीप्तथा, और महासर्पकी समान अत्यंत भयंकरथा ॥ ११ ॥ तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीका ध्वजापर ताककर चलायाहुआ वह बाण रावणके रथकी ध्वजाको खंड करकै पृथ्वीमें प्रवेश करगया ॥ १२ ॥ और वह कटीहुई ध्वजाभी पृथ्वीपर गिर पड़ी महाबलवान रावण रथकी ध्वजाको कटा हुआ देखकर ॥ १३ ॥ क्रोधके कारण उपजीहुई अग्निसे प्रज्वलितहो समरमें अग्निके समान प्रकाशित हुआ, और क्रोधके वश होकर मानों सबको भस्मही करनें लगा ॥ मारे क्रोधके रावणनें श्रीरामचंद्रजीके ऊपर बाण वर्षाये ॥ १४ ॥ उसनें प्रथम प्रकाशमान बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीके घोड़ोंको मारा परन्तु वह दिव्य घोड़े चलायमानभी न हुए न उन्हे व्याकुलता आई॥१५॥जिस प्रकार कमलफूलोंकी मालाके लगनेंसे कुछ पीड़ा नही होती वैसेही वे घोड़े व्यथा रहित रहे उन घोड़ोंको रावण व्याकुलता रहित देखकर॥१६॥क्रोधित होकर फिर रावण बाणोंकी वर्षा करनें लगा, गदा, परिघ, चक्र, मूसल ॥ १७ ॥ पर्वतोंके शिखर, वृक्ष, शूल, फरशे, व औरभी बहुत सारे अस्त्र शस्त्र चलानेंलगा, उस रावणनें थकावटरहित हृदयसे, अति उद्यमसे माया करकै यह हजार अस्त्र शस्त्र चलाये ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे डरपोकोंको त्रासका उपजानेंवाले भयंकर, प्रतिशब्दसे युक्त, भयावने और बहुतसारे शस्त्रोंकी जिसमें वर्षा होरहीथी ऐसा कठोर युद्ध

होनें लगा ॥ १९ ॥ उस समय रावणनें प्राणोंकी आशा छोड़ श्रीरामचंद्रजीके रथको त्याग बाणोंके समूहसे वानरोंकी सैना और आकाशमंडलको सब प्रकारसे छाय दिया ॥ २० ॥ विना अन्तरके रावणनें रणमें बाण छोड़कर मानों बाणोंकी झड़ी लगादी, रावणको वानरोंकी सेनाके ऊपर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करतेदेख ॥ २१ ॥ हँसते २ श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाण धनुपपर चढ़ाये। व हजारों लाखों बाण रावणके ऊपर छोड़े ॥ २२ ॥ यह देखकर राक्षसराज रावणनेंभी बाणोंके समूहसे आकाशमंडलको छाय लिया कि कहींभी आकाश नहीं उस कालमें दोनोंकी कीहुई प्रदीप्त बाणोंकी वर्षासे ॥ २३ ॥ मानों आकाशमें औरभी एक बाणमय आकाश बनगया ॥ श्रीरामचंद्रजीनें रावणपर, और रावणनें श्रीरामचंद्रजीपर जो बाण चलाये उनमेंसे कोईभी बाण उत्साहरहित निरर्थक, या प्रभेदक नहीं हुआ ॥ २४ ॥ संग्राममें राम रावणके छोड़ेहुए बाण परस्पर एक दूसरेको तोड़तेहुए पृथ्वीपर गिरनें लगे ॥ २५ ॥ वोह दोनों वीर संग्राममें अनुरागी हो बायें दायें दोनों ओरको धनुष चलातेहुए बाणोंकी ऐसी घोर वर्षा करतेहुए कि जिस्से आकाश छिद्ररहित होगया ॥ २६ ॥ रावण बाण चलायकर श्रीरामचंद्रजीके और श्रीरामचंद्रजी बाण चलायकर रावणके घोड़ोंको बींधनें लगे इस प्रकारसे एक चोट करता और दूसरा उसका बदला लेताथा ॥ २७ ॥ इस प्रकार दोनों वीर एक मुहूर्त भरतक उत्तम तुमुल रोमहर्षणकारी युद्ध करतेरहे ॥ २८ ॥

प्रयुध्यमानौसमरेमहाबलौशितैःशरैरावणलक्ष्मणाग्रजौ ॥ ध्वजावपातेनसराक्षसाधिपोभृशंप्रचुक्रोधतदारघूत्तमे ॥ २९ ॥

इस प्रकारसे यह दोनों महाबलवान वीर रावण और लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचंद्रजी तीखे बाण चलाय २ युद्ध करनेंलगे ॥ परन्तु रथकी ध्वजा कटजानेसे राक्षसराज रावण रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीके ऊपर अत्यन्त क्रोध करताहुआ ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे अष्टा धिकशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

१ यहां सर्गकी समाप्तिकीहै, परन्तु युद्ध विषय पूरा नहीं होनेंसे सर्गस्थ श्लो॰ ; संख्या आगेको चलती है,

नवाधिकशततमः सर्गः ॥

तौतथायुध्यमानौतुसमरेरामरावणौ ॥ ददृशुः
सर्वभूतानिविस्मितेनांतरात्मना ॥ ३० ॥

राम और रावणको युद्ध करतेहुए देखकर सबही प्राणी विस्मित नेत्रों से इस संग्रामको देखनेंलगे ॥ ३० ॥ इन दोनों वीरोंके वह दोनों उत्तम रथ क्रोध सहित परस्पर एक दूसरेकी ओर दौड़ परस्पर एक दूसरेको अर्दित करनेंलगे ॥ ३१ ॥ परस्पर एक दूसरेका वध करनेमें तैयारहो मंडलाकार सीधे तीखे तिरछे बाण इधर उधरसे, और उधरसे इधर घूमनें लगे ॥ ३२ ॥ और दोनों रथोंके सारथि अपनी सारथिपनको चतुरता भली भांति दिखातेथे । रावण रामको पीड़ित करता और श्रीरामचंद्रजी रावणको पीड़ित करतेथे ॥ ३३ ॥ कभी वेगयुक्त मायाकी गतिसे लौटकर और हटकर एक दूसरेको पीड़ित करतेथे वह दोनोंही वीर परस्पर एक दूसरेके उत्तम रथपर बाणोंकी वर्षा करतेथे ॥ ३४ ॥ इस्से वह दोनों वीर परस्पर बरसतेहुए दो मेघोंकी समान दिखाई देनें लगे इसप्रकारसे संग्राममें अनेक प्रकारकी गति दिखाय ॥ ३५ ॥ फिर परस्पर एक दूसरेके सामनें अपने २ रथ ले जायकर खड़े होगये तौ उसके रथकी धुरोसे इनके रथकी धुरी मिलगई और घोडोंके मुखभी एक दूसरेके घोड़ोंसे मिलगये ॥ ३६ ॥ और एकके रथकी पताका दूसरेके रथकी पताकासे मिलगई । तब श्रीरामचन्द्रजीनें धनुषसे छूटेहुए तीक्ष्ण ॥ ३७ ॥ दीप्तिमान चार बाणोंसे रावणके चार घोड़ोंको मारा कि यह घोड़े बड़ी दूरतक पीछेको हटगये, घोड़ोंके पछडनेंसे बड़े क्रोधके वशमें हो ॥ ३८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर रावणनें बहुत सारे तीखे बाण चलाये, तब बलवान श्रीरामचन्द्रजी रावणके बाणोंसे अतिविद्ध हो-कर ॥ ३९ ॥ न तौ कुछ विकारहीको प्राप्तहुए और न कुछ पीड़ितही हुए । फिर वज्रकी समान शब्द करतेहुए सारवान् बाण छोड़े ॥ ४० ॥ रावणनें यह बाण इन्द्रके सारथी मातलीको ताककर छोड़ेथे । यह सब बाण अतिवेगसे मातलीके शरीरपर गिरे ॥ ४१ ॥ परन्तु यह बाण मात-लिको न कुछ विकलताही देसके न कुछ पीड़ाही इन बाणोंने दी, जिस पर प्रहार करना उचित नहींथा, उस मातलिको रावणसे धर्षित देख ॥४२॥

श्रीरामचन्द्रजीनें अत्यन्त क्रोधकर बाणोंकी वर्षा करके अपने शत्रुको विमुख कर दिया। बीस, तीस, साठ, सौ और हजार २ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ बाण श्रीरामचन्द्रजी वीर शत्रुके रथपर चलानेंलगे यह देखकर रथपर बैठा हुआ राक्षसोंका राजा रावण क्रोधितहुआ ॥ ४४ ॥ और रणमें श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर गदा और मूसलकी वर्षा करनेंलगा। इस प्रकार फिर इन दोनों वीरोंका तुमुल रोमहर्षणकारी युद्ध होंने लगा ॥ ४५ ॥ गदा मूसल, परिघादि अस्त्र शस्त्रोंके शब्दसे, और बाणोंके पंखोंकी पवनसे सात समुद्र खलबलायगये ॥ ४६ ॥ समुद्रोंके खलबलानेंसे पातालवासी समस्त दानव और पन्नग जोकि हजारों थे व्यथित हुए ॥ ४७ ॥ पर्वत वन और उपवन सहित समस्त पृथ्वी कांपनेंलगी सूर्य भगवान् प्रकाशसे हीन हुए, और पवनका चलना बंद होगया ॥ ४८ ॥ जिस समय देवता, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि, किन्नर और समस्त बड़े २ सर्पगण अत्यन्त चिन्ता युक्त हुए ॥ ४९ ॥ "गो ब्राह्मणोंका मंगलहो सब लोग निर्विघ्नहो विराजमान होरहैं, श्रीरामचन्द्रजीकी जयहो, और रावणका नाशहो" ॥ ५० ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीकी विजय कामना करतेहुए देवतागण और ऋषिगण, राम रावणका घोररूप रोमहर्षणकारी संग्राम देखनें लगे ॥ ५१ ॥ गन्धर्व और अप्सरायें सब मिलकर यह उपमारहित युद्ध देख कि " उस युद्धमें सागर अथवा आकाशमें कोई विशेषता नहीं दीखती ॥ ५२ ॥ राम रावणके युद्धको उपमा नहीं; बस यह युद्धकी इसकी उपमाहै।" ऐसा कहकर उस राम रावणके युद्धको देखनें लगे ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त रघुकुलकी कीर्ति बढ़ानेंवाले महावीर श्रीरामचन्द्रजीनें धनुषपर विषधर सर्पकी समान बाण चढाया ॥ ५४ ॥ और रावणका शोभा युक्त कुण्डलोंके पहरनेंसे उज्ज्वल मस्तक काटडाला त्रिभुवनके समस्त प्राणियोंनें उस मस्तकको पृथ्वीपर गिरतेहुए देखा ॥ ५५ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीनें जैसे उस मस्तकको काटाहै, कि वैसेही एक और उसी प्रकारका मस्तक निकलकर उसके धड़पर लगगया उसकोभी बड़ी शीघ्रतासे शीघ्रकर्म करनें वाले श्रीरामचन्द्रजीनें॥५६॥रावणके उस दूसरे मस्तककोभी बाणोंसे काटडाला। इस शिरकेभी काटतेही रावणके एक और शिर लगाहुआ दिखाई दिया॥५७॥उस मस्तककोभी श्रीरामचंद्रजीनें वज्रकी समान बाणोंसे काटडाला। इस प्रकारसे एकसे रूपवाले शत मस्तक रावणके, श्रीरामचंद्रजीनें का-

टे॥५८॥तथापि रावणके जीवनका अंत दिखाई नहीं दिया।तब सब अस्त्र श-स्त्रोंके जाननेंवाले कौशल्यानंदवर्द्धनकारी ॥५९॥ हाथमें बाण और तरकश लगाये श्रीरामचंद्रजी बहुत भांतिकी चिन्ता करनें लगे कि जिन बाणोंसे हमनें मारीचको मारा, खर दूषणका संहार किया ॥ ६० ॥ और क्रौञ्च वनमें रहनेंवाले विराध, और दंडकवनवासी कबंधको मारडाला और जिनसे सात तालके वृक्ष एकही साथमें गिराये गये, पर्वतोंको भेद डाला, वालि मारागया, और जिन बाणोंसे समुद्रको खलबलायदियाथा ॥ ६१ ॥ इस युद्धमेंभी हमारेपास वही सब अमोघ बाणहैं, परन्तु यह समस्त बाण जो रावणसे तेजहीन होगये इसका कारण क्याहै? ॥ ६२ ॥ श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारकी चिन्ताके वश होकरभी अति सावधानीसे रावणकी छातीको ताककर बाणोंकी वर्षा करनेंलगे ॥ ६३ ॥ रथपर बैठा हुआ राक्षसोंका राजा रावणभी गदा और मूसलोंकी वर्षा करके श्रीरामचंद्रजीको पीड़ित करनें लगा ॥ ६४ ॥ इसप्रकार फिरसे आकाश, भूमि, और कभी पर्वत शिखरके ऊपर भागमें उन दोनों कामचारी रथी श्रेष्ठोंका तुमुल और रोम हर्षणकारी बड़ा भारी युद्ध आरंभ हुआ ॥ ६५ ॥ उस बड़े भारी युद्धको देखते २ देवता, दानव, यक्ष, पिशाच, उरग, और राक्षसोंको सात रात्रियें बीतगईं ॥ ६६ ॥ इसमें रात्रि, दिन, मुहूर्त अथवा क्षणभरके लियेभी तो यह राम रावणका युद्ध बंद नहींहुआ ॥ ६७ ॥

दशरथसुतराक्षसेंद्रयोस्तयोर्जयमनवेक्ष्यरणे
सराघवस्य ॥ सुरवररथसारथिर्महात्मारणर
तराममुवाचवाक्यमाशु ॥ ६८ ॥

उस काल राक्षसोंमें इन्द्र रावण और दशरथकुमार रामचन्द्र इन दो-नोंके युद्धमें श्रीरामचंद्रजीको विजय प्राप्त करते हुए न देखकर देवराज इन्द्रका सारथि महात्मा मातलि संग्राम करतेहुए श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन बोला ॥ ६८ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भा० नवोत्तर शततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमः सर्गः ॥

अथसंस्मारयामासमातलीराघवंतदा ॥ अजा

नन्निर्वकिंवीरत्वमेनमनुवर्तसे ॥ १ ॥

मातलिनें श्रीरामचंद्रजीको याद दिलानेंके लिये यह कहा, हे वीर! आप अजानकी समान यह क्या चिन्ता करतेहैं ॥ १ ॥ हे प्रभो! देवता लोगोंनें इसके विनाशकालकी वार्ता कहीथी वह समय अब आयगयाहै; इसकारण अब रावणका वध करनेंके लिये आप ब्रह्मास्त्र छोड़िये ॥ २ ॥ मातलि सारथिनें जैसेही यह बात याद दिलाई कि वैसेही श्रीरामचंद्रजीनें ब्रह्मास्त्र ग्रहण किया, यह अस्त्र तेजके समान प्रदीप्तथा और क्रोधित सर्पकी समान श्वास ले रहाथा ॥ ३ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीको पहले यह अमोघ ब्रह्मदत्त अस्त्र ऋषिश्रेष्ठ भगवान अगस्त्यजीनें दियाथा ॥ ४ ॥ पहले अमिततेजस्वी पितामह ब्रह्माजीनें त्रिलोकविजयाभिलाषी सुरपति इन्द्रके लिये यह अस्त्र बनायाथा और उनकोही दियाथा ॥ ५ ॥ इस अस्त्रके वेगमें पवन; फलकमें अग्नि और सूर्य, सब अंगोंमें ब्रह्माजी, और भारी पनमें मेरु, और मंदराचलके अधिष्ठाता दो देवता वास करतेथे ॥ ६ ॥ यह अस्त्र अपने प्रभावसे आपही सूर्यकी समान प्रदीप्तथा सब महाभूतोंका सार अंश निकालकर बनाया गयाथा, इसके पंख सुशोभितथे और वह सुन्दर व सुवर्णसे भूषितथे ॥ ७ ॥ यह प्रदीप्त विषधर सर्पकी समान धुवेंसहित कालाग्निकीसमान हाथी घोड़े व रथोंके समूहोंको विदारण करनेंमें चतुर और अत्यन्त शीघ्र कार्य करनेंवाला ॥ ८ ॥ इसके तेजसे द्वार, (गोपुर) परिघ, और पर्वततक चूर्ण होजातेथे, उसमें रुधिर व मद लगाहुआथा और अत्यन्तही भयंकर था ॥ ९ ॥ यह वज्रकी समान सारवान और वज्रहीकी समान शब्द युक्तथा और सब प्राणियोंको भय उपजाने वालाथा, और वह श्वास लेते हुए सर्पकी समान दिखलाई देताथा ॥ १० ॥ कंक, गिद्ध, बगले, गीदड़, व राक्षसोंका नित्य रणमें भक्षण करनेंवाला यमकी समान त्रास उपजानेंवाला ॥ ११ ॥ वानर यूथपोंको आनंदका देनेंवाला राक्षसोंका मारनेंवालाथा, गरुडजीके अनेक प्रकारके पंखोंसे जिसके पंख बनेहुएथे ॥ १२ ॥ इक्ष्वाकुवंशियोंके भयका नाश करनेंवाला, शत्रुओंकी कीर्तिका हरणकरनेंवाला, अपनोंको हर्षित करानेंवाला ऐसे उत्तम बाणको ॥ १३ ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजीनें ग्रहण करके वेदके मंत्रोंसे इसको अभिमंत्रित किया

और बलसे धनुपपर चढ़ाया ॥ १४ ॥ जब उस उत्तम बाणको श्रीरामचंद्रजीनें धनुषपर चढ़ाया, तब सब प्राणियोंको भय उपजा और पृथ्वी कंपायमान हुई ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त श्रीरघुनाथजीनें क्रोध करकै अतियत्नपूर्वक धनुपको झुकाय वह मर्मविदारी बाण रावणके ऊपर चलाया ॥ १६ ॥ वज्रकी समान दुर्द्धर्ष इन्द्रकी बांहोंसे छूटेहुएकी समान वह किसीके रोकनेंसेभी न रुकनेंवाला कालकी नांई वह बाण रावणकी छातीमें लगा ॥ १७ ॥ महाबली रघुनाथजी करकै छोड़े हुए उस शरीरका अन्त करनेंवाला महावेगयुक्त बाणनें दुरात्मा रावणके हृदयको भेदडाला ॥ १८ ॥ रुधिरसे सनाहुआ और वेगसे शरीरकी इति करनें वाला यह बाण रावणके प्राणोंको लेताहुआ प्रथम तौ पृथ्वीमें प्रवेश करगया ॥ १९ ॥ वह बाण रावणके मारनेंका कार्य पूराकरकै रुधिरसे गीलाहो फिर श्रीरामचंद्रजीके तरकसमें आगया ॥ २० अस्त्रके लगनेंके कारण रावणका जीवन शेष होजानेंसे उसका प्राण बाणयुक्त धनुषके साथ छूटकर पृथ्वीपर गिरपड़ा * ॥ २१ ॥ और महाद्युतिमान राक्षसराज रावणभी प्राणरहित हो वज्रके लगनेसे वृत्रासुरकी समान महावेगयुक्त हो रथसे पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ २२ ॥ राक्षसराज रावणको गिराहुआ

* दोहा–असुर सुभट रघुवीरसों, भिरत क्रोध सरसाय । अमर होनहित मरतहैं, समर सामुहे आय ॥ १ ॥ कवित्त–गज रथवाले घट सामुहे परैं जु कहूं गरद मिलाइवेंमें हौसिला बढ़तहैं॥ रावरे वदनपै नरेश रामचन्द्र वर लाली रस वीरकी बहाली मै चढतहैं ॥ लछिराम अचरज धूम धाम वारी यह देवलोक दुंदुभी दे विरद पढतहैं ॥ म्यानते कृपान तेरी अरि उर आनसंग समरमें दोउ एक वारही कढतहैं ॥ १ ॥ दरशन पान वृषभानको मरीचैं मान खल दल कम्प होत देख प्रलय माईसी ॥ वांके गढ़ टूट फूट वैरिनके आण छूट कालसी कराल कालकूटमें वुझाईसी ॥ भनत हृदेश राम लच्छमन तेरी तेगकाटि २ जात फौज फाटि जात काईसी ॥ काटि जाति टोप शीश पांयनलो फाटिजात चाटिजात झिलम झपाटन मलाईसी॥३॥ रनवनवीचवर वडवाअनलरूप गजव गनीमनके ऊपर परतहै ॥ मारतंड भोर सुर मंडली सरोजनपै ज्वालमुखी ज्वालह्वै दरीन विहरतहै॥खल दल नाशन विराग पन्नगेशफन लछिराम लालीके तरङ्गन करतहै ॥ मण्डित प्रताप राम रावरो अखण्ड फैलि चौदहो भुअनमें प्रचण्ड विचरतहै ॥ ४ ॥ कठिन कठोर कवजाको वर जोर घोर वसन मरोर रंग रोशनतरीरको ॥ गुनन गहीलो गहगहो गरवीलो गरुवर चापतै रंगीलो प्रभा भोरको ॥ वीर तीर वरसै सुनीर ते गभीर रन पीर उपजावत अधीर करि धीरको ॥ देवसुखदायक सहायक विहारी सदा मारो लंकनायकसो धनु रघुवीरको ॥ ५ ॥ दोहा–धनुषधारि शरकरण लगि, खैंच्यो राम महीश । दोऊ एकहि संग छुटे, धनुतें शर रिपुशीश ॥ ६ ॥

देखकर मरनेंसे वचेहुए निशाचरनाथविहीन और भयके मारे विह्वल हो सब ओरको भागनेलगे ॥ २३ ॥ वृक्षोंसे युद्ध करनेंवाले वानरलोग सिंहनाद करतेहुए उनके मारनेंको उन राक्षसोंके पीछे २ दौड़े । परन्तु दशग्रीवका मरना और श्रीरामचंद्रजीकी विजय देख ॥ २४ ॥ और वानरोंकी मार पीटसे अत्यन्त कातरहो व किसीका आश्रय न देखकर दीनवदनहो आंसुओंको छोड़ते २ सब राक्षस लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त विजयी वानरवृन्द हर्षित अंतःकरणसे रावणका मरना और श्रीरामचंद्रजीकी विजयकी वार्ताको प्रकाश करनें लगे ॥ २६ ॥ आकाशमें मंगलकी पुकार करनेंवाले देवताओंके नगाड़े वजनेंलगे, और सुखकी देनेंवाली दिव्यगन्ध वहनें लगी ॥ २७ ॥ आकाश मंडलसे मनोहर व दूसरेके लिये दुर्लभ ऐसी फूलोंकी वर्षानें गिरकर श्रीरामचंद्रजीके रथको ढक लिया ॥ २८ ॥ आकाशसे महात्मा देवता लोगोंकी स्तुति संयुक्त "धन्यहो! धन्यहो!!" यह श्रेष्ठ वाणी सुनाई आनें लगी ॥ २९ ॥ सर्व लोकोंके भयको देनेवाले रौद्र रावणके मारेजानेपर चारण लोगोंके सहित देवतालोग आनंदकी सीमातक पहुंचगये ॥ ३० ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी राक्षसश्रेष्ठ राणका वध करके प्रसन्नहुए और सुग्रीव व अंगद और विभीषणकी मनोकामना पूरीहुई ॥ ३१ ॥ राक्षसराज रावणके मारे जानेंपर मरुद्गण शान्त होगये, सब दिशायें निर्मल होगईं, आकाशमंडल विमल हुआ, पृथ्वी कंपायमान न होकर अचल होगई, पवन सुखदाई वहनेंलगी, और सूर्य स्थिर प्रभासे युक्त हुए ॥ ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त सुग्रीव, विभीषण, अंगदादि सुहृद लोग लक्ष्मणजीके सहित हर्षित मनसे जयके आनंदमें मग्नहो समर में दुर्जय श्रीरामचंद्रजीके निकट आयकर यथाविधिसे उनकी पूजा करते हुए॥३३॥

सतुनिहतरिपुःस्थिरप्रतिज्ञःस्वजनबलाभिवृ
तोरणेबभूव ॥ रघुकुलनृपनंदनोमहौजास्त्रि
दशगणैरभिसंवृतोमहेंद्रः ॥ ३४ ॥

॥ चौपाई ॥ दृढ़प्रतिज्ञ रघुराज कुमारा । तेजवान श्रीराम उदारा ॥ शत्रु विनाश स्वजन गण संगा । लहत यहै छवि अटल अभंगा ॥ सब देव

न युत मनहु सुरेशा ॥ त्यौंही सखन सहित अवधेशा ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकांडे कात्यायनगोत्रोद्भव पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादे दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमः सर्गः ॥

भ्रातरंनिहतंदृष्ट्वाशयानंनिर्जितंरणे ॥ शोकवेगपरीतात्माविललापविभीषणः ॥ १ ॥

भ्राताको संग्राममें पराजित और मृतक होकर पृथ्वीमें शयन करता देख विभीषण शोकके वेगसे अधीर होकर विलाप करतेहुए बोले ॥ १ ॥ हावीर! हाविक्रमी! हा विख्यात! हा प्रवीर! नीतिमें चतुर! आप तो बड़े मोलके बिछौनोंपर शयन करनेंका अभ्यास किये हुएथे, फिर किस निमित्त आज मृतक होकर पृथ्वीपर शयन कर रहेहो! ॥ २ ॥ हावीर!आपका सूर्यकी समान प्रभावाला मुकुट रामचंद्रके बाणोंसे छिन्न होगयाहै, और बाजूसे भूषित तुम्हारी लंबी बाहेंभी चेष्टारहित होकर पड़ीहैं ॥ ३ ॥ हा शूर! पहले हमनें जो कुछ कहाथा, और काम व लोभके वश होकर जिसमें तुमनें अपनी सम्मति नहीदीथी आज वही बात तुम्हारे आगे आईहै ॥ ४ ॥ हाय! पहले गर्वके वश प्रहस्त, इन्द्रजित, अग्निरथ, कुंभकर्ण, अतिकाय, नरान्तक आपनें स्वयंभी व और राक्षसोंने जिस उपदेशको नही माना यह उसहीका फलहै ॥ ५ ॥ हा! आप मारेजाकर धार्मिकगणोंके सेतु, धर्मकी मूर्ति, सत्य गुणोंके आश्रय वीरगणोंको प्राप्त हुएहैं ॥ ६ ॥ हा वीर! अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ! आपके गिरनेसे सूर्य पृथ्वीमें गिरे हुए, चंद्रमा राहुके उदरमें पड़ेहुए, और अग्निको शत जलके घड़ोंसे बुझाहुआसा हम देखतेहैं ॥ ७ ॥ हा राक्षसशार्दूल! आपके रणकी धूरिमें पड़े रहनेंसे अब यह बचेहुए राक्षस गण सत्वहीनसे जान पड़तेहैं अब इनकी क्या गति होगी? ॥ ८ ॥ हा! आज धैर्य युक्त पल्लव, सहजशीलता युक्त पुष्प, तपस्या रूप फल, और शूरता युक्त दृढ़मूल समन्वित राक्षसराजरूप वृक्ष संग्राममें राम रूप पवनसे मर्दित हुआ ॥ ९ ॥ हा तेज रूप दांत, पिताओंके पितामहादिक पूर्व पुरुषोंकी परम्पराको पीठबनाये, कोपही देहके दूसरे अंग बनाये और

प्रसन्नता रूप शुण्ड युक्त मतवाला हाथी रामरूप सिंहसे मृतक होकर पृथ्वीपर शयनकररहाहै ॥ १० ॥ हाय ! पराक्रम और उत्साह सूचक फैलीहुई लपटोंसे युक्त, विश्वास रूप धुआं और अपने बलरूप भस्म करनेंकी शक्तिसे समन्वित रावणरूप अग्नि रामरूप मेघसे बुझा डाला गयाहै ॥११॥ हाय ! राक्षस गणरूप पूंछ, स्कन्ध, और सींग समन्वित, पवनकी समान विक्रमी उत्साह शाली शत्रुओंका विजय करनेंवाला रूप वृषभ (बैल) रामरूप सिंहसे निहतहो व्याकुल और विकलेन्द्रिय हुआहै ॥ १२ ॥ बिभीषणजीने शोकसे व्याकुल होकर जब इस प्रकारके हेतुयुक्त और अर्थ सहित वचन कहे तब श्रीरामचंद्रजीनें कहा ॥ १३ ॥ यह प्रचंडपराक्रमी राक्षसराज रावण रणमें सामर्थ्यहीन या निश्चेष्ट होकर नहीं मारा गयाहै, यह अतिशयबलशाली, और मृत्युके भयसे हीनथा यह तौ दैवके वश होकर रणभूमिमें गिराहै ॥ १४ ॥ श्रीको वृद्धिही जिनको प्रार्थनीयहै, ऐसे महात्मा क्षत्रिय धर्म परायण वीर गणोंके संग्राममें मरनेसे उनको यह नहीं समझना चाहिये कि यह मृतक होगये, और इनके लिये शोक करनाभी उचित नहीं ॥ १५ ॥ यह बुद्धिमान इन्द्रादि देवता लोगोंके साथ त्रिभुवनको पराजित करके काल पाय कालधर्मके वशमें हुआहै इस कारणसे इसकेलिये शोक करना ठीक नहीं ॥ १६ ॥ ऐसा कभी नहीं देखा गया कि युद्धमें सदा जयही होतीहो, चाहें जैसा वीर क्यों नहो कभी रणमें शत्रुको पराजित करताहै, और कभी स्वयंभी उससे पराजित होजाताहै ॥ १७ ॥ सन्मुख संग्राममें देह त्यागनकरनाही प्राचीन मन्वादिक क्षत्रियभी कहते चले आयेहैं;इसकारण रणभूमिमें क्षत्रिके मारे जानेंपर उसके लिये शोक करना उचित नहींहै ॥ १८ ॥ हे बिभीषण हमने जो कुछ कहा इसको तुम ठीकही ठीक जानो, और धीरज धारण करके सावधान हो जाओ, व अब जो आगेको कर्तव्यहो उसके लिये विचार करो ॥ १९ ॥ राजकुमार विक्रमकारी श्रीरामचंद्रजीनें जब यह कहा तौ शोकसे संतापित बिभीषण अपने भ्राताकी प्रशंसा करते हुए यह वचन बोले ॥ २० ॥ जो पहले कभी इन्द्रादि देवता लोगोंके साथभी संग्राममें नहीं हारा वही आज आपसे संग्राममें मग्न होगया, जैसे महासमुद्रको जल वेलाभूमिको पाय फिर अपने भंडारमेंको लौट जाता

है ॥ २१ ॥ इसने जीवित रहते विधि पूर्वक अग्निमें होम किये, सब भोगोंको भोगा, नौकर चाकरोंको सन्तोषित किया, मित्रोंको धन दिया; और शत्रु लोगोंसे अपना वैर लेकर निहत कियाहै ॥ २२ ॥ इसने महातप कियाथा, यह महा तेजस्वीथा, और इसनें सब उपनिषत पढ़के समस्त अग्निहोत्रादि कार्य पूरे कियेथे इस कारण अब आपकी आज्ञाके अनुसार हम इसके प्रेत कर्मोंके करनेंकी इच्छा करतेंहैं ॥ २३ ॥ साधु श्रेष्ठ विभीषणजीनें करुणासहित वाणीसे जब इसप्रकार निवेदन किया तब राजकुमार महात्मा श्रीरामचंद्रजीनें राक्षसराज रावणके स्वर्ग जानेके लिये उसके मृतक कर्म करनेंकी आज्ञादी ॥ २४ ॥

मरणांतानिवैराणिनिवृत्तंनःप्रयोजनम् ॥ क्रियतामस्यसंस्कारोममाप्येषयथातव ॥ २५ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें कहा,–विभीषण! मरनेही तक वैर रहताहै; परन्तु अब प्रयोजनके सिद्ध हो जानेसे यह जैसा तुम्हारा बन्धुहै वैसाही हमारा बन्धु हुआ; इसलिये इसका संस्कार करो ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० यु० भा० एकादशाधिक शततमः सर्गः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥

रावणंनिहतंदृष्ट्वाराघवेणमहात्मना ॥ अंतःपुराद्विनिष्पेतूराक्षस्यःशोककर्शिताः ॥ १ ॥

" महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे रावण मारडाला गयाहै" यह समाचार सुन राक्षसियें शोकके मारे विह्वल हो रनवाससे निकल खडी हुईं ॥ १ ॥ वह सब स्त्रियें वारंवार रोकी जानेंपरभी मृतवत्सा गायकी समान शोकसे पीड़ितहो वालखोले रणकी धूरिमें लोटनें लगीं ॥ २ ॥ यह समस्त राक्षसियें लंकाके उत्तरवाले द्वारसे राक्षसोंके संग निकलीं, और रणभूमिमें प्रवेश करके अपने मरे हुए पतिको ढूंढ़ने लगीं ॥ ३ ॥ वह सब "हा आर्यपुत्र! हा नाथ!" यह कहती रुधिरकी कीचसे परिपूर्ण कबंधोंसे युक्त रणभूमिमें इधर उधर फिरनें लगीं ॥ ४ ॥ वह सब स्त्रियें स्वामीके शोकसे शोकाकुलथीं, उनके नेत्र आंसुओंसे भरे हुएथे, और वे यूथपतिहीन हथ-

नियों की नांई जिधर तिधर अपने स्वामीको खोजती फिरतींथीं ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त उन्होंने देखाकि निकटही महावीर्य, महाकाय, महाद्युतिवान रावण रणभूमिमें शयन किये पड़ाहै, उसकी मूर्ति नीले अंजनके ढेरकी समानथी ॥ ६ ॥ रणकी धूरिमें पड़े हुए पतिको सहसा देखकर यह सब स्त्रियें टूटी हुई वनवेलिकी समान राक्षसराज रावणके शरीरपर गिर पड़ीं ॥ ७ ॥ रावणकी इन सब स्त्रियोंमें कोई २ बड़े गौरवसे रावणको आलिंगन करनें लगीं, और कोई दोनों पांव या ग्रीवाको ग्रहण करके रोनें लगीं॥८॥कोई अपने दोनों हाथ फैलायकर पृथ्वीपर लोटगई, और कोई२ मृतक पतिका वदन मंडल देखकर मूर्छित होगई ॥ ९ ॥ कोई स्त्री उसका शिर अपने अंगमें रखकर देखतीं ओस की नांई आसुओंकी बूंदोंसे उसका कमलकी समान मुख गीला करनें लगीं॥ १० ॥ इस प्रकार वह सब स्त्रियें मृतक पतिको पृथ्वीपर पड़ा देख बहुत सा रोय२विलाप कलाप करकै कहनें लगीं ॥ ११ ॥ जिन्हौंनें इन्द्रको त्रासित किया यम जिसके भयसे शंकित रहताथा,जिन्हौंनें वैश्रवण कुबेरका विमान बलसे छीन लिया॥१२॥ और देवता, गन्धर्व व ऋषि इत्यादि महात्मा लोगोंको संग्राममें भयसे व्याकुल कियाथा, वही आज निहतहो रणभूमिमें शयन कर रहेहैं ॥ १३ ॥ अहो! राक्षसराजने, सुर असुर अथवा पन्नगोंसे जिस भयकी शंका नहीं कीथी आज मनुष्यसे उनको वही भय हुआ ॥ १४ ॥ हाय ! यह देव दानव और राक्षसोंसे अवध्य होकरभी एक पैदल मनुष्यसे मारडाले जाकर रणभूमिमें शयन कर रहे हैं ॥ १५ ॥ हायरे! देवता, असुर, अथवा यक्षलोगभी जिसको वध नहीं करसके वह एक मनुष्यसे साधारण प्राणीकी समान मारागया ॥ १६ ॥ रावणकी स्त्रियें दुःखित मनसे इस प्रकारसे विलाप करकै व्यथित हृदयहो क्षणभर रोकर फिरभी विलाप करकै कहनें लगीं ॥ १७ ॥ महाराज! तुमनें हितकी कहने वाले सुहृद लोगोंके वचनों पर ध्यान न देकर अपनी मृत्युके लिये ही सीताहरण कियाथा और इसी कारणसे सब पक्षियोंका वधहुआ ; व इसीसे इस समय हमभी मूल सहित निर्मूल हुई ॥ १८ ॥ हा! तुम्हारा मंगल चाहने वाले भ्राता विभीषणनें हित वचन कहेभी; परन्तु तुमने मोहके वश अपने वधके लियेही उनको कठोर वचन कहेथे, कि उन कठोर वचनोंका फल अब दिखाई देताहै ॥ १९ ॥

हा! यदि तुम उन विभीषणके वचनोंको मान जनककुमारी सीता श्रीरामचंद्रजीको दे डालते, तौ न यह हमारा मूल,नाश होता, और न यह बड़ीभारी विपद हमपर पड़ती ॥ २० ॥ हा प्राणेश्वर! जो तुम सीताको दे देते तौ विभीषण, राम, और तुम्हारे मित्र कुलकी कामना पूरी होती और हम सबको यह विधवापनकी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती, व तुम्हारे शत्रु लोगभी आनंदित नहीं होसकते ॥ २१ ॥ परन्तु तुमनें दुष्टकी समान कार्य करके बलपूर्वक सीताको रोक एकही समयमें अपने आपको, हम सबको, और राक्षसोंको मरवा डाला ॥ २२ ॥ अथवा हे राक्षसश्रेष्ठ! तुम्हारी स्वेच्छाचारीका कुछभी दोष नहीं कारणकि सबही दैवकी चेष्टा है, तुम दैव करके मारडाले गयेथे, अब रामचंद्रने तो निमित्त मात्र होकर तुम्हारा वध किया ॥ २३ ॥ हे महावीर असंख्य! राक्षस, वानर और तुम्हारी मृत्यु, यह सब दैवशक्तिका ही कार्य है और दैव योगसे ही हुआ है ॥ २४ ॥ जबकि दैवगति फलनेंको होती है, तब अर्थ काम विक्रम और आज्ञा किसीसेभी उसका निवारण नहीं होता ॥ २५ ॥

विलेपुरेवंदीनास्ताराक्षसाधिपयोषितः ॥ कुर
यंइवदुःखार्ताबाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ २६ ॥

इस प्रकारसे वह राक्षसराज रावणकी स्त्रियें दुःखसे आरतहो दीनभाव और नेत्रोंमें आंसू भरभरके कुरीं पक्षियोंकी समान विलाप करनें लगीं॥२६॥

इ० श्रीम० वा० आ० यु० भा० द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः

तासांविलपमानानांतदाराक्षसयोषितः ॥
ज्येष्ठपत्नीप्रियादीनाभर्तारंसमुदैक्षत ॥ १ ॥

इस प्रकारसे विलाप करती हुई रावणकी सब स्त्रियोंमें उसकी पटरानी प्यारी नारी दीन हो अपने स्वामीको देखनें लगीं ॥ १ ॥ अचिन्त्यकर्मकारी श्रीरामचंद्रजीसे अपने पति रावणको मृतक हुआ देखकर मन्दोदरी कृपणचित् हो विलाप करने लगीं ॥ २ ॥ हे महावीर! कुबेरके छोटे भाई राक्षसेश्वर! पहले जब तुमको क्रोधित होतेथे तो देवराज पुरन्दरभी तुम्हारे सन्मुख खड़ा होनेसे डरता ॥ ३ ॥ और महर्षि यशस्वी गन्धर्व

गण और चारण लोग तुम्हारे भयसे दशो दिशाओंको भागते ॥ ४ ॥ परन्तु आजभी वही तुम केवल मनुष्य रामचंद्रकरकै संग्राममें पराजित होकर नही लजाते, हे राक्षसनाथ इसका कारण क्या है? ॥ ५ ॥ हाय! तुमनें वीर्य बलसे त्रिलोकी को जीत करकै बड़ीभारी सम्पत्ति बटोरीथी परन्तु आज तुमको एक वनवासी मनुष्यनें मारडाला यह बड़ी असहनीय बातहै ॥ ६ ॥ तुम इच्छानुसार अनेक प्रकारके रूप धारण करकै मनुष्य लोगोंको अगम लंकापुरीमें विचरण करते हो इसलिये रामचंद्र करकै तुम्हारा विनाश किसी प्रकारसे संभव नहीं होसकता ॥ ७ ॥ तुम सबही स्थानोंमें विजयको प्राप्त करतेथे इस कारण अब संग्राममें तुम्हारा यह विनाश करना रामचन्द्रजीका यह कार्यहै, ऐसा हमको विश्वास नहीं होता ॥ ८ ॥ ऐसा समझ पड़ताहै कि कृतान्त स्वयंही मायाके बलसे रामरूप धारणकर तुम्हारे वध करनेंको आयाथा सो तुमने यह नहीं जाना ॥ ९ ॥ अथवा हे महाबलवान ! तुम क्या इन्द्रसे धर्षित हुयेहो; सो यहभी नहीं, क्योंकि इन्द्रमें इतनी शक्ति कहां है कि वह रण भूमिमें तुम्हारे सामने खड़ा हो सकै ॥ १० ॥ अथवा और संदेह करनेंकी क्या आवश्यकताहै ? हमको निश्चयजान पड़ताहै कि महा बलवान महा वीर्य युक्त देवताओंके शत्रुओंका नाश करनें वाले, वह महायोगी, परम पुरुष सनातनही होंगे ॥ ११ ॥ आदि, अंत, मध्यसे रहित बड़े परम महान, इससे नित्य वर्तमान शंख, चक्र गदाधारी ॥१२॥ जिनकी छातीमें श्री वत्स शोभायमानहै, जो नित्यहै जिनको कोईभी नहीं जीत सकै, क्षय रहित परिमाणशून्य सत्य पराक्रम विष्णुजीही ॥१३॥ वानररूपधारी सब देवता-लोगोंके साथ अवतार लेकर आये हैं; सब लोगोंके ईश्वर श्रीमान्नें सर्व लोगोंके हितकी कामनासे ॥ १४ ॥ भयके देनेवाले देवशत्रु राक्षसको परिवारके सहित मारडाला, अथवा हम जानतीहैं कि तुमने सब इन्द्रियों-को जीत फिर त्रिभुवनको जीताथा ॥ १५ ॥ सो जानपड़ताहै कि इन्द्रि-योंने उसी वैरको याद करकै अब तुमको पराजित कियाहै। हाय! जबकि जनस्थानमें बहुत सारे राक्षसोंके साथ ॥ १६ ॥ तुम्हारे भ्राता खर मारे गयेथे, हमनें तबही जानाथाकि रामचन्द्र मनुष्य नहीं हैं, जबकि देवता लोगोंके प्रवेश करनेंके अयोग्य लंकापुरीमेंभी ॥ १७ ॥ हनुमाननें बलसे

प्रवेश करके सबका मान मर्दन किया, तबही हम सब समझ गईं कि अब कोई महा प्रचण्ड शत्रु आया, उस समय जो हमनें कहाथा कि रघुनाथजीसे विरोध न करो ॥ १८ ॥ परन्तु तुमनें हमारी बातको एकभी न माना, यह उसकाही फल आनकर प्राप्त हुआहै, हे राक्षसश्रेष्ठ ! तुम अकस्मात् जो सीताके प्रति अभिलाषी हुएथे ॥ १९ ॥ तिससे तुम अपने स्वजन देह और ऐश्वर्यके साथ मूल सहित नाशको प्राप्त होगये। हे दुर्मते! अरुन्धती व रोहिणीसेभी सब प्रकारसे श्रेष्ठ ॥ २० ॥ पूजा करनेंके योग्य सीताजीको तुम हरण करके लाए इह बडा अनुचित कर्म हुआ । अधिक क्या कहैं, वह सहनशीलताके गुणमें पृथ्वीको धारण करनेंवाली पृथ्वी हैं, लक्ष्मीकी लक्ष्मी और अपने स्वामीकी प्यारीहैं ॥ २१ ॥ तुमने पतिकी प्यारी सर्वाङ्गसुंदरी दीन सीताको जनरहित वनसें बलपूर्वक हरण कर लिया और अपने प्राणोंका नाश किया ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! तुमने सीताके सहवासकी कामनाकीथी परन्तु वह पूर्ण नहीं हुई । वरन उस पतिव्रताकी तपस्यासें तुम भस्म होगये ॥ २३ ॥ तुमनें जिससमय उस पतली कमरवाली जानकीका हरण कियाथा, तुम तो उसी समय भस्म होजाते, परन्तु इस्से भस्म नहीं हुए कि इन्द्र व अग्नि प्रमुख देवता तुमसे भय करतेथे ॥ २४ ॥ लोग जो पापकर्म करतेहैं कालके वशसे पकनेंका समय आनेपर अवश्यही उसका फल प्राप्त होताहै कारणकि उसका कोई कर्ता नहींहै ॥ २५ ॥ जो अच्छे कार्य करतेहैं वह शुभ फल,जो बुरे कार्य करतेहैं वह बुरे फलको प्राप्त होतेहैं इसी कारणसे बिभीषण सुखी और तुम अत्यन्त दुःखमें गिरे ॥ २६ ॥ तुम्हारे यहां तो सीतासे अधिक रूपवती औरभी अनेक स्त्रियेंथीं, परन्तु तुमनें कामाधीन मोहके वश उन सबका निरादर किया ॥ २७ ॥ रूप, कुल, या चतुरतामें जानकीका हमसे श्रेष्ठ होंना तो दूररहै, वह हमारी समान होनेंके योग्यभी नहींहै परन्तु तुम मोहके वश होकर यह नहीं देखतेथे ॥ २८ ॥ जानकी हरणमें तुम्हारी मृत्युका कारण जान पड़ती हैं कारणकि निमित्तके विना कोईभी प्राणी मृत्युको प्राप्त नहीं होताहै ॥२९॥ तुमनें अपने आपही उस सीता निमित्त मृत्युको दूरसे हरण कियाथा, अब जानकी शोकहीनहो श्रीरामचंद्रजीके साथ विहार करेंगी ॥ ३० ॥

परन्तु हम जो थोड़े पुण्यवालीहैं इसलिये शोक सागरमें डूबगई। कैला-
समें, मंदरमें, मेरु पर्वतमें, तथा चैत्ररथमें ॥ ३१ ॥ और देवता लोगोंके
सब उद्यानोंमें हमनें तुम्हारे सहित अतुल शोभायुक्त अनुरूप विमानोंमें
चढ़कर विहार किया ॥ ३२ ॥ उन विमानोंपर चढ़े हुए हमनें अनेक
देश देखे और माला चन्दनादि विचित्र चित्र वस्त्र देखती व भोगती हुई
विहार करतीथी। हे वीर! अब तुम्हारे मारे जानेके कारण हम कामके
भोगोंसे नीचे गिरा दी गई ॥ ३३ ॥ अब वही हम और साधारण स्त्रियोंके
समान होगई, इससमय हमनें जाना कि राजश्री अतिशय चंचल होतीहै
इस कारण ऐसी श्रीको धिक्कारहै! हा राजन्! अति सुकुमार, सुन्दर
भौंहवाला ॥ ३४ ॥ सुन्दर त्वचासहित ऊंची नाकवाला कीर्ति श्रीप्रदीप्त
चंद्रकमल व सूर्यके समान शोभायमान, किरीटसे शोभित, ताम्रवत्,
अरुण, व प्रकाशमान कुंडलोंसे युक्त ॥ ३५ ॥ मदसे व्याकुल होनेंके
कारण चंचल नेत्र सहित जो मुख मदपानभूमिमें हो जाताथा। विविध
भांतिकी पुष्पमालाओंसे शोभित और मनोहर वचन युक्त तुम्हारा मुख
है ॥ ३६ ॥ इससमय हे स्वामी! वही तुम्हारा मुख शोभित नहीं होता,
रामचंद्रके बाणोंसे छिन्नभिन्नहुआ लालरुधिरसे सनाहुआ ॥ ३७ ॥
मस्तक फट जानेंसे वसा व सिरका गूदा दिखाई देताहै, व ऊपरसे रथकी
धूल पड़नेंसे रूखासा दिखाई देताहै, हाय! आज हमको सबसे पिछली
विधवापन देनेहारी दशा प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ जिससे मन्दबुद्धिवाली हमनें
कभी स्वप्नमेंभी नहीं सोचाथा। हमारे पिता दानवराज मय स्वामी राक्षस
राज ॥ ३९ ॥ पुत्र इन्द्रका जीतनेंवाला इन्द्रजित था यही जानकर हम
गर्वितथीं। अहंकारी शत्रुओंके मथनेंवाले, क्रूर, बल पौरुषमें विख्या-
त ॥ ४० ॥ किसी भयसे न डरनेंवाले हमारे यह नाथहैं, बस यही हमारी
मति सदा रहतीथी। सो इस प्रकारके प्रभाव वाले तुम राक्षसश्रेष्ठोंको॥४१॥
मनुष्योंसे ऐसा एकाएक बिना विचारा हुवा!भय किस प्रकारसें प्राप्त हुआ! हा
नाथ!चिकनी इन्द्रमणिकी समान नील वर्ण;महापर्वतकीसमान ऊंचा ॥४२॥
केयूर, बाजू, वैदूर्य, मुक्ताहार और पुष्पमालासे उज्ज्वल विहारके समयमें
अति रमणीय संग्रामभूमिमें प्रदीप्त ॥ ४३ ॥ दामिनीके संयोगसे मेघकी
शोभा जिस प्रकार होतीहै वैसेही यह इन सब गहनोंकी प्रभासे सजा हुआ

रहता, हे देव! आज वही आपका शरीर असंख्य तीक्ष्ण बाणोंसे कटकुट-कर विंधगयाहै ॥ ४४ ॥ इसलिये इस शरीरका स्पर्श दुर्लभ होजायगा, यह जानकरभी हम इसको नहीं चिपटाय सकतीं, क्योंकि इसमें अनेक प्रकारके बाण लगनेसे यह सेईके कांटोंसे युक्त होनेके समान शोभितहै ॥ ४५ ॥ और मर्ममें लगेहुए गहरे बाणोंसे तुम्हारा शरीर रत्ती २ विंधरहाहै सब नसोंके बंधन टूट टाट गयेहैं हेराजन्! तुम्हारे काले रंगका रुधिर निकलनेसे युक्त ॥ ४६ ॥ वज्र प्रहारसे गिरकर टूटे हुए पर्वतकी समान प्रकाशित होताहै हाय! सबही स्वप्नकी समान जान पड़ताहै क्योंकि तुम रामचंद्रसे किस प्रकार मारेगये ॥ ४७ ॥ तुम तो मृत्युकेभी मृत्यु स्वरूपथे फिर किस प्रकारसे मृत्युके वश हुए। हाय! जिसनें सब त्रिलोकीके भोगोंको भोगा, जिसने त्रिभुवनको महा घबड़ादिया ॥ ४८ ॥ जिसनें लोक परलोकोंकोभी जीत लिया, महादेवजीकोभी जिसनें उठालिया, गर्व करनेंवालोंको जिसनें पकड़लिया, जिसनें सब पराक्रमोंको प्रकाशित किया ॥ ४९ ॥ जिसनें लोकोंको खलबलाय दिया और सिंहनाद करकै सब प्राणियोंको विदारण किया। शत्रुओंके सामनें अत्यन्त तेजसे गर्वित वचन जो रावण तुम कहतेथे ॥ ५० ॥ संबंधी और सेवकोंकी रक्षा करनें वाले भयंकर कर्मकारियोंके मारनेंवाले हजारों यक्ष दानवोंका संहार करनेंवाले ॥ ५१ ॥ संग्राममें निवातकवच नाम दानवोंके पकड़नेवाले सब यज्ञोंके लोप करनेंवाले अपने लोगोंकी रक्षा करनेंवाले ॥ ५२ ॥ धर्मकी व्यवस्थाके उल्लंघन करनेंवाले रणभूमिमें मायाके रचनेवाले अनेक स्थानोंसे मनुष्य, देव, व असुरोंकी कन्याओंको हरण करनेंवाले ॥ ५३ ॥ शत्रुकी स्त्रियोंको शोक देनेवाले, अपनी सैनाको शिक्षा देनेवाले। गुप्त लंकापुरीकी रक्षा करनेंवाले भयंकर कर्मकारी ॥ ५४ ॥ हम सबोंका काम व उपभोगोंके देंनेवाले, रथिश्रेष्ठ, ऐसे प्रभाव सम्पन्न स्वामीको श्रीरामचन्द्रजी करकै निहत और पतित देख ॥ ५५ ॥ प्यारेके मारे जानेंपर अबतकभी जीवन धारण करकै देहका बोझा ढोती हैं। हे राक्षसेश्वर! तुम तो बड़े मोलके बिछोंनोंपर शयन करतेथे ॥ ५६ ॥ परन्तु आज इस किंकड़ीसे युक्त पृथ्वीपर तुम किस प्रकार सोरहेहो। हाय! जब हमारा पुत्र कुमार इन्द्रजित रणमें लक्ष्मणसे मारडाला गया ॥ ५७॥

उस समय तौ हमनें केवल तीक्ष्णरूपसे आघातही पायाथा, परन्तु तुम्हारे मृतक होनेंसे हमभी मरगईं । हाय ! हम वही मन्दोदरी होकरभी अव बन्धु जन तुम्हारे समान नाथके मारे जानेंपर ॥ ५८ ॥ कामभोगसे विहीन होकर अनंत कालतक शोक करतीरहैंगी । हा राजन् ! तुम दुर्गमदूरके मार्गमें चले जातेहो ॥ ५९ ॥ इसलिये इस दुःखिनीकोभी अपने साथ ले चलो क्योंकि तुम्हारे बिना हम प्राण नहीं रखसकैंगी । अरे ! हम कृपण बिचारीको त्याग तुम कैसे गमन करनेंकी इच्छा करतेहो ॥ ६० ॥ हम मंदभागिनी कातर होकर दीनभावसे विलाप कर रहीं हैं, सो तुम हमसे क्यों नहीं बोलते? महाराज ! यह देखकर क्रोधित क्यों नहीं होते कि हम बिना पर्दैके ॥ ६१ ॥ नगरके द्वारसे निकलकर यहांपर पैदलही चली आई हैं । हे स्वामी ! देखो तुम्हारी स्त्रियें लाज और घूंघटको त्याग॥६२॥ सबही यहांपर चली आईहैं सो यह देखकर तुम क्रोध नहीं करते यह देखो ! जोकि क्रीडाके समय तुम्हारी निरन्तर सहायता करतीथीं सो तुम्हारी वही सब स्त्रियें अनाथ होकर वारंवार विलाप करती हैं ॥ ६३ ॥ सो उनका सन्मान करना तौ दूर रहै, तुम उनको समझाते बुझातेभी नहीं हो; हे राजन् ! जिन कुलस्त्रियोंको तुमने विधवा किया ॥ ६४ ॥ पति-व्रता, धर्ममें रत, बड़े जनोंकी सेवा करनेंवाली उन्होंनेही शोकसे संतापित हो पराये वशमें पड़ ॥ ६५ ॥ तुमसे अपकार पाय उन्होंने जो शाप तुम-को दियाहै, वही आयाहै; इसीलिये आज तुम शत्रुके हाथसे मारे गये । यह जो प्रवाद संसारमें है सो हे राजा ! आज वह तुमनें सम्पूर्ण सत्य किया वह यह है कि ॥ ६६ ॥ किसी अनर्थका कारण न होनेंपर अनर्थक पति-व्रता स्त्रियोंके आंसू पृथ्वीपर नहीं गिरते हे राजन् । अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंको जीत लिया फिर कैसे ? ॥ ६७ ॥ अव यह नारीहरण रूप चोरी का कार्य तुमनें किया क्योंकि तुम जो अपनेको शूर मानतेथे, तुम जो कपटमृगके द्वारा रामचन्द्रको आश्रमसे दूरकर ॥६८॥ और फिर लक्ष्मण-जीकोभी आश्रमसे दूरकर रामचंद्रजीकी स्त्री जानकीजीको जो हर लायेथे। युद्धमें तुम्हारा इस प्रकारसे कातर होना तौ हमें याद नहीं आता ॥ ६९ ॥ तोभी जब तुमनें ऐसा किया तौ भाग्यके क्रमसे यह आनेवाली मृत्युकाही लक्षणथा । भूत, भविष्यत, वर्तमान इस त्रिकाल ज्ञानमें पंडित ॥ ७० ॥

जानकीको हरणके द्वारा यहांपर आया हुआ देख बहुत देरतक लंबी श्वास ले चिन्ताकर महावीर हमारे देवर विभीषणनें हमसे यह सत्य वचन कहे ॥ ७१ ॥ कि यह राक्षसमुख्योंके विनाशका समय आगयाहै सो सत्यही हुआ, काम, क्रोधसे उत्पन्न व्यसनके प्रसंगसे ॥ ७२ ॥ तुमसे जो यह परस्त्रीहरण रूप दुःख प्राप्त हुआ इससे बड़ेभारी राक्षसोंके कुल का मूल कट गया और यह सब राक्षसोंका कुल अनाथभी होगयाहै ॥७३॥ जो कुछभीहो तुम बल और पौरुषसे त्रिभुवनमें बड़ीभारी प्रसिद्धता पाईथी इस कारण तुम्हारे लिये शोक करना कर्तव्य नहींहै, परन्तु स्त्री स्वभावके वश हमारी बुद्धि शोकमें डूब रहीहै ॥ ७४ ॥ तुम अपनें पाप पुण्यको लेकर स्वर्गकी गतिको प्राप्त हुए, परन्तु हमको तुम्हारे नाशके होनेसे दुःखित अपनी आत्माको कलपाना पड़ा ॥ ७५ ॥ हा दशानन! मारीचादि हित चाहनें वाले सुहृदय और भाई बन्धुओंनें सब भांतिसे तुम्हारा मंगल करनेंके लिये अनेक बातें कहीथीं परन्तु तुमनें उनको एक नहीं माना ॥ ७६ ॥ हमारे देवर विभीषणजीनें तुमसे शान्त भाव जो समस्त श्रेष्ठ जनक विधि सहित हेतु युक्त वचन कहेथे तुमनें उनकोभी ग्रहण नहीं किया ॥ ७७ ॥ मारीच, कुंभकर्ण, और हमारे पिताजीके वचनोंको जो तुमनें अपने वीर्यके घमंडसे नहीं माना, इस समय उसकाही यह फल हुआहै ॥ ७८ ॥ नीले बादरकी समान, पीताम्बर धारे, शुभ बाजू पहरे अपने शरीरको इधर उधर फैलाये रुधिरमें साने क्यों यहां पड़ेहो ॥ ७९ ॥ प्राणप्यारे! तुम न सोकर भी सोते हुए की समान किस कारण हमसे नहीं बोलतेहो? महावीर! सब कार्योंके करनेमें चतुर जो रणस्थलसे कभी नहीं भागा ॥ ८० ॥ उस राक्षस श्रेष्ठ सुमालीकी धेवती तुमको पुकाररहीहै; तथापि तुम उत्तर क्यों नहीं देतेहो? नई हार होनेसे क्या इस प्रकार सो रहतेहैं? उठो उठो ॥ ८१ ॥ देखो आज तुम्हारे नई हारको देखकरही निर्भयहो सूर्यकी किरणोंने लंकामें प्रवेश कियाहै जिस्से शत्रुको मारतेथे समरमें सूर्यकी किरणोंकी समान ॥ ८२ ॥ वज्रधारी इन्द्रजीके वज्रकी समान वही यह तुम करके पूजित हुआ रणमें बहुत आयुधोंसे युक्त सुवर्णके जालसे ढका हुआ ८३ ॥ वही परिघ रामचंद्रजीके बाणोंसे कटकर हजारों खंडहो बड़ेभारी रणमें पड़ाहै हाय!

तुम प्यारीकी समान रणभूमिको हृदयसे लगायकर सो रहेहो ॥ ८४ ॥ परन्तु हम किस कारणसे ऐसी कुप्यारी हुई जो तुम हमारे साथ बोलनेंकी इच्छा नहीं करते । हमारे हृदयको धिक्कारहै! हा! अबतक इसके हजार टुकड़े नहीं होगये ॥ ८५ ॥ तुम्हारे मृतक हो जाने परभी यह शोकसे पीड़ित नहीं हुआ । इस प्रकार विलाप करती हुई मन्दोदरी नेत्रोंमें आंसूभर ॥ ८६ ॥ मारे स्नेहके स्नेहको कंपायमान कर मूर्छित होगई और दुःखसे अत्यन्त हतहो रावणकी छातीपर गिर पड़ी ॥ ८७ ॥ मन्दोदरी संध्याके समयके रंगीन बादरमें बिजलीकी समान शोभायमान हुई मय नंदिनीकी ऐसी अवस्था देख उसकी सौतोंने जो शोकसे व्याकुल हो रहीथीं उसको उठाया ॥८८॥ रोदन करते २ उस रोती हुई मन्दोदरीको उठाय सावधान करनेंके लिये उन्होंने कहाकि, हे देवी! क्या तुम नही जानती कि लोकोंकी स्थिति अनित्यहै ॥ ८९ ॥ विशेष करकै पुण्य परिपाक कालरूप दशा विशेषकी राजलक्ष्मी जो सदा चंचल रहतीहै यह क्या आपकी विचार शक्तिसे सिद्ध नहीं होता? जब इस प्रकार उन सबोंने कहा तौ वह मंदोदरी फिर बड़ा शब्द करके रोंने लगी ॥९०॥ अपने आंसु ओंसे अपने निर्मल कुच भिगोती हुई रावणका आश्रय ले फिर रोई इसी अवसरमें श्रीरामचंद्रजीने बिभीषणसे कहा ॥ ९१ ॥ कि हे बिभीषण! रावणकी सब स्त्रियोंको समझा बुझायकर तुम अपने भ्राताका संस्कार करो रामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन बुद्धिमान विभीषणजी यह वचन ॥ ९२ ॥ श्रीरामचंद्रजीके मनकी यथार्थ बात जाननेंके लिये धर्म अर्थ युक्त और अपने हितकारी वचन बोले, धर्मको त्यागे हुए क्रूर स्वभाव, निर्लज्ज, मिथ्यावादी ॥ ९३ ॥ परस्त्रीगामी महादुष्ट इस रावणका संस्कार हम नहीं करेंगे,यह नामको हमारा भ्राताथा परन्तु इसनें सदा शत्रुकी समान कार्य हमारे साथ कियेहैं ॥९४॥ इसलिये बडप्पनके गौरवसे युक्त होकरभी यह हमसे पूजेजानेंके योग्य नहींहै हे श्रीरामचंद्रजी! जो लोग हमको भ्राताका संस्कार न करनेंके कारण प्रथम क्रूर कहेंगे॥ ९५ ॥ परन्तु वही सब जब इस रावणके बड़े २ दुर्गुणोंको सुनेंगे तब हमारे किये हुए कार्यको धन्यवाद देंगे । धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी विभीषणके ऐसे वचन सुनकर परम प्रसन्न हुए ॥ ९६ ॥ और उन वाक्यके जाननेवाले रामचं-

द्रजीनें वाक्य विशारद विभीषणजीसे यह कहा "तुम्हारा प्रिय हमको कर्तव्य है, क्यों कि तुम्हारे प्रभावसे हमने जय पाई है ॥ ९७ ॥ इसलिये तुमको भला उपदेश हम अवश्य देंगे" हे राक्षसेश्वर यद्यपि अधर्म और मिथ्यामें यह निशाचर तत्पर रहा ॥ ९८ ॥ तथापि यह बड़ा तेजस्वी बलवान् शूर और संग्राममें सदा प्रबल रहताथा हमने इसको इन्द्रादि देवतोंके सामनेभी हारता हुआ नहीं सुना ॥ ९९ ॥ महात्मा बल सम्पन्न सब लोकोंको रुलानें वाला यह रावणथा मरनेही तक वैर रहता है, परन्तु अब हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जानेंसे ॥ १०० ॥ यह जैसा तुम्हारा बन्धुथा वैसाही हमारा बन्धु हुआ इसलिये इसका संस्कार करो, हे महावीर! तुम विधिपूर्वक इस रावणका संस्कार ॥ १०१ ॥ अति शीघ्र और धर्मानुसार करो, ऐसा करनेंसे तुम सब लोकोंमें यश पाओगे श्रीरामचंद्रजीके वचन सुन शीघ्रता युक्त हो विभीषणजी ॥ १०२ ॥ अपने संग्राममें मारे गये भ्राता रावणका संस्कार करनेंलगे । राक्षसोंमें इन्द्र विभीषणजी लंका पुरीमें प्रवेश करकै ॥ १०३ ॥ अति शीघ्रतासे उन्होंनें रावणके अग्निहोत्रको निकाला । छकड़ोंमें काष्ठके पात्र यज्ञाग्नि व यज्ञ करानें वाले लोग ॥ १०४ ॥ और चंदनकी लकड़ी व औरभी विविध भांतिके काठ अगर आदि सुगन्धित पदार्थ औरभी बहुतसी सुगन्धियें ॥ १०५ ॥ मणि मोती, मूंगे यह सब विभीषणजी लाये यह सब पदार्थ एक मुहूर्त भरमें आये और विभीषणजी राक्षसोंके साथ आयगये ॥ १०६ ॥ और माल्यवान राक्षसके साथ सब क्रिया करनें लगे. प्रथम उत्तम दिव्य शिबिका मँगाय उसपर रेशमीन वस्त्रोंमें लपेट मृतक देहको चढ़ाया ॥ १०७ ॥ इस प्रकार उसपर राक्षसोंके राजा रावणको चढ़ाय रोते हुए वह राक्षस चले ॥ १०८ ॥ आगे २ नगाड़े बजानेंवाले व स्तुति करनें वाले लोगचले । पताकासे चित्रित और फूलोंसेभी चित्रित शिबिकाको विभीषण इत्यादि राक्षस गणोंनें उठालिया ॥ १०९ ॥ हाथोंमें काठलेले कर सबही दक्षिणको मुखकर चले ॥ अध्वर्यु लोगोंनें अग्निको प्रज्वलित किया और अग्निले रावणके संग २ चले ॥ ११० ॥ और सब शरणागत पुरुषभी रावणके मृतकके पीछे २ चले । अंतःपुरीकी समस्त स्त्रियें अति शीघ्रतासे रोतीहुई ॥ १११ ॥ रावणके पीछे २ गिरती पड़तीहुई चलीं राक्षसगण दुःखित

मनसे राक्षसराज रावणको किसी पवित्रस्थानमें स्थापितकर॥ ११२॥चन्दन, कमल,उशीरआदि सुगन्धि पदार्थों व और दूसरे काठोंसेभी चिता बनाय उस पर रंकुनाम मृगका चमडा वेदके मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर बिछाया ॥ ११३॥ और राक्षसोंके राजा रावणका पितृमेध यज्ञ करनें लगे; प्रथमतो दक्षिण पूर्वके कोनोंपर वेदी बनाय उसपर अग्नि स्थापनकी ॥ ११४ ॥ और उसपर रावणका मृतक शरीरधर दही व घीसे भर स्रुव कांधेपर छोड़ा, और पावोंपर शकट तथा जांघोंपर उलूखल रक्खा ॥ ११५ ॥ सब काष्ठ पात्र अरणी और उत्तरारणी मुशल शास्त्रके अनुसार जो जहां चाहिये यथा स्थानपर स्थापित किया गया ॥ ११६ ॥ फिर शास्त्रकी रीतिसे और महर्षियोंकी कही हुई रीतिसे रावणके अर्थ पवित्र पशुका वध किया गया ॥११७॥ राक्षस राज रावणके अर्थ घृत युक्त *परिस्तरणिका प्राप्त किया । फिर दीनमनवाले रावणको गंध व मालाओंसे सजाया गया ॥ ११८ ॥ विविध भांतिके वस्त्रोंको उसके ऊपर डाला बिभीषणजीनें नेत्रोंमें आंसू भरकर रावणके ऊपर अक्षतोंकी वर्षाकी ॥ ११९ ॥ और बिभीषणनें विधिपूर्वक उस चितामें अग्नि लगादी इसके पीछे स्नानकर भीजे वस्त्रही पहरे हुए तिल और दर्भ मिश्रित ॥ १२० ॥ और जलभी हाथमें ले सब विधिपूर्वक रावणको तिलाञ्जलि देने लगे। तिसके पीछे उन सब स्त्रियोंको वारंवार समझाया ॥ १२१ ॥ कि अब सब नगरको जाओ, तब यह समस्त नगरमें प्रवेश करती हुई। जब सब स्त्रियें नगरमें प्रवेश करती हुई तब राक्षसोंमें इन्द्र बिभीषणजी श्रीरामचंद्रजीके निकट आय विनीत भावसे खड़े होगये ॥ १२२ ॥ वज्रधारी इन्द्रजीनें जिस प्रकार वृत्रासुरका वध करके हर्ष प्राप्त कियाथा, वैसेही श्रीरामचंद्रजी, सुग्रीव, लक्ष्मण, और सब सैनाके सहित रिपुका संहार करके अत्यानंदित हुए ॥ १२३ ॥

ततोविमुक्तासशरंशरासनंमहेंद्रदत्तंकवचं
सतन्महत् ॥ विमुच्यरोषंरिपुनिग्रहात्ततो
रामःससौम्यत्वमुपागतोऽरिहा ॥ १२४ ॥

इसके पीछे शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचंद्रजी इन्द्रका दिया, हुआ

* परिस्तरणिका अर्थात् वपा रावणके मुखमें डाली ॥

बड़ाभारी धनुष, बाण कवच और शत्रुके जीतनेंका क्रोध त्याग करके फिर सौम्य मूर्ति धारण कर लेते हुए ॥ १२४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषा० त्रयोदशाधिक शततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥

तेरावणवधंदृष्ट्वादेवगंधर्वदानवाः ॥ जग्मुःस्वैः स्वैर्विमानैस्तेकथयंतःशुभाःकथाः ॥ १ ॥

इस ओर रावणका वध देखकर देव, दानव, और गन्धर्व लोग अपने२ विमानोंपर चढ़के बहुत सारी श्रेष्ठ बातें करते २ वहां आये ॥ १ ॥ रावणका घोर मारा जाना श्रीरामचंद्रजीका पराक्रम, वानरोंका श्रेष्ठ युद्ध, सुग्रीवजीकी मंत्रणा ॥ २ ॥ लक्ष्मण और हनुमानजीका अनुराग, वीर्य और पराक्रम और जनककुमारी सीताजीका पातिव्रत्य ॥ ३ ॥ कहते हुए सब महाभाग हर्षित चित्तसे वहां आये । श्रीरामचंद्रजीनेंभी इन्द्रके दिये हुए दिव्य और अग्निकी समान प्रभावाले रथको ॥ ४ ॥ जानेंके लिये आज्ञा दे, फिर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीनें मातलिकी पूजाकी । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीनें इन्द्रके सारथी मातलिको जानेंकी आज्ञा दी ॥ ५ ॥ कि अब तुम इस दिव्य रथको लेजाओ मातलि श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय उस रथपर सवारहो आकाशको चलागया, वह सुर सारथि श्रेष्ठ जब देव मार्गको चलागया ॥ ६ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीनें परम प्रसन्नतासे सुग्रीवजीको भेंटा । और सुग्रीवजीसे जब भलीभांति मिल भेंट चुके तब लक्ष्मणजीनें आयकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥ और सब वानर लोगोंसे पूजित होकर श्रीरामचन्द्रजी वहां गये जहां कि सब सैना पड़ीथी, और श्रीरामचन्द्रजी वहां आय अपने निकट वालोंसे बोले ॥ ८ ॥ उन्होंनें सुमित्रानंदन शुभ लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे कहा कि हे सौम्य ! इस समय तुम विभीषणजीको लंकाके सिंहासनपर प्रतिष्ठित करो ॥ ९ ॥ यह हमारे अनुरागी हैं, भक्तहैं, तथा पहले हमारे साथ उपकारभी किये हुए हैं। यह हमारी बहुतही बड़ी कामनाहै सो हम रावणके छोटे भाई विभीषणजीको ॥ १० ॥ हे सौम्य ! लंकाके राज्य सिंहासनपर अभिषेकित देखें ।

जब लक्ष्मणजीसे महात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें ऐसा कहा ॥ ११ ॥ तब लक्ष्मणजीनें रामचन्द्रजीके वचनको सुन यह कहाकि ऐसाही करेंगे; यह कह लक्ष्मणजीनें हर्षितहो एक सुवर्णका घड़ा ग्रहण किया, व वैसेही चार कलशोंको मनकी समान वेगवाले वानरेन्द्रोंको दिया॥ १२ ॥ और उन महा पराक्रमी वानरोंको चारों समुद्रोंका जल लानेंके लिये आज्ञादी वह मनकी समान वेगवाले वानर अति शीघ्र वहां गये ॥ १३ ॥ और चारों समुद्रोंसे जल ग्रहण करके वह वानर श्रेष्ठ वहांपर आगये। वानर लोग तो कई २ घड़े जलले आयेथे पर उनमेंसे एक २ घड़ा लेकर परमासन पर रक्खा भया॥ १४॥ एक घड़ेको ग्रहण करके लक्ष्मणजीनें बिभीषणजीका अभिषेक किया, लंकामें राक्षसोंके मध्यमें विभीषणको श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे राजा किया ॥ १५ ॥ विधि पूर्वक मंत्रोंसे सब सुहृद गणोंके साथ सब राक्षस वानर बिभीषणजीका अभिषेक करते हुए॥ १६॥ जब बिभीषणका अभिषेक श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणजीनें किया तब बिभीषणजीके मंत्री और नौकर चाकरोंके आनंदकी सीमा नहीं रही ॥ १७ ॥ राक्षसोंमें इन्द्र बिभीषणजीका लंकामें अभिषेक हुआ देखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित परम प्रसन्नताको प्राप्त करते हुए॥ १८॥ इसके उपरान्त राक्षस राज बिभीषणजी सब प्रजाको समझाय बुझाय ढांढस बंधाय जब श्रीरामचन्द्रजीके निकट आये, तब दधि चावल, लड्डू, खीलैं, व फूल ॥ १९ ॥ पुरवासी लोग हर्षित अंतःकरणसे उनके सामनें लानें लगे, उन सबको ग्रहण करके दुर्द्धर्ष बिभीषणजीनें श्रीरामचन्द्रजीको निवेदन किया ॥ २० ॥ और इन सब मंगलकारी मंगल द्रव्योंको वीर्यवान् लक्ष्मणजीको निवेदन किया. श्रीरामचन्द्रजी बिभीषणको समृद्धिशाली और कृतकार्य देखकरही उन सब द्रव्योंको उनकी प्रसन्नताकी कामनासे ग्रहण कर लेते हुए॥ २१॥ इसके उपरान्त सन्मुख ही हाथ जोड़कर खड़े हुए पर्वताकार वानर श्रेष्ठ हनुमानजीसे श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ २२ ॥ तुम सौम्य महाराज बिभीषणजीकी आज्ञासे लंकापुरीमें प्रवेश करो, और जानकीजीसे कुशल समाचार पूछकर लौट आओ ॥ २३॥ इसके उपरान्त सुग्रीव, लक्ष्मण, और हमारी कुशल वार्ता कहकर फिर यहभी कह देना कि लंकेश्वर रावण युद्धमें मारा गया॥ २४॥

प्रियमेतदिहाख्याहिवैदेह्यास्त्वंहरीश्वर ॥
प्रतिगृह्यतुसंदेशमुपावर्तितुमर्हसि ॥ २५ ॥

हे वानर श्रेष्ठ! तुम जानकीजीको महा प्रिय समाचार देकर उनका संदेशाले शीघ्रही यहांपर चले आओ ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्रामायणे वा० आ० यु० चतुर्दशाधिक शततमःसर्गः ॥ ११४ ॥

पंचदशाधिकशततमः सर्गः ॥

इतिप्रतिसमादिष्टोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ प्र
विवेशपुरींलंकांपूज्यमानोनिशाचरैः ॥ १ ॥

पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे आज्ञा पाय जब लंकापुरीमें प्रवेश करते हुए, तब राक्षसोंने उनका बहुत आदर सत्कार किया ॥ १ ॥ विभीषणजीकी आज्ञा लेनेको हनुमानजी लंकापुरीमें गये और उनकी आज्ञाले वृक्ष वाटिकामें गये ॥ २ ॥ वहां पहुंचतेही जानकीजीनें इनको पहँचाना, इन्होंने देखाकि स्नानादि विहीन शंकारहित रोहिणीकी समान ॥ ३ ॥ वृक्ष मूलमें आनंद रहित राक्षसियोंके घेरेमें पड़ी सीताजी बैठी हैं, यह देख हनुमानजी चुपचाप उनके निकट चले गये और शिर झुकाय विनीतहो प्रणामकर खड़े होगये ॥ ४ ॥ देवी जानकीजीभी महाबलवान हनुमानजीको आया हुआ देख प्रथम न पहँचानकर कुछ देरतक चुपचाप रहीं, और फिर याद करके बहुतही आनंदित हुईं ॥ ५ ॥ तब वानर श्रेष्ठ हनुमानजी उनका वह सौम्य मुख देखकर श्रीरामचंद्रजीके कहे वचनोंको आरंभ करते हुए बोले ॥ ६ ॥ कि हे वैदेही! महानुभाव श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजी और सुग्रीवजीके सहित कुशल पूर्वकहैं, इस समय वह शत्रुका संहार करके कृत कार्य हुएहैं; उन्होंने आपका कुशल समाचार जाननेके लिये हमको भेजाहै ॥ ७ ॥ हे देवि! वानर लोगोंके सहित विभीषणजी और लक्ष्मणजीकी सहायतासे श्रीरामचंद्रजीनें वीर्यवान रावणको मार डाला ॥ ८ ॥ हे देवि! यह प्रिय समाचार हम तुमको सुनातेहैं और फिर अपनी प्रशंसा कहतेहैं कि तुम्हारेही प्रभावसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजीनें महासंग्राममें ॥ ९ ॥ विजय पाई अब सब व्यथा दूरकर तुम सावधान होवो, क्योंकि शत्रु रावण मार डाला

गया और लंका अपने वशमें हुई ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजीनें कहाहै कि; हमनें तुम्हारा अपमान होनेंके हेतु जो प्रतिज्ञाकीथी, तबसे हमनें नींदको दूरकर दियाथा, और समुद्रमें सेतुभी बांधाथा, सो आज हम उस प्रतिज्ञासे छूटे ॥ ११॥ हमनें लंका जीतकर बिभीषणको सब ऐश्वर्य दान कर दियाहै; अब तुम रावणके स्थानमें रहनेसे कुछ भय न करो ॥ १२ ॥ इस समय तुम सावधान होकर ऐसा समझोकि मानों हम अपने घरहीमें टिकी हुईं हैं, तुम्हारे दर्शनोंकी इच्छासे हर्षित हो बिभीषण इसी समय तुम्हारे निकट जांयगे ॥ १३ ॥ हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर चंद्रमुखी सीताजी कुछभी नहीं कहसकी, आनंदके मारे मानो उनका कंठ रुक गया ॥ १४ ॥ तब सीताजीको कुछ न बोलते हुए देखकर वानरश्रेष्ठ हनुमानजी बोले, हे देवि! क्या चिन्ता करतीहो; हमसे संभाषण क्यों नहीं करतीहो!॥ १५ ॥ हनुमानजी करकै इस प्रकार कही जाकर धर्म मार्गमें टिकी हुई जानकीजी परम प्रसन्नता प्राप्तकर गद्२ वाणीसे उत्तर देती हुई ॥ १६ ॥ कि तुम्हारे मुखसे अपने स्वामीकी विजय मिश्रित यह वार्ता सुन, अत्यन्त हर्षके कारण क्षणभरके लिये हमारी वचन शक्ति लोप होगईथी ॥ १७ ॥ हे वानर! तुमनें जिस प्रकारका प्यारा समाचार दिया, तिससे तुमको क्या इनाममेंदें, यही हम सोच विचार रहीथी, परन्तु हम ऐसा कुछभी नहीं देख पातीं ॥ १८ ॥ हे हनुमन्! हम पृथ्वीपर ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं देखतीं कि जो तुम्हारी समान प्रिय समाचार देनेंवालेको दिया जावै ॥ १९ ॥ हे पवनकुमार! हिरण्य सुवर्ण, बहुत सारे रत्न,अथवा त्रिलोकीका राज्यभी दे डालें तौभी यह सब तुमको कुछ अधिक नहीं दिया जाय ॥ २० ॥ जनककुमारी सीताजी करकै इस प्रकारसे कहे जाकर वानरश्रेष्ठ हनुमानजी उनके सामने खड़े होकर बोले ॥२१॥ हे पतिकी प्यारी हितकारी, स्वामीकी विजयको चाहनेंवाली निन्दारहित सीते! आपकी समान स्त्रीही ऐसे स्नेहमय वचन कह सकतींहैं, औरकी सामर्थ्य नहीं॥२२॥हे देवि! हम तुम्हारे स्निग्ध, और प्रिय वचनोंके निकट धन, विविध प्रकारके रत्न और देवराज्यकोभी अधिक नहीं समझते ॥१॥ जबकि त्रिलोक विजय करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीको हमनें शत्रुका संहार करते देखा है,तब वास्तवमें हमनें देवराज इन्द्रजीसेभी अधिक पाय लियाहै ॥२॥"

हनुमानजीके यह वचन सुनकर जनककुमारी सीताजी पवन-कुमार हनुमानजीसे शुभ वचनबोली ॥ २३ ॥ हे पवनकुमार! तुमने शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊह (तर्क) अपोह (तर्कविशेष) अर्थ विज्ञान, और तत्त्वज्ञान इन आठों गुणोंसे युक्त. अष्टाङ्ग बुद्धिसे युक्त विचारकर व्याकरणके मतसे पदोंको परस्पर जोड़ जो मधुर वचन कहे हैं यह तुम्हारेही योग्य हैं ॥ २४ ॥ तुम पवनके विख्यात पुत्रहो, परम धार्मिक हो, इस कारण बड़ाई करनेंके योग्य हो, बल, शूरता, वीरता, विक्रम कारियोंमें उत्तम हो ॥ २५ ॥ तेज, क्षमा, धीरता, स्थिरता, विनीत-ताभी तुममें है इसमें कुछ संशय नहीं, यह सब गुण व औरभी सब गुण तुममें शोभित हैं ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त सीताजीके वचनसे कुछभी चलायमान न होकर हनुमानजी फिर हर्षित चित्तसे हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो जानकीजीसे बोले ॥ २७ ॥ कि हमारी बहुतही अभिलाषा है; कि जिन राक्षसियोंनें पहले आपको बहुत सताया है, यदि आपकी आज्ञा हो तो हम इन सबको मारडालें ॥ २८ ॥ आप पतिकी चिन्तामें दुर्बल होकर जबतक अशोक वाटिकामें रहतीहुई सहनेंके अयोग्य जो कष्ट भोग-तीथीं; इस समय यह सब घोररूप वाली निर्लज्ज अति कुटिल रूपवाली राक्षसियें सदाहीं आपको डरातीं धमकातीथीं ॥ २९ ॥ हे देवि! हम देख गयेथे कि यह विकटाकार मुखवाली राक्षसियें रावणकी आज्ञासे आपको सदा कठोर वचन कहा करतींथीं ॥ ३० ॥ हमारी इच्छा होतीहै कि इन विकटाकार मुखवाली क्रूर स्वभावसे युक्त और क्रूर दर्शन रूखे केशवाली समस्त राक्षसियोंको हम विविध प्रकारके प्रहारकरकै मारडालें ॥ ३१ ॥ जिन राक्षसियोंने दारुण वचन कहकर आपको दिक किया है हम ऐसा वर चाहते हैं कि घूंसोंसे, लातोंसे, और बड़ी२ बांहोंसे ॥ ३२ ॥ व जंघाके प्रहारसे और दांतोंसे पीड़ा देकर कान नाकोंको काटकर केशोंको खसोटकर ॥ ३३ ॥ इन राक्षसियोंको हम मारडाला चाहते हैं कि जिन्हौनें तुम्हारा कुप्यारा कार्य किया है। हे यशस्विनि! ऐसे प्रहारोंसे व औरभी अनेक प्रकारके प्रहारोंसे ॥ ३४ ॥ हम इन दुष्टनियोंको तीव्रभांतिसे मारडाला चाहते हैं क्योंकि इन्हौनें आपको पहले बहुत दुःख दिया है।

हनुमानजीके यह कृपासागर वचनसुन दीनवत्सल ॥ ३५ ॥ जानकीजी हनुमानजीसे विचारकर धर्मयुक्त वचन बोलीं राजसेवाके वश पराई आज्ञासे कर्म करती हुई ॥ ३६ ॥ इन विचारो रावणके यहांसे पेटपालती दासियोंके ऊपर हे वानरोंमें श्रेष्ठ तुमने क्यों कोपकिया? भाग्यकी विषमताके दोषसे, और पहले किये दुष्कर्मोंसे ॥ ३७ ॥ यह सब मुझको प्राप्तहुए हैं, क्योंकि सबही अपने किये कर्मोंको भोगते हैं। हे महावीर अब ऐसा मत कहो, दैवकी गति अति विचित्र है ॥ ३८ ॥ दशाके अनुसार सबही फल भोगकरने होते हैं, हमनें यह बात निश्चयकरली है, रावणकी दासियोंका क्रोधभी हम अति दुर्बलनें सहा ॥ ३९ ॥ हे पवनकुमार! इन राक्षसियोंनें रावणकी आज्ञाके अनुसारही हमको पीड़ा दीथी इस समय रावण मृतक हो गया है, इस्से अब यह हमको पीड़ित नहीं करेंगी ॥ ४० ॥ हे वानर! किसी समय एक व्याधा व्याघ्रकरके ताड़ित हो रीछ करके आश्रय किये हुए जब एक वृक्षके ऊपर चढ़गया; तब व्याघ्रनें वहां आय उस व्याधेको पेड़परसे गिरानेके लिये रीछसे वारंवार कहा, तब रीछनें व्याघ्रसे जो धर्म श्लोक कहाथा वह सुनो ॥ ४१ ॥ चतुर पुरुषको अपकार करनेंवालेके साथ प्रत्युपकार करना नहीं चाहिये इसलिये हमनें जो नियम कियाहै उसको कभी नहीं तोड़ेंगे कारण कि चरित्रही साधुलोगोंका भूषण है ॥ ४२ ॥ इस कारण हे हनुमन्! हमें इन राक्षसियोंनें भला बुरा जो कुछभी कियाहो, और चाहें यह मार डालनेंके योग्यभीहों तौभी साधुलोगोंको इनका वध करना कर्त्तव्य नहीं है, कारण कि संसारमें निरपराधी कोईभी नहीं पायाजाता ॥ ४३ ॥ लोकोंकी हिंसा करनाही जिन निठुर पापात्माओंका खेल और आनंदहै, उनके विविध उपकार करनें परभी उनके ऊपर अशुभ कार्य नहीं किये जा सकते ॥ ४४ ॥ जब वचन बोलनेंमें चतुर हनुमानजीसे जानकीजीनें ऐसा कहा तब निन्दा रहित श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री सीताजीको हनुमानजी उत्तर देते हुए ॥ ४५ ॥ हे देवि! श्रीरामचंद्रजीकी धर्ममयी भार्याको इस प्रकारकी गुणवालीहोनाही कर्त्तव्यहै सो अब हमको आज्ञा कीजिये कि श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाँय ॥ ४६ ॥ मिथिलाराजकुमारी जानकीजी हनुमानजी करके इस प्रकार पूछी जाकर कहनें लगीं कि " हम शीघ्रही

धर्मवत्सलपतिको देखनेंकी इच्छा करतीहैं ॥ ४७ ॥ महामतिवान पवनकुमार हनुमानजी जनककुमारी श्रीजानकीजीके ऐसे वचन सुन उनको आनंदित करते हुए बोले ॥ ४८ ॥ हे देवि ! इन्द्राणी जिस प्रकार इन्द्रजीका दर्शन करती है, वैसेही आपभी लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंका नाश किये हुए मित्र लोगोंसे विरेहुए पूर्णचंद्रमाकी समान मुखवाले श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करेंगी ॥ ४९ ॥ महातेजस्वी वानरश्रेष्ठ हनुमानजी साक्षात् लक्ष्मीजीकी समान शोभायुक्त जानकीजीसे यह वचन कह श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये ॥ ५० ॥

सपदिहरिवरस्ततोहनूमान्प्रतिवचनंजन
केश्वरात्मजायाः ॥ कथितमकथयद्यथा
क्रमेणत्रिदशवरप्रतिमायराघवाय ॥ ५१ ॥

और उनके निकट आय जानकीजीनें जिस प्रकार कहाथा वही वचन हनुमानजीनें इन्द्रसेभी अधिक श्रीरामचन्द्रजीके निकट वह यथा क्रमसे निवेदन किये ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पंचदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥

तमुवाचमहाप्राज्ञःसोभिवाद्यप्लवंगमः ॥
रामंकमलपत्राक्षंवरंसर्वधनुष्मताम् ॥१॥

महापंडित वानरश्रेष्ठ हनुमानजी धनुष धारियोंमें अग्रणी कमललोचन श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके बोले ॥ १ ॥ जिनके निमित्त यह सब तैयारियें की गई और जो समुद्रमें सेतु बांधनें, और रावण वधादि कार्योंका कथारूपहै; आप शीघ्र उन शोकसे संतापित देवी जानकीजीका दर्शन कीजिये ॥ २ ॥ शोकसे तपाई हुई जानकीजीनें आपकी विजय वार्ता सुन आनंदके आंसू छोड़ते २ आपको देखनेंका अभिलाप किया॥३॥ उन्होंने पहले समयकी पहँचानके वश निश्वासी हृदयसे और व्याकुल नेत्रोंसे हमसे केवल यही कहा कि हम शीघ्रपतिको देखनेंकी इच्छा करती हैं ॥ ४ ॥ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी हनुमानजी करके इस प्रकार कहे जाकर नेत्रोंमें नीर भरकर चिन्ता करनें लगे॥५॥ इसके पीछे भूमिको

निहार लंबे२और गरम २ श्वास लेकर सन्मुख खड़े मेघाकार बिभीषणजीसे बोले ॥ ६ ॥ कि सीताको स्नान कराय दिव्य उबटन लगवाय, दिव्यवस्त्र और गहनोंसे भूषित करकै शीघ्र इस स्थानमें लेआओ; विलम्ब मतकरना ॥ ७ ॥ श्रीमान राक्षसोंके राजा बिभीषणजीनें श्रीरामचंद्रजीकी ऐसी आज्ञा पाय शीघ्र अन्तःपुरमें अपनी स्त्रियोंसे सीताजीके पास समाचार कहला भेजा ॥ ८ ॥ इस पीछे सनाथ बिभीषणजी महाभाग सीताजीके समीप जाय विनीतता सहित शिरसे हाथ जोड़कर कहते हुए ॥ ९ ॥ हे देवि! आपका मंगलहो! आपके स्वामी आपको देखनेंकी अभिलाषा करतेहैं, इसकारण उत्तम रूपसे उबटना लगाय, दिव्य वस्त्रालंकारसे भूषितहो शीघ्र आप विमानपर चढ़ैं ॥ १० ॥ जनककुमारी जानकीजी इस प्रकारसे कही जाकर बिभीषणजीसे बोलीं, हे राक्षसेश्वर! अब हमसे विलम्ब नहीं सही जाती इसलिये विना स्नान कियेही हम स्वामीके देखनेंकी इच्छा करतीहैं ॥ ११ ॥ उनके ऐसे वचन सुन बिभीषणजीनें कहा, स्वामी श्रीरामचंद्रजीनें जो कुछ आज्ञाकी है आपको वही करनी चाहिये ॥ १२ ॥ बिभीषणजीनें जब यह वचन कहे तौ पतिकोही देवतासमझती हुई पतिव्रता सीताजीनें पतिकी भक्तिके वश उत्तर दिया, अच्छा ऐसाहीहो ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त बिभीषणजीनें अपनी दासियोंके द्वारा जानकीजीको स्नान कराय, उबटना लगाय, भांतिर२के गहने और बड़े२ मोलके दिव्य वस्त्र पहरायकर ॥ १४ ॥ आसनोंसे युक्त पालकीपर सवार कराया, उस पालकीमें राक्षस कहार लगे हुएथे ऐसी पालकीको हजारों राक्षसोंसे रक्षितकर बिभीषणजी वहां लाये ॥ १५ ॥ सर्वज्ञ होकरभी ध्यान करते हुए महात्मा श्रीरामचंद्रजीके समीप हर्षित अंतःकरणसे बिभीषणजीनें प्रणामकर सीताजीके आनेके समाचारको निवेदन किया ॥ १६ ॥ परन्तु राक्षसके घरमें बहुत कालतक टिकी हुई सीताजीको आता हुआ सुन शत्रुविनाशी श्रीरामचंद्रजी एकही समयमें रोष हर्ष और दीनतासे युक्त हुए ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त पालकीपर चढ़ी आती हुई सीताजीके विषयमें सोच विचारकर कुछेक हर्षितहो बिभीषणजीसे श्रीरामचंद्रजीनें यह वचन कहे ॥ १८ ॥ हे हमारी विजयको चाहनें वाले सौम्य राक्षसेश्वर! जानकीजीको शीघ्रतासे हमारे निकट ले

आओ ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजीके वचन सुन धर्मात्मा विभीषणजीनें वहांसे सब किसीके हटानेंका उपाय किया ॥ २० ॥ जास और पगड़ी धारी कंचुकी लोग वेंत और छड़ी हाथमें ले सब भीड़को हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ २१ ॥ तब ऋक्ष वानर और राक्षस लोगोंने ताड़ित होकर दूर२को भागना आरंभ किया ॥ २२ ॥ जब वह सब जन इस प्रकारसे हटाये गये तब पवन करके उछल पुछल किये हुए महासमुद्रकी समान बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ २३ ॥ इन सबको बलसे हटाये जानेंके कारण उदास देख दयाके मारे उन सबका अनादर न सहकर श्रीरामचंद्रजीनें रोक दिया ॥ २४ ॥ क्रोधयुक्त हो मानों नेत्रोंसे जलातेहीसे श्रीरामचंद्रजी कुछ निन्दा करते हुए महाप्राज्ञ विभीषणजीसे बोले ॥ २५ ॥ कि तुम किस कारणसे इन सबको क्लेश देकर हमारा अनादर करतेहो? अभी इन लोगोंकी बबड़ाहटको शान्त करो, क्योंकि यह सबही हमारे सगेहैं ॥ २६ ॥ गृह, वस्त्र, प्राकार, अथवा लौकिक परदे स्त्रियोंके नहीं हैं, अपने स्वामीसे सत्कारित होंनाही स्त्रियोंका परदाहै, सो जानकीके पास वही परदाहै ॥ २७ ॥ विशेष करके विपदके समय, पीडाके समय, युद्धके समय, स्वयंवरके समय यज्ञ और विवाहके समय स्त्रियोंका जन समाजके सन्मुख होना दोषयुक्त नहींहै ॥ २८ ॥ जानकीजीभी बड़ीभारी विपद् और क्लेशमें पड़ीहैं, इस कारण ऐसे समय विशेष करके हमारे सन्मुख उनका दर्शन दोषयुक्त नही होगा ॥ २९ ॥ इस कारण सीता पालकीको छोड़कर हमारे निकट आवे और यह समस्त वानरगण उनके दर्शन करैं ॥ ३० ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुन विभीषणजी दुःखित और नम्रभावसे सीताजीको पैदलही लानेंके लिये गये ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी, और हनुमानजी श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर व्यथापाते हुए ॥ ३२ ॥ इस ओर जनककुमारी सीताजी लाजके मारे सिकुड़ती हुई मानों अपनें शरीरमेंही पैठी जाती हुई विभीषणजीके पीछे २ आती हुई श्रीरामचंद्रजीके समीप आई ॥ ३३ ॥ सुन्दरमुखवाली एक पतिकोही देवता समझनें वाली श्रीजानकीजी विस्मय हर्ष और स्नेहके मारे बहुत देरतक अपनें पतिका सुन्दर मुख देखती रहीं ॥ ३४ ॥

अथसमपनुदन्मनःक्लमंसासुचिरमदृष्टमुदीक्ष्यवैप्रियस्य ॥ वदनमुदितपूर्णचंद्रकांतं विमलशशांकनिभाननातदासीत्॥ ३५ ॥

अपने प्यारे प्राणनाथका पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान सरल मुख मंडल बहुत देरतक देखकर जानकीजीके मनका शोक दुःख जाता रहा उस समय उसका वदन मंडल निर्मल चंद्रमाकी समान शोभायमान होने लगा ॥ ३५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे षोड़शाधिक शततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिक शततमः सर्गः ॥

तांतुपार्श्वेस्थितांप्रह्वांरामःसंप्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥ हृदयांतर्गतंभावंव्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

जब जानकीजीको अपनी वगलमें आया हुआ देखकर श्रीरामचंद्रजी अपने मनका भाव प्रकाशित करना प्रारंभ करनें लगे ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले भद्रे! संग्राममें शत्रुका वध करके हमने तुम्हारा उद्धार किया बलसे जो कुछ करना उचितहै यह सब हमने किया ॥ २ ॥ तुम तौ राजा रावण करकै धर्षित हुईथी हम वह अवमानना और शत्रुके मूलको विनाश करकै उस क्रोधको दूसरी वारको प्राप्त हुएहैं ॥ ३ ॥ आज हमारा श्रम सफल हुआ और सब लोकोंनें हमारा पौरुष देखा अधिक करकै प्रतिज्ञासे उत्तीर्णहो हमनें अपनेको कृतार्थ समझा॥ ४ ॥ हमारे आश्रममें न रहनेंपर चंचल चित्तवाले निशाचरनें जो तुमको हरण कियाथा वह दैवका किया हुआथा सो आज हमने मानुष होकर उस दैव कृत दोषको दूर किया ॥ ५ ॥ जो पुरुष अपमानको प्राप्त होकर अपने पौरुषसे उसको दूर न करै उसको बलका क्या प्रयोजनहै; वह यदि बड़ाभीहो तौभी उसको अल्प तेजस्वी कहतेहैं ॥ ६ ॥ हनुमानजीका समुद्रको लांघना और लंका जलाना इत्यादि बड़ाई करनेंके योग्य जो सर्व कार्य उन्होंनें किये आज वह सफल हुए ॥७॥ सैनाके सहित सुग्रीवजीनें जो हितकारी परामर्श दीथी और युद्धमें जो पराक्रम प्रगट कियाथा आज उसका

श्रम सार्थक हुआ ॥ ८ ॥ जो आपसेही वीरश्रेष्ठ भ्राताको छोड़कर हमारे निकट आयेथे आज उन बिभीषणजीकीभी परामर्श सफल हुई ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी यह कह रहेथे तब सीताजी यह सब श्रवण करती हुई मृगीकी समान उत्फुल्ल लोचनवाली हो आंसू छोड़नें लगीं ॥ १० ॥ परन्तु श्रीरामचंद्रजीने प्राणप्यारी जानकीको निकट उपस्थित देख लोकापवादके भयसे उनका हृदय दुवधामें पड़गया ॥ ११ ॥ इस कारण श्रेष्ठसुखयुक्त कमलनयनी काले घुंघरारे केश वाली, मंद २ चाल चलने वाली सीताजीसे समस्त राक्षसों और वानरोंके सामने श्रीरामचंद्रजी बोले ॥१२॥ कि अपमानको दूर करनेके लिये मनुष्यको जोकुछ कर्तव्यहै अभिलाष न रहनेपरभी हमनें रावणका विनाशकरके उस अपमानको दूर करदिया ॥ १३ ॥ तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मुनिवर अगस्त्यजीनें जिसप्रकार दुराधर्ष दक्षिण दिशाको जय कियाथा वैसेही हमनेभी युद्ध करके तुमको रावणसे जीतलिया ॥ १४ ॥ हे-भद्रे! तुम्हारा मंगलहो और तुम निश्चय जानलोकि हमनें सुहृद लोगोंके वीर्य बलसे रणमें जो दारुण परिश्रम कियाहै यह परिश्रम हमनें कुछ तुम्हारे निमित्त नहीं किया ॥ १५ ॥ तुम्हारे हरण होनेका अपवाद दूरकरने और विख्यात रघुवंशियोंका बल वीर्य दिखानेकेलिये ही हम ऐसा कार्य करनेको तैयार हुए ॥ १६ ॥ हेसीते! तुम्हारे चारित्रमें हमको सन्देह पड़गयाहै इस कारण आंख दुःखने वाले रोगीके सामने रक्खेहुए दीपककी समान तुम हमको सहनेको अयोग्य पीड़ाही देरहीहो ॥ १७ ॥ इसलिये भद्रे जनकनंदिनी! यह दशो दिशा खुली पडी हैं इनमेंसे जिस दिशामें तुम्हारा अभिलाष हो उस ओरको तुम चली जाओ तुमसे अब हमारे कोई प्रयोजन नहीं ॥ १८ ॥ कौन श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुआ तेजस्वी पुरुष बहुत समय तक पराये घरमें रही हुई अपनीं भार्याको सुहृद समझकर फिर ग्रहण कर सकताहै ॥ १९ ॥ रावणने तुमको कुदृष्टिसे देखाहै और अंकमें खेंचाहै भला फिर हम तुमको ग्रहण करके किसप्रकारसे अपने सुन्दर और बडे कुलको कलंकित कर सकतेहैं ॥२०॥ जिसलिये तुमको जीत लिया हमारा वह अभिप्राय सिद्ध हो गया इस कारण अब तुमसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं जहां इच्छाहो वहीं चली जाओ ॥ २१ ॥ हे भद्रे सीते! हमनें कर्त्तव्य निश्चयकरकेही तुमसे यह

कहा यदि तुम्हारी इच्छा हो तौ तुम लक्ष्मण भरत या शत्रुघ्नके निकट रहसकतीहो ॥२२॥ अथवा हेसीते! तुम सुग्रीव वा विभीषणको या जहां तुम आत्म समर्पण करसकती हो या जहां तुम स्वच्छन्दता समझो उसी स्थानमें चली जाओ ॥ २३ ॥ तुम रावणके गृहमें बहुत दिनोतक रही हो तिसके ऊपर फिर तुम्हारा रूप असाधारण है हेसीते! तुम्हारा दिव्य रूप देख और ऐसा सुयोग पाय, और ऐसा सुअवसर पाय रावणका तुमको क्षमा करना असंभवहै ॥ २४ ॥

ततःप्रियार्हश्रवणातदप्रियंप्रियादुपश्रुत्य
चिरस्यमानिनी॥ मुमोचबाष्पंरुदतीतदा
भृशंगजेंद्रहस्ताभिहतेववल्लरी ॥ २५ ॥

जिन्होंनें सदाही प्यारे वचन सुने वही माननी जानकीजी प्राणनाथके मुखसे ऐसे कुप्यारे वचन सुनकर श्रेष्ठ हाथीकी शुण्डसे खेंची बेलिकी समान वारंवार कंपायमान होकर नेत्रोंसे जल गिराने लगी ॥ २५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषानुवादे सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

अष्टदशाधिकशततमःसर्गः ॥

एवमुक्तातुवैदेहीपरुषंरोमहर्षणम्॥ राघ
वेणसरोषेणश्रुत्वाप्रव्यथिताभवत्॥ १ ॥

रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें क्रोधयुक्त होकर जब ऐसे रोमहर्षणकारी कठोर वचन कहे तब जानकी अत्यन्त व्यथित हुई ॥ १ ॥ उनने सबोंके सामने स्वामीके ऐसे पहले कभी न सुने हुए वचन सुनकर लज्जितहो बहुतही झुक गई ॥ २ ॥ और अपने अंगोंमें ही प्रवेशकर जाती हुई जानकीजी वच-न रूप बाणोंकी गांसी हृदयमें लगनेसे अति पीड़ितहुई ॥ ३ ॥ तिसके पीछे आंसु ओंसे युक्त अपना मुख पोंछ धीरे २ गदगद वाणीसे श्रीजानकीजी नें अपने स्वामीसे कहा॥४॥ हेवीर प्राकृतपुरुष प्राकृत स्त्रीको जिस प्रकारसे वचन कहताहै सो आपभी वैसेही दारुण व रूखे वचन हमको सुनातेहैं ॥५॥ हे महावीर! आप हमको जिस प्रकारसे अपमानित करते हैं सो हम अपने चरित्रसे शपथ करकै कहती हैं कि हम वैसी नहीं। इसलिये आप

हमारे कहनेंका विश्वास कीजिये ॥ ६ ॥ प्राकृत स्त्रियोंका चरित्र देखकर आप स्त्री जातिके ऊपर शंका करते हैं, परंतु आपने तौ अनेक वार हमारी परीक्षाली है इस कारण इस शंकाको छोड़ दीजिये ॥ ७ ॥ हे प्राणनाथ ! जब रावणनें हमारे शरीरको स्पर्श कियाथा तब हम अपने वशमें नहींथी, सो हमारी इच्छानुसार उसनें हमारा अंग नहीं छुआ; इसमे तो दैवही अपराधी है ॥ ८ ॥ हे नाथ! जो हमारे आधीनहै उस हृदयको तौ कोई नहीं छूसका, वह हृदय तौ वरावर आपमेंही लगा हुआहै, परंतु सब अंग हमारे वशमें नहीं है, फिर रक्षकके न होनेंसे रावणनें इन अंगोंको छुआ इसमें हमारा क्या अपराधहै ? ॥ ९ ॥ बहुत कालतक एक साथ रहनेंसे आपका और हमारा अनुराग एक दूसरेपर बहुत बढ़ गयाथा, परन्तु इतनें दिनोंतक संग रहनेंसेभी जो आप हमारे स्वभावको नहीं जाना हम इस्सेही अनन्त दुःखमें गिरी ॥ १० ॥ हे वीर ! जब आपने वीरश्रेष्ठ हनुमानजीको हमारे देखनेंको भेजाथा तबही हमको क्यों नहीं छोड़दिया ? ॥ ११ ॥ जो हनुमान हमको हमारे छोड़नेंकी वार्ता श्रवण कराते तौ हम उसी समय इनके सन्मुखहो अपने प्राणोंको छोड़ देती ॥ १२ ॥ हे महाराज रामचन्द्रजी जो हम उसी समय प्राण छोड़देती तौ आपको ऐसे जीवनसंशयकर युद्धमें परिश्रम न करना पड़ता और वृथा सुहृद लोगोंकोभी ऐसा कष्ट नहीं पड़ता ॥ १३ ॥ हे राजशार्दूल ! आपनें क्रोधके वशहो प्राकृत मनुष्योंकी समान हमकोभी साधारण स्त्री मनमें समझ लिया ॥ १४ ॥ हम जनकजीके औरससे पैदा हुई हैं कुछ इससे लोग हमको " जानकी मैथिली " इत्यादि नामोंसे नहीं पुकारते; हम उनकी यज्ञ भूमिसे उत्पन्न हुईथीं; इसी कारण अयोनिजा होनेंपरभी वह हमको इन २ नामोंसे पुकारा करते हैं । परंतु हे कृतज्ञ ! आपनें हमारे ऐसे संस्कारित पवित्र चरित्रकोभी हमारे ग्रहण करनेंका हेतु नहीं समझा ॥ १५ ॥ हमारी भक्ति और सच्चरित्रता इत्यादि गुणग्रामोनें आपके निकट आदर नहीं पाया ऐसा समझ पड़ताहै कि आपनें जो हमारा बालकपनमें पाणि ग्रहण कियाथा, इसकोभी आप इसके पीछे अस्वीकार करेंगे ॥ १६ ॥ जनककुमारी सीताजी गदगद वाणीसे ध्यान करती हुई चिन्ता युक्तहो रोती हुई, दीन भाव युक्त लक्ष्मणजीसे बोली ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण ! ऐसी मिथ्या निंदासे

ग्रसितहो अब हम जीना नहीं चाहतीहैं इसलिये ऐसे रोगकी एकही औष-धिरूप चिता तुम बनाओ ॥ १८ ॥ स्वामीनें हमारे गुणोंसे अप्रसन्न होकर जन समूहके बीचमें हमको छोड़ दिया, इसलिये अब हम अग्निमें प्रवेश करके अपने अनुरूप गतिको प्राप्त करेंगी ॥ १९ ॥ जानकीजीके वचन सुन परवीर घाती वीर्यवान् लक्ष्मणजीनें क्रोधमें भरकर श्रीरामचन्द्रजीके मुखकी ओर देखा ॥ २० ॥ और आकार व संकेतोंसे श्रीरामचन्द्रजीके मनका अभिप्राय जान उनके अभिलाषानुसार चिता बनाई ॥ २१ ॥ उस कालमें कोईभी उन कालान्तक यमराजकी समान श्रीरामचंद्रजीको किसी प्रकार विनय करनेंपर अथवा उनके साथ बात करनेंमें या उनकी ओर देखनेंमें कोईभी साहसी नहीं हुआ ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त जान-कीजी नीचेको मुख करके खड़ेहुए श्रीरामचंद्रजीकी प्रदक्षिणाकर प्रज्वलित अग्निके निकटगई ॥ २३ ॥ जानकीजी देवता लोगोंको व ब्राह्मणोंको प्रणाम करके हाथजोड़ अग्निके समीप जाय बोलीं ॥ २४ ॥ जबकि हमारा मन कभी श्रीरामचंद्रजीसे चलायमान नहीं हुआ, तब सब लोकोंके साखी अग्नि सब प्रकारसे हमारी रक्षाकरें ॥ २५ ॥ हमारा चरित्र शुद्ध होनेंपरभी श्रीरामचंद्रजी हमको दुष्टा समझते हैं वैसेही सब लोकके साक्षी अग्नि सब प्रकारसे हमारी रक्षाकरें ॥ २६ ॥ सीताजी यह वचन कहती हुई प्रदीप्त चिताकी प्रदक्षिणा करके निःशंक हृदयसे उसमें पैठीं ॥ २७ ॥ इकट्ठे हुए बालक स्त्री इत्यादि सब भीड़नें देखाकि श्रीजानकीजी प्रदीप्त अग्निमें प्रवेश करगई ॥ २८ ॥ तपाये हुए सुवर्णकी समान उज्ज्वल कान्तिवाली जानकीजी सब लोकोंके सामनें प्रज्वलित पावकमें प्रवेश करतीहुई ॥ २९ ॥ सबनेंही देखपाया कि बड़े २ नेत्रोंवाली जनक कुमारी जानकीजी सुवर्ण वेदिकाकी समान अग्निमें पैठीं ॥ ३० ॥ जब महाभागा सीताजीनें अग्निमें प्रवेश किया तब त्रिभुवनके समस्त देवता गंधर्व लोकोंनें जानाकि मानो यज्ञकुंडमें सम्पूर्ण आहुति दीगई ॥ ३१ ॥ त्रिलोकीकी रहनेंवालीं स्त्रियां सीताजीको परम मंत्रसे संस्कारित व-सुधाराकी समान अग्निमें पैठीहुई देखकर श्रीरामचंद्रजीकी निन्दा करनें लगीं ॥ ३२ ॥ देवता, गन्धर्व, और दानव लोगोंनें शापसे

स्वर्गसे नरकमें गिरतीहुई स्वर्गाधिष्ठात्री देवाकी समान जानकीजीको अग्निमें गिरते हुए देखा ॥ ३३ ॥

तस्यामग्निंविशंत्यांतुहाहेतिविपुलःस्वनः ॥
रक्षसांवानराणांचसंवभूवाद्भुतोपमः ॥३४॥

इस प्रकारसे जब श्रीजानकीजीनें अग्निमें प्रवेश किया तब वानर और राक्षस लोगोंके अद्भुतहाहाकारका बड़ाभारी शब्द उठा ॥ ३४ ॥ इ० श्रीम०वा०आ०यु०भापा०अष्टादशाधिकशततमःसर्गः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥

ततोहिदुर्मनारामःश्रुत्वैववदतांगिरः ॥ दध्यौ
मुहूर्तंधर्मात्मावाष्पव्याकुललोचन ॥ १ ॥

धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी उन सबका ऐसा हाहाकार शब्द श्रवणकरकै उदासहो नेत्रोंमें आंसूभर चिन्ता करनें लगे ॥ १ ॥ उसी समयमें यक्षराज कुवेरजी सब पितृ लोगोंके साथ, धर्मराज यम, सहस्राक्ष (हजार नेत्रवाले) इन्द्रजी जलकेराजा वरुण ॥ २ ॥ भगवान, वृषध्वज, त्रिलोचन महादेवजी, और सर्व लोकोंके रचनें वाले वेदवादियोंमें श्रेष्ठ भगवान ब्रह्माजी ॥ ३ ॥ व औरभी देवता लोग सूर्यकी समान प्रकाशित अपने २ विमानोंपर चढ़ लंकापुरीमें उपस्थितहो श्रीरामचंद्रजीके समीपआये॥ ४ ॥ इन सब देवताओंको देखकर जब श्रीरामचंद्रजी हाथ जोड़कर खड़े होगये तब वह श्रेष्ठ देवता गण अपने २ हाथके गहनोंसे युक्त विशालबाहु उठाकर कहनें लगे ॥५॥ आप सब लोकोंकी सृष्टि करनेंवालेहैं, और सब कुछ जाननें वालोंके आप स्वामीहैं; और विभु होकरभी किस कारण अग्निमें गिरती हुई जानकीजीकी उपेक्षा करतेहैं? आप देवताओंमें श्रेष्ठ होकरभी किस कारणसे अपनेको भूले हुएहैं ॥ ६ ॥ आप पहले कल्पमें वसुलोगोंमेंसे प्रजापति ऋतुधा नाम वसुथे, आप तीनों लोकोंके कर्ता स्वयं प्रभु प्रजापतिहै ॥ ७ ॥ रुद्रोंके बीचमें अष्टमरुद्र महादेव तुमही हो. और साध्यगणोंमें वीर्यवान नामक पंचम साध्यरूप तुमनेंही धारण कियाहै, हे देव जब आपनें विराटरूप धारण कियाथा, तब दोनों अश्विनी कुमार,

आपके श्रवण और चंद्रमा सूर्य आपके नेत्र हुएथे ॥ ८ ॥ हे देव ! आप प्राणियोंके आदि अंत दोनोंमें विराजमान रहतेहैं, इस कारण सब कुछ जानकरभी आज आप प्राकृत मनुष्यकी समान जानकीजीको क्यों त्यागतेहैं ॥ ९ ॥ धार्मिक श्रेष्ठ लोकनाथ श्रीरामचंद्रजी इन सब श्रेष्ठ लोकपालोंके वचन सुनकर कहनें लगे ॥१०॥ कि " हम तो अपनेको महाराज दशरथका पुत्र रामनाम मनुष्य जानतेहैं ? सो हम कौनहैं यह आप प्रकाश करके कहिये " ॥ ११ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें यह कहा तब ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी बोले " हे सत्य पराक्रम ! हम सत्य कहतेहैं आप श्रवण करें ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आपही जलमें शयन करनेंवाले विराटरूपी नारायणहैं । शंख चक्र गदा और पद्मधारी श्रीमान् देवदेव विष्णु, और जन्म मृत्युरूप शत्रुका नाश करनेवाले एकदंत वाराह स्वरूपहैं ॥ १३ ॥ जो सब लोकोंके आदि, अन्त, मध्यमें सब कहीं विराजमान रहतेहैं, आप वही सत्य स्वरूप वही अक्षर ब्रह्म और सब लोकोंके परमधर्म स्वरूप चतुर्भुज विष्वक्सेनहैं ॥ १४ ॥ शृङ्गरूप कालही आपका धनुषहैं, इसलिये शार्ङ्गधन्वा; सब इन्द्रियोंके नियन्ताहो इसीसे हृषीकेश, आपका जन्म नहीं है, और अक्षरसेभी आप उत्तमहैं इसीलिये पुरुषोत्तम; पाप और शत्रुलोग आपको नही जीत सकते, इसीलिये अजित, आप नन्दक नामक खड्ग धारण करतेहैं, इसीसे खड्गधृक्, सर्व व्यापकहैं, इस्से विष्णु; कृष्ण वर्ण होनेके कारण कृष्ण, और इस समस्त ब्रह्माण्डको आप गेंद खिलौनेंकी समान धारण कियेहैं इसीसे आपका बृहद्बल नामहै ॥ १५ ॥ आपही सैनानी, ग्रामणी, सत्य, निश्चयात्मिका बुद्धिवालेहैं, आप भक्तोंका अपराध सह लेतेहैं; इसीसे क्षमा, इन्द्रियोंका निग्रह करनेंवालेहैं, इसीसे दम, सृष्टिके उत्पन्न करनेंवालेहो इससे प्रभव, विनाश न होनेसे अव्यय; उपेन्द्र और मधुसूदन तुम्हारा नामहै ॥ १६ ॥ दिव्य महर्षिगण आपकोही इन्द्रकर्मा, महेन्द्र, रणान्तकृत, शरण और शरण्य नामसे पुकारतेहैं ॥ १७ ॥ आपही सहस्रशाखा समन्वित वेद रूप होनेंके कारण सहस्रशृङ्ग वेदात्मा विधिमयहैं; बहुत शिरवाले हैं इस लिये शतशीर्ष हैं, श्रेष्ठतमहैं इसलिये महर्षभ और त्रिलोकीकी सृष्टिके उत्पन्न करनेंवाले होनेंसे आपका स्वयंप्रभु आदि कर्ता नामहै ॥१८॥

आप सबसे पहले केहैं; सिद्ध साधक लोगोंको आप आश्रय देनेवाले हैं और आप यज्ञ, वषट्कार, ॐकार और परात्पर स्वरूपहैं ॥ १९ ॥ ब्राह्मण गौ इत्यादि अन्तर्यामी आपको जन्म और अन्त कोई नहीं जानता कि आप कौनहैं सर्व प्राणी, ब्राह्मणजाति, ॥ २० ॥ दशोंदिशा, आकाश पर्वत और नदी सबही कहीं आप अन्तर्यामी रूपसे प्रवेश किये हुए हैं, आप हजार शिरवाले, हजार नेत्रवाले हैं ॥ २१ ॥ आपही सब प्राणियोंके सहित और समस्त पर्वतोंके सहित इस पृथ्वीको धारण करते हैं और पृथ्वीके अन्तमें अर्थात् प्रलयके पीछे जलपर आप शेषशय्यापर शयन करते दिखाई देंगे ॥ २२ ॥ हे राम! आपही विराट्मूर्ति होकर देव गन्धर्व, और दानवयुक्त त्रिभुवनको धारण करते हैं । हे राघव! हम आपके हृदय देवी सरस्वती आपकी जीभ ॥ २३ ॥ और हमारे उत्पन्न किये हुए सब देवता लोग आपके शरीरके रोमहैं, तुम्हारा पलक मारना रात्रिहै, और दिन आपका उन्मेष (देखना है) ॥ २४ ॥ सब वेदही आपके संस्कार हैं; जगत् आपके सिवाय और कोई है ही नहीं; सब जगत् आपका शरीरहै; पृथ्वी आपकी स्थिरताहै ॥ २५ ॥ अग्नि आपका कोपहै चन्द्रमा आपकी प्रसन्नताहै; आप श्रीवत्सलक्षण युक्तहैं; आपने पहले अपने तीन चरणसे तीन लोक नाप लियेथे ॥ २६ ॥ आपनेही दारुण स्वभाववाले राजा बलिको बांध इन्द्रजीको देवताओंका राजा कियाथा सीता देवी साक्षात् लक्ष्मीजी है; और आपही यह प्रजापालक स्वयं-प्रकाश कृष्णवर्ण विष्णुजीहैं ॥ २७ ॥ आपने रावणका वध करनेके लियेही यह मनुष्य देह धारण कियाहै; हे धार्मिकश्रेष्ठ ! आपने जिस कारणसे अवतार लिया हमारा वह इच्छित कार्य सिद्ध होगया ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! इस समय रावण मारागयाहै; इस कारण कुछ कालतक हर्षित चित्तसे मनुष्य लोकमें विचरण करते हुए पीछे ब्रह्म लोकको सिधा-रिये, हे देव! आपका वीर्य अमोघहै ? आपका पराक्रम निष्फल नहीं होता ॥ २९ ॥ हे राम! आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता; और आपकी स्तुतिभी कभी निष्फल नहीं होती, और जो लोग भक्तिपूर्वक आपकी आराधना किया करते हैं; उनकोभी अमोघ फल प्राप्त होताहै ३०॥ आप साक्षात् पुराण पुरुष पुरुषोत्तमहैं; इस कारण जो आपका अकपट

चित्तसे ध्यान करतेहैं; वह इस लोक और परलोक दोनों जगहही अभिल-
षित फल पातेहैं ॥ ३१ ॥

इममार्षंस्तवंदिव्यमितिहासंपुरातनम् ॥ येन
राःकीर्तयिष्यंतिनास्तितेषांपराभवः ॥ ३२ ॥

जो पुरुष इस दिव्य, अतिश्रेष्ठ मंत्रोंसे कहे हुए, सगुण और निर्गुण ब्रह्मविद्या प्रकाशक पुराण इतिहास प्रतिपादक स्तोत्रको पढेंगे क्या इस लोकमेंक्या परलोकमें उन लोगोंकी कहींभी पराजय नहीं होगी ॥ ३२ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषा० एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिक शततमः सर्गः ॥

एतच्छ्रुत्वाशुभंवाक्यंपितामहसमीरितम् ॥
अंकेनादायवैदेहीमुत्पपातविभावसुः ॥ १ ॥

पितामह ब्रह्माजीके कहे हुए यह शुभवचन सुनकर, अग्निदेवता सीताजीको गोदीमें लेकर अपनी ज्वालाके भीतरसे निकले ॥ १ ॥ हव्य वाहन (अग्नि) मूर्ति धारे चिताको कंपाते हुए जनककुमारी वैदेही-जीको लेकर शीघ्र निकले ॥ २ ॥ तरुण सूर्यकी समान तपाये हुए सुव-र्णके गहने पहने लालही रेशमीन वस्त्र पहरे, और घुंघरारे वालोंसे युक्त उस समय श्रीजानकीजीथीं ॥ ३ ॥ खिले हुए फूलोंकी निर्मल माला पहनें हुएथीं वह उनका रूप निंदारहितथा, ऐसी जानकीजीको गोदमें लेकर अग्निनें रामचंद्रको दिया* ॥ ४ ॥ इसके पीछे सव लोकोंके साक्षी भगवान् अग्निजीनें श्रीरामचंद्रजीके हाथमें सोंपकर कहा—यह तुम्हारीही जानकीहै इनमें कोई पाप नहीं है ॥ ५ ॥ हे चरित्रका गर्व करनेंवाले ! इन शुभ लक्षणयुक्त अच्छे चरित्रवाली सीताजीनें, वचन, मन, बुद्धि, और नेत्रोंसेभी कभी आपको नहीं उलांघाहै ॥ ६ ॥ निर्जनवनमें जव आप निकट नहींथे तव यह उपाय रहित और विवशथीं; इस कारण वलगर्वित रावण वलपूर्वक इनको हरण करके लेगयाथा ॥ ७ ॥ यह अंतःपुरमें रोकी गईथीं और अपने वंधु वान्धवोंके संवन्धसे अलगथीं, भयंकर आकार

* कूर्मपुराणादि काभी इस विषयमें लेखहै कि जानकी खर दूषणके वध उपरान्त अग्निमें प्रवेश करगईथीं मायाकी सीताका रावणने हरण किया अव वही अग्निदेव लाये ।

वाली राक्षसियें सदा इनका पहरा दिया करतीथीं; इनका चित्त सदा तुम-मेंही लगा रहताथा, तुम्हारे सिवाय इनके चित्तनें और किसीको आश्रय नहीं किया ॥ ८ ॥ इनको अनेक प्रकारका धमकाना और लोभ दिखाया गया परन्तु इन्होंने किसी प्रकारसेभी तौ रावणको कुछ नहीं समझा, कारण कि इनका अन्तरात्मा तौ एकान्त भावसे आपमें लगा हुआ है ॥ ९ ॥ इनका अंतःकरण शुद्धहै; इसकारण यह पापरहितहैं; बस आप इनको ग्रहण करें; और इस विषयमें आप कुछ न कहें सुनें यही हम आपको आज्ञा देतेहैं ॥ १० ॥ अग्नि देवताके यह वचन सुनकर वचन बोलनें वालोंमें चतुर श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न हुए उनके नेत्र हर्षके मारे खिल गये और एक मुहूर्त भरतक चिन्ता करते रहे ॥ ११ ॥ फिर महा तेजस्वी महा विक्रमकारी धृतिमान् धार्मिकश्रेष्ठ दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी देवता ओंमें प्रधान अग्नि देवतासे बोले ॥१२॥ जान-कीजी तीनों लोकोंमें सबसे अधिक पवित्रहैं;इसमें कुछ सन्देह नहीं, परन्तु इन्हौंनें रावणके रनवासमें बहुत दिनों तक वास कियाथा सो जो हम भली भांतिसे परीक्षा न करकेही उनको ग्रहण कर लेते तौ ॥१३॥ "दश-रथका पुत्र राम अत्यन्त कामके वशहै; और संसारी व्यवहारोंको कुछभी नहीं जानताहै" । ऐसा सब लोग हमको जानकीके ग्रहण करनेंपर कहते ॥ १४ ॥ हम प्रथम हीसे जानतेथे कि जानकीजी अपनें मनसे और किसीको कुछभी नहीं समझतीं और हमीमें सदा चित्त लगाये रहकर सदा हमारे चरित्रकी रक्षा करतीहैं, परन्तु उन्होंने सब सभाके सन्मुख जो अग्निमें प्रवेश किया तौ केवल त्रिभुवनके विश्वासके निमित्तही हमनें उस समय इनको त्यागाथा ॥ १५ ॥ जिस प्रकार महा समुद्र वेलाभूमिको अतिक्रम नहीं कर सकता वैसेही रावणभी अपने तेजसे रक्षित हुई इन बड़े २ नेत्र वाली जानकीजीको अतिक्रम नहीं करसका ॥ १६ ॥ हम जानतेहैं कि वह दुष्टात्मा रावण प्रदीप्त अग्निकी शिखाके समान इन प्राप्त होनेके अयोग्य जानकीजीसें धर्षण करनेंका अभिलाषभी नहीं करसका ॥ १७ ॥ सूर्यकी प्रभाके समान जानकीजीभी हमसे अभिन्नहैं,सो यह रावणके अंतःपुरमें वास करके व्याकुलहो किसी औरमें हृदयको लगा-मेंगी यह बात बिलकुल असंभवहै ॥ १८ ॥ जिस प्रकारसे आत्मवान पुरुष

कीर्तिको नहीं छोड़ सकताहै वैसेही हमभी त्रिलोकीमें शुद्ध जनककुमारी सीताजीको त्याग करनेंमें असमर्थ हैं ॥ १९ ॥ आपनें और हितकी कहनें वाले लोकपाल लोगोंनें स्नेह सहित जो हितकारी वचन कहे वह हमको अवश्य कर्तव्यहैं ॥ २० ॥

इत्येवमुक्त्वाविजयीमहाबलःप्रशस्यमानः स्वकृतेनकर्मणा॥ समेत्यरामःप्रिययामहायशाःसुखंसुखार्होऽनुबभूवराघवः॥ २१ ॥

महा बलवान महायशस्वी सुखपानेके योग्य श्रीरामचंद्रजीनें यह वचन कह अपने कर्मसे लोकपाल गणोंसे प्रशंसित हुए, और प्राणप्यारी जानकीजीसे फिर मिलनेंके कारण अत्यन्त प्रसन्नता पाई ॥ २१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषा० विंशोत्तर शततमः सर्गः ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥

एतच्छ्रुत्वाशुभंवाक्यंराघवेणानुभाषितम् ॥ ततःशुभतरंवाक्यंव्याजहारमहेश्वरः ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीके उच्चारण किये हुए ऐसे शुभवचन सुनकर महेश्वर महादेवजी यह शुभ युक्त वचन बोले ॥ १ ॥ हे धार्मिक श्रेष्ठ कमल लोचन! महावीर विशालछातीवाले शत्रुघाती श्रीरामचंद्रजी ! आपने भाग्यके बलसेही ऐसा बड़ा कार्य सिद्ध कियाहै ॥ २ ॥ हे रामचंद्रजी सब लोकोंके सौभाग्यसेही रावणसे उत्पन्न हुआ भयरूप दारुण अंधकार दूर होगया ॥ ३ ॥ हेराम! अब दीन भरत यशस्विनी कौशल्याजी और माता कैकेयी व सुमित्राको दर्शन दिखायकर समझाओ बुझाओ ॥ ४ ॥ हेमहाबलवान् इसके पीछे अयोध्याका राज्य प्राप्त कर इष्ट मित्रोंको आनंदितकर इक्ष्वाकु कुलमें अपना वंश स्थापनकर ॥ ५ ॥ अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानसे ब्राह्मणोंको धन दान करनेंसे उत्तम पदपाय आपका स्वर्गमें आगमन होगा ॥ ६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! जो पिता होनेंके कारण मनुष्य लोकमें तुम्हारे महा गुरुथे; यह देखो वही श्रीमान महाराज दशरथजी विद्यमान खड़े हुएहैं ॥ ७ ॥ यह तुम सरीखे पुत्रके तारनेसे इन्द्र लोकको प्राप्त हुएहैं,

तुम भ्राता लक्ष्मणजीके सहित इनको प्रणाम करो ॥ ८ ॥ महादेवजीके वचन सुनकर रघुनन्दन श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित विमानके शिखरपर बैठे हुए पिता दशरथजीको प्रणाम किया ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित देखा कि पिता दशरथजी निर्मल वस्त्र पहर करकै अपने तेजसे दीप्तिमान होरहेहैं ॥ १० ॥ विमानपर बैठेहुए महाराज दशरथजीभी प्राणसे अधिक प्यारे पुत्रको देखकर आनंदकी शेष सीमाको प्राप्त करलेतेहुए ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त उत्तम आसनपर बैठे उन महावीर राजा दशरथजीनें उनको गोदमें ले दोनों बाहोंसे पकड़ हृदयसे लगालिया ॥ १२ ॥ वत्स रामचंद्र! हम शपथ करकै कहतेहैं; कि तुम्हारे विना हमको स्वर्ग; अथवा श्रेष्ठ देवता लोगोंकी समानता पाना यह कुछभी अधिक सुखका कारण नहीं लगता ॥ १३ ॥ हे वचन बोलनेंवालोंमें श्रेष्ठ! तुम्हारे वनवासके लिये जो दारुण वचन कैकेयीने कहेथे, वह सब अबभी हमारे मनमें जागरहेहैं ॥ १४ ॥ जो हुआ सो हुआ; आज तुमको कुशल देख व लक्ष्मणको हृदयसे लगाय, हम कुहरसे छूटे हुए सूर्यकी समान दुःखसे छूटे ॥ १५ ॥ हे पुत्र! जिस प्रकार अष्टावक्र*जीसे कहोलनामक धर्मात्मा तरगयेथे वैसेही हमभी वैसेही सुपुत्रोंसे तर गयेहैं ॥ १६ ॥ हे सौम्य! तुम साक्षात् पुरुषोत्तम होकरभी देवता लोगोंका कार्य सिद्ध करनेंकी वासनासे रावणका संहार करनेंके लिये हमारे पुत्ररूपहो गूढ़भावसे अवतारथे; यह सब बातें अब हमको जान

* अष्टावक्रके जन्म होनेपर इनके पिता द्रव्यके निमित्त जनकजीके यहां गये उस समय उनकी सभामें एक वंदीवेष किये महापंडित विद्यमानथा यह वरुणका पुत्र छलसे बंदीका वेष कियेथा वरुणजीके यहां यज्ञ होताथा ब्राह्मणोंकी आवश्यकताथी स्वयं कोई जाना स्वीकार नहीं करताथा इसने यह प्रतिज्ञा कर लीथी जो हारेगा वह सागरमें डाला जायगा इस बातको कोई नहीं जान्ताथा जो शास्त्रार्थ करने आते हार कर सागरमें डाले जाते वहांसै वरुणके दूत इनको लेजाते ऐसे यज्ञमें बडे ब्राह्मण पहुंच गये द्वादश वर्षके होनेपर अष्टावक्रजीनें सुनाकि मेरे पिताभी सागरमें डाले गये उसी समय जनककी सभामें जाय बंदी को परास्त कर उसकेभी हाथ पैर बांधकर सागरमें डालनेको कहा तब उसने कहा मुझे मत मारो अभी तुम्हारे पिता सहित सब ब्राह्मण आतेहैं पिता वरुणके यहां यज्ञथा सो आज पूर्ण होगया यह वार्ता होही रहीथी कि सम्पूर्ण ब्राह्मण अष्टावक्रके पितासहित आगये और उन्होंने पुत्रको हृदयसे लगाया और जनकरायसे संमानितहो धनपाय घर आये वरुणपुत्र जलमें अन्तर्धान होगया ॥

पड़ीहैं॥ १७॥ हे शत्रुदमनकारी रामचंद्रजी! कौशल्याकेभी अभिलाष पूर्ण होंगे, कारण कि जब तुम बनसे लौटकर घरको जाओगे तौ वह हर्षित मनसे तुम्हारा वदनसरोज देखेंगी ॥ १८॥ हे राम! तुम अयोध्यापुरीमें जाय राज्यपर जब प्रतिष्ठित होगे तौ उस समय जो तुमको अभिषेकित हुए देखेंगे उनकी मनोकामना पूर्ण होजायँगी॥ १९॥ हे राम! अनुरागी बलवान, पवित्र, धर्मचारी भरतके सहित तुम्हारा समागम देखनेंकी हमारी इच्छाहै॥ २०॥ हे सौम्य! तुमनें हमारी प्रसन्नताके लिये सीता और लक्ष्मणजीके सहित सम्पूर्ण चौदह वर्षतक वनमें वास कियाहै॥२१॥ इस समय तुम्हारा वनवास बीत गयाहै, तुम्हारी वह भारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगई है; रणमें रावणको मारकर तुमनें देवतालोगोंकोभी प्रसन्न किया-है॥ २२॥ इस समय तुम्हारा कार्य सिद्ध होगयाहै। हे शत्रुनाशी! वांछनीय यशभी तुमको मिलगयाहै, इस समय राज्यपर बैठकर सब भ्राताओंके साथ बड़ी आयुको पाओ॥ २३॥ जब राजा दशरथजीनें इस प्रकारसे कहा तब श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर उनसे बोले कि हे धर्मज्ञ! आप कैकेयी और भरतके प्रति प्रसन्न होवें॥ २४॥ हे पितः! आपने कैकेयीको " पुत्रके सहित तुमको त्याग कर दिया " यह जो कहाथा; सपुत्रा कैकेयीको यह घोररूप शाप स्पर्श न करसकै॥ २५॥ तब राजा दशरथजीनें हाथ जोड़कर खडे हुए खड़े श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि "ऐसाही होगा" और लक्ष्मणजीको फिर हृदयसे लगायकर कहा॥२६॥ कि हे धर्मज्ञ! श्रीरामचन्द्रजीके प्रसन्न रहनेंसे तुम बड़ा पुण्य, विपुल यश, उत्तम महिमा, और स्वर्ग प्राप्त कर सकोगे॥ २७॥ हे सुमित्राके आनंद बढ़ानेंवाले! रामचंद्र सदा सब लोगोंका हितकरनेंमें अनुरागी हैं इस कारण तुम इनकीही सेवा करो, बस इससेही तुम्हारा मंगल होगा॥ २८॥ सिद्ध, परमर्षि, व इन्द्रादि देवगण सब इन महात्मा पुरुषोत्तम रामचन्द्र-जीको प्रणामादि करकै पूजा किया करतेहैं॥२९॥ वेदमें जो अव्यक्त अक्षय ब्रह्मका देवता लोगोंका हृदय और गुप्तकर कीर्तन कियाहै शत्रु विनाशी राम वही अक्षर गुप्त हैं॥ ३०॥ हे लक्ष्मण! तुमनें धीरज धरकै सीताजीके हितसजो रामचंद्रजीकी सेवाकी है तिस्से तुमको परम धर्म और विपुल यश

प्राप्त हुआहै॥२१॥महाराज दशरथजी लक्ष्मणजीसे यह वचन कहकर फिर सामने हाथजोड़ कर खडी हुई पुत्रवधू जानकीजीसे धीरे२यह मधुर वचन बोले॥२२॥कि बेटी वैदेही! रामचंद्रजीके ऊपर क्रोध न करना कारण कि इन्होंने तुम्हारे हितका अभिलाष करकैही विशुद्ध के लिये यह कार्य किया है॥२३॥बेटी! तुमने सच्चरित्र प्रमाण करनेंके लिये जो दुष्कर कार्य किया यह और स्त्रियोंके लिये बड़ा कठिनहै तुमने जो कुछ किया तिस्से समस्त नारीजातिकोही यश प्राप्त होगा॥ २४॥ यद्यपि स्वामीकी सेवाके सम्बन्ध में तुम्हैं कुछभी सिखानेकी आवश्यकता नही है तौभी हम अपना कर्तव्य समझकर कहतेहैंकि यही तुम्हारे परम देवता हैं ॥ ३५ ॥ राजा दशरथ जी दोनों पुत्रोंको और पुत्रवधू सीताजीको इस प्रकारकी आज्ञा करके विमान पर सवारहो इन्द्रलोकको चलेगये ॥ ३६ ॥

विमानमास्थायमहानुभावःश्रियाचसंहृष्ट
तनुर्नृपोत्तमः ॥ आमंत्र्यपुत्रौसहसीत
याचजगामदेवप्रवरस्यलोकम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकारसे तेजसे प्रकाशमान महानुभाव राजश्रेष्ठ दशरथजी सीताजी-के सहित दोनो पुत्रोंको शिक्षादे हर्षित मनसे विमानपर चढ इन्द्रलोकको चले गये ॥ ३७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भा० एकविंशाधिक शततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमःसर्गः ॥

प्रतिप्रयातेकाकुत्स्थेमहेंद्रःपाकशासनः ॥
अब्रवीत्परमप्रीतोराघवंप्रांजलिंस्थितम् ॥ १ ॥

जब महाराज दशरथजी स्वर्गको चलेगये तब देवराजजी परमप्रसन्नतासे हाथजोड़ खडे हुए श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १ ॥ हे शत्रुविनाशी श्रीराम चंद्रजी! तुम्हारे साथ हम लोगोंका दर्शन विफल नहीं होना चाहिये, इस कारण हम प्रसन्नतासे कहते हैं कि जो तुम्हारें मनमें कोई अभिलाष हो तौ कहो ॥२॥जब महात्मा इन्द्रजीनें प्रसन्न होकर यह कहा तब श्रीरामचंद्रजी

अत्यन्त प्रसन्न व हर्षित होकर विनीत भावसे यह वचन बोले ॥ ३ ॥ हे वचन बोलनेमें श्रेष्ठ देवराज इन्द्र! जो आप हमसे प्रसन्न हुएहैं तो जो कुछ हम कहतेहैं, हमारे वहीं वाक्य सफलहों ॥ ४ ॥ हे देवराज! जो वानरगण हमारे लिये पराक्रम प्रकाश करके यमपुरको चलेगयेहैं वह समस्तही उठ बैठें ॥ ५ ॥ हे मानद! हमारी यह अभिलाषहै कि जो हमारे लिये पुत्र स्त्रीहीन हुयेहैं वह फिर जीवितहो विचरतेहुए प्रसन्नतापूर्वक फिरें ॥६॥ हे पुरन्दर! जो विक्रमकारी शूर वानरगण हमारी विजयके लिये अपनी मृत्युको कुछ न समझतेहुए अत्यन्त यत्न करके मृतक हुएहैं आप उन सबको जिला दीजिये ॥ ७ ॥ हे देवराज! हम यही वर चाहतेहैं कि जिन वानरोंनें हमारे हितके लिये अपनी मृत्युको कुछभी नहीं समझा; वह सब आपके प्रसादसे हमारे साथ मिलें ॥ ८ ॥ हे मानद! हम इन ऋक्ष, गोपुच्छ और वानरोंको पहलेकी समान निरोग, प्राणसहित, और बल व पौरुष युक्त देखनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ९ ॥ और जिस स्थानमें यह वानर लोग रहैं, वह स्थान अकालमेंभी कंद मूल फल और पुष्पोंसे परिपूर्णरहे, और वहांकी नदियां सब निर्मल जलवाली रहैं ॥ १० ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर इन्द्रजीनें प्रीतिसे पूर्ण वचनोंसे उत्तर दिया॥११॥ हे तात! रघुश्रेष्ठ! तुमनें दुर्लभ वरकी प्रार्थनाकीहै, परन्तु हमारा वचन कभी मिथ्या नहीं होता इस कारण तुमनें जो कुछ मांगा वही होगा ॥१२॥ जो रीछ और गोपुच्छ वानरगण राक्षस कुल करके बाहोंके कटजानेसे या शिरके फट जानेंसे मृतक हुएहैं, वह सबही जीवित हो जांय ॥ १३ ॥ समस्त वानरगण पहलेकी समान बल वीर्य सम्पन्न हो, रोगरहित व घावहीनहो इस प्रकारसे उठबैठें मानों सोतेसे जागेहैं ॥ १४ ॥ यह सब सुहृद्बान्धव जाति सुजन सखाओंके साथ परम प्रीतियुक्तहो फिर तुम्हारे साथ मिलैंगे ॥ १५ ॥ हे महाधनुष धारण करनेंवाले! यह वानर जहां कभीभी वासकरेंगे, उस स्थानके वृक्ष विनाऋतुके आयेभी फल उत्पन्न करेंगे, और उनमें फूल लगैंगे, व नदियोंमें सदाही जल भरा रहा करैगा ॥१६॥ इनको देहोंमें घाव हुएहैं परन्तु इस समय यह घावरहित और पहलेकी समान सावधान होजांयगे, इन्द्रजीके यह वचन कहतेही मृतक हुए

वानरश्रेष्ठ गण सोते हुएकी समान उठने लगे * ॥१७॥ यह देखकर सब वानर लोग यह क्या हुआ! कहकर विस्मित हुए, इसके उपरान्त समस्त उत्तम देवतालोग परम हर्षित होकर कार्य सिद्ध किये श्रीराम लक्ष्मणजीकी बड़ीभारी प्रशंसाकर श्रीरामचंद्रजीको निहार ॥ १८ ॥ परम प्रीतिके सहित स्तुति करतेहुए श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि, हे राजन्! इस समय इस स्थानसे अयोध्याको जाइये और वानरलोगोंकोभी अपने २ स्थानपर पठाइये ॥ १९ ॥ व अनुरागिनी यशस्विनी जानकीजीको समझाइये बुझाइये, और तुम्हारे शोकके मारे मुनियोंके व्रतका आचरण करतेहुए अपने भ्राताभ रतजीसे तुम मिलो ॥ २० ॥ महात्मा शत्रुघ्न और माताओंको जायकर दर्शन दीजिये, और राज्यपर अभिषेकितहो पुरवासी व मंत्रियोंको आनंदित कीजिये ॥ २१ ॥ लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजीसे यह वचन कहकर हर्षित मनसे और सब देवताओंके साथ सूर्यकी समान चमकवाले विमानपर चढ़कर इन्द्रजी चलेगये ॥ २२ ॥ श्रीरामचंद्रजीनेभी भ्राता लक्ष्मणजीके सहित उन सब देवताओंको प्रणाम कर सब सैनाको टिकानेंकी आज्ञा दी ॥ २३ ॥

ततस्तुसालक्ष्मणरामपालितामहाचमूर्हृष्टज
नायशस्विनी ॥ श्रियाज्वलंतीविरराजसर्व
तोनिशाप्रणीतेवहिशीतरश्मिना ॥ २४ ॥

उस कालमें राम लक्ष्मणजीसें पालित वह तेजयुक्त यशस्विनी बड़ीभारी प्रसन्नता युक्त वानरी सैना चंद्रमा युक्त रात्रिकी समान सब ओर कान्तिसे प्रकाशित होती शोभायमानहुई ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० यु० द्वाविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥

तांरात्रिमुषितंरामंसुखोदितमरिंदमम् ॥

---

* जो अमृत वर्षाकर इन्द्रने वानर जिवाये ऐसा अर्थ कियाजाय तौ यदि राक्षसोंके जी उठनेकी शंका प्राप्त हो सो नहीं करनी क्योंकि मरे हुए राक्षसोंको निशाचर दग्ध करके उनकी भस्म सागरमें फेंक देतेथे अथवा उनके शरीरोंको सागरमें डाल देतेथे जिससे यह रावणको विदित होकि राक्षस नहीं मारेगये जैसा पूर्व लिख आये हैं इस कारण राक्षसोंके जीनेकी संभावना नहीं.

अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंजयंपृष्ट्वाविभीषणः ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजी उस रात्रिको सुखसे विताय जब दूसरे दिन प्रातःकालको उठे तब विभीषणजीनें "जयजय" करकै हाथ जोड़ उनसे कहा ॥ १ ॥ स्नान करनेके लिये उत्तम २ अंगराग (उबटन) वस्त्राभूषण और विविध भांतिके दिव्य चंदनकी मालायें ॥ २ ॥ पहरानेमें बड़ी चतुर कमल नयनी स्त्रियें वह सब पदार्थ लिये आपके सामने खड़ी हैं हे राघव! यह आपको स्नान करायकर भूषित करेंगी सो क्या आज्ञा होतीहै ? ॥ ३ ॥ जब विभीषणजीनें ऐसा कहा तौ श्रीरामचंद्रजी विभीषणजीसे बोले कि तुम सुग्रीवादि वानर श्रेष्ठोंके लिये स्नानादिका सत्कार करो ॥ ४ ॥ हे सखा! सत्यनिष्ठ महावीर सुख पानेके योग्य भरत हमारे ही लिये सत्यमें टिके व्याकुल मनसे रहतेहैं ॥ ५ ॥ सो हम जबतक उन धर्मात्मा कैकेयीके पुत्रको नहीं देखतेहैं तबतक स्नान या वस्त्र भूषणादिको हम अच्छा नहीं समझते * ॥ ६ ॥ इस कारण जिससे शीघ्रहीं हम अयोध्या नगरीमें पहुँचे ऐसा उपाय देखो कारणकि जानेका मार्ग अति दुर्गम है॥७॥ जब श्रीरामचंद्रजीने यह कहा तब विभीषणजी बोले कि हे राजकुमार! आपका मंगलहो हम आपको अतिशीघ्र अयोध्यानगरीमें पहुँचा देंगे ॥ ८ ॥ हमारे भ्राता कुबेरजीका पुष्पक नामक जो सूर्यकी समान विमान था, सो रावण बलपूर्वक उसको हरण कर लायाथा ॥ ९ ॥ हे अतुलविक्रम! युद्धमें जीतकर लायाहुआ वह कामगामी दिव्य विमान आपके लिये ही तैयार रक्खा है ॥ १० ॥ वह मेघकी समान विमान इस लंकापुरीमेंही रक्खा हुआहै आप उस विमानपर चढकर सरलतासे अयोध्यापुरीमें पहुंच जांयगे ॥ ११ ॥ हे प्राज्ञ श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी! इस समय जो हमारे ऊपर अनुग्रह करना कर्तव्य समझतेहो, यदि हमारे समस्त गुण आपको याद हों और यदि आप हमको अपना सुहृद समझतेहो॥ १२ ॥ हे महाराज! रामचंद्र! तौ आप लक्ष्मण औ जानकीजीके सहित कुछ थोड़ेसे दिन इस स्थानमें टिक

* दोहा—तोरकोश गृह मोर सब, सत्यवचन सुनतात। दशा भरतकी सुमरि मोहिं, पलक कल्प समजात ॥ १ ॥ तांपसवेष शरीर कृश, जपै निरन्तर मोहि । देखौं वेग सो यत्नकर, सखानिहोरौं तोहि ॥ २ ॥ जो जैहौं बीते अवधि, जियत न पाऊंवीर। दशाभरतकी सुमरि प्रभु, पुनि २ पुलक शरीर ॥ ३ ॥

हमारी पूजा ग्रहणकर अयोध्याको जांय ॥ १३ ॥ हे महाराज! हम प्रीति सहित आपकी पूजा करेंगे, आप अपनी सैना व सुहृद लोगोंके साथ प्रीतिसे की हुई हमारी इस सत्क्रियाका ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥ हे रघुनंदन! हम आपको आज्ञा नहीं देते, प्रीति, मान, और सुहृदताके वश सेवककी समान आपकी प्रसन्नता पानेंकी अभिलाषा करतेहैं ॥ १५ ॥ विभीषणजीनें जब इस प्रकारसें कहा तब श्रीरामचंद्रजी समस्त वानर राक्षसोंके सन्मुख बोले ॥ १६ ॥ हे वीर! सब प्रकारसे चेष्टा करकै यत्न सहित मंत्रोपन और सुहृदताहीसे तुम करकै हम भली भांति पूजेगये हैं ॥ १७ ॥ हे राक्षस नाथ! भ्राता भरतके देखनेको हमारा मन अत्यन्त चाह रहाहै, इसीकारण हम तुम्हारा कहा नहींकरसकते ॥ १८ ॥ भरतजी हमको लौटानेंके लिये चित्रकूटतक आये, और हमारे चरणोंपर गिरकर उन्होंने प्रार्थनाभी की परन्तु हमने उनकी प्रार्थनाके अनुसार कार्य नहीं किया इसलिये हमारा मन अत्यन्त व्याकुल होरहाहै ॥१९ ॥ अब यशस्विनी कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, व मित्र गुहको और सब पुर वासियोंके सहित जनपदोंको हम बहुत शीघ्र देखाचाहतेहैं ॥ २० ॥ इस कारणसे हे सौम्य विभीषण! हमको विदा दो! हे विभीषण! हम तुम्हारी सुहृदतासेही पूजे जायचुके; हे सखे! हमनें तुम्हारी प्रार्थना न मानी इस्से कुछ दुःखित न होना ॥ २१ ॥ विशेष करकै हमारा कार्य सिद्ध होगयाहै; फिर भला इस स्थानमें और अधिक दिनतक रहना किस प्रकारसे संभव होसकताहै? तुम शीघ्रही उस विमानको यहांपर ले आओ ॥ २२ ॥ रामचंद्रजीके यह वचन सुनकर राक्षसराज विभीषणजीनें अतिशीघ्रतासे सूर्यकी समान वह विमान मँगवाया ॥ २३ ॥ सब अंगोंमें कंचनसे चित्रित वैदूर्यमणियोंसे जड़ा हुआ, वेदीयुक्त भांति२के शाला गृहोंसे रक्षित सब जगह चांदीकी कांतिवाला ॥ २४ ॥ श्वेत वर्णकी ध्वजा पताकाओंसे अलंकृत, कनककमल विभूषित कंचनकी अटाअटारियोंसे युक्त ॥ २५ ॥ किंकिणीजालसे शोभित मणिमुक्तामय झरोंखोंके सहित, और स्थान २ पर उसमें मधुर मधुर शब्द करनेंवाले घंटे लगरहेथे ॥२६॥ मेरु पर्वतके शिखरकी समान आकारवाला विश्वकर्माका बनायाहुआ चांदी और मोतसि बने अनेक धवरहरोंसे समन्वित ॥ २७ ॥ जिसका

नीचेका सब फरश स्फटिक मणिका बनाथा, और वैदूर्यमणिसेभी बड़े२ मोलके बिछौने बिछे हुएथे, स्थान२पर धन भराहुआथा ॥ २८ ॥ इस प्रकारका मनके वेगकी समान चलनेंवाला और धर्षण न होनेंवाला विमान जब आया तब राक्षसराज विभीषणजी श्रीरामचंद्रजीको यह विमान निवेदन करकै खड़े होगये ॥ २९ ॥

तत्पुष्पकंकामगमंविमानमुपस्थितंभूध रसन्निकाशम् ॥ दृष्ट्वातदाविस्मयमाज गामरामःससौमित्रिरुदारसत्त्वः ॥३० ॥

कामनाके अनुसार चलनेवाले पर्वतकी समान पुष्पक नाम विमानको देखकर उदार चित्तवाले श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० यु० भाषा० त्रयोविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमःसर्गः ॥

उपस्थितंतुतंकृत्वापुष्पकंपुष्पभूषितम् ॥ अविदूरेस्थितोराममित्युवाचबिभीषणः॥ १ ॥

पुष्पोंसे सजेहुए पुष्पक विमानको बहुतही निकट खड़ाकर और धोरेही खड़ेहो श्रीरामचंद्रजीसे बिभीषणजी बोले ॥ १ ॥ हाथ जोड़कर विनीतभावसे राक्षसोंके राजा विभीषणजी बड़ी शीघ्रतासे बोले कि हे रघुनंदन ! अब हम क्या करें ? ॥ २ ॥ महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी यह वचन सुनकर लक्ष्मणजीके साथ परामर्शकर स्नेहसहित बिभीषणजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि हे बिभीषण ! इन वानर और रीछ लोगोंनें अतियत्नसहित कार्य कियाहै, इस कारण अनेक प्रकारके रत्न, धन, और वस्त्रादि देकर उनको सन्तुष्ट करो ॥ ४ ॥ हे राक्षसनाथ ! इन सबनें प्राणोंका भय छोड़ हर्षित अंतःकरणसे युद्ध कियाथा, संग्राममसे इन सबोंने कभी मुख नहीं मोड़ा हमनें इन्हीं सबकी सहायतासे इस लंकापुरीको जीता कि जिसको पहले किसीनें नहीं जीताथा ॥ ५ ॥ इस कारण तुम इन कार्य सिद्ध किये समस्त वानर और रीछोंको धन रत्न

दान करके इनका परिश्रम सफल करो ॥ ६ ॥ तुम कृतज्ञताके सहित इनका इस प्रकार यथाविधिसे सन्मान करोगे तो यह वानरयूथपतिगण आनंदित और कृतज्ञ हो जाँयगे ॥ ७ ॥ तुमको दान करनेमें रत, और न्यायानुसार यथा समयमें करग्राहक, कृपापरवश व कृतज्ञ जानकर सबही तुम्हारे ऊपर अनुराग करेंगे इस कारणही हम तुमसे ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥ हे राक्षसराज ! कामनियें जिस प्रकार रतिशक्तिहीन पतिको त्याग देती हैं, वैसेही सैना दानमानादिसे सैनाको न प्रसन्न करनें वाले और समरमें वृथा सिपाहियोंका नाश करानेंवाले राजाको उदास हो त्याग देतीहै ॥ ९॥ श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर बिभीषण जीनें विभागके अनुसार रत्न व धनादि दान करके सब वानरोंका सन्मान किया ॥ १० ॥ धन और रत्नसे वानर और यूथपति लोगोंको पूजित देखकर वहां श्रीरामचन्द्रजी उस श्रेष्ठ विमानपर चढे ॥ ११ ॥ गोदमें, चिन्ता शील व लज्जितहुई जानकीजीको बैठाय भ्राता लक्ष्मणजीके सहित धनुषधारी विक्रमकारी श्रीरामचन्द्रजी चढ़े ॥ १२ ॥ जब विमान पर महावीर रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी बैठगये तब महावीर्ययुक्त बिभीषण और सुग्रीव प्रमुख वानरोंसे श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ १३ ॥ हे वानरश्रेष्ठ गण ! मित्रको जो कुछ करना चाहिये यह सबही तुमने किया, अब हमारी आज्ञासे इच्छानुसार तुम लोग अपने २ स्थानको जाओ ॥ १४ ॥ हे सुग्रीव ! हितैषी सखाको जो कुछ करना उचित है, तुमनें धर्मके डरसे व स्नेहके वशहो वह समस्त पूरा किया ॥ १५ ॥ अब तुम अपनी सब सैनाके साथ किष्किन्धापुरीको जाओ हे बिभीषणजी ! तुम उसी हमारे दिये हुए अपने राज्यको भोगते रहो, और सब प्रजाको नीति मार्गमें चलाते रहो, हमारे प्रभावसे तुमको इन्द्रादि देवता लोगभी धर्षित नहीं कर सकेंगे ॥ १६ ॥ हमभी आप सब जनोंको आमंत्रणकर और आप सब जनोंकी आज्ञासे अपनें पिताकी राजधानी अयोध्यापुरीमें जानेंका अभिलाष करते हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे कहा, तब महाबलवान् वानर लोगोंने और राक्षसराज बिभीषणजीनें हाथ जोड़कर निवेदन किया ॥ १८ ॥ हम सबभी अयोध्यानगरीमें चलकर हर्ष सहित वहांके वन उपवनोंमें विचरण करनेंकी इच्छा करते हैं; इस कारण

आप हम सब लोगोंको अपने संगले चलें ॥ १९ ॥ हे राजश्रेष्ठ ! हम आपका राजतिलक देखकर और कौशल्याजीको प्रणाम कर हम सब बहुतही शीघ्र अपने २ स्थानोंको लौट आमेंगे ॥ २० ॥ विभीषण और वानरों करकै इस प्रकार कहे जाकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी राक्षसराज व सुग्रीव प्रमुख वानरोंसें बोले ॥ २१ ॥ हम यदि तुम सरीखे सुहृद लोगोंके साथ अयोध्या नगरीमें जायकर आनंद पायसकैंगे तौ दूनी प्रसन्नताकी बातहै ॥ २२ ॥ इस कारणसे सुग्रीव ! शीघ्रवानर गणोंके सहित विमान पर चढ़आओ सखे राक्षसेन्द्र विभीषणजी ! तुमभी मंत्री और सुहृद लोगोंके साथ विमानपर आओ ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा पायकर वानरोंके साथ सुग्रीवजी और मंत्रियोंके सहित विभीषणजी आनंदयुक्त हो उस दिव्य पुष्पकं विमानपर चढे ॥२४॥ इस प्रकारसे जब सब कोई चढ चुके तब कुबेरजीका वह दिव्य विमान श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा पाय आकाशको उठा ॥ २५ ॥ उसकाल उस तेजसे प्रदीप्त हंसयुक्त विमानमें सवारहो आकाशमें जायकर श्रीरामचंद्रजी ऐसे रोमहर्षित और हर्षितचित्त हुए कि वह कुबेरकी समान शोभायमान होने लगे ॥ २६ ॥

तेसर्वेवानरर्क्षाश्चराक्षसाश्चमहाबलाः ॥
यथासुखमसंबाधंदिव्येतस्मिन्नुपाविशन् ॥ २७ ॥

इस प्रकार वह महाबलवान् रीछ और राक्षसगण उस दिव्य विमान पर सुख सहित विनाक्लेशके बैठे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० यु० भा० चतुर्विंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२४ ॥

पंचविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥

अनुज्ञातंतुरामेणतद्विमानमनुत्तमम् ॥
हंसयुक्तंमहानादमुत्पपातविहायसम् ॥ १ ॥

इसप्रकारसे हंसयुक्त वह दिव्य विमान श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा पायकर महाशब्द करताहुआ आकाशको उठा ॥ १ ॥ तब रघुनंदनजी चारों ओरको निहारकर चन्द्रमुखी जानकीजीसे बोले ॥ २ ॥ वैदेही ! कैलासप-

र्वतके शिखरकी समान त्रिकूट शिखरपर स्थापित हुई लंकापुरीकी ओर देखो, विश्वकर्मानें इस पुरीको बनायाथा ॥ ३ ॥ हे सीते ! वानर और राक्षसोंका जिसमें बड़ाभारी वध हुआ है ऐसी रणभूमिको तुम देखो, यह मांस और रुधिरको कीचड़से पूर्ण होरहीहै ॥ ४ ॥ हे विशालनेत्रोंवाली! यह देखो वरदान पानेसे गर्वित, लोगोंका मर्दन करनेवाला राक्षसोंका राजा रावण तुम्हारे निमित्तही हमसे निहत हो रणभूमिमें शयनकर रहा है ॥ ५ ॥ यह देखो! इस स्थानमें निशाचर श्रेष्ठ कुम्भकर्ण, इस स्थानमें राक्षस सैनापति प्रहस्त और इस स्थानपर वानरश्रेष्ठ हनुमानसे धूम्राक्ष मारा गया है ॥ ६ ॥ इस स्थानमें महात्मा सुषेणनें विद्युन्मालीको नाश कियाहै, और इस स्थानमें लक्ष्मणजीसे रावणका पुत्र इन्द्रजित मारा गयाहै ॥ ७ ॥ अंगदनें इस स्थानमें विकटनामक राक्षसका वध कियाथा दुष्प्रेक्ष, विरूपाक्ष, महापार्श्व, महोदर, ॥ ८ ॥ अकंपनभी मारागया व औरभी बहुत सारे बली राक्षस मरे। जैसे कि त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, ॥ ९ ॥ राक्षसश्रेष्ठ युद्धोन्मत्त मत्त कुंभकर्णके पुत्र बलशाली कुंभ और निकुम्भ ॥ १० ॥ वज्रदंष्ट्र दंष्ट्र अनेक राक्षस मारे गये और दुर्द्धर्ष मकराक्षभी हमसे मारागया ॥ ११ ॥ अकंपनभी मारा गया, वीर्यवान शोणिताक्ष, यूपाक्ष और प्रजंघभी इस स्थानमें बड़ाभारी, संग्राम करके मारे गये॥१२॥भयंकर दर्शन निशाचर विद्युज्जिह्व, यज्ञशत्रु व महाबलवान सुप्तघ्नभी मारा गया ॥ १३ ॥ सूर्य शत्रुकाभी वध हुआ, उसके पीछे ब्रह्मशत्रु मारा गया, हे सीते ! इसी स्थानमें रावणकी भार्या मन्दोदरीनें रावणके लिये विलाप कियाथा ॥ १४ ॥ जब मन्दोदरीनें विलाप कियाथा तौ उस समय उसके साथ हजारों सौतैंभी थीं। हे श्रेष्ठ मुखवाली!यह समुद्रका तीर्थ स्थान दिखाई देता है ॥ १५ ॥ समुद्रको उतरकर हम उसी स्थानमें बसेथे यह सेतु हमनेही लवणसागरमें बांधा॥१६॥ हे विशालाक्षि! तुम्हारे लियेही यह बड़ा दुष्कर कर्म नलनें किया, जो पुल बांधा. हे वैदेहि ! अचल वरुणालय समुद्रको देखो ॥ १७ ॥ अपार गर्जन करता हुआ, शंख, शुक्तियुक्त यह सागरहै। हे जानकि ! हिरण्यनाभ पर्वतोंका राजा सुवर्णमय इस मैनाक पर्वतको देखो ॥१८॥ यह हनुमानजीको विश्राम देनेके लिये समुद्रसे अपनें आप उठाथा। यह

समुद्रका कच्छहै यहींपर सैनाकी छावनी पड़ीथी ॥ १९ ॥ और इसी स्थानमें सेतु बांधनेंके लिये विभु महादेव हमारे ऊपर प्रसन्न हुएथे । यह देखो समुद्रके इस स्थानमें हमनें सेतु बांधना आरंभ करकै उसकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये महाराज शिवजीको स्थापन कियाथा * ॥ २० ॥ हे देवी! आगेको यह स्थान "सेतुबन्ध" नामक त्रैलोक्य पूजित तीर्थ विख्यात होगा, यह स्थान परम पवित्रहै और इसके प्रभावसे लोग महा पातकसेभी छूट सकैंगे ॥ २१ ॥ राक्षसराज विभीषण इसी स्थानमें आयकर हमसे मिलेथे, हे सीते! यह विचित्रवनयुक्त किष्किन्धापुरी दिखाई देतीहै ॥ २२ ॥ सुग्रीवजीकी यही रमणीक पुरीहै, यहीं हमनें वालिको माराथा वालिपालित किष्किन्धापुरीको देखकर सीताजी ॥ २३ ॥ प्रीतियुक्त व आदरसहित वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं कि हे रघुश्रेष्ठ! हे आर्य पुत्र! तारा इत्यादि सुग्रीवकी प्यारी स्त्रियें ॥ २४ ॥ व और दूसरे वानर श्रेष्ठोंकी सब स्त्रियोंके साथ हम तुम्हारे सहित अयोध्याकी राजधानीमें जानेंकी इच्छा करतीहैं ॥ २५ ॥ यह बात सुनकर श्रीरामचंद्रजीनें सीताजीसे कहा कि ऐसाही होगा । यह कह उन्होंनें किष्किन्धापुरीमें पहुंच विमानको ठहराया ॥ २६ ॥ और विमानको ठहराहुआ देखकर सुग्रीवजीसे कहा कि हे वानरराज! तुम समस्त वानरश्रेष्ठोंसे कहो कि वह सब अपनी २ स्त्रियोंके साथ अयोध्याजीको चलें ॥ २७ ॥ क्योंकि सीताजी इन सब वानरोंकी स्त्रियोंके साथ अयोध्याजीको चलेंगी और हे महाबलवान् तुमभी अपनी सब स्त्रियोंको शीघ्रही ले आओ ॥ २८ ॥ हे वानरराज सुग्रीव! शीघ्रता करो हमको अभी जानाहै अमित तेजस्वी श्रीरामचंद्रजीनें जब सुग्रीवजीसे इस प्रकार कहा ॥ २९ ॥ तो वानरोंके राजा श्रीमान् सुग्रीवजी सब वानरोंको साथ लेकर शीघ्रतासे अपनें जनानेमें प्रवेश करते हुए और वहां ताराको देखकर बोले ॥ ३० ॥ हे प्रिये! सीताजीकी प्रियकामनासे श्रीरामचंद्रजीनें आज्ञा

---

* सेतु बांधनेसे प्रथम रघुनाथजीने सेतुकी सिद्धि और रावणसे जय प्राप्त करनेके निमित्त शिवलिंगका स्थापन कियाथा जो कि पवित्र और दर्शन करनेसे समस्त पापका नाशकहै कविने जयन्तकी कथाकी समान अंतमें इस तीर्थका उल्लेख कियाहै कूर्मपुराणादिमें स्पष्ट शिव लिंग स्थापनकी कथा विद्यमानहै ॥

दीहै कि तुम सब प्रधान २ वानरोंकी स्त्रियोंको लेकर ॥ ३१ ॥ शीघ्र आ-ओ; हम वानरोंकी स्त्रियोंको अयोध्यापुरी, और महाराज दशरथजीकी रानियोंको दिखावेंगे ॥ ३२ ॥ सुग्रीवजीके वचन सुनकर सब अंगोंसे शोभायमान तारानें वानरश्रेष्ठोंकी समस्त स्त्रियोंको बुलाकर कहा ३३ ॥ सुग्रीवजीकी आज्ञासे तुम सब अयोध्यापुरीके देखनेको चलोगी तौ हमारा बड़ा प्यारा कार्य करोगी ॥ ३४ ॥ कारण कि अयोध्या पुरीके देखनेका हमको बड़ाभारी अभिलाषहै, चलो हम सब पुरवासियों व जनपदवासियोंके साथ रामचंद्रजीकी पुरीमें प्रवेश करैं, और महाराज दशरथजीकी स्त्रियोंकी विभूति देखें ॥ ३५ ॥ ताराकी इस प्रकारसें आज्ञा-पाय वानरोंकी स्त्रियें विधिपूर्वक आभूषणादि पहर शृंगार कर उस विमानकी प्रदक्षिणा करके ॥३६॥ सीताजीके देखनेंकी वासनासे शीघ्रही उस विमानपर चढ़ीं तब तारा आदि स्त्रियोंको लेकर उस विमानको शीघ्रतासे आकाशमें उठाहुआ देख रामचन्द्रजी ॥३७॥ ऋष्यमूकके समीप पहुंचकर फिर जानकीजीसे बोले कि हे जानकि! यह बड़ाभारी बिजलीकी श्रेणीसे युक्त बादलकी समान ॥ ३८ ॥ पर्वतश्रेष्ठ कांचनादि धातुओंसे युक्त ऋष्यमूक पर्वतहै, इसी पर्वतपर वानरराज सुग्रीवजीसे हमारा मिलाप हुआथा ॥ ३९ ॥ और यहींपर हमनें वालिका संहार करनेंकी प्रतिज्ञा कीथी, यह चित्रकानन शोभित पंपासरसी दिखाई देताहै ॥४०॥ हे प्रिये! तुम्हारे विरह दुःखसे कातरहो हमनें यहां बहुतही विलाप कियाथा इसी पंपाके तीरपर हमनें धर्मचारिणी शबरीको देखा ॥ ४१ ॥ इसी स्थानपर हमने चारकोशकी लंबी बांहवाले कबंधको माराथा, हेसीते! यह वही उस जनस्थानकी शोभायमान वनस्पती दिखाई देतीहै ॥ ४२॥ हेविलासिनी! तुम्हारेही लिये महातेजस्वी पक्षियोंमें श्रेष्ठ बलवान जटायुभी इसी स्थानमें रावणके हाथसे मारागया ॥ ४३ ॥ हे श्रेष्ठमुखवाली! यह हमारा वही आश्रमपदहै, हे शुभदर्शने वह पर्णकुटी अबभी पहलेहीकी समान सुन्दर दिखाई देती है ॥ ४४ ॥ राक्षसराज रावण इसी पर्णशालासे बलपूर्वक तुमको हरण करके लेगयाथा यह वही निर्मल जलवाली रमणीक गोदावरी दिखाई देतीहै ॥ ४५ ॥ कदलीवनसे युक्त यह अगस्त्यजीका आश्रम दिखाई देताहै। वैदेही! यह देखो महर्षि

शरभंगका बड़ाभारी आश्रमहै ॥ ४६ ॥ देवराज इन्द्रजी इसी स्थानमें आयेथे हेदेवि ! हे तनुमध्यमे! यह वही सब तपस्वी दिखाईदेतेहैं ॥ ४७ ॥ सूर्यकी अग्निके समान कुलपति अत्रिजी इसी स्थानमें वास करतेहैं इसी देशमें हमनें बड़े शरीरवाले विराधको मार डालाथा ॥ ४८ ॥ हेसीते! इसी स्थानमें तुमनें उन धर्मचारिणी तपस्विनी अनसूयाजीको देखाथा, हेसुतनु ! यह देखो पर्वतराज चित्रकूट दिखाई देताहै ॥ ४९ ॥ इसी स्थानमें कैकेयीके पुत्र भरत हमको प्रसन्न करनेंके लिये आयेथे यह देखो दूरसे विचित्र कानन युक्त यमुना नदी दिखाई देती है ॥ ५० ॥ हे मैथिली ! महर्षि भरद्वाजजीका शोभायमान आश्रमभी दिखाईदेताहै। हे सीते ! यह देखो पुण्यमयी त्रिपथगामिनी गंगाभी दृष्टि आती हैं ॥ ५१ ॥ यह वही शृङ्गवेरपुर है कि जहां हमारा सखा गुह रहताहै । हे सीते ! वह हमारे पिताकी राजधानी अयोध्यापुरीभी दिखाई देतीहै, जानकि ! फिर लौटकर आईहो इस समय अयोध्याजीको प्रणाम करो ॥ ५२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर समस्त वानर और राक्षसगण व बिभीषणजी वारंवार हर्षित चित्तसे उचकरकर अयोध्याजीको देखनें लगे ॥ ५३ ॥

ततस्तुतांपांडुरहर्म्यमालिनींविशालकक्ष्यां
गजवाजिभिर्वृताम् ॥ पुरीमपश्यन्प्लवगाः
सराक्षसाःपुरींमहेंद्रस्ययथामरावतीम् ॥ ५४ ॥

इस प्रकारसे वह वानरगण पुरी अमरावतीकी समान उस श्वेतवर्ण की अटा अटारियोंसे अलंकृत तुरंग व हाथियोंसे समाकुल, और बड़े २ राजमार्गोंसे शोभायमान उस अयोध्यानगरीको देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त करते हुए ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे पंचविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

षड्शत्यधिकशततमः सर्गः ॥

पूर्णेचतुर्दशेवर्षेपंचम्यांलक्ष्मणाग्रजः ॥
भरद्वाजाश्रमंप्राप्यववंदेनियतोमुनिम् ॥ १ ॥

इस प्रकारसे पूर्ण चतुर्दश वर्षके पीछे पंचमी तिथिको श्रीरामचंद्रजी भरद्वाजजीके आश्रममें पहुंचे और मुनिजीके निकट जायकर प्रणाम

करते हुए ॥ १ ॥ रघुनंदन, भरद्वाजजीसे प्रणाम करकै बोलेकि हे भग-वन्! अयोध्या नगरीमें सब कोई कुशल तौ हैं? दुर्भिक्षादिके मारे वहां किसीको कुछ क्लेश तौ नहीं हुआ? ॥ २ ॥ भरतजी धर्मके अनुसार प्रजापालन तौ करतेहैं? हमारी मातायें कुशलसे तौ हैं! श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर महामुनि भरद्वाजजी महा आनंदित हो कुछ मुसकुरायकर कहनें लगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे घरपर सबही कुशल पूर्वकहैं, भरतजी जटा वल्कल धारण करकै तुम्हारी आज्ञानुसार उन दोनों खड़ाउँओंको आगे धरे आपके आनेंकी राह परख रहेहैं ॥ ४ ॥ हे वीर रामचंद्रजी! चीर वस्त्र धारणकर अपनी स्त्री व लक्ष्मणजीको संग लिये केवल धर्मकीही कामनासे राज्य छोडे हुए ॥ ५ ॥ पिताके वचन पालनार्थ सब धन छोड़ सब भोग विलासके पदार्थोंसे मुख मोड़ स्वर्गसे गिरे हुए देवताकी समान प्रकाशमान ॥ ६ ॥ कैकेयीके वचन मान, वचनको बन्धन मूल फलादि भोजन करते कराते; पांवपयादे तुमको वन जाते हुए देख हमको बड़ी करुणा हुईथी ॥ ७ ॥ अब तुम शत्रुओंको जीतकर समृद्धि प्राप्तकर बन्धु, बान्धवोंके सहित यहां लौटकर आयेहो, यह देखकर हमने अनुपम प्रस-न्नता प्राप्तकी ॥ ८ ॥ हे राघव! तुमनें जनस्थानमें वास करकै जो विपुल सुख दुःख भोग कियाहै, वह समस्तही हम जानतेहैं ॥ ९ ॥ तुम ब्राह्मण धर्ममें नियुक्त रहकर समस्त तपस्वियोंकी रक्षा करतेथे, उससमय राव-णनें तुम्हारी निन्दारहित भार्याको हरण कियाथा यह समाचारभी हमको ज्ञातहै ॥ १० ॥ फिर मारीचका आना तुम्हारा उसके पीछे २ जाना, जानकीका हरण, कबन्धका दर्शन, पंपाके समीप आपका आगमन ॥ ११ ॥ सुग्रीवसे तुम्हारी मित्रता व प्यार, तुम करकै, वालिका संहार, पवन कुमार हनुमानजीका सीताजीको समाचार लेनेको जाना ॥ १२ ॥ सीता-जीकी सुधि पानेंपर नलका सेतु बांधना, फिर वानरयूथपोंका हर्षितहो लंकाको जलाना ॥ १३ ॥ पुत्र, बांधव, मंत्री सैना, और वाहनके सहित युद्धमें बलगर्वित रावणका मारा जाना ॥ १४ ॥ देवताओंके कंटक राव-णके मारे जानेंपर देवताओंका आना, और उनका वर देना ॥ १५ ॥ हे धर्मवत्सल! तपके बलसे हम यह सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों जानते हैं, और समाचार लेनेके लिये हमारे शिष्य लोगभी आश्रमसे सदा अयो-

ध्याको जातेआतेरहतेहैं ॥ १६ ॥ हे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ ! देवतानें तुमको जो जो वरदान दियेहैं हमभी तुमको वही सब वरदान देतेहैं, तुम आज इस स्थानमें टिक हमारी पहुनाई ग्रहण करके कल अयोध्याजीको चलेजाना ॥ १७ ॥ राजकुमार श्रीमान् रामचंद्रजी भरद्वाजजीके वह वचन शिर माथे चढ़ाय और अंगीकार करके हर्षितमनसे यह वर मांगतेहुए ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन्! वृक्ष अकालमें फलें और उनमेंसे मधु टपके और उनके समस्त फल अमृतकी समान सुगन्धिवाले होजांय और सब मार्ग धनसे पूर्ण होंजाय ॥ १९ ॥ जिस्से अयोध्याजीको जाते हुये मार्गमें यह आपकी महिमा दिखाई दे, जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारका वर मांगा, तब ऋषि श्रेष्ठके " तथास्तु" कहतेही वहांके समस्त वृक्ष स्वर्गीय कलपवृक्षकी समान हुए जिन सब वृक्षोंमें फल फूल नथे वह सब फल फूल युक्त हुए॥२०॥२१॥और जो सूख-गयेथे उनमें पत्ते लगगये और समस्त वृक्षोंसे मधु टपकनें लगा, अयोध्याके जानेके मार्गमें बारह २ कोसतकके समस्त वृक्ष इस भांतिके होगये ॥ २२ ॥

ततःप्रहृष्टाःप्लवगर्षभास्तेबहूनिदिव्यानि
फलानिचैव ॥ कामादुदाश्नंतिसहस्रश
स्तेमुदान्विताःस्वर्गजितोमुदेव ॥ २३ ॥

तब वह हजार २ वानरश्रेष्ठगण हर्षित अंतःकरणसे अनेक भांतिके दिव्य फल भक्षण करते मानो स्वर्ग विजय करनेंवालोंके समान घूमने लगे ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे भाषानुवादे षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥

अयोध्यांतुसमालोक्यचिंतयामासराघवः ॥
प्रियकामःप्रियंरामस्ततस्त्वरितविक्रमः॥ १ ॥

विमानके शिखरपरसे जब अयोध्या नगरी दिखाई देने लगी तब शीघ्र विक्रमकारी प्रियकार्य कर्ता रामचंद्रजी सुग्रीवादिका सत्कार करनेंके

अर्थ ॥ १ ॥ एक क्षणभर चिन्ताकर वानरलोगोंकी ओर निहार बुद्धिमान तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी वानरश्रेष्ठ हनुमानजीसे बोले॥२॥हे वानरोत्तम! तुम शीघ्र अयोध्यानगरीमें जाकर राजमंदिरकी कुशल जान आओ कि वहां सब कुशलहै या नहीं ॥३॥ तुम पहले तौ शृङ्गवेर पुरमें जायकर वनचारी निपादराज गुहसे हमारे आनेका समाचार कहो ॥४॥ गुह हमारा प्राणोंकी समान प्रियसखाहै हम रोगादिविहीन हो स्वच्छन्दचित्तसे कुशल सहित हैं यह सुनकर वह परम प्रसन्न होगा ॥ ५ ॥ वह निषादराज गुह हर्षित मनसे तुम्हें अयोध्याजीका मार्ग दिखावैगा और भरतजीकाभी सब वृत्तान्त कहैगा ॥६॥ तुम अयोध्याजीमें जायकर हमारी ओरसे भरतजीकी कुशल पूछना और कहनाकि हम पिताजीके सत्यको पालन कर लक्ष्मण और जानकीके सहित आतेहैं ॥ ७ ॥ हे सौम्य! बलवान रावण करके जानकी-जीका हरण सुग्रीव से समागम संग्राम में वालिका वध ॥ ८ ॥ फिर जिस प्रकार जानकीजीके खोजनेको तुम गये और महा समुद्रको लांघा व जानकीका पता लगाया ॥ ९ ॥ समुद्रके तीर वानरलोगोंकी यात्रा समुद्रका दर्शन करना पुल बांधना रावणका मारा जाना ॥ १० ॥ ब्रह्मा, इन्द्र, और वरुणजीसे वरदान पाना महादेवजीके प्रसादसे पिता दशरथजीके साथ हमारा मिलना ॥ ११ ॥ यह समस्त समाचार भरतजीसे ठीक २ कहकर कहना कि हम राक्षसराज और वानरराजके सहित नगरके निकट आय गयेहैं ॥ १२ ॥ तुम भरतजीसे यह भी कहना कि राम शत्रुओंको जीत श्रेष्ठ यश पाय पिताजीकी आज्ञाका पालन कर पूर्णमनोरथहो महाबलवान मित्रोंके साथ आतेहैं ॥ १३ ॥ हेवीर! यह समस्त समाचार उनके मुखसे सुनकर भरतका जैसा आका-रहो या उनसे जैसा भाव प्रकाशित हो वह समस्त तुम जान लेना ॥ १४ ॥ आकारसे, चेष्टासे, दृष्टिसे, और वचनसे भरतका समस्त वृत्तान्त तुम ठीक२ जानलेना ॥ १५ ॥ हाथी, घोड़े, व रथोंके समूहसे परिपूर्ण सर्व कामसमृद्ध, पिता पितामहादिकोंका राज्य किसके मनमें फेर नहीं डा-ल सकताहै ? ॥ १६ ॥ बहुत समयतक राज्य पालन करके रघुनन्दन श्रीमान् भरतजी जो राज्यकी चाहना रखतेहों तो वह समस्त पृथ्वीका

पालन करैं ॥ १७ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! हम जबतक बहुत आगे न बढ़ें, तुम तिससे पहले ही उनकी बुद्धि व उनका विचार जानकर शीघ्र यहां फिर आना ॥ १८ ॥ वीर्यवान् पवनकुमार हनुमानजी इस प्रकारसे आज्ञा पाय मनुष्य रूप धारणकर शीघ्रतासे अयोध्याजीकी ओर चले॥१९॥ गरुड़जी जिस प्रकारसे महासर्पके ऊपर दौड़ते हैं वैसेही पवनकुमार हनुमानजी अतिवेगसे आकाशमार्गको उछल गये ॥ २० ॥ फिर छाया मार्ग और श्रेष्ठ पक्षियोंके उड़नेके स्थानको नांघ गंगा यमुनाके भयंकर संग्राम स्थानके पार हो ॥ २१ ॥ शृंगवेर पुरमें पहुंचे, वीर्यवान् हनुमानजी वहां गुहसे मिले उससे हर्षितवदनहो शुभ वचन बोले ॥ २२ ॥ तुम्हारे सखा सत्य पराक्रम रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें सीता और लक्ष्मणजीके सहित, तुमसे अपनी कुशल कही है ॥ २३ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीकी आज्ञानुसार आज पांचमीकी रात उनके आश्रममें रहकर आवेंगे। तुम कल प्रभातही उनको देखोगे ॥ २४ ॥ यह वचन कहकर महातेजस्वी विचारवान हनुमानजी रुयें फुलाय मार्गके श्रमको कुछभी न समझ आनंद सहित फिर बड़े वेगसे आकाशको उछलगये ॥ २५ ॥ और फिर शीघ्रतासे एक २ करकै परशुरामतीर्थ वालुकिनी नदी, वारूथी, व गोमती नदी, और भयंकर शालवन हनुमान्जीनें देखा ॥ २६ ॥ और बहुत सारी प्रजासे भरे हुए श्रेष्ठ जनपदोंको देख कपिकुंजर हनुमानजी बहुत दूरतक चले ॥ २७ ॥ फिर चैत्ररथ और इन्द्रके नंदनवनमें उत्पन्न हुए देववृक्षोंकी समान नंदिग्रामके निकट वाले वृक्षोंको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ सुन्दर शृंगार बनाय सैकड़ों स्त्रियें वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान बेटे पोतोंके साथ इन सब वृक्षोंसे फूल चुनचुन आनंद कर रहीथीं, तिसके पीछे अयोध्याजीसें एक कोश दूर पर टिके हुए जटा चीर धारी ॥ २९ ॥ दुर्बल अपने भ्राताके दुःखसे दुःखी दीनभावसे युक्त शरीरमें मैल लगाये आश्रमवासी भरतजीको देखा ॥ ३० ॥ फलमूलआहारी जितेन्द्रिय धर्मचारी मुनिव्रतधारी, ऊंची २ जटा रखाये, भोजपत्र और मृगचर्म बिछाये ॥ ३१ ॥ इन्द्रियोंको जीते सिद्धस्वरूप ब्रह्मर्षियोंके समान तेजस्वी राजगद्दीपर रामकी खड़ाऊं धर उनकी आज्ञासे पृथ्वीको शासन करते ॥ ३२ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र चारों वर्णके लोगोंकी सब भांतिसे रक्षा करते पवित्र चित्तवाले मंत्रि और पुरोहितोंको समीप बैठाये ॥ ३३ ॥ और सब सैनापतिगण व ऊनी वस्त्र पहरे दूतोंको निकट लिये इस प्रकारके भरतजीको देखा । राजकुमार भरतजीनें चीर और मृग चर्म पहर रक्खाथा ॥ ३४ ॥ इस कारण उनको त्याग कर धर्मवत्सल राजकर्मचारियोंनेभी सुख भोग करना उचित नहीं समझा तब धर्मकी दूसरी मूर्तिकी समान धर्मके जाननेंवाले भरतजीके निकट ॥ ३५ ॥ पवनकुमार हनुमानजी हाथ जोड़कर बोले कि जटा वल्कल धारण करके दंडकारण्य में वास करनेंके कारण ॥ ३६ ॥ आप जिनके लिये शोक करतेहैं उन्हीं रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें आपके पास कुशल समाचार कहला भेजाहै, हे देव! हम आपको शुभ समाचार देने आयेहैं इस कारण आप अब दारुण शोकका त्याग कीजिये ॥ ३७ ॥ आप बहुतही शीघ्र अपनें भ्राता श्रीरामचंद्रजीसे मिलैंगे, श्रीरामचंद्रजी रावणको मार सीताको पाय, ॥ ३८ ॥ सिद्धमनोरथ हो महाबलवान मित्रोंके साथ आगमन कर रहेहैं महातेजस्वी लक्ष्मणजी और यशस्वी सीताजीभी आईहैं । इन्द्रके सहित इन्द्राणी शचीकी समान सीताजी श्रीरामचंद्रजीके सहित कुशल सहितहैं ॥ ३९ ॥ हनुमानजीके यह वचन सुन कैकेयीपुत्र भरत एकाएकी हर्षमें भर मूर्छितहो गिरपड़े ॥ ४० ॥ एक मुहूर्तके पीछे फिर चेतना पाय सावधान हो भरतजी प्रिय समाचारके देनेंवाले हनुमानजीसे बोले ॥ ४१ ॥ प्रथम तौ प्रीतिमें भर अति आदरसे श्रीमान् भरतजीनें हनुमानजीको भेंट विपुल आंसुओंकी बूंदोंसे उनको भिजोदिया ॥ ४२ ॥ और बोले, हे सौम्य! क्या तुम मनुष्यहो? या कृपाके वश होकर कोई देवताही यहांपर आयेहो? तुम जो कोईभी हो; तुमनें जैसा सुखका समाचार सुनायाहै वैसेही तुमको पुरस्कारके देने लायक हम कोईभी वस्तु नहीं देखतेहैं ॥ ४३ ॥ अच्छा तुम्हारे योग्य न होनेपरभी एक लाख गाय एक लाख गांव, कुंडलादि भूषण धारण किये श्रेष्ठ आचारवाली कन्या कि जिनकी सोलह २ वर्षकी उमरहै, भार्या बनानेके लिये ॥ ४४ ॥ सुवर्ण सम रंगवाली श्रेष्ठ नासिका व श्रेष्ठ जांघोंवाली चंद्रवदनी सब गहने पहरे हुए श्रेष्ठ कुल जातिवाली यह सब स्त्रियें हम तुमको देतेहैं ॥ ४५ ॥

निशम्यरामागमनंनृपात्मजःकपिप्रवीरस्य तदाद्भुतोपमम् ॥ प्रहर्षितोरामदिदृक्षया भवत्पुनश्चहर्षादिदमब्रवीद्वचः ॥ ४६ ॥

इस प्रकारसे राजकुमार भरतजी वानरश्रेष्ठ हनुमानजीके मुखसे अचानक श्रीरामचंद्रजीके आनेंका समाचार सुन श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करनेंकी वासनासे प्रसन्नताकी सीमातक पहुंच गये और फिर हर्षमें भरकर यह वचन बोले ॥ ४६ ॥ इ ० श्रीम ० वा ० आ ० यु ० सप्तविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥

बहूनिनामवर्षाणिगतस्यसुमहद्वनम् ॥ शृणोम्यहंप्रीतिकरंममनाथस्यकीर्तनम् ॥ १ ॥

बड़े भ्राता श्रीरामचंद्रजी बहुत वर्ष हुए वनमें वास करतेहैं; आज बहुत दिनोंके पीछे उनका समाचार पायकर हम परम प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ अहो! "मनुष्यभी जीवित रहै तौ सौ वर्षके पीछेभी आनंद पासकताहै" यह कहावत जो संसारमें चली आतीहै वह आज कल्याणदायक ज्ञात होतीहै ॥ २ ॥ अच्छा तुमने जो कहा कि रामचंद्र सुग्रीवादि वानरोंके सहित आतेहैं सो श्रीरामचंद्रजीका और वानरोंका किस स्थानमें कैसे समागम हुआ। यह समस्त वार्ता [illegible] तुम हमसे कहो ॥ ३ ॥ जब भरतजीनें इस प्रकारसे पूछा तौ हनुमानजी कुशके आसनपर बैठकर श्रीरामचंद्रजीके वनवासचरित कहनेंलगे ॥ ४ ॥ हनुमानजी बोले कि महाराज दशरथजीनें आपकी माताको वरदान देकर जिस प्रकार रामचंद्रजीको वनवास दियाथा और वह जिस प्रकार पुत्रके शोकसे मृत्युको प्राप्त हुए॥५॥मामाके घरसे दूत जिस प्रकार आपको शीघ्रतासे बुलाकर लाये, आपनें जिस प्रकार अयोध्यामें आय राज्य ग्रहण नहीं करना चाहाथा ॥६॥ साधुओंके योग्य धर्मका प्रतिपालन करकै चित्रकूट पर्वतपर जाय राज्य ग्रहण करनेंके जिस प्रकार आपनें अपने भ्राता श्रीरामचन्द्रजीसे विनय कीथी ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें जिस प्रकारसे पिताके सत्यमें टिककर

वहांपर राज्यका त्याग कियाथा, और फिर आप उन श्रेष्ठ भाईकी खडाऊं ग्रहण करके अयोध्याको लौट आयेथे ॥ ८ ॥ हे महावीर! यह समस्त वृत्तान्त तौ आप जानतेही हैं, अब वह सुनिये कि जो कुछ आपके लौट आनेपर हुआ है ॥ ९ ॥ जब आप लौटआये तौ मृग, और पक्षियोंके त्रासके मारे वह वन अत्यन्त पीड़ितहो उठा ॥ १० ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजी, सिंह व्याघ्र व मृगोंसे व्याप्त और अपनी सैनाके हाथियोंसे मथेहुए उस चित्रकूटको छोड़ मनुष्यरहित बड़ेभारी दंडकारण्यमें प्रवेश करते हुए ॥ ११ ॥ उन्होंने उस घने वन में जाते २ देखा कि विराध राक्षस महासिंहनाद करताहुआ सन्मुख चलाआरहाहै ॥ १२ ॥ परन्तु रामचन्द्रनें बांह उठाये नीचेको मुख किये शब्द करतेहुए हाथीकी समान उस निशाचरको गढ़े में डालकर पाट दिया ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे वह दोनों भ्राता राम और लक्ष्मणजी इस प्रकारका कठिन कार्य करके सन्ध्या-के समय ऋपिश्रेष्ठ शरभंगके रमणीय आश्रममें पहुँचे ॥ १४ ॥ वहांपर जब शरभंग रामचन्द्रजीके दर्शनकर स्वर्गको चले गये तब सत्यपराक्रम कारी श्रीरामचन्द्रजी और सब मुनियोंको प्रणाम करके जनस्थानको चले गये ॥ १५ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें जनस्थानमें वासकर वहांके रहनेंवाले चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला ॥ १६ ॥ उस समय चौदह सहस्र राक्षस इकट्ठे तौ हुए परन्तु अकेले श्रीरामचन्द्र-जीनें संग्राममें दिनके पिछले पहरमें उन समस्त राक्षसोंका विनाश किया था ॥ १७॥ इस प्रकारसे वह दंडक वनके रहनेवाले तपमें विघ्न करनेंवाले महाबली महावीर्यवान निशाचर गण श्रीरामचन्द्रजीनें मारडाले ॥ १८ ॥ जब इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीनें राक्षसोंको मारा, खरका संहार किया;व प्रथम दूषणको मार फिर त्रिशिराका वध किया ॥ १९ ॥ इसके पहिले उस स्थानमें शूर्पणखा नाम एक राक्षसी श्रीरामचन्द्रजीके निकट आई, तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणजीनें एकाएकी उठकर ॥ २० ॥ खड्ग ले उसके नाक कान काटडाले, तब शूर्पणखा अत्यन्त शोकसे पीडित हो रावणके निकट गयी ॥ २१ ॥ फिर रावणके सेवक मारीच नाम राक्ष-सनें सुवर्णमय मृगरूप धारणकर जानकीजीको लुभाया ॥ २२ ॥ जानकी-जीनें इसको देखकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहाकि आप इस मृगको ग्रहण

कीजिये, यह मनोहर कान्तिवाला मृग पकड़ालियेजानेपर हमारे आश्रमकी अपूर्व शोभा होगी ॥ २३ ॥ यह सुन श्रीरामचन्द्रजीनें धनुष धारण किया व उसके पीछे धाये और बाणसे उस मृगको मारडाला॥२४॥ हे सौम्य! जब रामचन्द्रजी तौ इस प्रकारसे मृगके पीछे गये और लक्ष्मणजी उनके ढूंढ़नेंको गये तब रावणनें आश्रममें प्रवेश किया ॥ २५ ॥ जिस प्रकार आकाशमें मंगलग्रह रोहिणीको ग्रसले ऐसेही रावण जानकीजीको ग्रहण करताहुआ जटायुपक्षीनें सीताजीके छुटानेंकी चेष्टाकीथी उसकोभी रावणनें संग्राममें मारडाला ॥ २६ ॥ उस समय सहसा सीताजीको लेकर रावण चलागया उस शीघ्रतासे जातेहुएको पर्वतके शिखर परसे ॥ २७ ॥ सीताजीको ग्रहण करके जातेहुए पर्वताकार राक्षसोंके स्वामी रावणको वानरोंनें देखा और देखकर वह विस्मित हुए ॥ २८ ॥ मनके वेगकी समान चलनेंवाले पुष्पक विमानपर सीताजीके सहित सवारहो महाबलवान रावण अति शीघ्रतासे चला ॥ २९ ॥ और वह राक्षसोंका राजा रावण लंकामें प्रवेश करताहुआ। सुवर्णकी चाहरदिवारीसे युक्त बड़ेभारी स्वच्छ गृहमें ॥ ३० ॥ जानकीजीको रावण वचनोंसे बहुत समझाता बुझाता हुआ जानकीजीनें रावणके उन समझानें बुझानेंको और उसको तिनकेकी समानभी ग्रहण न किया ॥ ३१ ॥ फिर रावणनें जानकीजीको अशोकबाटिकामें रक्खा। इधर श्रीरामचंद्र वनमें मृगको मारकर ॥ ३२ ॥ आश्रमको लौटे और आश्रममें जानकीजीको न देखकर व्याकुल हुए फिर आगेचल गिद्धको देख रघुनंदनजी व्यथित हुए पिताकी समान प्यारे गिद्धको मराहुआ देख श्रीरामचंद्रजी उसकी क्रिया करते हुए ॥ ३३ ॥ फिर जानकीजीको खोजतेहुए लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजी गोदावरी नदीके तीर पुष्पित वनोंमें जानकीजीको ढूंढ़ते २ ॥ ३४ ॥ कबंधनाम राक्षसके सन्मुख महावनमें आयपड़े उसको रामचंद्रजीनें मारभी डाला फिर उसी कबंधके वचनोंसे सत्य पराक्रमी श्रीरामचंद्रजी ॥ ३५ ॥ ऋष्यमूक पर्वतपर जायकर सुग्रीवजीके साथ मिले। संभाषण होनेके पहलेही उन दोनोंमें परस्पर अतिगाढ़ी मित्रता होगईथी ॥ ३६ ॥ सुग्रीवजी अपने क्रोधित भ्राता वालि करकै निकालेगयेथे इस कारण परस्पर एक दूसरेका वृत्तान्त जानकर

दोनोंका प्रेम परस्पर बढ़ गया ॥ ३७ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें अपने बाहोंके वीर्यसे महाकाय और महाबलवान् वालिको संग्राममें वध करकै ॥ ३८ ॥ सुग्रीवजीको उनके राज्यपर सब वानरोंके साथ स्थापित किया तब सुग्रीवजीनें श्रीरामचंद्रजीके साथ प्रतिज्ञा की कि हम राजकुमारी जानकीजीको ढूंढेंदगे ॥ ३९ ॥ तब वानरोंमें इन्द्र महात्मा सुग्रीवजीकी आज्ञासे दस किरोड़ वानर दशों दिशाओंमें भेजेगये ॥ ४० ॥ परन्तु उनमेंसें हम कुछ एक वानर जानकीजीको ढूंढतेहुए विन्ध्यापर्वतकी एक गुफामें घुस गयेथे; और हमको वहाँ बहुत दिन लगगये । निकलनेंका मार्ग न देख पायकर हम सब बहुत डरे ॥ ४१ ॥ इतनेहीमें गृद्धराज जटायुके भ्राता वीर्यवान् संपातिनामगृद्धने हम लोगोंसें कहा कि जानकीजी रावण गृहमें है ॥ ४२ ॥ तब हम अपने शोकसें संतापित बंधु बान्धवोंका दुःख दूर करनेंके लिये छलांग मार शत योजनके फाटवाले समुद्रके पार होगये । और लंकाके मध्य अशोकवाटिकामें पहुँचकर हमनें देखा ॥ ४३ ॥ केवल एक रेशमीन मलीन सारी पहरे आनंदरहित दृढ़ पातिव्रत प्रतिपालन करतीहुई एकांतमें टिकीहुई हैं; वहां हमने उन जानकीजीसे विधानसें कुशल पूंछी ॥ ४४ ॥ और उनको निशानीरूप रामचंद्र नामांकित अंगूठी दी; और उनसें स्नेहस्वरूपमणि ग्रहण कर सिद्धकामहो हम लौट आये ॥४५॥ हमनें लौटकर सरलकर्मकारी श्रीरामचंद्रके हाथमें वह स्नेह स्वरूप दीप्तियुक्त मणी दी ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार पीड़ित पुरुष अंत समयमें अमृत पीकर जीवित होजाय वैसेही श्रीरामचंद्रजी जानकीजी का वृत्तांत सुनकर मानो जीवित होगये ॥ ४७ ॥ उसके उपरांत श्रीरामचंद्रजीनें प्रलय कालमें सब लोकोंको भस्म करनेंकी अभिलाषा किये अग्निकी समान राक्षसोंके वधका अभिलाषकर सैना एकत्र करनेंकी आज्ञादी ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त समुद्रके निकट पहुंच नलसे सेतु बंधवाया तब समस्त वानरोंकी सैना इस पुलके ऊपर होकर समुद्रके पार हुई ॥ ४९ ॥ इसके पीछे जब युद्ध आरंभ हुआ तब नीलनें प्रहस्तको लक्ष्मणनें रावणके पुत्र इन्द्रजितको, और स्वयं रामचंद्रजीने कुंभकर्ण व रावणका वध किया ॥ ५० ॥ तिसके पीछे देवराज इन्द्र, यम, वरुण, महेश्वर, ब्रह्मा, राजा दशरथ, यह वहां आये ॥ ५१ ॥ और श्रीमान् देव,

र्षि व महर्षिगण श्रीरामचंद्रजीके निकट आये और शत्रुघाती श्रीरामचंद्र-जीको विविध भांतिके वरदान दिये ॥ ५२॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी परम प्रसन्नतासे वानरगणोंके सहित पुष्पकविमानपर सवारहो किष्कि-न्धामें आये ॥५३॥ वहांसे वह गंगाजीके तीरपर आगमन करकै इस समय भरद्वाजजीके आश्रमपर ठहरेहुएहैं; सो आप कल पुष्यनक्षत्रके योगमें श्रीरामचंद्रजीके दर्शन प्राप्त करेंगे ॥ ५४ ॥

ततःसवाक्यैर्मधुरैर्हनूमतोनिशम्यहृष्टोभ
रतःकृतांजलिः ॥ उवाचवाणींमनसःप्र
हर्षिणींचिरस्यपूर्णःखलुमेमनोरथः ॥ ५५ ॥

हनुमानजीके ऐसे मधुर वचन सुनकर भरतजीनें आनंदकी अंतिम सीमा प्राप्त करली और सबके अंतरात्माको परिपूर्ण करतें हाथ जोड़कर बोले; अहो ! बहुत दिनोंसे जो अभिलाष हमारे मनमें था आज वह पूर्णहुआ ॥५५॥
इ०श्रीम०वा०आ०यु०भाषा०अष्टाविंशत्यधिकशततमःसर्गः ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमःसर्गः ॥

श्रुत्वातुपरमानंदंभरतःसत्यविक्रमः ॥
हृष्टमाज्ञापयामासशत्रुघ्नंपरवीरहा ॥ १ ॥

परवीरघाती सत्यविक्रम भरतजी हनुमानजीके ऐसे प्रसन्नता उपजा-नेंवाले वचन सुनकर आनंदितहो शत्रुघ्नजीसे बोले ॥ १ ॥ कि तुम यह डौंडी फिरवादो कि विशुद्ध वेशवाले और शुद्धाचारी पुरुष सुगन्धिमाला ओंसे कुलदेवताओंके मंदिरोंको और साधारण देवस्थानोंको सजावें, और सब स्थानों में अनेक प्रकारके बाजे बजतेरहैं ॥ २ ॥ स्तुति पुराण-निपुण सूत और वैतालिक वाद्यशास्त्रके जाननेंवाले बजवैये, व नृत्यगीत करनेंवाली वेश्यायें॥३॥ और सब मंत्रियोंके साथ हमारी मातायें, अपनी २ स्त्रियोंके सहित सैनाके सिपाही लोग, ब्राह्मण, क्षत्री, मुखिया २ वैश्य लोग व औरभी जातियें ॥ ४ ॥ यह सबही श्रीरामचंद्रजीका चंद्रमुख दर्शन करनेंके लिये नगरसे बाहर चलैं ॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर परवीर घाती शत्रुघ्नजीनें ॥ ५ ॥ असंख्य सेवक लोगोंको बुलाय इन सब कार्यों-

को बांटदिया और कहा कि, जो स्थान ऊंचे नीचे हैं उन सबको काटपाट खोद खादकर बराबर करदो ॥ ६ ॥ और अयोध्यासे लेकर नंदिग्रामतक समस्त मार्ग साफ सुथरा करो. और बरफकी समान ठंडा जल वहांसे यहां तककी पृथ्वीपर छिड़क दो ॥ ७ ॥ और सब स्थानमें खीलें और सुगन्धित पुष्प बखेरदो, और झंडी लगाकर नगरीके सब मार्ग शोभायमान करो ॥ ८ ॥ सूर्य निकलनेंके पहलेही इस नगरीके समस्त भवन और राजमार्ग माला, फूल, और सोनें चांदीसे सजादिये जांय ॥ ९ ॥ और सेकडों हजारों पहरेदारभी हटानेके लिये राजमार्गोंपर घूमते रहैं । हर्षित हुए शत्रुघ्नजीकी ऐसी आज्ञा सुनकर ॥ १० ॥ धृष्टि, जयंत, विजय, सिद्धार्थ अर्थसाधक, अशोक, मंत्रपाल; सुमंत्र यह आठ मंत्री चले ॥ ११ ॥ और सूर्य निकलनेंके पहलेही राजमार्गको शोभित करतेहुए, ध्वजा शोभित सजे सजाये असंख्य मतवाले हाथियोंके साथ चले, और बहुतसे सुनहरी अम्भारी व झूलसे शोभित हथनियोंपर व साधारण हाथियोंपर चढे ॥१२॥ और बहुतसे लोग घोड़ोंपर चढ़कर चले, और बहुतसे बड़े २ रथोंपर चढकर चले. और बहुत सारे शक्ति, ऋष्टि, पाश; व ध्वजा पताकादि ले लेकर चले ॥ १३ ॥ सहस्र २ घोड़ोंकी सैना और अगणित प्रधान २ पैदलोंकी पलटनोंके साथ वीरगण चले ॥ १४ ॥ तिसके पीछे दशरथजीकी सब स्त्रियें यथायोग्य रथोंपर सवार होकर कौशल्या और सुमित्राजीको आगेकर चलीं ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त मुख्य २ ब्राह्मणोंको संग लिये और सब मुखिया २ मंत्री व महाजनोंको साथले, माला, मोदक, (लड्डू) हाथमें लिये वणिकोंके साथ ॥ १६ ॥ शंख भेरियोंका शब्द कराते वंदी लोगोंसे वंशावलीका वर्णन कराते, श्रीरामचंद्रजीकी खड़ाऊं शिरपर धर धर्मपंडित ॥ १७ ॥ श्वेतछत्र लिये मालाओंसे शोभित और शुक्ल वालोंके सुवर्णकी डंडी लगे राजयोग्य दो चमर हाथमें लिये ॥ १८ ॥ उपवास करनेंसे दुर्बल हुए, दीन भावसे युक्त चीर व मृगचर्म धारण किये भ्राताका आगमन सुन प्रथम हर्षितहो ॥ १९ ॥ महात्मा भरतजी मंत्रियोंके संग पैदलही श्रीरामचंद्रजीके लिवानेको चले घोड़ोंके खुर शब्द और रथोंके घर्घर शब्दसे ॥ २० ॥ और शंख व नगाड़ोंके नादसे पृथ्वी कंपायमान होगई । हाथियोंके चिंघाड़नेसे शंख व दुन्दुभीके

नाद सहित ॥ २१ ॥ सब अयोध्यावासी व राजसमाज नंदीगांवमें पहुंच गया. इन सबको आयाहुआ देख भरतजीनें हनुमानजीसे कहा ॥ २२ ॥ वानर लोग स्वभावसेही चंचलचित्त होतेहैं तुमने वही अपनी जातिके स्वभावसे तो हमसे यह बात नहीं कही, हमको यही भय होताहै कदाचित् हम आर्यको न देख पावें ॥ २३ ॥ और कामरूपी वानरगणभी दिखाई नहीं दिये हनुमानजी ऐसे संदेहयुक्त वचन सुनकर बोले ॥ २४ ॥ हनुमानजी अपनें वचनोंकी यथार्थता जतलानेंके लिये सत्यविक्रमी भरत जीसे बोले कि; फूले फले हुए और मधुचुआतेहुए वृक्षहैं ॥ २५ ॥ और इन पर भौंरे मतवाले हो गुंजाररहेहैं यह सब भरद्वाजजीका प्रसादहै सो देखो शत्रुघाती इन्द्रजीनें उन भरद्वाजजीको यह वर दियाथा ॥ २६ ॥ अब सब गुणवान् महर्षि भरद्वाजजीनें उस वरकी पोषकता करकै सैना सहित श्रीरामचंद्रजीकी पहुनई कीहै, यह हर्षित हुई वानरोंकी सैनाका बड़ाभारी शब्द सुनिये ॥ २७ ॥ ऐसा जान पड़ताहै कि इस समय वह वानरोंकी सैना गोमती नदीके पार होरहीहै, । यह देखिये शालवनसे उठा हुआ बड़ाभारी धुन्धुकार दिखाई देताहै ॥ २८ ॥ ऐसा जान पड़ताहै कि वानरोंकी सैना रमणीक शालवनको हिलाडुलारहीहै । यह देखिये बहुत दूरपर चंद्रमाकी समान विमान दिखाईदिया ॥ २९ ॥ दिव्य मनकी समान चलनेंवाले पुष्पक विमानको ब्रह्माजीनें बनाया; इस विमानको महात्मा श्रीरामचंद्रजीनें बन्धु बान्धवोंके सहित रणमें रावणको मार रामचंद्रजीनें पाया ॥ ३० ॥ प्रभात कालके सूर्यकी समान यह विमान श्रीरामचंद्रजीको अपने ऊपर चढ़ायेहुए लिये आताहै; कुवेर जीके प्रसादसे यह विमान मनके वेगकी समान चलनेंवालाहै ॥ ३१ ॥ इस विमानमें जानकीजीके सहित दोनों भ्राता राम लक्ष्मणजी और महा तेजस्वी सुग्रीवजी व राक्षसराज बिभीषणजी बैठे हुएहैं ॥ ३२ ॥ हनुमानजी इस प्रकार कहही रहेथे कि इतनेमें वहां, स्त्री, बालक, युवा और वृद्ध लोगोंका आकाशव्यापी श्रीरामचंद्रजी यह आयगये इस प्रकार बड़ाभारी शब्द हुआ ॥ ३३ ॥ तब सबजन हाथी घोडे रथोंपरसे पृथ्वीपै उतरकर आकाशमें टिके हुए चंद्रमाकी समान विमानपर बैठे श्रीरामचंद्रजीको देखने लगे ॥ ३४ ॥ भरतजीनें हर्षित मनसे हाथ जोड़ श्रीरामचंद्रजीके

सामनें खड़ेहो कुशल प्रश्न किया और पाद्य व अर्घादि देकर उनकी पूजा की ॥ ३५ ॥ उस समय विशाललोचन भरतजीके बड़े भ्राता श्रीरामचंद्रजी ब्रह्माजीकें मनसे बने उस विमानपर बैठे हुए वज्र हाथमें लिये देवराज इन्द्रजीकी समान शोभायमान होनेंलगे ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त भरतजीनें विमानपर बैठेहुए अपने भ्राता श्रीरामचंद्रजीसे प्रणाम किया कि जिस प्रकार सब लोग मेरु पर्वतके शिखरपर स्थित हुए सूर्य भगवानको प्रणाम करतेहैं ॥ ३७ ॥ वह हंसोंकरके चलायाजाता हुआ महा वेग युक्त अत्युत्तम विमान श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा पाय पृथ्वी-पर उतरा ॥ ३८ ॥ तब सत्यविक्रमी भरतजीनें श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे उस विमानके ऊपर सवारहो प्रसन्न मनसे फिर रघुनंदनको प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी बहुत दिनोंके पीछे भरतजीको देखकर परम प्रसन्न हुए और उनको चरणों परसे उठाय अंकमें धारण किया ॥ ४० ॥ इसके पीछे भरतजीने आनंदसहित जानकीजीके समीप जाय अपना नाम सुनायकर उनको प्रणाम किया और लक्ष्मणजी उनको प्रणाम करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर भरतजीने यथाक्रमसे सुग्रीव जाम्बवान अंगद, मैन्द द्विविद, नील, ऋषभ इन सबको हृदयसे लगाया ॥ ४२ ॥ और फिर सुषेण, नल, गवाक्ष, गंधमादन, शरभ, और पनससे मिले ॥ ४३ ॥ उन कामरूपी वानरलोगोंनें मनुष्योंका रूप धारण करकै हर्षित अंतःकरणसे भरतजीकी कुशल वार्ता पूछी ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजकुमार भरतजी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी और बिभीषणजीसे समझाते बुझाते हुए बोले ॥ ४५ ॥ हे सुग्रीव उपकारादि रूप सुहृदताके वश मित्र और अपकारादिसे अमित्र हुआ करते हैं परन्तु तुम अपने किये कर्मोंसे आज हम चारों भ्राताओंके पांचवे हुए ॥ ४६ ॥ हेराक्षसराज! बडे भाग्य की बातहै कि आपकी सहायतासें रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा दुष्कर-कार्य कियाहै ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त वीर शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचंद्रजीको प्रणामकरकै विनययुक्त हो सीताजीके चरण युगल ग्रहण करते हुए॥ ४८ ॥ तिसके पीछे श्रीरघुनाथजीनें शोककर्षिता विवर्णी माता कौशल्याजीके निकट जाय उनको हर्षितकर प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ फिर यशस्वी कैकेयी और सुमित्राको प्रणाम करकै सब माताओंके सहि-

त पुरोहित वशिष्ठजीके स्थानपर गये॥ ५० ॥ हे महावीर हे कौशल्याजी के आनंद बढानेवाले! आपका आना मंगलकारी हो इस प्रकार हाथ जोड़ कर सब नगरवासी कहतेथे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार जयध्वनि करते रहनें पर नगरवासियोंकी असंख्य अंजलियें खिलेहुए फूलोंकी समान जान पड़नें-लगीं ॥ ५२ ॥ धार्मिकश्रेष्ठ भरतजीनें वह दोनो खडाऊं ग्रहण करके अपने आपही नरनाथ उन श्रीरामचंद्रजीके दोनो चरणोंमें पहरादी ॥ ५३ ॥ फिर भरतजी श्रीरामचंद्रजीसे हाथ जोड़कर बोले जोराज्य आपने हमको थातीकी समान सौंपाथा आज हम फिर उस आपकी थातीको आपके समर्पण करते-हैं॥ ५४ ॥ आज हमारा जन्म सार्थक हुआ और मनोरथभी पूर्ण होगये क्यों-कि अयोध्याजीके राजाको आज हमनें फिर अयोध्याजीमें आया हुआ दे-खा ॥ ५५ ॥ आप धनागार कोषागार गृह सैनाकी भलीभांति देख भाल करलीजिये आपके तेज बलसे ही हमने इन समस्त वस्तुओंको दशगुण कर रक्खा है ॥ ५६ ॥ भरतजीका ऐसा भायपन देख और उनके ऐसे वचन सुनकर वानरगण और बिभीषणजी आनंदके मारे आंसू डालने लगे॥५७॥ इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी हर्षित हो भरतजीको अंकमें भर विमानपर चढ़ भरतजीके भवनकी ओर चले ॥ ५८ ॥ जब रघुनाथजी सैनाके सहित भरतजीके आश्रममें आये, तब विमान परसे उतर पृथ्वीपर खड़े हुए॥५९॥ और उस श्रेष्ठ विमानसे श्रीरामचंद्रजी कहनेलगे कि हम आज्ञा देतेहैं तुम इस समय इस स्थानसे जायकर कुबेरजीको वहन करो ॥६०॥ जब श्रीरामचंद्र-जीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तब वह उत्तम विमान कुबेरजीके स्थानपर जानेंको उत्तर दिशाकी ओर चला ॥ ६१ ॥ पहले राक्षस रावणनें जिस पुष्पक नामक दिव्य विमानको बलसे ग्रहणकर लियाथा वही अब श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा पायकर फिर कुबेरजीके समीप गया ॥ ६२ ॥

पुरोहितस्यात्मसखस्यराघवोबृहस्पतेःशक्रइ वामराधिपः ॥ निपीड्यपादौपृथगासनेशुभे सदैवतेनोपविवेशवीर्यवान् ॥ ६३ ॥

फिर देवराज इन्द्रजी जिसप्रकारसे बृहस्पतिजीके चरण ग्रहण करते हैं वैसेही वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी ब्रह्मके जाननेवाले पुरोहित वशिष्ठजीके

चरण ग्रहण करते हुए उनके समीप बिछेहुए एक शुभ आसनपर विराजमान हुए ॥ ६३ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० यु० भाषा० एकोन त्रिंशाधिक शततमः सर्गः ॥ १२९ ॥

त्रिंशदधिकशततमःसर्गः ॥

शिरस्यंजलिमाधायकैकेयीनंदिवर्धनः ॥
बभाषेभरतोज्यष्ठंरामंसत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त कैकैयीके आनंद बढ़ाने वाले भरतजी शिरसे हाथजोड़ सत्य पराक्रम बड़े भ्राता श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १ ॥ हे शत्रु ओंके तपाने वाले! पहले आपने हमारी माताका मान रखकर जो राज्य हमको देदियाथा, हम इस समय आपको धरोहर स्वरूप रक्खा हुआ वही राज्य सौंपतेहैं ॥ २ ॥ जिसप्रकार एक किशोर वछड़ा बलवान धुरन्धर दो बैलोंका त्याग किया हुआ बड़ाभारी बोझानहीं उठाय सकता, वैसेही हम इस राज्य भारके उठानेमें असमर्थ हैं ॥ ३ ॥ राज्यमें बहुतसारे छिद्र होतेहैं, जिस प्रकार जलका वेग पुलको तोड़कर उछलताहै, वैसेही इस राज्यके छिद्रोंका बंद करना कठिन है ॥ ४ ॥ हेवीर शत्रुदमनकारी! गधा घोड़ेकी, और कौआ हंसकी गति नहीं पाय सकता, वैसेही हमभी आपकी पदवी अवलंबन करनेंको असमर्थ हैं ॥ ५ ॥ हे महावीर श्री रामचंद्रजी! जैसे किसीने अपने घरकी फुलवागियामें भला वृक्ष लगाया जब बड़ा भारी होने पर उस वृक्षकी शाखा प्रशाखा बढ़ी और उसमें पत्तेभी बहुत हुए ॥ ६ ॥ और फूलभी उसमें बहुत लगे परन्तु फल आनेंके पहलेही वह टूटकर गिर पड़ा, तब उस पेड़के लगानें वालेका अर्थ जिस प्रकारसे विफल हो जाता है ॥ ७ ॥ हे महावीर! इसी प्रकार हम सरीखे सेवकों का आपनें राजा होकर प्रतिपालन किया तो ऊपर कही हुई उपमा आपही पर लगैगी, सो आप इस उपमाका अर्थ भली भांतिसे जानतेही हैं ॥ ८ ॥ हे रघुनंदन! दुपहरियाके प्रतापशाली प्रदीप्त सूर्यकी समान राजगद्दीपर बैठे हुए आज आपको सब संसार देखै ॥ ९ ॥ आप राजा ओंके योग्य सेजपर शयन कीजिये, नगाड़ोंपर डंका पड़नेंके शब्द, क्षुद्रघंटिका, नूपुर, आदिकी आवाज, और ललित गीतोंके शब्द,

से जागा कीजिये ॥ १० ॥ जबतक यह ज्योतिषचक्र घूमता रहै, तबतक आप समस्त पृथ्वीके राजा होकर सब लोकोंका पालन करते रहिये॥११॥ परपुरविजयकारी श्रीरामचंद्रजी भरतजीके वचन सुन " तथास्तु " कह स्वीकार कर शुभ आसनपर बैठे ॥ १२ ॥ अनन्तर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे बड़े निपुण हाथवाले नाई लोग प्रणाम करकै श्रीरामचंद्रजीके निकट उपस्थित हुए ॥ १३ ॥ पहले उन नाइयोंने भरतजीको महा बलवान लक्ष्मणजीको, वानरोंमें इन्द्र सुग्रीव, व राक्षसोंमें श्रेष्ठ विभीषण को-स्नान कराया ॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचंद्रजीने शिरकी जटा अलग कराय स्नानकर चित्र विचित्र माला उबटन लगाय मूल्यवान वस्त्रोंसे सुशोभितहो अपने शरीरकी शोभासे चारों ओर प्रकाश करनें लगे॥१५॥ वीर्यवान, लक्ष्मीवान, इक्ष्वाकुकुलके बढ़ानेंवाले शत्रुघ्नजीनें लक्ष्मणजीके और श्रीरामचंद्रजीके सब अंगोंमें मनोहर गहने पहराये ॥ १६ ॥ बड़े मनवाली राजा दशरथजीकी स्त्रियोंनें अपने हाथसे सीताजीके सब अंगोंमें मनोहर गहने पहराये ॥ १७ ॥ पुत्रवत्सला कौशल्याजीनें हर्षित मनसे शोभायमान भूषण पहराय वानरोंकी स्त्रियोंको शोभित किया ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त शत्रुघ्नजीके वचनसे सारथी सुमंत सब अंगोंसे शोभायमान रथको जोतकर उस स्थानमें लाये ॥ १९ ॥ परपुरविजयी महावीर श्रीरामचंद्रजी अग्नि और सूर्य भगवानकी समान दीप्तमान उस रथके निकट आय शीघ्र उसपर सवार हुए ॥ २० ॥ इन्द्रजीकी समान शोभायमान शुभकुंडलधारी सुग्रीव व हनुमानजी स्नान करकै दिव्य वसन भूषणोंसे सुशोभितहो श्रीरामचंद्रजीके साथ २ चले ॥ २१ ॥ समस्त आभरणोंसे शोभायमान शुभकुंडल पहरे हुए जानकीजी और सुग्रीवजीकी स्त्रियें नगर देखनेंकी वासनासे उत्कंठितहो उनके पीछे २ गमन करने लगीं ॥ २२ ॥ इधर अयोध्याजीमें राजा दशरथजीके सब मंत्री वशिष्ठजीको आगे करके मंत्रणा करनें लगे ॥ २३ ॥ अशोक विजय और सिद्धार्थ प्रमुख श्रीरामचंद्रजी वृद्धिअभिषेक और नगरको सजानेंके लिये परामर्श करते हुए ॥ २४ ॥ उन्होंनें सेवक लोगोंको आज्ञा दीकि " श्रीरामचंद्रजीकी विजय और उनके अभिषेक करनेंके लिये जो जो मंगलाचार करनें चाहिये, तुम सब जने मिलकर उनके करनेंको

यत्न करो" ॥ २५ ॥ पुरोहित वशिष्ठजी और मंत्री लोग कार्याधिकारियोंको इस प्रकारकी आज्ञा देकर श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करनेंकी वासनासे शीघ्रता पूर्वक नगरसे निकले ॥ २६ ॥ इस ओर पापरहित श्रीरामचंद्रजीभी इन्द्रकी समान श्रेष्ठ घोड़ोंसे चलाये जाते हुए रथपर सवारहो नगरकी ओर गमन करनें लगे ॥ २७ ॥ उस कालमें भरतजीनें घोड़ोंकी लगाम; और शत्रुघ्नजीनें छत्र धारण किया, व लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीके मस्तकपर चमर हिलाने लगे ॥ २८ ॥ राक्षसराज विभीषणजी चंद्रमाकी समान श्वेतवालोंका एक चमर धारण करकै श्रीरामचंद्रजीकी बगलमें आय बैठे ॥ २९ ॥ उस काल अन्तरिक्षमें टिके हुए ऋषि और मरुद् लोगोंके सहित देवता लोगोंका श्रीरामचंद्रजीकी स्तुतिका सूचनादेनेंवाला मधुर शब्द हुआ ॥ ३० ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी वानरोंमें इन्द्र सुग्रीवजी महाराज दशरथजीके शत्रुञ्जय नामक हाथीपर चढ़े ॥ ३१ ॥ व दूसरे वानरलोग मनुष्योंका रूप धारण कर वस्त्राभूषणोंसे भूषितहो नौ हजार हाथियोंके ऊपर सवार होकर गमन करनें लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे पुरुषशार्दूल श्रीरामचंद्रजी शंख और नगाड़ोंके शब्दके साथ उस धवरहरोंसे शोभायमान अयोध्यापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३३ ॥ वह नगरवासी लोग अपने शरीरकी दीप्तिसे विराजमान उन अतिरथ श्रीरामचंद्रजीको सब साज समाज सहित आतें हुए रथपर देखनें लगे ॥ ३४ ॥ उन नगरवासियोंनें भ्राताओंके साथ उन महात्माओंको जय शब्दसे परिवर्द्धित किया, तब श्रीरामचंद्रजीनेभी उनको प्रणामादि किया, तब सब पुरवासी आनंदित होकर उनके पीछे२ चले ॥ ३५ ॥ उस कालमें श्रीरामचंद्रजी प्रजापुञ्ज ब्राह्मण और मंत्रियोंके साथ तारागणोंसे युक्त चंद्रमाकी समान शोभा पानें लगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी, आगे चलते हुए नगाड़े आदि बजानेवाले, करताल, व झांझ आदि बजानेंवाले और मंगल पाठ करनेंवाले लोगोंके साथ २ जानें लगे ॥ ३७ ॥ गो, कन्या, चावल और सुवर्ण हाथमें लिये हुए, ब्राह्मणगण लड्डू हाथमें लिये सब मनुष्य श्रीरामचंद्रजीके आगे२ चले ॥ ३८ ॥ उस समय श्रीरामचंद्रजी मंत्रीलोगोंके सामने सुग्रीवजीकी मित्रता, हनुमानजीका प्रभाव, और वानरोंके अद्भुत कार्यका वृत्तान्त

वर्णन करनें लगे ॥ ३९ ॥ अयोध्यानगरीके समस्त रहनेंवाले राक्षस लोगोंका बल और वानर लोगोंका इस प्रकारका कार्य सुनकर विस्मित हुए ॥ ४० ॥ वानर लोगोंके साथ द्युतिमान श्रीरामचंद्रजी वानरोंके पराक्रमकी यह समस्त वार्ता कहते२ हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे परिपूर्ण अयोध्या नगरीमें पैठे ॥ ४१ ॥ पुरवासियोंनें घर २ झंडियां लगाईं, और श्रीरामचंद्रजीभी इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंसे सेवित अपने पिता दशरथजीके गृहमें प्रवेश करते हुए ॥ ४२ ॥ वहांपर पहुंचते २ श्रीरामचंद्रजी अर्थ युक्त मधुरवाणीसे धर्मचारियोंमे श्रेष्ठ भरतजीसे बोले ॥ ४३ ॥ महात्मा रामचंद्रजीनें पिताजीके भवनमें पैठ कौशल्या, सुमित्रा, और कैकेयीको प्रणाम किया और फिर भरतजीसे कहाकि,– ॥ ४४ ॥ मुक्ता और वैडूर्यमणियोंसे परिपूर्ण और अशोकवाटिकासे युक्त हमारा जो बड़ा भारी गृहहै वही गृह सुग्रीवजीके लिये देदो ॥ ४५ ॥ सत्यविक्रमकारी भरतजी श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा सुनकर सुग्रीवजीका हाथ पकड़ उस गृहमें गये ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त सेवक लोग शत्रुघ्नजीकी आज्ञापाय तेजसे जलती हुई मसालें पलंग, और बिछौने लेकर उस गृहमें शीघ्रतासे प्रवेश करते हुए ॥ ४७ ॥ तब महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजीके छोटे भ्राता भरतजीनें सुग्रीवजीसे कहाकि अब श्रीरामचंद्रजीके अभिषेकार्थ जल लानेके लिये दूतोंको आज्ञा दीजिये ॥ ४८ ॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर सुग्रीवजीनें चार वानर श्रेष्ठोंको चार घड़े दिये, जो घडे सब रत्नोंसे भूषित हो रहेथे, यह घड़े देकर सुग्रीवजीने कहा ॥ ४९ ॥ हे वानरगण जिस्से कल प्रभातके समय चारों समुद्रोंका जल ले आय सको, ऐसा करनेमें तुम यत्नवानहो ॥ ५० ॥ सुग्रीवजीकी इस प्रकारसे आज्ञापाय हस्तीकी समान बलवान और गरुड़जीकी समान वानरगण शीघ्रतासे ऊपरको कूदे ॥ ५१ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानजी वेगदर्शी ऋषभ, और जाम्बवान यह चार जने कलशोंमें भरकर जल लाये ॥ ५२ ॥ यह चारों जन पांच शत नदियोंका जल घड़ोंमें भरकर लाये पूर्वके समुद्रसे कलशमें जल भरकर लायागया ॥ ५३ ॥ सब रत्नोंसे विभूषित इस कलशमें जल भरकर सत्यसंपन्न सुषेणजी लाये । वानर ऋषभ दक्षिण समुद्रसे समुद्रका जल लाये ॥ ५४ ॥ यह जल लालचंदन और सुवर्णसे लेपित

कंचनके घड़ेमें लाया गया। गवय नाम वानर पश्चिमके समुद्रसे जल लाया ॥ ५५ ॥ पवनकी समान विक्रमकारी गवय यह जल बड़े भारी रत्नजटित घड़े में लाया उत्तरके समुद्रसेभी जल आया। यह जल अति शीघ्र गरुड़ व पवनकी समान विक्रमी ॥ ५६ ॥ धर्मात्मा सर्व गुणयुक्त पवन कुमार हनुमानजी लाये तब वानरश्रेष्ठों करके लाये हुए उस जलको देखकर ॥ ५७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये शत्रुघ्नजीनें सब मंत्रियोंके साथ बैठे हुए पुरोहित श्रेष्ठ वशिष्ठजीसे और सब सुहृद् लोगोंसे कहा ॥ ५८ ॥ शत्रुघ्नजीके वचन सुनकर वृद्धगुरु वशिष्ठजीनें व और दूसरे ब्राह्मण लोगोंनें श्रीरामचन्द्रजीको सीताजीके सहित रत्नमय सिंहासनपर बैठाया ॥ ५९ ॥ वशिष्ठ, विजय, जावालि, कश्यप, कात्यायन, गौतम, और वामदेव ॥ ६० ॥ इत्यादि महर्षियोंने निर्मल और सुगन्धित जलसे पुरुष व्याघ्र श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक किया, कि जैसे वसु लोगोंने इन्द्रका अभिषेक कियाथा ॥ ६१ ॥ प्रथम ऋत्विक ब्राह्मणोंने तिसके पीछे कन्याओंने, फिर मंत्री पुरवासी, और वनियोंनें हर्षित मनसे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक किया ॥ ६२ ॥ फिर आकाश में टिके हुए देवताओंने चारों लोकपालोंके साथ मिलकर सब औषधियोंसे युक्त जलसे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक किया ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त पितामह ब्रह्माजीनें अपने बनाये हुए जिस रत्नमय मुकुटसे पहले अति तेजस्वी राजा मनुका अभिषेक कियाथा ६४॥ और मनुजीके पीछे इनके वंशके राजा लोगोंकाभी क्रमसे जब अभिषेक कराया गयाथा उन सबके शिरपर सुवर्ण निर्मित महाधनोंसे शोभित ॥ ६५ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे चित्र विचित्र होनेंके कारण सुशोभित अनेक प्रकारके रत्नोंसें जड़ी हुई चौकियोंपर बैठाय २ विधि विधानसे धारण कराया गया ॥ ६६ ॥ वही मुकुट अभिषेक होनेंके पीछे महात्मा वशिष्ठजीनें श्रीरामचन्द्रजीके मस्तकपर धारण कराया, व ऋत्विक लोगोंनें और गहनोंसे श्रीरामचन्द्रजीको सुसज्जित कर दिया॥६७॥ शत्रुघ्नजीनें उनके मस्तकपर मंगलसूचक श्वेतछत्र, और वानर राज सुग्रीवजीनें श्वेत चमर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर विजन किया ॥ ६८ ॥ और

दूसरा चन्द्रमाकी समान श्वेत वालोंका चमर राक्षसोंमें इन्द्र विभीषणजीनें ग्रहण किया शतपद्म शोभित प्रकाशमान शरीरको शोभायमान करने वाली माला ॥ ६९ ॥ इन्द्रजीसे प्रेरित होकर वायुनें श्रीरामचन्द्रजीको दी, सर्वरत्नोंसे जड़ित मणियोंसे विभूषित ॥ ७० ॥ एक मोतियोंका हारभी पवनजीनें इन्द्रकी प्रेरणासे रघुनाथजीको दिया । आकाशमें गन्धर्वोंने गाना आरंभ किया, व अप्सरायें नृत्य करनें लगीं ॥ ७१ ॥ बुद्धिमान श्रीरामचन्द्रजीके उस अभिषेक में उसके योगही यह सब हुआ, उस कालमें पृथ्वी धान्यसे युक्त हुई वृक्षोंमें फल लगे ॥ ७२ ॥ और फूल सुगन्धियुक्त होगये यह सब कुछ श्रीरामचंद्रजीके अभिषेकके उत्सव में हुआ । एक लाख घोड़े, नई व्याई हुई गायें व औरभी गायें ॥ ७३ ॥ और शत बैल प्रथम ब्राह्मणोंको मनुष्यश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीनें दिये, और फिर ब्राह्मणोंको तीस करोड़ अशरफियें दीं ॥ ७४ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीनें बड़े मोलके अनेक भांतिके वस्त्राभूषण सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित मणियोंसे जड़ी सुवर्णसे बनी ॥ ७५ ॥ दिव्यमाला सुग्रीवजीको मनुजेश्वर श्रीरामचन्द्रजीनेंदी फिर वैदूर्यमणिसे चित्रित चंद्रमाकी किरणोंसे विभूषित ॥ ७६ ॥ धृतिमान वालिकुमार अंगदजीको दो अंगद (बाजू) दिये, मणिश्रेष्ठोंसे जड़ित श्रेष्ठ मोतियोंका हार ॥७७॥ चंद्रमाकी किरणोंके समान प्रभावाला सीताजीको दिया, दिव्यवस्त्र युगल निर्मल जो कभी पुराने नहों और शुभ गहनें ॥ ७८ ॥ सीताजीनें हनुमानजीके पहले किये उपकारको यादकर हनुमानजीको देदिये, और अपने कंठका हार निकालकर जानकीजीनें ॥ ७९ ॥ सब वानरोंकी ओर और अपने पति श्रीरामचंद्रजीकी ओर वारंवार देखा । यह देखकर संकेत व इंगितके जाननेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें जानकीजीसे कहा ॥ ८० ॥ हे शुभगे! हे भामिनी! जिसपर तुम प्रसन्न हुई हो उसको यह हार दे डालो । इसके उपरान्त कमलकी समान नेत्रवाली सीताजीनें वह हार पवनकुमारको दिया ॥ ८१ ॥ कि जिनमें तेज, धृति, यश, निपुणता, सामर्थ्य, विनय, नय, पौरुष, विक्रम और बुद्धि इत्यादि गुण सब सदा वर्तमान रहते हैं ॥ ८२ ॥ उन्ही वानरश्रेष्ठ पवनकुमार हनुमानजीको वह हार सुभगा सीताजीनें दिया, उस कालमें चंद्रमाकी

समान वानरश्रेष्ठ हनुमानजी वह गौरवर्णका हार धारण करकै श्वेत वादरोंसे युक्त पर्वतकी समान शोभायमान होनेंलगे ॥ ८३ ॥ और दूसरे वानर लोग जोकि वृद्धथे व और यूथपति लोग वसन भूषणादिसे यथायोग्य रूपसे प्रतिपूजित हुए ॥ ८४ ॥ इस प्रकारसे विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान, हनुमान, व और दूसरे वानर यूथपति गण सरल कर्मकारी श्रीरामचंद्रजीसे ॥ ८५ ॥ बड़े २ मोलके रत्न और माला चन्दनादि द्वारा सत्कृत हो हर्षित मनसे अपने २ टिकनेके स्थानपर गये ॥ ८६ ॥ इसके पीछे शत्रुदमनकारी महीपति श्रीरामचंद्रजीनें, मैन्द, द्विविद और नीलकी इच्छानुसार सब कामना पूरणकी ॥ ८७ ॥ इस प्रकारसे यह समस्त वानर श्रेष्ठगण महात्मा मनुजनाथ श्रीरामचंद्रजीका अभिषेक दर्शन करकै उनसे विदाहो फिर किष्किन्धा पुरीको आये ॥ ८८ ॥ वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवजी रामाभिषेक देखकर श्रीरामचंद्रजीसे सन्मानितहो किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ८९ ॥ महायशवान धर्मात्मा राक्षसोंमें श्रेष्ठ विभीषणजी राज्य और धन रत्न पायकर राक्षस श्रेष्ठोंके सहित लंका पुरीमें चले आये ॥ ९० ॥ इस ओर धर्मवत्सल उदारस्वभाव महा यशस्वी श्रीरामचंद्रजी शत्रुको विजयकर बड़ाभारी राज्यपाय परमानंदसे प्रजापालनमें नियुक्तहो धर्मके जाननेंवाले लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ९१ ॥ हमारे पूर्व पुरुषाओंने बलपूर्वक जिस राज्यको अपने आधीन कियाथा तुम हमारे सहित उस राज्यको भोगो हे वीर ! पुरुषाओंने जो धुरी पहले धारणकीथी तुमभी यौवराज्यमें अभिषेकित होकर वैसेही धुरीको उठाओ अर्थात् राज्यका कुछ भार संभालो ॥ ९२ ॥ परन्तु इस भांतिसे कहे सुने जानेंपरभी जब सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीनें युवराज पदवीपर अभिषेकित होनेंकी वासना नहींकी, तब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें भरतजीको युवराज पदवीपर अभिषेकित किया ॥ ९३ ॥ राजकुमार श्रीरामचंद्रजीनें पौन्डरिक अश्वमेध व औरभी बहुतसारे यज्ञकरकै देवता लोगोंको तृप्त किया ॥ ९४ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीनें दशसहस्र वर्ष राज्य पालन करकै एक २ करकै श्रेष्ठ अश्वोंसे युक्त और बहुत सारी दक्षिणा देकर दश अश्वमेध यज्ञ किये ॥ ९५ ॥ इस प्रकारसे वह आजानुलम्बितबाहु जांघोतक जिनकी बाहैं लटकती हों चौडी

छातीवाले प्रतापवान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित राज्य पालन करनें लगे ॥ ९६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें उत्तम राज्यको पायकर पूर्णमनोरथ हो भ्राता सुहृद और बान्धवोंको सहित अनेक प्रकारके यज्ञ किये ॥ ९७ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी राज्य करतेथे उस समय नतो किसीस्त्रीको विधवापनका शोक करना पड़ा और रोग व सर्पादिकसे उत्पन्न भय तौ उसकालमें लोप होगयेथे ॥ ९८ ॥ चोरोंका तौ नमा भी नहीं था इस कारण किसीका भी कुछ धनादिक चोरी नहीं जाताथा उस समय वृद्धलोगोंको बालकोंके मृतक कर्म नहीं करने पड़तेथे ॥ ९९ ॥ सबही कोई रामचंद्रजीका दर्शन पाय धर्मकी चिन्तामें लगे हुए परमानंदसे समय बितातेथे और कोईभी किसीकी हिंसा नहीं करतेथे ॥ १०० ॥ उन श्रीरामचंद्रजीके राज्यमें सबही रोग शोकसे हीनथे और सबहीकी सहस्र वर्षकी परमायु होतीथी ॥ १०१ ॥ उस कालमें सब वृक्ष सदा पुष्प फल और मूल उत्पन्न करतें जब लोगोंकी इच्छा होती तभी बादल जल वर्षा देते,और पवन भी उस समय सुखका देनेवाला चलताथा ॥ १०२ ॥ श्रीरामचंद्रजीके राज्यमें उनकी धर्मपरायण प्रजा सन्तुष्ट मनसे अपने२कार्य में लगी रहती व धर्माचरण करती कोईभी अन्यायाचरण नहीं करता ॥ १०३ ॥ सबही समस्त लक्षणोंसें युक्त और धर्मवानथे इस प्रकारसे दशहजार वर्षतक श्रीरामचंद्रजीनें राज्य किया ॥ १०४ ॥ धर्म यश व आयु बलका बढानेवाला राजा लोगोंको विजय देनेवाला यह आदिकाव्य महर्षि वाल्मीकिजीनें बहुत दिनहुए बनाया यह काव्य वेद सम्मत है ॥ १०५ ॥ इस लोकमें जो पुरुष इसको सदा श्रवण करता रहै वह सब पापोंसे छुट जाता है । इस आदिकाव्यके श्रवण करनेसे पुत्र चाहनेवाला पुत्र और धन चाहनेवाला धन पावैगा ॥ १०६ ॥ इस लोकमें रामाभिषेकयुक्त इस काव्यके श्रवण करनेसें राजा लोग अपने शत्रुओंको जीतेंगे और समस्त पृथ्वी जीतने को समर्थ होंगे ॥ १०७ ॥ जिस प्रकार से रामचंद्र लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नको पुत्र पायकर कौशल्या सुमित्रा कैकेयी सुपुत्रवाली हुईथीं वैसेही समस्त स्त्रियें इस आदिकाव्यके श्रवण करनेसे सुपुत्रवती होंगी ॥ १०८ ॥ पूर्ण पराक्रमी श्रीरामचंद्रजीके इस विजय चरित्रकी रामायणको जो कोई पुरुष श्रवण करता है उसकी दीर्घा

यु होतीहै ॥ १०९ ॥ जो कोई इस प्राचीन काव्य वाल्मीकिके निर्माण कियेको श्रवण करते हैं और श्रद्धासे क्रोध रहित हो इसका अनुसरण करतेहैं सो बड़े २ कष्टोंसेभी मुक्त होजातेहैं ॥ ११० ॥ जो प्राचीन समयके बनाये हुए इस वाल्मीकिकृत काव्यका श्रवण करते हैं; वह प्रवासके अंतमें कुशल पूर्वक आनकर अपने कुटुम्ब बान्धवोंके सहित आनंदको प्राप्त होते हैं ॥१११॥ जो इस चरित्रको श्रवण करते हैं वे रामचंद्रके प्रसादसे सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होते हैं, और इसके श्रवण करनेंवालोंसे सब देवता प्रसन्न होतेहैं ॥ ११२ ॥ जिसके घरमें यह पुस्तक रहतीहै उसके यहां विघ्न करनेंवाले देवता उपद्रव नहीं करते किन्तु शान्तहोजातेहैं, राजा पृथ्वीकी जय प्राप्त करते, प्रदेशी कल्याणको प्राप्त होते हैं ॥ ११३ ॥ रजस्वला स्त्री शुद्धिस्नान दिनसे सोलहवें दिनतक रामायणको नियमसें श्रवणकर उत्तम पुत्रोंको उत्पन्न करती हैं, और जो इस पुरातन इतिहासके पूजन करते व पाठ करते हैं ॥ ११४ ॥ उनके सब पाप दूर होकर दीर्घ आयुकी प्राप्ति होतीहै शिरसे भक्ति पूर्वक प्रणाम करकै क्षत्रियोंको यह कथा ब्राह्मणसे श्रवण करनी चाहिये ॥ ११५ ॥ जो इसको सुनैंगे उन्हैं ऐश्वर्य और पुत्रप्राप्ति निश्चयहोगी इसमें संदेह नहीं जो कोई इस रामायणको सम्पूर्ण सुनते तथा पाठ करतेहैं ॥११६॥ उनके ऊपर वही आदि देव बड़ी भुजावाले स्वामी नारायण सनातन विष्णु रामचंद्रजी सदा प्रसन्न रहतेहैं ॥ ११७ ॥ यह प्राचीन आख्यान संपूर्ण श्रोताओंको मंगलकारी है इसे निरंतर श्रवणकर विष्णुजीके बल वीर्यका गान करते रहें ॥ ११८ ॥ इस रामायणके श्रवण करनेंसे और पढ़नेसे समस्त देवता और पितृलोक प्रसन्न होतेहैं ॥११९॥ जो मनुष्य इस ऋषिप्रणीत श्रीराम संहिताको लिखैंगे,वह लोग स्वर्गमें वास पावेंगे॥१२०॥ पुरुष और स्त्रियें इस मंगलमय सुख जनक महाअर्थयुक्त वचनोंको श्रवण करनेसे सब प्रकारकी सिद्धि पावेंगी,और उनके कुटम्ब व धन धान्यादिकी वृद्धि होगी ॥ १२१ ॥

आयुष्यमारोग्यकरंयशस्यंसौभ्रातृकंबु
द्धिकरंशुभंच ॥ श्रोतव्यमेतन्नियमेनस
द्भिराख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः॥ १२२ ॥

इस शुभ आख्यानके श्रवण करनेसे आयु बढ़ती है;शरीर रोगरहित रहताहै; यशका विस्तार होताहै इसके श्रवण करनेसे भ्रातृभाव स्थिर रहताहै, बुद्धि, वृत्ति बढ़ती है, तेज बढ़ता है; इस कारण सब शुभाभिलाषी पुरुषोंको नियम सहित इसका पाठ करना चाहिये ॥ १२२ ॥

दोहा—असुर निकन्दन भय हरण, श्रीपति श्रीरघुनाथ। निज भक्तन कहँ एकही, पुनि पुनि नावों माथ ॥ १ ॥ कृपायतन अवधेश प्रभु, विनय करौं दिन रैन। पलक न एक विसारहू, विनु देखे नाहिं चैन ॥ २ ॥ सदा दासहित सकल विधि, करत अमित उपकार। दीन दुसह दुख टारि वो तनिक न लावत वार ॥ ३ ॥ कारुणीक तव नाम प्रभु, अरु करुणा कर ऐन। भक्त पाल भव भय हरण, सदा सुमंगल दैन ॥ ४ ॥ जनक लली जगनाथ तुम, प्रीयलखन कर भ्रात, पितु दशरथ कर नैन इव, चहौं दरश नित प्रात ॥ ५ ॥ दीनबन्धु करुणायतन, कारण रहित कृपाल। भयमोचन लोचन कमल, करहु मुक्त जंजाल ॥६॥ पाणि जोरि चरणन परौं, कोउ विधि कीजे पार। नहि रक्षक तुम विन कोऊ, बूड़त कष्ट मझार ॥७॥ कृपासिन्धु रघुवीर मम, काटहु भवके पास। काम क्रोध मद लोभतें छुटकारहु पुनि दास ॥ ८ ॥ दिनकर कुल कमलापति, सुन्दर रूप स्वरूप। सहज सुलोचन पुलक तनु, भजौं अवध सुत भूप ॥ ९ ॥ जलज नयन करुणानिधि, विनौं पाणि युग जोर। लखन सहित सिय उरवसौ हे अवधेश किशोर! ॥ १० ॥ जोरि पाणि विनवत सुनौं, शीलसिन्धु मम वैन। नहि विवेक कछु बुद्धि मोहिं, दरश देहु सुखदैन ॥ ११ ॥ करुणाकर सानुज, सिया मम उर कीजे वास। निशा दिवस मोचित रहत तुम्हरी प्रभु इक आस ॥ १२ ॥ मद मोचन दोषन हरण, नयन कंज रघुनाथ। दीन ईश कुल मण्डनम्, पुलकित नावउँ माथ ॥ १३ ॥ धन्वाधर कोमल प्रिय, सेवत देव सुरेश। तव शुभ पद सादर नमौं, राखहु शरण हमेश ॥ १४ ॥ अतुलित बल परताप तव, मैं मति मन्द अजान। कथन चहौं पै सक नहीं, नाहिं कथ योग महान ॥ १५ ॥ सुनहुँ नाथ निज दास कहँ, अति आरत सह वान। भक्ति हीन बुधिहीनप्रभु, नहि कछु राखत ध्यान ॥ १६ ॥ तदपि याहि मन राखिकै; चहौं दरश पद तोर, सेवक स्वामि न छाँड़ही, यदपि मन्द धन

घोर॥ १७ ॥ भव दुख भंजन हेप्रभो,! हरहु जगत्‌की पीर। धन्यनाथ! तो समनहीं, सब जग जानत बीर ॥ १८ ॥ विनय करों अतिप्रेमसों सुनहु नाथ चित लाय। अन्त समय शुभ ते कढै, रामहि रघुकुल-राय ॥ १९ ॥ हे रंजन जन मन सदा। धरणीधर! गोविन्द! ॥ हे पालक! घालक अरी!, राखहु निजकुल इन्द ॥ २० ॥ ज्यहि श्रुति गावत रैन दिन, मुनिवर राखत ध्यान। ज्येहि सुमिरत कलिमल नशै, करहु सोई कल्यान ॥ २१ ॥ ज्येहि कहँ भाषत श्रुति सदा, अगम अनादि अनंत। जेहि कहँ व्यापक विरज अज, रक्षहु सोइ भगवन्त ॥ २२ ॥ हे जगनायक! विश्वपति,! जगत पिता! जगदीश!। तारक भक्त सनेह सह, देव! दिवाकर ईश! ॥ २३ ॥ अन्तर्यामी तुम प्रभु, आदि अंत नहिं तोर, सत्यसिन्धु उपमा रहित, हेरहु ममदिशि कोर ॥ २४ ॥ सुखसागर सीता रमण, शोभाकर रघुराज। रविकुल कैरव चंद पुनि, राखहु मोकहँ लाज ॥ २५ ॥ विपद काल रक्षक तुमहि, तुमहिं छांड़ि नहिंकोउ। यासो रक्षहु प्रेमसह, लखन सीय सह दोउ ॥ २६ ॥ किमि वरणै मतिमन्द कवि, रघुवर शील सनेह!। शेष शारदा मुख थक्यो, वर्णत प्रभुता नेह ॥ २७ ॥ यह अभिलाषा मोरमन, वरनौं तो सन आज। तव पद अम्बुज रज लहउँ, सिद्धि होंहिं सब काज ॥ २८ ॥ नहिं धन तृष्णा बल नहीं, नाहिं तिय सुत कर चाहि। नहिं प्रभुता जगमें चहौं, तव पद नेह सदाहि ॥ २९ ॥ कविजन मन आनँद करन, गुणियनके शिरमोर। सदा निरतरत भक्तपथ, न्यायिक जगमें सोर ॥ ३० ॥ गोद्विज रक्षक शील निधि, धर्म धुरन्धर धीर। खेमराजको जान जन, कृपा करहु रघुवीर ॥ ३१ ॥ सियालषन, शत्रुघ्न, अरु; भरत भ्रातके साथ। जन ज्वाला प्रसाद उर, बास करहु रघुनाथ! ॥ ३२ ॥ दोयज शुक्क आषाढ़की, शुभग आज शनिवार ॥ युद्धकांड भाषाकियो निजमतिके अनुसार॥३३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये कात्यायन कुमार पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृते भाषानुवादे चतुर्विंशतिसहस्रिकायां संहितायां श्रीमद्युद्धकांडे पंचविंशेऽह्नि वर्तमान कथा प्रसंगःसमाप्तः॥

इसके पीछे उत्तरकांडहै जिसका पहला श्लोक यहहै ॥

प्राप्तराज्यस्यरामस्यराक्षसानांवधेकृते ॥
आजग्मुर्मुनयःसर्वेराघवंप्रतिनंदितुम् ॥ १ ॥

राक्षस कुलको निर्मूल करके जब श्रीरामचंद्रजी राजगद्दीपर बैठे तब मुनिलोग उनके वैभवकी प्रशंसा करनेंकी वासनासे उनके निकट आये॥ १॥

इति श्रीमद्रामायणे युद्धकांडं
समाप्तम्

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासनें मुम्बई में
"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखानेमें छापकर
प्रसिद्ध किया संवत् १९५०

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.
खेमराज श्रीकृष्णदास
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना
बम्बई.

ल.
रा.
सी.
भ.
ऋषि

सीतापातालप्रवेश·
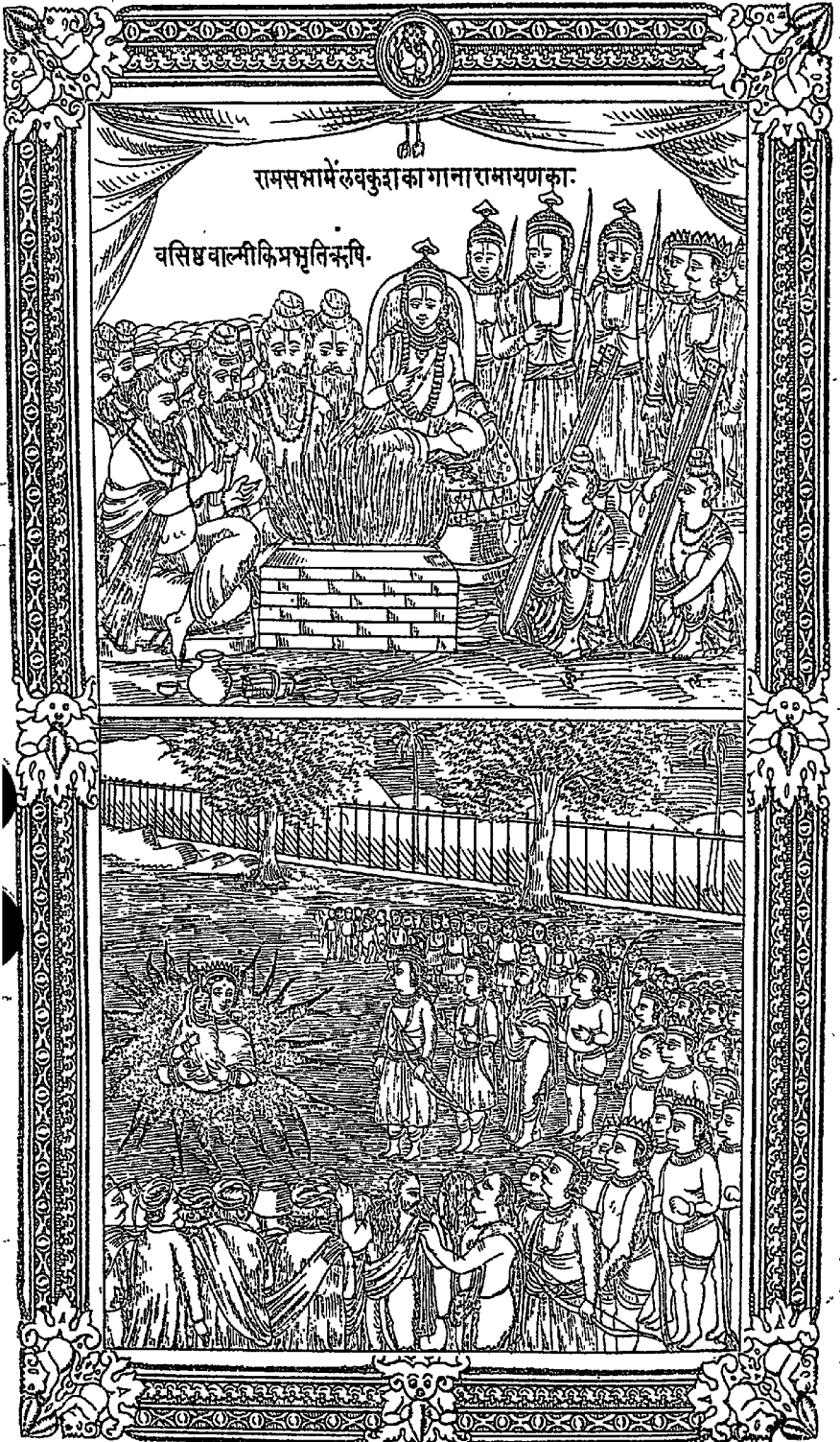
श्रीः ।

श्रीवाल्मीकीयरामायण उत्तरकांडभाषा ॥

दोहा—भरत लखन शत्रुघ्न सह, दशरथ राजकुमार ॥
राजत सीताराम प्रभु, सब सुखमा आगार ॥ १ ॥
सुर नर मुनि वंदन करत, योग समाधि विसारि ॥
शत्रुजीत निज जननके, दिये सकल दुख टारि ॥ २ ॥
मुखकी दुति छविसों छई, कही कौनपैजाय ॥
या झलकन मन कविनको, लियो चुराय रिझाय ॥ ३ ॥
धनुषधार सब महीको, दीनों भार उतार ॥
तिन रघुनायक स्वामिको, वन्दौं वारम्वार ॥ ४ ॥

सीता रामकी वंदना ॥

छप्पय ॥

जयति जयति जय जननि लड़ैती जनक जानकी॥जयति जयति प्रियतमा राम करुणानिधानकी ॥ जयति जयति सिय सती तीयगण माणिगणनीया॥ जयति २ ललना ललाम अतिशय कमनीया॥ जयति २ लीला ललित मनुज जन्म पावन धरणि॥ जयति २दुःख हरणि सब मम इच्छा पूरण करणि ॥ १ ॥ जयति जानकी रमण जनक कन्या प्रिय हित रत ॥ जयति अनुज जाया समेत धृत कठिन तपोव्रत ॥ जयति वाट वट विटप क्षीर कृत जटा जूट लट ॥ जयति उरज संकट विचित्र श्रित चित्रकूट तट ॥ जय जयति कुटिल प्रति भट जनित जटिल बिकट संकट हरण ॥ जय जयति पीत पट धरण ममइच्छा पूरण करण ॥ २ ॥

प्रथम सर्गः ॥

प्राप्तराज्यस्यरामस्यराक्षसानांवधेकृते ॥
आजग्मुर्मुनयःसर्वेराघवंप्रतिनंदितुम् ॥ १ ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ राक्षस कुलको निर्मूल करके जब श्रीरामचंद्रजी राज्यगद्दीपर बैठे तब मुनिगण उनके वैभवकी प्रशंसा करनेकी वासनासे

उनके निकट आये ॥ १ ॥ कौशिक, यवक्रत, गार्ग्य, गालव, कण्व, और मेधातिथीके पुत्र प्रभृति जोकि पूर्व दिशाके रहनेवालेथे ॥ २ ॥ स्वस्त्यात्रेय, भगवान नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, भगवान सुमुख और विमुख ॥ ३ ॥ इत्यादि जो कि दक्षिण दिशामें वास करतेथे आये नृषङ्ग, कवरी, धौम्य, महाऋषि कौषेय ॥ ४ ॥ इत्यादि यह सबही पश्चिम दिशाके रहनेवाले अपने शिष्योंके सहित आये। वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, ॥ ५ ॥ जमदग्नि भरद्वाज, और सप्तर्षि जो कि सातों नित्य उत्तर दिशामें वास करतेथे ॥६॥यह सब महात्मा श्रीरामचंद्रजीके स्थानपर आये इन सब अग्निकी समान प्रभावालोंको प्रतिहारियोंनें भली भांति बैठाया ॥ ७ ॥ वेद वेदाङ्गके जाननेंवाले अनेक शास्त्र विशारद मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अगस्त्यजी द्वारपालसे बोले ॥ ८ ॥ कि हम समस्त ऋषि यहांपर आयेहैं; यह समाचार तुम श्रीरामचंद्रजीसे निवेदन कर दो। अगस्त्यजीके वचन सुनकर प्रतिहारी अति शीघ्रतासे चला ॥ ९ ॥ वह शीघ्रही महात्मा श्रीरामचंद्रजीके समीप प्रवेश करता हुआ नीति और मनकी बात जाननेवाला.श्रेष्ठ व्रत युक्त चतुर व धीर्यवान् ॥ १० ॥ वह द्वारपाल पूर्ण चंद्रमाकी समान श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करके कहनें लगा कि भगवन् ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्यजी यहांपर आयेहैं ॥ ११ ॥ बालसूर्यकी समान उन समस्त लोगोंका आना सुनकर श्रीरामचंद्रजीनें द्वारपालसे कहा कि तुम आदर सन्मान सहित उनको यहांपर ले आओ ॥ १२ ॥ जब मुनि लोग वहांपर आगये तब श्रीरामचंद्रजी हाथ जोड़कर खड़े होगये, और पाद्य अर्घ्यसे आदरसहित उनकी पूजा कर प्रत्येकको गोदान किया ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें अति यत्न सहित सबको प्रणाम करके बैठनेंको आसन दिये, उन सुवर्ण चित्रित बड़े श्रेष्ठ ॥ १४ कुशासनोपर और मृग चर्मादिपर यथा योग्य आसन बिछाय २ सब मुनिश्रेष्ठ बैठे ॥ १५ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीनें उन सबसे कुशल मंगल पूछा तब वेदके जाननेवाले शिष्योंके सहित महर्षिगण बोले, हे महावीर रघुनंदन ! हमारा सब प्रकारसे मंगलहै ॥ १६ ॥ अधिक करकै आप शत्रुओंका संहार कर कुशल सहितहैं यह देखकर हमको अत्यन्त आनंद हुआ। हे राजन्! आपने बड़े भाग्यसेही लोकोंके रुवानेंवाले रावणको

मारा॥१७॥हे श्रीरामचन्द्र ! इसमें कुछ संदेह नहीं कि आप धनुषकी सहायतासे त्रिलोकीकोभी जीत सकतेहैं फिर पुत्र पौत्र सहित रावणका नाश करना तौ एक साधारण बात है॥१८॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! आपनें भाग्यसेही पुत्र पौत्र सहित रावणका संहार किया और हमनेभी आज बड़े भाग्यसेही सीताजीके सहित आपको विजयी देखा ॥ १९ ॥ हे धर्मात्मन् ! आपके हितकारी भ्राता लक्ष्मण, माता, व और बन्धु बान्धवोंके साथ आपको बड़े भाग्यसेही आज हम लोगोंने देखा ? ॥ २० ॥ हे राजन् ! प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर, और अकम्पन इत्यादि दुर्द्धर्ष राक्षसोंको आपनें भाग्यसेही संहार कियाहै ॥ २१ ॥ जिसके शरीरके प्रमाणसे बड़ें प्रमाणके शरीरवाला और राक्षस इस जगत्में नहीं हैं आपनें बड़े भाग्यसेही ऐसे शरीर धारी कुम्भकर्णको संग्राममें विनाश किया ॥ २२ ॥ हे राम ! त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, और नरान्तक इत्यादि महावीर्यवान निशाचरोंको आपनें भाग्यहीसे वध कियाहै ॥ २३ ॥ देवता लोगोंसेभी अवध्य राक्षसराज रावणके सहित द्वन्द्वयुद्ध करके आपने विजय पाई है यह बड़े आनंदकी बातहै ॥ २४ ॥ हे महावीर ! संग्राममें रावणका जीत लेना तौ कुछ नहीं है परन्तु इन्द्रजीतका मार डालना अति कठिन कार्य-था, सो आपनें उस मेघनादको द्वन्द्व युद्धमें प्राप्तहो भाग्यसेही उसका संहार कियाहै ॥ २५ ॥ हे वीर ! आप कालकी समान दृष्टि न आयकर ऊपर दौडनेवाले देवताओंके शत्रु इन्द्रजीतके अस्त्र बंधनसे भाग्यहीसे छूटे और उसपर विजय पाई, इस कारण इन्द्रजितका वध सुनकर हम अत्यन्त आनंदित हुए ॥ २६ ॥ हे वीर ! संग्राममें इन्द्रजीत अनेक प्रकारके मायारूप धारण करताथा, विशेष करकै वह सब प्राणियोंसे अवध्यथा, उस इन्द्रजीतके वधका वृत्तान्त सुन हम सब आपकी बड़ाई करते हैं ॥ २७ ॥ इन्द्रजितका संहार सुन हम सबको परम विस्मय होता-है, हे वीर ! यह बड़े भाग्यकी बातहै कि आपनें इस प्रकारसे राक्षसकुल निर्मूल करके जगत्को शान्ति देनेवाली परम पुण्य अभय दक्षिणादी. हे शत्रुओंके खेंचनेंवाले रघुनंदन! बड़ाही भाग्य है कि आप इसप्रकार विजय पाय बढ़े हैं ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्मज्ञान सम्पन्न मुनि लोगोंके वचन सुनकर अति विस्मितहो हाथ जोड़कर

बोले ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! महावीर निशाचर रावण और कुंभकर्ण को छोड़कर आप किस कारणसे रावणके पुत्र इन्द्रजितकी बड़ाई करते हैं ? ॥ ३० ॥ महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, मत्त, उन्मत्त, दुर्द्धर्ष, देवान्तक नरान्तक इत्यादि महावीर राक्षसोंको छोड़कर आप किस कारणसे रावणके पुत्र मेघनादकी प्रशंसा करते हैं ? ॥ ३१ ॥ अतिकाय, त्रिशिरा, धूम्राक्ष, इत्यादि महावीर निशाचरोंको त्यागकर आप किसलिये रावणके सुतकी बड़ाई करते हैं ? ॥ ३२ ॥ उस वीरका प्रभाव कैसाथा ? बल कैसाथा और उसमें पराक्रम कितनाथा, व वह इन्द्रजित किस कारणसे रावणसे बलवीर्यमें अधिकता ॥ ३३ ॥ यह सब वृत्तान्त जो छिपानेंके योग्य नहो और आप लोगोंकोभी इसके कहनेंमें बाधानहो, तो हम इसके श्रवण करनेंकी इच्छा कहते हैं कुछ आपको यह आज्ञा नहीं दीजाती है ॥ ३४ ॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! इन्द्रजितनें इन्द्रको किस प्रकारसे जीत लिया और उसनें किस उपायसे वरपाया ? पुत्र बलवान हुआ, परन्तु उसका पिता रावण वैसा बलवान क्यों न हुआ ? ॥ ३५ ॥

कथंपितुश्चाप्यधिकोमहाहवेशक्रस्यजेताहिक
थंसराक्षसः ॥ वराश्चलब्धाःकथयस्वमेद्यपाप्र
च्छतश्चास्यमुनींद्रसर्वम् ॥ ३६ ॥

और वह राक्षस संग्राममें अपने पितासे क्यों अधिक पराक्रमी हुआ। किस प्रकारसे इन्द्रको जीता, किस प्रकारसे वर प्राप्त किया। हे मुनिश्रेष्ठ ! हम पूछते हैं आप इन सब बातोंका उत्तर दीजिये ॥ ३६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उत्तरकाण्डे भा० प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यमहात्मनः ॥ कुंभ
योनिर्महातेजावाक्यमेतदुवाचह ॥ १ ॥

हे महावोर उत्पन्न हुए महातेजस्वी अगस्त्यजी महात्मा रघुनंदन श्रीरामआप शत्रुओंके वचन सुनकर बोले ॥ १ ॥ हे श्रीरामचंद्र ! रावणके पुत्रनें नंद हुआ। हे राजन् शत्रुओंका संहार कियाथा, और जिस कारण वह

समस्त शत्रुओंसे अवध्यथा, हम उसके बड़े भारी उस बल वीर्यका वृत्तान्त ठीक २ कहेंगे ॥ २ ॥ हे रघुनाथजी! प्रथम जो रावणके कुल, जन्म, और जिस प्रकारसे उसनें वर पायाथा वह समस्त तुम्हारे निकट यथार्थ २ वर्णन करताहूं आप श्रवण करें ॥ ३ ॥ हे राम! सत्ययुगमें पुलस्त्यनामक प्रजापतिके एक पुत्र हुए, ब्रह्मर्षि पुलस्त्यजी तपके प्रभावसे साक्षात् ब्रह्माजीकी समानथे ॥ ४ ॥ क्या धर्ममें, क्या शीलमें, उनकी गुण राशिका वर्णन करना असाध्यहै, तौभी इस नाम मात्रसे उनकी गुण राशिका वर्णनहो सकताहै कि वह प्रजापतिके पुत्र हुए ॥ ५ ॥ वह महा मतिमान पुलस्त्यजी प्रजापतिकी संतान होनेके कारण देवता लोगोंके अत्यन्त प्यारेथे, वरन विमल गुणोंसे वह सब लोकोंमें पूज्य हुएथे ॥ ६ ॥ परन्तु वह धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ तप करनेंकी इच्छासे महा पर्वत मेरुकी बगलमें तृणविन्दुके आश्रममें जाय बसते हुए ॥ ७ ॥ वह पुलस्त्यजी वेदाध्ययनकर अपनी इन्द्रियोंको जीत तपस्या करनें लगे, इतनेहीमें कंन्यागण आश्रमके निकट आय उनके तपमें विघ्न करनें लगीं ॥ ८ ॥ राजर्षियोंकी लड़कियें ऋषियोंकी पुत्रियें नागोंकी बेटी व अप्सरागण विहार करते २ उस स्थानमें आय पहुँची ॥ ९ ॥ वह वन समस्त ऋतुओंमेंही विहार करनेके योग्यथा और अत्यन्त सुहावना मन भावनाथा, इसीकारण यह सब लड़कियें उस वनमें आयकर नित्य खेल कूद करनें लगीं ॥ १० ॥ जिस स्थानमें वह ब्राह्मण पुलस्त्यजी रहतेथे उसी देशमें रमणीय होनेंके कारण यह सब कन्यागण गाती बजाती और भांति २ के विलास दिखातींथीं ॥ ११ ॥ इस प्रकारसे यह निन्दा रहित कन्यागण उन तपस्वीकी तपस्यामें विघ्न करनें लगीं, तब महा तेजस्वी महामुनि पुलस्त्यजी क्रोधित होकर बोले ॥ १२ ॥ कि "जो हमारी दृष्टिके सामने आवेगी वह उसी समय गर्भ धारण करैगी" वह सब इन महात्मा ऋषिके वचन सुनकर ॥ १३ ॥ ब्रह्मशापके भयसे भीतहो फिर उस स्थानमें न गईं; परन्तु राजर्षि तृणविन्दुकी पुत्रीनें यह वचन नहीं सुन पाया ॥ १४ ॥ इस कारण वही उस आश्रममें जायकर निर्भय घूमनें लगी; परन्तु वहां उसनें अपनी किसी सखीको आते हुए न देखा ॥ १५ ॥ उस कालमें महा तेजस्वी महर्षि प्रजापुत्र पुलस्त्यजी

तपके प्रभावसे प्रदीप्तहो आश्रममें वेद पढ़ रहेथे ॥ १६ ॥ वह राजकुमारी वेदध्वनिके श्रवण करनेंकी अभिलाषा करके जैसेही उन तप निधानका दर्शन करती हुई वैसेही उसका शरीर पीला पड़गया और गर्भके लक्षण प्रकाशित होगये ॥ १७ ॥ वह अपने शरीरमें इन लक्षणोंको देखकर उदास तो हुई परन्तु अपने शरीरकी अवस्था जान पिताके आश्रममें जायकर कहनें लगी ॥ १८ ॥ परन्तु तृणबिन्दुनें कन्याकी अवस्था देख-कर कहा तुमने कंन्यापनके अयोग्य अंग क्यों धारण कियाहै! ॥ १९ ॥ उस कंन्यानें अत्यन्त दीन भावसे हाथ जोड़कर उन तपोधन पितासे कहा हे पितः! जिस कारणसे हमारा ऐसा रूप हुआ उसको हम कुछभी नहीं जानती हैं ॥ २० ॥ परन्तु इस्से पहले हम अपनी सखियोंको ढूंढ़ते२ ब्रह्मचिन्तापरायण महर्षि पुलस्त्यजीके रमणीय आश्रममें अकेली चली गईथीं ॥२१॥ वहां हमनें किसी सखीकोभी आता हुआ न देखा परन्तु रूप-का यह पलट जाना देखकर हम भयके मारे यहां चली आई हैं ॥ २२ ॥ तब तपके प्रभावसे युक्त राजर्षि तृणबिन्दुनें ध्यान धरकर दिव्य नेत्रोंसे गर्भका सबकारण देख पाया कि ऋषिके कर्म बलसेही यह सब हुआ है ॥ २३ ॥ वह ब्रह्मचिन्तापरायण महर्षि पुलस्त्यजीके शापका वृत्तान्त जानकर कंन्याके सहित वहां जाय पुलस्त्यजीसे बोले ॥ २४ ॥ किहे भगवन्! अपनेही गुणोंसे भूषित हमारी पुत्री आपही यहां पर आई है सो आप भिक्षाके लिये इसको ग्रहण कर लीजिये ॥ २५ ॥ हे महर्षि! तपस्या करते २ जब आपकी इन्द्रियां थक जाया करेंगी, तब यह सदा आपकी सेवा किया करेगी, इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ २६ ॥ उसकालमें ब्राह्मण श्रेष्ठ पुलस्त्यजीनें धार्मिक राजर्षिके ऐसे वचन सुन उसे अंगीकार कर लेते हुएकि "अच्छा हम इसका पाणिग्रहण कर लेंगे" ॥ २७ ॥ राजर्षि कन्यादान करके अपने आश्रमको चले आये, और कंन्याभी अपने गुणोंसे पतिको सन्तुष्ट करके वहां वास करनें लगी ॥ २८ ॥ इसी अवसर में मुनि श्रेष्ठ उस कंन्याके सच्चरित्र व्यवहारसे संतुष्ट हुए, और वह महातेजस्वी प्रसन्न होकर यह बोले ॥ २९ ॥ हे सुश्रोणि! हम तुम्हारे गुणोंसे परम प्रसन्न हुएहैं इसकारण हे देवि! आज तुमको अपनी समान पुत्र देंगे; यह पुत्र पौलस्त्यनामसे विख्यात हो पिता और माताके वंशकी वृद्धि

करेगा ॥ ३० ॥ हमारे वेद पढ़नेके समयमें तुमकरकै वेद सुना गयाथा, इसकारण तुम्हारे इस पुत्रकानाम विश्रवा होगा, इसमें संशय नहीं ॥ ३१ ॥ वह देवी इस प्रकारसे वर पाय अपने मनके सहित अत्यन्त हर्षित हो, थोड़ेही दिनोमें त्रिलोकविख्यात यशवान और धर्मवान् विश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न करती हुई ॥ ३२ ॥

श्रुतिमान्समदर्शीचव्रताचाररतस्तथा ॥ पितेवतपसायुक्तोअभवद्विश्रवामुनिः ॥ ३३ ॥

श्रुति ज्ञान युक्त विश्रवाजी मुनि सब बातोंमें समदर्शी हुए, और व्रताचारमें रतहो अपने पिताकी समान तपस्या करनें लगे॥३३॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे भाषानुवादे द्वितीयः सर्गः२

तृतीयः सर्गः ॥

अथपुत्रःपुलस्त्यस्यविश्रवामुनिपुंगवः॥ अचिरेणैवकालेनपितेवतपसिस्थितः॥ १ ॥

इसके उपरान्त पुलस्त्यजीके पुत्र मुनियोंमें श्रेष्ठ विश्रवाजी बहुत थोड़े समयमें पिताकी समान तपवान हुए ॥ १ ॥ वे सत्यवान, शीलवान इन्द्रियोंको जीतनें वाले, वेदाध्ययन में तत्पर पवित्र, सब भोगके पदार्थोंसे चित्तको हटाये और अपने धर्मों में नित्य परायणथे ॥ २ ॥ महा मुनि भरद्वाजजीनें विश्रवाके ऐसे चरित्र ज्ञान, देख देववर्णिनी नामक अपनी कन्या उनको भार्या बनानेके लिये देदी ॥ ३ ॥ धर्मानुसार भरद्वाजजीके कन्याको ग्रहणकर प्रजा लोगोंके शुभाकांक्षी हो अधिक करकै ज्योतिष ज्ञानके प्रभावसे उन्होंने होनेंवाले पुत्रकी भलाई विचार ॥ ४ ॥ अति हर्षसे युक्त हो मुनियोंमें श्रेष्ठ विश्रवाजीने उस अपनी भार्यामें वीर्य सम्पन्न परम अद्भुत पुत्र ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंके सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त इन धर्मज्ञनें उत्पन्न किया। इस पुत्रके जन्म ग्रहण करनेंसे इसके पितामह पुलस्त्यजी अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ६ ॥ और उस पुत्रकी कल्याण कारिनी बुद्धिके देखनेसें परिमाणमें इसका धनाध्यक्ष होंना जान परम प्रसन्न चित्तसे देवर्षि लोगोंके सहित उस पुत्रका नाम करण करते हुए ॥७॥

विश्रवाके सहित पुत्रका सादृश्य हुआ है इसलिये यह पुत्र वैश्रवणके नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ८ ॥ उस कालमें वैश्रवण तपोवनमें रहकर आहुती हुने हुए महा तेजस्वी अग्निकी समान बढ़नें लगे ॥ ९ ॥ आश्रममें रहनेंके समय उन महात्माको ऐसा ज्ञानका उदय हुआ कि धर्महीं परमगति है इस कारण हम परमधर्मका आचरण करेंगे ॥ १० ॥ उन्होंनें इस प्रकारसे विचार तपस्याके उत्तम नियमोंके वशहो महा वनमें हजार वर्षतक घोरतप किया ॥ ११ ॥ जब सहस्रवर्ष पूर्ण होगये तब कभी जल ही पीकर रहजाते, कभी पवन ही पीते, और कभी २ निहारही रहकर तपस्या करनें लगे इस प्रकारसे वह हजारवर्ष एक वर्षकी समान बीतगये ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त महा तेजस्वी पितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो इन्द्रादि देवताओंके साथ उनके आश्रममें आयकर यह वचन बोले ॥ १३ ॥ वत्स ! तुम्हारे इस कार्यसे हम प्रसन्न हुए हैं । हे सुव्रत! तुम अत्यन्त बुद्धिमान और वरदानके योग्य पात्रहो इस कारण बरमांगों तुम्हारा मंगल होगा ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त वैश्रवण आये हुए ब्रह्माजीसे बोले कि हे भगवान! हम धनरक्षक लोकपाल होनेकी वासना करते हैं ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी सब देवताओंके साथ प्रसन्नचित्तहो वैश्रवणके वचनोंको हर्षसहित अंगीकारकर उनसे बोले ॥ १६ ॥ कि हे वत्स! हम चौथा लोकपाल सृजन करनेंको तैयार हैं; इन्द्र, यम, और वरुणजीकी तुम्हारी लोकपाल पदभी (ईप्सित) है सो तुम उसको ग्रहण करो ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञ! तुम धनाध्यक्षकापद प्राप्तहोकर इन्द्र, वरुण, और यममें चौथे लोकपाल होगे ॥ १८ ॥ सूर्यकी समान प्रभावाला पुष्पक नामक यह विमान अपने चढ़नेंके लिये ग्रहण करके तुम देवताओंकी समानतापाओ ॥ १९ ॥ हेतात! तुमको दोवर देकर हम कृतकृत्य हुए इस समय हम जिस स्थानसे आये हैं उसी स्थानको जाते हैं, अब तुम्हरा मंगलहो ॥ २० ॥ यह कहकर ब्रह्माजी सब देवताओंके साथ अपने स्थानको चले गये ब्रह्मादि देवगण जब आकाशमंडलको चले गये ॥ २१ ॥ तब धनेश सावधान चित्तहो हाथ जोड़कर पिताजीसे बोले कि हे भगवन्! हमनें पितामह ब्रह्माजीसे मनमाना वर पाया है ॥ २२ ॥ परन्तु उन देव प्रजापतिनें हमारे रहनेंको कोई वासस्थान

नहीं बताया । हे प्रभु भगवन्! जहां रहनेसे किसी प्राणीको पीड़ा पहुंचनेंकी सम्भावना नहीं हो आप हमारे लिये ऐसाही श्रेष्ठ वासस्थान खोज देखिये ॥ २३ ॥ मुनि श्रेष्ठ विश्रवाजीनें धर्मज्ञ पुत्रके ऐसे वचन सुनकर उनसे कहा हे श्रेष्ठ! सुन ॥ २४ ॥ दक्षिण समुद्रके तीरपर त्रिकूट नाम पर्वत है, उसके शिखरपर इन्द्रजीकी समान पुरी वसती है ॥ २५ ॥ विश्वकर्माकी बनाई हुई उस रमणीकपुरीकानाम लंकाहै, यह पुरी राक्षस लोगोंके रहनेंके लियेही मानों इन्द्रकी अमरावती पुरी है ॥ २६ ॥ तुम उसी लंकापुरीमें जायकर वासकरो, तुम्हारा मंगल होगा इसमें कुछ संदेह नहीं; सुवर्णकी कोटकी भीत है; चारों और खाई खुदी हैं यंत्र (कलें) और शस्त्रोंसे भरीपुरी है ॥ २७ ॥ उसके समस्त फाटक सुवर्ण और वैदूर्य माणिक बने हैं। इस रमणीकपुरीको पहले समयमें विष्णुजीके भयसे भीतहो राक्षस लोग छोड़ गये ॥ २८ ॥ वह सवही राक्षस इस पुरीको सूना करके पातालको चले गये; अब लंकापुरी सूनी है उसका स्वामी कोई नहीं है ॥ २९ ॥ हे पुत्र! तुम वहां वासकरनेंके लिये सुखसे गमन करो; तुम्हारा वहां रहना निर्दोष होगा, वहां रहनेंमे तुम्हें कोई बाधा नहीं दे सकेगा ॥ ३० ॥ धर्मात्मा, कुबेरजी पिताके ऐसे धर्म युक्त वचन सुनकर पर्वतके शिखरपर बसी हुई लंकानगरीमें वास करनें लगे ॥ ३१ ॥ सहस्र २ राक्षसगण हर्षित होकर उनके साथ गये, कुबेरजीके पालन करनेंसे लंकानगरी बहुत थोड़े कालमेंही समृद्धि युक्त होगई ॥ ३२ ॥ तब नैर्ऋतवर धर्मात्मा विश्रवाजीके पुत्र कुबेरजी प्रसन्नहो समुद्ररूप खाईसे घिरी लंका नगरीमें वास करनें लगे ॥ ३३ ॥ धर्मात्मा धनेश्वर कुबेरजी पुष्पक विमानपर सवार होकर विनीत भावसे समय २ पिता माताके निकट आतेंथे ॥ ३४ ॥

सदेवगंधर्वगणैरभिष्टुतस्तथाप्सरोनृत्यविभूषितालयः ॥ गभस्तिभिःसूर्यइवावभासन्पितुःसमीपंप्रययौसवित्तपः ॥ ३५ ॥

उस कालमें देवता व गन्धर्व लोग उनकी स्तुति करते रहते, अप्सरा

गण उनके पुष्पक विमानमें नांचती रहतीथीं किरणोंको माला बनाये सूर्यकी समान शोभायमान होकर कुबेरजी पिता माताके समीप आतेथे ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तर काण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥

श्रुत्वागस्त्येरितंवाक्यंरामोविस्मयमागतः ॥
कथमासीत्तुलंकायांसंभवोरक्षसांपुरा ॥ १ ॥

महामुनि अगस्त्यजीके यह वचन सुनकर अत्यन्त विस्मितहो श्रीरामचंद्रजी मनही मन चिन्ता करनें लगे कि कुबेरजीके बसनेंसे पहलेभी लंकापुरीमें राक्षसोंका रहना किस प्रकारसे संभव होसकताहै? ॥ १ ॥ फिर शिर कंपाय श्रीरामचंद्रजी तीन अग्निकी समान देह धारे अगस्त्यजीको वार २ निहार विस्मतहो उनसे बोले ॥ २ ॥ हे भगवन् पहलेभी इस लंकापुरीमें राक्षस लोगही वास करतेथे, आपका यह वचन सुनकर हमको अत्यन्त विस्मय हुआहै ॥ ३ ॥ हमने तो यही सुन रक्खाथा कि पुलस्त्यजीके वंशसेही राक्षसोंकी उत्पत्ति हुईहै परन्तु इस समय आपने यह कहा कि औरसे राक्षसोंकी उत्पति हुईहै ॥ ४ ॥ रावण कुंभकर्ण, प्रहस्त, विकट और रावणके पुत्रोंसें क्या वह अधिक बलवानथे? ॥ ५ ॥ हे भगवन्! इन लोगोंका पूर्व पुरुष कौनथा ? उसका नाम क्याथा? और बल कैसाथा? और किस अपराधसे भगवान विष्णुजीनें इनको वहांसे निकाल दियाथा ॥६॥ इनका समस्त वृत्तान्त विस्तार सहित वर्णन कीजिये । हे पाप रहित! सूर्य जिस प्रकार अंधकारका नाश करतेहैं वैसेही आप हमारे इस कौतूहलको दूर कीजिये ॥ ७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह व्याकरणकी रीतिसे शुद्ध और अलंकार युक्त वचन सुनकर अगस्त्यजी विस्मितहो श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ८ ॥ कि पूर्व समयमें पृथ्वीके आधे भागकी बराबर जलको उत्पन्न कर उससे प्रजापतिजी उत्पन्न हुए, पद्मयोनि ब्रह्माजीनें अपने बनाये प्राणियोंकी रक्षा करनेंको कुछ एक जीव उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ यह समस्त प्राणी भूंख प्याससे और भयसे पीड़ितहो सृष्टि उत्पन्न करनेंवाले ब्रह्माजीके निकट जाय विनीत भावसे बोले कि हम लोग क्या करें? ॥ १० ॥

तब प्रजापति ब्रह्माजी हँसते हुए उन सब प्राणियोंको पुकारकर बोले कि हे प्राणियो ! तुम लोग यत्न सहित मनुष्योंकी रक्षा करो ॥ ११ ॥ उनमेंसे कुछ एक भूखे प्राणी "रक्षाम" और कुछ एक क्षुधा रहित प्राणी "यक्षाम" इस प्रकारसे कहते हुए ॥ १२ ॥ तिसके पीछे भूत भावन प्रजापति ब्रह्माजी उनसे बोले कि तुम सबमेंसे जिन्होंनें "रक्षाम" कहाहै वह राक्षसहों, और जिन्होंनें "यक्षाम" कहाहै वह यक्षहों ॥ १३ ॥ उन राक्षसोंमेसे उनके स्वामीरूप हेति और प्रहेति नामक मधुकैटभकी समान शत्रु दमनकारी दो भ्राता जन्म लेते हुए ॥ १४ ॥ उन दोनोंमेसे प्रहेति धर्मात्मा हुआ, इस कारणसे वह विरागीहो तपोवनको चलागया, परन्तु हेति उस समय विवाह करनेंके लिये अतिशय यत्न करनें लगा ॥ १५ ॥ अमेयात्मा महामतिवान हेतिनें आपही कालके निकट जाय प्रार्थना करकै कालकी बहन भयानामक महा भयावनी कन्यासे विवाह किया ॥ १६ ॥ फिर पुत्रवानोंमें प्रथम गिनें जानेंके योग्य राक्षस हेतिनें उस स्त्रीके गर्भसे विद्युत्केश नामक विख्यात पुत्र उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ महातेजस्वी हेतिका पुत्र विद्युत्केश प्रदीप्त सूर्यकी समान अत्यन्त तेजवानहो जलमें लगे हुए कमलकी समान बढनें लगा॥१८॥ जब वह निशाचर शोभायमान यौवनको प्राप्त हुआ तब उसके पिता हेतिनें उसका विवाह करना निश्चय किया ॥ १९ ॥ फिर राक्षसश्रेष्ठ हेतिनें सन्ध्याकी समान प्रतापवाली सन्ध्याकी पुत्रीको पुत्रके लिये सन्ध्यासे मांगा ॥२०॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! "कन्या अवश्यही किसीको देनी होगी" सन्ध्याने यह विचार विद्युत्केशको अपनी बेटी देदी ॥ २१ ॥ राक्षस विद्युत्केश सन्ध्याकी पुत्रीको पाय उसके साथ विहार करनें लगा, जैसे इन्द्राणीके साथ इन्द्रजी विहार करते हैं ॥ २२ ॥ हे राम ! कुछकालके पीछे वह सालकटङ्कता विद्युत्केशसे गर्भ धारण करती हुई, जैसे समुद्रसे बादलोंकी राशि गर्भ धारण करती हैं ॥ २३ ॥ फिर गंगाजीनें जिस प्रकार तेजसे उत्पन्न महादेवजीके गर्भको त्यागन कर दियाथा वैसेही उस राक्षसीनें मन्दर पर्वतपर गमन करकै जलगर्भ मेघकी समान प्रभावाला गर्भ उत्पन्न किया, इसके पीछे वह विद्युत्केशकी रतिके अभिलाषसे पुत्रके उत्पन्न होतेही ॥ २४ ॥ अपने पुत्रको छोड़कर स्वामीके साथ विहार करनेंमे रत हुई उसका त्यागा

हुआ वह पुत्र वहीं मेघकी समान शब्द करनें लगा ॥ २५ ॥ परन्तु शारदीय सूर्यकी समान द्युतिमान वह बालक पिता माता करकै त्यागा हुआ मुंह मैं अंगूठा देखकर धीरे २ रोनें लगा ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त महादेवजी श्रीपार्वतीजीके साथ वैलपर चढ़कर गमन करते २ आकाश मार्गमें यह रोनेका शब्द सुनते हुए ॥ २७ ॥ फिर रोते हुए इस राक्षस पुत्रको दोनोनें देखाभी और करुणाके वशहो पार्वतीजीके कहनेंसे त्रिपुर दमनकारी महादेवजीनें॥२८॥उस राक्षसके पुत्रकी अवस्था उसकी माताके समान करदी; उस अवसरमें महादेवजीनें उसको अमरभी करदिया ॥२९॥ और पार्वतीजीकी प्रियकामनासे उसे एक आकाशमें चलनेंवाला पुरभी दिया, हे राजकुमार! पार्वतीजीनेंभी राक्षसियोंको यह वरदान दिया ॥ ३० ॥ कि राक्षसियें पतिका संयोग होतेही शीघ्र गर्भ धारण करें, और शीघ्रही प्रसव करें, और शीघ्रही उनका बालक माताकी समान अवस्थावाला हो जाया करै ॥ ३१ ॥

ततःसुकेशोवरदानगर्वितःश्रियंप्रभोःप्राप्यहरस्यपार्श्वतः ॥ चचारसर्वत्रमहान्महामतिः स्वर्गंपुरंप्राप्यपुरंदरोयथा ॥ ३२ ॥

महामतिवाला राक्षस श्रेष्ठ विद्युत्केश यह वर पाय अत्यन्त गर्वित हुआ; अधिक करकै स्वामी शिवके निकट लक्ष्मी और आकाश गामी विमान प्राप्त होकर वह सब जगह घूमनें लगा कि जिसप्रकार इन्द्रजी विचरण करतेहैं ॥ ३२ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उत्तरकाण्डे भा० चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥

सुकेशंधार्मिकंदृष्ट्वावरलब्धंचराक्षसम् ॥ ग्रामणीर्नामगंधर्वोविश्वावसुसमप्रभः ॥ १ ॥

सूर्यकी समान तेजस्वी ग्रामिणी नामक गन्धर्व राक्षस सुकेशको धार्मिक और वरदान पाया हुआ देखकर ॥ १ ॥ रूपयौवनमें त्रिभुवन विख्यात और दूसरी लक्ष्मीकी समान अपनी पुत्री देववती नामक क-

न्याको ॥ २ ॥ उसनें धर्मात्मा राक्षसराज सुकेशको राक्षसोंकी लक्ष्मीके समान दानदी । शिवजीसे वरदान पानेंके कारण सुकेश ऐश्वर्यशाली हो गयाथा, ऐसे प्रियपतिको पाय ॥३॥ देववती परम प्रसन्न हुई जैसे निर्धन पुरुष धनको पायकर प्रसन्न होताहै, वह राक्षसभी उसके संग ऐसे शोभायमान होनें लगा ॥ ४ ॥ कि जैसे हथनीके संग अंजन नामक दिग्गजसे उत्पन्न हुए महागजकी अतिशोभा होतीहै, हे रघुनंदन ! राक्षस पति सुकेशनें देववतीके गर्भसे तीन अग्नियोंकी समान मूर्तिमान तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५ ॥ माल्यवान, सुमाली, और बलवानोंमें श्रेष्ठ माली, राक्षस पतिसुकेशनें तीन नेत्रोंकी समान यह तीन पुत्र उत्पन्न कियेथे ॥ ६ ॥ एक स्थानपर स्थित तीन अग्निकी समान अव्यग्र हुए तीन लोककी समान अतिउग्र तीन मंत्रोंकी समान वात पित्त कफसे उत्पन्न हुए तीन रोगोंकी समान घोर ॥ ७ ॥ व तीनों अग्नियोंकेही समान तेजस्वी सुकेशकें वह तीन पुत्र इस प्रकारसे बढ़नें लगे कि जैसे विना औषधि किये रोग दिन२ बढताहै ॥ ८ ॥ वह तीनों राक्षस पुत्र तपके बलसे पिताको वरपाया देखा और तपके प्रभावसे उस ऐश्वर्यके पानेको जान तप करनेंका संकल्प मनमें ठान मेरु पर्वतपर चले गये ॥ ९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! वह तीनों राक्षस उस समय कठोर नियमोंका आश्रय लेकर सब प्राणियोंको भय उपजानें वाला घोर तप करनें लगे ॥ १० ॥ सत्य बोलना सबसे सरलता रखना, इन्द्रियोंको सब ओरसे आकर्षणकर अपने वशमें रखना, इस भांतिसे औरभी पृथ्वीतलपर दुर्लभ तपोंको करके उन लोगोंनें देवता, दैत्य, मनुष्य, सहित तीनों लोकोंको संतापित करदिया ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त विभु भूतभावन चतुरानन ब्रह्माजी विमानपर चढ़कर सुकेशके सब पुत्रोंसे बोले कि "हम वरदान देनेको आयेहैं" ॥ १२ ॥ इन्द्रादि देवता लोगोंके साथ ब्रह्माजीको वरदान देनेको तैयार देख वह सब राक्षस वृक्षोंकी श्रेणीकी समान कांपते हुए हाथ जोड़कर उनसे बोले ॥ १३ ॥ हे देव! तप करके आराधना किये जानेंपर जो आप वर देनेको आयेहैं, तो हमारा परस्पर महा अनुराग रहै, कोई हम लोगोंको जीत न सके, शत्रुको हम लोग संहार किया करें, और अजर अमर हों आप हमें यह वरदान दीजिये ॥ १४ ॥ ब्राह्मणप्रिय विभु ब्रह्माजी बोलेकि "तुम लोग ऐसेही

होगे" यह वरदान सुकेशके पुत्रोंको दे ब्रह्मा ब्रह्मलोककी ओर चले गये ॥ १५ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे वह राक्षस वरदान पायकर अत्यन्त निर्भयहो देवता व असुर लोगोंको पीड़ा देनें लगे ॥ १६ ॥ देवता लोगोंनें, ऋषि, व चारणगणोंनें राक्षसोंसे वध्यमानहो नरकमें पड़े हुए मनुष्यकी समान अपना उद्धार करनेंवाला किसीकोभी न देखा ॥ १७ ॥ हे रघुश्रेष्ठ उन राक्षसोंनें हर्षितचित्तसे आगमन करके शिल्पियोंमें श्रेष्ठ चिरंजीवी विश्वकर्माजीसे कहा ॥ १८ ॥ हे महामते! शुभगुणसमन्वित, तेजस्वी, बलवान, महान, सब देवताओंके भवन उनके मनमाने आपही बनानेवाले हैं ॥ १९ ॥ इस कारण हम लोगोंके लियेभी मनमाना भवन आपही बनादें, मेरुमन्दर अथवा हिमालय पर्वतका अवलंबन करके ॥ २० ॥ शिवजीके स्थानकी समान हमारा बड़ाभारी गृह आप बनाइये। तिन महाबलवान राक्षसोंके वचन सुन विश्वकर्माजीनें ॥ २१ ॥ उन लोगोंके रहनेंको इन्द्रकी अमरावतीकी समान निवास स्थान बताया कि दक्षिण समुद्रके तीर त्रिकूट नाम पर्वतहै ॥ २२ ॥ हे राक्षसगण! और इस त्रिकूटकीही समान सुवेल नामक दूसरा एक पर्वतहै उस पर्वतका बीचवाला शृङ्ग मेघकी समानहै ॥ २३ ॥ जिसपर पक्षीभी किसी प्रकारसे नहीं जा सकते क्योंकि उसके सब ओर विदीर्ण पत्थर फैले हुएहैं। तीस योजनकी विस्तार वाली, और सौ योजनकी चौड़ी ॥ २४ ॥ सुवर्णकी छहर दिवारीसे युक्त और सुवर्णकेही फाटकोंसे समन्वित इस प्रकारकी लंका हमनें इन्द्रकी आज्ञासे बनाईथी ॥ २५ ॥ हे दुर्द्धर्ष राक्षस लोगो! स्वर्गवासी इन्द्रादि देवता लोग जिस प्रकार अमरावतीमें वास करतेहैं तुमभी वैसेही उस लंकानगरीमें जायकर वसो ॥ २६ ॥ हे शत्रुओंका संहार करनेंवाले राक्षस वृन्दो! तुम सब बहुत सारे राक्षसोंके साथ लंका गढ़में टिककर शत्रु लोगोंके लिये दुराधर्ष होओगे ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त वह सब राक्षसश्रेष्ठ, विश्वकर्माजीके वचन सुनकर सहस्र २ सेवकोंके साथ जायकर उस पुरीमें वसे ॥ २८ ॥ दृढ गढकी भीत व खाईसे युक्त सैकडों हजारों सुवर्ण गृह मालासे अलंकृत लंकानगरीको प्राप्त होकर राक्षस गण हर्षित चित्तसे वास करनें लगे ॥ २९ ॥ हे रामचंद्रजी! इसी समयमें नर्मदा

नामक एक गन्धर्वी अपनी इच्छासे उत्पन्न हुई ॥ ३० ॥ इसके ह्री श्री और कीर्तिकी समान द्युतिवाली तीन कन्या हुईं। उस नामकी राक्षसीनें ज्येष्ठके क्रमसे राक्षसोंको ॥ ३१ ॥ कन्यादेदीं। उसनें हर्षित होकर पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान मुखवाली तीन कंन्या उस गन्धर्वीनें तीन राक्षसश्रेष्ठोंको दीं ॥ ३२ ॥ उस महाभागानें अपनी तीनों कन्याओंको पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें उन राक्षसोंको दियाथा हे राम। वह सुकेशके पुत्र अपनी स्त्रियोंके संग ॥ ३३ ॥ उस कालमें अप्सरा ओंके सहित देवता लोगोंकी समान विहार करनेंमें रत हुए सुन्दरी नामक माल्यवानकी सुन्दरी भार्याथी ॥ ३४ ॥ माल्यवाननें उस सुन्दरी नामक भार्यामें जो जो पुत्र उत्पन्न कियेथे वह मैं कहताहूं। वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, राक्षस दुर्मुख ॥ ३५ ॥ सुतघ्न, यज्ञकोप, मत्त, उन्मत्त, हे राम! यह तो सुन्दरीके पुत्र हुए, और अनला नामक एक सुन्दरकंन्याभी उसके हुई ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुमालीकी भार्याका नाम केतुमतीथा वहभी पूर्ण चंद्रमाकी समान विमल वदनवाली और उस राक्षसको प्राणोंसेभी अधिक प्यारीथी ॥ ३७ ॥ हे महाराज! निशाचर सुमालीनें केतुमतीके गर्भसे जिस सन्तानको जन्म दिया आप उन सबके नाम क्रमानुसार हमसे सुनिये ॥ ३८ ॥ प्रहस्त, कंपन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दंड, महाबली सुपार्श्व; ॥ ३९ ॥ संह्रादि, प्रघस, और भासकर्णराक्षस यह तो महाबलवान सुमालीके पुत्रहुए और कुम्भीनसी, कैकसी, राका, और पुष्पोत्कटानामक कंन्याभी सुमालीकी पुत्रीहुई ॥ ४० ॥ हे प्रभो दक्षसुताकी समान अत्यन्त रूपवाली वसुदानामक गन्धर्वी मालीकी भार्याथी, उसके नेत्र कमलदलकी समान विशालथे, और दृष्टि मधुर थी ॥ ४१ ॥ हे राघव! सुमालीके छोटे भ्राता मालीनें उस स्त्रीके गर्भसे जो जो सन्तान उत्पन्नकी हम उनका वर्णन करते हैं आप श्रवणकरें ॥ ४२ ॥ अनल,अनिल, हर, और सम्पाति, यह मालीके पुत्रथे और यही निशाचर विभीषणके मंत्री हुए ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त राक्षस श्रेष्ठ माल्यवान सुमाली, अधिक बलवान होनेसे गर्वित हो सैकड़ों हजारों निशाचर पुत्रोंके साथ इन्द्रादि देवगण, ऋषिगण, और राक्षस लोगोंको पीड़ादेने लगे ॥ ४४ ॥

नतेजसः ॥ वरप्रदानादपिगर्विताभृशंक्रतुक्रियाणांप्रशमंकराःसदा ॥ ४५ ॥

वह सब पवनकी समान दुर्द्धर्ष होकर सदा सब संसारमें घूमते हुए । अधिक क्या कहैं वह सब राक्षस लोग संग्राम भूमिमें कालकी समान अपार तेजस्वी और वह धन पानेंसे अत्यन्त गर्वितहो सर्वदा यज्ञादि क्रियाओंका नाश करनें लगे ॥ ॥ ४५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ ० उ० भाषानुवादे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥

तैर्वध्यमानादेवाश्चऋषयश्चतपोधनाः ॥ भयार्ताःशरणंजग्मुर्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ १ ॥

राक्षसोंसे पीड़ित होकर देवता लोग और तपोधन मुनि गण भयसे अत्यन्त संतापितहो देवाधिदेव महादेवजीकी शरणमें गये ॥ १ ॥ जो महादेवजी जगत्के उत्पन्न करनेंवाले और संहारकारी, अव्यक्तस्वरूप अज (जो कभी उत्पन्न नहीं होते, और सबसे अलग जिनका स्वरूपहै) सब लोकोंके आधार, आराधना करनेके योग्य और परम गुरु ॥ २ ॥ कामके शत्रु, त्रिपुरके दहन करनेवाले त्रिनेत्र महादेवजीके निकट एकत्रहो सब देवता हाथ जोड़ भयके मारे गदगद वचनोंसे बोले ॥ ३ ॥ भगवन् प्रजाध्यक्ष! सुकेशके पुत्रगण ब्रह्माजीके वरप्रभावसे वड़े ढीठहो शत्रुओंके मलनेंकी वासनासे प्रजापतिकी सब प्रजाको पीड़ा देते हैं ॥४॥ हमारे रक्षाके स्थान सब आश्रमोंको उन्होंनें अरक्षाका स्थान कर दिया, वह स्वर्गसे देवता लोगोंको निकाल कर स्वयं आय स्वर्गमें देवताओंकी समान विहार करतेहैं ॥ ५ ॥ हमही विष्णु-हमही ब्रह्मा, हमही देवराज इन्द्र, हमही यम, हमही वरुण, हमही चंद्रमा, और हमही सूर्यहैं ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे कहकर माली, सुमाली, माल्यवान, यह तीन राक्षस संग्राममें उत्साहीहो जिसको सामने पातेहैं उसकोही मारडालतेहैं ॥ ७ ॥ इस कारण हे देव! भयसे आरत हम लोगोंको आप अभय दीजिये । आप रौद्र मूर्ति धारण करके इस समय

इन समस्त देवकंटकोंका संहार कीजिये ॥ ८ ॥ प्रभु नील लोहित महा-देवजीनें देवता लोगोंके इस प्रकारसे वचन सुनकर सुकेशपर दयाकर देवताओंसे बोले, ॥ ९ ॥ हे देव गण! वह हमसे नहीं मारे जायँगे इस कारण हम उनको नहीं मारेंगे, परन्तु जो उनको मारडालैगा हम उसका उपाय बताय देतेहैं ॥ १० ॥ हे महर्षियो! कुछभी विलम्ब न करके उस उद्योगमेंही आप सब जन विष्णुजीकी शरणमें जाँय; वही इनका संहार करेंगे ॥ ११ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंके भयसे पीड़ित हुए देवता गण जय शब्दसे महादेवजीकी वन्दना कर भगवान विष्णुजीके समीप आये ॥ १२ ॥ उन शंख चक्रधारी देवता विष्णुजीको अधिक सन्मानसे प्रणामकर सुकेशके पुत्रोंपर कोप किये और घबड़ाकर सब देवता यह वचन बोले ॥ १३ ॥ हे देव! तीन अग्निकी समान अत्यन्त तेजपुंज सुकेशके तीन पुत्रोंनें वर पानेसे चढ़ाईकर हमारे सब स्थान छीन लियेहैं ॥ १४ ॥ त्रिकूट पर्वतके शिखरपर एक लंका नामक पुरी बसी हुईहै, निशाचर गण उसी पुरीमें रहकर हम सबको सतातेहैं ॥ १५ ॥ हे मधुसूदन! आप हमारा हित करनेंकी कामनासे उनको मारडालिये, हे सुरेश्वर! हम आपकी शरण आये इस कारण आपही हमारे आश्रयहो ॥ १६ ॥ उनका वदनकमल अपने चक्रसे काटकर आप यमको सौंपदे, आपके सिवाय भयके समय हमको आश्रयका देनेवाला और कोई नहींहै ॥ १७ ॥ हे देव! सूर्य भगवान जिस प्रकार अंधकारका नाश करतेहैं, वैसेही आप हर्षित चित्तसे मदसे उद्धत समस्त राक्षसोंको उनके सेवकोंके साथ संग्राममें मारकर हमारा भय दूरकीजिये ॥ १८ ॥ शत्रुओंके भय देनेवाले देव जनार्दन देवताओंके ऐसे वचन सुनकर सबको अभय देकर बोले कि ॥ १९ ॥ हम सुकेश राक्षसको जानतेहैं और उसके सब पुत्रभी हमारे जाने हुएहैं उन सबमें बड़ा माल्यवानहै ॥ २० ॥ उन समस्त राक्षस अधमोंनें लंकाकी मर्यादाको तोड़ दियाहै, इस कारण हम क्रोध सहित उनको संहार करेंगे; हे सुरगण! तुम निडर होवो ॥ २१ ॥ समस्त देवताओंके शिरोमणि विष्णुजीके यह वचन सुनकर सब देवता हर्षितहो जनार्दनजीकी बड़ाई करते हुए अपने २ स्थानोंको गये ॥ २२ ॥ परन्तु निशाचर माल्यवान देवता लोगोंके इस उद्योगका वृत्तान्तसुन

अपने दो वीर भ्राता ओंसे कहता हुआ॥ २३॥ देवता लोग, और ऋषि वृन्दोंने हमारे वध करवानेंकी वासनासे शिवजीके निकट जायकर उनसे ऐसा कहाहै कि॥ २४॥ हे देव! घोररूपी सुकेशकी सन्तान एकतौ वैसेही गर्वित है और विशेष करकै वरदान पानेंसे उद्धत हो वह प्रतिक्षण हमको पीडा देतीहै॥ २५॥ हे प्रजारक्षक! उन दुरात्मा राक्षसों करकै निरादर पानेंसे घवड़ाय उनके भयसे हम अपने २ स्थानोंमें रहनें कोभी तौ समर्थ नहीं हैं॥ २६॥ इसकारण हे त्रिलोचन! हमारे हितके लिये आप उनका संहार कीजिये। हे भस्म करनें वालोंमें श्रेष्ट। आप हुंकार सेही उन सब राक्षसोंको भस्म कर डालिये॥ २७॥" अंधकासुरके मार-डालनें वाले त्रिलोचन महादेवजी देवता लोगोंके ऐसे वचन सुन कान, हाथ, और शिरकंपाय कर बोले कि॥ २८॥ "हे देवगण! वह सुकेशके पुत्र हमसे अवध्य हैं, जो उनको संग्राम में मारैगा, हम तुमको उसका उपाय बताये देतेहैं॥ २९॥ कि तुम सब गदाधर चक्रपाणि, पीताम्बर धारी जनार्दन श्रीमान् नारायण हरिकी शरण में जाओ"॥ ३०॥ वह देवता लोग महादेवजीसे इस प्रकारसे उपायजान कामके शत्रु महादेव-जीको प्रणाम कर नारायणजीके निकट आय उनसे सब वृत्तान्त निवेदन करते हुए॥ ३१॥ तब नारायणजीनें इन्द्रादि देवता लोगोंसे कहा कि हे देवगण! "तुम सब निर्भय होवो, हम उन देवतालोगोंके शत्रु राक्षसोंका संहार कर डालेंगे"॥ ३२॥ हे दोनों राक्षस श्रेष्ठो! भयसे भीत हुए देवता ओंसे नारायणजीनें हम लोगोंके मार डालनें की प्रतिज्ञाकी है इस लिये अब जो कुछ उचित हो सोकरो॥ ३३॥ नारायणकरकै हिरण्य-कशिप, व औरभी देवता ओंके शत्रु मारे गये हैं; उनके सिवाय नमुचि कालनेमि, वीर श्रेष्ठ संन्हादर॥ ३४॥ बहुत सारी माया जाननें वाला राधेय, धार्मिक लोकपाल, यमल, अर्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ, निशुम्भ॥ ३५॥ इत्यादि बलसम्पन्न महा बलवान असुर व दानवगण समस्तही उनवि-ष्णुजीके निकट संग्राममें पराजित हुएहैं॥ ३६॥ विशेष करकै वह सबही मायाके जाननें वाले थे और सबही सब शास्त्रोंमें पारदर्शीथे, सबही शत्रु ओंके लिये भयंकर थे, और सबहीनें सैकड़ों यज्ञभी कियेथे॥ ३७॥ परन्तु नारायणजीनें उन सैकड़ों हजारों देवता ओंके शत्रुओंको मार

डालाहै। इस कारण यह जानकर सबका जिसमें भलाहो वही तुम सबको करना चाहिये, परन्तु जिन्होंने हमारे मार डालनेंकी वासनाकी है, उन नारायणका जीतना अत्यन्त कठिन है ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त सुमाली, माली, माल्यवानके वचन सुनकर अपने बड़े भ्राताासे बोले जैसे दोनों अश्विनी कुमार इन्द्रजीसे बोलते हैं ॥ ३९ ॥ हम लोगोंनें भली भांतिसे वेद पढ़ा बहुतेरे दान दिये, ऐश्वर्य बढ़ाय कर उसका पालनभी बहुत किया और रोग रहित आयुबल पाय उसके अनुसार धर्मकी स्थापनाकी ॥ ४० ॥ अधिक करकै देवरूप अचल समुद्रोंमें शस्त्रसमूहोंसे स्नानकर अप्रमाण बलवाले शत्रुओंको हमनें जीता, तिस्से अब हमको मृत्युकाभी भय नहीं रहाहै ॥ ४१ ॥ नारायण रुद्र, इन्द्र अथवा यमराज सबही हमारे सन्मुख खड़े होते हुए सदा डरते हैं ॥ ४२ ॥ हे राक्षसराज हमारे प्रति विष्णुजीके द्वेष होनेंका कोई कारण नहीं है, देवता लोगोंके दोषसेही विष्णुजीका मन इस प्रकारसे चलायमान हुआ है ॥ ४३ ॥ इसलिये हम सब और सब राक्षसोंके साथ इकट्ठे होकर आज उनके सहित देवता लोगोंको मार डालैंगे क्योंकि उनलोंगोंसेही यह दोष उपजा है॥४४॥ राक्षस लोग परस्पर इस प्रकारकी सलाह करकै युद्धके उद्योगका ढंढ़ोरा फिरवा देते हुए और सब सैनाकी उपासना करनें लगे ॥ ४५ ॥ फिर वृत्रासुर और जम्भासुरकी समान युद्ध करनेंके लिये निकले, हे राम! इसप्रकार सलाह और उद्योग करकै वह राक्षस ॥ ४६ ॥ युद्ध करनेंके लिये निकले, वह सब बड़े २ शरीर वालेथे, और महा बलवानथे; उनमेंसे कोई रथोंपर, कोई हाथीपर कोई हाथोकी समान ऊंचे घोडोंपर ॥ ४७ ॥ कोई गधोंपर कोई बैल जुड़े हुए रथोंपर, कोई ऊटोंपर, कोई शिशुमार सर्पोंपर, कोई मछलियों, कच्छपों, और गरुड़जीकी समान वेगवाले पक्षियोंपरभी कोई २ सवार हुए ॥ ४८ ॥ कोई २ सिंह, व्याघ्र, वराह, सृमर व चमरपर चढे २ लंकाको त्यागकर बलसे गर्व्वित हुए राक्षस लोग चले ॥ ४९ ॥ इस प्रकारसे देवता लोगोंके शत्रु राक्षस लोग युद्ध करनेंके लिये। देव लोकको कंपायमान करते हुए उन राक्षसोंके गमन करनेंके समय लंकाके रहनेंवाले और दूसरे प्राणियोंनें बड़ी भारी उथलापथली

देखी ॥ ५० ॥ उसकाल लंकामें जितनें भयदर्शी प्राणीथे सबके सब उदास चित्त होगये । श्रेष्ठ रथोंपर चढ़कर सैंकड़ों हजारों ॥ ५१ ॥ राक्षस लोग अति यत्नके सहित देवताओंके लोकको शीघ्रतासे चले । देवता लोगभी राक्षसोंकी यात्राके संगही वहांसे निकले ॥ ५२ ॥ भय उपजानें वाले पृथ्वी आकाशमें समस्त उत्पात कालसे प्रेरितहो राक्षस नाथोंकी पराजयके लिये उठनें लगे ॥ ५३ ॥ मेघ गरम २ रुधिर और हड्डियोंकी वर्षा करनें लगे । समुद्र अपनी मर्यादाको छोड़कर उछलनें लगा, और पर्वतगण चलायमान होनें लगे ॥ ५४ ॥ सब प्राणी मेघोंकी समान गंभीर स्वरसे अट्टहास करनें लगे; अति घोर शृगालियें दारुण शब्दसे चिल्लानें लगीं ॥ ५५ ॥ सब प्राणी क्रम क्रमसे गिरकर दिखाई देनें लगे, गिद्धगण बड़े२ मंडल बाँधकर मुखसे ज्वाला उगलते हुए ॥ ५६ ॥ राक्षसोंके ऊपर कालकी समान घूमनें लगे । कबूतर और लाल २ पांववालीमैंनायें लड़ २ कर राक्षसोंपर टूटनें लगीं ॥ ५७ ॥ दो पैरवाले कौएं और बिल्लियें वहांपर चिल्लानें लगे । इन सब उत्पातोंको कुछभी न समझते हुए बल दर्पित राक्षस लोग ॥ ५८ ॥ आगेको चलेही गये; लौटे नहीं क्योंकि वह मृत्युकी फांसीमें बंध रहेथे । माल्यवान, सुमाली और महा बलवान माली ॥ ५९ ॥ यह तीनों सब राक्षसोंके आगे जलती हुई अग्निके समान चलतेथे । उनमें माल्यवान पर्वतके समान माल्यवानका सब कोई ॥ ६० ॥ राक्षस आश्रय करके चले जैसे देवता लोग विधाताका आश्रय ग्रहण करें । वह राक्षस श्रेष्ठोंकी सैना महा घनकी समान गर्जती हुई ॥ ६१ ॥ मालीके वशमें रहकर जयकी अभिलाषासे देवताओंके लोकमें गई, राक्षसोंकी इस तैयारीको नारायण प्रभुनें ॥ ६२ ॥ देव दूतके मुखसे सुनकर नारायणजी युद्ध करनेके लिये गमन करते हुए सब आयुधोंसे सज तरकश धारणकर गरुड़जी पर सवारहो ॥ ६३ ॥ सहस्रसूर्यकी समान द्युतिवान दिव्य कवचसे अपने शरीरको आवृतकर बाणोंसे पूर्ण विमल दो तरकश ॥ ६४ ॥ कमलनेत्र नारायणनें कमल बांधनेकी डोरी विमल खड्ग, शंख, चक्र, गदा धनुष और खड्गादि श्रेष्ठ आयुध धारणकर ॥ ६५ ॥ सम्पूर्ण पर्वतकी समान गरुड़जीपर सवारहो राक्षस लोगोंके विनाश करनेंके लिये शीघ्र यात्रा करते

हुए ॥ ६६ ॥ बिजलीकी दरारसे विराजमान बादल जिसप्रकार कांचन गिरिके शिखरपर शोभायमान होतेहैं; उस कालमें श्यामवर्ण पीताम्बरधारे हरिभी गरुड़पर चढ़कर वैसेही शोभायमान होतेथे ॥ ६७ ॥ वह हरिनारायण, शंख, चक्र, खड्ग और शारंग आयुध हाथमें धारण किये, सिद्ध, महर्षि, नाग, यक्ष, और गन्धर्वोंसे गाये जाते हुए देवता लोगोंके शत्रुओंकी सैनामें आयपहुंचे ॥ ६८ ॥ उपल समस्तके चंचल होनेसे नीलाचलके अग्र भागकी शोभा जैसी होतीहै उस समय राक्षसराजकी वह समस्त सैना गरुड़जीके पंखोंसे निकली हुई पवनके घातसे बलहीन होगई, उसकी सब झंडियां गिरगईं और हथियार हाथसे छूटकर चलायमान होगये ॥ ६९ ॥

ततःशितैःशोणितमांसरूषितैर्युगांतवैश्वानर
तुल्यविग्रहैः ॥ निशाचराःसंपरिवार्यमाधवं
वरायुधैर्निर्बिभिदुःसहस्रशः ॥ ७० ॥

तिसके पीछे सहस्र २ राक्षस लोग माधवको चारों ओरसे घेरकर, रुधिर और मांससे रंगे, प्रलय कालके अग्निकी नाईं आकारवाले तेजवान तीखे श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्रोंसे उनको विद्ध करनें लगे ॥ ७० ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥

नारायणगिरिंतेतुगर्जंतोराक्षसांबुदाः ॥
अर्दयंतोस्त्रवर्षेणवर्षेणवाद्रिमंबुदाः ॥१॥

मेघगण जिस प्रकार पर्वतके ऊपर वर्षा करतेहैं वैसेही राक्षसरूप मेघ समूह गर्जन करके नारायणजी स्वरूप पर्वतको अस्त्र वर्षायकर पीड़ित करनें लगे ॥ १ ॥ निर्मल श्याम वर्ण वाले विष्णुजी, नीले रंगकी कान्ति वाले निशाचर लोगोंसे घिरजानेंके कारण ऐसे जान पड़े मानों वर्षा करते हुए मेघोंने अंजन पर्वतको ढक लियाहै ॥ २ ॥ जैसे टीढ़ियोंके झुण्ड खेतीमें, मच्छर अग्निमें, मक्खियें शहदके घड़ेमें, और मछलियें समुद्रमें

पैठती हैं ॥ ३ ॥ वैसे वज्र, पवन; और मनकी समान वेगसे चलनें वाले बाणोंके समूह राक्षसोंके धनुषसे छूटकर नारायण हरिजीकी देहमें प्रवेश करनें लगे; जैसे प्रलय कालमें सब लोक नारायण में मिल जाते हैं ॥ ४ ॥ रथपर चढ़े हुए रथके सहित आकाशमें टिके, हाथियोंके चढ़नेंवाले हाथियोंके सहित घुडसवार घोड़ोंके सहित और पैदल लोग पैदलही युद्ध करनेंके लिये खड़े रहे ॥ ५ ॥ पर्वतकी समान देहवाले राक्षसोंनें बाण, शक्ति, ऋष्टि, भाला, आदि अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीनारायणजीको श्वास रहित कर दिया, जैसे प्राणायाम ब्राह्मणोंके श्वासको रोक लेताहै ॥ ६ ॥ जैसे मछलियोंसे समुद्र ताड़ित होताहै; वैसेही निशाचर लोगोंसे परम दुर्द्धर्ष हरि ताड़ित होकर शारङ्ग धनुषको खेंच राक्षसोंके ऊपर बाण छोड़नें लगे ॥ ७ ॥ कानतक खेंचकर वज्रकी समान और मनके वेगकी समान चलनेंवाले तीखे बाणोंके समूहको छोड़कर विष्णुजीनें सैकड़ों हजारों राक्षसोंको मारडाला ॥ ८ ॥ उठे हुए मेघोंको पवन जिस प्रकारसे छिन्न भिन्नकर उड़ाय देतीहै, वैसेही पुरुषोत्तम विष्णुजीनें बाण वर्षाय राक्षसोंको भगाय पाञ्चजन्य नामक अपना बड़ाभारी शंख बजाया ॥ ९ ॥ वह जलसे निकला हुआ शंखराज हरिनारायण करकै अति जोरसे बजाया जाकर त्रिलोकीको व्यथित करताही हुआसा मानों घोर शब्दसे गर्जनकर उठा ॥ १० ॥ मृगराज सिंह जिस प्रकार वनमें मतवाले हाथियोंको त्रासित करताहै, वैसेही उस शंखराज शब्दनें राक्षसोंको त्रासित किया ११॥ उस कालमें समस्त राक्षस वीर शंखके घोर शब्दसे दुर्बल होकर रथसे गिर पड़े, हाथी मदको त्याग करते हुए और घोड़ेभी स्थिर होकर खड़े न रह सके ॥ १२ ॥ वज्रकी समान मुखवाले फोंकदार समस्त बाण शारंग धनुषसे छूट उन राक्षसोंको घायलकर पृथ्वीमें पैठ गये ॥ १३ ॥ राक्षस लोग नारायणके करकमलसे छूटे हुए बाण समूहसे संग्राममें विदारितहो वज्र लगे हुए पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरे ॥ १४ ॥ पर्वतोंसे जिस प्रकार गेरूकी धारा निकला करतीहै; वैसेही राक्षसोंके शरीरमें जो घाव विष्णुजीके चक्रसे हो गयेथे उनसे रुधिरकी धारा गिरनें लगी ॥१५॥ विष्णुके किये हुए शंखोंके राजा पांचजन्यका शब्द, और शारंग धनु-

पका शब्द, इन शब्दोंने मिलकर राक्षसोंके शब्द और प्राणोंको मानों ग्रास कर लिया॥१६॥ तब विष्णुजीने बाण समूहसे राक्षसोंके कंपायमान गले, बाण, ध्वज, धनुष, रथ, पताका, और तरकश काट डाले॥ १७ ॥ सूर्य मंडलमें जिस प्रकार किरणोंकी राशि निकलतीहै समुद्रसे जिस प्रकार जल समूह निकलताहै, बड़े २ पर्वतोंसे जैसे सर्प निकलतेहैं, मेघसे जैसे जलधारा निकलतीहै ॥ १८ ॥ वैसेही सैकड़ों हजारों बाण नारायणजीके शारंगधनुषसें निकलकर अतिवेगसे दौड़नें लगे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार महाबली शरभ करकै सिंह, सिंह करकै हाथी, हाथी करकै व्याघ्र, व्याघ्र करकै चीता ॥ २० ॥ चीतेसे कुत्ता,कुत्तेसे बिल्ली, बिल्लीसे सर्प,और सर्पसे चूहे भागतेहैं॥२१॥ वैसेही वह समस्त राक्षस विष्णुजीके भयसे भागगये, और बहुत सारे मर-कर पृथ्वीपर सोय गये ॥ २२ ॥ मधुसूदन नारायणजी इस प्रकार हजार २ राक्षसोंका संहार करकै अपने पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनि करनें लगे, कि जैसे देवराज इन्द्रजीके बादल गर्जन करतेहैं ॥ २३ ॥ मुख्य २ राक्षसोंकी सैना नारायणजीके बाण लगनेंसे त्रासित शंख नादसे विह्वलहो लंकाकी ओर को भागी ॥ २४ ॥ नारायणजीके बाणोंसे घायल होकर जब राक्षसोंकी सैनाभागी तब सुमाली बाणोंकी वर्षा करकै नारायणजीको संग्राममें निवारण करता हुआ ॥ २५ ॥ कुहर जिस प्रकार सूर्य भगवा-नको ढक लेताहै वैसेही सुमालीनें नारायणजीको बाणोंसे छाय दिया उस काल सत्वसम्पन्न राक्षस लोगोंको धीरज आया ॥ २६ ॥ इसके पीछे बलदर्पित वह राक्षस सुमाली क्रोधके वशहो घोर गर्जन करते २ राक्ष-सोंको मानों फिर जिलाताही हुआ विष्णुजीको प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ लंबायमान भूषण युक्त हाथ ऊपरको उठाय सुमाली राक्षस हर्षके वशहो उस कालमें बिजली युक्त मेघकी समान गर्जने लगा; जैसे हाथी गर्जता है ॥ २८ ॥ जब सुमाली राक्षस गर्जनें लगा, तब नारायणजीनें उसके सारथीका प्रज्वलित कुण्डल भूषित शिर काट डाला। उस कालमें राक्षसके रथके घोडे सारथीहीन इच्छानुसार इधर उधर घूमनें लगे ॥ २९ ॥ धीरज हीन मनुष्य जिस प्रकार इन्द्रिय रूप घोड़ोंसे भ्रमके मार्गमें गिरता है

राक्षसोंका राजा सुमाली भी वैसेही इन सब घोड़ोंके इधर उधर घूमनेसे कुमार्गमें चलनें लगा ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त सुमालीके घोड़े जब उसका रथ विष्णुजीके सामने लाये तब महाबाहु विष्णुजीको संग्राम खेत में आया हुआ देखकर, माली धनुष ग्रहणकरकें विष्णुजीके सन्मुख धाया ॥ ३१ ॥ सुवर्णसे विभूषित बाणोंनें मालीके धनुषसे छुटकर श्री हरिजीके शरीरमें प्रवेश करनें लगे, जैसे स्वामिकार्तिकजीकी शक्तिसे कटे हुए क्रौञ्चनाम पर्वतपर पक्षिगण आयकर कूदते हैं ॥ ३२ ॥ उस समय भगवान विष्णुजी मालीके चलाये हुए हजार २ बाणोंसे पीड़ित होकर भी चलाय मान नहीं हुए, जैसे जितेन्द्रिय पुरुष मानसिक कथा ओंसे चलाय मान नहीं होता ॥ ३३ ॥ तिसके पीछे गदाधर, खड्गधारी, भूत भावन विष्णुजी अपने धनुषपर टंकार देकर मालीके ऊपर बाण चलानें लगे ॥ ३४ ॥ वज्र सौदामिनीकी समान तेजपुञ्ज वह बाण मालीके शरीरमें पैठकर उसके रुधिरको पीनें लगे, जैसे नाग सुधारसको पीतेहैं॥३५॥ तब शंख चक्र गदाधारी नारायणजीनें मालीको विमुखकरके उसका मुकुट ध्वज, धनुष, काट डाला, औ रथके घोड़ोंकोभी गिरादिया॥ ३६॥ परन्तु निशाचर माली रथहीन हो गदा हाथमें ले विष्णुजीके सामनें आय कूदा, जैसे पर्वतपरसे कूदकर सिंह आवे ॥ ३७ ॥ यमराजनें जिस प्रकार शिवजीके ऊपर अस्त्रचलायाथा, और इन्द्रजीनें जिसप्रकार पर्वतोंको घायल कियाथा, वैसेही राक्षसनें पक्षी राज गरुड़जीके माथे में गदा मारी॥ ३८॥ तब गरुड़जी उस मालीकी गदा लगनेसे अत्यन्त व्याकुल हुए, और पीड़ासे व्यथितहो वह देव हरिको विमुख करते हुए क्योंकि विष्णुजी उनके ऊपर सवारथे ॥ ३९ ॥ तब राक्षसोंके घोर गर्जनसे कठोर शब्द उत्पन्न हुआ यह शब्द उस समय हुआ जब गरुड़जीनें राक्षसोंको रणमें विमुख किया ॥ ४० ॥ गर्जते हुए निशाचरोंका वह सिंहनाद इन्द्रानुज जीने सुना तब पक्षिराज गरुड़जीकी पीठपर पूंछकी ओरको मुखकर संभल भगवान हरिजीनें ॥ ४१ ॥ विमुख होकरभी मालीका संहार करनेंके लिये चक्र चलाया। सूर्य मंडलकी समान प्रकाशित व अपनी दीप्तिसे आकाशको प्रकाशित करते हुए ॥ ४२ ॥

कालचक्रको समान द्युतियुक्त उस चक्रनें मालीका शिर काट डाला राक्षसराजका वह अत्यन्त भयंकर मस्तक चक्रसे कटकर रुधिर उगलता हुआ पृथ्वीपर गिरपड़ा; जैसे पूर्वकालमें राहुका शिर चक्रसे कटकर अलग गिराथा ॥ ४३ ॥ उस कालमें देवता लोग अत्यन्त हर्षितहो "धन्य हो महाराज !!" यह वचन कह सब मिल अतिजोरसे सिंहनाद करनें लगे ॥ ४४ ॥ मालीको मृतक देखकर, सुमाली, और माल्यवान शोकसे संतापित हृदयहो अपनी सैनाके साथ लंकाको भाग गये ॥ ४५ ॥ उस कालमें गरुड़जी सावधान होकर फिर रणभूमिमें आये, और क्रोधके मारे पहलेकी समान पंखोंकी निकली हुई पवनसे राक्षसोंको भगाने लगे॥४६॥ श्रीविष्णुजीनें किसी २ राक्षसके मुखकमल चक्रसे काटडाले, किसी २ की छातीको गदासे चूर्ण कर दिया किसी २ की गर्दन हलसे खैंचली, मूसलके प्रहारसे किसीका शिर फोड़दिया ॥ ४७ ॥ और किसी २ के सर्वाङ्ग खड्गसे काटडाले किसी २ को बाणोंसे पीड़ित करदिया। इस प्रकारसे राक्षस लोग घायल होकर आकाशसे अतिशीघ्र समुद्रके जलमें गिरनें लगे क्योंकि यह राक्षस आकाशमेंही टिककर लड़ रहेथे ॥ ४८ ॥ सौदामिनीसहित महा मेघ जिस प्रकार वज्रसे फट जाताहै वैसेही नारायणजी भी धनुषसे छोड़े श्रेष्ठतीरप्रहारसे खुल गये हैं बाल जिनके ऐसे राक्षसोंको विदीर्ण करनें लगें ॥ ४९ ॥ उस कालमें राक्षसोंकी सैनाका विनीत वेश बाणोंसे नष्ट होगया; और अस्त्रोंसे छत्र कट जानेंसे बाणोंके प्रहारसे आतोंके निकल आनेसे वह राक्षसोंकी सैना मारे भयके चलायमान नेत्रहो अपने परायेके ज्ञानको भूलगई ॥ ५० ॥ सिंह करके हाथीकी समान नृसिंह करके पीड़ित राक्षस गणोंका शब्द और वेग व हाथियोंका चिंघाड़ना और वेग एक समयही उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ जिसप्रकार काले बादल पवनसे छिन्न भिन्न होकर उड़ जातेहैं वैसेही राक्षसरूपी काले बादर हरिके बाण जालसे निवारितहो अपने २ बाण जालको छोड़ते हुए भागे ॥५२॥ समस्त श्रेष्ठ राक्षस गण चक्रके प्रहारसे मस्तक कटाय गदाकी चोटसे अंगचूर्ण कराय, खड्गके प्रहारसे शरीरके दो भाग कराय पर्वतकी समान गिर पड़े ॥ ५३ ॥

विलंबमानैर्मणिहारकुंडलैर्निशाचरैर्नीलबला हकोपमैः ॥ निपात्यमानैर्ददृशेनिरंतरंनिपा त्यमानैरिवनीलपर्वतैः ॥ ५४ ॥

उस कालमें गिरते हुए नीले पर्वतकी समान लम्बायमान मणिमय हार, और कुण्डलोंसे शोभित नीले बादरकी समान गिरते जाते हुए राक्षसोंसे पृथ्वी ढक गई ॥ ५४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० सप्तमः सर्गः ॥७॥

अष्टमः सर्गः ॥

हन्यमानेबलेतस्मिन्पद्मनाभेनपृष्ठतः ॥ मा ल्यवान्सन्निवृत्तोथवेलामेत्यइवार्णवः ॥ १ ॥

पद्मनाभ नारायणजी पीछे २ धायकर जब उस राक्षसोंकी सैनाको मारतेही गये, तो माल्यवान राक्षस लंकापुरीतक पहुँचकर फिर लौटा, जैसे तीरपर पहुँचकर समुद्रका जल फिर शीघ्र लौट जाताहै ॥ १ ॥ फिर निशाचर माल्यवान क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर शिर कँपाय पुरुषोत्तम पद्मनाभ श्रीनारायणजीसे यह बोला ॥ २ ॥ हे नारायण तुम प्राचीन क्षत्रियोंके धर्मको नहीं जानते कारणकि हम तो भीत होकर युद्ध करनें की इच्छा नहीं करते हैं तथापि तुम नीचकी समान हम लोगोंको मारेही डालतेहो ॥ ३ ॥ हे सुरेश्वर ! जो भागे हुए पुरुषका वधजनित पाप करताहै वह पुण्य कर्म कारियोंके जानें योग्य स्वर्गको प्राप्त नहीं होता॥४॥ हे शंख चक्र गदाधर ! यदि तुमको बहुतही युद्धका अभिलाष हुआहै तो लीजिये हम यह टिके हुए हैं; आपमें जो कुछ बलहै सो दिखाइये ॥ ५ ॥ यह कह राक्षस राज माल्यवानको पर्वतकी समान टिका हुआ देखकर महा बलवान देवराजके अनुज विष्णुजी उससे बोले ॥ ६ ॥ तुम लोगोंके भयसे भीत देवता लोगोंको हमने राक्षस नाशरूप अभयदान दियाहै सो इस समय राक्षसोंका विनाश करके हम वह प्रतिज्ञा पूरी करते हैं ॥ ७ ॥ देवता लोगोंका प्रियकार्य करना हमारा सदाही योग्य कर्तव्यहै; चाहें पातालमे प्रवेश करो तौभी हम तुम सबको मार डालेंगे ॥ ८ ॥ लाल कमलकी समान नेत्रवाले देवदेव विष्णुजी इस प्रकारसे कहही रहेथे कि इतनेहीमें राक्षसश्रेष्ठ माल्यवाननें क्रोधके वश हो शक्तिसे उनकी

दोनो बाहोंके बीच छातीमें घाव किया ॥ ९ ॥ उस समय वह माल्यवा-नकी बाहोंसे चलाई हुई शक्ति घंटोंके शब्दसे शब्दायमान होती हुई सौदा मिनी (बिजली) युक्त मेघकी समान शोभायमान होनें लगी ॥ १० ॥ शक्तिधर प्रियकमलदललोचन हरिनें तत्कालही उस शक्तिको उठायकर माल्यवानके ऊपर चलाया ॥ ११ ॥ बड़ीभारी उल्का जिस प्रकार अंजन पर्वतकी ओर दौड़तीहै; वैसेही यह शक्ति गोविंद नारायणके हाथसे छूटकर स्वामिकार्तिकजीके समान राक्षसके संहार करनेंकी अभिलाषासे दौड़ी ॥ १२ ॥ जिस प्रकार वज्र पर्वतके शिखरपर गिरे वैसेही वह शक्ति राक्षसश्रेष्ठ माल्यवानकी हारमाला विभूषित विशाल छातीमें जायकर लगी ॥ १३ ॥ शक्ति प्रहारसे कवच कट जानेंपर माल्यवान अति मोहको प्राप्त हुआ परन्तु फिर सावधानहो पर्वतकी समान अचलहो उठगया ॥१४ तिसके पीछे बहुतसारे काटोंसे युक्त काले लोहेसे बनाहुआ शूल लेकर माल्यवानने देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णुजीकी छातीमें अति जोरसे मारा॥१५॥ और वह रणप्रिय निशाचर इन्द्रजीके अनुज विष्णुजीके मूका मारकर तीन हाथ पीछे हटगया ॥ १६ ॥ तब आकाश मंडलमें "साधु साधु" यह बड़ाभारी शब्द हुआ राक्षसनें विष्णुजीको मार फिर गरुडजीके ऊपरप्रहार किया ॥ १७ ॥ फिर बलवान विनताके पुत्र गरुड़जीनें महा क्रोधकर पव नसे उडते हुए सूखे पत्तोंकी समान राक्षसको बहुत दूर फेंक दिया ॥ १८ ॥ अपने बड़ेभाई माल्यवान पक्षिराज गरुड़जीके पंखोंकी पवनसे ताड़ित देखकर सुमाली सैनाके सहित लंकाको भाग गया ॥ १९ ॥ पंखोंसे उत्पन्न पवनके बलसे फेंका जायकर माल्यवान राक्षसभी लाजके मारे अपनी सैनामें जाय घुसा ॥ २० ॥ हे कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी! इस प्रकारसे भगवान हरिनें उन राक्षसोंकी अनेक वार रणमें भगाया; और उनमें मुखिया २ सैनापतियोंका संहार किया ॥ २१ ॥ वह बलसे पीड़ित हुए राक्षस लोग विष्णुजीके सहित युद्ध करनेंमें असमर्थहो लंकाको छोड़ अपनी २ स्त्रियोंके साथ पाताल लोकमें रहनेंको चलेगये ॥ २२ ॥ हे रघुनंदनश्रेष्ठ! विख्यात बलवीर्यवाले राक्षस लोग सालकटङ्कटाके वंश वाले सुमाली राक्षसका आश्रय लेकर समय बितानें लगे ॥ २३ ॥ हे राम तुमनें पुलस्त्य वंशवाले जिन समस्त राक्षसोंका संहार कियाहै महाभाग

सुमाली माल्यवान, और माली यह सबही उनसे प्रधानथे अधिक क्याकहैं यह रावणसेभी अधिक बलवानथे ॥ २४ ॥ शंख चक्र गदाधारी देव नारायणके सिवाय और कोईभी देवता लोगोंको पीड़ा देनेवाले सुर शत्रु राक्षसोंका संहार नहीं कर सकताहै ॥ २५ ॥ तुमही चार भुजावाले देव सनातन नारायणहो आपही अजीत प्रभु अविनाशीहैं, परन्तु आप राक्षसका नाशकरनेंके लिये मायारूपसे उत्पन्न हुएहैं ॥ २६ ॥ आप नष्ट हुए धर्मकी सुव्यवस्था किया करतेहैं; आप समय २ पर प्रजाकी सृष्टि करतेहैं, आप शरणागत वत्सलहैं; बस इस कारणसे अधर्म्मी पापाचारोंका वध करनेंके लिये समय २ पर आपको अपनी मायासे रूप धारण करना पड़ताहै ॥ २७ ॥ हे नरनाथ! आज आपके निकट राक्षसोंका यह समस्त उत्पत्ति वृत्तान्त कहा हे रघु श्रेष्ठ! रावण और उसके पुत्रोंका जन्म व अतुल प्रभावका वर्णन हम फिर आदिसे अंततक करतेहैं आप श्रवण करैं ॥ २८ ॥

चिरात्सुमालीव्यचरद्रसातलंसराक्षसोविष्णु
भयार्दितस्तदा ॥ पुत्रैश्चपौत्रैश्चसमन्वितोब
लीततस्तुलंकामवसद्धनेश्वरः ॥ २९ ॥

जब वह बलवान राक्षस सुमाली विष्णुजीके भयसे पीड़ित बेटे पोतोंके सहित बहुत कालतक पातालमेंही विचरता रहा, तब उस काल कुबेरजी लंकामें वास करतेरहे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे भाषानुवादे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥

कस्यचित्त्वथकालस्यसुमालीनामराक्षसः ॥
रसातलान्मर्त्यलोकंसर्ववैविचचारह ॥ १ ॥

इसके उपरान्त कुछ कालबीतने पर सुमाली नाम राक्षस पातालसे निकल मृत्यु लोकके सब स्थानोंमें घूमनें लगा ॥ १ ॥ नीले मेघकी समान तपाये हुए सुवर्णके कुंडल पहरे वह सुमाली घूमनेंके समय पद्मरहित लक्ष्मीकी समान कुमारी बेटीको संगमें लेलेता हुआ ॥ २ ॥ इसप्रकारसे

पृथ्वीपर घूमते २ उस राक्षसनाथनें पुष्पक विमानपर बैठे हुए कुबेर-जीको देखा ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजीके पुत्र विभु धनेश्वर कुबेरजी उस समय पिताजीके दर्शनको पुष्पक विमानपर चढ़कर जाय रहेथे। देवताकी समान व अग्निकीनांई उन कुबेरजीको जाता हुआ देख ॥ ४ ॥ राक्षस मृत्यु लोकसे विस्मय सहित पातालको चला गया महामति राक्षस वहां जायकर इस प्रकारकी चिन्ता करनें लगा ॥ ५ ॥ "किस श्रेष्ठ कार्य करनेंसे हम लोगोंकी बढ़ती कैसे ऐसीहो?" नीले बादरकी समान तपाये हुए कुंडल पहरे ॥ ६ ॥ महामति राक्षसपति उस कालमें ऐसी चिन्ता करकै कैकसी नामक अपनी बेटीसे बोला ॥ ७ ॥ हे बेटी! तुम्हारी यह अवस्था वीती जातीहै, इससे तुमको विवाह देनेका यही उचित समयहै, कदाचित् तुम उसको अंगीकार न करो, इसी आशंकासे भीतहो कोईभी पात्र तुमको ग्रहण नहीं करताहै ॥ ८ ॥ हे बेटी! तुम साक्षात् लक्ष्मीकी समान समस्त गुणोंसे भूषितहो; इस कारण हम सब धर्ममें बुद्धि स्थापन करकै तुम्हारे योग्य वर प्राप्त करनेंके लिये यत्नकर रहे हैं ॥ ९ ॥ मानके चाहनेंवाले पुरुषोंके लिये कन्याका पिता होंना बड़ेही दुःखकी बातहै; वह दिन रात यही विचार करतेहैं कि "यह कन्या किसको दी जायगी" परन्तु कन्या इस दुःखको नहीं जानती ॥ १० ॥ माताके कुलको, पिताके कुलको, श्वशुरके कुलको इन तीन कुलोंको कन्या सदा संशयमें डालकर टिकी रहतीहै ॥ ११ ॥ हे पुत्रि! प्रजापतिके कुलमें उत्पन्न हुए मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजीके पुत्र विश्रवाजीके निकट जाय उनको तुम अपना पति बनालो ॥ १२ ॥ हे बेटी! जो तुम अपना पति बनालोगी तौ तेजमें सूर्यकी समान इस धनेश्वर कुबेरकी समान तुम्हारेभी पुत्र उत्पन्न होंगे इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १३ ॥ वह कन्या ऐसे वचन सुन, पिताजीके गौरवके मारे वहांपर जायकर खड़ी होगई कि जहां विश्रवाजी मुनि तप कर रहेथे ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! उस कालमें पुलस्त्यजीके पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्रवाजी चतुर्थ अग्निके समान प्रदोषके समय अग्निहोत्रकी उपासना कर रहेथे ॥ १५ ॥ कैकसी उस दारुण प्रदोष कालका कुछ विचार न करकै पिताके गौरवके मारे मुनिके निकट जाय उनके चरणोंमें दृष्टि लगाय खड़ी होगई ॥ १६ ॥ और वह भामिनी वारं-

वार अपने पांवके अंगूठेसे पृथ्वीको कुरेदनें लगी; तब पूर्णमाके चंद्रमाकी समान मुखवाली परम सुन्दरीको देख ॥ १७ ॥ परम उदार स्वभाववाले अपने तेजसे दीप्तमान ऋषिजी उस कन्यासे बोलेकि "हे भद्रे! तुम किसकी बेटीहो? और किस स्थानसे यहांपर आईहो? किसके निमित्त आईहो? व हमको कौनसा कार्य करना होगा? हे शोभने! तुम यह समस्त वृत्तान्त ठीक २ हमसे कहो" ॥ १८ ॥ वह कन्या इस भांतिसे पूछे जानेंपर हाथ जोड़कर बोली, कि हे महाराज! आप अपने प्रभावसेही हमारे मनका वृत्तान्त जानलें ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मर्षे! हमारा नाम कैकसी है हम अपने पिताके कहनेंसे यहां आईहैं; शेष वृत्तान्त हम नहीं कह सकती वह आपस्वयं जानलें ॥ २० ॥ वह मुनि ध्यान धरकर सब वृत्तान्त जानकर बोले ; हे भद्रे ! हम तुम्हारे आनेंका कारण और मनका अभिप्राय जानगये हैं ॥ २१ ॥ हे मतवाले हाथीकीसी चालवाली! तुमनें हमसे पुत्रकी कामनाकी है; परंतु तुम दारुण समयमें हमारे निकट आईहो ॥ २२ ॥ इसलिये हे भद्रे ! तुम जैसे पुत्र उत्पन्न करोगी वह सुनो क्रूर बन्धु बान्धवोंके प्यारे, दारुण स्वभाव और दारुण रूपहोंगे ॥ २३ ॥ हे सुश्रोणि ! ऐसे क्रूर कर्मकारी राक्षसोंको तुम उत्पन्न करोगी; कैकसी उनके वचन सुन प्रणाम करबोली ॥ २४ ॥ किहे भगवन्! आप ब्रह्मवादी हैं! इसलिये आपके निकटसे हम ऐसे दुराचारी पुत्रोंको उत्पन्न करना नहीं चाहतीं, इस कारण जिसमें उत्तम पुत्र उत्पन्न हों ऐसा अनुग्रह कीजिये ॥ २५ ॥ मुनिश्रेष्ठ विश्रवाजी इस कन्याके ऐसे वचन सुनकर कैकसीसे फिर बोले, जिस प्रकार पूर्णचंद्रमा रोहिणीसे बोलते हैं ॥ २६ ॥ हे श्रेष्ठ मुखवाली तुम्हारा छोटा पुत्र हमारे वंशके अनुरूप धर्मात्मा होगा, इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ २७ ॥ हे राम! वह कन्या इस प्रकारसे कहीजाकर कुछ समयके वीतनेंपर दारुण व बीभत्स राक्षस उत्पन्न करती हुई ॥ २८ ॥ इसके दशशिर बड़े विशालथे, बाल चमकीलेथे, अधर तांबेके रंगके समान लालथे, वीसभुजाथीं, रंगकाले अंजनकी समान नीलाथा ॥ २९ ॥ जब इस पुत्रनें जन्म ग्रहण किया तब शृगालियें मुखसे ज्वाला उगलनेलगीं । मांस खानेवाले गिद्धादि पक्षी बांई ओरको मंडल बांधकर घूमने लगे ॥ ३० ॥ देवता लोगोंनें

रुधिर वर्षाना आरंभ किया, मेघ अतिशब्दसे गर्जनें लगे; सूर्यमें दीप्ति न रही, बड़ीभारी उल्का पृथ्वीपर गिरी ॥ ३१ ॥ पृथ्वी कंपायमान होगई दारुण पवन चलनें लगी. अचल नदीपति समुद्र खलबलाय उठा ॥ ३२ ॥ तिसके पीछे पितामह ब्रह्माजीकी समान उसके पितानें उसका नामकरण किया, यह बालक दशगर्दन होकर जन्मा है इस कारण इसका " दशग्रीव नाम होगा । " ॥३३॥ जिसके शरीरके परिमाणसे बड़े परिमाणवाला और कोई इस जगत्में विद्यवान् नहीं है; ऐसे महाबली कुंभकर्णका जन्म इसके पीछे हुआ ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे विकटाकारवाली शूर्पणखा जन्मी । धर्मात्मा विभीषणजी कैकसीके सबसे छोटे या पिछले पुत्र हुए ॥ ३५ ॥ उन महासत्ववान विभीषणजीका जन्म होते ही आकाशसे देवता लोगोनें नगाड़े बजाये; फूलवर्षाये और आकाशसे वारंवार "धन्य" २ शब्द उत्पन्न होनें लगा ॥ ३६ ॥ रावण और कुंभकर्ण यह दोनों सब लोकोंके व्याकुल करनें वाले उस महावनमें बढ़नें लगे ॥ ३७ ॥ यह कुंभकर्ण धर्मवत्सल महर्षि लोगोंको भक्षण करकै सदा असन्तुष्टहो त्रिलोकीमें घूमनें लगा ॥ ३८ ॥ परन्तु विभीषणजी धर्मशील होंनेके कारण सदाही विधिपूर्वक धर्म कार्यमें लगे रहते; विशेषकरकै वह इन्द्रियोंको जीत वेदशास्त्र संमत आहार करतेथे ॥ ३९ ॥ कुछ समयके पीछे वैश्रवण देवता धनेश्वर कुबेरजी पुष्पक विमानपर चढ़ अपने पिताजीके दर्शन करनेको आये ॥ ४० ॥ कुबेरजीको अपने तेजसे प्रदीप्त देख राक्षसी कैकसी अपने पुत्र दशग्रीवसे बोली ॥ ४१ ॥ हे पुत्र! तुम अपने द्युतिमान भ्रातावै श्रवण कुवेरको देख; भायपन समान होनें परभी कुवेरसे अपनेकू तू हीन अवस्थामे देखा ॥ ४२ ॥ इसलिये हे अमितविक्रमकारी पुत्र दशग्रीव ! जिससे तू कुबेरकी समान ऐश्वर्यवान होसकै ऐसा यत्नकर ॥ ४३ ॥ उस कालमें माताके ऐसे वचन सुनकर प्रतापवान दशग्रीव क्रोधके वशहो प्रतिज्ञा करकै बोला ॥४४॥ किहे माता! हम आपके निकट सत्यही सत्य प्रतिज्ञा करकै कहते हैं कि अपने तेजके प्रभावसे भ्राताकी समान या उससेभी अधिक हम होंगे इस कारण तुम अपने हृदयका संताप दूर करो ॥ ४५ ॥ इसके उपरान्त दशग्रीव उसी कोपके मारे मनमें तप करना ठान अपने छोटे भ्राताओंके साथ दुष्कर कार्यकरनेंका अभिलाष करता हुआ ॥४६॥

दशग्रीव "तपस्यासे मन वांछित फल प्राप्त होगा" ऐसा निश्चय करके कार्यका आश्रय ले तप सिद्ध करनेंको गोकर्ण नामक आश्रममें आया ४७॥

सराक्षसस्तत्रसहानुजस्तदातपश्चचारातुल मुग्रविक्रमः ॥ अतोषयच्चापिपितामहंविभुं ददौसतुष्टश्चवरान्जयावहान् ॥ ४८ ॥

वह उग्र विक्रमवाला राक्षस अपने छोटे भ्राताओंके सहित अनुपम- तप करके विभु ब्रह्माजीको प्रसन्न करता हुआ। तब ब्रह्मजीनें परम प्रसन्न होकर बहुतसे जयदायक वरदान दिये ॥ ४८ ॥ इत्यार्षे श्रीम मद्रामायणे वाल्मीकीये आ० उ० भाषा० नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥

अथाब्रवीन्मुनिंरामःकथंतेभ्रातरोवने ॥ कीदृशंतुतदाब्रह्मंस्तपस्तेपुर्महाबलाः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजीनें अगस्त्यजीसे कहा, हे ब्रह्मन्! महाबल- वान उन समस्त भ्राताओंनें वनमें किस प्रकार कैसी तपस्या कीथी॥ १ ॥ ऋषि अगस्त्यजी अतिशय प्रसन्न चित्तहो श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि १ वनमें वह समस्त भाई विविध भांतिके तपके धर्म करनें लगे ॥ २ ॥ मतवाला कुंभकर्ण नियम धार सदा धर्ममार्गमें टिक ग्रीष्म समयमें पंचाग्नि तापकर तप करनें लगा ॥ ३ ॥ वर्षाऋतुमें वीरासनपर बैठे बरसातके जलसे भींजनें लगा; और सीतकालमें सदा जलमें वास करनें लगा ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे उसनें दश हजार वर्ष विताये। इन दश हजार वर्षतक सदा धर्म मार्गमें टिककर कुंभकर्णनें केवल तपही कियाथा ॥ ५ ॥ धर्मात्मा बिभी- षणजो सदा धर्मपरायण और पवित्र रहकर पांच हजार वर्षतक केवल एक चरणसेही खड़े रहे ॥ ६ ॥ इस नियमके समाप्त होनेंपर देवताओंनें उनकी स्तुतिकी आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई; व अप्सरागण नाचनें लगीं ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त बिभीषणजीनें वेद पाठ करनेंमें चित्त लगाय नीचेको शिरकर पांच सहस्र वर्षतक सूर्य नारायणका तप किया ॥ ८ ॥ इस प्रकारसे मनको प्रसन्न किये बिभीषणजी नन्दनवनमें टिके हुए देव-

ताओंकी समान परमानन्दसे दश सहस्र वर्ष विताय देते हुए ॥ ॥ ९ ॥ दशाननभी निराहारहो दश सहस्र वर्षतक तप करता रहा; इन दश सहस्र वर्षोंके वीचमें जब २ एक २ सहस्र वर्ष पूर्ण होते तब दशग्रीव अपना एक शिर अग्निमें होम देता ॥ १० ॥ इस प्रकारसे जब नौ हजार वर्ष पूर्ण होगये तब एक २ करकै रावणके नौमस्तक अग्निमें चढ़ गये ॥११॥ इस प्रकारसे जब दश हजारवाँ वर्ष आया तब रावणनें अपने दशमें शिरकोभी काटनेंकी वासनाकी;उसी समय ब्रह्माजी वहां आये ॥१२॥ ब्रह्माजीनें अत्यन्त प्रसन्नहो सब देवताओंके सहित वहां आयकर कहाकि हे दशग्रीव हम तुमपर प्रसन्न हुएहैं ॥ १३ ॥ हे धर्मज्ञ! तुम जिस वरकी अभिलाषा करतेहो उस वरको अति शीघ्र हमसे मांगो, तुम्हारा परिश्रम वृथा नहीं होगा; इसलिये तुम्हारी कौनसी मनोकामना पूर्ण करैं ॥ १४ ॥ तब रावण मनमें सन्तुष्टहो शिर झुकाय देव पितामहको प्रणाम कर हर्षसे गद्गद वाणीसे बोला ॥ १५ ॥ हे भगवान्! समस्त प्राणियोंको सदा मृत्युका भय हुआ करताहै, और कोई भय नहीं विशेष करकै मृत्युकी समान शत्रु नहीं; इसलिये हम अमर होनेकी वासना करतेहैं ॥ १६ ॥ रावणके वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले सबको अमरत्व नहीं; इस कारण तुम अमरता नहीं पाय सकते इस्से दूसरा वर मांगो ॥ १७ ॥ संसारके बनानेवाले ब्रह्माजीनें जब ऐसे वचन कहे तब दशग्रीव उनके सामने हाथ जोड़कर इस प्रकारसे कहनें लगा ॥ १८ ॥ हे लोकनाथ! हे नित्यस्वरूप! हम गरुड, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देवता लोगोंसे न मारे जाँय ॥ १९ ॥ हे देवपूज्य! मनुष्य इत्यादि प्राणियोंको तो हम तिनकेकी समान समझतेहैं; इसलिये और प्राणियोंसे तो हमको कोईभी चिन्ता नहींहै ॥२०॥ देव पितामह ब्रह्माजी, धर्मात्मा राक्षस दशग्रीवके ऐसे वचन सुनकर सब देवताओंके साथ उस्से यह वचन बोले ॥२१॥ हे राक्षस श्रेष्ठ! तुम जैसा चाहतेहो वैसाही होगा! हेराम ब्रह्माजी यह कहकर फिर रावण से बोले॥२२॥ हे पापरहित! हम प्रसन्न होकर जो वर तुमको देतेहैं वह तुम श्रवण करो तुमने जो अपने शिर पूर्व समय अग्निमें होम दिये हैं ॥ २३ ॥ हे राक्षस!वह शिर अब फिर वैसेही होजायँगे! हे सौम्य!हम तुमको एक औरभी दुर्लभ वरदेतेहैं ॥ २४ ॥ कि तुम मनही मनमें जिस रूप धारण करनेंकी

अभिलाष करोगे इच्छा करतेही तुम्हारा वैसारूप होजायगा जब पितामह ब्रह्माजीनें ऐसा कहा तब राक्षस दशग्रीवके ॥ २५ ॥ मस्तक जोकि अग्निमें होम दिये गयेथे वह फिर वैसेही निकल आये । हेराम! ब्रह्माजी इस प्रकार दशग्रीवसे कह ॥ २६ ॥ फिर वह लोग पितामह विभीषणजीसे बोले हे वत्स! विभीषण तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी हुई है ॥ २७ ॥ इस्से हम तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं, अब हे धर्मात्मा सुव्रत! तुम वरमांगो, तब धर्मात्मा विभीषणजी हाथजोड़कर बोले ॥ २८ ॥ हे भगवन्! आप समस्त लोकके गुरु होकर स्वयंही हमारे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, इससे हम कृतार्थ होगये । और किरणसे युक्त चन्द्रमाकी समान हममें पुरुषार्थ आगये ॥ २९ ॥ जो प्रसन्न होकर आप हमको कोई वर अवश्यही देना चाहते हैं तो श्रवण कीजिये, हे सुव्रत! अत्यन्त विपद पड़नें परभी हमारी मति धर्ममें रतहै ॥ ३० ॥ और गुरुसे न सीखा हुआभी ब्रह्मास्त्र हमको आजावे । हे भगवन्! और जिस किसी आश्रममेंभी हमारी कोई बुद्धि हो ॥ ३१ ॥ वह समस्त धर्मकी बुद्धिहो; और हम उसी धर्मको पालन करैं । हे परम दाता! यही हमारा परम चहीतावरहै ॥ ३२ ॥ कारण कि धर्मानुरागी पुरुषोंको लोकमें कुछभी दुर्लभनहीं रहता; फिर ब्रह्माजी प्रसन्न होकर विभीषणजीसे बोले ॥ ३३ ॥ हे वत्स! तुम धर्मिष्ठहो; जो कुछ चाहते हो वही होगा हे शत्रुनाशी! राक्षस कुलमें उत्पन्न होकर भी ॥ ३४ ॥ तुम्हारी अधर्ममें बुद्धि नहीं है इस कारण हम तुम्हैं अमरता देतेहैं । यह कहकर कुंभकर्णको वर देनेके लिये तैयार हुए ॥ ३५ ॥ तब समस्त देवता हाथजोड़कर ब्रह्माजीसे बोले । इस कुम्भकर्णको आप वरदान न दें ॥ ३६ ॥ आप जानतेहीहैं कि यह दुर्मति सब लोगोंको त्रास देताहै; नंदन वनमें सात अप्सरा और दश इन्द्रके सेवकोंको ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन्! इसनें भक्षण कर लिया, इसके सिवाय कितनेही ऋषि और मनुष्य इसने खाये हैं; जब विना वरदानही इस राक्षसनें ऐसे कार्य किये हैं ॥ ३८ ॥ जो यह वरदान पालेगा तो त्रिभुवन कोही खाजायगा । इस लिये हे अमित प्रभायुक्त! वरदानके छलसे आप इसको मोह दीजिये॥३९॥ इस्से त्रिभुवनका मंगल होगा और इसके सन्मानकीभी रक्षा होजायगी देवता लोगोंके यह वचन सुनकर कमलयोनि ब्रह्माजीनें चिंताकी ॥ ४० ॥

चिन्ताकरतेही देवी सरस्वतीजी ब्रह्माजीके निकट आय खड़ी हुई। उन सरस्वतीजीनें ब्रह्माजीके निकट आय हाथ जोडकर उनसे निवेदन किया ॥४१॥ हे देव ! हम आई हैं, हमको कौन कार्य करना होगा ? आज्ञाकीजिये;देवी सरस्वतीजीको आयाहुआ देखकर ब्रह्माजीने उनसे कहा ॥ ४२ ॥ हे भारति ! देवता लोग जैसी इच्छाकरते हैं; तुम इस राक्षसकी जीभके आगे बैठकर वैसेही वचन कहो ॥ " जो आज्ञाहै " ऐसाकहकर देवी सरस्वतीजी कुंभकर्णके मुखमें पैठ गई ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी बोले! हे महावीर कुंभकर्ण! जिस वरकी तू अभिलाष करताहो उसही को मांग ले कुंभकर्ण ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुनकर बोला ॥ ४४ ॥ कि हे देव २ ! हमारा यह अभिलाष है कि वर्षोंतक सोतेही रहैं (परन्तु देव छैः मास तक निद्राका सुख पाय एकदिन भोजन कर लियाकरैं) " ऐसा ही होगा " यह कह ब्रह्माजी सब देवताओंके संग चले गये ॥ ४५ ॥ फिर देवी सरस्वतीनें भी उस राक्षसको त्यागदिया जब देवता लोग ब्रह्माजीके सहित आकाश मंडलको चले गये ॥ ४६ ॥ फिर-तब यह राक्षस सरस्वतीसे छूटकर अपनी चेतनाको प्राप्त करता हुआ तिसके पीछे दुष्टात्मा कुंभकर्ण दुःखित होकर चिन्ताकरने लगा ॥ ४७ ॥ कि आज ऐसे वचन हमारे मुखसे क्योंनिकले ऐसा जान पड़ताहै कि उस काल देवता लोगोंने आयकर हमको मोहित कर रक्खाहोगा ॥ ४८ ॥

एवंलब्धवराःसर्वेभ्रातरोदीप्ततेजसः ॥
श्लेष्मातकवनंगत्वातत्रतेन्यवसन्सुखम् ॥ ४९ ॥

वह दीप्तिसे तेजमान तीनो भाई इस प्रकारके वर पायकर श्लेष्मात्मक वनमें जाय वहां अत्यन्त सुखसे वसनें लगे ॥ ४९ ॥ इ०श्रीम०वा०आ० उ०भा०दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥

सुमालीवरलब्धांस्तुज्ञात्वाचैतान्निशाचरान् ॥
उदतिष्ठद्भयंत्यक्त्वासानुगःसरसातलात् ॥ १ ॥

इधरसुमाली इनतीनो राक्षसोंका वर पाना सुनकर भय छोडे अपन

सेवक लोगोंके साथ पातालसे निकला ॥ १ ॥ मारीच, महोदर प्रहस्त विरूपाक्ष, इत्यादि वह राक्षसमंत्रीभी अत्यन्त उत्साहके सहित निकले॥२॥ सुमाली मुख्य २ राक्षस वृन्दोंके साथ और मंत्री लोगोंके संग जाय रावणको भेंटकर यह वचन बोला ॥ ३ ॥ हे वत्स तुमनें त्रिभुवनश्रेष्ठ ब्रह्माजीके निकट उत्तम वर पायाहै जो मनोरथ हम सोचते चले आतेथे तुमने भाग्यसेही वहीवर पाया ॥४॥ हे महावीर हम जिसके लिये लंका छोडकर पातालमें चलेगयेथे हम लोगोंको उन विष्णुजीका जो बड़ाभारी डरथा वह भी अब दूर होगयाहै ॥ ५ ॥ विष्णुजीके भयसे वारंवार भागकर अपने स्थानको छोड़ और भागकर हम सब दलसहित पातालमें प्रवेश कर गयेथे ॥६॥ पूर्वकालके समय यह लंकानगरी हमारे अधिकारमें थी उस समय राक्षस लोग इसमें वसतेथे परन्तु अब धीमान् धनेश्वर कुवेरजी इस में वास करते हैं ॥ ७ ॥ हे पापरहित महावीर साम दान या वल जो लंका पुरीके लौटानेमें समर्थ हो तौ हम लोगोंका शुभकार्य कियाजाय ॥ ८ ॥ हेतात इसमे कुछसंदेहनहींहै कि तुम लंकाके राजा होजाओगे । राक्षस वंश डूबरहाथा हे महावीर इस डूबे हुए का तुमनें ही उद्धार कियाहै ॥९॥ इसकारण हे महा बलवान तुमही हम सबोंके राजा होगे । तब रावण पास आये हुए नानासे बोला ॥ १० ॥ धनपति कुवेरजी भाई होनेंके कारण हमारे गुरु हैं इस कारण आप ऐसे वचन न कहिये जब राक्षस श्रेष्ठ इस प्रकार भलीभांतिसे समझादिया ॥ ११ ॥ तब वह सुमाली राक्षस उसके मनकी वात जान कर कुछ न बोला कुछकालतक रावणके वहां वसनें पर ॥ १२ ॥ एक दिन प्रहस्तनाम राक्षस हाथ जोड़ विनीत भावसे रावणसे बोला कि महावीर दशग्रीव आपको ऐसा कहना उचित नहीं हुआ ॥ १३ ॥ शूर लोगोंमें भ्रातापन नहीं होता हम इसका दृष्टान्त कहतेहैं तुम सुनो आदित व दित दोनो बहन हितके साथ हितसे मिल ॥ १४ ॥ प्रजापति कश्यप जीकी भार्या हुई यह दोनों परम रूपवतीथीं उन दोनोंके मध्य आदितिनें त्रिभुवनके स्वामी देवता लोगोंको उत्पन्न किया॥१५॥परन्तु दितिने कश्यपजी के औरससे दैत्योंको उत्पन्न किया हे धर्मज्ञ पूर्वकालमें दैत्योंहीके सागर कानन और पर्वत सहित यह पृथ्वी अधिकारमेंथीं; और दैत्य लोगही राजाथे, फिर प्रभावशाली विष्णुजीनें संग्राममें सब दैत्योंका संहार-

कर ॥१६॥१७॥ यह अविनाशी त्रिलोकी देवता लोगोंके वशमे ले आये केवल आपही अपने भाईके साथ वैरभाव करेंगे ऐसा नहीं ॥ १८ ॥ पूर्व कालमें देवता और असुर लोगोंनेभी ऐसा आचरण कियाहै. रावण उसके ऐसे वचन सुन मनमें हर्षितहो ॥ १९ ॥ एक मुहूर्तभर तक चिन्ता करके बोला कि अच्छा हमनें स्वीकार किया। तब ऐसा कहकर हर्षके मारे वीर्यवान ॥ २० ॥ दशग्रीव उसी दिन निशाचर लोगोंके साथ लंकाके समीपवाले वनमें गया। उस समय निशाचर दशग्रीवनें त्रिकूट पर्वतपर टिककर ॥ २१ ॥ वाक्य विशारद प्रहस्तको दूत बनाकर भेजा हेराक्षसोंमेंश्रेष्ठ प्रहस्त तुम शीघ्र जायकर कहो ॥ २२ ॥ तुम हमारे कहनेंके अनुसार धनपति कुवेरसे समझायकर यह कहनाकि,—हे राजन्! यह लंकापुरी पूर्वकालमें महात्मा राक्षसोंके अधिकारमेंथी ॥ २३ ॥ हे पापरहित सौम्य! इस समय आप इसमें विराजमानहैं यह आपको उचित नहीं है हे अतुल विक्रमकारी! अब जो लंकापुरी आप हमको लौटादें ॥ २४ ॥ तो हमको बड़ीही प्रीति दिखाई जाय; और धर्मका प्रतिपालनभीहो। तब प्रहस्त धननाथ कुवेरजीसे रक्षाकी जाती हुई लंकापुरीमें गया ॥ २५ ॥ और परमोदार धनेश्वर कुवेरजीसे बोला। हे सुव्रत! आपके भ्राता दशग्रीवसे भेजे जाकर ॥ २६ ॥ हम आपके समीप आयेहैं। हे सर्व शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महावीर धनेश्वर! उस दशाननने जो कुछ कहाहै आप हमारे मुखसे निकले हुए उन सब वचनोंको सुने ॥ २७ ॥ हे विशालनेत्र! पूर्वकालमें यह रमणीक सुप्रसिद्ध लंकापुरी भयंकर विक्रमकारी सुमाली इत्यादि राक्षसोंकरके प्रथम भोगी गईहै" ॥ २८ ॥ हे वत्स! विश्रवाके पुत्र! इसी कारणसे वह इस लंकापुरीको मांगतेहैं; आप समझानेंसे इसको देदीजिये; यह बात हम आपको जतातेहैं ॥ २९ ॥ वचन बोलनेंमें चतुर धननाथ कुवेरजी प्रहस्तसे ऐसे वचन सुनकर उसको उत्तर देते हुए ॥३०॥ हे रात्रिचर! यह राक्षस शून्य लंकापुरी पिताजीनें हमकोदीहै; हमने दान और सन्मानादि गुणद्वारा अनेक प्रकारके लोगोंको यहां वसायाहै ॥३१॥ तुम रावणके निकट जायकर उनसे कहनाकि हे महावीर! हमारा जो राज्य और पुरीहै यह सब तुम्हारीहै; इस कारण तुम अकंटक राज्य भोगो ॥ ३२ ॥ और हमारा धन व राज्य यह हमारा व आपका एक-

हीहै। कुबेरजी यह कहकर अपने पिताके निकट गये ॥ ३३ ॥ और उनको प्रणामकर रावणके अभिप्रायको निवेदन करके कहा,–पितः! रावणनें अभी हमारेपास दूत भेजाथा ॥ ३४ ॥ और कहाहै कि लंकापुरी हमको देदो; क्योंकि पहले राक्षसही इसके रहनें वालेथे। हे सुव्रत! इस समय हमको क्या करना चाहिये सो आप उपदेश कीजिये ॥ ३५ ॥ मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि विश्रवाजी यह वचन सुनकर हाथ जोड़कर आगे खड़े कुबेरजीसे बोले कि हमारे वचन सुनो ॥ ३६ ॥ महावीर दशग्रीवनें हमसेभी पहले यह बात कहीथी, हमनें उस दुर्मतिको बहुत तिरस्कार किया और कह दियाथा ॥ ३७ ॥ हमनें क्रोधित होकर "तेरा नाशहो जायगा" वारंवार उसको यह कहाहै; हे पुत्र! कल्याणकारी धर्मयुक्त हमारे वचन तुम सुनो ॥ ३८ ॥ वह दुर्मति वरदान पानेंसे मोहितहो; मान्य अमान्य किसीको कुछ नहीं मानता; हमारे शापसे उसका दारुण स्वभाव होगया है ॥ ३९ ॥ इसलिये हे महावीर! तुम लंकाको छोड़कर अपने सब संगियोंके साथ कैलास पर्वतपर जाय रहनेंके लिये पुरी बनाओ ॥ ४० ॥ सब नदियोंसे उत्तम नदी रमणीक मन्दाकिनी वहां विराजमानहै; कंचनकी समान सूर्यकी समान उज्वल कमल फूलोंसे युक्त उसका जलहै ॥ ४१ ॥ बबूले अरुण कमल और सुगन्धि युक्त फूलभी उसमें खिल रहेहैं; वहांपर देवता, गन्धर्व, अप्सरा, उरग, किन्नर, ॥ ४२ ॥ मन्दाकिनीके जलमें नित्य विहार करतेहैं। हे धनद! इस राक्षसनें परम वरदान पायाहै यह तुम जानतेहीहो इसकारण इसके साथ विरोध करना तुमको उचित नहीं है ॥४३॥ यह सुनकर कुबेरजी पिताजीके गौरवके वश उनके वचन मान स्त्री, पुत्र, मंत्री समस्त वाहन और धनको लेकर कैलासको चलेगये॥४४॥ इसके उपरान्त प्रहस्तनें हर्षितचित्तसे अनुज और मंत्रियोंके साथ बैठेहुए महाबलवान रावणके निकट जायकर कहा कि; ॥ ४५ ॥ लंकापुरी इस समय सूनीपड़ी है। धनेश्वर कुबेर लंकापुरीको छोड़कर चलेगये इस कारण आप हम लोगोंको संग लेकर वहां पर अपना धर्म प्रतिपालन कीजिये ॥ ४६ ॥ महाबलवान रावण प्रहस्तके ऐसे वचन सुनकर अति हर्षित हुआ, और सैना संगी, व छोटे भ्राताओंको संगले लंकानगरीमें प्रवेशकरता हुआ ॥ ४७ ॥ देवनाथ इन्द्रजी जिस प्रकार स्वर्गमें पहुंच

तेथे, वैसेही वह देवताओंका शत्रु रावण कुबेरजीकी छोड़ी हुई बड़े २ मार्गवाली लंकानगरीमें पहुंचा ॥ ४८ ॥ पहले तौं वहांपर पहुंचकर निशाचर लोगोंनें रावणका अभिषेक किया; फिर रावणनें पुरीको बसाया नीले बादरकी समान देहवाले निशाचरोंके झुन्डोंसे वह लंकापुरी अत्यन्त परिपूर्ण होगई ॥ ४९ ॥

धनेश्वरस्त्वथपितृवाक्यगौरवान्न्यवेशयच्छशि विमलेगिरौपुरीम् ॥ स्वलंकृतैर्भवनवरैर्विभूषि तांपुरंदरःस्वरिवयथामरावतीम् ॥ ५० ॥

इन्द्रजीनें जिस प्रकार स्वर्गमें अमरावती पुरी बसाईथी वैसेही कुबेरजीनें चंद्रमाकी समान निर्मल कैलास पर्वतके शिखरपर शोभित गहनोंसे सजाय श्रेष्ठ गृहोंसे विराजमान अलका पुरी वसाई ॥५०॥ इत्यार्षेश्री मद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे भाषानुवादे एकादशःसर्गः॥११॥

द्वादशः सर्गः ॥

राक्षसेंद्रोऽभिषिक्तस्तुभ्रातृभिःसहितस्तदा ॥ ततःप्रदानंराक्षस्याभगिन्याःसमचिंतयत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त राक्षसपति रावण लंकाका राज्यपाय राक्षसी बहनके व्याह करनेंके लिये अपने भ्राताओंके सहित चिन्ता करता हुआ ॥१॥ उस कालमें राक्षसराज रावण उस शूर्पणखा नामक राक्षसी बहनको कालकेय दानवोंमें श्रेष्ठ विद्युज्जिह्वको दान करता हुआ ॥२॥हे राम ! इस प्रकारसे अपनी बहनका विवाहकर दशग्रीव शिकार करनेंको निकला; शिकार खेलते २ उसनें दितिके पुत्र मयको देखा ॥ ३ ॥ निशाचर रावणनें उसको कन्याके सहित देखकर पूछा, आपकोन हैं ? जो बिना मनुष्यके और मृगके बनमें विचरतें हैं ॥ ४ ॥ इस मृगनयनी कन्याके सहित आप किस कारण घूमते हैं । हे राम! तब मयनें ऐसा पूछते हुए उस निशाचरसे कहा ॥ ५ ॥ आपसे यह समस्त वृत्तान्त यथार्थ २ वर्णन करताहूं श्रवण कीजिये; जान पड़ता है कि आपने सुना होगा कि एक हेमानामक अप्सराहै ॥ ६ ॥ जैसे इन्द्रजीको शची मिलीथी वैसेही देवता लोगोंनें उस हेमाको हमें

देदियाथा; मैं हजार वर्षतक उसमें चित्त लगाये आसक्त रहा ॥ ७ ॥ अब वह देवता लोगोंका कार्य करनेंके लिये देवलोकको चलीगई; मैं उसके विरहसेकातर हो चौदह वर्षतक अपनी सुवर्णमय पुरीमें रहा ॥८॥ यहपुरी हमनें वज्र और वैदूर्य मणिसे चित्रित मायासे बनाईथी । वहांमैं दीन हीन होकर रहा ॥ ९ ॥ इस समय इस पुरीसे अपनी बेटीको लेकर हम वनमें आये हैं । हे राजन्! यह मेरी बेटी उसी हेमाकी गर्भसे उत्पन्न हुई है ॥१०॥ इसके योग्य वरको खोजनेंके लिये इसको साथले वनमें आये हैं । मानी जनोंके लिये कन्याका पिता होंना बड़े दुःखकी बात है ॥ ११ ॥ अविवाहिता कन्या; पिता, माता दौनेंके कुलको संशयमें डालतीहै; हेतात! भार्याहेमाके गर्भसे हमको दोपुत्रभी उत्पन्न हुएथे ॥ १२ ॥ हे तात! पहलेका नाम मायावी और दूसरेका नाम दुन्दुभीथा हेतात! तुम्हारे पूछनेंपर हमनें सबही यथार्थ २ कह दिया ॥ १३ ॥ वत्स? तुम कौनहो? यह हम किस प्रकारसे जानसकें? वह राक्षस ऐसे वचन सुनकर विनीत भावसे बोला ॥ १४ ॥ कि हम ब्रह्माजीके पोते पुलस्त्यके पुत्र विश्रवा मुनिके सुत हैं, हमारा नाम दशग्रीव है ॥ १५ ॥ हे राम! उस कालमें दानवोंमें श्रेष्ठ मय-दानव राक्षस पतिके यह वचन सुन उसको ऋषिपुत्र जानता हुआ ॥ १६ ॥ यह जानतेही उसने अपनी पुत्री मंदोदरीका विवाह रावणके साथ करनें-का अभिलाष किया; इसके उपरान्त मयकन्याका हाथ रावणके हाथ में पकड़वाय ॥ १७ ॥ और हंसकर दैत्योंमें इन्द्र मयनें राक्षसोंमें इन्द्र रावणसे कहा । हे राजन्! इस मेरी पुत्रीको हेमा अप्सरानें गर्भमें धारण करकै प्रसन्न कियाहै ॥ १८ ॥ तुम इस मंदोदरी कन्याको अपनी भार्या बनानेके लिये ग्रहण करो । हे राम! दशग्रीवने कहा आपके वचनोंको हमनें अंगीकार किया ॥ १९ ॥ ऐसा कहकर उसी स्थानमें अग्नि जला-य मंदोदरीका पाणिग्रहण करना हुआ । हे राम! रावण दारुण स्वभा-वको प्राप्त होगा तपोधन विश्रवाजीके दिये हुए इस शापके वृत्तान्त-को ॥ २० ॥ मय जानताथा । तौभी उसने यह जानकर कि जो मैं कन्या न दूंगा तो यह बलसे ग्रहण करेगा यह जान और ब्रह्माजीके वंशसे उस-की उत्पत्ति समझ मयनें अपनी पुत्रीको दिया, और मयनें रावणको अमोघ परम अद्भुत शक्तिभीदी ॥ २१ ॥ जो कि उसनें अति तप करकै

पाईथी रावणनें युद्धमें उसी शक्तिसें लक्ष्मणके ऊपर प्रहार कियाथा। इस प्रकारसे भार्या ग्रहणकर राक्षसोंका राजा रावण लंकाको गया ॥२२॥ अपने छोटे भ्राताओंका विवाह करनेंको दो भार्याओंको रावण ले आया-था। वैरोचनकी वेटी वज्रज्वाला नामकको ॥ २३ ॥ रावणनें कुंभकर्णकी भार्या वनाया शैलूप नाम महात्मा गन्धर्वराजकी पुत्री ॥ २४ ॥ सर-मा नामको उसनें विभीपणकी स्त्री किया। इस सरमानें मानस सरोवरके तीरपर जन्म ग्रहण कियाथा ॥ २५ ॥ इस समय वर्षा ऋतुके आजानेसे मानस सरोवर उस स्थानतक वढा कि जहां वह कन्याथी, वह देखकर कन्याकी माता स्नेहके मारे रोते २ यह वोली ॥ २६ ॥ "सरः मा वर्द्धत" (सरोवर तुम मत वढो) तिस कहनेंहीते इस कन्याका नाम सरमा हुआ; इस प्रकारसे विवाहकर निशाचर रावण, कुंभकर्ण, विभीपण, ॥ २७ ॥ अपनी २ स्त्रियेंके साथ लंकामें विहार करनें लगे; जैसे नंदन वनमें गन्ध-र्व लोग विहार करतेहैं; कुछ काल वीते मन्दोदरीनें मेघनाद नामक पुत्र-को उत्पन्न किया ॥ २८ ॥ यही पुत्र आप सव लोगोंके निकट इन्द्रजित नामसे विख्यात हुआ। पूर्वकालमें यह रावणका पुत्र ॥ २९ ॥ रोदन करते २ वादलके समान महान् शब्दसे नाद करनें लगा; हे राघव! उस के नाद करनेंसे यह लंकापुरी जड़ होगई ॥ ३० ॥ इस कारणसे उसके पिता रावणनें स्वयं उसका नाम मेघनाद रक्खा; हे राम! वह रावणके शुभ अंतःपुरमें वढनें लगा ॥ ३१ ॥

रक्ष्यमाणोवरस्त्रीभिश्छन्नःकाष्ठैरिवानलः ॥
मातापित्रोर्महाहर्षंजनयन्रावणात्मजः ॥ ३२ ॥

भली स्त्रियोंसे उसकी रक्षा होनेंलगी; वह काठसे ढकी हुई अग्निके समान मातापिताको अत्यन्त हर्ष उपजाता हुआ, मेघनाद वढनेंलगा॥३२॥

इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥

अथलोकेश्वरोत्सृष्टातत्रकालेनकेनचित् ॥
निद्रासमभवत्तीव्राकुंभकर्णस्यरूपिणी ॥ १ ॥

इसके उपरान्त मूर्तिमान घोर निद्रा कुछ कालके पीछे ब्रह्माजी करके प्रेरितहो कुंभकर्णको आश्रय करती हुई ॥ १ ॥ तब कुंभकर्ण बैठे हुए अपने भ्रातासे बोला कि हे राजन्! नींद हमको पीडित करतीहै; इसलिये हमारे सोनेको वास स्थान बनवादो ॥२॥ तिसके पीछे विश्वकर्माकी समान थवई लोगोंने राजा करकै नियुक्तहो एक योजन चौड़ा और दो योजन लंबा ॥ ३ ॥ बाधा रहित स्थान जो कि देखनेंके योग्यथा कुंभकर्णके लिये बनाया यह स्थान स्फटिकमय और सुवर्णमय खंभोंसे सब जगह शोभायमानथा ॥ ४ ॥ इसकी सीढियें वैडूर्यमणीकी बनी हुईथी; द्वारहाथी दांतके और चबूतरे स्फटिकके बने और किंकिणियोंके जालसे वह स्थान छाया गया॥५॥मेरु पर्वतकी पुण्य युक्त गुफाकी समान सबकहीं सदा सुखदायक सर्व सुखकारी मनोहर स्थान राक्षसराज रावणनें बनवाया ॥६॥ महाबल कुंभ कर्ण निद्रासे युक्त होकर सहस्रोंवर्षतक वहां सोता रहा परन्तु जागा नहीं॥७॥ जब कुम्भकर्ण नींदके वश हुआ तब रावण निरंकुश हो देवता, गन्धर्व, यक्ष, और ऋषि लोगोंको संहार करनें लगा ॥ ८ ॥ नन्दन इत्यादि जितनें विचित्र उद्यानथे, दशानन अत्यन्त क्रोधमें भरकर जाय उन सब बागोंको उजाडनें लगा ॥ ९ ॥ हाथी जिसप्रकार नदीमें क्रीड़ा करकै उसको विध्वंस करताहै, पवन जिसप्रकार वृक्षोंको हिलाकर उखाड डालताहै; वज्र जिसप्रकार पर्वतपर गिरकर उसको भेदताहै; वैसेही रावण राक्षसनें इन उद्यानोंका नाश किया ॥ १० ॥ परन्तु धर्मात्मा कुबेरजीनें रावणका ऐसा चरित्र जानकर अपने कुलके अनुरूप व्यवहारका स्मरण किया॥११॥ उस कालमें कुबेरजीनें भायपन दिखानेंकी वासनासे हितकारी उपदेश दैनेंके लिये रावणके निकट लंकामें एक दूत भेजा ॥ १२ ॥ दूत लंका नगरीमें जायकर पहले बिभीषणजीके साथ मिला बिभीषणनें धर्मानुसार उसका सन्मान करके आनेंका कारण पूछा ॥ १३ ॥ और धनपति कुबेरजीकी कुशल व अपने जातिवालोंकी कुशल पूछकर बिभीषणजीनें उस दूतके सभामें बैठे हुए रावणको दिखा दिया ॥ १४ ॥ अपने तेजकी प्रभासे देदीप्यमान राजारावणको वहां देखकर वह दूत जय वाक्यसे उसको सन्मानितकर एक क्षण तो वहा चुपचाप खड़ारहा ॥ १५ ॥ फिर सभामें बिछे हुए बिछौनोंसे सजेहुए उत्तम आसनपर बैठे हुए रावणसे

वह दूत बोला ॥ १६ ॥ हेराजन् ! आपके भ्राता कुवेरजीनें, माता पिताके कुल चरित्रकी समान जो आपसे कहाहै हम वह समस्त आपके निकट कहते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् ! अवतक आपनें जो कुछ कियाहै; वस वह वहुत होगया; इससमय श्रेष्ठ चरित्रका संग्रह करना आपको उचितहै, यदि तुम सामर्थ्य रखतेहो तौ साधु लोगोंका आचरण किया हुआ धर्म आप आचरण करौ ॥ १८ ॥ आपसे नंदन वन उजाड़ा गया; अनेक ऋषि लोग मारे डाले गये; यह सब हमनें देखा; और सुनाहै; देवता लोग तुम्हारा नाश करनेंके लिये बड़ाभारी उद्योग करते हैं वहभी समस्त हमनें सुनाहै ॥ १९ ॥ हे राक्षसनाथ ! बालक अपराध करनें परभी बन्धु लोगोंसे रक्षित होताहै, यद्यपि तुमनें वारंवार हमारा निरादर कियाहै; तथापि तुम्हारी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्यहै ॥ २० ॥ और हम जितेन्द्रिय व नियमके वशहो रुद्रजीके प्रसाद पानेंका व्रत धारणकर हिमालय पर्वत पर धर्मकी उपासना, करनेंके लिये गयेथे ॥ २१ ॥ उसी स्थानमें हमनें पार्वतीजीके सहित देवादिदेव महादेवजीको देखापाया, उस कालमें रुद्राणीजी अनुपम रूप धारण करके वहां स्थितथी; सो; "यह कौन हैं ?" इसको जाननेंके लिये विस्मितहो हमनें भाग्यके वशहो देवीकी ओर वाईं आंखसे देखा; इस देखनेमें और किसी प्रकारकाभी कारण नहींथा ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ परन्तु आंखसे निहारतेही देवीजीके दिव्य प्रभावसे हमारा वांया नेत्र भस्म होगया और धूल पड़नसे ढ़के नक्षत्रके समान हमारा वह नेत्र पीला पड़गया ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त हमनें उस पर्वतके ओर एक बड़े विस्तार वाले तटपर मौनभावसे आठ शत वर्षतक सर्व भांतिसे महा व्रत धारण किया ॥ २५ ॥ जब वह नियम समाप्त होगया तब देव महेश्वर जी वह उपस्थित हुए जिसके पीछे वह प्रसन्न होकर बोले ॥ २६ ॥ हे धर्मज्ञ ! सुव्रत ! तुम्हारी इस तपस्यासे हम प्रसन्न हुएहैं, हे धनेश्वर ! एक हमनेंही इस व्रतको पूर्ण कियाथा और एक इस समय तुमनें किया ॥२७॥ हम दोनोंके सिवाय ऐसा तीसरा पुरुष दिखाई नहीं देता कि जो ऐसे व्रत-का आचरण करनेमें समर्थहो, हमनेंही यह परम दुष्कर व्रत प्रथम काल-मे सिद्ध कियाथा ॥ २८ ॥ इस कारण हे सौम्य ! धनेश्वर! तुम हमारे संग सखा होनेंकी वासना करो हे पापरहित! तुमनें तपके प्रभावसे हमको

जीत लियाहै इस लिये तुम हमारे सखा होवो॥ २९॥ अधिक करकै तुम्हारा वांयानेत्र जो दग्ध होगयाहै; और देवीजीका रूप देखनेसे पिंगल वर्ण होगयाहै॥ ३०॥ इसी कारणसे तुम्हारा "एकाक्षि पिङ्गल" नाम बहुत दिनोंतक बना रहेगा; इस प्रकारसे शिवजीके साथ बंधुता प्राप्त कर-कै उनकी आज्ञा ले॥ ३१॥ जब हम लौटकर आये तब हम तुम्हारे पाप कार्योंकी बातैं सुननें लगे इसी कारण तुमसे कहतेहैं कि तुम कुल-के कलंकजनक अधर्मी लोगोंका संग करना छोड़दो॥ ३२॥ निश्चय जान रक्खोकि देवता और देवर्षि लोग मिलकर तुम्हारे वधका उपाय सोच रहेहैं। यह वचन सुनकर रावणके नेत्र क्रोधके मारे लालहो आये॥ ३३॥ वह दांतोंको किटकिटाता हुआ और हाथोंको मलता हुआ क्रोधसे पूर्ण होकर बोलाकी; रे दूत! तेरा कहा हुआ हम समस्त जानतेहैं॥ ३४॥ तू; या तेरा भेजनेवाला हमारा भ्राता दोनोकोही अब जीवित रहना नही पड़ैगा; धनेश्वरनें जो कुछभी कहाहै; वह कुछभी हमारा हितकर नहीं है॥ ३५॥ उस मूढ़नें हमको केवल यही सुना-याहै कि में महेश्वरका सखा होगया; इस्से जो कुछ तैंने कहा उसको हम नहीं सह सकते॥ ३६॥ हे दूत! इतने दिनोंतक जो हम चुप रहे उस-का यह कारणहै कि हम समझतेथे कि वह गुरु जनहै; बड़े भ्राताहैं; उ-नका मारना उचित नहीं है॥ ३७॥ परन्तु इस समय उसका वचन सुन-कर हमारी यह माति, स्थिर हुईहै कि हम उसका विनाश करैंगे; अधिक करकै आज हम बाहुवीर्यका आश्रय लेकर त्रिलोकीको जीतेंगे॥ ३८॥ अधिक क्या कहैं; हम केवल इस कुबेरके वध प्रसंगसे चारों लोक पालों-को इसी मुहूर्त यमराजके भवनमें पठामैंगे॥ ३९॥ लंकापति रावणने यह कहकर खड्गके प्रहारसे दूतके प्राणोंका नाश किया; और उस दूतकी मृतक देह खानेंको रावणनें दुरात्मा राक्षसोंको आज्ञादी॥४०॥

ततःकृतस्वस्त्ययनोरथमारुह्यरावणः॥
त्रैलोक्यविजयाकांक्षीययौयत्रधनेश्वरः॥४१॥

तिसके पीछे रावण त्रिलोकीको जीतनेंके अभिलाषसे स्वस्त्ययनादि पढ़, रथपर चढ़ वहांको गया जहां कुबेरजी बसतेथे॥ ४१॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० त्रयोदशः सर्गः॥ १३॥

चतुर्दशः सर्गः ॥

ततःससचिवैःसार्धंषड्भिर्नित्यबलोद्धतः ॥
महोदरप्रहस्ताभ्यांमारीचशुकसारणैः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त सदांके बल दर्पित रावणनें छैः मंत्रि लोगोंको संगले, जिनके नाम, महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण, ॥ १ ॥ और धूम्राक्षथे. इन सब वीरोंको जो कि नित्य संग्राम करनेंके लिये तैयारथे साथ लिये, तीनोंलोकोंको भस्म करता हुआसाही रावण चला ॥ २ ॥ विविध नगर, नदी, पर्वत, और इन उपवनोंको एक मुहूर्तमें नांघकर कैलासके शिखरपर आया ॥ ३ ॥ दुर्मति राक्षसपति रावण मंत्रि लोगोंके साथ समरकी वासनासे उत्साहितहो उस पर्वतके शिखरपर आयाहै ॥४ ॥ यहांके यक्ष लोग यह वृत्तान्त सुनकर उस राक्षसके सन्मुख खड़े होनेंमें समर्थ न हुए वरन यह राक्षस कुवेरजी राजाका भ्राताहै; यह जान कुवेरजीके पास चले गये ॥ ५ ॥ समस्त राक्षसोंने जायकर कुवेरजीसे उनके भ्राताके किये कार्य बताये ; तिसके पीछे वह लोग कुवेरजीकी आज्ञा पायकर हर्षित मनसे युद्ध करनेंके लिये निकले ॥ ६ ॥ उस समय कैलाश पर्वत समुद्रकीनांई रावणकी सैनाके बढ़नेंसे मानों चलायमान होनें लगा ॥ ७ ॥ फिर यक्ष और राक्षस लोगोंका कठोर युद्ध आरंभ हुआ; शीघ्रही राक्षसराजके सब मंत्री व्याकुल हुए ॥ ८ ॥ तब निशाचर दशग्रीव अपनी सैनाका ऐसा हाल देख हर्ष सहित बड़ीभारी सिंहनाद करके क्रोधके वशहो उनके सन्मुख दौड़ा ॥ ९ ॥ राक्षस पति रावणके जो घोर पराक्रमी सचिवथे; उनमैंसे एक २ मंत्री हजार २ यक्षोंके साथ युद्ध करनें लगा ॥ १० ॥ तब रावण, शक्ति, तोमर, असि, मूसल और गदासे वध्यमानहो उस सैनाकी थाह लैने लगा ॥ ११ ॥ मेघसे छुटी हुई वर्षाकी धाराके समान, शस्त्रोंकी धारासे निरन्तर घायलहो रावणको स्वास लेनेंका अवकाशभी न रहा ॥ १२ ॥ मेघ जिसप्रकार पर्वतको जलसे गीला करतेहैं वैसेही रुधिरधारासे भीग गया; परन्तु यक्ष लोगोंके असंख्य अस्त्रोंसे घायल होकरभी रावणनें कुछ पीड़ा नहीं मानी ॥ १३ ॥ महाबलवान रावणने कालदंडकी समान गदा उठाय

सैनामैंप्रवेश करते२ अनेक यक्षोंको यमराजके भवनमैं पहुंचा दिया॥१४॥ अग्निसे लहकी हुई आग्न जिस प्रकार वड़े २ बहुत सूखे काठको जला देतीहै वैसेही रावण यक्षोंकी सैनाको भस्म करनें लगा ॥ १५ ॥ पवनके चलनेंसे जिस प्रकार वादल टुकड़े २ होताहैं, वैसेही महोदर और शुकादि मंत्रियोंनेभी यक्षोंको छिन्न भिन्न करकै उनको बहुतही अल्प कर डाला ॥ १६ ॥ कोई २ संग्राममें घायलहो अंग कटाय पृथ्वीपर गिर पड़े;और कोई२कुपित भावसे युद्ध भूमिमें तीक्ष्ण दांतोंसे ओंठ काटते२ पथ्वीपर गिरे ॥ १७ ॥ सैंकड़ों यक्ष थककर रणभूमिमें शस्त्र छोड़ परस्पर को लिपटनें चिपटनें लगे। इस प्रकारसे वह लोग धारसे टूटे हुए नदीके किनारेकी समान भहरा पड़े ॥ १८ ॥ यक्ष वीर लोग पृथ्वी-पर धाय २ युद्ध करते २ शत्रुके हाथसे मृतकहो झुन्डके झुन्ड स्वर्गको गमन करनें लगे; इस कारण युद्ध देखनेंवाले ऋषि लोगोंको और स्वर्गमें गये वीर लोगोंको वहां ठहरनेके लिये स्थान मिलना कठिन हुआ ॥१९॥ पहले यक्षोंको राक्षसोंसे भागा जाता देख धननाथ महावीर कुवेरजी और दूसरे यक्ष लोगोंको संग्राममें भेजनें लगे ॥ २० ॥ हे राम! इसी अवसरमैं संयोधकंटक नामक यक्ष कुवेरजीका भेजा हुआ वड़ीभारी सैना और वाहनोंके सहित संग्राममैं आया ॥ २१ ॥ विष्णुजीके चक्रकी समान उस यक्षके चक्र मारनेंसे मारीच राक्षस संग्राममें घायलहो पुण्य क्षीण नक्षत्रकी समान पर्वतसै पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥ निशाचर मारीच चेतना पाय एक मुहूर्ततक विश्राम करकै उस यक्षसे युद्ध करताहै कि इतनेहीमैं वह यक्ष संग्रामसे भागगया ॥ २३ ॥ जिस स्थानमैं द्वारपाल लोग खड़े रहतेहैं, सुवर्ण, चांदी ओर वैदूर्यमणीसे खचित मनोहर फाट-कमैं इसके पीछे रावण पैठा ॥ २४ ॥ हे राजन्। निशाचर रावण उस फाटकमें प्रवेश कर रहाथा, कि इतनेंमें सूर्यभानु नामक द्वारपालनें उसको निवारण किया॥ २५ ॥ जवकि वह राक्षस रोका जाकरभी नहीं खड़ा हुआ और उसमें पैठताही गया। हे राम! जवकि निवारण किये जानें परभी वह राक्षस शान्त नहीं हुआ ॥ २६ ॥ तव उस यक्षनें फाटकमें लगा हुआ दंड उखाड़कर उस्से रावणको मारा तौ उस कालमैं रावण रुधिर चुआता हुआ ऐसा शोभायमान हुआ मानो गेरूधातुवाले पर्वतसे गेरू निकल रहा-

है ॥२७॥ पर्वतके शिखरकी समान उस तोरण दंडसे घायल होकर वीर रावण केवल ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे पृथ्वीपर नहीं गिरा ॥ २८ ॥ तिसके पीछे रावणनेभी इसी तोरण दंडसे यक्षपर ऐसा प्रहार किया; कि उसका शरीर एक बारही चूर्ण होगया वरन वह यक्ष फिर दिखाईभी नदिया ॥ २९ ॥

ततःप्रदुद्रुवुःसर्वेदृष्ट्वारक्षःपराक्रमम् ॥
ततोनदीर्गुहाश्चैवविविशुर्भयपीडिताः ॥
त्यक्तप्रहरणाःश्रांताविवर्णवदनास्तदा ॥ ३० ॥

तब राक्षस रावणका ऐसा पराक्रम देखकर वहांसे सब द्वारपाल भाग गये; फिर भयके मारे सब यक्ष अस्त्र शस्त्र छोड़कर थकावटके वश विवर्ण मुखहो कोई नदीयोंमें घुसे कोई गुफाओंमें पैठे ॥ ३० ॥ इ० श्रीम० वा० आ०भाषा० चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥

ततस्तॉल्लक्ष्यवित्रस्तान्यक्षेंद्रांश्चसहस्रशः ॥
धनाध्यक्षोमहायक्षंमाणिचारमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सहस्र२पराक्रमकारी यक्षोंको त्रासित देखकर धनाध्यक्ष कुबेरजी माणिभद्र नामक एक महायक्षसे बोले ॥ १ ॥ हे यक्षश्रेष्ठ! दुराचारी पापपरायण रावणको संग्राममें संहारकर तुम निहत वीर यक्ष लोगोंके रक्षक होवो ॥२॥ यह वचन सुनकर दुर्जय महावीर माणिभद्र यक्ष चार हजार राक्षसोंकी सैनाकों साथ लेकर युद्ध करनें लगा ॥ ३ ॥ यक्षलोग, गदा, मूसल, प्रास, शक्ति, तोमर और मुद्गरादि प्रहार करते २ राक्षसोंके ऊपर दौड़ने लगे ॥ ४ ॥ " अस्त्र दो " " नहीं हम इच्छा नहीं करते " तुम दो इस प्रकारसे कहते २ यक्ष और राक्षसलोग बाजपक्षीकी समान घूम २ कर तुमुल युद्ध करनें लगे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे ब्रह्मवादी ऋषिलोग; देवता और गन्धर्वगण उस तुमुल संग्रामको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ६ ॥ परन्तु प्रहस्तनें हजार यक्षोंको संग्राममें मार डाला; और महोदरनेभी एक सहस्र यक्षोंका गदाघातमें संहार किया ॥ ७ ॥ हे राजन्! उसकाल में मारीचनें युद्धमें क्रोधकर एक पलक मारनेमें दो हजार यक्षोंको यम

भवनमें भेजदिया ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! राक्षसोंका युद्ध मायाके बलसे होताथा और यक्षलोगोंका युद्ध सरलतासे पूर्णथा; इसलिये इन दोनोंके संग्राममें अधिक अन्तर था; और इसीसे राक्षसलोग संग्राममें प्रबलये ॥९॥ धूम्राक्षनें उस महासंग्राममें आयकर कोपके वशहो मूसल मणिभद्रकी छातीमें मारा; परन्तु मणिभद्र उस मूशलके लगनेसे चलायमान नहीं हुआ ॥ १० ॥ वरन मणिभद्रनें गदा उठायकर धूम्राक्षके शिरपर मारी वह इस गदाके लगनेंसे विह्वलहो गिरपडा ॥ ११॥ धूम्राक्षको ताडित और रुधिरसे रंगकर पृथ्वीपर गिरते देख रावण मणिभद्रके सन्मुख युद्ध कर-नेंके लिये दौडा ॥ १२ ॥ तब यक्षोंमे श्रेष्ठ मणिभद्रनें क्रोधके वशहो सन्मु-ख दौडकर आते हुए रावणके तीन शक्तियें मारी ॥ १३ ॥ राक्षसराज रावणनें उन शक्तियोंके प्रहारसे ताडित हो मणिभद्रके मुकुटपर प्रहार किया; उस प्रहारसे मणिभद्रका मुकुट शिरसहित आय बगलमें हो रहा ॥ १४ ॥ हे राजन्! तबसे यह यक्ष " पार्श्व मौलि " हुआ अर्थात् वह मुकुट सहित शिर उनकी बगलमें स्थितहुआ; फिर शिरके स्थानपर स्थितहुआ, जब महात्मा मणिभद्रजी भागे तब राक्षस लोगोंका बडा भारी शब्द उस पर्वतपर बढ़नें लगा ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त गदाधारी कुबे-रजी,—पद्म व शंख नामक निधिके अधिष्ठाता देवताके साथहो शुक्र और प्रौष्टपद नामक दो मंत्रियोंके साथ दूरसे ॥ १६ ॥ अपने भ्राताको देखते हुए, विश्रवाके शापके मारे गौरवहीन भ्राताको संग्राममें देखकर वह कुबे-रजी उससे ब्रह्माजीके कुलके योग्य वचन कहनें लगे ॥ १७ ॥ रेदुर्मते ! तु हम करके असत्कार्यसे निवारित होकरभी हमारे वचनोंका तात्पर्य नहीं जानता, इस कारण पीछेसे नरकमें जायकर उसके फलको जानें-गा ॥ १८ ॥ विशेष करके जो दुर्मति मोहके वशहो विष पीकर उसको नहीं जान सकता, वह उसके परिणाममे कर्मके फलको जानताहै ॥१९॥ धर्मयुक्त किसी प्राकृत कारणके वश इस समय सब देवता तुझसे विमुख हुएहैं, अब तुझमें धर्म न रहनेसे और देवता लोगोंका अनादर होनेसे तेरा जो ऐसा क्रूर स्वभाव होगयाहै तू इसको नही जानताहै ॥ २० ॥ जो पुरुष माता, पिता, विप्र और गुरुका अपमान करताहै, वह प्रेतराज यमराजके वशमें पड उसका फल देखताहै ॥ २१ ॥ जो नाशवान शरीर

धारणकर तपस्याका उपार्ज्जन नही करता, वह मूढ मृतक होकर अपने कर्मसे सम्पादित गति प्राप्त करकै पीछेसे संतापित होताहै ॥ २२ ॥ विशेष करकै माता पिताकी सेवाविना बुद्धि किसीभी पुरुषको अपनी इच्छासे सुमति नहीं होती इस कारण मातापिताकी सेवासे विहीन हो जैसा कर्म करताहै वैसाही उसको फल मिलताहै ॥ २३ ॥ मनुष्य लोग इस जगत्में पुण्य कार्यके करनेसेही पुत्र, धन, बल, रूप, समृद्धि और शूरताको प्राप्त होतेहैं ॥ २४ ॥ तू जो ऐसा दुष्कपट करताहै इस लिये तू अवश्यही नरकमें जायगा; विशेष करके जबकि तेरी ऐसी बुद्धिहै तिससे हम तेरे साथ बात चीतभी नहींकर सकतेहैं; क्योंकि असदाचारी पुरुषोंसे सदाचारी लोगोंको यही कर्त्तव्य है ॥ २५ ॥ तिसके पीछे यक्षराज कुबेरजीनें रावणके मारीचादि मंत्रियोंसेभी यह कहकर उन लोगोंके ऊपर प्रहार किया, वह कुबेरजी करके घायल होतेही संग्रामसे विमुखहो भाग गया; ॥ २६ ॥ जब मंत्रि लोग भागगये तब महात्मा यक्षनाथ कुबेरजीनें रावणके मस्तकपर गदासे प्रहार किया; रावणके यह गदा लगी तौ सही; परन्तु वह अपने स्थानसे चलायमान नहीं हुआ ॥ २७ ॥ हे रामचंद्रजी! उस कालमें यक्ष और राक्षस दोनों परस्पर चोट चलाकर न थकेही न कुछ विह्वलही हुए ॥२८॥ तब कुबेरजीनें रावणके ऊपर अग्निअस्त्र चलाया; राक्षसपति रावणनें वरुणास्त्रसे उसको शान्तकर दिया ॥ २९ ॥ तिसके पीछे निशाचरनाथ रावणनें कुबेरजीका संहार करनेंके लिये राक्षसी मायाका आश्रय ले सैंकडों हजारों रूप धारण किये ॥ ३० ॥ रावण क्रमसे वराह (शूकर) व्याघ्र पर्वत, बादल, वृक्ष, यक्ष, और दैत्य रूप धारण करकै दर्शन देनें लगा ॥ ३१ ॥ और बाणोंकी धारा छोड़नें लगा, परन्तु उसको ओर किसीनें नही देख पाया, हे राम! इसके उपरान्त रावण बड़ेभारी अस्त्र ग्रहण करके उस गदाको विद्धकर कुबेरजीके मस्तकपर प्रहार करता हुआ ॥ ३२ ॥ रावणकरके इसप्रकार घायलहो धनेश्वर कुबेरजी सब अंगोंसे रुधिर बहाते और विह्वलहो जड़ कटे हुए वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३३ ॥ तब पद्म इत्यादि निधि देवता कुबेरजीको नंदन काननमें लाय चारों ओरसे घेर उनको चैतन्य करते हुए ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे

धनेश्वर कुबेरजीको जीतकर राक्षसपति रावण हर्षित चित्तहो जयचिन्ह स्वरूप उनका पुष्पक नाम विमान ग्रहणकर लेता हुआ ॥ ३५ ॥ इस विमानके सब स्तम्भ सुवर्णके बने हुएथे और द्वार वैदूर्य मणिसे खचितथे; मोतियोंके जालसे यह ढका हुआथा; और सर्व कालमें फल देनेंवाले वृक्ष इसमें लग रहेथे ॥ ३६ ॥ मनके वेगकी समान चलनेवाला, कामनाकी समान चलनेंवाला, कामरूपी विहंगमकी समान वेगयुक्त मणि व सुवर्णकी जिसमें सीढ़ियें लग रही, तपाये हुए सुवर्णके जिसमें चबूतरे बन रहेथे ॥ ३७ ॥ अपने ऊपर सदा देवता लोगोंकोही चढ़ानेंवाला, दृष्टि और मनको सदा सुख देनेंवाला, उसपरके सब पदार्थ अक्षयथे; अनेक प्रकारकी आश्चर्ययुक्त वस्तुयें उसपर रक्खीथीं; अनेक प्रकारकी रचनाओंसे जिस्से विश्वकर्माजीनें बनायाथा ॥ ३८ ॥ यह विमान ऐसा बनाथा कि सर्व कामका देनेंवालाथा; मनोहर और श्रेष्ठथा, न उसमें बहुत गरमीहीथी न बहुत शीतलताथी, वरन वह शुभ विमान सर्व ऋतुओंमें सुखदाईथा ॥ ३९ ॥ वह दुर्मति राक्षसराज रावण अपने वीर्य बलसे जीते हुए कामगामी उस पुष्पक विमानपर सवारहो गर्वके वश हो अपने मनमें समझता हुआ कि तीनों लोक जीत लिये गये इसप्रकारसे देवता कुबेरजीको जीतकर रावण कैलाशके शिखरपरसे उतरा ॥ ४० ॥

सतेजसाविपुलमवाप्यतंजयंप्रतापवान्विमल
किरीटहारवान् ॥ रराजवैपरमविमानमा
स्थितोनिशाचरःसदसिगतोयथानलः ॥ ४१ ॥

प्रतापवान निशाचर रावण तेजके प्रभावसे उस बड़ीभारी विजयको पाय विमल किरीट और हारसे बहार दार बन उत्तम विमानपर सवारहो सभामें पधारकर अग्निकी अनुहार विराजमान हुआ ॥ ४१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥

सजित्वाधनदंरामभ्रातरंराक्षसाधिपः ॥
महासेनप्रसूतिंतद्ययौशरवणंमहत् ॥ १ ॥

हे राम! राक्षसपति रावण अपने भाई धननाथ कुबेरजीको जीत अति शूर सैनापति स्वामी कार्तिकजीकी जन्मभूमिके बड़ेभारी शरपत वनमें गया ॥ १ ॥ वहां जाकर रावणनें सुवर्णमय बड़ाभारी शरपतका वनचारों ओर किरणजाल छिटकाते हुए दूसरे सूर्यकीसमान प्रकाशमान देखा ॥२॥ हे राम? उस रमणीयकाननयुक्त पर्वतपर चढ़कर रावणनें देखाकि यहां पुष्पक विमानकी गति रुक गईहैं ॥ ३ ॥ तब राक्षसराज रावण अपने मंत्रियोंके साथ चिन्ता करनें लगा कि यह विमान तो स्वभावसे कामगामीहै तथापि किस कारणसे इसकी गति रुक गई ॥ ४ ॥ पर्वतके ऊपर आयकर पुष्पक विमान हमारी इच्छानुसार क्यों नहीं चलताहै इसकी गतिको रोकना किसका कामहै ॥ ५ ॥ हे राम! उसी समय बुद्धि कोविद मारीचनें कहा कि राजन्! पुष्पक जो आगमन नही करता यह कारणरहित बात नहीं; अवश्य कोई कारण होगा, ॥ ६ ॥ अथवा यह पुष्पक विमान कुबेरजीके सिवाय और किसीको अपने ऊपर नहीं लेचलता होगा इस लिये यह कुबेरजीसे छुटकर निश्चल होगयाहै ॥ ७ ॥ इधर रावणादिक यही विचार करतेथे कि अति कराल रूप काले पीले रंगके बहुत छोटा डील विकटरूप मूंड़ मुड़ाये छोटे हाथ-वाले बलवान नंदी ॥ ८ ॥ जोकि महादेवजीके अनुचरथे वहां आयकर बोले, इन नन्दीश्वरनें अशंकित भावसे राक्षसराज रावणसे कहा ॥ ९ ॥ हे दशग्रीव! तुम लौट जाओं क्योंकि इस पर्वतपर शिवजी महाराज क्रीडा करतेहैं क्या गरुड़, क्या नाग, क्या गन्धर्व, क्या देवता, क्या यक्ष ॥ १० ॥ सब प्राणियोंकोभी इस पर्वतपर आनेंकी मनाईहैं नंदीके यह वचन सुनकर क्रोधकेमारे रावणके कुंडल कंपायमान होने लगे॥११॥ और क्रोधके मारे लाल २ नेत्र करके कौन शंकरहै यह कह वह पुष्पक विमानसे उतर पर्वतके नीचे आया ॥ १२ ॥ रावणनें देखा कि वहां नंदी शूलको उठाये दूसरे महादेवजीकी समान हो व शंकरजीके निकटही खड़ेहैं ॥ १३ ॥ निशाचर रावण उन नंदीश्वरका वानरकी समान मुख देख निरादरकर जलमेघकी समान ऊंचे शब्दसे उठायकर हस पड़ा ॥१४॥ श्रीशंकरजीके दूसरे शरीर भगवान् नंदीश्वरजी उसे अत्यन्त क्रुद्ध होकर आये हुए राक्षस रावणसे बोले ॥ १५ ॥ रेदशानन! हमको वानर रूपी

दर्शन करके निरादर दिखाय वज्रके गिरनेंकी समान गंभीर शब्दसे हंसा ॥ १६ ॥ इस लिये तेरे वंशका नाश करनेंके निमित्त हमारे समान वीर्यवान् और तेजस्वी वानर हमारे वीर्यसे संयुक्त होकर उत्पन्न होंगे॥१७॥ वह नख दांतको आयुध बनाये वानर लोग मनकी समान शीघ्र चलने वाले,रणमें उन्मत्त पर्वतकी समान विशाल,बल सम्पन्न और क्रूर होंगे॥१८॥ वह लोग उत्पन्न होकर पुत्र और मंत्रिलोगोंके साथ तुम्हारा मानसिक प्रबल दर्प्प और अहंकार सब दूरकर देंगे ॥ १९ ॥ हे निशाचर! हम अभी तुमको मार सकतेहैं परन्तु तेरे विनाश करनेंके लिये चेष्टा करना वृथाहै, कारण कि तू अपने कर्म दोषसे आपही नाशको प्राप्त हुआहै॥२०॥ महात्मा नंदीश्वरजीनें जैसेही यह वचन कहे वैसेही देवता लोगोंके नगाडे बजने लगे और आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई ॥ २१ ॥ तब महा बलवान दशानन नंदीश्वरजीके यह वचन सुन पर्वतके निकट जाय यह वचन बोले ॥ २२ ॥ हे रुद्र! जिसका आश्रय करकै क्रीडाके लिये गमन करते२ हमारे पुष्पक विमानकी गति रुकगई है हम तुम्हारे इस पर्वतकोही उ-खाड़े डालतेहैं ॥ २३ ॥ किस प्रभावसे महादेवजी राजाकी समान क्रीडा करतेहैं, यह जानना उचितहै, विशेष करकै अधिक भय उपस्थित हुआहै, और वह उसको नहीं जानतेहैं ॥ २४ ॥ हे राम! इस प्रकारसे कह रावण पर्वतके नीचे अपने हाथ लगाय शीघ्र उस पर्वतको उठाने लगा तब उठा-नेसे वह पर्वत कंपायमान हुआ ॥२५॥ पर्वतके चलायमान होनेसे महा-देवजीके समस्तगण कांपगये, पार्वतीजीभी चंचल होकर उसी समय महादेवजीको लिपटगई ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त देवताओंमें श्रेष्ठ महादे-वजीनें पैरके अंगूठेसे इस पर्वतको जरा दाब दिया ॥ २७ ॥ महादेवजीके कुछ दबानेसेही पर्वतके थंभकी समान रावणकी बडी २ भुजा पिचनें लगीं, और उसे अति व्यथा हुई तब रावणके सब मंत्री विस्मित हुए॥२८॥ रावण राक्षस क्रोधके मारे और बांहोंकी पीडासे सहसा चिल्लानें लगा इस चिल्लानेसे त्रिलोकी कम्पायमान होगई ॥ २९ ॥ दशाननके मंत्रियोंने इस शब्दको सुनकर समझा कि मानो युगान्त समयमें वज्र गिरनेंका शब्द हुआ; इस शब्दको श्रवण कर मार्गमें स्थित हुए इन्द्रादि देवता सबही चलायमान हुए ॥ ३० ॥ सब समुद्र खल

बलाय गये, पर्वत कंपायमान होने लगे, और यक्ष, विद्याधर व सिद्ध गण "यह क्या है?" ऐसे परस्पर कहनें लगे ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त दशग्रीवके मंत्री लोग बोले कि हे दशानन! आप उमाकान्त नीलकण्ठ महादेवजीको सन्तुष्ट कीजिये इस विपदमें उनके सिवाय और किसीको हम नहीं देख सकते ॥ ३२ ॥ आप उनको प्रणाम कर अनेक स्तुतिसे उनकी शरणमें जाइये, देवशंकर कृपालु हैं वह सन्तुष्ट होकर अवश्यही आपपर अनुग्रह करेंगे ॥ ३३ ॥ तिसकाल मंत्रिलोगोंके यह वचन सुन दशानन प्रणाम कर सामवेदके मंत्रोंसे व विविध भांतिके स्तोत्रोंसे वृषभध्वज महादेवजीकी स्तुति करने लगा यहां तककि रोदन करते २ राक्षसको वहांपर सहस्रवर्ष व्यतीत गये ॥ ३४ ॥ हेराम तिसके पीछे शैल कैलाशपर विहार करते हुए प्रभु महादेवजीने प्रसन्नहों दशग्रीवकी सब भुजा छोड उससे कहा ॥ ३५ ॥ दशानन तुमने पर्वतसे दबकर वीर दर्पके मारे जो दारुण बडा नाद कियाहै तिस्से हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुएहैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् विशेष करके तीनों लोक इस समय तुम्हारे शब्दसे शब्दित होकर भीत हुएहैं इस लिये तुम 'रावण' नामसे विख्यात होंगे ॥ ३७ ॥ देवता मनुष्य और यक्ष; व इस समय जितने जीवहैं वह सबही तुमको इस प्रकारसे लोगोंका रुवाने वाला रावण कहकर पुकारेंगे ॥३८॥ हे पुलस्त्यनंदन तुमको जिस मार्गमें जानेकी इच्छाहो तुम विशुद्ध भावसे उसी मार्गमें चल जाओ हे राक्षस नाथ! हम आज्ञा देतेहैं तुम पुष्पक विमानपर चढ़कर चले जाओ॥३९॥ श्रीमहादेवजीके ऐसे वचन सुनकर लंकेश्वर दशाननने कहा कि हे महादेव! यदि हमपर आप प्रसन्न हुए हैं, तो हम प्रार्थना करतेहैं कि हमें यह वरदान दीजिये॥४०॥हमनें यह वरदान जो पायाहै, तिस्से देवता, गन्धर्व, दानव, राक्षस, गुह्यक, नाग या और कोई महाबलवान प्राणी हमारा वध नहीं कर-सकैंगा ॥४१॥ हे देव! हम मनुष्योंको तौ कुछ गिनतेही नहीं है, क्योंकि हम जानते हैं कि मनुष्य अति अल्पवीर्यवाले हैं। हे त्रिपुरारी! ब्रह्मा-जीसे हमनें अति बड़ी आयु पाई है तिसका कुछ काल चला गयाहै, इस समय हम प्रार्थना करते हैं कि शेष भागभी इसी प्रकारसे अप्रतिहत और अजेय होकर इच्छानुसार बितावें आप हमें यह वर और सर्व प्राणियोंको

जीतनेके लिये कोई दिव्य अस्त्रभी दीजिये ॥ ४२ ॥ रावणके यह वचन सुनकर भूतपति शंकर महादेवजीनें उसको चन्द्रहास नामक विख्यात महा प्रदीप्त खड्ग दिया ॥ ४३ ॥ और ब्रह्माजीके देनेसे रही हुई शेष परमायूभी दी ॥ ४४ ॥ इस प्रकारसे खड्ग और वरदान देकर श्रीमहादेवजी बोले कि हे रावण! तुम कभी इस खड्गका निरादर मतकरना, जो निरादर करोंगे तो यह अस्त्र उसी समय हमारे निकट आजायगा इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥४५॥ महादेवजी करकै इस प्रकारसे नाम धराय रावणशिवजीको प्रणाम करके पुष्पक विमान पर सवार हुआ ॥ ४६ ॥ हे राम ! तिसके पीछे रावण महावीर्यवान् क्षत्री लोगोंको पीड़ित करता हुआ पृथ्वीपर घूमने लगा ॥ ४७ ॥ कोई २ तेजस्वी युद्धोन्मत्त क्षत्री शूरवीर गण रावणकी आज्ञा पालन न करकै उस कालमें अपने परिवार सहित नाशको प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥

अपरेदुर्जयंरक्षोजानंतःप्राज्ञसंमताः ॥
जिताःस्मइत्यभाषंतराक्षसंबलदर्पितम् ॥ ४९ ॥

व और दूसरे अनेक विज्ञ विचारवान क्षत्री लोगोंनें बलगर्वित रावणको अजीत जानकर उसके निकट पराजय मानली ॥ ४९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥

अथराजन्महाबाहुर्विचरन्पृथिवीतले ॥
हिमवद्वनमासाद्यपरिचक्रामरावणः ॥ १ ॥

हे राम ! महावीर रावण पृथ्वीपर विचरण, करते २ एक समय हिमालयके निकट वनमें जाय वहां घूंमनें लगा ॥ १ ॥ इसी समय उसनें इस वनमें मृगचर्म पहरे जटा धारण किये तप करनेंमें निरत साक्षात् देव कन्याको समान दीप्तिमान एक कन्याको देखा ॥ २ ॥ सुन्दरताईसे युक्त महाव्रतवाली कन्याको देखकर कामदेवके मोहसे, मानो हंसीही करत हुआसा रावण उससे बोला ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! यह आचरण तुम्हारे यौवनके विरुद्ध है इस लिये क्यों इसका अनुष्ठान करती

हो; विशेष करकै यह आचरण तुम्हारे ऐसे रूपके योग्य नही है हे भीरु! तुम्हारी उपमा रहित सुन्दरताई मनुष्योंको कामका उन्माद करनें वाली है; इसलिये तुमको तप करना उचित नहींहै; ऐसा निर्णय वृद्ध लोगोंनें कियाहै ॥ ५ ॥ हे भद्रे! तुम किसकी कन्याहो ? यह व्रत क्यौं करती हो; हे सुन्दर मुखवाली तुम्हारे स्वामी कौंन हैं? हे भीरु? जो पुरुष तुमको भोग करताहै; पृथ्वीपर वही पुण्यवान है ॥ ६ ॥ तुम किस कारणसे इतना परिश्रमकर रहीहो? हम पूछतेहैं हमसे समस्त कहो; रावणके यह वचन सुनकर यशवान तपस्विनी ॥७॥ रावणका भलीविधिसे अतिथिसत्कार करकै वोली; बृहस्पतिजीकेपुत्र बुद्धिमें बृहस्पतिजीकेही समान अमित प्रभावान श्रीमान् कुशध्वज नामक ब्रह्मर्षि हमारे पिताहैं॥८॥वह महात्मा नित्य ही वेदाभ्यास करतेहैं; और हम उनके वेद वाक्यसै वाङ्मयी कन्या होकर उत्पन्न हुईथीं हमारा नाम वेदवतीहैं ॥ ९ ॥ देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और नागगण सदा पिताके निकट जायकर हमको विवाह करनेंकी प्रार्थना करते ॥ १० ॥ परन्तु हे राक्षसेश्वर! हमको पिताजीनें उन लोगोंके साथ न विवाहा । हे महावीर! इसका कारण कहतीहैं तुम सुनो ॥ ११ ॥ सुरेश्वर, त्रिलोकेश्वर, विष्णुजीको जामाता करनाही हमारे पिताकी इच्छाथी, इस लिये उन्होंने और किसीको हमें नहीं दिया ॥ १२ ॥ जब पिताजीनें हमको विष्णुजीकेसाथ विवाह दैंनेकी इच्छाकी तब यहबात सुनकर बलगर्वित दैत्यराज शुम्भनें अत्यन्त कोप किया ॥ १३ ॥ और एक दिन रात्रिके समय जबकि पिताजी सोते थे; उस पापात्मानें आकर उनको उसी समय मारडाला ॥ १४ तिसकालमैं हमारी महाभागा माता शोकसे आतुरहो पिताके मृतक शरीरके साथ अग्निमें प्रवेशकर गईं ॥ १५ ॥ तिसके पीछे नारायणके प्रति जो हमारे पिताजीका मनोरथ था, वह सत्य करनेकें कारणही हम नारायणजीको हृदयमैं धारण किये हुएहैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसश्रेष्ठ! इसही प्रतिज्ञाके वशहो हम यह बड़ीभारी तपस्या करतीहैं यह समस्त वृत्तान्त हमने तुमसे कहा ॥ १७ ॥ नारायणही हमारे पतिहैं, पुरुषोत्तम नारायणके सिवाय हम और किसीको नहीं जानती नारायणजीको पानेंके लियेही यह घोर व्रत कियाहै ॥ १८ ॥ हे पौलस्त्यनंदन! हम तुमको जानतीहैं; तुम

जाओ त्रिलोकीमैं जो कुछभी होताहैं हम तपके बलसे वह समस्त जानजीहैं ॥ १९ ॥ हे राम! कामसे मोहित हुए रावणनें विमानसे उतरकर उस श्रेष्ठ महाव्रतको करती हुई कन्यासे फिर कहा ॥ २० ॥ हे श्रेष्ठ वदनवाली! तुम गर्व्वित हो, जो ऐसा न होता तौ तुह्मारी ऐसी प्रवृत्ति न होती । हे मृगछौनाकेसे नेत्रवाली! पुण्य उपार्जन करना वृद्ध लोगोंकोही शोभा देताहै ॥ २१ ॥ तुम सर्वगुण सम्पन्नहो; तुमको ऐसा कहना उचित नहीं है; हे भीरु! तुम त्रैलोक्य सुंदरीहो तुम्हारा यौवन बीताजाताहै ॥२२॥ हे भद्रे! हम लंकाके स्वामीहैं; हमारा नाम रावणहै; तुम हमारी भार्या होकर सुखसहित भोग्य वस्तुओंको भोगो ॥ २३ ॥ तुम जिसको विष्णु कहतीहो वह कौनहै? हे लावण्यवती? तुम जिसकी कामना करतीहो वह कभी, वीर्य, तप, भोग, बल, किसीमेंभी हमारी तुल्य नहीं है ॥ २४ ॥ जब राक्षसराज रावणनें इस प्रकारसे कहा तब वह वेदवतीकन्या निशाचरसे बोली, तुम विष्णुजीके संबन्धमैं ऐसा न कहो ॥ २५ ॥ वह तीनों लोकोंके स्वामी विष्णुजी सब लोकोंके नमस्कार करनेके योग्यहैं इस लिये हे राक्षसेन्द्र! कौन बुद्धिमान उनका अपमान करैगा ॥ २६ ॥ वेदवती कन्याके ऐसे वचन सुनकर निशाचर रावणनें उस कन्याके बाल हाथसे पकड़ उसे आगेको खेंचा ॥ २७ ॥ तिसके पीछे उस वेदवती क्रोधित होकर हाथसे अपने बाल काटनें लगी, अधिक क्या कहैं; उस वेदवतीके हाथनेही खड्गरूप होकर उसके केश कलाप काट डाले ॥ २८ ॥ वह कन्या मरनेंके लिये शीघ्रता कर और क्रोधसे प्रज्वलितहो मानो राक्षसको भस्मही करती हुईसी बोली ॥२९॥ रे अनार्य राक्षस! तूनें हमको धर्षित किया तौ सही परन्तु तू हमको जीता हुआ ग्रहण नहीं कर सकैगा इस लिये तेरे सामनेही हम अग्निमें प्रवेश करेंगी ॥ ३० ॥ तैंने पापात्मा होकर केशोंको स्पर्श कर वनमैं हमको धर्षित किया; इस कारणसे तेरा वध करनेंको हम फिर जन्म लैंगी ३१॥ जो हम तुमको शाप दैंतौ वृथा हमारी तपस्या क्षय होजायगी; विशेष करके हतसंकल्प पुरुषको मार डालना स्त्रियोंके वशकी बात नहीं है॥३२॥ जो हमनें कुछ थोड़ाभी दानकार्य, या होम कियाहो; तौ उन सब कार्य्योंसे हम अयोनिजा और पतिव्रता होकर फिर किसी धर्मात्मा महारा-

जकी कन्या होंगी ॥ ३३ ॥ यह वचन कह वेदवती कन्या प्रज्वलित अग्निमैं प्रवेश कर गयी; उस समय आकाशसे चारो ओरका दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होनें लगी ॥ ३४ ॥ हें प्रभो! वही वेदवती जनक राजके यहां कन्या रूपसे उत्पन्न होकर तुम्हारी भार्या हुई हैं। हे महावाहो! तुमभी वही सनातन विष्णुहो ॥ ३५ ॥ पहले जिस वेदवतीहीके कोपसे शत्रु तिरस्कृत किया गयाथा; अव उन्ही वेदवतीजीनें तुम्हारे अमानुषीय वीर्यका आश्रय लेकर उस पर्वतकी समान शत्रुका संहार किया ॥३६ ॥ यह महाभागा वेदीके मध्यमैं अग्निकी शिखाकी समान, आनेवाले कल्पमैं हल-की अनीसे खीचे हुए खेतमैं इस प्रकारसे वारंवार उत्पन्न होगी * ॥३७॥

एषावेदवतीनामपूर्वमासीत्कृतेयुगे ॥
त्रेतायुगमनुप्राप्यवधार्थंतस्यरक्षसः ॥
उत्पन्नामैथिलकुलेजनकस्यमहात्मनः ॥ ३८ ॥

हे महाराज! यही पहले सतयुगमें वेदवती नाम विख्यातथी सो, यह त्रेतायुगमैं प्राप्त होकर राक्षसोंके कुलको संहार करनेंको मैथिल कुलमैं महात्मा जनकजीके यहां उनकी कन्या होकर उत्पन्न हुई हैं ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे भाषानुवादे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥

प्रविष्टायांहुताशंतुवेदवत्यां स रावणः ॥
पुष्पकंतुसमारुह्यपरिचक्राममेदिनीम् ॥ १ ॥

जब वेदवती अग्निमैं प्रवेश कर गई तब रावण पुष्पक विमानपर सवार होकर पृथ्वीपर फिर घूँमने लगा ॥ १ ॥ फिर उसनें उशीरवीजनामक स्थानमैं जायकर देखाकि मरुत राजा सब देवतालोगोंके संग यज्ञकर रहेहैं ॥ २ ॥ बृहस्पतिजीके सगे भ्राता धर्मके जाननेवाले संवृत्तनामक ब्रह्मर्षि समस्त देवता लोगोंके साथ उनका यज्ञ कर रहेथे ॥ ३ ॥

* वैशाख शुक्ल नवमीके दिन जानकीका जन्म हुआहै.

वरदान पानेंसे अजितराक्षसको देख उसके सतानेंके भयसे देवता लोग पक्षियोंका रूप धारणकर उडगये ॥ ४ ॥ इन्द्रजी मोर, धर्मराज-काग, कुबेरजी गिरगट, और वरुणजी हंसरूप हुए ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशी! और देवता लोगभी इसीप्रकार पक्षियोंकी योनिमें प्रवेश करते हुए, तब रावणभी अपवित्र कुत्तेकीसमान यज्ञके स्थानमें पैठा ॥ ६ ॥ तब राक्षसपति रावणनें राजा मरुतके निकट पहुंचकर उनसे कहाकि "युद्ध करो" अथवा कहदोकि "हम हार गये" ॥७॥ तिसके पीछे मरुतनें रावणसे कहा; तुम कौननहो? तब रावण हंसकर बोला ॥ ८ ॥ हे राजन्! हम धनेश्वर कुबेरजीके छोटे भाईहैं; हमारा नाम रावणहै; इसलिये इस कौतूहल रहित भावसे हम आपपर प्रसन्न हुएहैं ॥९॥ तुम हमारा पराक्रम नहीं जानते; ऐसा पुरुष त्रिलोकीमें कोई नहींहै; हम भ्राता कुबेरको जीतकर उस्से यह विमान छीन लायेहैं ॥ १० ॥ इसके उपरान्त मरुत राजानें रावणसे कहा–, तुम्हें धन्यहै! क्योंकि तुमनें अपने बड़े भ्राताको संग्राममें जीताहै; तुम्हारी समान बड़ाई करनेंके योग्य पुरुष तीनों लोकमें कोईभी नहींहै ॥ ११ ॥ हे मूढ! अधर्म युक्त कर्म, या लोक निन्दित कर्म कभी बड़ाई योग्य नही हो सकता, तूने ज्येष्ठ भ्राताको पराजित करके दुरात्माकी समान कार्य कियाहै, फिर तू क्या अपभी बड़ाई करताहै? पूज्यापूज्य रहित तेनेंनें किस धर्मका आचरण करके पहले वरदान पायाहै? कारणकि तू जिस प्रकारसे कहताहै हमनें तौ पहलेकभी सुना नहीं ॥ १२ ॥ रे दुर्मते! खड़ारह हमारे निकटसे तू जीता हुआ न जाय सकेगा; तीखे बाण समूहसे आजही हम तुझको यमराजके भवनका पाहुना करेंगे ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त राजा मरुत धनुष बाण ग्रहण करके क्रोधमें भरे हुए युद्ध करनेंको बाहर निकले; परन्तु यज्ञ करनेंको आये हुए संवर्त्त मुनिनें उनका मार्ग रोका ॥ १४ ॥ महर्षि संवर्त स्नेह युक्त वचनोंके द्वारा राजा मरुतसे बोले, कि यदि हमारे वचन श्रवण करनेंके योग्यहों तब तौ युद्ध करना तुम्हारा मंगलकारी नहींहै ॥ १५ ॥ यह माहेश्वर यज्ञ पूर्ण न होनेसे तुम्हारे कुलको भस्म करेगा। यज्ञमें दीक्षित हुए पुरुषको युद्ध करना कैसा? दीक्षित जनको क्रोधका उदय होना भी न चाहिये ॥ १६ ॥ और जय होनेंमेंभी तौ संदेहहै क्योंकि यह राक्ष-

स अजितहैं। राजा मरुत गुरूजीके कहनेंसे युद्ध न करकै धनुष बाण त्याग स्थिर चितहो फिर यज्ञ करनेंमे मन लगाते हुए॥ १७ ॥ तिसके पीछे रावणके मंत्री शुकनें राजा मरुतको हारा हुआ विचार हर्षके वश "रावणकी जय हुई" यह विचारकर बड़े शब्दसे रावणकी जय पुकारनें लगा॥ १८॥ इसके उपरान्त रावण यज्ञमें आये हुए महर्षि लोगोंका भक्षणकर उनका रुधिर पीनेसे अत्यन्त तृप्तहो फिर पृथ्वीपर घूमनेंके लिये चला॥ १९॥ जब रावण चला गया तब स्वर्गवासी इन्द्रादि देवता अपने २ स्वरूपको प्राप्तहो उन जीवोंसे कहनें लगे ॥ २० ॥ तब इन्द्र हर्षित होकर नीली चंद्रिका युक्त मोरसे बोला, कि हे धर्मज्ञ! हम तुमपर अति प्रसन्न हुएहैं; इस लिये तुमको सर्पसे भय नहीं होगा॥ २१॥ हमारे यह सहस्र नेत्र तुम्हारी चंद्रिकापर शोभायमान होंगे; हमारे जल वर्षातेही हमारी प्रीतिका चिह्न तुमको आनंद उत्पन्न हुआ करेगा॥ २२॥ देवराज इन्द्रजीनें इस प्रकारसे मोरको वरदान दिया॥ २३ ॥ हे राजन्! पूर्वकालमें मोरोंकी पूंछ केवल नीले रंगकीथी; इन्द्रजीके निकटसे वरपाय मोरोंकी पूंछ अनेक प्रकारसे चित्रित हुई ॥ २४ ॥ हे राम! अनन्तर धर्मराज यज्ञशालामें स्थित कागसे कहाकि हे पक्षिन्! हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुएहैं इस लिये हमारे वचन सुनो॥ २५॥ और प्राणी लोग जिस प्रकारसे हम करके अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होतेहैं सो हमारे प्रसन्न होनेसे वह रोग तुमको पीड़ित नहींकर सकैंगे; इसमें कुछभी संशय नहींहै ॥ २६ ॥ हे विहंगम! हमारे वर प्रभावसे तुमको मृत्युसे कुछ भय नहीं जब तक तुमको मनुष्य मारेंगे नहीं तब तक तुम जीते रहोगे ॥ २७ ॥ और जो मनुष्य मेरे स्थानपर भूंकके मारे व्याकुल होंगे; उनके पुत्रादि जो तुह्मारी जातिवालोंको भोजन करावेंगे, वस तुम्हारेही भोजन करनेंसे हमारे यहांके प्राणी तृप्तहो जायगे॥ २८॥ तिसके पीछे. वरुणजी गंगा सलिल संचारी हंससे बोले कि हे- पत्र रथेश्वर! तुम हमारे प्रीतिसंयुक्त वचनोंको सुनो॥ २९॥ तुम्हारी चंद्रमाके मंडलकी समान निर्मल फेन समान कान्ति और श्रेष्ठ मनोहर सुन्दर वर्ण होगा ॥ ३० ॥ विशेष करकै हमारे शरीर स्वरूप जलपर संचालन करकै सदाही सौन्दर्य और अतुल आनंद पाओगे यही हमारा चिन्हहै॥ ३१॥ हेराम! पहले समयमें

हंसोंका सब शरीर श्वेत वर्ण नहींथा; उनके पंखोंका अग्रभाग नीलवर्ण और छाती कोमल श्यामवर्णथी ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त कुबेरजी पर्वत-पर स्थित गिरगटसे बोले, हम तुमपर प्रसन्न होकर तुम्हारा रंग सुवर्णकासा किये देतेहैं॥३३॥तुम्हारा मस्तकभी सुवर्णकेरंगका होजायगा, और अधिक करकै हमारे प्रसन्न होनेंसे तुम्हारा काञ्चन वर्ण सदा अक्षय होगा ॥ ३४ ॥

एवंदत्वावरांस्तेभ्यस्तस्मिन्यज्ञोत्सवेसुराः ॥
निवृत्तेसहराज्ञातेपुनःस्वभवनंगताः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार देवता लोग इन समस्त पक्षियोंको वरदान देकर, यज्ञोत्सव समाप्त होनेके पीछे राजा मरुतके सहित फिर अपने २ भवनको चले गये ॥ ३५॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० अष्टोदशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥

अथजित्वामरुत्तंसप्रययौराक्षसाधिपः ॥
नगराणिनरेंद्राणांयुद्धकांक्षीदशाननः ॥ १ ॥

तदनंतर मरुत राजाको जीतकर राक्षसाधिप रावण युद्धकी इच्छासे राजा लोगोंके नगर २ मैं घूमनें लगा ॥ १ ॥ निशाचरनाथ रावण इन्द्र और वरुणजीकी समान राजा लोगोंके निकट जाकर बोलाकि या तौ तुम हमसे युद्ध करो ॥ २ ॥ और नहीं तौ यह कहो कि हम पराजित होगये; कारणकि हमारा स्थिर निश्चयहै। जो लोग इन दोनेंमेसे एकका आश्रय न लेगा उसके छुटकारेका उपाय किसी प्रकारसे नहीं देखा जाता ॥ ३ ॥ स्वभावसेही निडर और महा बलवान होनें परभी धर्ममैं निश्चय किये राजा लोग परस्पर सलाह करनें लगे ॥ ४ ॥ वह सबही शत्रुको अधिक बल जानकर बोलेकि "हम हार गये" दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय, राजा पुरूरवा ॥ ५ ॥ इन सब महीपाल लोगोंनें कह दियाकि हम पराजित हुए तिसके पीछे राक्षसराज रावण अयोध्या पुरीमैं आया ॥ ६ ॥ उन दिनोंमैं अयोध्या पुरीकी रक्षा महाराजाधिराज अनरण्यजी करतेथे जैसे इन्द्रजी अमरावतिकी रक्षा करतेहैं सिंहकी समान बलवान अनरण्यजीसे ॥ ७ ॥ रावण बोला कि युद्ध करो अथवा हम "हारगये," यह

कह दो बस यही हमारी आज्ञाहैं ॥ ८ ॥ परन्तु अयोध्याका राजा अनरण्य उस पापात्माके वचन सुनकर क्रोधितहो राक्षसेन्द्र रावणसें बोला ॥ ९ ॥ हे निशाचर? तुम एक क्षण भर ठहरो, हम तुमसे द्वन्द्व युद्ध करतेहैं हम इस प्रकारकी सैना लेकर लडैंगे कि तुम शीघ्रही हमारे वशमें होजाओगे ॥ १० ॥ राजा अनरण्य पहलेही रावणका वृतान्त सुनकर युद्ध करनेंके लिये प्रथमसेही अपनी बड़ी सैनाको सजाय रक्खीथी सो नरपतिकी वह सैना राक्षसका वध करनेंके लिये निकली ॥ ११ ॥ हेनरोत्तम! अनरण्यकी सैनामें दश हजार हाथी, एक लाख घोड़े; व हजारों रथ, और अगणित पैदल पृथ्वीको ढककर युद्ध करनेंके लिये पैदलों व रथोंके सहित निकले ॥ हे युद्ध विशारद, तिसके पीछे बड़ाभारी युद्ध होंने लगा ॥ १३ ॥ राजा अनरण्यजीका राक्षसमें इन्द्र रावणसे अद्भुत युद्ध होनें लगा तिस कालमें राजा अनरण्यजीकी सैना रावणकी सैनाको प्राप्त होकर ॥ १४ ॥ कुछ थोड़ेही कालतक संग्रामकर सकी फिर उत्तम विक्रम प्रकाश करकै अग्निमें हुत हुए हव्यकी समान नाशको प्राप्त होगई ॥ १५ ॥ जलती हुई अग्निके निकट जायकर जिस प्रकार पतंगपक्षी फिर उस अग्निमें पैठे ही जातीहैं वैसेही राजाकी बची हुई सैना रावणको प्राप्तहोकर संग्राम मैं शीघ्रही नाश होगई ॥ १६ ॥ तवराजाओंमें श्रेष्ठ उन अनरण्य जीनें देखाकि जैसे सैंकडोंनदी समुद्रके निकट जायकर उसमें मिल जातीहैं वैसेही वह महाबलवानवीर रावणसे मारे जा रहेथे ॥ १७ ॥ तिसके पीछे राजा अनरण्यजी क्रोधसे परिपूर्ण हो इन्द्रके धनुषकी समान धनुषकी टंकारकर आपही रावणके निकट पहुंचे ॥ १८ ॥ मारीच, शुक, सारण, प्रहस्त इत्यादि रावणके समस्त मंत्री राजा अनरण्यजीके निकट न ठहर कर मृग झुंडकें समान भागे ॥ १९ ॥ तिसके पीछे इक्ष्वाकुकुल नंदन अनरण्यजीने उस राक्षस रावणके सिरमें आठ सौ बाण मारे ॥ २० ॥ जलकी धारा जिसप्रकार बादलसे निकलकर पर्वतके शिखरपर गिरती है वैसेही वह समस्त बाण रावणके मस्तक पर गिरकर कहीं भी घाव न करसके ॥ २१ ॥ तव राक्षस रावणनें बड़ा क्रोधकर राजा अनरण्यजीके शिरपर एक चनकटा मारा कि जिसके मारे जानेसे राजा रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २२ ॥ शालका वृक्ष जिसप्रकार वज्रसे भस्म

होकर वनमें गिर पड़ता है वैसेही वह राजा अनरण्यजी विह्वलहो पृथ्वीपर गिर कंपायमान होनें लगे ॥ २३ ॥ तव राक्षसराज रावण उपहास करके इन इक्ष्वाकु नंदन पृथ्वीनाथ अनरण्यजीसे बोला कि तुमनें हमारे साथ युद्ध करके इस समय क्या फल पाया ॥ २४ ॥ हे नरनाथ! त्रिलोकी में ऐसा कोई भी नहीहै किजो हमारे साथ द्वन्द्व युद्ध कर सकैं हम जानते हैं कि तुमनें विषय भोगमैं असक्त रहकर हमारे वलका समाचार नही सुना होगा ॥ २५ ॥ इस प्रकार कहनें पर हीनबल हुए राजा अनरण्यजी नें रावणसे कहाकि तुमारी क्या समर्थ हैं कालकी गति वड़ी कठिन है ॥ २६ ॥ तुम अपनी वढाई करते हो परन्तु तुम हमको पराजित नहीं करसके कालहीनें हमारा यह हाल कियाहै, तुम तौ केवल इसके मिस हुए हो ॥ २७ ॥ हेनिशाचर! जीवनके। अंतकाल (वृद्धावस्था) में अव हम क्या करनेंको समर्थ हैं परन्तु हम विमुखतो नही हुए सन्मुख संग्राममें ही तुमसे घायल हुएहै ॥ २८ ॥ हे निशाचर ! तैनें जो इक्ष्वाकुवंशका अपमान कियाहै इसके अर्थ हम कहते हैं किजो हमनें प्रजाको भलीभांतिसै पालन कियाहो तपहवन कियाहो तो हमारा वचन सत्य हो ॥ २९ ॥ रे राक्षस! महात्मा इक्ष्वाकु कुलके दाशरथी श्रीरामचंद्र होंगे वह दशरथ कुमारही तेरा प्राण संहार करैंगे ॥ ३० ॥ जब अनरण्यजीने यह शापदिया तौ आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और वद्रके शब्दके समान गंभीर देवताओंके नगाडे वजने लगे ॥ ३१ ॥

ततःसराजाराजेंद्रगतःस्थानंत्रिविष्टपम् ॥
स्वर्गतेचनृपेतस्मिन्राजसःसोपसर्पत ॥ ३२ ॥

तदनंतर राजा लोगोंमें श्रेष्ठ राजा अनरण्य स्वर्ग धामको चले गये तव राजाके स्वर्गको चले जानेपर राक्षस भी वहांसे चलदिया॥३२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामाय णे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे भाषाटिका०एकोंविंशः सर्गः ॥१९॥

विंशः सर्गः ॥

ततोवित्रासयन्मर्त्यान्पृथिव्यांराक्षसाधिपः ॥
आससादघनेतस्मिन्नारदंमुनिपुंगवम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त राक्षसोंका राजा रावण पृथ्वीपर मनुष्योंको त्रास देता हुआ घूँमता फिर ताथाकि उसनें मेघके ऊपर विराजे हुए मुनिश्रेष्ठ नारदजीको देखा ॥ १ ॥ तव निशाचर रावणनें प्रणाम करके उनकी कुशल पूँछी व आनेंका कारणभी पूँछा ॥ २ ॥ अमित प्रभायुक्त महातेजस्वी देवर्षि नारदजी मेघके ऊपर विराजमान पुष्पक विमानपर सवार होकर आये रावणसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे विश्रवानंदन? सौम्य? राक्षस नाथ? तुम हमारे वचन श्रवण करनें लिये कुछ समय ठहरो हम तुम्हारा यह उग्र विक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुय हैं ॥ ४ ॥ पहले समय में विष्णुजीनें दैत्योंका नाश करके हमें सन्तुष्ट कियाथा, पीछेसे तुम्हारे साथ गन्धर्व व नाग लोगोंका विनाश करनें वाला जो युद्ध होगाउस्से हम अत्यन्त प्रसन्नहोंगे ॥ ५ ॥ हे तात? जो तुम सुनो तौ कुछ श्रवण करनेंके योग्यवात हम तुमसे कहनेंकी इच्छा करते हैं इस लिये कहते हैं कि तुम श्रवण करनें कें लियें अपनें चित्तको लगाओं ॥ ६ ॥ हे वत्स यह मृत्यु लोक जबकि मृत्युके वशहै तबतौ यह आपही नाश हुआ रक्खाहै इस लिये तुम देवता लोगोंसे अवध्य होकर वृथा क्यों इनका संहार करतेहों तुम देव, दानव, दैत्य,यक्ष,राक्षस,और गन्धर्व, लोगोंसे अवध्यहो इस कारण इन मनुष्य लोगोंको क्लेश देंना तुम्हें उचित नहींहै ॥ ८ ॥ यह मृत्युलोक सदांही विपत्तियोंसे युक्तहै, विशेष करकै अपनी भलाईका आचरण करनेमें यह अत्यन्त मूढ औ जरा व्याधिसे आच्छादित हुआहै इसलिये ऐसे लोकका नाश करनेंसे क्या ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके अनिष्ट सम्बधोंसे मनुष्यलोग जहां तहां सदां पीडित हुआ करताहै, इसलिये युद्धसे ऐसे मनुष्य लोकका नाश करना कौंन मतिमान् पुरुष चाहताहै ? ॥ १० ॥ और भूँख प्यास व जरासेभी यह नित्य क्षय होताहै; इस कारण भाग्य करकै निहत विषाद और शोकसे संतापित मनुष्यलोकको तुम मत उजाडों ॥ ११ ॥ हे महावीर ! राक्षस नाथ ! देखो मनुष्यलोक इतना मूढहै कि वह अपने सुख दुःखभोग करनेंके कालकोभी नहीं जानता और विविध भांतिके साधारण २ पुरुषार्थमें अनुरागी हुआ करताहै ॥१२॥ कहींतौ मनुष्यगण हर्षित होकर गाते वजातेहैं,और कहीं और दूसरे आर्त पुरुषकेसाथ आंसूओंके धारा प्रवाहसे मुख व नेत्रोंको गीला करकै रोदन कररहेहैं ॥ १३ ॥ और मनुष्य

लोक– मातापिता पुत्रके स्नेहऔर बन्धु इत्यादिके मनोरथसे मोहितहैं।इस-लिये नीचेको गिरताहुआ अपने परलोकके क्लेशको नहीं जान सकता॥१४॥ इस कारण हे सौम्य! इस प्रकारके मोहसे पीडित हुए मनुष्यको क्लेश देना वृथाहै, और तिसपर तुमनें इस मृत्यु लोकको जीतभी लियाहै इसमें कुछ संदेह नही॥ १५ ॥ यह समस्त मनुष्य अवश्यही यमराजके भवनको सिधारेंगे इससे हेपरपुरको जीतने वाले! पुलस्त्यके पुत्र! तुम यमराजको जीतो तौ भलाहै॥ १६ ॥ जहां तुमनें उस यमराजको जीतलिया फिर मानों सबहीको जीतलिया इसमें कुछ संशय नहीं, अपने तेजसे दीप्तिमान लंकापति रावण इस प्रकारसे नारदजीके समझानेसै॥ १७॥ प्रणाम करकै हंसता हुआ नारदजीसे बोला– कि हे देवर्षे! हे देव गन्धर्व लोक विहार प्रिय! हे समरदर्शनप्रिय!॥१८॥ जयकी अभिलाषा किये हम पाताल्के जानेको तैयारहैं. फिर त्रिलोकीको जीत देवता और नागोंको अपने वशमें लाकर अमृतके लिये हम अमृतका स्थान समुद्र मथेंगे॥१९॥ तब भगवानऋषि नारदजी रावणसे बोले, कि तुम जो पातालहीको जाना चाहतेहो तौ इस मार्गसे कहां जातेहो?॥२०॥ हे दुर्द्धर्ष! हे शत्रुनाशी! यह अत्यन्त दुर्गम यमपुरीका मार्ग प्रेतराज नगरके सामनेको चलागया है॥२१॥ तब वह रावण ऐसाही करैंगे यह कह हंसकर शरदकालके मेघकी समान द्युतिवाले नारदजीसे बोला॥ २२॥ कि यमपुरीके मार्गसे जानेंका और यमको जीतनेंका विचार हमनें पक्काकर लियाहैं; इस्से हम दक्षिण दिशाकोही जांयगे कि जहां सूर्यके पुत्र यमराजहैं॥ २३॥ हे भगवन्! हे प्रभो! हमने युद्धकी अभिलाषा कर क्रोधके वशहो प्रतिज्ञाकीहै कि चारों लोकपालोंको जीतेंगे॥ २४॥ इसके लिये अब हम प्रेतराजकी नगरीकी ओर जातेहैं; बहुतही शीघ्र प्राणियोंके समूहको क्लेश देनेवाले उन यमराजको हम मृत्युसे मिलाप करामेंगे॥२५॥ रावण यह कह नारद मुनिको प्रणामकर उनके निकटसे चलकर मंत्रियोंके साथ दक्षिण दिशाको गया॥ २६॥ परन्तु महातेजस्वी विप्रश्रेष्ठ धुवांरहित अग्निकी समान नारदजी एक मुहूर्तभरतक ध्यानमें रहकर स्थिरहो चिन्ता करनें लगे॥ २७॥ आयुके क्षीणहो जानेंपर जो इन्द्रादि देवता और सचराचर त्रिलोकीको क्लेश देताहै उस कालको रावण किस प्रकारसैं जीतेगा॥ २८॥

जो प्राणीयोंके दान और कर्मादिका साक्षीहैं; और जो दूसरा अग्निके स्वरूपहै जिस महात्माके अनुग्रहसे जीव लोग चेतना प्राप्त होकर अपने २ कार्यमें लगतेहैं ॥ २९ ॥ त्रिलोकी जिसके भयसे व्याकुल होकर भागतीहै, यह राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावण अपनी इच्छानुसार किस प्रकारसे उसके निकट जायसकेगा ॥ ३० ॥ जो सब लोकका धाता और विधाता पाप पुण्यके फलका दाताहैं; जिसनें त्रिलोकीको जीत लियाहै उस कालको रावण किस प्रकारसे जीतेंगा? कालही तौ सबका विधानहै, रावण कालके सिवाय किस विधिका आश्रय लेकर कालको जीतेगा? ॥ ३१ ॥

कौतूहलंसमुत्पन्नोयास्यामियमसादनम् ॥
विमर्दंद्रष्टुमनयोर्यमराक्षसयोःस्वयम् ॥ ३२ ॥

सो इसका हमको बड़ा कौतुक उत्पन्न होताहै, इस कारण हम साक्षात् यम और राक्षसका युद्ध देखनेंके निमित्त यमराजकी पुरीको जाऊंगा ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे भाषा टीका सहित विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥

एवंसंचिंत्यविप्रेंद्रोजगामलघुविक्रमः ॥
आख्यातुंतद्यथावृत्तंयमस्यसदनंप्रति ॥ १ ॥

अति शीघ्र चलनेंवाले विप्रोंमें श्रेष्ठ नारदजी इस प्रकारसे चिन्ताकर यह समाचार यमराजको सुनानेंकी अभिलाषासे यमपुरीकी ओर चले॥१॥ फिर उन्होंने यमराजजीके भवनमें जायकर देखाकि प्रेतराज अपने स्थानके सन्मुख अग्निको शाक्षीकर जिस प्राणीका जैसा कर्महै, उसको वैसाही दंड और अनुग्रह कर रहेहैं ॥२॥ यमराज-महर्षि नारदजीको वहांपर आया हुआ देख धर्मानुसार अर्घ्य देकर उनको विराजमान करता हुआ ॥ ३ ॥ नारदजीके सुख पूर्वक बैठनेंपर यमराज बोले हे देव गन्धर्व सेवित! हे देवर्षे! आपकुशल मंगलसैहैं? धर्मका नाश तो नहीं होता? आपके पधारनेंका क्या हेतुहै? ॥४॥ तब भगवान नारदऋषि बोले कि हम कहतेहैं सुनो, फिर जो कुछ कर्तव्य होसो करना ॥ ५ ॥ हे पितृराज! दशग्रीव नामक

अति अजित निशाचर विक्रम प्रकाश करकें तुमको वशमें लानेंकी कामना करके यहांपर चला आताहै ॥ ६ ॥ हे प्रभो! इसी कारण अति शीघ्रतासे हम आपके निकट आयेहैं; यद्यपि आप दंडधारीहैं; तौभी आज आपके जय या पराजय होनेंकी कुछ स्थिरता नहींहैं ॥७॥ इसी अवसरमैं दूरसैं दिखाई दिया कि उदित सूर्य भगवानकी समान प्रभावान, राक्षसका विमान चला आताहै ॥ ८ ॥ महा बलवान रावण उस पुष्पक विमानको प्रभासे वहांके अन्धकारको दूर करता हुआ आया ॥ ९ ॥ तहां महाबलवान रावणनें देखाकि सब प्राणी अपने पाप पुण्यका फल पाय रहेहैं ॥ १० ॥ यमराजकी सैना उनके दूतोंके साथ प्रजा गणोंको उनके पाप पुण्यके अनुसार किसिका आदर कर रहीहै और किसिको बांधरहीहै ॥ ११ ॥ रावणनें फिर देखा घोर रूपी भयानक उग्र २ यमदूतों करकै मारे जाकर सब प्राणी दुःखके मारे आरत चिल्लाय रहेहैं ॥ १२ ॥ कीडे व कुत्ते आदि जन्तु उन सबोंको काट रहेहैं, और सब ऐसे भयानक वचन बोलतेथे कि सुनतेही व्याकुल होजाय और उन प्राणीयोपर दया आवे ॥ १३ ॥ अनेक प्राणी रुधिर रूप जलसे भरी हुई वैतरणी नदीके पार होरहेहै, कोई २ उस नदीकी तत्ती तत्ती वालू मैं वारंवार संतापित होरहेहैं ॥ १४ ॥ व अनेक अधर्मी लोगोंका शरीर असिपत्र वनमें काटा जाताहै, पापी लोग रौरव, क्षार नदी और छुरीकी धारपर गिरकर आरत शब्दकर रहेहैं ॥ १५ ॥ अनेक मुरदेकी समान कृश देह होगये, वदन विवर्ण होगयाहै, बाल छूटे हुएहैं; बहुतसे पापी, भूंखेप्यासे होकर "जल जल" ऐसे शब्दकर बराबर जलमांग रहे हैं ॥ १६ ॥ सैंकड़ो पापी मैले कुचेलेही घूरि लगाये, रूखे अंग किये इधर उधर दौड़ते हैं; रावणनें मार्गके बीच ऐसी दुरावस्थामें पड़े सेंकड़ों हजारों पापी देखे ॥ १७ ॥ फिर यमराजके भवनमें यहभी देखा कि कोई २ पुण्यात्मा अपने पुण्यके प्रभावसे उत्तम स्थानोंमें गीत और बाजोंके वजनेंसे आनंदकर रहेहैं ॥ १८ ॥ जिन्हौंनें गोदान, अन्नदान और गृहदान कियेहैं वह लोग अपने कर्मके फलानुसार गोरस; अन्न और गृह भोगकर रहे हैं ॥ १९ ॥ धर्मात्मा लोग सुवर्ण मणि, और मुक्तासे सजधज कर स्त्रियोंके सहित विहारकर रहे हैं ॥ २० ॥ व और दूसरे धर्मात्मा

लोग अपने तेजके प्रभावसे प्रदीप्तहो रहे हैं; महावीर राक्षस पति रावणनें वहां इस प्रकारसे देखा ॥ २१ ॥ तिसके पीछे बलवान रावणनें विक्रम प्रकाश करके बलके सहित अपने दुष्कृत कार्यसे दंडपाते हुए उन पापियोंको छोड़दिया ॥ २२ ॥ पापी प्राणि गण राक्षस दशग्रीव करके छुटाये जायकर एक मुहूर्त भरके लिये अचिन्तनीय और अतर्कित सुख प्राप्त करते हुए जब बलवान राक्षसोंनें प्रेतोंको छोड़ दिया ॥ २३ ॥ तब प्रेत रक्षक लोग अत्यन्त क्रुद्धहो राक्षस रावणके सन्मुख दौड़े । इसके पीछे धर्मराजके शूरवीर लोग हल्ला करते हुए दशोंदिशासे आगमन करनें लगे ॥ २४ ॥ वह सैंकड़ो हजारो शूरवीर लोग शूल, मूशल, शक्ति, परिध और तोमर इत्यादि अस्त्र शस्त्र पुष्पक विमानपर वर्षानें लगे ॥ २५ ॥ वह सब शरदकी मक्खियोंके समान एक साथही गिरकर अतिशीघ्र पुष्पक विमानके चारों तरफसैं आसन, मेहल चौंतरे, और द्वार तोड़नें लगे ॥ २६ ॥ परन्तु विमान देवताके अधिष्ठान और ब्रह्मतेजसे अक्षयथा इस कारण टूटनें परभी वह पहले की समान फिर ज्योंकात्यों नया होजाताथा ॥२७॥ उन महात्मा धर्मराजकी अगणित बड़ीभारी सैनाथी परंतु उन लोगोंमेंसे सैंकडों हजारों शूर अग्रगण्यथे ॥ २८ ॥ तिसके पीछे यमराजके महावीर समस्त मंत्री, सैंकड़ौं पहाड़, वृक्ष और भाला इत्यादिसे सामर्थके अनुसार अभिलाषाके योग्य युद्ध करनें लगे ॥ २९ ॥ राजा दशानन उसके मंत्री लोग सर्व प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे बनाय सब भांति घायल लोहू लुहानहो घोर संग्राम करनें लगे ॥ ३० ॥ महावीर यम और रावणके महाभाग मंत्रीलोग अस्त्रशस्त्र चलायकर परस्पर एक दूसरेके ऊपर प्रहार करनें लगे ॥ ३१ ॥ परन्तु महावीर यमराजके मंत्री महाबलवान रावणके मंत्री लोगोंको छोड़कर वह महा बलशाली वीर ॥ ३२ ॥ शूल वर्षण करते २ रावणके सन्मुखही धाये । फिर राक्षसोंकाराजा उन लोगोंके प्रहारसे जज रतन होगया व उसके सब अंगोंसे रुधिर निकलने लगा और खिले हुए पुष्पसमूहोंने शोभित अशोकवृक्षकी समान वह पुष्पक विमानपर शोभयमान होनें लगा ॥ ३३ ॥ उस कालमें बलवान रावणभी अस्त्र चलानेंकी निपुणतासे तोमर बाण व अस्त्र बलसे शिला और वृक्षोंको चलानें लगा ॥ ३४ ॥ यमराजकी सैनामें अति दारुण वृक्षशिलाकी

अति दारुण वर्षा होने लगी कि जिससे वह सैना पृथ्वीपर गिरी ॥ ३५ ॥ परन्तु यमके योद्धा सब वृक्षादिकों काट और अस्त्र शस्त्रोंको हटाय एक साथही सेंकड़ों हजारों यम किंकर, रावणके ऊपर प्रहार करनें लगे॥३६॥ मेघ समूह जिस प्रकार पर्वतको घेर लेते हैं वैसेही वह सब रावणको घेरकर उसका श्वासरोक उसके ऊपर हजार २ भिन्दिपाल और शूल वर्षानें लगे ॥३७॥ रावणका कवचटूट गया और उसके सब अंगोंसे रुधिर वहनें लगा; तब वह महा क्रोधितहो पुष्पकको छोड़ पृथ्वीपर उतरा ॥ ३८ ॥ एक मुहूर्तमें रावण भली भांति सस्ताय कुपितहो दूसरे यमराजकी समान खड़ा होगया फिर धनुष बाण धारणकर संग्राममें बढ़नें लगा ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे दिव्य पाशुपत अस्त्र धनुष पर चढ़ाय यम कीङ्करोंसे "खड़े रहो २" यह कह धनुषको खेंचनें लगा ॥ ४० ॥ इस इन्द्रके शत्रु रावणनें कोपके वशहो कानतक धनुषको खेंच समरमें वह बाण छोडे जैसे शिवजीनें त्रिपुरासुरके ऊपर बाण छोडेथे ॥ ४१ ॥ धूम और ज्वाला मंडल सम्पन्न इन बाणोंका रूप ग्रीष्म कालमें वन दहन-कारी प्रज्वलित दावानलकी समान दिखाई देनें लगा ॥ ४२ ॥ ज्वाला-की मालासे युक्त वह बाण छूटकर लता और वृक्षोंको भस्म करते हुए संग्राममें दौड़े; मांस खानेवाले पशुपक्षीभी उन बाणोंके तेजसे भस्म होकर इन्द्र ध्वजाओंकी समान उसी समय गिरे ॥ ४४ ॥

ततस्तुसचिवैःसार्धंराक्षसोभीमविक्रमः ॥
ननादसुमहानादंकंपयन्निवमेदिनीम् ॥ ४५ ॥

तिसके पीछे भयंकर विक्रमकारी राक्षस रावण अपने मंत्रियोंके साथ पृथ्वीको कंपायमान करता हुआ महानाद करनें लगा ॥ ४५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० एकविंशः सर्ग ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥

सतस्यतुमहानादंश्रुत्वावैवस्वतःप्रभुः ॥
शत्रुंविजयिनंमेनेस्वबलस्यचसंक्षयम् ॥ १ ॥

वह सूर्य नंदन पराक्रमी यमराज रावणका महानाद श्रवण करके अपनी

सैनाका क्षय होंना और शत्रुका विजय पाना जानते हुए ॥ १ ॥ यमराज योधा लोगोंका नाश जान क्रोधके मारे लाल २ नेत्रकर सारथीसे बोलेकि "शीघ्र हमारा रथलेआओ" ॥ २ ॥ सारथीभी शीघ्रतासें उनका महारथ लायकर खड़ा होगया, तव महातेजस्वी यमराजजी उस रथपर सवार हुए ॥ ३ ॥ जो इस चराचर नित्य प्रवाह मान त्रिभुवनका संहार करताहै, वह मृत्युभी पाश और मुद्गर हाथमे लेकर यमराजके आगे वैठा ॥ ४ ॥ जलती हुई अग्निके समान तेज सम्पन्न यमराजका अस्त्र कालदंडभी मूर्तिमान होकर उनकी वगलमें वैठगया ॥ ५ ॥ सव लोगोंके भय देनेवाले यमराजको ऐसा कुपित देखकर उस समय त्रिलोकी चलायमान होगई और देवता लोग कंपायमान होगये ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त जव सारथीनें रुचिर प्रभावाले घोड़ोंको चलाया, तव वह रथ घोर शब्द करके राक्षसराज रावणके निकटको चला ॥ ७ ॥ अधिक क्याकहैं वह मनकीसमान वेगगामी इन्द्रके घोडोंकीसमान इन घोड़ोंनें एक मुहूर्त भरमें यमराजको संग्राम भूमिमें पहुंचा दिया ॥ ८ ॥ मृत्यु रूप इसप्रकारके विकटाकार रूपको देखकर राक्षसपति रावणके मंत्री लोग एकाएकी भागनें लगे ॥ ९ ॥ वलहीन ताके मारे भयसे कातरहो और अचेतहो वह सचिव लोग "हम इस स्थानमें अव युद्ध नहीं कर सकते" यह कहकर दशों दिशाओंको भागे ॥ १० ॥ परन्तु सब लोकोंको भय पहुंचानेवाले यमराजके ऐसे रथको देखकर यह रावणने कभी कुछ [illegible] नहीं हुआ और नइसनें कुछ भय पाया ॥११॥ फिर यमराज रावणके निकट जाय कोपके वशहो शक्ति और तोमर चलाय उसके मर्मस्थानोंको काटनें लगें ॥ १२ ॥ तव रावण सावधान होकर जल बरसाते हुए वादलकीसमान यमराजके उस रथपर वाणोंकी वर्षा करनें लगा ॥ १३ ॥ सेंकड़ों महा शक्तियोंके छातीमें लगनेंसे वह राक्षस रावण कुछ पीड़ित हुआ; परन्तु उन शक्तियोंके निवारणका कुछ उपाय न कर सका ॥ १४ ॥ शत्रुओंके मारनेंवाले यमराजनें इस प्रकारसे अनेक अस्त्र शस्त्रोंके द्वारा सात दिन रात संग्राम करके शत्रुको चेतनाहीन और संग्रामसे विमुख किया ॥ १५ ॥ परन्तु हे वीर! इन सात रात्रियोंके वीचमें संग्रामको किसीनें नहीं छोड़ा परस्पर जयकी अभिलाषा किये हुए यमराज और राक्षसराजका तुमुल युद्ध होता-

था॥ ॥ १६ ॥ उसकाल देवगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, और परमर्षिगण ब्रह्माजीको आगे करके उस रण भूमिमें आये ॥ १७ ॥ प्रेतोंके स्वामी यमराज और राक्षसराज रावणके युद्ध कालमें मानों प्रलय आप पहुंची-थी ॥ १८ ॥ तिसके पीछे राक्षसोंमें श्रेष्ठ रावणभी इन्द्रके वज्रकीसमान घोर नादकर धनुषपर टंकारदे आकाशको सम्पूर्ण तासेही गुंजार कराता हुआ बाणोंके समूहको छोड़नें लगा ॥ १९ ॥ रावणनें चार बाणसे मृत्युको और सात बाणसे सारथीको पीड़ित करके सैंकडों हजारो बाण अति शीघ्रतासे यमराजके मर्म स्थानमें मारे ॥ २० ॥ तब क्रोधके वश होनेके कारण यमराजके मुखमंडलसे श्वांसके साथ धुवां सहित ज्वा-लामाली कोप रूप पावक उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ यह आश्चर्य देख देवता व दानवोंके समीप मृत्युकाल दोनों बहुत हर्षित व क्रोधित हुए ॥ २२ ॥ फिर मृत्युनें अत्यन्त क्रोधित होकर वैवस्वत यमराजसे कहा; आप हमको आज्ञा दीजिये; हम संग्राममें इस भयंकर पापी राक्षसको मार डाल-तेहैं ॥ २३ ॥ हमारी स्वभावसेही यह मर्यादाहै कि जिसके ऊपर हम छूट-तेहैं; वह फिर जीवित नहीं रहता, सो जब हमको आप छोडेंगे तब यह राक्षस जीताहुआ न बचैगा हिरण्यकशिपु, श्रीमान्नयुचि, सँवर ॥ २४ ॥ निसंदी, धूम्रकेतु, विरोचनका पुत्र बलि महाराज, शंभुदैत्य, वृत्रासुर, और बाणासुर ॥ २५॥ शास्त्र जाननेंवाले सैंकडों राजर्षि, गन्धर्व, महोरग, ऋषि-पन्नग, दैत्य, यक्ष, व अप्सरायें इनको ॥२६॥ और युगान्त बदलनेंके समय हम पर्वत, नदी, वृक्षोंके सहित सागरसहित सब पृथ्वीको विध्वंशकर देते-हैं ॥ २७ ॥ इनको व और सब महाबलवानोंको जो अति दुर्द्धर्ष थे देख-तेही हम लोगोंने विनाश कियाहै, यह निशाचर तौ एक साधारण बात है ॥ २८ ॥ इस कारण हे साधुधर्मज्ञ ! आप हमको छोड दीजिये हम इसको मार डालेंगे, चाहै जितनाही कोई बलवान क्यौंन हो हमारी दृष्टिके आगे पडकर कोईभी जीता हुआ नहीं रहता ॥ २९ ॥ यह हमारा निजका बल नहींहै, परन्तु स्वभावसे हमारा स्वरूप ऐसाहै, हे यमराज ! हम करके देखे जातेही यह निशाचर फिर एक क्षणभरभी जीता न बचैगा ॥ ३० ॥ तब प्रतापवान धर्मराजने इस मृत्युके ऐसे वचन सुनकर उस्से कहा;—तुम ठहरो ! हमही इसका नाश करतेहैं ॥ ३१ ॥ तिसके पीछे प्रभु वैवस्वत

यमराजजीनें क्रोधके मारे लाल २ नेत्र करके हाथमें अमोघ व्यर्थ न होने-वाला कालदंड उठाया ॥ ३२ ॥ जिस दंडके निकटही सदा कालपाश रक्खी रहतीहै, औ पावक व वज्रकी समान मुद्गरभी मूर्तिमान होकर जिसके निकट रहताहै ॥ ३३ ॥ जो देखतेही प्राणियोंके प्राण निकालताहै वह यदि किसीको पाशसे पीश डाले या दंडसे गिरादैं तौ इसमें बातही क्याहै ॥ ३४ ॥ अधिक क्या कहैं वह अग्निकी लपटसे युक्त महाशस्त्र उन बलशाली यमराज करकै उठाया जाय राक्षस रावणको भस्म करने-केही लियेही मानों एकाएकी प्रज्वलित हो उठा ॥ ३५ ॥ तब रणमें खडे हुए सबही प्राणी दंडके भयसे त्रासितहो भागने लगे और यमराजका दंड उठा हुआ देखकर देवता लोकभी चलायमान हुए ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जब यमराजजी दंड रावणके ऊपर चलानेंको तैयार हुए तब ब्रह्माजी उनके निकट आयकर बोले ॥ ३७ ॥ हे अमित विक्रमकारी महावीर! यम-राज ! तुम यह दंड चलाकर इस निशाचरको न मारो ॥ ३८ ॥ हे देव श्रेष्ठ ! हमने इसको वरदान दियाहै इस लिये हम जो कहतेहैं वह तुमको मिथ्या न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ और देवता या मनुष्य जो कोईभी हमारे वचन उल्लंघन करेंगे; वह त्रिलोकीको झूंठा करैंगे इसमें संशय नहीं ॥ ४० ॥ तुम जो हमारे प्रिय वा अप्रिय प्राणीके ऊपर क्रोधित होकर त्रिभुवनका भय दाई और दंड छोडोगे तौ यह दंड प्रिय अप्रिय आदि समस्त प्राणियोंको संहारकर डालैगा ॥ ४१ ॥ विशेष करकै सबकी मृत्युके कारणही अमित प्रभावाला अमोघ कालदंड अपनी सृष्टिके विनाशको हमनें उत्पन्न कियाहै ॥ ४२ ॥ इस कारण हे सौम्य ! यह दंड रावणके मस्तकपर गिराना तुमको उचित नहींहै, कारणकि इस दंडके गिरनेसे कोई पुरुष एक मुहूर्त भरतक भी नहीं जी सकता ॥ ४३ ॥ इस दंडके लगनेसे जो रावण मृतक न हुआ, अथवा मृतक होगया, तौ दोनोंही प्रकारसे हमारा वचन मिथ्या होगा ॥ ४४ ॥ इस कारणसे यह उठाया हुआ दंड रावणके ऊपरसे हटा लो, और जो इस त्रिलोकके रक्षा करनेंकी वासना हो तौ हमारे वचनोंको सत्य करो ॥ ४५ ॥ यह वचन सुनकर धर्मात्मा यमराजनें उत्तर दिया कि आप हमारे स्वामी हैं इस कारण आपकी आज्ञासे दंड निवृत्ति किया गया ॥ ४६ ॥ परन्तु

जो इस वरदान गये हुए राक्षसको संहार करनेमें हम समर्थ न हुए तौ फिर समरमैं रहकर हम क्या करनेको समर्थ होंगे ॥ ४७ ॥ इस लिये इस राक्षसकी दृष्टिसे हम अन्तर्ध्यान हुए जातेहैं। यह कहकर यमराजजी वहांसे रथ व अश्वोंके सहित अन्तर्ध्यान होगये ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजीकी कृपासे रावण यमराजको पराजित करके अपना नाम सबको सुनाय पुष्पक विमानपर सवार हो यमराजकी पुरीसे निकला ॥ ४९ ॥

सतुवैवस्वतोदेवैःसहब्रह्मपुरोगमैः ॥
जगामत्रिदिवंहृष्टोनारदश्चमहामुनिः ॥

तिसके पीछे वैवस्वत यमराजजी ब्रह्मादि सब देवता लोगोंके संग स्वर्गको गये और महा मुनि नारदजी भी हर्षित होकर चले गये ॥५० ॥
इ० श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥

ततोजित्वादशग्रीवोयमंत्रिदशपुंगवम् ॥
रावणस्तुरणश्लाघीस्वसहायान्ददर्शह ॥ १ ॥

इसके उपरान्त समरमें बडाई पाये दशानन रावण देव श्रेष्ठ यमराजको जीतकर अपने सेवक लोगोंको देखता हुआ ॥१॥ तब राक्षस लोग प्रहारसे जर्जरित तन सब अंगोंमें रुधिर लगे रावणको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २ ॥ फिर मारीचादि मंत्री लोग जयजय शब्द कह रावणकी वढती मनाय रावणके सहित उस पुष्पक विमान परचढ़े,तव रावणने उन लोगोंका भय दूरकर उन्हैं समझाया बुझाया ॥ ३ ॥ फिर राक्षसराज रावण पातालमें जानेके अभिलाषसे दैत्य और उरग गण करके अधिष्ठित वरुणजीसे रक्षित समुद्रमें प्रवेशकरता हुआ ॥ ४ ॥ वह रावण वासुकी नागसे पाली जाती हुई भोग पुरीमें जाय नाग लोगोंको अपने वशमें लाय हर्षित हो मणिमयी पुरी में गया ॥५ ॥ वरदान पाये हुए निवात कवच दैत्य वहां वसते थे राक्षस रावणने वहां जाय उनको युद्ध करनेके लिये पुकारा ॥ ६ ॥ वह बलवान दैत्यगण सबही अति विक्रमीथे वह सबही सन्तुष्ट संग्राममैं उन्मत और अनेक अस्त्र शस्त्र धारी थे ॥ ७ ॥ वह दैत्य-

गण और राक्षसगण क्रोधित होकर शूल, त्रिशूल, कुलिश, पटा, अशि, फरशासे एक दूसरेको मारने लगे ॥८॥ उन दैत्य और राक्षसोंको लड़ते २ पूरा एक संवत् वीत गया तौ भी संग्राममें किसी पक्षकी जय अथवा हार नहुई ॥९॥ तव त्रिभुवनके गति अविनाशी देव पितामह ब्रह्माजी विमानपर सवार होकर अतिशीघ्र वहांपर आये ॥ १० ॥ और संग्राम करते हुए निवात कवचोंको रोक सर्वज्ञताके योग्य सार्थक वचन ब्रह्माजी वाले॥११॥ सुर या असुर संग्राममें कोई भी इस रावणको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं और देव दानव लोग तुम लोगोंकोभी क्षय नहीं कर सकते॥१२॥इस कारण इस राक्षसके साथ तुम लोगोंको मित्रता करना चाहिये इसमें कुछ संदेह नहीं कि मित्र लोगोंका सव वातोंमें परस्पर समान अधिकार होताहै॥१३॥इसके उपरान्त रावण अग्निको साक्षी वनाय निवात कवच दानवोंके संग मित्रता करकै अत्यन्त प्रसन्न हुआ॥१४॥निवात कवच दानवोंनेंभी रावणका अत्यन्त सत्कार किया इस प्रकारसे आदर पाय रावण वहां अपने स्थानहीके समान परम सुखसे एक वर्ष तक रहा॥१५॥और दैत्योंके स्थानमें मित्रता के वशसे दैत्योंको वशमें कर रावणनें एक माया सीखी वहांसे विदाहो लंकेश्वर रावण जलराज वरुणजीकी पुरीको ढूंढ़नेंका अभिलाषी होकर उन निवात कवच दैत्योंसे विदाहो पातालमें घूमनें लगा ॥ १६ ॥ तिसके पीछे कालकेय दैत्य लोगोंसे अधिष्ठित अश्मनामक नगरमें रावण गया; वहां उसही मायाके प्रभावसे वलवान कालकेय दैत्योंको रावणनें मारडाला ॥ १७ ॥ अधिक क्या कहैं, उस कालमें रावणनें अपने वहनोई शूर्पणखाके स्वामी, शक्तिसे दुःसह वलवान विद्युज्जिह्वकोभी खड्गसे काटडाला ॥ १८ ॥ तव जीभसे रावणवंशीय राक्षसोंको भक्षण करनेंवाले, राक्षस विद्युज्जिह्वको संग्राममें पराजितकर रावणनें एक मुहूर्त भरमें चार शत दैत्योंका संहार किया ॥ १९ ॥ उसके उपरान्त राक्षसपति रावणनें कैलास पर्वतके शिखरकी समान चमकता हुआ उज्वल मेघकी समान दिव्य वरुणजीका स्थान देखा ॥ २० ॥ उस स्थानमें वह गायभी विराजमानथी कि जिसके थनोंसे सदाही दूधकी धारा निकला करती है, और इस धारासेही क्षीरोदनामक सागर उत्पन्न हुआहै ॥ २१ ॥ उस

क्षीरोदय समुद्रसेही शीतल किरणवाले निशाचर चंद्रमाजी उत्पन्न हुएहैं, रावणनें महावृषकी साक्षात् जननी उस सुरभीको वहां देखा ॥ २२ ॥ कि जिसको आश्रय करके फेन पायी परमर्षि लोग जीवित रहतेहैं। और जिससे देवता लोगोंका अमृत, और स्वधा भोजन करनेंवाले पितृलोगोंका भोजन कव्य उत्पन्न हुआहै॥२३॥मनुष्यलोग जिसको सुरभीके नामसे पुकारा करतेहैं, रावणनें उस परम अद्भुत गौकी प्रदक्षिणा करके अनेक प्रकारकी सैनासे रक्षित उस महाघोर पुरीमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥ तिस कालमें सैकड़ों जल धारासे युक्त शरद ऋतुके बादलोंकी समान, प्रभासम्पन्न, सदा सन्तुष्ट जनोंसे परिपूर्ण वरुणजीका उत्तम स्थान दिखाई दिया ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त वरुणजीके सैनापतियोंनें जब रावणको ताड़ित किया तब रावण समरमें उनको संहारकर योद्धा लोगोंसे बोलाकि तुम लोग बहुत शीघ्रही अपने राजासे निवेदनकरो ॥ २६ ॥ कि रावण युद्ध करनेंके लिये यहां आयाहै; इसलिये उसको युद्ध दान दीजिये, अथवा हाथ जोड़कर कहिये हम हारगये, बस यह कहनेंपर आपको किसी प्रकारका कुछ भय नहीं होगा ॥ २७ ॥ इसी अवसरमें महात्मा वरुणजीके पुत्र पौत्रगण, व उनके गौर और पुष्पक नामक सैनापति दोनों कोप करके आये ॥ २८ ॥ वह गुण सम्पन्न वरुणजीके सब पुत्र अपनी सैनाको साथ लेकर उदय हुए सूर्यकी समान प्रभावाले मनकी समान वेगगामी रथोंपर चढ़कर आये ॥ २९ ॥ फिर बुद्धिमान रावण, और जलराज वरुणजीके पुत्रोंमें अत्यन्त दारुण युद्ध होनें लगा ॥ ३० ॥ राक्षस रावणके महावीर्यवान मंत्रियोंनें जलराज वरुणजीकी वह समस्त सैना एक क्षणमें नाश करदी ॥ ३१ ॥ तब संग्राममें अपनी सैनाका नाश देख करके और शर जालसे पीड़ित हो वरुणजीके पुत्र क्षणभरतक युद्धसे विमुख होते हुए ॥ ३२ ॥ वह अबतक पृथ्वीपर रहकर युद्ध करतेथे, और रावणके मंत्री पुष्पक विमानपर बैठे हुए बाण वर्षाय रहेथे इसलिये यह विचारकर वहभी शीघ्रगामी रथपर सवारहो आकाशको उठे॥ ३३॥ तिसके पीछे समतुल्य स्थान प्राप्त होकर देवता और दानवोंकी समान उन लोगोंका वह महातुमुल संग्राम आकाशमें होनें लगा ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे वह लोग अग्निकी समान बाणोंसे रावणको विमुख करके

हर्षित चित्तसे अनेक प्रकारके शब्दोंसे चिल्लानें लगे ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे शूर महोदर अपने स्वामीको पराजित देख मृत्युका भय छोड़ वरुणजीकी सेनाको देखनें लगा ॥ ३६ ॥ फिर उस महोदरनें संग्राममें पवनकी समान वेगसे चलनेंवाले वरुणके पुत्रोंके घोड़ोंको गदासे मारा, गदासे घायलहो घोड़े पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३७ ॥ वरुणजीके पुत्रोंके अश्व और योद्धा लोगोंका नाश देख और विना रथके खड़ाहुआ पृथ्वीपर निहार महोदरनें अतिशीघ्र सिंहनाद किया ॥ ३८ ॥ उस समय उनके वह समस्त रथ महोदरनें चूर्ण कर डाले, और घोड़ेभी उत्तम सारथी लोगोंके सहित पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३९ ॥ महात्मा वरुणजीके वीर पुत्रगण रथ गँवाय आकाशके तलेही विराजमान होनें लगे; वह लोग केवल अपने प्रभावके वशसे पृथ्वीपर नहीं गिरे ॥ ४० ॥ उन सबोंनें कोप करके समरमें धनुषपर रोदा चढ़ायकर बाणोंसे महोदरको विदारण करके फिर सबोंनें मिलकर संग्राममें रावणको रोका ॥ ४१ ॥ वह सब अत्यन्त क्रोधके वशहो पर्वतपर मेघकी समान धनुषसे छूटे हुए वज्रकी समान दारुण बाण समूहोंसे रावणको घायल करनें लगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे दशवदन रावण क्रोधके मारे कालाग्निकी समान बढ़कर वरुण पुत्रोंके मर्म स्थानोंमें घोर बाण मारनें लगा ॥ ४३ ॥ वह दुर्द्धर्ष रावण स्थिर होकर विचित्र मूसल, पटा, शक्ति, बड़ी शतघ्नी, और सैकड़ों भाले व बाण समूहोंको वरुण पुत्रोंके ऊपर छोड़नें लगा ॥ ४४ ॥ साठ वर्षकी उमर वाले हाथी जिसप्रकार दल २ में फँसकर पीडित होते हैं, वैसेही पांव पयादे वरुणजीके सब पुत्र रावणके बाण वर्षानेंसे एकाएकी व्याकुल होगये ॥ ४५ ॥ तब वह महाबलवान रावणजीके पुत्रोंको विह्वल और व्याकुल देख हर्षितहो महामेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जनें लगा ॥ ४६ ॥ तिसके पीछे वारंवार गर्जन करके राक्षस दशानन जलधारा वर्षाते हुए मेघकी समान अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको वर्षाय वरुणजीके पुत्रोंको मारनें लगा ॥ ४७ ॥ अन्तमें वह वरुणजीके पुत्र समरसे विमुखहो पृथ्वीपर गिरनें लगे; सेवक लोक अतिशीघ्र उनको रणस्थानसे उठायकर उनके गृहमें पहुँचाते हुए ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त राक्षस दशाननें उन सेवक लोगोंसे कहाकि " अब तुम वरुणजीसे समाचार कहो "

तब प्रहास नामक वरुणके मंत्रीनें रावणसे कहा ॥ ४९ ॥ कि जिनको तुम युद्ध करनेंके लिये पुकारतेहो, वह सलिलेश्वर महाराज वरुणजी संगीत श्रवण करनेंको ब्रह्म लोकमें गयेहैं ॥ ५० ॥ हे वीर ! अधिक करकै जो वीर कुमार लोगोंके निकटथे, वह सवही पराजित हुएहैं; इस कारण राजाके न रहनेंसे तुम्हैं वृथा परिश्रम करनेंसे क्या लाभ ? ॥ ५१ ॥ राक्षसपति रावण यह सुन अपना नाम सवको सुनाय हर्षके मारे गर्जता हुआ वरुणजीके स्थानसे निकला ॥ ५२ ॥

आगतस्तुपथायेनतेनैवविनिवृत्यसः ॥
लंकामभिमुखोरक्षोनभस्तलगतोययौ ॥ ५३ ॥

वह राक्षस रावण जिस मार्गमेंका अवलंवन करकै आयाथा उसीसे निवृत्तहो आकाश मंडलमें गमनकर लंकाकी ओर चला ॥ ५३ इ०श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

प्रथमः सर्गः ॥

ततोऽश्मनगरंभूयोविचेरुर्युद्धदुर्मदाः ॥
यत्रापश्यद्दशग्रीवोगृहंपरमभास्वरम् ॥ १ ॥

यह आगे पांच सर्ग क्षेपकहैं इसके उपरान्त दशानन युद्धोन्मत्त राक्षस लोगोंके साथ फिर अश्म नगरमें घूमनें लगा, रावणनें उस स्थानमें एक परम रमणीय उज्ज्वल गृह देख पाया ॥ १ ॥ इस स्थानके समस्त द्वार वैदूर्य मणिसे वने हुएथे, और मोतियोंकी जालीसे विभूषितथे, सुवर्णके खंब लगे हुएथे, उनमें सव जगहही आसन वन रहेथे ॥ २ ॥ इसमें चढ़नेंकी जो सीढियें वनी हुईथीं, उनमें हीरा व स्फटिक मणि लगी हुईथीं, और किंकिणियोंका जाल जिनपर लगा हुआथा, वह वहुत सुन्दर स्थान इन्द्रके भवनकी समानथा ॥ ३ ॥ उस रमणीक श्रेष्ठ गृहको देखकर प्रतापवान रावणनें विचारा कि मेरुपर्वतकी तुल्य यह रमणीक गृह किसका है ? ॥ ४ ॥ और वोला कि हे प्रहस्त ! तुम शीघ्र जायकर जान तौ आओ कि यह भवन किसका है? यह वार्त्ता सुनकर प्रहस्त उस उत्तम गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५ ॥ उस गृहका द्वार सूना देखकर प्रहस्त एक दूसरी कोठरीमें गया, क्रमसे

सात कोठरियोंमें जायकर वहां उसनें एक ज्वाला देखी और उसमें एक पुरुषभी देखा ॥ ६ ॥ वह पुरुष हर्षित होकर हँसनें लगा, तिस कालमें प्रहस्त उस ऊंची हँसीको सुनकर कांप गया और उसके रुयें खड़े होगये ॥ ७ ॥ प्रहस्तनें यहभी देखाकि अग्निकी शिखाके बीचमें सुवर्णके फूलोंकी माला पहरे एक पुरुष सूर्यकी समान अतिकठिनसे देखे जानेंके योग्य होकर साक्षात् यमकी समान विमोहित भावसे बैठाहै ॥ ८ ॥ निशाचर प्रहस्तनें यह सब बात देखकर अति शीघ्रतासे निकल रावणसे यह सब समाचार कह सुनाया ॥ ९ ॥ हे राम ! तिसके पीछे दूसरे अंजनकी समान कृष्णवर्ण रावणनें पुष्पक विमानसे उतर कर उस गृहमें प्रवेश करनेंकी इच्छाकी ॥ १० ॥ जैसेही रावणनें उसमें प्रवेश करना चाहा वैसेही चन्द्रमा शिरपर धारण किये बड़े शरीरवाला एक भयंकर पुरुष एकाएकी द्वारको रोकता हुआ रावणके सन्मुख खड़ा हुआ, उस पुरुषकी जीभ आगके लपटके समानथी ॥ ११ ॥ उसके नेत्र लाल, दांतोंकी पांति सुन्दर, अधर बिम्बाफलकी समान गठन मनोहर, नाशिका अत्यन्त भीषण, गर्दन शंखकी समान ठोढी बहुत बड़ी ॥ १२ ॥ उसकी डाढ़ी मूछें घनीथी, अस्थियें मांसलथीं, डाढ़ें बड़ीं, और आकार सब प्रकारसे रोम हर्षणकारीथा । वह लोहेका मुद्गर धारण करके द्वार रोककर खड़ा होगया ॥ १३ ॥ उसको देखतेही भयके मारे रावणके रोम खड़े होगये और हृदय व देह कम्पायमान होनें लगा ॥ १४ ॥ हे राम! रावण बुरे निमित्त देखकर चिन्ता करनें लगा; इसी अवसरमें वह पुरुष चिंता करते हुए रावणसे बोला ॥ १५ ॥ हे राक्षस! तुम क्या चिन्ता करतेहो? विश्वाश करकै हमसे सब कहो, हे रजनीचर वीर! हम तुम्हारी युद्धकी पहुनई भली भांति करैंगे ॥ १६ ॥ वह इस प्रकारसे कहकर फिर उस राक्षससे बोला कि "तुम बलिके सहित युद्ध करोगे, या और कुछ विचार कियाहै" ॥ १७ ॥ उस पुरुषके यह वचन सुनकर रावणको फिर रोमाञ्च हो आया, फिर धीरज धरकर कहनें लगा ॥ १८ ॥ हे वचन बोलनेंवालोंमें श्रेष्ठ! इस गृहमें कौन पुरुष विराजमानहै? सो बताइये हम उनके सहित युद्ध करैंगे अथवा वह करैंगें जो आपकी इच्छाहो ॥ १९ ॥ उस पुरुषनें फिर रावणसे कहा, अत्यन्त उदार स्वभाव, सत्य पराक्रम शूर

दानवपति बलि इस स्थानमें विराजमानहैं ॥ २० ॥ यह वीर अनेक प्रकारके गुण ग्रामसे विभूषितहैं, प्रभात कालके सूर्यकी समान तेजस्वीहैं; फांसी हाथमें लिये यमराजकी समान संग्रामसे न लौटनेंवालेहैं ॥ २१॥ क्रोधी अजीत औरोंको विजय करनेंवाले, गुणसागर प्रिय वचन कहनें वाले, आश्रितका पालन करनेवाले सदा गुरु व ब्राह्मणोंके प्यारे ॥ २२ ॥ समयको देखनेंवाले, महासत्व, सत्यवादी, प्रिय दर्शन, चतुर, सर्व गुणसम्पन्न वेद पाठ करनेंमें निरत ॥ २३ ॥ व पैदलही घूमतेहैं, तिसपर वायुकी समान चलतेहैं, अग्निकी समान प्रज्वलित होतेहैं; और सूर्यकी समान ताप देतेहैं ॥ २४ ॥ वह यह नहीं जानतेहैं, कि भय किसको कहतेहैं, हे राक्षसराज ! तुमनें इसी राजा बलिके साथ युद्ध करनेंकी वासनाकीहै ॥ २५ ॥ हे महाराज! यदि राजा बलिके साथ संग्राम करनेंकी तुम्हारी इच्छाहो तौ अतिशीघ्र प्रवेश करके युद्ध करो, रावण यह वचन सुनकर बलिके निकट प्रवेश करता हुआ ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त तहां विराजमान सूर्यकी समान देखनेके अयोग्य अग्निकी नाई वह दानवश्रेष्ठ बलि रावणको देखतेही हँस दिये ॥ २७ ॥ फिर विश्वरूप राजा बलि राक्षस रावणको देखतेही पकड़ अपनी गोदमें बैठाय बोले ॥ २८ ॥ हे महावीर दशानन! हम तुम्हारी कौन वासना पूर्ण करैं । हे राक्षस हे राक्षसेश्वर! तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजनहै सो कहो ॥ २९ ॥ राजा बलिके यह वचन सुनकर रावणनें कहाकि हे महाभाग्य हमनें सुनाहै कि पूर्व कालमें विष्णुजीनें आपको बांधाहै ॥ ३० ॥ हम आपको बंधनसे छुड़ानेंके लिये निःसंदेह समर्थहैं, यह बात सुन राजाबलि हँसकर बोले ॥ ३१ ॥ हे रावण! तुमनें जो कुछ पूछा वह हम वर्णन करतेहैं तुम सुनो वह जो श्याम रंगके पुरुष द्वारपर सदा विराजमान रहतेहैं ॥ ३२ ॥ पहले जो समस्त दानवेन्द्र और दूसरे बलवान पुरुषथे, वह बलपूर्वक उन सबको प्रथम अपने वशम लायेथे ॥ ३३ ॥ हे रावण! इन पुरुषनेंही हमको बांधाहै, यह यमराजकी समान दुर्द्धर्षहैं; इस कारण इस लोकमें कौन पुरुष इनको ठग सकताहै? ॥ ३४ ॥ जो हमारे द्वारपर रहतेहैं, यही सब प्राणियोंकी सृष्टि, स्थिति,और संहार करतेहैं,यही त्रिभुवनके स्वामीहैं ॥३५॥ यही प्रभु सर्व प्राणियोंके हरण करनेंवाले कालहैं और भूत भविष्य

वर्तमान स्वरूपहैं न इनको तुम जानतेहो न हम जानतेहैं ॥ ३६ ॥ यही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति करतेहैं, और संहार करतेहैं और यही चराचर सर्व भूतके संहारकारी है ॥ ३७ ॥ यह महेश्वर आदि अंत रहितहैं, यही सबको फिर उत्पन्न करतेहैं; हे निशाचर! दान, यज्ञ, होम यह सबके विधानकारीहैं ॥ ३८ ॥ और यही सबके धाता विधाता रक्षा करताहैं इसमें कुछ संदेह नहीं, इस प्रकारका महाप्राणी कोई त्रिभुवनमें नहीं है ॥ ३९ ॥ हे पौलस्त्य! जैसे रस्सीमें बांधकर पशुको चलातेहैं, वैसेही इन महाप्राणीनें समस्त दानवोंकों चलाया और हम तुमकोभी चलामेंगे ॥ ४० ॥ वृत्र, दनु, शुक, शुम्भ, निशुम्भ, कालनेमि, प्रह्लादादि, कूट, वैरोचन, मृदु, ॥ ४१ ॥ यमल, अर्जुन, कंस, कैटभ व मधु यह सब सूर्यकी समान ताप देतेथे नक्षत्रोंकी समान दीप्तिमानथे? इन्द्रकी समान वर्षा करतेथे, ॥ ४२ ॥ और सबनेंही बहुत तप कियाथा, सबही अतिमहात्मा थे और सबही योगधारीथे ॥ ४३ ॥ सबही ऐश्वर्यको प्राप्त होकर विविध भांतिके भोग भोगतेथे,दान, यज्ञ, वेदका पाठ करना,और प्रजापालन करतेथे ॥४४॥ सबही अपने जनोंका प्रतिपालन करनेंवाले और शत्रु संहारकारीथे,समर करनेंमें त्रिलोकीके बीच उनके समान कोई नहींथा॥४५॥ यह सबही शास्त्र विशारद थे, समस्त शास्त्र और शस्त्रोंमें भली भांति निपुण थे, शूर थे, बड़े कुलमें उत्पन्न हुएथे, और संग्रामसे न लौटनेवाले थे ॥ ४६ ॥ सबही महात्मा इन्द्रकी समान थे, और युद्धमें सबनेही सब देवताओंको सहस्र २वार जीता था ॥ ४७ ॥ सबही देवतालोगोंका अप्रिय कार्य करनेंमें सदा अनुरागी होकर अपने जनोंका प्रतिपालन करतेथे, सबही सदा प्रमत्त रहते थे सबही दम्भी और बाल सूर्यकीसमान तेजस्वी थे ॥४८॥ जो पुरुष देवता लोगोंको सताताहै, उसके ध्वंश करनेका पाप देवता लोगोंके अधीश्वर भगवान विष्णुजीही जानतेहैं॥४९॥वही इन सबको उत्पन्न करते हैं वही सबको संहार कर डालतेहैं, और फिर संहार करनेंके कालमें आत्मामें आत्मासे अधिष्ठित होकर विराजमान रहतेहैं ॥५०॥ वह कामरूपी महाबलवान महात्मा दानव श्रेष्ठ लोग सबही उन महात्मा देवता करके क्षयको प्राप्त हुएहैं ॥ ५१ ॥ हमनें सुनाहै कि दानव समरमें किसीसे न जीते जाते थे और अति दुर्द्धर्ष, वह समस्त अति प्रबल दानवगणभी इन

कृतान्तरूपी हरिसेही संहार किये गयेहैं ॥ ५२ ॥ दानवोंके राजा बलि इस प्रकारसे कहकर फिर रावणसे बोले-प्रदीप्त अग्निकी समान जो चक्र तुम देखतेहो ॥ ५३ ॥ इसको ग्रहण करके तुम हमारे निकट आओ। हे महाबलवान ! फिर हम तुमसे अव्ययमुक्तिके कारणकी व्याख्या करेंगे ॥ ५४॥ हे महावीर रावण! हम जो कुछ कहैं; वह पूरा करो, विलंब न करो! यह सुन व हँसकर महाबलवान राक्षस गया ॥ ५५ ॥ हे रघुनंदन! जिस स्थानमें वह महादिव्य कुंडल था; वहां पहुंचकर बल दर्पित रावणनें लीलापूर्वक उस चक्रको उठाना चाहा ॥ ५६ ॥ परन्तु रावण किसी प्रकारसेभी उस चक्रके चलानेंको समर्थ न हुआ, अधिक करके लाजके मारे रावण फिर २ यत्न करनें लगा ॥ ५७ ॥ और उस दिव्य चक्रको जैसेही उठाया कि वैसेही जड़ कटे हुए शाल वृक्षकी समान रुधिरसे भीगकर रावण पृथ्वीपर गिर गया ॥ ५८ ॥ इसी अवसरमें पुष्पक सम्भूत शब्द हुआ; और राक्षसराजके मंत्री लोगभी महाहाहाकार शब्द-कर उठे ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त निशाचर रावण एक मुहूर्तमेंही चेतना प्राप्त करके उठा; और लाजसे अपना मुख नीचाकर लिया तब राजा बलिनें उससे कहा ॥ ६० ॥ हे राक्षस श्रेष्ठ! यहां आयकर हमारे कहे हुए वचन सुनो मणिभूषित जिस कुंडलके उठानेंको तुम तैयार हुए हो ॥ ६१ ॥ यह तो हमारे पहले पुरुष हिरण्यकशिपुके कानका गहना था, हे महा बलवान देखो! यह इस प्रकारसे इस स्थानमें गिरा था ॥ ६२ ॥ व और दूसरा कुंडल इस पर्वतके शिखरपर गिरा था इस कुंडलके सिवाय मुकुटभी उनका युद्धकालमें वेदीके समीप पृथ्वीपर गिरा था ॥ ६३ ॥ पूर्व कालमें हमारे पूर्व पितामह जो हिरण्यकशिपु थे, उनको काल मृत्यु या रोग, किसीसेभी भय नहीं था न सूखी अथवा गीली वस्तुसे उनकी मृत्यु होतीथी ॥ ६४ ॥ किसी शस्त्रसे उनकी मृत्यु नहींथी और दिवसमें रात्रिकालमें, या दोनों सन्ध्याके समयभी उनका मरण नहीं होसकताथा ॥ ६५ ॥ हेराक्षस ! अधिक क्या कहैं किसी शस्त्रसेभी उनकी मृत्यु नियत नहीं की गई, केवल उन्हौंनें प्रह्लादके साथ दारुण झगड़ा ठानाथा ॥ ६६॥ हे राक्षसश्रेष्ठ! उन सर्वश्रेष्ठ महात्मा वीरका जब प्रह्लाद-से झगडा हुआ, तब नृसिंहके आकारकी समान रूपधारी, सब लोगोंको

भय देनेंवाले भयंकर वीर पुरुष उत्पन्न हुए ॥ ६७ ॥ वह गम्भीर मूर्ति दारुण नृसिंहजी उत्पन्न होकर चारों ओरको निहारनें लगे, कि जिस्से सब जगत् चलायमान हुआ ॥ ६८ ॥ इसके उपरान्त नृसिंहजीनें हिरण्यकशिपुको दोनों बाहोंसे उठायकर नखोंके प्रहारसे पेट फाड़ उसके जीवनका नाश किया, जो पुरुष द्वारपर विराजमान है, यह वही निरंजन वासुदेव हैं ॥ ६९ ॥ हम उन्हीं देवादि देवके वचन कहतेहैं, यदि तुम्हारे हृदयमें परम भावका उदय हुआहो तौ भक्तिसहित सुनो ॥ ७० ॥ वह सहस्र वत्सरमें, सहस्र इन्द्र, लक्ष देवता, और शत २ महर्षियोंको वह ॥ ७१ ॥ अपने वशमें कर रखते हैं कि जो द्वारपर विराजमान हैं। राजा बलिके यह वचन सुन रावणनें कहा अतिशय ज्वालायुक्त पाश हाथमें लिये, रोम फुलाये भयानक प्रेताधिपति यमराजको हमनें मृत्युके सहित देखाहै ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ जिनकी डाढ़ैं बडीहैं सर्प विच्छूही जिनके रुवेंहैं, जिनकी आंखैं लालहै, बिजलीकी समान जिह्वा अति भयानक है; जो सर्व प्राणियोंको भयके देनेंवाले हैं ॥ ७४ ॥ जो सूर्यकी समान अति कठिनतासे देखे जानेंके योग्यहैं; जो संग्रामसे कभी विमुख नहीं होते, पापके नाशक हैं, प्राणियोंके शाशन करनेंवाले हैं उन्ही यमराजको हमनें युद्धमें जीताहै ॥ ७५ ॥ हे दानव राज ! उस काल हमको भय या व्यथा कुछभी नहीं हुई आप जिस पुरुषका वृत्तान्त कहतेहैं हम उसको नहीं जानते, इस कारण आप इनका वृत्तान्त विस्तारसे कहिये॥७६॥ रावणके वचन सुनकर वैरोचनके पुत्र राजा बलिनें कहा,यही पुरुष त्रिलोकीके विधान कर्त्ता नारायण हरि हैं ॥ ७७ ॥ यह अनन्त, कपिल, विष्णु और महाद्युति नृसिंहजी हैं, यही यज्ञके आश्रय, यही पाशहस्त, भयानक, और उत्तम, आश्रयहैं; ॥ ७८ ॥ और यही द्वादश आदित्यकी समान पुराण और पुरुषोत्तम हैं यह सुरनाथ हैं, और देवताओंमें श्रेष्ठहैं, इनकी द्युति नीले बादरकी समानहै ॥ ७९ ॥ हे महावीर! यह भक्तजनोंके प्यारेहैं, योगी और ज्वालाकी किरणोंसे युक्तहैं इन्हीं प्रभुने सब लोकोंको सिरजन कियाहै और यही फिर पालन करतेहैं ॥ ८० ॥ यही महा बलवान काल होकर सबका संहार करतेहैं, यही यज्ञहैं, और यही चक्रायुध धारी हरिहैं ॥ ८१ ॥ यही हरि सर्व देवतामयहैं, सर्व भूतमयहैं समस्त लोकमय और ज्ञानमयहैं ॥ ८२ ॥ हे वीर

महारूप सर्व रूपमय हरिही वीरघाती महा भुजबल देवहैं, यही चक्षुष्मान हरिहैं, त्रिलोकीके गुरु और अव्ययहैं ॥ ८३ ॥ समस्त मोक्षाभिलाषी मुनिगण, इस लोकमें इनका ध्यान धरते हैं; अधिक करके जो पुरुष इन पुरुषको जान जाताहै, वह पापमें नहीं लिप्त होतेहैं ॥ ८४ ॥ इनका स्मरण, इनका श्रवण, और इनका आराधना करनेंपर इन्हींसे सब कुछ प्राप्त हो जाताहै। राजा बलिके ऐसे वचन सुनकर रावण वहांसे निकला ॥ ८५ ॥ उसके नेत्र क्रोधके मारे लाल होगये; और उस महा बलवाननें अस्त्र उठाया मूशलधारी नारायण प्रभु उसकी ऐसी अवस्था देख कर ॥ ८६ ॥ मनहीं मन विचार करते हुए कि ब्रह्माजीको प्रिय कामनासे इस पापात्माकानाश नहीं करेंगे, वह रूपधारी इस प्रकार चिन्ता करके अन्तर्ध्यान हुए ॥ ८७ ॥

नचतंपुरुषंतभपश्यतेरजनीचरः ॥
येनैवसंप्रविष्टःसपथातेनैवनिर्ययौ ॥ ८८ ॥

रजनीचर रावणनें वहां उस पुरुषको नहीं देख पाया; तब वह अति हर्षसे सिंहनाद करता हुआ वरुणजीके स्थानसे निकला ॥ ८८ ॥ रावण जिस मार्गसे पैठाथा वह उसी मार्गसे निकला ॥ ८९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥

अथसंचिंत्यलंकेशःसूर्यलोकंजगामह ॥
मेरुशृंगेवरेरम्येउषित्वातत्रशर्वरीम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त लंकेश्वर रावण कुछ कालतक चिन्ता करके सुमेरु पर्वतके प्रधान रमणीक शिखरपर जाय रात्रि व्यतीत करता हुआ ॥ १ ॥ फिर सूर्यके घोडोंकी समान शीघ्र चलनेंवाले पुष्पक विमानपर सवार होकर अनेक भांतिकी गतिसे सूर्यके सन्मुख चला ॥ २ ॥ रावणनें देखा कि वहांपर दिव्य कांचनके केयूरधारी; रत्नांबर विभूषित सबको पावन करनेवाले, सर्व तेजोंसेयुक्त सूर्य भगवान् विराजमान हैं ॥ ३ ॥ दिव्य कुंडलयुगल उनके मुखमंडलपर विराजमान हैं; उनका शरीर केयूर और लालवस्त्रोंसे विभूषित है और कमलके फूलोंकी मालासे सजा हुआ

है ॥ ४ ॥ उनके सब अंगोंम लाल चंदन लगा हुआहै, और हजारों किरणोंकी मालासे वह अंग उज्ज्वलहै । वह आदि देव सूर्यनारायण उच्चैःश्रवा वाहनपर चढे हुएहैं ॥ ५ ॥ आदि, अन्त, मध्य रहित लोक सभी जगत्पति देव श्रेष्ठको राक्षसोंमे श्रेष्ठ रावणनें देखा ॥ ६ ॥ सूर्य नारायणके तेजबलसे पीड़ित होकर रावणनें प्रहस्तसे कहा, हे मंत्री ! तुम हमारी आज्ञासे जायकर सूर्यसे हमारी यह आज्ञा कहो ॥ ७ ॥ कि रावण युद्धके अभिलापसे यहांपर आयाहै, या तो युद्ध करो; और या यह कहो कि "हम हार गये" दोनोंमेसे एक पक्षका आश्रय लो ॥ ८ ॥ रावणकी आज्ञानुसार राक्षस प्रहस्तनें सूर्यके निकट जायकर देखा कि वहां पिंगल और दंडी नामक दो द्वारपाल खडेहैं ॥ ९ ॥ फिर प्रहस्त उन दोनोंसे रावणकी बल प्रतिज्ञा बतलायकर अपने तेजकी प्रभासे प्रदीप्तहो चुप चाप द्वारपर खडा रहा ॥ १० ॥ दंडी सूर्य भगवानके निकट जाय प्रणाम करकै उनसे सब समाचार कहता हुआ, धीमान् सूर्य नारायण दंडीके मुखसे यह समस्त वृत्तांत सुन ॥ ११ ॥ यह विचार पूर्वक बोले; सूर्य बोले हे दंडी ! तुम जाओ उसको पराजय करो अथवा कह दो कि हम हार गये ॥ १२ ॥ यह जो तुम्हारी अभिलाषाहो उससे कह दो; सूर्यकी आज्ञा पाय दंडीने कुछ देरके पीछे निशाचरके निकट जाय उस महात्मा राक्षससे ॥ १३ ॥

> सश्रुत्वावचनंतस्यदंडिनोराक्षसेश्वरः ॥
> घोषयित्वाजगामाथस्वजयंराक्षसाधिपः ॥ १४ ॥

सूर्य नारायणके कहे हुए समस्त वचन कहे राक्षसराजा रावण दंडीके समस्त वचन सुनकर अपनी विजय पुकार वहांसे चला गया ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे भाषानुवादे द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥

> अथसंचिंत्यलंकेशःसोमलोकंजगामह ॥
> मेरुशृंगवरेरम्येरजनीमुष्यवीर्यवान् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त लंकापति रावण रमणीक मेरु पर्वतके शिखरपर रात्रि विताय चन्द्रलोकमें गया ॥ १ ॥ उसनें जानेंके समय देखा कि एक दिव्यमाला, दिव्यानुलेपन भूषित दिव्य पुरुष मुख्य २ अप्सराओंसे सेवितहो रथपर चढकर जाय रहाहै ॥ २ ॥ वह पुरुष रतिसे थककर अप्सराओंके अंकमें सोये रहकर उनके चूम लेनेसे जागतेहैं, यह देखकर रावण कौतूहल वश हुआ ॥ ३ ॥ इसी अवसरमें पर्वत नामक एक ऋषिको वहां देखकर रावणनें कहा; हे देवर्षे! आपका मंगलहै? आप यथा समयमें यहांपर आयेहैं ॥ ४ ॥ अप्सरा लोगोंसे सेवित होकर रथपर सवारहो निर्लज्जकी समान जाताहै; यह पुरुष कौनहै ? भयके स्थानको यह नहीं जानता ? ॥ ५ ॥ पर्वतऋषि रावणके ऐसे वचन सुनकर बोले, हे वत्स महामते! ठीक २ विवर्ण वर्णन करताहूं सुनो॥ ६॥ इसनें तपोबलसे सब लोकोंको जीत लियाहै; और ब्रह्माकोभी इसनें सन्तुष्ट कियाहै, इसलिये मोक्षकी अभिलाषासे अत्यन्त सुख संपदाके उत्तम स्थानमें गमन करतेहैं ॥ ७ ॥ हे राक्षसाधिप? जैसे तुमनें तप करके सब लोकोंको जीताहै, वैसेही यह पुण्यवान पुरुष सब लोकोंको उपार्जन करके सोम पान करता हुआ जाताहै, इसमें कुछ संशय नहींहै ॥ ८ ॥ हे राक्षस शार्दूल! तुम शूरहो, और सत्य पराक्रमहो, इसलिये बलवान पुरुष ऐसे धर्मचारी जनके ऊपर क्रोध नहीं करतेहैं ॥ ९ ॥ इसी अवसरमें रावणनें एक बड़ाभारी उत्तम रथ देखा, यह रथ अपनीही प्रभासे चमक दमक रहाथा, और गीत व बाजेके शब्दसे परिपूर्ण था ॥ १० ॥ तब रावणनें कहा;– हे देवर्षे! यह महा द्युतिमान पुरुष किन्नर लोगोंसे शोभायमान होकर उनका मनोहर नाच देखता हुआ, और गीत सुनता हुआ कहांको चला जाताहै ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त मुनि श्रेष्ठ पर्वत यह सुनकर रावणसे बोले, यह शूर योद्धाहै, और संग्राममें कभी विमुख नहीं हुआ ॥ १२ ॥ इस कारण विजयी कार्य करनेंमें चतुर श्रेष्ठवीर पुरुषनें स्वामीके लिये युद्धकर विविध प्रकारके प्रहारोंसे जर्ज्जरितहो शत्रुओंका प्राण संहार कियाहै ॥ १३ ॥ फिर बहुत शत्रुओंको मारकर और पीछेसे आप शत्रुके हाथसे मरकर इन्द्रलोकमें या और किसी पुण्य लोकमें जाताहै ॥ १४ ॥ किन्नर लोग नाच गायकर इस नर श्रेष्ठकी

सेवा करतेहैं तब रावणनें फिर पूछा कि सूर्यकी समान द्युतिमान यह कौन पुरुष जाताहै ? ॥ १५ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनकर पर्वतमुनि बोले कि हे राजन् जिसके सब अंग सुवर्णके बनेहैं, ऐसे विमानपर जो दिखाई देता है ॥ १६ ॥ चंद्रमुखी अप्सराओंके जो संगहैं, जो विचित्र वस्त्र आभूषण धारण किये हैं इन महाराजनें सुवर्ण दान कियाहै ॥ १७ ॥ यह इस समय महा द्युति धारण करकै वेगगामी विमानपर चढ़कर जाय रहे हैं, पर्वत मुनिके वचन सुनकर रावणनें कहा ॥ १८ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! यह सब राजा जो जाय रहेहैं; इनमेंसे कौन राजा प्रार्थना करनेंपर हमको युद्धकी पहुनई दे सकैगा ॥ ॥ १९ ॥ हे धर्मज्ञ ! आप धर्मके अनुसार हमारे पिताहैं; इस लिये आप हमें ऐसे पुरुषको बताइये, रावणके यह वचन सुनकर पर्वत मुनिनें उत्तर दिया ॥ २० ॥ हे महाराज ? यह सब राजा स्वर्गकी अभि-लाषा किये हुएहैं युद्धके अभिलाषी नहीं, जो पुरुष तुमसे युद्ध करेंगा उसको बतातेहैं सुनो ॥ २१ ॥ सात द्वीपके अधीश्वर अति तेजस्वीमा-न्धाता नाम विख्यात एक महाराजहैं, यही तुमसे युद्ध करेंगे ॥२२॥ पर्वत मुनिके वचन सुनकर रावणने कहा, यह राजा कहां रहता है ? आप विस्तार सहित हमसे यह सब कहिये ॥ २३ ॥ सो हम वहीं जायँगे कि जहां वह नरश्रेष्ठ रहताहै, पर्वत मुनि रावणके वचन सुनकर बोले ॥ २४॥ यौवनाश्वका पुत्र नृप श्रेष्ठ मान्धाता समुद्रोंतक सब द्वीपोंके सहित पृथ्वीको जीत इसी स्थानमें आवेंगे ॥ २५ ॥ इसी अवसरमें त्रिलो-कीमें विख्यात वर गर्वित महावीर रावणनें देखा कि; अयोध्याके महाराज वीर नृप श्रेष्ठ मान्धाता ॥ २६ ॥ सात द्वीपोंके अधीश्वर दिव्य गन्धवाली माला पहरे चंदन लगाये दीप्तिमान इन्द्रके रथकी समान चित्रित काञ्चन मय रथपर बैठे हुए आय रहे हैं॥२७॥ प्रकाशमान रूप किये दिव्य सुगन्धि युक्त अनुलेपन लगाये वह आये तब रावणनें उनसे कहा कि हमसे युद्ध करो ॥२८॥ यह सुनकर राजा मान्धातानें हँसकर रावणसे कहा हे राक्षस ! जो तुमको अपना जीना न भाता हो तौ युद्ध करो ॥ २९ ॥ मान्धाताके वचन सुनकर रावणनें यह कहा कि रावण, वरुण कुवेर, और यमराजके साथ संग्राम करनेमें व्यथित नहीं हुआ ॥३०॥ वह किस कारण मनुष्य देहधारी तुमसे भय करेगा ? यह कहकर राक्षस राज रावणनें क्रोधसे प्रज्वालित हो-

कर ॥ ३१ ॥ राक्षसोंको युद्ध करनें की आज्ञा दी, जो कि रणमें उन्मत्तथे तब दुरात्मा रावणके मंत्री क्रोधित होकर ॥ ३२ ॥ वह सब युद्ध विशारद बाणोंकी वर्षा करनें लगे । तब महा बलवान राजा मान्धाता कंक पत्र लगे हुए तीखे बाणोंसे ॥ ३३ ॥ प्रहस्त, शुकसारण, महोदर, विरूपाक्ष, और अकंपन इत्यादि अगुए राक्षसोंको पीडित करनें लगे ॥ ३४ ॥ प्रहस्तनें बाण वर्षायकर राजाको छाय दिया, परन्तु उन सब बाणोंको उत्तम राजानें अपने निकट पहुँचनेंसे पहलेही काट डाला ॥ ३५ ॥ अग्नि जिस प्रकार तिनकोंको जलातीहै, नरराज मान्धाता वैसेही राक्षसोंकी सैनाको सैकडों भुशुन्डी, भाले, भिन्दिपाल, और तोमरसे दग्ध करनें लगे ॥ ३६ ॥ अग्निके पुत्र स्वामिकार्तिकनें जिस प्रकार बाणोंसे क्रौञ्च पर्वतको भेद डालाथा वैसेही मान्धातानें कुपित होकर पाँच अतिवेग वाले तोमरोंसे विदारण किया ॥ ३७ ॥ फिर यमराजकी समान मुद्गर वारंवार घुमायकर अति वेगसे रावणके रथके ऊपर प्रहार किया ॥ ३८ ॥ वह वज्रकी समान मुद्गर महा वेगसे रावणके रथपर गिरकर अति शीघ्र रावणको गिराता हुआ, जैसे इन्द्रकी ध्वजा गिरे ॥ ३९ ॥ क्षार समुद्रका जल जिस प्रकार सम्पूर्ण चन्द्रमाके छूनेंको उछलताहै, वैसेही उस कालमें वह राजा मान्धाता प्रसन्नताके मारे हर्षसे फूलगये और शोभायमान हुए ॥ ४० ॥ तब समस्त राक्षसोंकी सैना हाहाकार करके मूर्छित हुए राक्षस राजको चारों ओरसे घेरकर खडी होगई ॥ ४१ ॥ बहुत देरके पीछे चेतना पायकर, लंकापति, लोकोंको रुवानेंवाला रावणराजा मान्धाताकी देहको पीड़ित करनें लगा ॥ ४२ ॥ तब पीड़ाके मारे राजाभी मूर्छित होगया, उनको मूर्छित देखकर महा बलवान निशाचर रावण हर्षित मनसे आसफालन करते हुए सिंहनाद करनें लगे ॥ ४३ ॥ अयोध्याके राजा मान्धातानें एक क्षणमें मूर्छासे जागकर देखा कि मंत्री निशाचर शत्रुकी पूजा करेहैं ॥ ४४ ॥ यह देखकर वह अति क्रोधित हुए, और सूर्य चंद्रमाकी समान कान्ति धारण करके बाणोंकी अत्यन्त वर्षाकर राक्षसोंकी सैनाका प्राण संहार करनें लगे ॥ ४५ ॥ फिर समस्त राक्षसोंकी सैना उछलते हुए समुद्रकी समान राजाके धनुषके शब्द और बाणके शब्दसे सर्व प्रकार चलायमान होगई ॥ ४६ ॥ इस प्रकारसे नर

और राक्षसका घोर संग्राम होनें लगा इसके उपरान्त महात्मा नरराज मान्धाता और राक्षस श्रेष्ठ रावण ॥ ४७ ॥ चाप और खड्ग धारण करकै संग्राम करनें लगे; और वीरासनपर विराजमान हुए मान्धाताजीनें रावणको और रावणनें इन नरपतिको विद्ध किया ॥ ४८ ॥ दोनोंही महा क्रोधसे परस्पर एक दूसरेके ऊपर बाण वर्षानें लगे । परस्पर क्षोभके मारे दोनोंहीके शरीर घायल होगये ॥ ४९ ॥ रावणनें धनुषपर रौद्र अस्त्र चढ़ायकर छोड़ा, राजा माधान्तानें आग्नेयास्त्रसे उसको निवारण किया ॥ ५० ॥ रावणने गन्धर्वास्त्र लिया, तब राजानें उसको वरुणास्त्रसे निवारण किया। परन्तु रावणनें सर्व प्राणियोंको भय उपजानेंवाला ब्रह्मास्त्र लिया तब मान्धाताजीनें दिव्य पाशुपत महास्त्रको प्रेरण किया। वह त्रिलोकीका भय बढ़ानेंवाला घोर रूप अस्त्र ॥ ५१ ॥ देखकर सब चराचर प्राणी त्रासित हुए। यह महास्त्र तप करकै आराधना कर रुद्र देवके वरदानसे प्राप्त हुआथा ॥ ५२ ॥ उस समय चराचर सहित समस्त त्रिभुवन कंपायमान होनें लगा, अधिक क्या कहैं देवता लोगभी कंपायमान हुए, और नाग गणभी लय हुए ॥ ५३ ॥ इसी अवसरमें मुनि शार्दूल पुलस्त्यजी और गालवजीनें ध्यानके बलसे वह सब देखा, और राजा मान्धाताको निवारण किया ॥ ५४ ॥

तौतुकृत्वातदाप्रीतिंनरराक्षसयोस्तदा ॥
संप्रस्थितौसुसंहृष्टौपथायेनैवचागतौ ॥ ५५ ॥

उन्होंने वहां आय विविध तिरस्कारके वचनोंसे रावणकोभी रोका-तब मान्धाता और रावणनें परस्पर प्रीति स्थापन करके हर्षित चित्तसे जो जिस मार्गसे आयेथे वह उसी मार्गसे चले गये ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥

गताभ्यामथविप्राभ्यांरावणोराक्षसाधिपः ॥
दशयोजनसाहस्रंप्रथमंतुमरुत्पथम् ॥ १ ॥

दोनों ब्राह्मणोंके चले जानेंपर राक्षसोंका राजा रावण दशहजार योजन

प्रमाणवाले पवनके मार्गमें चलागया॥ १ ॥ इस स्थानमें सर्व गुणोंसे विभूषित हंस सदा उड़ा करतेहैं; इस्सेभी ऊंचे दूसरे पवनके मार्गमें रावण चढ़गया ॥ २ ॥ इस मार्गका परिमाणभी दशहजार योजनका गिना जाताहै; इस स्थानमें तीन प्रकारके मेघ नित्य एकत्र रहा करतेहैं ॥३॥ यह अग्निज, पक्षज, और ब्राह्मज* यहांपर सदा विराजतेहैं; इसके उपरान्त रावण दूसरेसे तीसरे पवन मार्गमें चढगया जो कि अति उत्तमथा ॥ ४ ॥ जहांपर नित्य मनस्वी, सिद्ध, चारण गण वास करतेहैं; इसका परिमाणभी दशसहस्र योजनहै ॥ ५ ॥ शत्रुविनाशी राक्षसराज रावण चौथे वायुके मार्गमें शीघ्रही चढ़गया, भूत और विनायक गण इस मार्गमें नित्य वसतेहैं ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त रावण शीघ्रही पवनके पांचवें मार्गमें चढ़गया; इसका परिमाण दशसहस्र योजन था ॥ ७ ॥ इस मार्गमें नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी, और कुमुदादि कुंजरगणभी विराजमानहैं ॥ ८ ॥ यह कुंजरगणही गंगाजीमें विहार करके पुण्य जल वर्षाया करतेहैं। वहां सूर्यकी किरणसे छूटा हुआ और पवन करकै निर्मल हुआ ॥ ९ ॥ जल पुण्यरूप हो गिरताहै; हे राम! वहां हिमकीभी वर्षा होतीहै, हे महाद्युति फिर रावण छठे वायुके मार्गमें गया ॥ १० ॥ इस मार्गका परिमाण दश हजार योजनका है; इसमेंभी वह राक्षस गया; जिस मार्गमें नित्य गरुडजी जातिवाले बन्धु बान्धवोंसे सत्कार किये जाकर टिकेहैं ॥ ११ ॥ इन दश हजार योजनके पीछे इसकेभी ऊपर सातवें वायु मार्गमें जहां सप्तर्षिगण वास करतेहैं ॥ १२ ॥ तिसके पीछे दश हजार योजन ऊंचेपर रावण अग्निमार्गको प्राप्त हुआ कि जहांपर गंगाजी विराजमानहैं ॥ १३ ॥ उन महा वेगवाली, महा शब्द करनेवाली, विख्यात आकाशगंगाको पवन सूर्य मार्गमें धारण किये हुएहैं॥ १४ ॥ आठवें मार्गके ऊपर चंद्रमाजी विराजमानहैं, इसका अस्सीहजार योजनका परिमाणहै ॥ १५ ॥ भगवान् चंद्रमाजी ग्रह व नक्षत्रोंके समूहोंसे युक्त होकर यहां पर स्थितहैं, सैंकड़ो हजारों किरण चंद्रमाके मंडलसे निक-

* अग्निकी उत्पन्न हुई वाफसे जो मेघ बनतेहैं, वह अग्निज, इन्द्रजीनें, जबपर्वतोंके पंख काटे उन पंखोंसे जो मेघ उत्पन्न हुए वह पक्षज, और जो ब्रह्माजीके श्वास लेनेसे जन्मे वह ब्रह्मज मेघहैं।

लकर ॥ १६ ॥ सर्व लोकोंको सुखकी देनेंवाली वह त्रिभुवनको प्रकाश मान करतीहैं; फिर चंद्रमाजीनें देखतेही मानो रावणको जलाया ॥१७॥ बस वह शीतकी आगसे रावणको अति शीघ्र सर्व प्रकारसे जलाते हुए। रावणके मंत्री उस को न सहकर शीतकी अग्निके भयसे पीड़ितहो वहां न टिक सके॥१८॥तब जय शब्द उच्चारण करके प्रहस्तनें रावणसे कहा;हम शीतसे मरे जातेहैं, इसलिये हम लोगोंको इस स्थानसे लौटना पड़ेगा ॥ १९॥ हेराजन्! चंद्रमाकी किरणोंके प्रभावसे राक्षस लोग भीत हो गयेहैं; चंद्रमाका स्वभावही दहनात्मकहै ॥ २० ॥ प्रहस्तके यह वचन सुनकर रावणनें क्रोधसे मूर्छितहो धनुष उठाय और खेंचकर बाण समूहोंसे चंद्रमाको पीडित किया ॥ २१ ॥ तिसकालमें ब्रह्माजी अति शीघ्रतासे चंद्रलोकमें आयकर रावणसे बोले, साक्षात् विश्रवाके पुत्र महावीर दशग्रीव! ॥ २२ ॥ तुम अति शीघ्र इस स्थानसे चले जाओ, हे सौम्य! चंद्रमाको पीड़ित न करो, कारणकि यह महाद्युतिमान् द्विजराज सदा सब लोकोंका हित चाहनें वालेहैं ॥ २३ ॥ हम तुमको एक मंत्र देतेहैं; प्राण त्याग होनेके समय जो पुरुष इस मंत्रको सदा स्मरण करैगा; उसकी मृत्यु नहीं होगी ॥२४॥ यह वचन सुन रावणनें हाथ जोड़कर देव कमलयोनि ब्रह्माजीसे कहा; हे लोकनाथ! हे महाव्रत देव! जो आप मुझपर प्रसन्नहैं, ॥ २५ ॥ और जो आप हमको मंत्र देना चाहते हैं तौ वह मुझको देदीजिये। हे महाभाग! धार्मिक! जिस मंत्रको जपकर सर्व देवता लोगोंसे निर्भय हो जावें ॥ २६ ॥ हे देवेश! हम आपके प्रसादसे समस्त असुर, और पतंगोंसेभी निःसन्देह अजेय होमेंगे ॥ २७ ॥ यह वचन सुनकर ब्रह्माजीनें रावणसे कहा;—हे राक्षसनाथ! प्राणोंका नाश होनेहीके समय इस मंत्रका जपना उचितहै, नित्य जपकरनाह ठीक नहीं ॥ २८ ॥ हे राक्षसराज! रुद्राक्षकी माला ग्रहण करके इस शुभ मंत्रका जप करना पड़ताहै; इसका जप करनेंसे तुम निश्चय अजीतहोओगे ॥ २९ ॥ हे राक्षसराज! विना इस मंत्रका जप किये तुम्हें सिद्धि प्राप्त नहीं होगी इसलिये हे राक्षस श्रेष्ठ! हम उस मंत्रको कहतेहैं तुम सुनो ॥ ३० ॥ इस मंत्रका संकीर्त्तन करतेही तुम संग्राममें विजयको प्राप्त करोगे। हे देव देवेश! हे सुरासुर

नमस्कृत! तुमको नमस्कारहै ॥ ३१ ॥ हे भूत भविष्यत! हे महादेव! हे हरि पिङ्गलनेत्र! तुम बालकहो और वृद्धरूपीहो, तुम व्याघ्रचर्मधारी हो ॥३२॥ हे देव! तुम त्रिभुवनके ईश्वर और प्रभुहो, इस्से तुम पूजा करनेंके योग्यहो, तुम हर हरितनेमी, युगान्त दहन और बलदेवहो ॥ ३३ ॥ तुम गणेश, तुम लोकशम्भु तुम लोकपाल तुम महाभुजहो, तुम महाभाग, महाशूली, महादंष्ट्र, और महेश्वरहो ॥ ३४॥ तुम काल बलरूपी, नीलग्रीव और महोदरहो। तुम देवान्त, तपस्यामें पारगामी, अव्यय, पशुपति हो सो आपको नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ तुम, शूलपाणि, वृषकेतु, नेता, गोप्ता, हर, हरि, जटी, मुण्डी, शिखण्डी, महायशा, और भ्रुकुटीहो तुम्हें नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ तुम भूतेश्वर, गणाध्यक्ष, सर्वात्मा, सर्वभावन, सर्वज्ञ, सर्वहारी, स्रष्टा अव्यय, गुरुहो, सो तुमको नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ तुम कमंडलुधर देवताहो, पिनाकी, धूर्जटी, माननीय, ओंकार, वरिष्ठ, ज्येष्ठ, सामग, मृत्यु, मृत्युभूत, पारियात्र, और सुवृतहो, तुम्हें नमस्कारहै ॥ ३८ ॥ तुम, ब्रह्मचारी, गुहावासी, वीणा, पणव, तूणवान, बाल सूर्यकी समान दर्शन करनेंके योग्य और अमरहो सो तुमको नमस्कारहै ॥ ३९ ॥ तुम श्मशानवासी, भगवान, अनिन्दित, उमापति, भगनयन, निपाती और पूषाके दांत तोड़नें वालेहो, तुम्हें नमस्कारहै ॥ ४० ॥ तुम ज्वरहारी, पाश हाथमें लिये प्रलय रूपकाल, उल्का मुख, अग्नि केतु, प्रदीप्त विशाम्पति मुनिहो तुमको नमस्कारहै ॥ ४१ ॥ तुम चतुर्थ लोक श्रेष्ठहो, वेपनकर, उन्मादी, वामन, वामदेव, प्राक्, प्रदक्षिण वामनहो, सो तुमको नमस्कारहै ॥ ४२ ॥ तुम, भिक्षु, भिक्षुरूपी, त्रिजटि, कुटिल और इन्द्रके हाथको स्तम्भन करनेंवालेहो; और वसु लोगोंका स्तम्भन करनेंवालेहो; तुमको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ तुम, ऋतु, ऋतुक, काल, मधु, मधुलोचन, वानस्पत्य, वाजसनो और नित्याश्रम, पूजितहो; तुम्हें नमस्कारहै ॥ ४४ ॥ तुम जगत्के धाता और कर्ताहो, तुम पुरुष, शाश्वत, और ध्रुवहो, तुम धर्माध्यक्ष विरूपाक्ष, त्रिधर्म, और भूतभावनहो; इस्से आपको नमस्कारहै ॥ ४५ ॥ तुम त्रिनेत्र, बहुरूप, दशहजार सूर्यकी समान तुम्हारी प्रभाहै, देव देव, अति देवहो, और चंद्राङ्कित जटा धारीहो, तुमको नमस्कारहै ॥ ४६ ॥ नर्तक, लासक, पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान मुखवाले ब्रह्मण्य, शरण्य, और

सर्व जीव मयहो इस्से तुमको नमस्कारहै ॥ ४७ ॥ तुम सर्व तूर्य निनादी, सब बन्धनोंसे छुटानेंवाले, मोहन, बन्धन, और सदा निधनोत्तमहो सो तुमको नमस्कारहै ॥ ४८ ॥ तुम पुष्पदन्त, विभाग, मुख्य, सर्वहर, हरितश्मश्रु, धनुर्धारी, भीम, भीमपराक्रमहो, तुमको नमस्कारहै ॥ ४९ ॥ हमारे कहे हुए पुण्यमय यह १०८ नाम ॥

सर्वपापहरंपुण्यंशरण्यंशरणार्थिनाम् ॥ ५० ॥
जप्तमेतद्दशग्रीवकुर्याच्छत्रुविनाशनम् ॥ ५१ ॥

समस्त पापके हरनवालेहैं, शरण चाहनें वालोंको शरण देनेवाले और पुण्य जनकहैं ॥ ५० ॥ हे रावण यह नाम जपनेसे सब शत्रुओंका नाश करदेहैं ॥ ५१ ॥ इ०श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥

दत्त्वातुरावणस्यैवंवरंसकमलोद्भवः ॥
पुनरेवागमत्क्षिप्रंब्रह्मलोकंपितामहः ॥ १ ॥

लोक पितामह कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजी रावणको इस प्रकारका वरदान देकर अतिशीघ्र ब्रह्म लोकको चलेगये ॥ १ ॥ रावणभी वर पाय वहांसे लौटा; कुछ कालके पीछे लोकोंका रुवानें वाला रावण ॥ २ ॥ अपनें मंत्री लोगोंके साथ पश्चिमके समुद्रपर आया। इस समय दशानन रावण वहां एक द्वीपमें अग्निकी समान पुरुषको देखता हुआ॥३॥ वह विमल सुवर्णकी कान्तिकी समान कान्तिवाला पुरुष वहां इकला विराजमान था। उस पुरुषका आकार देखनेंमें कालकी अग्निके समान भयंकरथा ॥ ४ ॥ देवता लोगोंमें जिस प्रकार महादेवजी ग्रहोंमें जिस प्रकार भास्करहैं, शरभ समूहमें जिस प्रकार सिंहहै, हाथियोंमें जिस प्रकार ऐरावतहै ॥ ५ ॥ समस्त पर्वतोंमें जिस प्रकार सुमेरुहै और वनमें जिस प्रकार कल्पवृक्ष मुख्यहै; समस्त पुरुषोंमें वैसेही इस महाबलवान पुरुषको देखकर ॥ ६ ॥ रावणनें उस्से कहाकि मुझसे युद्धकर, तब उसके सब नेत्र ग्रहमालाकी समान चलायमान होगये ॥७॥ और दांतोंके किटकिटानेंका शब्द वज्रके शब्दकी समान हुआ, उस समय महाबलवान रावण अपने सब मंत्रियोंके सहित गर्जनें

लगा ॥ ८ ॥ वह अनेकप्रकार शब्दकर गर्जने लगा, गर्जते २ यह लम्बहस्त भयंकराकार दाढ़युक्त विकटाकार, कम्बुग्रीव, चौड़ीछाती वाला ॥ ९ ॥ मेंडककी समान उदरवाला, सिंहवदन, कैलास शिखरकी समान चरण वाला; लालतालुवाला, लाल हाथवाला, भयंकर, ॥ १० ॥ महाकायवाला महानाद करनेंवाला मन और वायुकी समान वेगवाला, भीपबद्ध तूणीर घन्टा, चामर, समन्वित ॥ ११ ॥ ज्वालाकी मालासे शोभायमान, किंकणी जालकी समान मधुर शब्द करनेंवाला, जिसके गलेमें सुवर्णके कमल फूलोंकी माला पड़ीथी ॥ १२ ॥ ऋग्वेदकी समान शोभायमान, कमलकी समान द्युतिसम्पन्न ॥ १३ ॥ महा पुरुषके ऊपर राक्षसपति शूल, शक्ति, ऋष्टि, और पटेकी वर्षा करनें लगा । चीतेके आक्रमणसे सिंह, बैलके आक्रमणसे हाथी ॥ १४ ॥ हस्तिराजके आक्रमणसे सुमेरु, और नदीके वेगसे महासागर जिस प्रकार चलायमान होताहै वैसेही उस महापुरुषनें प्रहारसे कंपायमान न होकर रावणसे कहा, ॥ १५ ॥ रे दुर्मति निशाचर! हम तेरी युद्धलालसा दूर करैंगे । हे राम! रावणका सब लोकोंका भय देनेवाला जो वेगथा ॥ १६ ॥ उससे हजार गुना अधिक वेग उस महा पुरुषमेंथा, जगत्की सर्व सिद्धि करनेंके कारण तप और धर्म ॥ १७ ॥ इस पुरुषकी जांघोंका अवलंबन करके टिके हुएथे, कामदेव उनके शिश्नमें रहाताथा, विश्वदेव कमरमें, मरुद्गण उनकी बस्तिकीदो पार्श्वोंमें ॥ १८ ॥ अष्टवसु उनके मध्यभागमें, सब समुद्र उनकी कोखमें, सब दिशायें उनके पार्श्वादि स्थानमेंथी! मारुत समुदाय उनके सन्धि स्थानमें विराजमानथीं ॥ १९ ॥ पितृलोग उनकी पीठमें, और ब्रह्माजी उनके हृदयमें विराजमानहो रहतेथे ॥ २० ॥ विमल भूमिदान, गोदान, और सुवर्णदान इत्यादि सब पुण्य कर्म उनकी कोखके रोमथे ॥ २१ ॥ और हिमालय, हेमकूट, मन्दर, और मेरुपर्वत यह सब उनके अस्थि स्वरूपथे ॥ २२ ॥ वज्र उनकी हथेली, और स्वर्ग उनका शरीरथा सन्ध्या और जल वर्षानें वाले मेघसमूह उनकी ग्रीवामेंथे ॥ २३ ॥ धाता, विधाता और विद्याधर, इत्यादि उनकी दोनों बाहोंमें विराजमानथे अनन्त, वासुकि विशालाक्ष, ऐरावत ॥ २४ ॥ कम्बल, अश्वतर करकोट धनञ्जय घोरविष, तक्षक और उपतक्षक ॥ २५ ॥ यह सब विषवीर्य उगलनेंके

लिये उनके हाथोंमें, नखोंमें, वसतेहैं; अग्नि उनके मुखमें, रुद्र उनके कन्धोंमें ॥ २६ ॥ और पक्ष, मास, संवत्सर, व षड्ऋतु उनकी दांतोंकी पंक्तिमें, पूर्णिमासी और अमावस उनके नाकके छेदोंमें, और समस्तवायु उनके शरीरके छेदोंमें वर्तमानहै ॥ २७ ॥ देवी वाणी, सरस्वती उनकी गर्दन, दोनों अश्विनी कुमार उनके कान, सूर्य चंद्रमा उनके दोनों नयन ॥२८॥ हे राम! समस्त वेदाङ्ग यज्ञ, तारागण सुवृतवचन, तेज और तप, यह समस्तही उन नररूपीकी देहका आश्रय किये हुएहैं ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त उस पुरुषनें लीलापूर्वक रावणके एक वज्रकी समान तमाचा मारा ॥ ३० ॥ उस तमाचेके लगनेसे रावण पृथ्वीपर गिरपड़ा राक्षसको गिरा हुआ देख उसके मंत्री सब राक्षस भाग गये ॥ ३१ ॥ ऋग्वेदकी समान, पर्वतकी समान, कमल फूलोंकी मालासे भूषित यह महा पुरुष इन राक्षसोंको भगाय स्वयं पातालमें प्रवेश कर गये॥३२॥ इसके उपरान्त रावणनें अतिशीघ्र उठकर मंत्रियोंको बुलायकर कहा हे प्रहस्त हे शुक सारण इत्यादि मंत्रिगण! वह पुरुष सहसा कहां चले गये सो बताओ! ॥ ३३ ॥ रावणके यह वचन सुनकर राक्षसोंने कहा देव दानवोंका दर्प हरनें वाला वह इसी स्थानमें प्रवेश करगया ॥ ३४ ॥ गरुड़ जिसप्रकार सांपको पकड़कर वेगसे गमन करता है वैसेही दुर्मति रावण पराक्रम प्रकाश करके अतिवेगसे बिलके द्वार पर पहुंचा और निर्भय हो उसमें घुस गया ॥ ३५ ॥ जब रावण निर्भय होकर उस बिलके द्वारमें घुसा तब प्रवेश करते हुए वह नीले अंजनके ढेरकी समान देखा गया ॥ ३६ ॥ बाजू पहरे लाल मालासे विभूषित लालही अनुलेपनसे रंगे हुए विविध सुवर्ण और रत्न भूषित अलंकृत ॥ ३७ ॥ बहुत पुरुषों को रावणने वहांपर देखाकि इसप्रकार तीन करोड़ भय रहित विमल पावककी समान महात्मा पुरुष बराबर उत्सवमें मन लगाये नाच रहेहैं ॥ ३८ ॥ भयंकर विक्रमकारी रावणने उनको देखकर कुछ भय नहीं करा न डरा परन्तु द्वारपर खड़ा होकर उनका नाच देखनेंलगा ॥३९॥ रावणनें इससे पहले जिस पुरुषको देखाथा यह सर्व पुरुषभी सम्पूर्णतः वैसेही थे एक रंग वाले एक वेषवाले एक रूपवाले महासुन्दर अतितेजस्वी ॥ ४० ॥ चार भुजावाले महा उत्साहसे युक्त ऐसे पुरुषको राक्षसनें देखा

उन पुरुषको देखकर रावणके रोम खडे होगये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे रावण शीघ्र इस स्थानसे निकल आया । इसके उपरान्त रावणनें देखा कि एक और स्थानमें एक और पुरुष सेजपर सोयरहाहै ॥४२॥ उसका गृह सेज और आसन श्वेतवर्णथे और महा मोलके थे यह पुरुष अग्निसे मुख ढककर सोरहाथा ॥ ४३ ॥ दिव्यमाला धारण किये हुए दिव्यगहनें पहने हुए दिव्य वसन धारे त्रिलोकीमें एकही सुन्दर वरन त्रिलोकीका गहना ॥ ४४ ॥ कमल पत्र हाथमें लिये त्रिलोक सुन्दरी लक्ष्मीजी देवीके समान वालोंका चवर धारण करकै उसकी एक वगल में वैठकर दीप्तिमान हो रहीथीं ॥ ४५ ॥ परन्तु पातालमें घिराहुआ राक्षसपति रावण उस श्रेष्ठ हँसने वालीको देखकर सिंहासन पर बैठा हुई साध्वीजीको ग्रहण करनेंका अभिलाष करता हुआ ॥ ४६ ॥ मंत्रियोंमे कोईभी रावणके साथ नथा तथापि दुर्मति रावण उस समय कामदेवके वशहो हाथसेउनके ग्रहण करनें की इच्छा करता हुआ ॥ ४७ ॥ कोई पुरुष जैसे कालका भेजाहुआ होकर सोते हुए भयंकर विषधर सर्पको जगावै इसके उपरान्त अग्निसे ढके हुए उस सोते हुए महावीर पुरुषने ॥ ४८ ॥ रावणके मनकी अभिलाषा जान गले हुए वस्त्र धारण किये राक्षसोंके पति रावणकी ओर देख ठठाय कर हँस पड़े ॥ ४९ ॥ वह देख सब लोकोंका रुवानें वाला रावण तेजसे प्रदीप्त हो जड़ कटे हुए वृक्षकी समान एका एकी पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ५० ॥ रावणको गिरा हुआ जानकर परम पुरुषनें कहा हे राक्षस श्रेष्ठ उठो अभी तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी ॥ ५१ ॥ हे राक्षस ब्रह्माजीका दिया हुआ वरदान ही तुम्हारा रक्षकहै इसी कारण तुम जीवित रहे हो । हे रावण इस समय तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी सो तुम विश्वास करकै चले जाओ ॥ ५२ ॥ रावण एक क्षण भरमें चेतना प्राप्त करकै भयभीत हुआ इतना कहे जानें पर देवकण्टक रावण उठा ॥ ५३ ॥ रावणके शरीरमें रोमाञ्चहो आया और वह उस महाद्युतिमान पुरुषसे बोला हे वीर्यवान आप कौन हैं हम देखते हैं कि आप युगान्त कालकी अग्निके समान हैं ॥ ५४ ॥ हे देव कहिये आप कौन हैं आप कहां से आयकर इस स्थानपर विराजमान हैं दुरात्मा रावण करकै इस प्रकार कहे जाकर ॥ ५५ ॥ वह देवता हंसक-

र मेघकी समान गंभीर स्वरसे उत्तर देते हुए कि हे दशग्रीव तुम हमैं जान कर क्या करोगे ॥ ५६ ॥ यह वचन सुन फिर रावण हाथ जोडकरबोला- कि ब्रह्माजीसे वरदान पानेके कारण हम नहीं मरे ॥ ५७ ॥ और की तौ बातही क्याहै देवता लोगोंके बीचमें भी ऐसा कोई नही उत्पन्न हुआ और होगा भी नहीं कि जो अपने वीर्यके बलसे ब्रह्माजीके वरको उलांघसके ॥५८॥ ब्रह्माजीका वचन झूठानहीं हो सकता इस विषयमें हमारा आदर भी नही है और यत्न भी साधारण है जो हमारे वरको झूंठा करसके ऐसा कोई त्रिलोकीमे नहीं है ॥ ५९ ॥ हेसुरश्रेष्ठ! हम अमरहैं इस से हमैं आपका भय नहीं है जो कुछभी हो प्रभो! जो हमारी मृत्यु ही हो जाय तौ आपके सिवाय किसी दूसरे के हाथसे नहो ॥६०॥आपके हाथसे मरनाही मेरे लिये यशका देनेवाला और बड़ाईका करनेवाला है फिर भयंकर विक्रमकारी रावण उन महापुरुषके श- रीरको देखता६१इनदेवताके शरीरमें रावणने सब त्रिलोकीको देखा आदि त्य गण, मरुद्गण, साध्यगण दोनों अश्विनी कुमार लोग६२मरुद्गण पितृगण यम कुबेर सब समुद्र सब पर्वत सब नदी,समस्त वेद समस्त विद्या तीनो अग्नि ॥६३॥ग्रहगण,तारागण,आकाश सिद्धगण,गन्धर्वगण,वेद जाननेंवाले महर्षि लोग, गरुड़ सर्पगण ॥ ६४ ॥ व और दूसरे देवता, यक्ष, दैत्य और राक्षस गण समस्तही उस शयन करते हुए परम पुरुषके शरीरमें सूक्ष्म मूर्तिसे विराजमानथे ॥६५॥यह कथा सुनकर धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें अगस्त्यजी से पूछा कि आपनें जो द्वीपमें विराजमान हुये उस महापुरुषकी कथा कही वह कौनथे ? और वह तीन करोड़ पुरुषभी कौनथे ॥ ६६ ॥ देवता दानवोंका दर्प हरनें वाले शयन किये हुए वह कौन पुरुषथे ? श्रीरामचंद्र जीके वचन सुनकर अगस्त्यजी बोले ॥ ६७ ॥ हे सनातन देव ! कहताहूं श्रवण करो; इस द्वीपमें विराजमान महापुरुष कपिल देव जीथे ॥ ६८ ॥ परन्तु जो समस्त देवता वहांपर नृत्य करतेहैं; वह सबही उन बुद्धिमान नरदेव कपिलजीके समान तेज और प्रभावसे युक्तहैं ॥ ६९ ॥ हे राम ! उन परम पुरुषनें पाप निश्चय रावणको क्रोधकी दृष्टिसे नहीं निहारा; इस- लिये उस कालमें रावण भस्म नहीं हुआ ॥ ७० ॥ पर्वतकी समान रावण खिन्न शरीरहो पृथ्वीपर गिर पडाथा; पिशुन पुरुष जैसे शीघ्रही किसीके

भेदको जान जाताहै. परम पुरुषनेंभी वैसेही रावणको केवल वचन बाणोंसे भेद डाला ॥ ७१ ॥

अथदीर्घेणकालेनलब्धसंज्ञःसराक्षसः ॥
आजगाममहातेजायत्रतेसचिवाःस्थिताः ॥ ७२ ॥

जोभी हो महा तेजस्वी निशाचर रावण बहुतदेरके पीछे चेतना पाय अपने मंत्रियोंके साथ जहां विराजमान था उसी स्थानमें आया ॥ ७२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ (क्षेपकके सर्ग समाप्त हुए)

चतुर्विंशः सर्गः ॥

निवर्तमानःसंहृष्टोरावणःसदुरात्मवान् ॥
जह्रेपथिनरेंद्रर्षिदेवदानवकन्यकाः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त जब दुरात्मा रावण लंकाको लौटा तब उस काल मार्गमें हर्षित चित्तसे राजर्षि और देव दानवोंकी कन्याओंको हरण करनें लगा ॥ १ ॥ विवाहिता या अविवाहिता जिस किसीकी कन्या व स्त्री को रावणनें रूपवती देखा; उसीके बन्धु बान्धवोंका नाशकर रावणनें उसको पुष्पक विमानमें रोक रक्खा ॥ २ ॥ इस प्रकारसे राक्षस कन्या, असुर कन्या, मनुष्य कन्या, पन्नग कन्या, यक्ष कन्या, और दानवोंकी पुत्रियोंको रावण विमानपर चढानें लगा ॥ ३ ॥ वह सब कन्यागण शोकसे आरत होकर, महा शोकाग्नि और भयसे उत्पन्न हुए अग्निकी लपट समान गरम आंसुओंका जल त्यागन करनें लगीं ॥ ४ ॥ जिस प्रकार नदियोंसे समुद्र भर जाताहै वैसेही भय और शोकके वश अमंगल शूचक आंसू छोड़ती हुई सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या गणोंसे वह विमान पूर्ण होगया ॥ ५ ॥ विमानमें सैंकडों नाग कन्या, गन्धर्व कन्या, महर्षि कन्या, दैत्यकन्या, और दानवोंकी पुत्रियें रोंने लगीं ॥ ६ ॥ यह सब बडे २ केश वाली, सुन्दर देह वाली पूर्णमासीके चंद्रमाकी समान मुखवाली, कठोर स्तन वाली, भ्रमरकी समान क्षीण कमर वाली ॥ ७ ॥ दोनों नितम्ब रथके दो गुम्मजकी समान मनोहर देव कन्याओंकी समान तपाये हुए सुवर्णकी समान

रंग वाली ॥ ८ ॥ शोक दुःख और भयसे, त्रासित, विह्वल, श्रेष्ठ कमर वाली कामिनियोंकी श्वास वायुसे पुष्पक विमान मानों सब जगह प्रदीप्त होगया ॥ ९ ॥ वह पुष्पक विमान अग्निसे विराजमान अग्नि होत्रकी समान प्रकाशित होनें लगा । रावणको प्राप्त होकर वह शोकाकुल स्त्रियें ॥ १० ॥ दीन मुख होगईं; उन श्यामा स्त्रियोंके नेत्रभी, सिंहसे सताई मृगीके समान होगये । उनमेंसे कोई २ तो चिन्ता करनें लगीं कि राक्षस हमको भक्षण कर लेगा ॥ ११ ॥ और कोई २ दुःखसे आरत होकर विचारनें लगीं कि । रावण हमारा नाश कर डालेगा, इस प्रकार माता, पिता, भ्राता, और स्वामीका स्मरण करके ॥ १२ ॥ समस्त कामिनियें दुःख और शोकसे सताई जाकर विलाप करनें लगीं; कोई २ कहनें लगीं कि हाय! हमारे विना हमारे पुत्रकी क्या दशाहोगी? ॥ १३ ॥ कोई २ कहनें लगीं हाय! हमारे भइया और अम्मा न जानें हमारे विना कैसे शोक समुद्रमें डूबे होंगे, कोई कहनें लगीं कि स्वामीका वियोगहै॥ १४ ॥इसलिये हे मौत! हम तुमको प्रसन्न करतीहैं; तुम हम दुःख भागिनियोंको ग्रहण करो, पहले जन्ममें दूसरे शरीरसे हमनें कोई दुष्कर कार्य कियाथा॥१५॥ इसीलिये हम सब दुःखित होकर इस प्रकारके शोक समुद्रमें डूबीं । इस समय हम अपने २ दुःखका अंत नहीं देखती॥ १६ ॥ अरे! मनुष्य जातिको धिक्कारहै! मनुष्यकी समान और दुर्बल कोईभी नहीं है, क्योंकि अति दुर्बल हमारे स्वामियोंको रावणनें मारडाला ॥ १७ ॥ जैसे यथा समयमें सूर्यके निकलनेंसे नक्षत्रोंके समूह छिप जातेहैं; हाय! इस राक्षसका बल अनंतहै, इसी कारण यह इच्छानुसार शस्त्र घात करता हुआ घूमताहै ॥ १८ ॥ कैसी भयंकर बातहै ऐसे दुष्कर्ममें रत होकरभी वह निशाचर अपनेको निन्दित नहीं समझता! जैसा यह दुरात्माहै, इसका विक्रमभी वैसाहीहै ॥ १९ ॥ परस्त्री गमन करना यह इसके लिये बड़ा अयोग्य कर्महै, क्योंकि यह राक्षस परस्त्रीयोंके साथ रमण करताहै॥ २०॥ इस कारण इस दुर्मति राक्षसका स्त्रीके कार्यसेही वध होगा । जैसेही उन पतिव्रता स्त्रियोंनें यह वचन उच्चारण कियाकि ॥ २१ ॥ स्वर्गमें देवता ओंके नगाड़े बजनें लगे, और फूलोंकी वर्षा होनें लगी। पतिव्रता स्त्रियोंके शाप देनेंसे रावणका पराक्रम हतसा होगया ॥ २२ ॥ और वह उदासभी

होगया क्योंकि रावणनें समझ लियाकि इन पतिव्रता स्त्रियोंका शाप मिथ्या न होगा। इस प्रकार उनका विलपना कलपना सुन राक्षस श्रेष्ठ ॥ २३ ॥ निशाचर लोगोंसे पूजितहो लंका नगरीमें प्रवेश करता हुआ इसी अवसरमें घोर राक्षसी रूपिणी॥ २४ ॥ रावणकी वहन उसके सन्मुखही एकाएकी पृथ्वीपर गिर पड़ी। रावणने उसको समझाय बुझा-यकर कहा ॥ २५ ॥ हे भद्रे! तुह्मारे मनका क्या अभिप्रायहै? अति शीघ्र हमसे कहो। फिर वह लाल २ नेत्र वाली निशाचरी आंखोंमें आंसू भर-कर उत्तर देती हुई ॥ २६ ॥ हे राजन्! आप बलवानहैं; इस लिये बल पूर्वक आपने हमको विधवा कियाहै हे राजन्। आपने वीर्यके प्रभावसे संग्राममें दैत्योंका संहार किया ॥ २७ ॥ आपने उन चौदह हजार दैत्योंको मारा जोकि कालकेयके नामसे विख्यातथे। तिनमें हमारे प्राणोंसेभी अधिक प्यारे महा बलवान् स्वामीथे ॥ २८ ॥ हे भइया! आपनें शत्रु होकर उनकाभी संहार कियाहै; इसलिये आप हमारे नाम मात्रके भाई हैं, हे भइया! आपनें भइया होकर आपही हमको मार डाला ॥ २९ ॥ सो आपके कारण अब हमको सदा विधवा पनकी पीड़ा भोगनी पडैगी। हे राजन्! बह-नोईको अर्थात् हमारे स्वामीको संग्राममें रक्षा करना आपको उचितथा ३०॥ परन्तु आप स्वयं उसका नाश करकैभी नहीं लजातेहैं! जब वहननें विलाप करते २ यह वचन कहे ॥ ३१ ॥ तब रावणनें चिकनें चुपड़े वचनोंसे उसे समझायकर कहा, वत्से! तुम्हारे रोनेंका कुछ काम नहीं तुम बन्धु बान्धव इत्यादि किसीका भय न करो ॥ ३२ ॥ हम दान मान और प्रसन्नतासे यत्न सहित सदा तुम्हैं संतोषित किया करेंगे। हे भद्रे हमनें मतवाले पनसे और विक्षिप्त चित्तसे विजयकी अभिलाषा कर बाणोंके जाल छोड़ेथे॥३३॥ इसलिये उस समय युद्ध करते २ हमनें संग्राममें अपना पराया कुछभी नहीं जाना। हे बहन! हमारा ज्ञान इतना जाता रहाथा कि हमको कुछभी ज्ञान नहींथा कि यह बहनोई है, क्योंकि हम युद्धमें उन्मत्तथे ॥ ३४ ॥ इसी कारणसे तुम्हारा स्वामी हमसे मारागया। जो हो इस समय जो तुम्हारा अभिमतहै इस कारण हम वही सिद्ध करैंगे ॥ ३५ ॥ इस कारण तुम ऐश्वर्यवान भ्राता खरके निकट सदा वास करो। तुम्हारा महाबलवान् भ्राता खर चौदह हजार राक्षसोंका स्वामी होगा ॥ ३६ ॥ उसका स्वामी

पन यात्रा समय व दानके समयमेंभी बना रहैगा, तुम्हारा मौसेरा भाई यह खर ॥ ३७ ॥ निशाचर खर सदाही तुम्हारी आज्ञा में रहैगा, इस कारण यह वीर खर अति शीघ्र दंडक वासियोंकी रक्षा करनेंके लिये जाय॥३८॥ दूषण नामक महाबली इसका सैनाधति होगा; वहांपर परम शूर खर सदा तुम्हारी बात माना करैगा ॥ ३९ ॥ और यही कामरूपी राक्षसोंका अधीश्वर होगा, इतना कह रावणनें सैनाको खरके संग रहनेंके अर्थ आज्ञा-दी ॥ ४० ॥ चौदह हजार बलवीर्ययुक्त घोर सब राक्षसोंके संग करके जानेंको आज्ञा हुई ॥ ४१ ॥

सतत्रकारयामासराज्यंनिहतकंटकम् ॥
साचशूर्पणखातत्रन्यवसद्दंडकेवने ॥ ४२ ॥

खर शीघ्रही भय विहीन होकर दंडकारण्यमें आयगया; और वहांपर निष्कंटक राज्य स्थापित करता हुआ, और शूर्पणखाभी दंडकारण्यमें वास करनें लगी ॥ ४२ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः ॥

सतुदत्वादशग्रीवोबलंघोरंखरस्यतत् ॥
भगिनींचसमाश्वास्यहृष्टःस्वस्थतरोभवत् ॥ १ ॥

खरको वह भयंकर सैना देकर और बहनको समझाय बुझाय रावण [ह]र्षित चित्तहो अत्यन्त सावधान हुआ ॥ १ ॥ फिर वह बलवान् राक्षस [र]ावण अपने सब मंत्रि लोगोंके साथ निकुम्भिला नामक लंकाके उत्तम [उ]पवनमें गया ॥ २ ॥ रावणनें शोभासे शोभितहो वहां जायकर देखा कि सुन्दर देवग्रहसे शोभायमान, शतखंभोंसे युक्त मंडपमें अति प्रकाशित यज्ञ होरहाथा ॥ ३ ॥ फिर मृग चर्म धारण किये दंडकमंडलु लिये भयंकर अपने पुत्र मेघनादकोभी रावणने वहां देखा ॥ ४ ॥ लंकापति रावणनें बीसों भुजा फैलाय मेघनादको हृदयसे लगायकर कहा; हे वत्स! तुमनें यह कौन कार्य आरंभ कियाहै? सो हमसे कहो ॥ ५ ॥ तब महा तपस्वी द्विज श्रेष्ठ शुक्राचार्यजी यज्ञकी सम्पत्ति बढ़ानेंके लिये राक्षस

राज रावणसे बोले ॥ ६ ॥ हे राजन्! हम यह समस्त वृत्तान्त वर्णन कर-तेहैं आप श्रवण करें; आपका पुत्र बहुत विस्तारित प्रसिद्ध सात यज्ञोंके फलको प्राप्त हुआहै ॥ ७ ॥ उनमें अग्नि, होम, अश्वमेध, बहु सुवर्णक, राजसूय और वैष्णव यज्ञ समाप्त होगयाहै ॥ ८ ॥ और समस्त पुरुषों-को अति दुर्लभ इस महेश्वर यज्ञका अनुष्ठान समय होरहाहै; इसके पूरा होनेंसे आपके पुत्रनें इसी स्थानमें साक्षात् पशुपति महादेवजीसे बहुत वर प्राप्त कियेहैं ॥ ९ ॥ हे रावण आकाशमें चलनेंवाला, अविनाशी-कामगामी दिव्य रथ और तामसी नाम माया इसनें पाईहै, जिस मायासे अन्धकार होआताहै ॥ १० ॥ हे राक्षसेश्वर! यह माया संग्राममें छोड़ देनेसे सुर या असुर लोग कोईभी इनकी गतिको जाननेंमें समर्थ न होंगे ॥ ११ ॥ हे राजन्! इसके सिवाय मेघनादनें बाणोंसे भरा हुआ अक्ष-य तरकश, अजीत धनुष, और संग्राममें शत्रुओंका नाश करनेंवाला बल-वान अस्त्रभी पायाहै ॥ १२ ॥ हे दशानन! तुम्हारे इस पुत्रनें आज यज्ञकी समाप्तिके समय यह समस्त वरदान पायेहैं; तिसके पीछे हम और यह दोनोंही आपका दर्शन करनेंके लिये यहां ठहरे हुएहैं ॥ १३ ॥ यह वचन सुन रावणने कहा, पुत्र! इस प्रकारका कार्य करना तुमको शोभा नहीं देता कारण कि तुमनें विविध उपकार द्वारा हमारे शत्रु इंद्रादि दे-वताओंकीभी पूजाकीहै ॥ १४ ॥ अच्छा, जो किया सो अच्छा किया, इस-में कुछ संदेह नहीं; कि इस कार्यके करनेंसे पुण्यही होगा; हे सौम्य! आ-ओ इस समय हम अपने गृहमें चलें ॥ १५ ॥ फिर रावण विभीषण और अपने पुत्रके सहित अपने स्थानमें जाय उन रोदन करती हुई स्त्रियोंको पुष्पक विमानपरसे उतारता हुआ ॥ १६ ॥ वह सुलक्षणवाली स्त्रियें देव, दानव, और राक्षसोंकी रत्न स्वरूपथीं; उन सब स्त्रियोंपर रावणका बुरा अभिप्राय जान धर्मात्मा विभीषणजीनें कहा ॥ १७ ॥ इस कार्यके करनेंसे पाप होताहै, यह सब आप जानकरभी इच्छानुसार क्यों ऐसे आचारसे, यश, अर्थ कुल, नाशकर कार्य करकै प्राणीयोंको सताते फिरतेहो ॥ १८ ॥ आप इन सब जातियोंको पीड़ादे इन श्रेष्ठ स्त्रियोंको हरण कर लायेहो, परन्तु हे राजन्! आपको कुछ न समझकर मधु नामक राक्षस कुम्भी नसीको हरण कर ले गयाहै ॥ १९ ॥ रावणनें कहा कि हम नहीं कहसक्ते

कि तुम क्या कहतेहो विशेष करकै जिसको तुम मधुनामसे पुकारतेहो, वह कौनहै?॥२०॥ तब बिभीषणनें क्रोध करकै अपने भ्रातासे कहा कि, सुनो! परस्त्री हरण रूप आपके इस पाप कार्यका फल आय पहुंचाहै॥२१॥ हम लोगोंके नाना सुमालीके बड़े भ्राता माल्यवान नाम विख्यात पंडित एक वृद्ध निशाचरहैं ॥ २२ ॥ वह हमारी माताके बड़ेतात. और हमारे नानाहैं; उनकी बेटीका नाम अनला, और उस अनलाकी बेटीका नाम कुंभीनसी हुआ ॥ २३ ॥ वह कुम्भीनसी हमारी मौसीकी बेटीहै; इससे यह अनलाकी पुत्री धर्मानुसार हम सब भ्राता ओंकी बहनहै ॥ २४ ॥ हे राजन्! आपका पुत्र मेघनाद तौ यज्ञ कर रहाथा और हम तप करनेंके लिये जलमें स्थितथे, उस समय वह बलवान राक्षस उस कुंभीनसीको हरण करकै लेगया ॥ २५ ॥ हे महाराज! विशेष करकै कुंभकर्णभी उस समय सोय रहाथा; सो प्रसिद्ध राक्षस श्रेष्ठ मंत्रियोंको मारकर ॥ २६ ॥ आपके अंतःपुरमें रक्षित हुई कुंभीनसीको बल पूर्वक हरण करकै लेगया हे महाराज! यह समाचार सुनकरभी उसको न मारकर हमनें उसे क्षमाही किया ॥ २७ ॥ क्योंकि कुमारी बहनको अवश्य व्याह देना भ्राता लोगोंका कर्तव्यहै, सो नहीं हुआ, हे दुर्मते! यह बात इन तुम्हारेही दुष्कर्मोंसे हुई ॥ २८ ॥ सो तुमको इसी लोकमें इस कन्या हरणरूप पापका फल मिल गया, सो इसको आप जानें वह राक्षसोंका राजा रावण विभीषणजीके ऐसे वचन सुन ॥ २९ ॥ गरम जलसे पूर्ण समुद्रके खल बलानेकी समान अपने किये दौरात्मसे पीड़ितहो अत्यन्त संतापित हुआ फिर रावणनें क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर कहा॥३० ॥ हमारा रथ शीघ्र तैयार करो और हमारी सैनाके शूर भी सजाये जांय, हमारा भ्राता कुंभ-कर्ण व मुख्य २ निशाचर गण ॥ ३१ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र लेकर सवारियोंपर चढ़ैं, आप हम संग्राममें रावणसे निर्भय उस मधुको मार डालैंगे ॥ ३२ ॥ और फिर हम बन्धु बान्धवोंके साथ जयकी अभिलाषासे देव लोकको जांयगे; प्रधान २ चार हजार अक्षौहिणी राक्षस आगे २॥ ३३॥ अनेक प्रकारके हथियार लिये युद्ध करनेंकी कांक्षासे चले, मेघनाद सब सैनापतियोंको संगले आगे चला ॥ ३४ ॥ रावण बीचमें, और कुंभकर्ण पीछे हुआ, जो उस दिन जाग उठथा केवल वह धर्मात्मा बिभीषणजीही

लंकामें रहकर धर्माचरण करनें लगे ॥ ३५ ॥ और बाकी बचे बचाये सब महाभाग राक्षस, नाग, गधे, शिशुमार, ऊंट, और द्युतिमान घोड़ोंपर सवार होकर मधुपुरकी ओर चले ॥ ३६ ॥ अधिक क्याकहैं वह समस्त राक्षस आकाशको संपूर्णतः ही ढककर जानें लगे, उनमें सैंकड़ों राक्षस देवता लोगोंसे वैर किये हुए ॥ ३७ ॥ रावणको युद्धमें जाता हुआ देखकर उसके पीछे २ गमन करनें लगे, तव रावण जायकर मधुपुरमें पहुँचा ॥ ३८ ॥ परन्तु उसनें वहां मधुको न देखकर अपनी बहनको देखता हुआ। हाथ जोड़ कांपती हुई शीश नवाय चरणपर गिरी ॥ ३९ ॥ वह कुम्भीनसी जव इस प्रकार राक्षस राजके चरणोपर गिरी तव रावणनें उसे उठाकर कहाकि तुमको कुछ भय नहींहै ॥ ४० ॥ हम राक्षस श्रेष्ठ रावणहैं, अधिक करकै बताओकि हम तुम्हारा क्या करैं? हे महाभुज राजन्! जो आप हमारे ऊपर प्रसन्न हुएहौं ॥ ४१ ॥ तौ अब हमारे स्वामीका आप संहार न करैं, कहाहै कि संसारमें कुलवान स्त्रियोंके लिये ऐसा कुछभी भय नहींहै ॥ ४२ ॥ सब विपद्से अधिक बड़ी यह विधवापनकीही विपद बड़ीहै। हे राजेन्द्र! आपने जो कहाहै उसको सत्यकीजिये ॥ ४३ ॥ कारणकि हे महाराज! आपने स्वयंही मुझसे कहाहै कि तुमको कुछ भय नहींहै; तव रावण हर्षित होकर सामने खड़ी हुई अपनी मौसेरी बहनसे बोला ॥ ४४ ॥ तुम्हारा स्वामी कहां है हमको शीघ्र बताओ! हम जयकी कामनासे उसके साथ सुरलोकको जांयगे ॥ ४५ ॥ तुम्हारे प्रति करुणाके मारे और तुम्हारी सुहृदताके वश हो हमने मधुके मारनेंकी इच्छाको छोड़ दिया, यह वचन सुनकर कुम्भीनसीने अपने सोते हुए स्वामीको जगाय ॥ ४६ ॥ हर्षितहो उस्से कहा; हमारे भइया महा बलवान रावण यहांपर आयेहैं ॥ ४७ ॥ वह सुरलोकके जीतनेकी अभिलाषा करके तुमको अपनी सहायता करनेके निमित्त वरण करतेहैं, सो हे स्वामी! तुम बन्धु बान्धवोंके साथ उनकी सहायता करनेंको जाओ ॥ ४८ ॥ हमको देखतेही स्नेहके वशहो उन्हौंने तुमको अपना बहनोई मान लियाहै, इसलिये उनका कार्य सिद्ध करनेंके लिये सहायता करना उचितहै, उसके यह वचन सुन निशाचर मधुने कहाकि हम अवश्यही उनकी सहायता करेंगे ॥ ४९ ॥ तिसके पीछे मधुने राक्षस

श्रेष्ठ रावणके दर्शनकर उपचारके सहित निकट जाय धर्मानुसार राक्षसोंके स्वामी रावणकी पूजाकी ॥ ५० ॥ वीर्यवान रावण मधुके स्थानमें सन्मान पाय वहां एक रात्रि रह जानेंकी इच्छा करता हुआ ॥ ५१ ॥

ततःकैलासमासाद्यशैलंवैश्रवणालयम् ॥
राक्षसेंद्रोमहेंद्राभःसेनामुपनिवेशयत् ॥ ५२ ॥

फिर इन्द्रकी समान राक्षसोंका राजा रावण कुबेरके वासस्थान कैलास पर्वतके शिखरपर जाय वहां सैनाकी छावनी डालता हुआ ॥ ५२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० उ० भाषा० पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥

सतुतत्रदशग्रीवःसहसैन्येनवीर्यवान् ॥
अस्तंप्राप्तेदिनकरेनिवासंसमरोचयत् ॥ १ ॥

जब सूर्य भगवान छिप गये तब वीर्यवान रावण सैनाके सहित वहांपर बसता हुआ ॥ १ ॥ इसके पीछे जब इसी कैलाश पर्वतकी समान श्वेत वर्णके विमल निशानाथ [चंद्रमा] उदय हुए तब अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए यह बड़ी भारी सैना सोय गई ॥ २ ॥ उस समय महावीर्यवान रावण पर्वतके शिखरपर शयन करके चंद्रमाकी किरणोंके जालसे शोभायमान कामनियोंके भोगने योग्य पहाड़ी शोभा देखनें लगा ॥ ३ ॥ दीप्तिमान कर्णिकारके वन, कदम्ब, और बकुलके वृक्षोंकी कतार खिले हुए कमल फूलोंका वन और मन्दाकिनीका जल ॥ ४ ॥ चंपा, अशोक, पुन्नाग, आम, पाटल, लोध, प्रियङ्गु, अर्ज्जुन, केतकी, ॥५॥ तगर, नारियल, चिरौंजी, पनस इत्यादिकोंसे वह वन शोभायमान हो रहाथा ॥ ६ ॥ ऐसे शोभायमान वनमें मधुर शब्द करनेंवाले किन्नर कामदेवकी व्यथासे व्यथितहो अनुरागके वशहो अपने २ जोड़ेके साथ अपनी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला गाना कर रहेहैं ॥ ७ ॥ और मदके वश होनेके कारण जिनके नेत्रोंके कोये लाल होगयेहैं ऐसे मद्योन्मत्त विद्याधर लोगभी अपनी २ स्त्रियोंके साथ मिलकर हर्षितहो क्रीड़ा कर रहेहैं ॥ ८ ॥ कुबेरके मंदिरमें जाती हुई अप्सराओंके झुन्डका मधुर स्वर घंटेके नादकी समान

सुनाई आनें लगा ॥ ९ ॥ वृक्ष पवनके झोंकोंसे चलायमानहो पुष्प वर्षण करते हुए वसन्त समयके सब जातिवाले पुष्पोंकी सुगन्धिसे उस पर्वतको सुगन्धित करनें लगीं ॥ १० ॥ सुख देनेंवाला समीर, मधु और परागसे मिली हुई सुगन्धिको ग्रहणकर रावणके कामको बढ़ाय सुन्दर रूपसे वहनें लगा ॥ ११ ॥ रात्रिके होनेंपर चंद्रमा उदित हुआ, तब गानें और पुष्पोंकी बढ़ती होनेंसे पवनकी शीतलता व पर्वतके गुणसे ॥ १२ ॥ महावीर्यवान राक्षसराज रावण कामदेवके वशहो वारंवार लम्बे लम्बे श्वासले चंद्रमाको देखनें लगा ॥ १३ ॥ इसी अवसरमें दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे भूषित सर्व अप्सराओंमें श्रेष्ठ पूर्णि-माके चन्द्रमाकी समान रम्भा ॥ १४ ॥ जाय रहीथी, इसके सब अंगोंमें चन्दन लग रहाथा, उसके बालोंमें कल्पवृक्षके फूल गुंध रहेथे, दिव्य उत्स-वके लिये शीघ्रतासे जाय रहीथी ॥ १५ ॥ मनोहर नेत्र, कठोर कुच, पाय-जेब पहरे सुन्दर जांघोंके ऊपरका अंग व मनोहर जांघे धारण किये॥१६॥ और छहों ऋतुके उत्पन्न हुए फूलोंसेबनेहुए अनेक गहनें पहनें रम्भा, कान्ति, श्री, और कीर्त्तिमें दूसरी लक्ष्मीकी समान प्रकाशमान थी ॥ १७ ॥ और स जल जलधरकी नांई नील वस्त्र धारण कियेथी, उसका वदन चंद्रमाकी समान, दोनों भौंहे सुन्दर धनुषकी समानथीं ॥ १८ ॥ जांघे हाथीकी शुन्डके समान और दोनों हाथ पत्तोंसेभी अधिक कोमलथे, ऐसी रम्भा सेनाके बीचमें होकर जा रहीथी कि उसको रावणनें देखा ॥ १९ ॥ तब रावण कामके वशहो उठ शरमाई हुई रम्भाका हाथ पकड़ कुछ एक हँसकर बोला ॥ २० ॥ हे सुन्दरि ! तुम कहां जातीहो ? तुम किसकी भोग वासना सिद्ध करोगी; किस पुरुषका अभ्युदय समय आय पहुंचाहै, कि जो तुम्हारे साथ भोग करैगा ? ॥ २१ ॥ कमलकी समान सुगन्धि युक्त, अमृत और मधुरकी समान तुम्हारे अधरामृतसे आज कौन तृप्त होगा ? ॥ २२ ॥ हे भीरु ! तुम्हारे सुन्दर बड़े २ दोनों कुच सुवर्णके कलसोंकी समान मोटे होकर परस्पर ऐसे सट गयेहैं कि उनमें कुछभी अंतर नहीं है; सो वह दोनों कुच आज किसके हृदयसे लगैंगे ? ॥ २३ ॥ तुम्हारे जघन सुवर्णके चक्रकी समान गोल और बड़े हैं, विशेष करकै इनमें सुवर्णकी तगडी पड़ी है; इस कारण स्वर्गके समान अत्यन्त सुखके हेतु इस तुम्हारे श्रोणी-

तट (पेड़) पर आज कौन चढ़ेगा ? ॥ २४ ॥ हे भीरु ! इन्द्र, विष्णु, या अश्विनी कुमार कोईभी हो आजकल कोई पुरुषभी हमसे श्रेष्ठ नहीं है; तौभी तुम हमको छोड़े जातीहो यह अच्छा नहीं करती ॥ २५ ॥ हे बड़े नितम्बवाली ? आओ शोभायमान शिलापर विश्राम करो, हमारे सिवाय त्रिलोकीमें और कोई स्वामी विद्यमान नहींहै ॥ २६ ॥ जो त्रिलोकीका स्वामीहै मैं रावण उसकाही स्वामी और विधाताहूं; तौभी हम विनतीकर हाथ जोड़ तुमसे यह प्रार्थना करते हैं; सो तुम हमसे मिलो ॥ २७ ॥ यह वचन सुन रम्भा कम्पायमानहो हाथ जोड़कर बोली; हे राक्षसराज आप हमारे बड़े हैं; इस कारण ऐसा कहना आपको उचित नहींहै ॥ २८ ॥ वरन और कोईभी जो हमारा अपमान करै तौ आपको उस्सेभी हमारी रक्षा करना उचितहै; धर्मके अनुसार हम आपकी पुत्रवधूहैं; हम आपसे सत्यही कहती हैं ॥ २९ ॥ यह कह रम्भा नीचेको झुककर अपने चरणों को देखती हुई खड़ी रही, रावणको देखतेही उसका सब शरीर कांप गया ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त रावणनें रंभासे कहा कि जो तुम हमारे पुत्रकी भार्या हो तौ हमारी पुत्रवधू हो सकती, रंभानें कहा ऐसाहीहै॥३१॥ हे राक्षस श्रेष्ठ ! सङ्केत धर्मके अनुसार हम आपके पुत्रकी भार्या हैं; आपके भ्राता कुवेरजीके प्राणोंसेभी अधिक प्यारे ॥३२॥ नल कूवर नाम त्रिलोक विख्यात एक पुत्रहै; वह धर्मका पालन करनेंमें ब्राह्मणकी समान पराक्रम में क्षत्रियकी समान ॥३३॥ क्रोधमें अग्निकी नाईं क्षमामें पृथ्वीकी तुल्यहै उन लोकपाल कुमारके किये संकेतके अनुसार॥३४॥आज हम उनके पास को जातीहैं; उनकेही पास जानेको हमने यह समस्त भूषण धारण किये हैं विशेष करकै हमारे ऊपर उनकी जैसी प्रीतिहै वैसेही हमारी प्रीतिभी उनसे है औरसे हम प्रीति नहीं कर सकती ॥३५॥ हे राजन्! आप उसी सत्यके अनुसार हमको छोड़ दीजिये, हेअरिदमन! विशेष करकै वह महात्मा हमारी बाट देखते उत्सुक हुए बैठे होंगे ॥ ३६ ॥ सो अब आपको विघ्न करना कर्त्तव्य नहींहै । हे राक्षस श्रेष्ठ! साधु जनोंके आचरण किये हुए मार्गके अनुसार आपभी उसी मार्गपर चलकर हमें छोड़ दीजिये ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार आप हमारे मान देने योग्यहैं वैसेही

आपको हमारा पालन करना उचितहै; इस प्रकारसे कहे जाकर विनीत भावसे रावणनें कहा ॥ ३८ ॥ " हम तुम्हारे स्नुषाहैं " यह जो वचन तुमने कहा यह निर्णय उन स्त्रियोंके लियेहै, जिनका एक पति होताहै, यह बात यहांपर नहीं लग सकती; क्योंकि बहुत दिनोंसे देव लोककी यह व्यवस्था चली आतीहै कि उनके कोई नियत एक स्त्री नहीं होती ॥ ३९ ॥ न तौ अप्सराओंको कोई एक पतिही होता, और न देवताओंके कोई एक स्त्रीही होती । यह कह उस राक्षसनें रंभाको शिलापर लिटाय ॥४०॥ काम भोगमें आसक्तहो उसके साथ विहार करना आरंभ किया । भोगी जानेके उपरान्त छूटकर रंभा जो माला पहरेथी वह मलगिजी होगई, और गहनें भी नष्ट भ्रष्ट हो गये ॥४१॥ और वह रंभा गजराजकी क्रीड़ा करनेंसे मथी हुई नदीके समान व्याकुल होगई बाल खुलगये,अलकें चलायमान हुईं; हाथ कंपायमान हुए॥४२॥ उस समय ऐसा जान पड़ा मानो फूल युक्त बेल पवनके बलसे चलायमान हुईहै; इसके उपरान्त रंभा लाज और भयसे कंपितहो हाथ जोड़े हुए ॥ ४३ ॥ नल कूबरके निकट पहुँच उनके चरणोंपर गिरपड़ी; उसकी यह अवस्था देखकर महात्मा नल कूबरजी ॥ ४४ ॥ बोले हे भद्रे! यह क्या! तुम हमारे चरणोंपर क्यों गिरी; तब रंभा कांपकर लंबे २ श्वासले हाथजोड़ ॥ ४५ ॥ यथातथ्य समस्त वृत्तान्त कहनें लगी, हे देव! रावण स्वर्ग लोकमें जानेंके लिये बाहरहो कैलाशपर आयाहै ॥४६॥ वह सब सैनाके साथ आज यह रात्रि उसी स्थानमें विताय रहाथा; हे शत्रुनाशी उस रावणनें हमको आपके पास आती हुई देख ॥ ४७ ॥ उस राक्षसनें हमको पकड़कर पूछा कि तुम किसके निकट जातीहो? सो हमनें समस्त वृत्तान्त उनसे सत्य २ कह दिया ॥ ४८ ॥ और हे देव! हम आपकी पुत्रवधू होती हैं यह कहकर हमनें वारंवार उसके निकट प्रार्थनाकी, परन्तु उसने काम मोहसे ज्ञानखो ॥ ४९ ॥ एक बात न सुनी; हमारी विनय न मानकर उसनें बलात्कार हमारे साथ विहार किया । इसलिये हे सुव्रत! आप हमारा यह अपराध क्षमा कीजिये ॥ ५० ॥ स्त्रीका बल कभीभी पुरुषके बलकी समान नहींहै, यह वृत्तान्त सुनकर कुबेरके पुत्रको क्रोध आगया ॥ ५१ ॥ और सत्य मिथ्या जाननेंके लिये ध्यान धरकर देखा,तौ ध्यानसे रावणका

यह कर्म जान ॥ ५२ ॥ क्रोधसे नेत्र लाल २ कर उन्हौंनें उसी समय हाथमें जल ग्रहण किया और सब इन्द्रियोंकोछू विधिपूर्वक आचमनकर ॥ ५३ ॥ राक्षसपति रावणको अति दारुण शाप दिया कि, हे भद्रे! तुम्हारी इच्छा न होंने परभी जब कि उसने बलपूर्वक तुमसे मैथुन किया ॥ ५४ ॥ सो इस कारण अब वह किसी स्त्रीको बिना उसकी इच्छाके न भोगसकैगा, और जो वह कामके वशहो किसी स्त्रीकी इच्छाके विरुद्ध बलपूर्वक उसको पकड़ेगा ॥ ५५ ॥ तौ उसके शिरके सात टुकड़े होजांयगे, प्रकाशमान अग्निके प्रभाके समान जब यह शाप उच्चारण किया ॥ ५६ ॥ तब उस समय फूलोंकी वर्षाहुई; आकाशसे देवता ओंके नगाड़े बजने लगे; ब्रह्माजी इत्यादि सबही देवता हर्षित हुए ॥५७॥ क्योंकि इन सब देवता ओंनें लोककी दुर्गति करनेवाले रावणकी मृत्यु इस प्रकारसे जानी रावणनें उस रोम हर्षण शापको सुन ॥ ५८ ॥

तेननीताःस्त्रियःप्रीतिमापुःसर्वाःपतिव्रताः ॥
नलकूबरनिर्मुक्तंशापंश्रुत्वामनःप्रियम् ॥ ५९ ॥

तबसे बिना इच्छा की हुई स्त्रीके संग भोग न किया विशेष करके रावण जिन पतिव्रता स्त्रियोंको पहले अपने रनवासमें ले आयाथा, वह सब नल-कूबरका दिया हुआ मन प्रसन्नकारी शाप सुनकर परम प्रसन्न हुईं ॥५९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये उत्तरकांडे भाषानुवादे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥

कैलासंलंघयित्वातुससैन्यबलवाहनः ॥
आससादमहातेजाइंद्रलोकंदशाननः ॥ १ ॥

महा तेजस्वी रावण; सैना, सैनापति और सवारियोंके साथ कैलाश पर्वतके शिखरसे चलकर इन्द्र लोकमें पहुंचा ॥१॥ देव लोकमें जाती हुई उस राक्षसोंकी सैनाका शब्द उछलते हुए समुद्रकी समान चारों ओर टक-रानें लगा ॥ २ ॥ रावणके आनेका वृत्तान्त सुन इन्द्र अपने आसनसे चलायमान हुआ और उसनें सब इकट्ठे बैठे देवता लोगों ॥ ३ ॥ बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, साध्यगण व उनचास पवनोंसे कहा,

आप लोग दुरात्मा रावणके साथ युद्ध करनेंके लिये तैयारहो ॥ ४ ॥ संग्राममें इन्द्रहीकी समान प्रभावाले महाबलवान समस्त देवतागण इन्द्रके ऐसे वचन सुन युद्धकी अभिलाषासे बख्तर पहरनें लगे ॥ ५ ॥ वह इन्द्रजी रावणके भयसे सब प्रकार त्रासितहो विष्णुजीके समीप आय उनसे यह बोले ॥ ६ ॥ हे भगवन! हम किस प्रकारसे राक्षस रावणको रोंकें? हा! अत्यन्त बलवान राक्षस युद्ध करनेंके निमित्त चला आता है ॥ ७ ॥ और कोई कारण नहींहै, केवल वरदान पानेंके प्रभावसेही वह बलवानहै, । सो कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजीनें जो कुछ कहाहै वह आपको सत्य करना उचितहै ॥ ८ ॥ सो आपके अनंत बलका आश्रय करके जैसे हमनें, बलि, नमुचि, नरकासुर, व शम्बर असुरको दग्ध कियाहै, सो वैसेही आप कोई रावणके वधका उपायभी खोजदें ॥९ ॥ हे देवदेवेश ! मधुसूदन! चराचर त्रिलोकीके बीचमें आपके सिवाय और कोई आश्रय देनेंवाला या रक्षक नहीं है ॥ १० ॥ आपही सनातन पद्मनाभ श्रीमन्नारायणहैं आपही करके यह समस्त लोक स्थापित हुएहैं, और आपनेंही हमको सुरपति कियाहै ॥ ११ ॥ हे भगवन! यह चराचर समस्त जगत् आपनेंही बनायाहै; युगक्षय होनेंके समय फिर यह समस्त आपहीमें लीन होजायगा ॥ १२ ॥ इस कारण हे विभो! हे देवदेव ! जिस प्रकारसे हमारी जयहो, आप हमें वोही उपाय बतादीजिये, या खड्ग, व चक्र धारण करके आप स्वयंही युद्ध कीजिये ॥ १३ ॥ वह देव प्रभु नारायणजी इन्द्रके ऐसे वचन सुनकर बोले, अत्यन्त भय करना उचित नहीं, जो कुछ हम कहतेहैं वह सुनो ॥ १४ ॥ यह दुष्ट स्वभाववाला रावण वरदानके प्रभावसे अजीत होगयाहै, इस कारण सुर या असुर संग्राममें इसको कोईभी नहीं जीत सकैगा ॥ १५ ॥ परन्तु हम यहभी देखतेहैं कि यह रावण अतिबलवान होनेंके कारण अपने पुत्रके सहित बड़ा कर्म करैगा ॥ १६ ॥ हे सुरेश्वर! तुमनें यह जो कहाकि" आप युद्ध कीजिये" परन्तु इस समय हम रावणके सहित संग्राम न करैंगे ॥ १७ ॥ कारण कि संग्राममें विना शत्रुका वध किये हम नहीं लौटते, परन्तु रावण वरदानके प्रभावसे रक्षितहै; सो आज उसके निकटसे कामना पूर्ण करना कठिनहै ॥ १८ ॥ हे शतयज्ञकारी सुरपति ! हम जिस प्रकारसे इस

राक्षसकी मृत्युके कारण होंगे, हम तुम्हारे निकट यह प्रतिज्ञा कर-तेहैं ॥ १९ ॥ आगे २ चलनेंवाले मुख्य २ राक्षसोंके साथ रावणका हम-ही संहार करेंगे; जब जानेंगे कि समय आगया, तबही देवता लो-गोंको आनंदित करैंगे ॥ २० ॥ हे देवराज! यह समस्त वृत्तान्त हमनें तुमसें कहा, हे महावलवान शचीनाथ! तुम त्रास रहितहो देवता लोगोंको साथले युद्ध करो ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त ग्या-रह रुद्र, वारह आदित्य, आठ वसु, उनचास मरुद्गण और दो अश्विनीकुमार, वख्तर पहन पुरीसे निकल राक्षसोंके ऊपर दौड़े ॥ २२ ॥ इसी अवसरमें रावणकी सैनाके लोग प्रभात कालको घोर संग्राम करनें लगे, सो चारों ओरसे सैनाके लोगोंका चिल्लाना सुनाई आनें लगा ॥ २३ ॥ यह महावीर्यवान् राक्षस लोग वढ़ती पाय परस्पर एक दूसरेको देख हर्षितहो संग्राममें विराजमान होनें लगे ॥ २४ ॥ तिसके पीछे संग्रामके सन्मुख उस अक्षय महासैनाको देखकर देवताओंकी सैनामें खलवलाहट हुई ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त विविध शस्त्रधारी देव राक्षस और दानव लोगोंके शब्दसे युक्त भयानक संग्राम होना आरंभ हुआ ॥ २६ ॥ इसी अवसरमें घोर दर्शन वीर रावणके मंत्रिगण युद्ध करनेंके लिये आये ॥२७॥ मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर अकंपन, निकुम्भ, शुक, सारण ॥२८॥ संह्राद, धूमकेतु, महोदर, जम्बुमाली, महाह्राद, विरुपाक्ष राक्षस ॥ २९ ॥ सुप्रघ्न, यज्ञकोप, दुर्मुख, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, सूर्यशत्रु राक्षस ॥ ३० ॥ महाकाय, देवान्तक, नरान्तक, इन सब महावीर्य युक्त राक्षसोंको संग लेकर महावलवान ॥ ३१ ॥ सुमाली, जो कि रावणका नाना था, सैनामें प्रवेश करता हुआ, और सर्व देवताओंको अनेक प्रकार तीखे अस्त्र शस्त्रोंसे ॥ ३२ ॥ क्रुद्ध होकर विध्वंश करनें लगा, जैसे पवन वादलोंको छिन्नभिन्न करताहै । हे राम! वह देवसैना निशाचरकरकै हनी जाकर ॥ ३३ ॥ सिंहसे त्रासित मृगोंकी श्रेणीकी समान दशों दिशाओंको भागी । इसी समय शूर महावीर सचित्र नामक विख्यात अष्टम वसु संग्रा-ममें आया ॥ ३४ ॥ वह हर्षितहो बहुतसी सैनाको संग लिये अनेक प्रका-रके अस्त्र शस्त्र चलाय शत्रुओंकी सैनाको त्रासित करता हुआ संग्राममें आया ॥ ३५ ॥ और त्वष्टा व पूषा नामक महावीर्यवान दो आदित्य

निर्भयहो सैनाके सहित रणभूमिमें आये ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त देवता लोग राक्षस लोगोंकी कीर्तिको न सहन करके रणसे विमुख नहो फिर उठकर संग्राम करनें लगे ॥ ३७ ॥ तब राक्षस लोगभी अनेक प्रकारके घोर अस्त्र शस्त्र चलायर संग्राममें स्थित हुए सैकड़ों हजारों देवताओंका संहार करनें लगे ॥ ३८ ॥ देवता लोगभी संग्राममें महा बलवान पराक्रमी राक्षसोंके विमल शस्त्रोंके घातसे यमराजके भवनको भेजनें लगे ॥ ३९ ॥ हे राम! इस अवसरमें राक्षस सुमाली कोपकर अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रले सन्मुख धाया ॥ ४० ॥ पवन जिस प्रकार बादलोंके समूहको दूर कर देता है, वैसेही सुमालीभी सर्व प्रकारसे क्रोधके वशहो अनेक प्रकारके तीखे आयुधोंसे उस समस्त देवसैनाका विध्वंश करनें लगा ॥ ४१ ॥ सब देव लोग मिलकरभी महाबाण वर्षाय, शूल, प्रास, इत्यादि दारुण आयुधोंसे मार खाय संग्रामभूमिमें ठहर न सके ॥ ४२ ॥ तब सुमालीनें देवताओंकी सैनाको भगादिया, तब महा तेजस्वी अष्टम वसु सावित्र कुपित हुए॥४३॥ वह सावित्र सावधान और अपनी रथी सैनाको साथले पराक्रम प्रकाशकर राक्षस सुमालीके ऊपर प्रहार करतेर संग्राममें रोक देते हुए ॥ ४४ ॥ तब संग्राममें न लौटनेंवाले सुमाली और वस्तुका रोम हर्षण बड़ाभारी संग्राम होनें लगा ॥ ४५ ॥ महात्मा वसुनें बाण समूहसे चलाकर उसका सर्व रथ नाशकर क्षणमात्रमें तोड़ ताड़ डाला ॥ ४६ ॥ सैकड़ों बाणोंसे उसको ढक रथका नाशकर उस राक्षसको रथसे गिरानेके लिये सावित्र वसुनें हाथमें गदा ग्रहणकी ॥ ४७॥ उस सावित्रनें कालदंडकी समान दीप्तिमान होती हुई वह गदा ग्रहण करके सुमालीके मस्तकपर मारी ॥ ४८॥ महावज्र जिस प्रकार इन्द्र करके छोड़ा हुआ गर्जकर पर्वतपर गिरताहै वैसेही वह उल्काकी समान प्रभायुक्त गदा राक्षसके मस्तकपर गिरकर दीप्तिमान होनें लगी ॥ ४९ ॥ गदाके लगनेसे उसका शरीर भस्म होगया; उसकाल संग्रामके बीच उसकी अस्थि, मांस, या मस्तक कुछभी दृष्टि नहीं आया ॥ ५० ॥

व्यद्रवन्सहिताःसर्वेक्रोशमानाःपरस्परम् ॥
विद्राव्यमाणावसुनाराक्षसानावतस्थिरे ॥ ५१ ॥

वह राक्षस लोग उसको संग्राममें निवृत्त देखकर सबही परस्पर रोते २ चारों ओरको भाग गये; अधिक क्याकहें वह वसुके प्रतापसे इधर उधर भाग गये और फिर वहांपर नहीं ठहर सके ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० उ० भा० सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टविंशः सर्गः ॥

सुमालिनंहतंदृष्ट्वावसुनाभस्मसात्कृतम् ॥
स्वसैन्यंविद्रुतंचापिलक्षयित्वार्दितंसुरैः ॥ १ ॥

सावित्र वसुके अस्त्र बलसे सुमालीको नष्ट और भस्म देखकर राक्षसोंकी सब सेना देवता लोगोंसे पीड़ित होकर भाग गई ॥ १ ॥ रावणका पुत्र बलवान मेघनाद यह देखकर कुपितहो समस्त राक्षसोंको लौटाय आप युद्ध करनेको उद्यत हुआ ॥ २ ॥ अग्नि प्रज्वलित होकर जिस प्रकार वनकी ओर चलताहै वैसेही वह महारथी मेघनाद कामगामी बड़े भारी रथपर सवार होकर उस सेनाके सन्मुख दौड़ा ॥ ३ ॥ विविध प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये राक्षसोंको प्रवेशित होते देखकर सब देवता चारों ओरको भागने लगे ॥ ४ ॥ अधिक कहांतक कहैं उस समय संग्राम करते हुए उस मेघनादके सामने कोईभी नहीं टिक सका; जब सब देवता विद्ध होकर त्रासित होगये तब इन्द्रजीने उनसे कहा ॥ ५ ॥ हे सब देवगण ! कुछ भय नहीं, तुम लोग लौटो, भागो मत कभी न हारनेवाला हमारा पुत्र संग्राम करनेके लिये जाताहै ॥६॥ फिर वह इन्द्र कुमार देव जयन्त, अद्भुत रथपर सवार होकर संग्रामके सन्मुख चला ॥ ७ ॥ तब वह समस्त देवता लोग इन्द्रके पुत्रको साथ लेकर रावणकुमार मेघनादके निकट जाय उसपर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥ इन्द्रकुमार, जयन्त और राक्षस कुमार मेघनादका देवता व राक्षसोंका बल वीर्य अनुरूप संग्राम होने लगा ॥ ९ ॥ फिर वह रावणका पुत्र मेघनाद जयन्तके सारथी मातलि पुत्र गोमुखके ऊपर सुवर्ण भूषित बाण छोड़ने लगा ॥ १० ॥ शचीका पुत्र जयन्तभी क्रोध करके रावण पुत्रके सारथीको बाणोंसे विद्ध करने लगा ॥ ११ ॥ रावणभी क्रोधसे परिपूर्णहो आँखें निकाल बाणोंकी वर्षा कर इन्द्रके पुत्रको पीड़ित करने लगा ॥ १२ ॥ फिर मेघनाद अत्यन्त कोपकर अनेक

प्रकारके तीखे हजारों अस्त्र शस्त्र देवता ओंकी सैनाके ऊपर चलानें लगा ॥ १३ ॥ शतघ्नी, मूशल, प्रास, गदा, खड्ग, फरशा, और बड़े २ पर्वतोंके शिखरभी उस सैनाके ऊपर छोड़े ॥ १४ ॥ वह रावणका पुत्र मेघनाद इस प्रकारसे शत्रु ओंकी सैनाके ऊपर प्रहार कर रहाथा, उसी अवसरमें उसकी मायासे अंधकार हो आया, कि जिस्से त्रिलोकवासी समस्त प्रजा अति घवड़ाई ॥ १५ ॥ तव देवताओंकी सैना चारों औरसे पीड़ितहो इन्द्रके पुत्र जयन्तको छोड़ व्याकुल होगई ॥ १६ ॥ राक्षस या देवता परस्पर कोईभी किसीको उस समय नहीं जान सके वह घवड़ाते हुए चारों ओर घूमनें लगे ॥ १७ ॥ वरन देवता देवताको राक्षस राक्षसको मारने लगे, व और वीरलोक अंधकारसे घवड़ाय अत्यन्त मूढ़हो भागगये ॥ १८ ॥ इसी अवसरमें वीर्यवान वीर पुलोमा नामक दैत्यपति शचीके पुत्र जयन्तको ग्रहण कर भाग गया ॥ १९ ॥ यह पुलोमा दैत्य शचीका पिताथा सो यह जयन्तका नाना अपने धेवनेंको ले पाताल पुरीको चला गया ॥ २० तव देवता लोग जयन्तको न देखकर अत्यन्त असन्तुष्ट हुए और फिर व्यथापाय सवही भाग खड़े हुए ॥ २१ ॥ फिर रावणका पुत्र मेघनाद अपनी सैनाको साथले क्रोधके वशहो घोर शब्द करता हुआ देवता लोगोंके पीछे दौ-ड़ा ॥ २२ ॥ पुत्रके न देखनेंसे और देवता लोगोंको भागता हुआ देखकर देवराज इन्द्रनें मातलिसे कहा, कि हमारा रथ लाओ ॥ २३ ॥ यह दिव्य महारथ सजाया जाय रहाथा, इस समय देवराज इन्द्रजीकी आज्ञासे मात-लि वह महा भयंकर रथ शीघ्र ले आया ॥ २४ ॥ जव महा वलवान इन्द्र रथपर चढ़ा तव विजलीसे शोभायमान महा वलवान मेघगण पवनके आश्रयसे आगे २ चलकर घोर शोरसे उस रथपर शब्द करनें लगे ॥ २५ ॥ जव इन्द्रजी पुरीसे वाहर निकले तव गन्धर्वगण अनेक प्रकारके वाजे वजानें लगे और अप्सरायें नाचनें लगीं ॥ २६ ॥ तव स्वर्गके पति इन्द्रजी, रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, मरुद्गण, और दोनों अश्विनी कुमारोंके साथ विविध प्रकारके अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर युद्ध करनेके लिये निकले ॥ २७ ॥ जव रावणसे इन्द्रजी युद्ध करनेंके लिये निकले तव पवन कठोरतासे चलनें लगा सूर्यकी प्रभा जाती रही, और वड़ी २ उल्का गिरनें लगीं ॥ २८ ॥ इसी

अवसरमें प्रतापवान शूर रावण विश्वकर्माके वनाये दिव्यरथपर सवार हुआ उस रथके चारों ओर रोम हर्षण वड़े २ सर्प लिपटेथे इसीलिये वह रथ युद्धके समय उनके श्वासकी पवनसे प्रदीप्त हो गया ॥ ३० ॥ दैत्य और राक्षसोंकी सैनाके साथ दिव्य रथ पर सवारहो इन्द्रजीके सन्मुख धाया ॥ ३१ ॥ और अपने पुत्र मेघनादको रोककर आप ही संग्राम करनें लगा, रावणका पुत्रभी युद्धसे निकलकर चुप हो अलग बैठ गया ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त मेघ जिसप्रकार जल वर्षाया करते हैं वैसेही अस्त्र शस्त्र वर्षायकर राक्षस और देवता लोग युद्ध करने लगे ॥ ३३ ॥ हे राजन् दुरात्मा कुम्भकर्ण भी वहुत कालतक निद्रित रह संग्रामभूमिमें आया उसको उस समय यह नहीं ज्ञात होता था कि किसके साथ युद्ध हो रहाथा वह जिसको निकट पानें लगा विविध भांतिके आयुध उठाय उसीसे युद्ध करनें लगा ॥ ३४ ॥ कुंभकर्ण अत्यन्त क्रोधकर दांत, चरण, भुजा, हस्त, शक्ति, तोमर, मुद्गर और जिस आयुधको पाया उसीसे देवता लोगोंको भगानें लगा ॥ ३५ ॥ परन्तु वह निशाचर कुंभकर्ण महाघोर ग्यारह रुद्रोंके निकट जाय उनके साथ घोर संग्राम करनें लगा परन्तु रुद्रोंनें निरन्तर वाणोंकी वर्षा करके कुंभकर्णके सर्वाङ्ग में घावकर डाले ॥ ३६ ॥ फिर मरुद्गणोंके साथ उस राक्षसी सैनाका घोर संग्राम आरंभ हुआ उन मरुद्गणोंने अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंसे समस्त राक्षसोंकी सैनाको भगादिया ॥ ३७ ॥ कोई२ राक्षस मरगये कोई २ अंगकटाय २ पृथ्वीपर पड़े तड़ फड़ानें लगे । और कोई२ मूर्छाके वशहो सवारियोंसें गिरकर भी उन्हीं में लिपटे रहे॥३८॥ कोई रथ, कोई हाथी, कोई गधे, कोई ऊंट, कोई सर्प, कोई घोडे, कोई शिशुमार, कोई वराह, कोई पिशाच वदनोंको ॥ ३९ ॥ बांहोंसे पकड़ २ लिपटाय २ पड़े रहे और कोई २ अर्द्ध मूर्छित हो कर पड़े रहे और निशाचर लोग देवताओंसे देह कटाय २ प्राण त्याग करते हुए ॥ ४० ॥ वह राक्षस गण जब मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े तब संग्राममें उनका यह मारा जाना चित्रकार्यकी समान प्रकाशित होने लगा ॥ ४१ ॥ उस काल संग्राममें काग और गिद्धोंसे शोभायमान नदी वहनें लगी सब शस्त्रही तो उसमे ग्राहथे और रुधिरही उसका जलथा उसहीजलकी तरंग में सब उछलनें डूबनें लगे ॥ ४२ ॥ अत्यन्त प्रताप शाली रावण

देवता लोगों करके अपनी सैनाका नाश देख ॥ ४३ ॥ अति शीघ्रतासे उस बढ़ते हुए देव सैनाके समुद्रमें घुसा और देवताओंको मार देता हुआ इन्द्रके सन्मुख दौड़ा ॥ ४४ ॥ फिर इन्द्रजीनें भी बड़ाभारी शब्दकारी धनुष खैंचा इस धनुषके खेंचे जानें पर उसका महाशब्द दशों दिशाओं में गुंजार करनें लगा ॥ ४५ ॥ तव इन्द्रजी उस बड़े धनुषको खैंच अग्नि और सूर्यकी समान प्रभायुक्त वाण रावणके मस्तकपर मारनें लगे ॥ ४६ ॥ महावीर दशग्रीव निशाचरभी इसी भांतिसे अपने धनुषपर वाण चढ़ाय छोडकर इन्द्रको ढकेलता हुआ ॥ ४७ ॥

प्रयुध्यतोरथतयोर्बाणवर्षैःसमंततः ॥
नाक्षायततदाकिंचित्सर्वंहितमसावृतम् ॥ ४८ ॥

घोर वाण वर्षाय जव दोनों इस प्रकारसे निरन्तर युद्ध करते रहे तव चारों ओर अन्धकार छायगा इस कारण उस समय कुछभी दृष्टि न आया ॥ ४८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०उ०भा०अष्टाविंशसर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥

ततस्तमसिसंजातेसर्वेतेदेवराक्षसाः ॥
आयुद्ध्यंतबलोन्मत्ताःसूदयंतःपरस्परम् ॥

जव अंधकार छाया तौ वह समस्त देवता और राक्षस लोग वलसे मतवाले हो परस्पर एक दूसरेको पीडित करते हुए कठोर संग्राम करनें लगे ॥ १ ॥ उस महा घोर अंधकारसे केवल इन्द्र रावण और मेघनाद यह तीनों जने ही मोहको प्राप्त नहीं हुए ॥ २ ॥ एक क्षणभरमेंही अपनी समस्त सैनाका नाश देखकर रावण अत्यन्त क्रोधित हुआ और अति ऊंचे शब्दसे सिंहनाद करनें लगा ॥ ३ ॥ तव रावण अधिक क्रोधके मारे रथ हांकते हुए सूतसे बोला कि जव तक शत्रुकी सैनाका अंत न आवै तव तक इस सैनाके वीचके मार्गसे तू हमको ले चल॥ ४ ॥ हम इसी समय अनेक प्रकारके सव अस्त्र शस्त्र वर्षाय कर सव देवता लोगोंको यमराजके यहां भेजेंगे ॥ ५ ॥ हम इन्द्र, कुवेर, वरुण, और यमको मार डालेंगे, अधिक क्या कहैं; हम अति शीघ्र देवता लोगोंका विनाश करके स्वयं सवके ऊपर स्वामी हो विराजेंगे ॥ ६ ॥ विषाद न

करकै शीघ्र हमारा रथ चलाओ, हमनें तुमसे दो वार कहा कि तुम हमको शत्रुकी सेनाके सबसे पीछे ले चलो ॥ ७ ॥ इस समय हम जिस स्थानमें टिके हुएहैं, यह नंदनका एक देशहै, जिस स्थानमें उदय पर्वतहै हमको तुम वहीं ले चलो ॥ ८ ॥ निशाचरराज रावणके यह वचन सुनकर सारथिनें शत्रुओंके बीचमेंको मनके वेगकी समान चलनेंवाले घोड़ोंको हांका ॥ ९ ॥ तब समरभूमिमें विराजमान हुए देवराज इन्द्रजीनें रावणके इस अभिप्रायको जान रथमें बैठे हुए ही देवता लोगोंसे कहा ॥ १० ॥ हे देवता लोगो ! तुम हमारे वचन सुनो, कि तुम सब मिलकर राक्षस रावणको जीता हुआही पकड़लो; हमें यही वात रुचतीहै ॥ ११ ॥ कारण कि अधिक सैनाके रहनेंसे यह राक्षस अति बलवानहै, सो पर्वके समय जिस प्रकार समुद्र उछलताहै; वैसेही पवनकी समान चलनें वाले रथपर सवार होकर यह आय रहाहै ॥ १२ ॥ विशेष करकै यह राक्षस वरदान पानेंसे निर्भय होगयाहै, सो इसका मार डालना सामर्थ्यसे बाहरहै; इस निमित्त तुम संग्राममें यत्न परायणहो ऐसा करनेंसे हम इस राक्षसको बंदी कर देंगे॥१३॥ बलिके बंध जानेंपर जिस प्रकार हमनें त्रिभुवनका भोग कियाहै, वैसेही त्रिभुवनकी रक्षाके लिये इस पापमति रावणका बंदी करना हमको रुचताहै ॥ १४ ॥ हे महाराज ! यहकह देवराज इन्द्र रावणको छोड़कर और स्थानमें जाय राक्षसोंको त्रासित करते हुए युद्ध करनें लगे ॥ १५ ॥ न लौटनें वाला रावण देवताओंकी सैनाको उत्तर बगलमें रखकर चला; और इन्द्रजीभी उसकी दांई ओरका आश्रय लेकर सेनामें प्रवेश करते हुए॥१६॥ तिसके उपरान्त निशाचरनाथ रावण उस सेनामें सौ योजनतक बैठ गया और वहां उसनें बाण वर्षायकर समस्त देवता लोगोंकी सेनाको छाय दिया ॥ १७ ॥ तब इन्द्रजीनें अपनी सेनाका विनाश देख तुरत लौटकर सावधान चित्तसे रावणको रोका ॥ १८ ॥ एक क्षणभरमेंही इन्द्रजीनें रावणको पकड़ लिया यह देखकर दानव और राक्षस लोग हा ! " हम मारे गये । " यह कह महा चिल्लाहट करनें लगे ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त रावणका पुत्र मेघनाद क्रोधसे पूर्णहो रथपर चढ उस दारुण देवताओंकी सैनामें पैठा ॥ २० ॥ पूर्वकाल महादेवजीसे जो माया मेघनादनें पाईथी यह उसी मायाको प्रगटकर देवताओंकी अनीमें पैठ उसको पीड़ित करनें

लगा ॥ २१ ॥ अधिक क्या कहैं वह समस्त देवताओंको छोड़कर एक इन्द्रजीहीके पीछे दौड़ा, परन्तु महा तेजस्वी इन्द्रजीने उस शत्रुके पुत्रको देखाभी नहीं ॥ २२ ॥ मेघनाद उस समय कवच नहीं पहर रहाथा देवता लोग उसके ऊपर अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र चलानें लगे; परन्तु किसी प्रकारसे मेघनादको भय नहीं हुआ ॥ २३ ॥ प्रथमतौ उस मेघनादनें उत्तम बाणोंसे रथ हाँकते हुए मातलिको मारा और फिर बाण वर्षायकर इन्द्रको पीड़ित किया ॥ २४ ॥ इसके पीछे इन्द्र रथ और सारथिको छोड़कर ऐरावत पर सवारहो रावणके पुत्रको ढूंढ़नें लगा ॥ २५ ॥ उस समयमें वह महा बलवान मेघनाद आकाशमें अदृश्यहो मायासे ढके हुए इन्द्रको बाणोंसे व्याकुल करने लगा ॥ २६ ॥ जब रावणके पुत्रने इन्द्रको थका हुआ जाना तब उनको अपनी मायाके प्रभावसे बांधकर अपने सेनाके निकट ले आया ॥ २७ ॥ जब बलपूर्वक महा संग्रामसे मेघनाद इन्द्रको बांधकर ले चला तब यह देखकर देवता लोग "यह क्या हुआ" यह कहकर चिन्ता करनें लगे ॥ २८ ॥ रण विजयी मायाका जाननें वाला मेघनाद किसीकी दृष्टि न आया; यद्यपि इन्द्रजी अनेक प्रकारकी माया जानतेथे तथापि इन्द्रजीत उनको बलपूर्वक हरण करकै लेगया ॥ २९ ॥ इसी अवसरमें समस्त देवता लोगोंने कुपितहो बाणोंकी वर्षाय रावणको व्याकुल कर उसको रणसे विमुख करदिया॥३०॥ तिस कालमें शत्रुओं करकै संग्राममें पीड़ित होकर रावण वसुगण और आदित्योंके साथ युद्ध करनेंको समर्थ नहीं हुआ ॥ ३१ ॥ रावण मारे प्रहारोंके जर्जर तनुहो संग्राममें अत्यन्त थकगया; तब रावणका पुत्र मेघनाद पिताकी यह दशा देख अन्तर्ध्यानही रहकर बोलाकि ॥ ३२ ॥ हे तात ! हम लोगोंकी जय हुई है आप यह जान करकै क्लेशको छोड़ सावधान हूजिये, अब रण समाप्त हुआ चलो गृहको चलें ॥३३॥ विशेष करकै जो देवताओंकी सैनाके, वरन त्रिलोकीके स्वामी हैं उनको हमनें देवताओंकी सैनासे पकड़ रक्खाहै, सो अब देवताओंका गर्व खर्व होगया॥३४॥ तेजके बलसे शत्रुको जीतकर आप अभिलाषानुसार त्रिभुवनके सुखोंको भोगिये; अब युद्ध करना निष्फलहै सो अब आपको वृथा परिश्रम करनें का क्या प्रयोजन है ॥३५॥ तब गण देवता और देवता लोग रावणके पुत्रके यह

वचन सुन इन्द्रसे रहित हो चले गये॥ ३६ ॥ अत्यन्त बलवान् इन्द्रशत्रु विख्यात निशाचरपति रावण अपने पुत्रके ऐसे प्रिय वचन सुन रणसे लौट आदरसहित पुत्रसे बोला॥ ३७ ॥ हे बेटा। अतिबली पुरुषकी समान पराक्रम प्रगट करकै इस अतुलवलशाली स्वर्गपति इन्द्रको और देवतालोगोंको तुमने आज पराजित किया है, इस कारण तुमही हमारे वंशके वढानेंवाले और कुलके बढानेंवाले हो॥ ३८ ॥ तुम सेनाके साथ इस स्थानसे अपने नगरको चलेजाओ और इन्द्रको रथपर चढ़ाय ले जाओ हमभी हर्षितहो मंत्री लोगोंके साथ अति शीघ्र तुम्हारे पीछे२आतेहैं॥३९॥

अथ स बलवृतःसवाहनस्त्रिदशपतिंपरि
गृह्य रावणिः॥ स्वभवनमधिगम्य वीर्य
वान्कृतसमरान्विससर्ज राक्षसान्॥ ४० ॥

इसके उपरान्त वीर्यवान् रावणका पुत्र मेघनाद स्वर्गपति इन्द्रको ग्रहणकर सैना और वाहनोंके सहित अपने गृहमें जाय संग्राम करनेंवाले राक्षसोंको अपने गृहमें जानेंके लिये बिदा देता हुआ॥ ४० ॥

इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०उ०भा०एकोनत्रिंशः सर्गः॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः॥

जिते महेंद्रेऽतिबले रावणस्यसुतेनवै॥
प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लंकांसुरास्तदा॥ १ ॥

जब रावणके पुत्र मेघनादसे अति बलवान इन्द्रजी पराजित हुए तब देवता लोग ब्रह्माजीको आगे करकै लंकाको गये॥ १ ॥ उस कालमें ब्रह्माजी पुत्र और भाइयोंके साथ बैठे हुए रावणके निकट जाय आकाशमें टिके हुए उस रावणको समझानें बुझाने लगे॥ २ ॥ हे वत्स रावण हम तुम्हारे पुत्रके संग्राम करनेसे परम प्रसन्न हुएहैं अहो। इसने कैसे आश्चर्य का विक्रम कियाहै!! इसको कैसा वलहै !!! इसका बल तुम्हारी समान पर तुमसे भी अधिक होगा!!!!॥ ३ ॥ तुमनें भी अपने तेजके प्रभावसे समस्त त्रिभुवनको जीत लियाहै तुम्हारी प्रतिज्ञाभी सफल हुईहै इसलिये हम तुम दोनों पिता पुत्रके ऊपर प्रसन्न हुएहैं॥४॥ हे रावण! यह तुम्हारा पुत्र अतिबलवान् है इसलिये संसारमें एक इसका इन्द्रजित् नाम होगा॥५॥

हे राजन् तुमनें जिसका आश्रय लेकर देवता लोगोंको अपने वशमें कर लि-याहै सो तुम्हारा यह राक्षसपुत्र बलवान और अजीत होगा इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ६ ॥ इसलिये हे महावीर! तुम पाकशासन इन्द्रको छोड़दो;और इनके छोड़नेमें देवता लोग तुमको क्या दें सोभी तुम कहो ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त समरविजयी महाबलवान् इन्द्राजित् बोला; जो आप इन इन्द्रको छुड़वाना चाहतेहैं तो हमको अमर वर दीजिये ॥ ८ ॥ तब महा तेजस्वी ब्रह्माजी इन्द्रजितसे बोले कि सब प्राणियोंसे तुम अमर नहीं हो सकते, हां किसी २ प्राणीसे अमरता हो सकतीहै ॥ ९ ॥ पक्षी अथवा चौपाया पशु या महा तेजस्वी भूत अर्थात् मनुष्य इनसे तुम अमर हो सकतेहो ब्रह्माजीके वचन सुन इन्द्राजित् ॥ १० ॥ जो कि महा बलवान् था ब्रह्माजीसे बोला कि इन्द्रके छोड़नेसे हमको जो सिद्धियें प्राप्त हों वह तुम सुनो ॥ ११ ॥ विजयके लिये युद्ध करनेंकी इच्छा करकै जब हम विधि पूर्वक अग्निमें होम करैं ॥ १२ ॥ तबही हमारे लिये घोड़े जुता हुआ रथ अग्निसे निकलै, सो जबतक उस रथपर हम चढ़े रहैं तब तक अमर रहैं बस यही हमारा निश्चित वर है॥ १३॥हे देव!जो वह संग्रामका यज्ञ विनाही समाप्त किये हम युद्ध करैं तब उसी समय संग्राममें हमारा नाश हो ॥१४॥ हे देव! सबही पुरुष तप करकै अमरताको प्राप्त करतेहैं परन्तु हमनें विक्रम प्रकाश करकै अमरताको पाया ॥ १५ ॥ तब देव पितामह ब्रह्माजी मेघनादसे बोले कि" ऐसाही होगा " तब इन्द्रजितने इन्द्रको छोड़ दिया, और देवता लोगभी स्वर्गको चले गये ॥ १६ ॥ हे राम! इसके उपरान्त इन्द्र अत्यन्त व्याकुल हुए उनकी देहका लावण्य नष्ट होगया, वह चिन्ता युक्त होकर विचारनें लगे ॥ १७ ॥ तब इन्द्रको चिन्ता करता हुआ देख ब्रह्माजी बोले कि हे इन्द्र! अब चिन्ता तो करते हो परन्तु ऐसा कुकार्य क्यों किया? ॥ १८ ॥ हे देवराज! हमनें संकल्पसे कुछ एक प्रजाओंको उत्पन्न कियाथा उनका वर्ण, वाक्य; रूप सब एक प्रकारका था ॥ १९ ॥ उनके आकारमें या लक्षणमें कोई भेद नहीं था; फिर हम एक मनसे उस सब प्रजाके विषयमें चिन्ता करनें लगे ॥२०॥ फिर सोच विचार हमनें उनमें विशेष होनेंके लिये एक स्त्री बनाई; उस स्त्रीके बनानेंमें यह युक्ति की कि सब प्रजाके उत्तम२ अंगोंमेंसे

सार भाग निकाल २ ॥ २१ ॥ अति रूपवान् महा गुणवान् अहल्य नाम स्त्री बनाई ! हल "शब्दका अर्थ । विरूपिता; उस विरूपितासे जो निन्दा जन्मती है; उसका नाम हल्य" है ॥ २२ ॥ जिसमें हल्य अर्थात् विरूपिता विद्यमान नहीं हैं; वह (अहल्या) कहलाई जाती है; इस कारण हमनें उस स्त्रीका (अहल्या) नाम प्रकाशित किया ॥ २३ ॥ हे देव श्रेष्ठ ! हे इन्द्र ! उस नारीके उत्पन्न होनेंपर हमारे मनमें यह चिंता हुई कि यह किसकी स्त्री होगी ?॥२४॥ हे इन्द्र! तुम देवनाथ होनेके कारण अपने मनमें ऐसा जानते हुए कि "यह हमारीही स्त्री होगी ?" ॥२५ ॥ तब हमनें उसको महात्मा गौतमजीके पास धरोहरकी भांति रखदिया, गौतमजीनें बहुत दिनोंके पीछे उसको हमारे हाथमें सोंप दिया ॥ २६ ॥ इसके पीछे हमने उन महामुनि गौतमजीकी इन्द्रियोंका जीतना और तपकी सिद्धिको विचार अहल्याको उनकी भार्या बनानेंको दे दिया ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त अहलयाके सहित महर्षि गौतमजी सुखसे काल बितानें लगे, इस प्रकारसे जब हमनें अहल्याको गौतमजीकी स्त्री बनाया तब सब देवता निराश होगये ॥ २८ ॥ परन्तु कामके वश होकर और क्रोधित होकर तुमने मुनि गौतमजीके आश्रममें जायकर देखा कि अहल्या अग्निकी शिखाके समान दीप्ति पायरहीहै ॥ २९ ॥ तब तुमनें कामदेवसे उन्मत्तहो और क्रोधसे उसके सतीधर्मको हरणकिया, जिसकाल गौतमजीनें आश्रममें तुमको देखपाया ॥ ३० ॥ तुमको देखकर महामुनि गौतमजीनें क्रोधित हो तुमको यह शाप दिया कि तुम्हारी विपरीत दशा होजायगी ॥ ३१ ॥ तुमनें भयरहित होकर हमारी स्त्रीका सतीधर्म हरण कियाहै इसलिये तुम युद्धमें शत्रुकरके बांधेजाओगे ॥ ३२ ॥ हे दुर्बुद्धे! तुमनें इस लोकमें जो यह दुर्नीति चलाई तो तुम्हारे दोषसे मनुष्यलोकमें भी यह जारपन चलेगा; इसमें कुछ संशय नहीहै ॥ ३३ ॥ जो पुरुष जारकर्म करैगा, सो उस पापका आधा अंश तो उस पुरुषको होगा, और आधा अंश तुम्हारे ऊपर पड़ेगा, और तुम्हारा स्थान स्थिर नहीं रहोगा ॥ ३४ ॥ और जो कोईभी इन्द्र होगा वह स्थिर नहीं रहैगा । और हमनेंभी तुमको यही शाप दियाहै; जब प्रजापति ब्रह्माजीनें इन्द्रजीसे ऐसा कहा ॥३५॥ तिसके पीछे वह महा तपस्वी गौतमजी अपनी स्त्रीकी अत्य-

न्त निन्दा करतेहुए बोले कि हे दुर्विनीते! हमारे आश्रमके समीपही तुम स्वरूपविहीन होकर रहोगी ॥ ३६ ॥ तुम रूप यौवन सम्पन्न होनेंके कारणभी स्थिर नहींरही; असतमार्गको अवलंबन किया अधिक करके तुम इसलोकमें केवल अकेलीही रूपवती थी; परन्तु अब ऐसा नहीं हो: गा ॥ ३७ ॥ इस एक जगह रुकेहुए रूपको आश्रय करकेही इन्द्रको यह शरीर विकार उत्पन्न हुआहै;इस कारण तुम्हारा रूप सब प्रजाओंको प्राप्त होगा इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३८ ॥ तबसेही प्रजा अधिक रूपवती हो- तीहै, तब अहल्या महर्षि गौतमजी मुनिको प्रसन्न करनेलगी ॥ ३९ ॥ हे विप्रश्रेष्ठ ! स्वर्गवासी इन्द्रनें तुम्हारा रूप धारण करकै अज्ञानके वशहो हमसे बलात्कार कियाहै, कुछ हमारी कामेच्छासे ऐसा नहीं हुआहै; सो हे विप्रश्रेष्ठ !आप प्रसन्न होवें ॥ ४० ॥ वह गौतमजी अहल्याके ऐसे वचन सुनकर बोले कि महावीर विष्णुजी मनुष्य देह धारण करकै इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्नहोंगे वह महातेजमान महारथी लोकमें रामनामसे विख्यात होंगे और विश्वामित्रजीका कार्य सिद्ध करनेंको वह वनमें आवेंगे ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ हे भद्रे! उनका दर्शन पानेंसे तुम्हारे पाप दूर होंगे; वह श्रीरामचं- द्रजीही तुम्हारा कियाहुआ पाप दूरकरसकैंगे ॥ ४३ ॥ हे श्रेष्ठवर्णवाली! उनकी पहुनई करकै तुम जब हमारे निकट आओगी; तब फिर तुम हमारे संग रहसकोगी ॥ ४४ ॥ यह कहकर फिर वह ब्रह्मर्षि अपने आश्रम- को चलेगये। तबसे इन ब्रह्मवादीकी स्त्री अहल्यानेंभी बड़ा तप करना आरंभ किया ॥ ४५ ॥ हे इन्द्र ! उन मुनिके शाप देनेसेही तुम्हारी यह दशा हुईहै । इस निमित्त हेमहावीर! पहले किये कुकार्यको अब तुम याद- करो ॥ ४६ ॥ हेइन्द्र ! उसी शापके कारण शत्रुनें तुमको बांधा और कोई कारण नहीं है; इस समय तुम शीघ्र नियमके सहित वैष्णवयज्ञका आरंभ करो ॥ ४७॥ उस यज्ञके करनेंपर शुद्ध होकर तुम फिर देवलोक- में जासकोगे; हे देवराज! युद्धमें तुम्हारा पुत्र जयन्त मारा नहींगयाहै॥४८॥ वरन पुलोमा उसका नाना उसको लेकर महासमुद्रमें चलागयाहै; यह सुन इन्द्रने यथाविधिसे वैष्णव यज्ञ कर ॥ ४९ ॥ इन्द्र फिर स्वर्गको चलेगये और फिर देवराज होकर राज्य करनेंलगे; इन्द्रजितके बलकी कथा हमनें तुमसे कही ॥ ५० ॥ और प्राणीकी तौ

बातही क्याहै उसने तौ देवराज इन्द्रकोभी जीतलिया है, तब राम लक्ष्मण-जीनें कहा कि यह तौ बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ५१ ॥ अगस्त्यजीके वचन सुनकर वानर राक्षसगण व विभीषणजीभी श्रीरामचंद्रजीके निकट आय यह बोले कि ॥ ५२ ॥ आश्चर्य है, फिर बिभीषणजी बोले कि बहुत कालके पीछे आज हमको फिर पुरानी बातें याद आ गई, तब रामचंद्रजीनें अगस्त्यजीसे कहा कि, आपनें जो कहा वह सत्यहै बिभीषणजीके निकट हमनें यह सब वृत्तान्त सुना था ॥ ५३ ॥

एवंरामसमुद्भूतोरावणोलोककंटकः ॥
सुपुत्रोयेनसंग्रामेजितःशक्रःसुरेश्वरः ॥ ५४ ॥

अगस्त्यजीनें कहा हे राम! जिस रावणनें सुरपति इन्द्रजीको उनके पुत्र जयन्तके साथ संग्राममें हरादिया, वह लोककण्टक रावण इस प्रकारसे उत्पन्न हुआ था ॥ ५४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०उ०भा० त्रिंशः सर्गः ॥३०॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥

ततोरामोमहातेजाविस्मयात्पुनरेवहि ॥
उवाचप्रणतोवाक्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी प्रणामकर विस्मययुक्त हो फिर ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे बोले ॥ १ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हे भगवन्! क्रूर स्वभाववाला राक्षस रावण जिस कालमें पृथ्वीपर घूमता था, तब क्या पृथ्वीपर कोई वीर नहीं था ॥ २ ॥ राक्षसराज रावणको दंड देनेके लायक क्या कोई राजा या राजपुत्र उस समय पृथ्वीपर नहीं था ॥ ३ ॥ क्या उस समय सब महिपालोंका तेज बल जाता रहा था? हमनें सुनाहै कि श्रेष्ठ अस्त्रोंके प्रभावसे रावणनें सबही राजाओंको निकाल दिया था ॥ ४ ॥ भगवान् अगस्त्यजी श्रीरामचंद्रजीके वचन सुन रामचंद्रजीसे बोले कि जैसे ब्रह्माजी हँसकर ईश्वरसे बोलतेहैं ॥ ५ ॥ हे पृथ्वीनाथ! राजश्रेष्ठ राम! इस प्रकार राजा लोगोंको पीड़ित करता हुआ रावण पृथ्वीपर घूमनें लगा ॥ ६ ॥ स्वर्ग पुरीकी समान प्रभावाली एक माहिष्मति नामक पुरीहै;

इस पुरीमें सदा अग्निदेवता वास करते हैं ॥ ७ ॥ इस पुरीके राजाका नाम अर्जुन था; यह अर्जुन अग्निकी समान तेजस्वी था, स्थापित अग्नि सदा इस नगरीमें बलता रहता था ॥ ८ ॥ हैहयाधिपति बलवान् राजा अर्ज्जुन स्त्रियोंके सहित जिस दिन नर्मदा नदीमें जल विहार करनेंको गया था॥९॥ उसी दिन राक्षसोंका राजा रावण वहांपर जाय उन महाराजके मंत्रियोंसे पूछता हुआ कि ॥ १० ॥ "नरनाथ अर्ज्जुन कहां हैं"? तुम अतिशीघ्र उस्से जायकर कहो कि मैं रावण राजाके सहित संग्राम करनेकी वासनासे आया हूं ॥ ११ ॥ तुम लोग उस सबसे पहले हमारे आनेका समाचार कहो; राजाके मंत्रियोंनें रावणके यह वचन सुन ॥ १२ ॥ रावणसे बोले कि इस समय महाराज पुरीमें नहीं हैं। विश्रवाका पुत्र रावण पुरवासियों से अर्ज्जुनका जाना सुन ॥ १३ ॥ पुरीसे बाहर निकल हिमालयकी समान विन्ध्याचलपर आया उस पर्वतको मेघकी समान पृथ्वीपर टिक रक्खा रावण देखता हुआ ॥ १४ ॥ वह हजार शृंगवाला विन्ध्याचल मानों आकाशको स्पर्शही करना चाहता था, उसकी कंदरामें सिंह वास करते थे ॥ १५ ॥ सैकडौं श्वेतवर्णके झरनें उस पर्वतसें गिर रहे थे मानो पर्वत शीतल जलके शब्दसे ठठायकर हँस रहाहै । देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरा किन्नर, ॥ १६ ॥ अपनी २ स्त्रियोंके संग क्रीडा कर रहे थे, कि जिससे वह स्थानभी स्वर्गकी समान शोभायमान हो रहा था स्फटिककी समान निर्मल जलवाली नदियें वहां बह रही थीं ॥ १७ ॥ तिनके बहनेंसे वह पर्वत चंचल जीभवाले हजार सर्पराजोंकी समान शोभायमान हो रहा था, हिमालयपर्वतकी समान ऊंचा, गुफायुक्त पर्वत ॥ १८ ॥ विन्ध्याचलको देखते २ राक्षसराज रावण नर्मदाको चला गया इस पुण्यजलवाली पश्चिम सागरमें गिरती हुई नर्मदाका जल पत्थरके टुकडोंपर अति तेजीसे बह रहा था ॥ १९ ॥ ग्रीष्मके सताये महिष, मृग, सिंह, व्याघ्र, रीछ और गजराज सबही घुसकर उस नर्मदाके जलको मथ रहे थे ॥ २० ॥ चकवे कारण्डव, हंस, जलमुरगा और सारस सब इस नदीको ढके हुए सदा मतवाले पनसे शब्द कर रहे थे ॥ २१ ॥ मनमोहिनी नर्मदा नदी मानो वर वर्णिनी कामनीकी समान कान्ति धारण किये हुएथीं, खिले हुए वृक्षही उसके गहने चक्रवाकोंके जोड़ेही उसके स्तन विस्तारित मैदानही

उसके नितम्ब, और हंसोंकी कतारही उस नदीकी मेखला थी ॥ २२ ॥ फूलोंका पराग उसके शरीरका अंगराग था; जलमेंके झागही उसके श्वेत वस्त्र थे, स्नानका सुख इसके लिये स्पर्शसुख था, फूले हुए कमल इसके शोभायमान नेत्र थे ॥ २३ ॥ रावण पुष्पकविमानसे उतरकर उत्तमा प्रियतमा स्त्रीकीसमान सरितश्रेष्ठ नर्मदानदीमें अतिशीघ्र स्नान करता हुआ ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त राक्षसश्रेष्ठ रावण अपने मंत्रियोंके साथ अनेक मुनिजनोंसे सेवित; उस नदीकी रमणीक रेतीमें बैठा ॥ २५ ॥ दशानन रावण । गंगाकी समान कह नदीकी प्रशंसा करके व उसके दर्शनसे हर्ष प्राप्त करता हुआ ॥ २६ ॥ तिसकालमें लीला-पूर्वक हँसकर मारीच, शुक, सारण, मंत्रियोंसे रावण बोला कि देखो अपनी सहस्रों किरणोंसे जगत्को सुवर्णके वर्णका कर ॥ २७ ॥ तीक्ष्ण ताप देनें-वाले सूर्य आकाशमें विराजमान होरहेहैं परन्तु देखो हमको यहां बैठा हुआ जान मानो, चंद्रमाकी समान शीतल किरणवाले हो गये ॥ २८ ॥ यह पवन नर्मदाका जल छूकर शीतल और सुगन्धि होनेके कारण सबका श्रम हरण करताहै परन्तु हमारे भयके मारे इस समय यहभी सावधान होकर चल रहाहै ॥ २९ ॥ नाके मछलियों और तरंगोंसे व्याप्त यह श्रेष्ठ नर्मदा नदी हमारे सुखकी बढोतरी करती हुई डरी हुई स्त्रीकी समान जान पड़तीहै ॥ ३० ॥ इन्द्रकी समान पराक्रमी राजाओंके प्रहारोंसे तुम लोग घायल हुए हो, इससे चंदनके रसकीसमान रुधिरकी धारा तुम्हारे सब अंगोंमें लगी हुई है ॥ ३१ ॥ अतएव सार्वभौम इत्यादि मतवाले महागज जैसे गंगाजीमें स्नान करतेहैं वैसेही तुम लोग सुखकी देनें वाली कल्याण कारिणी नर्मदा नदीमें स्नान करो ॥३२ ॥ और इस महानदीमें नहायकर पापोंको दूर करो । और हमभी अब शरदऋतुके चंद्रमाकी समान प्रभायुक्त रेतीमें ॥ ३३ ॥ कपर्दी महादेवजीकी पूजा करनेके अर्थ फलोंकी भेंटको सजाऊं रावणके यह वचन सुनकर, प्रहस्त, शुक, सार-ण, ॥ ३४ ॥ महोदर और धूम्राक्ष इत्यादि मंत्रिगण नर्मदाके जलमें स्नान करतेहुए राक्षसपतिरूप हाथियोंने नर्मदानदीको खलाबलाय डाला ॥ ३५ ॥ जैसे वामन, अंजन, और पद्म नामक, महा दिग्गज गंगाजीको चलायमान करतेहैं, फिर वह महाबलवान राक्षसगण नर्मदा

नदीमें स्नान करके ॥ ३६ ॥ किनारेपर आय रावणकी पूजा करनेके अर्थ फूल बीननें लगे श्वेत बादलकी समान श्वेतवर्णवाली नर्मदा नदीकी रेतीमें ॥ ३७ ॥ राक्षसोंनें एक मुहूर्तभरके बीचमें फूलोंका ढेर पर्वतकी समान कर दिया जब फूल आ गये तब राक्षसपति रावण ॥३८॥ स्नान करनेंके लिये नर्मदा नदीमें उतरा जैसे गंगाजीके जलमें महागज स्नान करताहै तब वह रावण स्नान करके अतिश्रेष्ठ जपने योग्य मंत्रका जप करके जलसे निकला॥३९॥रावण नर्मदा नदीके जलसे निकल भीगे वस्त्रोंको त्याग श्वेत वस्त्र धारण करता हुआ॥४०॥तब रावण पूजाका स्थान निश्चय करनेंके निमित्त हाथ जोड़े हुए नर्मदा नदीकी रेतीमें गमन करनें लगा, व और समस्त राक्षस मूर्तिमान चलते हुए पर्वतकीसमान उस रावणके पीछे २ चलनें लगे ॥ ४१ ॥ राक्षसोंका राजा रावण जहां २ जाता था राक्षस लोग, उसी २ स्थानमें सुवर्णका शिवलिंग लिये जाते थे ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त रावण रेतीकी वेदीपर इस शिवलिंगकी स्थापना कर अमृतकी समान सुगन्धि युक्त सुगन्ध, और फूलोंसे महादेव जीकी पूजा करनें लगा ॥ ४३ ॥

ततःसतामार्तिहरंपरंवरंवरप्रदंचंद्रमयूख
भूषणम् ॥ समर्चयित्वासनिशाचरोजगौ
प्रसार्यहस्तान्प्रणनर्तचाग्रतः ॥ ४४ ॥

साधु लोगोंके क्लेशका नाश करनेंवाले,वरदाई,चंद्रभूषण प्रभु महादेवजीकी सर्व प्रकारसे पूजा कर वह निशाचर रावण सब हाथ फैलाय नृत्य और गान करनेंलगा ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे कात्यायन कुमार पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र कृते भाषानुवादे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

भैरवी॥ भजरे मन भूतनाथ भव भय वारण । आदि देव शूलपाणि त्रिपुरासुर मारण ॥ १ ॥ पहरे दृढ़ बाघ छाल, लट पट जट जूट जाल, कालरूप काल काल भक्तन जन तारण ॥२॥ भजरे० ॥ गंगाधर चंद्रभाल लोकनाथ लोकपाल, दीन शरण शिव दयाल, व्याल माल धारण ॥ ३ ॥ भजरे० ॥ डिम डिम डिम डमरू बोल श्रवणन कुंडल अमोल, राजत छबि अति अतोल "मिश्र" काज सारण ॥ ४ ॥ भजरे मन भूतनाथ भव भव भय वारण ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥

नर्मदापुलिनेयत्रराक्षसेंद्रःसदारुणः ॥
पुष्पोपहारंकुरुतेतस्माद्देशाददूरतः ॥ १ ॥

राक्षसश्रेष्ठ रावणनें पुण्य जलवाली नर्मदानदीके तीर जिस स्थानमें भेंट देनेके लिये फूलोंका ढेर इकट्ठा किया था ॥ १ ॥ उसकेही निकटमें माहिष्मतीका राजा विजयीश्रेष्ठ प्रतापवान नरश्रेष्ठ अर्जुन बहुतसारी स्त्रियोंके साथ नर्मदाके जलमें विहार करता था ॥ २ ॥ उस कालमें राजा अर्जुन उन स्त्रियोंके मध्यमें कैसा शोभायमान हो रहा था, कि मानों हजार हथनियोंमें एक गजराज शोभित हो ॥ ३ ॥ वह राजा अपनी हजार भुजाओंका उत्तम बल जाननेका अभिलाषीहो बहुत बांहोंसे रूंधकर नर्मदाके वेगको रोकनें लगा ॥ ४ ॥ कार्तवीर्य अर्जुननें जब बांहोंके समूहसे नर्मदाके जलको रोका, तब वह जल किनारेपर उफनता हुआ उलटा बहनें लगा ॥ ५ ॥ मच्छ, नाके, फूल, व कुशोंसे शोभित नर्मदाके जलका वेग वर्षाकालकीसमान प्रकाशित होनें लगा ॥ ६ ॥ उस जलके वेगनें कार्तवीर्य करके मानों भेजाही जायकर रावणके उन सब फूलोंको बहाय दिया जिनको उसने शिवजीकी पूजाके लिये इकट्ठा किया था ॥७॥ तिस कालमें रावणकी पूजा समाप्त नहीं हुई थी तब रावणनें अध बीचसेही पूजाको छोड़ दिया; और वह प्रतिकूल कामिनीकी समान नर्मदा नदीको देखनें लगा ॥ ८ ॥ उसने देखा कि नर्मदा नदी पश्चिमकी ओरको ज्वारकी समान बढ़कर पूर्वकी ओरको बही आतीहै ॥ ९ ॥ विकाररहित कामिनीकीसमान नर्मदा नदी अत्यन्त स्थिर भावसे विराजमानथी, इस कारण पक्षीगण वहां विना उद्वेगके शोभायमान थे ॥ १० ॥ वह रावण मुखसे शब्द न करके नर्मदा नदीके वेगका कारण जाननेंके लिये दाहिनी हाथकी उंगलीसे शुक सारणको संकेत करता हुआ ॥ ११ ॥ वीरश्रेष्ठ दोनों भ्राता वह शुक और सारण रावणकी आज्ञाके अनुसार पश्चिमकी ओरको चले गये ॥ १२ ॥ इन दुष्ट दोनों निशाचरोंनें दो कोश मार्ग चलकर देखा कि एक पुरुष कुछ एक स्त्रियोंको लेकर जलविहार कर रहाहै १३ ॥ वह पुरुष बड़ेभारी शालवृक्षकी समान ऊंचा व

मोटा था; मदिराके पीनेंसे मतवाला हो रहा था; उसके केश जलमें भीग रहे थे उसके दोनों नेत्र कुछ लाल हो रहे थे ॥ १४ ॥ सुमेरु पर्वत जिस प्रकार सहस्र चरणोंसे पृथ्वीको धारण किये हुएहै वैसेही यह पुरुष अपनी सहस्र बांहोंसे नदीके वेगको रोक रहाथा ॥ १५ ॥ सहस्र २ शोभायमान युवतियें उनको घेर रहीहैं मानों हजारों मदमाती हथनियें गजराजको पकड़े हुएहैं ॥ १६ ॥ राक्षस शुक और सारण उस अद्भुत पुरुषको देख लौटकर रावणके पास आय उसका वृत्तान्त सुनाने लगे ॥ १७ ॥ कि हे राक्षसेश्वर! बड़े भारी शालवृक्षकीसमान विशाल कोई पुरुष पुलकीसमान नर्मदाका जल रोक स्त्रियोंके साथ विहार कर रहाहै ॥ १८ ॥ उसकी बांहोंके द्वारा नर्मदाका जल रुक जानेसे यह नदी वारंवार बढ़तीहै जैसे पूर्वकालमें समुद्र बढ़ा था ॥ १९ ॥ शुक सारणके मुखसे यह वचन सुनकर रावण यह कह संग्राम करनेकी लालसासे गया कि बस यही अर्ज्जुनहै ॥ २० ॥ राक्षसराज रावणनें जब कार्त्तवीर्य अर्ज्जुनके विरुद्ध युद्ध यात्रा की तब धूरिसे मिला हुआ पवन अतिप्रचंड करके बड़े वेगसे चलने लगा ॥ २१ ॥ मेघ समस्त वर्षा करके एकाएकी गर्ज उठे राक्षसराज रावण, महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष, और शुक सारणके सहित अर्ज्जुनकी ओरको गया ॥ २२ ॥ वह इन सबोंके सहित बलवान् राक्षस अतिशीघ्र वहां आय पहुंचा जहां अर्ज्जुन विहार कर रहा था ॥ २३ ॥ अंजनकीसमान काली प्रभावाला रावण जब उस कुंडके पास पहुंचा, तौ सुगन्धित स्त्रियोंके संग क्रीड़ा करते हुए हाथीकी समान ॥ २४ ॥ राजा अर्ज्जुनको उस राक्षसपतिनें देखा और देखतेही मारे क्रोधके लाल नेत्रकर ॥ २५ ॥ अर्ज्जुनके मंत्रियोंसे गंभीर शब्दकर यह बोला, हे मंत्रियो तुम लोग हैहयनृपति अर्ज्जुनसे अति शीघ्र कहो कि ॥ २६ ॥ रावण नाम राक्षसपति आपके साथ युद्ध करनेंको आयाहै, रावणके यह वचन सुन अर्ज्जुनके मंत्री ॥ २७ ॥ सब शस्त्र उठाकर रावणसे यह वचन बोले । हे साधु रावण । तुमने युद्धके लिये अच्छा समय छांटाहै ॥ २८ ॥ इस समय मद पीकर मतवालेहो हमारा राजा स्त्रियोंके साथ जलविहार कररहाहै; और तुम इस समय उनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करतेहो ॥ २९ ॥ इसलिये हे रावण। तुम इस समय क्षमा करके

आज रात्रिको इसी स्थानमें वास करो; अथवा जो तुमको राजा अर्ज्जुनके साथ युद्ध करनेकी अधिक इच्छाहो ॥ ३० ॥ और युद्धकी अभिलाषासे तुम्हें अतितलावेली पड़ीहो तौ पहले तुम युद्ध करके हमारा विनाश करो फिर राजा अर्ज्जुनके साथ युद्ध करना ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त रावणके क्षुधित मंत्रियोंनें राजाके कुछ मंत्रियोंको मार डाला, और कुछको भक्षण करना आरंभ किया ॥ ३२ ॥ इसके पीछे अर्ज्जुनके सेवकोंका और रावणके मंत्रियोंका "हलाहला" शब्द नर्मदाके किनारे गुंजारनें लगा ॥ ३३ ॥ अर्ज्जुनके मंत्रिगण, बाण, तोमर, प्रास, त्रिशूल, और वज्रादि आयुधोंको मार, मंत्रियोंके सहित रावणको पीड़ित करते हुए चारों ओरसे धाये ॥ ३४ ॥ नाके, मीन, और मच्छ सहित सागरमें जिस प्रकार शब्द हुआ करताहै वैसेही हैहयाधिपति अर्ज्जुनके वीर लोगोंका दारुण वेग हुआ ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त प्रहस्त और शुक सारण इत्यादि रावणके मंत्रियोंने अति क्रोधित हो अपना विक्रम प्रकाश करते हुए अर्ज्जुनकी सैनाका विनाश करना आरंभ किया ॥ ३६ ॥ तब दूतलोग भयके मारे चकितहो विहार करते हुए राजा अर्ज्जुनके निकट जायकर उससे रावणका और रावणके मंत्रियोंका यह कार्य सुनाया ॥ ३७ ॥ तब वह राजा अर्ज्जुन स्त्रियोंको "कुछ भय नहींहै" कहकर गंगाजीके जलसे निकलते हुए अंजल नामक दिग्गजकीसमान नर्मदाके जलसे निकला ॥ ३८ ॥ युगान्त कालकी अग्निकेसमान अर्ज्जुन रूप पावक क्रोधसे नेत्र लाल कर प्रज्वलित हुआ ॥ ३९ ॥ उत्तम हेम अंगदधारी अर्ज्जुन अति शीघ्र गदा ग्रहण करके राक्षसोंके सन्मुख दौड़ा जैसे सूर्य भगवान अंधकारपर झपटतेहैं ॥ ४० ॥ राजा अर्ज्जुन दोनों हाथसे गदा उठाय गरुड़जीकी समान अति वेगसे आय पहुँचा ॥ ४१ ॥ कि विन्ध्याचल पर्वत जिसप्रकार सूर्य भगवानके मार्गको रोके हुए था वैसेही प्रहस्त मूशल हाथमें लेकर राजा अर्जुनका मार्ग रोक विन्ध्यापर्वतकी समान अटल भावसे विराजमान हो गया ॥ ४२ ॥ फिर मदसे उद्धत हुए प्रहस्तनें क्रोध कर लोहेके बंदोंसे बंधा हुआ घोर मूसल राजाके मारनेको छोड़ यमराजकी समान शब्द किया ॥ ४३ ॥ मानों सब दिशाओंको भस्म करनेंहीके लिये अशोकके फूलकी चेटिके समान, अग्नि प्रहस्तके हाथसे

छूटे मूसलसे राजाके सन्मुख उत्पन्न हुई ॥ ४४ ॥ तब कार्त्तवीर्य अर्जुननें विकलता विहीन हो उस अपने ऊपर आते हुए मूसलको अपनी गदासे अति सावधान पूर्वक रोका ॥ ४५ ॥ इसके पीछे गदाधारी हैहयपति अर्जुन अपनी पांचसौ बांहोंसे उस भारी गदाको उठाय घुमाते २ प्रहस्तके सन्मुख धाया ॥ ४६ ॥ तिस काल अति वेगवान उस गदासे घायलहो प्रहस्त कुछ काल खड़ा रहकर फिर गिर पड़ा जैसे इन्द्रजीका वज्र लगनेंसे पर्वतका शिखर गिरै ॥ ४७ ॥ प्रहस्तको गिरा हुआ देख मारीच, शुक सारण, महोदर, और धूम्राक्ष रणभूमिसे भाग गये ॥ ४८ ॥ प्रहस्तके गिर जानें और मंत्रियोंके भाग जानेंपर रावण अति शीघ्र नृप अर्जुनके ऊपर धावमान हुआ ॥ ४९ ॥ सहस्रबाहु नरपति अर्जुन और वीस बांहोंवाले राक्षस रावणका घोर रोमहर्षण दारुण संग्राम होने लगा ॥५०॥ खल बलाते हुए दो समुद्र, गमन करनें वाले दो पर्वत, तेज युक्त दो दिवा-कर, दहन करनें वाले दो अग्नि ॥ ५१ ॥ हथिनीके लिये युद्ध करते हुए दो बलवान हस्तियोंकी समान, गर्जते हुए दो मेघोंकी समान, और बल-गर्वित दो सिंहोंकी समान ॥ ५२ ॥ रुद्र व कालकी नांई वह राक्षस रावण और अर्जुन दोनों गदा ग्रहण करके एक दूसरेको अत्यन्त ताड़ना करनें लगे ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार पर्वत घोर प्रहारकोभी सहन करलेतेहैं; वैसे-ही वह नर और राक्षस गदा घातको सहन करनें लगे ॥ ५४ ॥ जैसे व-ज्रके गिरनेंका शब्द सुनाई आताहै; वैसेही उनके गदा प्रहारका शब्द दशों दिशामें गूंजनें लगा ॥ ५५ ॥ अर्जुनकी उस गदानें शत्रुकी छातीमें गिरकर बिजलीकी समान आकाश मंडलको सुवर्णके रंगका कर दि-या ॥ ५६ ॥ वैसेही रावणकी गदाभी वारंवार अर्जुनकी छातीपर गिर-कर महा पर्वतके ऊपर गिरी हुई उल्काकी समान प्रकाशित होनें लगी ॥ ५७ ॥ अर्ज्जुन या राक्षसपति किसीकोभी कुछ क्लेश नहीं हुआ, वरन बलि और इन्द्रकी नांई,उन दोनोंका समान संग्राम होनें लगा ॥ ५८ ॥ जैसे दो बैल सींगोंसे लड़तेहों और जैसे दो कुंजर परस्पर संग्राम करतेहों, वैसेही नरश्रेष्ठ अर्जुन और राक्षस श्रेष्ठ रावण परस्पर चोट चलानें लगे ॥ ५९ ॥ इसके पीछे अर्जुननें कोप कर अति बलके साथ वह गदा रावणकी विशाल छातीमें मारी ॥ ६० ॥ रावणकी

छाती वरदानके प्रभावसे रक्षितथी इस कारण वह गदा बल ही-नकी समान अपने वेग अनुसार प्रहार करनेंको असमर्थहो और स्वयं दो टुकड़ेहो पृथ्वीपर गिरपड़ी ॥ ६१ ॥ तथापि रावण अर्जुनकी चलाई हुई गदासे घायल हो आँसू छोड़ता हुआ चार हाथ दूर पीछेको हटकर पृथ्वीपर बैठगया ॥ ६२ ॥ तब अर्ज्जुननें रावणको विह्वल देखकर सहसा कूद रावणको ऐसा पकड़ लिया जैसा गरुडजी सर्पको पकडें ॥ ६३ ॥ श्री वामनजी नारायणनें जिस प्रकार राजा बलिको बांधाथा वैसेही बलवान राजा अर्ज्जुननें अपनी हजार बाहोंसे बलपूर्वक रावणको पकड़कर बांध लिया ॥ ६४ ॥ जब रावण बंधगया तब सिद्ध,चारण और देवता लोग बहुत अच्छा बहुत अच्छा कह राजा अर्जुनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ६५ ॥ व्याघ्र जिस प्रकार मृगको सिंह जिस प्रकार हाथीको ग्रहण करै वैसेही है हय राज अर्जुन रावणको पकड करकै हर्षके मारे मेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जनें लगे ॥ ६६ ॥ इस ओर राक्षस प्रहस्त सावधानहो रावणको बँधा हुआ देख एकाएकी हैहयपति अर्ज्जुनके सन्मुख धावमान हुआ ॥ ६७ ॥ तब उस राक्षसोंकी सैनाका आगमन वेग वर्षा कालके समय समुद्रमें जाती हुई नदियोंके समान जान पड़नें लगा ॥ ६८ ॥ जब राक्षस लोग खड़े रहो २ छोड़दो छोड़दो यह वचन कहते हुए शूल इत्यादि शस्त्र वारंवार संग्राममें चलानें लगे ॥ ६९ ॥ तब शत्रु संहारी राजा अर्ज्जुन शत्रु राक्षसोंके उन आयुधोंको अपने शरीरमें लगनेसे पहले शीघ्रता पूर्वक ग्रहण करलेते हुए ॥ ७० ॥ वायु जिस प्रकार मेघ समूहका नाश करता है वैसेही अर्ज्जुननें दुर्द्धर्ष व उत्तम आयुधोंसे उन राक्षसोंको वींध कर ताड़ित किया ॥ ७१ ॥ तब कार्त्तवीर्य अर्ज्जुन राक्षसोंको त्रासित करता हुआ सुहृद लोगोंके साथ रावणको पकड़ नगरमें पैठा ॥ ७२ ॥

सकीर्यमाणःकुसुमाक्षतोत्करैर्द्विजैःसपौरैः
पुरुहूतसन्निभः ॥ ततोर्जुनःस्वांप्रविवेशतां
पुरींबलिंनिगृह्येवसहस्रलोचनः ॥ ७३ ॥

तब पुरवासी और ब्राह्मण इस इन्द्रकी समान पराक्रमी राजा अर्जुनके मस्तक पर अक्षत और फूलोंकी वर्षा करनें लगे सहस्र लोचन इन्द्र जिस प्रकार बलि पर विजय पाय अपनी नगरी अमरावतीमें आयेथे वैसेही अर्ज्जुन रावणको लेकर अपनी उस पुरीमें पैठे ॥ ७३ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥

रावणग्रहणंतत्तुवायुग्रहणसन्निभम् ॥
ततःपुलस्त्यःशुश्रावकथितंदिविदैवतैः ॥ १ ॥

तब पुत्रके स्नेहके मारे महा धीरजवान महाऋषि पुलस्त्य माहिष्मती नगरीके पति राजा अर्ज्जुनके पास गये ॥ १ ॥ सुरलोकमें देवता लोगोंके निकट पवनके पकड़े जानेके समान असंभव रावणके पकड़नेंका वृत्तान्त ऋषि पुलस्त्यजीनें सुना ॥ २ ॥ तब पवनकी समान गतिवाले ब्राह्मण श्रेष्ठ पुलस्त्यजी पवनके मार्गका आश्रयले मनकी समान वेगसे माहिष्मती पुरीमें आये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी जिसप्रकार इन्द्रजीकी अमरावती पुरीमें प्रवेश करते हैं वैसेही हृष्ट पुष्ट जनोसे भरी पुरी अमरावतीकी समान माहिष्मती नगरीमें पुलस्त्यजी प्रवेश करते हुए ॥४॥ आकाशसे आये हुये सूर्यकी समान अतिकठिणतासे देखने योग्य पैदल आते हुए मुनिको जानकर द्वारपालोंने राजा अर्ज्जुनसे उनके आनेंका समाचार निवेदन किया॥५॥ राजा अर्ज्जुनने दूतोंके कहनेसे पुलस्त्य ऋषिको आया जान शिरसे हाथ जोड़ उन तपस्वीकी अगुवानी करनेंको चला ॥६॥ इन्द्रजीके आगे२साक्षाद्बृहस्पतिजीकी समान राजा अर्जुनके आगे २ अर्घ्य और मधुपर्क लेकर राजपुरोहित चला ॥ ७ ॥ फिर उदय हुए सूर्य भगवानकी समान उन ऋषिको आया हुआ देखकर सहस्रबाहुनें प्रणाम किया जैसे ब्रह्माजीको देखकर इन्द्रजी प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥ तब राजानें उनके लिये अर्घ्य मधुपर्क गो पाद्य समर्पण करके हर्षके मारे गद्गद वचनोंसे मुनि पुलस्त्य जीसे कहा ॥ ९ ॥ हे महाराज आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभहै तौ भी आज आपके दर्शन किये आपनें माहिष्मती नगरीको अमरावतीकी समान किया॥१०॥ आज हमारी तपस्या सिद्ध हुई यज्ञ सफल और व्रत पूरा

हुआ अधिक क्या कहैं आज हमारी सबही प्रकारसे कुशलहै ॥ ११ ॥ हे देव ! देवताओंके वंदन करनें योग्य आपके चरण हमनें वंदन किये । हे ब्रह्मन् ! इस राज्यकी समस्त प्रजा स्त्री पुत्र इत्यादि हम सबही उपस्थितहैं, सो आज्ञा दीजिये कि आपका कौन कार्य साधन किया जावे ॥ १२ ॥ तब पुलस्त्य ऋषि पृथ्वीनाथ हैहयनाथ अर्ज्जुनसे बोले कि हे नरेन्द्र ! तुम्हारे पुत्र, धर्म और अग्नि कुशल सहितहैं ? ॥ १३ ॥ हे कमल पलाश नयन ! हे पूर्ण चन्द्रानन ! तुमनें रावणको जीत लियाहै, इस कारण तुम्हारे बलकी तुलना नहीं है ॥ १४ ॥ जिसके भयसे सागर और पवन स्यन्दना रहितहो विराजमानहै उस रणमें अजीत हमारे पोतेको तुमनें संग्राममें हरायाहै ॥ १५ ॥ हे वत्स ! तुमनें हमारे पोतेका यश छीन लियाहै और तुमनें अपना नाम "रावण विजयी" विख्यात कियाहै, इसलिये हमारे वचनोंके अनुसार प्रार्थना करनेंपर तुम रावणको छोड़ दो ॥ १६ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ अर्ज्जुननें पुलस्त्य ऋषिकी आज्ञा सुनकर कुछभी उत्तर नदिया वरन हर्षितहो राक्षसपति रावणको छोड़दिया ॥ १७ ॥ अधिक करके अर्ज्जुननें देवताओंके शत्रु रावणको छोड़ दिव्य आभूषण, माला और वस्त्र देकर उसको सन्मानित किया और अग्निके सामनें हिंसाहीन मित्रता स्थापनकी तब अर्ज्जुन ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यजीको प्रणाम करके अपने गृहको चलागया ॥ १८ ॥ पुलस्त्यजीके प्रभावसे छूटकर प्रतापशाली राक्षसराज रावणनें राजा अर्ज्जुनकी पहुनई ग्रहणकी और उस करके भेटा जायकर चित्तमें लाज किये वहांसे चलागया ॥ १९ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र मुनियोंमें श्रेष्ठ पुलस्त्य मुनि रावणको छुड़ाय ब्रह्म लोकको चले गये ॥ २० ॥ महा बलवान रावण कार्तवीर्यके निकट इस प्रकारसे हार कर बँधाथा और फिर पुलस्त्यजीके वचनोंसे छुटाथा ॥ २१ ॥ हे रघुनंदनजी ! बलवानसेभी इस प्रकार और अनेक बलवानहैं इस्से जो कोई अपना भला होनेंकी इच्छा करै तो उसको दूसरेका अपमान करना उचित नहींहै ॥ २२ ॥

ततःसरा जापिशिताशनानांसहस्रबाहोरुपलभ्यमैत्रीम् ॥ पुनर्नृपाणांकदनंचकारचचा.
रसर्वांपृथिवींचदर्पात् ॥ २३ ॥

इसके पीछे वह निशाचर राजा रावण सहस्रबाहु अर्ज्जुनसे मित्रता स्थापितकर गर्वके मारे नृपालोंका विनाश करते २ पृथ्वीपर घूमनें लगा॥ ॥ २३ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

अर्जुनेनविमुक्तस्तुरावणोराक्षसाधिपः ॥
चचारपृथिवींसर्वामनिर्विण्णस्तथाकृतः ॥ १ ॥

राक्षसपति रावण जब अर्ज्जुनसे छूट गया और उनके साथ जब उसकी मित्रताभी होगई, तब यह वेदना रहितहो समस्त पृथ्वीपर घूमनें लगा॥१॥ अधिक क्या कहैं मनुष्य या राक्षस जिसकोभी रावण अधिक बलवान सुनता गर्वके मारे वहींपर जाय उसको युद्ध करनेंके लिये पुकारता॥२॥ किसी समय रावणनें वालिपालित किष्किन्धा नगरीमें जाय वहां हेममाली वालिको युद्ध करनेंके लिये पुकारा॥ ३ ॥ तब युवराज सुग्रीव, ताराका पिता सुषेण, और तार इत्यादि वानर मंत्रियोंनें युद्धकी अभिलाषा करकै आये हुए रावणसे कहा ॥ ४ ॥ कि हे राक्षसेन्द्र! जो तुमसे युद्ध करेंगे वह वालि सन्ध्या करनेंको गये हैं, इसके अतिरिक्त और कोई वानर तुम्हारे सामनें युद्धमें ठहर नहीं सकताहै ॥ ५ ॥ इस कारण हे रावण! एक मुहूर्त भरतक ठहरो, वालि चारों समुद्रोंपर सन्ध्याकर अब आयाही चाहताहै ॥ ६ ॥ हे राजन्! शंखकी समान श्वेत हड्डियोंका ढेर जो आप देखतेहैं; यह वानराधिपति वालिके तेज प्रभावसे पराजित युद्धशाली वीरोंके कंकाल हैं ॥ ७ ॥ हे राक्षस रावण! जो तुमनें अमृत रसभी पिया होगा तौभी वालिके निकट जानेंसे तुम्हारे जीवनका अंत होजायगा॥ ८ ॥ हे वैश्रवण! एक मुहूर्त भरतक ठहरतेही तुम्हारा जीना दुर्लभ हो जायगा; इससे इस जगत्को भली भांति एकवार देखलो ॥ ९ ॥ अथवा जो तुमको बहुतही शीघ्र मरनेंकी अभिलाषाहो तौ दक्षिण समुद्रके किनारेपर चले जाओ; वहां पृथ्वीपर विराजमान अग्निकी समान तुम वालिको देखोगे ॥ १० ॥ यह सुनकर त्रिलोकीमें उपद्रव करनेंवाला रावण तारका निरादर करकै पुष्पक विमानपर सवारहो दक्षिण समुद्रके किनारेपर गया॥ ११ ॥ तरुण

अरुणकी समान मुखवाले सुवर्णके पर्वतकी नांई वालि वहांपर संध्या कर रहाथा ॥१२॥ वह अंजनके रंगकी समान काला रावण यह देख वालिको पकड़नेंके लिये विमानसे शीघ्र उतर दबे पैरोंसे चला ॥ १३ ॥ तब वालिनेभी इच्छानुसार नेत्र फिराय रावणको देखलिया; परन्तु उसका बुरा अभिप्राय जानकरभी वालि चलायमान नहीं हुआ ॥ १४ ॥ सिंह जिस प्रकार खरहेको, और गरुड़ जिस प्रकार सर्पको देखकर नहीं घबड़ाते हैं; वैसेही मनमें पापका संकल्प किये हुए रावणको देखकर वालिनें कुछभी नहीं समझा ॥ १५ ॥ वालिने मनहीमन विचार किया कि यह पापी हमारे पकड़नेंको आताहै; इस कारण इसको कांखमें दबायकर हम तीन महा समुद्रोंपर घूमेंगे ॥ १६ ॥ सबही देखेंगे कि शत्रु रावण हमारी कांखमें गरुड़जीसे पकड़े हुए सर्पकी समान लटकता हुआ जाताहै । और इसकी जांघे हाथभी आकाशसे लटकती हुई दीखेंगी ॥ १७ ॥ वालि मनही मन ऐसा विचारकर चुप होरहा और वेदके मंत्रोंका पाठ करताहुआ पर्वत राजकी समान विराजमान होनें लगा ॥ १८ ॥ बलसे गर्वित वानरराज और राक्षसराज पकड़नेंके अभिलाषी हो दोनों एक दूसरेको अतियत्नसे पकड़नेंकी चेष्टा करनें लगे ॥ १९ ॥ परन्तु वालिनें साधारण पगाहटसे जान लिया कि रावण अब ऐसे स्थानमें आगयाकि अब हम उसको हाथसे पकड़लेंगे बस उसनें चटसे वैसेही रावणको पकड़लिया कि जैसे गरुड़जी सर्पको पकड़तेहैं ॥ २० ॥ ग्रहण करनेंकी अभिलाषा किये राक्षसनाथ रावणको वानरश्रेष्ठ वालिनें पकड़लिया; और उसको कांखमें लगाय दृढ़तासे पकड़ अतिवेगसे आकाश मार्गको वालि कूदगया ॥ २१ ॥ तिसके पीछे वालि रावणको वारंवार पीड़ित करता और नोंचता हुआ इस प्रकारसे रावणको लेगया जैसे पवन मेघोंको भगा देतीहै ॥ २२ ॥ जब रावण पकड़ागया; तब रावणके सब मंत्री उसके छुटानेंकी अभिलाषा किये; चिंघाड़ करते हुए आकाश मार्गमें अतिवेगसे जाते हुए वालिके पीछे २ धाये॥ २३ ॥ साथ चलते हुए मेघोंसे आकाशमें विराजमान सूर्य भगवान जिस प्रकार शोभायमान होतेहैं; आकाशके बीचमे स्थित हुआ वालिभी पीछे दौड़ते हुए राक्षसोंसे वैसेही दीप्तिमान होनें लगा ॥ २४ ॥ तब राक्षसगण वालिके पड़नेंको समर्थ न होसके; वरन वालिकी जांघें

और बाहोंके वेगके मारे थककर एक जगह स्थित होगये ॥ २५ ॥ पर्वत श्रेष्ठ गणभी गमन करते हुए वालिके मार्गसे हट जातेथे फिर मांस और शोणित धारी प्राणियोंकी तो बातही क्याहै ॥ २६ ॥ अति शीघ्रतासे गमन करनें वाला वालि इतनें ऊंचेसे उड़कर जाताथा कि जहांपर पक्षियोंके उड़नेंकीभी गति नहींथी; इस प्रकार क्रमर से वालि सब समुद्रोंपर जाय प्रातःकालीन संध्याके वन्दन करने योग्यका ध्यान करनें लगा॥२७॥ आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ वालि रावणको साथ लिये आकाश चारियोंसे पूजितहो पश्चिमके समुद्रपर गमन करनें लगा ॥ २८॥ वहां स्नान व संध्याकर और जप करता हुआ वालि रावणको लेकर उत्तरके समुद्रपर गया ॥ २९ ॥ वह महा वानर वालि अपने शत्रुके साथ उस बहुत योजनके विस्तार वाले मार्गमें वायु और मनकी समान शीघ्रतासे चला॥३०॥ उत्तरके समुद्रपर संध्या करके वालि रावणको लिये हुए पूर्वके महासमुद्र पर जाय पहुँचा॥ ३१ ॥ इन्द्रका पुत्र वानरोंका राजा वालि वहांभी संध्या वन्दन कर रावणको पकडे हुए फिर किष्किन्धापुरीकी ओर गमन करता हुआ॥ ३२ ॥ चारों समुद्रोंपर सन्ध्या वन्दन करनेंसे और रावणका बोझा उठानेंसे वालि थककर किष्किन्धापुरीके उपवनमें कूदा ॥ ३३ ॥ फिर कपिश्रेष्ठ वालिनें अपनी कांखसे रावणको छोड़ दिया, और बारम्बार हँसकर रावणसे कहा कि " तुम कहाँसे चले आतेहो" ॥ ३४ ॥ तब परम विस्मितहो राक्षस रावण श्रमके मारे चंचल नेत्रहो उस वानरोंके राजासे यह बोला ॥ ३५ ॥ कि हे महेन्द्रकी समान वानरेन्द्र! हम राक्षस पति रावण युद्धकी अभिलाषासे तुम्हारे निकट आयेथे परन्तु आज हम तुमसे हार गये क्योंकि तुमनें हमको कांखमें रख लिया ॥ ३६ ॥ हे वीर! आपनें हमको पशुकी समान पकडकर चारों समुद्रोंपर घुमायाहै इस कारण आपका गंभीरपन, वीर्य और बल, सबही विचित्रहै ॥ ३७ ॥ हे वीर वानर! आप हमको इस प्रकार शीघ्रता पूर्वक ले चलते हुएभी नहीं थके हैं; परन्तु इस प्रकार हमें ले चलनेंको और कौन समर्थ होगा?॥३८॥हे वानर! मन पवन और गरुड़ इन तीन प्राणियोंमें ही ऐसी शक्तिहै सो आपमें भी वैसेंही गमन शक्तिहै इसमें कुछ संदेह नहीं॥३९॥हे वानरश्रेष्ठ! हमने आपका बल प्रत्यक्ष देखा; इस कारण अग्निके सन्मुख हम आपके साथ निष्कपट

चिरस्थाई मित्रता करना चाहतेहैं ॥ ४० ॥ हे वानरेश्वर ! आजसे स्त्री, पुत्र, पुर, राज्यभोग आच्छादन, और भोजन समस्तही हम तुम दोनोंका एक रहैगा इसमें कुछ अन्तर न होगा ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त वानरराज और राक्षस दोनों अग्नि जलाय परस्पर भेंटकर भ्रातृपन लाभ करते हुए ॥ ४२ ॥ फिर वह वानर और राक्षस हर्षितहो एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए पर्वतकी गुहामें दो सिंहोंकी समान किष्किन्धामें प्रवेश करते हुए ॥ ४३ ॥ इसके पीछे त्रिभुवनके नाश करनेंकी अभिलाषा किये वहांपर आये हुए मंत्रियोंके साथ मिलकर रावणनें सुग्रीवकी समान किष्किन्धापुरीमें एक मास विताया । [सुग्रीवकी समान कहनेंका यह तात्पर्यहै कि वालिनें रावणको अपने लघु भ्राता सुग्रीवकी समान रक्खा] ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! वालिनें रावणको इस प्रकारसे पीडित करके फिर अग्निको स्थापन करके इस प्रकारसे मित्रताकीथी,सो हमनें आपसे यह समस्त वृत्तान्त कहा ॥ ४५ ॥

बलमप्रतिमंरामवालिनोऽभवदुत्तरम् ॥
सोपित्वयाविनिर्दग्धःशलभोवह्निनायथा ॥ ४६ ॥

हे राम ! वालिमें अनुपम उत्तम बलथा परन्तु अग्नि जिस प्रकार पतंगेको जला देती है; वैसेही आपनें उस वालिको दग्ध किया ॥ ४६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० चतुस्त्रिंशः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥

अपृच्छततदारामोदक्षिणाशाश्रयंमुनिम् ॥
प्रांजलिर्विनयोपेतइदमाहवचोर्थवत् ॥ १ ॥

तब जिज्ञासु श्रीरामचन्द्रजी विनीत हो हाथजोड़ दक्षिण दिशामें वास करनेंवाले अगस्त्य मुनिसे अर्थयुक्त वचन बोले ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि वालि और रावणके इस बलकी उपमा नहीं परन्तु हम जानतेहैं कि उनका बल हनुमानकी समान नहींथा ॥ २ ॥ विशेष करकै शूरता, धीरता, बल शीघ्र करना प्राज्ञता, नीति, उपाय, विक्रम और प्रभाव यह सबही हनुमानमें प्रतिष्ठितहैं ॥ ३ ॥ जब समुद्रको देखकर

हनुमाननें सूर्य भगवानके रथके ऊपर राहुको स्पर्श किया, इससे चंद्रमा सूर्यका मर्दन करनेवाला राहु त्रासित होकर सूर्य मंडलसे भागगया॥३२॥ सिंहिका पुत्र राहु क्रोधके मारे इन्द्रके भवनमें जाय भौंहे टेढ़ीकर देवता लोगोंके साथ बैठे हुए इन्द्रजीसे बोला ॥ ३३ ॥ हे वासव! हमारी क्षुधा निवृत्त करनेंके निमित्त आपनें हमें चंद्र सूर्यको दियाथा, हे बल वृत्रवहन! अब आपनें उन्हें दूसरेको क्यों देदिया॥३४॥पर्वका समय आय जानेंसे आज ग्रहण करनेंकी अभिलाषाकर हम सूर्यके निकट गयेथे, परन्तु अचानक एक दूसरे राहुनें आकर सूर्यको ग्रास कर लिया ॥ ३५ ॥ राहुके वचन सुनकर वह कांचनमाला धारी इन्द्र घबड़ाय आसन छोड़कर उठे ॥ ३६ ॥ फिर कैलाश पर्वतके शिखरकी समान ऊंचे चार दांत वाले मदश्रावी शृङ्गार वेशधारी सुवर्ण घण्टा स्वरूप अट्टहास समन्वित ॥ ३७ ॥ हस्तियोंमें श्रेष्ठ ऐरावत हाथीपर सवारहो राहुको आगेकर इन्द्रजी वहांसे चले जहां सूर्यके साथ हनुमान विराजमान थे ॥ ३८ ॥ इन्द्रको पीछे छोड़ राहु उनसे पहलेही जाय अति वेगसे वहां पहुंचा परन्तु विशाल शरीर शृङ्गाकार हनुमानको देखतेही भागगया ॥ ३९॥ फिर राहु कोही फल समझ सूर्यको छोड़ सिंहिकाके पुत्र राहुके पकड़नेकी अभिलाषासे हनुमानजी फिर आकाशको उछले ॥ ४० ॥ हे राम! जब वानरश्रेष्ठ हनुमानजी सूर्यको छोड़कर धाये तब केवल मुख मात्रेके आकार वाला राहु, इनका बडाभारी शरीरदेख विमुखहो भागा ॥ ४१ ॥ परन्तु सिंहिका पुत्र राहु परित्राण करनेंवाले इन्द्रसे यह वृत्तान्त कहनेकी अभिलाष किये डरके मारे वारंवार "इन्द्रइन्द्र" कहनें लगा ॥ ४२ ॥ राहुकी आरतवाणी सुनकर और उसका बोल पहँचानकर इन्द्रजीनें कहा "कुछ भय नहींहै" हम इसको संहार करतेहैं ॥ ४३ ॥ फिर पवनकुमार हनुमान ऐरावत हाथीको देख "यह बड़ाभारी फलहै" ऐसा विचारकर उस गजराजके सन्मुख धाये॥ ४४ ॥ हे राघव! जब हनुमानजी ऐरावत हाथीको ग्रहण करनेके लिये धाये; तौ एक मुहूर्तमे इनका रूप कालानलकी समान घोर होगया ॥ ४५ ॥ परन्तु शचीनाथ इन्द्रनें अत्यन्त क्रोधनकरके हनुमानजीके ऊपर अपने हाथसे वज्रमारा ॥ ४६ ॥ इन्द्रका वज्र लगनेसे ताड़ितहो यह हनुमान पर्वतपर गिरे और

गेरनेंसे इनकी बांई हनु (ठोडी) टूट गई ॥ ४७ ॥ जब यह हनुमानजी विह्वलहो वज्रके प्रहारसे गिर पड़े तव पवन देवता प्रजा गणोंका अहित करनेंकी वासनासे इन्द्रके ऊपर कुपित हुए ॥ ४८॥ तब सबके शरीरमें रहनें वाले वायु अपना संचार बंद करके अपने बालक पुत्रको ले गुफामें पैठ गये ॥ ४९ ॥ अधिक क्या कहें वर्षाको रोककर इन्द्रजी जिस प्रकार सर्व प्राणियोंको पीड़ा देतेहैं वैसेही पवन सर्व प्राणि-योंके मल व मूत्राशय रोककर सहनेके अयोग्य पीड़ा देनें लगे ॥ ५० ॥ पवनके कोप करनेंसे सब प्राणियोंका श्वास सब भांतिसे बंद होगया, और देहके सब जोड़ काष्ठकी समान अकड़ गये ॥ ५१ ॥ वरन वायुके कोपसे समस्त त्रिलोकीमें स्वाध्याय, वषट्कार, क्रियाकलाप, और समस्त धर्म लोप होगये इस कारण समस्त त्रिभुवन दुःखित जान पड़नें लगा ॥५२॥ इसके पीछे देवता, गन्धर्व, असुर और मनुष्य इत्यादि सब प्रजा दुःखित होकर सुखकी कामनासे ब्रह्माजीके निकट गई ॥ ५३ ॥ वायुके रुक जानेंसे उदरी रोगीके समान बढ़ गयेहैं, उदर जिनके ऐसे सब देवता हाथ जोड़कर बोले हे भगवन! हे प्रजानाथ! आपनें चार प्रकारके प्राणी उत्पन्न कियेहैं ॥ ५४ ॥ हे सत्तम! आपनें पवनको हमारी आयुका अधिपति कर दियाहै, परन्तु वही वायु प्राणेश्वर होकर आज सहसा क्लेश देते हुए हमको रूंध रहेहैं जैसे कोई अंतःपुरमें स्त्रियोंको रोक कर रक्खै इस कारण हम वायु करकै उपहत होकर आपकी शरणमें आये॥५५॥५६॥ हे दुःख-हारी! आप हमारा पवनके रुक जानेंका यह दुःख दूर कीजिये, प्रजाकें ऐसे वचन सुनकर प्रजानाथ प्रजापति ॥ ५७ ॥ "इसमें कोई कारणहै" यह कह कर फिर कहनें लगे जिस कारण वायुनें क्रोधकर पवनको रोकाहे ॥ ५८ ॥ हे सर्व प्रजागण ! वह हमको कहना उचित और तुमको श्रवण करना उचितहै; सो तुम उसको श्रवण करो । आज सुरपति इन्द्रनें पवनके पुत्रको माराहै ॥ ५९ ॥ और उन्होंनें राहुके वचनोंका विश्वास कर ऐसा किया; उसीसे पवननें कोप कियाहै । अशरीरी पवन देह धारि-योंका पालन करते हुए उनके अंतरमें विचरण करतेहैं ॥ ६० ॥ विशेष करकै वायुके विना शरीर काठके तुल्यहै इसलिये पवनही प्राण पवनही सुख, और पवनही सब जगत्है ॥ ६१ ॥ आयुरूप वायुनें अभी जगत्को छोड़

दियाहै, इस कारण वायुकरकै त्यागे जाकर जगत्‌के सब जीव सुख प्राप्त करनें को समर्थ नहीं हैं ॥ ६२ ॥ वायु से जो तुम्हारा श्वास रुक गयाहै; सो आज ही तुम काष्ठ और भीत (दीवार) की समान हो गये हो इस-निमित्त हम लोगों को पीड़ादेनें वाले मारुत जिस स्थानमें विराजमानहैं हमको वहीं चलना चाहिये ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी देवता, गन्धर्व, भुजंग, गुह्यक, इत्यादि प्रजाओं के साथ जिसस्थानमें इन्द्र करकै मारे हुए पुत्रको लिये पवन बैठेथे वहां गये ॥ ६४ ॥

ततोर्कवैश्वानरकांचनप्रभंसुतंतदोत्संगगतंस
दागतेः ॥ चतुर्मुखोवीक्ष्यकृपामथाकरोत्स
देवगंधर्वऋषियक्षराक्षसैः ॥ ६५ ॥

तब आदित्य अनल, और सुवर्णकी समान द्युतिमान पुत्र हनुमान को सदा गति पवनजीकी उछंग में देखकर ब्रह्माजी देवता गन्धर्व, ऋषि यक्ष, और राक्षसों के सहित उनपर कृपा करते हुए ॥ ६५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० पंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥

ततःपितामहंदृष्ट्वावायुःपुत्रवधार्दितः ॥ शि
शुकंतंसमादायउत्तस्थौधातुरग्रतः ॥ १ ॥

पुत्रका वध हो जानें से शोकसे संतापित हुए पवन देवता ब्रह्माजी को देख उस बालकको ले शीघ्रतासे खड़े होगये ॥ १ ॥ सुवर्णमय भूषणोंके पहरनेंसे शोभायमान पवन देवता तीनवार साष्टाङ्ग प्रणाम करके ब्रह्माजी के चरणों में गिरे, तब उनके कुण्डल माला और शिरके भूषण हिलनें लगे ॥ २ ॥ तब अनादि सब वेदार्थ जानने वाले ब्रह्माजीने अलंकारोंसे शोभित अपने हाथसे वायु देवकूं उठाय उस बालक हनुमानजीकू स्पर्श किया ॥ ३ ॥ उसकाल यह बालक कमल योनि ब्रह्माजी करके लीला पूर्वक छुए जातेही जलसे सींचे हुए धानकी समान फिर जीवित होगया ॥ ४ ॥ गन्धवहनें-वाले प्राणभूत वायु अपने पुत्रको जीवित देखकर हर्षके मारे अपनी रोक छोड़ पहलेकी समान सब प्राणियों में विचरण करने लगे ॥ ५ ॥ कमलके साथ कमलनी जिस प्रकार शीत वातसे छुट कारा पाय प्रफुल्ल हो जातीहै वैसेही समस्त प्रजा पवनके रूंधनेंसे छुट प्रफुल्ल हुई ॥ ६ ॥ यश, वीर्य,

ऐश्वर्य, श्री, ज्ञान, और वैराग्य समन्वित त्रिमूर्ति देवताओंसे पूजित त्रि-लोक धाम ब्रह्माजी पवनजीका हित करनेकी कामना से बोले ॥ ७ ॥ महेन्द्र, अग्नि, वरुण, महेश्वर, धनेश्वर, इत्यादि देवगण! तुम लोग जानते हो इस कारण समस्त हितकी कथा कहताहूं श्रवण करो ॥ ८ ॥ इस बालकसे तुम्हारे कर्तव्य कार्य सिद्ध होंगे, इसनिमित्त इन पवन देवता की प्रसन्नताके लिये तुम इनको (हनुमानको) वरदान दो ॥ ९ ॥ तब प्रसन्नवदन सहस्रनयन इन्द्रजीनें प्रसन्न हो सुवर्णके कमल फूलोंकी माला देकर यह कहा ॥ १० ॥ हमारे हाथसे छुटे वज्र करकै इनकी हनु टूटगईहै इस कारण यह कपि शार्दूल "हनुमान" नामसे विख्यात होंगे ॥ ११ ॥ इनको हम एक औरभी अद्भुत वरदान देतेहैं कि अबसे यह हनुमान हमारे वज्रसे भी अवध्य होंगे ॥ १२ ॥ तब तिमिरनाशक ज्योतिप्रकाशक भगवान सूर्य बोले, हमनें अपने तेजका सौवां अंश इनको दिया ॥ १३ ॥ जिस समय यह शास्त्र पढनेमें समर्थ होंगे उस समय में हम इनको शास्त्र पढ़ा-मेंगे तिस्से यह हनुमान वाग्मी होंगे ॥ १४ ॥ वरुणजीने यह वर दिया-कि हमारी फांसीसे या जलसे दशलाख वर्षतक भी इनकी मृत्यु नहीं होगी। ॥ १५ ॥ यमनें सन्तुष्ट होकर इनको वरदान दियाकि यह हमारे दंडसे न मारे जांयगे. सदा निरोगी रहैं गे; इनको युद्धमें कभी विषाद न होगा ॥ १६ ॥ एकाक्षी पिंगल धनद कुबेरजीनें उसकालमें यह वरदान दिया कि यह हनुमान हमसे व हमारी गदासे न मारे जांयगे ॥ १७ ॥ यह हनुमान हमारे भी सब अस्त्र शस्त्रोंसे अवध्य होंगे; शिवजीनें भी इन-को इसप्रकारका परम वर दिया ॥ १८ ॥ महारथी विश्वकर्माजीनें ऐसा देखकर बालकसे कहाकि हमारे बनाये भये जो दिव्य अस्त्र शस्त्रहैं यह बालक उन सबसे अवध्य होकर सदा जीवित रहैगा ॥ १९ ॥ ब्रह्माजीनें उनसे कहा, तुम ब्रह्मके जाननें वाले और दीर्घायु होगे, ब्रह्मास्त्रसे व ब्रह्म शापसे भी तुम अवध्य होगे ॥ २० ॥ इसके पीछे जगद्गुरु चतुरानन ब्रह्माजी देवताओंके वरसे इनको अलंकृत देख सन्तुष्ट चित्तहो पवन दे-वतासे बोले ॥ २१ ॥ हे मारुत! तुम्हारा पुत्र मारुति शत्रुओंको भय देने वाला मित्रोंको अभय देनें वाला और अजीत होगा॥२२॥अधिककरकै यह कपि वर इच्छानुसार रूप धारणकर, गमन, और भक्षणकर सकैगा; अ-

धिक क्या कहैं, यह बालक कीर्तिवान् होगा; और इसकी गति किसीसे नहीं रुकैगी ॥ २३ ॥ और रावणको नाश करनें वाले श्रीराम चंद्रजीको प्रसन्नता उपजानें वाले रोमहर्षण कार्य संग्राम में सिद्ध करैगा ॥ २४ ॥ ब्रह्मादि सब देवता ऐसा कहकर पवन देवताको प्रसन्नकर अपने २ परिवारोंके साथ जैसे आयेथे वैसेही चलेगये ॥ २५ ॥ गन्धवह पवन भी पुत्रको लेकर घर आये; और अंजनके निकट वरदानका वृत्तान्त वर्णन करके वहांसे चलेगये ॥ २६ ॥ हेराम! बरदानके वश यह बलवान हनुमान समस्त वरपाय समुद्रकी समान दैहिक बलसे परिपूर्ण हुए ॥ २७ ॥ यह वानरश्रेष्ठ उसकाल वेगसे परिपूर्णहो निर्भय चित्तसे ऋषि गणोंके आश्रमोंमें उपद्रव मचानें लगे ॥ २८ ॥ यह हनुमान शान्त गुण शाली मुनिजनोंके स्रुक भाण्ड इत्यादि यज्ञके उपकरण तोड़नें लगे, अग्नि होत्रकी अग्निको बिथराय देते, और बलकलोंको विध्वंश करनें लगे ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे यह महाबल हनुमानजी ब्रह्माजीके वरसे और ब्रह्मदंडसे अवध्य हो ऐसे कर्मोंको करनें लगे ॥ ३० ॥ ऋषि लोग यह वृत्तान्त जानतेथे, इस कारण दंड करनें की शक्ति रहनें पर भी उनका अपराध सह लेतेथे। केशरी और पवन, इन अंजनी कुमार हनुमान को ॥ ३१ ॥ निषेध भी करतेथे तथापि यह वानर मर्यादाको लांघतेथे हे रघुवीर! तिसके पीछे अंगिरा और भृगुके वंशमें उत्पन्नहुए क्रोधित मुनिजनोंनें॥३२॥ न बहुत क्रोध परायण हो और न बहुत अनर्थ ही करकै इनको यह शाप दियाकि हे वानर! तुम जिस बलका आश्रय करकै हमको पीड़ित करते हो ॥ ३३ ॥ सो तुम हमारे शापसे मोहित हो बहुत कालतक इस बलको नहीं जान सकोगे। परन्तु जब कोई तुम्हारी कीर्तिको तुमको याद दिलादिया करैगा; तब तुम्हारा बल बढ़ैगा ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे यह हनुमान ऋषि लोगोंके वचन प्रभावसे बलवीर्य विहीनहो मृदु भावसे आश्रमोंमें घूमनें लगे ॥ ३५ ॥ सूर्यकी समान तेजस्वी ऋक्षराज वानरोंके राजाथे वह वालि और सुग्रीवके पिताथे ॥ ३६ ॥ वह वानराधिपति ऋक्षराज बहुत दिनतक राज्य करकै फिर कालके वश हुए ॥ ३७ ॥ जब वह ऋक्षराज मृत्युको प्राप्त हुए तब मंत्र जाननें वाले मंत्रियोंनें वालिको पिताके पदपर और वालिके पद पर सुग्रीवको अभिषेकित किया ॥ ३८ ॥

अग्निके साथ पवनकी नांई वालिका बालक पनसे ही सुग्रीवके साथ दोष रहित अद्वितीय मित्र भाव होगया ॥ ३९ ॥ परन्तु हे राम! जिस समय वालि और सुग्रीवमें विरोध उत्पन्न हुआ उस कालमें यह हनुमानजी शाप लग जानेंसे अपने बलको नहीं जानतेथे ॥ ४० ॥ हे देव राम! सुग्रीवजी भी इस समाचारको नहीं जानतेथे कि पवनकुमार हनुमान अपनी सामर्थ्य को नहीं जानते ॥ ४१ ॥ जो कुछभी हो ऋषि लोगोंके शापसे बल गवाये यह कपिश्रेष्ठ हनुमान सुग्रीवजीकी विपदके समयमें हाथीसे घिरे हुए सिंहकी समान सुग्रीवजीके साथ रहतेथे ॥ ४२ ॥ पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति, ज्ञान, गंभीरता, चतुरता, वीर्य, और धीरता इत्यादि गुणोंमें हनुमानजीसे अधिक इस लोकमें कोई भी नहींथा ॥ ४३ ॥ और यह वानरश्रेष्ठ व्याकरण सीखनेंके लिये सूर्यके सन्मुख हो पूछते पूछते उदय गिरिसे अस्ता चलतक चले जातेथे ॥ ४४ ॥ अधिक क्याकहैं इन अप्रमेय वानरेन्द्रनें, सूत्रवृत्ति, महाभाष्य, और संग्रहके सहित महाअर्थ युक्त महत् ग्रन्थ अर्थके सहित ग्रहण करकै उनमें सिद्धि प्राप्तकी थी ॥ ४५ ॥ वरन इनकी समान शास्त्र विशारद और कोई-भी नहींहै, यह समस्त विद्या, क्या छन्द, क्या तप विधान; सब बातोंमें ही बृहस्पतिजीकी समानहैं; प्रलय कालके समय उफनते हुए समुद्र दहना भिलाषी पावक और यमराजके सन्मुख जैसे कोई खड़ानहीं हो सकताहै वैसेही इन हनुमानके सन्मुख कोईभी खड़े होंनेकी सामर्थ्य नहींरखता॥४६॥ हे राम ! इनकीही समान तुम्हारी सहायताके अर्थ देव गणोंनें सुग्रीव, अंगद, मैन्द, द्विविद, नील, नल, तार, और रम्भादि महा २ वा-नरोंको उत्पन्न कियाहै ॥ ४७ ॥ हे प्रभो! गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, ज्योति मुख, इन वानर श्रेष्ठ और ऋक्षोंको भी तुम्हारी सहायताके अर्थ उत्पन्न कियाहै ॥ ४८ ॥ हे राम! हनुमाननें बालकपनमें जो जो कर्म कियेथे वह सब हमनें आपसे कहे; अधिक कहनेंसे क्या; आपनें जो कुछभी हमसे पूछा वही हमनें निवेदन किया ॥ ४९ ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी अग-स्त्यजीके वचन सुनकर राक्षस और वानर लोगोंके सहित अत्यन्त वि-स्मित हुए ॥ ५० ॥ परन्तु अगस्त्यजी श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि आपनें सब कुछ सुना और हमनें भी दर्शन पाय आपसे संभाषण किया अब हम

जाते हैं ॥ ५१ ॥ तब श्रीरामचंद्रजी उग्र तेजस्वी अगस्त्यजी ऋषिके यह वचन सुनहाथजोड़ शिर नवाय महर्षिसे बोले ॥ ५२ ॥ आपके दर्शनसे, पितृगण, प्रपितामहगण, और बान्धव गण निश्चयही आज हमारे ऊपर प्रसन्न हुएहैं; अधिक क्याकहैं देवता लोगभी प्रसन्न हुए ॥ ५३ ॥ परन्तु आपकी सेवामें हमारा यह निवेदनहै; कि हम वांछा रहित होकर जो कुछ कहैं आप हमारे पर दयाकरकै उसको सिद्धकरैं ॥ ५४ ॥ इस समय हम वनवाससे लौट आयेहैं फिर पुरवासी और जन पद वासियोंको अपने २ कार्यमें प्रतिष्ठित करकै आपके प्रतापसे हम समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करैंगे ॥ ५५ ॥ आपलोग हमपर अनुग्रहकी इच्छा करतेहैं; विशेष करकै महत् तप वीर्य समन्वित, साधुशीलवान आपहैं इस कारण आप हमारे यज्ञमें सदाही सदस्य (विधि बतानें वाले] का कार्य करैं ॥ ५६ ॥ आप लोग तप करकै पाप विहीन हुएहैं; इस निमित्त आप लोगोंको सदा आश्रय करनेंसे पितृगण हमपर सदा अनुग्रह करेंगे और परम सन्तुष्ट होंगे ॥ ५७ ॥ उस कालमें सब लोगोंके साथ मिलकर आप लोगोंको इस स्थानमें आना पड़ेगा व्रत धारण किये हुए अगस्त्यादि ऋषि यह सुनकर ॥ ५८ ॥ ऐसाही होगा रामचंद्रजीसे यह कह जानेंके लिये तयार हुए ॥ ५९ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी विस्मितहो यज्ञके लिये चिन्ता करनें लगे । इसके पीछे सूर्यके छिपजानेंसे रामचंद्रजीनें नृप और वानरोंको विदा किया ॥ ६० ॥

संध्यामुपास्यविधिवत्तदानरवरोत्तमः ॥ प्रवृ
त्तायांरजन्यांतुसोंतःपुरचरोभवत् ॥ ६१ ॥

तदनन्तर नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनें विधि विधानसे सन्ध्याकी, और रात्रिका सुख प्राप्त करनेंके लिये अंतःपुरमें गये ॥ ६१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥

अभिषिक्तेतुकाकुत्स्थेधर्मेणविदितात्मनि ॥
व्यतीतायानिशापूर्वापौराणांहर्षवर्धिनी ॥ १ ॥

ब्रह्म ज्ञान सम्पन्न काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजीका जब अभिषेक धर्म्मा-

नुसार होगया तो उस अभिषेक होनेकी रात्रिनेंही प्रथम पुर वासियों को हर्ष दियाथा परन्तु वह रात्रि भी वीतगई ॥ १ ॥ रात्रिके वीत जानेंपर राजाके जगानेंवाले वंदि गण जोकि अति सौम्य मूर्तिथे आयकर उपस्थित हुए ॥ २ ॥ किन्नरोंकी समान शिक्षित और मधुर कण्ठवाले वह गायक लोग वीर श्रेष्ठ राजाका हर्ष बढ़ायकर स्तुति करनें लगे ॥ ३ ॥ हे सौम्य स्वभाव नरनाथ! आपके निद्रित रहनेंसे सब जगत् निद्रामें मग्न रहताहै; इसलिये हे कौशल्यानन्दवर्द्धनवीर ! आप निद्राका परित्याग कीजिये ॥ ४ ॥ आप विष्णुजीकी समान विक्रम-कारी अश्विनीकुमारकी समान रूपवान् बृहस्पतिजीकी नांई, बुद्धिमान्, और प्रजापालनमें ब्रह्माजीकी समानहैं ॥ ५ ॥ आप समुद्रकी समान गंभीर स्वभाववालेहैं, पृथ्वीकीसमान क्षमागुणशालीहैं, सूर्यकी नांई तेजस्वी, और पवनसम वेगवानहैं ॥ ६ ॥ शिवजीकीसमान आपका सौम्य गुण कभी कंपायमान होनेंवाला नहीं ऐसा सौम्य गुण चंद्र-मामेंही विराजमानहै; और कहीं नहीं; आपकी समान न कोई राजा हुआ न आगेको होगा ॥ ७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आप जैसे दुर्द्धर्षहैं वैसेही सदा धर्मपरायण होकर आप प्रजाके कार्यभी किया करतेहैं इस्से कीर्ति और लक्ष्मी आपका त्याग नहीं करेगी ॥ ८ ॥ हे काकुत्स्थ! धर्म और लक्ष्मी सदा आपमेंही स्थित है; वंदी लोगोंनें इसप्रकार व औरभी वहुत स्तुति मधुर वचनोंसेकी ॥ ९ ॥ सूतलोग दिव्य स्तुति करकै रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीको जगानें लगे। रामचंद्रजी इसप्रकार सब भांति स्तुति किये जानेंपर जागे ॥ १० ॥ नारायणजी जिसप्रकार शेष नागकी शय्यापरसे उठतेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजी श्वेत चादर बिछी हुई शय्या-परसे उठे ॥ ११ ॥ सहस्र२ विनीत सेवक लोग श्वेतवर्णके पात्रमें जल लिये हाथ जोड़ उन श्रीरामचंद्रजीके समीप आये ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी यथा अवसरमें जलके कार्यसे पवित्रहो अग्निमें होम करते२ देवालयमें प्रवेश करते हुए; जोकि पुण्यमयथा और जिसकी इक्ष्वाकु लोग सेवा करतेथे ॥ १३ ॥ वहांपर, देवगण, पितृगण, और ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक पूजा करकै सौम्य लोगोंके साथ बाहरकी कक्षामें श्रीरामचंद्रजी आये ॥ १४ ॥ वशिष्ठादि पुरोहित और महात्मा मंत्रिलोगभी आये

वह सबही तीन अग्नियोंकी समान मूर्तिमानथे ॥ १५ ॥ उस कालमें अनेक जनपदोंके अधीश्वर महात्मा क्षत्रिय लोग इन्द्रके पार्श्वमें देवताओंकी समान श्रीरामचंद्रजीकी बगलमें खड़े होगये ॥ १६ ॥ तीन वेद जिसप्रकार अग्निकी उपासना करैं वैसेही महा यशस्वी भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्नजी श्रीरामचंद्रजीकी सेवा करनें लगे ॥ १७ ॥ मुदित हुए सेवकगण प्रसन्न मुख हो हाथ जोड़ श्रीरामचंद्रजीके पार्श्वमें खड़े होगये ॥ १८ ॥ महा तेजस्वी कामरूपी सुग्रीव इत्यादि असंख्यक वानरलोग श्रीरामचंद्रजीकी उपासना करनें लगे ॥ १९ ॥ धननाथ कुबेरजीकी उपासना जिसप्रकार गुह्यक लोग करतेहैं वैसेही बिभीषणजी अपने चार राक्षसोंके साथ महात्मा श्रीरामचंद्रजीकी उपासना करनें लगे ॥ २० ॥ जो कि दैवज्ञ और जो कुलीन लोगथे वह विचक्षण मनुष्यलोग मस्तक झुकाय श्रीरामचंद्रजीको प्रणामकर उनकी उपासना करनें लगे ॥ २१ ॥ देवराज इन्द्रजी जिसप्रकार ऋषिलोगोंके साथ रहकर उनसे पूजित होतेहैं; वैसेही रामचंद्र श्रीमान ऋषिगण, महावीर राजागण, वानरगण, और राक्षस लोगोंसे वैसेही पूजित होनें लगे अधिक क्याकहैं श्रीरामचंद्रजी उस सुन्दरताईके द्वारा हजार नेत्रवाले इन्द्रसेभी अधिक शोभायमान होनें लगे ॥ २२ ॥ २३ ॥

तेषांसमुपविष्टानांतास्ताःसुमधुराःकथाः ॥ क
थ्यंतेधर्मसंयुक्ताःपुराणज्ञैर्महात्मभिः ॥ २४ ॥

पुराण जाननेंवाले महात्मा लोग उन बैठे हुए सभासद लोगोंके सन्मुख धर्मयुक्त मधुर कथा कहनें लगे ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

प्रथमः सर्गः ॥

एतच्छ्रुत्वातुनिखिलंराघवोऽगस्त्यमब्रवीत् ॥
यएषर्क्षरजानामवालिसुग्रीवयोःपिता ॥ १ ॥

रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी यह सब वृत्तान्त सुनकर फिरभी अगस्त्यजीसे बोले कि हे भगवन् आपनें वालि सुग्रीवके पिताका नाम ऋक्षराज

बताया ॥ १ ॥परंतु आपनें इनकी माताका नाम नहीं बताया सो इनकी माता कहां? घर कहां? और इनके नाम ऐसे क्यों हुए ॥ २ ॥ यह समस्त वृत्तान्त जाननेके लिये हमको बड़ा कौतूहल हुआ है सो हे ब्रह्मन्! आप अनुग्रहपूर्वक बताइये श्रीरामचंद्रजीके इस प्रकार कहनें पर अगस्त्य जी बोले ॥ ३ ॥ हे राम पहले नारदजी ने हमारे आश्रममें आयकर जैसा कहाथा वैसेही संक्षेपसे यह वृत्तान्त श्रवणकीजिये ॥ ४ ॥ वह अति धर्मपरायण देवर्षि नारदजी किसी समय घूमते२ हमारे आश्रममें आये हमनें भी विधि विधानसे न्यायानुसार उनकी पूजा की ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त हमने कौतूहलके वशहो पूछा तब उन्होने सुखसे बैठकर कहा हे धार्मिक श्रेष्ठ महर्षे श्रवणकरो ॥ ६ ॥ मेरु नाम एक पर्वतहै यह पर्वतश्रेष्ठ परम सुन्दर सुवर्ण मय और अत्यन्त सुन्दरता की खानि है इसका मध्यम शृङ्ग सब देवता लोगोंसे पूजितहै ॥ ७ ॥ उस शिखरपर ब्रह्माजीकी शतयोजन विस्तारवाली रमणीय दिव्य सभा स्थापित है चतुर्मुख ब्रह्माजी इस रमणीक दिव्य सभामें सदा विराजमान रहते हैं ॥ ८ ॥ एक समय योगाभ्यास करते २ इनके दोनों नेत्रोंसे आंसुओकी बूंदें गिरी भगवाननें करकमलसे उनको ग्रहणकर अपने शरीरमें लगालीं ॥ ९ ॥ और फिर जो शरीरमें लगाय ब्रह्माजीने हाथ झटका तौ उन लोककर्ताके हाथसे आंसुओंकी बूंदके गिरते ही उससे एक वानर उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ हे नरश्रेष्ठ उस वानरके उत्पन्न होतेही महात्मा पितामह ब्रह्माजीनें प्रियवचनोंसे उसको समझाय बुझायकर कहा ॥ ११ ॥ हे वानरश्रेष्ठ देखो इस बड़े विस्तारवाले पर्वतपर देवतालोग सदा वास करतेहैं तुम इस रमणीक पर्वतश्रेष्ठपर बहुत सारे फल मूल भक्षण कर ॥ १२ ॥ सदा हमारे निकट वासकरो इस स्थानमें कुछ कालतक वास करनें पर फिर तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १३ ॥ हे राघव जब ब्रह्माजीनें इस प्रकारसे कहा तब उस वानरश्रेष्ठनें मस्तक झुकाय उन देवदेवके चरणोंकी वंदना करके ॥ १४ ॥ आदिदेव जगत्पति लोककर्ता ब्रह्माजीसे कहा हे देव हम अपनेको आपकी आज्ञाके अधीन करते हैं जैसा आपनें कहा हम वैसेही करैंगे ॥ १५ ॥ वह वानर हृष्टचित्तहो उसकाल देव ब्रह्माजीसे ऐसा कह फल पुष्प युक्त द्रुमखंडमें चलागया ॥ १६ ॥ वह वानर उस वनमें फूलोंको खाया करता

श्रेष्ठ मधु और अनेक प्रकारके फूलोंको इकट्ठा किया करता ॥ १७॥ वह वानर प्रतिदिन संध्याके समय आया करता हे राम इस प्रकार वह श्रेष्ठ फल व पुष्प ग्रहण करकै ॥ १८॥ देवदेव ब्रह्माजीके चरणकमलमें आनकर निवेदन करता इस प्रकार पर्वतपर घूमते २ उसको बहुत काल वीत गया ॥ १९॥ हे राघव इसके उपरान्त कुछ काल वीतनेपर वानर श्रेष्ठ ऋक्षराज प्यासके मारे अतिव्याकुल होकर ॥ २० ॥ उत्तर मेरुके शिखरपर चलागया वहांपर अनेक प्रकारके शब्दोंसे शब्दायमान निर्मल जल युक्त सरोवर विराजमानहै ॥ २१॥ ऋक्षराजनें हर्षित चित्तहो अपने केशरको चलायमान कर उस सरोवरमें अपने मुखकी परछांईको देखा ॥२२॥ यह जलमें जो बसताहै यह हमारा महाशत्रु कौन है इसप्रकार वानर श्रेष्ठनें जलमें वह रूप देखकर ॥ २३ ॥ मनमें कहाकि यह चित्तमें कोपकिये सदा हमारा अपमान करता है इस लिये इस दुरात्मा दुर्मतिका हम सुन्दर गृह विनाश करैंगे ॥ २४ ॥ मनही में इस प्रकारकी चिन्ता करकै वह वानर चंचलताके वश छलांग मार उस कुंडमें कूद पड़ा ॥२५॥ और फिर एक छलांग मारकर उस ह्रदसे बाहर निकल आया। हे राम निकलनेके समय वह वानरश्रेष्ठ स्त्रीके रूपको प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ उस ऋक्षराजा वानरकी यह स्त्री परम सुन्दर मनोहर और लावण्य ललितवनी उसकी जांघें बडी २ भौंहें सुन्दर शिरके केश नीले॥ २७ ॥ वदन मंडल सुन्दर भाव और हास्य चिह्न युक्त दोनों स्तन मोटे कड़े और अनुपम शोभायमानथे उस कुन्डके नीर पर वह स्त्री लताकी समान प्रकाशमान होतीथी ॥ २८ ॥ त्रिलोक सुन्दरी यह रमणी सबके चित्तको मथित करनें वाली कमल रहित लक्ष्मीकी समान निर्मल चौंटलीकी समान॥२९॥अथवा लक्ष्मीसे भी अधिक असीम सौन्दर्य विभूषिता देवी पार्वतीजीकी समान सर्वदिशाओंमें उजाला करती हुई यह शोभायमान होनें लगी ॥ ३० ॥ इसी समयमें सुरनायक देव इन्द्रजी बृहस्पतिजीके चरणोंकी वंदना करकै इसी मार्गसे लौट रहेथे ॥ ३१ ॥ इसी समयमें सूर्य नारायणजीभी घूमते २ जिस स्थानमें तनुमध्यमा यह वामा खड़ीथी वहींपर आये ॥ ३२ ॥ उस कालमें वह सुर सुन्दरीदो देवताओंकी दृष्टिमें पड़ी परन्तु इन्द्रजी व सूर्य उसको देखतेही दोनों कामदेवके वश हुए ॥ ३३ ॥ इसके पीछे

दोनों देवता श्रेष्ठ इस सुन्दरीका अद्भुत रूप निहारकर अपना धीरज त्याग देते हुए; इनके सब अंग क्षुभित होगये और सर्पकी समान श्वास दोनोंने लिये ॥ ३४ ॥ इसके पछि उस स्त्रीको न पायकर उसके मस्तक परही अपना स्खलित वीर्य गिरानेके लिये इन्द्र तैयार हुए; परन्तु यहवीर्य इस नारीको प्राप्त न होकर नीचे गिरा ॥ ३५ ॥ फिर उस स्त्रीनें महात्मा इन्द्रजीके अमोघ वीर्यसे वानर पति श्रेष्ठ वानरको उत्पन्न किया ॥ ३६ ॥ वालूमें जो इन्द्रजीका वीर्य गिराथा इस निमित्त उस वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्रका नाम वालि हुआ । इसी समय सूर्यनें कामके वशहो ॥ ३७ ॥ इस स्त्रीकी गरदनपर अपना वीर्य गिराया; परन्तु उस श्रेष्ठ शरीरवाली स्त्रीनें ऐसा होनेसेभी कुछ शुभ वचन नहीं कहे ॥ ३८ ॥ सूर्य भगवाननेंभी कामदेवकी व्यथासे छुटकारा पाया और उस गर्दनपर गिरे हुए वीर्यसे सुग्रीवजीकी उत्पत्ति हुई ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे महा बलवान वीर वानर श्रेष्ठ वालिको उत्पन्न करकै और उसको कांचनकी मालादे ॥ ४० ॥ इन्द्रजी तौ स्वर्गको चले गये । यह माला सब गुणोंसे पूर्ण और अक्षयथी। और सूर्य नारायणभी इस प्रकार महा बलवान वीर सुग्रीवको उत्पन्न करकै और पवनकुमार हनुमानजीको ॥ ४१ ॥ अपने पुत्रके कार्य और व्यवसायमें नियुक्तकर सूर्य लोकको आकाश मार्गमें होकर चले गये;हे राजन्! उस रात्रिके वीत जानें और सूर्य भगवानके उदय होनेंपर ॥ ४२ ॥ हेनृप! ऋक्षराज! फिर वानर रूपको प्राप्त हुए; इस प्रकारसे यह वानर होकर अपने दो वानर पुत्रोंको ॥ ४३ ॥ जो कि पीले नेत्रवाले, महाबली, कामरूपी, वानर श्रेष्ठवालि और सुग्रीवको अमृतकी समान मधु पिलाते हुए ॥ ४४ ॥ वह ऋक्षराजा वानरपनको प्राप्तहो अपने पुत्र उन दो वानरोंको ले ब्रह्माजीके निकट गये । लोकपितामह ब्रह्माजीनेंभी अपने पुत्र ऋक्षराजाको देख ॥ ४५ ॥ दोनों पुत्रोंके साथ उस वानरको अनेक प्रकारसे समझाया समझानें बुझानेंके पीछे फिर देव दूतको यह आज्ञादी ॥ ४६ ॥ कि हेदूत! हमारी आज्ञासे तुम शुभ किष्किन्धा पुरीमें जाओ; यह सुवर्ण सम्पन्न अति रमणीय पुरी इन ऋक्षराजके योग्यहै॥४७॥ वहांपर वानरोंके अनेक यूथ वास करतेहैं; व इनके सिवाय औरभी काम रूपी वानरगण इसमें निवास करतेहैं ॥ ४८ ॥ यह नगरी अनेक रत्नसे

परिपूर्ण और दुर्गमहैं चारोंवर्ण इसमें रहतेहैं; यह परम पवित्र और वाणिज्यकी खानिहै। हमारी आज्ञासे विश्वकर्मानें यह दिव्य सुन्दरपुरी बनाईहै॥ ४९॥ तुम उस पुरीमें इन ऋक्षराजको इनके पुत्रोंके सहित स्थापित करो व यूथपाल वानरोंको पुकार और साधारण वानरोंकोभी बुलाय॥ ५०॥ उन सबके साथ अतिआदर मान करकै इनको तुम सिंहासनपर बैठाय राज्याभिषेक करो॥ ५१॥ इन बुद्धिमान वानर श्रेष्ठको देखतेही वह सब वानर सदाके निमित्त हमारे वशहो जायँगे॥५२॥ जब ब्रह्माजीनें इस प्रकारके वचनकहे तब दूत ऋक्षराजाको आगेकर परम रमणीय किष्किन्धा पुरीको गया॥ ५३॥ वह दूत पवनकी समान वेगगतिसे गुहामें वसी हुई किष्किन्धा नगरीमें पहुंचकर वानरश्रेष्ठको ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार राज्यपर स्थापित करता हुआ॥ ५४॥ श्रीमान् ऋक्षराजा, मुकुट धारणकर और उत्तम गहनोंसे भूषित हो राज्याभिषेककी विधिके अनुसार स्नान करकै अभिषिक्त हुए॥ ५५॥ अधिक क्या कहैं ऋक्षराज सब प्रकारसे अर्चित होकर सन्तुष्ट मनसे समुद्रके सहित सात द्वीपोंकी पृथ्वीपर जितने वानरथे वह सब वानर इनकी आज्ञाके वश हुए॥ ५६॥ यह ऋक्षराजही वालि सुग्रीवके पिता और यही इनकी माता हुए, बस यही इनका वृत्तान्त है तुम्हारा मंगल हो॥ ५७॥ जो विद्वान पुरुष इसको श्रवण करावै, या श्रवण करै, उसके मनका हर्ष बढ़ै और उसके सब कार्य सिद्ध हों॥५८॥

एतच्चसर्वंकथितंमयाविभोप्रविस्तरेणेहय
थार्थतस्तत॥ उत्पत्तिरेषारजनीचराणा
मुक्तातथैवेहहरीश्वराणाम्॥ ५९॥

हे प्रभो! राक्षस और वानर लोगोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त हमनें आपसे विस्तार सहित यथार्थ२ वर्णन किया॥ ५९॥ इ०श्रीम०वा० आ०उ०भा०प्रथमः सर्गः॥ १॥

द्वितीयः सर्गः॥

एतांश्रुत्वाकथांदिव्यांपौराणींराघवस्तदा॥
भ्रातृभिःसहितोवीरोविस्मयंपरमंययौ॥ १॥

तब रघुनंदन वीर यह दिव्य पौराणिक कथा श्रवण करकै भ्राताओंके सहित परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी ऋषिके वचन सुनकर बोलेकि आपके प्रसादसे हमनें यह पवित्र कथा सुनी ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! यह विस्तारित कौतूहल वालि और सुग्रीवकी उत्पत्तिका वृत्तान्त जैसे दिव्यहै; वैसाही सम्मतहै ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मर्षे वानर शार्दूल वालि देवनाथ इन्द्रका पुत्र; और कपिश्रेष्ठ सुग्रीव सूर्यके पुत्र हुए; फिर दोनोंही समस्त बलवानोंमें श्रेष्ठ होंगे; इसमें आश्र्चर्यही क्याहै ॥ ४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें यह कहा तब कुम्भसंभव (घड़ेसे उत्पन्न हुए) अगस्त्यजी बोले, हे महावीर प्राचीन कालमें ऐसेही घटना हुईथी ॥ ५ ॥ हे राजन! और एक पुरातन इतिहास सुनो । हे राम! रावणनें जिस निमित्त पूर्वकालमें वैदेहीको हरण कियाथा ॥ ६ ॥ हम वही वृत्तान्त आपसे कहतेहैं आप मन लगायकर सुनें । हे राम! पूर्व सत्ययुगमें प्रजापतिके पुत्र ॥ ७ ॥ सूर्यकी समान शरीर धारण किये अपने तेजसे जाजुल्यमान बैठे हुए सनत्कुमारजीसे राक्षस पति रावण ॥८॥ विनय सहित हाथ जोड़कर वह रावण उन सत्यवादी ऋषिसे बोला ॥ ९ ॥ इस लोकके मध्य देवता लोगोंके बीच कौंन पुरुष ऐसा प्रबल और बलशाली है जिसको आश्रय करकै देवता लोग युद्धमें शत्रु लोगोंको पराजित करतेहैं ॥ १० ॥ और ब्राह्मण लोग जिसकी सदा पूजा करते; योगी लोग सदा ध्यान धरतेहैं । हे भगवन्! हे तपोधन! यह वृत्तान्त विस्तार पूर्वक हमसे कहिये ॥ ११ ॥ महा यशस्वी ऋषि सनत्कुमारजी ध्यानके नेत्रोंसे रावणके हृदयका अभिप्राय जान उससे प्रीति सहित बोले हे पुत्र! सुन! ॥ १२ ॥ जो समस्त जगत्का भरण पोषण करतहैं और जिसकी उत्त्पत्ति हम लोगभी नही जानतेहैं; सुर और असुरगण उस नारायण प्रभु हरिकोही सदा नमस्कार किया करतेहैं ॥ १३ ॥ विश्वजगत्पति ब्रह्माजी जिसकी नाभि कमलसे उत्पन्न हुएहैं; और जिन्होंने यह समस्त चराचर, विश्व स्थावर जंगम मय निर्माण कियाहै ॥ १४ ॥ देवता लोग उसी हरिका सर्व प्रकारसे आश्रय ग्रहण करकै विधिपूर्वक अमृत पिया करते और सन्मानसहित उसकीही पूजा करतेहैं ॥ १५ ॥ अधिक क्याकहैं, वेद; पुराण पंचरात्रि इत्यादि ग्रन्थोंसे योगी लोग नित्य

उसकाही ध्यान धरते; और यज्ञ कर२के उसकीही पूजा किया करते हैं॥ १६॥ राक्षसनाथ रावण महा मुनि सनत्कुमारजीके यह वचन सुन प्रणामकर फिर उन महामुनिसे बोला॥ १७॥ दैत्य, दानव, और राक्षसादि जो कि अपने शत्रु देवता लोगोंसे मारे गयेहैं इनकी क्या गति होगी; और जो हरिसे मारे गयेहैं वह किस गतिको पहुंचेंगे?॥ १८॥ महा मुनि सनत्कुमारजी रावणके वचन सुनकर बोले कि जिनको देवता लोग मारतेहैं; वह लोग नित्य स्वर्गको प्राप्त होतेहैं॥ १९॥ और फिर स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करतेहैं? इसप्रकार पूर्व जन्मोपार्जित सुख दुःखसे उन लोगोंकी जन्म भ्रष्टता हुआ करतीहै॥ २०॥ हे राजन्! जो कि त्रिलोकनाथ चक्रधारी जनार्दन करकै मरेहैं; वह श्रेष्ठ उनमेही लयको प्राप्त होगयेहैं; इस निमित्त उन नारायणका क्रोधभी वरकी समानहै॥ २१॥

श्रुत्वाततस्तद्वचनंनिशाचरःसनत्कुमारस्यमु
खाद्विनिर्गतम्॥ तथाप्रहृष्टःसबभूवविस्मितः
कथंनुयास्यामिहरिंमहाहवे॥ २३॥

निशाचर दशानन सनत्कुमार मुनिके मुखसे निकले हुए यह वचन सुनकर सन्तुष्ट हुआ और विस्मित होकर विचार करनें लगाकि किस प्रकार हम हरिको समरमें प्राप्त होंगे॥ २२॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० उ० भा० द्वितीय सर्गः॥ २॥

तृतीयः सर्गः॥

एवंचिंतयतस्तस्यरावणस्यदुरात्मनः॥ पु
नरेवापरंवाक्यंव्याजहारमहामुनिः॥ १॥

दुष्ट स्वभाववाला रावण जब इस प्रकारसे चिन्ता करनें लगा तब महामुनि सनत्कुमारजीनें फिर कहना आरंभ किया॥ १॥ हे महावीर! तुम सुखी होवो! कुछ कालतक ठहरो तुम्हारे मनमें जो अभिलाषहै महा संग्राममें तुम वही प्राप्त करोगे॥ २॥ महावीर रावण यह वचन सुनकर उन मुनिसे बोला, उनके लक्षण कैसे हैं? सो आप विस्तार सहित

समस्त हमसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ महामुनि सनत्कुमारजी राक्षसपतिके वचन सुनकर बोले हे राक्षसनाथ! सुनो हम तुमसे समस्तही कहते हैं ॥ ४ ॥ यह सनातन देव अव्यक्तहैं, सूक्ष्म, और सर्वगामी हैं, वह इस चराचर समस्त त्रिलोकीमें व्याप्त रहे हैं ॥ ५ ॥ वह भूमि स्वर्ग पाताल वनोंमें, पर्वतोंमें, समस्त स्थावरोंमें, नदियोंमें नगरियोंमें वर्तमानहैं ॥ ६ ॥ वह ॐकार स्वरूप, सत्यस्वरूप सावित्रीस्वरूप और पृथ्वीस्वरूपहैं अधिक क्या कहैं वह धराधरशायी अनन्तके नामसे विख्यातहैं ॥७॥वही दिन, रात, दोनों, संध्या, सूर्य, चंद्रमा, यम,काल, पवन, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र,और जलहैं॥८॥वह अनल रूप धारणकर सब लोकोंको प्रज्वलित करते हैं; चन्द्रमारूपसे सब जगत्में प्रकाश करते हैं, और सूर्यरूपसे सब लोकोंको तापदेते हैं।वरन वही उत्पत्ति, पालन, और संहार किया करतेहैं; एक मात्र संसार नाशक, अव्यय लोकनाथ पुराण विष्णुजीही यह क्रीड़ा किया करते हैं ॥ ९ ॥ हे दशानन! अब अधिक कहनेंका क्या प्रयोजनहै? वह चराचरमय इस समय त्रिलोकीमें व्याप रहे हैं ॥ १० ॥ नीले कमलकी समान श्याम वर्ण देव केशर तुल्य अरुण द्युतिवाले वस्त्र धारणकर वर्षा कालमें सौदामिनी शोभित आकाशमें टिके हुए मेघकी समान शोभायमान होते हैं ॥ ११ ॥ उनके हृदयमें श्रीवत्सका चिह्नहै; लोचन युगल श्रीमान् कमलकी समानहैं; और शरीर उनका मेघकी समान श्याम वर्ण है ॥१२॥ उनकी शोभाका पारावार नहीं संग्राम रूपिणी लक्ष्मी उनकी देह ढककर मेघमें विराजमान दामिनीकी समान उनके शरीरमें स्थान किये हुएहै॥१३॥ सुरगण या असुर गण या नागगण कोईभी उनके देखनेंकी सामर्थ्य नहीं रखता; परन्तु जिसपर वह अनुग्रह करते हैं वही उनके देखनेंको समर्थ होताहै ॥ १४ ॥ हे वत्स! क्या यज्ञफल, क्या संयम, क्या दान, क्या यज्ञ इन किसीकेभी करनेंसे उन भगवानके दर्शन नहीं पाये जाते ॥ १५॥ जो लोग उनके भक्तहैं और उनको मन प्राण समर्पण करकै केवल उनकाही आश्रय लिये हुएहैं और ज्ञानके बलसे जिनके समस्त पाप एकबारही दग्ध होगयेहैं वह लोग उनको देख सकते हैं ॥ १६ ॥ उनके देखनेंकी इच्छा जो तुमको हुईहो तो हम विस्तार सहित सब कहतेहैं जो रुचि

होतो श्रवण करो ॥ १७ ॥ सतयुगके अंतमें, त्रेता युगके प्रारंभमें देवता और मनुष्योंके हितार्थ वह देव नारायण मनुष्य राज शरीर धारण करेंगे ॥ १८ ॥ पृथ्वीके बीच इक्ष्वाकुवंशमें एक दशरथ नामक राजाहोंगे उनके राम नाम एक महा तेजस्वी पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ॥ १९ ॥ वह महाबलवान् पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी क्षमागुणमें पृथ्वीकी समान अत्यन्त तेजस्वी, अति बुद्धिमान विशालबाहु और महात्मा होंगे ॥ २०॥ वह संग्राममें सूर्यकी समान शत्रुगणों करके देखनेके अयोग्यहोंगे; अधिक क्या कहैं वह प्रभु नारायणही राम नामक मनुष्य होंगे ॥ २१ ॥ महा मनस्वी, विभु, धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताजीकी आज्ञासे भ्राताके सहित दंडकादि अनेक वनोंमें विचरण करेंगे ॥ २२ ॥ उनकी स्त्री महा भागा लक्ष्मी सीता नामसे विख्यात होगी वह जनककुमारी सीताजी पृथ्वीसे निकलैंगी ॥ २३ ॥ वह इस प्रकार पृथ्वीमें अद्वितीया सर्व सुलक्षणसमान होंगी, जैसे चांदनी चन्द्रमाके साथ साथ रहतीहै वह भी वैसेही श्रीरामचन्द्रजीकी अनुगामिनी होगी ॥ २४ ॥ वह शीलाचार सम्पन्न, साध्वी धर्म युक्त और सूर्य नारायणकी किरणोंके समान सीता, राम मानों एक मूर्तिमान विराजमान होंगे ॥ २५ ॥ हे रावण! देवदेव शाश्वत अव्यय, महान्नारायणका यह समस्त वृत्तान्त विस्तार पूर्वक हमनें तुमसे कहा ॥ २६ ॥ हे रामचन्द्रजी! महावीर प्रतापवान राक्षस पति रावण यह सुनकर उनके साथ विरोध करनेंकी इच्छासे चिन्ता करनें लगा ॥ २७ ॥ श्रीमान् रावण सनत्कुमारजीके उन वचनोंको वारंवार स्मरण करता हुआ हर्ष संयुक्तहो संग्राम करनेंके लिये भ्रमण करनें लगा ॥ २८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी यह कथा सुनकर विस्मयोत्फुल्ल नेत्रोंसे शिर हिलाय अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥

श्रुत्वातुवाक्यंसनरेश्वरस्तदामुदायुतोवि
स्मयमानचक्षुः॥ पुनश्चतंज्ञानवतांप्रधान
मुवाचवाक्यंवदमेपुरातनम् ॥ ३० ॥

अधिक क्या कहैं वह नरश्रेष्ठराम उस समय यह वचन सुन विस्मय युक्त नेत्रोंसे हर्षके वश ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उन मुनिसे फिर बोले कि आप

हमसे पुरातन कथा कहिये ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० उ० भा० तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थःसर्गः ॥

ततःपुनर्महातेजाःकुंभयोनिर्महायशाः ॥
उवाचरामंप्रणतंपितामहइवेश्वरम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त महायशस्वी कुम्भसम्भव महातेजस्वी अगस्त्यजी प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्रजीसे फिर बोले जिस प्रकार ब्रह्माजी ईश्वरसे बोलते हैं ॥ १ ॥ वह सत्यपराक्रम श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि श्रवण करो, यह कहकर महा तेजस्वी प्रभु अगस्त्यजी कथाका शेष भाग कहनें लगे ॥ २ ॥ वह महामति अगस्त्यजी प्रीतियुक्त चित्तसे यथाख्यान यथाश्रुत, और यथाव्रत श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगे ॥ ३ ॥ हे महावीर महामति श्रीरामचन्द्रजी! दुष्टात्मा रावणनें इसीलिये जनकनंदिनी जानकीको हरण कियाथा ॥ ४ ॥ हे महावीर! महा कीर्ति! हे अजीत नारदजीनें गिरिराज मेरुके शिखरपर हमसे यह वृत्तान्त कथन किया-था ॥ ५ ॥ हे राघव! देव, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि, व और दूसरे महानुभाव जनोंके सामनें हँसते हुए फिर इस कथाके शेष भागको वर्णन कियाथा ॥६॥ हे मानद! हे राजेन्द्र! महातेजस्वी नारदजीनें हँसते २ यह वर्णन कियाथा सो तुम इस महापातक हरिणीकथाको श्रवण करो ॥ ७ ॥ हे महावीरश्रीरामचन्द्रजी! यह कथा सुनकर देवता और ऋषि लोगोंनें हर्षयुक्तनेत्रहो नारदजीसे कहा ॥ ८ ॥

यश्चेमांश्रावयेन्नित्यंशृणुयाद्वापिभक्तितः ॥
सपुत्रपौत्रवान्रामस्वर्गलोकेमहीयते ॥ ९ ॥

कि जो भक्ति पूर्वक यह कथा सुनै या सुनावैगा; वह पुत्र पौत्र युक्त होकर स्वर्ग लोकमें सन्मानित होगा ॥ ९ ॥ इति श्रीम० वा० आ० उ० भाषा० चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः

ततःसराक्षसोरामपर्यटन्पृथिवीतले ॥

विजयार्थीमहाशूरैराक्षसैःपरिवारितः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त वह राक्षसराज रावण महाशूरवीर राक्षसोंको साथ लेकर विजयकी अभिलाषासे पृथ्वीपर घूमनें लगा ॥ १ ॥ दैत्य, दानव या राक्षसोंमेंसे जिस किसीकोभी अधिक बलवान सुना बलदर्पित रावण उसकोही युद्ध करनेंके लिये जायकर पुकारता ॥ २ ॥ हे महिपाल! रावण इस प्रकार सब पृथ्वीपर विचरणकर ब्रह्मलोकसे लौटनेंके समय नारदजीका दर्शन पाता हुआ ॥ ३ ॥ नारदजी दूसरे सूर्यहीकी समान मेघके ऊपर होकर गमन कर रहेथे रावणनें प्रसन्नतासे निकट पहुंच हाथ जोडकर उनको प्रणाम किया ॥ ४ ॥ तब रावण हर्षितहो श्रीनारदजीसे बोला कि हे भगवन्! आपनें ब्रह्माजीसे लेकर कीड़े मकोड़े तक समस्त लोक अनेक प्रकार दर्शन किये हैं ॥ ५ ॥ हे महाभाग! उनमें किस लोकके मनुष्य अधिकबलवानहैं; हम उनके सहित अपनी इच्छासे युद्ध करना चाहतेहैं ॥ ६ ॥ देवर्षि नारदजी एक मुहूर्त भरतक चिन्ता करके रावणसे बोले कि हे राजन्! क्षीर सागरके निकट एक महाद्वीपहै ॥ ७ ॥ वहांपर जो मनुष्य वास करतेहैं वह सबही अति बलवान, चंद्रमाकी समान, दीर्घकाय, महावीर्य युक्त और मेघकी समान गंभीर शब्द वालेहैं ॥ ८ ॥ वह सबहो महाश्रीमान् धैर्यशालीहैं, उनकी बांहें बड़े २ परिघकी समान हैं। हे राक्षसराज! इस लोकमें तुम बल वीर्य सम्पन्न जैसे पुरुषोंकी इच्छा करतेहो, वैसे मनुष्य हमनें श्वेतद्वीपमें देखेहैं, नारदजीके वचन सुनकर रावणनें कहा ॥ ९ ॥ १० ॥ कि हे महाराज! श्वेत द्वीपके मनुष्य किस कारणसे बलवानहैं और वह समस्त महात्मा लोग वहां किस प्रकारसे जायकर वसे ॥ ११ ॥ हे प्रभो! नारदजी! आप हस्तामलककी समान समस्त जगत् सदा देखतेहैं; इस कारण यह समस्त वृत्तान्त यथार्थ २ वर्णन कीजिये ॥ १२ ॥ रावणके वचन सुनकर देवर्षि नारदजी बोले कि वह श्वेतद्वीपवासी समस्त मनुष्य नित्य चित्तसे नारायणपरायणहैं ॥ १३ ॥ और उनमेंही चित्त लगाय तत्परहो एकान्त भावसे नारायणजीकी आराधना करतेहैं; हे राक्षसनाथ! वह सदाही नारायणको चित्त समर्पण कियेहैं ॥ १४ ॥ उनमेंही प्राण लगा-

येहैं वह सब अतिमहात्मा नारायणजीमें लीनहैं इसी कारणसे वह सब महात्मा श्वेतद्वीपमें बसेहैं ॥ १५ ॥ चक्रधारी, लोकनाथ, देव नारायण, शारंग धनुष, झुकाय जिनका संग्राममें संहार करतेहैं उनका स्वर्गमें और वहां वास होता है ॥ १६ ॥ हे तात ! क्या यज्ञ फल, क्या तपस्या, क्या समस्त प्रधान २ दानफल किसीसेभी सालोक्यफलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ १७ ॥ नारदजीके वचन सुन रावण विस्मितहो कुछ विलम्बतक चिन्ताकर बोला कि हम उनकेही साथ विहार करेंगे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त रावण नारदजीसे कहकर श्वेतद्वीपको चला गया; नारदजीभी अनेक क्षण चिन्ताकर कौतूहलान्वितहो ॥ १९ ॥ परमाश्चर्य युक्त संग्राम देखनेंकी वासनासे शीघ्रही श्वेतद्वीपको गये क्योंकि वह सदा संग्राम चाहनेंवाले और तमासा देखनें वाले हैं ॥ २० ॥ हे राघव ! रावणभी घोर सिंहनाद कर २ के दशों दिशाओंको विदारण करता हुआ राक्षसोंके साथ वहां गया ॥ २१ ॥ जब नारदजी वहां पहुंचे तब महा यशवान रावण देवता लोगोंकोभी दुर्लभ श्वेत नामक एक महाद्वीपमें पहुंचा ॥ २२ ॥ परन्तु उस द्वीपके तेज प्रभावसे बलवान रावणका पुष्पक विमान वायुके वेगसे टकराकर ॥ २३ ॥ पवनसे टकराये हुए बादलकी समान टिके रहनेंको समर्थ न हुआ । राक्षसपति रावणके मंत्रिलोगभी कठिनतासे देखनेंके योग्य द्वीपमें पहुंचकर ॥ २४ ॥ भय सहित रावणसे कहनेंलगे कि हे निशाचरनाथ ! हम सब त्रासके मारे जड़की समान संज्ञाहीनहो गये हैं ॥ २५ ॥ इस कारण हम यहां किसी प्रकारसेभी नहीं ठहरसकते; यह कहकर समस्त राक्षसगण दशों दिशाओंको भागनें लगे ॥ २६ ॥ तब रावणनें इन सब राक्षसोंके साथ सुवर्णभूषित पुष्पक विमानको विदा कर दिया ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त जब पुष्पक विमान विदा होगया तब राक्षसराज रावण महाभयंकर मूर्ति धारणकर सब राक्षसोंको छोड़ ॥ २८ ॥ अकेलाही श्वेतद्वीपमें प्रवेश करता हुआ, जब रावणनें श्वेत द्वीपमें प्रवेश किया तब वहां की स्त्रियोंने इसे देखा ॥ २९ ॥ उन स्त्रियोंमेंसे किसी एक स्त्रीनें रावणका हाथ पकड़ मुसकुराय कर पूछा कि यहांपर किस कारणसे आये हो सो कहो ॥ ३० ॥ तुम कौन हो? किसके पुत्रहो? और किस कारणसे तुम्हारा यहांपर आगमन हुआहै? सो

बताओ । हे राजन्! राजा रावणनें यह वचन सुन क्रोधित होकर कहा ॥ ३१ ॥ हम विश्रवामुनिके पुत्रहैं, हमारा रावण नामहै; हम संग्राम के अभिलाषी होकर यहां पर आयेहैं; परन्तु यहां तो हमको कोई दीखताही नहीं ॥ ३२ ॥ जब दुरात्मा रावणनें इस प्रकारसे कहा तब सब स्त्रियें मधुर स्वरसे हँसनें लगीं ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त उनमेंसे एक स्त्रीनें कोपकर एक खेलही में रावणको बालककी समान पकड़ लिया, और उसकी कमर पकड़ उसको सब सखियोंके बीचमें घुमानें लगी ॥ ३४ ॥ और एक सखीको पुकारकर कहाकि देखो आली! हमनें एक छोटे कीड़ेकी समान यह अञ्जनवर्ण दशमुख और बीस बाहुका एक जीव पकड़ाहै ॥ ३५ ॥ तब घुमाये जानेंसे थका हुआ रावण एक हाथसे दूसरे हाथमें पकड़ा जायकर घूमनें लगा । इस प्रकारसे जब बलवान विद्वान रावण घुमाये जाने लगे ॥ ३६ ॥ तब इसनें बड़ा कोपकर उस सुन्दरी स्त्रीके हाथमें बड़े जोरसे काट खाया; वैसेही उस स्त्रीनें हाथकी पीड़ासे व्याकुल हो इस शुभ कीड़ेको छोड़ दिया ॥ ३७ ॥ यह देखकर एक और स्त्री राक्षस रावणको पकड़कर आकाश मार्गमें उड़ गई; वैसेही रावणनें अति कोपकर उसको भी नोंच कर विदारण किया ॥ ३८ ॥ भयातुर रावणको जब उस स्त्रीनें छोड़ दिया तब रावण अति जोरसे समुद्रके जलमें गिरा ॥ ३९ ॥ वज्रसे टूटा हुआ पर्वतका शिखर जिस प्रकार समुद्रमें गिर पड़ताहै वैसेही रावणभी छुटकर समुद्रमें गिरा ॥ ४० ॥ हे राम श्वेतद्वीपकी रहने वाली स्त्रियें अति शीघ्र रावणको पकड़कर इस प्रकारसे बारंबार घुमाय रहीथीं ॥ ४१ ॥ महा तेजस्वी नारदजीभी रावणको पीड़ित देखकर विस्मय सहित हँसे और नाचनें लगे ॥४२॥ हे महावीर! दुरात्मा रावणनें यह वृत्तान्त जानकरही तुम्हारे हाथसे मृत्युकी कामना करकै सीताजीको हरण कियाथा ॥ ४३ ॥ तुम शंख चक्र गदाधारी देव नारायणहो; तुम्हारें हाथमें शारंग धनुष पद्म और वज्रादि आयुध विराजमान हैं तुम्हें समस्त देवता नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥ तुम सर्व देवताओंसे पूजेजातेहो; श्रीवत्साङ्कित हृषीकेशहो, तुम महायोगी पद्मनाभ और भक्त लोगोंको अभय देने वालेहो ॥ ४५ ॥ आपनें रावणका वध करनेंके लिये मनुष्य अवतार धारण कियाहै; अधिक क्या कहैं; क्या

आप अपनेको नारायण नहीं जानतेहैं ॥ ४६ ॥ हे महाभाग ! मोहको प्राप्त न हो ! आत्मज्ञानसे अपनेको स्मरण करो; तुम गुप्तसेभी अधिक गुप्त हो ऐसा पितामह ब्रह्माजीनें कहाहै ॥ ४७ ॥ हे राघव ! तुम सत्व रज और तमोगुण स्वरूपहो । तुम ऋक्, यजु, साम, यह तीन वेदहो, तुम स्वर्ग, मृत्यु, पाताल इन तीन लोकके वासी हो; भूत, भविष्य, वर्तमान, इन तीन कालोंमें तुम कार्य किया करतेहो । तुम धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, इन तीन वेदोंमें पारदर्शी हो, तुम देवताओंके शत्रुओंका संहार करनें वाले हो ॥ ४८ ॥ तुम इन्द्रके छोटे भाईहो तुमनें वामन होकर बलिको बांधा और पुरातन त्रिविक्रमसे त्रिलोकीको नांप लियाथा ॥ ४९ ॥ तुम अदितिके गर्भसे उत्पन्नहो, तुम वही सनातन विष्णुहो केवल सबपर अनुग्रह करनेंके लिये ही आपनें मनुष्यअवतार धारण कियाहै ॥ ५० ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! आपने पुत्र, बान्धव और सैनाके सहित पापी रावणको संग्राममें मारकर देवता लोगोंका कार्य पूरा कियाहै ॥ ५१ ॥ हे सुरेश्वर ! आपके प्रसादसे समस्त देवता लोग और तपोधन ऋषिगण सन्तुष्ट हुएहैं; और सब जगत्‌भी शान्तिको प्राप्त हुआहै ॥ ५२ ॥ हे प्रभो ! महाभागा लक्ष्मीजी सीताजी हुईं; वह पृथ्वीपर प्राप्तहो आपके निमित्तही राजाज नकजीके गृहपर उत्पन्न हुई ॥ ५३ ॥ रावणनें लंकामें लेजाय अति यत्न सहित माताके समान सदा उनकी रक्षाकी थी; हे महायशस्वी राम ! यह समस्त वृत्तान्त हमनें आपके निकट वर्णन किया ॥ ५४ ॥ दीर्घजीवी नारदजीने ऋषि सनत्कुमारजीकें मुखसे श्रवण करकै हमारे निकट इस प्रकार वर्णन कियाथा सनत्कुमारजीनें रावणसे जिस प्रकार कहाथा ॥ ५५ ॥ रावणनें सर्व भांतिसे वैसाही किया; जो विद्वान श्राद्धके समय ब्राह्मणके निकट यह उपाख्यान श्रवण करै ॥ ५६ ॥ उसका दिया हुआ अन्न पितृ लोगोंके निकट पहुंचताहै; यह दिव्य कथा सुनकर राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजी ॥ ५७ ॥ अपने भ्रातालोगोंके सहित परम विस्मयको प्राप्त हुए वानरोंके सहित सुग्रीवजी राक्षसोंके सहित बिभीषणजी ॥ ५८ ॥ मंत्रियोंके सहित राजा लोग व औरभी आये हुए धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ॥ ५९ ॥ सबही हर्षितहो नेत्र फैलाय २ अति प्रसन्नतासे श्रीरामचंद्रजीको वारंवार निहार बलिहार होनें लगे ॥ ६० ॥

ततोगस्त्योमहातेजाराघवंचेदमब्रवीत् ॥
दृष्टाःसभाजिताश्चापिरामयास्यामहेवयम् ॥
एवमुक्त्वागताःसर्वेपूजितास्तेयथागतम् ॥ ६१ ॥

इसके उपरान्त महा तेजस्वी अगस्त्यजी श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हे रामचंद्रजी! हमनें आपके दर्शनभी किये; और हम सन्मानितभी हुए; इस कारण अब हम जायँगे। वह सब ऋषिलोग इस प्रकारसे पूजितहो जो जिस ओरसे आयेथे वह उसी ओरको चले गये ॥ ६१ ॥ इ०श्रीम० वा०आ०उ०भा०अगस्त्यवाक्यं नाम पंचमः सर्गः ॥५॥ क्षेपकः समाप्तः ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

एवमास्तेमहाबाहुरहन्यहनिराघवः ॥
अशासत्सर्वकार्याणिपौरजानपदेषुच ॥ १ ॥

रघुनंदन महावीर श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार सर्वपूजितहो पौर और जन पदसम्बन्धीय कार्य शासन करते हुए समय वितानें लगे ॥ १ ॥ कुछ दिन बीत जानेंपर श्रीरामचंद्रजी हाथ जोड़कर वैदेहमिथिलाधिपति जनकजीसे बोले ॥ २ ॥ कि आपही केवल हमारे गतिहैं; हम आप करकेही पालितहैं; और हमनें आपकेही उग्र तपवीर्यकी सहायतासे रावणको माराहै ॥ ३ ॥ हे राजन्! समस्त इक्ष्वाकुगणोंके और समस्त मैथिल लोगोंकी प्रीतिकी उपमानहीं, और सम्बन्धभी अनुपमहै ॥ ४ ॥ हे महिपाल! आप अपने गृहको गमनकीजिये; भरतजीभी हमारे दिये रत्न ले सहायताके निमित्त आपके पीछे २ गमन करैंगे ॥ ५ ॥ जनकराज श्रीरामचंद्रजीके वचन स्वीकारकर उनसे बोले कि हे राजन्! आपकी नीति और आपका दर्शनकर हम प्रसन्न हुएहैं ॥ ६ ॥ परन्तु आपनें हमारे लिये जो रत्नसंचय कियेहैं हमनें वह समस्त रत्न दोनों बेटियोंको देदिये ॥ ७ ॥ जब राजा जनकजी चले गये, तब श्रीरामचंद्रजीनें हाथ जोड़ विनीतहो केकयराजपुत्र अपने मामा युधाजितसे कहा कि ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! केकयराजपुत्र! हम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और यह अयोध्याका राज्य सबही आपकाहै अधिक क्या कहैं, आपही निरापद

कालमें हमारे एक मात्र गतिहैं ॥ ९ ॥ केकयराज वृद्धहैं; इस कारण आपके लिये संतापित होते होंगे हे नृपति! इस कारण हम आजही आपका जाना अच्छा समझतेहैं ॥ १० ॥ वहुत सारा धन और विविध भांतिके रत्नले लक्ष्मणजी अनुयायी हो आपके पीछे २ जांयगे॥ ११ ॥ तव युधाजितनें जाना स्वीकार करकै कहाकि हे रामचंद्र! तुम्हारा धन और रत्न अक्षय होवे ॥ १२ ॥ प्रथम रामचंद्रजीनें प्रदक्षिणा करकै उनको प्रणाम किया फिर केकयकुमार युधाजित श्रीरामचंद्रजीकी प्रदक्षिणा कर और प्रणाम जनाय ॥ १३ ॥ लक्ष्मणजीको सहायक बनाय अपने राज्यको ऐसे चले जैसे वृत्रासुरके मारेजानेंपर इन्द्रजी विष्णुजीके साथ गयेथे ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी उनको विदाकर मित्र काशिनाथ प्रतर्दनको भेटकर बोले ॥ १५ ॥ हे राजन्! आपनें संग्राममें सहायता करनेंके लिये भरतजीके साथ उद्योग कियाथा; इस कारण आपनें हमारे प्रति परम सुहृदता और प्रीति दिखाई ॥ १६ ॥ अब इस समय आप रमणीक काशीपुरीको जांय, विशेष करकै सुन्दर धवरहरोंसे युक्त तोरण समन्वित यह वाराणसी नगरी आपसेही रक्षित होतीहै ॥ १७ ॥ धर्मात्मा काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजीनें यह कह उत्तम आसनपरसे उठ इन धर्मात्मा राजाको अतिप्यार पूर्वक हृदयसे लगाया ॥ १८ ॥ फिर कौशल्याकी प्रीतिके बढ़ानेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें उनको विदा किया; वह निडर काशिराजाभी रामचंद्रजीकी आज्ञा पाय ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजीको छोड़ अति शीघ्र वाराणसी (आज कलकी वनारस) को चले गये काशिनाथको विदाकर तीनशत ३०० राजाओंसे ॥ २० ॥ हँसकर मधुर वचनोंसे श्रीरामचंद्रजी बोले कि; आप लोगोने योग्यताके अनुसारही अचंचलहो प्रीतिकी रक्षा कीहै ॥ २१ ॥ आप लोगोंकी सदा धर्ममें निश्चयता, सर्वदा सत्य व्यवहार अनुभाव और तेजके प्रभावसेही दुष्ट स्वभाववाला मन्दबुद्धि राक्षसोंमें नीच रावण मारागयाहै हम तौ उसका वध करनेंमें केवल हेतुमात्रहैं. मारा तौ वह आपहीके तेज प्रभावसे गयाहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ यह रावण सेना, मंत्री, व अपने बंधु बान्धवोंके सहित मारागया। महात्मा भरतजीनें आप लोगोंको यहां बुलाया ॥ २४ ॥ सो उन्हौने इसकारण बुलाया कि इन्हौंने

जनकराजकुमारी सीताजीका वनमें हरण होना सुना, सो सहायता करनेंके लिये इन्होंने आपको परिश्रम दिया । परन्तु बड़े भाग्यकी बातहै कि आप लोगोंको क्लेश नहीं पानापड़ा, महानुभाव आप सब राजालोगोंनें इस कारण उद्योग कियाथा ॥ २५ ॥ आपको यहांपर आये हुए बहुत दिन होगयेहैं सो इससमय हमारी यह रुचि होतीहै कि आप लोग अपने२ स्थानको जांय तब राजा लोगोंनें परम प्रसन्न होकर कहा ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! बड़े भाग्यबलसे आपनें राज्य पायाहै; और भाग्यसेही सीताजी फिर मिलीहैं और यहभी बड़े भाग्यकी बातहै कि शत्रु रावण पराजित हुआहै ॥ २७ ॥ हे महाराज रामचंद्रजी ! हम लोगोंने देखा कि आपनें शत्रुकुलका संहार करके जय पाईहै इससेही हमारी वासना अति सिद्ध हुई और हम परम प्रसन्न हुएहैं ॥ २८ ॥ आप जो हमारी प्रशंसा करतेहैं यह तौ आपका स्वभावहीहै; आप लोकाभिराम, रामहैं, आपकी प्रशंसा हमको करनी चाहिये परन्तु हम लोग ऐसे वाक्य नहीं जानते कि जिनसे आपकी प्रशंसा की जाय ॥ २९ ॥ हे महावीर ! आप हम लोगोंके हृदयमें सदा विराजमान रहतेहैं, इसकारण उस विषयकी बड़ी प्रीतिके वश होकर हम अपने हृदयमें जैसा व्यवहार करैंगे ॥ ३० ॥ सो हे महाराज ! हम चाहते हैं कि हमारे सबके ऊपरभी आपकी वैसीही प्रीति रहै, फिर राजा लोग अत्यन्त प्रफुल्लहो ॥ ३१ ॥

ऊचुःप्रांजलयःसर्वेराघवंगमनोत्सुकाः ॥ पूजि
तास्तेचरामेणजग्मुर्देशान्स्वकान्स्वकान् ॥३२॥

हाथ जोड़ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हम अपने२ राज्योंमें गमन करेंगे; सो यह आपसे निवेदन करतेहैं; तब श्रीरामचंद्रजीनें उन राजाओंको आज्ञादी और वह सब राजा सन्मानित होकर अपने२ देशोंको चले गये ॥ ३२ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० अष्टत्रिंशः सर्गः ॥३८॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

तेप्रयातामहात्मानःपार्थिवास्तेप्रहृष्टवत् ॥
गजवाजिसहस्रौघैःकंपयंतोवसुंधराम् ॥ १ ॥

महात्मा राजालोग हजारों हाथी घोड़ोंके समूहसे पृथ्वीको कंपायमान करतेहुए दशोंदिशाओंको चले गये ॥ १ ॥ वाहनोंसे युक्त अनेक अक्षौहिणी सैना हर्षित होकर श्रीरामचंद्रजीकी सहायता करनेंके लिये भली भांतिसे तैयारहो भरतजीकी आज्ञानुसार अयोध्याजीमें टिकी हुईथी॥२॥ वह सब महिपाल पहले सैनाके साथ रहनें और गर्वके वश होनेंसे कहनें लगे कि हमने रामके शत्रु रावणको संग्राममें नहीं देखपाया ॥ ३ ॥ इसलिये रावणका वध हो जानेंपर भरतजीनें वृथा हमको बुलाया, यदि पहले हमको बुलाते तौ हम अति शीघ्र रावणको निःसन्देह संहारही करडालते ॥ ४ ॥ हम लोग राम और लक्ष्मणके बाहुवीर्यसे रक्षित और क्लेश विहीनहो समुद्रके पार सुखसे संग्राम करते ॥ ५ ॥ राजा लोग उसकालमें हर्ष युक्त हो इस प्रकारके हजारों वचन कहते२ अपनें२ राज्योंमें चले गये ॥ ६ ॥ वह प्रसिद्ध समस्त साम्राज्य, महारत्न, धन और धान्यसे समृद्धि सम्पन्न और हर्षितजनोंसे परिपूर्णथे ॥ ७ ॥ राजा लोग अपने २ स्थानोंमें अक्षत शरीरसे गमन करकै श्रीरामचंद्रजीकी प्रियकामनासे विविध भांतिके रत्नोंको उपहार देनेलगे ॥ ८ ॥ इसके सिवाय, अश्व यान मदमत्त हाथी, उत्तम चन्दन, दिव्य आभरण ॥ ९ ॥ मणि, मुक्ता, प्रवाल, रूपवती दासी, विविध भांतिके श्रेष्ठ चमड़े, और अनेक रथ ॥ १० ॥ इन सब अनुयायियोंनें भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्नजीको उपहार दिये, महा बलवान लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नजी वह सब रत्नलेकर अपनी पुरीको लौट आये ॥ ११ ॥ उन पुरुषश्रेष्ठोंने रमणीक अयोध्यापुरीमें आयकर वह सब विचित्र रत्न श्रीरामचंद्रजीको भेंट दिये ॥ १२ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीनें अत्यन्त प्रीति सहित उन सब रत्नोंको लेकर कार्य सिद्ध करकै आये हुए राजा सुग्रीवको दे दिये॥१३॥ और राक्षसराज विभीषणजीकोभी दिये। जिन वानर गण व निशाचर गणों के साथ लंकामें श्रीरामचंद्रजीनें जय पाईथी ॥ १४ ॥ इन सब बलवान राक्षस गणोंनें श्रीरामचंद्रजीके दिये हुए रत्न शिरपर और हाथोंपर धारण किये ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकु नरपति महारथी वीर्यवान श्रीरामचंद्रजीनें महावीर अंगदजी व हनुमानजीको बालककी समान अपनी गोदीमें लेलिया ॥ १६ ॥ फिर कमलदलकी समान विशालनेत्रवाले श्रीरामचंद्रजी

सुग्रीवजीसे बोलेयह अंगदजी तुम्हारे सुपुत्र और यह पवनकुमार हनुमान तुम्हारे सुमंत्रीहे ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव यह दोनों ही तुम्हारी मंत्रणामें नियुक्त और विशेष करके हमारे हितकारो कार्यमें निरतहैं इस कारण हे हरीश्वर! इनका आदर सन्मान अनेक प्रकारसे करना चाहिये ॥ १८ ॥ महायशस्वी श्रीरामचंद्रजीने यह वचन कहकर महा मोलके गहने अपने शरीरसे निकालकर अंगद व हनुमानजीको पहरायदिये ॥ १९ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीनें महावीर्यवान वानर यूथपोंसें संभाषण किया नील, नल, केशरी, कुमुद, गन्धमादन ॥ २०॥ सुषेण, पनस, वीर मैन्द, व द्विविद, जाम्बवन्त गवाक्ष, विनत, धूम्र ॥ २१ ॥ वलीमुख, प्रजंघ, महा बलवान सन्नाद, दरीमुख, दधिमुख, व इन्द्रजानु इत्यादि यूथपोंसे ॥२२॥ मधुर वचन श्रीरामचंद्रजीनें कहे श्रीरामचंद्रजी दोनों नेत्रोंसे पानही करते हुए उनसे मनोहर वचन कहनें लगेकि तुम सवही हमारे सुहृदहो, देह और भ्राताओंकी समान हो॥२३॥ हे वनवासी गण तुम लोगोंनेंही हमको विपदके समुद्रसे उद्धार कियाहै । राजा सुग्रीव ही धन्य हैं और तुम्हारी समान श्रेष्ठ बन्धु ही धन्य है ॥२४॥ नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनें यह कहकर उन लोगोंको यथायोग्य वडे २ मोलके वस्त्र व हीराजटित भूषण दिये और उनसे मिले ॥ २५ ॥ वह मधुपिंगल समस्त वानरगण सुगन्धियुक्त मधु पीनेंलगे और मीठे फल व मूल भक्षण करनें लगे ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे रहते २ उनको एक महीनेसे अधिक वीतगया परन्तु श्रीरामचंद्रजीके प्रति भक्ति होनेंसे उनको यह महीना मुहूर्तकी समान जानपड़ा ॥ २७॥ श्रीरामचंद्रजीभी उन कामरूपी वानर वीर्यवान राक्षस और महावलवान् रीछोंकें संग क्रीड़ा करनें लगे ॥२८॥ सन्तुष्ट चित्त वानर और राक्षसोंको इस प्रकारसे दूसरा शिशिर मासभी वीत गया ॥ २९ ॥

इक्ष्वाकुनगरेरम्येपरांप्रीतिमुपासताम् ॥
रामस्यप्रीतिकरणैःकालस्तेषांसुखंययौ ॥ ३० ॥

श्रीरामचंद्रजीसे परम सन्मान पाय प्रसन्नताको प्राप्त करते २ रमणीक इक्ष्वाकु नगरीमें वानरोंका सुखसे समय व्यतीत होनें लगा ॥ ३० ॥ इ० श्रीम०वा०आ०उ०भा० एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥

तथास्मतेषांवसतामृक्षवानररक्षसाम् ॥
राघवस्तुमहातेजाःसुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इस प्रकारसे रीछ, वानर, और राक्षस गण अयोध्याजीमें समय बितानें लगे इसके उपरान्त महा तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीनें सुग्रीवजीसे कहा ॥१॥ हे सौम्य! सुर असुरोंसे दुर्द्धर्ष किष्किन्धा नगरीमें जायकर वहां अपने मंत्रियोंके साथ निष्कण्टक राज्य भोगो ॥ २ ॥ हे महावीर! तुम परम प्रीतियुक्त होकर महावलवान् अंगदजी हनुमान और नलको देखा करना ॥ ३ ॥ श्वशुर सुषेण, वलवानोंमें श्रेष्ठ वीर तार, दुर्द्धर्ष कुमुद महा वलवान् नील, ॥ ४ ॥ वीर शतवलि, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, महावलवान शरभ; ॥ ५ ॥ महावलवान दुर्द्धर्ष ऋक्षराज जाम्बवान इन सबको आप प्रीतियुक्त चित्तसे देखिये,इनके अतिरिक्त गन्धमादन॥६॥विक्रमकारी ऋषभ, सुपाटल केशरी, शरभ, शुम्भ, महावलवान शंखचूड॥७॥ व और जिन वानर वीरोंनें हमारे लिये अपना जीवन वार दियाहै, हे सुग्रीव तुम इन सबको प्रेम सहित पालन करना, देखो इनके साथ ऐसा न करना जो इनको बुरा लगे ॥ ८ ॥ सुग्रीवसे वारंवार भेंटकर श्रीरामचन्द्रजीनें मधुर वचन बिभीषणसे कहे ॥ ९ ॥ हम जानते हैं कि आप धर्मज्ञहैं, पुरवासी, जन, मंत्री राक्षसगण, और तुम्हारे भ्राता कुवेरभी तुमसे स्नेह करतेहैं; इस निमित्त जाओ अव धर्म सहित लङ्काका राज्य करो ॥ १० ॥ हे राजन्! बुद्धिमान राजा लोग सदा पृथ्वी मंडलको भोग किया करते है इस कारण तुम कभी अपनी मति अधर्ममें मत करना ॥ ११ ॥ हे राजन्! तुम हमारी और सुग्रीवजीकी सदा याद करते रहना, अव क्लेश रहित हो परम प्रसन्नता पूर्वक तुम यहांसे जाओ ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर रीछ, वानर, और राक्षस गण धन्य २ कह वारंवार श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई करनेंलगे ॥ १३ ॥ वह कहनें लगे हे श्रीरामचन्द्रजी! आपकी बुद्धि स्वयं ब्रह्माजीकी समानहै, वैसाही सर्व श्रेष्ठ माधुर्य आपमें है ॥ १४ ॥ जब वह वानर और निशाचर लोग ऐसा कहनें लगे तब हनुमानजी प्रणामकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १५ ॥ हे वीर राजन्!

आपमें हमारी परम भक्ति रहै और स्नेहभी लगा रहै; व हमारा मन आपको छोड़कर और किसीमें अनुरागी नहो ॥ १६ ॥ हे वीर ! जबतक राम कथा पृथ्वीपर गाई जावै तबतक हमारे प्राण हमारी देहको न छोड़ैं इसमें संदेह नहो ॥ १७ ॥ हे रघुनंदन आपका कथारूप जो यह दिव्य चरित्रहै हे पुरुषश्रेष्ठ राम यह चरित्र सदाही हमको अप्सरायें सुनाया करैं ॥ १८ ॥ हे प्रभो वीर आपका चरितामृत श्रवण करके हम आपके दर्शन मिलनेसे उत्पन्न हुई उत्कंठाको दूर करैंगे, जैसे पवन मेघोंको भगाय देताहै ॥ १९ ॥ जब हनुमानजीनें यह वचन कहे तब श्रीरामचन्द्रजीनें श्रेष्ठ आसनपरसे उठ स्नेहके मारे उन्हे भेंटकर कहा॥२०॥हे कपिश्रेष्ठ! जो कुछ तुमनें प्रार्थना की वही होगा इसमें संशय नहीं; जबतक हमारी कथा इस लोकमें होती रहैगी ॥ २१ ॥ तबतक तुम्हारी कीर्तिभी यहां विद्यमान रहैगी, और तबहीतक तुमभी शरीर धारण करके वास करोगे अधिक क्या कहैं जबतक यह सब लोक रहैंगे तबहीतक हमारी कथा रहैगी ॥ २२ ॥ हे वानर! जो उपकार तुमनें हमारे किये हैं; उन उपकारोंमेंसे एक उपकारके लिये प्राणदान करकेभी हम ऋणसे नहीं छूट सकते हैं परन्तु तुम्हारे उपकार और जो बाकी बचेहैं उनके हम सदाही ऋणी रहैंगे ॥ २३ ॥ हे वानर तुमने जो उपकार कियेहैं वह हमारे अंगमें जीर्ण हो जांय कारण कि आपदकाल आपड़नेंपर मनुष्य प्रत्युपकारके पात्र हुआ करते हैं ॥ २४ ॥ यह कहकर श्रीरामचंद्रजीनें बीच २ में वैदूर्यमणियोंसे शोभित; चंद्रमाकी प्रभा तुल्य दमकता हुआ हार कंठसे निकाल हनुमानजीके गलेमें पहराय दिया ॥ २५ ॥ सुवर्ण शैलराज सुमेरु अपने ऊपर पड़ी हुई चंद्रमाकी किरणोंसें जिसप्रकार शोभित होताहै; वैसेही हनुमानजीकी छातीमें पड़ाहुआ वह हार शोभा विस्तार करनें लगा ॥ २६ ॥ श्रीरामचंद्रजीके पहले कहे हुए यह वचन सुनकर महाबलवान वानर लोग एक २ करके उठे; और श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें मस्तक रख प्रणाम करके चले ॥ २७ ॥ सुग्रीव धर्मात्मा विभीषणजी श्रीरामचंद्रजीसे भली भांति भेट करते हुए, और राम, सुग्रीव, विभीषण इन तीनोंके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा चलने लगी और यह विह्वल होगये ॥ २८ ॥ वानर लोग जब श्रीरामचंद्रजीको छोड़कर चले तब दुःखके मारे उनके

नेत्रोंसे आंसू निकलने लगे वरन वाफसे उनका कंठ रुक गया; इससे कुछ बात चीत न कर सके और चेतना रहित होकर वह सबके सब मूर्छित होगये ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे महात्मा श्रीरामचंद्रजीका प्रसाद पाय समस्त वानरादि देहत्यागी देहकी समान अपने २ घरों को चले ॥ ३० ॥

ततस्तुतेराक्षसऋक्षवानराःप्रणम्यरामंरघुवं शवर्धनम् ॥ वियोगजाश्रुप्रतिपूर्णलोचनाःप्रति प्रयातास्तुयथानिवासिनः ॥ ३१ ॥

इसके उपरान्त राक्षस रीछ और वानरगण; राम वियोगसे उत्पन्न आंसुओंसे नेत्र गीले कर रघुवंशके बढ़ानेंवाले श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम जताय जो जिस देशसे आये थे वह उसी देशको गये ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा ० आ ० उ ० भा ० चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

विसृज्यचमहाबाहुर्ऋक्षवानरराक्षसान् ॥ भ्रातृ भिःसहितोरामःप्रमुमोदसुखंसुखी ॥ १ ॥

वानर, राक्षस, और रीछोंको विदा देकर महावीर श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राताओंके सहित सुखीहो हर्ष प्राप्त करनेंलगे ॥ १ ॥ कुछ काल बीते महाविभु श्रीरामचंद्रजीनें अपने भ्राता लोगोंके सहित अपराह्नके समय आकाशसे निकले हुए यह वचन सुने ॥ २ ॥ " हे सौम्यराम! आप हमको प्रसन्न वदनसे निहारिये; हे प्रभो! हम पुष्पक कुबेरजीके भवनसे आयेहैं ॥ ३ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आपकी आज्ञा पायकर धनद कुबेरजीके निकट हम उनकी उपासना करनें गये थे; परन्तु उन्होंने हमसे यह कहा,– ॥ ४ ॥ महात्मा रघुनंदन नृपति श्रीरामचंद्रजीनें राक्षसपति दुर्द्धर्ष रावणको समरमें संहारकर तुमको जीत लियाहै ॥ ५ ॥ वह दुरात्मा रावण, पुत्र, बान्धव और अपने इष्ट मित्रोंके सहित मारा गया इस्से हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! परमात्मा श्रीरामचं- द्रजी लंकासे तुमको जीतकर लायेहैं; इसलिये हम तुमको आज्ञा देतेहैं कि तुम उन्ही श्रीरामचंद्रजीको अपने ऊपर चढ़ाओ ॥ ७ ॥ तुम

भूरादि समस्त लोकोंमें ले जानेंको समर्थहो; इस कारण तुम श्रीरामचंद्रजीको अपने ऊपर चढ़ाये फिरो यही हमारी अभिलाषहै इस्से तुम किसी प्रकारका दुःख न मानकर उनके निकट चले जावो ॥ ८ ॥ सो महात्मा कुबेरजीकी आज्ञाकेअनुसार हम आपके निकट आयेहैं; अतएव आप शंका रहित होकर ग्रहण करैं ॥९॥ धनद कुबेरजीकी आज्ञासे हमको कोई प्राणी धर्षण नहीं कर सक्ता इस कारण हम आपकी आज्ञाका पालन करते हुए प्रभावानुसार विचरण करैंगे" ॥ १० ॥ महाबलवान श्रीरामचंद्रजी पुष्पकके ऐसे वचन सुनकर फिर आये और आकाशमें टिके हुए पुष्पकको देखकर बोले ॥ ११ ॥ हे वाहनश्रेष्ठ पुष्पक! यदि ऐसाही हुआ हो तो तुम्हारा आना सुखकारीहो; अब कुबेरजीकी अनुकूलतासे हमको सद्व्यवहारके उलंघन करनेंका दोष नहीं होगा ॥ १२ ॥ तब महावीर श्रीरामचंद्रजीनें; पुष्प, खीलैं, और सुगन्ध, व धूपसे पुष्पक विमानकी पूजा कर उस्से कहा ॥ १३ ॥ अब तुम गमन करो; हे विभुसौम्य! जब हम तुमको याद करैं; तब तुम सिद्ध लोगोंके दिखाये हुए शून्य मार्गमें आना; हमारे वियोगका तुम कुछ दुःख न करना ॥ १४ ॥ तुम चाहे जिस दिशाको जाओ तुमको कोईभी नहीं रोक सकैगा; इसकारण तुम अभिलाषानुरूप गमन करो; यह कह पूजा करके श्रीरामचंद्रजीनें उसको विदा किया ॥ १५ ॥ तब पुष्पक विमान "ऐसाही होगा" यह कह जिस ओरकी उसनें इच्छाकी उस ओरको चलागया, जब पुष्पक विमान कृतार्थ होकर इस प्रकारसे अंतर्ध्यान होगया ॥ १६ ॥ तब भरतजीनें हाथ जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे कहा । हे वीर! आप देवता स्वरूपहैं; सो आपके राज्य समयमें ॥ १७ ॥ हम लोगोंनें कितनीही वार अमनुष्य प्राणी और पदार्थोंको मनुष्योंकी समान आपसमें वात चीत करते देखा, आपको राजा हुए कई महीने बीते परन्तु इस समयमें प्रजा लोगोंको कोईभी रोग नहीं हुआ ॥ १८ ॥ हे राघव! जो जीवगण अति जीर्ण होगये हैं; परन्तु तथापि वह नहीं मरते; नारियें रोग रहित सन्तान उत्पन्न करती हैं, मनुष्यगण हृष्टपुष्ट हुएहैं ॥ १९ ॥ हे राजन्! पुरवासी व जनपदवासियोंको अति हर्ष उत्पन्न हुआहै; वादलभी यथा अवसरमें अमृतकी समान जल वर्षाते

है ॥ २० ॥ मंगलमय वायुभी सदा सुख स्पर्श होकर सब प्रकारसे प्रवाहित होरही है। हे नरेश्वर! हमारे ऐसे राजाकी समान राजा बहुत दिनोंसे नहीं हुआ ॥ २१ ॥

कथयंतिपुरेराजन्पौरजानपदास्तथा ॥
एतावाचःसुमधुराभरतेनसमीरिताः ॥
श्रुत्वारामोमुदायुक्तोबभूवनृपसत्तमः ॥२२॥

हे राजन्! ऐसे वचन पुरवासी और जनपदवासी नगरीमें कहते हैं। नृपश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी भरतजीके कहे हुए ऐसे मधुर वचन सुन हर्षित हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये भाषानुवादे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥

सविसृज्यततोरामःपुष्पकंहेमभूषितम् ॥
प्रविवेशमहाबाहुरशोकवनिकांतदा ॥ १ ॥

तब महावीर श्रीरामचंद्रजी भरतके कहे हुए ऐसे मधुर वचन सुन-कर पुष्पकको विदाद अशोकवनमें प्रवेश करते हुए ॥ १ ॥ वह वन. चन्दन, आम, अगर, तुंग, लाल चंदन और देवदारुके वृक्षोंसे सम्पूर्ण शोभायमान था ॥ २ ॥ चम्पा, कालाअगर, पुन्नाग, मधूक, पनस, शाल, धुवाँरहित अग्निकीसमान शोभायमान पारिजात ॥ ३ ॥ लोध, नीप, अर्जुन, नाग केशर, सतावरी, तिनिश, मन्दार, केला, विविध भाँतिकी लता व झाड़ियोंसे युक्तथा ॥ ४ ॥ और प्रियङ्गु, कदम्ब, बकुल, जामन, दारमी, कोविदारसे शोभित ॥ ५ ॥ सब कालमें फूलनें वाले फूलोंसे युक्त मनोहरकान्ति, फलवान, रमणीक, दिव्यरस गन्धयुक्त नये पत्ते व कोंपलके सहित वृक्षोंसे शोभितथा ॥ ६ ॥ वृक्ष लगानेंमें चतुर शिल्पि लोगोंनें इन दिव्य वृक्षोंको अतिसुन्दर भाँतिसे लंगार बांधकर लगा दियाहै; विशेष करके यह वृक्षोंके समूह सुन्दर२ पत्ते और पुष्पोंसे परिपूर्णथे। उनके ऊपर मतवाले भौंरे गुंजार रहेथे ॥ ७ ॥ कोकिल कुल,

भ्रमर कुल, और अनेक प्रकारके पक्षियोंनें आमके मौलके परागसे भूषि-
तहो सैंकड़ों रंगोंसे चित्रित वन उस बागकी सुन्दरताको बढ़ा रहेथे ॥ ८॥
अधिक क्या कहैं, वहांका कोई वृक्ष श्वेतवर्ण था, कोई २ तरु अग्निकी
शिखाकेसमान लालथा, कोई पेड़ नीले अंजनकी समान रंगवालाथा, ऐसे
पादप व औरभी अनेकप्रकारके तरुवर वहां थे ॥ ९ ॥ जो कि सुगन्धि
विस्तार कर रहेथे; अनेक प्रकारके फूल हार गुहे हुए रहेथे; और भांति२
की तलैयें वहांथीं जिनमें सुन्दर निर्मल जल भर रहाथा ॥ १० ॥ इन सब
तलैयोंमें उतरनेंके लिये मूंगेकी सीढ़ियें बनी हुईथीं; और इन तलैयोंके
भीतरकी पृथ्वी स्फटिकसे बनीहुईथी सब तलैयोंमें कमल व उत्पलके वन
शोभायमान हो रहेथे चक्रवाक ॥ ११ ॥ दात्यूह, तोते, हंस, व सारसगण,
वहां शब्द कर रहेथे, इन सबके किनारोंपर फूलेहुए वृक्षोंकी लंगारें शोभा-
यमान होतीथीं ॥१२॥ विविध भांतिके धवरहरे और शिलाओंसे तलैयोंकी
सुन्दरताई बहुत बढ़ी हुईहै इसकेही बनोंमें वैदूर्यमणिकीसमान ॥ १३ ॥
असंख्य शार्दूल पक्षी इस वनमें वासकरतेथे जिसमें कि फूले हुए वृक्ष लग
रहेथे एकदूसरेकी रगड़ फूले हुए वृक्ष ॥ १४ ॥ अनेक प्रकारके फूल
बिछौने वहांपरकी शिलाओंपर बिछादेतेथे इन्द्रके नंदनवनकी समान
कुबेरजीके ब्रह्मरचित चैत्ररथ वनकी समान ॥ १५ ॥ श्रीरामचंद्रजीका
यह अशोक वन बनाहुआथा। बहुत से आसन, गृह, व लताओंके आस-
नसे युक्त ॥१६ ॥ ऐसे बड़ेभारी अशोकवनमें श्रीरामचंद्रजीनें प्रवेश किया
शुभ आकारसे जटित आसनपर जो कि फलोंसे भूषितथा ॥ १७ ॥
और कुशोंका बनाहुआथा, श्रीरामचंद्रजी बैठे सीताजीको वांये हाथसे
ग्रहणकर पवित्र व मैरेय मधु [मिरोदेशका]॥ १८ ॥ काकुत्स्थ श्रीरा-
मचंद्रजीनें पिलाया जैसे शचीको इन्द्रजी पिलाते हैं भांति २ के
मांस व विविध भांतिके मीठे २ फल ॥ १९ ॥ श्रीरामचंद्रजीके
व्यवहारार्थ सेवक लोग अति शीघ्र लाये। श्रीरामचंद्रजीके सामनें नांच होने
लगा, यह नाच नृत्य गीत विशारद ॥ २० ॥ अप्सराओंनें किन्नरीयोंके
साथ मिलकर कियाथा इसके उपरान्त उदार स्वभाववाली रूपवती स्त्रि-
योंनें मद्य पानकर ॥२१॥ जोकि नाचनें गानेंमें अतिचतुरथीं श्रीरामचंद्र
जीके सन्मुख नांचनें लगीं मनको आराम देनेंवाली स्त्रियोंको श्रीरामचं-

द्रजीने जो कि रमण करनें वालोंमें श्रेष्ठ ॥ २२ ॥ और धर्मात्मा थे सुन्दर गहने पहने इन स्त्रियोंको सन्तुष्ट किया फिर धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी सीताजीके साथ विराजमानहो॥२३॥ऐसे बैठे जैसे तेजस्वीवशिष्ठजी अरुन्धतीके साथ बैठते हैं इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी देवकन्याकी समान सीताजीको ॥ २४ ॥ जोकि विदेहराजकुमारीथी प्रतिदिन देवताकी समान उनको सन्तुष्ट करनेंलगे इसप्रकारसे बहुत दिन विहारकरते रामचंद्र व सीताजीको ॥२५॥ सदाही भोगका देनेवाला शिशिरकाल व्यतीत होगया * विविध भांतिके भोग भोगतें हुए महात्मा रामचंद्रजी व जानकीजीनें दश हजार वर्ष तक विहार किया विविध भोगोंको प्राप्त करते हुए शिशिरका आगमन वीतगया ॥२६॥ एक दिन धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी सवेरेके समय धर्मानुसार धर्मकार्य समाप्त करके दिनके बचे हुए भागको अंतःपुरमें विताते हुए ॥२७॥ देवी सीताजीभी प्रभातके समय करनेकें योग्य कार्य पूरे करकै विशेष श्रद्धा भक्ति युक्त हो सब सासुओंकी सेवाकरती॥२८॥ फिर एक समय दिव्य द्युतिवालें विचित्र वस्त्र पहर करकै भांति २ के गहनें पहन श्रीरामचंद्रजीके निकट ऐसे बैठती जैसे स्वर्गमें इन्द्रजीके निकट इन्द्राणी शची बैठती हैं ॥ २९ ॥ रामचंद्रजी सीताजीको गर्भलक्षण युक्त देखकर अत्यन्त आनंद प्राप्त करतेहुए और अत्यन्त प्रशंसा करनें लगे इसके उपरान्त श्रीरामचंद्रजी देवबाला समान वरवर्णिनी सीताजीसे बोले हेवैदेहि! तुम्हारे गर्भ लक्षण स्पष्टही देखे जातेहैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे नितम्बिनी ! तुम्हारी क्या इच्छा है सो कहो हम तुम्हारी कौन इच्छा पूर्ण करैं तब जानकी मुस्कुरायकर श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं ॥ ३२ ॥ अब पवित्र तपोवनोंको देखनेंकी हमारी इच्छा हुईहै, गंगाजीके किनारेपर विराजमान उग्रतेजवान ऋषियोंको ॥ ३३ ॥ जो कि फलमूलाहारीहैं, उनके चरणोंकी वंदना हम करना चाहतीहैं हे देव ! यही हमारी परम कामनाहै कि फल मूल भोजन करनेंवाले ॥ ३४ ॥ मुनियोंके निकट तपोवनमें हम एकरात वसें काकुत्स्थ ! अक्लेश कर्मकारी श्रीरामचंद्रजी "ऐसाही होगा" यह प्रतिज्ञा करके जानकीजीसे बोले । हे वैदेही ! तुम तैयारहोरहो कल निश्चय गमन करेंगे, इसमें संशय नहीं ॥ ३५ ॥

* यह आधा श्लोक क्षेपक है.

एवमुक्त्वातुकाकुत्स्थोमैथिलींजनकात्मजाम् ॥
मध्यकक्षांतरंरामोनिर्जगामसुहृद्वृतः ॥ ३६ ॥

काकुत्स्थनंदन श्रीरामचंद्रजी जनककुमारी सीताजीसे ऐसा कहकर अपने अंतःपुरमें गमन करके अपने सुहृद लोगोंके साथ बीचके गृहमें आये ॥ ३६ ॥ इत्यार्षेश्री० वा० आ० उ० भा० द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥

तत्रोपविष्टंराजानमुपासंतेविचक्षणाः ॥
कथानांबहुरूपाणांहास्यकाराःसमंततः ॥ १ ॥

जब श्रीरामचंद्रजी इस स्थानपर आयकर बैठे तो चतुर सभ्य लोग उनके चारों ओर बैठकर अनेक प्रकारके हास्य प्रसंग (हँसी दिल्लगी) कहनें व करने लगे ॥ १ ॥ विजय, मधुमत्त, कश्यप, मंगल, कुल, सुराजी, कालिय भद्र, दन्तवक्र, और सुमागध ॥ २ ॥ यह सब लोग हर्षित चित्तसे महात्मा श्रीरामचंद्रजीके निकट हास्ययुक्त विविध भांतिकी कथायें कहनें लगे ॥ ३ ॥ किसी कथाके प्रसंगमें रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी बोले हे भद्र! इस विषयमें नगरके लोग क्या कहतेहैं ॥ ४ ॥ हमारे आश्रित पुरजन लोग क्या कहतेहैं ? सीताके विषयमें, भरतके विषयमें, लक्ष्मणजीके सम्बन्धमें ॥ ५ ॥ शत्रुघ्नजीके वर्तावमें व माता कैकेयीके विषयमें वह सब कौन २ सी कथा करतेहैं, क्योंकि तपस्वियोंके आश्रममें या राज्यमें राजा विचारहीन होनेंपर सर्वजनोंके सन्मुख निंद्राका पात्र होंना पड़ताहै ॥ ६ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें यह कहा तब भद्र हाथ जोड़कर बोला हे राजन् ! पुरवासी लोग अनेक शुभ कथाही कहा करतेहैं ॥ ७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! रावणके वधद्वारा प्राप्त हुई इस विजयको लक्ष्यकरके पुरवासी लोग अपने २ घरोंमें अनेक बातें किया करतेहैं ॥ ८ ॥ भद्रके इस प्रकार कहनें पर श्रीरामचंद्रजीनें कहा,—उसका आदिसे अंततक यथार्थ २ समस्त वृत्तान्त कहो ॥ ९ ॥ कि पुरवासी लोग क्या २ शुभ अशुभ वाक्य किया करतेहैं । पुरवासियोंके भले बुरे वचन सुनकर हम अशुभ कार्य न करके शुभ कार्यही करेंगे ॥ १० ॥ तुम सन्तापशून्य और विश्वासितहो निर्भय

चित्तसे सब कहो कि पुरवासी और जनपदवासी लोग किस प्रकारकी पापकथा कहा करतेहैं ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर भद्र सावधानचित्तहो हाथ जोड़कर बोला ॥ १२ ॥ हे राजन्! वन, उपवन, दुकान, चौराहे और मार्गोंमें पुरवासी लोग जो शुभ अशुभ वचन कहा करतेहैं सो मैं आपसे कहताहूं श्रवण कीजिये ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें अतिदुष्कर कार्य कियाहै समुद्रमें पुलका बांधना, हमारे पूर्व पुरुषोंमें तौ क्या देवता दानवोंनेभी कभी नहीं श्रवण किया ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजीने दुर्द्धर्ष रावणको सैना और वाहनोंके साथ विनाश कियाहै और वानर, रीछ, व राक्षसोंकोभी अपने वशमें किया है ॥ १५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें समरमें रावणका संहार करकै सीताको उद्धार कियाहै; परन्तु रावणनें जो सीताजीका स्पर्श कियाथा; इसके लिये उन्हौंनें कुछ कोप न करकै वह स्वच्छ जानकीजीको अपनी पुरीमें ले आये ॥ १६ ॥ जो रावण सीताजीको बलपूर्वक ग्रहणकर अपनी गोदीमें लिये हुए गयाथा फिर किस कारण उन रामका हृदय सीता सम्भोगजनित सुख प्राप्त करताहै ॥ १७ ॥ रावणनें सीताजीको लंकापुरीमें लेजाय वहांपर अशोक वाटिकामें रक्खाथा; और सीताजी वहांपर राक्षसके वशमें थीं; तथापि सीताजीके प्रति रामचंद्रको घृणा क्यों नहीं हुई ॥ १८ ॥ अबसे लेकर हमकोभी स्त्रीका अपराध सहनकरना पड़ेगा; क्योंकि जिस प्रकार राजा करतेहैं प्रजाभी उसकी देखादेखी वैसाही किया करतीहै ॥ १९ ॥ हे राजन्! समस्त नगरों व जनपदोंमें पुरवासी लोग यही अनेक कथावार्ता कहा करतेहैं ॥ २० ॥ इस प्रकार भद्रके वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी परम व्याकुलहो समस्त सुहृद् लोगोंसे पूछते हुए, क्या प्रजा लोग हमारे सम्बन्धमें ऐसी वार्ताही कहा करतेहैं ॥ २१ ॥ तब सुहृदलोगोंनें मस्तक झुकाय प्रणाम व अभिवादनकर दीनचित्त हुए श्रीरामचंद्रजीसे कहा, " भद्रनें जो कुछ कहा वह सब सत्यहै " ॥ २२ ॥

श्रुत्वातुवाक्यंकाकुत्स्थःसर्वेषांसमुदीरितम् ॥
विसर्जयामासतदावयस्याञ्छत्रुसूदनः ॥ २३ ॥

तब शत्रुसंहारी काकुत्स्थ श्रीरामचंद्रजी सबहीके मुखसे यह वचन

श्रवण करकै अपने सखाओंको विदा देते हुए ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० उ०भा० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

विसृज्यतुसुहृद्वर्गंबुद्ध्यानिश्चित्यराघवः ॥
समीपेद्वास्थमासीनमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सुहृदोंको विदा दे कर्तव्य निश्चयकर समीपही बैठेहुए द्वारपालसे बोले ॥ १ ॥ तुम सुमित्रानंदन शुभलक्षण सम्पन्न लक्ष्मण, महाभाग भरत, और अपराजित शत्रुघ्नकोभी शीघ्र लिवा लाओ ॥ २ ॥ द्वारपाल श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर शिरसे हाथ जोड़ अति शीघ्रकी चालसे लक्ष्मणजीके गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ३ ॥ फिर हाथ जोड़े हुए आदर पूर्वक महात्मा लक्ष्मणजीसे बोला कि महाराजनें आप के देखनेंकी इच्छा कीहै; इस कारण आप अतिशीघ्र वहांपर चलें ॥ ४ ॥ तब लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा सुन "बहुत अच्छा" कह रथपर सवार हो अतिशीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीके गृहकी ओर चले ॥ ५ ॥ लक्ष्मणजीको जाते हुए देख द्वारपालनें विनीत भावसे भरतजीके निकट जाय हाथ जोड़ आशीर्वादके वचनोंसे भरतजीका आदर कर उनसें कहा ॥ ६ ॥ उनसे विनययुक्त हो कहा कि "महाराज आपको देखा चाहतेहैं" भरतजी द्वारपालसे श्रीरामचंद्रजीकी यह आज्ञा सुन ॥ ७ ॥ वह महा बलवान उसी समय आसनपरसे उठ शीघ्रताके मारे पैदल ही चल दिये। भरतजीको जाते हुए देखकर द्वारपालनें अतिशीघ्रतासे हाथ जोड़ ॥ ८ ॥ शत्रुघ्नजीके स्थानमे जाय; उनसे कहा हे रघुश्रेष्ठ! चलिये, महाराज आपके देखनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ९ ॥ महायशस्वी भरत, और लक्ष्मणजी पहलेही जाय चुकेहैं, तब शत्रुघ्नजी द्वारपालके वचन सुन उत्तम आसनसे ॥ १० ॥ उठ पृथ्वीपर मस्तक झुकाय श्रीरामचंद्र जीकी वंदना करते हुए जिस स्थानमें रघुवीर विराजमान थे वहांको चले। द्वारपालनें लौटकर व हाथ जोड़ श्रीरामचंद्रजीके पास आय हाथ जोड़ सब ॥ ११ ॥ भ्राताओंके आनेंका वृत्तान्त उनसे निवेदन किया। कुमारोंको आना सुन चिन्तासे युक्त व्याकुलेन्द्रिय ॥ १२ ॥ नीचेको मुख

किये दीन मनहुए श्रीरामचंद्रजी द्वारपालसे बोले! तुम शीघ्रही कुमारोंको हमारे निकट ले आओ ॥ १३ ॥ क्यों कि यह कुमार लोग हमको प्राणों सेभी अधिक प्यारेहैं। अधिक क्या कहैं हमारा जीवन इनहीसे है श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाको पाय श्वेत वस्त्र पहरे हुए कुमार गण॥१४॥ हाथ जोड़े हुए सावधान चित्तसेहो विनीत भावसे वहां प्रवेश करते हुए, उन्होंनें वहां आयकर देखा कि श्रीरामचंद्रजीको मुख राहुसे ग्रसे हुए चंद्रमाकी समान ॥१५॥ सन्ध्याके समय अस्त होते हुए प्रभाहीन सूर्य भगवानकी समान नेत्रोंमें आंसु भरे हुए उन बुद्धिमानोंने श्रीरामचन्द्रजीको देखा, उस समय श्रीरामचन्द्रजीका मुख ऐसा दृष्टि आया मानों शोभाहीन कमलका फूलहै॥१६॥ यह देखकर वह कुमार अतिशीघ्रतासे शिर झुकाय श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणामकर सावधान चित्तसे वहां बैठे,, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी केवल आंसू बहानें लगे ॥ १७ ॥ फिर महावीर श्रीरामचन्द्रजी उन कुमारोंको भेटकर व उठाय "आसनपर बैठो" यह वचनकह फिर बोले ॥ १८ ॥ हे नरश्रेष्ठगण! तुमही हमारे सर्वस्वहो, तुम लोगही हमारे जीवनहो; तुम लोगोंकाही सम्पादित किया हुआ राज्य हम पालन करते हैं ॥ १९ ॥ हे नरेश्वर वृन्द! तुम सबही शास्त्रोंके अर्थ जाननेंमें पारदर्शीहो, इस कारण बुद्धिसे स्थिर निश्चय करके जो कुछ हम कहैं तुम उसकोही करो ॥२०॥

तथावदतिकाकुत्स्थेअवधानपरायणाः ॥
उद्विग्नमनसःसर्वेकिंनुराजाभिधास्यति ॥ २१ ॥

जब रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीनें ऐसा कहा तब मन लगायकर तीनों भाई "राजा क्या कहैंगे?" ऐसी आशंकासे उद्विग्नचित्त हुये ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० उ० भा० चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥

तेषांसमुपविष्टानांसर्वेषांदीनचेतसाम् ॥
उवाचवाक्यंकाकुत्स्थोमुखेनपरिशुष्यता ॥ १ ॥

जब दीनचित्तहो कुमार सब बैठ गये तब काकुत्स्थ श्रीरामचन्द्रजीनें शोकाकुल वदन होकर उनसे कहा ॥ १ ॥ तुम्हारा मंगलहो, तुम हमारे अभिप्रायके विरुद्ध आचरण मतकरना; पुरवासी लोग सीताके सम्बन्धमें

जो कुछ कहतेहैं वह सुनो ॥ २ ॥ पुरवासियोंमें हमारा बड़ा अपवाद हुआ करताहै; और जनपदवासी लोगभी हमारी अत्यन्त निन्दा किया करतेहैं; इस अपवाद और निन्दाके मारे हमारे मर्मस्थान टुकड़े २ हुए जातेहैं॥३॥ हमनें महात्मा इक्ष्वाकु लोगोंके विख्यात कुलमें और विख्यात वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै। और सीताभी महामति जनकजीके पवित्र वंशमें उत्पन्न हुई हैं ॥ ४ ॥ हे सौम्य! जनरहित दंडक वनमें रावणनें जिस प्रकार सीताको हरण कियाथा; और फिर जिस प्रकार हमनें उसका संहार किया वह तौ तुम जानतेही हो ॥५॥ उसी समय सीताके सम्बन्धमें हमनें विचाराथा कि यह राक्षसके गृहमें रहीं हैं सो हम किस प्रकार इनको अपने गृहमें लेजायँगे ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! उस कालमें सीताजी पतिव्रतधर्मका विश्वास दिलानेंके लिये तुम्हारे सन्मुखही अग्निमें प्रवेशकर गईथीं; तब हव्यवाहन अग्निमें प्रगट होकर ॥ ७ ॥ व आकाशमें टिके हुए वायुनें कहाथा; कि यह सीताजी पाप रहितहैं अधिक क्या कहैं चन्द्र सूर्यनेंभी पहले सब देवताओंके साथ ॥ ८ ॥ और सब ऋषिलोगोंनेभी सीताजीको पापरहित कहाथा। इस प्रकारसे पवित्रचरित्र सीताजीको देवता गन्धर्वोंके निकट ॥ ९ ॥ सुरपति इन्द्रजीनें लंकाद्वीपके मध्य हमारे हाथमें समर्पण किया और हमारी अंतरात्माभी यही कहती है कि यशस्विनी सीताजी शुद्धहैं ॥ १० ॥ इसी कारणसे हम वैदेहीजीको ग्रहण करके अयोध्याजीमें आये। परन्तु अब इस महाअपवादसे हमारे हृदयमें शोक वर्तताहै ॥ ११ ॥ वह यही महा अपवादहै कि जो पुरवासी और जनपदवासी लोग हमारी निंदा करतेहैं; जिस संसारमें जिस प्राणीकी अकीर्ति फैलजाती है ॥ १२ ॥ जबतक वह अकीर्ति फैली रहती है तबतक वह पुरुष अधम लोकमें पड़ा रहताहै। देवता लोग अकीर्तिकी निन्दा किया करते हैं और कीर्ति सब लोकमें पूजित होती है ॥ १३ ॥ इस कारणसे महात्मा लोक कीर्तिके लिये सर्व प्रकारसे यत्न किया करतेहैं हे पुरुषश्रेष्ठगण! अपने जीवनको व तुम लोगोंकोभी ॥ १४ ॥ हम अपवादके भयसे भीत होकर परित्यागकर सकतेहैं; फिर जानकीजीकी तौ बातही क्या है; इस्से तुमही देखो कि हम अकीर्तिके कैसे शोकसागरमें पड़ेहैं ॥ १५ ॥ विशेष करके इससे अधिक कुछ और दुःख किसी जीवमेंभी हम अव-

लोकन नहीं करते। हे लक्ष्मण! प्रभातको कल तुम सारथि सुमंत्रसे रथ जुड़वाय ॥ १६ ॥ उसपर जानकीजीको चढ़ाय और देशमें जायकर सीताजीको छोड़ आओ। गंगाजीकी दूसरी पार महात्मा वाल्मीकिजीका ॥ १७ ॥ तमसानदीके किनारे दिव्य आश्रमहै ॥ हे रघुनंदन! तुम उसी जनरहित वनमें सीताको छोड़कर ॥ १८ ॥ शीघ्र चले आओ हे लक्ष्मण! तुम हमारे यह वचन पूरे करो। सीताके परित्यागके विषयमें तुम हमसे कभी कोई बात न कहना ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण! इस सम्बन्धमें कार्य अकार्यका विचार न करके तुम चले जाओ कारण कि इसको निवारण करनेंसे मानों तुम हमारे प्रति अप्रीति दिखाओगे ॥ २० ॥ हम तुम्हें अपनी दोनों बाहोंकी और जीवनकी शपथ दिलातेहैं कि तुम लोग इस सम्बन्धमें हमसे कुछभी अनुनय मत करना। यदि करोगे तौ हमारे इष्ट कार्यमें विघ्न करोगे। तिस्से हम तुम लोगोंको सदा अपना अहितकारी समझेंगे ॥ २१ ॥ जो तुम लोग हमारी आज्ञापर चलतेहो, तौ तुम हमारे वचनोंमें सन्मान दिखाओ कि सीताजीको इस स्थानसे दूर करो ॥ २२ ॥ सीतानें हमसें पहले कह रक्खाहै कि "हम गंगातीरपर मुनि लोगोंके आश्रम देखेंगी" सो इस समय उनका यह अभिलाष पूरा करो ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वातुकाकुत्स्थोबाष्पेणपिहितेक्षणः ॥
संविवेशसधर्मात्माभ्रातृभिःपरिवारितः ॥
शोकसंविग्नहृदयोनिशश्वासयथाद्विपः ॥ २४ ॥

वह धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी यह वचन कह सब भ्राताओंके साथ अपनेर गृहमें आये; श्रीरामचंद्रजीके दोनों नेत्र वाफसें रुक गये आगेको दृष्टि नहीं चली। उनका हृदय शोकसे संतापित होगया और वह हाथीकीसमान श्वास लेनें लगे ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ०उ० भा० पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥

ततोरजन्यांव्युष्टायांलक्ष्मणोदीनचेतनः ॥
सुमंत्रमब्रवीद्वाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ १ ॥

जब रात वीतकर प्रभात हुआ. तब लक्ष्मणजीनें दुःखितहो विवर्ण वदनसे सुमंत्रसे कहा ॥ १ ॥ हे सारथे! श्रीमहाराजकी आज्ञासे शीघ्रता पूर्वक श्रेष्ठ रथमें तुम घोड़े जोतो और सीताजीके बैठनें योग्य शुभ आसन रथपर बिछाओ ॥ २ ॥ हम महाराजकी आज्ञानुसार सीताजीको पुण्य कर्मकारी महर्षि लोगोंके आश्रममें ले जांयगे, इसकारण तुम अति शीघ्र रथ लेआओ ॥ ३ ॥ सुमंत्र " जो आज्ञा " कह सुखकारी शय्या बिछा हुआ उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ सुन्दर पवित्र रथ लायकर ॥ ४ ॥ मित्रगणोंका मन बढ़ानेंवाले लक्ष्मणजीसे बोले । " प्रभो यह रथ आगया " अब जो उचितहो सो कीजिये ॥ ५ ॥ नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी सुमंत्रजीके यह वचन सुनकर राजभवनमें प्रवेशकर सीताजीके निकट जाय उनसे बोले ॥ ६ ॥ आपनें महाराजके निकट आश्रम देखनेंकी प्रार्थनाकी थी; और उन्होंनेंभी आपको आश्रममें लेजाना स्वीकार कियाथा; सो उन्होंनें इस समय आपको ले जानेंके लिये हमको आज्ञा दीहै ॥ ७ ॥ इसलिये हे देवि! आप गंगाजीके तीरपर ऋषि लोगोंके पवित्र आश्रममें गमन की- जिये । हम महाराजकी आज्ञानुसार शीघ्र आपको ॥ ८ ॥ मुनिसेवित वनमें लेजांयगे महात्मा लक्ष्मणजीके ऐसा कहनेंपर जानकीजी ॥ ९ ॥ अतुल हर्षको प्राप्तकर जानेंका अभिलाष करतीहुई; वह विविध प्रकारके बड़े२ मोलके वस्त्र और रत्नोंकी राशिको ग्रहणकर ॥ १० ॥ जानेंके लिये तैयार हो लक्ष्मणजीसे बोलीं कि हम मुनि लोगोंकी स्त्रियोंको यह बड़े २ मोलके आभरण दान करैंगी ॥ ११ ॥ इसके अतिरिक्त महा मूल्यवान वस्त्र और विविध भांतिके धनभी हम तुमको देंगी लक्ष्मणजीने " यही होगा " यह कह सीताजीको रथपर सवार कराय ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाका स्मरण करते हुए शीघ्र चलनेंवाले घोडोंके रथपर चढ़कर यात्रा करते हुए, तब सीताजी लक्ष्मीके बढ़ानेंवाले लक्ष्मणजीसे बोलीं ॥१३॥ हे रघुनंदन! हम इस समय अनेक अपशकुन दीखतीहैं; हमारा दहिना नेत्र फड़कता और शरीर कम्पायमान होताहै ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण! हमारा हृदयभी व्याकुल हुआ जाताहै; मनके बीचमें विषम, उत्कंठासे हम अत्यन्तही अनस्थिर हुई हैं ॥ १५ ॥ हे विशाललोचन! हम पृथ्वीको सुखसे सूनी देखतीहैं आप

वत्सल! तुम्हारे बड़े भइयाका तौ कोई अमंगल नहीं हुआ ॥ १६ ॥
हे वीर! हमारी सासुयें तौ सब प्रकारसे अच्छीहैं। नगरके और जनपदोंके
प्राणीगण तौ कुशलहैं ॥ १७ ॥ यह कह सीताजी हाथ जोड़ देवता
लोगोंके निकट प्रार्थना करनें लगीं; लक्ष्मणजी यह वृत्तान्त श्रवणकर
शिर झुकाय जानकीजीको प्रणाम कर ॥ १८ ॥ हृदयके शुष्क होनें
परभी सन्तुष्टहीकी समान कहा कि सब कुशलहै। इसके उपरान्त गोमती
के तीर आश्रमोंमें पहुंच लक्ष्मणजी वहां रात्रिको वसे ॥ १९ ॥ तिसके
पीछे सवेरेको उठकर लक्ष्मणजीनें सारथिसे कहा कि रथ शीघ्र जोतो।
आज हम भागीरथीका जल ॥ २० ॥ महादेवजीकी नाई अपने मस्तक-
पर धारण करैंगे; सारथि रथमें जुते हुए मनकी समान वेगवान घोड़ोंको
टहलाय ॥ २१ ॥ हाथ जोड़कर जनककुमारी सीताजीसे बोला कि
आप रथपर सवारहों, सूतके कहनेसें उत्तम रथपर चढी ॥ २२ ॥
सीताजी लक्ष्मणजी बुद्धिमान सुमंत्रके सहित चली; और वह
विशालाक्षी जानकीजी पापनाशिनी गंगाजीके तीरपर पहुँ-
ची ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त लक्ष्मणजी आधेदिनतक चलकर
भागीरथी गंगाजीकी धार देख दीन भाव और ऊँचे शब्दसे रोदन करनें
लगे ॥ २४ ॥ तब धर्मज्ञ सीताजी अतिदुःखितहो खेदको प्राप्त हुए
लक्ष्मणजीसे बोलीं कि हे लक्ष्मण! तुम किस कारणसे रोतेहो? ॥ २५ ॥
हे लक्ष्मण हमको बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी, कि हम गंगाजीके तीर
चलें सो यहांपर हम आई भला इस्से तुमको हर्ष प्राप्त करना उचितथा
सो तुम इस समय हमको विषादित क्यों करतेहो? ॥ २६ ॥ हे पुरुष
श्रेष्ठ! तुम दिन रात रामचन्द्रके साथ समय बितातेहो सो आज उनको
छोड़े दोदिन हुएहैं क्या इसी कारणसे तुमको यह दुःख हुआहै ॥ २७ ॥
हे लक्ष्मण! राम हमको प्राणोंसेभी अधिक प्यारेहैं, तथापि हम
ऐसा शोक नहीं करती सो तुम विह्वल न होवो ॥ २८ ॥ हमको गंगा-
जीके दूसरी पार ले चलो और तपस्विलोगोंका दर्शन कराओ,
इसके पीछे हम मुनि लोगोंको वस्त्राभरण दान करैंगी ॥२९॥ फिर हम उन
महर्षियोंको यथायोग्य प्रणाम करकै वहां एकरात वासकर फिर अयोध्या
पुरीको लौटेंगी ॥ ३० ॥ विशेष करकै कमलदलकी समान वि-

शाल लोचन, सिंहकी समान छाती वाले, कृशोदर, पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजीका शीघ्र दर्शन करनेंके लिये हमारा जी उकसाताहै ॥ ३१ ॥ सीताजीके यह वचन सुन सुन्दर दोनों नेत्र पोंछ रिपुनाशकारी लक्ष्मणजीनें नाविकौंको पुकारा पुकारतेही नाविक लोगोंनें हाथ जोड़कर निवेदन किया कि नाव तयारहै ॥ ३२ ॥

तितीर्षुर्लक्ष्मणोगंगांशुभांनावमुपारुहत् ॥
गंगांसंतारयामासलक्ष्मणस्तांसमाहितः ॥ ३३ ॥

पुण्य जल वाली गंगाजीके पार होनेंकी इच्छासे इस प्रकार नौका मंगाय लक्ष्मणजीनें सावधानहो सीताजीको गंगा पार करवाया ॥ ३३ ॥
इति श्रीम० वा० आ० उ० भा० षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

अथनावंसुविस्तीर्णांनैषादींराघवानुजः ॥
आरुरोहसमायुक्तांपूर्वमारोप्यमैथिलीम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त निषाद लोगों करके लाई हुई सजाई बड़ी नावपर पहले जानकीजीको सवार कराय फिर लक्ष्मणजी उसपर सावधान होकर चढे ॥ १ ॥ और सुमंत्रसे कहा कि तुम रथ लेकर इसी स्थानमें टिके रहो; और फिर शोकाकुल होकर नाववालोंसे कहा कि चलो ॥ २ ॥ गंगाजीके दूसरी पार पहुंचकर वाफके भरआनेसे लक्ष्मणजीका गला रुक गया और वह हाथ जोड़कर श्रीजानकीजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे विदेह कुमारी! बुद्धिमान आर्यरामचंद्रजीनें हमको लोकमें निन्दा होनेके कारण इस क्रूर कार्यमें नियुक्त करके लोक समाजमें निन्दाका पात्र कियाहै सो हमारे हृदयमें यही बड़ा घाव लगा है ॥ ४ ॥ सो अब ऐसे अवस्थानमें आज हमको मृत्यु आजाना या मूर्छाका होनाही श्रेष्ठ है परन्तु इस प्रकार के लोकनिन्दित कार्य में नयुक्त होना अच्छा नहीं ॥ ५ ॥ हे शोभने! इस कारण तुम हमारा दोष ग्रहण नकरना आप प्रसन्न होवें यह कहकर लक्ष्मणजी हाथ जोड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ६ ॥ जब लक्ष्मणजी हाथ जोड़ पृथ्वीमें गिर अपनी मृत्युकी कामना करनें लगे तब देवी सीताजीनें

लक्ष्मणजीकी ऐसी दशा देख अत्यन्त घबडायकर कहा ॥ ७॥ हे लक्ष्मण! हमतौ कुछ भी नहीं समझ सकती कि क्या हुआ तुम हमसे स्पष्टरकहो। हम देखतीहैं कि तुम अतिव्याकुलहो महाराज तौ कुशल हैं ॥ ८ ॥ हे वत्स! हम तुमको महाराजकी शपथ कराती हैं कि तुम जिसनिमित्त कातर हुए सो हमसे प्रकाश करकै कहो यह हम तुम्हें आज्ञा देतीहैं ॥९॥ जब सीताजीनें इस प्रकार कहा तब दीन चित्त हुए लक्ष्मणजीनें नीचेको मुख झुकाय और आँसु आयकर गदगद वाणीसे उत्तर दिया ॥ १० ॥ हे जनककुमारी नगरी और जनपदमें आपके दारुण अपवादकी कथा सभाके बीचमें सुनकर ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें सर्वप्रकारसे हृदयमें संतापितहो उन्हौंने हमसे सब वृत्तान्त कहा और गृहमें चले गये सो वह हम आपसे नहीं कहसकैंगे इसी कारणसे वह वचन हम नहीं कह सकते ॥ १२ ॥ जोकि हे देवि! राजाने क्रोधके वशहो हृदयसे निकालेथे राजानें आपकी निर्दोषता हमारे सामने कहीहै ॥ १३ ॥ उन्हौंनें केवल पुरवासी लोगोंके अपवादके भयसे भीतहो आपको परित्याग कियाहै परन्तु इससे आप अपनेको वास्तविक दोषी न समझ लीजिये इसलिये हम आपको मैदानमें छोड़े जाते हैं ॥ १४ ॥ क्योंकि गर्भिणी की अभिलाषा और राजाकी आज्ञा अवश्यही पूरी करनी चाहिये इसी कारण गंगाजीके तीर ब्रह्मर्षियोंके तपोवनमें ॥ १५ ॥ जोकि अति रमणीक और पवित्रहै हम त्यागेंगे सो आप यहीपररहैं और शोकनकरैं हे शुभे!हमारे पिता राजा दशरथजीके मुनिश्रेष्ठ ॥ १६ ॥ महायशवान विप्र वाल्मीकिजी परम सखाहैं हे जानकि! इससे आप उन्ही महात्माके चरणमूलमैं पहुंच एकाग्रचित्तसे उनकी पूजाकर उपवासादि कर सुखसे वासकरैं ॥ १७ ॥

पतिव्रतात्वमास्थायरामंकृत्वासदाहृदि ॥
श्रेयस्तेपरमंदेवितथाकृत्वाभविष्यति ॥ १८ ॥

हे देवि हृदयमें श्रीरामचंद्रजीको धारण करकै आप पतिव्रत धर्म पालनकरैं वस इससे ही आपका परम कल्याण होगा ॥१८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे कात्यायनकुमारपंडितज्वालाप्रसाद मिश्रकृते भाषानुवादे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वादारुणंजनकात्मजा ॥
परंविषादमागम्यवैदेहीनिपपातह ॥ १ ॥

जनककुमारी महारानी जानकीजी लक्ष्मणजीके ऐसे दारुण वचन सुनकर महा दुःखको प्राप्तहो पृथ्वीमें गिर पड़ीं ॥ १ ॥ जनकपुत्री सीताजी एक मुहूर्त्ततक तौ अचेतन पड़ी रहीं; फिर नेत्रोंमें जलभरे दीनहो लक्ष्मणजीसे कहनें लगीं ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण! ऐसा विदित होताहै विधातानें मेरा शरीर दुःखही भोगनेंके निमित्त बनायाहै, इसीकारणसे दुःख समूह मूर्ति धारण करके मुझे दिखाई देताहै ॥ ३ ॥ न जानूं मैंनें पूर्व जन्ममें क्या पाप कियाहै किसका स्त्रीसे वियोग करा दियाहै, जो सती और शुद्धाचरणवाली मुझे राजानें त्यागनकरादिया ॥ ४ ॥ पूर्व कालमें रामचंद्रके साथ वनमें वास करके रामचंद्रके चरणोंकी सेवा की हे लक्ष्मण! आश्रममें वास करते समय दुःख सहकरभी मैंने स्वामीके संग सुखही माना ॥ ५ ॥ हे सौम्य! अब मैं मनुष्य रहित इस आश्रममें किस प्रकार रह सकूंगी? महा दुःखियोंमें किसके आगे अपना दुःख कहूंगी ॥६॥ हे लक्ष्मण! मैं ऋषियोंके पूछनेंपर उनको क्या उत्तर दूंगी, क्योंकि मैंनें कोई दुष्कर्म नहीं कियाहै, फिर क्या बता सकूंगी, कि महात्मा रामचंद्रनें किस कारणसे त्याग दियाहै ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण! मैं गंगामें गिरकर अपना शरीर त्यागन कर देती; परन्तु ऐसा नहीं करूंगी क्योंकि ऐसा करनेंसे राजवंशका विच्छेद हो जायगा कारण कि मैं गर्भवतीहूं ॥ ८ ॥ हे सुमित्रा नंदन! आप हमारे स्वामीका वचन पालिये मुझ दुःखभागिनीको त्यागनकर जाइये परन्तु मेरे यह वचन सुनो ॥ ९ ॥ प्रथम तौ हाथ जोड़कर मेरी ओरसे सब सासुओंके चरण वंदन करना और फिर महाराजसे प्रणाम पूर्वक कुशल पूछना ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण! सब किसीको शिर झुकाकर मेरा प्रणाम कहना और अपने धर्ममें सदा सावधान रहनेंवाले महाराजसेभी निवेदन करना ॥ ११ ॥ हे रघुनंदन! आप यथार्थमें जानतेहैं कि तुम्हारी जानकी शुद्धहैं; और परम भक्तिसे नित्यही तुम्हारा हित चाहती रहतीहैं ॥ १२ ॥ हे वीर! जो कि तुमनें मनुष्योंके अपवाद लगानेंके भयसे

मुझे त्यागन कियाहै; और जोकि यह अपवाद निंदासहित उपस्थित हुआहै? ॥ १३ ॥ इसी कारण तुमनें मुझे त्यागन कर दिया है, परन्तु मेरी तौ तुमही परम गतिहो, यही वार्त्ता धर्ममें सावधान हमारे महाराजसे कह देना ॥ १४ ॥ कि जिस प्रकार आप भाइयोंसे वर्ततेहो इसी प्रकारसे सदा नगरवासियोंके साथ वर्त्तना चाहिये, यही तुम्हारा परम धर्महै इसके करनेंसे महाराजकी बड़ी कीर्ति होगी ॥ १५ ॥ जिसप्रकारसे कि प्रजा-पालनसे पुण्य उत्पन्न होताहै, वही परम धर्महै; हे श्रेष्ठ! कुछ मैं अपने शरीरको नहीं सोचतीहूं ॥ १६ ॥ आपने हमें पुरवासियोंके अपवादसे छोड़ा परन्तु स्त्रियोंके पतिही बंधु और पतिही गुरूहैं ॥ १७ ॥ फिर प्राणोंकी समान प्यारे मेरे स्वामीका विशेष कार्य सिद्ध होय तौ इसमें मैं प्रसन्नहूं यह मेरा संदेशा जाकर तुम राजासे कह देना ॥ १८ ॥ अब तुम मुझको देखते जाओ कि मैं गर्भवतीहूं; ऐसा नहो कि कहीं फिर कोई अपवाद स्वामीको लगै; जब जानकीजीनें ऐसा कहा तौ लक्ष्मणजीका चित्त दीन होगया ॥ १९ ॥ प्रणाम करकै अपना शिर पृथ्वीमें धरदिया और फिर कुछ कहनेंको समर्थ न हुए, और महारानीजीकी प्रदक्षिणा करकै ऊंचे स्वरसे रोदन करनें लगे ॥ २० ॥ और कुछ देर ध्यान करकै बोले हे शोभने! यह तुम क्या कहतीहो कि मुझे देखकर जाओ, मैंनें कभीभी आपका रूप नहीं देखा, सदा चरणोंमेंही दृष्टि रक्खीहै ॥ २१ ॥ फिर रघुनाथजीके विना इस निर्जन वनमें किस प्रकार तुमको अवलोकन करसक्ता हूं, यह कह जानकीजीको नमस्कार करकै फिर नावपर चढ़े ॥ २२ ॥ और नावपर चढ़नेंके उपरान्त फिर मल्लाहसे कहा नाव चलाओ, इस प्रकारसे महा शोकसे व्याकुल हुये लक्ष्मणजी गंगाजीके उत्तर तटपर आये ॥ २३ ॥ महा दुःखी चित्तसे लक्ष्मणजी फिर रथमें चढ़े; और अनाथकी नाईं व्याकुल जानकीको फिर फिरकर देखनें लगे ॥ २४ ॥

चेष्टंतींपरतीरस्थांलक्ष्मणःप्रययावथ ॥
दूरस्थंरथमालोक्यलक्ष्मणंचमुहुर्मुहुः ॥
निरीक्षमाणांतूद्विग्नांसीतांशोकःसमाविशत् ॥ २५ ॥

कि जानकी पल्लीपार रुदन कर रहीहैं; फिर लक्ष्मणजी चलेगये जानकी लक्ष्मणको और दूर गये हुए रथकू वारंवार देखनें लगीं जब कि यह दृष्टि पथसे दूर निकल गये उस समय जानकी अत्यन्त शोकाकुल हुई॥२५॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०उ०भा०अष्टचत्वारिंशःसर्गः४८॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥

सीतांतुरुदतींदृष्ट्वातेतत्रमुनिदारकाः ॥
प्राद्रवन्यत्रभगवानास्तेवाल्मीकिरुग्रधीः॥ १ ॥

उस स्थानमें खेलते हुए मुनिकुमार जानकीजीको रोता हुआ देखकर बड़ेबुद्धिमान वाल्मीकिजी जहाँथे तहां शीघ्रतासे आये ॥१॥वे मुनिकुमार महर्षि वाल्मीकिजीके चरणोंकूं नमस्कार करके जानकीजीका रोना निवेदन करनें लगे॥२॥हे भगवन्! किसी महात्माकी लक्ष्मीकी समान स्त्री जिसे हमनें पहले कभी नहीं देखाहै वह किसी कारणसे मुख फैलाये वनमें रोदन कर रहीहैं॥३॥ हे भगवन्! आप चलकर देखिये कि वह श्रेष्ठ स्त्री आकाशसे गिरेहुए देवताकी समान नदीके किनारे महा दुःखीहै ॥ ४ ॥ हमनें उसको बडे शोकसे रुदन करते हुए देखाहै; यद्यपि वह शोकके अयोग्यहै, तथापि दुःख शोकसे अनाथकी नांई वह दीनहोरहीहैं ॥५॥ " हम जानतेहैं की वह मानुषी नहीं है, आपको उसका सत्कार करना उचितहै; वह आश्रमके धोरेही आपकी शरणमें आनकर प्राप्त हुईहैं ॥ १ ॥ धर्मात्मा वाल्मीकिजी उन बालकोंके वचन श्रवण कर और बुद्धिसे निश्चयकर तप द्वारा सब कुछ जानकर शीघ्रतासे जानकीके पासकोचले ॥२॥ उन महा मतिमान् वाल्मीकिजीको जाता देखकर शिष्यभी उनके पीछे चले, सो बुद्धिमान महर्षि शीघ्रतासे कुछ दूरचले ॥ ३ ॥ और अर्घ्य लिये हुए गंगाजीके किनारेको आये, तहां रामकी प्यारी महारानी जानकीको अनाथोंकी समान देखा ॥ ४ ॥ " मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकिजी शोक भारसे व्याकुल हुई जानकीको अपने तेजसे आनंद देते हुए मधुर वाणीसे बोले॥६॥ तुम दशरथ महाराजकी पुत्रवधू रामचंद्रकी प्यारी भार्या जनक राजकी पुत्री हो, हे पतिव्रते ! तुम्हारा शुभागमनहो ॥ ७ ॥ मैंनें धर्म समाधिसे आतेही तुमको जान लियाहै, और जिस कारण तुमको त्याग दियाहै

यहभी मैंने ध्यानसे सब जान लियाहै ॥ ८ ॥ हे महाभाग्यवाली ! मैं यथार्थ में तुम्हारे शुद्धाचरणकोभी जानताहूं, यह क्या जो कुछ त्रिलोकीमें है वह सब कुछ मैं योगसमाधि द्वारा जानताहूं ॥ ९ ॥ हे जानकी मैं तपके द्वारा प्राप्त हुए ज्ञाननेत्रसे तुमको पापरहित जानताहूं; हे जानकी ! तुम निश्चिन्त होकर हमारे निकट वास करो ॥ १० ॥ हमारे आश्रमके निकटही तपस्विनी तप करती हैं; हे पुत्री ! वह सदा पुत्रकी समान पालन करैंगी ॥ ११ ॥ अब तुम सावधान और शोक रहित होकर हमारे दिये इस अर्घ्यको ग्रहण करो और इस स्थानको अपने घरकी समान जानो किसी प्रकारका विषाद मतकरो ॥ १२ ॥ जानकी मुनिराजके यह परम अद्भुत वचन श्रवण करके शिरसे चरणोंमें वंदन कर हाथ जोड़ उनकी बात स्वीकार करती हुई ॥ १३ ॥ जिससमय मुनि उन तपस्वियोंके आश्रमको लौटे तौ जानकीजी हाथ जोड़े २ चली, उन मुनिराजको जानकी सहित आया हुआ देखकर मुनि पत्नीयें बड़ी प्रसन्नतासे आनकर यह वचन कहनें लगीं ॥ १४ ॥ हे मुनिराज ! आपका शुभागमन हो; बहुत दिनोंमें पधारे; हम सब आपको अभिवादन करती हैं, कहिये इस समय हम आपका कौन कार्य करें ॥ १५ ॥ उन सबके यह वचन सुनकर मुनि वाल्मीकिजी इस प्रकारसे बोले, यह बुद्धिमान महाराज रामचन्द्रजीकी भार्या जानकीजी यहां आई हैं ॥ १६ ॥ यह दशरथकी पुत्रवधू महाराज जनकजीकी सुशीला कन्याहैं इन्हें निष्कारण इनके पतिनें त्यागन करदियाहै; इस कारण मैं इनका सदा पालन करूंगा॥१७॥ और तुम सबभी इनको सदा स्नेहकी दृष्टिसे अवलोकन करना, और मेरे वाक्यके गौरवसे यह विशेष करकै तुमसे सन्मान पानेके योग्यहैं ॥ १८ ॥

मुहुर्मुहुश्चवैदेहींपरिदायमहायशाः ॥ स्वमाश्रमंशिष्यवृतःपुनरायान्महातपाः ॥ १९ ॥

इस प्रकार महा यशस्वी वाल्मीकिजी वारंवार उनके हाथसे जानकीका हाथ समर्पणकर फिर वह महा तपस्वी शिष्योंके सहित अपने आश्रममें आये ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ०उ० एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशः सर्गः

दृष्ट्वातुमैथिलींसीतामाश्रमेसंप्रवेशिताम् ॥
संतापमगमद्धोरंलक्ष्मणोदीनचेतनः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त जानकीजीको वाल्मीकिके आश्रममें प्रवेश करते देख कर लक्ष्मणजी दीन चित्तहो महा घोर दुःखको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ वह महातेजस्वी मंत्र सहायकारी सारथी सुमंत्रसे कहनें लगे, कि हे रघुनाथजीके सारथि ! आप सीताके संतापसे उत्पन्न हुए दुःखको देखिये ॥ २ ॥ भला इस्से अधिक और दुःख रघुनाथजीको क्या होगा जो उन्होंनें शुद्ध सदाचारयुक्त जनकदुलारी जानकीको त्यागन करदिया ॥ ३ ॥ हे सारथी ! यह जानकीका त्यागन और रामका वियोग सहना मैं प्रारब्ध सेही मानताहूं इसकारणसे दैवका उल्लंघन करनेंमें कोई समर्थ नहीं ॥ ४ ॥ जो रघुनाथजी देव दानव असुर और राक्षसोंको क्रोध करकै संहार कर सकतेहैं वह रघुनाथजी दैवके वशीभूत देखे जातेहैं ॥ ५ ॥ देखो प्रथम तौ रामचंद्रनें पिताके वचनसे चौदह वर्ष जन रहित दंडकवनमें वास किया-ही था, वह पिताके वचनके गौरवसे हुआ और नियमितथा परन्तु ॥ ६ ॥ अब यह जानकीका त्यागना जो नगरवासियोंके वचन सुनकर हुआहै जिसका कोई नियमही नहींहै; यह उस्से बड़कर कही दुःखदायीहै; यह बड़ाही कुत्सित कार्य हुआहै ॥ ७ ॥ हे सूत! नहीं जानते कि न्यायहीन वचन बोलनेंवाले पुरवासियोंके वचनसे इस यशके दूर करनेंवाले जानकीके त्यागकर्म करकै रघुनाथजीनें क्या धर्म प्राप्त कियाहै, क्योंकि स्त्री सब धर्मोंकी मूलहै उसके त्यागनेसे धर्मभी नष्ट होताहै ॥ ८ ॥ इसप्रकार लक्ष्मणजीकी कही हुई बहुतसी बातैं सुनकर बुद्धिमान सुमंत्र इच्छासे लक्ष्मणजीके प्रति कहनें लगे ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हैं जानकीके निमित्त संताप करना उचित नहींहै, तुम्हारे पिताजीके सामने ऋषियोंनें पहलेही कह दिया था कि जानकी वनमें वास करैंगी ॥ १० ॥ जिस कारण कि रामचंद्रजी वियोगका अधिक तर दुःख सहेंगे, प्रायः यह सुखसे नहीं रहेंगे, यह महाबाहु अपने प्रिय जनोंके वियोगको शीघ्रही प्राप्त होंगे॥११॥ जानकीको क्या, तुम्हैं, शत्रुघ्न, भरतजीकोभी यह धर्मात्मा कुछ अधिक

समयपर त्यागन कर देंगे (शत्रुघ्न भरतको मथुराराज्य और गन्धर्वराज्यमें रहनेंको कहना त्यागहै) ॥ १२ ॥ हे लक्ष्मण ! यह बात तुम भरत या शत्रुघ्नसे मत कहना; जिस समय राजानें दुर्वासासें तुम्हारे विषयमें प्रश्न किया था तब उन्होंने राजासे ऐसा कहा था ॥ १३ ॥ उस समय राजाके निकट बड़े पुरुष वशिष्ठजी बैठेथे, और मैंभी बैठाथा उस समय ऋषिनें यह वचन कहेथे ॥ १४ ॥ ऋपिराजके वचन सुनकर महाराज दशरथजीनें मुझसे कहाथा कि हे सूत ! यह बात तुम किसी बहुत मनुष्योंके सन्मुखमें मत कहना ॥ १५ ॥ तबसे मैं उन लोकपाल महाराज दशरथजीके वाक्यकी समाधानतासे रक्षा करताहूं, उन्हें असत्य नहीं कहताहूं, हे सौम्य! यह मेरा संकल्पहै ॥१६॥ हे सौम्य! सर्वथा मुझको तुमसे कहना उचित नहीं है; परन्तु हे रघुनंदन ! जो आपको सुननेंकी इच्छाहो तौ श्रद्धासे सुनिये ॥ १७ ॥ यद्यपि पूर्वकालमें यह वार्ता एकान्तमें राजाने मुझे सुनाईथी सो मैं तुमसे कहताहूं क्या किया जाय दैव बड़ा प्रबलहै (जो इस समय गुप्त बातभी कहनी पड़तीहै परन्तु आपकी दुःखनिवृत्तिके निमित्त ऐसा कहताहूं क्योंकि राजाकी आज्ञा तत्त्व जाननेंवालोंसें गुप्त रखनेंकी नहींथी) ॥ १८ ॥ दैवके कारणसे इस प्रकारका दुःख शोक प्राप्त हुआहै सो यह गूढ़ बात तुम भरत शत्रुघ्नके निकट मत कहना॥१९॥

तच्छ्रुत्वाभाषितंतस्यगंभीरार्थपदंमहत् ॥ तथ्यं ब्रूहीतिसौमित्रिःसूतंतंवाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

इस प्रकार गंभीर अर्थ पद सहित सत्य २ सूतके वचन श्रवण करके लक्ष्मणजी बोले हे सूत तुम विस्तारसे कहो हम किसीसे नहीं कहैंगे॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे भाषानुवादे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशः सर्गः ॥

तथासंचोदितःसूतोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ तद्वाक्यमृषिणाप्रोक्तंव्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

जब महात्मा लक्ष्मणजीने सूतसे इस प्रकारके वचन कहे तब वह

ऋषिराजके कहे वचन इस प्रकारसे सुनाने लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! एक समय महामुनि अत्रिके पुत्र दुर्वासाजी वशिष्ठजीके पास आनकर वर्षाकालमें वास करते हुए ॥ २ ॥ उस स्थानपर तुम्हारे तेजस्वी महा यशस्वी पिता दशरथजी अपनी इच्छासे वशिष्ठजीके देखनेको आये ॥ ३ ॥ सो उन्हौंने सूर्यकी समान अपनें तेजसे प्रकाशमान महा मुनि दुर्वासाजीको वशिष्ठजीके निकट बैठे देखा ॥ ४ ॥ राजा दशरथजीनें नम्र होकर तपस्यामें श्रेष्ठ उन दोनों मुनियौंको प्रणाम किया उन दोनों महात्माओंनेंभी स्वागत कुशल पूछकर राजाको सत्कारसे आसनपर बैठाया ॥ ५ ॥ और पाद्य अर्घ्य फल मूल द्वारा सत्कृतहो राजा उन मुनियोंके सहित बैठे ॥ ६ ॥ उससमय उन सबके विराजनेंपर अनेक २ परम ऋषियोंकी मधुर कथा होंने लगी कि उस समय मध्याह्नका समय था ॥ ७॥ किसी कथा प्रसंगमें राजा दशरथजी हाथ जोड़ तपोधन महात्मा अत्रिके पुत्र दुर्वासाजीसे कहनें लगे, हे भगवन्! यह तो कहिये कि मेरा वंश कहांतक चलैगा; रामचंद्रकी कितनी आयुहै तथा और पुत्रोंकी कितनी आयुहै ॥ ८ ॥ ९ ॥ और जो रामचंद्रके पुत्र होंगे उनकी कितनी अवस्था होगी हे भगवन्! मुझे बड़ी इच्छाहै आप हमारे वंशका वृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ १० ॥ इस प्रकार महाराज दशरथके कहे हुए वचन सुनकर महातेजस्वी दुर्वासाजी कहनें लगे ॥ ११ ॥ हे राजन्! श्रवण कीजिये प्रथम देवताओंके संग दैत्यौंका बड़ाभारी संग्राम हुआ उससमय दैत्य देवताओंसे मार खाकर भृगुजीकी पत्नीकी शरणमें गये तब उसने उनको अभय दिया और दैत्य वहां निर्भय वास करनें लगे ॥ १२ ॥ जब विष्णुनें देखाकि भृगुपत्नीनें दैत्यौंकी रक्षा कीहै तब तीक्ष्णधारवाले चक्रसे भृगुपत्नीका मस्तक छेदन करादिया ॥१३॥ जब भृगुजीने अपनी पत्नीको मरा हुआ देखा तो उन वंश कुल उजागरनें शत्रु कुलके मारनेंहारे जनार्दन भगवानको शाप दिया ॥ १४ ॥ जिस कारण कि क्रोध वश होकर वध करनेंके योग्य तपस्विनी मेरी पत्नीको मारडालाहै इस कारण हे जनार्दन तुम मनुष्यलोकमें अवतार लोगे ॥ १५ ॥ उस शरीरमैं तुमको बहुत वर्षांतक स्त्रीका वियोग रहैगा इस प्रकारसे शाप देकर तपक्षीण होनेसे फिर भृगुजी पश्चात्ताप करनें लगे कि मैंनें। क्या किया जो स्त्रीके निमित्त

शाप दिया ॥ १६ ॥ फिर शाप प्रदानके भयसे पीड़ित होकर शाप सफल होनेंके निमित्त भृगुजी भगवान् जनार्दनकी आराधाना करनें लगे; उस समय जब अनेक प्रकारसे भगवानको तपस्या द्वारा आराधना किया तब भक्तवत्सल भगवान् बोले ॥ १७ ॥ कि तुम चिंता मतकरो तुम्हारा शाप मिथ्या नहीं होगा मैंनें लोकके कल्याणके आनंदके निमित्त तुम्हारे शापको ग्रहण कियाहै; इस प्रकारसे महातेजस्वी भृगुने शाप दियाहै॥ १८॥ हे राजोंमें श्रेष्टमान देनेहारे वही जनार्दन भगवान यहां आय तुम्हारे यहां पुत्र भावको प्राप्तहो रामनामसे त्रिलोकीमें विख्यात हुएहैं ॥ १९ ॥ सो भृगुके शापका वह वड़ा फल अवश्य करैंगे, रामचंद्र अयोध्याके महाराज वहुत कालतक रहैंगे ॥ २० ॥ और इनके छोटे भाई सुखी और अर्थोंसै परिपूर्ण होंगे; यह रामचंद्र ग्यारह सहस्र वर्षतक ॥ २१ ॥ अनेक प्रकारके यज्ञ अश्वमेधयज्ञ विधिपूर्वक करकै तथा औरभी यज्ञकर राज्य पालन करकै ब्रह्मलोकको जाँयगे ॥ २२ ॥ यह अनेक राज्य वंशोंका राज्य पालन करैंगे, और जानकीमें रघुनाथजीसे दो पुत्र होंगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार तुम्हारे वंशकी होनहार गतिका वर्णन करकै वही महातेजस्वी मुनि मौन हुये जब वे मुनि मौन हुए ॥ २४ ॥ तब राजा दशरथजी दोनों ऋषिश्रेष्ठोंको अभिवादन करकै उत्तम नगरमें आये ॥ २५ ॥ उस समय मुनिराजके मुखसे यह सब बातें वहीं श्रवण करींथीं, और अपने हृदयहीमें धारण करलीथीं; सो इसका कहना अन्यथा नहीं होगा ॥ २६ ॥ रामचन्द्र सीताके पुत्रोंको कहीं और स्थानमें नहीं अभिषेक करैंगे अयोध्यामें ही करैंगे कारणकि मुनिके वचन ऐसेहीहैं॥२७॥ हे सुमित्रानंदन! इस प्रकारसे आपके शोक करनेंकी कोई बात नहीं सो आज जानकी और रघुनाथजीकी ओरसे निश्चिन्त रहिये ॥ २८ ॥ इस प्रकार सूतजीके परमाश्चर्ययुक्त वाक्य श्रवण करकै लक्ष्मणजी अधिक आनंदको प्राप्तहो सुमंत्रको धन्यवाद देने लगे ॥ २९ ॥

ततःसंवदतोरेवंसूतलक्ष्मणयोःपथि ॥
अस्तमर्कैगतेवासंकेशिन्यांतावथोषतुः ॥ ३० ॥

इस प्रकार लक्ष्मण और सारथि सुमंत्र मार्गमें बातें करते २ सन्ध्या

समय केशिनी नगरीके निकट वास करते हुए ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे पण्डित ज्वाला प्रसाद मिश्रकृते भाषानुवादे एक पंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशः सर्गः ॥

तत्रतांरजनीमुष्यकेशिन्यांरघुनंदनः ॥
प्रभातेपुनरुत्थायलक्ष्मणःप्रययौतदा ॥ १ ॥

रघुनंदन लक्ष्मणजी केशिनीनगरीमें एक रात्रि वास करके प्रातःकाल उठके वहांसे गमन करते हुए ॥ १ ॥ फिर मध्याह्नके समय महारथी लक्ष्मणजी रत्नोंसे भरीपुरी हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे व्याप्त अयोध्या पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ २ ॥ अब उस समय मतिमान लक्ष्मणजीको बड़ा दुःख हुआ कि मैं रघुनाथजीके चरणोंको प्राप्त होकर क्या कहूंगा ॥ ३ ॥ वह इस प्रकार चिन्ता करही रहेथे कि उन्होंने आगे जाकर चन्द्रमाकी समान परम उदार रघुनाथजीका मंदिर देखा ॥ ४ ॥ कि वह नरोत्तम राजाके भवनके द्वारपर रथसे उतरकर नीचेको मुख किये दीन मनसे विना रोक टोक मंदिरमें प्रवेश करनें लगे ॥ ५ ॥ जाकर देखते क्याहैं कि रघुनाथजी दीन हुए, नेत्रोंमें जलभरे एक आसनपर बैठेहैं; इस प्रकार रघुनाथजीको आगे बैठे देखा ॥ ६ ॥ लक्ष्मणजीनें दीन चित्तसे उनके चरणयुगल ग्रहण किये, और फिर सावधानहो हाथ जोड़कर रघुनाथजीसे दीन वचन कहनें लगे ॥ ७ ॥ कि मैं आपकी आज्ञासे जानकीजीको गंगाजीके किनारे वाल्मीकिजीके शुभ आश्रमके निकट ॥ ८ ॥ उन शुद्धाशुद्धचारिणी यशस्विनीको आश्रमके निकटही त्याग दियाहै अब फिर हे वीर! आपके चरणउपासना करनेंके निमित्त आयाहूं ॥ ९ ॥ हे पुरुषसिंह आप शोक न कीजिये, कारणकि कालकी गति ऐसी है, आप सरीखे बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करते हैं ॥ १० ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य नसों सन्मुखहै । जो ऊंचे उठतेहैं वे नीचे गिरते हैं संयोगसे वियोग; और जीवनके अंत मरण होताहीहै ॥ ११ ॥ इस कारणसे स्त्री पुत्र मित्र धनमें अत्यन्त मन लगाना उचित नहीं है कारण कि उनका अवश्य वियोग होताहै ॥ १२ ॥ आप तो अपने आत्मासे आत्माको मनसें मनको शिक्षा

करनेंको समर्थ हैं बहुत क्याकहैं हे रघुनाथजी आप सम्पूर्ण लोकोंके शिक्षा करनेंको समर्थहैं फिर अपना शोक निवारण करना क्या बड़ी बातहै ॥१३॥ आप सरीखे महात्मा पुरुष मोहको नहीं प्राप्त होतेहैं, हे रघुनंदन! शोच करनेसे फिर वही अपवाद आनकर प्राप्त हो जायगा ॥ १४ ॥ जिस अपवादके भयसे आपनें जानकीका त्याग कियाहै, यदि शोच करोगे तौ हे श्रीरामचंद्रजी! फिर वही अपवाद आपको प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं है ॥ १५ ॥ हे पुरुष सिंह! इस कारण आप धैर्य धारणकर इस दुर्बल बुद्धिको त्यागन कीजिये; संताप न कीजिये ॥ १६ ॥ जब महात्मा लक्ष्मणजीनें इसप्रकार कहा तब मित्रवत्सल रघुनाथजी मनोहर वाणीसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १७ ॥ हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! तुम जो कहतेहो सो यथार्थहै, हे वीर! प्रजापालन करनेमें मैं संतुष्ट हूं ॥ १८ ॥

निवृत्तिश्चागतासौम्यसंतापश्चनिराकृतः ॥
भवद्वाक्यैःसुरुचिरैरनुनीतोस्मिलक्ष्मण ॥ १९ ॥

हे सौम्य! तुम्हारे वाक्यसे मेरा दुःख छुटगया और मेरा संताप भी मिटगया,हे लक्ष्मण! तुम्हारे सुन्दर वाक्योंसें अनुग्रहीत हूं ॥ १९ ॥

इत्यार्षे॰ श्रीम॰ वा॰ आ॰ उ॰ भा॰ द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥

लक्ष्मणस्यतुतद्वाक्यंनिशम्यपरमाद्भुतम् ॥
सुप्रीतश्चाभवद्रामोवाक्यमेतदुवाचह ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीके यह परमअद्भुत वाक्य श्रवण करकै रामचंद्रजी बड़े प्रसन्नहो इस प्रकारसे वचन कहनें लगे ॥ १ ॥ हे सौम्य! जैसे तुम महा बुद्धिवान मेरे वचन माननेंवाले हो इस कालमें तुम सरीखा बन्धु मिलना विशेष करकै कठिनहै ॥ २ ॥ हे शुभलक्षण! जो कुछ मेरे हृदयमें वर्त्तमानहै उसको सुनकर तुम मेरे वचन मानो ॥ ३ ॥ आज चार दिन हुए कि मैनें राज काज कुछभी नहीं देखा भालाहै न कुछ कियाहै; इस कारण हे लक्ष्मण! हमारे मर्मस्थानोंमें पीड़ा होतीहै ॥ ४ ॥ इससे पुरोहित मंत्री और सब प्रजाको बुलाओ; और स्त्री पुरुष जो किसी कार्यकी रक्षा करतेहैं

हे पुरुष श्रेष्ठ! उन सबको बुलाओ ॥ ५ ॥ जो राजा प्रतिदिन पुरवासियोंके कार्यको नहीं करताहै, वह वायुस्पर्शहीन घोर नरकमें पड़ताहै; इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ६ ॥ सुनो भाई पूर्वकालमें एक नृगनाम महायशस्वी राजाथे वह ब्राह्मणोंके माननेंवाले सत्यवादी, पवित्र प्रजा पालकथे ॥ ७ ॥ उन्होंनें एकसमय बछड़े सहित करोड़गाय सुवर्णके भूषणोंसे सजाय पुष्कर क्षेत्रमें ब्राह्मणोंको दान करदीं ॥ ८ ॥ हे पापरहित लक्ष्मणजी! उनकी गायोंमें जो राजाने दान करनेंके निमित्त मंगाईथीं, भूलसै किसी एक दरिद्री अग्निहोत्री उंछ वृत्तिसे जीने वाले ब्राह्मणकी गऊ आ मिली ॥ ९ ॥ वहां ब्राह्मण भूंखा प्यासा खोई हुई गोको इधर उधर ढूढ़नें लगा, और कई वर्षतक राज्य भरमें कहीं उसकी गाय नहीं मिली ॥ १० ॥ चलते २ जब वह हरिद्वारके निकट कनखलमें आया तब उसनें एक ब्राह्मणके यहां रोगरहित दुबले बछड़ेवाली अपनी गौ देखी ॥ ११ ॥ तब वह ब्राह्मण उस गायको अपने धरे हुए नामसे पुकारनें लगा "हे शवले! यहां आओ" सो जोही गौनें उस ब्राह्मणका यह शब्द सुना ॥ १२ ॥ त्योंही उस क्षुधासे व्याकुल अग्निकी समान प्रकाशमान ब्राह्मणका स्वर पहचानकर वह गौ आनकर उसके पीछे २ चलनें लगी ॥ १३ ॥ " जिस ब्राह्मणके घरमें वह गौ थी जो पालन करताथा वहभी उसके पीछे दौड़ा और शीघ्रतासे जाकर उस ऋषिसे बोला कि यह गौ तो मेरीहै ॥ १४ ॥ यह तो मुझे राजश्रेष्ठ नृगराजानें दानमें दीहै" इसप्रकारसे उन पंडित ब्राह्मणोंका परस्पर विवाद होनें लगा ॥ १५ ॥ और यह झगड़ा करतेर राजा नृगके पास गये, परन्तु वह राजाकी आज्ञाके न मिलनेंसे मंदिरमें प्रवेश न करसके ॥ १६ ॥ जब पड़े २ कई दिन रात बीत गये तब वे दोनों ब्राह्मण क्रोधमें भरगये; तब वे महात्मा दोनों ब्राह्मण श्रेष्ठ क्रोधमें भरे घोर शापयुक्त वचन बोलनें लगे ॥ १७ ॥ जब कि अर्थियोंके कार्य सिद्ध करनेंके निमित्त राजानें दर्शन नहीं दियाहै तो यह राजा सब प्राणियोंको अदृश्य गिरगिट होजायगा ॥ १८ ॥ सैकड़ों हजारों वर्ष एक सूखे कुएमें रहकर बहुत काल व्यतीत करैगा ॥ १९ ॥ जिससमय इस संसारमें यदुवंशकी कीर्त्ति बढ़ानेंवाले साक्षात् विष्णुजी वासुदेव नामसे शरीर धारण करैंगे ॥ २० ॥ हे राजा नृग वह तुमको इस योनिसे मोक्ष

करेंगे; अब तू गिरगट होगा परन्तु उस समय इस शापसे तेरी मुक्ति हो जायगी ॥ २१ ॥ नर और नारायण जिस समय द्वापरका अंत और कलियुगका आरंभ होगा, उससमय पृथ्वीका भार दूर करनेंके निमित्त अवतार धारण करेंगे ॥ २२ ॥ जब इसप्रकार उन दोनों ब्राह्मणोंका शाप-देकर क्रोध शांत हुआ तब उन्होंनें उस वृद्ध और दुर्बल गायको किसी और ब्राह्मणको देकर अपना झगड़ा मिटाया ॥ २३ ॥ इसप्रकारसे वह राजा इस समय दारुण शापका फल भोग रहाहै; कार्यार्थियोंका झगड़ा न निवटानेसे राजाको बड़ा दोष होताहै ॥ २४ ॥ इसकारण कार्यार्थियोंको शीघ्रतासे मेरे सामने लाओ, अच्छे कर्त्तव्य कार्यका फल राजा पाताही है ॥ २५ ॥

तस्माद्गच्छप्रतीक्षस्वसौमित्रेकार्यवान्जनः ॥ २६ ॥

इस कारण हे लक्ष्मण तुम द्वारे जाकर देखते रहो कि कौन कार्यार्थी (अर्जी देनें वाले) आतेहैं ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० उ० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत् सर्गः ॥

रामस्यभाषितंश्रुत्वालक्ष्मणःपरमार्थवित् ॥
उवाचप्रांजलिर्वाक्यंराघवंदीप्ततेजसम् ॥ १ ॥

परम अर्थके जाननेंवाले लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर तेजसे देदीप्यमान श्रीरामचंद्रजीसे हाथ जोड़कर कहनें लगे ॥ १ ॥ हे महाराज! थोड़ेसे अपराधपरही उन ब्राह्मणोंनें महान राजर्षि नृगराजाकूं दूसरे यमदंडकी समान महाघोर शाप दिया ॥ २ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ उस समय राजा नृगनें अपनेको महा पापयुक्त शापी सुनकर उन क्रोधी ब्राह्मणोंसे क्या कहा सो कहिये ॥ ३ ॥ जब लक्ष्मणजीनें यह पूछा तब रामचंद्रजी फिर कहनें लगे कि हे सौम्य क्रमसे सुनिये जो कुछ राजानें शाप सुनकर उन ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ४ ॥ जब वे ब्राह्मण वहांसे आकाशमार्ग होकर चले गये, तौ राजानें यह समाचार जानकर पुरवासी पुरोहित और सब मंत्रियोंको बुलाया ॥ ५ ॥ उसस-

मय राजा बड़े दुःखमें प्राप्त होकर उन सब प्रजाके लोगोंसे कहनें लगा, हेम-
हात्माओ। सब सावधान होकर मेरे वचनको सुनो ॥ ६ ॥ नारद और पर्व-
त ऋषि आनकर मुझे शापकी कथा सुनाकर बड़ा भयदे वायुवेगसे ब्रह्म-
लोकको चले गये ॥ ७ ॥ यह हमारा वसुनामक पुत्रहै, इसे यौवराज्यमें
आजही अभिषेक करना चाहताहूं; और शिल्पियोंके द्वारा एक श्रेष्ठगर्त
(गढा) बनवाया जाय, जो अच्छाहो ॥ ८ ॥ जिसस्थानमें निवास करके
मैं ब्राह्मणोंका शापविताऊंगा, एक गर्ततो ऐसा बनाओ जहां वर्षाकी बाधा
न हो, एक ऐसा जिसमें शीतकी बाधा नहो ॥ ९ ॥ एक ऐसा जिसमें ग्रीष्म-
की बाधा नहो, ऐसा सुख स्पर्शवाला कारीगरोंके द्वारा गर्त बनाया जावै,
जो फलवाले वृक्ष और फूलौंवाली लता ॥ १० ॥ व और छायावाले
अनेक प्रकारके गुल्म वहां लगायें जावें, यह गर्त चारों ओरसे शोभाय-
मान बनये जावैं ॥ ११ ॥ जहांमैं शापके अन्त तक सुखपूर्वक वास करूं-
गा; और वहां ऐसे सुगन्धिके वृक्ष लगाओ जिनमें सदा फूल खिलते रहैं॥१२॥
और ऐसा करो कि वह फुलवाड़ियें दो कोस पर्यन्त लगाई जांय, यह सब
विधानकर और उसमें अनेक ऐश्वर्यका स्थापन करके ॥ १३ ॥ पुत्रसे क-
हा हे पुत्र। पुत्रकी नांई तुमको नित्यप्रति प्रजापालन करना उचित है,
असावधानीका फल यह प्रत्यक्षहीहै कि ब्राह्मणोंनें यह मुझे शाप दिया ॥
॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ पुत्र! ऐसे क्रोधसे दिये हुए शापमें मेरे प्रति तुमको सं-
ताप करना उचित नहींहै ॥ १५ ॥ हे पुत्र! पूर्वकर्महो प्रधानहै, जिसनें मु-
झे व्यसनमें डाल दियाहै, जो वस्तु प्राप्त होनेके योग्यहै वह प्राप्त होती है,
और जो जानहारहै वह जाती हीहै ॥ १६ ॥ जो दुःख सुख होनहार हैं वह
आनकर प्राप्त होनेहीहैं जो कुछ प्रथम जन्ममें दूसरी जातिमें कर आयेहैं वह
भोगना पडेगा, इस कारण हे पुत्र! विषाद मतकरो ॥ १७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ!
इस प्रकारसे वह यशस्वी राजा अपने पुत्रसे कहकर उस अच्छे बनाये
हुए गर्तमैं वास करनेंको चलागया ॥ १८ ॥

एवंप्रविश्यैवनृपस्तदानींश्वभ्रंमहद्रत्न
विभूषितंतत् ॥ संपादयामासतदामहा
त्माशापंद्विजाभ्यांहिरुषाविमुक्तम् ॥ १९ ॥

इस प्रकारसे उस समय उस राजानें अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण महागर्त में प्रवेश किया, और वहां रहकर वह महात्मा क्रोधित ब्राह्मणोंके शापको अनुभव करता हुआ ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्ये उत्तरकांडे चतुःपंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ॥

एषतेनृगशापस्यविस्तरोभिहितोमया ॥
यद्यस्तिश्रवणेश्रद्धाशृणुष्वेहापरांकथाम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त रामचंद्रजी बोले हे लक्ष्मण! तुमको नृपके शापकी विचारपूर्वक कथा सुनाईदी और कुछ सुननेंकी इच्छा हो तो एक और कथा सुनाऊं ॥ १ ॥ रामचंद्रजीके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजी कहनें लगे, हे महाराज! इन आश्चर्यकी कथाओंके श्रवण करनेंसे मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ जिस समय लक्ष्मणजीनें यह वार्त्ता कही, तब इक्ष्वाकुनंदन श्रीरामचंद्रजी परम धर्मयुक्त कथा कहनें लगे ॥ ३ ॥ कि एक इक्ष्वाकुओंमें निमि नामक राजाथे, यह इक्ष्वाकुके वारहवे पुत्रथे, वीर्य, और धर्ममें निष्ठावालेथे ॥ ४ ॥ यह बड़े बली राजा गौतम जीके आश्रमके निकट देवताओंके नगरीकी समान एक नगरमें वासकरतेथे ॥ ५ ॥ उस श्रेष्ठ पुरका वैजयन्त नामथा जिसमें महा यशस्वी राजा निमि वास करतेथे ॥ ६ ॥ उस पुरमें वास करते २ उनकी बुद्धिमें यह वात समाई कि हम अपने पिताको प्रसन्न करते हुए एक वडे यज्ञका विधानकरैं जो वहुत दिनोंमें समाप्त हो ॥ ७ ॥ यह मनमें विचार मनुके पुत्र इक्ष्वाकु अपने पितासे मंत्रणा करके ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजीको यज्ञमें वरण किया ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण उसके उपरान्त इक्ष्वाकु पुत्र राजर्षि निमिनें अत्रि अंगिरस और तपोधन भृगुको वरण किया ॥ ९ ॥ उस समय वशिष्ठजी राजर्षि श्रेष्ठ निमिसे कहनेलगे हमें तुमसे पहले इन्द्रके यहां का वरण आचुका है इस कारणसे तुम कुछ काल पर्यन्त ठहरो ॥ १० ॥ यहकह महा तेजस्वी वशिष्ठजी इन्द्रके यहां यज्ञकरानें लगे इधर गौतमजी महाराज वशिष्ठके स्थानमें स्थितहो निमिका यज्ञ करनेंको स्थित हुए ॥ ११ ॥ इस प्रकार निमिरा

जा उन ब्राह्मणोंको संगलेकर हिमालयके पार्श्वमें अपनें पुरके निकट यज्ञ करते हुए ॥ १२ ॥ पाँच हजार वर्ष तक राजा यज्ञकी दीक्षामें रहे इधर इन्द्रके यज्ञ पूर्ण होनें पर भगवान् वशिष्ठजी ॥१३॥ जो निंदा रहित हैं यज्ञ करानेंके निमित्त राजाके निकट आये, देखें तो गौतमजीनें उस यज्ञको पूराकरही दियाहै ॥ १४ ॥ देखतेही ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्ठजी क्रोधमें भरगये और उसी समय राजासे मिलनेंके कारण शीघ्रतासे उस समय उनके द्वारपर एक मुहूर्त भरतक स्थित रहे उस दिन राजा अधिक निद्रा के कारण सोगयेथे ॥ १५ ॥ यह देखकर वशिष्ठजीका क्रोध औरभी बढगया, राजाके दर्शन पानेंसे इस प्रकारसे कहनें लगे ॥ १६ ॥ हे राजन् जोकि तुमनें मेरा निरादर करकै औरका वरण कियाहै इस कारण तेरा देह जीवरहित हो जायगा ॥ १७ ॥ जब राजाने जागकर यह शापकी व्यवस्था सुनी तौ वह राजा भी महा क्रोधितहो वशिष्ठको शापदेने लगे ॥ १८ ॥ आपने मुझ सोते हुए पर विना जाने क्रोधके वशमें दूसरे यमदंड़की नाईं जो शापाग्नि गिराई है ॥ १९ ॥ इस कारणसे हे महर्षे तुम्हारी सुन्दर भी देह विना जीवके बहुत कालतक रहैगी ॥ २० ॥

इतिरोषवशादुभौतदानीमन्योन्यंशपितौ
नृपद्विजेंद्रौ ॥ सहसैवबभूवतुर्विदेहौत
त्तुल्याधिगतप्रभाववंतौ ॥ २१ ॥

इस प्रकारसे वह राजेन्द्र और द्विजेन्द्र क्रोधके वशीभूतहो एक दूसरे उस समय शाप देकर दोनोंही बराबर प्रभावाले होनेंके कारण तत्काल देह रहित होगये॥२१॥इ०श्रीम०वा०आ० उ० पंच पंचाशः सर्गः ॥५५॥

षट् पंचाशः सर्गः ॥

रामस्यभाषितंश्रुत्वालक्ष्मणःपरवीरहा ॥
उवाचप्रांजलिर्भूत्वाराघवंदीप्ततेजसम् ॥ १ ॥

शत्रुघाती लक्ष्मणजी रघुनाथजीके वचन सुनकर हाथ जोड़ महा तेजस्वी रघुनाथजीसे बोले ॥१॥ हे रघुनाथजी देवताओंसे पूजित वह राजा और वशिष्ठ देह रहित होकर फिर किस प्रकारसे देह संयोगको प्राप्त हुए ॥ २ ॥

लक्ष्मणजीके यह वचन सुनकर इक्ष्वाकुकुल नंदन पुरुष श्रेष्ठ दीप्तिमान-रघुनाथजी बोले ॥ ३ ॥ कि वह दोनों धर्मात्मा परस्पर शापके कारण देहत्यागन करके तपस्वी विप्रर्षि और राजा वायुरूप होगये ॥ ४ ॥ अब महामुनि महा तेजस्वी वशिष्ठजी शरीर रहित हो दूसरे स्थूल शरीरके प्राप्त होनेके निमित्त अपने पिता ब्रह्माजीके पास गये ॥ ५ ॥ वहां जायकर वह धर्म जाननें वाले वायुभूत शरीर वशिष्ठजी देवदेवके चरणोंको अभिवादन करकै ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहनें लगे ॥ ६ ॥ हे भगवन्! मैं निमिके शापसे विदेहपनको प्राप्त होगया हूं, हे अंडसे उत्पन्न! हे देवदेव ! हे महादेव ! मैं वायुभूत हो रहाहूं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! शरीर रहित सबहीको बड़ा दुःख होताहै, और हीनदेहकी इस लोक तथा परलोककी सब क्रिया नष्ट होजातीहैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकारसे मुझे और देह प्राप्त होजाय ऐसी कृपा आप कीजिये यह वचन सुन बड़े प्रभाववाले स्वयंभू ब्रह्माजी उनसे बोले ॥ ९ ॥ हे महायश ! तुम मित्र और वरुणके तेज वीर्यमें प्रवेश कर जाओ, हे द्विजश्रेष्ठ! वहां भी तुम अयोनिज रहोगे; और धर्मसे युक्त होकर तुम मेरे पुत्रत्वको प्राप्तहो ज्ञानी और प्रजापति रहोगे ॥ १० ॥ जब पितामह ब्रह्माजीनें ऐसा कहा तो उनको अभिवादन कर प्रदक्षिणा करकै वरुण लोकको गये ॥ ११ ॥ उसी समयमें मित्रभी (सूर्य) सम्पूर्ण देवता ओंके द्वारा जो बड़े २ थे पूजित होकर वहाँ आये और वरुणका कार्य करने लगे और क्षीरसागरको प्राप्त हुए साथही वशिष्ठजीभी गये ॥ १२ ॥ उसी समयमें परम अप्सरा उर्वशी अपनी इच्छासे सखियोंको साथ लिये विचरती हुई उस देशमें आनकर प्राप्त हुई ॥ १३ ॥ वरुणालयमें उस रूप यौवनसम्पन्न उर्वसी अप्सराको क्रीड़ा करता हुआ देखकर उसकी प्राप्तिके निमित्त वरुणजीको बड़ी प्रसन्नता हुई॥१४॥ उस कमलनेत्री पूर्णचंद्रमुखी श्रेष्ठ अप्सराको वरुणजी मैथुनके निमित्त वरण करते हुए ॥ १५ ॥ तब वह अप्सरा हाथ जोड़कर वरुणजीसे बोली हे सुरेश्वर ! इस समय साक्षात् मित्रजीनें हमें वरण कियाहै ॥ १६ ॥ तब वरुणजी कामसे पीड़ित होकर कहनें लगे जो ऐसाहै तो तेरे दर्शनसे क्षुभित हुए अपने इस वीर्यको हम पुत्रोत्पत्तिकी सामर्थ्यवाले देवताओंके बनाये इस घड़ेमें स्थापन करतेहैं ॥ १७ ॥ हे सुन्दरनितम्बौ

वाली ! जो तू मेरे संगकी इच्छा नहीं करतीहै तौ तेरे निमित्त इस घटमें वीर्य स्थापन कर काम भोगकी समान कृतकाम हूंगा ॥ १८ ॥ उन लोकनाथ वरुणके यह वचन सुनकर उर्वसी परम प्रसन्न होकर यह वचन कहनें लगी ॥ १९ ॥ यह बात ऐसेही हो क्योंकि तुम भी मेरे हृदयमें अधिक वस रहेहो औरमैं तुम्हारे में तौ भाव द्वाराही हमारा तुम्हारा भोग हो कारण कि इस समय वह देहतौ मित्रके निमित्त दे चुकीहूं ॥ २० ॥ जब उर्वशीनें ऐसा कहा तो वह परम अद्भुत वीर्य जो जलती हुई अग्निकी समान था उस घड़ेमें छोड़ दिया ॥ २१ ॥ और उर्वशी वहां गई जहां मित्र देवताथे, तब मित्रजी उर्वशीको देखकर क्रोधसे कहनें लगे ॥ २२ ॥ हे दुष्टचारिणी। जब कि तुझे मैंने बुलाया था तौ कैसे तुमनें मुझसे मिलेविना दूसरे पतिका वरण किया ॥ २३ ॥ इस पापसे तू मेरे क्रोधसे कलुषित होकर कुछकाल पर्यन्त मृत्युलोकमें वास करै-गी ॥ २४ ॥ हे कुबद्धिनी! काशीराज बुधके पुत्र राजर्षि पुरूरवाके निकट जाकर प्राप्तहो वह तेरा भर्ता होगा ॥ २५ ॥ तब वह अप्सराशाप दोषसे पुरूरवाके पास आई यह पुरूरवा बुधके औरस पुत्र प्रतिष्ठान पुरमें वास करते थे ॥ २६ ॥ उस्से उन राजाके श्रीमान् आयुनाम पुत्र बडे वली उत्पन्न हुए, जिनके पुत्र इन्द्रकी समान कांति वाले नहुषजी हुए ॥ २७ ॥ जिन राजा नहुषनें "वृत्रासुरके ऊपर वज्र चलानेंसे ब्रह्म हत्याको प्राप्त हुए इन्द्रके छिपनें पर बहुत हजार वर्षतक इन्द्र लोकका राज किया" ॥ २८ ॥

सातेनशापेनजगामभूमिंतदोर्वशीचारु
दतीसुनेत्रा ॥ बहूनिवर्षाण्यवसच्चसु
म्रःशापक्षयादिंद्रसदोययौच ॥ २९ ॥

वह सुन्दर दन्त और सुन्दर नेत्रवाली उर्वशी मित्रके शाप वश भूलो-कमें प्राप्त हुई; और बहुत वर्षतक मनुष्य लोकमें वास किया शाप क्षय होनेंपर फिर इन्द्र लोकको गई॥२९॥इ०श्रीम०वा०भा०उ०षट् पंचाशः सर्गः॥५६॥

सप्तपंचाशतः सर्गः॥

तांश्रुत्वादिव्यसंकाशांकथामस्तदर्शनाम् ॥
लक्ष्मणःपरमप्रीतोराघवंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

इस प्रकारसे परम दिव्य अद्भुत दर्शन युक्त कथाको रघुनाथजीके मु-
खसे श्रवण कर लक्ष्मणजी परम प्रसन्नहो रघुनाथजीसे बोले ॥ १ ॥ हे
रामचंद्र ! जब उन देवपूजित ब्राह्मण और राजानें अपना शरीर त्याग
न किया तौ फिर किस प्रकारसे वैदेह योगको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ सत्य
पराक्रम रामचंद्रजी इस प्रकार लक्ष्मणके वचन सुनकर उन महात्मा
वशिष्ठजीकी उस कथाको कहनें लगे ॥ ३ ॥ भ्राता लक्ष्मण ! जो वह
घड़ा उन महात्माके वीर्यसे पूर्ण हुआथा उसमेंसे तेजस्वी दो ऋषि श्रेष्ठ
उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ पहले तौ उनमेंसे भगवान् अगस्त्यजी उत्पन्न हुए और
"मैं तुम्हारीही पुत्र नहींहूं" वरुणकाभी हूं यह मित्रजीसे कहकर वहांसे
चलेगये ॥ ५ ॥ कारणकि उर्वशीमें मित्रका तेज पूर्वसे विराजित था उस
कुम्भमें वरुणजीनें अपना तेज स्थापित किया, उसमें प्रथम मित्रका तेज
आगयाथा ॥ ६ ॥ (इसी कारण अगस्त्यने कहाकि मैं केवल तुम्हारा
पुत्र नही हूं, इसी कारण अगस्त्यजीको मैत्रावरुणि कहतेहैं) कुछ दिनौं
उपरान्त मित्रावरुणके तेजसे अपने तेजसे देदीप्यमान इक्ष्वाकु कुलके
पूज्य वशिष्ठजी उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ उन निन्दा रहितके उत्पन्न होतेही इ-
क्ष्वाकु महाराजनैं कहा; आप हमारे वंशके कल्याणके निमित्त पुरोहित
हूजिये ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकारसे तौ महात्मा वशिष्ठजीको नूतन
देहकी प्राप्ति हुई, हे सौम्य ! अब निमिजीका वृत्तान्त सुनिये ॥ ९ ॥ निमि
राजाको विदेह देखकर वह सब ऋषि जो वड़े बुद्धिमानथे उनको निमि
दीक्षाकर्ममें नियुक्त करते हुए ॥ १० ॥ वह ब्राह्मण श्रेष्ठ उस राजाका
देहकी तेलकटाहमें रक्षा करनें लगे, और गन्ध माला वस्त्रादिसें रक्षित
किया, और पुरवासी भृत्यादि सब सावधान रहे जिस्से देह न विग-
डे ॥ ११ ॥ जब यज्ञ समाप्त हुआ उस समय भृगुजी यह बोले हे राजन्
मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं, इस कारण तुम्हारे देहमें तुम्हारे आत्माको लाता
हूं॥१२॥इस ओर सब देवताभी आकर निमिसे कहनें लगे हे राजर्षि! वरमां
गिये कि हम आपका जीव कहां स्थापन करैं ॥१३ ॥ जब सम्पूर्ण देवता
ओंनें ऐसा कहा तब निमिका आत्मा कहनें लगा हे देवताओं हम सब
प्राणियोंके नेत्रोंमें वसनें की इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥ बहुत अच्छाकह यह
वचन सम्पूर्ण देवताओंने कहा कि आप वायुरूपसे सब प्राणियोंकी देहोंमें

निवास करेंगे ॥ १५ ॥ हे राजन् जब वायुरूप होकर आप सब प्राणियोंके नेत्रोंमें वास करोगे तौ विश्रामके निमित्त सम्पूर्ण प्राणियोंके नेत्र पलक लगा करैंगे ॥ १६ ॥ यह कहकर सब देवता अपने स्थानको चले गये और तब महात्मा ऋषिभी निमिके देहको लेकर ॥ १७ ॥ उसमें अरणि डालकर पराक्रमसे हवनके मंत्र पढ़कर वे सब महात्मा निमिके पुत्र होनेंके निमित्त हवनके मंत्रोंसें मथन करनें लगे ॥ १८ ॥ जब इस प्रकार अरणी द्वारा देह मथन किया तब उस्से महातपस्वी पुरुषका जन्म हुआ मथनेंसे उत्पन्न होनेंके कारण मिथिनाम हुआ, जनन अर्थात् प्रादुर्भूत होनेंसे जनक कहलाये ॥ १९ ॥ और चेतन रहित देहसे उत्पन्न होनेंके कारण एक नाम विदेहभी हुआ; इस प्रकार जन विदेह पूर्वकालमें राजा हुए वह मिथि बड़े तेजस्वी हुए जिनके देशके राजा मैथिल कहाये ॥ २० ॥

इतिसर्वमशेषतोमयाकथितंसंभव
कारणंतुसौम्य ॥ नृपपुंगवशापजंद्वि
जस्यद्विजशापाच्चयदद्भुतंनृपस्य ॥ २१ ॥

हे लक्ष्मण! मैंनें ऋषिके शापसे राजाका और राजाके शापसे ऋषि श्रेष्ठका चेतना रहित होना और फिर अद्भुत शरीर की प्राप्ति होना यह तुमको संपूर्ण सुनाया ॥ २१ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० सप्त-पंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशः सर्गः ॥

एवंब्रुवतिरामेतुलक्ष्मणःपरवीरहा ॥
प्रत्युवाचमहात्मानंज्वलंतमिवतेजसा ॥ १ ॥

शत्रु ओंके मारनें वाले लक्ष्मणजी रामचंद्रके यह वचन सुनकर तेजसैं प्रकाशित महात्मा रामचंद्रसे फिर बोले ॥ १ ॥ हे पुरुष राजशार्दूल ! यह विदेह राजकी पुरातन कथा जिसमें वाशिष्ठ मुनिजीके साथ प्रसंगहै बहुतही आश्चर्य युक्तहै ॥ २ ॥ परन्तु राजा निमितौ बड़े शूर क्षत्रिय और विशेष करकै यज्ञमें दीक्षित सो उन राजानें वाशिष्ठजीपर क्षमा क्यौं नहींकी ॥ ३ ॥ क्षत्रियोमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार पूछे जानेंपर

सम्पूर्ण शास्त्रके जाननेंवाले लक्ष्मणजीसे कहनें लगे ॥ ४ ॥ आनंदकरानें वालोंमेंश्रेष्ठ रामचन्द्र तेजयुक्त लक्ष्मणभ्रातासे कहनें लगे । हे वीर! सर्वत्र सब पुरुषोंमें क्षमा नहीं देखी जाती है ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! यह दुस्सह क्रोध जिसप्रकार ययाति राजानें सतोगुणमें स्थित होकर सहन किया-था; वह तुम सावधान होकर सुनो ॥ ६ ॥ नहुषके पुत्र राजा ययाति बड़ेप्रजा पालकथे; हे लक्ष्मण! पृथ्वीमें सबसे अधिक रूपवान उनको दो भार्याथीं ॥ ७ ॥ एक तौ उन राजर्षि नहुषके पुत्र ययाति राजाकी शर्मिष्ठा भार्याथी जो दितिकी पोती वृषपर्वा दैत्यकी कन्याथी यह राजाको प्या-रीथी ॥ ८ ॥ दूसरे शुक्रकी कन्या उनकी भार्याथी उसका नाम देवयानी थी यह सुमध्यमा राजाको बहुतप्यारी नहींथी ॥ ९ ॥ उन दोनोंके रूपवान श्रेष्ठ दोपुत्र हुए शर्मिष्ठासे पुरु और देवयानीसे यदुका जन्म हुआ ॥ १० ॥ माताकी समान गुणयुक्त होनेंसे पुरुपुत्र राजाको बहुत प्यारा हुआ; यह देख महत् दुःखीहो यदुनें अपनी मातासे जाकर कहा ॥ ११ ॥ हे माता! अलौकिक कर्म देव भार्गवके कुलमें जन्म लेकर ऐसे हृदय भेदी दुःख और अपमानको कैसे सहन करतीहो ॥ १२ ॥ हे माता! हमारे सहित आप अग्निमें प्रवेशकर जाइये, राजा तौ बहुत कालसे दैत्य पुत्रीके संग रमण करतेहैं ॥ १३ ॥ और जो माता तुम इसे सहन करतीहो तौ मुझे आज्ञादो तुम चाहे कुछ मतकरो परन्तु मैं तौ निःसंदेह प्राण त्यागन करूंगा ॥ १४ ॥ परम दुःखी रोते हुए पुत्रके यह वचन सुनकर देवयानी क्रोधितहो पिताको स्मरण करती हुई ॥ १५ ॥ शुक्रजी अपनी पुत्रीकी यह अवस्था जानकर शीघ्रतासे जहां देवयानीथी वहां आये ॥ १६ ॥ देवयानीको अस्वस्थ दुःखी और क्षुभित चित्त देखकर शुक्रजी कन्यासे बोले कि यह क्याबातहै ॥ १७ ॥ जब उन महा दीप्तिमान् भार्गवजीनें वारंवार पूछा तब देवयानी क्रोधकर पितासे कहनें लगी ॥ १८ ॥ हे मुनि सत्तम! या तौ मैं अवश्य अग्निमें प्रवेशकर जाऊंगी या विष भक्षण करलूंगी परन्तु किसी प्रकारभी प्राण धारण नहीं करूंगी ॥ १९ ॥ तुम नहीं जानते कि मैं कितनी दुःखीहूं और मेरा कैसा निरादर होताहै; हे ब्रह्मन् जैसे वृक्षके कटनेपर वृक्षजीवभी मरजातेहैं यही दशा मेरे पुत्रोंकी।

होगी ॥ २० ॥ हे भार्गव ! राजर्षि वह अवज्ञा और निरादर यहहै कि वह राजर्षि मेरा तिरस्कारभी करतेहैं और मुझें बहुत नहीं मानते ॥ २१ ॥ अपनी कन्याके यह वचन सुन महाक्रोधितहो शुक्रजी नहुष पुत्र ययातिके निमित्त ऐसे वचन बोले ॥ २२ ॥ हे दुरात्मा नहुषपुत्र जिस कारणसे कि तुमनें हमारा निरादर कियाहै इसीसे तुमको अभी जरा अवस्था प्राप्त होगी और तुम्हारे सब अंग शिथिल हो जांयगे ॥ २३ ॥ ऐसा कह शुक्रजी अपनी कन्याको समझाय वह महा यशस्वी ब्रह्मर्षि फिर अपने स्थानको आये ॥ २४ ॥

सएवमुक्त्वाद्विजपुंगवाग्र्यःसुतांसमाश्वास्य
चदेवयानीम् ॥ पुनर्ययौसूर्यसमानतेजाद
त्वाचशापंनहुषात्मजाय ॥ २५ ॥

वह ब्राह्मणोंमें अग्रणी इसप्रकारसे कहकर अपनी पुत्री देवयानीको समझाय बुझाय नहुष पुत्रको शाप देकर वह तेजस्वी फिर अपने घर आये ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० उ० अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

नवपंचाशः सर्गः ॥

श्रुत्वातूशनसंक्रुद्धंतदार्तोनहुषात्मजः ॥ ज
रांपरमिकांप्राप्ययदुंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

नहुषपुत्र ययाति शुक्रजीको क्रोधित सुनकर महा दुःखीहो अत्यन्त वृद्धताको पाय यदुसे कहनें लगे ॥ १ ॥ हे पुत्र ! यदु तू बड़ा धर्मात्माहै सो यह मेरी जरा अवस्था ग्रहणकर, हे महायशस्वी अभी मैं तृप्त नहीं हूं अभी भोग भोगूंगा ॥ २ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! जब तक मैं विषय भोगसे सन्तुष्ट न होजाऊं तब तक मैं कामक्रीड़ा करूंगा; पश्चात् तुमसे जरा अवस्था ग्रहण करलूंगा ॥ ३ ॥ यह वचन सुनकर यदुनें राजा श्रेष्ठ ययातिसे कहा; तुम्हारा प्यारा बेटा पुरु तुम्हारे बुढ़ापेको तुमसे ग्रहण करलेगा ॥ ४ ॥ हे राजन् ! आपने तो मुझे अपने निकटसे और सब अर्थोंसे अलगकर दियाहै; आप जिनके संग पीतेखातेहो वही तुम्हारे बुढापेको ग्रहण करेंगे ॥ ५ ॥ तिसके यह वचन सुनकर राजा पुरुसे कहनें लगा कि हे म-

हा भुज मेरे प्रिय करनेंके निमित्त तुम यह मेरी अवस्था ग्रहण करो ॥ ६ ॥ जब ययातिनें ऐसा कहा तो पुरु हाथ जोड़कर बोला आज मैं आपकी आज्ञा माननेंसे धन्य और अनुगृहीत हुआ हूं ॥ ७ ॥ यह पुरुके वचन सुनकर ययाति परम प्रसन्न हो अत्यन्त सुखको प्राप्त हुए; और योग बलसे उसके शरीरमें जरा प्रवेश करदेते हुए ॥ ८ ॥ तब वह राजा तरुणहो हजारों यज्ञ करके बहुत सहस्रौं वर्षों तक पृथ्वीका पालन करते हुए ॥ ९ ॥ फिर बहुत काल बीतनें पर राजाने पुरुसे कहाहे पुत्र ! हमारी धरोहरकी समान रक्खी हुई जरावस्था आप हमको दीजिये ॥ १० ॥ हे पुत्र ! तुझे जरा अवस्था धरोहरकी भांतिदीथी इस कारण इसमें व्यथा करनें की कोई बात नहीं है ॥ ११ ॥ हे महाभुज ! तुमनें जो मेरी आज्ञा मानी इस कारण मैं तुमसे अधिक प्रसन्नहूं और मैं प्रसन्न होकर तुमको राज्य सिंहासनमें अभिषेक करूंगा ॥ १२ ॥ नहुष पुत्र ययाति अपने पुरुपुत्रसे इस प्रकार कहकर देवयानीके पुत्रसे क्रोध सहित बोले ॥ १३ ॥ हे नीच! तू मुझसे क्षत्रिय रूपमें कोई राक्षस उत्पन्न हुआहै; जिस्से तैंनें मेरी आज्ञा नहीं मानी इस कारण तू राज्यका अधिकारी नहीं होगा ॥ १४ ॥ गुरुरूप मुझ अपने पिताका जो तैंनें निरादर कियाहै इस कारण तुझसे राक्षस यातुधान क्रूर कर्म संतान होगी ॥ १५ ॥ तेरी संतान जो कि राक्षस स्वभाव वाली नहीं होगी वह क्षत्रियमात्रनाम वाली होगी किन्तु राज्याभिषिक्त न होगी क्योंकि तेरा वंश बहुधा तेरी समान दुर्विनीत होगा ॥ १६ ॥ उसे राजर्षि ययाति इस प्रकार कह, राज्य बढ़ानें वाले पुरुको राज्य सिंहासनमें बैठाय वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश कर गये ॥ १७ ॥ फिर बहुत समय उपरान्त प्रारब्धके अन्तको प्राप्त हो नहुषपुत्र ययाति स्वर्गको सिधारे ॥ १८ ॥ और पुरु धर्म पूर्वक उनके राज्यका पालन करनें लगे काशी राज्यमें श्रेष्ठ प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग) के निकट वह महा यशस्वी राज्य करतेथे ॥ १९ ॥ शापसे यदुके सहस्रों यातुधान उत्पन्न हुए जो राजवंशसे बाहर क्रौञ्च वनके महा दुर्ग स्थानमें वह सब वासकरनें लगे ॥ २० ॥ इस प्रकारसे शुक्राचार्यके दिये हुए शापको ययातिनें क्षत्र धर्मसे स्वीकार करलिया जिसको राजा निमि न सह सके ॥ २१ ॥ यह आपके प्रति प्रजा पालनके वृत्तान्त सब वर्णन किये हे सौम्य हमको इस प्रकारसे

वर्तना चाहिये जिसमें कोई दोष उपस्थित नहो जैसा नृगको हुआ॥२२॥

इतिकथयतिरामेचंद्रतुल्याननेनप्राविरलतरतारंव्योमजज्ञेतदानीम् ॥ अरुणकिरणरक्तादिग्वभौचैवपूर्वाकुसुमरसविमुक्तंवस्त्रमागुंठितेव ॥ २३ ॥

चंद्रमुख रामचंद्रके ऐसा कहते आकाश थोड़े तारोंसे युक्त होगया; और पूर्व दिशा अरुणकी किरणोंसे लाल होगई मानो उसने कुसुमरंगका वस्त्र ओढ़ लियाहै ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उ० एकोन षष्ठितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

आगे तीन सर्ग क्षेपकहैं॥

प्रथमः सर्गः ॥

ततःप्रभातेविमलेकृत्वापौर्वाह्निकींक्रियाम् ॥ धर्मासनगतोराजारामोराजीवलोचनः ॥ १ ॥

प्रातःकाल होतेही प्रभातकी सब क्रियाओंसें निश्चिन्तहो राजीवलोचन राम धर्मासनपर जाविराजे ॥ १ ॥ वेद शास्त्रोंके जाननेवाले पुरोहित वशिष्ठ और कश्यपऋषिके सहित राजकार्य्योंको देखते हुए ॥ २ ॥ व्यवहारके जान्नेवाले मंत्री तथा धर्मके जाननेवाले नीतिके जाननेंवाले सभासदों और राजाओंसे वह सभा परिपूर्णथी ॥ ३ ॥ जैसी सभा महेन्द्र यम वरुणकी है, इसी प्रकार अक्लिष्ट कर्मा राजसिंहरामचन्द्रकी वह सभा शोभित हुई ॥ ४ ॥ उस समय रामचन्द्रजी शुभ लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे बोले हे महाभुज! सुमित्राके आनंद बढ़ाने वाले तुम बाहर जाओ ॥ ५ ॥ और हे लक्ष्मण जो कार्यार्थी बाहरहों उन्हे लिवा लाओ, शुभ लक्षण युक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रके वचन सुनकर ॥ ६ ॥ द्वारपरजाय स्वयं कार्यार्थियोंको बुलानें लगे सो वहां कोईभी नहीं बोला कि हमारा यह कार्य है ॥७॥ कारण कि रामके राज्यमें आधिव्याधि नहींथीं पके खेतोंसे और सब औषधीयोंसे भरीपुरी पृथ्वी रहतीथी॥८॥बालक बूढा युवा कोई रामके राज्य में नहीं मरता था, सब कोई धर्ममें शिक्षितथे इस कारण कोई व्याधि नहींथी ॥९॥रामके राज्य करते समयमें कोई कार्यार्थी नहीं था सो लक्ष्मणनें हाथ जोड़कर रामचंद्रसे यह बात निवेदनकी ॥१०॥ फिर रामचंद्रजी प्रसन्न हो-

कर लक्ष्मणजीसे कहनें लगे तुम फिर जाकर कार्य करनें वालोंको विचा-रसे देखो ॥ ११ ॥ सम्यक्प्रकार प्रणय और नीतिके कारण कहीं कुछ अधर्म नहींथा; इस कारण राज्यभयसे सबकोई परस्पर एक दूसरेकी र-क्षा करते हैं ॥ १२ ॥ बाणकीनांई यह मुझसे छोड़े हुए प्रजाकी रक्षा क-रतेहैं तौभी हे महाबाहो! तुम प्रजा रक्षण करनेमें तत्परहो ॥ १३ ॥ यह सु-नकर लक्ष्मणजी राज्यमंदिरसे बाहर आये और वहांपर आनकर द्वार पर बैठेहुए एक श्वानको देखा ॥ १४ ॥ इस प्रकार उसको वारंवार रुदन करता हुआ देखकर महावीर्यवान लक्ष्मणजी उससे पूछनें लगे ॥ १५ ॥ हे महाभाग तुम्हारा क्या कार्यहै तुम निडर होकर हमसै वर्णन करो लक्ष्म णके वचन सुनकर वह कुत्ता कहनें लगा ॥ १६ ॥ सब प्राणियोंके शरण देंनेवाले अक्लिष्टकर्मकारी भयभीतोंको अभय देनें वाले रामचंद्रसे मैं कु-छ कहनेंकी इच्छा करताहूं ॥१७॥ कुत्तेके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजी रामचंद्रसे निवेदन करनेंको फिर राज मांदिरमें गये ॥ १८ ॥ रामचंद्रसे नि-वेदनकर फिर राजमंदिरसे बाहर आय कहनें लगे यदि तुमको कुछ कहना होतौ सत्य २ महाराजसे कहो ॥ १९ ॥ लक्ष्मणके वचन सुनकर कुत्ता बोला देवताके स्थानमें राजाके और ब्राह्मणके स्थानमें ॥ २० ॥ अग्नि इ-न्द्र, और सूर्य वायु रहतेहैं सो हे लक्ष्मण ऐसोंके स्थानमें हम अधमयोनिके जीव नहीं जासकतेहैं॥२१॥मैं वहां प्रवेश नहीं कर सकता कारणकि धर्म ही राजाका शरीर धारण कियेहै जो कि सत्य बोलनें वाले रणमें चतुर सब प्रा-णियोंके हित करनें वाले हैं ॥ २२ ॥ वह रामचंद्र छै गुणोंके पदको जान्ने वाले नीतिके कर्ताहैं वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी और जगत्के रमानें वालेहैं ॥ २३ ॥ वही चंद्रमा मृत्यु यम कुबेर वरुण सूर्य इन्द्ररूप हैं ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण उन प्रजाके पालन करनें वाले रघुनाथजीसे तुम जाकर कहो हे सुमित्रानं-दन विना उनकी आज्ञापाये मैं राजमंदिरमें प्रवेश नहीं करसकता ॥ २५ ॥ वह महाद्युतिमान लक्ष्मणजी उसका यह सूधापन देखकर राज मंदिर में गये और वहां जाकर कहनें लगे ॥ २६ ॥ हे कौशल्यानंदवर्धन हमारे वचनको आप श्रवण कीजिये हे महाबाहु हे सर्वज्ञ जो कुछ आपकी आ-ज्ञाथी सो मैंनें कही ॥ २७ ॥

श्वावैतेतिष्ठतेद्वारिकार्यार्थीसमुपागतः ॥ लक्ष्म
णस्यवचःश्रुत्वारामोवचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥
संप्रवेशयवैक्षिप्रंकार्यार्थीयोत्रातिष्ठति ॥ ॥ २९ ॥

एक कार्यके निमित्त आयाहुआ कुत्ता आपके द्वारपरहै लक्ष्मणके यह वचन सुन रघुनाथजी बोले ॥ २८ ॥ जो कोई कार्यार्थी है उसे शीघ्र लाओ॥२९॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० उ० प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥

श्रुत्वारामस्यवचनंलक्ष्मणस्त्वरितस्तदा ॥ श्वा
नमाहूयमतिमान्राघवायन्यवेदयत् ॥ १ ॥

रामचंद्रके वचन सुनकर शीघ्रतासे लक्ष्मणजीनें श्वानको बुलाकर रामचंद्रकेआगे निवेदन किया ॥ १ ॥ कुत्तेको आया हुआ देखकर रामचंद्रजी बोले हे सारमेय तुम भय छोड़ अपना मनोरथ कहो ॥ २ ॥ रामचंद्रको बैठा देखकर श्वान अपना मस्तक झुकाय रघुनाथजीके प्रति वचन कहनें लगा ॥३॥ राजा ही प्राणियोंका कर्ताहै राजा ही विनायकहै, सबके सोनेंपर राजा ही जागताहै ॥ ४ ॥ सुन्दर नीतिसे राजा धर्मकी रक्षा करताहै, कारणकि वह रक्षा करनेंवालाहै, जो राजा प्रजा न पालन करै तौ प्रजा शीघ्र नष्ट होजाय ॥ ५ ॥ राजाही कर्त्ता रक्षक सम्पूर्ण जगत्का पिताहैं, राजाही कलियुगहै बहुत क्या यह राजाही सब जगत् रूपहै ॥ ६ ॥ धारणकिया जाताहै इसीकारण धर्म कहलाताहै; धर्मसे प्रजा स्थित होती है; इसकारणसे धर्मका धारण करनेंवाला त्रिलोकी और चराचरको धारणकर सकताहै ॥ ७ ॥ शत्रुओंको धारण करनेंसे और प्रजाको धर्मसे प्रसन्न करनेंसे धारण हीका नाम धर्म कहाहै यह निश्चयहै ॥ ८ ॥ हे रामचंद्र यही परम धर्महै और परलोकमें फल देनें हाराहै यह मुझे निश्चयहै कि धर्म करनेंवालेको कुछभी दुष्प्राप्त नहींहै ॥ ९ ॥ दान दया सत्पुरुषोंका सत्कार व्योहारमें सीधापन हे राम यही परमधर्महै, रक्षा करनेंसे दोनों लोक फलीभूत होतेहैं ॥ १० ॥ हे राघव! सुव्रत तुमही प्रमाणोंके प्रमाणहो सत्पुरुषोंसे आचरण किया हुआ तुम्हारा धर्म सबको विदितहै ११ धर्मोंके तुम परमधर्म हो गुणों में सागरकी समान हो हे राजा श्रेष्ठ ! जो

कुछ आपसे मैंनें अज्ञानताके वश कहाहो ॥ १२ ॥ सो मैं शिर झुकाकर आपको प्रसन्न करता हूं आप क्रोध न कीजिये श्वानके वचन सुनकर रामचंद्र बोले ॥ १३ ॥ हे श्वान्! मैं तुम्हारा क्याकार्य करूं निडरहो शीघ्र कहो रामचंद्रके वचन सुनकर सारमेय यह वचन बोला ॥ १४ ॥ धर्मसेही राज्य बढ़ताहै धर्मसेही प्रजा पालन उचितहै, धर्महीके कारण प्राणी शरण आतेहैं कारण कि राजा सब भयका हरनें हाराहै ॥ १५ ॥ यह जानकर जो कुछ मेरा कार्य है राघव आप वह सुनिये एकसर्वार्थ सिद्ध ब्राह्मण भिक्षुकहै मैं उसके स्थानपर था कि ॥ १६ ॥ उसनें विना प्रयोजनही विना अपराध किये मुझे मारा यह वचन सुनतेही रामचंद्रनें द्वारपालको बुलानें भेजा ॥ १७ ॥ वह जाकर सर्वार्थसिद्ध पंडित ब्राह्मणको बुलालाया जब उस ब्राह्मणनें महा द्युतिमान् रामचंद्रको देखा तौ बोला ॥ १८ ॥ हे पापरहितरघुनंदन ! आपका क्या कार्यहै सो आप वर्णन कीजिये जब ब्राह्मणनें ऐसा कहा तौ रामचंद्रजी कहनें लगे ॥ १९ ॥ हे ब्राह्मण ! तुमनें इस कुत्तेको क्यों मारा तुम्हारा इसने क्या अपकार किया जो तुमने इसके ऊपर दंडका प्रहार किया ॥ २० ॥ क्रोधही प्राणका हरनें हारा शत्रुहै क्रोधही मित्रकी समान प्रियभाषी शत्रुहै क्रोधही महा तीक्ष्ण तलवार और क्रोधही सब सद्गुणको खैच लेताहै ॥ २१ ॥ जो तप यजन और दान किया जाताहै वह क्रोधसे सब नष्ट होजाताहै इस कारण क्रोधको त्यागना चाहिये ॥ २२ ॥ इन्द्रियें जो दुष्टघोडोंकी नांई विषयोंमें दौड़तीहैं सो बुद्धिसे उन इन्द्रियोंको रोककर सारथी की समान श्रेष्ठ मार्गमें चलावै ॥ २३ ॥ मन वचन कर्म और चक्षुसै संसारका भला करै और किसीका बुरा न चाहै तौ वह कर्ममें लिप्त नहीं होताहै ॥ २४ ॥ आत्मा वशमें नहोने पर जो अनिष्ट करती वह अनिष्ट तेज धारकी तलवार ठुकरायाहुआ सर्प, व अतिक्रोधी शत्रुभी नहीं कर सक्ता ॥ २५ ॥ जिस पुरुषने विनय सीखीहै उसके स्वभावका विश्वास नहीं किया जाता जो पुरुष स्वभावको छिपाताहै वह स्वभावही उसके यथार्थ स्वभावको प्रकाश करदेताहै ॥ २६ ॥ जब अक्लिष्टकर्मा रघुनाथजीने उस ब्राह्मणसे ऐसाकहा तौ वह सर्वार्थसिद्ध ब्राह्मण रामचंद्रसे बोला ॥ २७ ॥ महाराज मैंनें क्रोधके कारण इस श्वानको मारा कारणकि मैं उस समयमें भिक्षा

मांगता फिरैथा परन्तु उस समय भिक्षा नहीं मिलीथी ॥ २८ ॥ यह श्वान अस्थि लिये गलीमें फिरताथा, मैनें इससे जा, जा, कही फिर यह मार्गके अन्तमें जाकर खड़ा हुआ और बडे जोरसे चिल्लाया ॥ २९ ॥ एक तौ भूंखा दूसरे मुझे क्रोध आगया तौ हे रघुनाथजी मैनें इसे मारा मैं अपराधी तौ हूं जो आपकी इच्छाहो सो मुझे दंड दीजिये ॥ ३० ॥ हे राजेन्द्र ! जो आप मुझे दंड देंगे तो पवित्र हो जाऊंगा; फिर मुझे नरकसे भय नहीं होगा यह सुनकर रघुनाथजीने सब सभासदोंसें पूछा ॥ ३१ ॥ कहो भाई इसका क्या कियाजाय कौनसा दंड इसको दिया जाय कारणकि सम्यक् प्रकार दंड देनेंसे प्रजा रक्षित रहती है ॥ ३२ ॥ उससमय भृगु अंगिरस कुत्सादिक, वशिष्ठ, और कश्यप; और मुख्य धर्म पाठक मंत्री और शास्त्रके जाननें वाले ॥ ३३ ॥ इनके सिवाय वहां औरभी पंडितथे उन सब शास्त्रके जाननें वालोंनें कहा ब्राह्मण अवध्यहै ॥ ३४ ॥ वे राजधर्मके जाननें वाले यह वचन कहनें लगे फिर वे सब मुनि रामचंद्रसे बोले॥३५॥ राजा सबको शिक्षा करनें वाला होताहै; और विशेष करकै आपतौ सबसे अधिकहै आप साक्षात् सनातन विष्णुभगवान् त्रिलोकीका शासन करनें वालेहैं ॥ ३६ ॥ जब उन सब लोगोंनें ऐसा कहा तौ वह कुत्ता इस प्रकार से बोला हे राम! जो आप मुझपर प्रसन्नहो और मुझे वरदान देतेहो तौ वर दीजिये ॥ ३७ ॥ और आप प्रतिज्ञाभी कर चुकेहो कि मैं तेरा क्या कार्य करूं सो हे नराधिप इस ब्राह्मणको आप मठपति (कौलेपत्य) कर दीजिये ॥ ३८ ॥ हे महाराज इस ब्राह्मणको कालिंजर देशका कौलाधिपत्य दीजिये यह वचन सुनकर रामचंद्रनें उसे कालिंजर देशके कौलाधिपत्यपर अभिषेक किया ॥ ३९ ॥ वह ब्राह्मण अभिषेकसे प्रसन्नहो हाथी पर चढ़कर गया और रघुनाथजीके मंत्री बड़े २ आश्चर्यको प्राप्तहो बोले ॥ ४० ॥ देदीप्तिमान यह तौ ब्राह्मणोंको वरमिला दंड नहीं हुआ जब मंत्रियोंनें ऐसा कहा तब रामचंद्रजी बोले ॥ ४१ ॥ तुम इस बातके तत्त्वको नहीं जान्ते; श्वान इसका कारण जानता होगा; फिर रघुनाथजीके पूछनें पर सारमेय इस प्रकारसे कहनें लगा ॥ ४२ ॥ हे रघुनाथजी मैं इस स्थानका कुलपति था, श्रेष्ठ फल भोजन करताथा, देव ब्राह्मणोंको पूजता दासी दासोंको ॥ ४३ ॥ उनके अनुसार विभाग

करके धन देता देवताके द्रव्यकी रक्षा करता नीतमान सत्ययुक्त और सर्व प्राणियोंका हितकारी था ॥ ४४ ॥ सोमैं इस घोर अवस्था और अधम गतिको प्राप्त हुआहूं, इसी प्रकारसे यह क्रोधी ब्राह्मण धर्मत्यागी अहितकारी ॥ ४५ ॥ क्रुद्ध, नृशंस, अविद्वान्, अधर्मी होनेसे हे राघव! यह अपनी सात् सात् पीढ़ियोंको नीचे गिरा देगा ॥४६॥ इस कारण किसी अवस्थामें कौलाधिपत्य करना उचित नहीं है, जो अपने पुत्र बंधु बांधवको नरकमें लेजाना चाहै ॥ ४७ ॥ वह देवताके मंदिरमें, गौमें ब्राह्मणोंमें अधिष्ठितहो ब्राह्मणोंका द्रव्य, देवताओंका द्रव्य, स्त्री और बालकोंका द्रव्य॥४८॥ जो देकर फिर हरणकरताहै, वह इष्टोंके संग नष्ट हो जाताहै हे राघव! जो ब्राह्मणोंका और देवताओंका द्रव्य ग्रहण करताहै वह शीघ्रही वीर्य संज्ञकनाम नरकमें गिरताहै अथवा जो देवताका द्रव्य वा ब्राह्मणका द्रव्य मनसेभी हरण करताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वह नराधम नरकमें जाताहै यह वचन सुनतेही विस्मयके कारण रघुनाथजीके नेत्र प्रफुल्लित होगये और महातेजस्वी कुत्ता जहांसे आयाथा वहां चलागया वह पूर्व जातियोंमें भी बुद्धिमानथा जातिमात्रसे दूषितथा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

वाराणस्यांमहाभागःप्रायंचोपविवेशह ॥ ५३ ॥

वह महाभाग वाराणसीमें चलागया ॥ ५३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० उत्तरकांडे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥

अथतस्मिन्वनोद्देशेरम्येपादपशोभिते ॥ नदी-
कीर्णेगिरिवरेकोकिलानेककूजिते ॥ १ ॥

इसके उपरान्त एकसमय वनोंद्देश्य जहांकि सुन्दर वृक्ष लगरहेथे और नदी युक्त पर्वतके स्थानोंमें जहां वृक्षोंमें कोकिला कूक रहीथीं ॥ १ ॥ जो वनसिंह और व्याघ्रोंसे युक्तथा जहां अनेक पक्षी शब्द कर रहेये वहां सैकड़ों वर्षोंसे एक गृध्र और उलूक वास करतेथे ॥ २ ॥ वह पापात्मा गृध्र उलूकके घरको " यह मेराहै " ऐसा कहकर प्रतिदिन उसके साथ कलेशकरताथा ॥ ३ ॥ जो राजीवलोचन राम सब जगत्के राजाहैं

हम उनकेपास जातेहैं वह जिसका घर बतादें उसीका वह घर होगा ॥ ४ ॥ इसप्रकारसे वह दोनों निश्चित मतिकरकै महाक्रोधको प्राप्तहो वह गृध्र और उल्लूक वहांसे चले ॥ ५ ॥ क्लेशसे व्याकुल हुए वे दोनों रामचंद्रके निकट प्राप्तहो आपसमें द्वेषके कारण दोनों एकसाथही चरण छूते हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार रामचंद्रको देखकर गृध्र वचन बोला, हे भगवन्! मैं ऐसा जान्ताहूं कि आप सुर और असुर दोनोंके विषे प्रधानहैं ॥ ७ ॥ हे महाद्युतिमान्! आप बुद्धिमें बृहस्पति और शुक्रसेभी अधिकहैं; आप प्राणियोंके पर अपरकी जाननें हारेहो? और कांतिमें दूसरेचंद्रमाही हो ॥ ८ ॥ जैसे सूर्यको कोई देख नहीं सकते ऐसे आप दुर्निरीक्ष्यहो, गौरवमें हिमालयकी समान हो लोकपालन करनेंमें यमकी समानहो ॥ ९ ॥ सहन शीलतामें पृथ्वीकीसमान वेगमें वायुकी समान आप सबके गुरु सबसेयुक्त हो और हे राम आपकी बड़ी कीर्तिहै ॥ १० ॥ आप क्रोध रहित हो दुर्जय हो सबके जीतनें वाले और सब शास्त्रोंके पारगामीहो हे नर श्रेष्ठ रामचंद्रजी मेरी विपत्ति आप सुनिये ॥ ११ ॥ हे राघव जो मेरा बहुत दिनोंका स्थानहै सो यह बांहोंके बलके कारण उल्लूक छीनता है सो इससे रक्षा आप कीजिये ॥ १२ ॥ जब गृध्रनें ऐसा कहा तौ उल्लूक कहनें लगा ,चंद्रमासे, इन्द्रसे, सूर्यसे कुबेरसे यमसे राजाका शरीर कल्पित होताहै ॥ १३ ॥ उसमें मनुष्यता तौ थोडीसीहै, सम्पूर्ण देवताहैं; और तुम तौ सब देवमयसाक्षात् नारायणरूप ही हो ॥ १४ ॥ हे प्रभो जो आपके प्रति प्रणाम करकै सम्यक् प्रकारसे याचना करतेहैं आप सब बातौंको खोजकै सबमें समान दृष्टि रखतेहो इसकारण आप सोमके अंश हो ॥ १५ ॥ हे प्रजानाथ क्रोध और दंड देनेंमें और दानमें पाप और भयके हरनें हारे दाता हर्ता और रक्षा करनेंवाले होनेंसे आप इन्द्रके अंशहो ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंसे अधृष्ट होनेंके कारण तेजमें आप अग्निकी समानहो और सूर्यकी समान निरन्तर लोकोंको तपातेहो ॥ १७ ॥ आप साक्षात् कुबेरकी तुल्य वा इनसे अधिकहो कारणकि कुबेरकी समान राजलक्ष्मी नित्य तुम्हारे यहां वास करती है ॥ १८ ॥ कुबेरका कार्य करनेंसे अर्थात् हमको धन देनेंसे आप हमारे कुबेरहैं। आप सब प्राणिमात्र स्थावर जंगममें समानदृष्टि रखतेहो ॥ १९ ॥ हे

राघव! आपकी दृष्टि शत्रु मित्रमें समान रहती है आप धर्मसे प्रजा पालन करतेहो विधिसे व्यवहार करतेहो ॥ २० ॥ हे राम! तुम जिसके ऊपर क्रोधकरो उसकी मृत्यु होनेंसे क्या सन्देह है इसी कारणसे आपमें यमराजकी समान विक्रम पाया जाताहै ॥ २१ ॥ हे नृप श्रेष्ठ! यही आपमें मनुष्य भाव दीखताहै कि अनृशंसता और प्राणियोंके ऊपर दया करनी ॥ २२ ॥ दुर्बल और अनाथका राजा ही बल होताहै; नेत्रहीनके आपही नेत्रहो अगतिके आपही गतिहो ॥ २३ ॥ हे धार्मिक सुनिये हमारेभी तुमही नाथ हो हे नृप मेरे घरमें घुसकर यह गृध्र मुझे बड़ी पीडादेताहै ॥ २४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! देवता और मनुष्योंमें आपही शासन करनें वाले हैं, यह श्रवण करतेही रघुनाथजीनें मंत्रियोंको बुलाया ॥ २५ ॥ धृष्टि जयन्त विजय सिद्धार्थ राष्ट्रवर्धन अशोक धर्मपाल और महावीर सुमन्त्र ॥ २६ ॥ यह राजा दशरथकेही मन्त्री रामचन्द्रके मंत्री थे वह सब महात्मा नीतियुक्त और सब शास्त्रोंके जानने वालेथे॥२७॥ यह सबहीमान, कुलीन नीति और पंडितथे धर्मात्मा रामचंद्र इन्है बुलाकर और सिंहासनसे उतर ॥ २८ ॥ रामचन्द्र गृध्र और उलूकके विवादको पूछनें लगे हे गृध्र तुमनें यह स्थान कितने वर्षोंसे प्राप्त कियाहै ॥ २९ ॥ जो तुमही ठीक जानतेहो तौ मुझसे यह वर्णन करो, यह वार्ता सुन गृध्र रामसे कहनें लगा ॥ ३० ॥ हेराम! जिस समय यह पृथ्वी मनुष्योंसे युक्त हुईथी जब सब यह मनुष्य इसपर वास करनें लगे तभीसे मेरा घर-है ॥ ३१ ॥ यह सुनकर उलूक बोला हे राजन्! जबसे यह पृथ्वी वृक्षों-से शोभित हुईहै तभीसे यह स्थान मेरा घरहै यह वचन सुनकर रामचन्द्र सभासदोंसे बोले ॥३२॥ वह सभा नहीं जहां वृद्ध नहों और वह वृद्ध नहीं जो धर्मको न जानें वह धर्म नहीं जो सत्यसे रहितहो; वह सत्य नहीं जिसमें छल मिलाहो ॥ ३३ ॥ जो सभासद सत्य वार्ताको जानकरभी मौन हो-जाते हैं, और समयपर नहीं बोलते वह सब असत्यवादी हैं ॥ ३४ ॥ जान-कर काम या क्रोधसे अथवा भयसे प्रश्नोंको नहीं कहताहै वह अपनेको वरुणकी हजार पाशोंसे बँध जाताहै ॥ ३५ ॥ एक वर्ष पूर्ण होनेंपर उनकी एकपाश टूटती है इस प्रकार लक्ष्यके जाननें वालोंमें नित्य सत्यही बोलना चाहिये ॥ ३६ ॥ यह वचन सुनकर मंत्री रामचन्द्रसे, बोले महा-

राज उलूक सत्य कहताहै और गृध्र झूठाहै ॥ ३७ ॥ हे महाराज इसमें आपही प्रमाणहै क्योंकि राजाही परमगति होताहै सब प्रजाओंका राजाही मूलहै राज धर्मही सनातनहै ॥ ३८ ॥ जिनका शासन राजा करते हैं उनकी दुर्गति नहीं होती वह पुरुषोत्तम यमराजके फंदेसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ मंत्रियोंके वचन सुनकर रामचन्द्रजी कहनें लगे, जो कुछ पुराणोंमें लिखाहै सुनो मैं कहताहूं ॥ ४० ॥ आकाश चन्द्रमा सूर्यनारायण, पर्वत, वन, यह सब कुछ चराचर सागरसे पूर्णथा ॥ ४१ ॥ उस समय सुमेरुकी समान अचल परमात्माथे और पृथ्वी तौ लक्ष्मी सहित भगवानके उदरमें प्रवेश कर गई ॥ ४२ ॥ वह महा तेजस्वी ईश्वर इस्से सबको ग्रहणकर जलमें प्रवेश करगये और वह सबके आत्मा देवनारायण उसमें सैकड़ों वर्षतक शयन करते रहे ॥ ४३ ॥ विष्णु भगवानके सोनेंपर ब्रह्माजी उनके उदरमें प्रवेश कर गये कारण कि इन महायोगिनें रुद्धस्रोत जानकर उनमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ फिर सुवर्णका कमल भगवानकी नाभिसे उत्पन्न हुआ (और स्रोत तौ वंदथे) उसमेंसे योग धारण किये हुए महा प्रभु ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ४५ ॥ उन्होंनें पृथ्वी, वायु, पर्वत, वृक्ष, बनानें की इच्छा की इसी बीचमें सब प्रजा मनुष्य और रिंगनें वाले जीव ॥४६॥ जरायुज अंडज इत्यादि सबही प्राणियोंको महातपसे युक्त उन ब्रह्माजीने उत्पन्न किया उसी समय उनके कानके मलसे मधु और कैटभ उत्पन्न हुए ॥ ४७ ॥ यह दोनो दानव बड़े बली वीर्यवान और दुरासदथे और ब्रह्माजीको बैठा देखकर बड़े क्रोधित हुए ॥ ४८ ॥ और बड़े वेगसे ब्रह्माजी पर दौड़े उनको देखतेही ब्रह्माजीनें बड़े शब्दसे चीतकार करी और मुखका भय विकारको प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ उस शब्दसे तुरत भगवान् आनकर प्राप्त हुए; और भगवानके संग उनका संग्राम हुआ तब भगवाननें चक्रके प्रहारसे दोनोंको मारडाला॥५०॥ उनकी चर्वीसे सब पृथ्वी गीली होगई तब संसारके धारण करनेंवाले भगवान्नें उस पृथ्वीका फिर शोधन किया॥५१॥ और जब पृथ्वी शुद्ध हो चुकी तब उसे सब स्थानोंमैं वृक्षौंसे पूर्ण करदिया और उसमें औषधी और अन्न उत्पन्न होनें लगे ॥ ५२ ॥ मेदकी गंधवाली होनेंसे इस पृथ्वी का नाम मेदिनी हुआ इसकारणसे उलूकका पता देना ठीकहीहै; इस्से इसीका घरहै गृध्रका नहीं यह हमैं निश्चयहै ॥५३॥ इस

कारण अब यह दूसरेके घरका हरण करनेंहारा पापात्मागृध्र दंडदेनें योग्य है यह दुर्विनीत पापात्मा उल्लूक को बहुत दुःख देताहै ॥ ५४ ॥ उसी समय आकाशसे अशरीरणीवाणी हुई हे रामचंद्र तुम गृध्रको मत मारो यह तपोबलसे पहले ही दग्ध हो चुकाहै ॥ ५५ ॥ हे प्रजानाथ नरेश्वर इसे काल गौतमनें दग्ध कर दियाहै इसका नाम पूर्व जन्ममें ब्रह्मदत्तथा यह शूर सत्यव्रत और पवित्रथा ॥ ५६ ॥ एक समय इसके यहां मार्गसे चला हुआ एक ब्राह्मण भोजनके निमित्त आया ॥ ५७ ॥ राजा ब्रह्मदत्त ने उसे पाद्य और अर्घ्य प्रदान किया और उस महा द्युतिमानका भोजनके निमित्त बडासत्कार किया ॥ ५८ ॥ भोजन करनेंको उन महात्माको इसनें मांस दिया तबतौ मुनिनें क्रोध करके इससे दारुण शापदिया ॥५९॥ हे राजन् तुम गृध्र होजाओ राजाने कहा महाराज कृपाकीजिये हे धर्मज्ञ मैनें अनजाने यह कार्य किया इससे कृपाकरो हे महाव्रत प्रसन्न हो ॥ ६० ॥ हे महाभाग पापरहित शापका अन्त तौ कीजिये तब मुनिनें अज्ञानसे राजासे अपराध हुआ जानकर कहा ॥ ६१ ॥ कि राज वंशमें महायशस्वी रामचंद्र उत्पन्न होंगे वह महाभाग कमललोचन राम इक्ष्वाकु के कुलमें अवतार लेंगे ॥ ६२ ॥ हे नरश्रेष्ठ । उनके स्पर्श करनेंसे तुम पाप रहित हो जाओगे यह बचन सुनकर रामचंद्रनें उस नरेन्द्र पृथ्वी पतिका स्पर्श किया ॥६३॥ उसी समय गृध्रपन त्यागन कर वह राजा शरीरमें दिव्य गन्ध लगाये दिव्यरूप पुरुष होकर रामचंद्रसे बोला ॥ ६४॥

साधुराघवधर्मज्ञत्वत्प्रसादादहंविभो ॥ विमुक्तो
नरकाद्घोराच्छापस्यांतःकृतस्त्वया ॥ ६५ ॥

धन्यहो धर्मात्मा रघुनंदनजी हे प्रभो तुम्हारे ही प्रसादसे आज मैं घोर शापरूपी नरकसे उत्तीर्ण हुआ आपने आज शापका अन्त किया ॥ ६५ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे तृतीयःसर्गः३ ॥

क्षेपक समाप्त हुआ ॥

षष्ठितमःसर्गः ॥

तयोःसंवदतोरेवंरामलक्ष्मणयोस्तदा ॥ वा
संतिकीनिशाप्रामानशीतानचघर्मदा ॥ १॥

राम और लक्ष्मणको इस प्रकार वार्ता करते २ वसन्त ऋतुकी रात्रि प्राप्त हुई, जिसमें न बहुत गरमी न शरदी होतीहै ॥ १ ॥ फिर उज्ज्वल प्रातःकाल होनेंपर प्रातःकालीन सब क्रियासे निश्चिन्त हो रामचंद्र नगर वासियोंके कार्य देखनेंको सभामें आये ॥ २ ॥ उसी समय सुमंत्रनें आनकर रघुनाथजीसे कहा हे भगवन् यह तपस्वी द्वारपर आपकी आज्ञा पानेंके निमित्त खड़ेहैं ॥ ३ ॥ भृगुवंशमेंहुए च्यवनकू आगे करकै महर्षि आपके दर्शन पानेंके निमित्त बड़ी शीघ्रताकर रहेहैं; हमैं अपना आगमन सुनानेंको भेजाहै ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ । यह यमुना तीरके रहनें हारे मुनि आपकी प्रसन्नता चाहतेहैं सुमंत्रके यह वचन सुन रामचंद्रजी बोले ॥ ५ ॥ उन च्यवनादि महा भाग्यवान ऋषियोंको शीघ्र बुलाओ रामचंद्रकी आज्ञापाय द्वारपाल शिरझुकाय हाथ जोड़ ॥ ६ ॥ उन बड़े तपास्वियौंको प्रवेशित करते हुए वह सौसे कुछ अधिक तपस्वी अपने तेजसे दीप्तमान हो रहेथे ॥ ७ ॥ जिस समय महात्मा तपास्वियोंनें राजभवनमें प्रवेश किया उस समय वह महात्मा सब तीर्थोंके जलसे पूर्ण कलश लिये हुएथे ॥८॥ और फल मूलभी रघुनाथजीके निमित्त बहुत लायेथे रामचंद्रजीनें प्रसन्नहो वह सब भेंट ग्रहणकी ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण तीर्थोंका जल और अनेक प्रकारके कंद मूलफल लेकर महाबाहु रामचंद्र सब मुनियोंसे बोले ॥ १० ॥ यह मुख्य आसन बिछेहैं; आप इनपर यथा योग्य बैठिये रामचंद्रके वचन सुन करकै सब महर्षि ॥ ११ ॥ सुन्दर शोभायुक्त सोनेकी चौकियौंके ऊपर बैठे शत्रुघाती रामचंद्र उन सब ऋषियोंको स्थितदेख शिर झुकाय हाथ जोड़कर नीति युक्त वचन बोले ॥ १२ ॥ आप लोगोंके आनेका कारण क्याहै मैं आपकी कौनसी आज्ञाका पालन करूं आप आज्ञा कीजिये आपके सब अभीष्ट पूरे होंगे ॥ १३ ॥ यह राज्य जीवन और जो कुछ हृदयमें स्थित प्राण वह सब ब्राह्मणोंही के निमित्तहैं यह मैं सत्य कहताहूं ॥ १४ ॥ रघुनाथजीके यह वचन सुन ऋषिगण धन्य धन्य कहनें लगे और बड़े तपस्वी यमुना तीरके ऋषि ॥ १५ ॥ बड़े महात्मा महाहर्षित हो कहनें लगे कि हे भगवन् । इस संसारमें तुम्हारे सिवाय ऐसा वचन कोई नहीं कहसक्ता यह वचन आपहीके योग्य है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! हमनें बड़े २ बली राजा ओंके निकट अपना

कार्य सुनाया परन्तु इस कार्यका गौरव जान किसीने भी कार्य करनेंकी प्रतिज्ञा नकी ॥ १७ ॥

त्वयापुनर्ब्राह्मणगौरवादियंकृताप्रतिज्ञाह्यन
वेक्ष्यकारणम् ॥ ततश्चकर्ताह्यसिनात्रसंश
योमहाभयात्त्रातुमृषींस्त्वमर्हसि ॥ १८ ॥

आपनें ब्राह्मणोंके गौरवसे यह प्रतिज्ञा विनाही कारण जानेंकीहै इस्से हमारा कार्य आप करेंगे इसमें संदेह नहीं आप ऋषियोंको महा भयसे छुड़ानेके योग्यहो ॥ १८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०उ०षष्टितमःसर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥

ब्रुवद्भिरेवमृषिभिःकाकुत्स्थोवाक्यमब्रवीत् ॥
किंकार्यंब्रूतमुनयोभयंतावदपैतुवः ॥ १ ॥

ऋषियोंके ऐसा कहनें पर रघुनाथजी बोले हे मुनियो ! बताओ तुम्हारा क्या कार्यहै वह भय तुम्हारा दूर किया जाय ॥ १॥ रामचंद्रके ऐसा कहनें पर च्यवनजी बोले हे नरेश्वर ! हमारे देशमें जो भयका कारणहै सो सुनिये ॥ २ ॥ प्रथम सतयुगमें एक महाबुद्धिमान दैत्य मधु नामक महा राक्षस लौलाका बड़ा पुत्रथा ॥ ३ ॥ वह ब्राह्मणोंका माननें हारा शरणागत वत्सल बड़ा बुद्धिमान था और परम उदार देवताओंके संगभी इसकी बड़ी प्रीति हुई ॥ ४ ॥ वह महाबली मधु धर्म में सावधान होकर बडे मानसे शिवको प्रसन्न करनें लगा तब शिवजीनें उसे अद्भुत वर दिया॥५॥ महावीर्ययुक्त अपनें शूलमें से एक अग्निकी समान आयुध निकालकर प्रसन्न होकर महात्मा शिवजीने उसे दिया और प्रसन्न होकर इस प्रकारसै कहने लगे ॥ ६ ॥ जोकि तुमको अपनी प्रसन्नतासे तुम्हारी धर्म निष्ठा देखकर परम प्रीतिसे तुमको यह उत्तम आयुध देताहूं ॥ ७ ॥ सो हे महासुर जब तक तुम देवता और ब्राह्मणोंसे विरोध न करोगे तब तक यह शूल तुम्हारे पास रहैगा इस्से अन्यथा करनेंमें लोप होजायगा ॥ ८ ॥ और जो तुमसे युद्ध करनेंको आवै उसके ऊपर निर्भयहो इस शूलका

प्रहार करना यह शूल उसको भस्मकर फिर तेरे हाथमें आजायगा ॥ ९ ॥ इस प्रकार शिवजीसे वरपाय वह महाराक्षस फिरभी महादेवजीको दंडवतकर इस प्रकार बोला ॥ १० ॥ हे भगवन्! यह शूल मेरे वंश वालोंके पासभी मेरे पीछे रहै ऐसी आप कृपा कीजिये कारणकि आप देवताओंके ईश्वर समर्थ हैं ॥ ११ ॥ मधुके ऐसा कहनेंपर सब प्राणियोंके अधिपति शिवजी महादेवजी कहनें लगे ऐसा तौ नहीं होसक्ता ॥ १२ ॥ परन्तु तेरी याचनाभी मिथ्याहोनी उचित नहीं कारणकि तैनें मेरी प्रसन्नता प्राप्त कीहै इस कारण तुम्हारे एक पुत्रके हाथमें शूल रहैगा ॥ १३ ॥ जब तक तुम्हारे पुत्रके हाथमें शूल रहैगा तौ शूल हाथमें रहनेंके कारण यह सब प्राणियोंसे अवध्य होगा ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे वह असुर श्रेष्ठ मधु महादेवजीसे अद्भुतवर पाय एक बड़ा श्रेष्ठ कांतियुक्त मंदिर निर्माण करता हुआ ॥ १५ ॥ उसकी महाभाग्यवती कुंभीनसी नाम पत्नीथी वह महाकान्तिमान् अनलामें विश्वावसुसे उत्पन्न हुई थी ॥ १६ ॥ [यह अनला माल्यवानकी सुता रावणकी स्वसाथी] उसका पुत्र महा वीर्यवान दारुण लवणासुर है जो बालक पनसेही दुष्ट स्वभाव पापमति पापही करताहै ॥ १७ ॥ उस अपने पुत्रको ऐसा दुर्विनीत देखकर क्रोधित हो मधुने बड़ा शोक किया और उससे कुछभी न बोला ॥ १८ ॥ और वह इस लोकको छोड़ वरुण लोकको चला गया; और वह त्रिशूल उसे देकर सब वरका समाचार कह गया कि जबतक तेरे हाथमें शूल रहेगा तब तक अवध्य रहैगा ॥ १९ ॥ वह शूलके प्रभाव और अपनी कुटिलतासे त्रिलोकीको दुःखी करताहै और तपस्वियोंको तौ वहुतही सताताहै ॥ २० ॥ इस प्रभाव वाला वह लवणासुरहै और ऐसा उसके पास शूलहै अब आप इसमें जो चाहो सो करो क्योंकि हमारे परमगति आपहीहो ॥ २१ ॥ हे राजन्! भयसे व्याकुलहो ऋषियोंनें वहुतसे राजाओंसे अपने अभयकी याचनाभीकी परन्तु किसीनें रक्षा नकी ॥ २२ ॥ सो जब हमनें सुनाकि आपने सकुटुम्ब रावणका संहार किया तौ हमनें आपकोही अपना रक्षक जाना पृथ्वीमें और कोई राजा हमारा रक्षक नहीं सो लवणासुरके भयसे पीड़ित हुए हम आपसे अपनी रक्षाकी इच्छा करते हैं ॥ २३ ॥

इतिरामनिवेदितंतुतेभयजंकारणम्स्थितंचयत् ॥ विनिवारयितुंभवान्क्षमःकुरुतंकाममहीनविक्रम ॥ २४ ॥

इस प्रकारसे अपने भयका कारण उन्होंने रघुनाथजीसे निवेदन किया और बोले हे भगवन्! आप बड़े बलीहो इस भयके निवारण करनेमें आपही समर्थहो ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये एकषष्टि तमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥

तथोक्तेतानृषीन्रामःप्रत्युवाचकृतांजलिः ॥ किमाहारःकिमाचारोलवणःक्वचवर्तते ॥ १ ॥

उन ऋषियोंके ऐसा कहनेपर रघुनाथजी हाथ जोड़ बोले लवणासुरका क्या आहार क्या आचारहै और वह कहां रहताहै ॥ १ ॥ रामचंद्रके यह वचन श्रवणकर वे सब ऋषि जिस प्रकार लवणासुरकी वृद्धि हुई वे सब निवेदन करनें लगे ॥ २ ॥ हे महाराज वह सभी जीवोंका भक्षण करताहै परन्तु विशेष कर तपस्वियोंको खाताहै सदा क्रूरता उसका आचारहै और मधुवनमें रहताहै ॥ ३ ॥ हजारों सिंह व्याघ्र मृग पाक्षियोंको मारकर और जो मनुष्य मिलतेहैं उनकाभी दिनमें आहार कर जाताहै ॥ ४ ॥ इसके बीचमें वह महाबली और जीवोंकोभी खा जाताहै वह संहार करनेंके समय मुख फैलाय कर कालकी समान दृष्टि आताहै ॥ ५ ॥ यह वचन सुन रामचंद्रजी महा मुनियोंसे बोले; मैं उस राक्षसका वध करवा दूंगा आप उसका भय त्यागन कीजिये ॥ ६ ॥ इस प्रकार उन बड़े तेजस्वी ऋषियोंसे प्रतिज्ञा करकै सब भाइयोंसे रघुनाथजी बोले ॥ ७ ॥ हे वीर! तुममेंसे लवणासुरको कौन मारेगा और वह किसका अंशहै सो बताओ महाबाहु भरतकाहै या बुद्धिमान शत्रुघ्नका ॥ ८ ॥ रामचंद्रके ऐसा कहनेंपर भरतजी बोले मैं उसे मारडालूंगा उसे मेरा भाग विधान कीजिये ॥ ९ ॥ यह भरतजीके वचन सुनकर धीरता और शूरता सहित लक्ष्मणके छोटे भ्राता सोनेंका सिंहासन छोड़कर खड़े हुए ॥ १० ॥

रामचंद्रको प्रणाम करके शत्रुघ्नजी बोले कि महाबाहु भरतजी तौ कृतकार्य हो चुकेहैं ॥ ११ ॥ कारणकि जिस समय आप अयोध्यासे वनको चले गये उस समय हृदयमें संताप धारण कर आपके आगमन पर्यन्त अयोध्याकी पालनाकी ॥ १२ हे रामचंद्रजी! इन्होनें बहुतसे दुःख उठायेहैं यह महा यशस्वी दुःख भोगते नंदीग्राममें कुशासन पर सो चुकेहैं॥ १३ ॥ फल मूल भक्षणकर जटा धारण किये चीर वस्त्र पहरे इस प्रकारके हे रघुनंदन! इन्होंने बहुत दुःख उठायेहैं ॥ १४ ॥ मेरे जानेंसे यह यहां रहेंगे तौ फिर इनको क्लेश न होगा जब ऐसा शत्रुघ्ननें कहा तौ रामचंद्र बोले ॥ १५ ॥ हे काकुत्स्थ! ऐसाहीहो मेरी आज्ञा मानिये मैं तुमको उस शुभ मधुनगरके राज्यमें अभिषेक करता हूं ॥ १६ ॥ हे महाबाहो। और भरतजीको जो आप यहां रहनेंको कहतेहो सो यहांही सुख पूर्वक रहनेंदो तुम नगरके बसानेंमें समर्थहो कारणकि तुम शूर और विद्यावानहो ॥ १७ ॥ यमुनाके किनारे नगर बसाओ और वहां औरभी सुन्दर नगर बसाओ कारणकि जो कोई पुरुष किसी राज्य वंशका छेदनकर फिर उसके नगरमें और किसी राजाको वहां नहीं स्थापन करताहै वह देश उजाडनें हारा नरकको जाताहै सो तुम उस दुरात्मा पापी मधुके पुत्र लवणासुरको मारकर॥ १८ ॥ १९ ॥ उस राज्यको धर्म पूर्वक पालते रहना इस मेरे वाक्यमें क्लेश न मानना हे शूर! और मेरे इस वाक्यमें कोई उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं अर्थात् उसे मारकर यहां आनेकी आवश्यकता नहीं ॥२०॥ छोटोंको बड़ोंकी आज्ञा असंशय करनी चाहिये और हे काकुत्स्थ इस मेरे दिये हुए अभिषेकको ग्रहण करो॥२१॥

वसिष्ठप्रमुखैर्विप्रैर्विधिमंत्रपुरस्कृतम् ॥ २२ ॥

जोकि वशिष्ठ आदि ऋषि मंत्र पूर्वक विधानसे करैंगे ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० उ० भा० द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

एवमुक्तस्तुरामेणपरांव्रीडामुपागमत् ॥
शत्रुघ्नोवीर्यसपन्नोमंदंमंदमुवाचह ॥ १ ॥

रामचंद्रके ऐसा कहनेंपर वीर्यवान शत्रुघ्नजी अत्यन्त लज्जित होकर

शनै, २ रघुनाथजीसे बोले ॥ १ ॥ हे नरेश्वर रघुनाथजी मैं तो इसमें अधर्म मानताहूं कारणकि ज्येष्ठके विद्यमान रहते छोटा कैसे अभिषेकको प्राप्त हो सकताहै ॥ २ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ महाभाग आपकी आज्ञाभी अवश्य करनी है कारणकि आपका आज्ञा अनुलंघनीयहै ॥ ३ ॥ यह आपसेभी और शास्त्रोंसेभी मैंने श्रवण कियाहै कि बड़ोंकी आज्ञा शिरसे माननी चाहिये और जबकि ज्येष्ठ भरतजी बैठेहैं जो कि सब धर्म जानतेहैं तौ जिस समय यह कह रहेथे उस समय मुझे उत्तर देना उचित नहींथा ॥४॥ सो मैंनें जो ज्येष्ठके वचन उल्लंघन करके यह घोर दुर्वचन कहे कि युद्धमें लवणासुरको मैं मारूंगा हे पुरुषश्रेष्ठ! उसी दुर्वचनका फल यह दुर्गति प्राप्त हुई; कि ज्येष्ठोंके विद्यमानमें हमारा अभिषेक होगा जिससे नरककी प्राप्ति होगी ॥ ५ ॥ और ज्येष्ठके वचनमें उत्तरभी देना नहीं चाहिये कारणकि वह उत्तर अधर्म युक्तहै और इसीसे परलोक रहितभी है ॥ ६ ॥ हे काकुत्स्थ! एक तौ हम भरतजीके कथनमें बोल उठे कि वे लवणासुरको मारनें जातेथे हमनें कही हम मारेंगे दूसरे आपके वचनोंका उत्तर दिया सो हे मान देनेहारे इन दोनों अधर्मोंका फल यह राज्यरूपी दंड मत प्रदान कीजिये ॥ ७ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ! हम आपकी इच्छानुसार कार्य करनें हारेहैं इसकारण जो हमनें अयोग्य राज्यभिषककी प्राप्तिकीहै हे रघुनंदन! इस अधर्मको आप दूर कीजिये ॥ ८ ॥ जब महात्मा बलवान शत्रुघ्नजीनें ऐसा कहा तौ रामचंद्रनें प्रसन्नहो भरत और लक्ष्मणसे कहा कि शीघ्रतासे अभिषेककी सब सामग्री तयार करो इसी समय हम इन पुरुषसिंह रघुनंदनका अभिषेक करेंगे॥९॥१०॥हे काकुत्स्थ! पुरोहित और शास्त्रके जानने वाले ऋत्विक तथा सम्पूर्ण मंत्रियोंको तुम हमारी आज्ञासे बुलालाओ ॥ ११ ॥ वे महारथ राजाकी आज्ञा पायकर उसी प्रकारसे करते हुए अभिषेककी सामग्रीले और पुरोहितको आगे कर ॥ १२ ॥ इस प्रकारसे सब राजा और ब्राह्मण लोग राजभवन में एकत्र हुए तब महात्मा शत्रुघ्नजीका अभिषेक होनें लगा ॥ १३ ॥ अभिषेक होजानें पर शत्रुघ्नजी सूर्यकी समान प्रकाशित हुए और रघुनाथजी तथा पुरवासियोंको आनंद बढ़ानें लगे ॥ १४ ॥ जिस प्रकार इन्द्रादिक देवतोंसें अभिषेकितहो स्कंध शोभित हुएथे ऐसे शत्रुघ्नजी शोभित

हुए; जब सरल कर्मकारी रघुनाथजीने शत्रुघ्नका अभिषेक किया तौ ॥१५॥ पुरवासी और वेदपाठी ब्राह्मण बड़े सन्तुष्ट हुए तथा कौशल्या, सुमित्रा, और कैकेयी परम प्रसन्न हुईं ॥ १६ ॥ और वेभी उस भवनकी स्त्रियोंके संग मिलकर मंगल करनें लगीं, और यमुनातीरवासी महात्मा ऋषिगण ॥ १७ ॥ शत्रुघ्नके अभिषेकसे लवणासुरको मरा समझनें लगे, तब अभिषेकको प्राप्त हुए शत्रुघ्नको रामचंद्र गोदी में बैठाकर उनके तेजको बढाते हुए मधुर वाणी बोले ॥ १८ ॥ हे सौम्य! रघुनंदन मैं यह शत्रुको मारनें वाला दिव्य बाण तुमको देताहूं इसीसे तुम लवणासुरको मारना ॥ १९ ॥ हे काकुत्स्थ सागरमें शयन करते हुए स्वयंभूनें इस दिव्य बाण को निर्माण कियाथा; उस समय इसे देवता और दैत्य किसीने नहीं देखाथा ॥ २० ॥ यह सब प्राणियोंको अदृश्यहै; इसी कारण सब बाणों में श्रेष्ठ है; यह क्रोधकरके उन दोनों दुरात्मा ओंके मारनेंको बनायाथा ॥ २१ ॥ जिस समय ब्रह्माजी त्रिलोकीको निर्माण करतेथे उस समय मधु और कैटभ दैत्य तथा औरभी राक्षस उसमें विघ्न करतेथे सो इसी बाणसे संग्राममें उन दोनोंको मारडाला ॥ २२ ॥ उन मधु और कैटभको मारकर स्वयंभूनें मनुष्योंके भोगके अर्थ त्रिलोकी निर्माण करी सो यह सब कार्य इसी बाणसे सिद्ध हुए ॥ २३ ॥ हे शत्रुघ्न रावणके मारनेंके निमित्तभी यह बाण मैंनें नहीं छोड़ा कारणकि इसके छोड़नेंसे बहुतही प्राणियोंका संहार होता है ॥ २४ ॥ और जोकि उसे शिवजीसे महा घोर उत्तम आयुध शत्रुका नाश करनें द्वारा शूल प्राप्त हुआहै ॥ २५ ॥ वह उसे अपने घरही रखताहै और उसका वारंवार पूजन करताहै और उसे छोड़कर सब दिशा ओंमें आहारके निमित्त जाताहै ॥ २६ ॥ उस समय जो कोई युद्धकी इच्छासे उसे बुलाता है तौ वह राक्षस वरसे शूल लाकर उसे भस्म कर देताहै ॥ २७ ॥ हे पुरुषसिंह ! तुम जिस समय वह आयुधरहित हो उस समय उसको नगरमें आनेंसे पहले ही तुम आयुध धारण करे नगरके बाहर स्थित रहना ॥२८ ॥ और उसको भवनमें प्रवेश करनेसे पहलेही उस राक्षसको युद्धके निमित्त बुलाना तौ तुम अवश्य मारसकोगे ॥ २९ ॥ इससे अन्यथा करनेमें वह किसी प्रकार नहीं मारा जायगा और जो हमारे कहे वचनके अनुसार करोगे तौ अवश्य उसका नाश हो जायगा ॥ ३० ॥

एतत्तेसर्वमाख्यातंशूलस्यचविपर्ययः ॥
श्रीमतःशितिकंठस्यकृत्यंहिदुरतिक्रमम् ॥ ३१ ॥

यह सब शूलका परिहार (निवारण) तुमसे वर्णन किया अन्यथा श्रीमान् शिवजी महाराजका वह शूल किसीके वशका नहीं ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० उत्तरकांडे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

एवमुक्त्वाचकाकुत्स्थंप्रशस्यचपुनःपुनः ॥
पुनरेवापरंवाक्यमुवाचरघुनंदनः ॥ १ ॥

इस प्रकार शत्रुघ्नजीसे कह और वारंवार प्रशंसा कर फिर रघुनाथजी उनसे बोले ॥ १ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह चारसहस्र घोडे दो सहस्र रथ और सौ हाथी ॥ २ ॥ और सामग्री वेचनें वाले व्यापारी जिनके पास अनेक प्रकारके द्रव्य हैं वह तथा नट नर्तक भी तुम्हारे साथ जांय ॥ ३ ॥ हे पुरुषसिंह शत्रुघ्न सैनादिकके व्ययके निमित्त सोनेकी एक लक्ष मुहर भी तुम लेते जाओ ॥ ४ ॥ और हेवीर नरोत्तम! सैनाको अच्छे वचन बोलने हृष्ट पुष्ट अपने विषय संतुष्ट करनेंके निमित्त मासिक वेतन देकर संतुष्ट करते रहना ॥ ५ ॥ हे राघव जिस शत्रुस्थानमें प्रसन्न हुये भृत्यु स्थित होनेको समर्थ होते हैं वहां अर्थ स्त्री बंधु भी नहीं स्थित हो सक्ते ॥ ६ ॥ इस कारण प्रसन्नवीरोंवाली बड़ी सैनाको संग ले जाय और सैनाको गंगाके किनारे स्थापन कर वहां से तुम अकेले ही धनुष धारण करकै मधुवनको जाओ ॥ ७ ॥ वह मधुका पुत्र लवणासुर जिसप्रकारसे तुमको अपनेसे युद्धकरता न जाने इस प्रकारसे तुम निःशंक हो जाओ ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ और किसीके हाथसे उसकी मृत्यु नहीं है परन्तु जिसे वह पहलेसे जान लेता है कि यह मुझ से युद्धको आताहै उसे देखते ही शूलसे मार डालताहै ॥ ९ ॥ हे सौम्य! सो आप ग्रीष्मऋतुके वीतने पर वर्षाकाल प्राप्त होने पर तुम उस दुष्टको मारना कारण कि वह उसकी मृत्यु का समय हो गा उस समय वह जानैगा कि इस समय कोई मुझसे युद्ध करनें नहीं आवैगा, इसकारण वह शूलविनाही विचरैगा ॥ १० ॥ तुम्हारी सैनाके लोग महर्षियोंको आगे करकै जांय

जिस कारणसे कि ग्रीष्मके समाप्त होते २ गंगाके पार होजांय ॥ ११ ॥ हे अमितविक्रम ! वहां नदीके तीरमें सब सैनाको स्थापन करके फिर तुम धनुष धारण करके आगे चलेजाना ॥ १२ ॥ जब रघुनाथजीनें ऐसा कहा तब शत्रुघ्नजीने महाबली सैनामुखियोंको बुलाकर ऐसा कहा ॥ १३ ॥ यह तुम्हारे ठहरनेंके निमित्त दिन नियत कर दियेहैं वहां तुम बाधा रहितहो स्थिति करना इसमें तुमको कुछ बाधा नहीं होगी ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे उन्हें आज्ञादे और उस महासैनाको भेजकर उन्होंनें जाय कौशल्या सुमित्रा और कैकेयीको प्रणाम किया ॥ १५ ॥ रामचंद्रकी प्रदक्षिणा और प्रणामकर तथा लक्ष्मण और भरतजीको हाथ जोड़ प्रणामकर ॥ १६ ॥ और पुरोहित वशिष्ठजीको दंडवत करके नियमसे रहनें हारे शत्रुओंके ताप देनें हारे महाबली शत्रुघ्नजी रघुनाथजीकी आज्ञाले और उनकी प्रदक्षिणा कर चले ॥ १७ ॥

निर्याप्यसेनामथसोग्रतस्तदागजेंद्रवाजि
प्रवरौघसंकुलाम् ॥ उपास्यमानःसनरेंद्रपा
र्श्वतःप्रतिप्रयातोरघुवंशवर्धनः ॥ १८ ॥

गजेन्द्र अश्व आदिकोंसे युक्त उस महासैनाको तौ उन्होंने आगे भेजा और पीछेसे वह रघुवंशके बढ़ानें हारे नरेन्द्र रामचंद्रसे विदा हो आपभी गये ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे भा०चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ॥

प्रस्थाप्यचबलंसर्वंमासमात्रोषितःपथि ॥
एकएवाशुशत्रुघ्नोजगामत्वरितंतदा ॥ १ ॥

सैनाको स्थापनकर और एक मास अयोध्यामें विताय शत्रुघ्नजी शीघ्रतासे अकेलेही चले ॥ १ ॥ वह रघुनंदन! वीर दो रात्रि मार्गमें विताय कर वाल्मीकिजीके पवित्र वासस्थानमें जायकर प्राप्त हुए ॥ २ ॥ सो शत्रुघ्नजी महामुनि वाल्मीकिजीको अभिवादन करके हाथ जोड़ उनसे यह वचन बोले ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! मैं एक बड़े कार्यके निमित्त आया हूं सो एक रात्रि यहां रहा चाहताहूं प्रातःकालही दारुण पश्चिम दिशाको

जाऊंगा ॥ ४ ॥ शत्रुघ्नजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी उन महात्मा
महा यशस्वीसे बोले कि तुम भले आये ॥५॥ हे सौम्य! यह हमारा आश्रम
रघुवंशियोंके कुलके निमित्तहीहै यह आसन, पाद्य,अर्घ्य आप निःशंक हमसे
ग्रहण कोजिये ॥ ६ ॥ इस प्रकार महा यशस्वी शत्रुघ्नजी फूल मूल और
भोजनको ग्रहणकर उन्हैं भक्षणकर परम तृप्तिको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ यह
फल मूलको भोजनकर महर्षि वाल्मीकिजीसे बोले यह आपके आश्रममें
पूर्व और किसके यज्ञकी विभूति दीखतीहै ॥ ८ ॥ यह सुनकर वाल्मीकि
बोले सुनो शत्रुघ्नजी जिनका स्थान यह पूर्वकालमें था सो कहताहूं ॥ ९ ॥
तुम्हारे वंशमें एक पूर्वकालमें सौदास राजाथा उस राजाके एक वीर्य
सहनाम महाबली अति धर्मवान पुत्र हुआ ॥ १० ॥ बालक अवस्थामेंहीं
वह सौदास मृगयाके निमित्त गया; तहां उन महावीरनें दो राक्षसौंको
फिरते हुए देखा ॥ ११ ॥ वे दोनों सिंह कामरूपी बनाये सहस्रौं मृगोंको
भक्षण करते हुएभी सन्तुष्ट नहीं होतेथे ॥ १२ ॥ जब सौदासनें देखा कि
इन दोनोंने तौ वनको निर्जीवही कर दियाहै तब महाक्रोधित हो बाणके
प्रहारसे एकको मारडाला ॥ १३ ॥ सौदास पुरुषश्रेष्ठने एक राक्षसका संहार
करकैं संताप क्रोध रहितहो दूसरे राक्षसकोभी मृतकही समझा ॥ १४ ॥
उसके सहायक दूसरे राक्षसने राजाको देखा कि यह हमारी ओरभी देखते हैं
तब वह दूसरा राक्षस घोर संताप करकै राजासे कहनें लगा ॥ १५ ॥ हे
पापी जिस कारणकि तुमनें विना अपराध मेरे सहायकको मारा है इस कारण
इसका फल तुम्हैं अवश्य दूंगा ॥ १६ ॥ यह कह वह राक्षस वहीं अंतर्ध्या-
न हो गया कुछ दिनोंकैं उपरान्त राजा सौदासतौ मृतक हुए और उनके
पुत्र मित्रसह राजा हुए ॥ १७ ॥ सो राजा इस आश्रमके निकट अश्वमेध
महायज्ञका अनुष्ठान करनें लगे और वशिष्ठजी उसकी पालना करनें ल-
गे ॥ १८ ॥ वह यज्ञ बहुतही वर्षोंतक रहा और महालक्ष्मी धन धान्यसे
युक्त होनेंके कारण देव यज्ञकीसमान हुआ ॥ १९ ॥ यज्ञान्तमें वह राक्ष-
स अपना वैर लेनेंके लिये राजासे वशिष्ठका रूप बनकर कहनें लगा ॥ २० ॥
आज तुम्हारा यज्ञ पूर्ण होगया इसकारण शीघ्रही हमको समांस भोजन
दो इसमें विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं ॥ २१ ॥ ब्राह्मणरूपी
राक्षसके यह वचन सुनकर राजाने भोजन बनानें में चतुर रसोइयोंसे क-

हा ॥ २२ ॥ हविष्य पवित्र मांस लाकर जिस प्रकार भोजन बहुतही स्वादिष्टहो और जिसे भोजनकर गुरुजी परमप्रसन्न हों सो तुम शीघ्र विधान करो ॥ २३ ॥ राजाके वचन सुनकर रसोइयें चकित हो गये कि राजा क्या कहतेहैं; इसी अवसरमें वह राक्षस रसोइयेंका वेषधार राजाके भोजनागारमें गया वहां कौशलसे मनुष्यका मांस मिलाय तैयार कर वह ॥ २४ ॥ मनुष्यका मांस लाकर राजाको दिया और कहा यह परम स्वादिष्ट हविष्य आमिष अन्न उपस्थित है ॥ २५ ॥ हेनरश्रेष्ठ! राजाने अपनी मदयन्तीपत्नी सहित वशिष्ठजीको भोजनके निमित्त वह राक्षसके द्वारा लाया हुआ मांस दिया ॥ २६ ॥ वशिष्ठजीनें देखा कि राजानें हमें मनुष्यका मांस भोजनको दियाहै; तब महा क्रोधकर इसप्रकारसे कहनें लगे ॥ २७ ॥ हे राजन्! जैसा यह भोजन हमारे भोजनके निमित्त लायाहै ऐसा भोजन तेरेही खानेंके निमित्त होगा इसमें कुछ संदेह नहीं अर्थात् तू राक्षस होगा ॥ २८ ॥ यह सुन सौदासने कहा कि इन्होंनें मुझे वृथा शाप दिया इसकारण क्रोधकर हाथमें जल ले वशिष्ठजीको शाप देने लगे तब उनकी भार्यानें आनकर निवारण किया कि ॥ २९ ॥ हे राजन्! भगवान्ऋषि वशिष्ठजी हमारे प्रभुहैं यह देवतुल्य पुरोहित हैं उनको शाप देनेंको आप समर्थ नहीं हैं ॥ ३० ॥ यह वचन सुनकर उन महात्मानें तेजबलयुक्त जल जो क्रोधसे ग्रहण किया था अपने चरणोंपर डाल लिया ॥ ३१ ॥ इससे इन राजाके दोनों चरण काले होगये और उसी दिनसे यह महा यशस्वी सौदास राजा ॥ ३२ ॥ कल्माषपाद राजा इन नामसे विख्यात हुए फिर राजानें स्त्रीसहित वारंवार मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके जो कुछ ब्राह्मणरूपधारी वशिष्ठनें कहा था वह सब निवेदन किया ॥ ३३ ॥ राजाके वचन सुन और राजाकी करी हुई इस चेष्टाको विचार फिर वशिष्ठजीनें उस पुरुषश्रेष्ठ राजा सौदाससे कहा ॥ ३४ ॥ जो कुछ कि हमनें क्रोधसे यह वचन कहेहैं इसे हम मिथ्या तौ नहीं करसकते पर तुमको वर देतेहैं कि ॥ ३५ ॥ बारह हर्षके उपरान्त शापका अन्त हो जायगा और हे राजेंद्र! हमारे प्रसादसे राक्षसपनकी करी हुई घटना ओंका तुम्हें स्मरण न होगा ॥ ३६ ॥ हे शत्रुघ्नजी इसप्रकारसे यह राजा शापको भोग अन्तमें फिर राज्यको प्राप्त हो प्रजाको धर्मसे पालन करनें लगे ॥ ३७ ॥

यह उन्ही कल्माषपाद राजाके यज्ञका सुन्दर स्थानहै जो हमारे आश्रमके समीपहै और जिसकी कथा तुमनें हमसे पूछीहै ॥ ३८ ॥

तस्यतांपार्थिवेंद्रस्यकथांश्रुत्वासुदारुणाम् ॥
विवेशपर्णशालायांमहर्षिमभिवाद्यच ॥ ३९ ॥

शत्रुघ्नजी इस प्रकारसे उन महात्मा राजाकी दारुण कथा श्रवण कर महर्षिको प्रणाम कर पर्णशालामें गये ॥ ३९ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०उ० पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥

यामेवरात्रिंशत्रुघ्नःपर्णशालांसमाविशत् ॥
तामेवरात्रिंसीतापिप्रसूतादारकद्वयम् ॥ १ ॥

जिस रात्रिमें शत्रुघ्नजी पर्णशालामें ठहरेथे उसी रात्रिमें जानकीके दो बालक उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ सो उससमय आधीरातके समय मुनि कुमारोंनें आनकर वाल्मीकिजीसे जानकीके संतान होनेंके शुभ समाचार कहे कि हे भगवन् ! ॥ २ ॥ उन रामकी भार्यानें दो पुत्र उत्पन्न कियेहैं सो आप बालग्रहके नाश करनेंहारी उनकी रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥ उनके वचन सुनतेही वाल्मीकिजी चले और बालचंद्रमाकी समान कांतिमान् पराक्रमी ॥ ४ ॥ उन दोनों कुमारोंको प्रसन्नतासे जाकर देखा भूत और राक्षसोंका भय दूर करनेंहारी रक्षाकी ॥ ५ ॥ एक मुष्टि कुश लेकर और उसमेंका आधा भाग लव (जड़) लेकर बीचमें से उसे चीरकर क्रमसे दोनोंकी रक्षा करी जिस्से कोई बालग्रह आदिक वहां प्रवेश न कर सका ॥ ६ ॥ जो उन दोनों बालकोमें पूर्व उत्पन्न हुआ और मंत्र पढ़े हुए कुशसे मार्जन किया इस कारण उसका कुश नाम हुआ ॥ ७ ॥ और जो उनमें छोटा हुआ उसकी लवद्वारा रक्षा करी इस कारण उसका नाम लव हुआ ॥ ८ ॥ इस कारण वह दोनों यमज कुश लव नामवाले होकर इन्ही मेरे रक्खे हुए नामसे विख्यात होंगे ॥ ९ ॥ इसप्रकारसे मुनिरक्षा कर पर्णशालाको गये और उस रक्षाको ग्रहण करके वे पापरहित वृद्ध स्त्री जो जानकीजीके निकट थीं सो बड़ी सावधानीसे रक्षा करनें लगीं॥१०॥ जिससमय वह वृद्धा उनकी रक्षा करनें लगीं तो उन्होंनें उनका गोत्र उच्चा-

रण कर रामचंद्र और सीताका पुत्र कहकर रक्षा की ॥ ११ ॥ सो शत्रुघ्नजीनें इस महाआनंदकी वार्ताको आधीरातके समय सुना और अपनी पर्णशालामें जाकर मनमें कहा कि माता भाग्यकी वातहै जो तुम्हारे पुत्र हुए ॥ १२ ॥ उस समय प्रसन्नताके मारे महात्मा शत्रुघ्नजीको वह वर्षाकालकी श्रावण महीनेंकी रात्रि बड़ी शीघ्रतासे व्यतीत होगई ॥१३॥ फिर प्रातःकालके समय वह महावीर प्रातकृत्य करके हाथ जोड़ मुनिसे आज्ञा ले पश्चिमकी ओरको चले ॥ १४॥ वह सात रात्रि मार्गमें विताकर यमुनाके तीर जाय बड़े पुण्यकर्म ऋषियोंके आश्रममें प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ शत्रुघ्नजी भार्गवआदि ऋषियोंके संग अनेक सुन्दर कथा श्रवण करते वहां रहे ॥ १६ ॥

सकांचनाद्यैर्मुनिभिःसमेतैरघुप्रवीरोरज
नींतदानीम् ॥ कथाप्रकारैर्बहुभिर्महा
त्माविरामयामासनरेंद्रसूनुः ॥ १७ ॥

वह नरेन्द्रपुत्र महात्मा शत्रुघ्नजी च्यवनादि ऋषियोंके साहित उस समय रात्रिमें अनेक प्रकारकी कथायें श्रवण कर वह रात्रि विताते हुए॥ १७ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० उ० भा० षट्षष्टितमः सर्गः ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

अथरात्र्यांप्रवृत्तायांशत्रुघ्नोभृगुनंदनम् ॥
पप्रच्छच्यवनंविप्रंलवणस्ययथाबलम् ॥ १ ॥

उस रात्रिमें शत्रुघ्नजी भृगुनंदन च्यवन ब्राह्मणसे लवणासुरके बलकी जिज्ञासा करनें लगे ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् उसके शूलका वल कैसाहै और उसनें कितनोंका नाश करदियाहै कौन कौन उस शूलसे द्वंद्व युद्ध करनेंको आयेथे ॥ २ ॥ उन महात्मा शत्रुघ्नजीके यह वचन सुनकर महातेजस्वी च्यवनजी रघुनंदनसे बोले ॥ ३ ॥ हे रघुनंदन ! इसके शूलके कर्म तौ अनगिन्तहैं, परन्तु जो कथा इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न मांधाताजीके विषयमें हुई है वह आप मुझसे श्रवण कीजिये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! पूर्वकालमें यौवनाश्वके पुत्र महावली मांधाताजी जो त्रिलोकीमें विख्यातथे वे अयोध्याजीमें वास करतेथे ॥ ५ ॥ वह राजा सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने

अधिकारमें करके पुनः स्वर्गलोक जीतनेका उद्योग करते हुए ॥ ६ ॥ जिससमय मांधातानें इन्द्रलोकको जीतनेंका उद्योग किया उससमय इन्द्र और महात्मा देवताओंको बड़ा भय हुआ ॥ ७ ॥ वह राजा इन्द्रके आधीनमें बैठनेंकी और देवताओंसे स्तुति करानेंकी प्रतिज्ञा करकै स्वर्गको चलनें लगे ॥ ८ ॥ इन्द्रजी उनका यह पाप अभिप्राय जानकर सत्वतापूर्वक वाक्य मांधातासे बोले ॥ ९ ॥ हे राजन्! पुरुषश्रेष्ठ तुम प्रथम मनुष्यलोककी सब पृथ्वी जब तक अपने वशमें नहीं करलोगे तब तक देवराज्य प्राप्त नहीं करसक्ते सो सब पृथ्वी वशमें किये बिना किसप्रकार देवलोकके राज्यकी इच्छा करतेहो ॥ १० ॥ हे वीर! यदि सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हारे वशमें है तो अपने भृत्य बल वाहन सहित देव लोकका राज्यकी जिये ॥ ११ ॥ इन्द्रके ऐसा कहनेंपर मांधाताजी बोले हे इन्द्र! बताओ पृथ्वीतलमें मेरी आज्ञा कहां नहीं है ॥ १२ ॥ तब सहस्राक्ष इन्द्रजी कहनें लगे मधुवनमें मधुका पुत्र लवणासुर तुम्हारी आज्ञा नहीं मान्ताहै ॥ १३ ॥ यह इन्द्रसे कहा हुआ घोर अप्रिय वचन सुनकर लज्जित और नीचेको मुख करकै राजा मांधाता कुछभी कहनेंको समर्थ न हुए ॥ १४ ॥ और इन्द्रको आमंत्रण करके नीचेको मुख किये वहांसे चले और वे श्रीमान्! फिर नरलोकको चले आये ॥ १५ ॥ और वह शत्रुतापन हृदयमें क्रोधकर भृत्य और वाहनोंके सहित मधुके पुत्रको वशमें करनेकी इच्छासे आये ॥ १६ ॥ और उन पुरुषश्रेष्ठनें लवणासुरसे युद्ध करनेंकी इच्छासे इसके पास दूत भेजा ॥ १७ ॥ उस दूतनें जाकर मधुके पुत्र लवणासुरसे बहुतसे दुर्वचन कहे तब वह क्रोधकर कटु प्रतापी दूतको भक्षण कर गया ॥ १८ ॥ दूतके आनेंमें देरहोनेसे राजा महा क्रोधित होकर चारों ओरसे बाण वृष्टिकर उस राक्षसको मर्दन करनें लगे ॥ १९ ॥ तब उस राक्षसनें हँसकर और त्रिशूल हाथमें लेकर उनको सैना सहित मारनेंके निमित्त वह शूल छोड़ा ॥ २० ॥ वह दीप्यमान त्रिशूल भृत्य बल वाहन सहित राजाको पृथ्वीमें भस्म करकै फिर लवणासुरके हाथमें आनकर प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे वह बड़े राजा भृत्य बल वाहन सहित नष्ट होगये हे शत्रुघ्नजी शूलका बल अप्रमेय और बड़ा श्रेष्ठहै ॥ २२ ॥ परन्तु आप कल प्रातःकालही

लवणासुरको मार डालोगे इसमें कुछभी संदेह नहीं जिस समय उसके हाथमें आयुध न होगा उस समय तुम अवश्य उसे जीत सकोगे ॥ २३ ॥ तुम्हारे इस कर्म करनेपर संसारका कल्याण होय यह दुरात्मा लवणासुरका सब चरित्र तुमसे वर्णन किया ॥ २४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! त्रिशूलका बल घोर और प्रमाण रहितहै और हे नृप! मांधाता राजाका नाश तौ अति साहससे धोखे में होगया ॥ २५ ॥

त्वंश्वःप्रभातेलवणंमहात्मन्वधिष्यसेनात्र तुसंशयोमे ॥ शूलंविनानिर्गतमामिषा र्थेंध्रुवोजयस्तेभवितानरेंद्र ॥ २६ ॥

हे नरेन्द्र! निःसंदेह आप कल प्रातःकाल उस राक्षसको संग्राममें मार डालोगे इसमें संदेह नहीं जिस समय वह शूलके विना आमिष लेनेको घरसे जायगा उस समय आप उसे अवश्य जीत लेंगे ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०उ०सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ॥

कथांकथयतस्तेषांजयंचाकांक्षतांशुभम् ॥ व्यतीतारजनीशीघ्रंशत्रुघ्नस्यमहात्मनः ॥ १ ॥

उन महात्मा शत्रुघ्नजीसे इस प्रकारसे कथा कहते और जयकी इच्छा करते हुए वार्तामेंही शीघ्रतासे रात्रि बीतगई ॥ १ ॥ उज्ज्वल प्रातःकाल होतेही वह राक्षस वीर अपने पुरसे आहार करनेके निमित्त निकला ॥२॥ उसी समय वीर शत्रुघ्नजी यमुना नदीको तरकर मधुपुरीके द्वारे धनुष धारण करकै स्थित हुए ॥ ३ ॥ तब मध्याह्नके समय वह क्रूरकर्मी राक्षस सहस्रौ प्राणियोंको अपने ऊपर लादकर प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ उसनें अपने नगरके द्वारे आयुध धारण किये शत्रुघ्नजीको देखा तब राक्षस बोला तुम इस धनुष बाणसे क्या करोगे ॥ ५ ॥ हे नराधम! इस प्रकारके तौ आयुध लिये सहस्रौं वीरोंको मैं रोषसे भक्षण कर गया सो आज तुमभी कालकी प्रेरणासै प्राप्त हुएहो ॥ ६ ॥ हे पुरुषाधम! आज मेरा आहार भी थोड़ाहीहै सो हे दुर्मति! आज तू स्वयंही मेरे मुखमें किस प्रकारसे आकर प्रविष्ट हुआहै ॥ ७ ॥ उसके इस, प्रकारसे कहनेसे और वारंवार हँसनेसे

वीर्य सम्पन्न शत्रुघ्नजी क्रोधके मारे आंसू त्यागनें लगे ॥ ८ ॥ उन महात्मा शत्रुघ्नजीके महा क्रोध होनेंसे उनके शरीरसे तेजमयी किरणैं निकलनें लगीं ॥ ९ ॥ और महा क्रोधकर शत्रुघ्नजी । निशाचरसे बोले हे दुर्बुद्धे मैं तेरे संग द्वंद्व युद्ध करनेंकी इच्छा करता हूं ॥ १० ॥ मैं बुद्धिमान रामचंद्रका भ्राता और महाराज दशरथजीका पुत्रहूं और शत्रुओंका मारनें वाला.शत्रुघ्न मेरा नामहै सो तेरे मारनें के निमित्त मैं आयाहूं ॥ ११ ॥ तू मुझ युद्धकी इच्छा करनें वालेको द्वंद्व युद्ध दे तू सारे प्राणियोंका शत्रुहै इस कारण आज मेरे हाथसे जीता न बचैगा ॥ १२ ॥ शत्रुघ्नके ऐसा कहनें पर वह राक्षस हँसता हुआ नरश्रेष्ठसे बोला हे दुर्मते ! तू आज भाग्यसेही प्राप्त हुआहै ॥ १३ ॥ हे दुर्बुद्धि नराधम मेरी मौसीके भाई रावण राक्षसको स्त्रीके निमित्त रामचंद्रनें मारडालाहै ॥ १४ ॥ सो उस रावणके कुलक्षयको और उसके मरण को हमनें किसी कारणसे सहन कर लिया; अब तुमनें विशेष करके मेरी अवज्ञाही कीहै क्योंकि मेरे सन्मुखही कहते हो ॥ १५ ॥ जो कहो तुममें बल नहीं है तो सुनो तुम्हारे कुलके प्रथम उत्पन्न हुए मांधाताको हमनें मारडाला तथा उन सरीखे और भी बहुत मार डाले इसी कारण उनकी अपेक्षा भविष्य समयवाले तुम हमारे सन्मुख तृणकी समान हो इससें आजतक नहीं माराथा ॥ १६ ॥ हे दुर्मति! यदि तुम युद्धकी इच्छा करतेहो तो मैं तुमको द्वंद्व युद्ध दूंगा एक मुहूर्त मात्र तुम स्थित रहो जबतक मैं अपना आयुध ले आऊं॥१७॥ तेरे मारनेंको जैसे आयुधकी आवश्यकताहै वैसाही आयुध धारण करूंगा यह वचन सुन शीघ्रतासे शत्रुघ्नजी बोले अरे तू मुझसे बचके अब कहांजा सक्ताहै ॥ १८ ॥ बुद्धिमानोंको उचितहै जब शत्रुस्वयंही आनकर स्थित हो जाय तब उसे त्यागना उचित नहीं और जो अपनी हीनबुद्धिसे शत्रुको अवसर देताहै वह मंदबुद्धि पुरुष कायरोंकीनांई मारा जाताहै॥१९॥

तस्मात्सुदृष्टंकुरुजीवलोकंचरैःशितैस्त्वां
विविधैर्नयामि ॥ यमस्यगेहाभिमुखंहिपा
पंरिपुंत्रिलोकस्यचराघवस्य ॥ २० ॥

इस कारण अब तू जीवलोकको देखले मैं तीक्ष्ण बाणोंसे अब तुझको

यमराजके घरका पाहुना करताहूं कारणकि तू बड़ा पापी त्रिलोकी और रघुनाथजीका शत्रुहै ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० उ० भाषाटीकायां अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥

तच्छ्रुत्वाभाषितंतस्यशत्रुघ्नस्यमहात्मनः ॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रंतिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ १ ॥

यह महात्मा शत्रुघ्नजीके वचन सुन बड़े क्रोधसे राक्षस कहनें लगा खड़े रहो २ ॥ १ ॥ हाथसे हाथ मलकर और दांतोंको कटकटाकर लवणासुर रघुसिंहको एकवारही युद्धके निमित्त बुलाता हुआ ॥ २ ॥ इस प्रकारसे घोरदर्शन लवणासुरको घोर वाक्य कहते हुए सुनकर देवताओं के शत्रुओंको मारने वाले शत्रुघ्नजी बोले ॥ ३ ॥ जिससमय तुमनें और वीरोंको जीताथा उस समय शत्रुघ्न नहीं उत्पन्न हुआथा सो आज मेरे बाणासे मृतक होकर तू यमलोकको जायगा ॥ ४ ॥ हे पापी जिसप्रकार रामचंद्रसे मरे हुए रावणको देवताओंने देखाथा इसी प्रकार आज मुझसे निहत हुए तुझको संग्राममें ऋषि ब्राह्मण और विद्वान देखेंगे ॥ ५॥ आज मेरे बाणसे विदीर्ण होकर तेरे गिरजानें पर इस पुर और देशमें कुशल हो जायगी ॥ ६ ॥ आज वज्रकी समान बाण मेरे हाथोंसे छूटकर तेरे हृदयमें ऐसे प्रवेश करेंगे जैसे कमलमें सूर्यकी किरण प्रवेश कर जाती हैं ॥ ७ ॥ यह सुनते ही महा क्रोधकर लवणा सुरने एक वृक्षको उखाड़कर शत्रुघ्नजीकी छातीमें मारा उन्होनें उसके बाणसे सौखंडकर दिये ॥ ८ ॥ बली राक्षसनें अपने वृक्ष प्रहारको व्यर्थ देखकर और बहुतसे वृक्ष उखाड़कर शत्रुघ्नजीके मारे ॥ ९ ॥ तेजस्वी शत्रुघ्नजीनेंभी बहुतसे वृक्षोंको आता देखकर नतपर्वबाण चलाय किसीको तीन किसीको चार बाणोंसे छेदन कर डाला वीर्यवान शत्रुघ्नजीनें ॥ १० ॥ फिर राक्षसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करदी परन्तु वह राक्षस कुछभी व्यथित नहीं हुआ ॥ ११ ॥ तब वीर्यवान लवणासुरने एक वृक्ष उठाय हास्य करकै वीर शत्रुघ्नजीके शिरमें मारा जिस्से वह शिथिल होकर मोहको प्राप्त हुए॥ १२ ॥ उस वीरके गिरनें पर देवता, ऋषि, गन्धर्व, और अप्सराओंमें महा हाहाकार मचगया ॥ १३ ॥

पृथ्वीमें शत्रुघ्नजीको मृतककी समान पड़ा देखकर यद्यपि राक्षसको शूल-लानेका अवसर मिलगया परन्तु वह उन्हें तुच्छ समझकर मंदिरमें शूल ले-नें न गया॥१४॥उन्हें पृथ्वीमें पड़ा देख शूल लैनेंको न गया और फिर मृतक समझ अपने भक्ष जीवोंको उठानें लगा ॥१५॥शत्रुघ्नजी एक मुहूर्त मात्रमें संज्ञाको प्राप्तहो फिर धनुष धारण कर उठे; तव उस पुरके द्वार परही ऋषि-योंनें उनकी वड़ाईकी ॥ १६ ॥ तव शत्रुघ्नजीनें उस दिव्य श्रेष्ठ अमोघ वा-णको धारण किया जो तेजसे प्रज्वलित और दशोंदिशाओंको पूर्ण कर रहाथा ॥ १७॥ वह वज्रकीसमान मुखवाला वज्रकी समान वेगवाला मेघ और मंदरकी समान गौरवता युक्त सम्पूर्ण ग्रंथियोंसे झुका हुआ कहीं भी संग्राममें न हारनेंवाला ॥ १८ ॥ लाल चंदनसे लिप्त पक्षियोंकी समान पंख-युक्त वह वाण दानवेन्द्र पर्वत और असुरोंको दारुण था ॥ १९ ॥ ऐसें कालाग्निकी समान प्रलय करनेंको उद्यत हुए उस वाणको देखकर सव प्राणी भयभीत होगये ॥ २० ॥ देवता, गन्धर्व, मुनि, अप्सरादिक सारा जगत् अस्वस्थ होगया और देवतादिक ब्रह्मजीके निकट गये ॥ २१ ॥ देव देव वरदायक पितामहसे देवता कहनें लगे कि हमको वड़ा भयहै क्या आजही लोकोंका संहार हो जायगा ॥ २२ ॥ लोकपितामह ब्रह्मा उनके यह वचन सुन देवताओंके भय करनेंहारे वचन वोले ॥ २३ ॥ मधुर वाणीसे कहनें लगे हे सम्पूर्ण देवताओं सुनो संग्राममें लवणासुरके मारनेंके निमित्त शत्रुघ्ननें वाण धारण कियाहै ॥ २४ ॥ हे देवताओ तुम सव उसके तेजसे संमूढ़ होगये हो यह लोककर्ता सवसे प्रथम उत्पन्न हुए देव सनातन भगवाननें ॥ २५ ॥ कैटभके मारनेंके निमित्त यह महातेज युक्त वाण धनुष निर्माण किया था जिसके कारण तुम भयभीत हुएहो॥२६॥ उन महात्मा देवने उन दोनों दैत्योंके मारनेंके निमित्त इस वाणको निर्माण किया था; एक विष्णु भगवानही इस महातेजयुक्त वाणको जानतेहैं ॥ २७ ॥ यह वाण साक्षात् विष्णुकी मूर्तिहीहै जाओ उन महा-त्मासे उस राक्षसका मरण देखो ॥ २८ ॥ रामानुज महावीर शत्रुघ्नजी उसको मारडालेंगे, इसप्रकार देवता उन देव देव ब्रह्माजीके वचन श्रवणकर ॥ २९ ॥ जहां शत्रुघ्न और लवणासुरका संग्राम हो रहाथा तहां आये उस दिव्य वाणको शत्रुघ्नके हाथमें ॥ ३० ॥ सव प्राणी उस वाणको

प्रलय कालमें अग्निकी समान देखते हुए, रघुनंदनने देवताओंसे आकाश युक्त देखकर ॥ ३१ ॥ बड़ाभारी सिंहनादकर लवणासुरकी ओर देखा; और उन महात्मा शत्रुघ्ननें उसको बुलाया ॥ ३२ ॥ लवणासुरभी महा क्रोधकर फिर युद्ध करनेंको उपस्थित हुआ तब धनुषधारण करनें वालोंमें श्रेष्ठ शत्रुघ्नजीनें कर्ण पर्यन्त धनुष खेंच ॥ ३३ ॥ उस महा बाणको लवणासुरके हृदयमें मारा वह उसके उरस्थलको भेदकर शीघ्र पातालमें प्रवेश करगया वह देवपूजित बाण शीघ्र रसातलमें प्रवेश करके फिर इक्ष्वाकु कुलनंदन शत्रुघ्नजीके पास चला आया ॥ ३४ ॥ शत्रुघ्नके बाणसे भिन्न हृदयहो वह राक्षस लवणासुर वज्रसे हत हुए पर्वतकी-समान पृथ्वीमें गिरा ॥ ३६ ॥ लवणराक्षसके मर जानेंपर वह दिव्य त्रिशूल सम्पूर्ण देवताओंके देखते २ शिवजीके पास चला गया ॥ ३७ ॥ रघुवीरनें एकही बाणको छोड़कर त्रिलोकीका भय दूर कर दिया और उत्तम चाप बाण धारणकर ऐसे सुशोभित हुए जैसे अंधकार दूर कर सूर्य शोभित होताहै ॥ ३८ ॥

ततोहिदेवाऋषिपन्नगाश्चपुपूजिरेह्यप्सरस
श्चसर्वाः ॥ दिष्ट्याजयोदाशरथेरवा
प्तस्त्यक्त्वाभयंसर्पइवप्रशांतः ॥ ३९ ॥

उस समय सब देवता ऋषि सर्प पन्नग अप्सरा सब कोई शत्रुघ्नकी बड़ाई करनें लगे हे काकुत्स्थ आपनें भाग्यसेही भय त्याग इस राक्षसको मारकर जय पाई और सर्पसमान लवणासुर हत हुआ ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० उ० भा० एकोन सप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥

हतेतुलवणेदेवाःसेंद्राःसाग्निपुरोगमाः ॥
ऊचुःसुमधुरांवाणींशत्रुघ्नंशत्रुतापनम् ॥ १ ॥

लवणासुरके मरनेंपर अग्नि सहित सब देवता शत्रुओंके तपानेंवाले शत्रुघ्नजीसे मधुर वाणी बोले ॥ १ ॥ हे वत्स! भाग्यसेही आपको जय हुई और भाग्यसेही लवणासुर राक्षस मारा गया, हे पुरुषसिंह अब तुम वर

माँगो ॥ २ ॥ हे महाभुज! हमारे दर्शन निष्फल नहीं जाते हम सब वर देनेंवाले विजयकी इच्छासे तुम्हारे निकट आयेथे ॥ ३ ॥ नियमित महाबाहु शत्रुघ्नजी देवताओंके यह वचन सुन शिर झुकाय हाथ जोड़ बोले ॥ ४ ॥ यह देवतोंकी बनाई मनोहर मधुपुरी शीघ्रहो धन जनसे पूर्ण होजाय इसी वरकी इच्छा करतेहैं ॥ ५ ॥ यह वचन सुन देवताओंनें प्रसन्न हो शत्रुघ्नजीसे तथास्तु कहा और निश्चयही यह शोभायमान पूर्ण शूरसेनदेशसे संयुक्त होगी ॥ ६ ॥ यह कहकर महात्मा देवता स्वर्गको चले गये और महातेजस्वी शत्रुघ्नजीनें गंगाके किनारेसे अपनी सैनाको बुलाया ॥ ७ ॥ वह सैना शत्रुघ्नकी आज्ञा श्रवणकर बहुत शीघ्रतासे आई और शत्रुघ्नजीनें श्रावण माससे उसका बसाना प्रारंभ किया ॥ ८ ॥ द्वादशवर्षसे प्रथमही सम्पूर्ण देश भयरहित हो शूरसेनवंशी राजाओंके रहनेंके निमित्त होगया ॥ ९ ॥ सब क्षेत्र धान्ययुक्त हुए इन्द्र समयपर वर्षा करते इस प्रकार शत्रुघ्नके पालन करनेंसे मधुपुरी अरोगी और वीरपुरुषोंसे परिपूर्ण होगई ॥ १० ॥ वह अर्धचन्द्राकार पुरी यमुनाके किनारे शोभित हुई, उसमें अनेकों सुन्दर घर गली बाजार चौराहे दुकान बनी जिसमें चारोंवर्ण अनेक व्यापारी आनंदसे वास करनें लगे ॥ ११ ॥ जैसा कुछ प्रथम लवणासुरनें उस्में मंदिर शोभित किया था उससे कहीं अधिक अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे शत्रुघ्नजीनें उसे शोभित किया ॥ १२ ॥ जिसके चारों ओर उपवन विहारस्थान शोभित थे औरभी अनेक शोभाके योग्य देवता ब्राह्मणोंसे वह पुरी शोभायमान थी ॥ १३ ॥ अनेक प्रकारकी व्यापारकी वस्तुओंसे शोभित वह पुरी देश देशान्तरसे आये वणिकोंसे परम मनोहर हो रहीथी ॥ १४ ॥ भरतके छोटे भाई समृद्धार्थ शत्रुघ्नजी उस पुरीको सब प्रकार अन्न जनसे पूर्ण देखकर परम प्रसन्न हुए इस प्रकार मधुपुरीको बसाकर उनके चित्तमें यह वार्त्ता आई कि अब चलकर रघुनाथजीके चरणोंका दर्शन करूं कारण कि विनामिले बारह वर्ष बीतगये ॥ १५ ॥ १६ ॥

ततःसताममरपुरोपमांपुरींनिवेश्यवैविवि

धजनाभिसंवृताम् ॥ नराधिपोरघुपतिपा
ददर्शनेदधेमतिंरघुकुलवंशवर्धनः ॥ १७ ॥

तब वह नरश्रेष्ठ रघुकुलके बढानेंवाले नरराज देवताओंकी पुरीकी समान अनेक जनोंसे अपनी पुरीको पूर्ण देख रघुनाथजीके चरणकमल देखनेंकी इच्छा करनें लगे ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ॥

ततोद्वादशमेवर्षेशत्रुघ्नोरामपालिताम् ॥
अयोध्यांचकमेगंतुमल्पभृत्यबलानुगः॥ १ ॥

तब बारहवें वर्षमें शत्रुघ्नजी थोड़ीसी सेनाको साथ ले रामपालित अयोध्यामें जानेंकी इच्छाकर चले ॥ १ ॥ तब वह मंत्री आदि मुख्य २ सेनाके लोगोंको लौटाकर एक अच्छे घोड़े जुते रथपर चढ और सौ रथ संग लेकर अयोध्याको चले ॥ २ ॥ महायशस्वी रघुनंदन सात आठ दिनमें वाल्मीकिजीके आश्रममें आनकर ठहरे ॥ ३ ॥ उन पुरुषश्रेष्ठनें वाल्मीकिजीके चरण स्पर्शकर पीछे मुनिसे पाद्य अर्घ्य और अतिथ्य ग्रहण किया ॥ ४ ॥ उससमय मुनि वाल्मीकिजीनें महात्मा शत्रुघ्नजीसे मनोहर सहस्रौं कथा वर्णनकी ॥ ५ ॥ और यहभी कहा हे शत्रुघ्न तुमनें जो लवणासुरको मारा यह बड़ा दुष्कर कर्म कियाहै ॥ ६ ॥ हे महाबाहो इस बलिष्ट लवणासुरनें युद्ध करते समय बड़े २ राजाओंको बल और वाहन सहित संहार कर दियाथा ॥ ७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ तुमनें उस महा पापीको लीलासेही मारडाला तुम्हारे प्रतापसे जगत् शान्त और निर्भय होगया ॥ ८ ॥ रामचंद्रनें बड़े यत्नसे रावणका विनाश कियाथा परन्तु तुमनेंभी यह महत्कर्म विनाप्रयत्नके सिद्ध किया ॥ ९ ॥ इस लवणके मारनेंसे तुमपर देवता बड़े प्रसन्न हुए कारणकि यह तुमनें सब जगत् और प्राणियोंका प्रिय कार्य सिद्ध कियाहै ॥ १० ॥ हे राघव! उस समय इन्द्रकी सभामें बैठे बैठे मैंने वह सब युद्ध यथावत देखाथा ॥ ११ ॥ हे शत्रुघ्नजी! मुझेभी तुम्हारे ऊपर बड़ी प्रसन्नता हुईहै इस कारणमैं तुम्हारे

शिरको सूंघता हूं कारणकि स्नेहको पराकाष्ठा यहीहै॥१२॥यह कहकर महा-
मति वाल्मीकिजीनें शत्रुघ्नका शिर सूंघलिया और शत्रुघ्न तथा उनके सब
सेवकोंका अतिथि सत्कार किया ॥ १३ ॥ जब वह नरश्रेष्ठ भोजन कर-
चुके उस समय किसी स्थानमें गाते हुओंसे रामचंद्रका चरित्र परम मधुर
छंदोंमें प्रत्यक्ष अनुभावकी समान श्रवण करनें लगे ॥ १४ ॥ उर कंठ
शिरमें मंद्र मध्य तार सुरसै उच्चारण हुए वीणाकी लयसहित समताल
गानसे युक्त व्याकरण वृत्त छंद काव्य संगीत शास्त्रके लक्षणोंसे परिपूर्ण
संस्कृत किया ॥ १५ ॥ पूर्व कालके किये हुए राम चरितकू अक्षरोंसे
पूर्ण वाक्य और सत्य अर्थयुक्त क्रमानुसार शत्रुघ्नजी श्रवण करनें
लगे ॥ १६ ॥ वह पुरुषसिंह उस गीतको श्रवण करतेही जल पूरित नेत्र
और विचेतन हुए एक मुहूर्ततक निश्चेष्ट और वारंवार श्वास लेते रहे ॥१७॥
उस गीतिकी पूर्व काल कथाकू वर्तमानकी समान श्रवण करनें लगे और
जो शत्रुघ्नजीके साथथे उन्होंनें भी यह मनोहर गीत श्रवणकर ॥ १८ ॥
ऐसा हमनें रामचरित्र गानेंहारा न देखा ऐसा विचार नीचेको मुखकर
लिये और गानेंवाले गीतिका कुशलतासे दीन होगये सेनाके लोग क्या
आश्चर्यहै ऐसा परस्पर कहनें लगे ॥ १९ ॥ कि यह क्याहै हम कहां हैं
कुछ स्वप्न तो नहीं देखतेहैं जो हमनें पूर्वकालमें देखाथा उसे हम फिर
इस आश्रममें ॥ २० ॥ श्रवण करते हैं क्या हम इस चरित्रकू स्वप्नमें देख-
ते हैं इसप्रकार परमाश्चर्यको प्राप्तहो शत्रुघ्नसे बोले ॥ २१ ॥ हे नरश्रेष्ठ !
आप वाल्मीकिजीसे यह अच्छीतरह पूछिये कि यह कर्त्तृक गान है वा और
कुछः तब शत्रुघ्नजी उन सब आश्चर्यको प्राप्त हुए पुरुषोंसे कहनें लगे॥२२॥
हे सैनिको हम ऐसी बातको मुनिसे नहीं पूछ सक्ते कारण कि इन मुनिके
आश्रममें बहुत आश्चर्य हुआ करते हैं ॥ २३ ॥

नतुकौहलाद्युक्तमन्वेष्टुंतंमहामुनिम् ॥
एवंतद्वाक्यमुक्त्वातुसैनिकान्रघुनंदनः ॥
अभिवाद्यमहर्षितंस्वंनिवेशंययौतदा ॥ २४ ॥

कौतूहल होनेंसे यह बात मुनिराजसे पूछनी उचित नहीं इसप्रकार
रघुनंदन सेनाके पुरुषोंसे कहकर महर्षिको अभिवादन कर अपने निवास

स्थनपर आये ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकांडे कात्यायन कुमार पं० ज्वाला प्रसाद मिश्रकृतभाषानुवादे एकसप्ततितमःसर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥

तंशयानंनरव्याघ्रंनिद्रानाभ्यागमत्तदा ॥
चिंतयानमनेकार्थंरामगीतमनुत्तमम् ॥ १ ॥

उन नरव्याघ्रको शयन करते उस समय निद्रा नहीं आई कारण कि अनेकार्थ युक्त रामचरित उत्तम गीतमें वह अनेक प्रकारकी चिंता करते रहे ॥ १ ॥ महात्मा शत्रुघ्नको वह मधुर वीणाके शब्दोंसेयुक्त गीत श्रवण करते २ शीघ्रही रात्रि व्यतीत होगई ॥ २ ॥ उस रात्रिके बीत जानेंपर प्रातःकृत्य कर शत्रुघ्नजी मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीसे हाथ जोड़ बोले ॥ ३ ॥ हे भगवान अब मेरी इच्छा रघुनंदन रामचंद्रके देखनेकी है इन मुनिके सहित आपकी आज्ञा लेकर जानेकी इच्छा करता हूं ॥ ४ ॥ शत्रुसूदन शत्रुघ्नजीके ऐसा कहनेंपर वाल्मीकिजीनें हृदयसे लगाय उन्हें विदा कर दिया ॥ ५ ॥ शत्रुघ्नजीभी मुनिश्रेष्ठको अभिवादन कर और श्रेष्ठरथपर चढ रामचंद्रके दर्शनकी इच्छा किये शीघ्रतासे अयोध्याको चले ॥ ६ ॥ वह श्रीमान् इक्ष्वाकुनंदन महाबाहु कान्तिमान रघुनाथजीकी मनोहर पुरीमें पहुंचे ॥ ७ ॥ तब वह पूर्णचंद्रमाकी समान मंत्रियोंके बीचमें बैठे हुए रामचंद्रको देखने लगे जैसे कि देवताओं के बीचमें इन्द्र बैठे होते हैं ॥ ८ ॥ वह सत्यपराक्रम तेजसे दीप्तिमान महात्मा रामचंद्रको अभिवादन कर हाथ जोड़कर कहनें लगे ॥९॥ हे महाराज! जो कुछ आपने आज्ञादीथी वह मैंने सम्पूर्ण प्रतिपादन की है वह पापी लवण मारागया और वहां मैनें पुरी भी वसाई है ॥ १० ॥ हे नृप रघुनंदन अब वहां रहते द्वादशवर्ष आपके विना दर्शन किये बीचगये अब आपके वियोगमें मुझसे रहा नहीं जाता ॥११॥ हे काकुत्स्थ! अब आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये; माताहीन बछड़ेकी समान अब मैं वहां बहुत समयतक नहीं रह सकता ॥ १२ ॥ शत्रुघ्नके यह वचन सुन रघुनाथजी उन्हें हृदय लगाकर बोले हे वीर ! तुम विषाद मत करो क्षत्रियोंको यह वचन